Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

112883

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

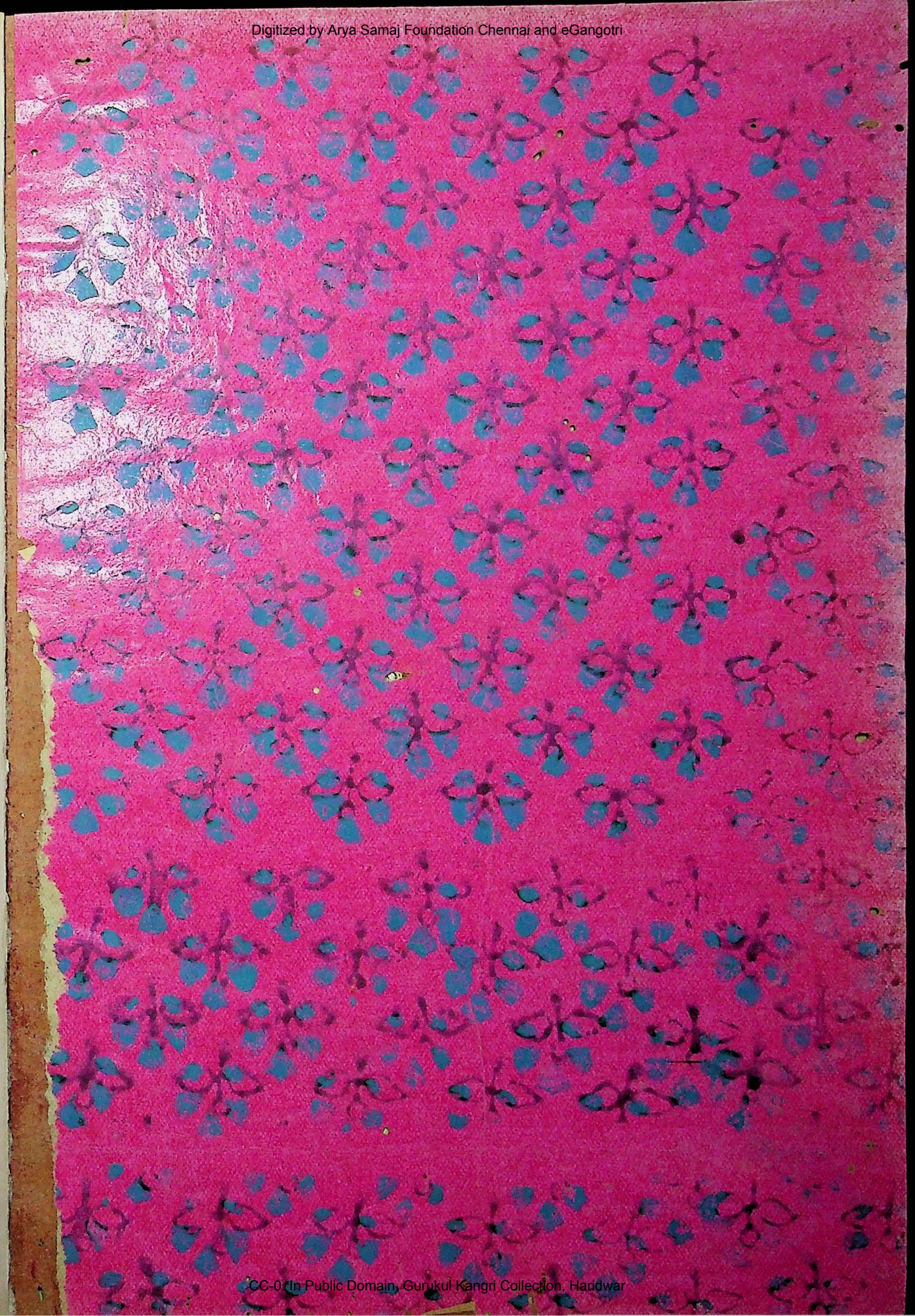

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

112887

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग १०

SARSWATI

सम्पादक,

महावीरप्रसाद द्विवेदी।

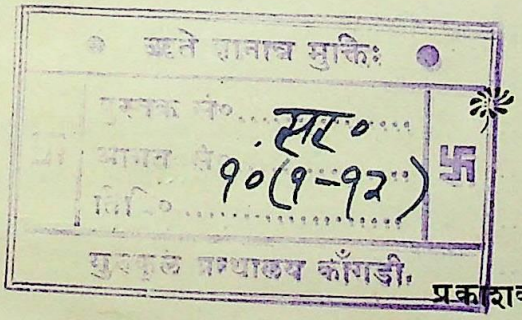

प्रकाशक,

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

१९०९

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूचीपत्र

☞ जिन लेखों के पहले * ऐसा चिह्न है वे सचित्र हैं।

१—आख्यायिकायें।

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
१	एक ज्योतिषी की आत्म-कथा ...	पण्डित श्रीलाल शालग्राम पंड्या	४०,७८
२	दालिया	श्रीमती वङ्ग-महिला	२१६
३	प्रत्युपकार का एक अद्भुत उदाहरण ...	बाबू कुन्दनलाल शाह	३६६
४	राखीबन्द भाई	बाबू वृन्दावन लाल	३९०
५	सात सुनार	पाण्डत शिवनारायण शुक्ल ...	२०२

२—ऐतिहासिक विषय।

१	चन्देल-राजवंश	सम्पादक	२८८
२	पञ्च-पुरावृत्त	श्रीयुत दामोदरसहायसिंह ...	३१४
३	फ़ारस में हिन्दुओं का राज्य	पण्डित उदयनारायण वाजपेयी ...	१५२
४	बौद्ध कालीन भारत के विश्वविद्यालय ...	सम्पादक	२५
५	बौद्धों के द्वारा अमेरिका का आविष्कार	,,	५२९
६	भारत का नौकानयन	श्रीयुत भुजङ्गभूषण भट्टाचार्य्य ..	३०५
७	भारत के जातीय पुस्तकालय ...	पण्डित उदयनारायण वाजपेयी ...	४०९
८	रुक्मिणी-हरण का स्थान	सम्पादक ...	५२६
		पण्डित खड्गजीत मिश्र, एम० ए०, एल० एल०बी०	३०२
९	वररुचि का समय	सम्पादक	४६६
१०	श्रीमद्भागवत और बोपदेव	पण्डित बाबूराव पराड़कर ...	१२०
११	सोमनाथ पर महमूद ग़ज़नवी की चढ़ाई ...	पण्डित उदयनारायण वाजपेयी	३४८
		"त्रिमूर्ति"	४९७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३—कवितायें।

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
१	आत्मोत्सर्ग	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	३८९
२	*उत्तरा का उत्ताप	,, ...	४०५
३	कवि और काव्य	पण्डित रामचरित उपाध्याय ...	३०३
४	कातरोक्ति	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	५६६
५	कारुण्य-भारती	,, ...	२८६
६	*कीचक की नीचता	,, ...	११६
७	कुकवि कीर्तन	,, ...	४६४
८	*कुन्ती और कर्ण	,, ...	१५०
९	कुलीनाथ पांडे	श्रीयुत विद्यानाथ	२१७
१०	कृष्ण-जन्म	पण्डित श्यामविहारी मिश्र, एम० ए० और पण्डित शुकदेवविहारीमिश्र, बी ए०	४६८
११	*गर्विता	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	३४०
१२	चन्द्रिका-वर्णन	बाबू मन्नीलाल	५११
१३	*दासी रानी	पण्डित कामताप्रसाद गुरु ...	५४३
१४	दीन-निहोरा	,, ...	३४८
१५	*द्रौपदी-दुकूल	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	६७
१६	धन	श्रीयुत विद्यानाथ	३०१
१७	*नक़ली क़िला...	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	५५४
१८	नागरी लिपि और हिन्दी भाषा ..	,, ...	५३६
१९	प्रार्थना	श्रीमती तोषकुमारी	८
२०	*"पूर्ण" कवि का चित्र-दर्शन	श्रीयुत पांड़ेय लोचनप्रसाद ...	५००
२१	*बाल-विलास (विनोद का बाजा) ...	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	४५९
२२	मक्खीचूस	,, ...	४०४
२३	मन	श्रीयुत विद्यानाथ	३९६
२४	मुंशी मरहूमीपरशाद	,, ...	४७८
२५	मेरा मनोराज्य	पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्म्मा ...	२६६
२६	रङ्क-रोदन	,, ...	४३०
२७	*रण-निमंत्रण	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	३०
२८	*रत्नावली	,, ...	२५१
२९	*रम्भा-शुक-सम्वाद	राय देवीप्रसाद, बी० ए०, बी० एल० ...	५५
३०	वर्षा-विषयक एक कवि की सूक्तियां ...	राय कृष्णदास	३७२
३१	विद्या-बहार	श्रीयुत विद्यानाथ	१०२
३२	*शकुन्तला को दुर्वासा का अभिशाप ..	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	२०७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
३३	*शकुन्तला-जन्म	राय देवीप्रसाद, बी० ए०, बी एल० ...	१६
३४	सम्मुखोद्गार	पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्म्मा ...	१७५
३५	*सलज्जा	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	३११
३६	स्वर्ग-सहोदर	,, ...	३६२
३७	*सीताजी का पृथ्वी-प्रवेश	,, ...	४१३
३८	हिन्दी की वर्त्तमान दशा	,, ...	२९२
३९	हेमन्त	श्रीयुत पांडेय लोचनप्रसाद ...	८६

४—जीवन-चरित।

१	आनरेबुल श्रीयुत सत्येन्द्रप्रसन्नसिंह, बारिस्टर-एट-ला	पण्डित उदयनारायण वाजपेयी ...	२७०
२	आर्य्यभट	पण्डित गिरिजाप्रसाद द्विवेदी ...	३५०
३	*इन्दौर-नरेश श्रीमन्त महाराज श्रीशिवाजी राव होलकर	"मयूर"	६
४	कवि-वर नवीनचन्द्र सेन, बी० ए० ...	सम्पादक	१४७
५	*नाना फड़नवीस	पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी ...	२४१
६	*पण्डित केशवराम भट्ट	बाबू युगलकिशोर अखौरी, बी० ए० ...	१९७
७	*पण्डित शङ्कर दाजी शास्त्री पदे ...	पण्डित जगन्नाथप्रसाद शुक्ल ...	४७४
८	*महामहोपाध्याय पण्डित कैलाशचन्द्र शिरोमणि	पण्डित उदयनारायण वाजपेयी ...	२८५
९	महाराज कनिष्क	,, ...	२१४
१०	*मिस्टर जैन वैद्य	सम्पादक	२९३
११	*राजा बलवन्तसिंह, सी० आई० ई० ...	कुँवर हनुमन्तसिंह	३८१
१२	*राजा वीरबल	लफ्टिनेंट अमरसिंह, ए० डी० सी० ...	५२३
१३	*राजा सरटी० माधवराव, के० सी० एस० आई०	सम्पादक	३३२
१४	राय-बहादुर सर प्रतुलचन्द्र चैटर्जी, एम० ए०, डी० एल०, सी० आई० ई० ...	पण्डित उदयनारायण वाजपेयी ...	१३३
१५	*राव संसारचन्द्र सेन बहादुर, एम० बी० ओ०, सी० आई० ई०	श्रीचन्द्रधर शर्म्मा गुलेरी	३०८
१६	*लार्ड टेनिसन	पण्डित व्रजविहारी शुक्ल	३४१
१७	*विलियम हार्स्ट	सम्पादक	५३
१८	*वीरवर फूलासिंह	लफ्टिनेंट अमरसिंह, ए० डी० सी० ...	४२६
१९	*स्वर्गवासी सेठ राजा गोकुलदास ...	पण्डित मुखराम चौबे	१००

५—फुटकर विषय।

१	*अब्राहम लिंकन की शतवर्षी ...	श्रीयुत सत्यदेव, अमेरिका ...	१९४
२	अमेरिका वालों की दुकानदारी ...	,, ...	५०७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृष्ठ	नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
१६	३	इँगलैंड में अबलाओं का आन्दोलन ...	अध्यापक देवीप्रसाद शुक्ल, बी० ए० ...	५४६
१७५	४	उपनिवेशों की शासन-प्रणाली ...	,, ...	४८७
३११	५	कन्यादान	श्रीयुक्त पूर्णसिंह	४४०
३६२	६	कर्त्तव्य-पालन	पण्डित रघुवरप्रसाद द्विवेदी, बी० ए० ...	३१७
४१३	७	कर्म्म-योग	पण्डित बदरीदत्त शर्म्मा	९
२९२	८	चित्र-चिन्तवन	मुंशी देवीप्रसाद	५१०
८६	९	*चित्र-दर्शन	सम्पादक ... ४५, ९४, १३९, १८६, ३७३, ४१९, ५१२, ५५९	
	१०	ज़ेबुन्निसा बेगम	पण्डित जगन्नाथप्रसाद शुक्ल ...	१२०
२७०	११	दाम्पत्य-दण्ड विधान	राजा कमलानन्दसिंह ...	४९१
	१२	पिपीलिका-पुराण	सम्पादक	१२९
३५०	१३	*फ़्रेंको-ब्रिटिश-प्रदर्शिनी	पण्डित प्यारेलाल मिश्र, लन्दन २३,	१०७
	१४	भयङ्कर भूतलीला	सम्पादक	२९७
६	१५	भारतवर्ष का वाणिज्य	अध्यापक वैद्यनाथ नारायणसिंह शर्म्मा, एम० ए०, बी० एल०	३२
१४७				
२४१	१६	*मनुष्य का मस्तिष्क	श्रीयुत पांडेय लोचनप्रसाद ...	२२१
१९७			पण्डित जनार्दन झा	४८
४७४	१७	मनोरञ्जक श्लोक	सम्पादक	२८०
२८५			कुँवर छेदीलाल	४७०
२१४	१८	महाराज एडवर्ड और उनकी महारानी के रविवार के कार्य्य	श्रीयुत हरिप्रसाद, बी० ए०, मैंचेस्टर ...	५०६
२९३				
३८१	१९	मित्र-माहात्म्य	सम्पादक	५६५
५२३	२०	मेरी डायरी के कुछ पृष्ठ	श्रीयुत सत्यदेव, अमेरिका	३८४
३३२	२१	मेरी नई-दुनिया सम्बन्धिनी राम-कहानी ...	श्रीयुत भोलादत्त पांडे, कैलीफोर्निया, (अमेरिका)	५३८
१३३	२२	मैथिलों की विवाह-परिपाटी ...	पण्डित जनार्दन झा	४३२
	२३	राज-धर्म्म	कुमार श्रीकेसरीसिंह	३४४
३०८	२४	*लन्दन में तातील का दिन	पण्डित प्यारेलाल मिश्र, लन्दन ...	७५
३४१	२५	*विलायत की जल-शक्ति	,, ,, ...	५०१
५३	२६	†विविध विषय	‡सम्पादक १, ४९, ९७, १४१ १८९, २३७, २८१, ३२९, ३७७, ४२१, ४७१, ५१९,	
४२६				
१००	२७	सच्चो वीरता...	श्रीयुत पूर्णसिंह ...	३८, ५७

† विविध विषयों के अन्तर्गत कितनेहीं नोट्स सचित्र हैं।

‡ इनमें कई नोट औरों के लिखे हुए भी हैं।

१९४
५०७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६—विचित्र विषय।

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
१	अद्भुत जीव जन्तु	सम्पादक	३२४
२	उत्तरी ध्रुव का आविष्कार	,, ...	५५०
३	तीस लाख वर्ष के पुराने जानवरों की ठठरियाँ	,, ...	१८५
४	दक्षिणी ध्रुव की यात्रा	,, ...	२६५
५	मृत्यु के बाद की घटनायें	पण्डित परमेश्वरदत्त	३५९
६	मङ्गल-माहात्म्य	पण्डित विश्वनाथ शर्म्मा	२२७
७	*मूंगा के रूपान्तर	सम्पादक	३६४
८	विलक्षण मछलियाँ	,, ...	३९४
९	व्योम-यान	,, ...	४१५

७—वैज्ञानिक विषय।

१	*अध्यापक राय के आविष्कार ...	पण्डित उदयनारायण वाजपेयी ...	६३
२	जंगलों से लाभ	श्रीयुत गोविन्दप्रसाद घिलडियाल ...	२३३
३	प्लेग का टीका...	पण्डित महेन्दुलाल गर्ग	१३
४	राजनीति-विज्ञान	श्रीयुक्त सत्यदेव, अमरीका ...	१७
५	वृक्षों और जानवरों की लड़ाई ..	"भ्रमर"	१६३, २२३
६	शरीर की अद्भुत रचना	बाबू कृपाशङ्कर निगम, बी० ए० ...	२७९
७	सायन-निरयन-वाद	पण्डित लल्लीप्रसाद शर्म्मा... ...	१८३

८—शिक्षा-विषय।

१	*अमेरिका में हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों की जीवन-चर्य्या	श्रीयुत भोलादत्त पांडे, कैलीफोर्निया, अमरीका	५५६
२	क़ैदी बालकों के स्कूल	पण्डित रामनारायण मिश्र, बी० ए० ...	२५३
३	हिन्दी की उच्च शिक्षा	श्रीयुत विद्यानाथ	३६९

९—शिल्प-विषय।

१	*एरी का रेशम और उसके कीड़े ...	श्रीयुत मुहब्बतसिंह दोनवार, बी० ए० ...	२०९
२	कृत्रिम दाँत	सम्पादक	३१२
३	*चक्कर में डालने वाले चित्र	,, ...	३७३, ४१९
४	*भवन-निर्म्माण-कौशल	लाला छोटेलाल साहिब, एग्ज़िक्यूटिव इंजिनियर	३१९, ४८०
५	*भारतवर्ष की कारीगरी के कुछ नमूने ..	सम्पादक	२६१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०—स्थल, नगर, जात्यादि-वर्णन।

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
१	*अमृतसर का स्वर्ण-मन्दिर	पण्डित जगन्नाथ पुच्छरत	१३८
२	अमेरिका के गाँव ...	सम्पादक	३३७
३	*आक्सफर्ड की सैर	पण्डित प्यारेलाल मिश्र, लन्दन ...	१७२
४	*तरनतारन का श्रीगुरु-मन्दिर ...	पण्डित जगन्नाथ पुच्छरत	५०९
५	देवगढ़ की पुरानी इमारतें	सम्पादक	१७९
६	*धारा नगरी	लफ्टिनेंट अमरसिंह, ए० डी० सी० ...	२१८
७	बैगा जाति के अनार्य्य	पण्डित शिवप्रसाद शर्म्मा	३०९
८	*मड़िये और मुरिये	श्रीयुत निज़ामशाह	३५४
९	मध्य-प्रदेश की जंगली जातियों की उत्पत्ति ...	श्रीयुत कन्हैयालाल, बी० ए० ...	१०४
१०	*लन्दन का अजायब-घर	पण्डित प्यारेलाल मिश्र, लन्दन ...	२९४
११	लन्दन का फौंडलिंग-अस्पताल ...	,, ...	१३१
१२	लंबे होंठवाले जंगली आदमी ...	सम्पादक	१६७

११—साहित्य-विषय।

१	अमेरिका के अख़बार	पण्डित श्रीकण्ठ पाठक, एम० ए० ...	१२४
२	अमेरिका से आया हुआ एक पत्र ...	श्रीयुत सत्यदेव, अमेरिका	३७६
३	कविता का दरबार	पण्डित लल्लीप्रसाद पांडे	७०
४	कविता क्या है ?	पण्डित रामचन्द्र शुक्ल	१५५
५	"केशों की कथा" की आलोचना ...	पण्डित श्यामनाथ	९२
६	गवामयन अर्थात् वैदिक संवत् ...	श्रीयुक्त चार्वाक भट्ट	११३
७	चीन के अख़बार	सम्पादक	१७७
८	ज्योतिष-चमत्कार ...	"निर्धन भड़ुरी"	९१
९	पुराने अँगरेज़-अधिकारियों के संस्कृत पढ़ने का फल	सम्पादक	८७
१०	पुस्तक-परीक्षा	सम्पादक ... ४६, ९५, १४०, १८८, २३४, २७९, ३२६, ३७४, ४२०, ४६९, ५१२, ५६०	
११	भिन्न भाषाओं की कविता का बिम्ब-प्रति-बिम्ब-भाव	पण्डित शशिसिंह शर्म्मा	३५८
१२	महाराष्ट्र-साहित्य-सम्मेलन	सम्पादक	५३१
१३	राम-कहानी की समालोचना	पण्डित श्रीकण्ड पाठक, एम० ए० ...	४५०
१४	वैदिक कोश	सम्पादक	२००
१५	हिन्दी-साहित्य और हमारा काम ...	श्रीयुत सत्यदेव, अमेरिका	४६०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख-संख्या।

नम्बर	विषय	संख्या
१	आख्यायिकायें	५
२	ऐतिहासिक विषय	११
३	कवितायें	३९
४	जीवन-चरित	१९
५	फुटकर विषय	२७
६	विचित्र विषय	९
७	वैज्ञानिक विषय	७
८	शिक्षा-विषय	३
९	शिल्प-विषय	५
१०	स्थल, नगर, जात्यादि-वर्णन	१२
११	साहित्य-विषय	१५
	कुल लेख-संख्या	१५२

चित्र-संख्या।

महीना	हाफ़टोन	रंगीन
जनवरी	८ ...	१
फरवरी	८ ...	०
मार्च	७ ...	०
एप्रिल	८ ...	१
मई	१४ ...	०
जून	११ ...	०
जुलाई	८ ...	०
आगस्ट	६ ...	०
सेप्टेम्बर	५	१
आक्टोबर	५	१
नवम्बर	९ ...	१
दिसम्बर	८ ...	१
कुल	९७ ...	६

—:०:—

Printed and Published by Panch Kory Mittra at the Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राधा और कृष्ण ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंगा और शान्तनु ।

INDIAN PRESS, ALLAHABAD.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

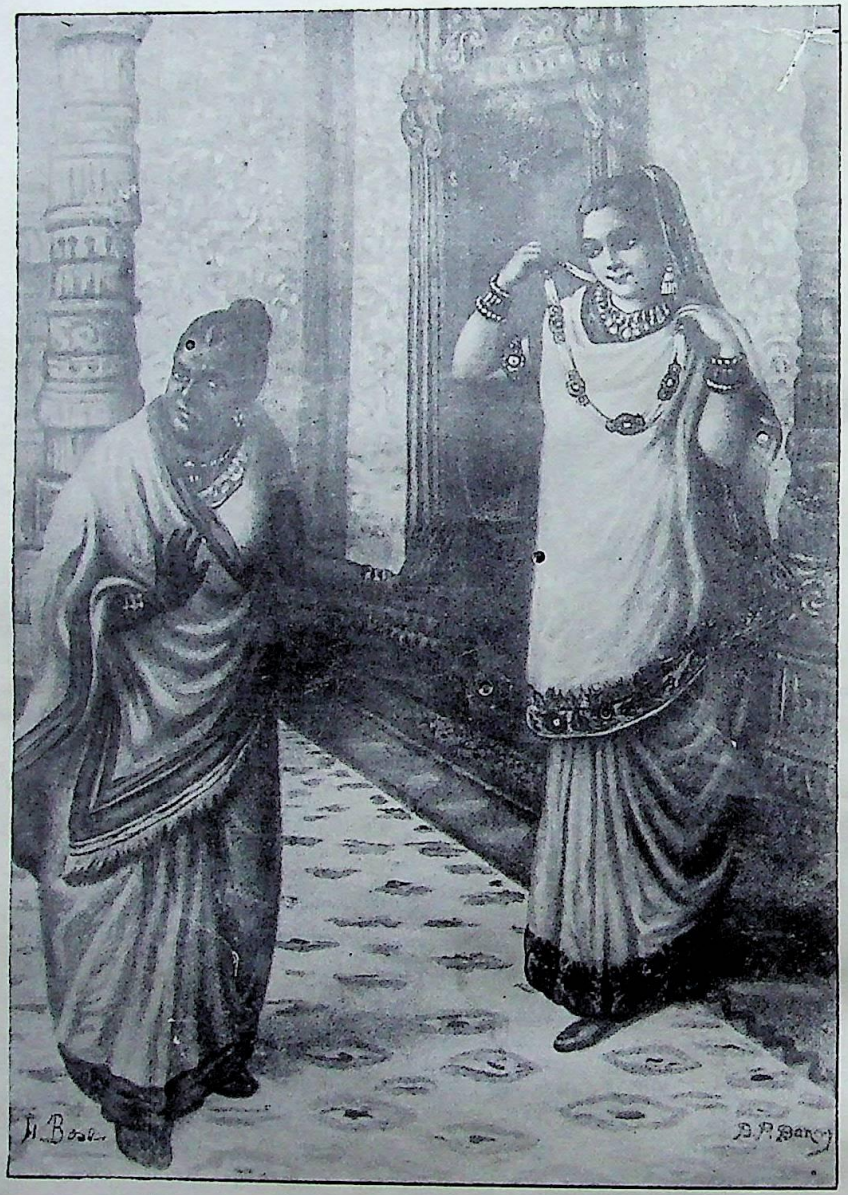

"मन्थरा और कैकेयी"

इंडियन प्रेस इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेंट कैथरिन।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महारानी विक्टोरिया और मूर्त्तिकार म्हातरे।

The Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मोतीमहल बेगम के नाम से बिकनेवाला चित्र ।

जहांआरा के नाम से बिकनेवाला चित्र ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

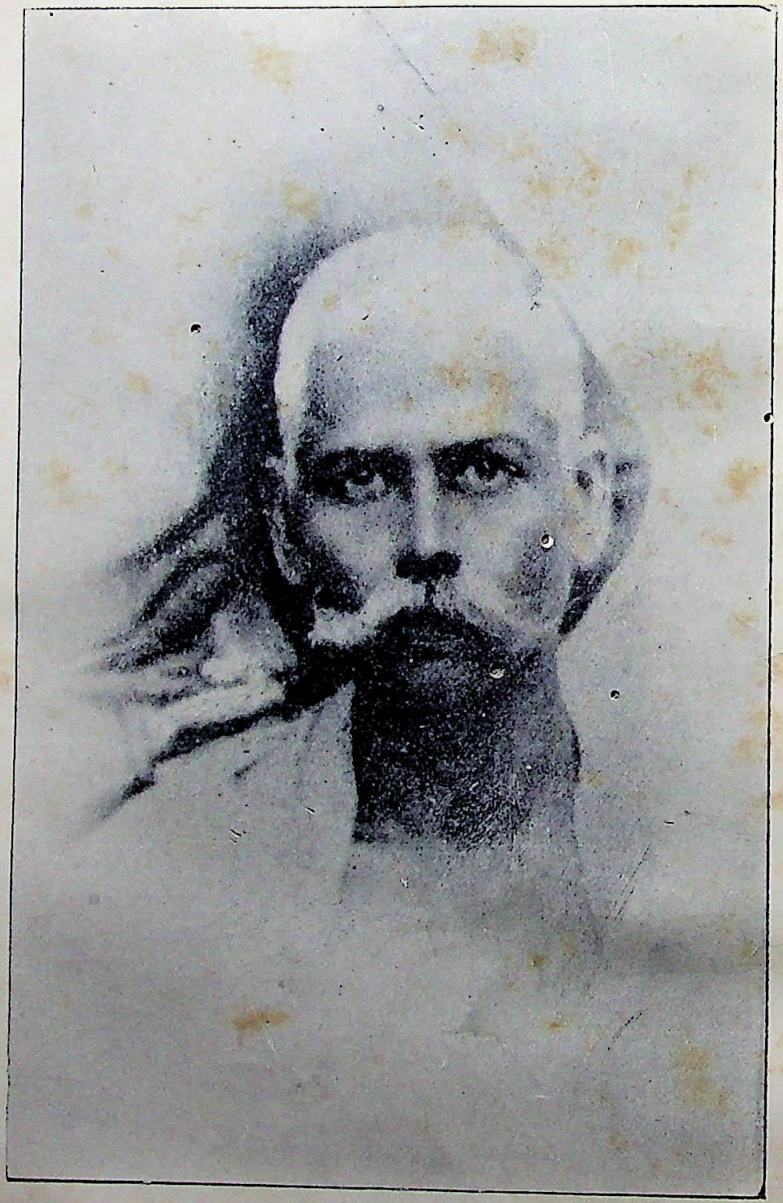

पण्डित केशवराम भट्ट ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा सर अमरसिंह, के० सी० एस० आई० ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परलोकवासी राजा रामपालसिंह ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक सं०...सर.....
आगत सं०...१०(१)...
तिथि.....
गुरुकुल ग्रन्थालय काँगड़ी.

सरस्वती।

भाग १०] १ जनवरी, १९०९। पौष शुक्ल १०, १९६५। [संख्या १

विविध विषय।

१—लखनऊ में लाट साहब का जुलूस।

गत तेईस नवम्बर को भारत के बड़े लाट लार्ड मिंटो के स्वागत में हाथियों का जो जुलूस लखनऊ में निकला था उसका हाल पाठकों ने समाचार-पत्रों में पढ़ा ही होगा। जुलूस में वायसराय और लेडी मिंटो आदि के सिवा अवध के कोई अस्सी ताल्लुक़ेदार भी सुन्दर सजे हुए हाथियों पर थे। आठ बजे सुबह जुलूस निकला था और कोई ९ बजे नियत स्थान पर पहुँच गया था। इस मौक़े पर सहज सुन्दर लखनऊ नगरी ने सज धज कर बड़ा ही मनोहर रूप धारण किया था। जिन सड़कों से जुलूस निकलनेवाला था वे ख़ूब सजाई गई थीं। उनमें पाँच स्थानों पर बड़े ही भव्य और सुन्दर मेहराब लगाये गये थे। इन मेहराबों पर फ़ारसी के सुनहले अक्षरों में सामयिक पद्य लिखे हुए थे जिनसे उनकी शोभा और भी बढ़ गई थी।

पहला मेहराब तो वहीं था जहाँ से जुलूस निकलना शुरू हुआ था। दूसरा मेहराब नख़ास के पुल पर था। इसे नवाब ग़ुलामहुसेन ख़ाँ ने बनवाया था। इस पर यह शेर लिखा हुआ था—

क़दम रंजा किया अहले वफ़ा पर मेहरबाँ होकर।
ज़मीने लखनऊ नाज़ाँ हुई है आस्माँ होकर॥

तीसरा मेहराब मिरज़ा मुहम्मद अब्बास बहादुर के मकान के सामने था। मिरज़ा साहब ने इस पर यह शेर लिखवाया था—

सुनकर आमद आपकी हर शख़्स ख़न्दाँ हो गया।
आज शहरे लखनऊ रश्के गुलिस्ताँ हो गया॥

चौथा मेहराब हज़रतगंज के मेशर्स आज़म अली ने अपने मकान के सामने बनवाया था। इस पर यह शेर दर्ज था—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़ैज़े क़दम से देखिए क्या आबोताब है।
हर ज़र्रः लखनऊ की ज़मीं आफ़ताब है॥

पाँचवाँ मेहराब चौक के महाजन लाला भोलानाथ ने गोल दरवाज़े पर लाल रंग का बनवाया था। इसकी कारचोबी का काम बड़ा ही मनोहर था।

इसके आगे विक्टोरियापार्क में लखनऊ भर के स्कूलों के लड़के इकट्ठे हुए थे। जुदे जुदे स्कूल के लड़कों की पगड़ियाँ जुदे जुदे रंग की थीं। इससे उस स्थान की शोभा दूनी हो गई थी। अहियागंज स्कूल के झंडे पर ये शेर लिखे हुए थे—

ऐ आमदनत बाइसे आबादिये मा।
ज़िक्रे तु बुअद ज़मज़मये शादिये मा॥
जनाबे लार्ड मिंटो का यहाँ आना मुबारक हो।
तुझे ऐ लखनऊ यह मेहमाँ आना मुबारक हो॥

जुलूस देखनेवाले सर्वसाधारण के लिए इमामबाड़े के आगे, जहाँ मेडिकल कालेज बननेवाला है, बैठने का प्रबन्ध था। पहले दरजे के टिकट की क़ीमत ३) रु० थी, दूसरे दरजे की २) रु०। बड़ा आलम इकट्ठा हुआ था। लाट साहब सब लोगों के अभिनन्दन और अभिवादन का उत्तर बड़े प्रेम से हाथ उठा कर देते जाते थे।

जुलूस के साथ अगर बैंड, ब्रिटिश झंडा और कुछ फ़ौज भी होती तो उसकी दर्शनीयता और भी बढ़ जाती।

२—छोटे लाट की कनवोकेशन स्पीच।

हर साल इलाहाबाद-विश्वविद्यालय का एक वार्षिकोत्सव होता है। उसमें ग्रेजुएट लोगों को पदवियाँ दी जाती हैं और विश्वविद्यालय के प्रधानाध्यक्ष (Chancellor) की एक स्पीच भी होती है। इस साल इस मौक़े पर इन प्रान्तों के छोटे लाट सर जान हिवेट साहब ने जो वक्तृता दी वह बड़े मार्के की है। इसमें अन्य कई महत्त्वपूर्ण बातों के सिवा देशी भाषाओं की शिक्षा के विषय में जो बातें आपने कहीं वे विश्वविद्यालय के अधिकारियों और प्रत्येक शिक्षित मनुष्य के ध्यान देने योग्य हैं। विश्वविद्यालय की ओर से देशी भाषायें पढ़ाने का जैसा बुरा प्रबन्ध है उसकी निन्दा करने के बाद आपने मातृभाषा का प्रायः कुछ भी ज्ञान न रखनेवाले ग्रेजुएटों की हालत पर अफ़सोस किया। आपका कहना बहुत ठीक है कि इससे उनकी नैतिक उन्नति में बड़ा बाधा पड़ती है और वे न इधर के रहते हैं न उधर के—अर्थात् अपने पूर्वपुरुषों में श्रद्धा और अपना धर्म कर्म भी खो बैठते हैं। फिर पश्चिमी साहित्य की तह पर भी नहीं पहुँच सकते। तुलसीकृत रामायण की लाट साहब ने ख़ूब प्रशंसा की और कहा कि इन प्रान्तों के अधिकांश ग्रेजुएट भी उसे अच्छी तरह समझ नहीं सकते। बड़े अफ़सोस की बात है कि हमारे प्रान्त के शिक्षितगण हज़ार बार धिक्कारे जाने पर भी अपनी मातृभाषा की ओर ध्यान नहीं देते। ख़ैर, यदि लाट साहब के उपदेशानुसार विश्वविद्यालय इस ओर ध्यान दे और देशी भाषाओं की शिक्षा का अच्छा प्रबन्ध करे तो छोटे बड़े सभी ग्राजुएटों को झखमार कर कुछ तो इस विषय में परिश्रम करना ही पड़े।

३—पूर्वीय विद्वानों की कांग्रेस।

समस्त सभ्य संसार के पूर्वीय विद्वान् कभी कभी अपनी काँग्रेस करते हैं। उसमें अनेक देशों के प्रतिनिधि शामिल होते हैं और पूर्वीय विद्या, कला, भाषा, साहित्य, इतिहास, पुरातत्त्व आदि कितने ही विषयों पर लेख पढ़ते हैं। इस कांग्रेस का पन्द्रहवाँ अधिवेशन डेनमार्क की राजधानी कोपेनहेगिन नगर में गत अगस्त मास में हुआ था। उसमें हिन्दुस्तान, इँगलैंड, जर्मनी, फ़्रांस, बेलजियम, संयुक्तराज्य (अमेरिका) ग्रीस और इटली के सरकारी प्रतिनिधियों के सिवा कई देशों के विश्वविद्यालयों और विद्या तथा विज्ञान से सम्बन्ध रखनेवाली सभाओं के भी प्रतिनिधि शामिल थे। भारतीय विषयों पर भी इस सभा में कई लेख पढ़े गये थे। उनमें से लङ्कानिवासी डाक्टर कुमारस्वामी का भारतीय चित्रकारी-विषयक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख बड़े महत्त्व का था। इसमें आपने यह दिखलाया कि भारत ने चित्रकारी में जो कुछ उन्नति की है वह अपना ही विद्याबुद्धि के बल पर की है; ग्रीस या रोमवालों से उसने इस विषय में बहुत कम ज्ञान प्राप्त किया है। इसके सिवा सारनाथ, ज्योतिष और गणित, महाभारत, बौद्धधर्म, पारसी-धर्म में नैतिक उन्नति और आन्ध्रवंशी राजाओं पर भी एक एक लेख पढ़ा गया। इसके बाद संस्कृत और पाली के वे हस्तलिखित ग्रन्थ, जो कोपेनहेगिन के पुस्तकालय में हैं, उपस्थित विद्वानों को दिखलाये गये। मतलब यह कि इस सभा में भारतीय बातों की अच्छी चर्चा रही। पर अफ़सास इस बात का है कि हिन्दुस्तान से हज़ारों कोस दूर बैठ कर, और समय तथा धन की हानि सह कर, विदेशी विद्वान् भारतीय विद्या की चर्चा करें और यहाँ के अहम्मानी विद्वान् कूपमण्डूकवत् पड़े पड़े पुराने स्वप्न देखा करें।

४—डाक्टर स्टीन की यात्रा।

कई वर्ष हुए डाक्टर स्टीन नाम के एक विद्वान् मध्य एशिया का यात्रा करने गये थे। तबसे अब तक आप वहाँ के विकट पहाड़ों और मैदानों में बराबर घूमते रहे। इतने दिनों में आपने भौगोलिक और पुरातत्त्वसम्बन्धी सैकड़ों आविष्कार किये हैं। कितने ही प्राचीन नगरों, इमारतों, बौद्धमन्दिरों और मूर्त्तियों का आपने पता लगाया। इसके सिवा बहुत से शिलालेख, हस्तलिखित ग्रंथ और सिक्के भी आपको मिले। जो जो दुर्गम स्थान अब तक सभ्य संसार को अज्ञात थे उनकी पैमाइश भी आपने की। इस तरह दुनिया के भौगोलिक और ऐतिहासिक ज्ञान बढ़ाने में सहायता देकर आपने बड़ा प्रशंसनीय कार्य्य किया। इस काम में हमारे देशवासी रामलालसिंह ने आपको बड़ी मदद दी। डाक्टर साहब अपनी यात्रा समाप्त कर अगस्त महीने में खुतन से चल दिये थे। इस समय वे भारत में आगये हैं। यहाँ से आप इँगलैंड जायँगे।

५—गुलामी की प्रथा।

बहुत लोगों का ख़याल है कि भारतवर्ष में किसी समय गुलामी का रिवाज न था। पर यह ख़याल ग़लत है। "माडर्न-रिव्यू" के एक लेख से मालूम हुआ कि कोई डेढ़ सौ वर्ष पहले तक बंगाल में गुलामी की प्रथा प्रचलित थी। रामकृष्णपाल नाम के एक मनुष्य ने अपने को बेचते समय जो बैनामा लिखा था उसका अनुवाद भी पूर्वोक्त पत्र में छपा है। क़र्ज़ न अदा कर सकने पर उसने केवल पच्चीस रुपये और खाने कपड़े पर पुश्तहापुश्त तक गुलामी करने का इक़रार किया था। पर यूरप और अमेरिकानिवासी जैसा क्रूर बर्ताव अपने गुलामों के साथ करते थे वैसा भारतवासी कभी न करते थे। वे उनके साथ दया और नम्रता का व्यवहार करते थे और उनके बालकों को पढ़ाते लिखाते भी थे।

६—मिकाडो की दिनचर्य्या।

अमेरिका के एक मासिक पत्र में एक जापानी ने मिकाडो की दिनचर्य्या पर एक बहुत ही मनोरञ्जक लेख प्रकाशित किया है। उसमें लिखा है—मिकाडो ६ बजे उठते हैं, सात बजे कलेऊ करते हैं, आठ बजे एक डाक्टर उनकी तबीयत का हाल मालूम करने आता है, दस बजे तक वे अपने और निज के महलों से सम्बन्ध रखनेवाले काम कर चुकते हैं। इसके बाद वे अपने पुस्तकालय में जाते हैं और बारह बजे तक राज-काज करते हैं। दोपहर होते ही वे खाना खाते हैं और फिर शाम के छः बजे तक लगातार काम में जुटे रहते हैं। पहले वे धनुर्विद्या के अभ्यास को देर तक कसरत करते थे; बाण चलाने का मज़ाविरा भी उन्हें बहुत अच्छा हो गया था। पर अब उन्होंने इस कसरत को छोड़ दिया है। अब वे लकड़ी के एक विलक्षण प्रकार के बने हुए घोड़े पर सवार होकर कसरत करते हैं। कसरत के बाद वे स्नान करते हैं। स्नान करने से वे कभी नहीं चूकते। फिर शाम का खाना खाकर काव्य और साहित्य-सम्बन्धी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम में वे लग जाते हैं। जो कपड़ा आप एक दफ़े पहन लेते हैं उसे दुबारा नहीं पहनते। वह किसी पुण्यवान् सरदार या पदाधिकारी को दे दिया जाता है। उसे वह एक अलभ्य वस्तु समझकर बड़े भक्ति-भाव से ग्रहण करता है। मिकाडो को घड़ियाँ और तलवारें इकट्ठा करने का बड़ा शौक़ है। आपके संग्रह में भाँति भाँति की कोई तीन सौ तलवारें हैं। आप बहुत अच्छे कवि हैं। कविता से आपको बेहद प्रेम है। आपकी कविता ख़ूब सरस होती है। वह समय समय पर प्रकाशित भी हुआ करती है।

७—परलोक से प्राप्त समाचार।

अभी हाल ही में इँगलैंड में एक बड़ी अद्भुत किताब प्रकाशित हुई है। विलायत भर में इसकी धूम मची हुई है। इस पुस्तक में परलोक से आये हुए उन सब समाचारों का संग्रह है जो बीबी हालैंड नाम की एक मेम द्वारा प्राप्त हुए हैं। मिसेज़ हालैंड को परलोकगत मनुष्यों के भेजे हुए समाचार लिखते जाने का ख़ूब अभ्यास है। इन समाचारों के भेजने वाले मायर, हाजसन और गर्नी नाम के तीन स्वर्ग-वासी विद्वान् हैं जो इँगलैंड की एक विख्यात आध्यात्मिक सभा के स्थापक और सञ्चालक थे। ये लोग अपने जीवनकाल में भी परलोकगत मनुष्यों से बातचीत करने और आध्यात्मिक विषयों की चर्चा में लगे रहते थे और मरने पर भी, इस पुस्तक के कर्त्ता के कथनानुसार, उसी काम में लगे हैं। मरने के बाद जो जो बातें उन्होंने अनुभव की हैं उनका वर्णन अपने भेजे हुए समाचारों में इन लोगों ने दिया है, जो अस्पष्ट होने पर भी अत्यन्त मनोरञ्जक हैं। यद्यपि अधिकांश लोग इस पुस्तक में लिखी हुई बातों को दिल्लगी और धोखेबाज़ी समझते हैं तथापि इस विषय पर लोगों का विश्वास धीरे धीरे बढ़ता जाता है और इसकी चर्चा दिन पर दिन अधिक होती जाती है।

८—अद्भुत जादूगर।

आजकल इँगलैंड में जोज़ेफ़ी नामक एक जादूगर का बड़ी धूम मची है। एक साहब का कथन है कि ऐसा अद्भुत जादूगर संसार में और कहीं न होगा। जैसे आश्चर्य्यजनक खेल वह करता है वैसे कभी कोई जादूगर नहीं कर सका। उदाहरण के लिए उसके दो एक खेलों का हाल सुनिए। आप अपने घर से ताशों की गड्डी ले जाइए। जोज़ेफ़ी साहब दूर ही रहेंगे; निकट न आवेंगे। उनके और ताशों के बीच में कोई ज़ाहिरा सम्बन्ध भी न रहेगा। पर जिस ताश को आप बतायँगे वही, जादूगर साहब की आज्ञा पाते ही, उठने बैठने लगेगा। साहब के पास ताँबे का बना हुआ एक समूचा सिर भी है। इसे आप अपने पास रख लीजिए; जादूगर महाशय कुछ दूर हट कर खड़े होंगे। सिर और साहब के बीच में कोई दृश्य सम्बन्ध न होगा। पर जो प्रश्न मदारी मियाँ करेंगे उसका उत्तर दाँत बजा कर वह तुरन्त देगा। इसके सिवा जोज़ेफ़ी साहब एक और तमाशा करते हैं, जो हिन्दुस्तान की जादूगरी का थोड़ा बहुत मुक़ाबला कर सकता है। सब लोगों के देखते देखते हवा में एक इंच घेरे की एक कटोरी पैदा हो जाती है। धीरे धीरे वह बढ़ने लगती है; यहाँ तक कि नौ इंच की हो जाती है। तब वे इसे सब के सामने मेज़ पर रख देते हैं। यहाँ भी उसका बढ़ना बन्द नहीं होता; धीरे धीरे वह तीन फ़ीट, छः इंच घेरे की हो जाती है; अर्थात् एक गज़ से भी बड़ी! अब जादूगर साहब इसे उठाते हैं। पर आश्चर्य्य! इसके नीचे से एक सुन्दरी युवती निकल पड़ती है और तुरन्त भागने लगती है। पर ज्योंही मदारी मियाँ उसे पकड़ने दौड़ते हैं त्योंही वह आग की लपट बनकर हज़ारों आदमियों के सामने आकाश में उड़ जाती है और उसकी जगह पर गुलाब के फूलों का एक बड़ा भारी गुलदस्ता उत्पन्न हो जाता है। इसमें से फूल तोड़ तोड़ कर जोज़ेफ़ी साहब सब दर्शकों को बाँट देते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९—मरक्को के नये सुलतान।

अफ़्रीक़ा महाद्वीप के उत्तर में मरक्को नामक एक देश है। अब तक सुलतान अब्दुलअज़ीज़ वहाँ शासन करते थे। उनका हाल सरस्वती में छप चुका है। वर्तमान समय के नरेशों में जो जो गुण होने चाहिएँ वे उनमें पूर्णरूप से नहीं हैं। इसी कारण उनकी भाग्यलक्ष्मी ने उन्हें धोखा दिया। वे मरक्को के राजसिंहासन से उतार दिये गये। आजकल वे साधारण प्रजा से भी अधिक बुरी दशा में हैं। मौलाई हाफ़िज़ नामक अब्दुलअज़ीज़ के सौतेले भाई ने राजसिंहासन का दावा किया है। केवल दावा ही नहीं किन्तु उसने राज्य पर अधिकार भी जमा लिया है और मरक्को का सुलतान बनने की घोषणा प्रचारित कर दी है। कुछ दिन हुए दो अँगरेज़ गुप्त वेश में अनेक कठिनाइयाँ झेलकर मौलाई से मिलने गये थे। उन लोगों का कथन है कि यह मनुष्य बड़ा उदारचित्त और प्रवीण राजनीतिज्ञ है। वह शान्तिपूर्वक शासन करना चाहता है और मरक्कोनिवासियों को यूरोपियन लोगों के समान सभ्य और व्यवहारकुशल बना देने की उसकी आन्तरिक इच्छा है। जो हो, सब यूरोपियन राज्यों ने अभी उसे नियमानुसार सुलतान नहीं माना है। परन्तु रंग ढंग देखने से जान पड़ता है कि उसको यह अधिकार शीघ्र ही प्राप्त हो जायगा।

१०—रूस-जापान-युद्ध का नवीन कारण।

जनरल कुरोपेटकिन ने रूस-जापानयुद्ध का एक नवीन कारण प्रकट किया है। युद्ध के जितने कारण अब तक प्रकट हुए थे वे इसके सामने रद हो गये हैं। १८९८ ईसवी में एक रूसी सौदागर ने कोरिया को यालू नदी के आस पासवाले जंगलों को काट कर लकड़ी का व्यापार करने के लिए एक कम्पनी बनाई। कुछ दिनों बाद इसे उसने बिज़ोब्राज़फ़ नामक एक रूसी के हाथ बेच डाला। यह शख़्स ज़ार का मुसाहब था। रूस के बड़े बड़े अमीर और रईस इसके मित्र थे। इसने इन लोगों को बहकाया कि कोरिया के जंगलों में अनन्त धन भरा पड़ा है और वहाँ की लकड़ी इतनी क़ीमती है कि उसके व्यापार से करोड़ों रुपये का लाभ हो सकता है; इसलिए रुपये इकट्ठा करके एक कम्पनी बनाना चाहिए। सब लोग इसके कहने में आगये। ज़ार पर भी इसका जादू चल गया। इन लोगों ने करोड़ों रुपये लगाकर एक कम्पनी खड़ी की। इसी आदमी के कहने के अनुसार ज़ार ने लकड़ी का काम शुरू करने के लिए सत्तर हज़ार सिपाही दक्षिणी मंचूरिया में भेजे। यह बात १९०३ ई० की है। इसी समय रूस और चीन की सन्धि हुई थी। उसके अनुसार रूस को मंचूरिया ख़ाली कर देना चाहिए था। ख़ाली करने का काम शुरू हो चुका था; पर एकाएक रुक गया। उलटा नई फ़ौज वहाँ आने लगी। तब कुछ लोगों ने ज़ार को समझाया कि ऐसा करने से जापान से लड़ाई छिड़ जाने का अन्देशा है। पर ज़ार ने कहा कि हम जापान से लड़ना नहीं चाहते; हमारी इच्छा सिर्फ़ लकड़ी का व्यापार करने की है। बार बार समझाने पर भी उन्होंने न माना और बेज़ोब्राज़फ़ के कहने के अनुसार काम किया। फल यह हुआ कि लड़ाई छिड़ गई। ग़रीब प्रजा के करोड़ों रुपये नष्ट हो गये। अगणित सेना कट गई। लाखों घर तबाह हो गये। हाय रे लोभ!

११—"केशों की कथा" की आलोचना।

दिसम्बर की संख्या में "केशों की कथा" नामक रंगीन चित्र को लाला छोटेलालजी साहब, बी० ए० (एग्ज़िक्यूटिव एंजिनियर, संयुक्त प्रान्त) ने बहुत पसन्द किया है। आप संस्कृत और फ़ारसी के भी उद्भट विद्वान् हैं और काव्य, चित्रविद्या तथा पुरातत्त्वसम्बन्धी विषयों के भी बहुत ही अच्छे ज्ञाता हैं। आप लिखते हैं कि इस चित्र के द्वारा चित्रकार ने जो मर्म्मस्पर्शी भाव व्यक्त किया है उसकी जितनी प्रशंसा की जाय कम है। इस चित्र पर बाबू मैथिलीशरण गुप्त की जो कविता प्रकाशित हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है उसे भी आप उत्कृष्ट कविता का एक बहुत ही अच्छा नमूना समझते हैं। आपकी सम्मति है—"यह कविता बेहद कारुणिक है। आज तक गुप्त महाशय की जितनी कवितायें सरस्वती में निकली हैं यह कविता उन सबसे बढ़कर है। गुप्त जी चाहे जितना प्रयत्न करें, अब इससे अच्छी कविता उनकी लेखनी से निकलने की नहीं। अतएव यदि वे इसे व्याजस्तुति न समझें तो आज से कविता लिखना बन्द कर दें।" सरस्वती और गुप्त जी दोनों के लिए यह बड़े गर्व की बात है। सरस्वती में प्रकाशित कविता के निन्दकों की कमी नहीं। ख़ैर इतनी ही है कि लाला छोटेलालजी जैसे विद्वान् उसकी प्रशंसा करते हैं। आशा है, कोई समय आवेगा जब कविता-प्रेमीजन कविता के गुण-दोषों का उचित विवेचन करके भली-बुरी कविता का भेद अच्छी तरह जान सकेंगे। श्रीयुत लाला छोटेलालजी से हमारी प्रार्थना है कि गुप्त जी को वे आशीर्वाद दें जिसके बल से गुप्त जी "केशों की कथा" से भी उत्तमतर कविता आगे लिख सकें। इस कविता के अन्तिम पद्य के अन्तिम चरण में जो "अकेली" शब्द है उसकी जगह पर आप "निरी यह" अधिक युक्ति-संगत समझते हैं। आपकी इस सम्मति को हम मानते हैं। आशा है, गुप्त जी भी इसे धन्यवाद-पूर्वक स्वीकार करेंगे।

इन्दौर-नरेश श्रीमन्त महाराज श्रीशिवाजीराव होलकर।

कुछ दिन हुए जिन इन्दौर-नरेश महाराज शिवाजीराव होलकर का मृत्यु-समाचार अख़बारों में छपा था आज हम उन्हीं का संक्षिप्त चरित और चित्र पाठकों की भेंट करते हैं।

महाराज शिवाजीराव होलकर का जन्म १२ नवम्बर सन् १८५९ ई० को मंडलेश्वर में हुआ था। आपके पिता महाराज तुकोजीराव होलकर ने आ को अँगरेज़ी और संस्कृत में अच्छी शिक्षा दी थी। अँगरेज़ी में आपको इतना अभ्यास था कि अँगरेज़ की तरह आप बड़ी आसानी से बात चीत क सकते थे। संस्कृत में भी आपका अध्ययन बहु विस्तीर्ण था। शब्दभेदी गोली चलाने में आप अच्छा अभ्यास किया था। शिकार खेलने का भ आपको बड़ा शौक़ था। आपके पिता महाराज तुकोजीराव ने अपने राजत्वकाल ही में आपको कु अधिकार दे दिये थे। इस कारण जब १७ जु सन् १८८६ को आपके पिता का स्वर्गवास हुआ और रियासत का बोझ आप पर आ पड़ा तब आ बिलकुल नातजिर्बेकार न थे।

महाराज शिवाजी ३ जुलाई सन् १८८६ क गद्दी पर बैठे। गद्दी पर बैठते ही आपने रियास का ऐसा अच्छा प्रबन्ध किया कि इन्दौर चमन होगय और रियासत भर में नई रोशनी दिखाई देने लगी इन्दौर-निवासी सोचने लगे कि उनके शहर ने कार पलटी और उनके आनन्द के दिन आये। महाराज ने कई प्रकार के कर, जिनसे रिआया बड़ी दुखी थी एक बारगी माफ़ कर दिये। रियासत के कर्मचारी किसानों पर अत्याचार न कर सकें, इसलिए लगा और मालगुज़ारी की रस्में जारी की गईं। हिसा किताब के दफ़्तरों में भी सुधार किया गया। सुप्रसिद्ध दीवान बहादुर आर० रघुनाथराव दीवान पद पर प्रतिष्ठित किये गये। सेना का भार जनरल बालमुकुन्दजी दुबे को सौंपा गया। अच्छे अच्छे बारिस्टर बुलवा कर जज नियत किये गये। कालेज और स्कूलों के लिए नई इमारतें बनवाई गईं और उनमें सुयोग्य और विद्वान् शिक्षक नियत किये गये। मुफ़स्सिल में भी मदरसे स्थापित किये गये। मदरसों में आप अक्सर पधारते और एक एक दरजे में जाकर लड़कों की स्वयं परीक्षा लेते, इनाम देते और ग़रीबों की सहायता करते थे। ख़ैरात अस्पताल स्थापित कर ग़रीबों को आसानी से दवा मिलने का प्रबन्ध भी आपने कर दिया। सिर्फ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्दौर-नरेश श्रीमन्त महाराजा श्रीशिवाजीराव होलकर ।

INDIAN PRESS, ALLAHABAD.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि के तालाब, जहाँ से नलों द्वारा इन्दौर में पानी आता है, बढ़वा कर गहरे करवा दिये। क़रीब ११ बरस से ताँतिया भील नामक एक डाकू ने रियासत के बीसों गाँव उजाड़ कर प्रजा को अत्यन्त पीड़ित कर रक्खा था। उसे भी सन् १८८० में आपने गिरफ्तार किया और उचित दण्ड दिया। अगले साल बोंद्रया नामक एक और डकैत को लड़ाई में महाराज के सिपाहियों ने मार डाला। तबसे उन ज़िलों के किसान अपना जीवन शांतिपूर्वक व्यतीत करते हैं।

महाराज को इमारत बनवाने का बड़ा शौक़ था। आपने अपने लिए बड़े महल के सम्मुख एक नया महल, हवा बँगला, रालामंडल के पहाड़ पर एक बँगला, सुख-निवास में एक महल इत्यादि कई इमारतें बनवाई थीं। इसके सिवा श्रीनर्मदाजी के किनारे पर बरवाहा नामक एक गाँव के नज़दीक आपने एक बहुत ही सुन्दर महल बनवाया और उसके आस पास बड़ा ही मनोहर बाग़ लगवाया। इस महल और बग़ीचे की गणना हिन्दुस्तान के अति उत्तम स्थानों में करनी चाहिए। इनके कारण बरवाहा दिनों दिन बसता जाता है और अब एक अच्छा शहर बन गया है।

महाराज के मिजाज़ में नरमी और पोलापन न था। वे स्वतन्त्रता-प्रिय थे। उनकी हिम्मत का कहीं ठिकाना न था। मुश्किलों को वे कुछ समझते ही न थे। उनकी काट और तराश से वीरता और साहस टपकता था। क्रामवेल, नेपोलियन और बिस्मार्क आदि में जो बातें थीं अधिकांश वही उनमें भी थीं। सन् १८८७ में महारानी विक्टोरिया की जुबिली के उत्सव पर महाराज विलायत पधारे। अपने साथ आप लाला बैजनाथ, चीफ़जस्टिस (आप आजकल युक्त-प्रदेश में डिस्ट्रिक्ट और सेशन्स जज हैं) जेनरल बालमुकुन्दजी दुबे, सेनापति, और कृष्णराव-मुल्ये, इन तीन सरदारों को ले गये थे। विलायत में आप का अच्छा स्वागत हुआ। आप वहाँ जी० सी० एस० आई० को प्रतिष्ठित उपाधि से विभूषित किये गये। वहाँ भी आपकी जोशदार तबीयत और निर्भयता ने विघ्न डाला। महारानी विक्टोरिया ने राजा महाराजाओं के स्वागत में एक ओपरा नाटक करवाया। महाराज ने जहाँ यूरप के स्वतन्त्र देशों के बादशाह बैठे थे वहाँ बैठने की इच्छा प्रकट की। आपके वहाँ बैठने का प्रबन्ध न हो सका। इसलिए आप नाटक में न गये और महारानी से मिले बिना हिन्दुस्तान लौट आये। लौटते समय आप फ़्रांस, स्विट्ज़रलैंड और इटली देखते हुए घर आये।

यूरप से लौट आने के बाद ईश्वर ने आपको पुत्र प्रदान किया। यही आजकल के इन्दौर-नरेश महाराजाधिराज श्रीमान् तुकोजीराव होलकर हैं।

इम्पीरियल गज़ेटियर के अधिकांश लेखकों ने संसार को यह दिखाने की चेष्टा की है कि महाराज अच्छे शासनकर्ता न थे। पृष्ठ २०८ पर लिखा है कि महाराज को अपनी अमलदारी में यश न प्राप्त हुआ। (His administration was not a success) यह बात कहाँ तक सच है इसका निर्णय वही कर सकता है जो इन्दार-राज्य और महाराज के शासन से सम्बन्ध रखनेवाली सब बातों को अच्छी तरह जानता हो। यों तो शायद ही कोई राजा या बादशाह इस दुनिया में ऐसा हो जिसका शासन दोषरहित हो। पर इसमें शक नहीं कि आरम्भ के नौ साल तक महाराज की अमलदारी में कोई किसी तरह का आक्षेप नहीं कर सकता। इन्दौर से १२ मील पर मऊ की छावनी में ईस्टर्न हेरल्ड (Eastern Herald) नामक एक पत्र निकलता था। उसके सम्पादक एक बंगाली महाशय थे। आप रहते तो ज़मीन पर थे पर सोचते थे आसमान की। इन्दार की प्रजा के हर तरह संतुष्ट होने पर भी आपको दिलजमई न होती थी। आपने कुछ ऊटपटांग लेख लिख मारे। इस पर आप पकड़े गये। अदालत ने आपको सज़ा दी। अदालत से सज़ा पाने के बाद आप महाराज के सामने लाये गये। आपने माफ़ी माँग कर अफ़सोस ज़ाहिर किया। महाराज ने उदारचित्त होकर आपको माफ़ी दे कर छोड़ दिया। पर सम्पादक महाशय ने अपना वचन पूरा न किया। कुछ और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेसिर पैर के लेख लिखे और लोगों में बाँट कर आप फ़रार हो गये। आपकी विषभरी पुस्तकें तो ज़ब्त होगईं। पर आपका पता न लगा।

महाराज पर इस घटना का बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा। रियासती मामलों में आपका दिल कम लगने लगा और शिक्षित लोगों को आप संदेह की दृष्टि से देखने लगे। इस कारण रियासत के प्रबन्ध में गड़बड़ होने लगी। गवर्नमेंट ने भी कुछ दख़ल दिया। महाराज को यह अच्छा न लगा। आपने यथायोग्य उत्तर देकर मन माना काम जारी किया। दो हाथियों की लड़ाई में कई ग़रीब दब मरे। जो हो, इस झगड़े की बात को हम यहीं पर छोड़ते हैं।

महाराज की एक बहुत ही बड़ी अभिलाषा यह थी कि वे अपने पुत्र बाला साहब को अपने सामने ही गद्दी पर बिठा दें और ख़ुद नर्मदा के किनारे ईश्वर-भजन करें। गवर्नमेंट को अमलदारी में यह सम्भव नहीं कि कोई पिता अपना राज्य छोड़ कर पुत्र को गद्दी दे दे। परिणाम यह हुआ कि सन् १८९९ में गवर्नमेंट ने इन्दौर में एक रेज़िडेंट नियत किया। रेज़िडेंट के मुक़र्रर होते ही महाराज ने एक कौंसिल बना कर अपने अधिक अधिकार उसको सौंप दिये। कुछ दिन बाद लार्ड करज़न ने इन्दौर आने की इच्छा प्रकट की। महाराज ने कहा, अपनी रियासत में मैं राजा नहीं हूं। कौंसिल और रेज़िडेंट काम देख रहे हैं। वे चाहें तो आपका स्वागत करें। बड़ी कोशिश की गई कि महाराज की और लार्ड करज़न की मुलाक़ात हो। अन्त में मऊ छावनी में महाराज ने भेंट करना स्वीकार किया। इस मुलाक़ात में महाराज की ज़हानत देख कर लार्ड करज़न दंग रह गये। इस समय महाराज ने अपनी इच्छा प्रकट की कि वे अपना राज्य अपने पुत्र को सौंप कर ख़ुद बरवाहा में नर्मदा के किनारे रहना चाहते हैं। लार्ड करज़न ने उनको दिल्ली दरबार में बुलाया। महाराज शिवाजी, बड़ौदे के महाराज गायकवाड़ के साथ दरबार के मंडप में लार्ड करज़न और ड्यूक आव कनाट से हाथ मिलाने गये। वहाँ पर अन्य अनेक राजाओं ने तो अदब से सि झुकाया। पर महाराज गायकवाड़ और इन्दौ नरेश ने गम्भीरता से सीधे खड़े होकर हाथ मिलाया

दिल्ली दरबार से लौट कर तारीख़ १ फ़रव सन् १९०३ को महाराज ने अपने पुत्र महारा तुकोजीराव को राजगद्दी सौंप दी और रेल पर कर बरवाहे को प्रस्थान किया। आपका मनोरथ पू हुआ। अब आपको केवल इस बात की लालसा र गई कि आपके पुत्र को पूर्ण अधिकार मिल जाय और आप पौत्र मुख देखें। परमेश्वर की कृपा से कुछ दि हुए आपके पौत्र भी हुआ। कैलासवास होने के कु दिन पहले से वे इन्दौर ही में थे। इन्दौर में रह आप बहुत पसन्द करते थे। क्योंकि यहाँ उन अपने पुत्र और पौत्र को देखने में सुगमता होती थी परन्तु कई कारणों से उनकी इच्छा के विपरीत उन बरवाहा ही ठीक जान पड़ा। बीमार तो पहले ही थे, बरवाहा पहुँचते ही उनका देहान्त हो गया।

होलकर घराने में बड़े बड़े अमोल रत्न पैदा हु हैं। महाराज शिवाजी ने उस घराने की महिमा य बढ़ाई नहीं तो घटाई भी नहीं। जो लोग उन पिछले शासन को बुरा बताते हैं, वे उनके व कौंसिल की अमलदारी पर ग़ौर करें। इन्दौर र रियाया महाराज से कभी नाराज़ नहीं रही। आ कल की अमलदारी की जाँच तो उस समय उचि होगी जब महाराज तुकोजीराव को अधिकार मि जाँयगे और राज्य का सूत्र एक बार फिर होलकर वंशज के हाथ में आ जायगा।

"मयूर"

प्रार्थना।

१—हे हे परम पिता परमेश्वर!
हाथ अनुग्रह का रख मुझ पर।
मुझे रहे नित तेरा ही डर;
सारे पापों से रक्षा कर॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

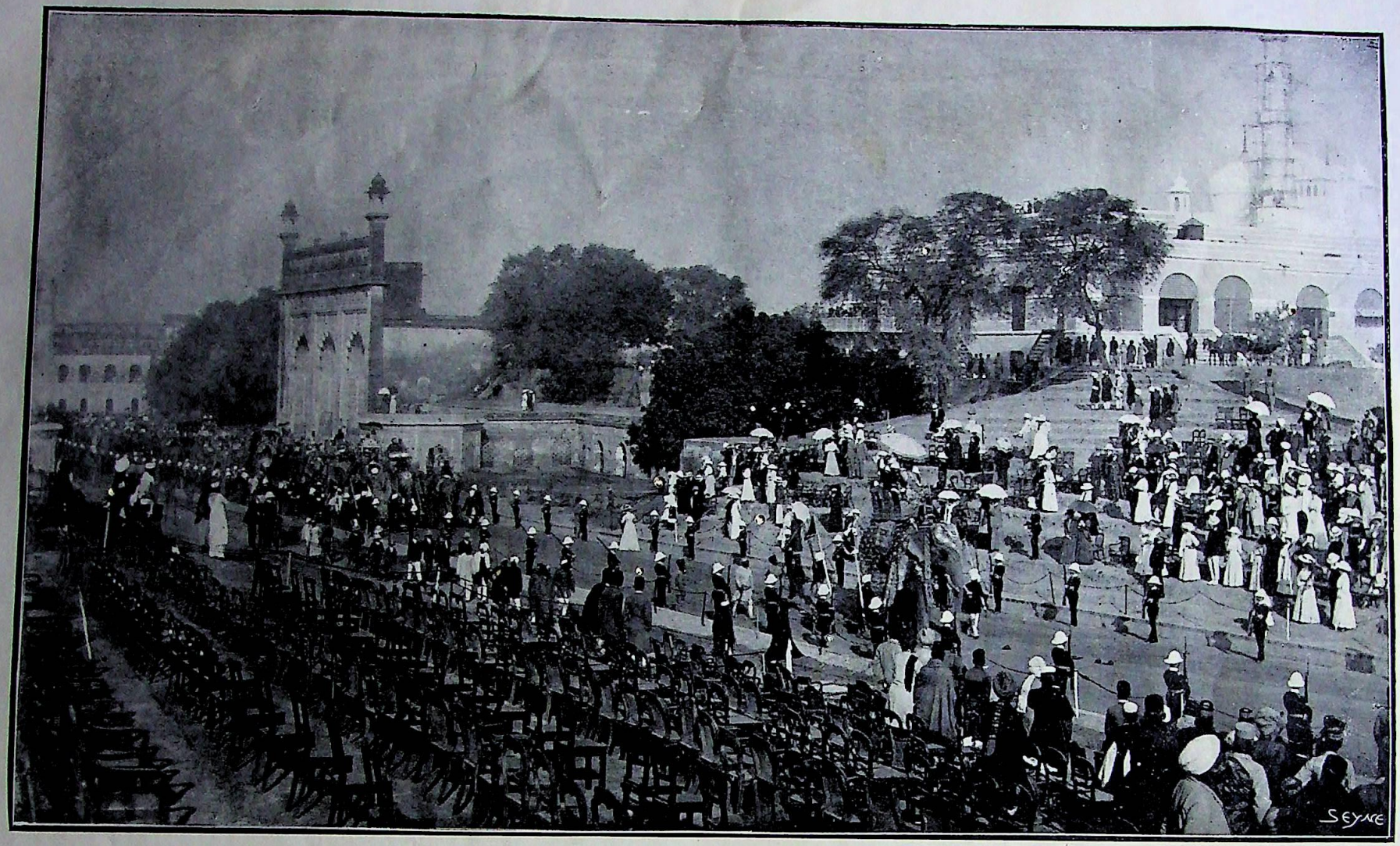

लखनऊ में लाट साहब का जुलूस ।

The Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—सुमति नहीं मुझ में रत्ती भर ;
ग्रहण किये अघ-ओघ निरन्तर।
अपने दोनों लोक सुधारूँ ;
तेरा अतुल-प्रेम उर धारूँ ॥

३—मैं अबला हूँ, सती कहा कर ,
दया-धर्म का बन जाऊँ घर।
शीघ्र सभी दुर्गुण मिट जावें ;
भले दिवस फिर मेरे आवें ॥

४—वैर-विरोध सभी से त्यागूँ ;
सुख-साधन, सुकर्म में लागूँ।
अपने आप मिटें मद मत्सर ,
काम, क्रोध, जो दुःखों के घर ॥

५—नियमों का नित पालन करना ,
समझूँ जीवन में सुख भरना।
मन से भी नहिं झूँठ विचारूँ ;
सच्चे मारग में पग धारूँ ॥

६—सुख, दुख समझूँ एक बराबर ;
दृढ़ता बनी रहे जीवन भर।
पापी पुरुषों से मुख मोड़ूँ ;
अच्छी सङ्गत कभी न छोड़ूँ ॥

७—अपना सारा आलस खो कर ,
रहूँ भलाई में नित तत्पर।
लोभ घटे जो पाप बढ़ाता ,
परमारथ का नाम मिटाता ॥

८—एक समय मुझको मरना है ;
परित्याग सब कुछ करना है।
यह मैं नहीं भूलने पाऊँ ;
तेरी भक्ति हृदय में लाऊँ ॥

९—ज्ञान बढ़े ; अज्ञान मिटाऊँ ;
संसृति-सागर से तर जाऊँ।
पड़ूँ न विषयों बीच निरन्तर ;
तेरी दया रहे यह मुझ पर ॥

१०—पति-पद-प्रेम बढ़े, सुख पाऊँ ;
मिले सुअवसर सुयश कमाऊँ।
डरती रहूँ मौत से ऐसे—
मृगी सिंह-सन्मुख नित जैसे ॥

११—मुझ से कभी न होय बुराई ;
मिटे हृदय की मूरखताई।
धर्म अहिंसा अपना जानूँ ;
लिखा वेद में यही बखानूँ ॥

१२—तुझे नहीं मूरख जन जानें ;
वाद-विवाद करें, हठ ठानें।
मैं नित तुझको शीश नवाती ;
परम पिता यश तेरा गाती ॥

तोषकुमारी।

कर्म-योग।

हिन्दू-शास्त्र या हिन्दू-मत की नींव कर्म-योग पर रक्खी गई है। यद्यपि उसका अन्त ज्ञानकाण्ड में जाकर होता है तथापि उसके उपक्रम या आरम्भ की पहली सीढ़ी कर्मयोग ही है। बिना सीढ़ी को पार किये कोई चोटी पर नहीं पहुँच सकता ; इसलिए चोटी पर जाने वाला सीढ़ी की उपेक्षा नहीं कर सकता। यही कारण है कि हिन्दूशास्त्र ने अपना सबसे अधिक बल कर्मयोग पर ही लगाया है। सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा इन तीनों का तो कर्म से ही विशेष सम्बन्ध है। पर वैशेषिक और न्याय भी द्रव्यादि और प्रमाणादि की विवेचना करते हुए रूपान्तर से इसी की पुष्टि करते हैं। रहा वेदान्त, सो यों तो उसका साक्षात् सम्बन्ध ज्ञानवाद से है ; परन्तु बिना कर्म के ज्ञान और बिना क्रिया के विद्या अपूर्ण रहती है। इसलिए ज्ञान की आलोचना करते हुए वेदान्त-शास्त्र भी कर्म का प्रधानता से मुँह नहीं मोड़ सकता। यही कारण है कि वेदान्त का

The Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आरम्भ ही—"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः। एवं त्वयि नान्यथेऽतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे—" ईशोपनिषद् की इस प्रसिद्ध श्रुति से होता है, जो मनुष्य को यावज्जीवन कर्म करने का आज्ञा देती है। इस श्रुति का तात्पर्य्य यह है कि "मनुष्य सौ वर्ष तक कर्म करते हुए जीने की इच्छा करे। इस प्रकार निष्काम कर्म करने से मनुष्य कर्म में लिप्त नहीं होता। इसके सिवा कर्म से छूटने का और कोई उपाय नहीं है।"

यहाँ पर लोगों को सन्देह हो सकता है कि भला कर्म करते रहने से कोई क्योंकर उसके फल से छूट सकता है। क्या यह हो सकता है कि कोई मनुष्य पानी में रहे और भीगे नहीं; कीचड़ में धँसे और सने नहीं? यदि ऐसा नहीं हो सकता तो कर्म करके उसके फल में लिप्त न होना भी असम्भव है। इस लिए श्रुति में आनर्थक्य-दोष की सम्भावना होती है।

प्रियपाठक! "नाशक्योपदेशविधिरूपदिष्टेष्यनुपदेशः"—इस कापिल वचन के अनुसार श्रुति अशक्य का उपदेश नहीं कर सकती। इससे उसमें आनर्थक्य-दोष की कल्पना करना अनुचित है। क्या यह आवश्यक है कि जो पानी में रहे वह भीग ही जाय और जो कीचड़ में धँसे वह सन ही जाय। हाँ, उपाय न करने पर ऐसा हो सकता है; परन्तु जो पानी और काचड़ से अपना बचाव करना जानता है वह अवश्य बच सकता है। जब हम नौका या जहाज़ पर सवार होकर पानी को चीरते चले जाते हैं; यान में सवार होकर कीचड़ को पार कर जाते हैं; तब क्या कर्म की नौका में सवार होकर कर्म-सागर को नहीं पार कर सकते? जब संसार में एक कर्म के द्वारा दूसरे कर्म के प्रभाव को हम प्रत्यक्ष रीति से मेट रहे हैं तब इसमें क्या सन्देह है कि हम कर्म के द्वारा ही कर्म के बन्धन को शिथिल कर सकते हैं। जिस तरह विष को विष ही मारता है, ताप को ताप ही शमन करता है उसी तरह कर्म के प्रभाव को कर्म ही दूर कर सकता है।

जैसे कोई मनुष्य अगाध और विस्तीर्ण समुद्र को पार किये बिना किसी द्वीप या महाद्वीप में नहीं पहुँच सकता वैसेही बिना इस कर्मनदी को पार किये कोई ज्ञान के स्वच्छ नगर में प्रवेश नहीं कर सकता। योगिराज श्रीकृष्णचन्द्र भी गीता में इसकी पुष्टि करते हैं—"न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते। न च सन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति॥" अर्थात् कर्मों को किये बिना कोई निष्कर्म नहीं हो सकता। केवल त्याग मात्र से कोई सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता।

पाठक! कैसा महत्त्व-पूर्ण उपदेश है। पर शोक है, आजकल हम लोग इसका अनादर कर रहे हैं। आज कल हमारे हज़ारों और लाखों भाई त्यागी और वैरागी होने का दम भरते हैं। पर क्या वास्तव में उन्होंने कर्म की पहली मंज़िल तै कर ली है? त्याग या वैराग्य की पदवी अपने को त्यागी या वैरागी कहने से नहीं मिल सकती। किन्तु इस सर्वोच्च पद का अधिकारी वही हो सकता है जिसने शास्त्र की मर्यादानुसार वर्णाश्रमाचार का पालन, तीनों ऋणों का अपाकरण और समस्त नित्य-नैमित्तिक विहित कर्मों का सेवन किया हो। इस विषय में शास्त्र की यह आज्ञा है:—"ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्। अनपाकृत्य मोक्षन्तु सेवमानो व्रजत्यधः॥" अर्थात् तीनों ऋणों को पहले चुका ले तब मन को मोक्ष में लगावे। बिना ऋण चुकाये मोक्ष की इच्छा करनेवाला मनुष्य नीचे गिरता है। हमारी आज कल की साधु-मण्डली और ज्ञानवाद का दम भरनेवालों में कितने ऐसे साधु और महात्मा मिलें जो त्याग या वैराग्य के सच्चे अधिकारी हैं। यदि इसकी खोज की जाय तो शायद हज़ार में एक मुश्किल से मिलेगा। इस दशा में त्याग या वैराग्य को बदनाम करने के सिवा और किस प्रयोजन-सिद्धि की आशा इनसे की जा सकती है? जो लोग गृहस्थ का भार नहीं उठा सकते और ब्रह्मचर्य्य तथा स्वाध्याय के नियमों का पालन नहीं कर सकते, उनसे यह आशा करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि वे सच्चे त्यागी या वेदान्ती बन कर देश का उद्धार करेंगे, मृगतृष्णा नहीं तो और क्या है ?

इसमें सन्देह नहीं कि त्याग और वैराग्य से बढ़ कर संसार में और कोई उच्च पदवी नहीं है। वह देश धन्य है, वह जाति सदा स्मरणीय रहेगी, जिसमें सच्चे त्यागी (जो अपने देश या धर्म के लिए अथवा मनुष्य-समाज के लिए आत्मोत्सर्ग करते हैं) उत्पन्न होते हैं। परन्तु सच्चे त्याग और झूँठे त्याग में बड़ा अन्तर है। सच्चे त्याग से अवनत जातियों को उन्नति होती है और झूँठे त्याग से उन्नत जातियों की अवनति होती है। सच्चा त्याग इन्द्रियों को स्तब्ध करने या कर्म न करने से नहीं उत्पन्न होता। किन्तु कर्त्तव्यता के अनुरोध से निरन्तर कर्मोपासना करने और उसके फलाफल में आसक्त न होने से उसको उत्पत्ति होती है।

अपने अपने अर्थों को ग्रहण करना इन्द्रियों का स्वाभाविक धर्म है। किसी में यह सामर्थ्य नहीं है कि वह किसी वस्तु के स्वाभाविक धर्म को मिटा सके। ऐसी स्थिति में क्या हम आँख, कान बन्द कर या हाथ पैरों को स्तब्ध करके परमात्मा की आज्ञा का पालन कर सकते हैं ? नहीं नहीं, हम ऐसा कभी नहीं कर सकते। आँखों के होते हुए यह कभी नहीं हो सकता कि हमारा देखना बन्द हो जाय। फिर आँखें बन्द करने का प्रयोजन इसके सिवा और क्या हो सकता है कि हम सब लोगों को अपनी विरक्तता दिखलावें। यदि थोड़ी देर के लिए हम मान भी लें कि ऐसा करने से हम उतनी ही देर के लिए विषयों के आक्रमण से बच जायँगे तो यह कोई पौरुष और शौर्य्य का काम नहीं। पुंस्त्व-शक्ति खोकर यदि हमने स्त्री से विरक्ति सम्पादन की, आंखों में पट्टी बाँध कर यदि हम सौन्दर्य्य-दर्शन-सुख से विमुख हुए तो इसमें हमारी बहादुरी क्या है ? बहादुरी तो तब थी जब पुंस्त्व-शक्ति के होते हुए स्त्रियाँ हमको आकर्षित न कर सकतीं; धन के होते हुए उसका मद हम पर न चढ़ता; और बल को पाकर भी हम किसी को न सताते। कविवर कालिदास ने क्या ही अच्छा कहा है—"विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः।" अर्थात् विकार-हेतुओं के उपस्थित होते हुए भी जिनके चित्त नहीं बिगड़ते वही महात्मा और धीर कहलाते हैं।

भोग्य वस्तुओं के न मिलने पर त्यागी हो जाने वाले मनुष्य संसार में बहुत हैं। ऐसे त्यागियों की हमारे देश में कमी नहीं है। हमारी सम्मति में तो ऐसे त्यागियों से रागी ही अच्छे। क्योंकि वे रागासक्त होकर केवल अपनी ही हानि करते हैं, दूसरों को तो धोखा नहीं देते। किन्तु ये कपट-मुनि तो त्यागी का वेश बना कर भोले भाले लोगों की आँखों में धूल झोंकते हैं। ऐसे लोगों को ही लक्ष्य में रख कर भगवान् कृष्णचन्द्र ने गीता में कहा है—"कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्। इन्द्रियार्थान् विमूढ़ात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥" अर्थात् इन्द्रियों को स्तब्ध करके जो मन से विषयों का चिन्तन करता रहता है वह मिथ्याचारी (प्रतारक) है।

उक्त हेतुओं से सिद्ध है कि कर्म ही समस्त सांसारिक और पारमार्थिक सिद्धियों का मूल है। कर्म का अनादर करके न कोई त्यागी बन सकता है, न ज्ञानी। इसीलिए श्रुति कर्म ही को कर्म से छूटने का साधन बतलाती है:—"अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते" अर्थात् कर्म से मृत्यु को पार करके ज्ञान से मोक्ष प्राप्त होता है। यद्यपि मुक्ति के लिए ज्ञान की अपेक्षा है तथापि बिना कर्म के कोई ज्ञान का अधिकारी नहीं हो सकता। अतएव केवल सांसारिक सिद्धि के लिए ही नहीं, किन्तु पारमार्थिक श्रेय के लिए भी मनुष्य को विधिवत् कर्मोपासना करनी चाहिए। यह सर्वतन्त्र सिद्धान्त है।

अब रही यह बात कि वह कर्म, जिसकी इतनी महिमा शास्त्रों में वर्णन की गई है और जिसके बिना आत्मा के अभीष्ट की सिद्धि असम्भव है, क्या वस्तु है ?

प्रिय पाठक! कर्म का साधारण अर्थ 'करना' है; "क्रियते यत्तत्कर्म" अर्थात् जो कुछ किया जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है वह कर्म है। स्वाभाविक और नैमित्तिक भेद से यह दो प्रकार का होता है। कुछ कर्म स्वाभाविक हैं; जैसे खाना, पीना, सोना, जागना इत्यादि। कुछ नैमित्तिक हैं; जैसे पढ़ना, देना, लेना, खेती या व्यापार करना आदि। इन दोनों प्रकार के कर्मों के करने में मनुष्य का कुछ उद्देश होना चाहिए। पूर्वी विज्ञान ने उस उद्देश का निर्देश धर्म या ज्ञान के नाम से किया है और पश्चिमी विज्ञान उसको सुख या आराम के नाम से उल्लेख करता है। पर यह भेद केवल नाम मात्र का है; तात्पर्य्य दोनों का एक ही है। क्योंकि धर्म का फल सुख और ज्ञान का परिणाम भी आनन्द ही माना गया है। हाँ, यह अवश्य है कि वास्तविक सुख और सुखाभास में विवेक करना होगा। इसलिए इस सिद्धान्त के अनुसार कर्म की यह परिभाषा होगी कि वास्तविक सुख की (चाहे वह सांसारिक हो चाहे पारमार्थिक) उपलब्धि के लिए जो यत्न या चेष्टा की जाय वह कर्म है।

वास्तविक सुख की उपलब्धि हमें तभी होगी जब अज्ञान का यह आवरण, जो हमारे आत्मा पर पड़ा हुआ है, दूर हो जायगा। बिना ज्ञानाग्नि के प्रज्वलित हुए यह अविद्यान्धकार (जिसमें हम अपने को ही भूले हुए हैं, अन्यों को तो बात ही क्या है) दूर नहीं हो सकता। वह ज्ञानाग्नि कहाँ है और कैसे प्रज्वलित हो सकती है? पाठक! ज्ञान का भाण्डार हमारा आत्मा है। ज्ञान को हम बाहर से नहीं लेते, किन्तु वह भीतर ही उद्बोधित होता है। हाँ, उद्बोधन के कारण बाहरी पदार्थ अवश्य होते हैं। जैसे काठ या पत्थर में अग्नि विद्यमान है; पर वह बिना सङ्घर्षण के उत्पन्न नहीं होती। इसी प्रकार हमारे आत्मा में ज्ञान विद्यमान है; परन्तु जब तक मानसिक, वाचिक या कायिक कर्मों की रगड़ उसमें नहीं लगती तब तक वह उद्बोधित नहीं होता। जब हम यह कहते हैं कि अमुक मनुष्य ने अमुक विद्या सीखी या अमुक विषय का अनुभव किया तब वास्तव में उसका यह अर्थ है कि उसने अपने आत्मा से (जो अनन्त ज्ञान का भाण्डार है) अविद्या का आवरण हटा लिया। न्यूटन ने आकर्षण-शक्ति को मालूम किया; पर क्या आकर्षण-शक्ति किसी कोने में बैठी हुई उसकी प्रतीक्षा कर रही थी? नहीं वह उसके मस्तिष्क में थी; फल-पतन रूपी कर्म की रगड़ ज्योंही उसके मस्तिष्क में पहुँची त्योंही उसने उसके ज्ञान को यकायक उद्बोधित कर दिया।

संसार में जिन जिन विद्याओं का प्रादुर्भाव हुआ है, उन सबकी उत्पत्ति मस्तिष्क ही से हुई है। परमात्मा ने इस अपरिमित विश्व के अनन्त विज्ञान का पुस्तकालय हमारे मस्तिष्क ही में स्थापित किया है। बाह्य जगत् उसका उद्बोधक मात्र है। बस उस ज्ञानाग्नि को प्रदीप्त करने के लिए कर्म रूप सङ्घर्ष की बड़ी आवश्यकता है।

कर्म के प्रसङ्ग में एक बात और ध्यान में रखने योग्य है। वह यह है कि संसार में जैसे सुख और दुःख परस्पर मिश्रित और सापेक्ष्य हैं वैसे ही कर्म और अकर्म भी आपस में मिले हुए हैं और एक दूसरे की अपेक्षा रखते हैं। अकर्म का तात्पर्य्य कर्माभाव नहीं किन्तु निश्चित कर्म है। इस दशा में सुख-दुःख के समान इनमें भी विवेक करने की आवश्यकता है। इसीलिए कहा है कि "किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।" अर्थात् क्या कर्म है और क्या अकर्म, इसका निर्धारण करने में बड़े बड़े बुद्धिमान भी असमर्थ हैं। परन्तु इस रहस्य को समझाने के लिए भगवान् कृष्णचन्द्र ने गीता में एक सङ्केत दिया है। उसको समझ कर हम इस ग्रन्थि को खोलने में बहुत कुछ योग्यता प्राप्त कर सकते हैं। वह सङ्केत यह है :- "कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः। स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्।"

पाठक! इसका यह अर्थ न समझ बैठिएगा जो आज कल बहुत लोग समझते हैं। वे कहते हैं कि जो कर्म को अकर्म और अकर्म को कर्म अर्थात् पुण्य को पाप और पाप को पुण्य समझता है वही ज्ञानी है। यह उनकी कपोलकल्पना मात्र है। क्योंकि श्लोक में "पश्येत्" क्रिया (जिसका अर्थ यहाँ पर विवेचन करना या सम्भावना करना है, न कि जानना या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझना) स्पष्ट सिद्ध कर रही है कि कर्म में अकर्म और अकर्म में कर्म की सम्भावना करनी चाहिए। ऐसी सम्भावना या विवेचना क्यों करनी चाहिए? इसलिए कि सुख दुःख की तरह कर्म अकर्म भी मिश्रित हैं। अतएव उनमें विवेक (तमीज़) करने की आवश्यकता है। संसार में कोई सुख ऐसा नहीं है जिसमें दुःख की आशङ्का न हो और न कोई दुःख ही ऐसा है जिसमें सुख की सम्भावना न हो। उदाहरण के लिए एक विषयी और दूसरे परिश्रमी को ले लीजिए। पहला विषय-भोग को सुख समझता है और दूसरा परिश्रम को दुःख। अब यदि ये दोनों क्रम से सुख में दुःख और दुःख में सुख की सम्भावना न करेंगे तो क्या ये अपने उद्देश में कृतकार्य्य हो सकते हैं? यदि सुख में दुःख की सम्भावना न की जायगी तो मनुष्य मदान्ध होकर शीघ्र ही उस सुख से हाथ धो बैठेगा। इसी तरह यदि दुःख में सुख की आशा न की जायगी तो मनुष्य अधीर होकर आत्मघात तक कर बैठेगा। निदान जो सुखी होकर दुःख को नहीं भूलता और दुःखी होकर सुख से निराश नहीं होता, संसार में वही कृतार्थ होता है। ऐसी ही व्यवस्था कर्म और अकर्म की भी है। उदाहरण के लिए एक दानी और दूसरे रोगी को ले लीजिए। पहला दान को कर्म और दूसरा रोग को अकर्म समझता है। अब यदि पहला दान को कर्म समझ कर करता चला जाय और उसमें अकर्म की सम्भावना न करे, अर्थात् यह न देखे कि मैं जिसे दान दे रहा हूँ वह उसका अधिकारी भी है या नहीं, तो क्या वह उस दान के फल को प्राप्त हो सकता है? कदापि नहीं। दूसरा जो रोग को अकर्म समझता है वह यदि उसमें कर्म (आरोग्य) की सम्भावना न करे तो क्या कभी कटु और तिक्त ओषधियों के पान करने में प्रवृत्त हो सकता है? कदापि नहीं। बस इससे सिद्ध है कि कर्म में अकर्म और अकर्म में कर्म की सम्भावना ही मनुष्य को उपादेय के उपादान और हेय के हान में प्रवृत्त करती है। अतः हमको कर्म करते हुए अकर्म से बचना चाहिए और यदि भूल से कभी अकर्म में प्रवृत्त होने लगें तो उस अकर्म को कर्म से तुरन्त बदल देना चाहिए।

बदरीदत्त शर्म्मा।

प्लेग का टीका।

आजकल इस बात को सब लोग जानने लगे हैं कि प्लेग से बचने के मुख्य उपाय तीन हैं। (१) चूहों को नष्ट करना; (२) घर त्याग कर रोग की जगह से अलग रहना; (३) टीका लगवाना। टीका लगवाने से मनुष्य को इस बात का विश्वास हो जाता है कि वह प्लेगाक्रान्त न होगा। और जितने उपाय हैं वे ऐसे हैं कि जब तक सब लोग उन्हें न करें तब तक रोग होने का भय नहीं मिटता। परन्तु टीका लगवाना प्रत्येक मनुष्य का काम है और प्रति वर्ष बड़ी सरलता से टीका लगवाया जा सकता है। यदि सब लोग टीका लगवाने का नियम कर लें तो प्लेग का ज़ोर बहुत कुछ घट जाय। क्योंकि जितने लोग प्लेग का टीका लगवाकर निश्चिन्त हो जाते हैं उतने ही मानों प्लेग की बढ़ती के बाधक बनते हैं। जितने लोग कम मरेंगे उतनी ही कम छूत फैलेगी। जो लोग टीका लगवा लेते हैं वे बस्ती में रोग फैलने पर घबराते नहीं। एक गाँव में यदि सब लोग टीका लगवाये हुए हैं तो उस गाँव में प्लेग के पैर कभी न जमेंगे। यदि कोई "केस" हो जावे तो उसका विष जहाँ का तहाँ ही दब जायगा।

चेचक का टीका लग जाने से चेचक की बीमारी नहीं होती और यदि हुई भी तो उसका ज़ोर बहुत थोड़ा होता है। यही हाल प्लेग के टीके का भी है। इससे प्लेग के कारण बहुत कम मृत्यु होती हैं।

टीका लगे हुए लोगों में से लगभग एक तिहाई लोगों को चेचक लगने का सन्देह है और उनमें से मृत्यु-भय टीका न लगने की अपेक्षा सिर्फ़ आधा ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अर्थात् बड़ी ज़ोर से बीमारी फैलने पर टीका लगे हुए लोगों में छः में से केवल एक के मरने का भय है।

मान लीजिए कि ४००० की आबादी का एक गाँव है। उसमें बड़ी तीव्रता से महामारी फैली हुई है और सैकड़ा पीछे तीन मनुष्य रोग-ग्रसित हुए हैं। इनमें से आधी आबादी को टीका लगा हुआ है। तो बिना टीका लगे हुए लोग ६० में ४५ मरेंगे और टीका लगे हुए लोग २० में ७। यदि आधे से अधिक टीका लगवाये हुए हैं तो मृत्यु-संख्या और भी कम होगी और यदि सब लोग टीका लगे हुए होंगे तो मृत्यु बहुत ही कम होगी; लोग घबरा न उठेंगे; रोग का कारण शीघ्र ही नष्ट किया जा सकेगा।

ऊपर जो कुछ कहा गया है वह कल्पना नहीं है; किन्तु अच्छी तरह छान बीन कर निश्चय किया गया है।

चेचक के टीके का युक्ति डाक्टर जेनर ने निकाली थी। टीके की लाग में एक प्रकार के सूक्ष्म जन्तु हैं जो चमड़े को खुरच कर लगा देने से अपना स्थान बना लेते हैं, बढ़ जाते हैं, तथा रुधिर में मिल कर शरीर की बनावट को ऐसा कर देते हैं कि उसमें फिर चेचक का असर नहीं होता।

आज कल सूक्ष्म जन्तुओं की बढ़ती शरीर पर नहीं की जाती। उनको पाल कर केवल उनका रस शरीर में पहुँचाया जाता है। वह रस रुधिर के साथ मिल कर उसमें रोग-नाशक शक्ति उत्पन्न करता है।

इस टीके का असर छः महीने तो खूब रहता है; परन्तु रोग रोकने की शक्ति एक वर्ष तक बनी रहती है। दूसरे वर्ष वह कम हो जाती है। पाँच वर्ष पीछे तक भी इसका असर पाया गया है। हमारी समझ में हर साल टीका लगवाना चाहिए। बहुत लोगों ने तो तीस चालीस बार तक टीका लगवाया है। परन्तु उन्हें कोई हानि नहीं पहुँची। ऐसे अनेक मनुष्य हैं जो बीमारी के दिनों में सर्वदा टीका लगवाते हैं।

अनेक लोग यह भय करते हैं कि टीके के कारण शरीर में अन्य रोग हो सकते हैं। इस सन्देह को मिटाने के लिए १९०१ ईसवी में थाना के जेल में २३८ आदमियों के टीका लगाया गया। फिर उनके साथ ही वे २३६ आदमी रक्खे गये जिनके टीका नहीं लगा था। तीस महीने तक उनकी तन्दुरुस्ती पर निगाह रक्खी गई। इससे जान पड़ा कि उनमें किसी प्रकार का नया रोग नहीं हुआ। किन्तु इन क़ैदियों के शरीर का बोझ बिना टीका लगे हुए लोगों से अधिक निकला*।

बहुत लोगों को यह जानने की इच्छा होगी कि प्लेग के टीके की लाग किस तरह तैयार की जाती है। उनके जानने के लिए हम यहाँ पर उस युक्ति को लिखते हैं।

लाग तैयार करने का बड़ा कारख़ाना बम्बई में है। पहले प्लेग के जन्तुओं की बढ़ती के लिए भोजन तैयार किया जाता है। इसके लिए बकरी का मांस या गेहूँ का आटा काम में लाते हैं। मांस या आटे के पानी में नमक का तेज़ाब डाल कर एक खास दरजे की गर्मी में उसे तीन दिन तक पकाते हैं। उसमें कास्टिक सोडा डाल देने से वह नमकीन हो जाता है। फिर उसे और पतला करके उबालते और छानते हैं। इसके बाद शीशों में भर कर और रुई की डाट लगा कर भाफ में रख देते हैं। यहाँ पर शीशों में भरा पदार्थ निथर कर तेल के रंग का तरल हो जाता है। यही प्लेगोत्पादक जन्तुओं का भोजन है।

प्लेग के रोगी का रक्त अथवा गिल्टी से मवाद लेकर चोना घास से बने हुए रस में डाल देते हैं। यहाँ प्लेग के जन्तु बढ़ते हैं। तब इन जन्तुओं की परीक्षा की जाता है।

* कुछ दिन हुए हमारा एक नौकर बिना हम से पूछे शहर से टीका लगवा आया। आठ आने पैसे मुफ्त में के लालच से उसने ऐसा किया। टीके से उसे कुछ भी लीफ़ नहीं हुई और अब तक वह भला चंगा है। स० सं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परीक्षित जन्तुओं को एक और शीशे में चौदह दिन तक रखते हैं। तब इसमें से थोड़ा थोड़ा सा रस लेकर उन शीशों में रखते हैं जिनमें रस भरा हुआ रक्खा है। फिर एक ऐसे कमरे में जहाँ उजेला न हो इन शीशों को ६ हफ़्ते रखते हैं। इस बीच में प्रत्येक शीशे का निर्मल पदार्थ गदला हो जाता है। अर्थात् कीड़े बढ़ते बढ़ते उसको निर्मलता दूर कर देते हैं।

अब इन शीशों के जन्तुओं की फिर परीक्षा की जाती है। जो डाक्टर इस कार्य्य के निरीक्षक हैं वे प्लेग के जन्तुओं का रूप अच्छी तरह पहचानते हैं। जब उनको निश्चय हो जाता है कि ये सचमुच वही हैं तब उनको लाग तैयार करने के लिए भेजते हैं।

परीक्षा में पास हुए शीशे गरम पानी में रक्खे जाते हैं। इससे वे सब जन्तु मर जाते हैं और उनके शरीर जलरूप बन जाते हैं।

सम्भव है कि गरम पानी में रखने पर भी कोई जीव जीता रह जाय। इसलिए इसके २०० भाग में १ भाग के हिसाब से कार्बोलिक एसिड मिलाया जाता है। इससे एक बड़ा लाभ यह भी है कि कार्बोलिक एसिड मिले हुए रस में कोई और जन्तु पैदा नहीं हो सकता, तथा किसी अन्य रोग के होने की शंका नहीं रहती।

जिन शीशियों में प्लेग का टीका लगाने की लाग भर कर आती है उनका रूप निराला ही रक्खा गया है। पहले इन शीशियों के भीतर की हवा को एक यंत्र के सहारे निकाल कर इनका मुँह इस तरह बन्द किया जाता है कि हवा भीतर न जा सके। फिर उनको लोहे के सन्दूक़ में भर कर साढ़े तीन घंटे १८० दर्जे की हरारत में रखते हैं। मतलब यह कि शीशे के भीतर कोई रोगोत्पादक जन्तु न रहे। इन सन्दूक़ों पर मुहर लगा कर और शुद्ध करने की तारीख़ लिख कर उन्हें लाग भरने के लिए भेज देते हैं।

लाग भरने का काम बड़ी सावधानी का है। इस काम पर वही योग्य पुरुष रक्खे जाते हैं जिन्होंने इस सम्बन्ध की बहुत कठिन परीक्षा पास की होती है। एक यंत्र के सहारे शीशे में भरा हुआ रस शीशी में लाया जाता है; उसमें वायु का संसर्ग नहीं होने पाता। क्योंकि सम्भव है कि वायु में से कुछ विष इसमें मिल जाय। बोतल का मुँह दीपक की लौ पर ले जाकर बन्द कर दिया जाता है। फिर इन शीशियों को जाँचने के लिए दो उपाय किये जाते हैं। एक से यह जाना जाता है कि आक्सीजन में जीनेवाले जीव इसमें नहीं हैं। दूसरे उपाय से यह मालूम हो जाता है कि बिना आक्सीजन के रहनेवाले जन्तु भी इसमें नहीं है। परीक्षा सफल होने पर लाग ठीक समझी जाती है। इन शीशियों का गर्दन सुई के समान लम्बी होती है। इसके बीच में चिराग़ की लौ दिखाने से इसका एक भाग अलग हो जाता है। इसको कारख़ाने में रख छोड़ते हैं। यदि लाग में कोई दोष होने की ख़बर आवे तो इसकी परीक्षा हो सकती है।

इस लाग के लगाने का अधिकार सरकार ने उन्हीं लोगों को दिया है जो सब तरह योग्य हैं और इस काम को ख़ूब समझते हैं।

जिस पिचकारी से लाग शरीर के भीतर पहुँचाई जाती है उसके लिए बड़ी सावधानी दरकार है। एक कटोरी में तेल गरम करके पिचकारी की सुई और पिचकारी साफ़ की जाती है। लाग की बोतल को अच्छी तरह देख कर निश्चय करते हैं कि दरार तो नहीं है जिसमें से हवा ने भीतर जाकर लाग को बिगाड़ दिया हो। यह सब देख भाल कर शीशी हिलाई जाती है जिससे लाग का रूप एक सा हो जाय। फिर बोतल के सिरे को आग पर रख कर तोड़ते हैं।

पिचकारी को एक बार फिर तेल से भरते हैं और ख़ाली करके शीशी से थोड़ी सी लाग खींचते हैं और उसी से पिचकारी को हिला कर धो डालते और लाग को निकाल देते हैं। फिर सुई को तेल में डुबो कर शीशी के मुँह को दीपक की लौ पर गरम करते हैं और लाग को पिचकारी में भरते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाग लगाने के लिए सबसे अच्छी जगह कुहनी और कन्धे के बीच में बाज़ू के पीछे है। उस जगह को पहले दवाई मिले पानी से धोते हैं और खाल के नीचे सुई प्रवेश करते हैं। धीरे धीरे लाग पहुँचाई जाती है और सुई निकाल कर थोड़ी देर के लिए रुई की गद्दी रख दी जाती है।

लखनऊ में डिप्टी कमिश्नर साहब क कचहरी में प्लेग का टीका लगाया जाता है। ग़रीब लोगों को सरकार से कुछ पैसे इसलिए दिये जाते हैं कि वे एक दो रोज़ कुछ काम न करें। टीका लगाने के बाद कुछ सूजन और ज्वर होता है; परन्तु किसी का काम रुका नहीं रहता। पिछले वर्ष मेरे अस्पताल (Cantonment General Hospital, Lucknow) में प्रायः सब नौकरों को टीका लगाया गया। पर उनमें से किसी ने काम नहीं छोड़ा। टीके के स्थान पर कुछ गूथ सी रह जाती है। कितने ही लोग कई वर्ष से बराबर टीका लगवाते हैं और प्लेग से निर्भय होकर सब जगह विचरते हैं।

महेन्दुलाल गर्ग।

शकुन्तला-जन्म।

[१]

लहन को वर ब्रह्मपद, निज दहन को अघलेश,
बहन को वैरागरस में, सहन को तनक्लेश।
गहन विपिन प्रवेश करि मुनिराज विश्वामित्र
तप-विधान अनल्प को संकल्प कीन पवित्र॥

[२]

दूब-भोजन साधि क्रम सों, बहुरि धूमाहार,
पुनि पवन के पान ही को मान प्राणाधार।
शान्तरस में जती दिन दिन अधिक भोजत जात,
काम छीजत जात छिन छिन जात सूखे गात॥

[३]

डिगत सो निज समुझि आसन पाकशासन लोल
मैनका सन यों कहे शंका-प्रकासन बोल।
करत जो तप गाधिनन्दन तासु खण्डन होहि
अपसरा-बर-बंस-मण्डन तब सराहूं तोहि॥

[४]

देवबाला, छबिरसाला, बसी-करन-प्रवान,
सहित हासी चञ्चला सी चपल बीड़ा लीन
कहे गर्बीले रसीले वचन रोचक बाम,
मैन के बस करहुँ मुनि को मैनका तब नाम।

[५]

भूरि जोबन तपोवन में रह्यो पूरि वसन्त,
हरित मञ्जुल सुमन सञ्जुत हरत मनहि दिगन्त
वसुमती-युवती-वसन की लसत जनु छविसार,
हरी जासु जमीन है रङ्गीन बूटेदार॥

[६]

लगत हीतल मन्द शीतल पवन परिमल-ऐन,
मनहुँ रोचन मान-मोचन कहत दूतो बैन।
गुञ्ज-धुनि अलि-पुञ्ज छावत कुञ्ज कुञ्ज मँझार,
मञ्जु श्यामा अङ्ग जनु मञ्जीर की झनकार॥

[७]

कोकिला, चण्डूल, चातक, चक्रवाक, चकोर,
शुक, कपोत, महोक, मैना, लाल, मुनिया, मोर
विविध रङ्ग विहङ्ग विहरत करत सुन्दर गान,
मनहु मधु-नृप-मण्डली-संगीत की गुनवान॥

[८]

नीलगाय, कुरङ्ग, कुञ्जर, आदि पशु-समुदाय
छेम सों विहरत परस्पर प्रेमभाव बढ़ाय।
सचिव तप को पाय जनु आदेश पावन देश,
सत्त्वगुणमय चरित कीन्हें त्यागि दुर्गुण लेश

[९]

मैनका जब कीन वन छविलीन माँहि प्रवेश
कहत देखनहार है शृङ्गार नारी वेश।
करत कोउ अनुमान देवी विपिन की द्युतिमान,
कहत कोऊ है महीतल मध्य शीतल भान।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला-जन्म ।

The Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१०]

भृकुटि धनु को डरत नाहीं प्रात शुक ललचाय,
चहत अधरन चोंच मारन बिम्ब को भ्रम खाय।
शङ्क चम्पक-रङ्ग की तजि चञ्चरीक सुपुञ्ज
भूलि भृङ्ग सुगन्ध पै लगि सङ्ग छावत गुञ्ज॥

[११]

द्रुमन सों झरि सुमन सोहैं मनहु बनदेबीन
अंगना के पन्थ डारे पांवड़े रङ्गीन।
तरल नव दलकलित मुकुलित तरु लता लहराय
पुलकि कर सों मनहुँ स्वागत करत मुद सरसाय॥

[१२]

आन बान समेत एहि विधि रूपमान निकेत
साधुराज समीप पहुँची काज साधन हेत।
रथ मनोरथ पैकपग गजराजगति मन बाजि
जनु अनङ्ग चढ्यो अनी चतुरङ्गिनी निज साजि॥

[१३]

बन्द लोचन, मन्द स्वासा, तपन तेज अमन्द,
लीन लखि आनन्द में मुनि द्वन्द्वहीन सुछन्द।
अपसरा सुमनोहरा तब करन लागी गान,
पवनपथ जनु सैन पठई दुर्ग दुर्गम जान॥

[१४]

गई छूटि समाधि उग्र उपाधि गुनि मुनिभूप
अधखुले दृग यों लखैं मृगलोचनी को रूप।
करत जिमि बिसराम अपने धाम औचक वीर
पाय खटका खोलि अर्ध कपाट झांकै धीर॥

[१५]

बीन के जुग तुम्बही तम्बूरहू बिन तार
कम्बु में कलकण्ठरव कलहंस में झनकार।
नचत खञ्जन कञ्ज पल्लव करत रञ्जन गान,
बीत-राग छके निरखि संगीत को सामान॥

[१६]

पन्नगी-सुविहङ्ग कुञ्जर-केसरी इक सङ्ग
बसत हिलमिल लसत निर्मल सत्वगुन को रङ्ग।
मानि मन्त्रण अतन को मुनि तपन-काज-प्रवीन
तीय-तन-नूतन-तपोवन-रमन को मन कीन॥

[१७]

अलङ्कार-प्रकार तजि बरनहुँ बिना बिस्तार,
सङ्ग मुनिवर अङ्गना को कीन्ह अङ्गीकार।
बढ़ी सुरपुरवासिनी को वासना उर धाम,
कामना सब कामिनो की करी पूरनकाम॥

[१८]

गर्विता करि गर्वधारन अनत कीन पयान,
जाय कन्या, रूप धन्या फेरि पहुँची आन।
चाव सों प्रिय हाव सों अति भरी भाव विनोद,
देन चाहो बालिका दुतिमालिका मुनि गोद* ॥

[१९]

देखि फल तप-भङ्ग-तरु को सामने मुनिराय
फेरि लीन्हो वदन, कर सों अरुचि अति दरसाय।
कहां वेश्या! कहां पूरनवशी विश्वामित्र
उचित चित में खचित करिबो मैन-काठिन-चित्र†॥

राजनीति-विज्ञान।

[२]

१—मनुष्य के अधिकार।

मनुष्य, समाज और शासन इनका आपस में जो सम्बन्ध है उसके विषय में हम लिख चुके हैं। शासन की दो तीन प्रचलित प्रणालियों का भी हाल थोड़े में दे चुके हैं। परन्तु शासन-प्रणाली का सबसे अच्छा ढंग कौन सा है, इस पर हमने अभी तक कुछ नहीं कहा; और न योरप और अमरीका की

---

* चित्र देखो।

† मैन (काम) की कठिनता का चित्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजातन्त्र राज्य-प्रणालियों ही का कुछ वर्णन किया है। इसके पहले कि हम उन विषयों को छेड़ें, हम यह निहायत ज़रूरी समझते हैं, कि मनुष्य के अधिकारों का थोड़ा सा वर्णन कर दें। क्योंकि राजनीति-विज्ञान की सारी इमारत इन्हीं अधिकारों का नींव पर खड़ी है। इसलिए सबसे पहले हम उन्हीं के विषय में कुछ निवेदन करते हैं।

जिस भूमि पर हम रहते हैं, किसी ख़ास आदमी की जायदाद नहीं है। ईश्वर ने किसी के नाम पट्टा नहीं लिख दिया है कि इतने बीघा भूमि मैं तुमको देता हूँ। यह सबके भोग के लिए है। प्रत्येक मनुष्य* इस संसार में किसी ख़ास उद्देश की पूर्ति के लिए उत्पन्न हुआ है और अपनी शारीरिक अथवा मानसिक शक्तियों के अनुसार उसकी पूर्ति उस पर लाज़िमी है। मनुष्य को अपनी उन्नति के लिए दो साधनों की सबसे अधिक ज़रूरत है:—प्रथम काम करने की स्वतन्त्रता, दूसरे शरीररक्षा के लिए अन्न। इसलिए न्याय यह है कि कोई मनुष्य इनसे वञ्चित न हो, सबको बराबर मौक़ा इनके ग्रहण और उपभोग का मिले। अब यदि ध्यानपूर्वक विचारें तो मालूम होगा कि सबसे बड़ा साधन और ज़रूरी वस्तु मनुष्य के लिए अन्न है। यदि अन्न न मिले तो उसकी सभी आशाओं पर ओले पड़ जायँ। इसलिए अन्न मनुष्य के लिए सबसे अधिक ज़रूरी चीज़ है।

ईश्वर की कृपा से भूमि की पैदावार मनुष्य की ज़रूरतों से अधिक है; और यदि मनुष्य प्रकृति के नियमों को जानता हो तो वह और भी उपजाऊ हो सकती है। अब प्रश्न यह है कि क्यों फिर लाखों आदमी हर साल भूखों मरते हैं? इसका उत्तर स्पष्ट है। जिसके लिए दस बीघा भूमि काफ़ी है, वह दस सौ या दस हज़ार बीघा भूमि का मालिक बना बैठा है और जो पैदावार उससे होती है उसको अपना समझे बैठा है। उसे औरों को वह तभी देगा यदि उसके बदले उसे रुपया मिलेगा। रुपये पैसे से वह अपने ऐश-आराम के सामान ख़रीदता है। जिन कृषकों ने जेठ असाढ़ की धूप सह कर अन्न पैदा किया था वे भूखों मरते हैं, हमारा बना बनाया ज़मींदार मज़े सुख की नींद सोता है। यही नहीं, एक और तमाशा देखिए। जिनके पास थोड़ी बहुत भूमि पेट पालने के लिए है उनके पीछे एक और बला चिपटी हुई है उन्हें लगान देना पड़ता है और न दे सकने से उनके घर द्वार बिक जाते हैं।

इस मनुष्य-समाज का दूसरा परदा उठा कर देखिए। रेलवे कम्पनियों को हर साल करोड़ों रुपये का फ़ायदा है। जानते हो यह रुपया कहाँ जाता है?—थोड़े से मनुष्यों की विषय-वासना पूरी करने के लिए। यह करोड़ों रुपये का फ़ायदा किनकी मेहनत का फल है?—उन मज़दूरों और कारीगरों को जो रेल के दफ़्तरों और स्टेशनों पर काम करते हैं। उन्हें सिर्फ़ उतना ही खाने को दिया जाता है जितने से उनकी शरीररूपी गाड़ी चल सके। अकाल के कारण हज़ारों को उतना भी नहीं मिलता और इन लोगों के पसीने से कमाया हुआ रुपया कहाँ जाता है? उनके पास जो एक रात के जलसे में लाखों रुपये फूँक देते हैं! ये कर्म्मचारी एक प्रकार के दास हैं। आप शायद कहेंगे कि दास कैसे? कोई इन्हें ज़बरदस्ती थोड़े ही नौकर रखता है। अपनी मरज़ी से ये लोग नौकरी करते हैं। उत्तर में हम कहेंगे कि आप भूल करते हैं। अपनी मरज़ी से लोग नौकरी नहीं करते। पेट के लिए मजबूर होकर इन्हें नौकरी करनी पड़ती है।

हम पहले ही कह चुके हैं कि मनुष्य-जीवन के लिए अन्न सबसे प्रधान चीज़ है। अब हम एक क़दम आगे बढ़ कर यह कहते हैं कि मनुष्य की शारीरिक, सामाजिक और आत्मिक उन्नति का मूल "अन्न" इस एक शब्द की महिमा समझने से हो सकता है। फ़क़ीर से लेकर बादशाह तक सब इसके मोहताज हैं; और इस जादू की छड़ी, अन्न के प्रभाव से अन्त्यज ब्राह्मण हो सकता है और

* जहाँ जहाँ हम मनुष्य कहते हैं, हमारा अभिप्राय स्त्री-पुरुष दोनों से है—लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मण अन्त्यज। पक्षपात से अन्धे होकर हम चाहे इस सत्यसिद्धान्त की महिमा न समझें, पर नीतिकार के इस वाक्य के अन्दर दुनिया भर की सचाई भरी हुई है :—

बुभुक्षितः किन करोति पापं
क्षीणा जना निष्करुणा भवन्ति।

अर्थात्—पेट का ज्वाला बुझाने के लिए मनुष्य कौन कौन पाप नहीं करता? भूखे मनुष्य दया-मया और करुणा सभी से हाथ धो बैठते हैं। लोग जानते हैं कि अमुक नौकरी करने से हम आत्मा के अनुकूल काम न कर सकेंगे; पर जीवन-निर्वाह का दूसरा उपाय न देख कर बेचारों को लाचार वही करना पड़ता है। अतएव आत्मा की उन्नति चाहनेवालों के लिए सबसे पहले भोजनों की व्यवस्था करनी चाहिए।

मनुष्य-समाज के सभ्यों को मनमाना काम करने की स्वतन्त्रता का होना भी बहुत ज़रूरी है। प्रत्येक मनुष्य अपनी योग्यता या रुचि के अनुसार जिस काम को पसन्द करे उसी को करने का उसे हक़ है। यह नहीं, कि हमने नियम कर दिया कि अमुक अमुक लोग चमार का काम करें। बस, हमारे कहने से वे उस पेशे को इख्तियार कर लें। यदि यह बात है तो उनको भी हमारे ऊपर नियम पास करने का वैसा ही हक़ है जैसा कि हमें उन पर है। इससे समाज को एक सूत्र में बद्ध करने के लिए न्याय यह है कि सबको अपना अपना काम करने के लिए समान स्वतन्त्रता मिले, ताकि किसी को शिकायत का मौक़ा न रहे।

मनुष्य का दूसरा अधिकार अपने स्वत्व की रक्षा करना है। यदि कोई किसी का स्वत्व हरण करने आवे तो उसे तत्काल ही अपनी रक्षा करनी चाहिए। अतएव रक्षा के सब साधन उसे मिलने उचित हैं। जो अपने स्वत्व की रक्षा नहीं कर सकता उसे जीता ही मुर्दा समझना चाहिए।

तीसरा अधिकार अपने श्रम से पूरा लाभ उठाना है। बेगार पकड़ कर कोई किसी से काम नहीं ले सकता। जितनी मेहनत हमने किसी काम में की है उसी के अनुसार हम मज़दूरी के मुस्तहक़ हैं। जिस खेत में हमने महीनों मेहनत करके फ़सल तैयार की है वह फ़सल हमारी ही है; महाजन या ज़मींदार की नहीं। हाँ, कुछ कर ज़रूर देंगे; परन्तु समाज को हमारी रक्षा का ज़िम्मा लेना होगा। यदि हम दस घंटे किसी कारख़ाने में काम करते हैं तो कारख़ाने की आमदनी के मुताबिक़ मज़दूरी के हम हक़दार हैं। यह नहीं कि हमें तो आठ आने रोज़ मिलें और कारख़ाने का मालिक हज़ार रुपये रोज़ ले। आप शायद कहेंगे कि कारख़ाने के मालिक को आमदनी अधिक हुई सो इसलिए कि कारख़ाना उसका है। हम कहेंगे कि आमदनी के दो उपाय हैं :—श्रम और सरमाया। ये दोनों एक दूसरे पर निर्भर हैं। कारख़ाने का स्वामी बिना मज़दूरों को मेहनत के कारख़ाना चला ही नहीं सकता, और न मज़दूर ही उसके बिना अपना गुज़ारा कर सकते ह। अतएव न्याय यह है कि जो आमदनी कारख़ाने से हो वह मुनासिब तौर से दोनों में बाँट दी जाय।

चौथा अधिकार—विद्या-प्राप्ति से पूरा लाभ उठाना है। किसी बालक को पाठशाला से इसलिए निकाल देना कि वह बढ़ई या और कोई पेशा करने वाले का लड़का है, अन्याय है। सभी पेशे मनुष्य-समाज के लिए उपयोगी हैं। विद्या मनुष्य का उन्नति का एक साधन है। इसलिए समाज के प्रत्येक सभ्य को विद्यार्जन करना चाहिए। अज्ञानी और मूर्ख सभ्यों से समाज ही की हानि है। शिक्षा-प्रणाली का ढँग ऐसा होना चाहिए कि एक भी मनुष्य विद्या से वञ्चित न रहे।

पाँचवाँ अधिकार धर्म की आज़ादी का होना है। मनुष्य चाहे जैसे विचार रक्खे,—ईश्वर को माने चाहे न माने; मूर्तिपूजा करे, चाहे न करे; ईसाई हो या मुसलमान,—सबको अपने सिद्धान्तों की स्वतन्त्रता देनी उचित है। इसके बिना सत्यासत्य का निर्णय नहीं हो सकता, और मनुष्य क्षुद्राशय हो जाते हैं। युक्ति के बल से हम दूसरों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने विचारों का बना सकते हैं; परन्तु ज़बरदस्ती करने का हमें हक़ नहीं है।

यों तो मनुष्य के अधिकार बहुत से हैं और उनकी लम्बी चौड़ी व्याख्या हो सकती है, परन्तु हमने मोटी मोटी बातों को संक्षेप से लिख दिया है। अब हम मनुष्य के कर्तव्यों पर थोड़ा सा विचार करते हैं।

२—मनुष्य के कर्तव्य।

प्रायः सभी विद्वान् इस बात को मानते हैं कि प्रत्येक मनुष्य की शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ जुदा जुदा होती हैं। विकास-सिद्धान्त के अनुसार हम लोग आत्मिक उन्नति की जुदा जुदा सीढ़ियों पर खड़े हैं; कोई आगे है, कोई पीछे; कोई शीघ्र शीघ्र चढ़ रहा है, कोई धीरे धीरे क़दम उठा रहा है। यदि एक आदमी अपनी आत्मिक उन्नति में बढ़ा हुआ है तो दूसरा अपनी शारीरिक उन्नति में; एक यदि पक्का दुकानदार बन सकता है, तो दूसरा पक्का कारीगर। तात्पर्य्य यह कि समाजरूपी उद्यान में प्रत्येक फूल अपने रूप, रंग और सुगन्ध में एक दूसरे से भिन्न है।

इस विषय में विद्वानों ने 'जन्म' का ढकोसला नहीं लगाया। उन्होंने यह नहीं माना कि किसी ख़ास जाति या ख़ास वर्ण में उत्पन्न होने से मनुष्य को शक्तियों में भेद हो जाता है। विकास का सिद्धान्त सर्वव्यापक है। अमेरिका में बड़े बड़े विज्ञानी पैदा होते हैं तो भारत में भी हो सकते हैं। अथवा भारत में यदि महात्मा जन्म लेते हैं तो इँगलैंड में भी वे जन्म ले सकते हैं। आत्मा महान् होना चाहिए; चाहे उसका प्रादुर्भाव बढ़ई ईसा में हो, चाहे राजकुमार बुद्ध में।

अच्छा, तो मनुष्य अपने स्वभाव और शक्तियों में एक दूसरे से भिन्नता रखता है। अतएव अब हमें यह देखना है कि मनुष्य किस प्रकार मिल कर रह सकते हैं। कल्पना कीजिए कि चालीस आदमी हिन्दुस्तान से आस्ट्रेलिया चले जायँ और वहाँ एक नई बस्ती बना कर उन्हें रहना पड़े। उन सबके स्वभाव और शक्तियाँ जुदा जुदा हैं। एक बढ़ई है, तो दूसरा लुहार; एक किसान है तो दूसरा मोची; एक मज़बूत है तो दूसरा कमज़ोर; एक मूर्ख है तो दूसरा पण्डित। अतएव वे सब एक दूसरे को सहायता करके मिल जुल कर आराम से रह सकते हैं। पर एक साथ रहने में यह ज़रूरी है कि हम एक दूसरे के भले बुरे दिनों का ख़याल रक्खें। यदि उनमें से कोई रात के बारह बजे उठ कर चिल्ला चिल्ला कर गावे, जिससे पास रहनेवालों को सोना हराम हो जाय, तो इस दशा में वह यह कह कर नहीं बच सकता कि "मैं अपने कामों में स्वतन्त्र हूँ"। उसको दूसरों के आराम का ख़याल रखना पड़ेगा। समाज में इस प्रकार की पाबन्दी को कर्तव्य कहते हैं। याद रखिए, धर्म के जितने अङ्ग हैं उनका उद्भव मनुष्य-समाज ही में होता है। हम दूसरों के सामने क्यों सत्य बोलना चाहिए? इसलिए कि ऐसा न करने से समाज के व्यवहारों में गड़बड़ मचेगी, और कोई किसी का विश्वास न करेगा। यद्यपि 'बोलने की स्वतन्त्रता', 'करने की स्वतन्त्रता' हमारे अधिकारों में शामिल है; परन्तु जहाँ ये अधिकार मनुष्य-समाज में अशान्ति और गड़बड़ पैदा करनेवाले हो जाते हैं वहीं पर उनकी हदबन्दी कर देते हैं। वही हदबन्दी धर्म या कर्तव्य मानी जाती है। यहाँ पर कोई यह प्रश्न कर सकता है कि क्या फिर मनुष्य-समाज के द्वारा हमारे अधिकार छीने नहीं जाते? हम उत्तर में कहेंगे, नहीं। समाज मनुष्य के अधिकारों को छीनता नहीं, किन्तु उनके उपयोग का सच्चा रास्ता बताता है। यद्यपि मनुष्य क्रोध करने, झूठ बोलने, जुआ खेलने, गाला देने की पूरी स्वतन्त्रता रखता है; और यह सब उसके अपने अधिकारों के अन्तर्गत हैं; परन्तु इन अधिकारों का—इस स्वतन्त्रता का—उपयोग मनुष्य समाज में रह कर करने का वह हक़दार नहीं है, क्योंकि वहाँ ऐसा करने से समाज की हानि होती है; इसलिए समाज मनुष्य के लिए एक प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियामत है। समाज मनुष्य की ज़रूरतों को पूरा करने और उनको सुमार्ग पर चलाने का प्रधान साधन है।

३—शासन की सबसे श्रेष्ठ प्रणाली।

समाज के यदि सारे सभ्य अपने अधिकारों और कर्तव्यों को ठीक ठीक समझें, और उनके अनुसार आचरण करें, तो समाज का काम बहुत अच्छी तरह चल सकता है। यदि चोर, डाकू और गुंडे न हों तो पुलिस की कोई आवश्यकता नहीं। यदि उचक्के और चोर न हों तो घरों में ताले लगाने न पड़ें। परन्तु समाज ऐसे लोगों से ख़ाली नहीं होती; इसलिए अधिकारों और कर्तव्यों की रक्षा के लिए शासन ज़रूरी है। समाज तो हमको उन्नति पर ले जाने और हमारी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए है; शासन हमारे अपराधों का दण्ड देने के लिए। इससे स्पष्ट है कि गवर्नमेंट का होना मनुष्य के दोषों के कारण है। सबसे सभ्य समाज वह है जो बिना गवर्नमेंट के चल सकता है; जहाँ मनुष्य के अधिकारों और कर्तव्यों की रक्षा बिना पुलिस के हो सकती है।

अब प्रश्न यह है कि किस प्रकार की शासन-प्रणाली सब लोगों को बराबर अधिकार दिलाने और सब सभ्यों को न्यायपूर्वक चलाने के योग्य है?

इस प्रश्न का उत्तर हम एक उदाहरण दे कर समझाते हैं। मान लीजिए कि पुरन्दरपुर एक ऐसा सुशिक्षित नगर है जहाँ के लोग अपनी गवर्नमेंट खड़ी करना चाहते हैं। वहाँ की आबादी एक लाख के क़रीब है, और शहर, दस ऐसे महल्लों में विभक्त है जिनकी आबादी एक सो तो नहीं, मगर सबमें पाँच पाँच हज़ार से ऊपर आदमी रहते हैं। कल्पना करो कि एक लाख की आबादी में चालीस हज़ार मुसलमान हैं—कुछ महल्लों में मुसलमानों की प्रधानता है, कुछ में हिन्दुओं की—मगर सब मिल जुल कर रहते हैं। सबसे पहले सब महल्लों के मुखिया लोगों को आपस में मिल कर यह नियम करना पड़ेगा कि कितनी आबादी के पीछे एक प्रतिनिधि चुना जाय। हम माने लेते हैं कि पाँच हज़ार के पीछे एक प्रतिनिधि चुनने का नियम है। अर्थात् यदि किसी महल्ले की आबादी १२,६२३ हो तो वहाँ से दो प्रतिनिधि चुने जा सकते हैं। इस तरह इस शहर के पन्द्रह प्रतिनिधि हुए। अच्छा, इन प्रतिनिधियों से मतलब क्या? और इनका चुनाव कैसे हो? प्रतिनिधि उसे कहते हैं जो किसी जन-समूह के विचारों को प्रकट करनेवाला हो। अर्थात् पुरन्दरपुर का एक एक प्रतिनिधि प्रायः दस दस हज़ार मनुष्यों की ज़रूरतों का प्रकट करनेवाला और शिकायतों को सुनानेवाला एक प्रकार का वकील होगा। हर प्रतिनिधि पर लोगों का पूरा विश्वास रहेगा कि वह ईमानदारी से अपना कर्तव्य पालन करेगा। प्रतिनिधियों के चुनाव का ढँग इस प्रकार समझिए। मान लो कि पूर्वोक्त एक महल्ले की १२,६२३ आबादी में पाँच हज़ार ही मनुष्य ऐसे हैं जो वोट* देने की योग्यता रखते हैं। और तीन मनुष्य ऐसे योग्य हैं जिनको प्रतिनिधि बनाने का प्रस्ताव उपस्थित किया गया है। महल्ले की ओर से जो कमेटी मुक़र्रर होगी वह विज्ञापन द्वारा लोगों को सूचना दे देगी कि अमुक दिन अमुक स्थान पर वोट डाले जावेंगे। एक काग़ज़, जिस पर तीनों मनुष्यों के नाम होंगे, मिलेगा और वोट देनेवाला दो के सामने अपनी इच्छानुसार (+) ऐसा चिह्न कर एक सन्दूक़ में डालता जावेगा। अन्त में सबके वोट गिन कर प्रतिनिधियों का फ़ैसला हो जावेगा।

इन पन्द्रह प्रतिनिधियों को पुरन्दरपुरवालों की ओर से आज्ञा मिलेगी कि वे शहर में शान्ति रक्खें; कोई फ़साद करे तो उसे दण्ड दें; किसी के साथ अन्याय हो तो उसका विचार करें। वे ऐसे नियम बनावें जिनसे शहरवालों की शारीरिक अवस्था

* यहाँ हमने वोट देने की योग्यता में केवल उम्र का नियम किया है—अर्थात् इक्कीस वर्ष से ऊपर जिसकी उम्र हो वह वोट दे सकता है—लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक रहे; सबके विद्याभ्यास के लिए कालेज और स्कूल खोलें; शहर में बिजली की रोशनी का प्रबन्ध करें और शहर की रक्षा के लिए कुछ सिपाही रक्खें।

ज़रूरी है कि इन सब कामों के लिए धन की आवश्यकता होगी। इस ज़रूरत को रफ़ा करने के लिए शहरवाले उन प्रतिनिधियों को यह आज्ञा देंगे कि आप लोग हम पर कर लगाइए; बाहर से जो माल शहर के अन्दर बिकने आवे उस पर चुंगी लगाइए; शहर से जो माल बाहर जाय उस पर भी महसूल लगाइए। हाँ, उन चीज़ों पर महसूल न लगे जिनसे तिजारत को हानि हो। यह आज्ञा पाकर प्रतिनिधि लोग एक सभा करेंगे; उसमें कई प्रकार के क़ानून बनाये जायँगे। मगर उनके लिए लोगों की मंज़ूरी दरकार होगी। इसलिए उनका मसविदा छपवा कर सारे शहर में बँटवा दिया जायगा, ताकि लोग उन पर विचार करके अपनी राय दे सकें। लोगों को जिन जिन बातों पर एतराज़ होगा उनके विषय में वे अपनी सम्मति प्रकट करेंगे। अधिकांश सम्मति से जो क़ानून ठीक समझे जायँगे, वे 'पास' हो जायँगे। अँगरेज़ी में ऐसे क़ानूनों को "Constitution" अर्थात् बद्ध-नियम कहते हैं। इनका संशोधन और प्रतिशोधन लोगों की इच्छानुसार हो सकता है।

यहाँ पर यह जान लेना आवश्यक है कि क़ानून के तीन बड़े पहलू हैं:—अदालती, उसूली और अमली। इन तीनों का काम एक दूसरे से अलग है। अमुक क़ानून का क्या अर्थ हो सकता है? मुजरिम ने क़ानून तोड़ा है या नहीं? क़ानून में बज़ाते-ख़ुद कोई दोष है कि नहीं? ऐसा बातों का फ़ैसला अदालत करती है। उसूली विभाग का यह काम है कि यदि क़ानून में कोई दोष हो तो उसे दूर करे या नया क़ानून बनावे। अमली विभाग का यह कर्तव्य है कि क़ानूनों का पालन होता है या नहीं, यह देखे और अपनी भरपूर शक्ति के अनुसार उनका पालन करवावे। अच्छा तो इससे यह नतीजा निकला कि पुरन्दरपुर की प्रतिनिधि सभा को तीन ऐसे महकमों की ज़रूरत है। इस ज़रूरत को पूरा करने के लि पन्द्रह प्रतिनिधियों ने अपने में से पाँच योग्य पुरु ऐसे चुने जिनका काम 'अमली' है; बाक़ी के द उसूली सभा के तौर पर रहे। पुरन्दरपुर की हाई कोर्ट के जज चुनने के लिए शहरवाले अपने 'वोट से चार धर्मात्मा और न्यायपरायण वृद्धों को उ भर के लिए जज मुक़र्रर कर सकते हैं और उनमें से तभी कोई पदच्युत किया जा सकता है जब पचीस हज़ार आदमियों की अरज़ियाँ उसके ख़िलाफ़ उसूली सभा में पहुँचें। प्रत्येक महल्ले में मामूली झगड़े निबटाने के लिए एक एक अदालत हो जायगी जिसके अधिकारियों का निर्वाचन अमली सभा के हाथ में होगा।

प्रतिनिधियों का चुनाव तीन साल बाद और अमली सभा का पाँच साल बाद होना ज़रूरी है यह हमारी राय है, पुरन्दरपुर वाले चाहे सात साल बाद करें। उसूली सभा जो क़ानून बनावे उसे कु शहर की सम्मति के लिए हर महल्ले की सभा में पेश करे, जिससे लोगों को वाकफ़ियत रहे कि क क़ानून बन रहे हैं और उनका रुपया कैसे ख़र्च हो रहा है। अर्थात् गवर्नमेंट के ऊपर उन लोगों का दबाव जिसमें बना रहे। यदि अमली सभा का कोई अधिकारी पक्षपाती सिद्ध हो जाय, या चालीस हज़ार अरज़ियाँ उसके ख़िलाफ़ प्रतिनिधि-सभा में पहुँचें तो दोनों सभायें मिलकर उस सभ्य को उस निश्चित समय के पहले ही पदच्युत कर सकती हैं।

अब हम एक उदाहरण देकर शासन की इ कल को चलाते हैं। कल्पना करो कि पुरन्दरपुर हिन्दू यह चाहते हैं कि उनके शहर में गोहत्या हो। उसूली सभा में उनके छः प्रतिनिधि हैं और मुसलमानों के चार। अमली सभा में चार हिन्दू और एक मुसलमान। हिन्दू महल्ले के लोग अप प्रतिनिधियों को समझा देंगे कि इस प्रकार के क़ान का प्रस्ताव करें। उसूली सभा में क़ानून का प्रस्ता हुआ; उस पर बहुत बहस हुई। प्रस्ताव के श

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

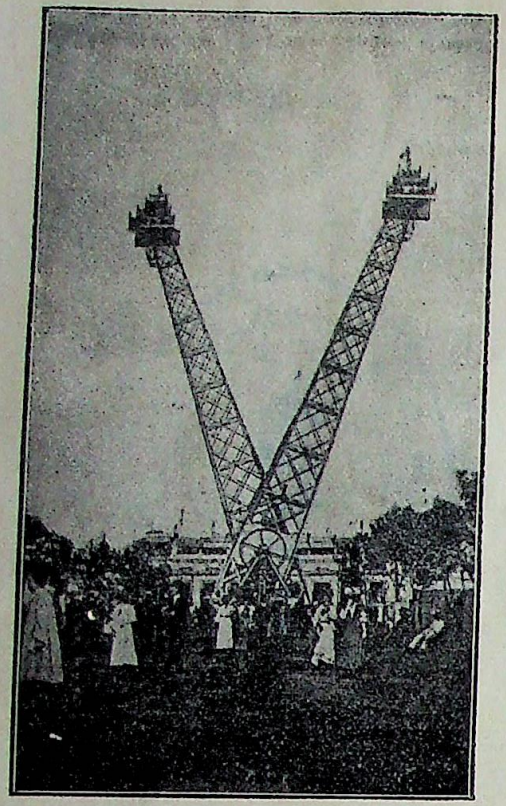

फ्लिप-फ्लैप ।

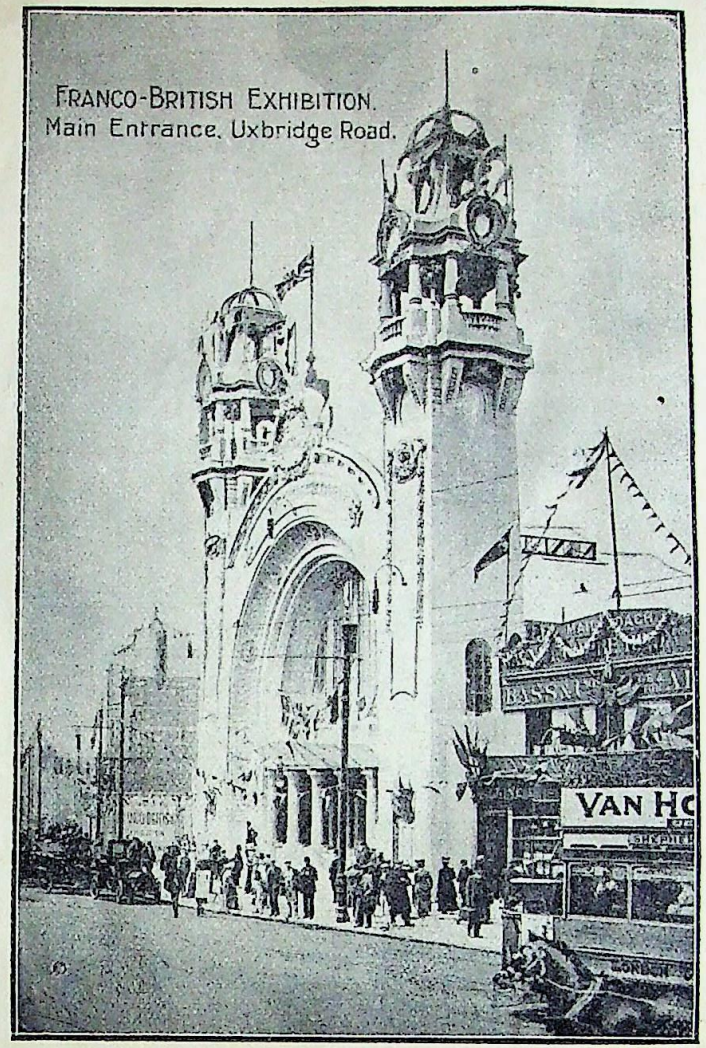

फ्रेंको-ब्रिटिश-प्रदर्शिनी का सदर फाटक ।

INDIAN PRESS, ALLAHABAD.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक किये गये। सभा ने उसे मंज़ूरी के लिए लोगों के सामने पेश किया। एक लाख की आबादी में कुल चालीस हज़ार ऐसे मनुष्य हैं जो वोट देने की योग्यता रखते हैं। उनमें से पन्द्रह हज़ार मुसलमान हैं, बाक़ी पच्चीस हज़ार हिन्दू। यदि मुसलमानों को पाँच हज़ार हिन्दू ऐसे न मिलें जो उनका साथ दे सकें तो ज़रूरी है कि वह क़ानून पास हो जाय; क्योंकि अधिकांश वोट हिन्दुओं के पक्ष में होंगे। यहाँ पर यह समझ लेना ज़रूरी है कि गवर्नमेंट का ढँग चाहे जितना उत्तम हो, अधिकांश सम्मति के आगे सिर झुकाना ही पड़ेगा। इसके बिना किसी प्रकार की सभा समाज, सोसाइटी नहीं चल सकती। हाँ यह हो सकता है कि परास्त हुआ दल जब देखे कि उसके पक्ष में जन-संख्या अधिक है तब उस क़ानून को बदलवा ले।

एक उदाहरण और लीजिए। कल्पना करो कि पुरन्दरपुर में पन्द्रह हज़ार के क़रीब ऐसे हिन्दू हैं जो बाल-विवाह के विरोधी हैं और चाहते हैं कि बाल-विवाह-प्रतिबन्धक क़ानून बन जाय। पर अधिकांश हिन्दू ऐसे क़ानून के विरोधी हैं। ऐसे मौक़े पर यदि पच्चीस हज़ार मुसलमान बाल-विवाह-विरोधियों का साथ देंगे तो क़ानून पास हो जायगा।

क़ानून के प्रस्ताव के दो ढँग हैं :—या तो प्रतिनिधियों द्वारा, या अरज़ियाँ भेज कर। पहला प्रकार तभी चलेगा जब पाँच छः महल्लों के प्रतिनिधि एकमत हों, परन्तु ऐसा होना बहुत कठिन होता है। इसलिए दूसरा आसान तरीक़ा यह है कि यदि पच्चीस हज़ार अरज़ियाँ किसी क़ानून के प्रस्ताव के लिए पहुँच जायँ तो उसूली सभा का अवश्य ही वह विषय हाथ में लेना पड़ेगा। भिन्न भिन्न महल्लों के मनुष्य मिलकर ऐसा कर सकते हैं। ऐसी दशा में अन्याय का भय नहीं रहता।

शासन की यह प्रणाली सबसे श्रेष्ठ और सबसे अधिक स्वतन्त्रता देनेवाली है। अन्याय होने का इसमें बहुत कम भय है। सबको विद्या की सुलभता रहेगी; सब अपनी गवर्नमेंट के कामों में स्वार्थ लेते रहेंगे। इससे शासन-प्रणाली मज़बूत होती जायगी. और सबको बराबर तरक़्क़ी करने का अवसर मिलेगा। नीच-ऊँच का भय न रह कर सबके अधिकारों का बराबर रक्षा हो सकेगी। जब जो लाभकारी क़ानून बनाने की इच्छा लोगों को होगी तब वे उसे फ़ौरन बना सकेंगे। अमली सभा के सभ्य, उसूली सभा के सभ्य, तथा हाईकोर्ट के जज सभा उनके आज्ञाकारी होंगे। लोग जब चाहेंगे उनको हटा सकेंगे।

प्रतिनिधि-सत्ताक राज्य का यह एक छोटा सा उदाहरण है। कई बड़े बड़े देशों का शासन आजकल इस तरह होता है। प्रतिनिधि-सत्ताक राज्य में शक्ति ख़ुद लोगों ही के हाथ में रहती है। और तरह के राज्यों के विषय में हमें अभी लिखना है।

सत्यदेव, अमरीका।

फ़्रेंको-ब्रिटिश-प्रदर्शिनी।

ई महीने से लन्दन में उक्त नाम की एक प्रदर्शिनी खुली हुई है। फ़्रांस और इंगलैंड ने मिलकर इसे तैयार किया है। इन्हीं दोनों देशों की चीज़ें इसमें रक्खी गई हैं। यह प्रदर्शिनी संसार का आठवाँ कौतुक है। ऐसी प्रदर्शिनी आज तक न हुई, न होगी। पैरिस की प्रदर्शिनी इसके मुक़ाबले में कोई चीज़ न थी। यह बात ख़ुद पैरिसवासी कहते हैं। इसका रक़बा १४० एकड़ है। यह प्रदर्शिनी नहीं, एक नगर है। इसीलिए इसे लोग White City (सफ़ेद शहर) कहते हैं। सफ़ेद इसलिए कि इसकी कुल इमारतें सफ़ेद रंग की हैं। इमारतें नहीं, ये महल हैं। कम से कम ऐसे ४० महल हैं। ये पक्के, पुख़्ता, लोहे, चूने, पत्थर और ईंट के बने हैं जो वर्षों तक मेंह और पवन के आक्रमण सहने को तैयार हैं। इन

INDIAN PRESS, ALLAHABAD.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महलों के आस पास सुन्दर बाग़ लगे हैं, जिनमें थके हुए दर्शकों के आराम के लिए कुरसियाँ और बेंचें पड़ी हैं। जगह जगह पर कई तरह के मन बहलाने वाले सामान हैं, जिनका वर्णन आगे चल कर करेंगे। परंतु इन्हें मुफ़्त में नहीं देख सकते। किसी के देखने के लिए तीन आना और किसी के लिए छः आने से बारह आने तक देने पड़ते हैं। कुल प्रदर्शिनी का मामूली चक्कर लगाने के लिए एक छोटी सी रेल चलती है, जिसका किराया छः आने है। कोई रिकशा (Rickshaw) में बैठकर सैर करते हैं। रिकशा एक प्रकार की दो पहिए वाली हलकी गाड़ी है, जिसमें एक आदमी बैठ सकता है। बहुधा ये गाड़ियाँ पहाड़ी चढ़ाई के काम में आती हैं। इन्हें एक आदमी खींचता है। इनका भी किराया छः आने है। प्रदर्शिनी का टिकट बारह आने है। पर भीतर जाने पर कई बारह आने लग जाते हैं। कंजूस से भी कंजूस मनुष्य का जी कुछ न कुछ देखने या ख़रीदने को लेही उड़ता है। प्रदर्शिनी से लौटने के बाद आधी दूर पर Ascension है जिसपर चढ़कर लोग ऊँचे ज़ीने पर बिना थकावट के पहुँच सकते हैं। इसका एक आना किराया देना पड़ता है। यह एक ज़ंजीरनुमा सीढ़ी है, जो कल के द्वारा आप से आप ऊपर चढ़ता है। प्रदर्शिनी के भीतर सब तरह का आराम और सुभीता है। याने होटल, चायघर, डाकघर, तारघर, टेलीफ़ोन, बैंक, छापेख़ाने, पाख़ाने, पेशाबघर, शराबघर आदि सब कुछ बने हुए हैं। पुलिस का जगह जगह पर पहरा है। संध्या को कई स्थानों में बैंड बाजे बजते हैं, जिनके आस पास सैकड़ों नर नारी बैठे और चक्कर लगाते दिखाई देते हैं। बीच में एक नहर है जिस पर लोग किश्तियों में बैठकर छः आने किराये में हवा खाने जाते हैं। सीनिक रेल के पीछे की ओर एक छोटा सा तालाब है। यह फ़व्वारे का काम देता है। इसमें लोहे के लंबे नल पड़े हैं। इनके बारीक सूराख़ों से पानी के छोटे छोटे कण दूर दूर तक उड़ते हैं, जो थके हुए दर्शकों की थकावट मिटाकर उनके मन को प्रफुल्लित करते हैं। इसका नाम है Spray Cooling Plant यह एक घंटे में एक लाख गैलन पानी ऊपर फेंक है। यह प्रदर्शिनी का ख़ुलासा है। अब उसकी ख़ास बातों का संक्षिप्त वर्णन करते हैं।

सदर फाटक।

यह एक बड़े मौक़े की जगह पर बना हुआ है इसके सामने से ट्राम, ट्यूब (Tube), ट्रेन, मोटर बस, घोड़े की बस इत्यादि गुज़रती हैं। इसलि देखनेवालों को सवारी का हर तरह का सुभीता है इन सब सवारियों के द्वारा अनुमान एक ला दर्शक प्रति घंटे आ सकते हैं। दरवाज़े के सा और आस पास खाने पीने के लिए होटल बने हु हैं और शराबियों के लिए बड़े बड़े शराबख़ाने खड़े दरवाज़ा ख़ूब ऊंचा, चौड़ा और ख़ूबसूरत बना बाहर से देखने से किसी बड़े महल की याद दिला है। शाम को गैस की तेज़ रोशनी से बहुत सु दिखाई देता है। भीतर जाने पर टिकट लेने बड़ा हो सुभीता है। बल्कि टिकट लेना भी न पड़ता। एक शिलिंग दे दीजिए और फ़ौरन भी चले जाइए। ठहरने को कोई ज़रूरत नहीं। कोई लोग जिन स्टेशनों से चलते हैं वहीं टिकट ले हैं। इसलिए उन्हें दरवाज़े पर केवल टिकट बताना पड़ता है। रेल और ट्यूब के स्टेश पर ऐसे टिकट हर जगह मिल सकते हैं। इ बहुत कुछ तकलीफ़ बच जाती है। दर्वाज़े के अ जाकर आगे बढ़ते हा देखनेवाले की बुद्धि चकरा जा है। दोनों ओर एक से एक विचित्र बातें दृष्टि पड़ हैं। दो आँखों से देखने का काम पूरा हो ही सकता। देखते देखते आँखें दर्द करने लगती हर एक वस्तु को दिमाग़ में रखने के लिए जगह न दूकानें बड़ी ख़ूबसूरती से सजी हुई हैं। ऊपर क का टप है जिसमें से उजेला आता रहता है। धरती पर एक प्रकार का चमड़े और काग़ज़ फ़र्श बिछा है जिसपर चलने से ज़रा भी शब्द होता। इन दूकानों में हर प्रकार की तसवीरें,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सरस्वती

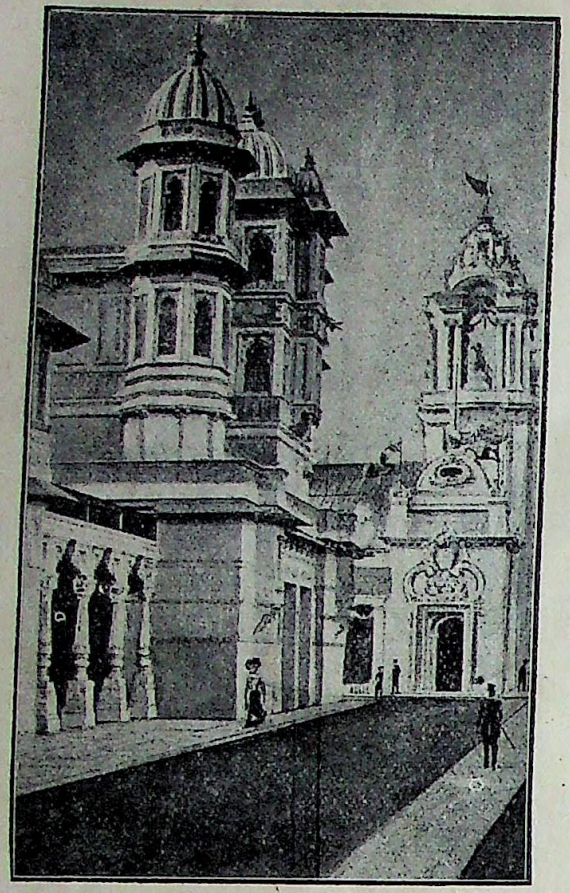

कोर्ट आव् आनर का एक भीतरी दृश्य ।

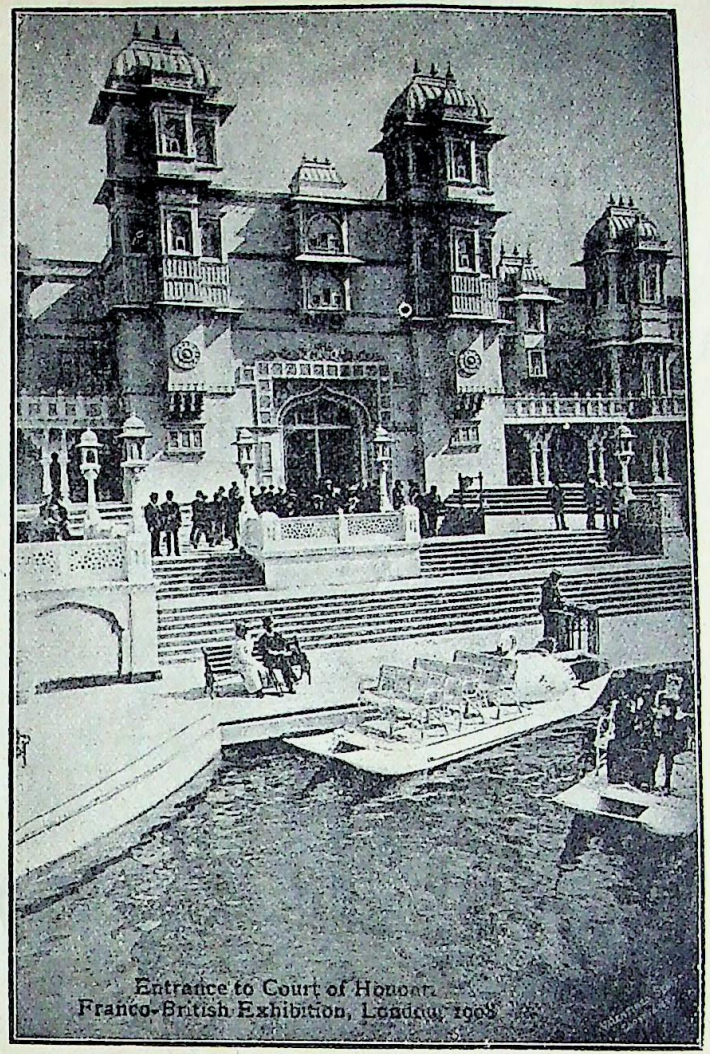

कोर्ट आव् आनर में जाने का फाटक ।

The Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तम्बाकू, चुरुट, कपड़े, पोशाकें इत्यादि नज़र आती हैं। कुछ दूर चलकर लिफ़ाफ़े बनाने की कल रक्खी है जहां लिफ़ाफ़े तैयार होते हैं। उसी के निकट केम्ब्रिज विश्वविद्यालय का प्रेस बाईबिल छाप रहा है। यह बाईबिल वहीं जिल्द बँधकर बिकती जाती है। इसके आगे सायंस के कुल यंत्र एक बड़े कमरे में रक्खे हैं, जिन्हें देखने के लिए कई दिन चाहिए। इसके पास फ़्रांस की कई चीज़ें रक्खी हैं। जैसे स्त्रियों की एक से एक बढ़कर पोशाकें, गले में डालने के फ़र (Fur), चमड़े के कई प्रकार के नमूने, रेशम और जूट के नमूने इत्यादि।

इन दूकानों से निकलने के बाद एक खुले स्थान में आते हैं, जहां बड़े बड़े महल, बाग़, खेल तमाशे के सामान और चौड़ी तथा पक्की सड़कें नज़र आती हैं। यहाँ मन को कुछ विश्राम मिलता है और हरयाली को देखकर आँखों की थकावट दूर हो जाती है। यह संसार ही निराला है। इसमें सब चुनी हुई चीज़ें दिखाई देती हैं। इसे छोड़ने को जी नहीं चाहता। इस नये नगर में घुसते ही हमारी आँखें फ्लिप फ्लेप (Flip Flap) पर पड़ीं। फ्लिप फ्लेप की बनावट तसवीर देखने से मालूम हो सकती है। यह कुल लोहे का बना है। प्रति भुजा की लम्बाई १५० फ़ुट से अधिक है। बड़ा पुख़्ता बना है। टूटने गिरने का कोई डर नहीं। १०० से कुछ अधिक आदमी इसकी दोनों भुजाओं पर बैठ सकते हैं। बैठने के लिए ख़ासी सीढ़ीदार जगह है। हरएक आदमी को सवारी के छः आने लगते हैं। चढ़ने वालों को बारी बारी से जाना पड़ता है। इसलिए बड़ी दूर तक दो दो आदमियों की क़तार लगी रहती है। कभी कभी आध घंटे तक बारी नहीं आती। कल के द्वारा दोनों भुजाएं धीरे धीरे ऊपर को उठती हैं और कुछ मिनट बाद दोनों ऊपर मिल जाती हैं। यहां से सम्पूर्ण प्रदर्शिनी आसानी से दिखाई देती है। फिर धीरे धीरे दोनों भुजाएं नीचे आ जाती हैं। उतरते समय कुछ डर लगता है। परन्तु बहुत से लोग इस आसमानी सफ़र में ख़ूब आनन्द मनाते हैं। कोई गाता है, कोई हँसता है और कोई चीख़ें भी मारता है।

कोर्ट आफ़ आनर (Court of Honor)

यह एक बड़ा अद्भुत स्थान है। इसको देखने से आगरे के ताजमहल की याद आती है। है भी यह उसी आकार का। बीच में एक चौड़ा चौक बना है। इसमें एक छोटा सा तालाब है, जिसमें एक किश्ती पड़ी है। बीच तालाब में बेंड बाजे का स्थान बना है और चारों ओर छोटे छोटे मीनार हैं जिन पर दर्शक खड़े होकर नीचे तालाब की शोभा देखते हैं। पानी एक ऊँचे सुन्दर मकान से सीढ़ियों द्वारा उतरता हुआ नीचे तालाब में गिरता है। अजीब छटा है। रात को उजेले में इसकी शोभा और भी बढ़ जाती है। तालाब के आस पास ऊपर नीचे लोगों के बैठने के लिए बेंचें पड़ी हैं। एक ओर छोटा सा बाग़ीचा लगा है। इसकी शोभा देखते ही से मालूम हो सकती है। रात को मारे उजेले के इन्द्र-भवन सा जान पड़ता है। जगह जगह पर बिजली की रोशनी होती है। सबसे अधिक रोशनी शायद यहीं होती है। इसमें एक लाख बिजली के लेम्प लगे हैं जो रात को दिन बना देते हैं। इसका मुख्य द्वार भी किसी शाही महल का स्मरण दिलाता है।

(असमाप्त)

प्यारेलाल मिश्र, लन्दन।

बौद्धकालीन भारत के विश्वविद्यालय।

सी गत संख्या में "प्राचीन भारत के विश्वविद्यालय" शीर्षक एक लेख प्रकाशित हो चुका है। आज हम अपने पाठकों को बौद्ध कालीन भारतवर्ष के विश्वविद्यालयों का सिलसिलेवार इतिहास सुनाते हैं। श्रीयुक्त रवीन्द्र-नारायण घोष, एम० ए०, ने डॉन सोसाइटी की मैगज़ीन में इस विषय का एक लेख अँगरेज़ी में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशित किया है। उसीके आधार पर यह लेख लिखा गया है।

बौद्धकाल तीन युगों में बाँटा जा सकता है। पहला युग गौतम बुद्ध के समय से शुरू होता है और पाँच सा वर्ष तक रहता है। इस युग के बौद्ध साधु-चरित्र और सच्चे त्यागी होते थे। दूसरा युग ईसवी सन् के साथ प्रारम्भ होता है और ईसा की छठी शताब्दी में समाप्त हो जाता है। इस युग में बौद्धों ने पहले युग के गुण बनाये रखने के साथ साथ शिल्पकला में भी अच्छी उन्नति की थी। सातवीं शताब्दी से तीसरा युग लगता है। इसे तान्त्रिक युग भी कह सकते हैं। इसमें बौद्ध महन्तों के चरित्र बिगड़ने लगे थे और पहले की सी त्यागशीलता जाती रही थी। परन्तु उन लोगों ने आयुर्वेद और रसायन-शास्त्र में ख़ूब उन्नति की थी। इनमें से प्रत्येक युग के विशेषत्व की झलक उस समय के विश्वविद्यालयों में अच्छी तरह पाई जाती है।

तक्षशिला का विश्वविद्यालय।

पहले युग का सबसे बड़ा विश्वविद्यालय तक्षशिला नगर में था। यह नगर वर्तमान रावलपिण्डी के पास था। सूक्त और विनयपीठ आदि प्राचीन बौद्ध-ग्रन्थों में इसका कई जगह उल्लेख पाया जाता है। प्राचीन काल में यह एक अत्यन्त विख्यात नगर था। एरियन, स्ट्राबो, प्लीना आदि प्राचीन लेखकों ने इस नगर की विशालता और वैभव-सम्पन्नता की जी खोलकर प्रशंसा की है। अशोक के राजत्व-काल में उसका प्रतिनिधि यहाँ रहता था। बौद्ध-ग्रन्थों से पता लगता है कि यह अपने समय में विद्यासम्बन्धी चर्चा और पठन-पाठन का केन्द्र था। यह विश्वविद्यालय बुद्ध के पहले ही स्थापित हो चुका था। इसमें वेद, वेदाङ्ग, उपाङ्ग आदि के सिवा आयुर्वेद, मूर्त्तिकारी, चित्रकारी, गृहनिर्माणविद्या आदि भी पढ़ाई जाती थी। विज्ञान, कलाकौशल और दस्तकारी के सब मिलाकर कोई अठारह विषय पढ़ाये जाते थे। इनमें से प्रत्येक चीज़ के लिए अलग अलग विद्यालय बने हुए थे और भिन्न भिन्न विषयों को भिन्न भिन्न अध्यापक पढ़ाते थे। जगद्विख्यात संस्कृत-वैयाकरण पाणिनि और राजनीतिज्ञ-शिरोमणि चाणक्य ने इसी विश्वविद्यालय में शिक्षा पाई थी। महर्षि आत्रेय यहाँ वैद्यक-शास्त्र के अध्यापक थे। मगध-नरेश बिम्बसार के दरबारी चिकित्सक और महात्मा बुद्ध के प्रिय मित्र तथा मतानुयायी वैद्यराज जीवक ने तक्षशिला ही के अध्यापकों से चिकित्सा-शास्त्र का अध्ययन किया था। विनय-पीठक में महावग्ग नामक एक मनुष्य का हाल है जिससे प्राचीन भारत की शिक्षा-प्रणाली का अच्छा पता लगता है। कई वर्ष अध्ययन करने के बाद महावग्ग ने अपने गुरु से पूछा कि शिक्षा समाप्त होने में अभी कितने दिन बाक़ी हैं। गुरु ने उत्तर में कहा कि तक्षशिला के चारों तरफ़ एक योजन भूमि में जड़ी बूटियों के सिवा जितने व्यर्थ पौधे मिलें उन सबको जमा करो। बेचारे विद्यार्थी ने नियत स्थान के प्रत्येक पौधे की परीक्षा की; परन्तु उसे कोई भी व्यर्थ पौधा न मिला। जब शिक्षक महाशय ने अपने परिश्रमी विद्यार्थी का खोज का हाल सुना तब वे बड़े प्रसन्न हुए और महावग्ग से बोले कि तुम्हारी शिक्षा समाप्त हो गई अब तुम अपने घर जाव।

तक्षशिला वैदिक-धर्मावलम्बियों की विद्या का केन्द्र-स्थान था। पर बौद्ध-धर्म का प्रचार होने पर वहाँ बौद्ध लोग भी पढ़ने पढ़ाने लगे थे। यहाँ कई बौद्ध विद्यार्थी ऐसे निकले जो समय पाकर खूब विख्यात हुए। बौद्ध-धर्म के सौत्रान्तिक सम्प्रदाय के स्थापक कुमारलब्ध भी इन्हीं में थे। इनके विषय में हुएनसंग लिखते हैं:—"सारे भारत के लोग उनसे मिलने आते थे। वे नित्य बत्तीस हज़ार शब्द बोलते और बत्तीस हज़ार अक्षर लिखते थे। उन्होंने ५०० शास्त्रों की रचना की थी। उस समय पूर्व में अश्व घोष, दक्षिण में देव, पश्चिम में नागार्जुन और उत्तर में कुमारलब्ध अत्यन्त प्रसिद्ध विद्वान् थे। ये चारों पण्डित संसार को प्रकाशित करने वाले सूर्य्य कहलाते थे।" जिस समय तक्षशिला में वैदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मावलम्बियों की प्रबलता थी उस समय तीन बातें ऐसी थीं जिनको यहाँ पर लिख देना हम उचित समझते हैं। एक तो यह कि उस समय की शिक्षा-प्रणाली नियमबद्ध विश्वविद्यालयों की सी न थी; किन्तु ऐसी थी जैसी कि वर्तमान काल में बनारस की है। पर बौद्ध-विहारों की पढ़ाई इससे ठीक उलटी थी; वहाँ की शिक्षाप्रणाली वैसी ही थी जैसी कि नियमबद्ध विश्वविद्यालयों की होना चाहिए। दूसरी बात यह कि बौद्ध-विहारों की तरह यहाँ पर केवल संन्यासियों ही को शिक्षा न दी जाती थी; किन्तु गुरु और शिष्य दोनों ही गृहस्थ होते थे। यह बात असतमन्त जातक की एक कहानी से और भी स्पष्ट हो जाती है। एक ब्राह्मण ने अपने पुत्र से पूछा कि तुम कैसा जीवन बिताना चाहते हो। यदि तुम ब्रह्मराज्य में प्रवेश करना चाहते हो तो वन को जाव और वहाँ अग्निहोत्र करो। यदि गृहस्थ बनना चाहते हो तो तक्षशिला जाकर किसी विख्यात पण्डित से विद्याध्ययन करो, जिसमें सुखपूर्वक गार्हस्थ जीवन बिता सको। पुत्र ने उत्तर दिया:— "मैं वानप्रस्थ बनना नहीं चाहता; मेरी इच्छा गृहस्थ बनने की है।" तक्षशिला के वैदिक विद्यालयों में ध्यान देने योग्य तीसरी बात यह थी कि उनमें केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय बालक ही भर्ती किये जाते थे।

नालन्दा का विश्वविद्या ।

बौद्धकाल के दूसरे युग में सब से बड़ा विश्व-विद्यालय नालन्दा में था। यह स्थान मगध की प्राचीन राजधानी राजगृह से सात मील उत्तर की ओर, और पटना से चौंतीस मील दक्षिण की ओर, था। आज कल इस जगह पर बारगाँव नामक ग्राम बसा हुआ है, जो गया ज़िले के अन्तर्गत है। नालन्दा की प्राचीन इमारतों के खँडहर यहाँ अभी तक पाये जाते हैं। सातवीं शताब्दी के प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनसंग ने नालन्दा की शान-व-शौकत का बड़ा ही मनोहर वृत्तांत लिखा है। चीन ही में उसने नालन्दा का हाल सुना था; तभी से इसे देखने के लिये वह बहुत ललचा रहा था। इधर उधर घूमते घामते जब वह गया में पहुँचा तब विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने उसे नालन्दा में आने के लिए निमन्त्रित किया। इससे उसने अपने को धन्य समझा। नालन्दा में पहुँचते ही उसके दिल पर ऐसा असर पड़ा कि वह तुरन्त विद्यार्थियों में शामिल हो गया।

नालन्दा की बाहरी टीमटाम ।

विद्यालोलुप चीनी सन्यासी नालन्दा की भव्यता और पवित्रता देखकर लट्टू हो गया। ऊँचे ऊँचे विहार और मठ चारों ओर खड़े थे। बीच बीच में सभागृह और विद्यालय बने हुए थे। वे सब समाधियों, मन्दिरों और स्तूपों से घिरे हुए थे। उनके चारों तरफ़ बौद्ध-शिक्षकों और प्रचारकों के रहने के लिए चौमंज़िला इमारतें बनी हुई थीं। इनके सिवा ऊँचे ऊँचे मीनारों और विशाल भवनों की शोभा देखने ही योग्य थी। इन भवनों में नाना प्रकार के बहुमूल्य रत्न जड़े हुए थे। रँग बिरंगे दरवाज़ों, कड़ियों, छतों और खम्भों की सजावट को देखकर लोग लोटपोट हो जाते थे। विद्या-मन्दिरों के शिखर आकाश से बातें करते थे और, हुएनसंग के कथनानुसार, उनको खिड़कियों से वायु और मेघ के जन्म-स्थान दिखाई देते थे। मीठे और स्वच्छ जल की धारा चारों ओर बहा करती थी और सुन्दर खिले हुये कमल उसकी शोभा बढ़ाया करते थे।

नालन्दा का आन्तरिक जीवन ।

विशालता, नियमबद्धता और सुप्रबन्ध के विचार से नालन्दा का विश्वविद्यालय वर्तमान काशी की अपेक्षा आक्सफ़र्ड से अधिक मिलता जुलता था। विश्वविद्यालय के विहारों में कोई दस हज़ार भिक्षु विद्यार्थी और डेढ़ हज़ार अध्यापक रहते थे। केवल दर्शन और धर्मशास्त्र ही के सौ अध्यापक थे। इससे सम्बन्ध रखने वाला पुस्तकालय नौ-मंज़िला था, जिसकी उँचाई क़रीब तीन सौ फ़ीट थी। इसे महाराज बालादित्य ने बनवाया था। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में बौद्ध-धर्म-सम्बन्धी सभी ग्रन्थ थे। प्राचीन काल में इतना बड़ा पुस्तकालय शायद ही कहीं रहा हो।

दुनिया में आज कल जितने विश्वविद्यालय हैं सबमें विद्यार्थियों से फ़ीस ली जाती है और अध्यापकों को तनख़्वाह दी जाती है। पर नालन्दा विश्वविद्यालय की दशा इससे ठीक उलटी थी। केवल यही नहीं कि विद्यार्थियों से कुछ न लिया जाता हो, किन्तु उलटा उन्हें प्रत्येक आवश्यक वस्तु मुफ़्त दी जाती थी—अर्थात् भोजन, वस्त्र, औषध, निवास-स्थान आदि सब कुछ सेंतमेत मिलता था। यह प्रथा हिन्दुस्तान में बहुत प्राचीन काल से चली आई है। गृहस्थ लोग गाँव, खेत, बाग़, वस्त्र अथवा नक़द रुपये इन विद्यालयों को दान करते थे; इसीसे इनका सम्पूर्ण ख़र्च चलता था। इस प्रकार विद्यार्थियों का बहुत सा समय और मानसिक शक्ति पेट-पूजा के लिए धनोपार्जन करने में नष्ट होने से बच जाती थी और वे इस समय और शक्ति को विद्याध्ययन में लगाते थे। इसका फल यह होता था कि गम्भीर विचार वाले और मननशील विद्वान् इन विद्यालयों से निकलते थे। इसीसे वे लोग बौद्ध-धर्म, संस्कृत-साहित्य और संसार का अनन्त उपकार कर गये हैं।

नालन्दा के विश्वविद्यालय में आजकल की तरह परीक्षायें न होती थीं। किन्तु विद्यार्थियों की योग्यता शास्त्रार्थ द्वारा जाँची जाती थी। विद्यालय में भर्ती होने के नियम भी बड़े कड़े थे। जो लोग दाख़िल होने के लिए आते थे उनसे द्वारपंडित कुछ कठिन प्रश्न करता था। यदि वे उनका उत्तर दे सकते थे तो भीतर जाने पाते थे, नहीं तो लौट जाते थे। इसके बाद शास्त्रार्थ के द्वारा उनकी योग्यता की परीक्षा की जाती थी। जो इसमें भी अपनी योग्यता प्रमाणित कर सकते थे वही विद्यालय में दाख़िल हो सकते थे। बाक़ी अपना सा मुँह लेकर अपने घर का रास्ता लेते थे। मतलब यह कि अच्छे बुद्धिमान्, विद्वान्, योग्य और गुणवान् मनुष्य ही विश्वविद्यालय में प्रवेश कर सकते थे। द्वारपंडित के पद पर वही नियत किया जाता था जो ऊँचे दरजे का विद्वान् होता था। यह पद उस समय बहुत प्रतिष्ठित समझा जाता था। विश्व विद्यालय के सभागृह में सबेरे से शाम तक शास्त्रा हुआ करता था। दूर दूर के देशों से बड़े बड़े पंडित अपनी शङ्कायें दूर करने के लिए यह आते थे। नालन्दा के विद्यार्थियों का देश भर आदर, सत्कार और सम्मान होता था। जहाँ लोग जाते थे वहीं उनकी इज़्ज़त होती थी। तो नालन्दा-विश्वविद्यालय के प्रायः सभी अध्यापक उत्कृष्ट विद्वान् थे; पर उनमें से नौ मुख्य थे हुएनसंग ने उनकी सोमारहित विद्वत्ता, योग्यता देशव्यापी ख्याति और अद्भुत प्रतिभाशालिता की ख़ूब प्रशंसा की है। उन नौओं अध्यापकों के नाम ये हैं:—धर्मपाल, चन्द्रपाल, गुणमति, स्थिरमति प्रभामित्र, जिनमित्र, ज्ञानचन्द्र, शीघ्रबुद्ध और शीलभद्र। इनमें से शीलभद्र, हुएनसंग के समय में विश्वविद्यालय के अध्यक्ष थे। बौद्ध-धर्म के महायान सम्प्रदाय के जगद्विख्यात संस्थापक नागार्जुन का सम्बन्ध भी किसी समय नालन्दा-विश्वविद्यालय से था।

नालन्दा के प्रायः सभी अध्यापक और विद्यार्थी धार्मिक जीवन व्यतीत करते थे। असल में धार्मिक जीवन बिताने के लिए ही इसकी सृष्टि हुई थी; इसी लिए इसका नाम "धर्मगंज" पड़ा था। परन्तु पीछे से इसकी काया पलट गई थी। दर्शन और धर्मशास्त्र के साथ साथ व्याकरण, ज्योतिष, काव्य, वैद्यक आदि व्यावहारिक और सांसारिक विद्यायें भी पढ़ाई जाने लगी थीं। तमाम हिन्दुस्तान भर के विद्यार्थी इन विद्याओं को पढ़ने के लिए यहाँ आते थे।

श्रीधन्यकटक का विश्वविद्यालय।

इस युग का दूसरा प्रसिद्ध विश्व-विद्यालय श्रीधन्यकटक में था। यह स्थान दक्षिण भारत में कृष्णा नदी के किनारे वर्तमान अमरावती के स्तूप के निकट था। बौद्धधर्म के महायान सम्प्रदाय के चौदहवें धर्मगुरु, विख्यात रसायन-शास्त्र-वेत्ता और चिकित्सक सिद्ध-नागार्जुन के समय में यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्नत-दशा में था और देश देशान्तरों में प्रसिद्ध हो गया था। चीनी यात्री इत्सिंग के कथनानुसार नागार्जुन महाशय ईसा की चौथी शताब्दी में हुए थे। यहाँ पर वैदिक और बौद्ध दोनों प्रकार के ग्रंथ पढ़ाये जाते थे। तिब्बत की राजधानी लासा के निकट डायंग-विश्वविद्यालय इसीके नमूने पर बनाया गया था। पठन-पाठन-विधि यहाँ भी वैसी ही थी जैसी कि नालन्दा में।

ओदन्तपुरी और विक्रमशिला के विश्वविद्यालय।

यह हम लिख चुके हैं कि बौद्ध काल का तीसरा युग सातवीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है और बख़्तियार ख़िलजी के समय में समाप्त होता है। इस समय के बौद्ध-महन्तों में पहले का सा धार्मिक उत्साह बाक़ी नहीं था; परन्तु वैज्ञानिक खोज करने का जोश ख़ूब बढ़ गया था। वैद्यक और रसायनशास्त्र में उन लोगों ने अच्छी उन्नति की थी। इस तान्त्रिक बौद्ध धर्म का प्रचार बंगाल और विहार में बहुत था। इन दिनों मगध में पालवंश के राजा राज्य करते थे। इन्हीं के समय में बौद्ध उपदेशकों ने तिब्बत जाकर बौद्ध धर्म का प्रचार किया था। इस युग में दो मुख्य विश्वविद्यालय थे; एक तो ओदन्तपुरी में, दूसरा विक्रमशिला में। ये दोनों स्थान विहार प्रान्त में हैं। मगध में पालवंश का राज्य होने के बहुत दिन पहले ओदन्तपुरी में एक बड़ा भारी विहार बनाया गया था। इसी विहार के नाम पर कुल प्रान्त का नाम विहार पड़ गया और पुराना नाम मगध लुप्त हो गया। महाराज महीपाल के पुत्र महापाल के समय में ओदन्तपुरी-विश्वविद्यालय में बौद्धधर्म के हीनयान सम्प्रदाय के एक हज़ार और महायान सम्प्रदाय के पाँच हज़ार महन्त रहते थे। पालवंश के राजाओं ने ओदन्तपुरी-विश्वविद्यालय में एक बड़ा भारी पुस्तकालय स्थापित किया था; उसमें वैदिक और बौद्ध दोनों प्रकार के हज़ारों ग्रंथ थे। सन् १२०२ ईसवी में मुसलमानों ने इस पुस्तकालय को जला दिया और महन्तों का क़तलेआम करके विहार को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। श्रीधन्यकटक-विश्वविद्यालय की तरह ओदन्तपुरी के नमूने पर भी तिब्बत में शाक्य नामक एक विश्वविद्यालय खोला गया था।

पाल राजा बड़े ही विद्यारसिक और विद्वानों के संरक्षक थे। उनका सम्बन्ध एक और विश्वविद्यालय से भी था। उसका नाम था विक्रमशिला। यह विद्यालय भागलपुर ज़िले के अन्तर्गत सुलतानगंज गाँव के निकट गंगा के दाहिने किनारे एक पहाड़ी की चोटी पर बना हुआ था। इसे महाराज धर्मपाल ने ७९० ई० में बनवाया था। इसमें सब मिलाकर के ई एकसौ आठ भवन थे। इस विश्वविद्यालय के अधीन छः महाविद्यालय थे, जिनमें एकसौ आठ पंडित पढ़ाते थे। इन सब पंडितों तथा अन्य अतिथि विद्वानों का ख़र्च पूर्वोक्त महाराज के दिए हुए गाँवों की आमदनी से चलता था। बीच का भवन विज्ञान-मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध था; इसमें विहार के महन्त उन पण्डितों से बौद्ध-ग्रंथ पढ़ते थे जो विश्वविद्यालय के प्रथम और द्वितीय स्तम्भ कहलाते थे। राजा भयपाल के शासन-काल में विश्वविद्यालय की देखभाल के लिए छः द्वारपंडित नियत थे। इसी समय महात्मा जेतारि ने एक सत्र स्थापित किया था जिसमें विक्रमशिला के विद्यार्थियों को मुफ़्त भोजन मिलता था। विद्यालय के स्थायी विद्यार्थियों को भोजन देने के लिए चार सत्र पहले ही से थे। इनके सिवा वारेन्द्र के अधीश महाराज सनातन ने दशवीं शताब्दी के आदि में एक सत्र और भी खोला था। विश्वविद्यालय का प्रबन्ध करने के लिए छः विद्वानों की एक सभा थी, जिसका सभापति सदा राजपुरोहित होता था। महाराज धर्मपाल के समय में अध्यक्ष के पद पर श्रीबुद्धज्ञानपादाचार्य्य नियुक्त थे। ग्यारहवीं शताब्दी में इस पद पर श्रीयुत दीपांकुर महाशय नियत थे। अपने समय के यह बड़े विख्यात विद्वान् थे। इनकी विद्वत्ता की प्रशंसा सुनकर तिब्बत वालों ने इन्हें अपने यहाँ बुलाया था। इस विश्वविद्यालय से पढ़कर जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यार्थी निकलते थे उनको पण्डित की पदवी दी जाती थी। अपने समय के सबसे बड़े नैयायिक पंडित जेतारि ने इसी विश्वविद्यालय से पण्डित की पदवी और राजा महापाल का हस्ताक्षरित प्रमाणपत्र पाया था। महाराज इनकी गहरी विद्वत्ता से इतने प्रसन्न हुए थे कि उन्होंने इनको द्वारपण्डित के प्रतिष्ठित पद पर नियत किया था। सन् ९८३ ई० में काश्मीर-निवासी रत्नवज्र नामक एक प्रसिद्ध विद्वान् ने भी यहाँ से पण्डित की पदवी और राजा चणक का हस्ताक्षरित प्रमाणपत्र पाया था। इस विश्वविद्यालय में व्याकरण, अभिधर्म (बौद्ध-मनोविज्ञान) दर्शनशास्त्र, विज्ञान, वैद्यक आदि कई विषय पढ़ाये जाते थे। तिब्बत के लामा विक्रमशिला में आते थे और वहाँ के पण्डितों की सहायता से संस्कृत-ग्रंथों का अनुवाद तिब्बती भाषा में करते थे। सन् १२०३ ईसवी में बख़्तियार ख़िलजी ने इस विहार पर आक्रमण किया और इसे लूटपाट कर नष्ट भ्रष्ट कर दिया। भारतवर्ष के अन्य बौद्ध-विहारों की भी यही दशा हुई।

रण-निमन्त्रण।

[१]

कौरव तथा पाण्डव परस्पर विजय की आशा किये
होने लगे जब प्रकट प्रस्तुत युद्ध करने के लिये।
उस समय निज निज पक्ष के राजा बुलाने को वहाँ
भेजे गये दोनों तरफ़ से दक्ष दूत जहाँ तहाँ॥

[२]

फिर शीघ्र ही श्रीकृष्ण को निज ओर करने युद्ध में
देने उन्हें रण का निमन्त्रण निज-विपक्ष-विरुद्ध में।
लेने तथा साहाय्य उनसे और सर्व प्रकार का
दैवात् सुयोधन और अर्जुन सङ्ग पहुँचे द्वारका॥

[३]

उस समय सुन्दर सेज ऊपर सो रहे भगवान थे
गम्भीर, नीरव, शान्त, सुस्थिर, सिन्धु सम छविमान थे।
ओढ़े मनोहर पीतपट अति भव्य रूपनिधान थे
प्रत्यूष-आतप-सहित शुचि यमुना-सलिल-उपमान थे॥

[४]

मुकुलित विलोचन युग्म उनके इस प्रकार ललाम थे
भीतर मधुप मूँदे हुए ज्यों सुप्त सरसिज श्याम थे।
वर विमल मुखमण्डल सहित यों सोहते अभिराम थे
घेरे हुए ज्यों सूर्य्य को घन सघन शोभा-धाम थे॥

[५]

नीलारविन्द समान तनु की अति मनोहर कान्ति से
शुचि हार-मुक्ता दीखते थे नीलमणि ज्यों भ्रान्ति से
थे चिह्न कन्धों में विविध यों कुण्डलों के सोहते
मन्मथ-लिखित मानों वशीकर मन्त्र थे मन-मोहते॥

[६]

निःश्वास नैसर्गिक सुरभि यों फैल उनकी थी रही
ज्यों सुकृत-कीर्त्ति गुणी जनों की फैलती है लहलही
सुकपोल करतल पर ललित यों दर्शनीय विशेष थे
मृदु-नवल-पल्लव-सेज पर ज्यों पड़ा नक्षत्रेश था॥

[७]

शय्या-वसन-सङ्घर्ष से जो हो रहे अति क्षीण थे
उन अङ्गरागों से रुचिर यों अङ्ग उनके पीन थे।
ज्यों शरद-ऋतु में धवल घन के विरल खण्डों से सजी
होती सुनर्मल नील नभ की छवि-छटा मोदप्रदा॥

[८]

था शयन-पाटाम्बर अरुण, झालर लगी जिसमें हरी
उस पर तनिक तिरछे पड़े थे पीतपट ओढ़े हरी।
वह दिव्य शोभा देख करके ज्ञात होता था यही-
मानों पुरन्दर-चाप सुन्दर कर रहा शोभित मही॥

[९]

ऐसे समय में शीघ्रता से पहुँच दुर्योधन वहाँ
श्रीकृष्ण के सिर ओर बैठा रुचिर आसन था जहाँ
कुछ देर पीछे फिर वहाँ आकर बिना ही कुछ कहे
हरि के पदों की ओर अर्जुन नम्रता से स्थित रहे॥

[१०]

उस काल उन दोनों सहित शोभित हुए अति विष्णु जो
कन्दर्प और वसन्त-सेवित सो रहे हों जिष्णु* ज्यों
फिर एक दूजे को परस्पर तुच्छ मन में लेखते
हरि-जागरण की राह दोनों रहे ज्यों त्यों देखते॥

---

* जिष्णु=इन्द्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

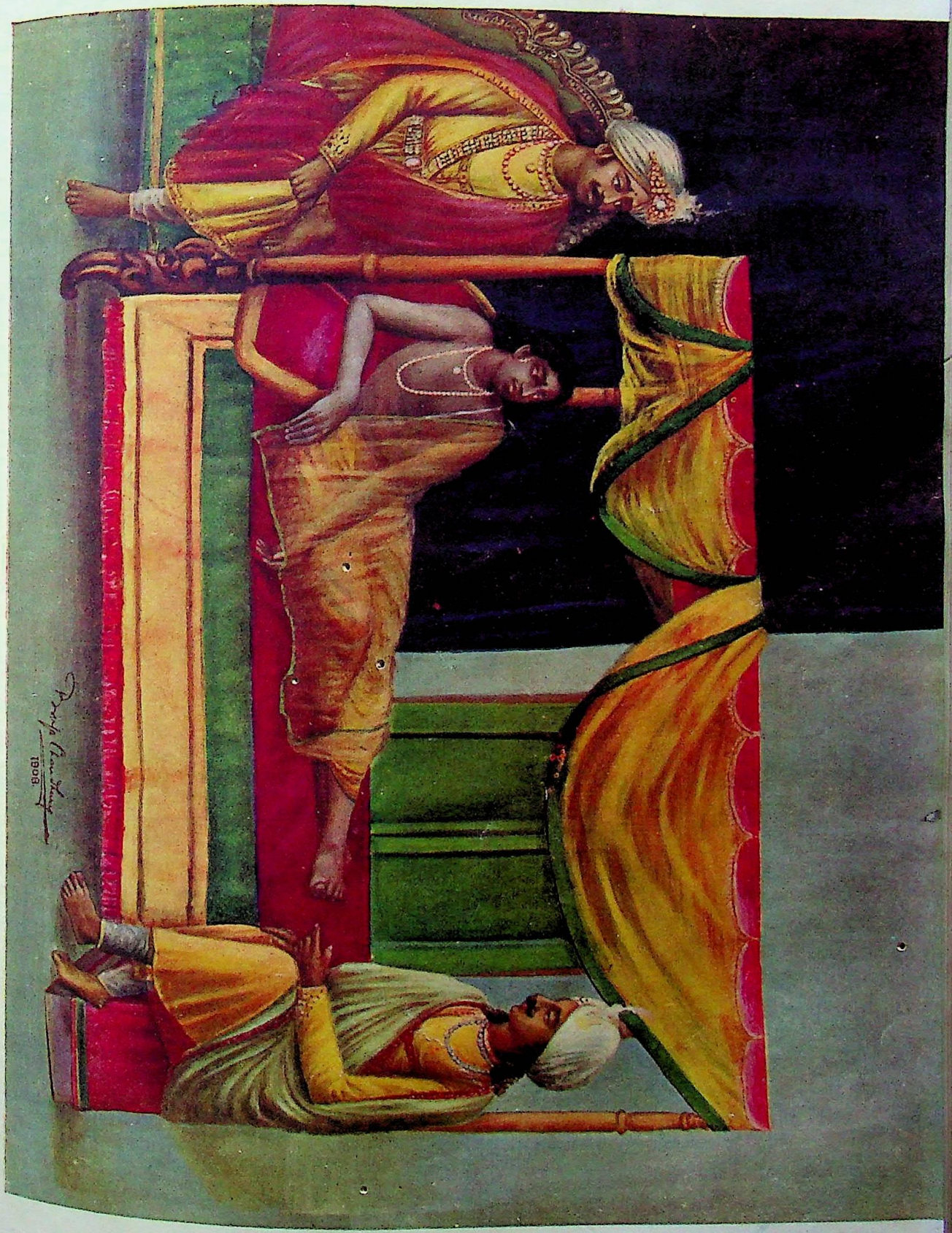

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[११

उस समय दोनों के हृदय में भाव बहु उठने लगे
पर कह सके कुछ भी न वे जब तक न पुरुषोत्तम जगे।
दो ओर से आते हुए युग जल-प्रवाह बहे बहे
मानों मनोरम शैल से हों बीचही में रुक रहे॥

[१२]

कुछ देर में जब भक्तवत्सल देवकीनन्दन जगे
तब देख अर्जुन को प्रथम बोले वचन प्रियता-पगे।
"है कुशल तो सब भाँति भारत! कहो आये हो कहाँ?
हो कार्य्य मेरे योग्य जो प्रस्तुत सदा मैं हूँ यहाँ"॥

[१३]

कहते हुए यों सेज पर निज पूर्व तनु के भाग से
पर्य्यङ्क-तकिये के सहारे बैठ कर अनुराग से।
सब जान कर भी पार्थ को निज वचन कहने के लिये
दृग-कमल उनकी ओर हरि ने मुदित हो प्रेरित किये॥

[१४]

तब देख उनकी ओर हँस कर कुछ विचित्र विनोद से
निज सिर झुकाते हुए उनको नम्र होकर मोद से।
करते हुए कुरुनाथ का मुख-तेज निष्प्रभ सा तथा
यों कह सुनाई पार्थ ने संक्षेप में अपनी कथा—॥

[१५]

"होते सुलभ सुख-भोग जिससे भागते भव-रोग हैं
सो कृपा जिन पर आपकी सकुशल सदा हम लोग हैं।
सम्प्रति समर-साहाय्य-हित, कर विनय, सुख पाकर महा
मैं हुआ देने 'रण-निमन्त्रण' प्राप्त सेवा में यहाँ"॥

[१६]

कर्त्तव्य ही कुरुनाथ अपना सोचता जब तक रहा
कर लिया तब तक पार्थ ने यों कार्य्य निज ऊपर कहा।
यह शीघ्र घटना देख कर अति चकित सा वह रह गया
सब गर्व उसका उस समय नैराश्य-नद में बह गया॥

[१७]

धिक्कार तब देता हुआ वह प्रथम आने के लिये
मन के विकारों को किसी विध रोक कर अपने हिये।
श्रीकृष्ण से मिल कर तथा पाकर उचित सत्कार को
कहने लगा इस भाँति उनसे त्याग सोच विचार को॥

[१८]

"आया प्रथम गोविन्द! हूँ मैं आपके शुभधाम में
अतएव मुझको दीजिए साहाय्य इस संग्राम में।
मैं और अर्जुन आपको दोनों सदैव समान हैं
पै प्रथम आये को अधिकतर मानते मतिमान हैं"॥

[१९]

श्रीकृष्ण बोले—"कहे तुम ने उचित वचन विवेक से
तुम और पाण्डव हैं हमें दोनों सदा ही एक से।
तब प्रथम आने के वचन भी सब प्रकार यथार्थ हैं
पर हुए दृग्गोचर प्रथम मुझको यहाँ पर पार्थ हैं॥

[२०]

"जो हो, करूँगा युद्ध में साहाय्य दोनों ओर मैं
पालन करूँगा यह किसी विध आत्मकर्म्म कठोर मैं।
दश कोटि निज सेना करूँगा एक ओर सशस्त्र मैं
केवल अकेला ही रहूँगा एक ओर निरस्त्र मैं॥

[२१]

"दो भाग निज साहाय्य के इस भाँति हैं मैं ने किये
स्वीकार तुम दोनों करो, हो जो जिसे रुचिकर हिये।
रण-खेत में निज ओर से सेना लड़ेगी सब कहीं
पर युद्ध की है बात क्या, मैं शस्त्र भी लूँगा नहीं"॥

[२२]

सुन कर वचन यों पार्थ ने स्वीकार श्रीहरि को किया
कुरुनाथ ने नारायणी दश कोटि सेना को लिया।
तब पार्थ से हँस कर वचन कहने लगे भगवान यों—
"स्वीकृत मुझे तुमने किया है त्याग सैन्य महान क्यों?"

[२३]

गम्भीर होकर पार्थ ने तब यह उचित उत्तर दिया—
"था चाहिए करना मुझे जो, है वही मैंने किया।
है सैन्य क्या, मुझको जगत भी तुम बिना स्वीकृत नहीं
श्रीकृष्ण रहते हैं जहाँ सब सिद्धियाँ रहती वहीं"॥

मैथिलीशरण गुप्त।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतवर्ष का वाणिज्य।

किसी समय भारतवर्ष धन-धान्य से ऐसा पूर्ण था कि सारे संसार की आँख इस पर गड़ी रहती थी। एशिया वालों की तो बात ही क्या यूरोपियन कवियों तक ने यहाँ के अनन्त धन का वर्णन किया है। सुप्रसिद्ध अंगरेज़ी कवि मिल्टन ने अपने विख्यात काव्य "पेराडाइज़ लौस्ट" (Paradise Lost) के दूसरे सर्ग की दूसरी पंक्ति में यहाँ के धन के यश का गान किया है। अरब वालों की संसार-प्रचलित पुस्तक अलफ़-लैला में तो कितने ही स्थानों में भारतवर्ष के अनन्त धन की चर्चा है। प्राचीन काल में अरब के व्यापारी हिन्दुस्तान का बना हुआ बहुमूल्य और सुन्दर माल लेकर देशदेशान्तरों म जाते और वहाँ के धनियों के ऐशो आराम के सामान को पूर्ण करते थे। यूनान, चीन और अन्यान्य देशों के जितने सुप्रसिद्ध यात्री हिन्दुस्तान में आये सब यहाँ के ऐश्वर्य्य को देखकर मोहित हो गये। अपनी अपनी पुस्तकों में उन्होंने मुक्त कण्ठ से इस बात का वर्णन किया है। यह ऐतिहासिक तत्त्व है कि भारत पर मुसलमानों ने जो आक्रमण किये थे उनका मुख्य कारण यहाँ की लक्ष्मी ही थी। सुलतान ग़ज़नवी, मुहम्मद ग़ोरी, चंगेज़ ख़ाँ जैसे लुटेरों के अनन्त धन ले जाने पर भी मुग़लों के समय तक भारत में इतना ऐश्वर्य्य था कि सारे संसार के लोग मुग़ल-दरबार की शोभा देखने के लिए आते थे। यहाँ तक कि पोर्तुगालवालों ने इस बात पर कमर ही कस ली कि जिस देश में इतनी अतुल सम्पत्ति है उस देश तक पहुँचने के लिए एक सुगम सामुद्रिक मार्ग जैसे बने तैसे निकालना चाहिए। पाठकों को मालूम ही होगा कि इतिहास-प्रसिद्ध कोलम्बस भारत ही की खोज में निकला था परन्तु भाग्य के फेर से अमेरिका जा पहुँचा।

जो हो, ये सब बातें पुरानी हो गईं। वर्तमान काल में जो लड़के जन्म लेते हैं यदि आप उनसे भारत के धन का वर्णन करें तो आश्चर्य्य नहीं कि वे आपकी बातों को गप्प ही समझें। क्योंकि अब यह देश ऐसी दीन दशा को प्राप्त हो गया है कि कृषि-प्रधान होने पर भी आजकल चावल एक रुपये के पाँच सेर बिकते हैं। भारत से बढ़कर धनहीन देश भूमण्डल में शायद ही कहीं होगा। यहाँ के आधे से अधिक मनुष्य ऐसे हैं जिनको दोनों समय भरपेट अन्न भी नहीं मिलता। पिछले तीस वर्षों में केवल दुर्भिक्ष से कोई एक करोड़ मनुष्य मर गये। दशा बड़ा शोचनीय है। भारतवर्ष के भक्तों और सरकार का यह प्रधान कर्त्तव्य है कि वे इस देश की बिगड़ी हुई दशा को सुधारने में ज़रा भी आलस्य और विलम्ब न करें। जिस रोग से भारत व्यथित है वह यदि थोड़े दिनों में असाध्य हो जायगा तो पछताना पड़ेगा और भूमण्डल की वह प्राचीन सभ्यता जिसने पृथ्वी को एक प्रकार से प्रकाशित किया है और फिर भी दावा रखती है कि आधुनिक सभ्यता के मैलों को दूर करे, सदा के लिए लुप्त हो जायगी।

पाठक, इस छोटे से प्रबन्ध में मैं इस बात को दिखलाने का यत्न करूँगा कि भारतवर्ष का वाणिज्य जिस प्रकार इस समय चल रहा है उससे देश की आर्थिक दशा बहुत ही बुरी हो रही है।

योरप के तत्त्ववेत्ताओं का कथन है कि आजकल वाणिज्य-युग (Commercial Age) है। वर्त्तमान काल में उसी देश की उन्नति हो सकती है जिसका वाणिज्य वृद्धि पर हो। सम्पत्ति-शास्त्र का सिद्धान्त है कि किसी देश की वस्तुओं की आमदनी और रफ़्तनी के हिसाब पर विचार करने पर उस देश की आर्थिक दशा का अच्छी तरह ज्ञान हो सकता है। सौभाग्य की बात है कि सरकार हर साल एक ऐसी पुस्तक प्रकाशित करती है जिसमें आमदनी, रफ़्तनी आदि व्यापार-सम्बन्धी सब बातों का लेखा रहता है। एक ऐसी ही पुस्तक के सहारे, जिसको सरकार ने सन् ०७ में प्रकाशित किया था, इस देश के व्यापार की आलोचना करूँगा। सन् १९०६-७ के भारत के वाणिज्य का ब्यौरा इस प्रकार है :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नं० १

सरकारी असबाब और ख़ज़ाने को छोड़कर।

			रुपये
आमदनी	जिन्स		१०८,३०,७५,८१८
	ख़ज़ाना	सोना	१८,४७,०७,८१७
		चाँदी	८,७३,०२,०४१
		कुल	१,३५,५०,८५,६७६

			रुपये
रफ़्तनी	जिन्स	बाहरी	३,४८,४०,३९०
		भारतीय	१७३,०८,२३,७३८
		कुल	१७६,५६,६४,१२८
	ख़ज़ाना	सोना	३,६७,७३,४२४
		चांदी	२,०३,५६,६५२
		कुल	१८२,२७,९४,२०४

नं० २

सरकारी असबाब और ख़ज़ाना।

			रुपये
आमदनी	असबाब		८,९३,४६,१५०
	ख़ज़ाना	सोना	६,२६,००२
		चांदी	१७,३१,६२,२५४
		कुल	२६,३१,३४,४०६

			रुपये
रफ़्तनी	असबाब	बाहरी	३,०४,२०३
		भारतीय	७,७४,९०२
		कुल	१०,७९,१०५
	ख़ज़ाना	सोना	००००
		चांदी	५२,४५०
		कुल	११,३१,५५५

नोट—हिन्दुस्तान से दो प्रकार की चीज़ें बाहर जाती हैं और दो ही प्रकार की आती हैं। पहली वे जो सर्वसाधारण के काम को होती हैं, जैसी नं० १ में। दूसरी वे जो सरकारी ख़र्च के लिए आती हैं, जैसी नं० २ में। जो चीज़ें यहाँ से बाहर रवाना होती हैं उनमें एक और भेद है। उनका अधिकांश भारत ही में तैयार किया जाता है; शेष विदेश से बनकर आता है। ये चीज़ें यहाँ के बन्दरगाहों में जमा हो कर फिर बाहर भेज दी जाती हैं।

ऊपर लिखे हुए नक़शे से ज्ञात होगा कि नं० एक में १ अरब ३५ करोड़ ५० लाख ८५ हज़ार रुपये की चीज़ें यहाँ दूसरे देशों से आईं और १ अरब ८५ करोड़ २७ लाख ९४ हज़ार रुपये की चीज़ें यहाँ से बाहर गईं। नं० २, अर्थात् सरकारी काम की चीज़ें, २६ करोड़ ३१ लाख ३४ हज़ार रुपये की आईं और ११ लाख ३१ हज़ार की गईं।

आमदनी को रफ़्तनी से घटाने पर देखा जायगा कि नं० १ में ५१ करोड़ ७७ लाख ९ हज़ार रुपये की चीज़ें यहाँ से अधिक गईं। अर्थात् यदि भारत से १०० रुपये की चीज़ें गईं तो बाहर से केवल ७४ रुपये की आईं। सैकड़ा पीछे हम लोगों को २६ रुपये का घाटा उठाना पड़ता है। अर्थात् हम लोग ७४ की चीज़ें १०० रुपये में लेते हैं।

सम्पत्ति-शास्त्र का यह मोटा सिद्धान्त है कि एक जाति दूसरी जाति की वस्तुओं को अपनी वस्तुओं से मोल लेती है। अर्थात् आमदनी को रफ़्तनी से बदलती है। आमदनी और रफ़्तनी का मूल्य समान होना चाहिए। परन्तु यहाँ आमदनी न्यून और रफ़्तनी अधिक है। इसका मतलब यह है कि भारत की चीज़ें सस्ती बिक जाती हैं और यहाँ के लोगों को बाहर की चीज़ें महँगी पड़ती हैं। आमदनी और रफ़्तनी में दो प्रकार की चीज़ें हैं। एक साधारण काम की चीज़ें। दूसरी सोना चाँदी। १,३६,६०,८५,००० की आमदनी में से साधारण जिन्स केवल १,०८,३०,७५,००० की आती हैं। परन्तु जिन्सों की रफ़्तनी १,७६,५६,६४,०००की होता है। ऊपर कहा जा चुका है कि रफ़्तनी आमदनी से ५,१७,७९,००० रुपये की अधिक है। परन्तु जिन्सों की रफ़्तनी आमदनी से ६८,२५,८९,००० अधिक है। हाँ, यह कहा जा सकता है कि सत्ताइस करोड़, बीस लाख, नौ हज़ार रुपए का ख़ज़ाना अर्थात् सोना चाँदी भी आता है। परन्तु बिचारने की बात है कि जिन्सों के जाने से हम लोगों की जितनी हानि होती है सोना चाँदी के आने से उतना लाभ नहीं होता। सवा अरसठ करोड़ की जिन जिन्सों से हम लोगों को अगणित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाभ होता वही चली जाती हैं। उनके बदले में सवा सत्ताइस करोड़ का सोना-चाँदी, जिससे सर्व-साधारण को कुछ भी लाभ नहीं है, आता है।

सोना-चाँदी की आमदनी २७ करोड़ २० लाख ९ हज़ार रुपये की है। रफ़्तनी केवल पाँच करोड़ ७१ लाख ३० हज़ार की। घटाने से मालूम होता है कि भारतवासी साढ़े २१ करोड़ का सोना-चाँदी अपने देश की सवा अरसठ करोड़ की उन वस्तुओं को अर्पण कर मोल लेते हैं जिनसे उनका भरण-पोषण हो सकता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि सोना-चाँदी व्यर्थ कामों में ख़र्च किया जाता है। यदि यह विफल धन कल-कारख़ानों के स्थापित करने अथवा किसी शिल्प के जीर्णोद्धार करने में लोग लगावें तो भारत का कितना उपकार हो सकता है।

अब नक़शा नं० २ को, अर्थात् सरकारी ख़ज़ाने और असबाब की आमदनी और रफ़्तनी के हिसाब को, देखिए।

८ करोड़ ९३ लाख ४६ हज़ार रुपये का असबाब बाहर से ख़रीदा जाता है। और क़रीब साढ़े सत्तरह करोड़ का सोना-चाँदी सिक्कों के लिए आता है। इसको आप बेकार नहीं कह सकते; क्योंकि सिक्कों के बिना वाणिज्य नहीं चल सकता और सोना-चाँदी हिन्दुस्तान में अधिकता से नहीं मिलता। परन्तु एक हिसाब से इनकी आमदनी भी व्यर्थ है। नक़शा नं० १ के अनुसार सवा सत्ताइस करोड़ का सोना-चाँदी इस देश में आता ही है। हिन्दुस्तान ऐसे निर्धनी देश को इतना सोना-चाँदी काम में लाने की आवश्यकता नहीं। सब मिलाकर सरकारी काम के लिए कोई सवा छब्बीस करोड़ रुपये की चीज़ें बाहर से आती हैं और कोई सवा ग्यारह लाख की यहाँ से इंडिया-आफ़िस के व्यय के लिए विलायत जाती हैं। सरकारी काम के लिए जो नौ करोड़ की चीज़ें बाहर से आती हैं यदि वे यहीं उत्पन्न होतीं और यहीं से ली जातीं तो भारतवर्ष की इतनी बड़ी रक़म भारत-वासियों हा के हाथ में रहती।

नं० ३

१९०६-७ में सर्वसाधारण के काम की जो चीज़ें विलायत अथवा अन्य देशों से हिन्दुस्तान में आईं उनका तफ़सीलवार हिसाब नीचे दिया जाता है :—

	नाम	मूल्य, रुपये
१	पहनने के कपड़े ...	२,११,२३,४०७
२	रासायनिक पदार्थ (अर्क़, ओषधि इत्यादि) ...	२ १६,१९,७६०
३	कोयला	४८,५१,९४७
४	सूत और सूती चीज़ें ...	४०,९१,७४,८८६
५	रँगने और चमड़ा तैयार करने की सामग्री ...	९४,६६,६००
६	काँच और काँच की बनी चीज़ें	१,२१,१४,१०८
७	अनाज और दाल ...	२८,२४,५३७
८	कल, यन्त्र, इत्यादि ...	१,१९,८६,८५९
९	ज़वाहिरात, ज़ेवर और सोने-चाँदी के बर्तन ...	१,११,८५,३३२
१०	शराब	१,८५,६७,६६१
११	मशीन् तथा पुतली घर का सामान	५,७९,००,४४९
१२	दियासलाई	६३,१२,७३१
१३	धातु और उसकी बनी हुई चीज़ें	१२,६९,३४,५६५
१४	मिट्टी का तेल	२,४२,६९,६७९
१५	रंग	५६,७४,६५६
१६	काग़ज़	८०,११,१०५
१७	खाद्य पदार्थ	२,४२,३३,४११
१८	रेल का असबाब ...	४,१५,८३,९०९
१९	नमक	६६,७७,३९०
२०	कच्चा रेशम	५६,८०,२७३
२१	रेशमी कपड़े	१,८२,५०,४७५
२२	मसाला	१,४३,९२,९०३
२३	लिखने का सामान (काग़ज़ के अलावा)	४०,४०,३४९
२४	चीनी	८,७३,८१,११४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२५ ऊनी कपड़े	... ...	२,०५,२१,६६६
२६ अन्य चीज़ें	... ...	१०,४२,८८,०७४
कुल जोड़		...१,०८,३०,७५,८१८

१९०६-१९०७ में जो चीज़ें हिन्दुस्तान से विलायत अथवा अन्य देशों को गईं उनका भी ब्यौरा नीचे लिखा जाता है :—

नाम	मूल्य, रुपये
१ पहनने के कपड़े	१९,५७,५२०
२ कोयला	७६,१४,७४६
३ क़हवा	९९,६४,७७८
४ नारियल का छिलका कच्चा और तैयार किया हुआ ...	५७,०६,९०२
५ रुई	२१,९७,८४,६०९
६ रुई की बनी चीज़ें ...	१२,१६,८२,४०७
७ नील	७०,०४,७७३
८ चमड़ा बनाने और रँगने का सामान	६८,८९,९७५
९ अनाज और दाल ...	२७,६५,५६,८१३
१० गाँजा	६८,७३,६३५
११ कच्चा चमड़ा	१०,८९,३९,९६७
१२ तैयार किया हुआ चमड़ा ...	४,४५,१२,५४१
१३ कच्चा पटुवा	२६,८३,८६,८१०
१४ जूट की बनी हुई चीज़ें ...	१५,७१,६२,३०३
१५ लाह	३,४९,९७,७४०
१६ खाद	१,०१,५४,८९२
१७ खली	३५,८९,७४०
१८ तेल	६९,८५,९६४
१९ अफ़ीम	९,३०,७९,२२४
२० खाद्य पदार्थ	६५,७१,११५
२१ भूसी	४९,३५,५५१
२२ शोरा	४१,४२,५२६
२३ बीज	१३,०२,१७,२९४
२४ कच्चा रेशम	६८,६५,०१८
२५ रेशमी चीज़ें	६,८६,०७२
२६ मसाला	६०,२४,३७८
२७ चाय	९,८५,७४,६४२
२८ तम्बाकू	३०,९५,९७८
२९ लकड़ी	८३,१७,४८४
३० ऊन	२,२२,६५,३४९
३१ ऊनी चीज़ें	२२,९२,८३८
३२ अन्य चीज़ें	४,३०,५१,१५४
कुल जोड़ ...	१,७३,०८,१३,७३८

सम्पत्ति-शास्त्र के अनुसार संसार में तीन प्रकार के देश होते हैं। प्रथम वे देश जिनमें कृषि और शिल्प दोनों समान भाव से उन्नति पर हों। अर्थात् जहाँ कृषि-विद्या के सहारे खाने के लिए पूर्णरूप से अन्न और कच्ची जिन्सें पैदा होती हों और शिल्प के सहारे इन कच्ची जिन्सों से पक्की जिन्सें तैयार की जाती हों। जैसे रुई से कपड़ा; लोहे से चाकू, कुदाली, फावड़ा; चमड़े से जूता, बैग, ज़ीन इत्यादि। ऐसे देशों को लोग उत्तम देश कहते हैं। अमेरिका, जर्मनी, जापान की गिनती इन्हीं देशों में है। दूसरे वे देश जिनमें कृषि की यथेष्ट उन्नति न हो; परन्तु शिल्प की ख़ूब उन्नति हो। जैसे इँगलिस्तान आदि। ये मध्यम श्रेणी में हैं। ऐसे देश जिनमें केवल कच्ची जिन्सें ही तैयार होती हों और शिल्प की दशा बहुत गिरी हुई हो तीसरे दरजे के हैं। जैसे भारतवर्ष, और सन् १७६५ ई० के पूर्व का अमेरिका। ऐसे देश निकृष्ट कहलाते हैं।

जिस देश को कच्चे पदार्थ उपजाकर दूसरे देशों को भेजने पड़ते हैं उसकी हानि की सीमा नहीं है। ऐसा देश सदा दरिद्रता में रहता है। जो देश कच्ची चीज़ों को दूसरे देशों में भेजता है उसको अपनी चीज़ें बहुत ही सस्ती बेचनी पड़ती हैं और दूसरे देश की चीज़ों को महँगे दाम पर लेना पड़ता है। क्योंकि कच्ची चीज़ें बहुत दिन तक नहीं रह सकतीं और बनी हुई चीज़ें बहुत दिन तक रह सकती हैं। एक देश से दूसरे देश को चीज़ें प्रायः जहाज़ों के द्वारा जाती हैं। इसलिए कच्ची चीज़ों के ले जाने में लागत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़ियादह पड़ती है। क्योंकि वे बहुत जगह रोकती हैं और बनी हुई चीज़ें दबीज़ होने के कारण सस्ते किराये पर भेजी जा सकती हैं। यदि कच्ची चीज़ों को अपने देश में रखकर उनसे दबीज़ और पक्की जिन्सें नहीं बनाई जातीं तो देश का बड़ा नुक़सान होता है। ऐसे देश की शिल्पकला और उद्योगशीलता धीरे धीरे नष्ट हो जाती है।

किसी चीज़ के बनाने में चार वस्तुओं की आवश्यकता होती है। एक ज़मीन, जिस पर कल-कारख़ाने खड़े किये जाते हैं। उससे आपके ज़मीन्दारों को मालगुज़ारी ज़ियादा मिलेगी। दूसरे मज़दूर, जिनको मज़दूरी देनी होगी। तीसरे पूँजी, जिसके लिए आपके महाजनों को पूरा सूद मिलेगा। चौथे ऐसे मनुष्य जो कल-कारख़ाने खड़ा करके पक्की जिन्सें तैयार करें। उनको उनके परिश्रम के बदले फ़ायदा होगा। यदि आप कच्चे पदार्थों को काम में न लावेंगे तो आपके जमींदारों की मालगुज़ारी में कमी होगी; कितने ही मज़दूर भूखों मरेंगे; आपके महाजनों की सूद की आमदनी कम हो जायगी और आपके व्यवसायी लोग मारे मारे फिरेंगे। सबसे बड़ी हानि यह होगी कि आप ही के भेजे हुए कच्चे पदार्थ विदेश से थोड़ी लागत में बनकर आपही के हाथ में छः गुने दामों पर बिकेंगे। मान लीजिए कि आपने एक रुपये में तीन सेर रुई विदेशियों के हाथ बेंचा। वे उसकी ६ धोतियाँ बना कर यहाँ लाये। उनके दाम कम से कम ६) रुपये हुए। सोचने की बात है कि यदि उसी रुई को यहाँ रखकर आप कपड़े बनाते तो आपकी आमदनी छःगुनी नहीं तो पाँच गुनी तो अवश्य ही हो जाती। अन्य चीज़ों के विषय में भी ऐसा ही समझिए।

ऊपर के हिसाब से मालूम होगा कि हिन्दुस्तान से २१ करोड़ ९७ लाख ८४ हज़ार की रुई बाहर जाती है। यदि इस रुई को अपने ही देश में रखकर कपड़े बनाते तो कम से कम ९० करोड़ रुपये का माल तैयार होता। इसलिए जो कपड़ा आप ४० करोड़ ९१ लाख ७४ हज़ार का मँगाते हैं वह आप को न मँगाना पड़ता। इस तरह अपने ही देश की बनी हुई वस्तु पहन कर और ५० करोड़ का दबीज़ माल अन्य देशों को भेजकर आप अपने देश को थोड़े ही दिनों में मालामाल कर देते।

२७ करोड़ ६५ लाख ५६ हज़ार का ग़ल्ला बाहर जाता है। इससे हिन्दुस्तान जैसे ग़रीब देश की आमदनी साढ़े चौदह आने फ़ी आदमी घट जाती है। यहाँ मैं पाठकों के जानने के लिए एक हिसाब देता हूँ जिससे मालूम होगा कि ब्रिटिश-साम्राज्य के अन्य देशों की अपेक्षा हिन्दुस्तान के निवासियों की आमदनी कितनी कम है। हिन्दुस्तान में प्रत्येक मनुष्य की सालाना आमदनी ३० रु० है। इँगलैंड के प्रत्येक मनुष्य की सालाना आमदनी ६३० रुपये। कनाडा और आस्ट्रेलिया के प्रत्येक मनुष्य की आमदनी ७२० रुपये। देखिए, भारत कितना दरिद्र है। फिर भी उसे अपने पेट का ग़ल्ला विदेश भेजना पड़ता है। अबाध-वाणिज्य की बलिहारी!

६८ लाख ६५ हज़ार का कच्चा रेशम बाहर जाता है, और १ करोड़ ८२ लाख ५० हज़ार का रेशमी कपड़ा देश में आता है। यदि यहाँ की रेशम से रेशमी चीज़ें यहीं बनतीं तो १२५ लाख का फ़ायदा होता।

इसी तरह २ करोड़ २२ लाख ६५ हज़ार का ऊन यहाँ से जाता है। यदि इस ऊन से कम से कम ९ करोड़ का ऊनी कपड़ा यहाँ बनता तो दो करोड़ का जो ऊनी वस्त्र आता है वह न आता। इसके सिवा ७ करोड़ का ऊनी कपड़ा ठंढे देशों को भेज कर आप बहुत नफ़ा उठाते।

१० करोड़ ८९ लाख का कच्चा चमड़ा विदेश जाता है। इससे कम से कम ३० करोड़ का माल आप बना सकते हैं। २६ करोड़ ८३ लाख ८६ हज़ार का कच्चा पटुआ जो विदेश भेजा जाता है उससे कम से कम ६० करोड़ का माल तैयार हो सकता है। साढ़े तीन करोड़ की लाख बाहर जाती है, उससे तैयार की हुई चीज़ें कम से कम ७ करोड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की होतीं। खाद और खली मिलाकर १ करोड़ ३७ लाख का माल बाहर चला जाता है। इनके देश में रहने से देश की पैदावार बहुत बढ़ जाती। १३ करोड़ २ लाख का बीज अन्य देशों को जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि यहाँ के किसानों को बीज मुश्किल से मिलता है और अनाज महँगा होता जाता है। पौने ९ करोड़ की चीनी बाहर से आती है, जिसके आने की कुछ भी आवश्यकता नहीं। एक करोड़ ११ लाख के जवाहिरात और ज़ेवरात भारतवर्ष में आते हैं। इनकी ज़रूरत इस गिरी अवस्था में बिलकुल नहीं है। इसी तरह २ करोड़ ११ लाख के कपड़े-लत्ते और २ करोड़ १६ लाख की रासायनिक चीज़ें आती हैं। अपने ही देश में इन चीज़ों को तैयार करने की ज़रूरत है।

पाठक, अब आपको अच्छी तरह मालूम हो गया होगा कि भारत की वर्त्तमान वाणिज्य-प्रथा कितनी हानिकारक है। भारत से जो एक अरब तिहत्तर करोड़ आठ लाख की चीज़ें बाहर जाती हैं उनमें से २८ करोड़ साढ़े ३८ लाख की चीज़ों को छोड़ कर प्रायः सभी कच्चा बाना है। पर विदेश से हम कोई भी कच्चा पदार्थ नहीं लाते। इससे यह प्रमाणित है कि भारतीय शिल्प यहाँ से लुप्त हो गया है; अब यह देश केवल कृषक बना गया है। यदि भारत का सम्बन्ध अन्य देशों से न होता तो केवल कच्चे ही पदार्थ से शायद हम सुखपूर्वक अपना निर्वाह कर सकते। पर यूरोपियन-सभ्यता के प्रभाव के कारण हमारी आवश्यकतायें प्रतिदिन बढ़ती जाती हैं। इन आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए हमें विदेश से अपने शौक़ के सामान मँगाने पड़ते हैं। इस समय ऐसा कोई भारतवासी नहीं जिसको कम से कम एक जोड़ा धोती, दो गज़ मलमल या नयनसुख, एक छाता, एक बैग, दो आने की लोहे की चीज़ें, दो आने के रंग, दो आने का मिट्टी का तेल, दो आने की दियासलाई, प्रतिवर्ष न लेनी पड़ती हो। औसत लगाकर कम से कम पाँच रुपये प्रतिवष रेल में लग जाते हैं। परन्तु न ये सब चीज़ें हीं यहां तैयार होती हैं और न रेल ही हिन्दुस्तानियों के हाथ में है। इस तरह तीस करोड़ भारतवासी कोई तीन अरब रुपये हर साल विदेशियों को सौंप देते हैं और ख़ुद आधे पेट भोजन कर येन केन प्रकारेण अपनी प्राण-रक्षा करते हैं। यदि हिन्दुस्तान को इस पृथ्वी पर रहना है तो उसे समय के अनुसार काम करना चाहिए और अपने काम की चीज़ों को, जहाँ तक हो सके, यहीं तैयार करना चाहिए।

पूर्वोक्त हिसाब से विदित होगा कि एक अरब पौने पैंतालीस करोड़ की कच्ची जिन्स हिन्दुस्तान से बाहर जाती है। इनसे यदि पक्की जिन्स यहीं बनाई जाती तो यहाँ के लोगों की आमदनी कम से कम साढ़े दस अरब और बढ़ जाती। आमदनी और रफ़्तनी के अंकों को जोड़ने से दो अरब इक्कीस करोड़ उन्तालीस लाख होते हैं। अर्थात् सामुद्रिक वाणिज्य में भारत का प्रत्येक व्यक्ति औसत से पौने दस रुपया लगाता है। इससे हमारी बड़ी ही हीनावस्था प्रकट होती है। यदि कच्चे पदार्थों की उपज उतनी ही रहे जितनी वर्तमान काल में है, परन्तु उनसे पक्की चीज़ें बनाई जायँ, तो यहाँ का सामुद्रिक वाणिज्य कम से कम दूना हो जाय। हम लोगों को इसके लिए यत्न करना चाहिए। बिना यत्न के कुछ नहीं हो सकता।

पाठक, पूर्वोक्त अंकों से आपको विदित हो गया होगा कि भारत प्रति दरिद्र होता जाता है। प्रत्येक देश और जाति का कर्त्तव्य है कि धनोपार्जन करने के लिए कम से कम तीन उद्यमों का अवलम्बन करे। (१) खेती, (२) पक्के जिन्स तैयार करना, (३) वाणिज्य (Commerce)। इन तीन उपायों में से यहाँ पर केवल कृषि ही एक मात्र अवलम्ब है। सो भी अत्यन्त हीनावस्था में है।

वैद्यनाथनारायणसिंह शर्म्मा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सच्ची वीरता।

सच्चे वीर पुरुष धीर, गंभीर और आज़ाद होते हैं। उनके मन की गंभीरता और शान्ति समुद्र की तरह विशाल और गहरी, या आकाश की तरह स्थिर और अचल होती है। वे कभी चंचल नहीं होते। रामायण में वाल्मीकिजी ने कुम्भकरण की गाढ़ी नींद में वीरता का एक चिह्न दिखलाया है। सच है, सच्चे वीरों की नींद आसानी से नहीं खुलती। वे सत्वगुण के क्षीर-समुद्र में ऐसे डूबे रहते हैं कि उनको दुनिया की ख़बर ही नहीं होती। वे संसार के सच्चे परोपकारी होते हैं। ऐसे लोग दुनिया के तख़्ते को अपनी आँख की पलकों से हलचल में डाल देते हैं। जब ये शेर जाग कर गर्जते हैं, तब सदियों तक इनकी आवाज़ की गूँज सुनाई देती रहती है। और सब आवाज़ें चुप हो जाती हैं। वीर की चाल की आहट कानों में आती रहती है और कभी मुझे और कभी तुझे मदमत्त करती है। कभी किसी की और कभी किसी की प्राण-सारंगी वीर के हाथ से बजने लगती है।

देखो, हरा की कंदरा में एक अनाथ, दुनिया से छिपकर, एक अजीब नींद सोता है। जैसे गली में पड़े हुए पत्थर की ओर कोई ध्यान नहीं देता, वैसे ही आम आदमियों की तरह इस अनाथ को कोई न जानता था। एक उदारहृदया धन-सम्पन्ना स्त्री की वह नौकरी करता है। उसकी सांसारिक प्रतिष्ठा सिर्फ़ एक मामूली ग़ुलाम कीसी है। मगर कोई ऐसा दैवी कारण हुआ जिससे इस अनजान और बेपहचान ग़ुलाम की बारी आई। उसकी निद्रा खुली। संसार पर मानों हज़ारों बिजलियाँ गिरीं। अरब के रेगिस्तान में बारूद की तरह आग लग गई। इस वीर की आंखों की ज्वाला इन्द्रप्रस्थ से लेकर स्पेन तक प्रज्वलित हुई। उस अज्ञात और गुप्त हरा को कंदरा में सोने वाले ने एक आवाज़ दी। कुल पृथ्वी भय से काँपने लगी। हां, जब पैग़म्बर मुहम्मद ने "अल्लाहू अकबर" का गीत गाया तब कुल संसार चुप हो गया। और, कुछ देर बाद, प्रकृति उसकी आवाज़ की गूंज को सब दिशाओं में ले उड़ी। पक्षी "अल्लाहू" गाने लगे और मुहम्मद के पैग़ाम को इधर उधर ले उड़े। पर्वत उसकी वाणी को सुन कर पिघल पड़े और नदियाँ "अल्लाहू अल्लाहू" का अलाप करती हुई पर्वतों से निकल पड़ीं। जो लोग इसके सामने आए वही इसके दास बन गये। चन्द्र और सूर्य्य ने बारी बारी से उठकर सलाम किया। इस वीर का बल देखिए कि सदियों के बाद भी संसार के लोगों का बहुतसा हिस्सा उसके पवित्र नाम पर जीता है और अपने छोटे से जीवन को अति तुच्छ समझ कर अनदेखे, अनजान, केवल सुने सुनाये नाम पर क़ुर्बान कर देने को अपने जीवन का सबसे उत्तम फल समझता है।

सत्वगुण के समुद्र में जिनका अन्तःकरण निमग्न होगया वही महात्मा, साधु और वीर हैं। ये लोग अपने क्षुद्र जीवन को परित्याग कर ऐसे ईश्वरी जीवन पाते हैं कि उनके लिए संसार के कुल अगम्य मार्ग साफ़ हो जाते हैं। आकाश उनके ऊपर बादलों के छाते लगाता है। प्रकृति उनके मनोहर माथे पर राज-तिलक लगाती है। हमारे असली और सच्चे राजा यही साधु पुरुष हैं। हीरे और लाल से जड़े हुए, सोने और चांदी से ज़ड़ित बर्क़ सिंहासन पर बैठने वाले दुनिया के राजा नेता, जो ग़रीब किसानों की कमाई हुई दौलत पर पिंडोपजीवी होते हैं, लोगों ने अपनी मूर्खता से वीर बना रक्खा है। यह ज़री, मख़मल और ज़ेवरों से लदे हुए मांस के पुतले तो हरदम काँपते रहते हैं। इन्द्र की तरह ऐश्वर्य्य और बल वान् होने पर भी दुनिया के ये छोटे "जार्ज" बड़े कायर होते हैं। क्यों न हो, इनकी हुकूमत लोगों के दिलों पर नहीं होती। दुनिया के राजा के बलकी दौड़ लोगों के शरीर तक है। जब कभी किसी अकबर का राज लोगों के दि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर होता है तब इन कायरों की बस्ती में मानों एक सच्चा वीर पैदा हुआ।

एक बाग़ी ग़ुलाम और एक बादशाह की बात-चीत हुई। यह क़ैदी ग़ुलाम दिल से आज़ाद था। बादशाह ने कहा मैं तुमको अभी जान से मार डालूंगा। तुम क्या कर सकते हो? ग़ुलाम बोला "हाँ मैं फाँसी पर तो चढ़ जाऊंगा; पर तुम्हारा तिरस्कार तब भी कर सकता हूं।" बस इस ग़ुलाम ने दुनिया के बादशाहों के बलकी हद दिखलादी। बस इतनाही ज़ोर और इतनीही शेख़ी ये झूठे राजे शरीर को दुःख दे और मार पीट कर अनजान लोगों को डराते हैं। और भोले लोग उनसे डरते रहते हैं। चूँकि सब लोग शरीर को अपने जीवन का केन्द्र समझते हैं, इसलिए जहां किसी ने उनके शरीर पर ज़रा ज़ोर से हाथ लगाया वहीं वे मारे डरके अधमरे हो जाते हैं। शरीर-रक्षा की गरज़ से ये लोग इन राजाओं की ऊपरी मन से पूजा करते हैं। जैसे वे राजे वैसा उनका सत्कार! जिनका बल शरीर को ज़रासी रस्सी से लटकाकर मार देने हीं भर का है, भला, उनका और उन बलवान् और सच्चे राजाओं का क्या मुक़ाबला जिनका सिंहासन लोगों के हृदय-कमल की पंखडियों पर है? सच्चे राजा अपने प्रेम के ज़ोर से लोगों के दिलों को सदा के लिए बाँध देते हैं। दिलों पर हुकूमत करनेवाली फ़ौज, तोप, बंदूक़ आदि के बिना ही वे शाहन्शाह-ज़माना होते हैं। ऐसे वीर पुरुषों का लक्षण अमेरिका के ऋषि अमरसन ने इस तरह लिखा है:—

"The hero is a mind of such balance that no disturbances can shake his will, but pleasantly, and as if it were, merrily, he advances to his own music, alike in frightful alarms and in the tipsy mists of universal dissoluteness."

मंसूर ने अपनी मौज में आकर कहा कि "मैं ख़ुदा हूँ"। दुनिया के बादशाह ने कहा—"यह काफ़िर है"। मगर मंसूर ने अपने कलाम को बंद न किया। पत्थर मार मार कर दुनिया ने उसके शरीर की बुरी दशा की; परन्तु उस मर्द के हर बाल से यही शब्द निकले—'अनल हक़"—"अहं ब्रह्मास्मि"—"मैं ही ब्रह्म हूँ"। मंसूर का सूली पर चढ़ना उसके लिए सिर्फ़ खेल था। बादशाह ने समझा कि मंसूर मारा गया।

शम्सतबरेज़ को भी ऐसा ही काफ़िर समझ कर बादशाह ने हुक्म दिया कि इसकी खाल उतार दो। शम्स ने खाल उतारी और बादशाह को, दर्वाज़े पर आये हुए कुत्ते की तरह भिखारी समझकर, वह खाल खाने के लिए दे दी। देकर वह अपनी यह ग़ज़ल बराबर गाता रहा:—"भीखमाँगनेवाला तेरे दर्वाज़े पर आया है; ऐ शाहेदिल! कुछ इसको दे दे।" खाल उतार कर फेंक दी! वाह रे सत्पुरुष!

भगवान् शङ्कर जब गुजरात की तरफ़ यात्रा कर रहे थे तब एक कापालिक हाथ जोड़े सामने आकर खड़ा हुआ। भगवान् ने कहा:—"माँग, क्या माँगता है?" उसने कहा:—"हे भगवन्! आज कल के राजा लोग बड़े कंगाल हैं। उनसे अब हमें दान नहीं मिलता। आप ब्रह्मज्ञानी और सबसे बड़े दानी हैं। इसलिए मैं आपके पास आया हूँ। आप अपनी कृपा से मुझे अपना सिर दान करें जिसकी भेंट चढ़ाकर मैं अपनी देवी को प्रसन्न करूँगा और अपना यज्ञ पूरा करूँगा।" भगवान् ने मौज में आकर कहा:—"अच्छा, कल यह सिर उतार कर ले जाना और काम सिद्ध कर लेना।"

एक दफ़े दो वीर पुरुष अकबर के दर्बार में आये। वे लोग रोज़गार की तलाश में थे। अकबर ने कहा:—"अपनी अपनी वीरता का सुबूत दो।" बादशाह ने कैसी मूर्खता की। वीरता का भला वे क्या सुबूत देते। परन्तु दोनों ने तलवारें निकाल लीं और एक दूसरे के सामने कर उनकी तेज़ धार पर दौड़ गये और वहीं राजा के सामने क्षण भर में अपने ख़ून में ढेर हो गये!

ऐसे दैवी वीर रुपया, पैसा, माल, धन का दान नहीं दिया करते। जब वे दान देने की इच्छा करते हैं तब अपने आपको हवन कर देते हैं। बुद्ध महाराज ने जब एक राजा को मृग मारते देखा तब अपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर आगे कर दिया ताकि मृग बच जाय बुद्ध का शरीर चाहे चला जाय। ऐसे लोग कभी बड़े मौक़ों का इंतिज़ार नहीं करते; छोटे मौक़ों को ही बड़ा बना देते हैं।

(असमाप्त)

पूर्णसिंह [टोकिओ-विश्वविद्यालय]

इम्पीरियल फ़ारेस्ट केमिस्ट, देहरादून।

एक ज्योतिषी की आत्मकथा।*

मेरा नाम तारकप्रसाद है। कुछ दिन पहले डी० माशियो नामक विद्वान् ने मङ्गल-ग्रह-सम्बन्धी जो आश्चर्य-जनक आविष्कार किये थे और जिनका हाल पढ़ कर सारा संसार चकित हो गया था वे वास्तव में मेरे ही परिश्रम के फल थे। उनका यश मुझे ही मिलना चाहिए था। आज संसार में मेरी गणना प्रसिद्ध खगोलवेत्ताओं में होकर मेरी कीर्ति अमर हो गई होती; परन्तु दुर्भाग्यवश मेरी आशायें मिट्टी में मिल गईं और मुझे मिलनेवाला यश मेरे शत्रु डी० माशियो को मिला।

जिस प्रकार यह घटना हुई वह आप लोगों की समझ में अच्छी तरह आजाय और सच्ची बात सब को मालूम हो जाय, इसलिए संक्षेप से मैं अपना वृत्तान्त लिखता हूँ। मुझे विश्वास है कि मेरे इस लेख से डी० माशियो को मिली हुई कीर्त्ति पीछे लौट कर मुझे न मिलेगी पर अपना सत्य वृत्तान्त संसार को सुनाने से मुझे कुछ सन्तोष अवश्य हो जायगा।

जब मैं एंट्रंस (प्रवेशिका) में था तभी से खगोल-विद्या पर मेरा बड़ा प्रेम था। अवकाश के समय स्कूल के पुस्तकालय से उक्त विद्या-सम्बन्धी विविध ग्रन्थों को मैं घर ले आता था और उनका अवलोकन किया करता था। कालेज में प्रवेश करने के उपरान्त मैंने इस विद्या का अभ्यास बहुत बढ़ाया और धीरे धीरे गैलीलियो, केप्लर और टाइको ब्रोहे आदि प्रसिद्ध विद्वानों के समान कीर्त्ति सम्पादन करने की मुझे भी इच्छा हुई। इन महापुरुषों के समान नाम पैदा करने में जितना परिश्रम और दुःख उठाने पड़े सब को सहने के लिए मैंने कमर कसी।

कलकत्ता-विश्वविद्यालय में खगोल-विद्या-सम्बन्धी जितना ज्ञान प्राप्त हो सकता है वह सब उपार्जन करके अपने पिता की अनुमति से मैं योरप गया और वहाँ के भिन्न भिन्न स्थानों में घूम कर मैंने अपने इच्छित विषय का अभ्यास किया। खगोल के साथ सम्बन्ध होने से विद्युत्, बाष्प, आदि प्राकृतिक विज्ञान और यन्त्रविद्या का भी थोड़ा बहुत अभ्यास मुझे करना पड़ा।

अनुमान तीन वर्ष बीतने पर शीघ्र ही घर लौट आने के लिए मेरे पिता ने मुझे कई पत्र लिखे। परन्तु मेरी तबीयत खगोल-विज्ञान में ऐसा लग गई थी कि घर लौटने की इच्छा न हुई।

अपनी अवस्था के अठारहवें वर्ष में मैं भारतवर्ष से योरप गया था। विदेश में अभ्यास करते करते मुझे दस वर्ष बीत गये। पर मैं एक बार भी लौट कर घर नहीं आया। इसलिए मेरे पिता बहुत क्रुद्ध हुए। उन्होंने मुझे लिखा कि—"अब मैं वृद्ध हुआ हूँ। इसलिए अपनी सम्पत्ति, जो लगभग बीस लाख के है, और चारों ओर फैला हुआ व्यापार तुझे सौंपना चाहता हूँ। इस पत्र के पहुँचते ही तुझे यहाँ लौट आना चाहिए। पर यदि तू मेरी आज्ञा उल्लंघन कर वहीं रहेगा तो अबसे तेरे ख़र्च के लिए एक पैसा भी न भेजा जायगा। मैं तेरी राह छः मास तक देखूँगा। यदि इतने समय में तू यहाँ न आवेगा तो अपनी यह कुल सम्पत्ति मैं किसी और को देने का वसीयतनामा कर दूँगा।"

---

* गुजराती मासिक पत्र 'महाकाल' के एक लेख का अनुवाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वधू की सहेलियाँ।

The Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने इस पत्र का तुरन्त लौटती डाक से उत्तर दिया कि—"मुझे आपकी कौड़ी भी न चाहिए। अपनी सम्पत्ति किसी अन्य को देने के लिए वसीयत-नामा लिखने में छः मास तक राह देखने की कोई आवश्यकता नहीं। द्रव्य के लोभ से मैं कदापि लौटनेवाला नहीं हूँ। इसलिए आप प्रसन्नतापूर्वक अपनी सम्पदा किसी और मनुष्य को दे दीजिए। मैं अपनी विद्या ही को सच्ची सम्पत्ति समझता हूँ।"

युवावस्था के मद में ऐसा उत्तर दे तो दिया, पर उस समय यह ख़याल न रहा कि इसके परिणाम में मुझे कैसे कैसे संकट झेलने पड़ेंगे। मेरा पत्र पहुँचते ही पिता ने मुझे ख़र्च भेजना बंद कर दिया। एक आध महीने तो किसी तरह निर्वाह किया। पर इसके उपरान्त मैं घबराया। निर्वाह का कोई साधन मेरे पास न था। अतएव मैंने मासिक पत्रों में खगोलविद्या-सम्बन्धी लेख भेजना आरम्भ किया। इससे मुझे कुछ आमदनी होने लगी। परन्तु उतने से निर्वाह किसी प्रकार न हो सकता था। अतएव मैंने एक नई युक्ति ढूंढ़ निकाली। मैं कुछ कुछ ज्योतिष जानता था। इसलिए एक 'साईन बोर्ड' तैयार कराया। उसमें लिखा था कि—"यहाँ धवलगिरिप्रसाद नामक हिन्दुस्तान के एक विख्यात जोशी सायङ्काल के सात से नौ बजे तक भविष्य-सम्बन्धी प्रत्येक प्रश्न का यथोचित उत्तर देते हैं"। एक कोठरी किराये पर ली और उसके द्वार पर उसे टँगवा दिया तथा वेष बदल कर नित्य शाम को वहाँ बैठना आरम्भ किया। कनटोप पहन, लंबी श्वेत डाढ़ी बाँध और लंबा चौड़ा तिलक लगा कर इस कोठरी में मैं बड़े ठाठ से बैठने लगा। जो कोई मुझसे प्रश्न करने आता वह मेरा स्वरूप देख चकित होकर ही खड़ा रह जाता।

एक दिन सायङ्काल के समय मैं अपनी कोठरी में बैठा हुआ किसी की कुण्डली पर गणित कर रहा था कि बाहर बैठे हुए मेरे नौकर ने आकर मुझे सूचित किया—"आप से मिलने के लिए कोई आया है।" मैंने बिना मस्तक उठाये ही कहा कि—"जा, पूछ आ कि तुम्हारा क्या नाम है?" नौकर ने पूछ कर कहा—"जॉन स्मिथ"। मैंने गम्भीरता से उत्तर दिया—"अंदर बुला लाओ"।

इतने में तत्काल द्वार खुला और एक मनुष्य आकर खड़ा हुआ। मैं आँख उठा कर रोब के साथ बोला—"जॉन स्मिथ! आइए। आप अपने भविष्य-सम्बन्ध में मेरी सलाह लेने आये हैं; कहिए आपका क्या प्रश्न है?"

मेरी बात सुन कर वह मनुष्य मेरे पास आया। उसके निकट आते ही मुझे जान पड़ा कि आज तक जिस प्रकार के मनुष्यों से मेरा सम्बन्ध हुआ है उनसे यह कुछ भिन्न ही प्रकार का है। पृथ्वी तक लटकता हुआ एक काला चोग़ा वह पहने हुए था। उसका सिर नंगा और लंबे काले बाल दोनों कानों को ढके हुए उसके कन्धों पर पड़े थे। उसका वर्ण गौर और ललाट ऊँचा तथा दिव्य था।

स्मिथ की और मेरी चार आँखें होते ही मैं मुग्ध हो गया। उसके नेत्र अन्धकार में प्रकाश करते हुए दो ताराओं के समान चमकते थे। मन को दृढ़ रखने का प्रयत्न करने पर भी मैं भय से काँपने लगा। क्योंकि मुझे जान पड़ता था कि मेरे मन के गुप्ततम विचारों को भी वह जान गया है। उस समय मुझे स्पष्ट रूप से विदित हो गया कि मेरे सामने खड़े हुए मनुष्य में मेरे अन्तःकरण को, खुली हुई पुस्तक की तरह, पढ़ने का सामर्थ्य है। मेरी समझ में यह भी न आता था कि वह मेरे ऊपर "हिप्नाटिज़्म" का प्रयोग कर रहा है। क्योंकि "हिप्नाटिज़्म" और "मेस्मेरिज़्म" के प्रयोगों में तो मैं भी कुशल था। तब मुझ पर वह न जाने किस विद्या का प्रभाव डाल रहा था!

मैंने साहस-पूर्वक पूछा:—"महाशय! आप मुझसे क्या पूछने आये हैं? आप अपना प्रश्न कहिए, जिसमें मैं गणित करके उत्तर दूँ।"

मेरी बात सुन कर वह धीरे धीरे हँसने लगा। परन्तु उसका मंद हास्य देख कर मेरी गम्भीरता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और रोब सब मिट्टी में मिल गया उसकी हँसी में मेरी मूर्खता को स्पष्ट रीति से सूचित करनेवाला ऐसा गुप्त भाव भरा था कि मेरा मुँह फीका पड़ गया। मेरी ऐसी स्थिति देख कर वह स्पष्ट और गम्भीर स्वर से बोला—"मैं ज्योतिर्विद्या में पारङ्गत पुरुष से ही प्रश्न करूँगा। मुझसे किसी ने कहा है कि धवलगिरिप्रसाद बड़े विद्वान् हैं। सो वे कहाँ हैं? मैं उनसे मिलने आया हूँ।"

मैंने उत्तर दिया:—"मैं ही धवलगिरिप्रसाद हूँ।"

कमरे में सन्नाटा छा गया। मन को बहुत दृढ़ रखने पर भी मुझे मालूम होने लगा कि मेरा मस्तक घूमता है और मेरी बुद्धि मारी गई है। थोड़ी देर मैं इसी दशा में रहा। इसके बाद बड़े प्रयत्न से अपने मस्तक पर के दबाव अथवा जादू को अलग हटा कर मैं फिर सावधान हो गया। यह देख कर वह अद्भुत मनुष्य उच्च स्वर से हँस पड़ा।

इस समय मैं बड़ा भयभीत हुआ। मुझे क्रोध भी आया। मेज़ पर हाथ पटक कर ऊँचे स्वर से मैं बोल उठा:—"महाशय! मेरा घर नाटकशाला नहीं है। धवलगिरिप्रसाद मैं ही हूँ। कहिए आपको मुझसे क्या काम है?"

उसने उत्तर दिया:—"अच्छा! आपही धवलगिरिप्रसाद हैं! जैसा मैं जॉन स्मिथ हूँ वैसे ही तुम भी धवलगिरिप्रसाद हो। पर वास्तव में हम दोनों के नाम बनावटी हैं। जोशी जी! तुम्हारा सच्चा नाम तो तारकप्रसाद है। पर मेरा भी सही नाम क्या तुम बता सकते हो?"

सूखे मुख से मैंने स्पष्ट कह दिया:—"मुझमें यह सामर्थ्य नहीं है।" यह सुन कर वह मेरी ओर इस प्रकार देखने लगा मानों मैं कोई दीन और दयापात्र प्राणी हूँ।

वह बड़े शान्त भाव से बोला:—"मेरा सच्चा नाम तुमको भी ज्ञात हो जाना चाहिए था। तुम्हारे मस्तिष्क में जो ज्ञान भरा है उसे जानने के लिए मैंने अपनी वृत्ति की प्रेरणा की थी। उस समय मैंने अपने मस्तिष्क को इसी अभिप्राय से विचार-शून्य कर दिया था कि मुझे जिन बातों का ज्ञान है उनका ज्ञान कहीं तुम्हें भी न हो जाय"।

मैंने उत्तर दिया:—"आपकी बात को मैं स्वीकार करता हूँ। मैंने भी आपको 'हिप्नोटाइज़' करने (कृत्रिम नींद लाने) का प्रयत्न किया था। परन्तु उसका आप पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। उलटा मुझे ही जान पड़ा कि मेरी बुद्धि चक्कर खा रही है। यदि वही स्थिति एक मिनिट और रहती तो मैं विक्षिप्त हो जाता।"

वह बोला:—"तुम्हारी परीक्षा करने के लिए मैंने जो प्रयोग किया था उसी का यह फल था। यहाँ आकर मुझे पहले यह बात जानने की आवश्यकता हुई कि मेरी अपेक्षा तुममें विद्या और ज्ञान-बल अधिक है या कम। तुममें जो ज्ञान है उसे जानने के लिए मैंने अपनी विद्या से अपने मन को तुम्हारे मस्तिष्क में बलपूर्वक प्रविष्ट किया और साथ ही अपने मस्तिष्क को शून्य कर दिया था। तुम्हारे मन को भी बलपूर्वक आकर्षण करके मैंने अपने मस्तिष्क में खींचा। परन्तु मेरे मस्तिष्क में भरे हुए ज्ञान को जानने में असमर्थ होने से, जैसे कोई देहाती गँवार किसी बड़े महाराजा के सुसज्जित महल को देख कर चकित हो जाता है, वैसे ही तुम्हारे भी होश उड़ गये। यदि बुद्धिमानी से मैं तत्क्षण अपने शरीर में प्रवेश न करता तो तुम्हारा मस्तिष्क ठिकाने न रहता।"

मैंने पूछा:—"यदि आप पीछे लौटने में विलम्ब करते तो क्या परिणाम होता? क्या मैं पागल हो जाता?"

उसने उत्तर दिया:—"भाई! इससे भी बुरा परिणाम होता। तुम्हारी मृत्यु हो जाती।"

मैंने उत्तर दिया—"आपके कहने को मैं ठीक ठीक नहीं समझा।"

वह बोला:—हाँ मैं भी जानता हूँ कि मेरी बात को तुम नहीं समझे। मैं अपना भाव ठीक तौर से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकट नहीं कर सका। अच्छा सुनो, अब की बार स्पष्ट कहता हूं। अपने संकल्प-बल से अपने मस्तिष्क से मन को निकाल कर तुम्हारे मस्तिष्क में डालने का मैंने ज्योंहीं प्रयत्न किया त्योंहीं तुम्हारे अशक्त मन को धक्का मार उसने बाहर निकाल दिया। इसका कारण यह था कि मेरा मन तुम्हारे मन से बहुत अधिक बलवान् है। इस समय तुम्हारे मन के रहने को मेरे मस्तिष्क के सिवा कोई अन्य स्थान ही न था। यदि तुम्हारे मस्तिष्क में भरे हुए क्षुद्र ज्ञान को मैं एकही क्षण में हस्तगत न कर सकता तो तुम्हारा जीवन अब तक शेष न रहता। परन्तु तुम्हारे शरीर में मेरा प्रवेश होने से तुम्हारे मन की मृत्यु के साथ मेरा शरीर भी मर जाता। ऐसा होने से जब तक विशेष उत्तम शरीर न प्राप्त होता तब तक मुझे तुम्हारे इस दुर्गन्धि-युक्त शरीर में रहना पड़ता।"

मैं बीचही में बोल उठा—"परन्तु मेरा जीव—" इतने में तिरस्कारपूर्वक झिड़क कर उसने उत्तर दिया—"बस, वृथा बकबक मत करो। जीव क्या वस्तु है, यह जानते भी हो? जीव और मन एकही वस्तु हैं। जिन महापुरुषों ने मन को अपने आत्मा से पृथक् मानकर आत्मानुभव प्राप्त किया है उनकी बात ही निराली है। पर तुम्हारी तरह साधारण मनुष्य तो मन और उसके धर्मों के साथ ऐसे लिप्त रहते हैं कि उनका जीव मन के साथ साथ खिंचा फिरता है। केवल महापुरुषों का आत्मा ही मन के धर्मों से अलग रहता है। ऐसे पुरुषों के लिए दूसरे मनुष्य के शरीर में प्रवेश करना ज़रा भी दुःसाध्य नहीं। उनको जब एक शरीर से ग्लानि हो जाती है तब वे अपने इच्छानुसार दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। यह मेरा शरीर पैंतीस वर्ष पूर्व उज्जयिनी में पैदा हुआ था। परन्तु जिस मूल शरीर से निकलकर आज इस शरीर में मैं तुम्हारे सामने खड़ा हूँ, उस शरीर का जन्म कलियुग के प्रारंभ में हस्तिनापुर के निकट एक छोटे से गाँव में हुआ था।"

मैं आश्चर्य-युक्त होकर बोला :—"तब तो आपने पाण्डव, दुर्योधन, श्रीकृष्ण भगवान् आदि सब को देखा होगा। पर आप कौन हैं—व्यास हैं या सूत अथवा शौनक?"

उसने उत्तर दिया :—"मैंने पाण्डवों को देखा है या नहीं, और मैं व्यास हूँ या वाल्मीकि—ये बातें तुम तुरन्त ही जान जाते, यदि मेरे मस्तिष्क में भरे हुए ज्ञान-भाण्डार को जानने में तुम समर्थ होते। तुम्हारी तरह सामर्थ्यहीनों से जो कुछ कहा जायगा वह सब गप्पाष्टक ही समझा जायगा।"

मैं निराश होकर मन में सोचने लगा कि हे भगवन्! ऐसा ज्ञान मुझे कैसे प्राप्त हो? मैं कौनसा उपाय करूँ जिसमें इस मनुष्य के मस्तिष्क में भरा हुआ ज्ञान-भांडार तत्काल प्राप्त करने का सामर्थ्य मुझ में आ जाय।

क्षण भर स्थिर दृष्टि से उसने मुझे देखा और कहा :—"यह सामर्थ्य प्राप्त होना तुम्हारे भाग्य में ज़रूर है। परन्तु उसके प्राप्त करने में तुम्हें अपनी आत्मा से भी अधिक प्रिय किसी वस्तु को देना पड़ेगा। पर ठहरो; मैं निश्चय-पूर्वक निर्णय करके देखलूँ।" इतना कहकर वह नीचे झुका और मेज़ पर से एक काग़ज़ का टुकड़ा उठा कर उस पर कुछ अंक लिखने लगा।

मैं सोचने लगा कि मेरी आत्मा से भी प्रिय वस्तु मुझे देनी पड़ेगी! मैं नहीं समझता यह कैसे संभव होगा। मुझे विश्वास है कि यह कुछ भूल गया है। परमेश्वर करे यही बात हो। वह सामर्थ्य यदि मुझे प्राप्त हो जाय तो संसार भर में मेरी कीर्त्ति का डंका बजने लगे।

काग़ज़ पर जो अंक वह लिख रहा था उन्हें कुछ आगे बढ़कर मैंने देखा। उसने मेरी कुण्डली खींची थी। वह जो गणित कर रहा था उससे मैंने अनुमान किया कि ज्योतिर्विद्या का वह बड़ा भारी विद्वान् है।

थोड़ी देर में सिर उठाकर उसने कहा :—"जो मैंने कहा वही ठीक है। तुम्हें ऐसी वस्तु देनीही पड़ेगी। कौन चीज़ देनी होगी, यह बात भविष्यत् में जानी जायगी। परन्तु इतना बड़ा सामर्थ्य प्राप्त करने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकार तुम्हें आगामी तेरह वर्ष तक प्राप्त न होगा। आज से तेरहवें वर्ष, ईसवी सन् १९०१ में, तुम्हारे जन्म दिन पर मैं तुम्हारे पास फिर आऊँगा और यह चामत्कारिक सामर्थ्य प्राप्त करने की विधि तुमको सिखाऊंगा। मरने के पहले तुम खगोल-विद्या-सम्बन्धी अनेक नई नई बातें जानोगे। परन्तु तुम्हें बड़ी सावधानी से काम करना चाहिए और स्वार्थ-बुद्धि को परित्याग करना चाहिए। यदि ऐसा न करोगे तो तुम्हारी मृत्यु हो जायगी। इन तेरह वर्षों में तुमसे जहाँ तक हो सके अपना खगोल-सम्बन्धी ज्ञान बढ़ाओ। तेरहवें वर्ष निश्चित समय पर मैं तुम से फिर मिलूँगा।"

इतनी बात कहकर वह मेरे सामने से तुरन्त चल दिया।

इसके बाद तेरह वर्ष तक खगोल-विद्या का मैंने खूब अभ्यास किया। इस विषय का वर्णन विस्तार-पूर्वक करने की आवश्यकता नहीं। इँगलैंड की बड़ी से बड़ी वेध-शाला में जाकर मैं अपनी विद्याभिरुचि को पूर्ण करने लगा। इसी समय एक वेध-शाला में मैं असिस्टंट के पद पर नियुक्त हो गया। शुक्र के आस पास एक अन्य उपग्रह को मैंने ढूँढ निकाला। मेरे अधिकारी मुझ पर बड़ी कृपा करते थे। यहां मैंने कई छोटे छोटे आविष्कार किये। मैं अपना समय तन मन से विद्योपार्जन में व्यतीत करता था।

एक दिन लंदन नगर के प्रसिद्ध सॉलिसिटर मि० डकेट का पत्र मुझे मिला। उसमें लिखा था कि मेरे आफ़िस में तत्काल उपस्थित हो। जब मैं वहाँ गया तब उन्होंने मुझसे कहा:—"कलकत्ते में तुम्हारे पिता की मृत्यु हो गई है। उनकी बड़ी सम्पत्ति के तुम वारिस हुए हो। अतः तुमको शीघ्र ही कलकत्ते जाना चाहिए।"

यह सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य्य हुआ। मैंने तत्काल अपनी नौकरी छोड़ दी और पहले ही स्टीमर से बम्बई आया। वहाँ से तुरन्त कलकत्ते पहुँचा। कलकत्ते में अपने पिता के सालिसिटरों की खोज की। सालिसिटर ने मिलते ही मेरे भाग्य की बड़ी प्रशंसा की। उसने कहा—"तारकप्रसाद! यदि तुम्हारे पिता की मौत अकस्मात् न होती तो तुमको एक पाई भी न मिलती।

मैंने पूछा:—"यह क्यों?"

उसने उत्तर दिया:—"तुमको मालूम तो है ही कि तुम्हारे पिता हमसे कोई बात न छिपाते थे। तुम दोनों में जब परस्पर विरोध हो गया तब अत्यन्त क्रुद्ध होकर वे हमारे पास आये और बोले:—'अपने पुत्र को अपनी सम्पत्ति देने के विषय में जो वसीयत-नामा मैंने लिखा है वह वापस देदो।' इस प्रकार उनके माँगने पर जब वह काग़ज़ मैंने उनको दिया, तब उन्होंने तत्काल उसे फाड़ कर टुकड़े टुकड़े कर डाला और एक नया वसीयतनामा लिखने के लिए मुझसे कहा। उस नये वसीयतनामे में लिखा गया कि उनके मरने पर उनकी सारी सम्पत्ति तुम्हारी जाति के तीन प्रतिष्ठित पुरुषों को सौंप दी जाय और उसके ब्याज से जाति के सब बालक-बालिकाओं के विद्याभ्यास का प्रबन्ध किया जाय। यह बात उस समय समाचारपत्रों में प्रकाशित भी हो गई। इससे तुम्हारे पिता की कीर्त्ति सर्वत्र फैल गई। इस समय सब काम इसी व्यवस्था के अनुसार किया जाता; पर गत मास में उन तीन सभ्यों के साथ तुम्हारे पिता का किसी कारण से भारी विरोध हो गया। इससे अपनी सम्पत्ति ऐसे पुरुषों को सौंप जाना अनुचित समझ कर वे फिर मेरे आफ़िस में आये और पूर्ववत् मुझसे वसीयतनामा लेकर उसे फाड़ डाला। तत्पश्चात् एक और वसीयतनामा लिखने के लिए मुझसे कहा और घर लौट गये। उनके कथनानुसार मैंने वसीयतनामा तैयार किया। केवल उनके हस्ताक्षर होना ही शेष था। इस काम के लिए मेरे आफ़िस में आने को वे घर से निकले ही थे कि एकाएक चक्कर खाकर गिर पड़े और उनके प्राण निकल गये। इससे वह वसीयतनामा व्यर्थ हो गया और जो द्रव्य जाति के बालकों के शिक्षण में व्यय होने वाला था वह तुमको मिल गया।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार अपने पिता की सब सम्पत्ति मुझे मिल गई। मैंने स्थावर सम्पत्ति को तो तुरन्त बेच डाला। हिसाब करने पर मुझे मालूम हुआ कि मुझे पचास लाख रुपये मिले। ये रुपये अपने नाम से बैंक में जमा कर मैं शीघ्र ही इँगलैंड पहुँचा और फिर अभ्यास करने लगा। दो तीन वर्ष के बाद मैं इँगलैंड से अमरीका गया और वहाँ कई वेधशालाओं में अभ्यास करता रहा। इस समय मुझे एक स्वतन्त्र वेधशाला बनवाने की इच्छा उत्पन्न हुई। उसका सामान एकत्र करके मैंने एक उपयुक्त स्थान पर काम आरम्भ कर दिया। द्रव्य में बड़ा सामर्थ्य होता है। थोड़े ही दिनों में मेरी नई वेधशाला तैयार हो गई। तब मैं उसीमें रहने लगा। तारागणों को निरीक्षण करने के लिए जितने यन्त्र उस समय तक निकले थे उन सब को मैंने अपनी वेधशाला के लिये मँगवा लिया। परन्तु इन यन्त्रों से मुझे सन्तोष न हुआ। इसलिए दूरबीन बनाने वाली एक प्रसिद्ध कम्पनी को मैंने एक बड़ी भारी दूरबीन बनाने के लिए हुक्म दिया। जब तक सत्तर इंच के कांच की नई दूरबीन तैयार नहीं हुई तब तक मैं अपने पास के छोटे यंत्रों से किसी प्रकार काम चलाता रहा। इसी समय मङ्गल-ग्रह-सम्बन्धी आविष्कार करने वाले प्रसिद्ध विद्वान् प्रबियल डी० मशीओ से मेरा परिचय हुआ। आरम्भ में उसके विषय में मेरे विचार बड़े उच्च थे। वह खगोल-विद्या का बड़ा प्रेमी था। उसका स्वभाव भी बड़ा हँसोड़ था। इससे दिन का अधिक भाग मैं उसी की संगति में बिताता था। मेरे काम में उसने इतना अधिक अनुराग दिखाना आरंभ किया कि मैं ने उससे छिपाकर वसीयतनामा लिखा। उसमें मैंने लिख दिया कि "भविष्यत् में जो कीर्ति मैं सम्पादन करूँ उसे अच्छी तरह बढ़ाने का यदि वह प्रयत्न करे तो मेरी सम्पूर्ण सम्पत्ति का वह अधिकारी हो।"

कुछ समय बाद मुझे जान पड़ा कि यद्यपि ऊपर से वह मुझ पर प्रेम दिखलाता है तथापि अन्तःकरण से वह मुझे अपना प्रतिस्पर्धी समझता है। मुझे यह भी ज्ञात हुआ कि जिन जिन विचारों की मैंने उद्भावना की थी तथा जिन जिन बातों का आविष्कार मैंने किया था उन सबको वह अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए अपने नाम से प्रकाशित करता था। एक दिन मैंने उसको बहुत लज्जित किया। इससे परस्पर झगड़ा हो गया। उसकी और मेरी मित्रता का सम्बन्ध टूट गया। वह मेरा शत्रु हो गया।

थोड़े दिनों में मेरी अनुपम दूरबीन तैयार होकर आ गई। वेधशाला में उसको ठीक स्थान पर जमा देने के बाद एक सप्ताह तक उसके निरीक्षण से विद्वानों तथा समाचारपत्रों के संवाददाताओं को सन्तुष्ट करके मैंने उससे नभोमण्डल का निरीक्षण करना आरम्भ किया।

[असमाप्त]

श्रीलाल शालग्राम पंड्या।

चित्र-दर्शन।

वधू की सहेलियाँ।

नागपुर में जो प्रदर्शिनी हो रही है उसमें बंबई के प्रसिद्ध चित्रकार धुरन्धर का एक चित्र भी रक्खा गया है। इस चित्र का नाम है—(Bride's Maides) (वधू की सहेलियाँ)। बंबई में "प्रभू" नाम की एक जाति वैश्यों की है। ये लोग व्यापार-व्यवसाय में बड़े कुशल हैं। इनमें से कितने ही लखपती और करोड़पती हैं। इनके यहां लड़की का विवाह हो चुकने पर तत्काल ही वधू को उसकी सजातीय स्त्रियां आशीर्वाद देती हैं। यही दृश्य इस चित्र में अङ्कित किया गया है। चित्र में कोने पर बाईं तरफ़ जो स्त्री है वह नव-विवाहिता वधू है। उसके सामने जो स्त्री बैठी है वह उसकी सखी है और उसे आशीर्वाद दे रही है। और जितनी स्त्रियां हैं सब प्रभू-जाति की हैं; खूब पढ़ी लिखी हैं; दस्तकारी में प्रवीण हैं; और अपने प्रान्त में विशेष प्रतिष्ठा की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि से देखी जाती हैं। वधू की पोशाक सिर से पैर तक पीली है। इन लोगों में विवाह के समय ऐसे ही वस्त्र पहनने की चाल है। चित्र मनोहारी है और "प्रभू" लोगों की एक विशेष रूढि का दर्शक है।

पुस्तक-परीक्षा।

१—वायुविज्ञान। राज्य सीतामऊ, प्रान्त मालवा, के अधिपति श्रीराजा रामसिंहजी-कृत। इंडियन प्रेस, प्रयाग, में मुद्रित और ग्रंथकर्त्ता द्वारा प्रकाशित। पृष्ठ-संख्या १५१। काग़ज़, छपाई, और जिल्द बहुत अच्छी। बड़े हर्ष की बात है कि हमारे देश के कुछ विद्यारसिक राजा लोग भी अब हिन्दी की ओर ध्यान देने लगे हैं। हिन्दी के लिए यह बड़े सौभाग्य की बात है। यह पुस्तक भी एक ऐसेही विद्यानुरागी नरेश के हिन्दी-प्रेम का नमूना है। हिन्दी में वैज्ञानिक पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता है। राजा साहब ने इस पुस्तक को लिखकर बहुत अच्छा काम किया। इसके लिए हिन्दी-प्रेमी मात्र आपके कृतज्ञ रहेंगे। इसमें सब मिलाकर बारह अध्याय हैं। वायु के घनफल, बोझ, पहचान, स्वरूप और चाल के सिवा सर्दी, गर्मी, कोहरा, बादल, ओस, वर्षा, बर्फ़, ओला, बिजली, तूफ़ान, ध्वनि आदि वायु से सम्बन्ध रखनेवाली प्रायः सभी बातों का इसमें संक्षिप्त किन्तु स्पष्ट वर्णन है। जटिल और दुर्बोध विषय सुन्दर और स्वच्छ चित्रों के द्वारा समझाये गये हैं। इससे इसकी उपयोगिता और भी बढ़ गई है। मतलब यह कि पुस्तक सब तरह उपादेय है। यदि इसकी भाषा कुछ और सरल रक्खी जाती और शुरू में सूचीपत्र लगा दिया जाता तो और भी अच्छा होता। पुस्तक-रचना में राजा साहब का यह पहलाही प्रयत्न है। इससे आशा है, भविष्यत् में आप इससे भी अधिक उपयोगी पुस्तकें लिखकर अपने हिन्दी-प्रम और विद्या-व्यसन का परिचय देंगे। इस पुस्तक को आपने सीतामऊ के हाईस्कूल को अर्पण कर दिया है। जिसे लेना हो वहां के हेड मास्टर साहब से १।) में मँगा सकता है।

❀

२—विधवा-विवाह। राय-बहादुर मुंशी नानक चन्द, सी० आई० ई०, दीवान, इन्दौर, ने इसे बनाया है। इसमें यह सिद्ध करने की चेष्टा की गई है कि विधवा-विवाह वेद और शास्त्र के अनुकूल तथा अत्यन्त लाभदायक है। मुंशी जी ने अपने कथन की पुष्टि में वेदों और स्मृतियों के प्रमाण भी दिये हैं। विधवाविवाह के विरोधी अपना पक्ष सिद्ध करने के लिए जो जो युक्तियां और प्रमाण देते हैं अन्त में उनका खण्डन भी किया गया है। यह पुस्तक विधवाविवाह के पक्षपातियों और विपक्षियों दोनों ही के पढ़ने योग्य है। काग़ज़ और छपाई बहुत अच्छी है। पर भाषा कहीं कहीं पर विचारणीय है। मुंशी जी इसे मुफ़्त बाँटते हैं।

❀

३—श्रीमती ज्वाला देवी। आर्य्यकन्या-पाठशाला मेरठ, की अधिष्ठात्री श्रीमती ज्वाला देवी का जीवन-चरित पण्डित जयराम शर्म्मा ने उर्दू में लिखा है। उसी का यह हिन्दी-अनुवाद है। अनुवादकर्त्ता डी० ए० वी० कालेज, लाहौर, के उपदेशक पण्डित सत्यलाल हैं। इस पुस्तक में श्रीमती के चरित के सिवा आर्य्यकन्या-पाठशाला और उससे सम्बन्ध रखनेवाली स्त्री-समाज का भी विस्तृत वर्णन है। अन्त में कुछ कम सौ पृष्ठों में, श्रीमती के मरने पर उनके पति डाक्टर रामचन्द्र वर्म्मा के पास शोक और सहानुभूतिसूचक जो चिट्ठियाँ आई थीं, वे जैसी की तैसी उद्धृत कर दी गई हैं। इस तरह अनावश्यक बातें भर कर पुस्तक बेतरह बढ़ाई गई है। इस चरित को पढ़कर स्त्रियाँ कौन कौन सी बातें सीख सकती हैं—इसका वर्णन करते हुए लेखक ने भूमिका में एक वाक्य लिखा है जो हमारी समझ में ठीक नहीं आता। वाक्य यह है :—"आश्चर्य नहीं बहुत सी अनाश्रित विधवायें सुयोग्य पति को इसमें ढूँढ लें"। यदि यह वाक्य श्रीमती के जीवन-

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की उस मुख्य घटना की तरफ़ इशारा करता है जो उनके विधवा होने पर अपना घर छोड़कर मेरठ चले जाने से सम्बन्ध रखती है तो इस बात को हिन्दू-समाज आदर्श नहीं मान सकता। इसमें भाषा-सम्बन्धिनी अशुद्धियाँ बहुत हैं। आठ आने में डाकृर रामचन्द्र वर्म्मा, मेरठ, से मिल सकती है।

❀

४—मनोरमा। आरा-निवासी बाबू जैनेन्द्रकिशोर जैन रचित। पृष्ठ-संख्या ११४। मूल्य आठ आने। यह उपन्यास एक पुरानी कथा के आधार पर लिखा गया है। स्त्रियों के लिए विशेष उपयोगी है। पर स्त्रियों के लिए जैसी भाषा चाहिए वैसी इसकी नहीं है। गधा की जगह 'गदहा' और कुछ की जगह 'कुच्छ' का प्रयोग किया गया है। अधिकाँश विहारी लेखकों की भाषा में जो विचित्रता होती है वही इसमें भी है। मिलने का पता—श्री पन्नालाल जैन, जैन-ग्रंथ-रत्नाकर कार्य्यालय, पो० गिरगाँव, बम्बई।

❀

५—त्वष्टृवंशप्रदीपः। पण्डित पालाराम जांगिड़ा कृत। इसमें "विश्वकर्म्म वंश निर्णय की समालोचना" द्वारा प्यारे स्वजातीय भ्रातृगणों के बोधार्थ वेदादि सच्छास्त्रों के प्रमाणों से त्वष्टा के मुख्य वंश का निरूपण है"। जांगिड़ा जी ने 'जांगिड़ोत्पति' नाम की एक पुस्तक लिखी है। उसकी भूलें पं० शिव-नारायण झा ने अपने 'विश्वकर्म वंश निर्णय' में दिखलाईं। उसी के खण्डन के लिए जांगिड़ा जी ने यह पुस्तक लिखी है। अपनी बातों के मण्डन के सिवा आपने इसमें झा महाशय के अन्यान्य कथन की भी ख़बर ली है। जांगिड़ा जी के पत्र से तो मालूम होता है कि आप सही सही हिन्दी लिखना भी नहीं जानते। पर त्वष्टृवंशप्रदीप में आपने वह संस्कृत छांटी है और वेदों तक के वे वे प्रमाण दिये हैं मानों चारों वेद, छहों शास्त्र, और अट्ठारहों स्मृतियां आपके मुख में नाच रही हों। पुस्तक का मूल्य छः आने हैं। मिलने का पता—पं० पालाराम जांगिड़ा, मैनेजर, अमृतसर डिस्टिलरी कम्पनी, लुधियाना।

६—शिल्पमार्त्तण्ड, प्रथम भाग। इसका दूसरा नाम व्यापारदर्पण भी है। अड़तालीस पृष्ठ की इस छोटी पुस्तक में कोई साठ सत्तर चीज़ों के बनाने की तरकीब लिखी है जैसे—फ़ोटो-आफ़ी, घड़ीसाज़ी, दियासलाई, पेन्सिल, सिगरेट, सुई, जवाहिरात बनाना इत्यादि। आजकल इस तरह की किताबें जितनी ही अधिक प्रकाशित हों उतना ही अच्छा है। पर इन किताबों में सब से बड़ा दोष यह होता है कि इनमें चीज़ों के बनाने की तरकीब हद से ज़्यादा संक्षिप्त-रूप में लिखी जाती है। इस किताब के किसी किसी पृष्ठ पर आठ आठ चीज़ों के बनाने की विधि लिखी हुई है। इसलिए न तो शिल्पकार ही इससे कोई नई बात सीख सकते हैं और न साधारण आदमी ही इस पुस्तक के सहारे शिल्पकार बन सकते हैं। हाँ, यदि एक एक विषय कुछ अधिक विस्तार से लिखा जाय तो बहुत अच्छा हो। पुस्तक के अन्त में विज्ञापन देने की रीति भी लिखी गई है। अलीगढ़-निवासी लाला प्यारेलाल वृष्णी ने इसे संग्रहीत और प्रकाशित किया है। आठ आने में डी० पी० कम्पनी आफ़िस, अलीगढ़ सिटी से मिल सकती है।

❀

७—बस्तरभूषण। पण्डित केदारनाथ ठाकुर, फ़ारेस्ट रेंजर, बस्तर स्टेट कृत। मध्यप्रदेश के रायपुर ज़िले के दक्षिण में बस्तर नाम की एक रियासत है। इस पुस्तक में इसी रियासत का हाल है। यह किताब तीन भागों में विभक्त है। पहले भाग में रियासत की सीमा, प्राकृतिक अवस्था और नाना प्रकार की जातियों के रस्मोरिवाज आदि का विस्तृत वर्णन है। दूसरे भाग में खेती, व्यापार, पुरानी इमारतों और त्योंहारों आदि का हाल है। तीसरे में राज्य की उत्पत्ति, इतिहास, राज्य-प्रबन्ध आदि का वृत्तान्त लिखा गया है। हिन्दी में इस प्रकार की पुस्तकों का अभाव सा है। इस दशा में यह पुस्तक लिख कर ठाकुर साहब ने बड़ा अच्छा काम किया है। आपका यह परिश्रम प्रशंसनीय है। पर इसमें कुछ दोष भी हैं। एक तो यह कि इसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-विभाग ठीक नहीं। हमारी समझ में यदि पहले भाग का अधिकांश और दूसरा भाग पीछे और तीसरा भाग पहले लिखा जाता तो बहुत अच्छा होता। इसके सिवा सूचीपत्र के अभाव से अभिलषित विषय ढूंढने में बड़ा कष्ट होता है। इसकी भाषा भी दोष-पूर्ण है। छापे की अशुद्धियों की भी कमी नहीं है। यह पुस्तक जंगल-स्कूल, बालाघाट, सी० पी० के पते पर पं० केदारनाथ पाठक से आठ आने में मिल सकती है।

❀

९—स्वास्थ्यरक्षा। पण्डित हरिदास वैद्य लिखित। पृष्ठ-संख्या २२४। मूल्य डेढ़ रुपये। काग़ज़, छपाई बहुत साफ़। हरिदास ऐण्ड कम्पनी, २०१।३९७, हेरिसन रोड, कलकत्ता से प्राप्य। आजकल अधिकांश लोगों को स्वास्थ्य ठीक न रहने की शिकायत रहती है। इसलिए उनको बारबार वैद्य और डाक्टरों का मुँह ताकना पड़ता है। इससे निर्धन लोगों को जो जो कष्ट उठाने पड़ते हैं उनको वही जानते हैं। इसलिए हिन्दी में ऐसी किताबों की बड़ी आवश्यकता है जिनमें तन्दुरुस्ती क़ायम रखने के नियम और साधारण रोगों से बचे रहने तथा उनके दूर करने के उपायों का वर्णन हो, जिससे निर्धन और कम पढ़े लोग भी उनके सहारे अपना स्वास्थ्य ठीक रख सकें। इस विचार से वैद्य महाशय की यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है और प्रत्येक गृहस्थ के घर में रखने लायक़ है। इस ग्रंथ में पांच भाग हैं। पहले में दिनचर्य्या के सिवा अन्न, फल, दूध, दही, जल आदि भोज्य और पेय पदार्थों के गुण और दोषों का वर्णन है। तीसरे में ऋतुओं और चौथे में कई तरह की दवाइयां बनाने का हाल है। पाँचवें में सदाचार के कोई दो सौ नियम और वैद्यक सम्बन्धी कठिन शब्दों की व्याख्या है। रहा दूसरा भाग सो उसका कोई ज़रूरत न थी। वह न होता सो ही अच्छा था।

❀

१०—वृष्टिप्रबोध। अर्थात् भारत का वायु-शास्त्र। प्राचीन-ज्योतिषशास्त्राश्रमी दैवज्ञ-भूषण पण्डित मीठालाल व्यास ज्योतिष के प्राचीन और अलभ्य ग्रं के आधार पर बृहद्दर्श्यमार्त्तण्ड नाम की एक पुस्त माला प्रकाशित कर रहे हैं। उसीका यह दूस अङ्क है। दुर्भिक्षों की भयङ्करता दिन पर दिन बढ़ जाती है। दैवी कारणों से पड़नेवाले दुर्भिक्ष पह ही से जान कर लोग सचेत हो जावें—इसी उद्द से इस पुस्तक की रचना की गई है। इसमें व होगी या न होगी यह जानने की आवश्यक उसके जानने की विधि और उसके होने के उपा का वर्णन है। देश, वृक्ष, मनुष्य, पशु, पक्षी, पतंग, नक्षत्र आदि के द्वारा वर्षा का ज्ञान कि प्रकार होता है—इसका वर्णन इसमें बड़े विस्त से किया गया है। इसके बाद बेरोमीटर, थर्मामी आदि थोड़े से पश्चिमी यन्त्रों का भी संक्षिप्त व है। अन्त में वर्षा होने के उपाय लिखे गये हैं पुस्तक भर में ऊपर हिन्दी दोहे या संस्कृत श्लोक और नीचे सरल हिन्दी में भावार्थ। इसमें शक न कि यह किताब हिन्दी भाषा में अपने ढँग की नई है। इसमें लिखी हुई बातें कहाँ तक सच हैं इसको व जान सकते हैं जिन्होंने उनकी परीक्षा की हो। स रुपये में ग्रंथकार से ब्यावर, राजपूताना के पते मिल सकती है।

मनोरञ्जक श्लोक।

मानुष्यं वरवंशजन्मविभवो दीर्घायुरारोग्यता
सन्मित्रं सुसुतः सती प्रियतमा भक्तिश्च नारायणे।
ज्ञातृत्वं सुजनत्वमिन्द्रियजयः सत्पात्रदाने रतिः
ते पुण्येन विना त्रयोदशगुणाः संसारिणां दुर्लभाः॥

जगत् में जन्म लेने वाले जन्तुओं को पुण्य बिना मानव शरीर १ उत्तम कुल में जन्म २ ऐश्वर्य दीर्घजीवन ४ नैरोग्य ५ निष्कपट मित्र ६ सु पुत्र ७ पतिव्रता स्त्री ८ ईश्वर में प्रेम ९ बन्धुवर्गादि उत्तम स्वभाव ११ जितेन्द्रियता १२ अच्छे काम मुक्तहस्त होना १३ ये तेरह गुण बड़ी कठिनता प्राप्त होते हैं।

जनार्दन भ

Printed and published by Panch Kory Mittra at the Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

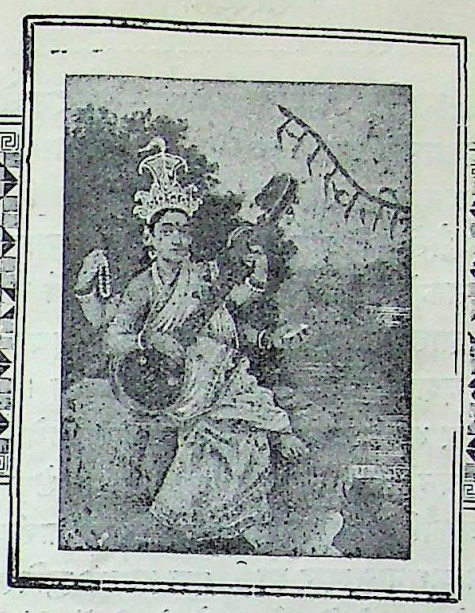

सरस्वती।

भाग १०] १ फरवरी, १९०९। माघ शुक्ल ११, १९६५। [संख्या २

विविध विषय।

१—देशी कपड़ों के नमूने।

किसी समय भारतवर्ष में इतना अधिक कपड़ा बनता था कि इस देश की आवश्यकता पूरी करने के सिवा वह विदेश को भी भेजा जाता था। उसके सौन्दर्य्य को देखकर विलायत की बीबियाँ लट्टू हो जाती थीं। पर न तो अब उसमें वह सौन्दर्य्य ही है और न वह अधिक बनता ही है। कोटि कोटि भारतीय नर-नारी अपना शरीर ढाँकने के लिए और देशों का मुँह ताकते हैं।

सन् १८५३ में लन्दन शहर में एक अजायबघर स्थापित किया गया। उस समय हिन्दुस्तान भर में जितने प्रकार के अच्छे अच्छे कपड़े बनते थे उन सब के नमूने उसमें इकट्ठे किये गये। इसके बाद वे नमूने अठारह बड़ी बड़ी जिल्दों में जमा किये गये। नमूनों की संख्या सब मिलाकर कोई सात सौ थी। यह तो हुआ एक सेट। ऐसे ही बीस सेट तैयार किये गये। इनमें से तेरह 'सेट' इँगलैंड के मशहूर मशहूर तेरह शहरों में बाँट दिये गये, ताकि वहाँ के कारीगर वैसे ही कपड़े बनाकर हिन्दुस्तान को भेजें। कुछ दिनों बाद बाक़ी सात सेट हिन्दुस्तान भेजे गये। इनमें से एक लखनऊ के अजायबघर में है। पर उसकी सर्व-साधारण को ख़बर तक नहीं। नमूने देखकर वैसेही कपड़े बनाना तो बहुत दूर की बात है। कपड़े के व्यवसायी इन नमूनों को देखकर उनसे बहुत लाभ उठा सकते हैं।

२—भारतीय सम्पत्तिशास्त्र।

सिस्टर निवेदिता ने माडर्नरिव्यू में सम्पत्तिशास्त्र पर एक बड़ा ही उपयोगी और समयोचित लेख लिखा है। उसका सारांश यह है कि जिस तरह किसान और दूकानदार का स्वार्थ एक नहीं हो सकता, उसी तरह कृषिजीवी और व्यापारी जातियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का स्वार्थ भी एक नहीं हो सकता। अर्थात् जो बात एक जाति के लिए लाभदायक है वही दूसरी के लिए हानिकारक है। इसलिए वर्त्तमान सम्पत्तिशास्त्र के सिद्धान्त और नियम भी भारत जैसे कृषि-प्रधान देश के लिए उपयोगी नहीं हो सकते। अतएव भारतवर्ष के लिए स्वतन्त्र सम्पत्तिशास्त्र की ज़रूरत है। यह सम्पत्तिशास्त्र भारतवर्ष की दशा के अनुकूल, भारतवासियों के स्वार्थ के लिए और भारतवासियों ही के द्वारा बनना चाहिए। इंडियन प्रेस से जो "सम्पत्तिशास्त्र" अभी हाल में प्रकाशित हुआ है उसकी रचना सिस्टर निवेदिता के कथनानुसार हो हुई है। आशा है भारतवासी, विशेष करके हिन्दी-भाषा-भाषी, उससे ज़रूर लाभ उठावेंगे *।

३—छिपकलियों के शाहंशाह।

अमेरिका की एक रियासत में छिपकलियों के एक शाहंशाह का ढाँचा मिला है। इसे बर्नम ब्राउन नामक एक साहब ने ज़मीन से खोद निकाला है। छिपकलीराज की लंबाई चालीस फ़ीट और उँचाई बाइस फ़ीट है। अकेली खोपड़ी का वज़न कोई पचास मन है। मालूम नहीं सारा शरीर कितना भारी होगा। कोई सोलह टोली आदमियों ने मिल कर इसे रेल पर चढ़ाया था। इससे आप इसके भारीपन का कुछ कुछ अनुमान कर सकते हैं। आजकल इस जाति के जानवर नहीं पाये जाते। अर्थात् यह जाति नष्ट हो गई है। पर ढाँचे की बनावट से जान पड़ता है कि यह जानवर छिपकली की जाति का था। यह प्रकाण्ड ढाँचा न्यूयार्क के अजायबघर में रक्खा हुआ है।

४—दुनिया में सबसे बड़ा हीरा।

कुछ दिन हुए ट्रांसवाल की एक खान में जो एक बड़ा ही अद्भुत हीरा मिला था उसके विषय में एक नोट सरस्वती में निकल चुका है। इतना बड़ा हीरा इससे पहले कभी नहीं पाया गया था। इसकी क़ीमत इतनी अधिक थी कि इसका ख़रीदार न मिलता था। इसलिए ट्रांसवाल गवर्नमेंट ने खान खोदनेवाली कम्पनी से इसे तीन लाख रुपये में ख़रीद कर महाराज सप्तम एडवर्ड को नज़र कर दिया। शुरू में इसका वज़न कुछ कम छः सेर था। इसलिए महाराज ने इसके ग्यारह टुकड़े करवाये हैं। पहला टुकड़ा कोई ढाई इंच लंबा और डेढ़ इंच चौड़ा है। दूसरा डेढ़ इंच लंबा और क़रीब इतना ही चौड़ा है। दुनिया में इस समय जुबिली नाम का जो सबसे बड़ा हीरा है, ये दोनों हीरे उससे भी बड़े हैं। इनके सामने कोहेनूर की कोई हैसियत नहीं। ये हीरे केवल बड़े ही नहीं, किन्तु गुणों में भी सबसे बढ़ चढ़ कर हैं। मतलब यह कि ऐसा उत्तम, सुन्दर, चमकदार, मूल्यवान् और बड़ा हीरा संसार में दूसरा नहीं।

५—रामायण का एक नया अँगरेज़ी-संस्करण।

बीस करोड़ हिन्दू नर-नारी वाल्मीकीय रामायण को जिस श्रद्धा और आदर की दृष्टि से देखते हैं वह तो सब लोग जानते ही हैं। पर देखते हैं कि कुछ दिनों से विदेशी लोग भी उसकी क़दर करने लगे हैं। यों तो रामायण के कितनी ही देशी-विदेशी भाषाओं में अनुवाद और सारांश प्रकाशित हो चुके हैं; परन्तु हाल ही में अँगरेज़ी में उसका जो संस्करण प्रकाशित हुआ है उसमें कुछ विशेषता है। उसका नाम है—"The Iliad of the East"। इसे फ़्रेडरिक मेकडानल्ड (मुग्धानलाचार्य्य नहीं) साहब ने बनाया है। इसमें रामायण का मूल आख्यान ऐसे अच्छे ढंग से और ऐसी मनोहर भाषा में लिखा गया है कि पढ़ने में उपन्यास का सा आनन्द आता है। इसमें चित्र भी हैं। संस्कृत न जाननेवाले अनभिज्ञ अँगरेज़ीदाँ लोगों को इसे ज़रूर पढ़ना चाहिए। ग्रिफ़िथ साहब के किये हुए रामायण के पद्यात्मक अनुवाद के बाद इसी का नम्बर है।

* यह नोट पण्डित श्रीनारायण वाजपेयी का भेजा हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६—टाइप ढालने की नई कल।

अध्यापक भिशे नामक एक प्रसिद्ध भारतवासी कुछ दिनों से इँगलैंड में अपनी प्रतिभा का अच्छा चमत्कार दिखा रहे हैं। आपने गत कई वर्षों में यन्त्रविद्या-सम्बन्धी कई आविष्कार किये हैं। हाल ही में आपने टाइप ढालने की एक बड़ी ही उम्दा कल बनाई है। विलायती अख़बारों ने आपके इस आविष्कार की बड़ी प्रशंसा की है और कहा है कि इससे टाइप ढालने की विद्या में असाधारण उन्नति होने की सम्भावना है। इस अद्भुत यन्त्र के द्वारा क्षण भर में छब्बीस जुदे जुदे अक्षर ढाले जा सकते हैं। केवल यही नहीं, किन्तु ज़रा सा फेरफार करने से एक क्षण में अठत्तर अक्षर तैयार किये जासकते हैं। इँगलैंड के यन्त्रविद्या-विशारदों का कथन है कि यह कल एक मिनट में १,८०,००० टाइप ढाल सकती है। आपकी यह कल इस समय लन्दन में है और आप भी वहीं हैं।

७—वङ्गभाषा और साहित्य।

बाबू दीनेशचन्द्र सेन, बी० ए०, बँगला के प्रसिद्ध लेखक हैं। बहुत दिन हुए आपने बड़े परिश्रम से बँगला में 'वङ्गभाषा ओ साहित्य' नामक गवेषणा-पूर्ण एक अत्युत्तम ग्रंथ लिखा था। देशी विदेशी सभी विद्वानों ने इसकी ख़ूब ही प्रशंसा की थी। गवर्नमेंट ने तो आपके इस अमूल्य ग्रंथ-रत्न को यहाँ तक क़दर की कि आपके लिए २५ रुपये मासिक पेंशन कर दी। अब तक बँगला में इसके कई संस्करण हो चुके हैं। अब, सुनते हैं, कि आप इसका अँगरेज़ी-संस्करण निकालना चाहते हैं। यह संस्करण बगला का अनुवाद न होगा; किन्तु स्वतन्त्र ग्रंथ होगा। यह किताब रायल अठपेजी कोई सात आठ सौ पृष्ठों में पूरी होगी। इसमें नवीं शताब्दी से लेकर १८५० ई० तक की वङ्गभाषा और साहित्य का पूर्ण इतिहास रहेगा। साहित्यसम्बन्धी बातों के सिवा इसमें बंगालियों के मानसिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक और भाषा तथा कला-कौशल सम्बन्धी इतिहास का भी समावेश होगा। अर्थात् नवीं शताब्दी के आदि में पूर्वोक्त विषयों में बंगालियों की क्या दशा थी, धीरे धीरे उन्नति या अवनति करते हुए वे वर्तमान अवस्था को कैसे प्राप्त हुए—इन सब बातों का वर्णन भी इस ग्रंथ में रहेगा। मतलब यह कि यह ग्रंथ बड़ा ही उपयोगी, मनोरञ्जक और उपादेय होगा। क्या हिन्दी भाषा-भाषी संसार में भी कभी कोई विद्वान् ऐसा होगा जो हिन्दी भाषा और साहित्य का ऐसा ही उत्तम इतिहास लिख कर हिन्दी भाषा का आसन उन्नत करे?

८—ब्रायन साहब की समाचारपत्र-सम्पादकता।

हमारे पाठक ब्रायन साहब के नाम से अवश्य ही परिचित होंगे। हाल ही में आपके विषय में एक नोट सरस्वती में प्रकाशित हो चुका है। आप अमेरिका के प्रेसीडेंट बनने के लिए कोशिश कर रहे थे। पर आप इस कोशिश में कामयाब नहीं हुए। अब सुनते हैं कि 'डेनवर पोस्ट' नामक समाचारपत्र के अध्यक्ष ने उस पत्र की, तीन हज़ार रुपये मासिक वेतन पर, सम्पादकता ग्रहण करने के लिए आपसे प्रार्थना की है। यद्यपि आपकी सी योग्यतावाले मनुष्य के लिए इतनी तनख़्वाह बहुत कम है तथापि ख़बर मिली है कि आप इस प्रर्थना को स्वीकार कर लेंगे। जो हो, इससे पाठकों को इस बात का अनुमान अवश्य ही हो जायगा कि अमेरिका में कैसे कैसे विद्वान्, धनवान्, योग्य और प्रतिभाशाली पुरुष समाचारपत्रसम्पादकी करते हैं और पत्रसम्पादकी का पेशा कैसा प्रतिष्ठित समझा जाता है।

९—निद्रा।

शरीर और मन को स्वस्थ रखने के लिए सोना बहुत ज़रूरी है। दिन भर काम करने के बाद जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदमी सोता नहीं वह शीघ्र ही रोगी हो जाता है। अतएव मनुष्य के लिए सोना भी वैसा ही आवश्यक है जैसे खाना और पीना। कितनी देर सोना चाहिए—इस विषय में यद्यपि मतभेद है तथापि अधिकांश विद्वानों की यही राय है कि जवान और तनदुरुस्त आदमी को सात घंटे अवश्य सोना चाहिए। डाक्टरों का मत है कि स्वप्नों से पूर्ण छः घंटे निद्रा लेना एक घंटे शान्तिपूर्वक सोने के बराबर है। जो लोग रात भर स्वप्न देखा करते हैं वे सवेरे उठने पर उतने स्वस्थ नहीं होते जितने निःस्वप्न रात बिताने वाले। सोने में पहले नेत्र, फिर त्वचा, फिर रसना, फिर घ्राण और सबके पीछे कर्णेन्द्रिय की शक्ति शिथिल पड़ती है। दाहिनी करवट सोना बहुत अच्छा है। एक डाक्टर का कथन है कि वैज्ञानिक, दार्शनिक और कवियों को रात में दो बार सोना चाहिए। अर्थात् पहले शाम से लेकर एक बजे तक; फिर चार बजे से लेकर जब तक जी चाहे। बीच में तीन घंटे उन्हें अपना काम करना चाहिए। जिन्हें निद्रानाश रोग हो गया है उनके लिए सब से अच्छी दवा यह है कि वे दो दो घंटे करके दिन भर में आठ घंटे चलें। इससे उनका रोग कुछ महीनों में दूर हो जायगा। एक चित्रकार ने इसी युक्ति से अपने घोर निद्रानाश रोग से छुटकारा पाया है। यह बात इँगलैंड के रिव्यू आव् रिव्यूज़ पत्र में प्रकाशित हुई है।

१०—जीवात्मा के फ़ोटोग्राफ़।

यूरप और अमेरिका के कुछ लोगों का ख़याल है कि जीवात्मा कोई चीज़ही नहीं। पर अब धीरे धीरे इस मत के माननेवालों की संख्या कम होती जाती है। लोग समझने लगे हैं कि जीवात्मा शरीर से भिन्न है; उसके निकल जानेही का नाम मृत्यु है। इस बात को प्रत्यक्ष प्रमाणों द्वारा सिद्ध करने वालों में फ़्रांस के विख्यात विज्ञान-वेत्ता डाक्टर ब्राडरिक का नम्बर सबसे ऊँचा है। उन्होंने मरते हुए मनुष्य के शरीर से निकले हुए जीवात्मा के कई फ़ोटोग्राफ़ लिये हैं। इनसे मालूम होता है कि मनुष्य के मरने पर उसके शरीर से प्रकाश का एक पिण्ड निकलता है। यद्यपि यह पिण्ड शुद्ध जीवात्मा नहीं, तथापि सूक्ष्म-शरीर-वेष्टित जीवात्मा अवश्य है। इस बात को बड़े बड़े पश्चिमी विद्वान भी अब मानने लगे हैं। पर भारत-वासियों ने हज़ारों वर्ष पहले ही इसे जान लिया था।

११—पीछे की आँखें।

अब तक मनुष्य सिर्फ़ आगे ही देख सकता था। पर हाल में फ़्रांस के एक सैनिक अफ़सर ने एक ऐसा शीशा ईजाद किया है जिसके द्वारा मनुष्य, आगे की तरह, पीछे भी देख सकता है। यह शीशा पुलिसवालों के लिए बड़ा उपयोगी है। उन्हीं के लिए यह बनाया भी गया है। वे इसे गश्त के समय अपने साथ रक्खेंगे। इसकी मदद से वे, बिना घूमे हुए, आगे पीछे दोनों तरफ़ की निगरानी आसानी से कर सकेंगे। इस प्रकार फ़्रांस के पुलिसमैन, हमारे शिवजी की तरह, सहज ही में त्रिनेत्र बन जायँगे।

१२—काग़ज़ का गिर्जाघर।

काग़ज़ की उपयोगिता दिन पर दिन बढ़ती जाती है। अब तक यह केवल लिखने पढ़ने या कहीं कहीं पर पोशाक के काम में आता था। पर अब उसके मकान तक बनने लगे हैं। पेरिस महानगरी के 'लारकेट' महल्ले में एक नया गिर्जाघर बना है। इसमें काग़ज़ के सिवा कोई दूसरी चीज़ नहीं लगी। पर मज़बूती में यह किसी ईंट-पत्थर के मकान से कम नहीं। इसे छोटा मोटा खिलौना या सिर्फ़ देखने की चीज़ न समझिएगा। यह इतना बड़ा है कि इसमें प्रति रविवार को एक हज़ार आदमी बैठ कर ईश्वन्दना कर सकते हैं।

१३—फूलघड़ी।

संसार में ऐसे बहुत से फूल हैं जो नियत समय पर खिलते और बन्द होते हैं। उनसे समय का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

विलियम हार्स्ट ।

The Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक ठीक पता लग सकता है। स्वीडन देश के लीनस नामक एक वनस्पति-शास्त्रवेत्ता ने इसी प्रकार के फूलों को इकट्ठा करके एक फूलघड़ी बनाई है। यह फूलघड़ी ठीक ठीक समय बताने में वैसी ही निर्भ्रान्त है जैसी कि अच्छी से अच्छी घड़ी हो सकती है। जिन फूलों से मिलकर यह घड़ी बनी है उनमें से एक हमारे देश का है। यह नागफनी जाति का है और मध्य-प्रदेश में बहुत होता है। यह ठीक सूर्य्योदय के समय खिलता और साढ़े सात बजे बन्द होता है। 'इयेमिया' जाति का फूल चार बजे तड़के, 'गोटस बियर्ड' पाँच बजे, 'स्टार आव बेतुलहम' ग्यारह बजे, एक प्रकार का गुलाब छः बजे शाम को, और एक अन्यजाति की नागफना आठ बजे खिलती है। इसी तरह और भी समझिए।

अमेरिका के सर्व-श्रेष्ठ समाचार-पत्र-सञ्चालक विलियम हार्स्ट।

अमेरिका अख़बारों का घर है। सबसे अधिक अख़बार वहीं निकलते हैं। वहाँ अख़बारों का प्रभाव भी बहुत बढ़ा चढ़ा है। अख़बार ही प्रजा के सच्चे नेता समझे जाते हैं। इस समय अमेरिका में जितने अख़बारवाले हैं उन सबके शिरोमणि, सबसे अधिक धनवान्, प्रभावशाली, योग्य और कार्य्यकुशल विलियम हार्स्ट हैं। किसी किसी का कथन है कि केवल अमेरिका ही नहीं, किन्तु सारे संसार में ऐसा सफलता-पुञ्ज समाचार-पत्र-सञ्चालक दूसरा न होगा।

जन्म और शिक्षा।

हार्स्ट साहब का जन्म १८६४ ई० में केलीफोर्निया की राजधानी सानफ़्रांसिस्को नगर में हुआ था। आपके पिता सिनेटर हार्स्ट केलीफ़ोरनिया के प्रसिद्ध करोड़पति थे। वे कई खानों के मालिक थे। खानें खुदवाकर खनिज पदार्थ निकालना और उनका व्यापार करना ही उनका पेशा था। इसी की बदौलत वे इतने सम्पत्तिशाली हुए थे। शैशवावस्था के व्यतीत होने पर उन्होंने अपने पुत्र हार्स्ट को हारवर्ड-विश्वविद्यालय भेज दिया। वहीं बालक हार्स्ट की शिक्षा प्रारम्भ हुई। कई साल तक पढ़ने के बाद आप बिना कोई पदवी प्राप्त किये वहाँ से लौट आये और घर में रहने लगे।

युवावस्था।

अब आपका समय व्यर्थ गप्पाष्टक और थियेटर-बाज़ी में नष्ट होने लगा। इसी समय थियेटर में तमाशा करनेवाली एक परमा सुन्दरी पर आप आसक्त होगये। आपने उसके साथ विवाह करना चाहा। पर आपके कुटुम्बियों ने इसे अनुचित समझ कर इस विवाह को न होने दिया। इसपर हार्स्ट साहब ने प्रसिद्ध अँगरेज़ी कवि बाइरन के चरित्र का अनुकरण किया। कई वर्ष बाद एक अन्य स्त्री के साथ विवाह होने पर आपकी यह आवारागर्दी जाती रही। अथवा यों कहिए कि आपकी काया पलट गई।

अख़बारी दुनिया में प्रवेश।

आवारागर्दी के ज़माने में एक दिन आपकी इच्छा हुई कि हम भी कोई समाचारपत्र निकालें। इस इच्छा को कार्य्य में परिणत करने के लिए आपने अपने पिता से सहायता माँगी। सुनतेही वृद्ध पिता को बड़ा आश्चर्य्य हुआ। उन्होंने इस काम में धन नष्ट करना उचित न समझा; इसलिए अपने पुत्र से इस इच्छा को त्याग देने के लिए कहा। पर हार्स्ट ने न माना। जैसे तैसे पिता ने सहायता देना स्वीकार किया। आप सानफ़्रांसिस्को एग्ज़ामिनर (San Fransisco Examiner) नाम का समाचारपत्र निकालने लगे। जिन लोगों ने इसे देखा है उनका कथन है कि निकलने के साथ ही इस पत्र ने अमेरिका के पश्चिमी किनारे वाले देशों को हिला दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारे देश में इसकी धूम मच गई। इसके लेखों को पढ़ कर दुष्ट, दुराचारी, अत्याचारी और पापियों के हृदय थर थर काँपने लगे। आपकी निर्भीक नीति ने जादू का सा असर किया। जिन 'चोरों की दाढ़ी में तिनका' था वे मैदान छोड़ छोड़ कर भागने लगे। पापियों ने पराजय स्वीकार किया; केलीफ़ोर-निया के सच्चरित्र सज्जन आपकी क़लई खोलने और भंडा फोड़नेवाली नीति की शतमुख से प्रशंसा करने लगे। कुछ दिनों में इस पत्र की ग्राहक-संख्या इतनी बढ़ी कि इससे ख़ूब लाभ होने लगा।

कार्यविस्तार।

सानफ़्रांसिस्को में आपने जैसी सफलता प्राप्त की उससे आपका उत्साह ख़ूब बढ़ गया। १८९४ में आपने अमेरिका के दूसरे छोर न्यूयार्क में भी एक अख़बार निकालना निश्चय किया। उस समय न्यूयार्क में "न्यूयार्क वर्ल्ड" के प्रसिद्ध सम्पादक पलिट्ज़र साहब की तूती बोलती थी। पर हार्स्ट के समान प्रतिभाशाली और करोड़पति के मुक़ाबले में ठहरना हर एक का काम न था। आपने पलिट्ज़र के सब योग्यतम कार्यकर्त्ता अपनी ओर कर लिये। पलिट्ज़र के तनख़्वाह बढ़ाने पर वे फिर उधर चले गये। इस पर आप इतना अधिक वेतन देने को तैयार हुए जितना पलिट्ज़र के ख़याल में भी नहीं आ सकता था। अन्त में आपकी जीत हुई। थोड़ेही दिनों में आपका पत्र न्यूयार्क जरनल (New York Journal) अमेरिका के सब अख़बारों से बाज़ी मार ले गया। उसकी ग्राहक-संख्या सबसे अधिक हो गई और वह औवल दर्जे का अख़बार समझा जाने लगा।

हार्स्ट साहब के अख़बारों की वर्त्तमान दशा।

हार्स्ट साहब इस समय जुदे जुदे नौ समाचार पत्रों और तीन मासिक-पुस्तकों के स्वामी और सञ्चालक हैं। ये बारहों पत्र अमेरिका के पाँच बड़े बड़े नगरों अर्थात् बास्टन, न्यूयार्क, शिकागो, सान-फ़्रांसिस्को और लास ऐंगलीज़ से प्रकाशित होते हैं। इन पत्रों की ग्राहक-संख्या बीस लाख से ऊपर है और दिन पर दिन बढ़ती जाती है। मज़ा यह कि हार्स्ट साहब प्रति दिन बीस लाख आदमी से बात चीत करते हैं। कुछ ठिकाना है! इस क में किसी वक्ता को इतने अधिक श्रोता शायदही मिले होंगे।

हार्स्ट साहब ने अपने अख़बारी कारोबार में चार करोड़ रुपये अपनी गाँठ के लगा रक्खे पूर्वोक्त बारहों पत्रों के प्रकाशित करने में हर आप कई करोड़ रुपये ख़र्च करते हैं। इस का प्रति दिन एक लाख बीस हज़ार रुपये आपके जाते हैं !!! पत्रों की बीस लाख कापियाँ तैयार में प्रति दिन बारह हज़ार मन काग़ज़ ख़र्च होता इस समय आपके अधीन काम करनेवालों की उन्नीस हज़ार के क़रीब है। इनमें से चार हज़ार दफ़्तरों में काम करनेवाले स्थायी कर्मचारी हैं कोई पन्द्रह हज़ार संवाद-दाता। आपने कारोबार में बेहद उन्नति की है। इसका अनु केवल इस बात से किया जा सकता है कि न्यूयार्क जरनल को आपने साढ़े चार लाख रु ख़रीदा था, इस समय उसकी लागत क़रीब करोड़ रुपये के है।

उद्देश और कार्य्य।

हार्स्ट साहब के अख़बारों को अमेरिका के सा रण तथा नीची श्रेणी के लोग बहुत पसंद करते क्योंकि उनमें उन्हीं के मतलब की बातें अर्थात् चुटकुले, पंच, रहस्यउद्घाटन और चौंका देने ख़बरें अधिक रहती हैं। इसके सिवा सर्वसाध की दशा सुधारना, उन पर अत्याचार न होने ग़रीबों को सतानेवालों की ख़बर लेना और अद्द द्वारा उनको दण्ड दिलवाना आपके पत्रों का उद्देश है। इसी कारण लक्ष लक्ष दरिद्र नर आपके पत्रों को ख़ुशी से ख़रीदते, पढ़ते, उनसे बहलाते और लाभ उठाते हैं। इन पत्रों का उ प्रभाव भी ख़ूब पड़ता है। जैसा हार्स्ट साहब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुक और रम्भा ।

INDIAN PRESS, ALLAHABAD.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं पढ़नेवाले वैसाही करते हैं। आपके पत्रों द्वारा अमेरिकन लोगों ने किस क़दर और कहाँ तक राजनैतिक, सामाजिक, पारिवारिक, नैतिक और आर्थिक लाभ उठाया है, यदि उसका ब्योरेवार वृत्तान्त लिखा जाय तो एक ग्रंथ तैयार हो सकता है। न मालूम कितने देश-द्रोही, समाज-द्रोही, दुष्ट और पापी जनों ने आपके पत्रों की बदौलत अपने कुकर्मों का कुफल चखा है। न मालूम कितने बार आपके पत्रों ने करोड़ों रुपयों की हानि से गवर्नमेंट और प्रजा को बचाया है। इसी तरह इनकी कृपा से न मालूम कितने निरपराधियों ने अकाल मृत्यु के पंजे और जेल की यातना से मुक्ति पाई है। धन्य मिस्टर हार्स्ट! धन्य तुम्हारी न्याय-प्रियता!

हार्स्ट साहब के कर्मचारी।

अमेरिका में इस समय जो सबसे अधिक योग्य, विद्वान्, प्रतिभाशाली और कार्य्यदक्ष पत्र-सम्पादक हैं उनमें से अधिकांश आपके अधीन काम करते हैं। आपके पत्रों की उन्नति का यह भी एक कारण है। आप उन्हें तनख़्वाह भी अच्छी देते हैं। इतनी अधिक तनख़्वाह पानेवाले सम्पादक केवल अमेरिका ही नहीं, किन्तु किसी देश में न होंगे। आपका सबसे अधिक वेतन पानेवाला कर्मचारी डेढ़ लाख रुपये वार्षिक पाता है! अर्थात् अमेरिका के प्रेसीडेंट की तनख़्वाह के बराबर! दूसरा आदमी एक लाख बीस हज़ार रुपये पाता है; तीसरा नबे हज़ार; तीन सहायक पछत्तर पछत्तर हज़ार रुपये वार्षिक पाते हैं। यहाँ पर यह लिखे बिना नहीं रहा जाता कि हार्स्ट साहब के अधीन काम करनेवाला एक सहकारी सम्पादक जितनी तनख़्वाह (पछत्तर हज़ार) पाता है उतनी ही हमारी जन्मभूमि भारतवर्ष के कर्त्ता, धर्त्ता और विधाता भारतसचिव लार्ड मार्ले भी पाते हैं। अर्थात् तनख़्वाह के लिहाज़ से इँगलैंड का एक राजमंत्री और अमेरिका का एक सहकारी सम्पादक एक हैसियत रखता है। इससे पाठक अनुमान कर सकते हैं कि हमारे देश के पत्रसम्पादकों की तरह अमेरिका के सम्पादक दीन, हीन और दरिद्र नहीं।

सूरत, शकल और स्वभाव आदि।

हार्स्ट साहब ख़ूब लम्बे चौड़े आदमी हैं। लम्बाई में वे छः फीट दो इंच हैं। शरीर भारी होने पर भी सुदृढ़ और गठीला है। ज़ाहिरा पहलवान से जान पड़ते हैं।

हार्स्ट साहब करोड़पति हैं। अख़बारी सम्पत्ति के सिवा कोई दस लाख एकड़ भूमि के भी वे मालिक हैं। पर वे रुपये की परवा नहीं करते। उसे वे पानी की तरह बहाते हैं। अपने सुख के लिए नहीं, किन्तु सात करोड़ अमेरिकनों के उपकार के लिए। कमलापति होने पर भी उनमें अभिमान छू तक नहीं गया। वे बड़ेही सीधे सादे, श्रमसहिष्णु, दृढ़-संकल्प, शान्त, दयालु, और न्यायप्रिय हैं। वे तम्बाकू या मदिरा कभी नहीं पीते। घुड़दौड़ या और किसी खेल का उन्हें शौक़ नहीं। नाच, गान, सैर, शिकार से सदा दूर रहते हैं। धनवानों से कम मिलते हैं। साधारण मनुष्य ही उनके मित्र हैं। एक मामूली मकान में रहते हैं और अपने काम से काम रखते हैं।

क्या हार्स्ट साहब के चरित से हम लोग कुछ शिक्षा नहीं प्राप्त कर सकते?

रम्भा-शुक-संवाद।

श्रीशुक-रम्भा को भयो विदित शब्द-संग्राम।
ताही की कछु बानगी सुनिये शुभ-मति-धाम॥

रम्भा— १

बीथी बीथी आमकी कुञ्ज भावै;
कुञ्जै कुञ्जै कोकिला मत्त गावै।
गाये गाये मानिनी मान जावै;
जातै जातै काम को रङ्ग आवै॥

शुक— २

बीथी बीथी साधु को सङ्ग पैये;
सङ्गै सङ्गै कृष्ण की कीर्ति गैये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाये गाये एकताई प्रकासै ;
एकै एकै सच्चिदानन्द भासै ॥

र०— ३

धामै धामै हेम की बेलि डोलै ;
बेली बेली पूर्णिमा-चन्द बोलै ।
चन्दै चन्दै मीन की मञ्जु जोरी ;
जोरी जोरी मैन क्रीड़ा अथोरी ॥

शु०— ४

धामै धामै रत्न-वेदी सुहावैं ;
वेदी वेदी भक्त-संवाद भावैं ।
बादै हीसों बोध चित्तै प्रकासै ;
बोधै पाये शंभु की मूर्त्ति भासै ॥

र०— ५

श्यामा कामा सुन्दरी रूपवारी ;
गोरी भोरी काम की सी सँवारी ।
वाकी बाहैं आपने कंठ डारी ;
भेटी नाहीं तेा वृथा देह धारी ॥

शु०— ६

लक्ष्मी-पी की साँवरी मूर्ति प्यारी ,
देवी देवै मोद की देन हारी ।
चन्द्राभासी मन्द मुस्क्यानवारी ,
ध्याई नाहीं, तैा वृथा देह धारी ॥

र०— ७

वसन्त में पाय प्रसून-कुंजैं ;
सुगन्ध पै मोहि मलिन्द गुंजैं ।
विलास ऐसे थल अङ्गना को ,
लहै वही भाग विशाल जाको ॥

शु०— ८

प्रसून पीताम्बर माल राजैं ,
भृङ्गावली केश रसाल भ्राजैं ।
वसन्त में यों हरि मूर्त्ति ध्यावैं ,
ते सन्त आनन्द अनन्त पावैं ॥

र०— ९

हेमन्त में बाल मयङ्क ऐसी ,
है अङ्क में तेा फिर सीत कैसी ।
पिया प्रिया की बतियाँ सुहावैं ,
आनन्द-भीनी रतियाँ बितावैं ॥

शु०— १०

विहाय जो ध्यान प्रमोदकारी ,
खोवै विषै में सब रात भारी ।
ता हेतु लीन्हे जमदूत फाँसी ,
सचेत होवैं वनिताविलासी ॥

र०— ११

सुवर्णवर्णा तरुणी छबीली ,
प्रिया रँगीली सुमुखी रसीली ।
जो प्रेम ऐसेा नहिँ बाम को है ,
तारुण्य तो पै केहि काम को है ॥

शु०— १२

होवै जरा में बल-बुद्धि हानी ,
मिली तपस्या हित ही जवानी ।
उद्योग नाहीं शुभ काम को है,
निकाम तो ये तनु चाम को है ॥

र०— १३

कुरङ्ग सी जासु चितान प्यारी ,
सुरङ्ग बिम्बाधर जुग्मवारी ।
अनङ्ग कीसी सुकुमार नारी ,
न सङ्ग होवै बिन भाग भारी ॥

शु०— १४

जाकी लुनाई जग में बसी है ,
दसौ दिसा में सुखमा लसी है ।
पुनीत पूरी महिमा गँसी है ,
बिना भजै ताहि सबै हँसी है ॥

र०— १५

सुहासिनी गेाल कपेाल वारी ,
बुलाक,-बाले-नथ लेाल वारी ।
सुकामिनी काम किलेाल वारी ,
मिलै बड़े भाग अमेाल नारी ॥

शु०— १६

महेश ही को दिन रैन ध्याना ,
महेश ही पै मन ये दिवाना ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महेश हो जोग विचार ज्ञाना,
अमोल तो है बस भक्त बाना ॥

१७

र०— बारा अलंकार सिँगार सेारा,
बिलोकि जाके मन होय भोरा।
जो, हाय, स्वीकार करै न वाहि,
ताको अरे जन्म गयेा वृथाहि ॥

१८

शु०— सेारा कला चन्द्र दिनेश बारा,
वारैं गिरा शेष लहैं न पारा।
आनन्द को रूप प्रमोदकारी,
का तासु आगे बनिता बिचारी ॥

१९

र० रूरी पूरी बदन दुति है चन्द्रमा ते सवाई,
नैना सैना, मदन सरमें नाहि सेा तीछनाई।
कारे भारे चिकुर जेहि के भृङ्ग के मानहारी
नारी प्यारी नर नहिँ रमी तैा वृथा देह-धारी ॥

२०

शु०— प्यारे प्यारे जुगुल पद हैं पद्म-शोभा-प्रहारी,
सेवै लेवै भरिहिय जिन्हैं सिन्धुजा प्राणवारी।
छाई भाई मुनि-गनहिये जासु प्यारी उज्यारी,
सेाई, जोई नर नहिँ भजै, सेा वृथा देहधारी ॥

२१

र०— बामा कामाभिरामा शशिवर वदना
शीलधामा ललामा,
कस्तूरी-चर्चिताङ्गी मदन-मद भरी
चञ्चला चारु श्यामा।
बाँकी ऐसी तिया की चितवन चित में
कामनाही जगावै, *
नाहीं सन्देह देही वह जग अपनो
जन्म योंही गँवावै ॥

२२

शु०— मज्जा मेदा बसा की अशुच मल भरी
चामकी तुच्छ थैली,
खेाटी नौ छिद्र वारी बहुत सनक सी
अस्थि की वस्तु मैली।
लोहू मूत्रादि जासेां बहत बहु सदा
स्रोत दुर्गन्धवारे,
सेवैं सीमा घृणा की नर जग नरकी
नीच पापो नकारे ॥

* * * * *

२३

रागी त्यागी शब्द-संग्राम कीन्हों
भोगी जोगी वार में चित्त दीन्हों।
हारी नारी जीत पाई जतीने,
बाजे गाजे व्योम में मोद भीने ॥

राय देवीप्रसाद (पूर्ण)

---

* "काम (मदन) नाही जगावै"—यह रम्भा का अभिप्राय है और "कामना (इच्छा, वासना) ही जगावै" इस अर्थ से शुक का पक्ष सिद्ध होता है। रम्भा की वाक्चुटि उसके भावी पराजय की अग्र-सूचना है।

सच्ची वीरता।

[गत संख्या से आगे]

जब किसी का भाग्योदय हुआ और उसे जोश आया तब जान लो कि संसार में एक तूफ़ान आ गया। उसकी चाल के सामने फिर कोई रुकावट नहीं आ सकती। पहाड़ों की पसलियां तोड़कर ये लोग हवा के बगोले की तरह निकल जाते हैं। उनके बल का इशारा भूचाल देता है और उनके दिलकी हरकत का निशान समुद्र का तूफ़ान देता है। कुदरत की और कोई ताक़त उनके सामने फड़क नहीं सकती। सब चीज़ें थम जाती हैं। विधाता भी साँस रोक कर उनकी राह को देखता है। यूरप में जब रोम के पोप का ज़ोर बहुत बढ़ गया था तब उसका मुक़ाबला कोई भी बादशाह न कर सकता था। पोप की आँखों के इशारे से यूरप के बादशाह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तख़्त से उतार दिये जा सकते थे। पोप का सिक्का यूरप के लोगों पर ऐसा बैठ गया था कि पोप की बात को लोग ब्रह्म-वाक्य से भी बढ़कर समझते थे और पोप को ईश्वर का प्रतिनिधि मानते थे। लाखों ईसाई साधु-संन्यासी और यूरप के तमाम गिर्जे पोप के हुक्म की पाबन्दी करते थे। जिस तरह चूहे की जान बिल्ली के हाथ में होती है उसी तरह पोप ने यूरप-वासियों की जान अपने हाथ में करली थी। इस पोप का बल और आतंक बड़ा भयानक था। मगर जरमनी के एक छोटे से मंदिर के एक कंगाल पादरी की आत्मा जल उठी। पोप ने इतनी लीला फैलाई थी कि यूरप में स्वर्ग और नरक के टिकट बड़े बड़े दामों पर बिकते थे। टिकट बेच बेचकर यह पोप बड़ा विषयी होगया था। लूथर के पास जब टिकट बिक्री होने को पहुँचे तब उसने पहले तो एक चिट्ठी लिखकर भेजी कि ऐसे काम झूठे तथा पापमय हैं और बन्द होने चाहिएँ। पोप ने इसका जवाब दिया:—"लूथर! तुम इस गुस्ताख़ी के बदले आग में ज़िन्दा जला दिये जावगे।" इस जवाब से लूथर की आत्मा की आग और भी भड़की। उसने लिखा:—"अब मैंने अपने दिल में निश्चय कर लिया है कि तुम ईश्वर के तो नहीं किन्तु शैतान के प्रतिनिधि हो। अपने आपको ईश्वर के प्रतिनिधि कहने वाले मिथ्यावादी! जब मैंने तुम्हारे पास सत्यार्थ का संदेश भेजा तब तुमने आग और जल्लाद के नामों से जवाब दिया। इससे साफ़ प्रतीत होता है कि तुम शैतान के दलदल पर खड़े हो, न कि सत्य की चट्टान पर। यह लो, तुम्हारे टिकटों के गट्ठे (emparchmented lies) मैंने आग में फेंके! जो मुझे करना था। मैंने कर दिया जो अब तुम्हारी इच्छा हो करो। मैं सत्य की चट्टान पर खड़ा हूं।" इस छोटे से संन्यासी ने वह तूफ़ान योरप में पैदा कर दिया जिसकी एक लहर से पोप का सारा जंगी बेड़ा चकना चूर हो गया। तूफ़ान में एक तिनके की तरह वह न मालूम कहाँ उड़ गया।

महाराज रणजीतसिंह ने फ़ौज से कहा:—"अटक के पार जाव"। अटक चढ़ी हुई थी और भयङ्कर लहरें उठ रही थीं। जब फ़ौज ने कुछ उत्साह ज़ाहिर न किया तब उस वीर को ज़ोश आया। महाराज ने अपना घोड़ा दरिया में डाल दिया। कहा जाता है कि अटक सूख गई और सब पार निकल गये।

दुनिया के जंग के सब सामान जमा हैं। लाखों आदमी मरने मारने को तैयार हो रहे हैं। गोलियां पानी के बूँदों की तरह मूसलधार बरस रही हैं। यह देखो, वीर को जोश आया। उसने कहा:—"हाल्ट" (ठहरो)। तमाम फ़ौज निस्तब्ध हो रुक सकने की हालत में खड़ी हो गई। एल्प्स के पहाड़ पर फ़ौज ने चढ़ना ज्योंही असम्भव समझा त्योंही वीर ने कहा:—"एल्प्स है ही नहीं"। फ़ौज को निश्चय हो गया कि एल्प्स है ही नहीं और सब लोग पार हो गये!

एक भेड़ चरानेवाली और सतोगुण में डूबी हुई युवती कन्या के दिल में जोश आते ही कुल फ़्रांस एक भारी शिकस्त से बच गया!

अपने आपको हर घड़ी और हर पल महान् भी महान् बनाने का नाम वीरता है। वीरता के कारनामे तो एक गौण बात है। असल वीर तो इन कारनामों को अपनी दिनचर्य्या में लिखते नहीं। दरख़्त तो ज़मीन से रस ग्रहण करने में लगा रहता है। उसे यह ख़याल ही नहीं होता कि मुझमें कितने फल या फूल लगेंगे और कब लगेंगे। उसका काम तो अपने आपको सत्य में रखना है। सत्य को अपने अंदर कूट कूट कर भरना है और अंदर ही अंदर बढ़ना है। उसे इस चिन्ता से क्या मतलब कि कौन मेरे फल खायगा या मैंने किन फल लोगों को दिये।

वीरता का विकास नाना प्रकार से होता है। कभी तो उसका विकास लड़ने मरने में, खून बहाने में, तलवार और तोप के सामने जान गँवाने में होता है। कभी प्रेम के मैदान में उसका झंडा खड़ा होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। कभी साहित्य और संगीत में वीरता खिलती है। कभी जीवन के गूढ़ तत्त्व और सत्य की तलाश में बुद्ध जैसे राजा विरक्त न हो कर वीर हो जाते हैं। कभी किसी आदर्श पर और कभी किसी पर वीरता अपना फरहरा लहराती है। परन्तु वीरता एक प्रकार का इलहाम (Inspiration) है। जब कभी इसका विकास हुआ तभी एक नया कमाल नज़र आया; एक नया जलाल पैदा हुआ; एक नई रौनक, एक नया रंग, एक नई बहार, एक नई प्रभुता संसार में छा गई। वीरता हमेशा निराली और नई होती है। नयापन भी वीरता का एक ख़ास रंग है। हिन्दुओं के पुराणों का वह आलङ्कारिक ख़याल, जिससे पुराणकारों ने ईश्वरावतारों को अजीब अजीब और भिन्न भिन्न लिबास दिये हैं, सच्चा मालूम होता है। क्योंकि वीरता का एक विकास दूसरे विकास से कभी किसी तरह मिल नहीं सकता। वीरता की कभी नक़ल नहीं हो सकती; जैसे मन की प्रसन्नता कभी कोई उधार नहीं ले सकता। वीरता देश-काल के अनुसार संसार में जब कभी प्रकट हुई तभी एक नया स्वरूप लेकर आई, जिसके दर्शन करते ही सब लोग चकित हो गये। कुछ बन न पड़ा और वीरता के आगे सिर झुका दिया।

जापानी वीरता की मूर्ति पूजते हैं। इस मूर्ति का दर्शन वे चेरी के फूल (Cherry Flower) की शान्त हँसी में करते हैं। क्या ही सच्ची और कौशल-मयी पूजा है! वीरता सदा ज़ोर से भरा हुआ ही उपदेश नहीं करती। वीरता कभी कभी हृदय की कोमलता का भी दर्शन कराती है। ऐसी कोमलता देख कर सारी प्रकृति कोमल हो जाती है; ऐसी सुन्दरता देख कर लोग मोहित हो जाते हैं। जब कोमलता और सुन्दरता के रूप में वह दर्शन देती है तब चेरी के फूल से भी ज़ियादा नाज़ुक और मनोहर होती है। जिस शख्स ने यूरप को 'क्रूसेड्ज़' (Crusades) के लिए हिला दिया वह उन सबसे बड़ा वीर था जो लड़ाई में लड़े थे। इस पुरुष में वीरता ने आँसुओं और आहोज़ारियों का लिबास लिया। देखो, एक छोटा सा मामूली आदमी यूरप में जाकर रोता है, कि हाय हमारे तीर्थ हमारे वास्ते खुले नहीं और पालिस्टन के राजा यूरप के यात्रियों को दिक़ करते हैं। इस आँसूभरी अपील को सुन-कर कुल यूरप उसके साथ रो उठा। यह आला दर्जे की वीरता है।

नैटिंगगेल के साये को बीमार लोग सब दवाइयों से उत्तम समझते थे। उनके दर्शनों ही से कितने ही बीमार अच्छे हो जाते थे। वह आला दर्जे का सच्चा परंद है, जो बीमारों के सिरहाने खड़ा होकर दिन रात ग़रीबों की निष्काम सेवा करता है और गंदे ज़ख़्मों को ज़रूरत के वक़्त अपने मुख से चूस कर साफ़ करता है। लोगों के दिलों पर ऐसे प्रेम का राज्य अटल है। यह वीरता पर्दानशीन हिन्दुस्तानी औरत की तरह चाहे कभी दुनिया के सामने न आवे और इतिहास के वर्क़ों के काले हर्फ़ों में न आये, तो भी संसार ऐसे ही बल से जीता है।

वीर पुरुष का दिल सब का दिल हो जाता है। उसका मन सब का मन हो जाता है। उसके ख़याल सब के ख़याल हो जाते हैं। सब के संकल्प उसके संकल्प हो जाते हैं। उसका बल सब का बल हो जाता है। वह सब का और सब उसके हो जाते हैं।

वीरों के बनाने के कारख़ाने क़ायम नहीं हो सकते। वे तो देवदार के दरख़्तों की तरह जीवन के अरण्य में ख़ुद ब ख़ुद पैदा होते हैं और बिना किसी के पानी दिये, बिना किसी के दूध पिलाये, बिना किसी के हाथ लगाये तैयार होते हैं। दुनिया के मैदान में अचानक ही सामने आ कर वे खड़े हो जाते हैं। इनका सारा जीवन अन्तर ही अन्तर होता है। बाहर तो जवाहिरात की खानों की ऊपरी ज़मीन की तरह कुछ भी दृष्ट नहीं आता। वीर की ज़िन्दगी मुश्किल से कभी कभी बाहर नज़र आती है। नहीं तो उसका स्वभाव छिपे रहने का है।

"I was a gem concealed,
Me my burning ray revealed,"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्दराओं में, ग़ारों में, छोटी छोटी झोपड़ियों में बड़े बड़े वीर महात्मा छिपे रहते हैं। पुस्तकों और अख़बारों के पढ़ने से या विद्वानों के व्याख्यानों के सुनने से तो बस 'ड्राइंग हाल' के वीर (Drawing Hall Knights) पैदा होते हैं। उनकी वीरता अनजान लोगों से अपनी स्तुति सुनने तक ख़तम हो जाती है। असली वीर तो दुनिया की बनावट और लिखावट के मखोलों के लिए नहीं जीते।

"It is not in your markets that the heroes carry their blood too."

"I enjoy my own freedom at the cost of my own reputation."

हर दफ़े दिखाव और नाम की ख़ातिर छाती ठोंक कर आगे बढ़ना और फिर पीछे हटना परले दरजे की बुज़दिली है। वीर तो यह समझता है कि मनुष्य का जीवन एक ज़रा सी चीज़ है। वह सिर्फ़ एक बार के लिए काफ़ी है। मानों इस बंदूक़ में एक ही गोली है। हाँ, कायर पुरुष इसको बड़ा क़ीमती और कभी न टूटनेवाला हथियार समझते हैं। हर घड़ी आगे बढ़ कर और यह दिखा कर कि हम बड़े हैं, फिर पीछे इस ग़रज़ से हट जाते हैं कि उनका अनमोल जीवन किसी और भी अधिक उत्तम काम के लिए बच जाय। बादल गरज गरज कर ऐसे ही चले जाते हैं; परन्तु बरसनेवाले बादल ज़रा देर में बारह इंच तक बरस जाते हैं।

कायर पुरुष कहते हैं:—"आगे बढ़े चलो।" वीर कहते हैं:—"पीछे हटे चलो"। कायर कहते हैं:—"उठाओ तलवार।" वीर कहते हैं:—"सिर आगे करो।" वीर का जीवन तो प्रकृति ने अपनी शक्तियों को एकत्र संचय (conserve) करने को बनाया है। सम्भव है कि और पदार्थ उसने अपनी शक्तियों को (dessipate) फ़िज़ूल खो देने के लिए बनाये हों। मगर वीर पुरुष का शरीर क़ुदरत की कुल ताक़तों का समूह (conservation) है। क़ुदरत का यह मरकज़ हिल नहीं सकता। सूर्य्य का चक्कर हिल जाय तो कोई बात नहीं। परन्तु वीर के दिल में जो दैवी केन्द्र (divine centre) है वह अचल है। क़ुदरत के और पदार्थों की पालिसी चाहे [illegible] बढ़ने की हो, अर्थात् अपने बल को नष्ट करने [illegible] हो, मगर वीरों की पालिसी बल को हर तरह इक्ट्ठा करने और बढ़ाने की होती है। वीर तो अपने [illegible] ही 'मार्च' करते हैं। क्योंकि हृदयाकाश के केन्द्र [illegible] खड़े होकर वे कुल संसार को हिला सकते हैं।

बेचारी मरियम का लाड़ला, ख़ूबसूरत जवान [illegible] अपने मद में मतवाला और अपने आपको शाहन्शाह [illegible] हक़ीक़ी कहनेवाला ईसा मसीह क्या उस समय [illegible] कमज़ोर मालूम होता है जब भारी सलीब उठाकर [illegible] कभी गिरता, कभी ज़ख़्मी होता और कभी बेहोश [illegible] हो जाता है? कोई पत्थर मारता है, कोई ढेला [illegible] मारता है, कोई थूकता है, मगर उस मर्द का दिल [illegible] नहीं हिलता। कोई क्षुद्रहृदय और कायर होता [illegible] तो अपनी बादशाहत के बल को गुथिया को खो देता; अपनी ताक़त को ज़ायल कर देता; और संभव है कि एक निगाह से उस सल्तनत के तख़्ते को उलट देता और मुसीबत को टाल देता। पर जिसको हम मुसीबत जानते हैं उसको वह महफ़िल समझता था। "सूली मुझे है सेज पिया की मैं दो मीठी मीठी नींद है आती।" अमर ईसा! भला दुनिया के विषय-विकार में ग़र्क़ लोग क्या जान सकते थे? अगर चार चिड़ियाँ मिलकर मुझे फाँसी का हुक्म सुना दें और मैं उसे सुनकर रोऊँ या डर जाऊँ तो मेरा गौरव चिड़ियों से भी कम हो जाय। जैसे चिड़ियाँ मुझे फाँसी देकर उड़ गईं वैसेही राजे और सल्तनतें आज ख़ाक में मिल गई हैं। सचमुच ही वह छोटा सा बाबा लोगों का सच्चा बादशाह है। चिड़ियों और जानवरों को कचहरियों के फ़ैसलों से जो डरते या मरते वे मनुष्य नहीं हो सकते। राना जी ने ज़हर के प्याले से मीरा बाई को डराना चाहा। मगर वाहरे सचाई! मीरा ने इस ज़हर को भी अमृत मानकर पी लिया। शेर और हाथी उसके सामने किये गये मगर वाहरे प्रेम! मस्त हाथी और शेर ने देवी के चरणों की धूल को अपने मस्तक पर मला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना रास्ता लिया। इस वास्ते वीर पुरुष आगे नहीं, पीछे जाते हैं। अन्दर ध्यान करते हैं। मारते नहीं मरते हैं।

वह वीर क्या जो टीन के बर्तन की तरह झट गरम और झट ठंडा हो जाता है। सदियों नीचे आग जलती रहे तोभी शायद ही वीर गरम हो और हज़ारों वर्ष बर्फ़ उसके ऊपर जमती रहे तो भी क्या मजाल जो उसकी वाणी तक ठंडी हो। उसे ख़ुद गरम और सर्द होने से क्या मतलब? कारलायल को जो आजकल की सभ्यता पर ग़ुस्सा आया तो दुनिया में एक नई शक्ति और एक नई ज़बान पैदा हुई। कारलायल अँगरेज़ ज़रूर है; पर उसकी बोली सब से निराली है। उसके शब्द मानों आग की चिनगारियाँ हैं जो आदमी के दिलों में आग सी लगा देती हैं। सब कुछ बदल जाय मगर कारलायल की गर्मी कभी कम न होगी। यदि हज़ार वर्ष संसार में दुखड़े और दर्द रोये जायँ तो भी बुद्ध की शान्ति और दिल की ठंढक एक दर्जा भी इधर उधर न होगी। यहाँ आकर फ़िज़िक्स (physics) के नियम रो देते हैं। हज़ारों वर्ष आग जलती रहे तो भी थर्मामीटर जैसा का तैसा ही रहेगा। बाबर के सिपाहियों ने और लोगों के साथ गुरु नानक को भी बेगार में पकड़ लिया। उनके सिर पर बोझ रक्खा और कहा—"चलो"। आप चल पड़े। दौड़, धूप, बोझ, मुसीबत, बेगार में पकड़ी हुई स्त्रियों का रोना, शरीफ़ लोगों का दुःख, गाँव के गाँव का जलना सब क़िस्म की दुखदायी बातें हो रही हैं। मगर किसी का कुछ असर नहीं हुआ। गुरु नानक ने अपने साथी मर्दाना से कहाः—"मर्दाना सारंगी बजाओ; हम गाते हैं।" उस भीड़ में सारंगी बज रही है और आप गा रहे हैं। वाहरी शान्ति!

अगर कोई छोटा सा बच्चा नेपोलियन के कंधे पर चढ़ कर उसके सिर के बाल खींचे तो क्या नेपोलियन इसको अपनी बेइज़्ज़ती समझकर उस बालक को ज़मीन पर पटक देगा; ताकि लोग उसको बड़ा वीर कहें? इसी तरह सच्चे वीर, जब उनके बाल दुनिया की चिड़ियाँ नोचती हैं, तब कुछ परवा नहीं करते। क्योंकि उनका जीवन आस पास वालों के जीवन से निहायत ही बढ़चढ़ कर ऊँचा और बलवान् होता है। भला ऐसी बातों पर वीर कब हिलते हैं। जब उनकी मौज आई तभी मैदान उनके हाथ है।

जापान के एक छोटे से गाँव की एक झोंपड़ी में छोटे क़द का एक जापानी रहता था। उसका नाम ओशियो था। यह पुरुष बड़ा अनुभवी और ज्ञानी था। उसे दीन और दुनिया से कुछ सरोकार न था। बड़े कड़े मिज़ाज का, स्थिर, धीर और अपने ख़यालात के समुद्र में डूबा रहने वाला पुरुष था। आसपास रहने वाले लोगों के लड़के इस साधु के पास आया जाया करते थे और वह उनको मुफ़्त पढ़ाता था। जो कुछ मिल जाता था वही खा लेता था। दुनिया की व्यावहारिक दृष्टि से वह एक क़िस्म का निखट्टू था। क्योंकि इस पुरुष ने संसार का कोई बड़ा काम नहीं किया था। उसकी सारी उम्र शान्ति और सतोगुण में गुज़र गई थी। लोग समझते थे कि वह एक मामूली आदमी है। एक दफ़े इत्तिफ़ाक़ से दो तीन फ़सलों के न होने से इस फ़क़ीर के आसपास के मुल्क में दुर्भिक्ष पड़ गया। दुर्भिक्ष बड़ा भयानक था। लोग बड़े दुखी हुए। लाचार होकर इस नंगे, कंगाल फ़क़ीर के पास मदद माँगने आये। उसके दिल में कुछ ख़याल हुआ। उनकी मदद करने को वह तैयार हो गया। पहले वह ओसाका नामक शहर के बड़े बड़े धनाढ्य और भद्र पुरुषों के पास गया और उनसे मदद माँगी। इन भले मानसों ने वादा तो किया, पर उसे पूरा न किया। ओशियो फिर उनके पास कभी न गया। उसने बादशाह के वज़ीरों को पत्र लिखे कि इन किसानों को मदद देनी चाहिए। परन्तु बहुत दिन गुज़र जाने पर भी जवाब न आया। ओशियो ने अपने कपड़े और किताबें नीलाम कर दीं। जो कुछ मिला मुट्ठी भर कर उन आदमियों की तरफ़ फेंक दिया। भला इससे क्या हो सकता था? परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओशियो का दिल इससे पूर्ण शिव रूप हो गया। यहाँ इतना ज़िक्र कर देना काफ़ी होगा कि जापान के लोग अपने बादशाह को पिता की तरह पूजते हैं। उनके आत्मा की यह एक आदत है। ऐसी क़ौम के हज़ारों आदमी इस वीर के पास जमा हैं। ओशियो ने कहाः—"सब लोग हाथ में बाँस लेकर तैयार हो जावो और बग़ावत का झंडा खड़ा करदो।" कोई भी चूँ व चरा न कर सका। बग़ावत का झंडा खड़ा हो गया। ओशियो एक बाँस पकड़ कर सब के आगे किओटो जाकर बादशाह के क़िले पर हमला करने के लिये चला। इस फ़क़ीर जनरल की फ़ौज की चाल को कौन रोक सकता था? जब शाही क़िले के सरदार ने देखा तब उसने रिपोर्ट की और आज्ञा माँगी कि ओशियो और उसकी बाग़ी फ़ौज पर बन्दूक़ों की बाढ़ छोड़ी जाय? हुक्म हुआ कि "नहीं, ओशियो तो क़ुदरत के सब्ज़ वर्क़ों को पढ़नेवाला है। वह किसी ख़ास बात के लिए चढ़ाई करने आया होगा। उसको हमला करने दो और आने दो"। जब ओशियो क़िले में दाख़िल हुआ तब वह सरदार इस मस्त जनरल को पकड़ कर बादशाह के पास ले गया। उस वक़्त ओशियो ने कहाः—"वे राजभांडार, जो अनाज से भरे हुए हैं, ग़रीबों की मदद के लिए क्यों नहीं खोल दिये जाते?" जापान के राजा को डर सा लगा। एक वीर उसके सामने खड़ा था, जिसकी आवाज़ में दैवी शक्ति थी। हुक्म हुआ कि शाही भांडार खोल दिये जायँ और सारा अन्न दरिद्र किसानों को बाँटा जाय। सब सेना और पुलिस धरी की धरी रह गई। मंत्रियों के दफ़्तर लगे के लगे रहे। ओशियो ने जिस काम पर कमर बाँधी उसको कर दिखाया। लोगों की विपत्ति कुछ दिनों के लिए दूर हो गई। ओशियो के हृदय की सफ़ाई, सचाई और दृढ़ता के सामने भला कौन ठहर सकता था? सत्य की सदा जीत होती है। यह भी वीरता का एक चिह्न है। रूस के ज़ार ने सब लोगों को फाँसी दे दी। किन्तु टालसटाय को वह दिल से प्रणाम करता है। उनकी बातों का आदर करता है। जय वहीं होती है जहाँ हृदय में पवित्रता और प्रेम है। दुनिया किसी कूड़े के ढेर पर नहीं खड़ी कि जिस मुर्ग़ ने बाँग दी वही सिद्ध हो गया। दुनिया धर्म और अटल आध्यात्मिक नियमों पर खड़ी है। जो अपने आपको उन नियमों के साथ अभेद करके खड़ा हुआ वह विजयी हो गया। आज कल लोग कहते हैं काम करो, काम करो। पर हमें तो ये बातें निरर्थक मालूम होती हैं। पहले काम करने का बल पैदा करो—अपने अन्दर ही अन्दर बुद्ध की तरह बढ़ो। आज कल भारतवर्ष में परोपकार करने का बुख़ार फैल रहा है। जिसको १०५ डिग्री का यह बुख़ार चढ़ा वह आजकल के भारतवर्ष का अवतार हो गया। आजकल भारतवर्ष में अख़बारों की टक्कर साल में गढ़े हुए वीर दर्जनों मिलते हैं। जहां किसी ने एक दो काम किये और आगे बढ़कर छाती दिखाई तहाँ कुल हिन्दुस्तान के अख़बारों ने "हीरो" (Hero) की पुकार मचाई। बस एक नया वीर तैयार हो गया। यह तो पागलपन की लहरें हैं। अख़बार लिखनेवाले मामूली सिक्के के मनुष्य होते हैं। उनकी स्तुति और निन्दा पर क्यों मरे जाते हो? अपने जीवन को अख़बारों के छोटे छोटे पैराग्राफ़ों के ऊपर क्यों लटका रहे हो? क्या यह सच नहीं कि हमारे आज कल के वीरों की जानें अख़बारों के लेखों में हैं? जो इन्होंने रंग बदला तो हमारे वीरों के रंग बदले, ओंठ ख़ुश्क हुए और वीरता की आशायें टूट पड़ीं।

प्यारे, अन्दर के केन्द्र की ओर अपनी चाल उलटो और इस दिखावटी और बनावटी जीवन की चंचलता में अपने आपको न खो दो। वीर नहीं तो वीरों के अनुगामी हो और वीरता के काम नहीं तो धीरे धीरे अपने अन्दर वीरता के परमाणुओं को जमा करो।

जब हम कभी वीरों का हाल सुनते हैं तो हमारे अन्दर भी वीरता की लहरें उठती हैं और वीरता का रंग चढ़ जाता है। परन्तु वह चिरस्थायी नहीं होता। इसका कारण सिर्फ़ यही है कि हमें वीरता का मलवा (Stuff) तो होता नहीं। सिर्फ़ ख़याली महल उसके दिखलाने के लिए बनाना चाहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

अध्यापक पी० सी० राय, एम० ए०, डी० एस० सी०।

The Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। टीन के बरतन का स्वभाव छोड़कर अपने जीवन के केन्द्र में निवास करो और सचाई के चट्टान पर दृढ़ता से खड़े हो जाव। अपनी ज़िन्दगी किसी और के हवाले करो ताकि ज़िन्दगी के बचाने की कोशिशों में कुछ भी समय ज़ाया न हो। इसलिए बाहर की सतह को छोड़कर जीवन के अन्दर की तहों में घुस जाव; तब नये रंग खुलेंगे। नफ़रत और द्वैत दृष्टि छोड़ो; रोना छुट जायगा। प्रेम और आनन्द से काम लो; शान्ति की वर्षा होने लगेगी और दुखड़े दूर हो जायँगे। जीवन के तत्त्व को अनुभव करके चुप हो जाव; धीर और गम्भीर हो जावगे। वीरों की, फ़क़ीरों की, पीरों की यह कूक है—हटो पीछे, अपने अन्दर जाव, अपने आप को देखो, दुनिया और की और हो जायगी। अपना आत्मिक उन्नति करो।

पूर्णसिंह (टोकियो विश्वविद्यालय)
इम्पीरियल फारेस्ट केमिस्ट,
देहरादून।

अध्यापक राय के आविष्कार।

अध्यापक वसु ने अब तक जितने आविष्कार किये हैं उनका संक्षिप्त वर्णन सरस्वती में प्रकाशित हो चुका है। आज उन्हीं के समकक्ष विद्वान् और विख्यात रसायनशास्त्रवेत्ता अध्यापक प्रफुल्लचन्द्र राय, एम० ए०, डी० एस० सी० की खोज और आविष्कारों का हाल लिखा जाता है।

अध्यापक राय के आविष्कारों का वर्णन करने के पहले हम पाठकों से उनका संक्षिप्त परिचय करा देना उचित समझते हैं। आप कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कालेज में रसायनशास्त्र के अध्यापक हैं और भारतवर्ष में इस विषय के अद्वितीय विद्वान् हैं। भारत ही क्यों सारे सभ्य संसार में जो प्रथम श्रेणी के रसायनशास्त्रवेत्ता समझे जाते हैं उन्हीं में आपकी भी गिनती है। योरप, अमेरिका और जापान के बड़े बड़े रसायनशास्त्री आपको आदर की दृष्टि से देखते हैं। जब जब आप इँगलैंड पधारे हैं तब तब वहाँ की वैज्ञानिक मण्डली ने आपकी अभ्यर्थना बड़ी धूमधाम से की है। सचमुच आपही जैसे विद्वानों के बल पर भारतवर्ष, इस हीनावस्था में भी, संसार के सामने अपना सिर ऊँचा करने का साहस किये हुए है।

आपने अँगरेज़ी में एक बड़ी अच्छी किताब लिखी है। इसका नाम है—"हिन्दू रसायनशास्त्र का इतिहास"। प्राचीन काल से लेकर सोलहवीं शताब्दी तक हिन्दुओं ने रसायनशास्त्र-सम्बन्धी जितने आविष्कार किये हैं और इस विषय पर जितने ग्रंथ लिखे हैं उन सबका संक्षिप्त वर्णन इस ग्रंथ में है। इसका पहला भाग प्रकाशित हुए कई वर्ष हुए। दूसरा भाग हाल ही में प्रकाशित हुआ है। इस पुस्तक को लिखकर आपने शिक्षित संसार को यह दिखा दिया है कि प्राचीन हिन्दू भी वैज्ञानिक तत्त्व खोजने और नये नये आविष्कार करने की योग्यता रखते थे और जिस समय संसार की अन्य जातियाँ जंगली जानवरों का सा जीवन व्यतीत करती थीं उस समय वे सभ्यता के शिखर पर विराजमान थे। इस उपकार के लिए हिन्दू जाति आपकी सदा ऋणी रहेगी।

यह सुनकर पाठकों को प्रसन्नता होगी कि राय महाशय की विद्या केवल मौखिक या किताबी ही नहीं है। आपका ख़याल है कि जो विद्या देश के लिए लाभदायक नहीं उसका होना न होना बराबर है। इस विचार के अनुसार अपनी विद्या से अपने देश-वासियों को लाभ पहुँचाने के इरादे से आपने एक कारख़ाना खोला है। इसका नाम है—The Bengal Chemical and Pharmaceutical Works, Ltd. इस कारख़ाने की नींव १८९२ ई० में पड़ी थी। इस समय यह ख़ूब उन्नत दशा में है। इसमें रासायनिक पदार्थ और ओषधियाँ बनाई जाती हैं। इस कारख़ाने में चीज़ें जिस उत्तमता और सफ़ाई से बनाई जाती हैं उसकी प्रशंसा बड़े बड़े अँगरेज़ों तक ने की है। इस कारख़ाने से दो मुख्य लाभ हैं। एक तो यह कि हर साल लाखों रुपये की दवाइयाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो विदेश से यहाँ आती हैं उनके यहीं तैयार होने से देश का धन देशही में रहेगा। दूसरे यह कि शीत-प्रधान देशों की बनी हुई दवाइयाँ गर्म देशवासी हिन्दुस्तानियों के लिए उतनी गुणकारी नहीं होतीं जितनी वहां वालों के लिए। अतएव इस कारख़ाने की बनी हुई दवाइयाँ विदेशी दवाइयों की अपेक्षा अधिक लाभदायक हैं; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। इसमें जो ओषधियाँ बनाई जाती हैं वे भारतवासियों की अवस्था के अनुकूल होती हैं।

डाक्टर राय ने अब तक जितने आविष्कार किये हैं उन सबका पूरा हाल इस छोटे से लेख में नहीं लिखा जा सकता। इसके सिवा आविष्कार-विषयक बातें इतनी जटिल हैं कि उनका वर्णन साधारण पाठकों को रुचिकर भी नहीं हो सकता। इसलिए हम आपके आविष्कृत तत्त्वों की केवल मुख्य मुख्य और मोटी मोटी बातों का वर्णन यहां पर करते हैं।

गन्धक के तेज़ाब (Sulphuric Acid) के साथ ताँबा, लोहा, निकल आदि धातुओं के मिलने पर एक तरह का यौगिक पदार्थ उत्पन्न होता है। तूतिया, और हीराकसीस आदि इसी जाति के पदार्थों में हैं। इन चीज़ों के आपस में मिलने पर कई नई चीज़ें तैयार होती हैं। डाक्टर राय ने पहले पहल तूतिया जाति के पदार्थों को लेकर खोज करना प्रारम्भ किया। इससे उन्हें इस विषय की कई नई बातें मालूम हुईं। इन सबका विवरण उन्होंने १८८८ ई० में एडिनबरा रायल सोसाइटी की पत्रिका में प्रकाशित कराया। यह देखकर विलायत के विद्वान् आपकी प्रतिभा पर इतने मोहित हो गये कि उन्होंने आपको डी० एस० सी०, अर्थात् विज्ञानाचार्य, की प्रतिष्ठित उपाधि से विभूषित किया।

पाठकों को यह बतलाने की ज़रूरत नहीं कि कुछ दिनों से दुष्ट लोग घी, दूध, तेल आदि खाद्य पदार्थों में तरह तरह की अपवित्र और अस्वास्थ्यकर चीज़ें मिला देते हैं। इससे जो हानि होती है वह अकथनीय है। इसलिए सर्वसाधारण को एक ऐसी तरकीब जानने की बड़ी ज़रूरत थी जिससे वे यह निर्णय करसकें कि कौन चीज़ शुद्ध है और कौन अशुद्ध। कोई चौदह वर्ष हुए राय महाशय का ध्यान इस तरफ़ गया। थोड़ेही परिश्रम से उन्होंने ऐसी तरकीब ढूँढ निकाली और सन् १८९४ एशियाटिक सोसाइटी के एक अधिवेशन में घी, दूध, तेल आदि का स्वरूप और उसकी विशुद्धि निर्णय करने की रासायनिक विधि लोगों को बताई। ग्लिसरिन (Glycerine) के साथ चर्बीदार तेज़ाब (Fatty Acid) के मिलने से तेल की जाति के अधिकांश पदार्थ उत्पन्न होते हैं। चर्बीदार तेज़ाब कई तरह का होता है; इसीसे तेल भी कई तरह के होते हैं। डाक्टर राय महाशय ने इसीके आधार पर तेलों की खोज करना प्रारम्भ किया। विशुद्धि-परीक्षा की पूर्वोक्त तरकीब इसी खोज का फल है।

१८९६ ई० से डाक्टर राय ने पारा सम्बन्धी खोज शुरू की। इस खोजसे इनका नाम सारे संसार में फैल गया। पारे की आलोचना जितनी इस देश में हुई है उतनी शायद और किसी देश में न हुई होगी। प्राचीन काल में भारतवर्ष ही से पहले पहल इसका गुण और माहात्म्य संसार में प्रचलित हुआ था। यह देखकर कि पारे के मेल से तरह तरह की उत्कृष्ट ओषधियाँ तैयार होती हैं, हमारे पूर्वज इसे श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। पीछे इसका माहात्म्य यहाँ तक बढ़ा कि प्राचीन हिन्दू इसे संसारसागर से पार उतारनेवाला समझने लगे। इसीसे संस्कृत में इसका नाम पारद अर्थात् पार उतारने वाला पड़ा। रसेन्द्रचिन्तामणि नामक प्राचीन ग्रंथ के रचयिता का कथन है कि—"रसविद्या शिवेनोक्ता" अर्थात् रसविद्या शिवजी की कही हुई है। इनका विश्वास था कि पारे का प्रचार इस जगत् में स्वयं भगवान् शिव ने किया है। तान्त्रिकों का मत है कि पारा महादेव ही का अंश स्वरूप है और पञ्चभूतों के मिलकर बना है। रसार्णव नामक तन्त्र ग्रंथ में पारे को "पञ्चभूतात्मकः सूतस्तिष्ठत्येकः सदाशिवः" कहा है। प्राचीन हिन्दू इसके नाना गुणों से इतने मोहित हो गये थे कि उन्होंने "रसेश्वरदर्शन"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामक इस विषय का एक ग्रंथ तक लिख डाला। यदि पारा आम्लजन (Oxygen) और गन्धक आदि के साथ मिलाया जाय तो विचित्र वर्णों के बहुत से यौगिक पदार्थ उत्पन्न होते हैं। प्राचीन हिन्दू इसके इस गुण को जानते थे। जिस समय और देशों में रसायनशास्त्र का अङ्कुर भी न उगा था उस समय भारतवर्ष में पारा-विषयक सैकड़ों तरह की आलोचनायें होती थीं।

डाक्टर राय ने पारे के सम्बन्ध में जो खोज की है उसका हाल सुनिए। ऐसे कई तेज़ाब हैं जिनसे मिलाने पर पारा बिलकुल मिल जाता है। पर शोरे के तेज़ाब (Nitric Acid) के साथ वह जैसी आसानी से मिलजाता है वैसे औरों के साथ नहीं। इस तरह गलाने पर उसे आँच देने की भी ज़रूरत नहीं पड़ती। इस रासायनिक प्रक्रिया से पारे से कई यौगिक पदार्थ उत्पन्न होते हैं। अनेक देशों के विद्वान् कोई सा वर्ष से इन यौगिक पदार्थों के स्वरूप का निर्णय करने की चेष्टा करते आये हैं। पर उनकी समझ में न आया कि गलने के बाद पारा कौनसा यौगिक पदार्थ उत्पन्न करता है। इससे उन लोगों की सौ वर्ष की सारी मिहनत व्यर्थ गई। राय महाशय ने थोड़ेही दिनों की खोज से उस अज्ञात यौगिक पदार्थ का पता लगा लिया। उसका नाम है—(Mercurous Nitrite)। जिस जटिल और रहस्यमय बात को सारे सभ्य संसार के समस्त रसायनशास्त्रवेत्ता सैकड़ों वर्ष कठिन परिश्रम करके भी न जान सके थे उसे अकेले राय महाशय ने बहुत थोड़े दिनों का खोज से जान लिया—यह देखकर दुनिया भर के वैज्ञानिक दंग रह गये। आपके अपूर्व आविष्कार की धूम मच गई। आपकी असाधारण प्रतिभा के स्तुतिगान से सारा संसार गूँज उठा।

डाक्टर राय की इस खोज का फल जानकर टोकियो इञ्जिनियरिंग कालेज के प्रधान अध्यापक डाक्टर डायवर्स ने हिन्दुओं की सूक्ष्म विचारशीलता और परीक्षाकुशलता की प्रशंसा करते हुए जो कुछ कहा था उसका सारांश यह है:—

"विदेशी लोग बहुत दिनों से यह कहते चले आये हैं कि किसी चीज़ की खोज और परीक्षा करके कोई तत्त्व आविष्कार करने की शक्ति भारतवासियों में नहीं है। भारतवासी इस निन्दा को अब तक चुपचाप सहते रहे। पर आचार्य्य प्रफुल्लचन्द्र और जगदीशचन्द्र ने हिन्दुस्तानियों के इस जातीय कलङ्क को दूर कर दिया और प्रत्यक्षरूप से यह दिखा दिया कि मौक़ा पाकर भारतवासी भी योरप और अमेरिका के बड़े बड़े विज्ञानविशारदों की बराबरी कर सकते हैं। योरप के बड़े बड़े पण्डित बहुत दिन खोज करके भी पारे से बने हुए जिस यौगिक पदार्थ को न जान सके उसे हिन्दू रासायनिक डाक्टर राय ने बहुत थोड़े दिनों की खोज से जान लिया"।

पारे के इस नवीन यौगिक पदार्थ के आविष्कार का वृत्तान्त पहले पहल बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के जरनल में प्रकाशित हुआ। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह पत्र वैज्ञानिक पत्र नहीं। पर राय महाशय के आविष्कार के महत्त्व को देखकर जर्मनी-निवासी रसायनशास्त्र-वेत्ताओं ने इस लेख का जर्मन भाषा में अनुवाद किया और उसे अपने देश के सर्वप्रधान वैज्ञानिक पत्र में प्रकाशित किया। जिस तत्त्व के आविष्कार करने में पेलीगट (Peligot), नीमैन (Niemann), लैंग (Lang) आदि विख्यात रसायनशास्त्रवेत्ताओं ने हार मानी थी, एक हिन्दू वैज्ञानिक की उसमें जीत हुई—यह देख कर जर्मन-विद्वान् बड़े विस्मित हुए और आविष्कर्त्ता की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की।

प्राचीन काल से ताँबा, चाँदी, पारा आदि धातु गलाने के लिए गन्धक, शङ्ख, शोरे आदि का तेज़ाब काम में लाया जाता है। पर ये धातु किस भीतरी गूढ़ कारण से गल जाते हैं—यह बात कोई न जान सका। अध्यापक राय की खोज के द्वारा इस अन्धकाराच्छन्न और जटिल विषय पर कुछ प्रकाश पड़ा है। इस सम्बन्ध में डाक्टर डाइवर्स ने जो तत्त्व निर्णय किये हैं वे वैज्ञानिक समाज में प्रामाणिक माने जाते हैं। विलायत के एक वैज्ञानिक पत्र में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने इस विषय पर एक लेख लिखा है। उसकी भूमिका में उन्होंने स्वीकार किया है कि यदि डाक्टर राय की खोज की सहायता उन्हें न मिलती तो यह लेख वे कदापि न लिख सकते।

पाठकों को शायद यह मालूम होगा कि खट्टे और खारी पदार्थों के संयोग से एक नमकीन यौगिक पदार्थ उत्पन्न होता है। इसमें खट्टी या खारी चीज़ का कोई गुण नहीं रहता। डाक्टर राय का आविष्कार किया हुआ मारक्यूरस नाइट्राइट (Mercurous Nitrite) इसी प्रकार का नमकीन पदार्थ है। खटाई का भाग इसमें नाइट्रस एसिड (Nitrous Acid) से प्राप्त होता है और खारीपन का अंश पारे से आता है। शोरे के तेज़ाब (Nitric Acid) की अपेक्षा नाइट्रस एसिड (Nitrous Acid) में आक्सजन (Oxygen) के परमाणु कम पाये जाते हैं। दोनों तेज़ाबों में यही एक मात्र अन्तर है। नाइट्रस एसिड को Ho—No या H—NO^2 इन दो प्रकार के साङ्केतिक चिह्नों द्वारा प्रकट करते हैं। एक में हाइड्रोजन के साथ नाइट्रोजन मिली है; दूसरे में नहीं। साङ्केतिक चिह्नों से यह मालूम होता है कि यौगिक पदार्थ के परमाणुओं का सम्बन्ध आपस में कैसा है। इस आणविक गठन से द्रव्य का रूप, क्रिया और गुण निरूपित किया जाता है। इन्हीं कारणों से पदार्थ के साङ्केतिक चिह्न रसायनशास्त्र के आवश्यक अङ्ग हो गये हैं।

यह जानने के लिए कि नाइट्रस एसिड का आणविक गठन कैसा है, राय महाशय ने इसे कई धातुओं से मिलाया और उनसे जो यौगिक पदार्थ उत्पन्न हुए उनकी परीक्षा की। इससे उन्हें पूर्वोक्त एसिड का गठन मालूम होने के सिवा दो नये अङ्गार-मूलक पदार्थों का पता लगा। इनके नाम Ethyle Nitrite और Nitrocthane हैं। इसके बाद राय महाशय ने हाइपोनाइट्रस एसिड (Hiponitrous Acid) नामक और एक नाइट्रोजन-घटित तेज़ाब का आणविक गठन जानने के लिए खोज करना प्रारम्भ किया। टोकियो इञ्जिनियरिंग कालेज के प्रधान अध्यापक डाक्टर डाइवर्स ने इस तेज़ाब से उत्पन्न यौगिक पदार्थ हाइपोनाइट्राइट (Hyponitrite) आविष्कार किया था। इसके बाद कई रसायन-शास्त्रियों ने इसके सम्बन्ध के कई नये तत्त्व आविष्कार किये। मूल तेज़ाब के विश्लेषण से मालूम हुआ है कि उससे हास्योद्दीपक वायु (Nitrous Oxide) उत्पन्न होती है। इसके सिवा डाक्टर राय ने यह भी साबित कर दिया है कि यदि इस तेज़ाब को धीरे धीरे विश्लेषण किया जाय तो उससे शोरे का तेज़ाब (Nitric Acid) भी उत्पन्न हो सकता है। इसी आविष्कार के द्वारा हाइपोनाइट्रस एसिड का आणविक गठन भी ठीक ठीक मालूम हो गया है।

डाक्टर डाइवर्स ने हाइपोनाइट्राइट की बहुत दिनों तक गवेषणा की है। इसीसे आधुनिक रसायन-शास्त्रवेत्तागण उनकी मीमांसा को सोलहों आने सत्य समझते हैं। जब डाक्टर राय महाशय का हाइपोनाइट्राइट सम्बन्धी लेख इँगलैण्ड की सर्व-प्रधान रासायनिक सभा की पत्रिका में प्रकाशित हुआ तब डाक्टर डाइवर्स ने इसके सम्बन्ध में अपनी जो राय लिखी थी उसका यहाँ पर उद्धृत करना हम उचित समझते हैं। डाक्टर साहब लिखते हैं:—

"This interesting observation throws much light on the nature of the decomposition of silver and mercury hiponitrites by heat. Through Ray and Ganguli's observations we are, at length, in possession of much knowledge of what the products are, when hiponitrous acid decomposes without explosion by the heat generated by liberating it from its salts."

हमने इस लेख में डाक्टर राय महाशय के आविष्कारों में से केवल कुछ का स्थूल विवरण लिखा है। इसीसे पाठकों को उनकी असाधारण प्रतिभा का परिचय मिल जायगा। ईश्वर से प्रार्थना है कि राय महाशय नित्य नये आविष्कार करते हुए चिर काल तक भारत का मुख उज्ज्वल करते रहें।

उदयनारायण वाजपेयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

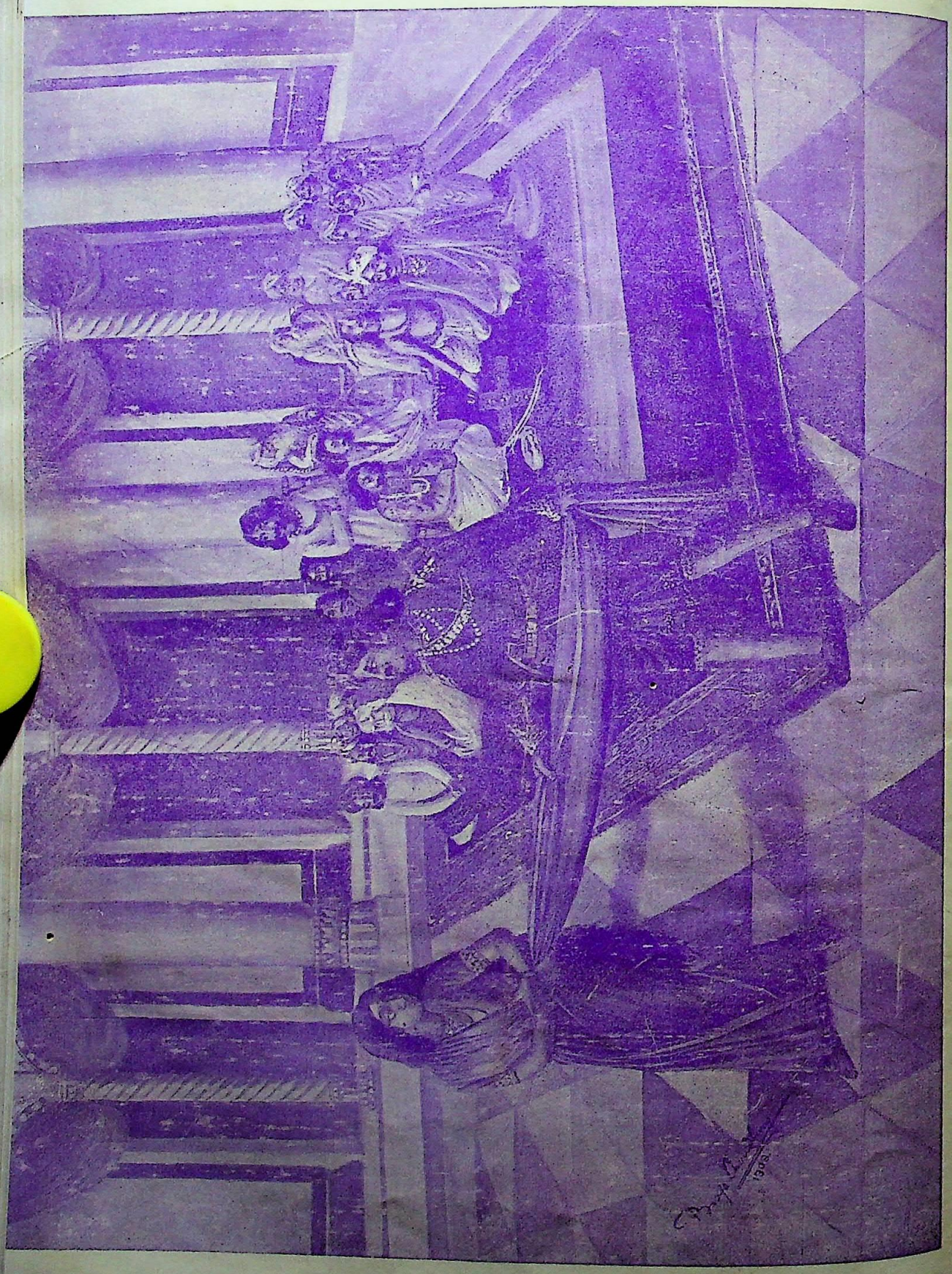

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्रौपदी-दुकूल।

१—राजसूय के समय देखकर
विभव पाण्डवों का भारी,
ईर्ष्या-वश मन में दुर्योधन
जलने लगा दुराचारी।
तिस पर मय-कृत सभा-भवन में
जो उसका अपमान हुआ,
कुरुक्षेत्र के भीषण रण का
मानों वही विधान हुआ॥

२—धर्म्मराज का सभा-भवन वह
हृदय सभी का हरता था;
उन्नत नभस्थली का विधु-मुख
मानों चुम्बन करता था।
चित्र विचित्र रुचिर रत्नों से
मण्डित यों छबि पाता था—
इन्द्र-धनुष-भूषित मेघों को
नीचा सा दिखलाता था॥

३—वह अद्भुत छबि से "अवनी का
इन्द्र-भवन" कहलाता था;
अपने कर्त्ता के कौशल को
भली भाँति दरसाता था।
जल में थल थल में जल का वह
भ्रम मन में उपजाता था;
इस कारण भ्रमिष्ठ लोगों की
बहुधा हँसी कराता था॥

४—इसी भ्रान्ति से जल विचार कर
वहाँ सुयोधन ने थल को,
ऊँचा किया वसन-वर अपना
करके चपल दृगञ्चल को।
तथा अचल निर्मल नीलम सम
था ललाम जल भरा जहाँ
गमनशील हो थल के भ्रम से
वह उसमें गिर पड़ा वहाँ॥

५—उसकी ऐसी दशा देखकर
हँस कर बोले भीम वहीं—
"अन्धे के अन्धा होता है
इसमें कुछ सन्देह नहीं"।
इस घटना से ऐसा दुस्सह
मर्म्मान्तक दुख हुआ उसे;
जब तक जीवित रहा जगत में
फिर न कभी सुख हुआ उसे॥

६—वीर पाण्डवों से तब उसने
बदला लेने की ठानी;
किन्तु प्रकट विग्रह करने में
कुशल नहीं अपनी जानी।
तब उनका सर्वस्व जुए में
हरना उसने ठीक किया—
कार्य्याकार्य्य विचार न करता
स्वार्थी जन का मलिन हिया॥

७—भीष्मपितामह और विदुर ने
उसको सब विध समझाया;
किन्तु एक उपदेश न उनका
उस दुर्मति के मन भाया।
उनका कहना वन-रोदन सा
उसके आगे हुआ सभी—
मन के दृढ़ निश्चय को विधि भी
पलटा सकता नहीं कभी।

८—"जुआ खेलना महा पाप है"—
करके भी यह बात विचार,
दुर्योधन के आमन्त्रण को
किया युधिष्ठिर ने स्वीकार।
हो कुछ भी परिणाम अन्त में,
धर्म्मशील वर-वीर तथापि
निज प्रतिपक्षी की प्रचारणा
सह सकते हैं नहीं कदापि॥

९—छल से तब शकुनी ने उनका
राजपाट सब जीत लिया,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भ्राताओं के सहित स्व-वश कर
सब विध विधि-विपरीत किया।
फिर कृष्णा का पण करने को
प्रेरित किये गये वे जब
हार पूर्ववत् गये उसे भी
रख कर द्यूत-दाँव पर तब॥

१०—इस घटना से दुर्योधन ने
मानों इन्द्रासन पाया;
भरी सभा में उस पापी ने
पाञ्चाली को बुलवाया।
होने से ऋतुमती किन्तु वह
आ न सकी उस समय वहाँ;
भेजा इस पर दुःशासन को
होकर उसने कुपित महा॥

११—राजसूय के समय गये थे
जो मन्त्रित जल से सींचे
जाकर वही याज्ञसेनी के
कच दुःशासन ने खींचे!
बलपूर्वक वह उस अबला को
वहाँ पकड़ कर ले आया;
करने में अन्याय हाय! यों
नहीं ज़रा भी शरमाया॥

१२—प्रबल-जाल में फँसी हुई ज्यों
दीन मीन व्याकुल होती,
विवश विकल द्रौपदी सभा में
आई त्यों रोती रोती।
अपनी यह दुर्दशा देखकर
उसको ऐसा कष्ट हुआ,
जिसके कारण हो पीछे से
सारा कुरुकुल नष्ट हुआ॥

१३—दुर्योधन-दुःशासन ने यह
समझी निज सुख की क्रीड़ा;
किन्तु पाण्डवों ने इस दुख से
पाई प्राणान्तक पीड़ा।
तो भी वचन-बद्ध होने से
ये सब पापाचार सहे;
मन्त्रों से कीलित भुजङ्ग सम
जलते ही वे वीर रहे॥

१४—"मुझे एक वस्त्रावस्था में
केश खींच लाया जो हाय!
दुष्ट-बुद्धि दुःशासन का
यह प्रकट देख कर भी अन्याय।
सभ्य, ख्यातनामा ये सारे
सभा-मध्य बैठे चुप चाप!
तो क्या धर्म्म-हीन धरणी में
शेष रह गया केवल पाप"?

१५—सुनकर रुदन द्रौपदी का यों
कहा कर्ण ने तब तत्काल—
"निश्चय सभी स्वल्प है जो कुछ
हो ऐसी असती का हाल।
अच्छा, दुःशासन! यह जिसका
बार बार लेती है नाम
ले उतार इसके शरीर से
वह भी एक वस्त्र बेकाम"॥

१६—कर्ण-कथन सुन दुःशासन ने
पकड़ लिया द्रौपदी-दुकूल
किया क्रोध से भीमसेन ने
प्रण तब यों अपने को भूल—
"दुःशासन का उर विदीर्ण कर
शोणित जो मैं करूँ न पान
तो अपने पूर्वज लोगों की
पा न सकूँ मैं गति-प्रधान"॥

१७—ग्रसी राहु से चन्द्रकला सम
कृष्णा तब अति अकुलानी;
एक निमेष मात्र हो में सब
निज लज्जा जाती जानी।
ऐसे समय एक हरि को ही
अपना रक्षक जान वहाँ;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगी उन्हीं को वह पुकारने
धर के उनका ध्यान वहाँ ॥

१८—"हे अन्तर्यामी मधुसूदन !
कृष्णचन्द्र ! करुणासिन्धो !
रमा-रमण, दुख-हरण, दयामय,
अशरणशरण, दीन-बन्धो !
मुझ अनाथिनी की अब तक तुम
भूल रहे हो सुधि कैसे ?
नहीं जानते हो क्या केशव !
कष्ट पा रही हूँ जैसे ॥

१९—"ज़रा देर में ही अब मेरी
लुटी लाज सब जाती है ;
क्षण क्षण में आपत्ति भयङ्कर
अधिक अधिक अधिकाती है ।
करती हुई विकट ताण्डव सी
निकट मृत्यु दिखलाती है ;
केवल एक तुम्हारी आशा
प्राणों को अटकाती है ॥

२०—"दुःशासन-दावानल-द्वारा
मेरा हृदय जला जाता ;
विना तुम्हारे यहाँ न कोई
रक्षक अपना दिखलाता ।
ऐसे समय तुम्हें भी मेरा
ध्यान नहीं जो आवेगा ,
तो हा ! हा ! फिर अहो दयामय !
मुझको कौन बचावेगा ?

२१—"क्रिया-हीन ये चित्र लिखे से
बैठे यहाँ मौन धारे ;
मेरी यह दुर्दशा सभा में
देख रहे गुरुजन सारे !
तुम भी इसी भाँति सह लोगे
जो ये अत्याचार हरे !
निस्संशय तो हम अनाथ जन
बिना दोष ही हाय ! मरे ॥

२२—"किसी समय भ्रम-वश जो कोई
मुझ से गुरुतर दोष हुआ—
हो जिससे मेरे ऊपर यह
ऐसा भारी रोष हुआ ।
तो सदैव के लिये भले ही
मुझ को नरक-दण्ड दीजे ;
किन्तु आज इस पाप-सभा में
लज्जा मेरी रख लीजे ॥

२३ "सदा धर्म्म-संरक्षण करने ,
हरने को सब पापाचार ,
हे जगदीश्वर ! तुम धरणी पर
धारण करते हो अवतार ।
फिर अधर्म्म-मय अनाचार यह
किस प्रकार तुम रहे निहार
क्या वह कोमल हृदय तुम्हारा
हुआ वज्र मेरी ही वार ?

२४—"शरणागत की रक्षा करना
सहज स्वभाव तुम्हारा है ;
वेद-पुराणों में अति अद्भुत
विदित प्रभाव तुम्हारा है ।
सो यदि ऐसे समय न मुझ पर
दया-दृष्टि दिखलाओगे ,
विरुद-भ्रष्ट होने से निश्चय
प्रभु पीछे पछताओगे ॥

२५—"जब जिस पर जो पड़ी आपदा
तुमने उसे बचाया है ,
तो फिर क्यों इस भाँति दयामय !
तुमने मुझे भुलाया है ।
इस मरणाधिक दुख से जो मैं
मुक्ति आज पा जाऊँगी ,
गणिका, गज, गृद्धादिक से मैं
कम न कीर्त्ति फैलाऊँगी ॥

२६—"जो अनिष्ट मन से भी मैंने
नहीं किसी का चाहा है ;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो कर्त्तव्य धर्म्मयुत अपना
मैंने सदा निबाहा है।
तो अवश्य इस विपत्-सिन्धु से
तुम मुझको उद्धारोगे;
निश्चय दया-दृष्टि से माधव!
मेरी ओर निहारोगे" ॥

२७—करती हुई विनय यों प्रभु से
कृष्णा ने दृग मूँद लिये;
क्षण भर देह-दशा को भूले
खड़ी रही वह ध्यान किये।
तब करुणामय कृष्णचन्द्र ने
दूर किया उसका दुख घोर;
खींच खींच पट हार गया पर
पा न सका दुःशासन छोर!!!

मैथिलीशरण गुप्त।

कविता का दरबार।

आह! कड़ाकेदार गरमी पड़ने लगी है। थोड़ी थोड़ी लू भी चलने लगी है। मगर न मालूम नागपुर में इस साल कैसे बुरे मुहूर्त में प्लेग ने पदार्पण किया है कि टाले ही नहीं टलता। भारत भर में जबसे प्लेग के पैर पड़े हैं तबसे वह डेरा ही जमाता जाता है। घटने का तो नाम ही नहीं है। हम जानते थे कि जाड़े के घट जाने पर हम सुख से रह सकेंगे; मगर यहाँ तो कुछ बात ही और है। ओफ़! दिन ब दिन 'केस' घटने के बदले बढ़ने लगे। आज पचास तो कल साठ और परसों अस्सी! यहाँ तक कि नबे तक नम्बर पहुँचा। तो भी हम अपने काम पर मुस्तैद रहे; ज़रा भी विचलित नहीं हुए। मगर अब बात बदल गई। अब हमारे समीप भी धड़ाधड़ आदमी मरने लगे। कुटुम्बियों के रोने पीटने के मारे नींद भी दुर्लभ हो गई। हैं! यह क्या!! आज हमें भी मामूली सा ज्वर!!! अरे रे अब तो रहा सहा साहस भी कूच करने लगा। साथी लोग भी लगे। ऐसे विकट प्रसङ्ग पर हमने हठ से जगह रह कर अकाल-मृत्यु का आहार अनुचित समझा। दूसरे ही दिन एक मास छुट्टी लेली और सुबह की गाड़ी से रवाना हो रास्ते में बी० एन० रेलवे की तक़लीफ़ों को सहते हुए रात को जबलपूर पहुँचे। यहाँ हमारा विचार बदल गया। हम सीधे घर न जाकर नरसिंहपुर ज़िले के अन्तर्गत ब्रह्माण्ड-क्षेत्र में पुण्यतोया भगवती नर्मदा के दर्शनार्थ चल पड़े। दिन के दो या तीन बजे होंगे जब हमें भगवती रेवा के दर्शन हुए। स्नानादि से निवृत्त हो थोड़ी देर भी घूमने न पाये होंगे कि दिन भर के थके माँदे भगवान् दिननाथ विश्रान्ति-लाभ के लिए और पुत्र-कलत्रादि के संरक्षणार्थ आतुर होकर अस्ताचलावलम्बी हो पश्चिम दिग्वधू की ओट में जा छिपे।

हम भी सायङ्कालीन सन्ध्या और भजन-पूजन से छुट्टी पा भोजन करने लगे। इतने में धीरे पास की घड़ी में नौ बजे। हम टापू की उस ओर पर जा लेटे जो कुछ दक्षिण दिशा का आश्रय लिये हुए अपनी आराध्य देवी भगवती नर्मदा का अनिमेष वृत्ति से दर्शन कर रही है। हम पाठकों के ज्ञान के लिए इतना और कह देना आवश्यक समझते कि यह टापू श्रीनर्मदा जी की धारा के बीच में है। इस टापू ने बीच में खड़े होकर कुछ दूर के श्रीनर्मदा जी की दो धारायें बना दी हैं। टापू में कृत्रिम उद्यान है। मनोहर पुष्प कुसुमित हो हैं। उनका सुरभि-सुगन्ध टापू भर में फैल रहा है। नर्मदा नदी का शीतल-जल-कण-मिश्रित शीतल-मन्द-सुगन्धमय हो रहा है। अहा! किनारे पर दीपदान के समय के मङ्गल-वाद्य रहे हैं। इस तीर पर श्रोत्रिय ब्राह्मणों के चेले गान कर रहे हैं। मझधार में वे कनक-दीपक हुए और भी उस नील जल की सुषमा बढ़ा जिन्हें सती स्त्रियों ने भगवती की सायङ्कालीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के उपलक्ष्य में तरङ्गों के अधीन कर दिया है। वे तरङ्गों में इधर उधर झोंके खाते हुए बड़े ही मनोज्ञ मालूम होते हैं। एक एक दीपक-ज्योति की चतुर्गुणित-ज्योतियाँ और प्रकाश का आभास लक्षित होता है। हम तो इस मनोहर छवि को देखकर आनन्दमग्न हो गये।

* * *

नहीं कह सकते कि यह आनन्द कब तक बना रहा। हमें तो देह की सुध बुध ही न रही। एक युग सा बीत गया। हम पूजनीय गुरुजी महाराज के समीप बैठे बैठे कविकुल-चूड़ामणि कालिदास का "अचिन्तनीयस्तु तव प्रभावो मनीषितं द्यौरपि येन दुग्धा" यह पद्य पढ़ रहे थे। प्रसङ्गवश कवियों की चर्चा चल पड़ी। हमारे गुरुजी के एक सहचर भी, जो कि उस समय काशी जी से आये थे, वहीं बैठे थे। हमभी अपने सहपाठियों सहित मौजूद थे। कालिदास की प्रशंसा होने लगी। धीरे धीरे अन्यान्य कवियों की बातें भी हुईं। वार्तालाप करते करते गुरुजी ने कविता के दरबार की भी बात कही और उस दरबार की कुल अनुपम छटा का भी दिग्दर्शन कराया। न मालूम वह कैसी घड़ी थी जब हमने उस दरबार की लीला का हाल सुना। उस दिन से हमारे ऊपर निशि दिन यही धुन सवार रहती थी कि जैसे बने कविता के दरबार के दर्शन करें। रात दिन यही लालसा रहती थी। बहुत उपाय किये; मगर हम अपने इस शोख़चिल्ली के से विचार से अपना पीछा छुड़ा पाये। क्या किया जाय, लाचारी थी।

* * *

देखता क्या हूँ कि एक उम्दा, साफ़, सुथरा और सीधा राज-मार्ग है। दोनों ओर पतली सी वाटिका लगी हुई है। सुरभि समीर महक रही है। कुसुमित गुच्छों पर मधुप गुञ्जार कर रहे हैं। अहा! इतने में ही एक नयनाभिराम रमणी दृग्गोचर हुई। नहीं कह सकते कि वह ललना धीरे धीरे हमारे पास आई या उसने हमें ही प्रेम-पाश से जकड़ कर अपने पास खींच लिया। कुछ भी नहीं कह सकते। अरे! यह क्या, कहा न सुनी, जान न पहचान, उसने तो हमारा चुपचाप पहुँचा ही ग्रहण कर लिया! हम अवाक् रह गये। जिह्वा के रहते हुए भी उतने समय के लिए हम मूकवत् हो गये। उस रमणी ने मुख से तो कुछ भी नहीं कहा; पर चुपचाप हमें साथ लेकर आगे चलने लगी। अब तक हम भी चुप थे और वह भी। अब हमें उस रमणी का नाम मालूम हुआ। उसका नाम था कल्पना। वह एक हाथ से हमारा करावलम्बन किये थी और दूसरे से कविता देवी के अनेक चमत्कार दिखलाती जाती थी। जान पड़ता है, हम कल्पना के साथ बड़ी दूर चले आये। धीरे धीरे संसार की चीज़ें अदृश्य होने लगीं। इतने में ही एक मनोमोहक वाद्यध्वनि धीरे धीरे कर्ण-कुहरों में प्रविष्ट होकर हमारे मन को चुराने का प्रयत्न करने लगी। ओफ़! यह क्या तमाशा! हमें थोड़ी देर में ऐसा आभास होने लगा कि समस्त ब्रह्माण्ड नादब्रह्म में लीन हो गया है। हमारी वृत्ति भी सङ्गीतमय हो गई।

हमने दरबार में प्रवेश किया। देखते हैं तो सब अलौकिक, सभी कुछ आनन्दमय। हमें जान पड़ा कि स्वयं प्रकृति देवी ने ही यहाँ का सब इन्तज़ाम किया है। उन्हीं की निगरानी में यहाँ की सब चीज़ें क़रीने से लगाई गई हैं। अहा! क्याही रमणीक बाग़ है। इसकी लम्बाई चौड़ाई एक सी है। उन मनोहर सुगन्धित द्रुमों से लिपटी हुई वनलतायें प्रिया-प्रीतम की सी जोड़ी लगती थीं। चश्मों से जो पानी बह रहा था वह स्फटिक के सदृश स्वच्छ था। बग़ीचे में मोर, सुग्गे, बुलबुलें, कोयल और मैनायें स्वच्छन्द विहार करती फिरती थीं। बाग़ के बीच में एक सुन्दर सरोवर था, जिसका शुभ्रजल आकाश के समान नीला और घाट संगमरमर से लाख दर्जे अच्छे किसी अदृष्ट-पूर्व पाषाण से मण्डित थे। पास ही कैलास गौर एक हिमपूरित पर्वत आकाश से बातें कर रहा था। जब हमने गगनमण्डल में मन्द मन्द सञ्चार करने वाले भगवान् निशिनाथ और उनके परिचारक-गण तारकपुञ्ज को देखा तब ऐसा जान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ा कि मानो स्वयं प्रकृति देवी ने रुपहली पोशाक पहनी है और नक्षत्ररूपी आभूषणों से विभूषित होकर मस्तक पर चन्द्ररूपी मुकुट धारण किया है। भला जब प्रकृति देवी ही शृंगार करने चलीं तब कोई भी कमी रह सकती है?

रत्न-जटित सिंहासन पर कविता-देवी विराजमान थीं। अहा! उनका वह निश्चिन्त वदन-मण्डल क्या ही कमनीय था। सारे अंगों में थोड़े से आभूषण "प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी" के समान और भी मनोज्ञ थे। मस्तक पर मुकुट और हाथ में मनोहारिणी वीणा थी। घुँघराले केशों की छवि तो निराली ही थी। बाल-रवि के शदृश मुखमण्डल पर दीप्ति दमक रही थी। "अमी हलाहल मद भरे श्वेत श्याम रतनार" के बारे में हमारा कुछ कहना वृथा है। इसके सिवा उस प्रसन्न दृष्टि का वर्णन करने में तो हम नितान्त असमर्थ हैं जो कि मुसाहिबों पर सतत पड़ रही थी। सिंहासन के ठीक पीछे काँच की आलमारी में आभूषण रक्खे थे। इनके हम दो भाग करते हैं। एक वे जो बहुत ही बढ़िया थे और दूसरे साधारण। उनमें से कितने ही तो ऐसे दर्शनीय थे जिनमें कुछ का कुछ दिखाई पड़ता था और कुछ भूलभुलैयाँ से थे। अगर हम इन सब गहनों से सुशोभित देवी को देखते तो शायद उनकी सुन्दरता हमसे छिपी ही रहती। देवी की दाहिनी ओर वैसे ही बहुमूल्य आसन पर चञ्चल वृत्ति वाली प्रतिभा देवी विराजमान थीं। इनके एक हाथ में जादू की छड़ी थी और दूसरे में आर पार दिखाई देने वाला पंखा। मेरी साथिन में और इसमें कोई विशेष फ़र्क न था। कविता की सेना-स्वामिनी और कल्पना की छोटी बहिन स्फूर्ति भी विद्युल्लता के समान चमकती हुई दूसरी तरफ़ दिखाई पड़ीं। देवी के सामने ही उच्चासन पर उनकी सहृदया कन्या विराजमान थी। इस पर देवी की बड़ी कृपा थी। मैं यहीं तक देख पाया था कि गाने बजाने का निर्घोष सुनाई दिया। मैं चट से पीछे देखने लगा। देखता हूँ कि रङ्ग बिरङ्गी पोशाक पहने चपल स्वभाव के कुछ गुलज़ार और सिपाहियाना ठाट के कुछ कारु मूर्ति, कुछ मसख़रे, इसी तरह कुछ शान्त ईश्वरभ और भयानक लोगों को साथ में लिये हुए सर्वो सुन्दर और दर्शकों को मोहित करने वाले एक पु के दर्शन हुए। पीछे से मालूम हुआ कि यही र पति महाराज हैं।

सब लोगों ने उठ कर रसराज का सादर स्वा किया। स्वयं कविता देवी सम्मान के लिए ख हुईं और अपने सिंहासन पर ही उन्हें अर्धा दिया। इतने में कल्पना कवि-मण्डल की फिरी। वहाँ देखा तो स्वच्छ, सुजला, सुफला भू पर कुशादि के पवित्र आसन बिछे हुए हैं। उन्हीं सत्त्ववृत्ति के वृद्ध योगीश्वर यज्ञयाग में तत्पर गम्भीर वृत्ति धारण किये आसीन हैं। उसी त ऋषिपत्नियाँ भी वल्कल वस्त्रों से विभूषित वन्य कुसुमों से केशपाश सजाये हुए बड़ी प्रस से इन्द्रादि देवताओं की सूक्तों द्वारा स्तुति कर हैं। हम उस अपूर्व वेदगान की माधुर्यपरिपूरित में लवलीन हो सुध बुध भूल गये। बड़ी बड़ी नाट कम्पनियों के सङ्गीत उस गायन के आगे बिल्कुल प्रतीत होते थे। अन्यान्य ऋषियूथ केवल प पकारार्थ कोकिलकण्ठ से स्तुति-पाठ कर रहे बीचों बीच "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" की चर्चा चल थी। थोड़ी ही दूर पर कविता-शाखा पर आरोह करने वाले कोकिल वाल्मीकि रामायणी कथा मग्न हो कर गा रहे थे। यहाँ कृत्रिमता का नाम शान तक न था। सर्वत्र स्वाभाविक कोकिल पञ्चम स्वर गूँज रहा था। यहीं उन महा व्यास जी की मूर्ति दिखाई पड़ी जो कौरव-पा की कथा कह रहे थे और बीच बीच में गीता समान तत्त्व, नीति और व्यवहार के सरस पद जाते थे। ज़रा हटकर कविकुल-तिलक कालि अपनी प्रसादमयी कविता सुन्दर वीणा से स्व गा रहे थे। भवभूति बड़े उत्साह से मनुष्य-स्व का चित्रपट कविता देवी को अर्पण कर रहे इन्हीं से सटकर कविवर दण्डी, माघ और भा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को भी बैठे देखा। नाट्यकार शूद्रक और ऐसे ही सहस्रावधि कविवर अपने अपने राग में मस्त थे। कवियों के गुरुघण्टाल बनने वाले पण्डितराज जगन्नाथ कभी तो गङ्गालहरी की धुन में लवलीन हो जाते थे और कभी भामिनीविलास के पद चुन चुन कर गाने लगते थे। प्रसिद्ध कवि जयदेव गीत-गोविन्द की अष्टपदी बड़े ही मधुर स्वर से गा रहे थे। इनके सिवा वहाँ संस्कृत के इतने कवि थे जिनका नाम बताना तो दूर रहा गिनना तक दुष्कर था।

अब हम परदेशी कवियों की ओर बढ़े। सबसे पहले होमर साहब पर नज़र पड़ी। वे अपना इलियड पढ़ रहे थे। वर्जिल वग़ैरह रोमन कवि देवी की आराधना में लगे थे। अनेक दैव-दुर्विलसितों से उपहत इटालियन महाकवि दान्ते सब झंझटों से पीछा छुड़ा देवी की सेवा में लगा हुआ था। अँगरेज़ी काव्य का परिमार्जन करने वाले चासर और स्पेंसर एक महार्ह आसन पर बिराजते थे। किन्तु इन सबसे उत्तम आसन महाकवि शेक्सपियर को ही मिला था। देवी की अनुकम्पा होने से वह मानवी अन्तः-करण के गूढ़ रहस्य खोल खोल दिखला रहा था। इनके समीप ही आपत्तिग्रस्त मिल्टन दिखलाई पड़ा। अन्धे होने पर उसने बड़ी मिहनत से पैराडाइज़ लास्ट काव्य की रचना की थी; वह प्रेममग्न हो उसका ही पाठ कर रहा था। इन्हीं के आगे ड्राइडन और पोप दिखाई पड़े। ये कवि प्रचुर शब्द-माधुर्य से देवी की आराधना कर रहे थे। मगर सर्वोत्तम आसन के न मिलने से अशक्त पोप के मुख की आभा से उनके मत्सरी अन्तःकरण का पता लग रहा था। नज़दीक ही सुन्दर किन्तु छोटा सा संग्रह लिए ग्रे बैठा था। गोल्डस्मिथ अपनी यूरोप के प्रवास वाली मुरली लिये काव्यों का मधुर गान कर रहा था। भावुक कवि कौपर को देख कर मेरा मुखमण्डल गम्भीर हो गया। दूसरी ओर लांग-फेलो जीवितस्तोत्र (साम आफ़ लाइफ़) के गायन में बदहवास हो रहा था। उस गान को सुनकर कर्तव्य-परायणता का उदय हुआ; इससे मेरा मन बहुत कुछ प्रसन्न हो गया। इनके समीप ही बर्न्स कालरिज, क्यामबेल, मूर सौदे, हुड और सृष्टि-सौन्दर्य का पूरा उपयोग करने वाले, कविता के अटल भक्त, वर्ड्सवर्थ भी दिखाई पड़े। सर वाल्टर स्काट भी उपन्यासों को झंझट से हाथ खींचकर तम्बूरा लिये काव्यालाप में मग्न थे। लार्ड बायरन भी एक बेशक़ीमती आसन पर बैठा हुआ मौज में दिखाई पड़ा। स्वतंत्र-बुद्धि का पक्षपाती शेली भी कविता देवी का कृपाभाजन हो रहा था; वह प्रणय-मीमांसा (फिलासफ़ी आफ़ लव) का प्रतिपादन कर रहा था। राजकवि टेनिसन एक कोने में बैठे सादे किन्तु रसीले शब्दों से देवी की आराधना कर रहे थे। इसी के पास इङ्गलिश-कविप्रियायें दिखाई पड़ीं। इनमें हैविट और हेमान्स वग़ैरह मुख्य थीं।

इतने ही में दरवाज़े के क़रीब कुछ गुल गपाड़ा सुनाई पड़ा। ओफ़! देखता हूं तो दरवाज़े पर ज़बर्दस्ती कवि कहलानेवाले बहुत से पढ़े लिखे भेंसों का झुण्ड दिखाई पड़ा! यहाँ यही वाक्य गूँज रहे थे—"यह देखो, कैसा प्यारा श्लेष है।" "अहा कैसा अच्छा अनुप्रास है!" इसी तरह कोई अलंकार और कोई चमत्कार की गाथा गा रहा था। किन्तु दरबान इन सबको पारितोषक में 'अर्धचन्द्र' प्रदान कर रहा था। दरवाज़े पर एक बनी ठनी दूती भी बैठी थी। यह कभी कभी इन पण्डितम्मानियों में से दो एक को भीतर बुला लेती थी और दो चार हँसी मज़ाक़ की बातों से उनका उपहास कर धक्के दिलवा बाहर निकलवा देती थी। बेचारे सिर खुजाते और अपनी-करतूत पर पछताते हुए चल देते थे।

यह तमाशा देख कर हम दूसरी तरफ़ लौटे। यहाँ पर तमाम महाराष्ट्र कवि बैठे हुए थे। इनमें सबसे पहले केवल १९ वर्ष की आयुवाले नवयुवक ज्ञानेश्वर महाराज दिखाई दिये। ये सृष्टिसौरभ का बखान बड़ी सुन्दरता से कर रहे थे। इनके समीप ही महात्मा एकनाथ स्वामी कोमल स्वर से भजन गा रहे थे। बग़ल में इन्हीं के नाती मुक्तेश्वर भारत-कथा का वर्णन कर रहे थे। नामदेव अभङ्ग गा गा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर श्रीविट्ठल देव की स्तुति कर रहे थे। अब हमारी नज़र तुकाराम महाराज पर पड़ी। ये बिलकुल भोले भाले थे; पर कहते थे "समय पड़ने पर सिर पर लाठी मारूँगा।" अनेक भावनाओं से भगवद्भक्ति कर रहे थे। महाराज रामदास स्वामी उत्तेजना-पूर्ण कविता से हतोत्साह शिष्यों को देश-रक्षा के लिए उत्साहित कर रहे थे। साथ ही अपना कर्तव्य भी पालते जाते थे। वामन कवि महाराष्ट्र-कविता को संस्कृत-कविता की पोशाक पहना रहे थे। रघुनाथ पण्डित नलदमयन्ती के स्वयंवर की रमणीय कथा कह रहे थे। इनके सिवा आनन्दतनय, महीपति और श्रीधर भगवान् के साथ ही सन्तों का यशोगान कर रहे थे। कवि श्रेष्ठ मयूर मधुर सप्तम स्वर में मनोहारिणी कवितायें गा रहे थे। रामजोशी लावनियों में कृष्ण-लीला का वर्णन कर रहेथे और साथ ही पाखण्डी गुरुओं का भंडा फोर रहे थे। इनके सिवा वहाँ अनेक कविप्रियायें दिखाई पड़ीं। इनमें मुक्ताबाई, और जनाबाई मुख्य थीं। दो सास पतोहू भी ऐसी थीं जो अपने निर्मल अभङ्गों से सबका मन आकर्षित कर लेती थीं।

दूसरी ओर व्रजभाषा के कवियों की श्रेणी देखी। सबके आगे भगवद्भक्त कबीर साहब अपनी साखी गा रहे थे। इनके पद और आशय बड़े विकट थे। गोस्वामी तुलसीदासजी रामायण का पाठ कर रहे थे। महाराज सूरदास अपने पदों के गान में मग्न थे। रसिकशिरोमणि बिहारीलाल सतसैया के दोहों का बखान कर रहे थे। सुवंश, भूषण, मतिराम, पद्माकर, पजनेश और कविवर केशवदास कवित्त और सवैयों की भरमार मचा रहे थे। इन सबकी कविताओं में प्रचुर माधुर्य था। भूषण की वीररसपूर्ण कविता सुन कर मूँछें तर्रा उठीं। भारतेन्दु, प्रताप और जगन्मोहन भी दिखाई पड़े। इनकी कविता में शृङ्गार का सागर लहरा रहा था। ये कभी कभी भारत भारत और भारत-वासियों के दुखड़े भी कविता में पिरो देते थे। वहाँ भी जगन्मोहन अपने हाथ में "श्यामा स्वप्न" लिये थे। आह, हम चन्द बरदाई को तो भूले ही जाते हैं। वे कह रहे थे—"अबकी चढ़ी कमान को जाने फिर कब चढ़ै?" उनकी कविता का तो हमें कहीं कहीं मर्महीन मालूम हुआ। महाराज रघुराजसिंह महाहं आसन पर आसीन थे। उनको और रसिकविहारी की कविता सुन कर हम सन्नाटे में आ गये। सती-शिरोमणि मीराबाई "गिरिधर नागा" के पद बड़े प्रेम से गा रही थीं। इनसे कुछ अन्तर पर और भी थोड़ी सी कविता-प्रिय वनितायें दृग्गोचर हुईं।

अब हम फ़ारसी कवियों की ओर बढ़े। इनमें हाफ़िज, मौलाना रूम, शम्सतब्रेज़ के अलावा और भी हज़ारों शायर दिखाई दिये। इनकी मनोहर क़ाफ़िया-बन्दी सुन सुन कर श्रोता आनन्दमग्न हो रहे थे। किन्तु इनमें ज्यादातर आशिक़ मिज़ाज ही थे। सादे साहब सादे ढंग से नसीहत आमेज़ अशआर गा रहे थे। फ़ैज़ी भी कुछ गुन गुना रहा था। बहुत शायर अपने अपने दीवान लिये उनकी तारीफ़ कर रहे थे। इन्हीं से सटे हुए उर्दू के शायर बैठे थे। एक ओर सौदा तकिये के सहारे बैठे हुए मसनवी में मस्त थे और दूसरी ओर मीर मुहम्मद तक़ी अपनी उसी फटी हालत में दिखाई दिये जिसमें वे बरबाद दिल्ली को छोड़ कर आबाद लखनऊ में पहुँचे थे। मगर अफ़सोस! कुछ दिल चले उनकी दिल्लगी का खुशी मना रहे थे। इनके अलावा ज़ौक़, दाग़, ग़ालिब और मोमिन भी बग़ल में ही बैठे थे। ये अपनी अपनी ग़ज़लें गा गा कर अमृत बरसा रहे थे। कितने ही बादशाह, शायर की हैसियत से इस दरबार में मौजूद थे। पर किसी शायर का असली नाम मालूम हो सका। मालूम हुए केवल तख़ल्लुस; जैसे मीर, रँगीले आज़ाद, खुशदिल रहीम, फ़रिश्ता आदि।

हमें प्रत्येक भाषा के इतने कवि दिखाई दिये कि उनका नाम तक याद न रह सका। जितनों का रहा उनके भी लिखने को जगह नहीं। बँगला, गुजराती तामिल के भी कवि थे पर हमें बँगला-कवियों का नाम तो मालूम होसके औरों के नहीं। बँगला में एक हिन्दुस्तानी क्रिश्चियन बैरिस्टर कवि का भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब से ऊँचा दिखाई पड़ा। थे तो ये क्रिश्चियन पर हाथ में रामायण थी। इस ज़माने के भी कितने ही कवि-नामधारी दिखाई दिये। कितने ही लोग राय-बहादुर, ख़ानबहादुर, शम्सुलउल्मा और महामहोपाध्याय के तमग़े लटकाये थे मगर यहाँ मेडिलों फेडिलों की क़दर है ही नहीं। इनके सिवा जर्मन, फ्रेंच, जापानी और चीनी भाषा के कविकुञ्जर भी क्रीड़ा कर रहे थे। पर हमें उनकी मान-मर्यादा की ख़बर नहीं। सचमुच यह दृश्य अपूर्व था और साथ ही नयनाभिराम भी था। हमारी इच्छा थी कि हम भी यहीं रहने का यत्न करें। कुछ काम न मिले तो फ़र्शही झाड़ा बुहारा करें। हम इसकी तजवीज़ करही रहे थे कि उत्तर दिशा में कुछ कवि-कुञ्जरों के सङ्घर्ष का शब्द सुन पड़ा। देखते हैं तो प्रभात होगया है; घाट पर उच्चैः स्वर से "नर्मदे हर" का निनाद होरहा है और हम उसी अट्टालिका पर लेटे हैं। न दरबार है, न कविगण। आँखें मल कर उठ बैठे। इसी पद्य की सी दशा हुई। "जो खुलीं अँखियाँ तो न चन्द्रमुखी न चँदोवा न चाँदनी चन्दन चन्द।" *

ललीप्रसाद पाण्डेय।

लन्दन में तातील का दिन।

तातील से मतलब त्योहार की छुट्टी से है। इसे यहां आम तौर से Bank Holiday (बैंक हालीडे) कहते हैं। बैंक हालीडे इस कारण कि उस दिन सब बैंक बन्द रहते हैं। विलायती बैंक हालीडे और हिन्दुस्तानी गज़ट हालीडे बराबरी के कहे जा सकते हैं। यहां इतने बैंक नहीं हैं जितने कि Public Houses (पबलिक हाउसेज़) याने शराब की दूकानें हैं। तथापि हमारे देश से यहां के बैंकों का नम्बर कई गुना अधिक है। किसी किसी स्थान में बैंक और शराबख़ाने एक दूसरे के आमने सामने बड़े बड़े महलों से नज़र आते हैं। इन दो विरुद्ध इमारतों को पास पास देख उनकी उपमा बहीखाते से दी जा सकती है। अर्थात् बैंक जमा और शराबख़ाना, ख़र्च की मदें हैं। बैंक हालीडे के दिन यहाँ सारे शहर में सन्नाटा छा जाता है। कुल दफ़्तर, दूकानें, स्कूल, कालेज, कचहरी सब बन्द हो जाते हैं। लोग जहाँ तहाँ बाहर निकल पड़ते हैं। कोई रिश्तेदारों से मिलने, कोई मित्रों से मिलने और कोई सिर्फ़ सैर के लिए बाहर चले जाते हैं। स्टेशनों पर बड़ी धूम मचती है। बैंक हालीडे के दिन रेलें किराया बहुत घटा देती हैं। स्टेशनों पर सहस्रों यात्रियों की भीड़ रहते भी कोई धींगा मस्ती या धक्का धूमी नहीं होती। मुसाफ़िर चुपचाप जहां तहां अपनी अपनी गाड़ियों में बैठते जाते हैं। कई स्पेशल गाड़ियां दौड़ाई जाती हैं। स्टेशन के कर्म्मचारी बड़ी नम्रता से पेश आते हैं। गाली-गलोज, रिशवत का नाम नहीं। ज़ुल्म अलग रहा, गार्ड ख़ुदही दौड़ कर मुसाफ़िरों के आराम को देखते हैं। ईश्वर जाने ये बातें भारत में कब देख पड़ेंगी।

मेले में गँवार स्त्रियाँ।

त्योहार के दिन लन्दन में ख़ास ख़ास स्थानों पर मेले भरते हैं। बड़ा जमाव Hampstead Heath (हेम्पस्टेड हीथ) पर होता है। ग्रामीण और नीच क़ौम के लोग अधिक जमा होते हैं। बूढ़े बारे सभी इकट्ठे होते हैं। अगर पानी न बरसा तो कभी कभी मेले में आदमियों की संख्या एक लाख तक पहुँच जाती है हेम्पस्टेड हीथ एक बड़ा टीलेदार मैदान है जिसमें जगह जगह छोटे छोटे तालाब और वृक्ष हैं। कुल मैदान में बारहों महीने हरी हरी घास दिखाई देती है। इसके बीच वाले भाग को Parliament Hill (पार्ल्यामेंट हिल) अर्थात् पारलियामेंट की पहाड़ी कहते हैं। यह लन्दन में सबसे ऊँचा स्थान गिना जाता है। इस पर खुले दिन सम्पूर्ण शहर दूर दूर तक दिखाई देता है। मामूली तौर पर लोग रोज़ भी, परन्तु इतवार को विशेष करके, हवा ख़ाने के लिए वहाँ

---

*इस लेख का कुछ अंश मराठी-लेखक "शारदाश्रमबासी" के एक लेख का आश्रय लेकर लिखा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँचते हैं। इस हिस्से की आबोहवा अच्छी समझी जाती है। इतवार को बैंड बाजा बजता है जिसे सुनने के लिए सहस्रों स्त्री-पुरुष इकट्ठे होते हैं। मेले में कई प्रकार के खेल तमाशे दिखाई देते हैं। झूले, हिंडोले, इत्यादि का गँवार लोग ख़ूब ही आनंद लेते हैं। किसी किसी जगह जवान लड़कियां रस्सी पर कूदती दिखाई देती हैं जिसे स्किपिंग (Skipping) कहते हैं। यह एक प्रकार की कसरत है। दो आदमी एक छोटी सी रस्सी को पकड़ते हैं। कूदनेवाली लड़की उसे फांदती है। उसे लगातार उछलते रहना चाहिए। पाँच मिनिट तक वह बराबर उछलती रहती है। कई स्थानों में 'कोकोनट शाईज़' (Cocoanut shies) दिखाई पड़ते हैं। कई लकड़ी के छोटे बड़े टुकड़े आगे पीछे, फुट दो फुट तीन फुट की दूरी पर, गाड़े जाते हैं। उन पर कच्चे नारियल जमाते हैं। लोग इन नारियलों को लकड़ी के गेंद से उड़ाते हैं। इन्हें नारियल वाला एक पैनी याने एक आने को बेचता है। निशाना ठीक लगा तो नारियल गिर पड़ता है, जो गेंद फेकने वाले को मिलता है। यदि नारियल न गिरा तो पैनी मुफ़्त में गई। यह एक प्रकार का जुआ है जिसमें कई हारते, कई जीतते हैं। निशाना क़रीब १० या १२ गज़ की दूरी से मारते हैं। लेडियों का यहाँ बड़ा आदर किया जाता है। हर एक बात में उनके साथ रियायत की जाती है। मर्द यदि १२ गज़ के फ़ासिले से फेंकें तो लेडियाँ १० गज़ के फ़ासिले से फेंक सकती हैं। नारियलों के मंडप पर यूनियन जैक (Union Jack) झंडियाँ लगी रहती हैं जो इस देश के अदना से अदना आदमी की स्वदेश-भक्ति ज़ाहिर करती हैं। मेले की अधिक बातें लिखना उचित नहीं। क्योंकि मेले का विस्तारपूर्वक वर्णन हम किसी समाचारपत्र में दे चुके हैं। परंतु एक दो बातें अवश्य लिखेंगे।

मेले में गीत।

गले में हाथ डाले हुए गँवार स्त्रियाँ कई प्रकार के गीत गाती दिखाई देती हैं। दो एक गीत बड़े प्रेम से गाती फिरती हैं। ये गीत गँवार स्त्रियाँ ही नहीं, बल्कि अच्छे अच्छे घरानों की स्त्रियाँ भी गाती हैं। कुछ दिन हुए हम टेम्स नदी से जहाज़ द्वारा मार्गट (Margate) स्थान को गये थे। यह नगर समुद्र के किनारे है। हमारे जहाज़ में क़रीब १२०० स्त्री-पुरुष तथा बच्चे थे। सफ़र पाँच घंटे का था, परंतु स्त्री-पुरुष रास्ते भर गीत गाते गये जिससे रास्ता अखरा नहीं। ख़ूब नाचते कूदते थे। हमें डर लगता था कि कोई पानी में न जा गिरे। ख़ैर, मेले वाले गीतों का नमूना लीजिए; पहले की टेक है—

"Put me amongst the girls."

मुझे लड़कियों बीच बिठाओ।
मुझे लड़कियों बीच,
गुरूजी मुझे लड़कियों बीच।

सम्पूर्ण गीत का ख़ुलासा यह है:—एक लड़का बड़ा शैतान था, जो खेल कूद के सिवा पढ़ने लिखने में बहुत कम ध्यान देता था। माँ सवेरे पढ़ने भेजे तो बड़ी मुशकिल से जाता था। मदरसे में वह लड़कों के बीच बैठने में बहुत घबराता था। इसलिए मदरसे पहुँचतेही वह गुरुजी से कहा करता था:—

"मुझे लड़कियों बीच बिठाओ,
मुझे लड़कियों बीच।"

हास्य के अतिरिक्त इस गीत का मतलब भी है। वह यह है कि यहाँ कुछ स्कूलों में Mixed Classes अर्थात् मिश्रित क्लासें हैं जिनमें लड़के लड़कियाँ एक ख़ास उम्र तक इकट्ठे पढ़ते हैं। स्कूल के लड़के दैवी कृपा से और बालकों की अपेक्षा अधिक चालाक और शैतान होते हैं। इस लिए जहाँ लड़कियाँ होंगीं वहाँ आसानी से समझा जा सकता है कि कहाँ तक शरारत न करेंगे। स्कूल के बाहर भी लड़के लड़कियाँ बराबर एक दूसरे के साथ खेलते कूदते हैं। इसे (flirtation) कहते हैं। यह रीति यहाँ छोटे बड़े सब लड़के लड़कियों में है। फ्लर्टेशन का अर्थ लड़की को बाहर हवा खिलाने, नाटक इत्यादि दिखाने का है। दोनों हाथ में हाथ डाले फिरते हैं। एक दूसरे से मनमानी दिल्लगी करता है। कु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

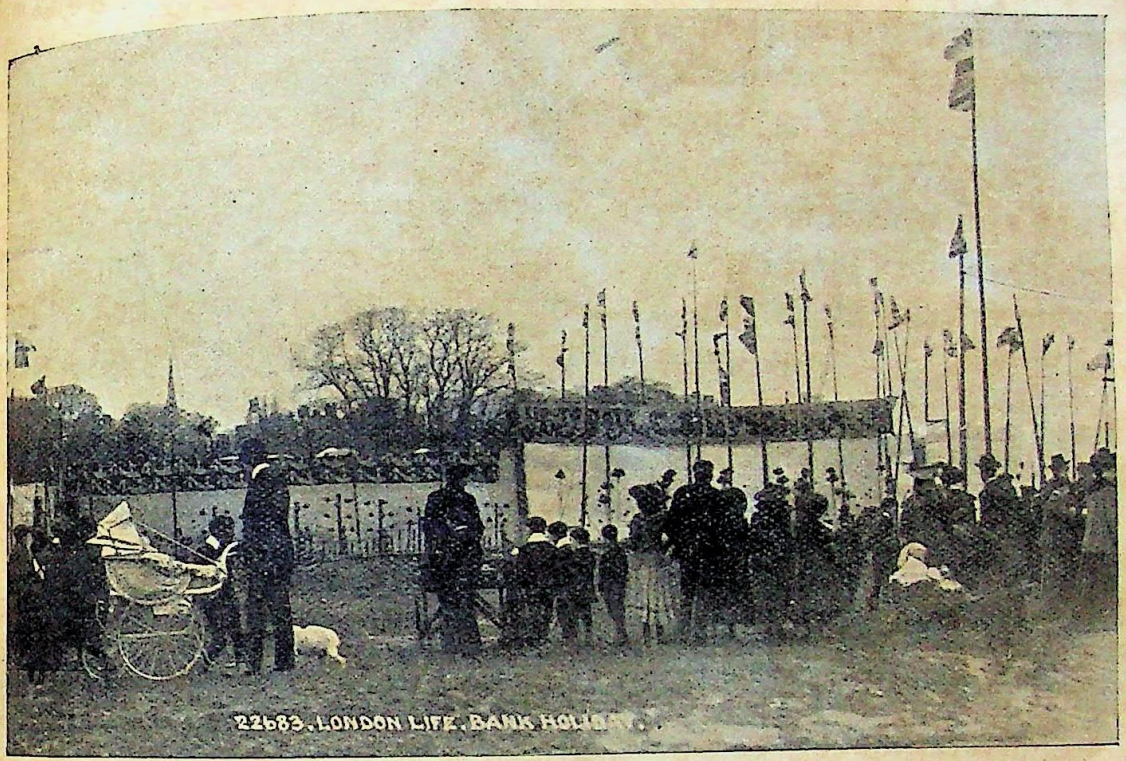

नारियल के निशाने ।

लन्दन की गँवार स्त्रियाँ ।

The Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ अश्लील बातें भी होती हैं जिनका लिखना यहाँ ठीक नहीं। यहाँ की यह साधारण रीति है। लड़के लड़कियों के माता पिता इसे बुरा नहीं समझते। कोई कोई इसे नापसन्द करते हैं; पर बेचारी लड़कियाँ जायँ कहाँ? उनका नम्बर इस देश में पुरुषों से अधिक है। एक लड़की ने यहाँ के प्रसिद्ध डेली टेलीग्राफ़ पत्र (Daily Telegraph) में चिट्ठी छपाई थी कि कोई कैसाही बुरा समझे, पर मैं बिना फ्लरटेशन के नहीं रह सकती। यही फ्लरटेशन है जिस पर फुलर साहब ने नाइनटीन्थ सेंचुरी (Nineteenth Century) नामक मासिक पत्र में तारीफ़ की डींग मारी थी। बलिहारी इस फ्लरटेशन की! उन्हीं की जाति को यह मुबारिक हो।

दूसरा गीत शहर के विवाहित स्त्री-पुरुषों को दुर्दशा का उदाहरण है। वह यह है :—

When I was single,
My pocket did jingle.
I married a wife,
The plague of my life,
I wish I was single again.
Again and again and again.

गीत बड़ा लम्बा है जिसमें स्त्री की खूब दिल्लगी की गई है। ऊपर की पंक्तियों का अर्थ यह है :—

जब तक रहा मैं बिना ब्याहा।
खीसा खन खन खन खन्नाया॥
जब मैंने ब्याही एक औरत।
मुफ़्त जान आफ़त में लाया॥
चाहूँ इकला रहना मैं फिर।
फिर, औ फिर, औ फिर, औ फिर फिर॥

यहाँ ब्याह करना नहीं व्याधि गले बाँध लेना है। लड़कियों की शादी २१ वर्ष से पहले बहुत ही कम होती है। मर्द २५। ३० और इससे भी अधिक उम्र में ब्याह करते हैं। गत वर्ष केम्ब्रिज़ विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर टेलर ने बुढ़ापे में शादी की थी। आपकी उम्र थी ६७ साल और स्त्री की ३० साल! परिणाम यह हुआ कि कुछ दिन हुए वे स्त्री को विधवा छोड़ इस जीवन से हाथ धो गये। शादी होने के पूर्व बरस, दो बरस, चार बरस तक एक दूसरे की उम्मेदवारी करता है जिसे इस देश में इंगेजमेंट (Engagement) कहते हैं। इससे यदि शिया लोगों के मुता व्याह की तुलना करें तो अनुचित न होगा। इंगेजमेंट पूरी होने पर परस्पर अँगूठी बदलते हैं। बहुधा यह अर्द्ध-विवाह टूट भी जाता है। लड़की फ़ौरन अदालत की शरण लेकर मर्द से सौ दो सौ चार सौ पौंड का दावा करती है। बड़े रहस्य खुलते हैं। प्रेमपत्रों (Love-letters) का पोथा पेश किया जाता है। अक्सर विजय लड़की की रहती है। फिर वह दूसरे की तलाश में निकलती है। इस प्रकार असली शादी के पहले उसकी कई बार शादी हो जाती है। कहाँ हैं वे गैज़ेटियरों के लिखनेवाले जो अपना टेंट छिपा कर दूसरों की फूली दिखाते हैं! भगवान् चाहेगा तो हम अपने देश-भाइयों के सामने विलायती सभ्यता और रीति भाँतियों का गैज़ेटियर पुस्तकाकार भेंट करेंगे। शादी के बाद पति की जो दुर्दशा होती है वह यहाँ की किसी दुकान पर जाकर छपे हुए सचित्र पोस्ट कार्डों में अच्छी तरह देखली जा सकती है। इन पोस्टकार्डों में स्त्री-पुरुष की बड़ीही हास्यजनक नकलें दिखाई देती हैं। बेचारा पुरुष बड़ी आफ़त में फँसता है। उसकी पूर्व स्वतंत्रता और शौक़ीनी सब धूल में मिल जाती है। फिर उसे स्त्री के खाने पीने कपड़े लत्ते की फ़िकर रहती है। उसे नाटकघर, नाचघर, दिखाने चाहिएँ। कभी कभी सैर को बाहर भी जाना ज़रूरी है। किसी बात की उसे तकलीफ़ न हो। यदि झगड़ा झाँसा हुआ तो अदालत खुली है जहाँ दूसरे ही दिन छोड़-छुट्टी मिल सकती है। कहीं लड़के बच्चे हुए तो पूरे राहु और केतुने आ ग्रसा। इसी से यहाँ के लोग संतान बहुत पसन्द नहीं करते। एक दो पर संतोष रखते हैं। कोई कोई बिलकुल ही नहीं चाहते। पर ईस्ट एन्ड (East End) के ग़रीब सब कसर निकाल देते हैं। एक एक के दर्जन पौन दर्जन लड़के लड़कियाँ ज़रूर हैं। ईस्ट एन्ड यहाँ का एक ग़रीब और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़लीज़ महल्ला है। जब कोई अँगरेज़ हमसे हिन्दुस्तान की दिन ब दिन बढ़ती हुई मनुष्य-संख्या पर बहस करता है तब हम उसे धीरे से ईस्ट एन्ड का इशारा कर देते हैं। बस इसे सुन वह होश में आ जाता है। ईस्ट एन्ड-वासी ब्याह भी कुछ जल्द करते हैं। इस देश में शादी का सवाल बहुत बड़ा है। बहुत कुछ इस पर लिखा जा सकता है। पर इस लेख के लिए इतना ही बस है।

प्यारेलाल मिश्र (लन्दन)

एक ज्योतिषी की आत्मकथा।

(गताङ्क से आगे)

मंगल पर स्वभाव से ही मेरी अधिक रुचि थी। इसलिए उसी को मैंने देखना आरम्भ किया। उस छोटे से ग्रह में जीवधारी बसते हैं—इस बात के अनेक निर्विवाद चिह्न मेरे विशाल दूरबान द्वारा मुझे ज्ञात होने लगे। मुझे यह भी मालूम हुआ कि मंगल ग्रह में बड़े बड़े घर हैं। जैसे जैसे सूक्ष्मतर चीज़ें मुझे दृष्टिगोचर होती गईं वैसे ही वैसे मैं अधिक ध्यान लगाकर उनको देखने लगा। मैंने अपने नौकरों को आज्ञा देदी थी कि मेरी वेधशाला में कोई न आने पावे। पर एक दिन, जब मैं अपने निरीक्षण में तन मन से निमग्न था, मुझे अकस्मात् जान पड़ा कि वहाँ कोई अन्य पुरुष आ घुसा है। तथापि उसकी ओर कुछ ध्यान न देकर मैंने अपने निरीक्षण को जारी रक्खा। इतने में किसी के पैर की धीमी आहट मुझे अपने पीछे सुनाई दी। क्रोध से मैंने दूरबीन से मुँह निकाल कर ज्योंही पीछे की ओर देखा त्योंही मालूम हुआ कि वही विलक्षण पुरुष, जो मुझे तेरह वर्ष पहले इँगलैंड में मिला था, मेरे पीछे खड़ा है।

वह बोला:—"तारकप्रसाद! आज मेरे यहाँ आने की तुमको बहुत कम आशा रही होगी। मैं तुमसे इँगलैंड में मिला था और तेरह वर्ष बीतने पर तुम्हारे जन्मदिन पर फिर मिलने की प्रतिज्ञा की थी। बात तो तुम शायद न भूले होगे"।

मैंने उत्तर दिया:—"आपको और आपकी प्रतिज्ञा को मैं नहीं भूला। पर आज ही आप मुझसे मिलने आने वाले हैं यह बात मुझे स्मरण न थी। जब आप मुझे मिले थे तब की और आज की मेरी दशा में आपको ज़मीन आसमान का अन्तर मालूम होगा।"

उसने कहा:—"हाँ, यह सत्य है। आज तुम्हारी स्थिति भिन्न प्रकार की है। पर तुम यह भी जानते हो कि यह किसके प्रसाद से हुई है? तुमको मैं इस दशा को पहुँचाने का वास्तविक कारण मैं ही हूँ। तुम यह तो जानते ही हो कि मुझ में कई अद्भुत शक्तियाँ हैं। इनके सिवा मुझमें एक और सामर्थ्य है जिसका वर्णन यदि मैं ही तुमसे न करूँ तो तुम उसे नहीं जान सकते। तुमने कभी भूल से भी इस बात का विचार न किया होगा कि तुम्हारे पिता अपने विश्वासपात्र मित्रों से एकाएक अनबन क्यों हो गई और नये वसीयतनामे पर हस्ताक्षर करने के लिए घर से निकलते ही अकस्मात् उनकी मृत्यु क्यों हो गई? क्या तुम समझते हो कि यदि इस प्रकार अचानक उनकी मौत न होती तो इतनी बड़ी सम्पत्ति के अधिपति तुम हो जाते? जिसको लोग तुम्हारे पिता की हत्या करने वाला मानते हैं वही मनुष्य तुम्हारे सामने अपने अपराध को निर्भय होकर स्वीकार कर रहा है, यह क्या सामान्य बात है?"

अपने पिता के घातक को अपने पास खड़ा देख मैं काँपने लगा। इस पर वह बोला:—"यह कहना अनावश्यक है कि अपने इस कृत्य को मैं पाप नहीं समझता। मेरा पूर्ण विश्वास है कि तुम्हारी कीर्ति के मार्ग में बाधा डालने वाले कंटक को दूर करके मैंने परोपकार ही किया है। तारकप्रसाद! सोचो, यदि तुम्हारे पिता की मृत्यु पूर्वोक्त रीति से न होती तो ऐसी दुर्लभ वेधशाला में बैठकर इस भव्य दृश्य को देखने का अवसर क्या कभी तुम्हें प्राप्त होता! तुम उस दशा को भूल गये जब धवलगिरि

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनकर बड़े संकट से तुम लंदन में अपने दिन व्यतीत करते थे? अब पचास लक्ष के स्वामी होकर विख्यात खगोलवेत्ता कहलाने की अपेक्षा पुनः डाढ़ी लगा कर उस छोटी सी कोठरी में बैठना क्या तुम्हें अधिक रुचिकर मालूम होता?"

मेरा उत्तर सुनने के लिए वह थोड़ी देर ठहरा। पर मेरे मुँह से एक भी शब्द न निकला। मुझे अपने पिता पर बहुत कम प्रीति थी। और उनके इस प्रकार मरने से मुझे अकथनीय लाभ भी हुआ था, तथापि उनकी अकाल-मृत्यु का मैं ही कारण हूँ, यह जान कर मुझे दुःख हुआ।

मुझे मौन साधे देख वह बोलाः—"मैं जानता हूँ कि तुम्हारा मुँह क्यों फीका पड़ गया है। यह मुझ से गुप्त नहीं है कि कृतज्ञता तुम्हारे स्वभाव ही में नहीं है। तुम्हारे समान कृतघ्नों के उपकार की मुझे आवश्यकता भी नहीं। परन्तु अब यह बात यहीं छोड़ दो। इन तेरह वर्षों में जो सहायता मैंने तुम्हें पहुँचाई है उसको बताने की आवश्यकता नहीं। इस बार जिन जिन चमत्कारिक सामर्थ्यों का अनुभव मैंने तुम्हें करवाया है उनको प्राप्त करने की विधि का ज्ञान मेरे द्वारा तुमको होने का योग आ पहुँचा है। वह ज्ञान तुमको प्राप्त करवा देने के बाद मुझे तुमसे कोई प्रयोजन न रहेगा। तुम्हें आगे जैसा उचित जान पड़े वैसा करना। अच्छा तो अब विलंब से कोई लाभ नहीं। आओ यहाँ मेरे सामने बैठो और मेरे नेत्रों की ओर देखो।"

उसके मुख की आकृति और बात चीत से मालूम होता था कि वह बहुत क्रुद्ध होगया है। अतएव उसे शान्त करने के लिए उसके सामने दृष्टि कर मैं कुछ बोलना ही चाहता था कि मेरा मस्तिष्क चक्कर खाने लगा। मेरी वैसी दशा होने लगी जैसी कि तेरह वर्ष पूर्व हुई थी। परन्तु इस समय मुझे अधिक घबराहट और दुःख नहीं हुआ। इस स्थिति में थोड़े सेकंड बीतने पर मुझे दृढ़ निश्चय होगया कि मेरे पिता के सम्बन्ध में जो जो बातें उसने कहीं थीं वे सब अक्षरशः सत्य थीं; उन तीन विश्वासपात्र मित्रों के साथ उनका झगड़ा करवाने में भी वही कारणीभूत था; और यह सब प्रपंच उसने केवल मेरे ही हित के लिए किया था। अगाध ज्ञान के भाँडार उसके मस्तिष्क से केवल इतनी ही बात जान कर मेरा मन फिर अपने शरीर में लौट आया।

जान स्मिथ कहने लगा—"तारकप्रसाद! मुझे मालूम होता है कि तेरह वर्ष पूर्व जब मैं तुमसे मिला था तब तुम्हारी मानसिक शक्तियों का जितना विकाश हुआ था उसकी अपेक्षा उनमें इस समय बड़ी उन्नति हुई है। इसी कारण से पर-मस्तिष्क-प्रवेश की विधि सीखने के तुम अधिकारी हो गये हो। मैं अपने शिष्यों को जिस विधि से शिक्षा देता हूँ यदि उसी विधि से संसार के सब शिक्षक शिक्षा देने लगें तो उनका बहुत सा परिश्रम बच जाय और संसार को भी इससे बड़ा लाभ हो। अब मैं जो कुछ कहता हूँ उसे ध्यान से सुनना और मेरी बातों को अक्षरशः सत्य समझ कर ठीक वैसा ही व्यवहार भी करना। अन्यथा तुम्हारी और मेरी दोनों की मृत्यु हो जायगी। अच्छा तो सुनोः—जो ज्ञान मैं तुमको प्राप्त कराना चाहता हूँ उस पर मैं अपना चित्त एकाग्र करूँगा। इससे केवल उसी ज्ञान के संस्कार (परमाणु) मेरे मस्तिष्क में उस समय जागृत-स्थिति में रहेंगे। तुमको मेरे नेत्र खुले हुए दिखाई देंगे। पर वास्तव में मेरी देखने की शक्ति अन्तर में लीन हो जायगी। मैं मृतक के तुल्य हो जाऊँगा। इस समय अन्य जीवित मनुष्य के मस्तिष्क में मन को कैसे प्रवेश किया जाता है, यह जानने की तीव्र इच्छा रख कर अपने नेत्रों के पलक बंद किये बिना ही एक टक तुम मेरी ओर देखना। ऐसा करने पर मेरे मस्तिष्क में प्रवेश करने की विधि तुमको मालूम हो जायगी। इस प्रकार मेरे मस्तिष्क में प्रवेश करके मैं जो ज्ञान तुमको प्राप्त कराने का दृढ़ संकल्प करूँ उसे तत्काल ग्रहण कर लेना। ज्योंहीं तुम उसको अच्छी तरह ग्रहण कर लो त्योंही अपने शरीर में प्रवेश करने का संकल्प करना। इस प्रकार अपने शरीर में पहुँच कर इस शीशी में जो रस है उसे मेरे मुँह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में तुरन्त डाल देना। ऐसा करने से मैं सावधान हो जाऊँगा। मेरे मस्तिष्क में जो अन्य विषयों का ज्ञान भरा है उसे जानने का कदापि प्रयत्न न करना। यदि तुम अपने मन को उन बातों की ओर ज़रा भी विचलित करोगे तो हम दोनों मर जायँगे। उस दशा में मैं तो और किसी अन्य शरीर में प्रवेश कर जाऊँगा, पर तुमको पुनर्वार यह अपना शरीर कदापि न मिलेगा। बाहर निकलने पर तुम्हारा कहीं पता भी न लगेगा।"

इस प्रकार मुझे समझा बुझा कर उस दिव्य पुरुष ने अपने हाथ आगे बढ़ाकर मेरे दोनों हाथ पकड़ लिये और स्थिर दृष्टि से मेरे मुँह की ओर देखने लगा। उसका दृढ़ और बलवान् शरीर ऐंठने लगा। उसके नेत्रों का रूप ऐसा जान पड़ता था मानों उनको देखने की शक्ति चली गई है। धीरे धीरे उसके हाथ भी कड़े होने लगे। जहाँ पर मेरे हाथ उसने पकड़े थे वहां उसकी मुट्ठी की पकड़ सर्प-कुंडली के समान ऐसी कड़ी पड़ गई कि यदि मैं बलपूर्वक उनको छुड़ाने का प्रयत्न करता तो भी निष्फल होता। तब मैं उसकी ओर आगे झुका और मुझे जो ज्ञान उससे प्राप्त करना था उस पर अपने मनको एकाग्र किया। इतने में मुझे मालूम होने लगा कि जैसे पानी में स्पंज गिरते ही पानी को एक साथ सोख लेता है वैसे ही मेरा मन मेरे इच्छित ज्ञान को उसके मस्तिष्क से प्राप्त कर रहा है। क्षण भर में यह क्रिया पूरी हो गई। मैंने तत्काल ही अपने पूर्व शरीर में आने का संकल्प किया। उसी समय मेरा मन अपने मूल शरीर में प्रवेश कर गया। अपने गुरु के शरीर की ओर देखते ही मुझे जान पड़ा कि वह शिथिल पड़ा है और जल में डूबते हुए मनुष्य के समान मुँह फैला कर बड़ी कठिनाई से श्वास लेने का प्रयत्न कर रहा है। मैंने शीघ्रता से उस शीशी का रस उसके मुँह में डाल दिया। एक दो बार हिचकी लेकर वह फिर सचेत हो गया।

जो विलक्षण ज्ञान और सामर्थ्य उसकी कृपा से मुझे प्राप्त हुए थे उनके लिए मैंने इस समय उसका बड़ा उपकार माना। वह बोला:—"तारकप्रसाद, आज जैसे साहस का काम मैंने किया है वैसा साहस शायद ही किसी मनुष्य ने कभी किया हो। मैं अच्छी तरह मालूम था कि तुम मुझे अपने पिता का वध करने वाला जानते हो। तुम्हारा यह विचार भी मुझसे गुप्त न था कि खूनका बदला खून से लिया जाना चाहिए। तिस पर भी मैं तुम्हें पंजे में फँसा। यह ओषधि यदि तुम अभी न पिलाते तो निस्सन्देह मेरी मौत हो जाती। इस तरह तुम अपने इच्छानुसार अपने पिता की हत्या का बदला ले सकते थे। इस शीशी में क्या था, यह जानने की तुम्हारी इच्छा है। लो सुनो, इसमें सोम नाम की वनस्पति का रस था। आज तुमने मेरा जीवन बचाने में जो प्रामाणिकता दिखाई है उसके लिए मैं तुम्हारा बड़ा उपकार मानता हूं। अच्छा, अब यहाँ ठहरने की कोई ज़रूरत नहीं। मैं बिदा होता हूँ। राम राम।"

मैं आतुर होकर बोल उठा:—"क्षण भर ठहरिए। मैं आपको विदा करने के लिए नीचे तक साथ चलता हूँ मेरे घर से आपको निकलते देख मेरे नौकर शंका करेंगे और आपको कदाचित् रोक भी दें। मुझे आश्चर्य तो इस बात का है कि मेरे नौकरों ने आपको यहाँ तक आने ही कैसे दिया। क्योंकि मैंने उनको कड़ी आज्ञा दे रक्खी है कि मेरे पास किसी को न आने देना।"

उसने उत्तर दिया:—"छिः! इसमें आश्चर्य की बात ही कौनसी है? तुम्हारे नौकरों ने मुझे देखा था और यहाँ आने को मना भी किया था पर ज्योंही मैंने अपनी यह छड़ी उनके मस्तक पर फिराई त्योंही वे घोर-निद्रावश होगये। अब तक वे सो रहे हैं। मैं जाते समय उनको जगा दूँगा। इतना कह कर वह चल दिया।

उसके जाने के बाद मुझे ज्ञान प्राप्त करने की अद्भुत विधि हाथ लगी थी उसके आनन्द में तथा सम्बन्धी विचारों में लीन होकर थोड़े समय तक बैठा रहा। सारे संसार में प्रतिष्ठा प्राप्त करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो मेरी प्रबल उत्कंठा थी वह अब मुझे सहज ही साध्य हो गई। किसी भी विद्वान् के पास जाकर उसके मस्तिष्क में भरा हुआ संपूर्ण ज्ञान एक क्षण भर में सीख लेने का मुझे सामर्थ्य प्राप्त हो गया था। जितना ज्ञान सम्पादन करने में मनुष्य का सारा जन्म व्यतीत हो जाता है वह सब अति सुलभ रीति से निमिष मात्र में मैं प्राप्त कर सकता हूं। यदि प्रति दिन मैं केवल एक ही विद्वान् का समागम करूं तो एक वर्ष में मेरे मस्तिष्क में कितना असाधारण ज्ञान का भांडार एकत्र हो जायगा, यह विचार कर मुझे जो असीम आनन्द हुआ वह जिह्वा और लेखनी की सीमा से बाहर है। मुझे मालूम होने लगा कि थोड़े वर्षों में मेरे मस्तिष्क में पृथ्वी भर के सम्पूर्ण विद्वानों का ज्ञान आ जायगा और मुझे देख कर सारा संसार चकित हो जायगा! अहा! इस बीसवीं शताब्दी में मैं एक महा अद्भुत महात्मा गिना जाऊँगा!

इस प्रकार अनेक संकल्प विकल्प करते करते मेरी इच्छा मङ्गल को फिर देखने की हुई। अपनी कुर्सी में पड़ा हुआ सुखपूर्वक मैं मङ्गल ग्रह को देख सकूँ, इस प्रकार दूरबीन की नली लगा कर मैं उसकी तरफ़ देखने लगा।

आकाश स्वच्छ था। मङ्गल के वातावरण में भी उस समय किसी प्रकार का विकार न होने के कारण मेरी दूरबीन से वह ग्रह जैसा स्पष्ट दिखाई पड़ता था वैसा पूर्व काल में शायद ही कभी किसी खगोल-वेत्ता को दृष्टिगोचर हुआ हो। इसके सिवा इस समय आगस्ट महीना होने से मङ्गल पृथ्वी के अति निकट, अर्थात् ३,३०,००,००० मील की दूरी पर, आ गया था। इससे उसे देखने का काम अधिक सुगम हो गया था।

मुझे मङ्गल का दक्षिण गोलार्ध दिखाई देता था। उसके रक्त वर्ण में श्वेत और गहरे लाल धब्बे बड़े मनोहर जान पड़ते थे। मध्य भाग में विस्तृत "टर्बी" समुद्र लहरा रहा था। दाहिनी ओर "मराल्डी" सागर के कोण स्पष्ट प्रतीत होते थे। जल के इन दो बड़े समुद्रों के बीच, अथवा यों कहिए कि "टर्बी" समुद्र के चारों ओर घेरे हुए "सेकची-खण्ड" दिखाई देता था, जिसके दक्षिण में डिलारू महासागर फैला हुआ था। इस महासागर के मध्य भाग में "हेल द्वीप" साफ़ साफ़ देख पड़ रहा था। उसके दक्षिण में जेकब की भूमि भी दिखाई देती थी। मङ्गल के आस पास आकाश में दो चन्द्र ऐसे मालूम होते थे मानो वायु-मण्डल में आग के दो गोले उड़ रहे हैं। उनमें से बड़ा पूर्व से पश्चिम की ओर चलता दिखाई देता था। परन्तु दूसरे का आकार छोटा था। वह मंगल के बहुत निकट और अधिक वेगवान् होने के कारण मेरी दूरबीन से ऐसा देर पड़ता था मानो विपरीत दिशा में भ्रमण कर रहा है।

भूमि के भिन्न भिन्न भागों में घरों के समूह साफ़ देख पड़ते थे। इससे यह मालूम हो गया कि मंगल ग्रह में प्राणी बसते हैं और वहाँ की प्रजा सुशिक्षित भी है। 'टर्बी' समुद्र के पश्चिमी किनारे पर बसे हुए एक सब से बड़े नगर को पसंद करके मैंने उसके ऊपर दृष्टि जमाई और एकाग्र होकर उसके किसी निवासी को देखने का मैं प्रयत्न करने लगा। यद्यपि मेरी दूरबीन बड़ी बलवान् थी तथापि मुझे इस काम में सफलता प्राप्त न हो सकी।

तब भी मैंने अपनी दृष्टि वहाँ से न हटाई। इतने में थोड़े ही समय पूर्व की घटना का मुझे स्मरण हो आया। मैं सोचने लगा कि मंगल ग्रह के किसी निवासी के मास्तष्क में प्रवेश करने का यदि मैं प्रयत्न करूं तो सफल हो सकता हूं या नहीं। इस विचार के साथ ही मुझे अपने बल की परीक्षा करने की उत्कट इच्छा हुई। विधि के अनुसार मैंने प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया। क्षण भर में मेरे सामने का दृश्य बदलने लगा। जिस नगर पर मैंने दृष्टि डाली थी वह आश्चर्यजनक वेग से मेरे निकट आने लगा और उसके एक विशाल घर की अटारी पर मुझे अनेक मनुष्य दिखाई दिये। उनमें से एक मनुष्य पृथ्वी की ओर अँगुली से इशारा करके वहाँ बैठे हुए मनुष्यों को कुछ समझा रहा था। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य के मस्तिष्क में मंगल-सम्बन्धी जो ज्ञान था उसे जानने की मुझे तीव्र अभिलाषा हुई। मेरे मन का वेग इस ओर झुकते ही मुझे जान पड़ा कि उस मनुष्य की दृष्टि भी मेरी ओर जम गई है। यही समय मुझे अपना काम निकालने के लिए ठीक था। अतएव मैंने अपनी क्रिया आरम्भ करके उसके मस्तिष्क में प्रवेश किया। वहाँ असाधारण ज्ञान का भांडार देख मेरी बुद्धि चकित हो गई। बड़ी शीघ्रता से मैं उस ज्ञान को ग्रहण करने लगा। क्योंकि मुझे ज्ञात था कि यदि मुझे वहाँ थोड़ा भी विलम्ब हो जायगा तो मूल शरीर में लौट जाने की मेरी शक्ति चली जायगी। तथापि उसके मस्तिष्क में इतना ज्ञान भरा था कि उसे पूर्ण रूप से हस्तगत किये बिना लौटने को मेरी इच्छा हो न हुई। असाधारण लोभ और स्वार्थ-बुद्धि से मैं उसके मस्तिष्क में जमे हुए विद्यातत्त्वों को शीघ्रता से ग्रहण करने लगा। परन्तु मेरे लोभ ने मेरा नाश किया। मुझे जान पड़ा कि मेरे शरीर की दशा मरणावस्था को प्राप्त मनुष्य के समान हो रही है। इसलिए भय से घबरा कर मैंने लौट आने का प्रयत्न किया। पर मेरा वश न चला। मैं एकाएक चक्कर खाकर धड़ाम से भूमि (मंगल) पर गिर पड़ा। मेरे चारों ओर अन्धकार छा गया।

जब मुझे होश आया तब जान पड़ा कि मेरे आस पास अद्भुत हलचल हो रही है। लोग घबरा कर धीरे धीरे बोल रहे हैं। मैंने आँखें खोलकर इधर उधर देखा। मालूम हुआ कि कुछ अनजान और विचित्र आकृति के लोग पालकी के आकार के किसी वाहन में सुलाकर मुझे कहीं लिये जाते हैं। धीरे धीरे मुझे जान पड़ने लगा कि ये लोग मेरी जान पहचान के हैं। मुझे स्मरण हो आया कि मैं अब तारकप्रसाद नहीं हूँ। उस नाम का मेरा शरीर तो पृथ्वी पर ही पड़ा है। मैंने मंगल ग्रह में आकर किसी अन्य मनुष्य के शरीर में प्रवेश किया है और अपने ही कर्म्मों से मैं मंगल का निवासी बन गया हूँ। सारी पृथ्वी पर असाधारण प्रतिष्ठा और मान सम्पादन करने की मेरी सब आशाओं का अन्त हो गया। महा विद्वान् कहलाकर संसार में बड़ा नाम कमाने का जो मैंने विचार किया था, तथा अपने असाधारण ज्ञानबल से संसार को अनेक चमत्कार दिखाकर चकित करने की जो मेरी प्रबल अभिलाषा थी, वह सब एक क्षण में पानी के बबूले की तरह नष्ट हो गई। यह जान कर सन्ताप से मैं फिर मूर्छित हो गया।

जब मैं जागा तब मन को पहले की अपेक्षा अधिक शान्त पाया। मेरी उस समय की दुःखमय दशा में सन्तोष मानने के सिवा और कोई प्रतीकार न था। जिस देह में मेरा प्रवेश हुआ था उसके मस्तिष्क के ज्ञान-भांडार से ज्ञात होता था कि उसमें निवास करने वाला पुरुष महा विद्वान् था। मैं बार बार अन्तःकरण से यही चाहने लगा कि यदि वह जीव पृथ्वी पर जाकर मेरे पूर्व शरीर में प्रविष्ट हो गया हो और मेरे मस्तिष्क-स्थित ज्ञान से परिचित होकर उसे भी पर-मस्तिष्क-प्रवेश-विद्या आ गई हो, तो बहुत उत्तम हो। मेरी विद्या के प्रभाव से ऐसा होना संभव भी था। जैसे मैं उसके शरीर में प्रवेश करके उसके द्वारा सम्पादित सम्पूर्ण ज्ञान का अधिपति हो गया हूं वैसेही वह भी—यदि उसका मेरे शरीर में प्रवेश हुआ हो तो—मेरे सब ज्ञान का स्वामी हो गया होगा। इस प्रकार के विचारों से मुझे कुछ शान्ति हुई। क्योंकि मेरा ज्ञान उसे प्राप्त हो जाने से, यदि उस पृथ्वी-स्थित जीव ने भविष्यत् में कभी फिर मंगल में आने की इच्छा हो तो मेरा पुनर्वार पृथ्वी पर चला जाना संभव हो जायगा। इसलिए उस जीव की मंगल में लौट आने की इच्छा पूर्ण करने में सहायक होने का मैंने निश्चय किया। जब मेरे मन में इस प्रकार के अनेक विचार हो रहे थे तब एक मनुष्य कमरे में आया और मेरे पलँग पर ढके हुए परदे को हटाकर मेरी ओर झुककर प्रसन्नता-पूर्वक बोला—"गास्था! तो तुम को अच्छी तरह होश आ गया? अब कुछ शान्ति मालूम होती है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने उत्तर दिया:—"प्रिय बन्धु नेसो! हाँ, अब मेरी दशा बहुत अच्छी है। परन्तु मैं अशक्त बहुत हो गया हूँ। मेरे मस्तक में पीड़ा भी है। भाई! मुझे तो याद भी नहीं कि मुझे क्या हुआ था।"

"पहले तुम इसे पीलो।" ऐसा कहकर उसने मुझे कुछ मधुर और सुगन्धित रस पीने को दिया। जब मैं उसे पी रहा था तब वह बोला:—"भाई! कल अपने कालेज के विशाल कमरे में हम लोग एकत्र हुए थे। उस समय आकाश में चमकते हुए उस हरे तारे के (पृथ्वी) विषय में तुम व्याख्यान दे रहे थे। तुमने उस समय विशेषता के साथ इस बात का प्रतिपादन किया था कि अपने मंगल की भाँति उसमें भी जीवधारी बसते हैं। यह सुनकर कितने ही वृद्ध तुम्हारी हँसी उड़ाने लगे। इस पर तुम बड़े क्रुद्ध हुए। आवेश में आकर तुमने उनको अज्ञान और जड़मति कहा। कुछ देर में तुम अपना पक्ष सिद्ध करते करते एक दम रुक गये और थोड़ी देर उस हरे तारे की ओर तुमने एक टक देखा। तब तुम्हारा शरीर काँपने लगा और तुम एकाएक नीचे गिर पड़े। तुम्हारा मस्तक पत्थर के साथ टकराने से तुम बेहोश हो गये। हम लोगों को उस समय यह डर लगा कि तुम्हारे प्राण कहीं कूच न कर गये हों। तुम्हारा हृदय देखा तो उसमें कुछ धड़कन थी। इससे बड़ी सावधानी से तुम यहाँ घर तक लाये गये। अब छः बज गये हैं। इसलिए मैं तार आँफिस में अपनी नौकरी पर जाता हूँ। वहाँ से बारह बजे लौटूँगा। यहाँ से जाकर मोनिया को उसके पिता के यहाँ से भेज दूँगा। मुझे विश्वास है कि उसकी प्रेमभरी चितवन से तुम शीघ्र ही आराम हो जावगे।"

उसके जाने के बाद बिस्तर से उठकर मैंने कपड़े पहने और खुली खिड़की के पास बैठकर बाहर देखने लगा। मेरे कपड़े प्राचीन ग्रीक लोगों के समान थे। बाहर का सम्पूर्ण दृश्य कुछ कुछ लाल रंग का था। घास, वृक्ष, समुद्र और पत्थर के घर सभी लाल रंग के थे। समाचार भेजने की रस्सियाँ दूर तक मुझे दिखाई दीं। खिड़की से मैंने नेसो को उसी ओर जाते देखा। तार चलाने की विद्या में पृथ्वी के मनुष्यों की अपेक्षा मंगल के लोग मुझे बहुत पीछे मालूम हुए। मैं सोचने लगा कि मंगल में बिजली के तार द्वारा समाचार भेजने की प्रथा मैं प्रचलित कर दूँगा और जिन जिन बातों में पृथ्वी के लोगों से मंगल वाले पीछे हैं वे सब मैं इनको सिखला दूँगा। इस तरह अमेरिका के 'एडिसन' की तरह कीर्तिसम्पादन करने का मुझे यहाँ अवसर मिल जायगा।

मैं इस प्रकार सोच रहा था कि पीछे से किसी के कोमल हाथों का स्पर्श मेरी पीठ को हुआ। मैंने मुड़कर देखा कि मेरी प्रियतमा मोनियो मेरे पीछे खड़ी है।

वह मेरी हँसी करती हुई बोली:—"ज्ञान के पीछे भूत होकर भ्रमण करने वाले गाम्था! ऐसे कौन से महत्त्व के विचार में तुम लीन हो गये हो जो अपने विवाह की बात भी भूल गये। मेरे साथ विवाह करने के पहले ही इस प्रकार पत्थरों से टकराकर सिर फोड़ना क्या तुम्हें उचित था? सच पूछो तो मुझे तुम्हारी ये बातें अच्छी नहीं लगतीं। मुझे यह बतलाओ कि विवाह होने के बाद भी क्या तुम यही काम करते रहोगे? यदि ऐसा हो तो विवाह करनाही व्यर्थ है।"

मैंने कहा:—"मेरी आँखों की पुतली! तू जिसमें प्रसन्न होगी मैं वही करूँगा। तेरे ऊपर मेरा तन, मन, धन सब निछावर है। प्रिये! मेरा हाथ पकड़ कर चल। हम लोग थोड़ी देर बाग़ में टहल आवें।"

फिर हम लोग नीचे उतर कर उद्यान में गये। अनेक विषयों पर बातचीत होती रही। पर उसका सम्बन्ध इस कथा से नहीं हैं। इसलिए मैं उसको अपने हृदय के सन्दूक़ में ही बन्द रखता हूँ।

इसके बाद तीन वर्ष में मैंने वहाँ की प्रजा के जीवन में अनेक प्रकार के फेर फार कर दिये। टेलीग्राफ़, टेलिफ़ोन आदि अपनी पृथ्वी के भिन्न भिन्न यंत्र मैंने शीघ्रता से एक के पीछे एक खोज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकाले और उनका वहाँ प्रचार कर दिया। इसके सिवा मैंने वहाँ की प्रजा को विद्युत् और बाष्प के उपयोगों के विषय में भी शिक्षा दी।

इन सब बातों से मेरा नाम वहाँ बहुत प्रसिद्ध हो गया। ख़ुद राजा ने मेरी असाधारण बुद्धि के लिए भरे दरबार में मेरा सम्मान किया। चारों ओर मेरी स्तुति के गीत गाये जाने लगे। मतलब यह कि वहाँ के सरल-हृदय मनुष्य मुझे देवता के समान समझने लगे।

मंगल में यह सब सुख होने पर भी मुझे शान्ति न मिली। वहाँ मेरी कीर्ति के मध्यान्ह का सूर्य चमकता था। घर में मोनिया के साथ भी मुझे परम सुख था। यद्यपि घर में अथवा बाहर मुझे संताप उत्पन्न करने वाला कोई कारण दिखाई न देता था तथापि शूल के समान मेरे हृदय में रात दिन चिन्तारूपी अंकुश लगा ही रहता था। प्रथम तो कई दिनों तक मेरी समझ में इसका कारण हो न आया। पर अन्त में मैंने उसे जान लिया। वह गुप्त कारण यह था:—

जिस गाम्था के शरीर में मैंने प्रवेश किया था उसके स्वभाव का सबसे बड़ा गुण सत्यनिष्ठा थी। उसके शरीर में प्रवेश करने से मेरा स्वभाव बदल कर मुझ में भी वह लक्षण आ गया। इसी कारण दूसरे के शरीर में रहकर पृथ्वी के विद्वानों के विचार और आविष्कारों को चोरी से अपने नाम पर प्रकट करना मुझे असह्य हो गया।

इसलिए यद्यपि मुझे मंगल ग्रह की प्रजा के साथ इतने समय में सहानुभूति और प्रेम उत्पन्न हो गया था तथापि मुझे वहाँ रहना कष्टदायक हो गया। अतएव पृथ्वी से मंगल पर मेरे आने के समय जिस कक्षा में मंगल पृथ्वी के पास आ गया था वही संधि मिलाकर मैंने पृथ्वी पर अपनी वेधशाला के स्थान का अनुमान करके अपनी दूरबीन को उपयोग करने वाले मनुष्य के शरीर में प्रवेश करने का एकाग्रतापूर्वक संकल्प किया और तुरन्त ही मैं पृथ्वी पर आ पहुँचा।

परन्तु जब मैं सावधान हुआ तब मुझे जान पड़ा कि मेरा प्रवेश अपने पूर्व शरीर में नहीं किन्तु किसी माशियो की देह में हुआ है। माशियो के शरीर में जो जीव मेरे प्रवेश के पहले रहता था वह गाम्था था। यदि इस शरीर में माशियो ही होता तो मेरा पृथ्वी पर आना ही असंभव हो जाता। पहले गाम्था ने मेरे शरीर में प्रवेश किया था, इसलिए मेरे मस्तिष्क में भरे हुए ज्ञान के साथ उसे यह भी मालूम हो गया था कि मेरी इच्छा मंगल से पृथ्वी पर लौट आने की थी। इसीलिए वह भी अवसर ताक रहा था। इसी कारण से मंगल से पृथ्वी पर लौट आने में मुझे ज़रा भी कठिनाई नहीं हुई।

परन्तु गाम्था ने मेरे शरीर से निकलकर माशियो के शरीर में क्यों प्रवेश किया? उसके ऐसा करने में मुझ से बदला लेने के सिवा अन्य कोई प्रयोजन न था। नीचे के वृत्तान्त से यह बात अच्छी तरह समझ में आजायगी।

पृथ्वी पर मेरे शरीर में आने के बाद गाम्था को बड़ा क्रोध आया। मंगल से पृथ्वी पर उसको बल-पूर्वक घसीट लाने वाला मैं ही हूँ—यह जानकर उसने मुझ से बदला लेने का निश्चय किया। मेरे शरीर में आने से, मंगल में प्रवेश करने का कारण तथा मेरे जीवन के सब प्रसंग और उद्देश वह जान गया। उसको निश्चय हो गया कि मैं पृथ्वी पर लौट आने वाला हूँ। यहाँ आकर सारे संसार में प्रतिष्ठा प्राप्त करने का जो मेरा मुख्य उद्देश है उसे सिद्ध करने का मैं प्रयत्न करूँगा। मेरे इसी उद्देश को निष्फल करने के लिए और मेरे जीवन को मिट्टी में मिलाने के लिए उसने एक युक्ति सोच निकाली। मेरे शरीर में रहकर मेरी सब सम्पत्ति डी. माशियो को मिलने का उसने वसीयतनामा लिख दिया। फिर वह माशियो से मिला और मेरी विद्या के बल से उसके शरीर में प्रवेश कर गया। तब माशियो मेरे शरीर में आया, परन्तु जिस मस्तिष्क में पृथ्वी और मंगल इन दोनों लोकों का ज्ञान एकत्र था उसमें उसका (माशियो का) मन ठहरने का सामर्थ्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखता था। इसलिए उसकी वही दशा हुई जो लंदन नगर में स्मिथ के मस्तिष्क में प्रवेश करने पर मेरी हुई थी। परन्तु गाम्था, माशियो के शरीर से शीघ्र नहीं लौटा। इससे माशियो के मन की और उसके साथ मेरे शरीर की भी, स्मिथ के पूर्व कथनानुसार, मृत्यु हो गई। गाम्था भी यही चाहता था। तारकप्रसाद के शरीर की मृत्यु होने से उसके वसीयतनामे के अनुसार माशियो के शरीर में निवास करने वाले गाम्था को तारकप्रसाद की कुल सम्पत्ति मिल गई। जिस माशियो के शरीर को मैं कट्टर शत्रु मानता था वही मेरी अतुल सम्पत्ति का स्वामी हो गया। गाम्था ने माशियो के शरीर में रहकर मेरा मंगल-सम्बन्धी ज्ञान माशियो के नाम से प्रकाशित किया। इससे जो कीर्ति-सम्पादन करने की मैं (तारकप्रसाद) ने आशा की थी, और जिसके लिए मैंने इतना महान् परिश्रम किया था, वही कीर्ति मेरे शत्रु माशियो को मिल गई। इस प्रकार गाम्था ने केवल मेरा जीवन और मेरी कुल आशाओं ही पर धूल नहीं डाली, किन्तु मंगल में जो असाधारण सम्मान मैंने प्राप्त किया था उसका भी भोक्ता वही बन बैठा। पाठक! प्रतिकूल प्रारब्ध देखा! कौन रसोई बनाता है और कौन उसे खा जाता है! "तुम्हें कोई अत्यन्त प्रिय वस्तु इस चमत्कारिक विद्या के लिए देनी पड़ेगी—" जॉन स्मिथ का यह वचन अक्षरशः सत्य हो गया।

अपने शत्रु के शरीर में मैं आ तो गया; परन्तु जीवित होकर भी मृतक के समान ही रहा। अपने अगाध ज्ञान को इस शरीर में मैं क्या शहत लगाकर चाटूँ? अब मैं जो कुछ लिखकर प्रकाशित करूँगा उसके लिए ख्याति तो माशियो ही को होगी; क्योंकि अब मैं तारकप्रसाद के शरीर में न होकर माशियो के शरीर में हूँ। मेरा मूल शरीर तो बेचारा कहीं गड़ा सड़ रहा होगा! उसकी तो अब मिट्टी भी बन गई होगी! हाय! मेरे शरीर का अग्नि-संस्कार तक न हुआ!!!

अब यह कैसे हो सकता है कि तारकप्रसाद माशियो के शरीर में रहकर खगोल-विद्या के आश्चर्यकारक ग्रंथ प्रकाशित करके उनके लिए कीर्ति और सम्मान माशियो को दिलावे? चाहे पृथ्वी की प्रजा अधिक काल तक अज्ञान के अन्धकार में सड़ा करे, पर मुझसे तो यह न हो सकेगा। इस कारण आज रात को मैं फिर एक बार मंगल में प्रवेश करने का प्रयत्न करने वाला हूँ। मैं परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह मुझे गाम्था के शरीर में प्रवेश करने की सब अनुकूलता प्रदान करे।

* * * * * *

मैं एकाग्रदृष्टि से मंगल की ओर देखने को अभी विष पीकर बैठता हूं। इस विष का प्रभाव धीरे धीरे होता है; पर साथ ही वह अनिवार्य है। विष पीने से मतलब यही है कि मंगल की ओर देखते समय यदि गाम्था मेरी ओर देखता होगा तो निस्सन्देह उसके शरीर में मेरा प्रवेश हो जायगा और वह इस माशियो के शरीर में आ जायगा। परन्तु यहाँ आकर उसके सचेत होते होते इस विष का असर इस शरीर पर होगा और वह मर जायगा। इस प्रकार गाम्था को पूरा दण्ड मिल जायगा। उसने जो मेरी हानि की है उसका बदला अच्छी तरह मिल जायगा।

मैं मंगल पर दृष्टि जमाता हूं। वह मेरा घर दिखाई देता है। अब—

यह कहानी इस स्थान पर एक दम रुक जाती है। हम यह नहीं जानते कि माशियो के शरीर में रहनेवाला तारकप्रसाद मंगल ग्रह तक पहुँचा कि नहीं। यदि पहुँच गया तो वहाँ उसने क्या क्या काम किये, इस बात की ख़बर देने वाला भी अब इस पृथ्वी पर कोई नहीं। यदि मंगल के साथ पृथ्वी के निवासियों का तार द्वारा सम्बन्ध होता तो तारकप्रसाद से अपना वृत्तान्त पूरा करने की प्रार्थना की जाती। पर ऐसा कोई साधन न होने से निरुपाय होकर चुप रहना पड़ता है।

प्रातःकाल माशियो के मुख्य नौकर को अपने स्वामी का मृत शरीर अटारी पर कुरसी में पड़ा हुआ मिला। उसकी आंखें फटी हुई थीं और उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी दूरबीन में देख रही थीं। उसकी मेज़ पर उसके अधूरे वृत्तान्त के काग़ज़ पड़े थे।

यह आत्मकहानी बनावटी है या सत्य, इसका निर्णय करने के लिए हमारे पास कोई साधन नहीं है। परन्तु यह ज़रूर सत्य है कि आत्मघात करने के पहले माशियो ने यह लेख अपने हाथ से लिखा था और उसके मरने के बाद उसकी मेज़ पर वह मिला था।

श्रीलाल शालिग्राम पंडया।

हेमन्त।

[१]

अहह! ठंढ बड़ी पड़ने लगी;
रजनि भी क्रम से बढ़ने लगी।
घट गया दिन का अब मान है;
शरद का, लखिए, अवसान है॥

[२]

ढक गया हिम से रविमण्डल;
चल रहा नित वायु अखण्डल।
हिम लगा पड़ने निशि में अहा!
सब दिशा गत-दीप्ति हुईं महा॥

[३]

न खिलतीं नलिनी छवि-पुञ्ज हैं;
न उन पै करते अलि गुञ्ज हैं।
न सर की सुषमा वह है अब;
न दिन एक समान कटें सब॥

[४]

सलिल जो जग-जीवन है अहा!
वह हुआ अब ठंड अहो महा।
अधिक भीत हुए उससे सब;
लख उसे तन काँप उठे अब॥

[५]

"अहह! शीत बड़ा"—कहते नित,
सकल लोग रहें अति पीड़ित।
न निकलें निशि में अब बाहर;
वसन में दबके रहते नर॥

[६]

पवन है नहिं—हा! यह तीर है;
कर रहा यह प्राण अधीर है।
शमन है यह शीत-निशा नहीं;
तुहिन-पूर्ण दिशा, विदिशा, मही॥

[७]

इस प्रकार अधीर महान हो,
विलपते अति व्याकुल प्राण हो।
वसनहीन दुखी अति भिक्षुक;
अहह! हैं सहते नित वे दुख॥

[८]

कुहर से जग है ढकता जब,
लख पड़े सब ही धुँधला तब।
न रवि है नभ में दिखता कहीं,
समय जान पड़े सहसा नहीं॥

[९]

मृदुल मूँग तथा नव ज्वार भी,
तिल, रमास गये कट ये सभी।
कृषक मींज रहे अब धान हैं;
चित अहो! हरते खलिहान हैं॥

[१०]

प्रकृति-वधू की रङ्ग-भूमि जो ग्राम हैं,
होते अभिनय वहाँ नित्य अभिराम हैं।
अलसी अरहर हरित हृदय हहरा रहे;
गेहूँ जौ हैं कहीं कहीं लहरा रहे॥

[११]

फूल फूल पुन्नाग, लोध मन को हरें;
गेंदा-पुष्प-प्रलुब्ध मधुप गूँजा करें।
शुभमय-सौरभ-सने सुमन सरसों खिलें।
सरस साग स्वादिष्ठ सहज सस्ते मिलें।

[१२]

मिष्ट मटर की फली, मृदुल मूली महा
आकर्षित अब करें नरों का मन अहा!
सुख-दुखमय नवदृश्य-पूर्ण हेमन्त है;
कौन अहो! पा सकता उसका अन्त है?

पाण्डेय लोचनप्रसाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुराने अँगरेज़ अधिकारियों के संस्कृत पढ़ने का फल।

इँगलिस्तान के व्यापारी तो बहुत पहले से भारत में व्यापार करते थे; पर उन सब का काम अलग अलग होता था, एक में न होता था। इससे काम-काज में सुभीता कम था और मुनाफ़ा भी कम होता था। इस त्रुटि को पूरा करने के लिए १२५ आदमियों ने मिलकर साढ़े दस लाख रुपये की पूँजी से एक कम्पनी बनाई। इँगलैंड की रानी एलिज़बेथ ने ३१ दिसम्बर १६०० को इस कम्पनी को दस्तावेज़ पर दस्तख़त करके इँगलैंड और भारत के बीच व्यापार करने की आज्ञा दी। ईस्ट इंडिया कम्पनी की जड़ यहीं से जमी, अथवा यों कहिए कि अँगरेज़ी राज्य का सूत्र-पात यहीं से हुआ। इसी १२५ व्यापारियों की कम्पनी ने कुछ दिनों में राजसी ठाट जमा लिया, और अपने देश इँगलिस्तान की अपेक्षा जिस देश की आबादी दसगुनी अधिक है उस पर व्यापार करते करते राजसत्ता भी चलाने लगी। इस कम्पनी के साझी-दार अपने देश में तो अपने बादशाह की रैयत थे, पर भारत में ख़ुदही बादशाह बनकर हुकूमत करते थे, फ़ौजें रखते थे, बड़े बड़े राजों, महाराजों और शाहंशाहों की बराबरी करते थे, लड़ाइयाँ लड़ते थे, सन्धि-स्थापना करते थे और भी न मालूम कितने सत्तासूचक काम करते थे। ऐसा दृश्य इस भूमण्डल में बहुत कम देखा गया होगा। यह हमारा निजका कथन नहीं, किन्तु लन्दन की टो० फिशर० अनविन कम्पनी के लिए ए० रगोज़िन साहब ने जो भारत-वर्ष का एक प्राचीन इतिहास लिखा है उसके एक अंश का अवतरण मात्र है।

भारत में व्यापार करने वाले योरप के गोरे व्यापारियों की यह पहली ही कम्पनी न थी। पोर्चुगीज़ लोग यहाँ बहुत पहले से—जब से वास्को-डि-गामा ने १४९८ ईसवी में इस देश की भूमि पर क़दम रक्खा—व्यापार में लगे थे। विदेशी व्यापारियों में वे अकेलेही थे और ख़ूब मालामाल हो रहे थे। अँगरेज़ व्यापारियों ने देखा कि ये लोग करोड़ों रुपये अपने देश ढोये लिये जा रहे हैं, चलो हम भी इन्हीं की तरह भारत में व्यापार करें और जो मुनाफ़ा इन लोगों को हो रहा है उसका कुछ अंश हम भी लें। पोर्चुगीज़ों का व्यापार कोई सौ वर्ष तक बिना किसी विघ्न-बाधा के भारत में जारी रहा। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि वे लोग एक प्रान्त के बाद दूसरे प्रान्त को अपनी ज़मींदारी में शामिल करके पूरे मुल्क को अपने क़ब्ज़े में कर लेने का इरादा रखते थे। वे लोग अपने इस इरादे को कार्य्य में परिणत कर ही रहे थे कि ईस्ट-इंडिया-कम्पनी ने भारत में पदार्पण किया। अँगरेज़ व्यापारी पोर्चुगीज़ लोगों से किसी बात में कम न थे। इन्होंने बड़ी दृढ़ता से पोर्चुगीज़ों का सामना किया। उनके साथ चढ़ा ऊपरी करने में अँगरेज़ों ने बड़ी सरगरमी दिखाई। फल यह हुआ कि पोर्चुगीज़ लोगों का प्रभुत्व धीरे धीरे कम हो चला। उनकी आमदनी के द्वार क्रम क्रम से बन्द होने लगे,—यहाँ तक कि १६६१ ईसवी में उन लोगों ने अपनी बची बचाई एक मात्र ज़मींदारी इँगलिस्तान के राजा को दे डाली। उस समय केवल बंबई और उसके आस पास का भूभाग उन लोगों के क़ब्ज़े में था। पूर्वोक्त सन् में पोर्चुगल की राजकुमारी कैथराइन का विवाह इँगलैंड के राजा दूसरे चार्ल्स के साथ हुआ। तब बंबई की ज़मींदारी को अपने किसी काम की न समझ कर पोर्चुगल के राजा ने कैथराइन के दहेज़ में दे डाला। परन्तु अँगरेज़-राज ने इस दहेज़ को तुच्छ समझ कर १५० रुपये सालाना मालगुज़ारी देने का इक़रारनामा लेकर ईस्ट-इंडिया-कम्पनी को दे डाला! बंबई और उसके आस पास के प्रदेश की क़ीमत उस समय साढ़े बारह रुपये महीने से अधिक नहीं समझी गई!!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापार-व्यवसाय और ज़मींदारी आदि बढ़ाने में पोर्चुगीज़ लोगों की प्रतियोगिता यद्यपि जाती रही, तथापि अँगरेज़ों को भारत में सत्ता-विस्तार करते देख योरप के और लोगों के मुँह से भी लार टपकने लगी। फ़्रांस, डेनमार्क और हालैण्ड में भी ईस्ट-इंडिया नाम की कम्पनियाँ खड़ी हुईं। उन्होंने भी भारत में व्यापार आरंभ करके अँगरेज़ कम्पनी के मुनाफ़े को घटाना आरंभ कर दिया। यही नहीं, किन्तु जर्मनी और स्वीडन में भी इस तरह की कम्पनियाँ बनीं। उन्होंने भी भारत में अपनी अपनी कोठियाँ खोलीं। परन्तु डेनमार्क, जर्मनी और स्वीडन की कम्पनियों से हमारी अँगरेज़ी ईस्ट-इंडिया-कम्पनी का कुछ भी नहीं बिगड़ा। इन तीनों कम्पनियों का महत्त्व इतना कम था कि अँगरेज़ी कम्पनी के साथ ये नाम लेने योग्य चढ़ा ऊपरी नहीं कर सकीं। परन्तु डच और फ़्रेंच कम्पनियों के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती। उनके कारण अँगरेज़ कम्पनी का मुनाफ़ा और प्रभुत्व ज़रूर कम हो गया। डच लोग उस समय सामुद्रिक बल में अपना सानी नहीं रखते थे। इससे उन लोगों ने हर तरह से अँगरेज़ी ईस्ट-इंडिया-कम्पनी के साथ चढ़ा ऊपरी आरंभ कर दी—यहाँ तक कि बल-प्रयोग करके भी अपना मतलब निकालने में डच लोगों ने कसर नहीं की। भारतही में अपना प्रभुत्व-विस्तार करके डच लोग चुप नहीं रहे। उन्होंने बड़ी फुरती से लङ्का, सुमात्रा, जावा और मलाका आदि द्वीपों का भी अधिकांश अपने क़ब्ज़े में कर लिया। इस डच कम्पनी ने अँगरेज़ व्यापारियों की कम्पनी के साथ जी जान होम कर प्रतियोगिता की। इस कारण दोनों में विषम शत्रुभाव पैदा हो गया। एक दूसरी को नीचा दिखाने की सदाही कोशिश करती रही। यहाँ तक कि कभी कभी मार-काट तक की भी नौबत आई। बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ झेलने के बाद अँगरेज़ व्यापारियों को इन डच व्यापारियों की प्रतियोगिता से फ़ुरसत मिली। कोई सौ वर्ष तक उनके साथ तरह तरह के दाँव पेंच खेले गये। अन्त में डच लोगों ने आजिज़ आकर भारत से अपना सरोकार छोड़ दिया।

अब अकेली फ़्रेंच कम्पनी का सामना अँगरेज़ों को करना पड़ा। इस फ़्रेंच कम्पनी का भी आन्तरिक अभिप्राय भारत को धीरे धीरे अपनी मुट्ठी में कर लेने का था। और अँगरेज़ भी इसी इरादे से पैर फैला रहे थे। एक बिल में दो साँप कैसे रहें? इससे दोनों में घोर कलह उपस्थित हो गया। एक ने दूसरे को अपदस्थ करने की कोशिश आरंभ कर दी। कूट नीति से काम लिया जाने लगा। जब उससे कामयाबी न हुई तब लड़ाइयाँ तक लड़ी गईं। एक कम्पनी दूसरी के पीछे ही पड़ी रही। होते होते अँगरेज़ों का प्रभुत्व बढ़ा। उसने फ़्रांसवालों के बल को नष्टप्राय कर दिया। पाँडीचरी और चन्द्रनगर की ज़मींदारियों को छोड़ कर फ़्रेंच लोगों का भारत में और कुछ बाक़ी न रहा। पोर्चुगीज़ों के क़ब्ज़े में भी समुद्र के किनारे किनारे सिर्फ़ दस पाँच मील ज़मीन रह गई। अँगरेज़ों ने कहा, कुछ हर्ज नहीं, इन लोगों के पास इतनी ज़मींदारी बनी रहने दो, इससे हमारा कुछ नहीं बिगड़ सकता।

अब अँगरेज़ों को अपना बल, विक्रम, और प्रभाव बढ़ाने में रोकने वाला कोई न रहा—फ़्रेंच, पोर्चुगीज़, डच सबने उनके लिए रास्ता साफ़ कर दिया। अँगरेज़ों की महिमा बढ़ने लगी। व्यापार-वृद्धि के साथ साथ राज्य-वृद्धि भी होने लगी। एक के बाद दूसरा प्रान्त उनका वशवर्त्ती होता गया। क्लाइव ने अगरेज़ी राज्य की नींव और भी मज़बूत कर दी। भारत के भाग्य से अँगरेज़ों का सुशान्तिमय शासन हम लोगों को नसीब हुआ।

वारन हेस्टिंग्ज़ ईस्ट इंडिया कम्पनी के पहले गवर्नर जनरल हुए। उन्होंने सबसे पहले भारत-वासियों की रीति, रस्म और स्वभाव आदि का ज्ञान प्राप्त करने की कोशिश की। उस समय भारत-वासी बोझा ढोने वाले पशुओं के समान समझे जाते थे। उनके देश में क़दम रखना सिर्फ़ धन कमाने के लिए ज़रूरी समझा जाता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वारन हेस्टिंग्ज़ ने कहा कि जिन लोगों से और जिन लोगों के देश से हमें इतना लाभ है उन पर, जहां तक हमें कोई हानि न पहुँचे, अच्छी तरह शासन करना चाहिए। परन्तु सुशासन की योग्यता आने के लिए भारतवासियों के इतिहास, विश्वास, धर्म्म, साहित्य आदि का ज्ञान होना ज़रूरी समझा गया। अतएव वारन हेस्टिंग्ज़ ने अपने अधीन कर्म्मचारियों का ध्यान इस ओर दिलाया और सर विलियम जोन्स ने पहले पहल संस्कृत सीखना आरंभ किया।

सर विलियम बंगाल की 'सुप्रीम कोर्ट' के जज थे। उन्हीं ने १७८४ ईसवी में बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना की और हम लोगों के धर्म्मशास्त्र का अध्ययन आरंभ किया। क्योंकि बिना धर्म्मशास्त्र के ज्ञान के भारतवासियों के मुक़द्दमों का फ़ैसिला करने में अँगरेज़ जजों को बेहद कठिनाई का सामना करना पड़ता था और दत्तक आदि लेने का विषय उपस्थित होने पर वारन हेस्टिंग्ज़ को पंडितों की शरण लेनी पड़ती थी। सर विलियम जोन्स ने किस तरह संस्कृत सीखा, इस पर एक लेख सरस्वती में प्रकाशित हो चुका है। इस काम में उन्हें सैकड़ों विघ्न बाधायें हुईं, पर सबको पार करके सर विलियम ने मतलब भर के लिए संस्कृत का ज्ञान प्राप्तहा कर लिया। अरबी और फ़ारसी तो वे इँगलैंड ही से पढ़ कर आये थे। संस्कृत उन्होंने यहां पढ़ी। पूर्वी देशों की भाषाओं में से यही तीन भाषाएँ, साहित्य के नाते, उच्च और बड़े काम की समझी जाती हैं। सर विलियम ने पहले मनुस्मृति का अनुवाद किया। यह अनुवाद १७९० ईसवी में छपा। इससे बड़ा काम निकला। अँगरेज़ जजों को भारतीय पण्डितों की जो पद पद पर सहायता दरकार होती थी उसकी ज़रूरत बहुत कम हो गई। भारतवासियों को अपने धर्म्मशास्त्र के अनुसार न्याय कराने में तबसे बहुत सुभीता हो गया।

इसके बाद एक पादरी साहब की चिट्ठी में संस्कृत-नाटकों का नाम सुन कर सर विलियम जोन्स ने नाटकों का पता लगाना आरंभ किया और शकुन्तला नाटक को पढ़ कर उसका अनुवाद अंगरेज़ी में किया। इस नाटक ने यूरप के विद्यारसिक जनों की आँखें खोल दीं। तब तक यूरप वाले भारतवासियों को, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, निरे जंगली समझते थे। उनका ख़याल था कि भारत में कुछ भी साहित्य नहीं है और जो कुछ है भी वह किसी काम का नहीं। तब तक यूरपवालों की दृष्टि में भारत-वासी अत्यन्त ही घृणा की दृष्टि से देखे जाते थे। घृणा की दृष्टि से तो वे अब भी देखे जाते हैं, पर अब और तब में बहुत अन्तर है। तब हम लोगों की गिनती कुछ कुछ अफ़रीक़ा की हाटेनटाट, बुशम्यन और ज़ूलू आदि महा असभ्य जातियों के समान जातियों में थी और भारत को कुछ क़दर यदि की जाती थी तो सिर्फ़ इसलिए कि उसकी बदौलत करोड़ों रुपये विलायत ले जाने को मिलते थे। पर शकुन्तला को पढ़ कर उन लोगों का यह भाव एक दम तिरोहित होगया। शकुन्तला की कविता, उसके पात्रों का चरित, उसकी भावप्रवणता आदि देख कर वे लोग मुग्ध होगये। शकुन्तला के अँगरेज़ी अनुवाद के भी अनुवाद जर्मन और फ़्रेंच आदि अनेक भाषाओं में होगये, जिन्हें पढ़ कर तत्तद्देशवासियों ने भी उसकी श्रेष्ठता एक-स्वर से क़बूल करली।

शकुन्तला वह चीज़ है जिसकी कृपा से भारतवासी हैवान से इन्सान समझे जाने लगे—पशु से मनुष्य माने जाने लगे। अतएव भगवान् कालिदास के हम लोग हृदय से ऋणी हैं। शकुन्तला से योरपवालों को मालूम हो गया कि नाट्यविद्या में हिन्दू-सन्तान उन लोगों से यदि बढ़ी हुई नहीं है तो कम भी किसी तरह नहीं। वे यह भी जान गये कि जिस ग्रीक-भाषा के साहित्य की श्रेष्ठता के वे लोग इतने कायल हैं, संस्कृत का साहित्य उससे भी किसी किसी अंश में आगे बढ़ा हुआ है। प्राचीनता में तो संस्कृत-साहित्य की बराबरी किसी भाषा का साहित्य नहीं कर सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला के रचना-कौशल को देख कर योरप-वालों को जितना कौतूहल हुआ उसके कथानक का विचार करके उससे भी अधिक आश्चर्य्य हुआ। उसके कथानक का सादृश्य उन्हें एक ग्रीक कहानी में मिल गया। और जब उन लोगों ने विक्रमोर्वशी देखी तब उसके कथानक की भी सदृशता उन्हें ग्रीक-भाषा की एक कहानी में मिली। इस पर उन लोगों के आश्चर्य्य की सीमा ही न रही। वे सोचने लगे कि क्या बात है जो इन असभ्य अथवा अर्द्ध-सभ्य भारतवासियों की बातें उनके पूज्यतम ग्रीक लोगों की बातों से मिलती हैं। कहीं दोनों के पूर्व-पुरुषों का किसी समय एकत्र वास तो नहीं रहा? यह तो साधारण आदमियों की बात हुई। भाषा-शास्त्र के जाननेवालों को, पुरातत्त्व-वेत्ताओं को, तथा पुरानी कथा-कहानियों का ज्ञान रखनेवालों को तो विश्वास सा होगया कि इस साम्य का ज़रूर कोई बहुत बड़ा कारण है। शकुन्तला के पाठ और बंगाले की एशियाटिक सोसायटी की स्थापना से सर विलियम जोन्स के सिवा चार्ल्स विलकिन्स और हेनरी टामस कोलब्रुक आदि और भी कई अँगरेज़ विद्वानों को संस्कृताध्ययन की ओर रुचि हुई। नई नई खोज होने लगी; नई नई पुस्तकें बनने लगीं। फल यह हुआ कि इन गौराङ्ग-पण्डितों को संस्कृत के सैकड़ों शब्द ग्रीक आदि यूरप की प्राचीन भाषाओं में प्रायः तद्वत् अथवा कुछ फेर फार के साथ मिल गये। इससे इन लोगों के आश्चर्य्य, कौतूहल और एक प्रकार के आतंक का ठिकाना न रहा। अरे इन वहशी हिन्दुस्तानियों की प्राचीन भाषा क्या किसी समय हमारी भी पूर्व-पुरुषों की भाषा थी!

बस फिर क्या था, यूरप के कितने ही पण्डित काव्य, नाटक, इतिहास, धर्मशास्त्र का जी लगा-कर अध्ययन करने लगे। जर्मनी के वान शेलीजल और वान हम्बोल आदि प्रकाण्ड पण्डितों ने बड़ी ही सरगरमी से संस्कृत सीखना शुरू किया। जब इन लोगों को वेद पढ़ने और समझने की शक्ति हो गई तब इन्होंने अपना अधिक समय वैदिक ग्रन्थों ही के परिशीलन में लगाना आरंभ किया। इससे उनकी आँखें खुल गईं। संस्कृत-शिक्षा का प्रचार इँगलिस्तान और जर्मनी के सिवा फ्रांस, हालैंड, अमेरिका और रूस तक में होने लगा। वैदिक ग्रन्थों को इन विद्वानों ने एक स्वर से दुनिया के सब ग्रन्थों से पुराना माना और उनके सम्बन्ध में नाना प्रकार की चर्चा आरंभ हो गई। तबसे आज तक यूरप में कितनेहीं विद्वान् ऐसे हो गये हैं और कितनेहीं होते जाते हैं जिनकी कृपा से संस्कृत साहित्य के नये नये रत्न हम लोगों को प्राप्त हुए और अब तक प्राप्त होते जाते हैं।

अँगरेज़-अधिकारियों ने संस्कृत सीखने की ओर ध्यान तो अपने स्वार्थसाधन के लिए दिया था। उन्होंने तो इस लिए पहले पहल संस्कृत सीखने की ज़रूरत समझी थी जिसमें हम लोगों की रीति-रस्म आदि जान कर भारत पर बिना विघ्न-बाधा के शासन कर सकें, पर संस्कृत-साहित्य की श्रेष्ठता ने उन लोगों को भी उसका अध्ययन करने के लिए लाचार किया जिनका शासन से क्या इस देश से भी कुछ सम्बन्ध न था। यदि योरप वाले संस्कृत की क़दर न करते तो हज़ारों अनमोल ग्रन्थ दीमकों की ख़ूराक़ हो जाते। जर्मनी, फ्रांस और इँगलैंड आदि के पुस्तकालयों में क्यों वे पहुँचते और क्यों प्रतिवर्ष नये नये ग्रन्थों का पता लगाया जाता। आज तक योरप के विद्वानों ने जो अनेकानेक अलभ्य ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं, अनेकानेक वैदिक रहस्यों का उद्घाटन किया है, हमारे और अपने पूर्वजों के किसी समय एकत्र एकही जगह रहने और एक ही भाषा बोलने के विषय में जो प्रमाणपूर्ण अनेकानेक पुस्तकें लिखी हैं उसके लिए भारतवासी उनके बहुत कृतज्ञ हैं। यदि हमारी देववाणी संस्कृत की महिमा से आकृष्ट होकर यूरप के विद्या-व्यसनी जन उसका परिशीलन न करते तो भारत में राजा और प्रजा के बीच इस समय जैसा भाव है, शायद वैसा भाव न होता। बहुत संभव है पूर्ववत् हम लोग पशु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही की तरह लाठी से हांके जाते। अतएव हम लोग अँगरेज़, कम्मचारी, यूरप के विद्वान्, संस्कृत-भाषा और महाकवि कालिदास के बहुत ऋणी हैं। विशेष कर कालिदासही की बदौलत हमारी सभ्यता और विद्वत्ता का हाल यूरपवालों को मालूम हुआ है। हमारा धर्म्म है कि हम कालिदास को पूजा करें और सब छोड़ कर संस्कृत सीखें।

ज्योतिष-चमत्कार।

श्रीयुत सम्पादक महाशय,

हम आपको अत्यन्त धन्यवाद देते हैं कि आपके अनुग्रह से हमारा घर भर गया। पं० जनार्दन जोषी के प्रश्नों के जो हमने उत्तर दिये थे उनका प्रत्युत्तर जोषी जी से नहीं बन पड़ा। बस यही हमारी जीत हुई, हमने दस हज़ार रुपए भर पाए, अब जोषी जी को विज्ञापन देने की जरूरत नहीं है। धन्य है जोषी जो को, कि उनकी उदारता के कारण हमारे बड़े लड़के का विवाह ठैर गया। भड़ुरानी जो भी अपने कड़े पहन कर बहुत प्रसन्न हुई हैं और जोषी जी को आशीर्वाद भेजती हैं। जोषा जी की बदौलत अब हमें धर्म-फरोशी करने की जरूरत नहीं है। अब हम भी यही कहते हैं कि फलित ज्योतिष एक बार नहीं सौ बार झूटा। मगर जो कोई हम से कुंडली का फल पूछेगा उससे पांच रुपये दक्षिणा के हम अवश्य लेंगे, क्योंकि जो लोग जोषी जो की समझ में आजकल भारतवर्ष के ज्योतिषियों के शिरोमणि हैं वह ऐसा ही करते हैं। धर्मफरोशी पर धिक्कार, हम तो फल पूछने वालों को उनके भोलेपन का दंड देवेंगे! आशा है कि जोषी जी हमसे इस विषय में सहमत होंगे।

जोषी जी हमसे अपना उपनाम छोड़ देने के लिये आग्रह करते हैं। सो दस हज़ार रुपए पाकर उपनाम तो आपही छूट गया। असल में, सम्पादक जी, नाम बताने में भी हरज नहीं, परन्तु ताजोरात हिन्द की दफा ३१७ और १०९ से डर लगता है, ऐसा न हो कि नाम बताते ही जोषी जी वारंट जारी कर दें! और जो उनकी यह नियत नहीं है तो हमारा नाम पूछना व्यर्थ है। यदि उनको कलियुग को सब बातें बुरी लगती हैं तो नाम पूछने की कलियुगी प्रथा—नहीं पृथा—भी बुरी लगनी चाहिये। द्वापर और त्रता में आकाशबाणी का कौन नाम पूछा करता था, जो जोषी जो अब पूछने चले हैं? जिस तरह प्राचीनकाल में आकाशबाणी का आदर होता था उसी तरह अब कीजिये। नाम पूछने का साहस न करके इस आकाशवाणी से शिक्षा ग्रहण कीजिये, और ज्योतिष चमत्कार की दूसरी आवृत्ति में बालकपन की तर्कना को छोड़कर पांडित्य दिखलाइये। जब आपने ज्योतिषियों से टक्कर लड़नी ठानी है तो थोड़ा सा न्याय शास्त्र, थोड़ा सा संस्कृत व्याकरण और थोड़ा सा ज्योतिष शास्त्र भी सीख लीजिये। इसमें कुछ हानि न होगी किन्तु कुछ लाभ ही हो जावेगा। देखिये यदि आप थोड़ा सा व्याकरण जानते होते तो 'पृश्न', 'आवश्यका', 'वराह मिहर' 'तुलसीकृत' इत्यादिक शब्दों का प्रयोग न करते। यदि आप थोड़ा सा न्याय शास्त्र जानते होते तो अपने ग्रन्थ में ऐसी बोदी युक्तियां न देते। यदि आप ज्योतिष शास्त्र को थोड़ा बहुत जानते होते तो यवन ज्योतिष से डरकर स्वामी तुलसीदास की शरण न लेते। स्वयं अपनी युक्तियों से या आर्ष-प्रमाणों से उसका खंडन करते। जोषी जी! आपने जो चिट्ठी सरस्वती के सम्पादक महाशय को लिखी है, उसमें आपने एक नई बात कह डाली है। अर्थात् आप कहते हैं, 'जो जो बातें श्रुति स्मृति पुराणों में हैं उन्हें बरतो जो नहीं हैं और यवनों ने 'पृथा' चलाई है तो उन्हें मत करो।' अब जरा श्रीमद्भागवत में राजा पृथु की कथा तो पढ़िये वहाँ उसको जन्म कुंडली के विषय में क्या क्या कहा है! यह कथा हंसराज चावल हैं अथवा कूड़ा मिट्टी? अभुक्तमूल के विषय में नारद जी कहते हैं—'अभुक्तमूलजं पुत्रं पुत्रोमपि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परित्यजेत्। अथवाब्दाष्टकं तातस्तन्मुखं न विलोकयेत्।' अब बतलाइये कि नारद जी यूनान के म्लेच्छ थे अथवा भारतवर्ष के ऋषि? हमारे लेखे तो फलित ज्योतिष विषय में अंगिरा, कपिल, नारद, वसिष्ठ, सब एक ही थैली के चट्टे बट्टे हैं। आप उनको जो चाहें पदवी देदें। जब आपने ज्योतिष का खंडन करना बिचारा है तो वेद-पुराण, स्मृति, ऋषियों से क्यों डरते हैं? यदि उनमें फलित ज्योतिष मिले तो उनका भी खंडन कर डालिये। बिचारे यूनानियों ही पर क्या तबाही आई है, जो उनकी सब बातें झूटी, और ऋषियों की वही बातें सच्ची। जोषी जी, आपको यह भी खबर है कि नहीं, कि गणित शास्त्र भी यूनानियों ही की बदौलत भारतवर्ष में आया। आपके भास्कराचार्य और आर्य भट्ट के गुरू घंटाल वही यवन जाति के म्लेच्छ हैं, जिनकी आप इतनी निन्दा करते हैं। 'अस्मत्तातस्य कूपोयं' इत्यादि प्रथा को छोड़िये। यह केवल आंखों में धूल डालना है। यदि आप फलित ज्योतिष को मिथ्या समझते हैं तो निडर होकर उसका खंडन कीजिये, व्यक्तियों और जातियों की निन्दा अथवा प्रशंसा करने से क्या लाभ? आप के 'भाष्कराचार्य' जी कहते हैं—"स्थूलं कृतं भानयनं यदेतज्ज्योतिर्विदां संव्यवहारहेतोः। सूक्ष्मं प्रवक्ष्येथ मुनिप्रणीतं विवाहयात्रादिफलप्रसिद्ध्यै।" वाह जोषी जी, अच्छे का आसरा लिया! आप डुबन्ते बामना, ले डूबे यजमान। हाँ, यदि निन्दा करने को ही आप खंडन करना कहते हैं तो फलित ज्योतिष का खंडन पहले ही हो चुका, आपका परिश्रम व्यर्थ है। "विलिखति सदसद्वा जन्मपत्रं जनानां, फलति यदि तदानों दर्शयत्यात्मदाक्ष्यम्। न फलति यदि लग्नद्रष्टुरेवाह मोहं हरति धनमिहैवं हन्त दैवज्ञपाशः।"

सम्पादक जी! फलित ज्योतिष अवश्य मिथ्या है, इसमें कुछ संदेह नहीं। श्रीरामचन्द्रजी के समस्त ग्रह उच्च होने पर भी उनको इतने कष्ट भोगने पड़े! फिर हम साधारण मनुष्यों की क्या गिनती है? इस फलित ज्योतिष के झमेले में पड़कर हमारे सांसारिक व्यवहारों को जो हानि पहुँचती है वह किसी से छिपी नहीं है। जो लोग इसका विचार नहीं करते वह मौज करते हैं। इस लिये जो लोग सुख की अभिलाषा रखते हैं उनको चाहिये कि इस शास्त्र की पोल खोलें। पं० जनार्दन जोषी ने इस काम की चेष्टा की है। उनका यह उद्योग प्रशंसनीय है। हम आशा करते हैं कि वह हिम्मत न हारेंगे। कार्लायिल की प्रथम 'फ्रेंच रिवास्यूशन' को उनकी टहलनी ने रद्दी समझ कर जला दिया था। जोषीजी भी अपने चाकर निर्धन भइरी से ऐसे ही इस कार्य को क्षमा करें, और झटपट ज्योतिष चमत्कार को फिर से लिखडालें। कार्लायिल की दूसरी पोथी की तरह उसका भी यथायोग्य सम्मान होगा। जोषी जी चाहे कुछ ही कहें, ग्रहों की गति कुछ ऐसी आकर पड़ी है, कि यदि ऋषि ज्योतिष सच्चा है तो जोषीजा को अपनी कही हुई अनेक बातें फेरनी होंगी, और अंगिरा आदिक मुनियों से सहायता माँगना व्यर्थ होगा। क्योंकि यह लोग किसी के साथी नहीं।

सम्पन्न होकर भी आपका मगलेच्छु निर्धन, भइरी,
मौजा कुंडलीखेट, जिला एकवाल, पोष्ट हँसोड़ा।

"केशों की कथा" की आलोचना

गत दिसम्बर की सरस्वती में बाबू मैथिलीशरण गुप्त लिखित "केशों की कथा" शीर्षक जो कविता प्रकाशित हुई है वह मेरे विचार से बड़ीही हृदयद्रावक है। प्राचीन महाभारतीय इतिहास की इस करुण को कविताकार ने ऐसी उत्तमता से कविता में चित्रित किया है कि उनकी जितनी प्रशंसा की जाय कम है। कविता में कहीं कहीं पर जो भारत के श्लोकों का भाव आ गया है उसका सौन्दर्य और भी गौरव मूल की अपेक्षा भी बहुत बढ़ गया है। इसके कुछ उदाहरण लीजिए :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१]

जब शांति करना चाहते वे राज्य मुक्त किये बिना
× × × ×
अप्रदानेन राज्यस्य शांतिमस्मासु मार्गति

[२]

हैं दुष्ट पर कौरव हमारे बन्धुही हैं सर्वदा।
अतएव दोषी भी क्षमा के पात्र वे सब हैं सदा॥
× × × ×
ये पुनः स्युरसम्बद्धा अनार्याः कृष्ण शत्रवः।
तेषामप्यवधः कार्यः किम्पुनर्ये स्युरीदृशः॥

[३]

होगा न इसमें और कुछ तो बात क्या कम है यही।
निर्दोषता जो जान लेगी आपकी सारी मही॥
× × × ×
जानाम्येतां महाराज धार्तराष्ट्रस्य पापताम्।
अवाच्यास्तु भविष्यामः सर्वलोके महीक्षिताम्॥

[४]

यों कह युधिष्ठिर से वचन इच्छा समझ उनकी हिये।
× × × ×
यत्तुभ्यं रोचते कृष्ण स्वस्ति प्राप्नुहि कौरवान्॥

[५]

ले दाहिने कर में वही निज केश लोचन सींच के।
× × × ×
बोली विकल तर द्रौपदी वाणी महा करुणामयी।
× × × ×
केशपाशं वरारोहा गृह्य वामेन पाणिना।
अश्रुपूर्णेक्षणा कृष्णा कृष्णं वचनमब्रवीत्॥

यहां पर अन्तर केवल इतनाही है कि व्यास भगवान् ने स्त्रियों की प्रकृति के अनुसार केशों को ग्रहण कराने के लिए द्रौपदी के वाम हस्त को अग्रसर कराया है; पर गुप्त महाशय ने चित्र के अनुसार दक्षिण हस्त को। नहीं मालूम चित्रकार ने क्या समझ कर दाहने हाथ का काम बाँये से कराया है।

[६]

करुणासदन तुम कौरवों से सन्धि जब करने लगो।
× × × ×
हे तात तब इन मलिन मेरे मुक्त केशों की कथा।
है प्रार्थना मत भूल जाना याद रखना सर्वथा॥
× × × ×
अयं ते पुण्डरीकाक्ष दुःशासनकरोद्धृतः।
स्मर्तव्यः सर्वकार्येषु परेषां सन्धिमिच्छता॥

[७]

देने लगे निज कर उठाकर सान्त्वना उसको हरी।
× × × ×
तमुवाच महाबाहुः केशवः परिसान्त्वयन्।

[८]

कह कर वचन यह दुःख से जब द्रौपदी रोने लगी।
× × × ×
इत्युक्त्वा बाष्पकण्ठेन रुद्धेनायतलोचना।
रुरोद कृष्णा सोत्कम्पं सस्वरं बाष्पगद्गदम्॥

[९]

जिस भाँति गद्गद कंठ से तू रो रही है हाल में।
रोती फिरेंगी कौरवों की नारियां कुछ काल में॥
× × × ×
अचिराद् द्रक्ष्यसे कृष्णे रुदन्ती भरतस्त्रियः।

गुप्त जी की कविता के अधिकांश पद साभिप्राय और भावपूर्ण हैं। कहीं कहीं अर्थ-कल्पना बहुत ही मनोहारिणी है। पदों की परस्पर शृंखलाबद्ध अर्थ-योजना भी अत्युत्तम है। इस कविता में द्रौपदी ने कृष्ण भगवान् को २२ से २७ पद्य तक जिन बातों का स्मरण दिलाया है उन्हें स्मरण करके किस पाषाण-हृदय का हृदय आर्द्र न होगा। "सहृदय शिरोमणि परम कारुणिक" जनों का तो कहना ही क्या है।

पाठक एक बार कृपा करके—

फिर दु दुःशासन हुआ था मुदित जिनको खींच के।
ले दाहिन कर में वही निज केश लोचन सींच के॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखकर हृदय पर वामकर शर-विद्ध हरिणी सी हुई।
बोली विकलतर द्रौपदी वाणी महा करुणामयी॥

इस पद्य को फिर पढ़ जाइए और विचित्र-भाव-पूर्ण करुणामूर्ति द्रौपदी के चित्र को, जो सरस्वती के आरंभ ही में दिया गया है, विचारपूर्वक अवलोकन कीजिए। आहा! कैसा कारुणिक दृश्य है। युधिष्ठिर के वचन-बाणों से बिद्ध हुई विकल द्रौपदी वाम कर से हृदय को थाम कर सामने खड़े हुए कृष्ण भगवान् को दुर्योधन के कुत्सित कृत्यों का स्मरण दिला रही है। दाहने हाथ में बिखरे हुए, विमुक्त, दुःशासनाकृष्ट केश हैं। दुःखभार के कारण नेत्रों के अधोभाग में संलग्न अश्रुबिन्दु'–'रुरुदिषा वदनाम्बुरुहश्रियः सुतनु सत्यमलंकरणायते"—यह दृश्य इस शिशुपालवध के सखी-सान्त्वनावचन का स्मरण दिला रहा है।

कवि की इच्छा है कि सहृदय रसिक जन इस करुणामय चित्र को कड़ा हृदय करके देखें। यथा—

.....यह चित्र करुणामय बड़ा।
सहृदय रसिक जन देखिये इसको हृदय करके कड़ा।

मैंने चित्रहो नहीं, किन्तु कविता और चित्र दोनों को चाहा कि आपके उक्त वचनानुसार कड़ा हृदय करके देखूँ। परन्तु सफलता न हुई। हृदय नरम हो गया। क्या आप इन्हें कड़ा हृदय करके देखने का कोई उपाय बतला सकते हैं?

आपने एक और भी प्रार्थना की है।

"पर देखना दृग नीर से देना इसे न बहा कहीं"।

नीर के प्रवाह से काग़ज़ पर बने हुए चित्र के बह जाने का भय होना उचित ही है। पर यहाँ पर भय करना भ्रम है। क्योंकि यह चित्र निज उत्तमता के प्रभाव से दर्शकों के हृदयमणि में ऐसी दृढ़ता से खचित हो जाता है कि हज़ार बार अश्रुधारा से धोये जाने पर भी नहीं बह सकता; प्रत्युत और विशद होता जाता है।

श्यामनाथ शर्म्मा।

चित्र-दर्शन।

(१)

महारानी विक्टोरिया की मूर्ती का चित्र।

बई के प्रसिद्ध मूर्तिकार म्हातरे महाशय से सरस्वती के पाठक अवश्यही परिचित हैं। आपका सचित्र चरित सरस्वती में प्रकाशित हो चुका है और आपकी कारीगरी के नमूने, कई मूर्तियों के चित्र, भी सरस्वती में निकल चुके हैं। कुछ समय हुआ म्हातरे महाशय ने अहमदाबाद में स्थापित करने के लिए महारानी विक्टोरिया की एक मूर्ति बनाई थी। यह मूर्ति अहमदाबाद में स्थापित हो चुकी है। इसी मूर्ति का एक चित्र सरस्वती की इस संख्या में प्रकाशित किया जाता है। उसे देख कर पाठक इस बात को अच्छी तरह समझ जायँगे कि आज तक महारानी की जो कितनीहीं मूर्तियां विदेश से बन कर यहां आईं और स्थापित की गई हैं उनसे यह मूर्ति किस बात में कम नहीं। मूर्ति के सामने खड़े म्हातरे महाशय गौर से मूर्ति की तरफ़ देख रहे हैं कि उसमें कोई त्रुटि तो नहीं। अहमदाबाद के जिन सज्जनों ने म्हातरे महाशय से यह मूर्ति बनवाई है वे भारतवासियों के धन्यवाद-पात्र हैं। देशी कारीगरी की उन्नति और देशी कारीगरों का उत्साह इसी तरह बढ़ाया जाना उचित है। पण्डित सिद्धिनाथ दीक्षित ने यह फ़ोटो नागपुर से सरस्वती में प्रकाशित होने के लिए भेजा है। अतएव दीक्षित जी की इस कृपा के हम बहुत कृतज्ञ हैं।

(२)

शान्तनु और गङ्गा।

सरस्वती में बाबू वामापद वन्द्योपाध्याय के अच्छे अच्छे चित्र प्रकाशित हो चुके हैं। पाठकों ने उन्हें देखाही होगा और उनके सौन्दर्य्य से आनन्द भी उठाया होगा। आज हम इस चित्रविद्यानिपु

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर चित्रकार का एक और चित्र प्रकाशित करते हैं। यह वित्तहारी चित्र शान्तनु और गङ्गा का है।

एक बार महाराज शान्तनु गंगा के किनारे घूम रहे थे। उसी समय आपने गङ्गा को लावण्यमयी स्त्री के रूप में देखा। देखते ही आप उन पर मोहित हो गये। यह भावपूर्ण चित्र उसी समय का है।

(३)

द्रौपदी-दुकूल।

चित्रकार श्रीयुत धुरन्धर का अङ्कित "द्रौपदी-चीर-हरण" चित्र एक बार सरस्वती में प्रकाशित हो चुका है। इस बार सरस्वती के चित्रकार बाबू व्रजभूषण राय चौधरी का चित्रित इसी घटना का दूसरा एक चित्र और दिया जाता है। साथही बाबू मैथिलीशरण जी गुप्त की "द्रौपदी-दुकूल" नामक रसवती कविता भी प्रकाशित की जाती है। आशा है सरस्वती के सहृदय पाठक कवि और चित्रकार की इन अलौकिक कृतियों से थोड़ा बहुत आनन्द ज़रूर उठावेंगे।

पुस्तक-परीक्षा।

१—संस्कृत-प्रवेशिका। गुरुकुल-पाठ्य-ग्रंथमाला की पहली पुस्तक है। गुरुकुल में पढ़ाने के लिए इसकी रचना की गई है। रचना ठीक वैसीही हुई है जैसी अँगरेज़ी-प्राइमरों की होती है। इसमें सब मिला कर ३९ पाठ हैं। प्रत्येक पाठ के नीचे विशेष सूचनायें हैं। इनसे इस प्राइमर की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। ये सूचनायें पढ़ानेवालों के लिए बड़ी ही लाभदायक हैं। जो लड़के संस्कृत सीखना चाहते हैं, यह पुस्तक उनके बड़े काम की है। किताब भर में बनानेवाले का कहीं नाम नहीं। गुरुकुल, काँगड़ी (हरद्वार) के मुख्याधिष्ठाता ने इसे प्रकाशित किया है। ३२ पृष्ठ की यह पुस्तक उन्हीं से दो आने में मिल सकता है। छपाई और काग़ज़ दोनों उत्तम हैं।

२—बालकथानीतिमाला। गुरुकुल-पाठ्य-ग्रंथमाला की यह दूसरी किताब है। पञ्चतन्त्र से संग्रह की गई है। इसमें सब चौदह कथायें है। सबकी भाषा सरल है। मूलग्रंथ के बहुत से नीरस और कठिन श्लोक छोड़ दिये गये हैं और कठिन शब्दों तथा वाक्यों की जगह सरल शब्द और वाक्य रक्खे गये हैं। संस्कृत पढ़नेवाले विद्यार्थियों के लिए ऐसी पुस्तकों की बड़ी ज़रूरत है। गुरुकुल में तो यह पढ़ाई जावेहीगी, अन्यत्र भी इसके प्रचार से बहुत लाभ हो सकता है। मिलने का पता—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल, काँगड़ी, हरद्वार।

❁

३—भारत। साप्ताहिक पत्र है। प्रति बुधवार को बम्बई से निकलता है। प्रत्येक नम्बर में रायल चौपेजी आकार के आठ पृष्ठ रहते हैं। वार्षिक मूल्य दो रुपये है। यह पत्र कोई छः सात महीने से निकलता है। पहले की अपेक्षा इसके हाल के अङ्क अधिक अच्छे हैं। उत्तरोत्तर इसका उन्नति होती जा रही है। कुछ दिनों से इसमें कार्टून भी रहते हैं। इससे पाठकों का बहुत मनोरंजन हो सकता है। मिलने का पता—मैनेजर भारत, सी० पी० टैंक, पोस्ट नम्बर ४, बम्बई।

❁

४—मारवाड़ी। प्रति सप्ताह नागपुर से निकलता है। इसके अध्यक्ष श्रीयुत रामनारायण राठी हैं। प्रत्येक अङ्क में रायल चौपेजी आकार के आठ पृष्ठ रहते हैं। वार्षिक मूल्य तीन रुपये है। यद्यपि इस पत्र का मुख्य उद्देश मारवाड़ी समाज का सुधार करना है तथापि इसके लेख अन्य लोगों के लिए भी उपयोगी होते हैं। पत्र अच्छा है। काग़ज और टाइप भी अच्छा है। आशा है, मारवाड़ी लोग ही नहीं, और भी हिन्दी-प्रेमी इसे आश्रय देंगे।

❁

५—फ्रेंड्स-डायरी। यह डायरी १९०९ की है। फ्रेण्ड एण्ड कम्पनी, मथुरा, ने इसे प्रकाशित किया है। वही इसे दो आने में बेंचती है। यह कम्पनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर साल अपनी डायरी निकालती है। इस साल की डायरी का टाइटिल पेज पहले से अच्छा है। साँचा छोटा होने के कारण पाकेट में अच्छी तरह आ सकती है। डायरी अच्छी है। कम्पनी की विक्रयार्थ चीज़ों के विज्ञापन भी इसमें हैं।

❁

६—संवत् १९६६ का पञ्चाङ्ग। इसकी रचना पण्डित विष्णुदत्त ओझा, अध्यापक, धर्म-समाज-संस्कृत-पाठशाला, मोतीहारी, ज़िला चम्पारन, ने की है। आपने यह पञ्चाङ्ग यद्यपि पहले ही पहल बनाया है तथापि पण्डितों के काम की प्रायः सब बातें इसमें हैं। रचयिता से चार आने में मिलता है।

❁

७—श्रीवेङ्कटेश्वर छापेखाने की १९०९ ई० की डायरी। इस डायरी में रेल, डाक, तार, स्टाम्प के निर्मय आदि कितनी हा काम की बातों के सिवा बारह महीनों का पञ्चाङ्ग भी है। डायरी बहुत उपयोगी है। मूल्य चार आने। डाक महसूल एक आना। मिलने का पता—सेठ खेमराज श्रीकृष्णदास, श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।

❁

८—कारिकावली। पण्डित विश्वनाथ पञ्चानन कृत। लेखक ने वैशेषिक और न्याय के तत्त्वों को संक्षेप से कारिकारूप में वर्णन किया है। ऊपर संस्कृत श्लोक हैं, नीचे हिन्दी में उनकी व्याख्या है। व्याख्या पण्डित गणेशदत्त शास्त्री, अध्यापक ओरियंटल कालेज, लाहौर की लिखी हुई है। व्याख्या की भाषा यदि और भी सरल करके लिखी जाती तो अच्छा होता। जो हो, पुस्तक तार्किकों के काम की है। मूल्य बारह आने। मिलने का पता— लाला मोतीलाल, मालिक पञ्जाब-संस्कृत-पुस्तकालय, लाहौर।

❁

९—शिक्षादर्पण। मुंशी लक्ष्मीनारायण-कृत उर्दू-पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। अनुवादक और प्रकाशक हैं बाबू लालकृष्ण, सब डिपुटी इन्सपेक्टर मदारिस, ज़िला मेरठ। प्रकाशक महाशय इसे मुफ़्त बाँटते हैं। सब मिलाकर इसमें ५१ पाठ हैं। सब पाठ इस तरह लिखे गये हैं मानो अध्यापक महाशय सामने बैठे हुए अपने शिष्यों को उपदेश दे रहे हैं। स्त्रियों को जितनी बातें जाननी चाहिए उनमें से बहुत सी इसके किसी न किसी पाठ में आ गई हैं। इसलिए स्त्रियाँ इसे पढ़ कर बहुत लाभ उठा सकती हैं। भाषा में कुछ क्लिष्टता है; इसलिए प्रत्येक पाठ के ऊपर कठिन शब्दों के अर्थ देकर यह दोष दूर कर दिया गया है; हमारी समझ में यदि इसकी भाषा सरल रक्खी जाती तो और भी अच्छा होता।

❁

१०—कमला-भजन-सरोवर। अनूपशहर में कोई मुंशी गङ्गासहाय कायस्थ हैं। आपकी पत्नी का नाम कमला देवी है। इस सरोवर में उन्हीं के बनाये हुए १२४ भजन-कमल खिल रहे हैं। यदि यह रचना सचमुचही कमलाजी की है तो सदोष होने पर भी प्रशंसनीय है।

❁

११—सुशीला उपन्यास। सम्पादक गोपालदास बरैया। पृष्ठ-संख्या १६७। मूल्य दस आने। यह उपन्यास जैनियों का 'चरित्र संशोधन' करने और 'धर्म-श्रद्धा की शिक्षा' देने के विचार से लिखा गया है। लेखक के कथनानुसार जैनियों के लिए 'यह एक नई चीज़ है'। जो हो, इसकी भाषा क्लिष्ट है। 'उपशमसम्यक्त्व' 'नग्नपरीषह' 'कार्माण वर्गणा' आदि शब्द इसकी क्लिष्ट भाषा के उदाहरण हैं। 'तिष्ठता', 'राजू' आदि कितनेही शब्द इस किताब में ऐसे हैं जो हमने हिन्दी की किसी किताब में नहीं देखे। इसके कई पर्वों में जैन सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। पर उनको वही समझ सकता है जो पहले ही से उनमें पारदर्शी हो। यदि यह उपन्यास सरल भाषा में लिखा जाता तो इससे विशेष उपकार की सम्भावना थी। मिलने का पता—श्रीजैन-ग्रंथ-रत्नाकर-कार्यालय, पो० गिरगाँव बम्बई।

Printed and published by Panch Kory Mittra at the Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती।

भाग १०] १ मार्च, १९०९। फाल्गुन शुक्ल १०, १९६५। [संख्या ३

विविध विषय।

१—भारतवर्षही योरप का शिक्षक है।

धीरे धीरे पश्चिमी विद्वान् इस बात को मानने लगे हैं कि प्राचीन भारतवर्ष खूब उन्नत दशा में था और इसी ने योरप में तरह तरह की विद्या, कला और अन्य बहुत सी चीज़ों का प्रचार किया था। कुछ दिन हुए न्यूयार्क निवासी डेलमार साहब का एक लेख इस विषय पर इंडियन रिव्यू में निकला था। उसमें आपने सिद्ध किया है कि पश्चिमी संसार को जिन बातों का अभिमान है वे असल में भारतवर्षही से वहाँ गईं थीं। आप लिखते हैं कि तरह तरह के फल, फूल, पेड़ और पौधे, जो इस समय योरप में पैदा होते हैं, हिन्दुस्तान ही से लाकर वहाँ लगाये गये थे। इनके सिवा मलमल, रेशम, घोड़े, टीन, लोहे और शीशे का प्रचार भी योरप में हिन्दुस्तानियों ही ने किया था। केवल यही नहीं, किन्तु ज्योतिष, वैद्यक, चित्रकारी और क़ानून भी भारतवासियों ने योरप वालों को सिखाया था। पर, समय का फेर देखिए कि अब स्वयं भारतवासी इन विद्याओं को सीखने के लिए योरप जाते हैं।

२—काग़ज़ और छापे का आविष्कार।

योरप के अधिकांश लोग यही समझते हैं कि "हम चु मादींगराँ नेस्त" आविष्कार करना केवल हमींलोग जानते हैं; एशिया वाले तो निरे काठ के उल्लू ही हैं। यह उनका भ्रम है। इसका एक उदाहरण सुनिए।

प्रायः सभी यूरोपियन लोगों का विश्वास है कि छापे का आविष्कार कैक्सटन ने ईसा की चौदहवीं शताब्दी में किया था। पर पार्कर नाम के एक साहब ने एशियाटिक क्वार्टरली रिव्यू में एक लेख लिखकर यह साबित कर दिया है कि चीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में कई हज़ार वर्ष पहले भी काग़ज़ और छापे का प्रचार था। इस बात के कई प्रमाण भी आपने दिये हैं। इसके साथ ही काग़ज़, स्याही, क़लम और छापे का अत्यन्त मनोरञ्जक इतिहास भी आपने लिखा है। इस परिश्रम के लिए पार्कर साहब एशियावालों के धन्यवाद के पात्र हैं।

३—पुस्तकों और पत्रों का वार्षिक विवरण।

इन प्रान्तों की सन् १९०७—०८ की गवर्नमेंट-रिपोर्ट से मालूम हुआ कि उस साल सब मिलाकर १३८४ पुस्तकें प्रकाशित हुईं। इस वर्ष धर्मसम्बन्धी पुस्तकों की संख्या कम थी। अधिकांश धर्मसम्बन्धी ग्रंथ प्राचीन ग्रंथों के नवीन संस्करण थे। पाण्डित्य और खोज का दावा रखनेवाली पुस्तकों में गवर्नमेंट ने सिर्फ़ दो किताबों का नाम लिया है; एक "तारीख़े-सिन्ध" का और दूसरी "हिन्दी भाषा की उत्पत्ति" का। हर सालकी तरह इस वर्ष भी सरकार ने उपन्यासों की निन्दा की है। पद्यग्रंथ इस साल कम प्रकाशित हुए। जितने हुए उनमें से अधिकांश धर्मसम्बन्धी थे। गवर्नमेंट का कथन है कि शृंगार-रस की कवितायें प्रायः कुरुचिपूर्ण थीं। इसके सिवा जीवनचरित, नाटक, दर्शन, विज्ञान, शिक्षा, वैद्यक आदि विषयों पर जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुईं वे सब साधारण थीं; उनमें से कोई भी नाम लेने लायक़ न थी।

सन् १९०७ के अन्त में इन प्रान्तों से १२९ पत्र (७५ समाचारपत्र और ५४ सामयिक पुस्तकें) निकलते थे। इनमें से १६ अँगरेज़ी में, ६८ उर्दू में, ३५ हिन्दी में, ४ हिन्दी-उर्दू में, २ अँगरेज़ी-हिन्दी में और एक एक अँगरेज़ी-उर्दू, संस्कृत और रोमन में निकलता था। साल के अन्दर २९ नये पत्र निकले और २७ पुराने तथा ७ नये बन्द हो गये।

रिपोर्ट से यह भी मालूम हुआ कि मुसलमान-सम्पादकों की अपेक्षा हिन्दू-सम्पादकों की संख्या डयोढ़ी है। इस दशा में उर्दू-पत्रों की अपेक्षा हिन्दी-पत्रों की संख्या भी कम से कम डयोढ़ी तो ज़रूर होना चाहिए थी। पर ऐसा नहीं है। हिन्दी-पत्र की अपेक्षा उर्दू-पत्रों की संख्या दूनी के क़रीब है। इससे मालूम होता है कि हमारे शिक्षित हिन्दू भी अपनी मातृभाषा हिन्दी की अपेक्षा उर्दू का अधिक आदर करते हैं। यह अस्वाभाविक लीला देखकर आश्चर्य्य भी होता है और दुख भी।

४—पुरातत्त्व-सम्बन्धी नई खोज।

गत वर्ष पुरातत्त्व-विभाग के कर्मचारियों ने इन प्रान्तों में ऐसी कितनी ही चीज़ें खोज निकाली हैं जो पुरातत्त्व की दृष्टि से बड़े महत्त्व की हैं। इनमें से गोंडा ज़िले के सहेट-महेट स्थान में मिले हुए हिन्दू-मन्दिर, जैन-मन्दिर और स्तूप मुख्य हैं। जैन-मन्दिर में कई एक मूर्त्तियाँ और एक दानपत्र भी मिला है। यह दानपत्र क़न्नौज-नरेश राजा गोविन्द-चन्द्र का लिखा हुआ है। जैतवन-निवासी बौद्ध महन्तों को छः गाँव दान करने का इसमें उल्लेख है।

इसके सिवा मथुरा में भी दो शिला-लेख मिले हैं। दोनों ब्राह्मी लिपि में हैं और उस समय के हैं जिस समय उत्तरी भारत में कुशनवंश का राज्य था। इनमें से एक लेख बुद्धदेव की बैठी हुई एक प्रस्तर मूर्त्ति पर खुदा हुआ है। यह मूर्त्ति एक ब्राह्मण के घर में पाई गई थी। ब्राह्मण देवता इसे विष्णु-मित्र की मूर्त्ति समझकर पूजते थे। दूसरा लेख एक कुण्डली-बद्ध नाग की मूर्त्ति पर खुदा है। यह मूर्त्ति मथुरा से पाँच मील की दूरी पर छारगाँव नामक स्थान में पाई गई है। आसपास के लोग इसे भी पूजते थे। वे समझते थे कि यह मूर्त्ति कृष्ण के भाई बलराम की है। इस पर जो लेख है वह अनुमान राज कनिष्क के उत्तराधिकारी हविष्क के शासन के चालीस वर्ष बाद लिखा गया था।

५—एक अत्यन्त प्राचीन पुस्तक।

हिन्दू लोग वेद को सब से पुराना ग्रंथ समझते हैं। अग्निपूजक, ज़ोरास्तर के ग्रन्थ को प्राचीन मानते हैं। निस्सन्देह दोनों ही बहुत पुराने हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाल में एक और प्राचीन ग्रंथ का पता लगा है। उसे अनेक पुरातत्त्ववेत्ता अत्यन्त प्राचीन कहते हैं। इसका कोई स्वतन्त्र नाम नहीं। यह केवल अपने रचयिता के नाम से प्रसिद्ध है। रचयिता का नाम था टहहटेप Ptah—Hotep यह मिश्र देश का निवासी था। जिस समय उसने इस ग्रन्थ की रचना की उस समय वहाँ असा नाम के राजा का राज्य था। यह बात ईसा से ३३६६ वर्ष पहले की है। अर्थात् अब ग्रन्थ को बने कोई पांच हज़ार वर्ष हो चुके। इसकी हस्त-लिखित प्रति पेरिस के बिबलीओथिक नेशनेलि नामक भवन में रक्खी है। यह ग्रन्थ भोजपत्र पर चित्र-लिपि में लिखा हुआ है। इसे आत्मिक, राजनैतिक और धार्मिक सूत्रों का समुद्र समझना चाहिए। ग्रन्थकर्ता एक राजकुमार था। इसकी आयु ११० वर्ष की हुई थी। इस ग्रन्थ के कई वचन मनुस्मृति के वचनों का समर्थन करते हैं *।

६—मुर्दे को ज़िन्दा करना।

पश्चिमी देशों के विज्ञानवेत्ताओं ने गत सौ वर्षों में ऐसे ऐसे अद्भुत काम किये हैं जो किसी समय असम्भव समझे जाते थे। केवल मुर्दे को ज़िन्दा करने की शक्ति अब तक उनमें न थी। सुनते हैं कि अमेरिका के एक डाक्टर ने यह कसर भी पूरी कर दी। आपका नाम डाक्टर कारेल है।

सिर्फ़ पाँच दिन का एक बच्चा बीमार हुआ। उसके शरीर भर का ख़ून सूख गया था। डाक्टरों ने सलाह दी कि यदि इसके शरीर में ख़ून पहुचाया जाय तो यह अच्छा हो सकता है। परन्तु चिकित्सा होने के पहले ही बालक मर गया। डाक्टर अपने अपने घर चले गये। पर बच्चे के पिता ने आशा न छोड़ी। डाक्टर कारेल के पास जाकर उसने सब हाल कहा। डाक्टर साहब ने बच्चे को देखकर कहा कि यदि किसी जीवित मनुष्य का ख़ून मिले तो यह फिर ज़िन्दा किया जा सकता है। पिता अपना ख़ून देने को राज़ी हुआ। उसकी कलाई और बालक की टाँग का पिछला हिस्सा चीरा गया और पिता की कलाई की एक नस छः इंच बाहर निकालकर बच्चे की टाँग वाली नस में जोड़ दी गई। पिता के शरीर का ख़ून इस नस के द्वारा बालक के शरीर में जाने लगा। कोई आठ मिनट में दोनों अलग कर दिये गये और उनके घाव सी दिये गये। थोड़ी ही देर में बच्च का रँग बदला और वह रो उठा। धीरे धीरे उसकी ताक़त बढ़ने लगी। अब वह ख़ूब तन्दुरुस्त है।

७—अन्धों के लिए बाइसिकिल।

असम्भव बातें सम्भव होती जाती हैं। अब अन्धों के लिए भी बाइसिकिलें बन गई हैं। लन्दन में अन्धों के लिए एक कालेज है। उसके लड़के नित्य बाइसिकिल पर चढ़कर सैर करने जाते हैं। बारह बारह लड़कों की बाइसिकिलें एक ही में जुड़ी रहती हैं। इस बाइसिकिल-माला की लम्बाई अट्ठाइस फ़ीट होती है। इसके छः हिस्से होते हैं। हर एक हिस्से में अगल बग़ल दो पहिये होते हैं, जिन पर दो दो आदमी बराबर बराबर बैठ सकते हैं। इनकी सूरत शकल बिलकुल साधारण बाइसिकिलों की सा होती है। फ़र्क़ केवल इतनाही है कि आगे की साइकिल में ट्राइसिकिल के ऐसे हैंडिल लगे होते हैं। अन्धों की इस पार्टी के लिए पथदर्शक-स्वरूप दृष्टिवाला केवल एक मनुष्य रहता है। कुछ दिन हुए साठ अन्धों ने इस सवारी पर कोई सौ मील का सफ़र पौने ग्यारह घण्टे में तै किया था।

८—तार-द्वारा लेख भेजना।

तार-द्वारा लेख भेजने के लिए योरपवाले बहुत दिन से कोशिश कर रहे हैं। इस के लिए समय समय पर कितने ही यन्त्र बनाये गये; पर कोई ठीक न उतरा। सुनते हैं कि अभी हाल में जर्मनी के एक विद्वान् ने एक ऐसा यन्त्र बनाया है जिससे यह काम ठीक ठीक हो सकता है। इस यन्त्र के दो भाग हैं। एक भेजने वाले के पास रहता है, दूसरा पाने वाले के। दोनों बिजली के तार से जुड़े रहते हैं।

* यह नोट बाबू वृन्दावनलाल का भेजा हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेजने वाला मनुष्य यन्त्र के विशेष स्थान पर जो कुछ लिखता है वही लिखावट तार के द्वारा सैकड़ों मील की दूरी पर पानेवाले के यन्त्र में पहुँचती है। वहाँ उसका प्रतिबिम्ब यन्त्र के पीछे लगे हुए काग़ज़ पर पड़ता है। इस तरह सैकड़ों मील से भेजा हुआ लेख कोई मिनट ही भर में पढ़ने के क़ाबिल हो जाता है। जर्मनी के डाकघरों में ये यन्त्र लग गये हैं और मामूली तारबक़ीं की जगह इन्हीं से काम लिया जाता है।

९—अध्यापक पिशल का परलोकवास।

जर्मनी के प्रसिद्ध प्राच्य विद्वान् अध्यापक पिशल का मृत्यु-समाचार सुनकर दुख हुआ। आप गत दिसम्बर मास में अनेक कष्ट और हानियाँ सहकर सुदूर जर्मनी से हमारी जन्मभूमि भारतवर्ष के दर्शन करने आये थे। यहाँ आये हुए आपको केवल कुछ ही सप्ताह बीते थे कि आपको ज्वर आया और सिर्फ़ तीन चार दिन बीमार रहकर आपने अपनी मानव-लीला संवरण की। पिशल महाशय का जन्म जर्मनी के ब्रेसला नगर में हुआ था। वहीं आपने शिक्षा पाई थी। बरलिन, आक्सफर्ड और लन्दन में भी आपने अध्ययन किया था। शुरू में मैक्समूलर की सिफ़ारिश से आपको भारतीय शिक्षा-विभाग में जगह मिलती थी; पर आपकी इच्छा स्वदेश छोड़ने की न हुई। १८७५ ई० में आप कील-विश्वविद्यालय के संस्कृताध्यापक नियुक्त हुए। इस पद पर आप दस वर्ष तक रहे। १८८५ ई० में आप हेल के सैक्सन-विश्वविद्यालय में चले गये। १९०२ में आपने इससे सम्बन्ध त्याग दिया। इसी साल आप बरालन-विश्वविद्यालय के संस्कृताध्यापक नियत किये गये। तब से लेकर मृत्यु तक आप इसी पद पर प्रतिष्ठित रहे। जैन मत के मध्य-सम्प्रदाय प्रवर्त्तक हेमचन्द्र के कई ग्रंथों का आपने सम्पादन किया। कालिदास के ग्रंथों और वेदों पर भी आपने कई ग्रंथ लिखे। पिशल महाशय प्राकृत भाषा के अच्छे विद्वान् थे। आपकी मृत्यु से जर्मनी में प्राच्य-विद्या की चर्चा को विशेष धक्का लगा है।

१०—वाल्मीकीय रामायण।

राय बहादुर सी० वी० वैद्य, एम० ए०, एल० एल० बी० ने रामायण के सम्बन्ध में एक पुस्तक जो अँगरेज़ी में लिखी है उसका उल्लेख सरस्वती में हो चुका है। पुस्तक दो भागों में है। पहले में रामायण का काव्य-रूप में वर्णन है और दूसरे में ऐतिहासिक रूप में। वैद्य महाशय के मतानुसार मूल रामायण बुद्ध के पहले की बनी हुई है। परन्तु जिस रूप में वह आजकल पाई जाती है वह बुद्ध के पीछे का है। क्योंकि उसमें बौद्ध-श्रमणों का ज़िक्र है और बुद्ध भगवान् चोर और नास्तिक बतलाये गये हैं। आपका ख़याल है कि रामायण में उत्तर काण्ड ईसा के पूर्व प्रथम शताब्दी में जोड़ा गया था और तब से उसमें कोई रद्दोबदल नहीं हुआ; क्योंकि कालिदास ने जिस रूप और जिन शब्दों में उत्तर काण्ड का वर्णन किया है ठीक उसी रूप में उन्हीं शब्दों में वह आज भी पाया जाता है। अर्थात् रामायण का वर्त्तमान स्वरूप दो हज़ार वर्ष से अधिक पुराना नहीं। अथवा यों कहिए कि वह महाभारत से पीछे का है। वैद्य महाशय कहते हैं कि मूल रामायण में रामचन्द्र जो विष्णु का अवतार नहीं माने गये। केवल यही नहीं, किन्तु वर्त्तमान रामायण में भी विष्णु के अवतारों का वर्णन नहीं। यह पुस्तक प्राचीन भारत के इतिहास तथा काव्य के प्रेमियों के पढ़ने योग्य है।

स्वर्गवासी सेठ राजा गोकुलदास

जिन मारवाड़ियों ने अपने सद्गुणों के सहारे धन और धर्म उपार्जन कर अमरत्व लाभ किया है उन महेश्वरी-कुलमुकुट स्वर्गवासी सेठ राजा गोकुलदास मुख्य हैं। उनका शोकप्रद मृत्युसमाचार कुछ दिन हुए पाठकों ने समाचारपत्रों में पढ़ा ही होगा। आज हम उनका सचित्र संक्षिप्त चरित पाठकों की भेंट करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

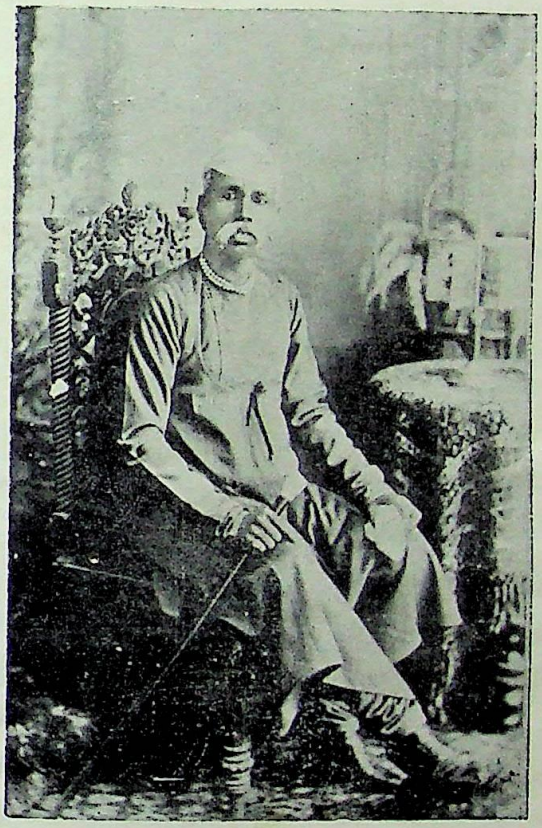

राजा गोकुलदास ।

इंडियन प्रेस इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा गोकुलदास का जन्म सन् १८३९ ई० में जबलपुर में हुआ था। उनके पिता का नाम ख़ुशालचन्द और पितामह का सेवाराम था। वे जैसलमेर के रहनेवाले थे और जबलपुर में आ कर बस गये थे।

गोकुलदास अपनी छोटी ही अवस्था से बही-खाते तथा चिट्ठी-पत्री का काम भली भाँति करने लगे थे। उलझन में डालने वाली कोई पेचादा बात यदि कभी दूकान में आ पड़ती थी तो उसको बात की बात में आप तुरन्त हल कर देते थे। जब तक पिता के संग रहने का आपको सौभाग्य रहा तब तक स्वप्न में भी उनकी आज्ञा के विरुद्ध आप नहीं चले; जैसे बना तैसे उन्हें सन्तुष्ट रखने का प्रयत्न आप सदैव करते रहे।

जिस समय सेठ ख़ुशालचंद जी का देवलोक हुआ उस समय राजा साहब केवल २६ वर्ष के थे। ज्योंही राजा साहब के हाथ में कारोबार आया त्यों ही उन्होंने अपने पिता की स्थापित की हुई दुकानों तथा कोठियों पर दौरा करना आरम्भ किया और जो जो त्रुटियाँ देखीं उनके दूर करने का यथा शक्ति उद्योग किया। जो लोग अजान तथा असावधान थे उन्हें सिखा पढ़ाकर ठीक किया और नई नई कोठियाँ तथा दूकानें उन स्थानों में खोलीं जहाँ माल की खपत और उपज अधिक थी।

भगवान् की कृपा से इनके भाग्य का सितारा ऐसा चमका कि थोड़े ही दिनों में उद्योग-धन्धे का खूब फैलाव हुआ और आप लक्षपति से कई करोड़ के मालिक हो गये।

सन् १८८४ ई० में आपने जबलपुर में एक पुतली-घर स्थापित किया। इस ओर यह एक नई बात थी। इससे आज कल हज़ारों आदमियों की जीविका चल रही है। लग भग दो वर्ष हुए आपने परफेक्ट पाटरी वर्क्स नाम का चीनी बरतनों का भी एक कारख़ाना खोला था।

ज़मींदारी तो राजा साहब की इतनी बढ़ गई थी कि कुछ दिनों से आप सहस्र-ग्रामाधीश कहलाते थे।

कई स्थानों में आपकी बनवाई हुई धर्मशालायें भी हैं, जहाँ साधु सज्जन विश्राम लेते हैं। किसी किसी स्थान में आपकी ओर से सदाव्रत भी लगे हुए हैं।

शहर की गौओं को आपके पूर्व-पुरुषों की ओर से प्रतिदिन संध्या के समय आटे की लोई तथा चारा खिलाने का जो नियम बँधा था उसे आप भी व्यवस्थापूर्वक बराबर चलाते रहे। इसके सिवा एक अच्छा गाँव गोशाला को अर्पण कर आपने अपने "गोकुलदास" नाम को भली भाँति सार्थक किया।

थोड़े दिन हुए आपने श्रीगोपाल-मंदिर में, जो आपके पूर्वजों का निर्माण किया हुआ है, सहस्रों रुपयों की वार्षिक आयका एक गाँव लगाकर गोपाल-भक्त होने का भी पूर्ण परिचय दिया। अकाल तथा काँगड़े के भूकम्प के समय आपने कई सहस्र रुपये सरकार के द्वारा बाँट कर दीन दुखियों के साथ सहानुभूति प्रकट की।

जबलपुर के मिलौनीगंज महल्ले में आपने एक विशाल भवन बहुतसा द्रव्य लगाकर निर्माण कराया और दीन-दुखी स्त्रियों के लिए चिकित्सालय बनाने के लिए उसे सरकार को दे डाला। आज कल यह "लैडी एलगिन हास्पिटल" कहलाता है। इसी तरह लग भग तीस हज़ार रुपयों से एक बृहत् भवन शहर के बीचों बीच में निर्मित करवा कर आपने म्युनिसिपालिटी को दे दिया, जिसे अब "टौन हाल" कहते हैं।

नगर-निवासियों को निर्मल जल सुगमता से मिल सके, इसलिए आपने म्युनिसिपल कमिटी को छः सात लक्ष रुपये, कुछ सूद पर और कुछ बिना सूद के, दिये। इस धन की सहायता से शहर में पंप-द्वारा पानी लाया गया। इस उदारता और उत्तम कार्य के कारण लोगों को एक अलभ्य लाभ हुआ। अर्थात् प्रति वर्ष मैले पानी के उपयोग से जो विशूचिका की बीमारी हुआ करती थी वह अब बहुधा नहीं होती।

पूर्वोक्त उत्तम उत्तम कार्यों के कारण आप सरकार की ओर से पहले "राय साहब" फिर "राय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहादुर", उसके बाद "राजा" की उच्च और प्रतिष्ठित उपाधि से विभूषित किये गये थे। इतने वैभवशाली होने पर भी आपने अपने पूर्वजों की सादी चाल को कभी नहीं छोड़ा। अभिमान तो आपको छू भी नहीं गया था। अमीर से ग़रीब तक आपसे बेखटके मिल सकते थे। लोगों के चित्त खींचने को आपका बोल-चाल मानों वशीकरण मंत्र था। आपकी बहस के आगे बड़े बड़े वकीलों की बोली बंद हो जाती थी। आपके उद्योग-धन्धे को देख कर अच्छे अच्छे व्यवसायियों के मुँह में पानी आ जाता था। वयोवृद्ध हो जाने पर भी आप स्मरण-शक्ति में युवा पुरुषों को लज्जित करते थे। दुष्टों की दाल आपके निकट कभी न गलती थी।

जिस समय आप किसी दूकान की जाँच करते थे उस समय अच्छे अच्छे मुनीब, और गुमाश्तों की सट्टी भूल जाती थी। कई मील पैदल चलना आपके लिए मामूली बात थी। धर्म-निष्ठ ऐसे थे कि बिना स्नान तथा भजन किये अन्न की तो कौन कहे जल तक भी ग्रहण न करते थे।

यह कह देना कदाचित् अनुचित न होगा कि राजा साहब संतति, सम्पत्ति, कीर्ति और शरीर-सुख से सम्पन्न होने के कारण संसार में रह कर भी स्वर्ग का सुख लूटते थे। ऐसे पुरुष के मर जाने से हम लोगों को जो महान् दुःख हुआ है वह असहनीय तथा अवर्णनीय है। परन्तु "ईश्वरेच्छा बलीयसी" सोच कर चुप रहना पड़ता है।

आपकी मृत्यु के पश्चात् एक लाख रुपये से ऊपर की रक़म असामियों को छूट में दे दी गई है। यह भी जनश्रुति है कि कुँवर साहब की ओर से राजा साहब के स्मरण में कोई उत्तम कार्य किया जायगा। यदि यह सुसमाचार सत्य हो तो हमारी सम्मति है कि वे ऋषिकुल या गुरुकुल की तरह का कोई आश्रम खोल कर अपनी पूज्य बुद्धि का परिचय दें।

मुखराम चौबे।

विद्या-बहार।

काशी की सब विद्या करके पान
उमड़ा ज्योंही मनमें अति अभिमान,
लहर-वेग से भागे हम तज गेह
भूल बाप भाई का पल में नेह॥ १॥

किये हुए हम सीधा पंडित-भेश,
भूख प्यास के सहते मग में क्लेश,
रुके गौंडवाने में जाकर अंत;
जहाँ सदा पाते थे पूजा संत॥ २॥

भूमि परम उपजाऊ; सजल प्रदेश;
प्रजा मिलापी भोली; भक्त नरेश;
सस्ता षट्रस भोजन; बहु धन-धान;
गौंड राज्य था सचमुच सोना-खान॥ ३॥

पहिले वहाँ न कोई था विद्वान,
इससे हुआ हमारा भारी मान।
स्वयं गौंडवन-स्वामी युग कर जोड़,
मिले प्रेम-मन हमसे बार करोड़॥ ४॥

मधुकर-सम था नृप का पक्का रंग;
छोटा डील अनोखा; मोटा अंग;
सोना दोनों आँखें; चाँदी बाल;
हौंठ टौंस कुछ काले, कुछ कुछ लाल॥ ५॥

हम दोनों का पूरा मिला सुमेल;
माल-रूप वह निश्चल; हम थे रेल।
वहाँ न था विद्या का कुछ भी स्वाद;
यहाँ मिले काशी के हम उस्ताद॥ ६॥

वह समझे यह पंडित है कंगाल;
कर देंगे हम इसका कुछ प्रतिपाल।
हम समझे लिख पढ़ कर शास्त्र-निबंध,
कर लेंगे हम कर में राज-प्रबंध॥ ७॥

किया एक दिन नृप ने प्रश्न महान—
लोग तुम्हें कहते हैं क्यों विद्वान!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब तो खोला हमने अपना भेद ;
किया प्रकाशित माना पंचम वेद ॥ ८ ॥

"रखते हैं हम घर में पुस्तक-ढेर ;
लाते हैं बाहिर से पंडित घेर ;
करते हैं नित उनसे वाद-विवाद ;
फिर पत्रों में देते हैं संवाद ॥ ९ ॥

सभा समाजों में हम जाकर नित्य
फैलाते हैं काशी का साहित्य ।
सीखों को सिखलाकर जोड़ वसूल
सब सुधार देते हैं उनकी भूल ॥ १० ॥

बुद्धिमान को देकर भारी दोष
कहते हैं मूरख को हम गुण-कोष ।
परम मित्र कर वैरी, वैरा, मित्र
दिखलाते हैं अपनी चाल विचित्र ॥ ११ ॥

एक कार्य के कारण कई प्रकार
कर सकते हैं पल में हम तैयार ।
सच को दे सकते हैं मिथ्या-भेष
मिथ्या कर सकते हैं सत्य अशेष ॥ १२ ॥

चलती है जब जैसी जहाँ बयार
करते हैं तब तैसा तहाँ विचार ।
कर्म कठिनमपि कर्त्तुमहं शक्नोमि ;
श्रीलाभाय शरीरं प्रियं जुहोमि" ॥ १३ ॥

सुन कर मधु से मीठा मंगल मंत्र
रह न सके पल भर भी भूप स्वतंत्र ।
किया उन्होंने हमको सचिव प्रवीण
हमने उन्हें बनाया निज आधीन ॥ १४ ॥

बात बात में हम से पूछ सलाह
भूप लगे करने कुछ पद-निर्वाह ।
हम भी फिर से पढ़ कर छंदो-ग्रंथ
बतलाते थे उनको सीधा पंथ ॥ १५ ॥

दैवयोग से नृप थे निस्संतान ;
पिंडदान का उनको था नित ध्यान ।
समझ हमारी अद्भुत सब करतूत
किया उन्होंने हम को निज उप-पूत ॥ १६ ॥

यह पद हमको ज्योंही मिला महान
हुआ गौंडवन त्योंही तीर्थस्थान ।
ठौर ठौर आ बैठे काशी-वाल ,
लगे लूटने सुख से गौंडी माल ॥ १७ ॥

धरा राजधानी ने काशी-रूप ;
पग-पग पसरी छाया, रही न धूप ।
गुप चुप, सुरती, विजया, कागद-पत्र ,
उपन्यास, आ फैले अब सर्वत्र ॥ १८ ॥

क्रमशः उच्च हमारा अति परिवार
बसा गौंडवाने में कर संचार ।
पिता, भतीजे, भाई, साले,—सर्व ,
लगे यहाँ अब करने उत्सव पर्व ॥ १९ ॥

देश हुआ क्रम क्रम से संपद-हीन ;
प्रजा दुखी, उपजाऊ धरती क्षीण ।
दिन दिन मूल-निवासी मिटे निदान ;
भूपति ने भी सहसा त्यागे प्राण ॥ २० ॥

करना पड़ा हमें अब सच्चा राज ;
सच्ची सभ्य प्रजा थी ; सभ्य समाज ।
घर घर के सब राजा थे अब लोग ;
कौन साधता मन से सेवा-योग ? २१ ॥

पुस्तक-विद्या आई यहाँ न काम ;
कर न सका कुछ करतब काशी- नाम ।
बल भी इतना तन में था न प्रचंड
जो हम उद्दंडों को देते दंड ॥ २२ ॥

खेती, जंगल, सड़कें, शिक्षा, न्याय ,
पुलिस ग़ज़ट, पैमाइश, चुंगी-आय ,
फ़ौज, आबकारी, कर, नहर, जहाज़ ,
हैं राजा को ऐसे लाखों काज ॥ २३ ॥

भिदा न कुछ पुस्तक-मय सिर में भेद ;
रहा ताक में रक्खा पंचम वेद ।
अलंकार, त्रैराशिक, गुरु, अनुमान ,
दे न सके अब हम को एक प्रमाण ॥ २४ ॥

ज्यों ज्यों हम धरते थे मिथ्या भेष ,
त्यों त्यों चिल्लाता था सारा देश ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए अंत में हम यों निपट निराश ;
ठाना मन में सच्चा काशी-वास ॥ २५ ॥

खुलने लगी ढोल की दिन दिन पोल ;
आँखें हुईं लजीली ; मुख निर्बोल ।
कभी कभी आता था निर्बल क्रोध ;
पर तुरंत होता था स्वयं प्रबोध ॥ २६ ॥

लोगों ने जब देखा नृप है मूढ़ ;
छल से है सिंहासन पर आरूढ़ ;
सब ने सोच बिचारा तब यह मंत्र—
रहें भला अब हम सब क्यों परतंत्र ॥ २७ ॥

कहता है अपने को जो विद्वान ;
जिसको नहीं काम का कुछ भी ज्ञान ।
त्यागो ऐसा निर्बल मूढ़ नरेश ;
भूप-हीनही अच्छा इससे देश ॥ २८ ॥

मुखिया ने तब छीना हमसे राज
लिया हाथ में निर्भय सारा काज ।
हम से कहा, नहीं है शासन खेल ;
सौ विद्याओं का है इसमें मेल ॥ २९ ॥

अपना सा मुँह ले हम लौटे गेह ;
रहा न अब निज बल में कुछ संदेह ।
अनुभव-बिन है सूना पुस्तक-ज्ञान ;
होते नहीं विवेकी सब विद्वान ॥ ३० ॥

विद्यानाथ शर्म्मा ।

मध्यप्रदेश की जंगली जातियों की उत्पत्ति ।

मनुस्मृति और शूद्रकमलाकर आदि ग्रंथों में वर्ण व्यवस्था कई तरह पर दी हुई है । परन्तु आज कल कई जातियाँ ऐसी हैं जो शायद पहले न थीं और जिनकी उत्पत्ति का हाल उन ग्रंथों में नहीं पाया जाता । कई जातियों की उत्पत्ति जैसी सुनी जाती है नीचे लिखता हूँ ।

[१]

नागवंशी ।

छत्तीसगढ़ में कुछ नागवंशी राजपूत हैं । ब्राडले बर्ट (F. B. Bradley Birt, B. A., I. C. S.) साहब ने "छोटा नागपुर" नाम की किताब में लिखा है कि छोटा नागपुर के महाराज नागवंशी हैं । नागवंशियों की उत्पत्ति इस प्रकार है ।

पुंडरीक नाग ने मनुष्य का स्वरूप धारण कर काशी के एक ब्राह्मण की कन्या पार्वती से विवाह किया और दोनों सुख चैन से रहने लगे । पुंडरीक ने मनुष्य का स्वरूप तो रख लिया, पर वह अपनी जीभ को मनुष्यों की जीभ के सदृश न बना सका । उसकी जीभ नाग की जीभ की तरह चिरीही रही । पुंडरीक सदैव इस बात की सावधानी रखता था कि पार्वती को उसकी जीभ न देख पड़े । परन्तु एक दिन दैवयोग से पार्वती ने उसकी जीभ देख ली और उसने पुंडरीक से उसके चिरे हुए होने का कारण बड़े आग्रह से पूछा । पुंडरीक को इस बात की शंका हुई कि यदि पार्वती को सच बात मालूम हो जायगी तो उसका प्रेम मुझ पर न रहेगा । इसलिए उसने पार्वती से कहा कि श्रीजगन्नाथजी चल कर सब हाल सुनावेंगे । इसके बाद दोनों स्त्री पुरुष श्री जगन्नाथजी की यात्रा को चले । यात्रा से पुंडरीक का असली मतलब यह था कि पार्वती पुंडरीक की जीभ की बात भूल जाय । यात्रा से लौटते समय जब वे झारखंड से जा रहे थे (झारखंड छोटा नागपूर ही का नाम था) तब पार्वती ने पुंडरीक की अद्भुत जीभ का हाल जानने के लिए बहुत हठ किया और पुंडरीक को अपना सारा इतिहास ठीक ठीक बतला देना पड़ा । सब बात बतला देने पर पुंडरीक को इतनी लज्जा हुई कि वह पास के तालाब में कूद पड़ा और अदृश्य हो गया । अपने प्राणपति के वियोग के शोक में पार्वती ने अधीर होकर अपने नव-जात बालक को तालाब के किनारे छोड़ कर चिता बनाई और अपनी देह को उसी में भस्म कर दिया ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेचारा बालक माता-पिता-हीन हो गया। परन्तु दयालु परमेश्वर ने उसके पालन पोषण का प्रबंध इस प्रकार कर दिया:—

पार्वती के सती हो जाने के थोड़ी देर बाद एक ब्राह्मण सूर्य की मूर्त्ति लिए हुए वहाँ से निकला और जिस तालाब में पुंडरीक अंतर्धान हो गया था उसमें से पानी पीने की इच्छा से उसके निकट गया। मूर्त्ति को पृथ्वी पर रख कर ज्योंही वह तालाब में उतरना चाहता था कि उसकी आँख उस बालक पर पड़ी, जिसकी रखवाली एक भुजंग फन फैलाये कर रहा था। यह दृश्य देख कर ब्राह्मण ने अपनी मूर्त्ति उठाकर भागना चाहा; परन्तु मूर्ति इतनी भारी मालूम हुई कि वह उसे बहुत प्रयत्न करने पर भी न उठा सका। इतने में सर्प ने मनुष्य की भाँति बोलना आरंभ किया। यह सर्प पुंडरीक ही था जो अपने त्यक्तपुत्र की रखवाली करने को अपनी असली सूरत में आया था। पुंडरीक ने ब्राह्मण को अपनी सब कथा सुनाकर बालक को उसे सौंप दिया और कहा कि एक दिन वह बालक उस प्रांत का (जहाँ कि वे थे) राजा होगा। नागवंशी अपनी उत्पत्ति इसी बालक से बतलाते हैं। कहते हैं कि नागवंशी लोग अपने आदि पुरुष की यादगार में अपनी पगड़ी ऐसी बाँधते हैं कि वह फन उभारे हुए नाग की सी देख पड़े। छोटे नागपुर के महाराज के घराने की कलँगी साँप के फैले हुए फन के नीचे मनुष्य के सिर के आकार की है।

मालूम नहीं मध्यप्रदेश के नागवंशियों का कोई सम्बन्ध छोटे नागपूर के नागवंशियों से है या नहीं।

[२]

पूर्वोक्त साहब की किताब में लिखा है कि मुंडा लोग, जातियों की उत्पत्ति इस प्रकार बतलाते हैं:—

सिंग-बोंगा (सूर्य) ने, जो उनका मुख्य देवता है, एक लड़का और एक लड़की बनाये और उनका आपस में विवाह कर दिया। उनके बारह लड़के और बारह लड़कियाँ उत्पन्न हुईं, जिनके बड़े होने पर सिंगबोंगा ने उनके १२ जोड़े बनाये और उनके सामने सब प्रकार के खाद्य पदार्थ रक्खे। जिसने जो पदार्थ स्वीकार किया उस पर से उसकी संतान की जाति नियत की गई। जिसने केवल साग तरकारी स्वीकार की उसकी सन्तान सबसे उत्तम जाति ब्राह्मण हुई। जिसने शूकर का मांस स्वीकार किया उसकी संतान सबसे अधम संताल या संथाल हुई। कोल लोग कहते हैं कि वे उस जोड़े की संतान हैं जिसने गो-मांस स्वीकार किया था। लड़ाकू कोल अपने बली और सुडौल शरीर का कारण गो-मांस ही बतलाते हैं। जब १९ वीं शताब्दी के आरंभ में कोलों और अँग्रेज़ी जंगी सिपाहियों का मुठभेड़ हुआ तब अँग्रेज़ी सिपाहियों के युद्ध-बल का उनके मन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि वे भी गोमांस-भक्षी हैं तब उन सिपाहियों का जितना आदर वे कर सकते थे उन्होंने किया और उनको अपने पूर्वजों की संतान माना। ११ जोड़ों के भोजन-पदार्थ ले लेने पर अभागे १२ वें जोड़े के लिए कुछ भी न बचा। इस कारण उन्हें दूसरों से भोजन माँगना पड़ा। इस अभागे जोड़े की संतान घासी [घसिया] हैं जो कोई उद्यम नहीं करते। वे दूसरों से भीख माँग कर और उनका जूँठा खा कर ही अपना निर्वाह करते हैं। ये घासी या घसिया बाजा बजाने में बड़े निपुण हैं। बिना उनके बाजों के शादी या ग़मी में काम ही नहीं चलता।

[३]

संथाल लोगों का मत इससे भिन्न है। उनके कथनानुसार सृष्टि-निर्माण होने के बहुत वर्षों बाद जातियाँ नियत की गई थीं। उनका मत है:—

मारंगबारू (परमेश्वर) की इच्छा हुई कि मनुष्यों को जुदी जुदी जातियों में विभक्त करके उनको पृथ्वी के सब भागों में बसाना चाहिए। इस विचार से उसने एक बड़ा भोज दिया और सब मनुष्यों का आमंत्रण किया। जितने स्वादिष्ठ पदार्थ खाने के हैं सभी तैयार किये गये:—गोमाँस, बकरे का माँस, मछली, चावल, साग, तरकारी। सब लोग भोजन करने के स्थान से कुछ दूर पर इकट्ठे हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मारंगबारू ने उनसे कहा कि एक नियत संकेत पर सब लोग दौड़ दौड़ कर भोजन करने के स्थान पर आवें और जो जिसको रुचे उठालें। संकेत होने पर संथाल सबसे तेज़ दौड़ कर भोजन के स्थान पर पहुँचे। चारों ओर दृष्टि डाल कर उन्होंने देखा कि सब खाद्य पदार्थों में गो-मांस ही सबसे अधिक है और सबसे अच्छा भी है। इससे वे उसे लेकर जंगल में खाने के लिए चले गये। दूसरे नम्बर पर मुसल्मान पहुँचे। उन्होंने बकरे का मांस ग्रहण किया। मुसल्मानों के बाद भुइयाँ लोग पहुँचे। उन्होंने मछली को सबसे अच्छा समझ कर उसी को ले लिया। ब्राह्मण बेचारे सबसे पीछे पहुँचे और सिवा भात और तरकारी के कुछ भी उनके हाथ न लगा। उन्हें विवश होकर उसी पर संतोष करना पड़ा।

संथाल लोग ब्राह्मण का बनाया भोजन कदापि ग्रहण नहीं करते। मध्यप्रदेश के मंडला, बिलासपुर, बालाघाट ज़िलों के जंगली हिस्सों में रहनेवाले बैगा लोग भी ब्राह्मणों के हाथ का भोजन या पानी ग्रहण नहीं करते।

[४]

बैगा लोग अपनी उत्पत्ति इस प्रकार बतलाते हैं—

ईश्वर ने सृष्टि के आदि में मनुष्य जाति की एक स्त्री और एक पुरुष को उत्पन्न किया। पुरुष का नाम था 'नांगा बैगा' और स्त्री का 'नांगो बैगन'। ईश्वर ने उनसे प्रश्न किया कि तुम अपने जीवन-निर्वाह के लिए कौन सा धंधा करना चाहते हो। उन्होंने उत्तर दिया कि हम जंगल में पेड़ गिराकर अपना निर्वाह करेंगे। परमेश्वर ने उन्हें ऐसा करने की आज्ञा दे दी और वे पेड़ों को काट कर उनके सूखने पर उनमें आग लगाकर उनकी राख में कुटकी इत्यादि बो कर उसी से अपना निर्वाह करते आते हैं। नागा बैगा और नागी बैगन को दो पुत्र और दो कन्यायें हुईं। बड़े पुत्र का ब्याह बड़ी कन्या से, और छोटे का छोटी कन्या से हुआ। छोटे पुत्र ने धरती को हल-बखर से जोत कर बीठा बोया। इससे वह पतित समझा गया। क्योंकि धरती माता का पेट चीरना पाप कर्म है। उसकी संतान से गोंड़ इत्यादि जातियाँ पैदा हुईं। बड़े पुत्र की संतान सब बैगा रहे।

[५]

होशंगाबाद कमिश्नरी में रहनेवाले कोरकू लोग अपनी जाति की उत्पत्ति के विषय में कहते हैं कि लंकापति रावण ने महादेवजी से विंध्या और सतपुड़ा को निर्जन भूमि आबाद करने के लिए प्रार्थना की। महादेव जी ने अपने दूत कागेश्वर को लाल बमीठे की खोज में भेजा। बड़ी दौड़-धूप के बाद कागेश्वर को एक लाल बमीठा बैतूल ज़िले में मिला। महादेव जी वहाँ गये और बमीठे की मिट्टी से दो पुतलियाँ बनाईं। एक पुरुष और दूसरी स्त्री के आकार की। परन्तु इन्द्र की आज्ञा से एक घोड़ा पास ही पृथ्वी में से निकला और मूर्तियों को खूंद खांद कर चकनाचूर कर गया। दो दिन तक महादेव ने कई बार मूर्तियाँ गढ़ीं, परन्तु इन्द्र का भेजा घोड़ा उन्हें हर बार चूर चूर कर जाने लगा। अन्त में महादेव जी ने एक कुत्ता बनाकर उसे सजीव किया और उसे घोड़े को भगा देने की आज्ञा दी। कुत्ते ने घोड़े को भगा दिया। महादेव के पास तक उसे न फटकने दिया। तब महादेव जी ने एक पुरुष और एक स्त्री की मूर्ति बनाकर उन्हें सजीव कर दिया। उन्हीं से कोरकू लोगों की उत्पत्ति हुई। उनका नाम था मूला और मुलई। इनके पास पहनने को वस्त्र न थे। तब महादेव जी ने माडुल और केर नाम के वृक्ष पैदा किये कि उनके पत्ते वस्त्र का काम दें। खाने के लिए महुआ इत्यादि जंगली फल पैदा किये। इस तरह मूला-मुलई सुखपूर्वक रहने लगे। उनके संतान भी हुई। परन्तु जब उन्होंने दूसरे लोगों को अनाज खाते देखा तब उन्हें अपनी दशा संतोषदायक न मालूम हुई। इससे उन्होंने महादेव का ध्यान धर उनसे प्रकट होने की प्रार्थना की। महादेव प्रकट हुए। तब मूला-मुलई ने प्रार्थना की। महाराज! हमारे खाने को अन्न होना चाहिए। महादेव ने कागेश्वर को अनाज की खोज में भेजा। खोजने पर उसे मालूम हुआ कि थोड़ी दूर पर एक डेरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है जिसके घर बहुत सा अनाज है। पता देने पर महादेव जी मूला-मुलई को लेकर उसके यहाँ गये। उसने भक्ति-पूर्वक महादेव जी को बहुत सा अनाज, कुछ बकरे और कुछ पानी अर्पण करके ग्रहण करने की प्रार्थना की। महादेव जी ने सोचा कि डोम की छुई हुई चीज़ों का व्यवहार कैसे कर सकते हैं। इससे कुछ सोच बिचार कर पार्वती ने भीमसेन नामी राक्षस उत्पन्न किया। महादेव की आज्ञा पाकर भीमसेन ने उस डोम की दी हुई चीज़ें खा लीं। परन्तु उसने सोचा कि भंगी का दिया हुआ भोजन करने से मैं अपवित्र हो गया। उसने क्रोध में आकर उस डोम का घर गिरा दिया और उसे विष्ठा से भर दिया। इस पर उसने महादेव जी से नम्रतापूर्वक कहा कि मैंने जो आपका भक्तिपूर्वक आदर किया उसका पलटा मुझे क्या ऐसाही मिलना चाहिए था? कृपा करके मेरा घर फिर से बनवा दीजिए। महादेव जी ने भीमसेन को उसका घर फिर ज्यों का त्यों बना देने की आज्ञा दी। भीमसेन ने कहा मैं घर बना तो दूंगा, परन्तु शर्त यह है कि मूला-मुलई और उनकी सन्तान वचन दें कि वे मेरी वैसी ही पूजा करेंगे जैसी कि वे निशाचरपति रावण की करते हैं। मूला ने ऐसा करने का वचन दिया। तब बुद्धू वराह बुलाया गया। उससे घर में पड़ा हुआ विष्ठा साफ़ करने को कहा गया। बुद्धू ने जब शर्त कराली कि मूला-मुलई और उनकी संतान हर तीसरे साल उसका पूजन किया करें तब उसने मकान की गन्दगी साफ़ की। परन्तु आकण्ठ भोजन करने से बुद्धू का प्राणांत हो गया। उसकी पूजा अब तक कोरकू लोग महाविसभ के नाम से करते हैं। भीमसेन की पूजा भी वे करते हैं। महादेव जी ने उस डोम से कुछ बीज लेकर मूला-मुलई के लिए धरती में बो दिया, जिससे धान, कोदों, कुटकी आदि सात प्रकार का अनाज पैदा हुआ। इन्हीं की खेती अकसर कोकू और दूसरी जंगली जातियाँ करती हैं।

[६]

भील लोग कहते हैं कि हम महादेव जी के चर हैं, और यह भी कहते हैं कि हम लोग महादेवजी के और रस सन्तान हैं। वे अपनी उत्पत्ति का वर्णन यों करते हैं :—महादेव जी ने वन में घूमते घामते एक जंगली लड़की की सुन्दरता पर मोहित हो कर उससे विवाह कर लिया। उसके गर्भ से एक काले रंग का लड़का उत्पन्न हुआ। उसने एक दिन महादेव जी के बैल को बहुत मारा। इस कारण वह उसी समय से शाप-ग्रस्त होकर भील के नाम से वन वन घूमने लगा। उसी के वंश में भील उत्पन्न हुए हैं।

कन्हैयालाल।

फ्रांको-ब्रिटिश-प्रदर्शिनी।

(जनवरी की संख्या से आगे)

[२]

Stadium अर्थात् अखाड़ा।

यह एक हज़ार फ़ुट लम्बा और ७०० फ़ुट चौड़ा था। इसके चारों ओर डेढ़ लाख दर्शकों के बैठने को जगह थी। बड़ा पुख़्ता बना था। बीच में सुन्दर हरी घास की चादर सी बिछी थी। दोनों ओर आमने सामने बैंड बाजे के लिए टीन के अच्छे लम्बे चौड़े बरांडे बने थे। इन्हीं की बग़ल में बड़े बड़े लोगों के बैठने के लिए स्थान था। एक ओर पानी का ३३० फ़ुट लम्बा और १४ फ़ुट गहरा तालाब था जो चारों ओर से पक्का बँधा था। इसमें जल-दौड़ हुई थी। बीच में आस पास दौड़ने को नरम सड़क बनी थी। इसी के निकट बाईसिकिल-दौड़ के लिए सकरी सड़क थी। कुल अखाड़े के बनाने में साठ हज़ार पौंड अर्थात् नौ लाख रुपये ख़र्च हुए थे। यहाँ ग्रीस देश के खेल-तमाशे हुए थे, जिनमें यूरोप के बाईस देश शरीक थे। इन खेल-तमाशों को आलिमपिक गेम्स (Olympic games) कहते हैं। यही अखाड़ा "मेराथान रेस" (Marothan race) की विजय-भूमि थी जहाँ २६ मील की दौड़ में हेस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Hayes) ने डोरानडो (Dorando) को हराया था। यह दौड़ अनुमान ढाई घंटे की थी। इसी अखाड़े में तरह तरह के खेल—जैसे जलदौड़, हाकी, कुश्ती इत्यादि—हुए थे। संध्या को नित्य साढ़े नौ बजे आतिशबाज़ी छूटती थी। अखाड़े में जाने के लिए छः आने से लेकर बारह आने तक का टिकट था।

Mountain Scenic Railway.

अर्थात् पहाड़ी रेलगाड़ी।

इसके तैयार करने में बीस हज़ार पौंड अर्थात् ३ लाख रुपये व्यय हुए थे। यह कोई एक मील लम्बी थी। इसमें कैनेडा और अमेरिका की विचित्र छटा दिखाई देती थी। इस पर बैठने के लिए छः आने देने पड़ते थे। क़रीब बीस मिनट में सैर हो जाती थी। उतार आने पर लड़कियाँ बड़ी ज़ोर से चीख़ती थीं। यह बिजली की सहायता से चलती थी। इसकी चाल फ़ी घंटे पचास मील थी। एक एक गाड़ी में सोलह मुसाफ़िर बैठ सकते थे। रास्ते में तरह तरह के वृक्ष, गुफ़ा, फूल, झरने, नदी, पहाड़, बोगदे इत्यादि दिखाई पड़ते थे। दूर से इसका आकार पहाड़ सा जान पड़ता था। नये बैठनेवालों की जान उतार के समय सूखती थी। ऐसा मालूम होता था कि अब प्राण छूटे। इसके द्वारा प्रदर्शिनी को अच्छी आमदनी हुई। बैठने वालों को घंटों क़तार बाँधे एक के पीछे एक खड़े रहना पड़ता था। बारी आने पर ऊपर जा सकते थे। यही नियम हर एक जगह था।

Indian Building.

अर्थात् भारतीय भवन।

इसके सामने का ऊँचा दर्वाज़ा किसी महाराजा के महल की याद दिलाता था। भीतर देशी वस्तुओं का संग्रह था। दो एक पारसी सौदागर अपनी अपनी दूकानों के पास खड़े थे। परन्तु यह भवन कैनाडा और आस्ट्रेलिया के भवनों के सामने कुछ भी न था। इसमें भीड़ भी अधिक न थी। इसके निकट हिन्दुस्तानी नाटक-गृह (Indian arena) था, जिसके दर्वाज़े पर सहनाई और नगाड़े बज रहे थे। अन्दर जाने वालों को बारह आने देने पड़ते थे। भीतर एक छोटा सा पानी का गहरा कुंड था। उसके सामने लकड़ी का फ़र्श था जिसके आस पास सड़क थी। इस सड़क के पास दर्शकों के बैठने का स्थान था। लग भग तीन सहस्र दर्शकों के लिए जगह थी। एक ओर कोने में बैंड बजता था। बैंड वाले सफ़ेद देशी वस्त्र पहने थे। कुंड के ऊपर पहाड़ और जंगल की छटा थी। काली काली औरतें और उनके बच्चे तथा पति जहाँ तहाँ प्रोग्राम बेचते फिरते थे। ये स्त्री-पुरुष कुछ मैसूर प्रान्त के और कुछ लंका के वासी थे। जाड़ा पड़ रहा था। बेचारों के पैरों में जूते तक न थे। मर्द एक धोती ओढ़े थे। इनको देखकर हमें बड़ा रंज हुआ और क्रोध भी आया। रंज इस लिए कि उनके रहने की व्यवस्था ठीक न थी। उन्हें वहीं छोटी छोटी झोपड़ियों में रह कर गुज़ारा करना पड़ता था। वे केवल लालच में फँस कर यहाँ चले आये थे। उनको तब तक तनख़ाह भी न मिली थी। केवल खाने को मिलता था। क्रोध इसलिए आया, क्योंकि यहाँ तमाम जगह मशहूर कर रक्खा था कि भारत से अच्छे अच्छे नाचने, गाने और तमाशा करने वाले आये हैं। वहाँ जाके देखा तो इन बेचारों को पाया जो न हमारी भाषा जानते हैं, न अँगरेज़ों की। प्रदर्शिनीकर्त्ताओं ने यहाँ के लोगों को यह बड़ा भारी धोखा दिया था और भारतवर्ष की हतक की थी। क्योंकि लोग यही समझे होंगे कि भारत में केवल ऐसे ही आदमी हैं। ख़ैर, थोड़ी देर बाद तमाशा करने वाले आये। एक बाज़ार लगा; जिसमें वही काले काले ग़रीब लोग कुछ देशी चीज़ें लिये दिखाई दिये। फिर चार पाँच स्त्रियाँ नाचीं और तैलंगी भाषा में कुछ गाया। इसके बाद राजा की सवारी निकली। हाथी घोड़े निकाले गये। राजा कोई काला भूत सा आदमी था। रानी की पोशाक आधी देशी आधी विलायती थी। सवारी निकलने के बाद शेर का शिकार होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

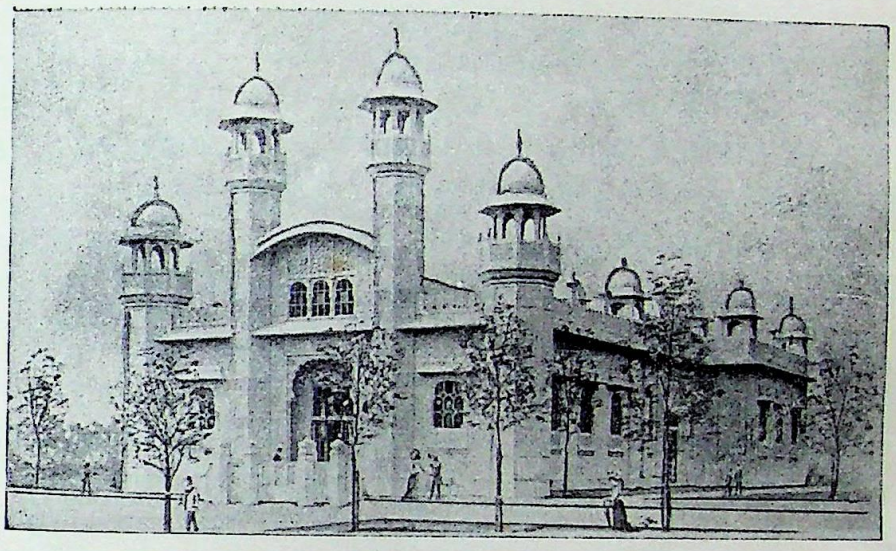

भारतीय भवन ।

पहाड़ी रेलगाड़ी ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया और खेलते खेलते एक हाथी तीस फ़ुट की ऊँचाई से नीचे के कुण्ड में सरकाया गया। इस बेचारे की दशा देखकर हृदय काँप उठा। इस प्रकार क़रीब पौन घंटे में यह नाटक समाप्त हुआ। यह हम लोगों के उपहास का तमाशा था।

Ceylon Village.

अर्थात् लंका का गाँव।

भारतीय भवन के समीप लंका-द्वीप के एक गाँव का दृश्य था। इसके फाटक पर भी सहनाई और ढोल पिट रहे थे। छः आने दिखाई के लगते थे। कहने को लंका का गाँव था; पर भीतर कई प्रान्तों के लोग थे। ज़्यादातर वही थे जो ऊपर बताये हुए नाटक में थे। एक मैसूरवासी ब्राह्मण था, जो ज्योतिषी बना था। एक ओर लड़के लड़कियों की पाठशाला थी, जिसमें चटाई बिछी थी। बीच आँगन में दो नंगे शरीर आदमी बन्दर लिये बैठे थे। इन से हमने बातचीत की तो मालूम हुआ कि ये अजमेर के रहने वाले मुसलमान हैं। केवल खाना उन्हें मिलता था। तमाशबीन अलबत्ता बंदरों का तमाशा देखने पर कभी कभी कुछ पैसे दे दिया करते थे। थोड़ी दूर पर एक अखाड़ा था। उसके पीछे एक छोटी सी झोंपड़ी में इन लोगों का रसोईघर था, जहाँ कुछ आदमी भोजन बना रहे थे। इनसे भी हमारी बातचीत हुई। वे तैलंगी भाषा के सिवा कुछ न जानते थे। पर उनमें एक आदमी टूटी फूटी अँगरेज़ी बोल सकता था। उसके कथन से मालूम हुआ कि ये लोग घर लौटने के लिए बड़े उत्सुक हैं। इधर उधर कुछ काली कुरूप स्त्रियाँ तसवीरदार पोस्ट कार्ड बेचती फिरती थीं। एक कोने में जुलाहे और कुम्हार मारे जाड़े के सिकुड़े बैठे थे। हमें फिर शोक के साथ कहना पड़ता है कि यहाँ भी हमारे देश-भाइयों की वही दुर्दशा दिखाई दी। ब्राह्मण ज्योतिषी से (जिसका ज़िक्र हम ऊपर कर चुके हैं) ज्ञात हुआ कि उन सबको लौटने के बाद कुछ मिलेगा। पर उसकी बातों से यह भी मालूम हुआ कि उसे या उसके साथियों को शायदही कुछ मिले। वे बेचारे भूल से यहाँ आ गये थे।

Canada and Australia

अर्थात्

कनैडा और आस्ट्रेलिया के भवन।

ये दोनों इमारतें क़रीब दस लाख रुपये में बनी थीं। प्रदर्शिनी की ये नाक थीं। जितने दर्शक यहाँ इकट्ठे होते थे उतने और कहीं नहीं। इनके देखने में कई दिन लगते थे। इन पर एक बड़ी पुस्तक लिखी जा सकती है। भीतर देखने से इन देशों की उन्नति का अच्छा पता लगता था। ये बड़ी सुन्दरता से सजाये गये थे। कैनेडा, इंगलैंड से ३० गुना बड़ा है। यह प्रायः भारत की तरह कृषिकारों का देश है। लगभग फ़ी सदी ९० किसान निजकी ज़मीन जोतते हैं। कैनेडा में निजकी पार्लीमेन्ट है, जिसके आधे से अधिक मेम्बर किसान हैं। जो कोई वहाँ रहने जाता है उसे वहाँ की सरकार १६० एकड़ ज़मीन मुफ़्त में देती है। कैनेडा गेहूं की मंडी है। फल, मक्खन इत्यादि भी वहाँ से बाहर जाता है। किसानों का देश होने पर भी वहाँ विद्या का प्रचार कम नहीं है। वहाँ तीस हज़ार स्कूल-मास्टर हैं। चार लाख आदमी हर तरह के कारख़ानों में काम करते हैं। इन कारख़ानों का मूल-धन बारह करोड़ पौंड है। जगह जगह रेल गाड़ियाँ चलती हैं। यहाँ के ग़रीब से ग़रीब किसान के पास भी ३००० रुपये की पूँजी है। आलसी आदमी का वहाँ निर्वाह नहीं है। "Don't come unless you are ready to work hard" अर्थात् यदि तुम सख़्त मेहनत करने को तैयार नहीं तो यहाँ मत आवो। यह इस देश का "मोटो" अर्थात् मूल-मंत्र है। इस देश में सोना, चाँदी तथा अन्य धातु पैदा होती हैं। महल के भीतर कैनेडा के गेहूँ, मक्खन, फल, धातु, हल, बखर, इत्यादि पदार्थों के नमूने देश की उन्नति की साक्षी दे रहे थे। परन्तु कैनेडा की औद्योगिक उन्नति का पौधा लगाने वाले मनुष्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं हैं, किन्तु जानवर हैं। इनका नाम बीवर (Beaver) है। ये आकार में ख़रगोश या लोमड़ी से कुछ बड़े होते हैं और मछली की तरह पानी में रहते हैं। परमेश्वर ने इन्हें ऐसा बनाया है कि वे सहज में बढ़ई और राज का काम कर सकते हैं। कैनेडा-वासी इन्हें अपने पुरखों की तरह मानते हैं। इन्हीं जानवरों ने उन्हें उद्योगी बनाया है। सन् १६३६ ई० में बीवर का चमड़ा सिक्के का काम देता था। वस्तु बेचने ख़रीदने में रुपये पैसे की जगह ये लोग इनका चमड़ा लेते देते थे। जब यहाँ के बादशाह पहले चार्ल्स ने "Knight of Nova Scotia" की पदवी निकाली थी तब इन Knights के Armorial Bearings पर बीवर की तसवीर रहा करती थी। भीतर भवन में हमने एक तरफ़ एक छोटी सी नदी का नमूना देखा, जिसमें कुछ बीवर तैरते हुए दिखाई दिये। ऊपर बड़े बड़े अक्षरों में इन जानवरों के विषय में अनेक वाक्य लिखे थे। जैसेः—Beaver is emblematic of Canada's industry—कैनेडा के उद्योग का बीवर साक्षात् उदाहरण है"। "Beaver dams abound in Canada built by these patient little pioneers of Engineering. They are the earliest known wood-cutters and dam-builders in the world." अर्थात् कैनेडा में बीवरों द्वारा बनाई हुई दीवारों की अधिकता है। वे संसार में सब से पुराने बढ़ई और दीवार बनाने वाले कहे जाते हैं। ये दीवारें नदियों में पानी रोकने के लिये बनाई जाती हैं। इनकी लम्बाई क़रीब ३० फ़ुट, उँचाई ४५ फ़ुट और मोटाई क़रीब ६ फ़ुट होती है। ये केवल लकड़ी और मिट्टी की बनाई जाती हैं। इन्हें बीवर अपने मुँह और पंजों से काटते और खोदते हैं। हमने ख़ुद इन छोटे छोटे जानवरों को लकड़ी काटते देखा है।

कैनेडा के बाद हम आस्ट्रेलिया देखने गये। यहाँ भी वैसेही चमत्कार दिखाई दिये। आस्ट्रेलिया में छः रियासतें हैं। अतएव हर एक रियासत के लिए अलग अलग स्थान था। यहाँ अन्य वस्तुओं के सिवा सोने की उपज देखकर हमें बड़ा विस्मय हुआ। जब हम क्वीन्सलेंड (Queensland) में पहुँचे तब वहाँ सोने का ६० पौंड वज़न का एक टुकड़ा देखा, जिसकी क़ीमत २५२० पौंड १२ शिलिंग थी। इसे उठाने की दक्षिणा एक आना देना पड़ता था। यह द्रव्य यहाँ एक अस्पताल की सहायता के लिए इकट्ठा किया गया था। दूसरी ओर २९६४० पौंड क़ीमतवाला सोने का एक और टुकड़ा रक्खा था। विक्टोरिया (Victoria State) में पहुँचते ही हमें एक ऊँची महराब नज़र आई जो सुनहले कागज़ से मढ़ी थी। उस पर चारों ओर ये शब्द लिखे थे—"This arch represents the actual bullion of gold produced from the mines of Victoria from 1851 to 1907. Weight 69, 95, 448 ounces, and value £279,471,598". अर्थात् विक्टोरिया में सन् १८५१ ई० से सन् १९०७ तक इस महराब के बराबर सोना पैदा हुआ है। उसका वज़न ६९,९५६,४४८ आउंस और क़ीमत २७,९४७,१ ५,९५ पौंड है। बस, इसी से आस्ट्रेलिया की सम्पत्ति का अनुमान कर लीजिए।

Congress Hall.

अर्थात् कांग्रेस हाल।

यह कोर्ट आव् आनर (Court of Honour) वाले तालाब के ऊपर बना है। ऊपर चढ़कर देखने से नीचे वाली नहर और आस पास के महल बड़े सुहावने जान पड़ते हैं। यह हाल एक बड़ा कमरा है, जहाँ बहुत सी कुर्सियाँ पड़ी हुई हैं। इसे लेक्चर हाल कहना अनुचित न होगा। इसके नीचे सीढ़ियों पर से जो पानी बहकर नहर में जाता है वह दृश्य बड़ाही विचित्र और सुन्दर दिखाई देता है।

Fine Arts Palace.

अर्थात्

चित्र-शाला।

इस विशाल-भवन में फ़रासीसी और विलायती चित्रकारी के नमूने रक्खे थे। इसमें १९ बड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

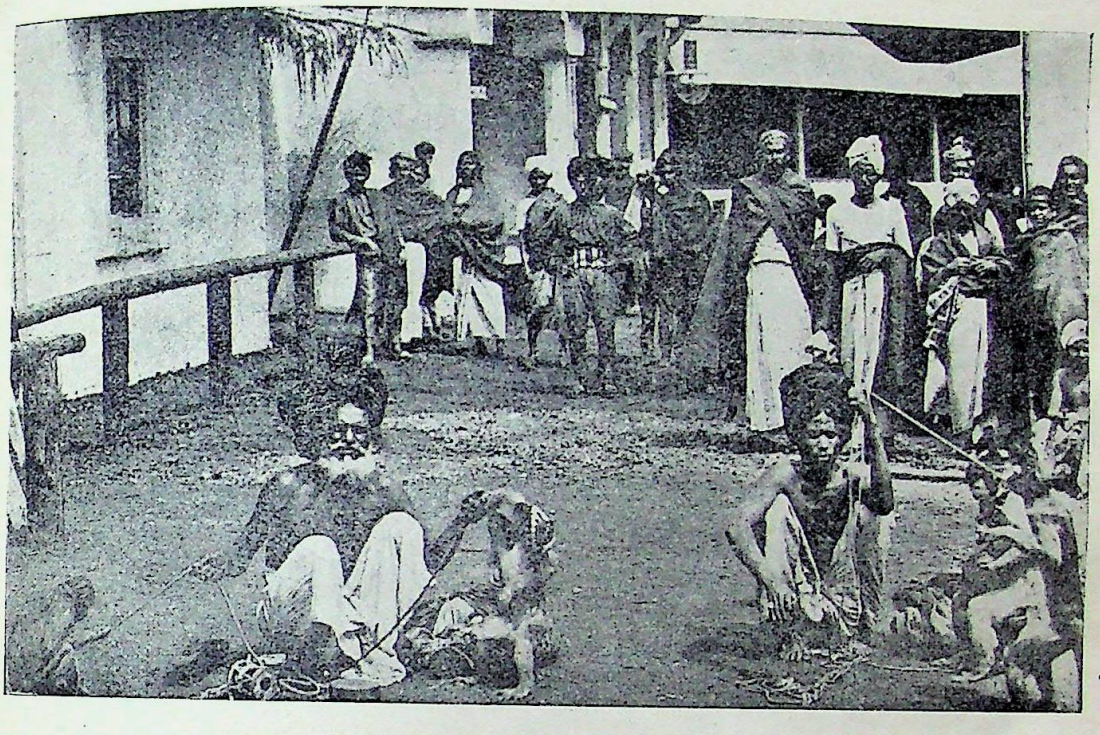

भारत के मदारी और लड़का का गाँव ।

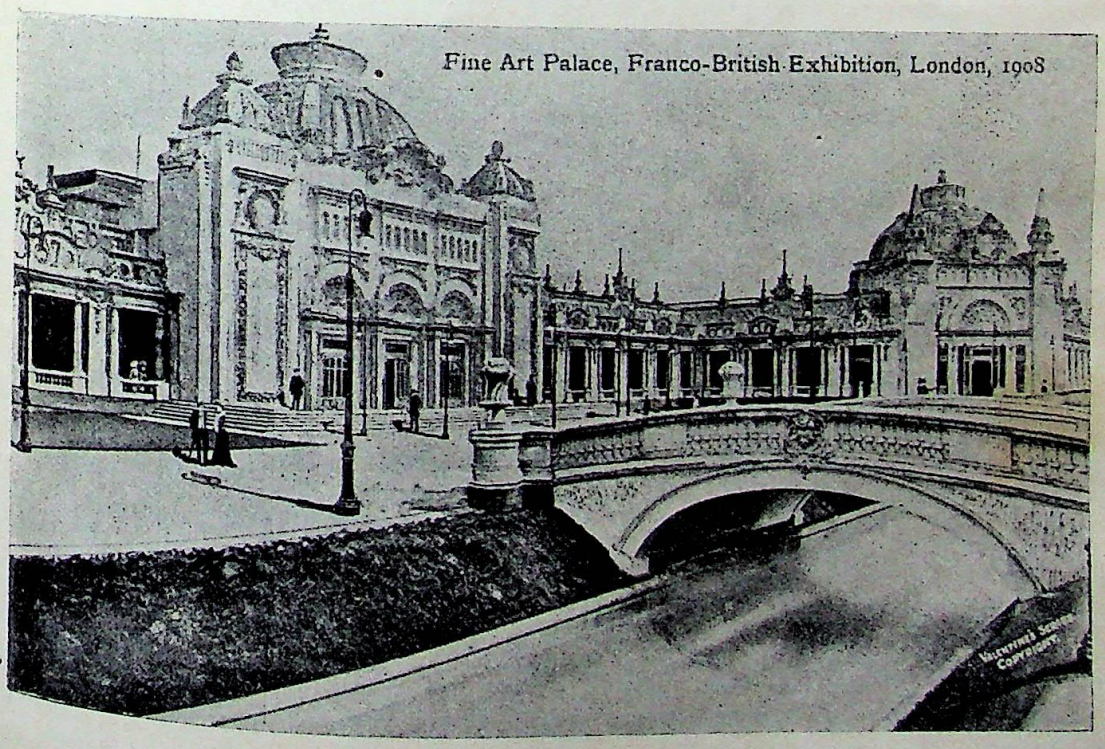

चित्रशाला ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमरे थे जिनमें एक ओर फ़्राँस के चित्र और मूर्तियाँ और दूसरी ओर इँगलैंड के चित्र और मूर्तियाँ रक्खी हुई थीं। फ़्राँस की चित्रकारी के सामने अँगरेज़ी चित्रकारा कुछ भी न थी; कौड़ी मुहर का भेद था। फ़रासीसी चित्रकारी में बहुत बारीकी और सौन्दर्य था। इन चित्रों की क़ीमत इसी से जानी जा सकती है कि चित्रशाला का बीमा (Insurance) १० लाख पौंड को कराया गया था।

The palace of Women's Work.

अर्थात्

महिला-महल।

इसमें स्त्रियों के तरह तरह के कामों के नमूने रक्खे थे। प्राचीन काल की परोपकारिणी महिलाओं के हस्त-लिखित पत्र भी थे। क्राइमिया इत्यादि के युद्धों से बची हुई फ्लारैन्स नाइटिङ्गेल (Florence Nightingale) की एक पुराने ढाँचे की गाड़ी रक्खी थी, जिसमें बैठकर वह क्राईमिया के युद्ध में घायलों का इलाज करती थी। सीने, पिरोने, जरी, पुस्तक बाँधने इत्यादि के नमूने भी मौजूद थे। एक जगह अस्पताल बना था, जिसमें दाइयाँ मरीज़ों की सेवा में लगी थीं। तात्पर्य यह कि जो कुछ यहाँ की स्त्रियाँ कर सकतीं हैं वह सब यहाँ दिखाई दे रहा था।

Machinery Hall.

अर्थात्

कला-भवन।

इसमें फ़्रेंच और अँगरेज़ी इन्जिनियरों की अद्भुत कलों का संग्रह था जिसके देखने और समझने के लिए महीनों की ज़रूरत थी। इस कला-भवन का रक़बा १३ एकड़ था। भीतर कलों की आवाज़ के मारे कुछ सुनाई नहीं पड़ता था।

डेलीमेल समाचारपत्र।

इन सब के सिवा डेलीमेल (Daily Mail) नामक समाचार-पत्र का आफ़िस भी बड़ा ख़ूबसूरत बना था। डेलीमेल और इवनिंग न्यूज़ (Evening News) वहीं छपते थे। ये पत्र सब ताज़ी ख़बरें क्षणमात्र में तमाशबीनों को देते रहते थे। बाहर दीवारों पर भी ख़बरें छापकर लटका दी जाती थीं। भीतर जाकर लोग छपाई देखते थे, जो एक अद्भुत कल के द्वारा होती थी। कम्पोज़िंग भी कल के द्वारा होता था। संध्या को आफ़िस के बाहर भीतर बिजली की रोशनी होती थी। डेलीमेल के सिवा डेली-टेलिग्राफ, डेली-मिरर इत्यादि पत्रों के दफ़्तर भी इसी भांति सजे थे। यहाँ किस प्रकार अख़बार छपते थे इसका हाल सुनिए।

डेलीमेल इँगलैंड में बड़ा प्रसिद्ध दैनिक समाचारपत्र है। ज़रूरत पड़ने पर उसके एक दिन में कई संस्करण तक निकलते हैं। बात की बात में लाखों कापियाँ बिक जाती हैं। उसके मुख्य मुख्य दफ़्तर तीन जगह हैं—लन्दन, पेरिस और मांचेस्टर। अर्थात् तीन स्थानों में वह एक ही साथ छपता है। लन्दन की प्रदर्शिनी में भी उसने अपना एक दफ़्तर खोला था। वहाँ वह दिन भर में कई बार प्रकाशित होता था। शाम को भी "इवनिंग न्यूज़" के नाम से घंटे घंटे पर छपता था। पत्र के छपने और प्रकाशित होने का काम ऐसी तेज़ी से होता था कि दर्शक लोग देख कर दंग हो जाते थे। इसका एक उदाहरण सुनिए।

एक दिन महाराज सप्तम एडवर्ड और फ़्राँस के प्रेसीडेंट प्रदर्शिनी देखने आये। कोई डेढ़ घंटे तक इधर उधर घूमते रहे। इसके बाद चाय-घर में चाय पीने बैठे। वे चाय पी कर उठने भी न पाये थे कि डेलीमेल का एक विशेष संस्करण निकल गया और हज़ारों की तादाद में बिक गया। उसमें शाही दर्शकों के आने का और डेढ़ घंटे तक जहाँ जहाँ वे घूमते रहे थे वहाँ वहाँ की सम्पूर्ण घटनाओं का विस्तृत वृत्तान्त था। इसके सिवा उसमें महाराज एडवर्ड और प्रेसीडेंट के दो फ़ोटो भी थे। ये दोनों फ़ोटो डेलीमेल के फ़ोटोग्राफ़र द्वारा उस समय लिये गये थे जिस समय दोनों शाही दर्शक प्रदर्शिनी देख रहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। महाराज सप्तम एडवर्ड को भी इसकी एक कापी भेंट की गई। इसे देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए।

यह न समझिएगा कि डेलीमेल या इबिनंग-न्यूज़ के प्रदर्शिनी वाले संस्करणों में केवल प्रदर्शिनी के अन्दर ही की ख़बरें रहती हैं। नहीं, उनमें सारे संसार के सब प्रकार के समाचार, सम्पादकीय नोट तथा मुख्य लेख भी रहते हैं। सरस्वती के पाठक यह जानने के लिए अवश्य ही उत्कण्ठित होंगे कि इतनी फुर्ती से पत्र छापने का काम किस तरह किया जाता है। अतएव हम उनका कौतूहल निवारण करने के लिए उसका भी थोड़ा सा हाल लिखते हैं।

सम्पादक, संवाददाता, कम्पाज़ीटर, छापनेवाले, टाइप ढालनेवाले और पत्र प्रकाशित करनेवाले (अर्थात् प्रबन्धविभाग के कर्मचारी) हर वक्त अपने अपने काम में निमग्न रहते हैं। संवाददाताओं के कमरों में टेलीफ़ोन लगे हुए हैं। मिनट मिनट पर तमाम दुनिया की ख़बरें उनके द्वारा आती रहती हैं। संवाददाता उन्हें झपाटे से लिखते जाते हैं। इधर दूसरा आदमी लिखे हुए परचों को सम्पादकों के पास पहुँचाता रहता है। सम्पादक लोग परचों को तरतीब देकर और उन पर टीका टिप्पणी लिख कर फ़ौरन 'कापी' तैयार करते हैं और चपरासी के द्वारा प्रेस के ओवरसियर के पास तुरन्त भेज देते हैं।

ओवरसियर इस कापी के फ़ौरन कई हिस्से कर डालता है और हर एक हिस्सा जुदे जुदे कम्पाज़ीटरों के पास भेज देता है। कापी का हिस्सा पातेही कम्पाज़ीटर लोग कम्पोज़िंग् करने बैठ जाते हैं और बात की बात में अपना काम समाप्त कर डालते हैं। कम्पोज़ करने का काम इतनी तेज़ी से होता है कि देख कर लोग चक्कर में आ जाते हैं। यह काम इँग-लैंड में मशीन के द्वारा किया जाता है। मशीन कितनी जल्दी कम्पोज़ करती है, यह बात आप केवल इससे जान सकते हैं कि जितनी देर में हाथ से काम करनेवाले कम्पाज़ीटर एक शब्द कम्पोज़ करते हैं उतनी देर में मशीन के द्वारा एक लाइन कम्पोज़ होजाती है।

ऊपर लिखा सब काम कुछ ही मिनटों में समाप्त होजाता है। इसके बाद सब हिस्सों को इकट्ठा करके उनका प्रूफ़ लिया जाता है और प्रूफ़-संशोधकों के पास तुरन्त भेज दिया जाता है। संशोधक लोग तड़ा तड़ अपना काम समाप्त कर संशोधित प्रूफ़ फ़ौरन लौटा देते हैं। उसी के अनुसार टाइप का संशोधन करके सब मेटर कालमवार प्लेट पर जमा दिया जाता है। एक बार फिर प्रूफ़ लिया जाता है और आवश्यक संशोधन किये जाते हैं। जो बातें कुछ मिनट पहले टेलीफ़ोन में बोली गई थीं वही इस समय अनेक मंज़िलों को तै करके छपने के लिए तैयार होजाती हैं।

जिन यन्त्रों में विलायती अख़बार छपते हैं उनके प्लेट चिपटे नहीं किन्तु ढोलन के आकार के होते हैं। एक एक यन्त्र में ऐसे कई कई ढोलन होते हैं जिन में पौने दो सौ मन वज़न तक के टाइप चढ़ और छप सकते हैं। डेलीमेल के प्रदर्शिनी वाले प्रेस में आठ ढोलन हैं। इनमें स्याही देने, काग़ज़ लगाने और छापने का काम ऐसी तेज़ी और सफ़ाई से होता है कि हम उसे लिख कर नहीं बता सकते। यन्त्र के दोनों ओर चार रोलर लगे रहते हैं। इनमें इतना काग़ज़ लिपटा रहता है कि यदि वह फैलाकर रक्खा जाय तो पाँच मील जगह रोक ले। यही काग़ज़ प्लेटों पर सरक सरक कर आता रहता है और एक ही साथ दोनों तरफ़ छपता जाता है। काग़ज़ काटने और मोड़ कर बारह पेजी अख़बार बनाने का काम भी छपने के साथ ही साथ इसी यन्त्र के द्वारा होता रहता है।

ज्योंही प्रेस के फ़ोरमेन ने सब सामान तैयार देखा त्योंही उसने घंटी बजाई और बिजली का बटन खींचा। बस, फिर क्या है, यन्त्र गगनभेदी नाद के साथ अपना काम करने लगा। अर्थात् बात की बात में वह काग़ज़ खींचने, उसे ढोलनों पर लपेटने, दोनों ओर छापने, काटने, मोड़ने और एक एक दस्ता कापियों के बंडल बाँध बाँध कर धड़ाधड़ बाहर फेंकने लगा। इस यन्त्र से एक सेकंड में दो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५५ वैपेजी अख़बार या क़रीब १४ के बारह पेजी अख़बार बिलकुल तैयार होकर निकलते हैं। यन्त्र के निकट खड़े हुए नौकर बंडलों को उठा उठाकर लड़कों को देते जाते हैं जो उन्हें बाज़ार में ले जाकर बात की बात में हज़ारों कापियाँ बेंच आते हैं। आदि से अन्त तक के ऊपर लिखे सब काम कुछही मिनटों में समाप्त हो जाते हैं।

फुटकर बातें।

Palace of Music. अर्थात् संगीतशाला एक बड़ा कमरा था जिसमें विलायती बाजे रक्खे थे। यहाँ संध्या को गाना होता था। इसमें कम से कम हज़ार श्रोताओं के बैठने को स्थान था। Irish Village अर्थात् आयरलेंड के गाँव का नमूना भी देखने योग्य था। इसमें आयरलेंड के मर्द-औरत जगह जगह झोंपड़ियों में कपड़े धोते, गाते और नाचते दिखाई पड़ते थे। एक जगह "भूतख़ाना" भी था जिसमें जाने से लोगों को भूत ख़ूब ही हिलाता था। यह एक कल थी जो ऐसी युक्ति से लगाई गई थी कि भीतर जाने वालों को हिला डालती थी। आगे चलकर एक कल थी जिस पर चढ़ने से आदमी आपही आप नाचने लगता था। एक छोटी सी गढ़ी पर एक पुराना पत्थर लगा था जिसे स्त्रियाँ बहुधा चूमा करतीं थीं; क्योंकि वह शुभदायक समझा जाता था। इन सब स्थानों के देखने के लिए तीन आने से लेकर बारह आने तक का टिकट लगता था।

हम लिख चुके हैं कि प्रदर्शिनी में सब बातों का आराम था। बाहर जाने की आवश्यकता न थी। अस्पताल, भोजन-गृह, चाघर, शराबख़ाने, डाकख़ाने, तार-घर, बैंकघर, छापाख़ाना, मोटर, ट्रेन इत्यादि सब मौजूद थे। बस, पैसे से सब कुछ प्राप्त हो सकता था। सुनते हैं कि इस वर्ष (१९०९) में फिर वहीं पर और तरह की दूसरी प्रदर्शिनी होगी।

प्यारेलाल मिश्र।
(लन्दन)

गवामयन।

अर्थात् वैदिक संवत्। *

(समालोचना)

वेद कितने पुराने हैं? इस प्रश्न का उत्तर बहुत लोगों ने दिया है, और सबका जवाब अलग है। हिन्दुओं का विश्वास है कि वेद अनादि हैं, सृष्टि के समय प्रकट हो जाते हैं और प्रलय होने पर लुप्त। यदि यह विश्वास ठीक है तो वेद में कही हुई बहुत बातों को भविष्यद्वाणी मानना होगा। सतजुगी लोग तो यह बात भी मानते हैं मगर आज कल के कलजुगी पंडित, जो धर्म को अपने हृदय में और ज्ञान को सिर में रखते हैं, ऐसा कहते हैं कि वेद में कहा हुआ धर्म तो अनादि है, मगर वह मंत्र—वह छन्दोबद्ध वाक्य जिनकी सहायता से वह धर्म मनुष्य जाति पर प्रकट हुआ, अनादि नहीं हो सकते, क्योंकि वेद में बहुत सी बातें—कुछ ऐतिहासिक, कुछ वैज्ञानिक, कुछ सामाजिक—ऐसी हैं जिनकी सहायता से तत्संबन्धी वाक्यों और घटनाओं का समय निश्चित तरह से मालूम हो सकता है। अन्य जाति के लोग इतना भी नहीं मानते। वे कहते हैं कि ऋग्वेद केवल गड़रियों और किसानों के रागों का संग्रह है, और बाक़ी वेद उसी की शाखाएं हैं। अस्तु।

जो लोग वेदों को साहित्य ग्रन्थ की तरह पढ़ते हैं उनका मत है कि चारों वेदों में ऋग्वेद प्राचीन है और अथर्ववेद सबसे पीछे का है। ऋग्वेद में भी कुछ मंडल ऐसे हैं जिनके मंत्र अन्य मंडलों के मंत्रों की अपेक्षा प्राचीन हैं। इसलिए यदि ऋग्वेद के प्राचीन मंत्रों का समय मालूम हो जावे, तो यह कह सकते हैं कि आर्य जाति की सभ्यता इतनी प्राचीन है। इस बात की खोज में बहुत पंडितों ने अपनी अक्ल लड़ाई है, और अपने अपने मत को पुष्टि के

* लेखक श्रीयुत र.....शामशास्त्री, लैब्रेरियन मैसूर गवर्नमेंण्ट ओरियण्टल लैब्रेरी। मूल्य १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए बहुत ही चतुर और गवेषणापूर्ण युक्तियों का प्रयोग किया है। हमारी राय में आजतक कोई पंडित भी इस कार्य में संपूर्ण रूप से कृतार्थ नहीं हुआ है, या यों कहो कि इतना ज़ोर लगाने पर भी ऋग्वेद के सबसे प्राचीन मंत्र के बनाए जाने का समय नहीं मालूम हुआ है। मगर यह न समझना चाहिए कि इस विषय में जो गवेषणा की जाय वह सब निर्मूल और व्यर्थ है। यह बात हरगिज़ नहीं है, बल्कि ऐसी गवेषणा से बहुत कुछ लाभ होता है, अर्थात् बहुत सी बातें ऐसी मालूम हो जाती हैं जो और किसी उपाय से मालूम नहीं हो सकतीं। जिस तरह प्राचीन काल में अमृत के लालच से समुद्र मथा गया था और अमृत के साथ आठ उपयोगी चीज़ें मुफ़्त में मिल गई थीं, इसी तरह आर्यसभ्यता की प्राचीनता का निर्णय करने के लालच से जो आज कल बारंबार संस्कृतसाहित्य मथा जाता है, उसकी बदौलत प्राचीन भारतवर्ष का बहुत कुछ हाल मालूम हो गया है। मगर खेद की बात है कि जिस तरह समुद्र से निकल कर अमृत को दुर्दशा हुई, उसी तरह वेद के अन्तर्गत प्रमाणों की इन पंडितों के हाथ पड़ कर दुर्गति होती है। यह लोग पहले अपना मत स्थिर कर लेते हैं, फिर अपने मनमाने सिद्धान्त को दृढ़ करने की नियत से वेद में प्रमाण टटोलते हैं। जो प्रमाण अपने काम के होते हैं वह ग्रहण कर लेते हैं, जो अपने सिद्धान्त के प्रतिकूल हैं वह मानो वेद में हैं ही नहीं। वेद की भाषा ऐसी अपरिचित है और उसका पदक्रम ऐसा विलक्षण है कि, हर एक मंत्र के जो चाहो अर्थ लगालो। चाहो उन्नीसवीं शताब्दी के दो एक वैदिक विद्वानों के बतलाए हुए अर्थ लगाकर ऋग्वेद को पदार्थ-विज्ञान पर एक निबंध समझ लो, चाहो प्राचीन भाष्यकारों को प्रमाण मान कर अपने काम का अर्थ सिद्ध कर लो। जब ऐसी कामधेनु पंडितों के हाथ लगजावे तो साधारण मनुष्यों की आँखों में धूल पड़नी आश्चर्य की बात नहीं है। परन्तु गोधूलि के उपरान्त दूध मिलजावे तो कुछ हानि भी नहीं। यही विचार कर हम आज इस पियारी कामधेनु के [illegible] आभीर पं० र... शामशास्त्री का परिचय सहृदयों के पाठकों से कराते हैं। इनकी गौओं की चाल—गवामयन—को देखिये! यह अपने घर को आ रही हैं, थोड़ी धूल अवश्य आपकी आँखों में पड़ेगी परन्तु इनका दूध बहुत मीठा है। चलिये, आभीर जी का स्वागत करें जो उनके अनुग्रह से कुछ दूध हम को भी मिलजावे!

शामशास्त्री जी का मत वेदों की प्राचीनता के विषय में यह है कि—अच्छा यह ज़रा ठहर कर बतलावेंगे। पहले यह बतलाना ज़रूरी है कि उन्होंने अपने मत के समर्थन में जो प्रमाण दिये हैं वह सात अध्यायों में विभक्त किये गए हैं। पहले अध्याय में आपने 'संवत्सर' यानी 'वर्ष' का मतलब समझाया है कि वैदिक ऋषि 'वर्ष' का अर्थ क्या समझते थे। आपने ऋग्वेद, यजुर्वेद और शतपथ ब्राह्मण से बहुत तेरे प्रमाण उद्धृत करके यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि वैदिक ऋषि ३६० दिन के सावन वर्ष का प्रयोग करते थे और हर चौथे वर्ष २१ दिन बढ़ाकर सावन और सौरवर्ष का अन्तर दूर करते थे जिससे मालूम होता है कि वैदिक ऋषि सौर वर्ष को ३६५¼ दिन का होना मानते थे। आप कहते हैं कि वैदिक ऋषि वर्ष के ३६० दिनों के दस विभाग करते थे, और हर एक विभाग का नाम किसी पशु के नाम पर रखते थे। और प्रत्येक वर्ष की दिन संख्या का हिसाब इस तरह रखते थे कि हर वर्ष के अंत में दस श्लोक बृहती छन्द के बना डालते थे जिनमें से हर एक श्लोक ३६ अक्षर का होता था। इस तरह वेद मंत्रों की संख्या १० बृहती श्लोकों के हिसाब से प्रति वर्ष बढ़ती गई। जिससे दो काम सिद्ध हुए—देवताओं की स्तुति और दिनों की गिनती! इस तरह ऋग्वेद के १२००० बृहती श्लोक बराबर हुए ४३२००० अक्षरों के, अर्थात् ४३२०० दिनों के, जो बराबर होते हैं १२०० सावन वर्ष के। इतना सिद्ध करके शामशास्त्री जी कहते हैं कि शतपथ ब्राह्मण के १०।४।२।२२–२४ से ज्ञात होता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वेद की रचना १२०० वर्ष में हुई, यजुर्वेद की ८०० वर्ष में, और सामवेद की ४०० वर्ष में। जिससे कुल वैदिक काल की लम्बाई २४०० वर्ष हुई! मगर आप के पास कुछ और भी प्रमाण हैं जिनसे सिद्ध होता है कि वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना का काल मिलाकर भी २४०० वर्ष से कुछ कम होता है. जिस से आप यह अनुमान करते हैं कि यजुर्वेद और सामवेद के मंत्रों से दिन गिनने का काम नहीं लिया जाता था, क्योंकि यजुर्वेद तो मानो ऋग्वेद पर एक प्रकार की टीका मात्र है, और सामवेद केवल ताल-सुर पर चलता हुआ ऋग्वेद का रूपान्तर मात्र है। हाँ, यह कह सकते हैं कि ऋग्वेद के मंत्रों से १२०० वर्ष तक का हिसाब रखा जा सकता है। सारांश यह कि न ऋषियों को दिनों का हिसाब रखने की ज़रूरत होती न वेदमंत्र बनाए जाते!

दूसरे अध्याय में शाम शास्त्री जी ने 'गवामयन' नाम वेदोक्त सत्तों की मीमांसा की है। यहाँ आपने बड़ी दूर दूर की बातें कही हैं। आपकी युक्तियाँ समझने वाले को चाहिये कि आश्वलायन-श्रौत सूत्र, सायणाचार्य का यजुर्वेद भाष्य, बौधायन-श्रौतसूत्र, आपस्तम्ब-श्रौतसूत्र, कृष्ण यजुर्वेद, और ऐतरेय ब्राह्मण अपने पास रखले। एक बार गोपथ ब्राह्मण का भी काम पड़ेगा, वह भी पास हो तो अच्छा है। इस सब सामग्री को पास रखकर, और केवल वही वाक्य पढ़ने से जिनका प्रमाण शामशास्त्री जी ने दिया है, सिद्ध होता है कि गवामयन नामक ३६० दिन के संवत्सर से यह अभिप्राय नहीं है कि यह संवत्सर साधारण सावन वर्ष के ३६० दिन के बराबर होता था। अच्छा तो वह किस वस्तु का नाम है? यह आगे चलकर बतलावेंगे।

तीसरे अध्याय में भी बड़ी दूर की बातें कही गई हैं। यहाँ लेखक महाशय ने अच्छे अच्छे प्रमाण देकर 'गो' शब्द का अर्थ समझाया है। आप कहते हैं कि 'गो' शब्द का अर्थ वह ३६६ वाँ दिन है जो अँग्रेज़ी पंचांग में चौथे वर्ष फ़र्वरी के आख़ीर में जोड़ दिया जाता है। वेद और अन्य धर्मग्रन्थों में इस अधिदिन के भिन्न भिन्न नाम दिये गये हैं। कहीं इसको 'चार पैर का बैल', कहीं 'तीन बाप और तीन मा का अपाहज बच्चा' और कहीं कुछ और कहा है। ग़रज़ यह कि ऋग्वेद ने प्रायः इस विलक्षण बच्चे ही की महिमा गाई है। शामशास्त्री जी ने यह बात समझाने के लिये कई दरजन मंत्र ऋग् और अथर्व वेद से उद्धृत किये हैं, जिनसे वे सिद्ध करते हैं कि वैदिक काल में ऋषियों का संवत् साधारण वर्षों के हिसाब से नहीं गिना जाता था, बल्कि इन 'गो' रूपी 'अधिदिनों' अथवा 'अतिरात्रों' के हिसाब से। अर्थात् एक 'गो' से चार वर्ष ग्रहण किये जाते थे, दो से आठ, तीन से बारह, इत्यादि।

चौथे अध्याय में दीर्घतमस ऋषि की कथा और गणित नैपुण्य का कुछ परिचय दिया गया है। लगे हाथ 'कृत', 'त्रेता', 'द्वापर', और 'कलि' शब्दों का अर्थ भी अच्छी तरह समझाया गया है। यह अध्याय बहुत उपयोगी है और इसको पढ़ कर कई एक नई बातें मालूम होती हैं।

पांचवें, छठे और सातवें अध्याय में अनेक प्रमाण देकर इन्हीं ऊपर लिखे हुए सिद्धान्तों की पुष्टि की गई है। इसमें सन्देह नहीं कि पं० शामशास्त्री ने इन प्रमाणों को खोजकर एकत्र करने में बहुत परिश्रम किया है जो सर्वथा प्रशंसनीय है। हमने इस ग्रन्थ को अच्छी तरह देखा, और उसमें अनेक उपयोगी बातें पाईं, आशा है कि जो सज्जन इस ग्रन्थ को देखेंगे, थोड़ा बहुत लाभ ज़रूर उठायेंगे। मगर खेद के साथ कहना पड़ता है कि वह लाभ वैसा न होगा जैसा पण्डित शामशास्त्री ने पहुँचाना विचारा है। पण्डित जी की कुछ युक्तियाँ बहुत अच्छी हैं, मगर साथ ही बहुत सी बातें बेतुकी भी हैं, जिनको पढ़कर कभी हँसी आती है और कभी खेद होता है। शतपथ ब्राह्मण और ऋग्वेद के अनेक वाक्य पं० शामशास्त्री ने ऐसे उद्धृत किये हैं, जिन का आशय बिलकुल स्पष्ट है, मगर आपने इन्हीं वाक्यों के अर्थों को बुरी तरह से तोड़ मरोड़ कर अपनी गैया की एक ही टांग सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे लेख लिखकर कोई व्यक्ति पण्डित-समाज में आदर पाने की आशा रक्खे तो उसकी भूल है। यदि शामशास्त्री जी अपने मत को सच्चा सिद्ध करने के लिये केवल बीस खरे खरे प्रमाण दे देते, और जिन वाक्यों का प्रमाण देते उनके अर्थ ठीक ठीक सर्व सम्मत रीति से करते, तो साधारण लोग उनकी बात को समझ भी लेते और शायद मान भी लेते। एक दूसरी भारी न्यूनता इस पुस्तक में यह है कि लेखक महाशय ने अपने समकालीन अन्य लेखकों की सम्मति से लाभ नहीं उठाया। इसी विषय में पं० बा० ग० तिलक का Arctic Home in the Vedas, पं० वे० गो० अय्यर का Chronology of ancient India, बार्हस्पत्य का "ज्योतिष वेदांग", अध्यापक याकोबी के फुटकर लेख अगर पं० शाम शास्त्री की नज़र से गुज़र जाते तो आप अनेक निरर्थक बातें न कहते। ख़ैर यह न्यूनता और दोष रहने पर भी आपकी पुस्तक पढ़ने और विचारने योग्य है। क्योंकि उसमें बहुतेरी गवेषणा और महत्त्व-पूर्ण बातें हैं, जिनका जानना भारतवासियों के लिये ज़रूरी है।

पाठकगण, आप कहेंगे कि पं० शामशास्त्री जी ने ऐसी कौनसी नई बात सिद्ध की है, जिसके लिये इतना ग़ुल? सुनिये। इनका मत है कि जिस संवत् को हिन्दू लोग कलि संवत् कहते हैं और जिसका अब ५००८ वाँ वर्ष बीत रहा है, वह वास्तव में वैदिक संवत् है, अर्थात् ऋग्वेद को बने हुए कुल पांच हज़ार वर्ष के लग भग हुए! यह पं० शाम शास्त्री का मत है, इसको मानने न मानने का आप को अधिकार है। जो लोग वेद को अनादि मानते हैं उनको पं० शामशास्त्री की युक्तियाँ शास्त्र-बाह्य और नास्तिकी मालूम होंगी। उन लोगों के लिये न यह ग्रंथ है और न यह समालोचना। मगर हाँ, जो लोग इसी विषय पर छपे हुए लेख और ग्रन्थ पढ़ चुके हैं उनको चाहिये कि ज़रा इस किताब की भी सैर करें, और देखें कि वेदरूपी कामधेनु के दूध से चार नहीं पांच नहीं बल्कि बीसियों तरह की मिठाइयाँ किस तरह बन सकती हैं। ऋग्वेद चाहे पांच हज़ार का पुराना हो चाहे दस हज़ार वर्ष का, और चाहे देहाती गाड़ी के पहियों या काठ की नौका की तरह अनादि हो, इसमें कोई संशय नहीं कि उसमें और तत्सम्बन्धी ब्राह्मण और सूत्र ग्रन्थों में बहुतेरी बातें ऐसी भरी पड़ी हैं जिनका पता लगना साधारण लोगों के लिये असम्भव है। आनन्द की बात है कि पं० शामशास्त्री की तरह कभी कभी ऐसे लेखक पैदा हो जाते हैं, जो ऐसी गूढ़ बातों का पता लगाते हैं। पाठकों को यहाँ पर इस बात की याद दिलाना उचित है कि 'गवामयन' के कर्त्ता पण्डित शाम शास्त्री जी वही महाशय हैं जिन्होंने देवनागरी वर्ण-माला की उत्पत्ति और विकाश पर एक बहुतही गवेषणापूर्ण लेख लिखा है। उनके इस लेख का सारांश नवम्बर ०८ की सरस्वती में प्रकाशित हो चुका है।

"चार्वाक भट्ट"

२६—कीचक की नीचता।

(१)

करने को अज्ञात-वास अपना पूरा जब
नृप विराट के यहाँ रहे छिप कर पाण्डव सब।
एक समय तब देख द्रौपदी की शोभा अति,
उस पर मोहित हुआ नीच कीचक सेनापति।
यों हुई प्रकट उसकी दशा
दृग्गोचर कर रूप वर—
होता अधीर ग्रीष्मार्त गज
पुष्करणी ज्यों देख कर॥

(२)

यद्यपि दासी बनी वस्त्र पहने साधारण,
मलिन-वेश द्रौपदी किये रहती थी धारण।
वह्नानल सम किन्तु छिपी रह सकी न शोभा,
दर्शक जन का चित्त और भी उस पर लोभा।
अति लिपटी भी शैवाल में
कमल-कली है सोहती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घन-सघन घटा में भी घिरी
चन्द्रकला मन मोहती ॥

(३)

"हे अनुपम-सौन्दर्य-राशि, कृशतनु, अति प्यारी,
बलिहारी यह रुचिर रूप की छटा तुम्हारी।
हो दासी के योग्य अहो! क्या तुम सुकुमारी?
सुधि बुधि जाती रही देख कर जिसे हमारी।
इन दृग-बाणों से विद्ध यह
मन मेरा जब से हुआ।
है खान, पान, शयनादि सब
विष समान तब से हुआ ॥

(४)

"अब हे रमणी-रत्न! दया कर नेक निहारो;
अपने पर छल-रहित हमारी प्रीति बिचारो।
हमें सदा निज दास जान हम पर अनुरागो;
रानी बन कर रहो वेश दासी का त्यागो।
है होती यद्यपि खान में
किन्तु न रहती है वहाँ।
मणि, मञ्जु मुकुट ही में उचित
पाती है शोभा महा"।

(५)

उसके ऐसे वचन श्रवण कर राजसदन में,
जलने कृष्णा लगी रोष से अपने मन में।
किन्तु समय को देख किसी विध धीरज धरके,
कहने उससे लगी शान्ति से शिक्षा करके।
है वेग यदपि अनिवार्य अति
होता मनोविकार में।
समयानुसार ही कार्य्य बुध
करते हैं संसार में ॥

(६)

"अहो सूत-सुत शूर! वचन ये विषधारा से
हैं क्या कहने योग्य तुम्हें मुझ पर-दारा से?
जो तुम से ही लोग कहीं अनरीति करेंगे,
तो फिर कौन मनुष्य धर्म्म का ध्यान धरेंगे?
नर होकर इन्द्रिय-गण-विवश
करते नाना पाप हैं।
निज अहित-हेतु अविवेकि जन
होते अपने आप हैं ॥

(७)

"राजोचित सुख-भोग तुम्हीं को हों सुखदाता;
कर्म्मों के अनुसार जीव जग में फल पाता।
रानी ही यदि किया चाहता मुझे विधाता,
तो दासी-कुल-मध्य प्रथम ही क्यों प्रकटाता।
है धर्म्म-सहित रहना भला
सेवक बन कर भी सदा।
यदि मिले पाप से राज्य भी
त्यागनीय है सर्वदा ॥

(८)

"इस कारण हे वीर! न तुम यों मुझे निहारो;
पाप कर्म्म की ओर न अपना हाथ पसारो।
निज माँ-बहिन समान सदा पर-दार बिचारो;
होवे तब कल्याण, धर्म्म-पथ पर पद धारो।
इस अपने अनुचित कर्म्म की
माँगो ईश्वर से क्षमा।
है वह कृपालु कलि-कलुष-हर
करुणामय परमातमा" ॥

(९)

कृष्णा ने इस भांति उसे बहुविध समझाया;
किन्तु एक भी वचन न उसके हृदय समाया।
मदमत्तों को यथायोग्य उपदेश सुनाना
है ज्यों ऊसर-भूमि-मध्य पानी बरसाना।
हैं कर सकते जो जन नहीं
मनोदमन अपना कभी।
उनके समक्ष शिक्षा-कथन
निष्फल होता है सभी ॥

(१०)

"रहने दो यह ज्ञान, ध्यान, ग्रन्थों की बातें;
आती बारम्बार न यौवन की दिन-रातें।
करिये जग में वही काम जो हो मनमाना;
क्या होगा मरणोपरान्त किसने है जाना?
जो भावी की आशा किये
वर्त्तमान सुख छोड़ते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे मानों अपने आप ही
निज हित से मुँह मोड़ते" ॥

(११)

कह कर ऐसे वचन वेग से बिना बिचारे,
हो आतुर अत्यन्त काम-वश दशा-बिसारे।
सहसा उसने पकड़ लिया कृष्णा के कर को,
मानो कर से मत्त नाग ने पङ्कज-वर को ॥

यह लख **कीचक की नीचता**
कृष्णा अति क्षोभित हुई।
कर चख चञ्चलता से चकित
शम्पा सम शोभित हुई ॥

(१२)

"अरे नराधम नीच! लाज कुछ तुझे न आती;
निश्चय तेरी मृत्यु निकट आई दिखलाती"।
कह कर यों, निज हाथ छुड़ाने को उस खल से,
तत्क्षण उसने दिया एक झटका अति बल से ॥
तब सहसा मुँह के बल वहाँ
मदोन्मत्त वह गिर पड़ा।
ज्यों प्रबल वायु के वेग से
गिर पड़ता है तरु बड़ा ॥

(१३)

तब विराट की सभा मध्य निज विनय सुनाने,
उस पापी को कुटिल कर्म्म का दण्ड दिलाने।
कच, कुच और नितम्ब-भार से खेदित होती,
गई किसी विध शीघ्र द्रौपदी रोती रोती।
उस अबला द्वारा भूमि पर
गिरने से क्रोधित महा।
झट उसे पकड़ने के लिए
दौड़ा कीचक भी वहाँ ॥

(१४)

कृष्णा पर कर कोप शीघ्र झपटा वह ऐसे—
चन्द्रकला की ओर राहु झपटा हो जैसे।
सभा मध्य ही लात उसे उस खल ने मारी
छिन्न लता सम गिरी भूमि पर वह सुकुमारी।
यह घटना पाण्डव देख कर
व्याकुल हुए नितान्त हो।
पर-प्रण-पालन हित वीर वे
रहे किसी विध शान्त ही ॥

(१५)

सम्बोधन कर सभा-मध्य फिर मत्स्यराज को,
बोली कृष्णा वचन सुनाकर सब समाज को।
सरस कण्ठ से त्वेष-पूर्ण कहती वर वाणी,
अद्भुत छवि को प्राप्त हुई तब वह कल्याणी।
थी ध्वनि यद्यपि आवेगमय
थी परन्तु कर्कश नहीं।
मानों उसने बातें सभी
वीणा के द्वारा कहीं ॥

(१६)

"पाती हैं दुख जहाँ राजगृह में ही नारी,
करते अत्याचार अधम जन उन पर भारी।
सब प्रकार विपरीत जहाँ की रीति निहारी,
अधिकारी ही स्वयं जहाँ हैं पापाचारी।
है लज्जा रहनी अति कठिन
भले मानसों की जहाँ।
हे मत्स्यराज! किस भाँति तुम
बने प्रजापालक वहाँ?॥

(१७)

"छोड़ धर्म्म की रीति, तोड़ मर्यादा सारी,
भरी सभा में लात मुझे कीचक ने मारी।
उसका यह अन्याय देख कर भी दुखदायी,
न्यायासन पर रहे मौन जो बन कर न्यायी।
हे वयोवृद्ध नरनाथ! क्या
यही तुम्हारा धर्म्म है?
क्या यही तुम्हारी कीर्त्तिमय
राजनीति का मर्म्म है?॥

(१८)

"प्राणों से भी अधिक पाण्डवों की जो प्यारी,
दासा हूँ मैं उसा द्रौपदी की प्रियकारी।
हाय! आज दुर्दैव-विवश फिरती हूँ मारी,
वचन-बद्ध हो रहे वीर-वर वे व्रतधारी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता प्रहार उन पर न यों
हतविधि जो कर्कश कशा।
तो होती मेरी क्यों यहाँ
इस प्रकार यह दुर्दशा॥

(१९)

"अहो दयामय धर्म्मराज! तुम आज कहाँ हो?
पाण्डु-वंश के कल्पवृक्ष महराज कहाँ हो?
बिना तुम्हारे आज यहाँ अनुचरी तुम्हारी
हो कर यों असहाय हाय! पाती दुख भारी।
जो सर्व गुणों के शरण तुम
विद्यमान होते यहाँ।
तो इस दासी पर देव! क्यों
पड़ती यह विपदा महा?

(२०)

"तुम से प्रभु की कृपा-पात्र होकर भी दासी,
मैं अनाथिनी सदृश यहाँ जाती हूँ त्रासी।
अब अजातरिपु! बात याद मुझको यह आती,
जाती छाती फटी, दुःख दूना मैं पाती।
है करदी जिसने लोप सी
इन्द्रायुध की भी कथा।
हा! रहते उस गाण्डीव के
हो मुझको ऐसी व्यथा!

(२१)

"जिस प्रकार है यहाँ मुझे कीचक ने घेरा,
होता जो वृत्तान्त विदित तुमको यह मेरा।
तो क्या दुर्जन, दुष्ट, दुराचारी, यह कामी,
रहता जीवित कभी तुम्हारे कर से स्वामी!
तुम इस अधर्म्म-अन्याय को
देख नहीं सकते कभी।
हे वीर! तुम्हारी नीति की
उपमा देते हैं सभी॥

(२२)

"हे अभाग्य ने दूर कर दिया तुम से जिसको,
मुझे छोड़ कर और विपद होती यों किसको?
है यह सब दुर्दैव-योग, इसका क्या कहना,
है कुछ अपने लिये न मेरा यहाँ उलहना।
पर जो मेरे सम्बन्ध से
होता तव अपमान है।
हे कृतलक्षण* ! केवल यही
चिन्ता मुझे महान है"॥

(२३)

सुन कर वचन विचित्र याज्ञसेनी के ऐसे,
वैसी ही रह गई सभा चित्रित हो जैसे।
व्यग्र भाव से कथित गिरा उसकी विशुद्ध वर,
एक साथ ही गूँज गई उस समय वहाँ पर।
तब ज्यों त्यों कर के शीघ्र ही
अपने मन को रोक के।
यों धर्म्मराज कहने लगे
उसकी ओर विलोक के—॥

(२४)

"हे सैरिन्ध्री! व्यग्र न होकर धीरज धारो;
नृप विराट प्रति वचन न यों निष्ठुर उच्चारो।
न्याय मिलेगा तुम्हें शीघ्र महलों में जाओ;
वृत्त विदित है जिन्हें न नृप को दोष लगाओ।
है शक्ति पाण्डवों की किसे
ज्ञात नहीं संसार में।
चलता परन्तु किसका कहो
वश विधि के व्यापार में"?

(२५)

धर्म्मराज का मर्म्म समझ, हो नत-मुखवाली,
अन्तःपुर में चली गई तत्क्षण पाञ्चाली।
यथा-समय फिर दूर हुआ उसका दुख सारा,
भीमसेन ने महा नीच कीचक को मारा।
हो चाहे कैसा ही प्रबल
यह अति निश्चित नीति है—
है मारा जाता शीघ्र ही
करता जो अनरीति है॥

मैथिलीशरण गुप्त।

---

* कृतलक्षण=गुणों से प्रसिद्ध।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़ेबुन्निसा बेगम।

नवम्बर ०८ की सरस्वती में ज़ेबुन्निसा बेगम का सचित्र जीवन-चरित प्रकाशित हुआ है। उसके लेखक पं० उदयनारायण जी वाजपेयी ने उन लोगों को फटकारा है जो उसके आचरण और चरित्र पर सन्देह करते हैं। हो सकता है कि उसका आचरण एकदम शुद्ध रहा हो; परन्तु जिसका जीवन ऐश-आराम में बीता है, और जो आजन्म अविवाहिता रही है, उसके बारे में यदि किसी को गप्प के ही आधार पर क्यों न हो—कुछ सन्देह करने की प्रवृत्ति हुई हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। कलकत्ते के "वीर भारत में" जो "राजसिंह" उपन्यास छप रहा है उसमें भी उसका मुबारक नामी एक दश हज़ारी से प्रेम होने की बात कही गई है। ख़ैर, वह तन मन से शुद्ध रही हो तो भी इतना नहीं कहा जा सकता कि उसका हृदय प्रेम से हीन रहा होगा। वह विद्वान् थी, कवि थी और रसिका थी; इसलिए उसके हृदय में प्रेम का अभाव कभी माना नहीं जा सकता। भावनगर राज्य के शिक्षा-विभाग के श्रीयुक्त हरगोविन्द प्रेमशङ्कर जी ने "शिवाजी अने ज़ेबुन्निसा" नामकी एक कविता की पुस्तक लिखी है। उससे मालूम पड़ता है कि उसकी बुद्धि की ख़ूबियों में एक नवीनता यह थी कि जिस योग्यता के विवाह को संसार पसन्द करता है उसे वह पशु-वृत्ति का विवाह कहा करती थी। वह उसी विवाह को मानसिक विवाह कहती और पसन्द करती थी जो अन्तःकरण की स्फूर्ति से और हृदय के प्रेम की योग्यता का हो। यही कारण है कि वह जन्म भर अविवाहिता रही थी। कहा जाता है कि जिस समय छत्रपति शिवाजी महाराज औरङ्गज़ेब से मिलने के लिए दिल्ली गये थे उस समय के दबदबेदार दरबार में अपना रोब दिखाने के लिए बादशाह ने दरबार के पीछे चिक डालकर बेगमों और शाही महल की औरतों के बैठने की व्यवस्था की थी। उन स्त्री-दर्शकों में ज़ेबुन्निसा बेगम मुख्य थी। ज्यों ही छत्रपति शिवाजी महाराज दरबार में दाख़िल हुए त्यों ही उन पर शाहज़ादी की नज़र पड़ी और नज़र के पड़ते ही उसके हृदय में प्रेम और सहानुभूति का झरना झरने लगा; उसके हृदय में आनन्द और शान्ति का प्रसार होने लगा; उसके दिल में शिवाजी की वीरता, बहादुरी, बुद्धिबल और योग्यता का प्रतिबिम्ब पड़ने लगा। उसी समय उसने सङ्कल्प किया कि यदि हो सकेगा तो शिवाजी के साथ विवाह करूँगी, नहीं जन्म भर कुँवारी रहूँगी। यह भी एक विचित्र घटना ही है कि जिसके पिता औरङ्गज़ेब के हृदय में हिन्दू द्वेष की आग धधकती थी उस ज़ेबुन्निसा में एक हिन्दू राजा के प्रति इतना दृढ़ और पवित्र प्रेम था करता था, जिसके कारण उसने आजन्म कुँवारी रहना स्वीकार किया! यदि ज़ेबुन्निसा के आजन्म कुँवारी रहने का यह कारण सत्य हो तो अवश्य ही उसके अनेक सद्गुणों के समान उसका दृढ़ प्रेम भी विचित्र और ऊँचे दर्जे का ही समझना चाहिए। किन्तु शाहज़ादी का प्रेम एक ऐसे वीर पुरुष पर हुआ जिसका जन्म ऐसे प्रेम-निर्वाह के लिए नहीं बल्कि आर्यभूमि के उद्धार के लिए हुआ था। इस अपनी ऊँची अभिलाषाओं को पूर्ण करने के शिवाजी महाराज का ध्यान ऐसे विषयों की ओर जा ही नहीं सकता था।

जगन्नाथप्रसाद शुक्ल

वररुचिका समय।

वररुचि के "प्राकृतप्रकाश" नाम व्याकरण ग्रन्थ में महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और पैशाची इन मुख्य प्राकृत भाषाओं का वर्णन है। इस ग्रन्थ में आधुनिक मराठी भाषा की जननी प्राचीन महाराष्ट्री भाषा को, और प्राकृत भाषाओं से अधिक मान और श्रेष्ठत्व दि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है। इससे सिद्ध होता है कि जिस समय वररुचि ने "प्राकृतप्रकाश" लिखा उस समय भरतखण्ड में महाराष्ट्री भाषा ही अधिक उन्नत और प्रचलित थी। यद्यपि वररुचि सब प्राकृत-वैयाकरणों में प्रथम नहीं कहे जा सकते तथापि उनके प्राचीनत्व में शङ्का नहीं है। संस्कृत-वैयाकरणों में जो मान पाणिनि को दिया जाता है, प्राकृत-वैयाकरणों में वही मान वररुचि को दिया जाता है। प्रायः सभी प्राकृत-वैयाकरणों ने वररुचि ही का अनुकरण किया है और उन्हीं को प्राकृत-शास्त्र का आदि गुरु माना है। शाकल्य, भरत, कोहल और पाणिनि * की गणना आदि-गुरुओं में की जाती है। ये लोग वररुचि से प्राचीन मालूम होते हैं। परन्तु इनके ग्रन्थ उपलब्ध न होने के कारण वररुचि ही के ग्रन्थ को आदि प्राकृत-व्याकरण कहने का रिवाज हो गया है। परन्तु इससे वररुचि के समय का निर्णय नहीं हो सकता—

"रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य"

इस सुप्रसिद्ध श्लोकांश से यह बात सूचित होती है कि वररुचि एतद्देशीय संस्कृत-पण्डितों के मत से ईसवी सन् के पहले प्रथम शतक में विद्यमान थे। विद्वद्वर्य डाक्टर रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर कृत "दक्षिण का प्राचीन इतिहास" नाम के ग्रन्थ में शातवाहन (शालिवाहन) वंशीय राजाओं के समय महाराष्ट्रीय भाषा की उन्नति का जो वर्णन है उससे वररुचि के समय के सम्बन्ध में प्राचीन पण्डितों का अनुमान सच मालूम होता है। सुप्रसिद्ध इतिहास-लेखक डाक्टर हण्टर भी वररुचि को ईसा के १०० वर्ष पहले का बताते हैं *। अध्यापक लासन के मत से ईसवी सन् के पहले शतक के मध्यकाल में, अर्थात् जिस समय शालवाहन हाल ने सप्तशती नामक प्राकृत-काव्य की रचना की थी, वररुचि का आविर्भाव हुआ था। सोमदेवकृत "कथासरित्सागर" में एक आख्यायिका है कि वररुचि की कही हुई कथायें काणभूति से सुन कर प्रतिष्ठानपुर के राजा शालिवाहन के सभा-पण्डित गुणाढ्य ने "बृहत्कथा" नामक ग्रन्थ की रचना की। इससे सिद्ध होता है कि वररुचि शालिवाहन का समकालीन था या उससे कुछ पहले विद्यमान था। डाक्टर भांडारकर ने वररुचि के काल का निर्णय नहीं किया है। पर उनके मत से जिस समय विक्रमादित्य और उसके नवरत्न विद्यमान थे उसी समय वररुचि भी विद्यमान था। † डा० बुल्हर, डा० पिटर्सन और अध्यापक कीलहार्न के मत, तथा लुधियाने के पण्डित ज्वालासहाय ने "एशियाटिक क्वार्टर्ली रिव्यू" (Asiatic Quarterly Review) नामक त्रैमासिक पत्र में विक्रमादित्य पर ५। ६ वर्ष पहले जो निबन्ध लिखा था उसमें निर्दिष्ट किये हुए प्रमाण, यदि विश्वसनीय माने जायँ तो वररुचि के समय के विषय में स्वदेशीय पण्डितों तथा डाक्टर हण्टर का मत सत्य मानना पड़ेगा।

बम्बई के सेंट ज़ेवियर कालेज के अध्यापक प्रो० राजाराम रामकृष्ण भागवत कहते हैं कि जिस समय मगध देशमें नन्द राज्य करता था उसी समय वररुचि ने "प्राकृतप्रकाश" बनाया था। "महाराष्ट्र-

---

* मलयगिरि और केदारभट्ट नामक दो प्राचीन ग्रन्थकार कहते हैं कि पाणिनि ने भी प्राकृत भाषा का व्याकरण बनाया है। यथा:—

"पाणिनिर्भगवान् प्राकृतलक्षणमपि वक्ति संस्कृतानन्तरं।"

(केदारभट्ट)

"प्राकृते हि लिंगं व्यभिचारि यदाह पाणिनिः स्वप्राकृतलक्षणे।"

(मलयगिरि)

यह पाणिनि कौन थे और कब हुए, इसका पता नहीं पता।

* The Prakritas (that is, naturally evolved dialects) found their earliest extant exposition in the Grammar of Vararuchi, about the first century B. C."—W. W. Hunter's Indian Empire, pp. 36.

† The date of this author is uncertain, though there is reason to believe that he was one of the nine gems of the court of Bikramaditya (Early History of Deccan, pp 12, 1895 Ed.).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारस्वत" के लेखक श्रीयुत वि० ल० भावे ने भी अपने निबन्ध में इसी मत को ग्राह्य माना है। वररुचि जितने प्राचीन ठहरेंगे महाराष्ट्री भाषा भी उतनी ही प्राचीन ठहरेगी।

मैं नहीं जानता किस प्रमाण पर इन दोनों विद्वानों ने वररुचि को विक्रमादित्य से प्राचीन माना है। मैं समझता हूँ कि सोमदेवकृत "कथासरित्सागर" की एक आख्याही के प्रमाण पर वररुचि, नन्द के समकालीन, अर्थात् शालिवाहन शक के सवा चार सौ वर्ष पहले के, माने गये हैं। सोमदेव के ग्रन्थ में लिखा है कि पाणिनि के सूत्रों के वार्त्तिककार कात्यायन ही वररुचि कहलाते थे और वह मगधपति नन्द के समकालीन थे। पर यह भ्रम है। इस भ्रम को पुष्ट करनेवाली सिंहली लोगों में वंशपरम्परागत एक और भी आख्यायिका प्रचलित है। यह आख्यायिका इस प्रकार है। सिंहली लोगों की धर्म-भाषा पाली है, जिसे बौद्धों ने "मागधी" संज्ञा दी है। इस भाषा के "कच्चायणो" नामक किसी विद्वान् ने एक व्याकरण बनाया है। "कच्चायणो" शब्द संस्कृत "कात्यायन" का प्राकृत रूप है। इन दोनों आख्यायिकाओं की एकवाक्यता करने से प्राकृतप्रकाशकार वररुचि, पाली भाषा का व्याकरण बनाने वाले कात्यायन, और वार्त्तिककार कात्यायन वररुचि ये तीनों एक ही मालूम होते हैं। पर यह ठीक नहीं है।

सिंहली आख्यायिका के नायक कच्चायणो (कात्यायन) और प्राकृतप्रकाशकार वररुचि के ग्रन्थों और मतों से साफ़ मालूम होता है कि ये दोनों एक नहीं हैं। कच्चायण के मत से मागधी (पाली) भाषा सब भाषाओं की मातृस्थानीया है। वह कहता है—

"स मागधी मूल भाषा नरेय आदि कप्पिक।"

पर वररुचि महाराष्ट्री भाषा को सारी प्राकृत-भाषाओं की जननी मानते हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थ में मागधी नामक पाली भाषा का कहीं उल्लेख नहीं किया है। कुछ वर्ष हुए सिंहल की राजधानी कोलम्बो में मिस्टर जेम्स अल्विस ने अँगरेज़ी अनुवाद सहित कच्चायणकृत पाली व्याकरण का छठा अध्याय छाप कर प्रकाशित किया है। अध्याय कावेल और वेबर का मत है कि उसके पढ़ने वररुचि और कच्चायण के भिन्नत्व के विषय में नहीं रहती।*

इसी तरह पाणिनि के सूत्रों पर वार्त्तिक वाले कात्यायन वररुचि, और प्राकृतप्रकाश-क वररुचि, के एकत्व के विषय में भी शङ्का होती है

(१) वररुचि नाम के एक से अधिक ग्रन्थक का होना असम्भव नहीं है। क्योंकि "वररुचि नाम गुण-विशेष से भी हो सकता है।। कथा सरित्सागर में इस शब्द की व्युत्पत्ति इस त दी है:—

"नाम्ना वररुचिश्चायं तत्तदस्मै हि रोचते।
यद्यद्वरं भवेत्किञ्चित्.....॥"

कथापीठ, लंबक १, तरंग २, श्लोक

इस व्युत्पत्ति से मेरा अनुमान मज़बूत होता है विक्रमादित्य और कालिदास के समान वररुचि न के भी एक से अधिक ग्रन्थकार हुए थे। भोज-प्रब नामक पुस्तक में लिखा है कि धाराधिपति भो राज की सभा में वररुचि नामक एक विद्वान् था यह स्मरण रखने योग्य बात है कि भोजराज सभा-पण्डितों की नाममालिका में सिवा वर के विक्रम के नवरत्नों में से और किसी विद्वान् नामोल्लेख नहीं किया गया है। इससे सिद्ध है नवरत्नवाले वररुचि से जुदा उसी नाम का और पण्डित भोज की सभा में भी था। हलायुध अभिधानरत्नमाला नाम के कोश-ग्रन्थ में वररुचि कोशकार का भी उल्लेख है‡। अमर के टीकाकारों ने भी अपनी अपनी टीका में कोश

* *Vide* Prakrit Prakrash of Vararuchi by Cowell (2nd edition). Advertisement to the edition.

† बल्लालकृत भोजप्रबन्ध पृ० १९ विक्रम शक १ में जगदीश्वर छापेख़ाने में छपी हुई आवृत्ति देखिए।

‡ *Vide* Preface to Wilson's Sanskrit Dictionary

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का जो नाम-निर्देश किया है उसके देखने से भी मालूम होता है कि प्राचीन काल में कात्यायन और वररुचि नामक दो मित्र भिन्न कोशकार हो गये हैं*। अतएव कौन कह सकता है कि विक्रम के नव-रत्नों के वररुचि, भोज की सभा के वररुचि और कोशकार वररुचि ये तीनों एक ही थे? इसी तरह कोशकार कात्यायन, नंद के समय के वार्त्तिककार कात्यायन, स्मृतिकार कात्यायन, अनुक्रमणि-कर्त्ता कात्यायन और सूत्रकार कात्यायन ये सब एक ही थे और पूर्वोक्त वररुचि से अभिन्न थे, यह कहने का भी शायद ही कोई साहस करेगा। सुतरां मेरी समझ में नाम-सादृश्य से ही प्राकृतप्रकाशकार और वार्त्तिककार को एक ही व्यक्ति समझना सर्वथा अयोग्य है।

(२) वार्त्तिककार कात्यायन का दूसरा नाम वररुचि होने पर भी यह नहीं सिद्ध होता कि प्राकृत-व्याकरण उसी ने बनाया है। कथासरित्सागर में भी इस बात का कहीं उल्लेख नहीं है। वररुचि और कात्यायन के सम्बन्ध में सोमदेव ने बहुत कुछ उल-झन डाल दी है; पर उसका सुलझाना कठिन नहीं। पाणिनि, व्याडि, वार्त्तिककार कात्यायन, महाराज नन्द, चन्द्रगुप्त, शालिवाहन और बृहत्कथा का कर्त्ता गुणाढ्य इन सब को सम-सामयिक समझने में सोम देव ने बड़ी भूल की है। भारतवर्षीय प्राचीन इति-हास का जिन्होंने थोड़ा भी अध्ययन किया है वे भी इस बात को मान लेंगे। कई प्रमाणों से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि नन्द, चन्द्रगुप्त और कात्यायन थे पाणिनि और व्याडि से अर्वाचीन तथा शालिवाहन और गुणाढ्य से प्राचीन हैं। इससे मेरा अनुमान है कि कथासरित्सागरकार ने पूर्वोक्त विद्वानों और राजाओं को समकालीन समझने में जैसी भूल की है, वार्त्तिककार कात्यायन और विक्रम शालिवाहन के समकालीन वररुचि को एक समझने में भी वैसी ही भूल की है।

(३) प्राकृतप्रकाश वररुचि ने बनाया है, इस बात का उल्लेख उसके प्रत्येक परिच्छेद के अन्त में है।

(४) इस ग्रन्थ की भामहकृत टीका में भी "वररुचि-रचित-प्राकृत-लक्षण-सूत्राणि लक्ष्य-मार्गेण" यह वाक्य लिखा हुआ है। उसमें कात्यायन का नाम नहीं है।

(५) मार्कण्डेय-कवीन्द्र-विरचित प्राकृतसर्वस्व नामक ग्रन्थ के प्रारम्भ में प्राकृतशास्त्र के पूर्वाचार्यों का जो नाम-निर्देश है उसमें लिखा है—

"शाकल्य-भरत-कोहल-वररुच-भामह-वसन्त-राजाद्यैः।
प्रोक्तान् ग्रन्थान् नानालक्ष्याणि च निपुणमालोक्य॥
.....मार्कण्डेयकवीन्द्रः प्राकृतसर्वस्वमारभते।"

यहाँ भी वररुचि के नाम से कात्यायन के नाम का सम्बन्ध नहीं है।

(६) वसन्तराजकृत प्राकृतसंजीवनी वग़ैरह ग्रन्थ वररुचि के ग्रन्थ का अर्थ समझाने के लिए लिखे गये हैं। इनमें भी कोई बात ऐसी नहीं है जिससे प्राकृत-प्रकाशकार और वार्त्तिककार के अभिन्नत्व की कल्पना की जासके। यदि प्राकृतप्रकाशकार से कात्यायन का कुछ भी सम्बन्ध होता तो पूर्वोक्त ग्रन्थों में से किसी न किसी में उसका उल्लेख अवश्य रहता।

(७) प्राकृतप्रकाश में महाराष्ट्रीय भाषा की उन्नति का जो वर्णन है वह उस भाषा को शालि-वाहनवंशीय राजाओं के समय में ही प्राप्त हुई थी। नन्दों के समय में उसकी तरक़्क़ी नहीं हुई थी, इस बात का ऐतिहासिक प्रमाण कुछ नहीं मिलता। डाक्टर भाण्डारकर, डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र, अध्या-पक मोक्षमूलर, वेबर, बेनफे और जॉन म्यूर आदि सभी का मत है कि नन्दों के समय में पाली भाषा या उसकी जननी गाथा का अधिक चलन था। प्राचीन शिलालेखों के देखने से मालूम होता है कि जिस समय प्राचीन महाराष्ट्रीय भाषा की उन्नति हो रही थी, प्राचीन पाली भाषा का प्रचार धीरे धीरे घट रहा था। एक के बाद ही

* सटीक अमरकोश, वामनाचार्य झलकीकरकृत प्रस्ता-वना, पृष्ठ ४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी का अभ्युदय होने के कारण पाली और महाराष्ट्री भाषाओं में जैसा साम्य देख पड़ता है वैसा ही भेद भी देख पड़ता है। महाराष्ट्री, शौरसेनी और मागधी ये तीनों भाषायें एकही समय में प्रचलित थीं। तथापि उनमें जो भेद देख पड़ता है वह भिन्नदेशजन्य है। पर पाली और महाराष्ट्री में जो अन्तर है वह कालान्तर-जन्य है। और इन अन्तरों का विचार करने से मालूम होता है कि पाली भाषा महाराष्ट्री से पुरानी है।

वररुचि के प्राकृतप्रकाश में प्राचीन पाली भाषा का उल्लेख न होने का शायद यही कारण है कि उस समय उस भाषा का प्रचार न था। पाली भाषा यदि उस समय प्रचलित होती तो वररुचि उसके विषय में कुछ न कुछ अवश्य लिखते। चंदकृत प्राकृतलक्षण नामक एक ग्रन्थ भी मैंने देखा है। इसे कलकत्ते की एशियाटिक सोसाइटी के द्वारा हार्नले साहब ने १८८० में छपाकर प्रकाशित किया था। कई कारणों से यह ग्रन्थ वररुचि के ग्रन्थ से पुराना माना गया है। हेमचन्द्र का प्राकृत-व्याकरण प्रायः चंडकृत प्राकृतलक्षण के आधार पर ही लिखा गया है। इस ग्रन्थ में प्राकृत भाषा के महाराष्ट्री और शौरसेनी भेदों का उल्लेख नहीं है। इसमें जिस प्राकृत भाषा के नियम हैं उससे और महाराष्ट्री भाषा से बहुत कुछ साम्य है; और वह भाषा महाराष्ट्री भाषा से प्राचीन भी मालूम होती है। किंबहुना वह प्राचीन महाराष्ट्री और शौरसेनी भाषा का प्राचीनतम रूप कहा जा सकता है। इतने पर भी चंड के ग्रन्थ में महाराष्ट्री और शौरसेनी भाषाओं का उल्लेख न होने से यह सिद्ध होता है कि जिस समय उसने वह ग्रन्थ लिखा था उस समय में प्रचलित मुख्य प्राकृत भाषा के महाराष्ट्री, शौरसेनी आदि भेद न हुए थे। इन सब बातों का विचार करने से मालूम होता है कि, जैसा मैंने पहले कहा है, वररुचि का व्याकरण ईसवी सन् के प्रारम्भ में, अथवा प्राचीन पण्डितों के मतानुसार विक्रम शक के प्रारम्भ में, बनाया गया था। कई विद्वानों के मत से शालिवाहन शक के तीसरे शतक के बाद प्राकृत प्रकाशकार का आविर्भाव हुआ था। परन्तु मैं नहीं जानता, किस प्रमाण पर ये लोग यह कहते हैं।

सारांश, यह कि प्राकृत-प्रकाशकार वररुचि ईसवी सन् के प्रारम्भ में आविर्भूत हुए थे।*

बाबूराव पराड़कर

अमेरिका के अख़बार।

संसार में समाचार पत्रोंका प्रभाव दिन पर दिन बढ़ता जाता है। पश्चिमी देशों में तो यहाँ तक नौबत पहुँची है कि राज्य का एक स्तम्भ माने जाते हैं और उन का पढ़ना वहाँ वालों की दिनचर्या में दाखिल हो गया है। इस प्रकार के देशों में अमेरिका का पहला नम्बर है। वहाँ इस समय सब मिलाकर साढ़े बारह हज़ार अख़बार निकलते हैं। उनमें एक हज़ार तीन दैनिक हैं। इस के सिवा एक बीस अख़बार ऐसे हैं जिनके स्वामी, सम्पादक और प्रकाशक केवल हबशी हैं।

अमेरिकावाले अख़बारों के बड़े शौक़ीन हैं। अमीरों और नगर-निवासियों की तो बात ही क्या दरिद्र और देहाती तक नित्य मोल लेकर अख़बार पढ़ते हैं। वहाँ के अख़बारों की उन्नति का यही मुख्य कारण है। वहाँ शायद ही कोई गाँव ऐसा हो जहाँ से कोई न कोई दैनिक, साप्ताहिक या मासिक पत्र निकलता हो। शहरों का तो कहना ही क्या उनमें तो महल्ले महल्ले से दैनिक पत्र निकलते हैं।

साधारण समाचारपत्रों के सिवा वहाँ प्रत्येक राजनैतिक दल, धार्म्मिक सम्प्रदाय, पेशा और सभा-समाज के जुदे जुदे पत्र निकलते हैं। इसके सिवा बालकों, स्त्रियों और हबशियों के

---

* पण्डित सखाराम गणेश देउस्कर के एक लेख का भावार्थ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलग अलग पत्र निकलते हैं, जिनमें उन्हीं के मतलब की बातें रहती हैं। विद्या, कला और विज्ञान की भिन्न भिन्न शाखाओं के भी भिन्न भिन्न पत्र प्रकाशित होते हैं। शिल्प या व्यापार-सम्बन्धी कम्पनियों और राजकीय विभागों के पत्र अलग ही निकलते हैं। अमेरिका के विश्वविद्यालय भी अपने अपने पत्र अलग अलग निकालते हैं। आध्यात्मिक विषयों के पत्र भी कुछ दिनों से बहुत बढ़ गये हैं। मतलब यह कि अमेरिका में सब लोगों के काम के पत्र निकलते हैं।

अमेरिका में कुछ पत्र-सञ्चालकों को छोड़ कर बाक़ी सब के पत्र निकालने का मुख्य उद्देश या तो किसी प्रकार का स्वार्थ साधन होता है या धनोपार्जन। केवल परोपकार के लिए कोई पत्र नहीं निकालता। वे लोग पत्रों को निकालते इस ढंग से हैं कि सर्व साधारण को ख़ूब रुचिकर हों। इस लिए उनके ग्राहकों की संख्या थोड़े ही दिनों में लाखों तक पहुँच जाती है। फल यह होता है कि स्वार्थसिद्धि के साथ साथ प्रकाशकों को आर्थिक लाभ भी ख़ूब होता है। कोई कोई तो थोड़ेही दिनों में करोड़पति तक हो जाते हैं।

अमेरिका के बड़े बड़े दैनिक समाचारपत्रों के प्रकाशित करने का प्रबन्ध बहुत अच्छा है। पत्र-सम्बन्धी प्रत्येक काम के लिये एक एक विभाग रहता है। प्रबन्ध-विभाग का काम आय-व्यय का हिसाब रखना है। विज्ञापन-विभाग का कर्त्तव्य विज्ञापनों को इकट्ठा करना, उन्हें उचित स्थान पर छपवाना और उनका लेखा रखना है। छपाई-विभाग छपाई-सम्बन्धी कुल काम करने का ज़िम्मदार है। फ़ोटो लेने, तसवीरें खींचने, दिल्लगी के चित्र बनाने और उन के ब्लाक तैयार करने का काम चित्र-विभाग के सिपुर्द रहता है। बिक्री-विभाग वाले कर्मचारी ग्राहकों और थोकबन्दी एजेंटों के पास पत्र भेजते हैं और नित्य बाज़ार में बेचने का प्रबन्ध करते हैं। लेख-विभाग कई हिस्सों में बँटा रहता है। नगर-सम्पादक का काम स्थानिक समाचार एकत्र करना है। संवाददाता लोग दिन भर नगर में घूमते, लोगों से मिलते और समाचार इकट्ठे करते रहते हैं। ज्योंही कोई समाचार मिला त्योंही उसे लिख कर नगर-सम्पादक को दे दिया। जो दैनिक पत्र सबेरे प्रकाशित होते हैं उनके दो नगर-सम्पादक होते हैं। एक रात के लिये दूसरा दिन के लिये। उनका काम यह है कि समाचार या लेख पाते ही जल्दी से देख जायँ और उस पर हेडिंग देदें। तब उसे "कापी रीडर" लेता है और उसका संशोधन करता है। तार-विभाग केवल देशही भर के नहीं, किन्तु संसार भर के समाचार इकट्ठा करता है। सम्पादकीय विभाग सम्पादकीय लेख और नोट तैयार करता है। साहित्य-विभाग का काम ऐसे लेख तैयार करना है जिनसे पाठकों का मनोरञ्जन हो। अर्थात् यह विभाग छोटी छोटी आख्यायिका, उपन्यास, यात्रावृत्तान्त, किसी स्थल, नगर या जाति के वर्णन और चुटकुलों से पत्र को विभूषित करता है। इन सब विभागों की देख भाल एक मैनेजिंग एडीटर करता है। इस पद पर वही आदमी नियुक्त किया जाता है जो समाचारपत्र-सम्बन्धी कामों का ख़ूब अनुभव रखता हो। उसका मुख्य काम यह है कि पत्र-सम्बन्धी सब कामों पर निगाह रक्खे और यह देखे कि सब कर्मचारी अपना अपना काम ठीक ठीक पालन करते हैं या नहीं। सब विभागों के मुख्य कर्मचारी नित्य सबेरे और शाम को एक जगह इकट्ठे होते हैं और इस बात पर वादानुवाद करते हैं कि कौन विषय किस तरह प्रकाशित करना चाहिए। अमेरिका के प्रत्येक बड़े बड़े दैनिक पत्र के कार्य्यालय से हर इतवार को एक साप्ताहिक संस्करण भी निकलता है। इसके सम्पादकीय कर्म्मचारी दैनिक पत्र के कर्म्मचारियों से भिन्न रहते हैं।

यह हम पहलेही कह चुके हैं कि समाचारपत्र-सञ्चालकों का कुछ न कुछ उद्देश ज़रूर होता है। यदि कोई ऐसा लेख लिखे जिससे उस उद्देश की पूर्ति में बाधा पड़ती हो तो वे उस लेख का भावार्थ एकदम बदल देते हैं और उसे अपने मतलब का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बना लेते हैं। अभी हाल ही में हिन्दुस्तान रिव्यू की दो संख्याओं में अमेरिका के अख़बारों पर एक लम्बा लेख प्रकाशित हुआ है। उसके लेखक सन्त निहालसिंह ने लिखा है कि—"एक बार एक सम्पादक ने क़त्ल के एक मुक़द्दमे के विषय में विचार प्रकट करने के लिए मुझ से कहा। मैं लेख लेकर सम्पादक के पास गया। उसने उसे लेकर और लिखाई देकर मुझे बिदा कर दिया। दूसरे दिन लेख छपा। मैंने देखा कि उस लेख में मेरे हस्ताक्षर के सिवा मेरा कुछ नहीं है। मेरे लेख की भाषा और भाव बिलकुल बदल डाला गया था। इसका कारण यह था कि इस मुक़द्दमे में जिसको मैंने दोषी ठहराया था उसे पत्रसम्पादक बचाना चाहता था।" यद्यपि यह घृणित काम है तथापि अख़बारवाले इसकी कुछ परवा नहीं करते। वे नित्य ऐसी ही चालें चला करते हैं।

सन्त निहालसिंह का कथन है कि अमेरिका के सम्पादक और संवाददाता बड़े चालबाज़ होते हैं। इसके कई उदाहरण भी आपने दिये हैं। आप लिखते हैं कि—"पश्चिमी अमेरिका के एक नगर में एशियावालों को निकालने के लिए लोग व्याकुल थे। अख़बारों में इसकी धूम मची हुई थी। इसी समय एक एशियानिवासी सज्जन वहाँ पधारे और एक बड़े भारी होटल में उतरे। एक अख़बार का संवाददाता आप से मिलने गया और प्रश्न पर प्रश्न करने लगा। पर आपने कुछ उत्तर न दिया; केवल इतनी बात कही कि मैं अपने देश का राजकर्मचारी हूँ; इसलिए किसी प्रश्न का उत्तर देना नहीं चाहता। संवाददाता धन्यवाद देकर चला गया। उसी दिन शामको उस पत्र में एक एशियाई सज्जन से मुलाक़ात का वृत्तान्त निकला। उसमें लिखा गया कि यह एशियाई "भत्तीवाला" एजेंट है; अर्थात् अमेरिका में एशिया से जितने आदमी आते हैं उन्हें यही लाता है। ख़ैरियत यह हुई कि वे एशियाई महाशय वहाँ से चुपचाप तुरन्त खिसक गये; नहीं तो न मालूम वे लोग उनकी कैसी दुर्दशा करते। आपही के शब्दों में एक और क़िस्सा सुनिए—

"एक बार एक संवाददाता मेरे पास आया और हिन्दुस्तानी स्त्री-पुरुषों की तसवीरवाला कार्ड मुझ से माँगने लगा। मैंने चार पाँच कोई कार्ड दिखा दिये। इनमें से साड़ी पहने हुए पारसी स्त्री की तसवीरवाला एक कार्ड उसने पसन्द किया और उसे एक घंटे के लिए माँगा। मैंने पूछा कि तुम क्या करोगे। इस पर उसने कहा कि—'दफ़्तर में कुछ लड़कों से बाज़ी लगी है। वे कहते हैं कि पारसी स्त्रियाँ कमीज़ और पतलून पहनती हैं और मैं कहता हूँ कि ऐसा नहीं है।' पौन घंटे से भी कम समय में वह पोस्ट कार्ड लेकर लौट आया। उसके चेहरे पर प्रसन्नता झलक रही थी। मैं समझ गया कि वह बाज़ी जीत गया। उसने पन्द्रह रुपये का एक बिल दिखलाया और कहा कि यही मैंने जीता है। इसके बाद धन्यवाद देकर वह चला गया। इस घटना को मैं भूल गया था। पर कुछ ही घंटों में मेरे एक मित्र ने एक अख़बार के एक लेख की तरफ़ मेरा ध्यान आकर्षित किया। उसमें लिखा था कि इस शहर में पारसी जाति की एक बाग़ी औरत आई है। इसके सिवा जो तसवीर मैंने उस संवाददाता को दी थी उसकी ख़ूब लम्बी चौड़ी नक़ल भी उसमें छपी थी। उस तसवीर के नीचे लिखा हुआ था कि हिन्दुस्तान से आई हुई बाग़ी औरत का यह अन्तिम फ़ोटोग्राफ़ है।"

पर अमेरिकन लोग ऐसी धोखेबाज़ी में कैसे फँस जाते हैं, इसका मुख्य कारण यह है कि अमेरिका के साधारण जन कुछ बड़े बुद्धिमान् या विद्वान् नहीं होते। उनकी शिक्षा केवल प्रारम्भिक होती है। इसके सिवा अख़बारों को वे मन बहलाने की सामग्री समझते हैं। अख़बारों में जो लेख आश्चर्यजनक या कौतूहलवर्द्धक होते हैं केवल उन्हीं को वे लोग पढ़ते हैं; औरों को नहीं। उनकी स्मरण-शक्ति भी बहुत कमज़ोर होती है। उन्हें यह भी याद नहीं रहता कि अमुक चित्र पहले छप चुका है या नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अख़बार वाले इस कमज़ोरी से लाभ उठाते हैं। किसी मनुष्य, दृश्य या दुर्घटना के जो चित्र पहले छप चुके हैं उन्हीं को वे कुछ दिनों बाद दूसरे मनुष्य, दृश्य या दुर्घटना के बतलाकर प्रकाशित करते हैं। जैसे, यदि कोई बड़ा आदमी मरा और उसका फ़ोटो तुरन्त न मिल सका तो वे लोग उसी की ऐसी सूरतवाले दूसरे मनुष्य का चित्र छाप देंगे और यह प्रकट करेंगे कि ख़ास मरे हुए मनुष्य का यह सब से ताज़ा फ़ोटोग्राफ़ है। इसी तरह यदि बीच समुद्र में कोई जहाज़ डूबा और शीघ्रही उसका फ़ोटो न मिल सका तो किसी ऐसी ही पुरानी दुर्घटना के चित्रों के ब्लाक ढूँढे जाते हैं और उन्हें छापकर यह प्रकाशित किया जाता है कि अख़बार के ख़ास चित्रकार ने मौक़े पर जाकर इस दुर्घटना के दृश्यों के फोटोग्राफ़ लिये हैं। सन् १९०६ में सानफ़्रांसिस्को नगर में बड़ा भयङ्कर आग लगी थी। उसके सम्बन्ध में भी एक अख़बार वाले ने ऐसी ही जालसाज़ी की थी; पर वह प्रकट हो गई। फल यह हुआ कि अख़बार के जिन कर्मचारियों के दोष से यह बात प्रकट हुई थी वे सब बरख़ास्त कर दिये गये। इसलिए नहीं कि उन्होंने जालसाज़ी की, किन्तु इसलिए कि जालसाज़ी में वे कामयाब न हो सके।

अमेरिकन अख़बारों के संवाददाता ख़बरें इकट्ठा करने में बड़े ही प्रवीण होते हैं। अपने इस काम में वे लोग जैसा साहस, अध्यवसाय और उत्साह दिखलाते हैं उसका एक उदाहरण सुनिए। शिकागो की अदालत में क़त्ल का एक मुक़द्दमा चल रहा था। सारे देश में इसकी धूम मची हुई थी। लोग इसके समाचार जानने के लिए अत्यन्त उत्सुक रहते थे। हर एक अख़बार यही चाहता था कि सब से पहले मैं ही इसकी ख़बरें सर्वसाधारण को सुनाऊँ। फ़ैसले का दिन आने पर लोगों की उत्कण्ठा और भी बढ़ गई। प्रत्येक समाचारपत्र वाला यह प्रयत्न करने लगा कि फ़ैसले की ख़बर सब से पहले उसी को मिले। इस उद्देश को पूरा करने के लिए एक अख़बार के तीन संवाददाताओं ने एक युक्ति निकाली। उसके अनुसार वे एक रस्सा और झूला लेकर अदालत में पहुँचे। जब जूरी लोग सलाह करने के लिए कमरे में बन्द कर दिये गये तब वे पहरेदारों की नज़र बचाकर उस कमरे की छत पर चढ़ गये। कमरे के पीछे, अर्थात् इमारत के बाहरी तरफ़, हवा आने जाने के लिए एक खिड़की थी। तीनों संवाददाता उसी ओर पहुँचे। दो ने रस्सा पकड़ लिया; एक उसे साधकर कुछ दूर नीचे उतर गया और खिड़की के पास ठहर कर रस्से में बँधे हुए झूले पर बैठ गया। इस खिड़की से कमरे के अन्दर बन्द जूरियों की बातचीत अच्छी तरह सुन पड़ती थी। यहाँ वह पूरे पाँच घंटे लटका रहा और जूरियों का काररवाई के नोट लेता रहा। दूसरे दिन उस अख़बार में, जिसके ये संवाददाता थे, जूरियों की काररवाई की विस्तृत रिपोर्ट छपी। इसे देखकर सब लोग दंग हो गये। पहले तो अन्य अख़बारों ने इसे बनावटी बतलाया; पर इसकी सचाई का सबूत पाने पर चुप हो गये। दूसरे दिन अदालत में दूना पहरा बिठाया गया। पर संवाददाताओं ने बड़ी चतुरता की; वे कोर्ट के एक कोने में छिप रहे। जब चारो तरफ़ ताले लग गये तब एक अन्य खिड़की से जूरियों की काररवाई सुनने लगे। रात भर जूरियों की बहस होती रही। संवाददाता भी वहीं डटे रहे। दूसरे और तीसरे दिन भी यही हाल रहा। अर्थात् न जूरियों की बहस समाप्त हुई और न संवाददाताओं ने पीछा छोड़ा। सत्रहवें घंटे में जब जूरियों की सलाह पक्की हुई तब संवाददाता वहाँ से टले। इधर उस अख़बार में जूरियों की प्रति दिन की काररवाई रोज़ रोज़ प्रकाशित होती रही। पर लोगों की समझ में न आता था कि ये गुप्त बातें इसे कैसे मालूम हो जाती हैं। वे बड़े चक्कर में थे। असल बात मालूम होने पर केवल सर्वसाधारण ही ने नहीं, किन्तु जज ने भी संवाददाताओं के साहस और चतुरता की ख़ूब प्रशंसा की। पहले वे ५४ रुपये प्रति सप्ताह पाते थे; इस काम के पुरस्कार में उनकी तनख़ाह दूनी से भी अधिक कर दी गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दैनिक समाचारपत्रों में जो कुछ रहता है उसका अधिक भाग पत्र के आफ़िस में नहीं तैयार किया जाता। आख्यायिकायें, उपन्यास, यात्रावृत्तान्त, प्रहसन, चुटकुले, दिल्लगी के चित्र आदि अख़बारी सिंडीकेट (Newspaper Syndicates) से ख़रीदे जाते हैं। सिंडीकेटों में ऐसे लेखक या चित्रकार नौकर रहते हैं जिनके लेख या चित्र सर्वसाधारण ख़ूब पसंद करते हैं। इसके सिवा वे सुप्रसिद्ध उपन्यासकारों के उपन्यास भी ख़रीदते हैं और होशियार आदमियों को अन्य देशों में भेज कर उनसे यात्रा-वृत्तान्त भी लिखवाते हैं। यात्रा-वृत्तान्त लिखनेवाला एक अमेरिकन लेखक एक सिंडीकेट से सफ़र ख़र्च के सिवा डेढ़ लाख रुपये वार्षिक वेतन पाता है। बस, इसी तरह, इधर उधर से इकट्ठा करके सिंडीकेट पूर्वोक्त लेख आदि अख़बारवालों को बेंच डालते हैं।

यह तो हुई शहर के अख़बारों की बात। अब देहाती पत्रों का हाल सुनिए। उन लोगों को सिंडीकेटों से पत्र का अधिक भाग छपा छपाया मिल जाता है। इसके सिवा देश-देशान्तरों की ख़बरें "समाचारपत्र-समिति" के द्वारा मिल जाती हैं। बाक़ी रहीं स्थानिक ख़बरें; सो उनके लिए दो एक संवाददाता रख लिये जाते हैं। इस तरह उनका काम बड़े मज़े में चलता है। यहाँ पर हम यह कह देना चाहते हैं कि सिंडीकेट पत्र का जो छपा हुआ भाग बेचते हैं वह सादे काग़ज़ के मूल्य पर देते हैं। इसमें उनकी कोई हानि नहीं। क्योंकि उसमें लेखों के सिवा विज्ञापन भी रहते हैं। इन विज्ञापनों से इतनी अधिक आमदनी होती है कि यदि वे उसे मुफ़्त में भी दे डालें तो भी कुछ नुक़सान नहीं। इस में अख़बार वालों को भी लाभ रहता है। क्योंकि उन्हें अख़बार का तीन चौथाई भाग छपा हुआ मिल जाने से छपाई नहीं लगती। अर्थात् छपाई के दाम और अधिकांश परिश्रम से वे बचे रहते हैं। इस तरह देहाती अख़बार वाले थोड़ी मेहनत और थोड़े ख़र्च में अच्छे अच्छे अख़बार निकाल सकते हैं और निकालते भी हैं।

सिंडीकेटों की तरह अख़बारी सभायें (Newspaper Unions) भी यही काम करती हैं। फ़र्क़ केवल इतना ही है कि ये सभायें छपे हुए काग़ज़ की जगह कम्पोज़ किये हुए लेखों के प्लेट बहुत कम दामों पर बेचती हैं। अख़बारवालों को केवल इतना ही काम करना पड़ता है कि उन्हें प्रेस पर जमा करके वे छाप देते हैं। इनके सिवा प्रकाशक-समितियाँ (Publicity Bureaus) भी अमेरिका भर में फैली हुई हैं। इनका काम प्रति सप्ताह अख़बारों में फुटकर लिखना है। यह काम मुफ़्त करते हैं। इसका कारण यह है कि इन पत्रों में गुप्त विज्ञापन रहते हैं। जिन लोगों के विज्ञापन इनमें रहते हैं वही लोग इनके जीवन के आधार होते हैं।

केवल देहाती अख़बार ही नहीं, किन्तु मासिक पुस्तकें भी छपे हुए काग़ज़ों के बल पर प्रकाशित होती हैं। मासिक-पुस्तक-प्रकाशक लोग हर महीने लेख ख़रीद लेते हैं। ये सब लेख केवल छपेही नहीं किन्तु पुस्तकाकार बँधे भी होते हैं। केवल टाइटिल पेज कोरा रहता है; उन पर प्रकाशक अपना नाम पता और मासिक पुस्तक का नाम छाप देता है। इसके सिवा भीतर भी कुछ पृष्ठ कोरे रहते हैं जिनमें प्रकाशक अपने मतलब के लेख, विज्ञापन आदि छापता है। इस तरह बहुत थोड़े परिश्रम और ख़र्च से मासिक-पुस्तक-प्रकाशक लोग अच्छा फ़ायदा उठाते हैं।

अमेरिका के अख़बारवाले अपने पत्रों का प्रचार बढ़ाने की तरकीब ख़ूब जानते हैं। इसी लिए चौंकादेनेवाली ख़बरें, चित्र और कारटून प्रत्येक अंक में अवश्य प्रकाशित करते हैं। क्योंकि सर्वसाधारण इन्हें बहुत पसंद करते हैं। इसके सिवा वे थोड़ी थोड़ी सब तरह की बातें छापते हैं। इस लिए पत्रों को सब तरह के पेशे, विचार, रुचि और प्रवृत्ति के मनुष्य ख़रीदते और पढ़ते हैं। अमेरिका के लोग खेल तमाशे के बड़े शौक़ीन हैं। इसलिए सब अख़बारवाले खेल तमाशे का एक जुदा स्तम्भ और जुदा सम्पादक रखते हैं। इस स्तम्भ में सब तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के खेल तमाशों के समाचार और लेख प्रति दिन प्रकाशित होते रहते हैं। अख़बार भर में यह स्तम्भ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। इसके हेडिंग ख़ूब बड़े बड़े अक्षरों में ऐसे ढंग से लिखे जाते हैं कि रास्ते में जो उन्हें देखता है उसी से अख़बार ख़रीदे और पढ़े बिना नहीं रहा जाता। इसके सिवा अख़बारवाले ग्राहक बढ़ाने की एक और तरकीब करते हैं। वह यह कि त्योहार के दिन पत्रों के रंग-बिरंगे विशेष संस्करण निकालते हैं। इसे सर्वसाधारण बहुत पसंद करते हैं और पत्र को अवश्य ख़रीदते हैं। इसलिए पत्र-प्रकाशक अख़बार के प्रचार बढ़ाने का ऐसा अच्छा मौक़ा हाथ से कभी नहीं जाने देते।

अख़बार की ख्याति बढ़ाने के लिए नित्य नई तरकीबें भी निकलती रहती हैं। कोई समाचारपत्र-प्रकाशक सर्वसाधारण को मुफ़्त में लेक्चर या गाना बजाना सुनाने या थियेटर दिखाने का प्रबन्ध करता है; कोई मुफ़्त में बर्फ़ बाँटता है; कोई बच्चों को सँत मेत दवा देता है; कोई गरमी के मौसम में झील के किनारे आरामगाह बनवा देता है, जहाँ ग़रीबों के लड़कों की परवरिश की जाती है। कोई अख़बारवाला बेकार मनुष्य और स्त्रियों की मुफ़्त में नौकरी लगवा देता है। इसी तरह समाचारपत्र-प्रकाशक लोग अपने अपने पत्रों को अनेक उपायों से मशहूर करते हैं। कुछ पत्रवाले ऐसे भी हैं जो पुराने ढर्रे पर चलना ही पसंद करते हैं। पर उनकी संख्या दिन पर दिन घटती जाती है।

यह लेख लिखने में सन्त निहालसिंह के पूर्वोक्त लेख से बहुत मदद मिली है। अतएव मैं उनका बहुत कृतज्ञ हूँ।

श्रीकण्ठ पाठक।

पिपीलिका-पुराण।

योरप और अमेरिका के प्राणि-शास्त्र-वेत्ताओं ने पिपीलिकाओं के विषय में अनेक पुस्तकें लिखी हैं। एक साहब ने तो अपनी सारी उम्र चिउँटियों की परीक्षा में व्यतीत कर दी। उनकी पुस्तक इस छोटे से, पर अद्भुत, जीव-सम्बन्धिनी पुस्तकों में सबसे अधिक प्रमाणनीय है। चिउँटी यद्यपि बहुत ही छोटा प्राणी है तथापि उद्योग और श्रमशीलता में मनुष्य उसके सामने कोई चीज़ नहीं। उसका उद्योग सतत जारी रहता है। बरसों के लिए वे पहलेही से खाना जमा कर लेती हैं; रहने के लिए मकान बनाती हैं; नौकर चाकर रखती हैं; गाय भैंस रखती हैं; शिकार खेलती हैं; और पास पड़ोस के पिपीलिका-ग्रामों पर हमला करके उनके अण्डे लूट लाती हैं। उन अण्डों से जो बच्चे निकलते हैं उनको वे ग़ुलाम बनाती हैं। चिउँटियों में भी अमीर, ग़रीब राजा, रानी इत्यादि सामाजिक व्यवस्थायें होती हैं।

इस अत्यल्प प्राणी, चिउँटी, की दिनचर्य्या—समाज-रचना और दूरदर्शिता बहुत ही अद्भुत है। ऐसी अद्भुत कि तत्सम्बन्धी बातें सुन कर हैरत होती है। चिउँटिओं की विशेष विशेष बस्तिओं में फ़ौजें तक रहती हैं। ये फ़ौजें शत्रु की फ़ौजों से जी-जान होम कर लड़ती हैं और कभी भगती नहीं। मारना या मर जाना ही इनका मुख्य मंत्र है। चिउँटिओं में बल भी बेहद होता है। उनकी असीम शक्ति की बातें सुनकर आश्चर्य्य से दंग होजाना पड़ता है। डील डौल के हिसाब से, बल में, आदमी एक चिउँटी के मुक़ाबले में तृणवत् भी नहीं! चिउँटियों के विषय की कुछ बातें हम अमेरिका के एक अख़बार से यहाँ पर देते हैं।

चिउँटियों की कोई कोई जातियाँ बड़ी ही भयङ्कर होती हैं। वे अपनी जान की कुछ भी परवा नहीं करतीं। जैसा ऊपर कहा गया है, वे बहुधा अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पास पड़ोस के पिपीलिका-मण्डल पर डाके डालती हैं और उनके बच्चे और अण्डे उठा लाती हैं। उनकी वे सेवा शुश्रूषा करती हैं और बड़े होने पर उनसे गुलामी कराती हैं। परन्तु उनके साथ वे कभी सख़्ती नहीं करतीं। उन्हें वे अच्छी तरह रखती हैं और कोई तकलीफ़ नहीं होने देतीं।

चिउँटिओं को लड़ने भिड़ने में बहुत मज़ा आता है। वे बड़ी लड़ाकू होती हैं। कभी कभी अकारण ही पड़ोस की चिउँटिओं की बस्ती पर चढ़ाई कर बैठती हैं और लड़ाई के मैदान में द्वंद्व युद्ध आरम्भ कर देती हैं। इसीलिए चिउँटियों के पास फ़ौजें रहती हैं। उनसे वे शत्रुओं से अपना बचाव भी करती हैं और उन पर धावे करके उनसे युद्ध भी करती हैं। मनुष्य चाहता है कि संसार में मार काट बन्द हो जाय—सब कहीं शान्ति-भाव बना रहे। पर चिउँटिओं को शान्ति पसन्द नहीं। चुप चाप खाना और पड़े रहना उन्हें अच्छा नहीं लगता। अपनी शारीरिक शक्ति को यथावत् बनी रखने और वीरत्व दिखलाने की उन्हें सदा अभिलाषा रहती है। लड़ाई मानों उनके लिए एक तरह का व्यायाम है। मनुष्य की अपेक्षा चिउँटियों में, आकार के हिसाब से शक्ति भी सैकड़ों गुना अधिक होती है! यह सुन कर आश्चर्य्य न कीजिएगा। बात बिलकुल सच है।

चिउँटिओं के जीवन और स्वभाव आदि की जाँच करनेवालों को चिउँटियों की अपार शक्ति को देख कर चकित होना पड़ता है। जिस आदमी का वज़न दो मन है वह दोही तीन मन की वज़नी चीज़ सहज में उठा सकता है। पर यदि वह १६०० मन की वज़नी चीज़ उठा ले और घंटों सिर पर या छाती पर रक्खे रहे तो कहीं वह शक्ति में चिउँटी की बराबरी कर सके। एक दफ़े एक चिउँटी ने पृथ्वी के एक कृत्रिम गोले को उठा लिया। परीक्षक ने उसकी एक टाँग चिमटे से पकड़ कर उसे अधर में टाँग दिया। इस पर भी चिउँटी ने गोले को न छोड़ा। वह उसे वैसेही आकाश में टाँगे रही। यदि कोई आदमी किसी ऊँची जगह से एक टाँग के बल लटका दिया जाय और उस दशा में वह अपने दांतों से कोई हज़ार मन वज़नी रेल के यञ्जिन को पकड़े रहे कहीं वह बोझ उठाने में चिउँटी की बराबरी कर सके! जो सिक्के चिउँटियों से पाँच सौ गुना अधिक वज़नी हैं उनको तो वे सहज ही में उठा लेती हैं इस दशा में उनकी टाँग पकड़ कर आप चाहे जितने ऊँचे पर लटका दीजिए, पर जिस सिक्के को वे एक दफ़े पकड़ लेती हैं, फिर नहीं छोड़तीं। अपने दाँतों और अगले आँकड़ों में ग़ज़ब की ताक़त रखती हैं। कोलंबिया के जंगली लोगों के बदन जब कोई घाव हो जाता है तब उस घाव के दोनों किनारों को मिलाकर वे लोग उसे चिउँटियों से कटाते हैं। जब चिउँटी काटने लगती है तब उसके धड़ को वे काट देते हैं; सिर्फ़ उसका सिर लगा रह जाता है। वह सिर धड़ से अलग हो जाने पर भी घाव को नहीं छोड़ता; वहीं रह जाता है और सीने का काम देता है।

चिउँटियों में बोझ खींचने की भी अपूर्व शक्ति होती है। एक दफ़े एक चिउँटी अपने से तेरह गुना अधिक वज़न की एक छोटी सी चाँदी की खेंच गाड़ी अपने बिल की तरफ़ दूर तक खींच ले गई। यदि आदमी २७०० मन वज़नी रेल की किराकि अपनी कमर से बाँध कर खींच सके तो कहीं वह छोटे से जीव की बराबरी करने का दावा कर सके। वज़नी चीज़ खींचने में चिउँटियों को यदि ऊँ जगह से जाना होता है तो वे दाहने बायें मुँड़ती जाती हैं। इससे थकावट कम आती है। उन बुद्धि को तो देखिए! संसार में जितने जीवधार कोई भी चिउँटियों की बराबर बिकट लड़ाके शूरवीर नहीं है। जापानी भी इनके सामने चीज़ नहीं। प्राणों को तो चिउँटियाँ कुछ समझ ही नहीं। जब दो वीर पिपीलिकायें भिड़ हैं तब एक के निर्जीव होकर गिरे बिना उनकी नहीं छूटती। जब दो विद्वेषी बस्तिओं की चिउँ की सेना लड़ाई के मैदान में आमने सामने होती है तब पहले नाना प्रकार के दाँव पेंच होते

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धीरे धीरे लड़ाई भयङ्कर रूप धारण करती है और दो दो वीर परस्पर भिड़ जाते हैं। ऐसे समय में लड़ाई का मैदान पिपीलिकाओं के रुण्ड, मुण्ड, हस्त, पाद आदि से आच्छन्न हो जाता है। जब तक एक दल का पूरा पूरा पराभव नहीं हो जाता तब तक दूसरा दल मैदान से नहीं हटता। कभी कभी चिउँटियाँ अपने से सैकड़ों गुना बड़े कीड़ों पर आक्रमण कर बैठती हैं। ऐसा करने में बहुधा अनेक चिउँटियाँ मारी जाती हैं। पर अन्त में कीड़े को वे मार कर ही कल करती हैं और थोड़ी देर में अनन्त चिउँटियाँ उसे उठाकर अपने बिल में पहुँचा देती हैं।

चिउँटियों की एक जाति-विशेष होती है। उनके पिछले भाग में एक थैली सी रहती है। उसमें एक प्रकार का मीठा रस भरा रहता है। उन्हें चिउँटियाँ बड़े आराम से रखती हैं। वे उनकी गायें हैं। उनके रस को वे धीरे धीरे पीती रहती हैं। यदि किसी कारण से वे दूध (रस) अच्छी तरह नहीं देतीं तो अपने अगले मूँछों से उनको थप थपाकर वे दूध उतार लेती हैं और खूब छक जानेपर छोड़ती हैं; बीच में नहीं।

लन्दन का फ़ौंडलिंग् अस्पताल।

नवम्बर ०८ की सरस्वती में लन्दन के फ़ौंडलिंग् अस्पताल पर जो लेख हमारा प्रकाशित हुआ है उस में कलकत्ते के इतिहास-प्रसिद्ध सेठ अमीचन्द का ज़िक्र है। उसके अन्त में यह लिखा गया है कि इस दानी और परोपकारी पुरुष को इस अस्पताल के अधिकारियों ने "काला आदमी" कह कर उल्लेख किया है। हमने इस विषय में अस्पताल के अधिकारियों से जो पत्रव्यवहार किया उसकी नक़ल अनुवाद-सहित नीचे दी जाती है:—

(1)

146, Tufnell Park Road,
London. N.
September 8th, 1908.

DEAR SIR,

I have read the Foundling Hospital report for 1907 with considerable pleasure and profit, but on page 36 under "Legacies and Benefactions" occurs the following sentence to which I take strong exception:—

"Omychand, a black Calcutta merchant, gave the sum of Rs. 18,750."

I refer to the word "*black*" which is highly objectionable and I hope you will take it off when bringing out a fresh report. That instead of adding "Mr." or Esq." to a man who contributed the munificent donation of £1,250 is, to my mind, nothing short of insult.

I should, therefore, be happy to know what step you take in the matter.

Yours faithfully,
P. L. Misra.

अनुवाद।

(१)

१४६, टफनल पार्क रोड
लन्दन।
ता० ८ सितम्बर।

महाशय,

मैंने फाउंडलिंग अस्पताल को सन् १९०७ वाली रिपोर्ट पढ़ कर अत्यंत हर्ष और लाभ उठाया। परंतु उसके ३६ वें पृष्ठ पर "वसीयत और दान-पुण्य" शीर्षक के नीचे निम्नलिखित वाक्य पाया जिस पर मुझे बहुत एतराज़ है:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अमीचन्द, एक कलकत्ते के काले सौदागर ने १८,७५० रु० दिये"।

इस वाक्य में मेरा मतलब "काले" शब्द से है जिसे मैं बहुत बुरा समझता हूँ। मुझे आशा है कि नई रिपोर्ट से उसे आप निकाल देंगे। जिस मनुष्य ने इतना बड़ा चन्दा दिया उसके आगे "मिस्टर" या "एक्वायर" न लगाना मेरी समझ में उसके लिये बहुत अपमानजनक है।

इसलिए मुझे यह जान कर बड़ी ख़ुशी होगी कि आप इस विषय में क्या कारर्वाई करते हैं।

आपका
पो० एल० मिश्र।

(2)

REPLY.

FOUNDLING HOSPITAL,
London. W.C.
September 10*th*, 1908.

Secretary's office.

DEAR SIR,

In answer to yours I beg to say that the words you refer to are an extract from the Hospital minutes and I need hardly say that the last thing the Governors would dream of would be to offer or even insinuate any insult to one who had been so good to the Hospital, and I really do not think anybody would dream of putting that construction upon it. I take it the reason for the description was that the Governors of that day hoped that other native merchants might follow his good example.

Yours faithfully,
W. S. Wintle,

(२)

उत्तर का अनुवाद।

फाउंडलिंग अस्पताल
लन्दन।
ता० १० सि० १९०८
मंत्री का आफ़िस

महाशय,

जिन शब्दों का आप हवाला देते हैं वे अस्पताल की रिपोर्ट से लिये गये हैं। मुझे यह कहने की विशेष आवश्यकता नहीं है कि अस्पताल के संचालकों को स्वप्न में भी एक ऐसे अच्छे आदमी का अपमान करने का विचार हुआ हो, न मुझे यह विश्वास है कि कोई मनुष्य उसका ऐसा अर्थ लगावेगा। इस प्रकार लिखने का कारण मुझे यह जान पड़ता है कि कदाचित् दूसरे देशी सौदागर भी उनके अच्छे उदाहरण का अनुकरण करेंगे।

आपका
डब्ल्यु० एस० विंटल।

(3)

MY REPLY.

September 18*th*, 19

DEAR SIR,

Thanks for your letter. I am sorry reasoning did not appeal to me. I do understand why on earth should minute be not corrected, for it is never late to mend a mistake.

A few years back the late Lord S bury called Mr. Dadabhai Naoroji, Liberal M. P. for Central Finsbury, "bl man," and the storm of indignation aroused at the moment, both in this cou and in India alike, on the part of Indi and Englishmen, although Mr. Naoroj fairer than so many Englishmen, ma realised by turning up old files of n papers of the day. I, therefore, think it

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

desirable that the epithet should be expunged and "Indian" added instead. I do not question the motives of the Governors of those days who perhaps were not fairly acquainted with our feelings, but to-day instead of serving as a bait the statement might do an immense harm.

I hope, with this, further correspondence will cease betwen us.

Yours faithfully,
P. L. Misra.

अनुवाद ।

(३)

१८ सितंबर

महाशय,

आपके पत्र के लिए धन्यवाद । मुझे शोक है कि उसका उत्तर मुझे ठीक नहीं जँचा । मेरी समझ में नहीं आता है कि रिपोर्ट क्यों न सही की जाय; क्योंकि भूल जब चाहे सुधार दी जा सकती है ।

कुछ वर्ष हुए मृत लार्ड साल्सबरी ने मि० दादा भाई नौरोजी को, जो उस समय सेंट्रल फ़िन्सबरी की ओर से पार्लीमेन्ट के मेम्बर थे, "काला आदमी" कहा था, हालाँ कि वे बहुत अँगरेज़ों से गोरे हैं। इस शब्द पर जो क्रोध इस देश और भारत में हिन्दुस्तानी और अँगरेज़ों ने ज़ाहिर किया था वह उस समय के समाचारपत्रों को देखने से मालूम हो सकता है । इसलिए मैं बहुत मुनासिब समझता हूँ कि काला "शब्द" निकाल कर "इंडियन" जोड़ देना चाहिए । मुझे उस समय के संरक्षकों के विचारों पर ज़रा भी सन्देह नहीं, पर कदाचित् उन्हें यह ज्ञात नहीं था कि ऐसी बातों से हमारा मन कितना दुखित होगा । आज ऐसे शब्द उत्साहित करने को अपेक्षा हानिकारक हैं ।

आशा है, अब आपके और हमारे बीच अधिक लिखा पढ़ी न होगी ।

आपका
पी० एल० मिश्र ।

Secretary's Reply.

September, 19th.

(4)

Dear Sir,

In answer to yours the note in the Annual report shall, in future, run—"Mr. Omychand, an Indian (Calcutta) Merchant, gave the sum of Rs. 18,756.

Yours faithfully,
W. S. Wintle.

मंत्री का उत्तर ।

(४)

सि० १९

महाशय,

आपके पत्र के उत्तर में लिखा जाता है कि आगे को अस्पताल की वार्षिक रिपोर्ट में ये शब्द रहा करेंगे ।—"मिस्टर अमीचन्द कलकत्ते के इंडियन सौदागर ने १८,७५० रु० दिये" ।

आपका
डब्ल्यु० एस० विंटल ।

इस पत्रव्यवहार से मालूम हो जायगा कि आख़िर यहाँ के लोग ऐसे हठी नहीं हैं । इसमें सन्देह नहीं कि पहले पत्र में मंत्री जी ने कुछ टाल मटोल करनी चाही ; पर अन्तिम पत्र से जाना जाता है कि उनका मन बिलकुल साफ़ था । इसलिए हमने उन्हें फिर धन्यवाद दे दिया ।

प्यारेलाल मिश्र ।

रायबहादुर सर प्रतुलचन्द्र चैटर्जी, एम० ए०, डी० एल०, सी० आई० ई० ।

बंगाल के बाहर जिन प्रतिभाशाली बंगालियों ने अपनी योग्यता के बल पर उच्च पद और सुयश प्राप्त किया है पंजाब चीफ़ कोर्ट के भूतपूर्व जज, राय प्रतुलचन्द्र चैटर्जी बहादुर, उनमें से अन्यतम हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्व-पुरुष और जन्म।

डाक्टर चैटर्जी का जन्म ८ अक्तूबर सन् १८४८ ई० को कलकत्ता नगर में हुआ था। आप चैतल वंश के चट्टोपाध्याय ब्राह्मण हैं। आपके पूर्वजों पर लक्ष्मी और सरस्वती दोनों की कृपा सदा बनी रही है। अर्थात् उनमें से प्रायः सभी लोग विख्यात पण्डित और सम्पत्तिशाली पुरुष थे। जिस समय बंगाल की स्वर्णभूमि में अँगरेज़ों के पैर जमने लगे थे उस समय आपके प्रपितामह के पिता अपने जन्मग्राम को छोड़कर कलकत्ता में आ बसे थे। यहाँ उन्होंने ख़ूब धनोपार्जन किया था। कोई सौ वर्ष पहले आपका घराना कलकत्ता में अत्यन्त प्रतिष्ठित समझा जाता था और वह किसी बड़े से बड़े धनवान् घराने से किसी बात में कम न था। परन्तु आपके पितामह की दशा वैसी न रही। इसलिए मजबूर होकर आपके पिता को सरकारी नौकरी करना पड़ी। कई साल तक डिपटी कलेक्टरी करने के बाद १८५५ ई० में उनका देहान्त हो गया। इस समय प्रतुलचन्द्र की उम्र केवल सात वर्ष की थी। इसलिए आपके तथा आपके और तीन भाइयों के पालन, पोषण और शिक्षण का सम्पूर्ण भार आपकी शोक-विह्वला विधवा माता पर आ पड़ा। परन्तु वे बड़ी ही गुणवती और बुद्धिमती स्त्री थीं; उन्होंने अपना कर्त्तव्य बड़ी योग्यता से पालन किया।

शिक्षा।

प्रतुलचन्द्र की शिक्षा घर ही में शुरू हुई। चार वर्ष की अवस्था में उन्होंने अपनी माता से मातृभाषा बँगला सीखना प्रारम्भ किया। पाँच वर्ष की उम्र में उन्हें इतनी योग्यता प्राप्त हो गई थी कि कृत्तिवास-कृत रामायण आदि ग्रंथ वे अच्छी तरह पढ़ लेते थे। इस समय इनकी असाधारण स्मरण-शक्ति, प्रतिभा, फुरतीलेपन और अध्ययनशीलता को देखकर इनके कुटुम्बी कभी कभी चकित हो जाते थे और बालक प्रतुलचन्द्र की भूरि भूरि प्रशंसा करते थे।

घर की शिक्षा समाप्त करके आप स्कूल में भ... हुए। यद्यपि कलकत्ता के अस्वास्थ्यकर जलवा... के कारण आपका स्वास्थ्य ठीक न रहता था और... लगातार छः वर्ष तक महीने में एक बार आपको बुख़ार आता रहा था तथापि स्कूल और कालेज... आप अपने सहपाठियों से हमेशा बढ़े चढ़े रहते थे। सन् १८६२ ई० में आपने कलकत्ता-विश्वविद्यालय की प्रवेशिका परीक्षा पास की। इसके बाद बी० ए... एम० ए० और बी० एल० की पदवियाँ आपने क्र... से १८६७, १८६९ और १८७० ई० में प्राप्त कीं।

वकालत।

फ़रवरी, १८७० में चैटर्जी महाशय ने कलकत्ता हाईकोर्ट में वकालत प्रारम्भ किया। वकालत शु... करने के पहले उन्होंने कभी किसी अदालत के अन्... पैर न रक्खा था। दो महीने तक आप बराबर हा... कोर्ट जाते रहे; पर कई कारणों से यहाँ आपकी वकालत न चली। इसलिए कुछ तो इस कारण... और कुछ स्वास्थ्य ठीक करने के ख़याल से आप... अपने पुराने अध्यापक और मित्र बाबू नीलाम... मुकुर्जी के परामर्शानुसार, लाहौर जाना निश्च... किया।

लाहौर में पहुँचतेही आपकी वकालत साधारण रूप से चलने लगी। पर जैसी चाहिए वैसी न... चली। इसके कई कारण थे। एक तो यह कि आ... को वकालत का व्यावहारिक ज्ञान और अनुभव... था और दूसरे यह कि आप वाचाल ज़रा कम थे। इसके सिवा आत्मश्लाघा, परनिन्दा, चलताऊपन... आदि गुण या दुर्गुण भी, जिनकी कामयाब वकी... बनने के लिए बड़ी ज़रूरत है, उस समय आप... न थे। धीरे धीरे, कोई चार वर्ष बाद, आपकी वकालत ख़ूब धड़ाके से चलने लगी। आपकी सच्चरित्रता, नम्रता और असाधारण योग्यता... शुहरत चारों ओर फैल गई। केवल मुवक्किल... साथी वकील ही नहीं किन्तु चीफ़ कोर्ट के जज और उच्च पदाधिकारी अँगरेज़ तक आपको आदर की...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से देखने लगे। कुछ ही दिनों में आप पंजाब के सर्व-प्रधान वकीलों में समझे जाने लगे।

चीफ़ कोर्ट की जजी।

सन् १८८९ ई० तक आप निर्विघ्न वकालत करते रहे। इस साल तीन महीने के लिए आप चीफ़ कोर्ट के जज बनाये गये। इसके बाद १८९४ में आप फिर थोड़े दिनों के लिए चीफ़ कोर्ट के जज हुए। १८९८ में आप इस पद पर दृढ़ रूप से नियुक्त कर दिये गये। तब से लेकर कुछ महीने पहले तक आप इस उच्च और प्रतिष्ठित पद के गुरुतर कार्य्यों को बड़ी ही योग्यता और दक्षता से निर्वाह करते रहे। ८ अक्तूबर, १९०८ को आप इस पद से अलग हुए।

राजनैतिक तथा नागरिक कार्य्य।

चैटर्जी महाशय के राजनैतिक विचार वैसे ही हैं जैसे कि अधिकांश शिक्षित भारतवासियों के। आपने अपने कई मित्रों की सहायता से लाहौर में इंडियन एसोसियेशन नाम की एक राजनैतिक सभा स्थापित की थी। सुनते हैं कि यह सभा अब भी जीवित है और अपना काम करती जाती है। जिन लोगों ने ट्रिब्यून नामक अँगरेज़ी दैनिक समाचारपत्र निकाला था उनमें आपका भी नाम है। इस पत्र में आप अर्से तक लेख भी लिखते रहे थे। सन् १८८२ से आप लाहौर म्यूनीसिपेलिटी में भी स्वार्थ लेने लगे थे। इसी साल गवर्नमेंटहाउस में जाने का अधिकार भी आपको मिला था। म्यूनीसिपेल कमिटी का संस्कार करने के लिए आपने १८८४ ई० में उसके नियमों का एक मसौदा तैयार किया। इसे पंजाब के छोटे लाट ने बहुत पसंद किया। १८८६ ई० में गवर्नमेंट ने आपको म्यूनीसिपेलिटी का मेम्बर नियुक्त किया। इस दशा में आपने राजा-प्रजा का बहुत कुछ हितसाधन किया।

विश्वविद्यालय-सम्बन्धी कार्य्य।

सन् १८८६ ई० में आप पंजाब-विश्वविद्यालय के फ़ेलो चुने गये। थोड़े ही दिनों बाद आप क़ानून की फ़ैकल्टी के सेक्रेटरी बनाये गये। इस पद का काम आप १८९८ ई० तक करते रहे। इस साल आप इस फ़ैकल्टी के 'डीन' नियत हुए। जब १८८७ ई० में विश्वविद्यालय में कुछ गड़बड़ हुई थी तब आपने उसके दूर करने और विश्वविद्यालय की दशा सुधारने के सम्बन्ध में बड़ा काम किया था। इस उपलक्ष्य में आपको दूसरे साल रायबहादुरी की उपाधि मिली। तब से लेकर अब तक आपने विश्वविद्यालय-सम्बन्धी न मालूम कितने काम किये हैं। १९०४ में आप उसके "वाइस चैंसलर" नियुक्त किये गये। १९०७ में आप इस पद पर पुनर्वार नियत किये गये और अब भी इस उच्च पद पर प्रतिष्ठित हैं।

सर्वसाधारण के कामों से सम्बन्ध।

यद्यपि आपको सरकारी कामों से बहुत कम समय मिलता था तथापि आप सर्वसाधारण के काम करने से भी पश्चात्पद न होते थे। १९०१ में आप लाहौर की पबलिक लाइब्रेरी के प्रेसीडेंट बनाये गये। इस दशा में आपने गवर्नमेंट से १०००० रुपये एकमुश्त और ३०० रुपये मासिक सहायता दिलवा कर इस पुस्तकालय, अतएव सर्वसाधारण, का बड़ा उपकार किया। इस समय यह पुस्तकालय बहुत अच्छी हालत में है। सन् १८९७ ई० में पंजाब के हिन्दुओं ने "विक्टोरिया जुबिली टेकनिकल इन्स्टीट्यूट" नामक एक शिल्पविद्यालय क़ायम किया। आप इसके प्रेसीडेंट बनाये गये। इस पद पर आप कोई दस वर्ष तक प्रतिष्ठित रहे। शुरू में इसको उतनी सहायता नहीं मिली जितनी कि मिलना चाहिए था। पर आपने बड़ी कोशिश करके २०००० रुपये एकमुश्त और १०० रुपये मासिक सहायता स्वरूप गवर्नमेंट से तथा ५००० रुपये महाराजा पटियाला से दिलवाये। यह विद्यालय पहले की अपेक्षा अब अच्छी हालत में है। इसी तरह आपने और भी न मालूम कितने सार्वजनिक कामों में सहायता देकर और दिलवाकर सर्वसाधारण का अनन्त उपकार किया है। उन सब का ब्योरेवार वृत्तान्त लिखकर हम इस लेख को बढ़ाना नहीं चाहते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरकारी सम्मान।

आप राजा-प्रजा दोनोंही के विश्वास, प्रीति और सम्मान के भाजन हैं। यह हम लिख चुके हैं कि १८८८ में आप राय बहादुर बनाये गये थे। सन् १९०३ में आप की योग्यता और परोपकार-सम्बन्धी कामों के उपलक्ष्य में आपको सी० आई० ई० की प्रतिष्ठित उपाधि से विभूषित करके गवर्नमेंट ने अपनी गुणग्राहकता का परिचय दिया। गत वर्ष कलकत्ता-विश्वविद्यालय ने, अपने जुबिली-उत्सव के अवसर पर, आपको डी० एल० (क़ानून के आचार्य्य) की पदवी प्रदान की। १८९९ ई० में कुछ महीनों के लिए गवर्नमेंट ने आपको बड़े लाट की कौंसिल का मेम्बर भी बनाया था।

उपसंहार।

डाक्टर चैटरजी महाशय असाधारण विद्वान्, बुद्धिमान्, ज्ञानवान्, न्यायी, और अनुभवी पुरुष हैं। आपके समान सच्चरित्र, सौम्य, परोपकारी, उदार, शीलवान्, नम्र और धार्म्मिक मनुष्य इस देश में अधिक न होंगे। ईश्वर करे आप चिरकाल तक जीवित रहकर अपने अनुभव और ज्ञान से इस देश को लाभ पहुँचाते रहें।

उदयनारायण वाजपेयी।

अमृतसर का स्वर्णमन्दिर।

पंजाब में अमृतसर एक छोटा सा गाँव था। उस समय उसका नाम चक था। पर अब मनुष्य-गणना के अनुसार वह भारतवर्ष में १९ वाँ और पंजाब में तीसरा शहर है। सिक्खों के चौथे गुरु रामदास ने तीसरे गुरु अमरदास जी की आज्ञा से विक्रम संवत् १६२९ में इस शहर की नीव डाली और अपने नाम पर नगर का नाम रामदासपुर रक्खा। गुरुजी ने पहले अपने ही रहने के लिए वहाँ मन्दिर बनवाये। वे अब तक गुरु के महलों के नाम से प्रसिद्ध हैं। उसके बाद गुरुजी ने मकानों के आस पास [illegible] जातियों के लोग बसाये।

विक्रम संवत् १६३४ के माघ मास में गुरुजी [illegible] अपने अनेक शिष्यों को बुलवाकर शहर के केन्द्र [illegible] में एक भारी तालाब खुदवाना आरंभ किया। [illegible] भी अपने कर-कमलों से कभी कभी उसकी मिट्टी निकालते थे। बनने पर उसका नाम आपने अमृतसर रक्खा। तब से, विशेष करके रणजीतसिंह के समय से, इसकी उत्तरोत्तर उन्नति होती गई। अब इस समय यह तालाब ४७५ फ़ुट लंबा और इतनाही चौड़ा है। इसके चारों ओर संगमरमर और काले तथा [illegible] पत्थर के चौकोने तख़्तों से बना हुआ २४ फ़ुट चौड़ा फ़र्श है। तालाब में सब तरफ़ नीचे से ऊपर तक संगमरमर की सीढ़ियां हैं। तालाब के तीन तरफ़ राजाओं और सरदारों के मकान हैं। उत्तर की तरफ़ एक बड़े भारी बुर्ज में घण्टाघर है, जिसका शब्द सारे शहर में सुनाई देता है। तालाब में जल बहुत गहरा है। इस पवित्र तालाब के पास कोई आदमी जूता पहन कर नहीं जा सकता और न उसमें [illegible] वित्र वस्त्र ही धो सकता है।

तालाब के बीच में स्वर्ण-मन्दिर अर्थात् सिक्खों का गुरुद्वारा है। इस मन्दिर के चार नाम हैं:—१-[illegible] बार साहिब, २—हरिमन्दिर, ३—गुरुद्वारा, ४-स्वर्ण मन्दिर। तालाब के बीचमें ६५ फ़ुट लंबे और इतने ही चौड़े चबूतरे पर मन्दिर बना हुआ है। तालाब के पश्चिमी किनारे से मन्दिर तक २०० फ़ुट लंबा पुल है। इसके पश्चिम तरफ़ एक मेहराबदार फाटक है। पुलका फ़र्श सफ़ेद और नीली मार्बल (एक तरह का मरमर) पटियों से बना है। उसके दोनों किनारों पर चमकीले मार्बल के खँभों पर २० सुनहले लैम्प टेन लगे हैं।

मन्दिर की लंबाई पश्चिम से पूर्व तक ५५ फ़ुट और चौड़ाई लगभग ३५ फ़ुट है। मन्दिर के [illegible] भाग पर, बीच में, एक बड़ा गुँबज़ है। चारों [illegible] पर भी चार छोटे छोटे गुँबज़ हैं। मन्दिर की [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

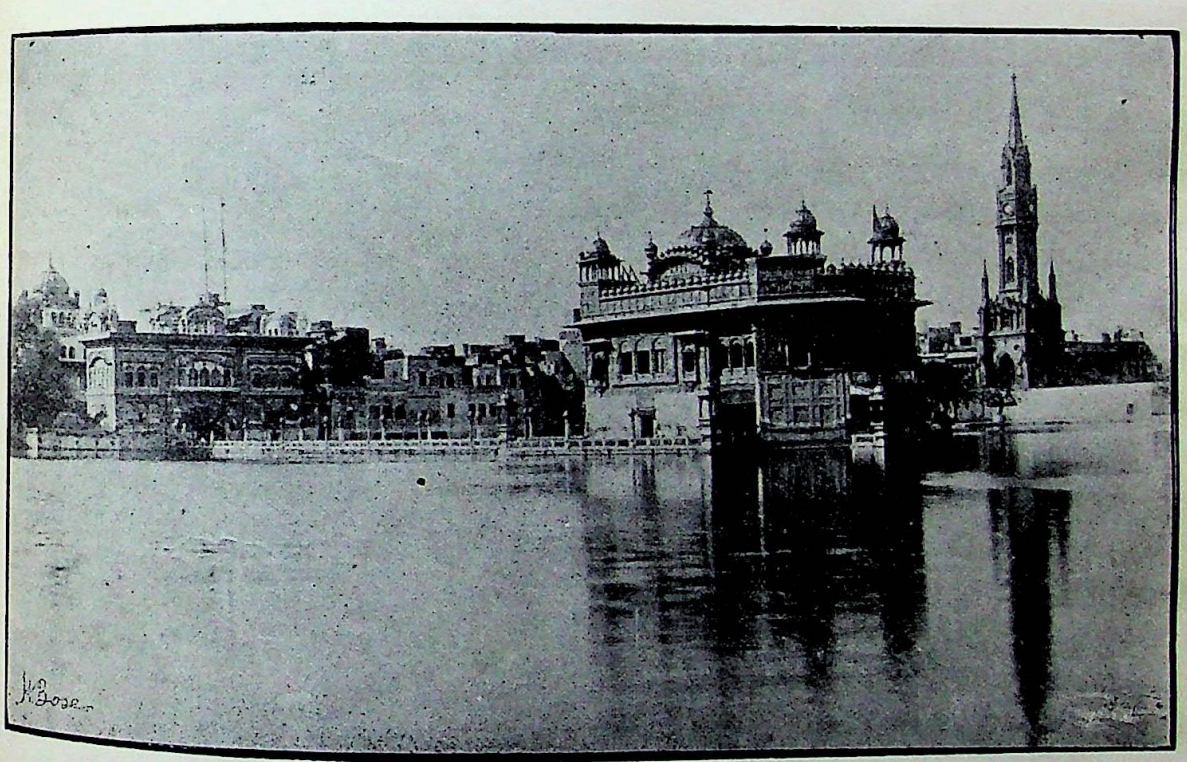

अमृतसर का स्वर्णमन्दिर।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के नीचे का भाग सफ़ेद मार्बल का है। उस पर अनेक रंगों के बहुमूल्य पत्थर जड़ कर स्थान स्थान पर चित्र बनाये गये हैं। ऊपर के भाग तथा सब गुंबज़ों पर तांबे के पत्र जड़ कर सोने का मुलम्मा किया हुआ है। इसीलिए यह स्वर्ण-मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। मन्दिर की दीवार पर गुरुमुखी अक्षरों में ग्रन्थ-साहिब के बहुत से पद्य खुदे हुए हैं। मन्दिर के दरवाज़ों पर चांदी का काम बहुत ही सुन्दर है। मन्दिर का भीतरी बाहरी दृश्य दोनों बहुत ही हृदयग्राही हैं। छत में छोटे छोटे कांच जड़ कर कुन्दन किया हुआ है। फ़र्श में सफ़ेद और नीले क़ीमती पत्थर के टुकड़े बड़ीही ख़ूबसूरती से जड़े हुए हैं।

पूर्व की ओर मन्दिर का प्रधान ग्रंथी चमर हाथ में लिए बैठा रहता है। बीच में एक चादर बिछी रहती है। उस पर यात्री लोग रुपये, पैसे, कौड़ी, फूल, मोहनभोग इत्यादि चढ़ाते हैं।

सिक्ख लोग अपने ग्रन्थ को ईश्वर के समान मानते हैं। इस लिए वे लोग प्रति दिन प्रातःकाल ग्रन्थ को वेठन से सँवारते हैं। उसे चाँदनी के भीतर गद्दी पर रख कर उस पर चँमर करते हैं। संध्या-समय उसे निकट के पवित्र मन्दिर में लेजाते हैं जहां रातको सुनहले बिस्तर पर उसे सुलाते हैं। मन्दिर के ऊपरी खण्ड में एक छोटा सा परन्तु ख़ूब सजा हुआ एक शीशमहल है। वहाँ सिक्खों के गुरु बैठते थे। वहाँ मोर-पंख की झाड़ू से बुहारी लगाई जाती है। यहाँ चाँदी के पत्र जड़े हुए दरवाज़े के पास ख़ज़ाने को सीढ़ियां गई हैं। वहाँ ९ फ़ुट लंबे और ४½ इंच व्यास के चाँदी के ३१ खोल हैं। चार इनसे भी बड़े हैं। ख़ज़ाने में एक बड़ा सा सन्दूक है। उसमें सुनहले मुलम्मे के तीन सोंटे एक पंखा और दो चमर हैं। पाँच सेर ख़ालिस सोने की एक चाँदनी है जिस पर लाल, पन्ने और हीरे जड़े हुए हैं। मन्दिर का एक नक़्शा भी यहाँ बहुत अच्छा है। इसके सिवा मोतियों की झालरदार हीरों का एक सुन्दर मुकुट भी है जिसे नवनिहालसिंह जी पहनते थे। और भी बहुत सी दर्शनीय चीज़ें यहाँ रक्खी हैं। ग्रन्थ की यात्रा के समय ये सब चीज़ें उसके साथ जाती हैं।

मन्दिर के चारों तरफ़ जो फ़र्श है उस पर सफ़ेद और नीले मार्बल के टुकड़े बहुत ही सुन्दरता से खचित किये हुए हैं। जगह जगह पर मार्बल के गुंबज़दार छोटे छोटे खंभे हैं।

मन्दिर में और उसके आस पास नानकशाही लोग दिन रात भजन पूजन किया करते हैं। यात्रियों की सदा भीड़ रहती है। विशेष करके दिवाली और वैशाखी को बड़ा मेला होता है। मन्दिर में नानकशाही पुजारी रहते हैं। मन्दिर के आस पास कोई जूता नहीं ले जा सकता।

यूरोपियन और मुसलमान आदि लोग उत्तर की ओर से मन्दिर का दर्शन करते हैं।

तालाब के पश्चिमी किनारे पर पुल के पास बड़े बड़े दो झंडे हैं। उनसे थोड़ीही दूर पर पांचवें गुरु अर्जुनसिंह के समय का बना हुआ एक सिक्ख-मन्दिर है। उसे अकाल-बुङ्गा कहते हैं। उसके भी गुंबज़ पर सुनहला मुलम्मा है। सीढ़ियों द्वारा मन्दिर में जाना होता है। मन्दिर में सुनहले सिंहासन पर वस्त्र से ढकी हुई कई चीज़ें रक्खी हैं। उनमें से चार फ़ुट लंबी गुरु गोविन्दसिंह जी की एक तलवार और एक सोंटा है। यहीं सिक्ख लोगों का पौहल संस्कार होता है।

तालाब से दक्षिण की तरफ़ गुरु का एक बहुत बड़ा बाग़ है। उसमें अनेक सुन्दर सुन्दर फ़ौवारे हैं। बाग़ के पूर्व बिजली का इँजिन है जिससे समस्त दरबार में रोशनी होती है। दिवाली और वैशाखी पर साधु महात्मा इस बाग़ में आकर ठहरते हैं। वहाँ पर गृहस्थ आदमी उन्हें अन्न वस्त्र आदि देते हैं।

बाग़ में भी गुरु का लङ्गर (क्षेत्र) है। वहाँ भी साधुओं को अन्न मिलता है।

जगन्नाथ पुच्छरत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोयले की उत्पत्ति।

कोयले से हमारा मतलब उस कोयले से है जो ज़मीन के भीतर खानों से निकलता है। किसी किसी का ख़याल है कि वह पत्थर का कोयला है। पर यह ख़याल सही नहीं। ज़मीन से निकलनेवाला कोयला भी लकड़ी ही का है और वह भी उसी तरह उष्णता के संयोग से बना है जिस तरह कि मामूली कोयला भट्टों वग़ैरह में बनाया जाता है।

संसार में जितनी चीज़ें हैं सब एक रस नहीं रहतीं। उनमें फेर फार हुआ करते हैं। जहाँ पर बैठे हुए हम यह लेख लिख रहे हैं वहाँ, सम्भव है, किसी समय अगाध समुद्र भरा रहा हो। या जहाँ यह लेख छपेगा वहाँ किसी समय भयावना जंगल रहा हो और दिन दोपहर शेर दहाड़ा करते रहे हों। जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं वह पहले और ही तरह की थी। उसमें पानी बहुत अधिक था। अब भी उसपर ३/४ पानी है और सिर्फ़ १/४ ज़मीन। पर किसी समय ज़मीन इससे भी कम थी। सैकड़ों कोस तक इस पर लंबी लंबी झीलें चली गई थीं। दूर दूर तक, पहाड़ों की तराइयों और घाटियों तक में, पानी भरा हुआ था। जगह जगह पर दलदली ज़मीन था। पानी की अधिकता होने के कारण पानी के जीवों की भी अधिकता थी। मगर की शकल के बड़े बड़े भीमकाय मांसभक्षी जानवर नदियों और झीलों में भरे हुए थे। आजकल के बड़े बड़े घड़ियालों से भी वे कई गुना बड़े होते थे। उनकी हड्डियां, जो ज़मीन में गड़ी हुई पाई गई हैं, इस बात का प्रमाण देती हैं कि ये जीव बड़ेही विलक्षण, बलवान् और रक्त-पिपासु थे। उस समय कोई कोई जीव ऐसे थे जिनकी शकल कुछ तो चिड़ियों की शकल की थी और कुछ मगर, घड़ियाल आदि जलचर जीवों की शकल की। उनके पंख होते थे और वे आकाश में आसानी से उड़ा करते थे।

घास, लता, पेड़ आदि के लिए पानी बहुत दरकार होता है। बिना पानी के वे नहीं रह सकते। जहाँ पानी की अधिकता होती है वहाँ इनकी भी अधिकता होती है। इस देश के जिन प्रान्तों में पानी बहुत बरसता है वहाँ अब भी नारियल, केला, सुपारी आदि के जंगल सैकड़ों कोस तक चले गये हैं। जिधर आँख उठाइए हराही हरा देख पड़ता है। पर पुराने समय में, जब पानी की आजकल की अपेक्षा अत्यधिक अधिकता थी, पृथ्वी पर पेड़ों की भी बेहद अधिकता थी। बड़े बड़े घोर जंगलों से पृथ्वी व्याप्त थी। पेड़ आसमान से बातें करते थे। उनके तने की मुटाई देखकर आश्चर्य्य होता था। उनके सामने आजकल के साखू और सागोन के पेड़ कोई चीज़ ही नहीं। नीचे की डालियाँ उनकी गिरती चला जाती थीं और वे ऊँचे आसमान की तरफ़ बढ़ते जाते थे। जो डालियाँ ज़मीन पर गिर जाती थीं वे वहीं पड़ी रह जाती थीं। जो पेड़ पुराने हो जाने पर गिर पड़ते थे या आँधी-तूफ़ान से उखड़ जाते थे वे भी वहीं ज़मीन पर पड़े रह जाते थे। इस तरह गिरे हुए पेड़ों की तह ज़मीन पर बराबर चली जाती थी। उधर प्रति दिन नये नये पेड़ पैदा होते जाते थे और जंगलों की वृद्धि करके यथा-समय पुराने होकर, या असमय में ही तेज़ हवा से उखड़ कर, या कीड़ों इत्यादि के खाने से कमज़ोर होकर गिर जाते थे। इसी तरह पुराने जंगलों की जगह नये नये जंगल हो गये और यथा-समय वे भी गिरकर पृथ्वी के भीतर दब गये। इसका फल यह हुआ कि ज़मीन पर पेड़, पत्ती, डाली, तने इत्यादि की तहें की तहें जमती चली गईं और सूर्य की गरमी से ऊपर की तहों के बोझ से दबकर काली होती गईं।

कभी कभी ऐसा भी हुआ है कि भूकम्प इत्यादि के कारण समुद्र अपनी जगह से हट आया है और पास के बड़े बड़े जंगलों को अपने पेट में करके उसने अपना अगाध जल भर दिया है। बहुत से जंगल ऐसे होंगे जो अभी तक समुद्र के भीतर पड़े होंगे। कभी कभी समुद्र के भीतर की ज़मीन

CC-0: In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राकृतिक कारणों से ऊपर को उठ आती है। वहाँ का पानी हट कर दूसरी जगह चला जाता है। इस तरह निकली हुई ज़मीन के भीतर दबे हुए पुराने जंगल फिर पानी के बाहर आ जाते हैं। विद्वानों का अनुमान है कि यह इतना बड़ा हिमालय पर्वत किसी दिन समुद्र के भीतर डूबा हुआ था। किसी प्राकृतिक घटना के कारण समुद्र वहाँ से हट गया और यह बाहर निकल आया। इसके प्रमाण हिमालय ही में मौजूद हैं। यह कोई गप नहीं है। अब तक उसमें जलजीवों की हड्डियाँ मिलती हैं, जो इस अनुमान को अच्छी तरह पुष्ट करती हैं।

भू-गर्भ-विद्या के जाननेवालों ने पता लगाया है कि ज़मीन का कोई कोई भाग दस दस पन्द्रह पन्द्रह बार समुद्र के भीतर डूब गया है और हज़ारो वर्ष डूबा रह कर फिर बाहर निकला है। बार बार उस पर जंगल उगा है और बार बार वह डूबा है। इस तरह डूबने और निकलने में दो चार नहीं, दस दस बीस बीस तहें जंगलों की ज़मीन में जम गई हैं और धीरे धीरे कोयला हो गई हैं। जो कोयला ज़मीन से निकलता है उसमें पेड़ों की पत्तियों इत्यादि की शाकलें पूर्ववत् बनी हुई पाई जाती हैं। वे कोयला बन कर जैसी की तैसी रह गई हैं। कभी कभी पेड़ के पेड़ कोयले के रूप में पृथ्वी के भीतर देखे गये हैं। पेड़ों की क़तारें पूर्ववत् खड़ी पाई गई हैं; पर सब कोयले के रूप में।

पृथ्वी को पैदा हुए अनन्त काल हो चुका। तब से न मालूम कितने जंगल, कितने पहाड़, उसके भीतर धँस गये और कितने समुद्र में डूब गये और फिर निकले। नहीं मालूम उसके पेट में कितना कोयला भरा हुआ है। यह कोयला तैयार होने में भी हज़ारों या लाखों वर्ष लगे होंगे।

भूगर्भ-विद्या के बल से विद्वान् इस बात का पता लगा लेते हैं कि किस जगह ज़मीन में कोयला है। जहाँ उसका पता लगता है वहाँ, आवश्यकता होने पर, उसके निकालने का प्रबन्ध किया जाता है। इँगलैंड में कोयले की बहुत खाने हैं। वह द्वीप अनन्त काल तक समुद्र के भीतर रहा है; फिर बाहर आया है; फिर जंगलों समेत डूबा है। वहाँ की ज़मीन में बेहद कोयला है। पर इस देश में भी कोयला कम नहीं। हैदराबाद, रीवाँ, रानीगंज आदि की खानों में अतुलनीय कोयला भरा पड़ा है।

कोयले से बड़े काम निकलते हैं। कल, कारख़ाना, रेल इत्यादि के यंजिनों में ज़मीन के भीतरही का कोयला ख़र्च होता है। ईश्वर ने ईंधन के इस बहुत बड़े ख़ज़ाने को पृथ्वी के पेट में पैदा करके हम लोगों पर बड़ा उपकार किया है।

कोयले की खानें बहुत बड़ी बड़ी होती हैं। उनके भीतर सड़कें, रास्ते, गलियाँ आदि बना दी जाती हैं। हज़ारों आदमी उनके भीतर काम करते हैं। पृथ्वी के भीतर एक शहर सा बस जाता है। कलों की मदद से कोयला बाहर निकाला जाता है। कोयले की खानों में कभी कभी आग लग जाती है। आग का लगना बड़ाही भयङ्कर व्यापार है। उससे बहुत जीव-हानि होने को सम्भावना रहती है। पर ऐसी ऐसी दुर्घटनायें कम होती हैं।

चित्र-दर्शन।

कैकेयी और मन्थरा।

बाबू बामापद वन्द्योपाध्याय के दो एक चित्र सरस्वती में निकल चुके हैं। इस संख्या में उनका एक और चित्र प्रकाशित किया जाता है। यह भी आपके चित्रविद्याचातुर्य्य का अच्छा नमूना है। जिस दुष्टा के बहकाने से पति की इच्छा के विरुद्ध और लोकापवाद की परवा न करके कैकेयी ने आज्ञाकारी पुत्र रामचन्द्र को वनवास की आज्ञा दी और सदा के लिए अपने माथे पर कलङ्क का टीका लगाया, वही "सब गुण भरी बैतरा सोंठ" रूपी मन्थरा अपने उद्देश की सिद्धि हो जाने पर कपट-पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावभङ्गी से अपने को निर्लोभ, निःस्वार्थ और सीधी सादी सिद्ध करती हुई चित्र के एक ओर खड़ी है और दूसरी ओर खड़ी हुई कैकेयी उसके स्वार्थ-पूर्ण परामर्श से प्रसन्न होकर अपना एक अलङ्कार उसे देने के लिए उतार रही है। कैकेयी तो उसे अपना बहुमूल्य हार दे रही है; पर मन्थरा उसे लेने से इनकार कर रही है।

पुस्तक-परीक्षा।

१—सुदामा नाटक। बाबू शिवनन्दनसहाय द्वारा लिखित और आरा-निवासी बाबू सिद्धनाथसिंह द्वारा प्रकाशित। दो आने में प्रकाशक से प्राप्य। तीन अङ्क के इस छोटे से नाटक में कृष्ण के मित्र सुदामा के द्वारकापुरी जाने और उसके सम्बन्ध की घटनाओं का वर्णन है। नाटक गद्य-पद्यमय है। पद्य भाग कुछ नीरस है। नाटककार ने सुदामा की अपेक्षा उनकी स्त्री की भाषा न जानें क्यों अधिक शुद्ध और संस्कृत-बहुल रक्खी है। फरुही, बाहुरी, चिबावें, गुहराऊँ इत्यादि प्रान्तिक शब्दों का प्रयोग पुस्तक में न होता तो अच्छा था।

❀

२—शिक्षा। सर गुरुदास वन्द्योपाध्याय ने बङ्ग-भाषा में शिक्षा नाम की एक छोटी सी पुस्तक लिखी है। उसी का यह हिन्दी-अनुवाद है। अनुवादक और प्रकाशक पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी नं० ७२। ३ चासाधोबापाड़ा स्ट्रीट, कलकत्ता है। आपही इसे छः आने में बेचते हैं। इस पुस्तक में क्रम से शिक्षा के उद्देश, विद्यार्थियों के स्वभाव, शिक्षकों के लक्षण, शिक्षा के विषय और उपकरण तथा उसकी प्रणाली का संक्षिप्त वर्णन है। शिक्षक तथा शिक्षाकार्य्य से सम्बन्ध रखनेवाले अन्य लोग भी इसे पढ़ कर बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। पुस्तक बहुत उपयोगी है।

❀

३—तिरहुतसमाचार। २५ दिसम्बर, १९०८ ई० से प्रति सप्ताह मुज़फ़्फ़रपुर से निकलता है। प्रत्येक अङ्क में क्राउन आकार के चार पृष्ठ रहते हैं। वार्षिक मूल्य दो रुपये। सम्पादक पण्डित योगानन्द कुमार इसमें समाचारों की अधिकता रहती है। कुछ दिन और निकलने के बाद इसकी समालोचना करना उचित होगा। मिलने का पता—मैनेजर, तिरहुत समाचार, मुज़फ़्फ़रपुर।

❀

४—मिथिलामिहिर। "विविध विषय विभूषित मासिकपत्र।" सम्पादक पण्डित विष्णुकान्त झा बी० ए०। वार्षिक मूल्य दो रुपये। इसकी प्रथम संख्या हमारे सामने है। इसमें रायल अठपेजी आकार के बत्तीस पृष्ठ हैं। काग़ज़-छपाई साधारण है। पत्र का मुख्य उद्देश मिथिलावासियों की उन्नति करना है। इसलिए इसमें हिन्दी के लेखों के सिवा मिथिला भाषा के भी लेख रहते हैं। लेख साधारण अच्छे हैं और मिथिलावासियों के लिए उपयोगी हैं। रँग ढँग देखने से पत्र होनहार मालूम होता है। मिलने का पता—मैनेजर, मिथिलामिहिर, दरभंगा।

❀

५—Trilingual Treasury अर्थात् त्रैभाषिक कोश। इसमें अँगरेज़ी, हिन्दी और बँगला के तीन हज़ार समानार्थवाची शब्द दिये हुए हैं। ये अकारादि क्रम से नहीं दिये गये। वे पैंतीस भागों में अलग अलग दिये गये हैं। भागों के शीर्षक कई प्रकार हैं—प्रकृति, जाति, कुटुम्ब, शरीर, पशु, वृक्षलता इत्यादि। सबके पीछे अँगरेज़ी सीखनेवालों के सुभीते के लिए अँगरेज़ी-व्याकरण-सम्बन्धी कुछ नियम भी हैं। यह पुस्तक विद्यार्थियों के लिए ही उपयोगी होने के सिवा उन लोगों के लिए भी उपयोगी है जो बँगला सीखना चाहते हैं। श्रीविद्यानन्द सरस्वती विद्यालय के शिक्षक पण्डित हरिनारायणलाल ने इसकी रचना की है और बाबू हरिदास सरकार, १७ सरकारलेन, कंसारीपाड़ा, कलकत्ता ने प्रकाशित किया है। प्रकाशक से छः आने में मिलती है।

Printed and published by Panch Kory Mittra at the Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती।

भाग १०] १ एप्रिल, १९०९। चैत्र शुक्ल ११, १९६५। [संख्या ४

विविध विषय।

१—मख़ज़न की उर्दू-सभा।

दिसंबर, १९०८ के 'मख़ज़न' में उसके सम्पादक शेख़ अब्दुल क़ादिर साहब ने 'उर्दू-सभा' नामक एक लेख लिखा है। इस लेख में आपने उर्दू भाषा के प्रचार पर बहुत ज़ोर दिया है और कुछ अमूलक और परस्पर-विरुद्ध बातें लिख कर उन प्रयत्नों को भी वर्णन किया है जिनसे उर्दू भाषा शीघ्र उन्नति कर सकती है।

आरम्भ ही में आपने बतलाया है कि उर्दू भाषा के प्रचारार्थ एक सभा बनानी चाहिए जिसका नाम उर्दू-सभा हो। इस भ्रमकारी नाम के सम्बन्ध में आप लिखते हैं कि—"यह नाम उर्दू और हिन्दी की पायदार आशती की नेक-फ़ाल हो। एक लफ़्ज़ फ़ारसी असल का और दूसरा ठेठ हिन्दी असल का मिलकर उस तरकीब को याद दिलाये जिससे यह बोली बनी थी और जिसे आज हम अपने घरों में बोलते हैं"।

इन पंक्तियों में 'उर्दू-सभा' नाम में यह विशेषता दिखलाई गई है कि यह नाम उर्दू और हिन्दी के पारस्परिक सम्बन्ध का स्मारक है। यह सम्बन्ध केवल नाम मात्र ही रहेगा या उसका प्रभाव इस सभा के उद्देशों पर भी पड़ने दिया जायगा? मिस्टर अब्दुलक़ादिर के लेख से तो केवल यही जान पड़ता है कि इस नाम की ओट में उर्दू ही की—उस उर्दू की जो मख़ज़न में लिखी जाती है—उन्नति का प्रयत्न किया जायगा। तो फिर 'सभा' शब्द को नाम में रखकर दूसरों को भ्रान्ति में डालने से क्या लाभ? ऐसी सभा और यह नाम उर्दू भाषा की उत्पत्ति को भलेही याद दिलाया करे और उर्दू का हिन्दी की पुत्री होना भले ही सूचित किया करे, परन्तु इससे उस भाषा की उन्नति होना,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसे हम लोग अपने घरों में बोलते हैं, सरासर असम्भव है।

यह सच है कि आधुनिक उर्दू में कुछ शब्द हिन्दी के भी पाये जाते हैं, परन्तु उर्दू का जितना सम्बन्ध फ़ारसी और अरबी से है उतना हिन्दी से कदापि नहीं। इसका प्रमाण आज कल की उर्दू मासिक पुस्तकों में भली भाँति मिल सकता है:—जैसे ज़माना, मख़ज़न, ज़बान इत्यादि।

आगे चलकर आप फ़रमाते हैं कि "इस मजलिस की बुनियाद इख़्तलाफ़ के मिटाने और इत्तहाद के पैदा करने के मुस्तहकम उसूलों पर रक्खी जाय। हिन्दी-प्रचारनी (?) सभा और अंजुमन-तरक़ीए उर्दू या और इसी क़िस्म की जमाअतें अपने अपने मुक़ाम पर वह मुफ़ीद काम बराबर करती रहें जो वह कर रही हैं। मगर एक जमाअत ऐसी हो जिसका काम किसी फ़िर्क़े के मक़ासिद ख़ास तक महदूद न हो।"

इस विचार में भी उसी भ्रान्ति की झलक दिखाई देती है जिसका ज़िक्र ऊपर किया गया है। न मालूम शेख़ साहब कौन सा पारस्परिक भेद मिटाने और किस प्रकार की एकता फैलाने के लिए 'उर्दू-सभा' की आवश्यकता समझते हैं। यदि उनका यह अभिप्राय है कि हिन्दी और उर्दू सभाओं में एकता फैले तो यह समझ में नहीं आता कि 'उर्दू-सभा' से यह मतलब कैसे सिद्ध होगा। 'हिन्दी-प्रचारनी सभा' और अंजुमन-तरक़ीए-उर्दू इन दोनों के दो भिन्न भिन्न उद्देश हैं। अतएव कोई तीसरी सभा या अंजुमन, जिसका उद्देश केवल उर्दू का प्रचार करना हो, न तो इनमें मेल करा सकती है और न इनकी प्रतिनिधि हो सकती है।

अन्त में जो सात उद्देश इस 'उर्दू-सभा' के बतलाये गये हैं उनमें कहीं भी इस बात का संकेत तक नहीं कि हिन्दी की उन्नति पर भी कुछ ध्यान दिया जायगा। फिर न मालूम इस 'सभा' में और 'अंजुमने-उर्दू' में क्या अन्तर* है।

* यह नोट पंडित ओंप्रकाश शर्मा का भेजा हुआ है।

२—भारतीय शिल्प-शास्त्र।

हमारे पूर्वजों ने अन्य विद्याओं के साथ साथ शिल्पविद्या में भी अच्छी उन्नति की थी। उन्होंने इस विषय के कितने ही शास्त्र भी बना डाले थे। यद्यपि कई कारणों से इन शास्त्रों का मिलना इस देश में कठिन हो गया है तथापि वे एक दम लुप्त नहीं हो गये। कुछ दिन हुए ऐसे तीन शिल्पशास्त्रों का पता लङ्का के एक नगर में लगा था। अब उनकी एक एक प्रति कोलम्बो के सरकारी अजायबघर में रक्खी गई है। इन ग्रंथों में मूर्तिनिर्माण-विद्या का वर्णन है। ये तीनों ग्रंथ इस समय बड़ी रद्दी हालत में हैं। उनका उपयोग करके उनसे लाभ उठाने वाले शिल्पकार अब न तो भारत ही में हैं और न लङ्का ही में। इसी से उनकी यह दुर्दशा हुई है। इन ग्रंथों के विषय में सुप्रसिद्ध शिल्पविद्याविशारद डाक्टर कुमारस्वामी ने पूर्वीय विद्वानों की कांग्रेस में एक लेख पढ़ा था। डाक्टर कुमारस्वामी का कथन है कि ये तीनों ग्रन्थ ईसा की तीसरी और छठी शताब्दी के बीच में उत्तरीय भारत में बने थे। इन ग्रंथों का सम्बन्ध बौद्धधर्म से है। जब उत्तरी भारत में बौद्ध धर्म का ह्रास होने लगा तब इन ग्रंथों की क़द्र भी लोगों के दिलों में कम हो गई। इसलिए इन लोग उत्तरी भारत से दक्षिणी भारत में ले गये और वहाँ से लङ्का में। लङ्का में पहले पहल इनकी क़दर हुई और इन्हीं के अनुसार मूर्तियाँ बनाई जाने लगीं। पर अब वहाँ भी इन्हें कोई नहीं पूछता।

३—संस्कृत-विद्यालय।

हर्ष की बात है कि गवर्नमेंट की कृपा से संस्कृत भाषा का प्रचार दिन पर दिन बढ़ता जाता है। साधारण और सरकार दोनों ही इसके पढ़ने पढ़ाने की ओर विशेषरूप से आकृष्ट दिखाई देते हैं। १९०७-०८ की शिक्षा-विभाग की रिपोर्ट से मालूम हुआ कि उस साल आचार्य, मध्यमा और प्रथमा परीक्षाओं में अपेक्षाकृत अधिक विद्यार्थी शामिल हुए और पास भी अधिक हुए। पाठशालाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डितों ने भी इस वर्ष अच्छी कारगुज़ारी दिखलाई। इस प्रांत में संस्कृत-शिक्षा का केन्द्रस्थान काशी है। सरकारी संस्कृत-कालेज भी वहीं है। इस कालेज में मार्च, १९०८ को ४०० छात्र थे। संस्कृत का इससे बड़ा विद्यालय इन प्रांतों में दूसरा नहीं। अब तक इसी कालेज के अध्यक्ष और अध्यापक पूर्वोक्त तीनों प्रकार की परीक्षायें लेते थे। इसके लिए उन्हें कुछ मिलता न था। परन्तु अब सरकार ने आज्ञा दी है कि परीक्षकों को पुरस्कार मिला करे और परीक्षा का प्रबन्ध एक वैतनिक रजिस्ट्रार के द्वारा हुआ करे। संस्कृत-कालेज के बाद काशी की रणवीर-संस्कृत-पाठशाला का नम्बर है। इसमें नौ भिन्न भिन्न प्रांतों के भिन्न भिन्न भाषा-भाषी १४६ छात्र पढ़ते हैं। इस की और पीलीभीत तथा बलिया की संस्कृत-पाठशालाओं के प्रबन्ध तथा पढ़ाई की शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर ने बड़ी प्रशंसा की है। रिपोर्ट से यह भी मालूम हुआ कि अरबी की परीक्षाओं के नतीजे इस साल अच्छे नहीं रहे।

४—टेक्स्टबुक कमिटी।

टेक्स्टबुक कमिटी शिक्षाविभाग का एक आवश्यक और महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। स्कूलों में जो पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं वे इसी कमिटी की सिफ़ारिश से चुनी जाती हैं। सन् १९०७-०८ ई० की शिक्षा-सम्बन्धी रिपोर्ट से मालूम हुआ कि इन प्रान्तों की टेक्स्टबुक कमिटी ने उस वर्ष ६५० पुस्तकों पर विचार किया। परन्तु इनमें से एक पुस्तक भी इस योग्य न समझी गई जो पहले की नियत की हुई पुस्तकों के स्थान पर जारी की जाती। हिन्दी और उर्दू की वे रीडरें, जिनकी भाषा एकही है और बहुत सरल रक्खी गई है, कोई दो साल से इन प्रान्तों के स्कूलों में पढ़ाई जाती हैं। ये रीडरें इसी कमिटी की सिफ़ारिश से चुनी गई थीं। इन रीडरों पर बहुत कुछ वाद-विवाद हो चुका है। इनके विषय में विद्वानों में मत-भेद है। कोई इन्हें लाभदायक समझते हैं और कोई हानिकारक। इसमें शक नहीं कि कमिटी ने इन्हें नेक नियती से चुना था। उसका ख़याल था कि यदि छोटे छोटे बालकों की पाठ्य पुस्तकें बोल चाल की भाषा में होंगी तो उनके दिमाग़ पर कम बोझ पड़ेगा और वे कठिन शब्दों के अर्थ समझने में अपना समय और शक्ति नष्ट न कर शीघ्र ही और सहज ही अपना ज्ञान-भाण्डार बढ़ा सकेंगे। इसके सिवा उर्दू और हिन्दी का जो भेद दिन पर दिन बढ़ता जाता है वह भी और अधिक न बढ़ेगा। परन्तु कुछ लोग कहते हैं कि इन रीडरों से हानि भी है। अर्थात् केवल इन पुस्तकों के सहारे बालक हिन्दी या उर्दू भाषा का यथेष्ट ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते। इसके सिवा इनकी भाषा भी दोष-पूर्ण है। इसमें बहुत कुछ सत्यता है। शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर ने भी इसे स्वीकार किया है। इसलिए इनका संशोधन करके इन्हें अधिक उपयोगी बनाने के लिए वे प्रयत्न कर रहे हैं।

५—दो पंजाबी आविष्कारक।

लोगों का यह ख़याल कि भारतवासियों में किसी नई चीज़ के ईजाद करने की शक्ति नहीं है, धीरे धीरे दूर होता जाता है। भारतवर्ष में दिन पर दिन नये नये आविष्कार होते जाते हैं और आविष्कारकों की संख्या बढ़ती जाती है। पंजाब भी इस बात में किसी से पीछे नहीं है। हाल ही में वहाँ के दो आविष्कारकों ने अपने प्रशंसनीय आविष्कारों के द्वारा लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। एक का नाम है मुंशी अकबर-अली और दूसरे का श्रीयुक्त शंभूनाथ। दोनों महाशय क्रम से लुधियाना और अमृतसर के रहने वाले हैं। पहले महाशय ने एक नई तरह का करघा ईजाद किया है। इसके द्वारा निवार, बत्तियाँ, फ़ीते आदि बहुत अच्छे बिने जा सकते हैं इसके चलाने में भी बहुत कम मिहनत पड़ती है। नागपुर की प्रदर्शिनी में ऐसेही दो करघे रक्खे गये थे। महाराज बड़ौदा ने इन्हें बहुत पसंद किया था। दूसरे महाशय ने सोना परखने की एक कसौटी ईजाद की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुराने ढंग की कसौटी इसके सामने कोई चीज़ नहीं। यह कसौटी अच्छे बुरे सोने की मात्रा की निर्भ्रांत परख कर देती है। पंजाब में यह ख़ूब चलने लगी है। सुनते हैं कि ग्वालियर-नरेश ने इसका पेटंट ख़रीद लिया है।

६—अध्यापक भिशे।

अध्यापक भिशे ने टाइप ढालने की जिस नई कल का आविष्कार किया है उस पर एक नोट सरस्वती में निकल चुका है। सुनते हैं कि उन्होंने और भी कई आविष्कार किये हैं। इनमें से एक विचित्र प्रकार का लेम्प भी है। कोई दश वर्ष हुए किसी अँगरेज़ी अख़बार ने विज्ञापन दिया था कि शक्कर, चावल, काफ़ी आदि तौलने और बेचने की एक विशेष प्रकार की नई कल जो लोग ईजाद करेंगे उनमें से जिसकी कल सर्वोत्तम समझी जायगी उसे इनाम मिलेगा। इँगलेंड के बड़े बड़े यन्त्र-विद्या-विशारदों ने इनाम पाने की कोशिश की। पर कामयाब न हुए। अन्त में अध्यापक भिशे को ही यह इनाम मिला। अर्थात् बड़े बड़े यन्त्र-विद्याधुरन्धरों के मुक़ाबले में उन्हीं की कल सर्वोत्तम समझी गई। इससे आप भिशे महाशय के असाधारण यन्त्र-विद्यानैपुण्य का कुछ कुछ अनुमान कर सकते हैं। हमने पिछले नोट में लिखा था कि आजकल आप लन्दन में हैं। पर अब सुनते हैं कि आप स्वदेश लौट आये हैं और बम्बई में अपने घर पर रहते हैं।

७—पुस्तकों का पुरस्कार।

अमेरिकावाले बड़े ही पुस्तकावलोकन-प्रेमी हैं। पर मालूम होता है कि वे लोग गम्भीर विषयों के ग्रंथों की अपेक्षा मन बहलाने वाली किताबें पढ़ना अधिक पसन्द करते हैं। और यदि ऐसी किताबें किसी नामी आदमी की लिखी हुई तो फिर कहना ही क्या है; थोड़े ही दिनों में उनकी लाखों प्रतियाँ बिक जाती हैं। इसका फल यह होता है कि ऐसे नामी आदमी अपनी एक मामूली सी किताब के लिए पुरस्कार-स्वरूप लाखों रुपये पा जाते हैं। अमेरिका के भूतपूर्व प्रेसीडेंट रूज़वेल्ट साहब शिकार-सम्बन्धी एक किताब लिखने वाले हैं। उसका प्रकाशन-स्वत्त्व ख़रीदने के लिए लोग अभी से तैयार हैं। सुनते हैं एक प्रकाशक कम्पनी ने डेढ़ लाख रुपये लगा भी दिये हैं। इसी तरह अमेरिका के एक और भूतपूर्व प्रेसीडेंट जेनरल ग्रांट की विधवा को उनके चरित-विषयक ग्रन्थ के पुरस्कार में कोई पन्द्रह लाख रुपये मिले थे। हिन्दुस्तान का कोई बड़ा से बड़ा लेखक भी ऐसी साधारण किताबों के लिए इतना अधिक पुरस्कार पाने का कभी स्वप्न में भी ख़याल नहीं कर सकता।

८—स्काच कवि बर्न्स।

भारतवासी अपने कवियों की क़दर करना नहीं जानते। पर योरप वाले अपने महाकवियों को देवता की तरह पूजते हैं, उनके स्मारक चिह्न बनाते हैं, उनके नाम पर उत्सव करते हैं और उनकी यशोराशि बढ़ाने के लिए नाना प्रकार के उपाय करते हैं। उदाहरणार्थ स्काटलेंड के प्रसिद्ध कवि राबर्ट बर्न्स को लीजिए। यह कवि १७५९ ई० की २५ जनवरी को पैदा हुआ और सन् १७९६ ई० में मर गया था। स्काटलेंड में इसके भक्त घर घर मौजूद हैं। स्काटलेंड ही क्यों, दुनियाँ के अन्य भागों में भी जहाँ जहाँ स्काटलेंड-निवासी हैं वहाँ वहाँ, इसके भक्तों की संख्या कम नहीं है। स्काटलेंड भर में जगह जगह बर्न्स क्लब (Burns Club) खुले हुए हैं। इन क्लबों का काम बर्न्स की कविता की रक्षा करना, उसका प्रचार बढ़ाना और नाना प्रकार के उपायों से संसार में उसकी सुख्याति का विस्तार करना है। इन क्लबों के उद्योग से बर्न्स के जन्मदिन के उपलक्ष्य में हर साल की पचीसवीं जनवरी को स्काटलेंड-निवासी हज़ारों जलसे करते हैं। १९२७ वर्ष की पचीसवीं जनवरी को जो बर्न्स-उत्सव हुए थे वे अपेक्षाकृत अधिक समारोह और धूमधाम से हुए थे। कारण यह कि बर्न्स को पैदा हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साल पूरे डेढ़ सौ वर्ष हो गये। इसलिए उसकी यह तीसरी जुबिली थी।

९—रूस-जापान-युद्ध की समाप्ति का असल कारण।

अब तक लोग यही समझते थे कि संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रेसीडेंट रूज़वेल्ट के बीच बचाव करा देने से रूस और जापान के विकट युद्ध का अन्त हुआ था। परन्तु यह बात लोगों की समझ में न आती थी कि जिस जापान ने युद्ध में असाधारण वीरता दिखलाई उसने ऐसी संधि क्यों स्वीकार करली जो उसकी शान के ख़िलाफ़ थी। अमेरिका के भावी प्रेसीडेंट माननीय टाफ़्ट साहब ने पूर्वोक्त युद्ध की समाप्ति का जो कारण हाल ही में प्रकट किया है उससे इस शङ्का का समाधान अच्छी तरह हो जाता है। टाफ़्ट साहब का कथन है कि जब जापान की गवर्नमेंट लड़ते लड़ते थक गई और युद्ध का ख़र्च-भार उठाने के योग्य न रही तब उसने अपना एक दूत प्रेसीडेंट रूज़वेल्ट के पास भेजा और उनसे प्रार्थना की कि वे बीच में पड़ कर जैसे बने तैसे युद्ध को समाप्त करादें। रूज़वेल्ट साहब ने कहा कि यदि जापान रूस से हरजाने के तौर पर धन या ज़मीन लेने का दावा न करे तो वे अवश्य ही सन्धि करा देंगे। जापान की गवर्नमेंट ने मजबूरन इसे स्वीकार किया। इसके बाद जिस तरह संधि हुई उसे सब लोग जानते ही हैं।

१०—साँप के चमड़े का व्यापार।

योरप और अमेरिका के लोग सचमुच बड़े उद्योगी हैं। दुनियां में शायद ही कोई ऐसी चीज़ हो जिसका वे व्यापार न करते हों। सुनते हैं कि हाल ही में भेड़कों के चमड़े की तरह साँपों के चमड़े का भी व्यापार करने के लिये जावा में एक कम्पनी क़ायम हुई है। इसे हालैंड और अमेरिका के कुछ व्यापारियों ने क़ायम किया है। इसकी पूँजी एक लाख ज़ियादह हज़ार रुपये के क़रीब है। गोरी बोबियाँ अन्य जानवरों के चमड़े की अपेक्षा साँप के चमड़े के कमरबन्द और थैलियाँ अधिक पसन्द करती हैं। इसलिए इस चमड़े की माँग अधिक रहती है। परन्तु अब तक साँपों का चमड़ा यथेष्ट परिमाण में न मिलता था। यह कम्पनी जावा में इसी लिए स्थापित की गई है जिसमें इस चमड़े की माँग पूरी की जा सके। क्योंकि जावा में साँप बड़ी कसरत से पाये जाते हैं। कम्पनी वाले साँपों की क़ीमत एक आने से लेकर पाँच रुपये तक देते हैं। मरे हुए साँपों की क़ीमत कम होती है, ज़िंदा साँपों की ज़ियादा। कारण यह है कि जीवित साँपों का चमड़ा मुर्दा साँपों की अपेक्षा अधिक बढ़िया होता है इसके सिवा साँपों की लम्बाई पर भी क़ीमत अवलम्बित रहती है। ज़िंदा साँपों का चमड़ा निकालने की तरकीब बड़ी ही भयानक है। साँपों का सिर पेड़ में कस कर बाँध देते हैं। एक आदमी सिर के नीचे का चमड़ा चारों ओर काट देता है। दूसरा आदमी पूँछ पकड़ कर ज़ोर से खींचता है। इस तरह साँप के शरीर भर का चमड़ा वैसी ही सफ़ाई से निकल आता है जैसे कि पैर से मोज़ा।

११—फ़ोटोग्राफर कबूतर।

अब तक यही सुना गया था कि कबूतर सिखाये जाने पर हरकारे का काम कर सकते हैं। हमारे देश में भी किसी समय कबूतरों से यह काम लिया जाता था और विदेश में तो कहीं कहीं पर अब भी लिया जाता है। परन्तु अब सुना जाता है कि कबूतरों से फ़ोटोग्राफर का काम भी लिया जाने लगा है। इस तरकीब को जर्मनी-निवासी न्यूब्रोनर नाम के एक डाक्टर ने निकाला है। यह काम इस तरह किया जाता है कि कबूतर की गरदन के नीचे फ़ोटो उतारने का एक केमरा बाँध देते हैं। यह केमरा तौल में सवा छटाँक से अधिक नहीं होता, क्योंकि इससे ज़ियादा बोझ कबूतर आसानी से नहीं उठा सकता। केमरे के दो भाग होते हैं। आगे वाले भाग से आगे का फ़ोटो उतर आता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और पीछे वाले भाग से पीछे का। दोनों के लेन्स आप ही आप खुल और बन्द हो सकते हैं। एक क़िस्म का केमरा और होता है जिसमें घड़ी के ऐसे पुर्ज़े लगे रहते हैं। इसके द्वारा आध आध मिनट में नये नये फ़ोटो उतर सकते हैं। कबूतर उड़ते हो चक्कर काटने लगता है। इस तरह केमरे के द्वारा कबूतर के चारों ओर के दृश्य के फ़ोटो सहज ही में उतर आते हैं। इसके बाद जब वह बीस मील की उँचाई पर पहुँच जाता है तब अपने गन्तव्य स्थान को ताक कर उसकी ओर तेज़ी से उड़ना शुरू करता है। जिन जिन स्थानों से होकर वह गुज़रता है उन उन स्थानों के फ़ोटो उतरते चले जाते हैं। युद्ध के समय ये कबूतर बड़े ही उपयोगी काम कर सकते हैं। इसी ख़याल से जर्मन गवर्नमेंट ने न्यूब्रोनर साहब के इस आविष्कार की बड़ी क़दर की है।

१२—बाबू काशीप्रसाद जायसवाल।

सरस्वती के पाठक बाबू काशीप्रसाद जायसवाल के नाम से अवश्यही परिचित होंगे। आपके कितने ही लेख सरस्वती में प्रकाशित हो चुके हैं। आपका चित्र भी सरस्वती में निकल चुका है। कोई दो साल हुए आप इँगलेंड गये थे। वहाँ आप बारिस्टरी की शिक्षा प्राप्त करने के सिवा, आक्सफ़र्ड-विश्वविद्यालय से डिग्री प्राप्त करने के लिए भी अध्ययन कर रहे हैं। ये दोनों परिश्रमसाध्य काम करते रहने पर भी आपने वहाँ चीनी भाषा भी सीखी है। चीनी भाषा बहुत कठिन होती है। परन्तु जायसवाल महाशय ने थोड़े ही दिनों में उसमें अच्छी योग्यता प्राप्त करली है। इससे आपकी परिश्रम-शीलता और अध्यवसाय का अच्छा परिचय मिलता है।

आक्सफ़र्ड-विश्वविद्यालय में चीनी भाषा सीखने वालों की एक परीक्षा होती है। उसमें जो सबसे अधिक योग्य ठहरता है उसे डेविस साहब की नियत की हुई १५०० रुपये की एक छात्रवृत्ति मिलती है। इस बार यह वृत्ति बाबू काशीप्रसाद को मिली है। आपने परीक्षा के पर्चे लिखने में ऐसी योग्यता दिखाई कि स्वयं परीक्षकों तक ने उनकी प्रशंसा की। हम लोगों के लिए यह बड़े गारव की बात है कि हमारे प्रांतवासी बाबू काशीप्रसादजी को आक्सफ़र्ड के प्रतिष्ठित विद्यापीठ में ऐसी कामयाबी हुई।

विश्वविद्यालय की छात्र-वृत्ति प्राप्त करना इंगलैंड में बड़ी इज़्ज़त की बात समझी जाती है। इसलिए जिस कालेज में जायसवाल महाशय पढ़ते हैं उसे आपके छात्रवृत्ति पाने पर बड़ा घमण्ड हुआ है। उसने आप को अपना "आनरेरी स्कालर" बनाया है। इस उपलक्ष में जायसवाल जी का सम्मान करने के लिए आक्सफ़र्ड में एक सभा की गई थी। शायद आप पहलेही भारतवासी हैं जिन्हें संस्कृतर-भाषा में आक्सफ़र्ड-विश्वविद्यालय ने "स्कालर" बनाया है।

भारतवर्ष वह भूमि है जहाँ पुराने समय में कुमारजीव आदि पण्डितों ने चीन जाकर वहाँ की भाषा अच्छी तरह पढ़ी थी और कितनेही संस्कृत ग्रंथों का चीनी में अनुवाद किया था। आशा है, चीनी भाषा पढ़ कर बाबू काशीप्रसाद जी उसका सदुपयोग करेंगे।

इंगलैंड-प्रवासी भारतवासियों में से बाबू काशीप्रसाद और पण्डित प्यारेलाल जी मिश्र, इन सज्जनों की सरस्वती पर विशेष कृपा रहती है। आशा है, मिश्र जी के विषय में भी कोई ऐसा नोट लिखने का शीघ्र अवसर प्राप्त होगा।

१३—परलोकवासी राजा रामपालसिंह।

बड़े शोक की बात है कि गत २८ फ़रवरी को कालाकाँकरनरेश राजा रामपालसिंह का परलोकवास हो गया। मृत्यु के समय राजा साहब की उम्र कोई साठ वर्ष की थी। उनका जीवन-चरित १९०४ की सरस्वती में प्रकाशित हो चुका है। अवध के तअल्लुक़ेदारों में वे सब से अधिक हिंदी-प्रेमी थे। बहुत क्षति उठाने पर भी तेईस वर्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे हिंदी का एक मात्र दैनिक पत्र "हिन्दुस्थान" निकालते रहे। इसके सिवा वे इसी नाम का अँगरेज़ी का भी एक दैनिक पत्र निकालते थे।

राजा रामपालसिंह अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। संस्कृत, हिंदी, उर्दू, फ़ारसी, अँगरेज़ी के सिवा फ्रेंच, जर्मन और लैटिन में भी उनका दख़ल था। इनमें से हिंदी, उर्दू और फ़ारसी में वे कविता भी कर सकते थे। काव्य-रचना का उन्हें बड़ा शौक़ था। उनकी कविता साधारणतः अच्छी होती थी। उनकी हिंदी और उर्दू-फ़ारसी की कवितायें क्रम से समस्या-पूर्त्तिप्रकाश और दीवानेराजा नाम के दो ग्रन्थों में प्रकाशित हुई हैं। राजा साहब को सङ्गीत से भी बड़ा प्रेम था। सङ्गीतशास्त्र के वे अच्छे ज्ञाता थे। इसके सिवा राजा साहब बड़े ही उदार और स्वजाति-प्रेमी थे। राजपूत-महासभा, राजपूत हाई स्कूल और बोर्डिङ्ग हौस की उन्होंने समय समय पर बहुत सहायता की। काशी में संस्कृत-शिक्षा के विस्तार के लिए भी उन्होंने बहुत कुछ दान किया।

राजा साहब को खेती का भी बड़ा शौक़ था। उन्होंने अपने राज्य में पश्चिमी रीति से खेती करने का बड़ा अच्छा प्रबन्ध किया। रेशम का एक कारख़ाना भी उन्होंने खोला। कालाकाँकर में एक स्कूल और अस्पताल भी बनवाया। इलाहाबाद में उनका एक होटल भी है। राजा रामपालसिंह ने अपनी रियासत का बड़ा अच्छा प्रबन्ध किया। उनके समय में राज्य की आमदनी ख़ूब बढ़ गई। उन्होंने बहुत सा सम्पत्ति स्वयं भी उपार्जन की। राजा साहब पहले कांग्रेस के एक स्तम्भस्वरूप थे। परन्तु पीछे से उन्होंने उससे सम्बन्ध त्याग दिया था। जब राजा साहब इँगलैंड में थे तब उन्होंने पार्लियामेंट में प्रवेश करने की भी कोशिश की थी; पर उसमें कामयाबी न हुई। वे दो बार इन प्रांतों के छोटे लाट की कौंसिल के मेम्बर भी चुने गये थे। इन सब बातों से आप समझ सकते हैं कि राजा साहब कैसे उदार, विद्वान्, विद्यादीपप्रेमी, विद्यानुरागी, देश-हितैषी, प्रजा-वत्सल, उद्योगप्रिय और राज्य कार्य्य-कुशल थे। उनकी मृत्यु से हिंदी-भाषा-भाषी संसार की बड़ी हानि हुई है। उनके उत्तराधिकारी राजा रमेशसिंह भी राजा रामपालसिंह जी ही के समान हिंदी-हितैषी, कवि और विद्याव्यसनी हैं। "सम्राट्" नामक पाक्षिक पत्र आपके हिंदी-प्रेम का उत्तमोदाहरण है। आशा है, आप अपने राजोचित कार्य्यों, उदारचरितों और मातृभाषा-प्रेम से अपने पितृव्य के परलोक-गमन से हुई क्षति को सवाई पूर्ति करके सुख्याति लाभ करेंगे।

१४—प्रतिवाद।

गत जनवरी की सरस्वती में "मयूर" का लिखा हुआ महाराजा श्रीशिवाजीराव होलकर का चरित प्रकाशित हुआ है। उसके आख़री पाराग्राफ़ में, सरस्वती की पूर्वोक्त संख्या के आठवें पृष्ठ पर, चरित-लेखक ने जो इन्दौर की वर्त्तमान शासन-प्रणाली पर अपनी राय दी है उसके विषय में एक सज्जन ने हमें लिखा है :—

"इन्दौर राज्य के कारोबार में पिछले महाराज
"साहब के वक़्त से कई तरह के सुधार हो
"चुके हैं और हो भी रहे हैं।"

हम इस प्रतिवाद को प्रसन्नता-पूर्वक प्रकाशित करते हैं।

कविवर नवीनचन्द्र सेन, बी० ए०।

वङ्ग-कविकुल-कोकिल बाबू नवीनचन्द्र सेन, बी० ए०, वङ्गभाषा के प्रसिद्ध कवि थे। उन्होंने सब मिलाकर कोई दस बारह उत्तमोत्तम काव्यग्रंथों की रचना की है। उनकी कविता बड़ी ही मधुर, मनोहारिणी, सरस और उच्चभावपूर्ण होती थी। वङ्गदेश में उसका बड़ा आदर है। कहते हैं कि बँगाल में जितने महाकवि हुए हैं नवीनचन्द्र की उन्हीं में गिनती थी। शोक की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात है कि गत २३ जनवरी, १९०९ ई० को बासठ वर्ष की उम्र में उनका देहान्त होगया। आज हम उनका संक्षिप्त चरित सरस्वती के पाठकों की भेंट करते हैं।

पूर्वपुरुष और जन्म।

बाबू नवीनचन्द्र वैद्यजाति के थे। उनको जातिगत उपाधि सेन और नवाबदत्त उपाधि राय थी। उनके पूर्वज राढ़देश के निवासी थे। महाराष्ट्र विप्लव के समय अपना देश छोड़ कर वे चटगाँव ज़िले के नयापाड़ा गाँव में आ बसे थे। बाबू नवीनचन्द्र का जन्म १८४६ ई० में इसी ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम गोपीमोहन राय था और माता का राजराजेश्वरी। बाबू गोपीमोहन राय चटगाँव के जज की अदालत में पेशकार थे। कुछ दिनों बाद नौकरी छोड़ कर वकालत करने लगे थे। मरने के कुछ वर्ष पहले वे मुंसिफ़ हो गये थे। वे बड़े ही लोकप्रिय, धर्मनिष्ठ, दयालु और दानी थे। इसी से अकसर ऋणग्रस्त रहते थे। कविता रचने और गाने बजाने का भी उन्हें बड़ा शौक़ था। नवीनचन्द्र के जन्म के तीसरे दिन उत्सव की तैयारी होही रही थी कि घर में आग लग गई। फल यह हुआ कि केवल उन्हीं का घर नहीं, किन्तु सारा गाँव भस्मीभूत हो गया। यह देखकर कि नवीनचन्द्र की बदौलत प्राचीन गाँव नष्ट होकर नवीन हो गया है उनके कुलगुरु की पत्नी ने उनका नाम नवीनचन्द्र रक्खा।

बाल्यकाल और शिक्षा।

बालक नवीनचन्द्र यथासमय गाँव की पाठशाला में पढ़ने के लिए बिठाये गये। वहाँ उन्होंने आठ वर्ष की उम्र तक पढ़ा। आठवें वर्ष पाठशाला की पढ़ाई समाप्त करके स्कूल में पढ़ने के लिए अपने पितृव्य मदनमोहन राय के साथ वे चटगाँव गये और वहाँ के सरकारी स्कूल में भर्ती हुए। दस वर्ष की उम्र में उनके पितृव्य का देहान्त होगया। इससे उनके दिल पर बड़ी कड़ी चोट लगी। कारण यह था कि मदनमोहन बाबू अपने भतीजे नवीनचन्द्र को बहुत चाहते थे। इसी समय गृहदाह, मुक़द्दमेबाज़ी आदि अनेक दुर्घटनायें उनके परिवार में हुईं। वे कुछ दिनों के लिए बीमार हो गये।

चटगाँव के स्कूल में नवीनचन्द्र की गिनती खट लड़कों में थी। उनके कारण सहपाठी लड़कों की नाक में दम रहती थी। लड़के क्या, कभी कभी शिक्षक महाशय तक उनकी व्यंग्योक्तियों का निशाना बन जाते थे। सवेरे शाम नदी किनारे और निर्जन स्थानों में घूमना और प्रकृति की मनोहारिणी शोभा देखना उन्हें इसी समय से अत्यन्त प्रिय था।

नवीनचन्द्र ने चटगाँव के स्कूल से प्रवेशिका परीक्षा पास की। परीक्षा में वे प्रथम आये। उन्हें छात्रवृत्ति भी मिली। इसके बाद कालेज में पढ़ने के लिए वे कलकत्ते आये और प्रेसीडेंसी कालेज में भर्ती होगये। कलकत्ते आने के दूसरे वर्ष नवीनचन्द्र का विवाह हुआ। विवाह के बाद ही उन्होंने एफ० ए० परीक्षा पास की। परन्तु इस बार वे छात्रवृत्ति न पा सके। इससे उन्होंने प्रेसीडेंसी कालेज छोड़ दिया और जेनरल एसेम्ब्लीज़ कालेज में प्रविष्ट होकर बी० ए० में पढ़ने लगे। इस समय अपने व्यय के लिए पिता को कष्ट देना उचित न समझ कर वे दो लड़के पढ़ाने और उसीसे अपना ख़र्च चलाने लगे। जिस समय बी० ए० परीक्षा के सिर्फ़ तीन महीने बाक़ी थे, उनके पूजनीय पिता का देहान्त हो गया। इससे वे अत्यन्त शोकाकुल हुए। उन्हें चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देने लगा। यह सच है कि विपद अकेली नहीं आती। इसी समय महाजनों ने तड़तड़ी मचाना और नालिश पर नालिश करना शुरू किया। परन्तु नवीनचन्द्र बड़ी ही दृढ़ प्रकृति के मनुष्य थे। वे ज़रा भी विचलित न हुए। माता और स्त्री का सब गहना बेंच कर उन्होंने सब ऋण चुका दिया और फिर पूर्ववत् पढ़ने लगे। १८६८ ई० में उन्होंने बी० ए० पास किया।

सरकारी सेवा।

इसी समय बाबू नवीनचन्द्र का परिचय स

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यासागर महाशय से हुआ। ज्योंही विद्यासागर महाशय को मालूम हुआ कि नवीनचन्द्र की दशा इस समय बड़ी ख़राब है त्योंही उन्होंने उसके दूर करने की चेष्टा की। फल यह हुआ कि बी० ए० पास करने के कुछ ही महीनों बाद बाबू नवीनचन्द्र डेपुटी मैजिस्ट्रेट होगये। इस पद पर आप कोई बाईस वर्ष तक अधिष्ठित रहे और अपना कर्त्तव्य योग्यतापूर्वक निर्वाह करते रहे। १९०० ई० में पेंशन लेकर आप इस पद से अलग हुए। तब से लेकर मृत्यु के समय तक आप अपना सारा समय साहित्य-सेवा और भगवद्भक्ति में बिताते रहे।

काव्यरचना।

बाबू नवीनचन्द्र जब कालेज में पढ़ते थे तभी से कविता बनाने लगे थे। कविता-रचना-प्रणाली की शिक्षा उन्होंने अपने शिक्षक पण्डित जगदीशचन्द्र तर्कालङ्कार से पाई थी। एक दिन उनकी एक कविता पण्डित शिवनाथ शास्त्री की नज़र से गुज़री। उसे देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उस कविता को एजुकेशन-गैज़ट के सम्पादक बाबू प्यारीचरण सरकार को दिखलाया। सरकार महाशय दूसरे ही दिन नवीनचन्द्र के क्लास में पहुँचे और उनकी ख़ूब प्रशंसा करके बोले कि तुम एजुकेशन-गैज़ट के लिए सदा कविता लिखा करो। नवीनचन्द्र की कविता पहले पहल एजुकेशन-गैज़ट ही में प्रकाशित हुई। उनकी पहली ही कविता देखकर लोगों को मालूम हो गया कि वङ्गदेश के काव्याकाश में एक नवीन-चन्द्र का उदय हुआ है। फिर क्या था, उनकी असाधारण प्रतिभा और कवित्वशक्ति की ख्याति शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की तरह दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी। तब से लेकर मृत्यु के समय तक उन्होंने छुटकर कविताओं के सिवा अनेक महाकाव्य, काव्य, खण्डकाव्य और चम्पू ग्रन्थों की रचना की। इनमें से ये ग्रंथ मुख्य हैं :—

(१) अवकाशरञ्जिनी, दो भाग
(२) पलाशीर युद्ध
(३) रङ्गमती
(४) रैवतक
(५) कुरुक्षेत्र
(६) प्रभास
(७) अमिताभ
(८) गीता
(९) चण्डी
(१०) खृष्ट
(११) भानुमती
(१२) प्रवासपत्र

कवित्व।

बाबू नवीनचन्द्र सेन बड़े प्रतिभाशाली कवि थे। उन्होंने अपने महाकाव्यों में निष्काम धर्म, त्याग धर्म, भगवद्भक्ति और विश्व-प्रेम के उच्च आदर्श का जैसा मनोहर चित्र खींचा है और सरस तथा मधुर भाषा में जिस सौन्दर्य्य और चरित्र की सृष्टि की है वह वङ्गभाषा के साहित्य में चिरकाल तक अमर रहेगी। और पुण्यप्रभ ध्रुवतारा के समान बंगालियों को प्रकृत पथ दिखलाती रहेगी। क्या भाव, क्या भाषा, क्या रसावतारणा सभी बातों में नवीनचन्द्र कविजन-वाञ्छित गुणों के अधिकारी थे।

ऊपर जिन पुस्तकों के नाम लिखे गये हैं उनमें सब से पहले अवकाशरञ्जिनी नामक गीतिकाव्य १८७३ ई० में प्रकाशित हुआ था। इसमें ग्रन्थकर्त्ता का नाम न था। अर्थात् यह पुस्तक बेनामही छपी थी। स्वर्गीय बङ्किम बाबू द्वारा सम्पादित वङ्गदर्शन नाम के मासिक पत्र में इसकी बड़ी अच्छी समालोचना हुई। इससे बाबू नवीनचन्द्र का नाम सर्वसाधारण में तुरन्त परिचित हो गया। अवकाशरञ्जिनी नवीन बाबू का एक मात्र गीतिकाव्य है। इसके सिवा उन्होंने और कोई गीतिकाव्य नहीं रचा। वङ्गदेश के प्रायः सभी बड़े बड़े कवियों ने गीतिकाव्य बनाये हैं। पर उनके काव्य नवीन बाबू के गीतिकाव्य की बराबरी नहीं कर सकते।

इसके दूसरे साल "पलाशीर युद्ध" नामक महा-काव्य प्रकाशित हुआ। इसने नवीन बाबू को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वङ्गसाहित्य के एक बहुत ऊँचे आसन पर बिठा दिया। इसकी भाषा बहुत ही सुस्पष्ट और ओजस्विनी हुई। बङ्किमचन्द्र ने तो इसे अग्नितुल्य ज्वालामयी कहा। वास्तव में वह है भी अत्यन्त तीव्र और उग्र। ऐसी सबल भाषा और वर्णनाभङ्गी हेमचन्द्र के सिवा अन्य किसी वङ्ग-कवि के काव्य में मिलना मुशकिल है। बाबू नवीनचन्द्र ने युद्धस्थल का जैसा अद्भुत चित्र खींचा है वैसा किसी बंगाली-कवि से नहीं बन पड़ा। परन्तु सब से बड़ी बात यह है कि कवि ने वीर और करुण रस का एकत्र समावेश करने में अपनी असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया है। ऐसा जान पड़ता है मानों कवि ने आग्नेय गिरि के अग्निस्राव के साथ करुणामन्दाकिनी की पवित्र धारा बहाई है।

इसके बाद बाबू नवीनचन्द्र ने रङ्गमती नामक काव्य की रचना की। परन्तु इस काव्य के देखने से मालूम होता है कि कवि की प्रवृत्ति बदलने लगी है। इसकी भाषा में वह ज़ोर नहीं है। पलाशीर युद्ध की रचना के समय कवि का जो उद्देश था वह अब पूर्ण रूप से बदल गया था। इस रुचि-परिवर्त्तन के अनेक लोग अनेक कारण बतलाते हैं। किसी किसी का कथन है कि पलासी के मैदान में जिस विश्वासघातकता और गृहविवाद ने भारत के इतिहास को कलङ्कित किया था उसे कवि ने प्राचीन भारत के रणक्षेत्रों में भी विद्यमान पाया। इसके बाद कवि ने सोचा कि प्राचीन काल में क्या कोई ऐसा भी महापुरुष हुआ है जिसने इस "क्षत-च्छिन्न विक्षिप्त भारत" में एक महाधर्मसाम्राज्य स्थापित करने की कोशिश की हो? इस समय उसे भगवान् कृष्णचन्द्र के सिवा और कोई न देख पड़ा। बस, इसी लिए कवि ने उनकी सौम्यमूर्त्ति को सम्मुख रख कर अपने परवर्त्ती काव्यों की रचना की। रैवतक, प्रभास, कुरुक्षेत्र आदि काव्य इसी श्रेणी के हैं।

बाबू नवीनचन्द्र अपने अपूर्व प्रतिभा-बल से भारत के भविष्य इतिहास का आभास दे गये हैं। किस रास्ते, किस तरह, चलने से भारत की पूर्व ज्ञानगरिमा, पूर्व ऐश्वर्य्य, पूर्व ऋद्धि सिद्धि लौट आवेगी,—कवि ने अपने चित्रित कृष्णचरित में इसी का इशारा किया है।

उपसंहार।

उदयास्त जगत् का नियम है। इसी नियम के अनुसार वङ्गदेश के आकाश में सुधांशु के समान उदित होकर नवीनचन्द्र ने अपने काव्यरूपी प्रकाश से वङ्गदेश को प्रकाशित किया था। इसी नियम के अनुसार वे अस्त हो गये हैं। वे अस्त हो गये तो क्या जायँ; परन्तु उनकी कविकीर्ति उनको अमर रक्खेगी। जब तक बंगाल में वङ्गभाषा का प्रचार रहेगा, जब तक संसार में बंगाली जाति विद्यमान रहेगी, तब तक लोग अपने मनोमन्दिर में उनकी पूजा करेंगे। नवीनचन्द्र का नाम बंगाली कभी न भूलेंगे।

ईश्वर से प्रार्थना है कि ऐसा एक आध महाकवि न सही तो अच्छा कवि ही इन प्रान्तों में भी पैदा हो जहाँ की मुख्य भाषा हमारी दीना, हीना और क्षीण कलेवरा हिन्दी है। ईश्वर से प्रार्थना करने का कारण यह है कि मनुष्यों से प्रार्थना करना और रोदन करना है। वे तो अपनी मातृभाषा की निन्दा करना—उसमें वार्तालाप करना और उसे लिखना—एक प्रकार अपनी हतक समझते हैं!

कुन्ती और कर्ण।

जब दुर्योधन किये बिना संग्राम सरासर,
देने लगा न भूमि सुई की नोक बराबर।
जब न एक भी बात सन्धि की उसने मानी,
तब विग्रह को विवश हुए पाण्डव विज्ञानी।

(२)

सुन कर यह सब हाल युद्ध होना निश्चित कर,
कुन्ती कर्ण-समीप गई गङ्गा के तट पर।
था उसका उद्देश कर्ण को समझाने का,
तथा मना कर आत्म-पक्ष में कर लाने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

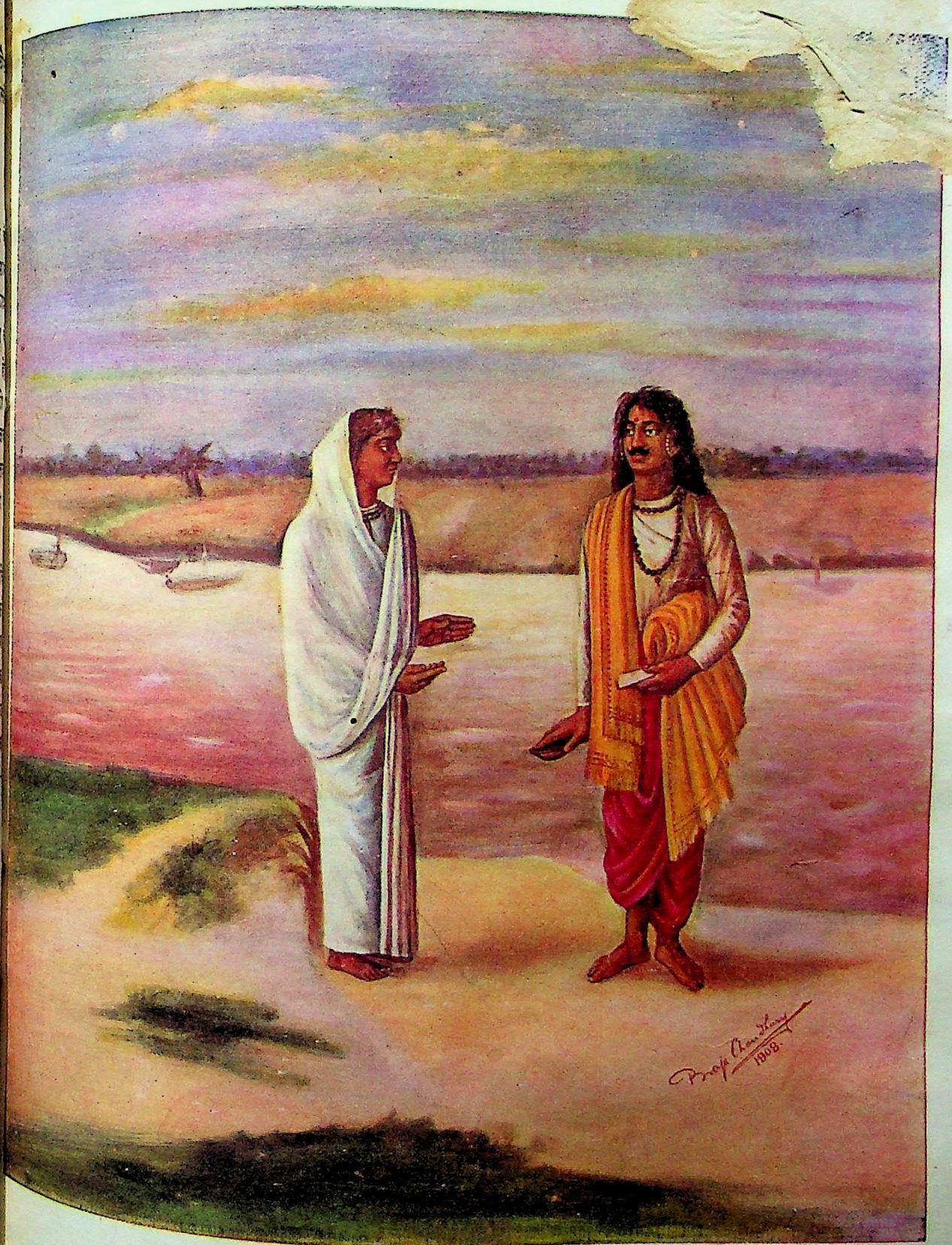

कुन्ती कर्ण

कर्ण-जन्म की कथा कथन कर यह समक्ष में—करती कुन्ती विनय उसे करने स्वपक्ष में।
किन्तु मानता नहीं बात उनकी वह मानी—दुर्योधन की ओर युद्ध की उसने ठानी॥

श्रीव्रजभूषणराय चौधरी-अङ्कित]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३)

वहाँ कर्ण आकण्ठ-मग्न सुरसरी-नीर में,
कर युग ऊंचे किये लग्न था तप गभीर में।
जप से हुआ निवृत्त न वह बल-गर्वित जौलों,
राह देखती रही खड़ी उसकी यह तौलों॥

(४)

किये चित्त एकाग्र सूर्य्य में दृष्टि लगाये,
असफुट स्वर से वेद-मन्त्र पढ़ता मन भाये।
सलिल मग्न आकण्ठ सुहाता था वह ऐसे,
अलि-कुल-कलकल-कलित कमल फूला हो जैसे॥

(५)

गङ्गा-गर्भ-प्रविष्ट सूर्य्य-सुत शोभाशाली,
दिखलाता था छटा एक वह नई निराली।
सूर्य्योन्मुख था दृश्य अचल यों मुख-मण्डल का—
जल में ज्यों प्रतिबिम्ब सूर्य्य का ही हो झलका॥

(६)

कर के पूरा ध्यान देख कुन्ती को आगे,
बोला वह यों वचन विनयपूर्वक अनुरागे।
"अधिरथ-सुत यह कर्ण तुम्हें करता प्रणाम है;
हो आर्य्ये! आदेश, कौन मम योग्य काम है?"

(७)

देकर तब आशीष उसे समुचित हितकारी,
बोली कुन्ती गिरा प्रकट उससे यों प्यारी।
"बढ़े तुम्हारो कीर्ति वत्स! नित भूमण्डल में;
आखण्डल* सम कहें सकल जन तुम को बल में॥

(८)

"अधिरथ-सुत की बात बदन से तुम न बखानो,
शुद्ध सूर्य्य-सुत श्रेष्ठ सदा अपने को जानो।
"राधा-सुत तुम नहीं, पुत्र मेरे हो प्यारे;
मानो मेरे वचन सत्य ये निश्चय सारे॥

(९)

"आमन्त्रित कर सूर्य्य देव को मैंने मन में,
मन्त्र-शक्ति से तुम्हें जना था पिता-भवन में।
आत्म-विषय में विज्ञ न होने से तुम सम्प्रति,
रखते हो रिपु-रूप कौरवों में अनुचित रति॥

(१०)

"अहो दैव! उत्पन्न किया था जिसको मैंने,
सुर-सम्भव नर-जन्म दिया था जिसको मैंने।
वही आज तुम वैर पाण्डवों से रखते हो,
कर्तव्याकर्तव्य नहीं कुछ भी लखते हो।

(११)

"होता तुम से सदा पाण्डवों का अनहित है,
सोचो तो हे वत्स! तुम्हें क्या यही उचित है?
सुत-सेवा-उपहार दिया जाता क्या योंहा?
माता-ऋण-प्रतिकार किया जाता क्या योंही?

(१२)

"जननी का सन्तोष पूर्ण करना मन माना,
धर्म्मज्ञों ने यही धर्म्म का मर्म्म बखाना।
सो हे धार्म्मिक-धीर! तुम्हारा है सब जाना,
फिर क्या समुचित नहीं पाण्डवों को अपनाना?

(१३)

"सदाचरण-रत सदा युधिष्ठिर अनुज तुम्हारे,
भीम, नकुल, सहदेव, पार्थ अनुगामी सारे।
हो तुम मम सुत प्रथम पाण्डवों के प्रिय भ्राता,
सो सब सोच बिचार बनो अब उनके त्राता॥

(१४)

"पार्थ-भुजों से हुई उपार्जित सब सुखकारी,
दुर्योधन से हरी गई जो छल से सारी।
धर्म्मराज की वही राजलक्ष्मी अति प्यारी,
भोगो अरि संहार स्वयं तुम हे बलधारी!

(१५)

"तुम लोगों को देख भेटते बन्धु-भाव से,
प्रेम और आनन्द सहित अत्यन्त चाव से।
पामर कौरव जलें, स्वजन सारे सुख पावें,
मन चीते सब काम तभी मेरे हो जावें॥

(१६)

"राम-कृष्ण का नाम लिया जाता है जैसे,
सूर्य्य-चन्द्र को याद किया जाता है जैसे।

* इन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैसे ही सब लोग कहें कर्णार्जुन मुख से,
करो वीर तुम वही छुड़ा कर मुझको दुख से॥

(१७)

"कर्णार्जुन-सम्मिलन जगत को आज बतादो
बन्धु-बन्धु-सम्बन्ध सभी को प्रकट जता दो।
प्रेम-सिन्धु में स्वजन-वर्ग को शीघ्र नहा दो,
शत्रु-जनों का गर्व खर्व कर सर्व बहा दो॥

(१८)

"राम-भरत की भेंट हुई थी पहले जैसे।
कर्ण-युधिष्ठिर-मिलन आज देखें सब तैसे।
आई हूं मैं इसी लिये इस समय यहाँ पर,
करो पुत्र स्वीकार वचन मेरे ये हितकर॥"

(१९)

मर्म-स्पर्शी वचन श्रवण कर भी कुन्ती के,
बदले नहीं विचार कर्ण के निश्चल जी के।
प्रत्युत्तर फिर लगा उसे देने वह ऐसे—
मुरज मधुर गम्भीर घोष करता है जैसे॥

(२०)

"हे वर-वीरप्रसू! वचन ये सत्य तुम्हारे,
जन्म-कथा निज जान अङ्ग पुलकित मम सारे।
सूत-वंश में हुए किन्तु संस्कार हमारे,
अधिरथ-राधा विदित हमारे पालक प्यारे॥

(२१)

"दुर्योधन ने सदा हमारा मान किया है,
प्रेमसहित धन-धान्य-पूर्ण बहु राज्य दिया है।
किये सतत उपकार जिन्हों ने ऐसे ऐसे,
त्यागें उनका सङ्ग कहो फिर हम अब कैसे?

(२२)

"टाले नहीं कदापि जिन्होंने वचन हमारे,
बन्धु-भाव जो रहे सदा ही हम पर धारे।
उनका ऐसे समय साथ कैसे हम छोड़ें?
तोड़ पूर्व-सम्बन्ध वैर कैसे हम जोड़ें?

(२३)

"किये भरोसा सदा हमारा ही निज मन में,
दुर्योधन ने सकल कार्य हैं किये भुवन में।
फिर भी जो साहाय्य करें उनका न कहीं हम,
यही कहेंगे विज्ञ मही में मनुज नहीं हम।

(२४)

"इस कारण हे जननि! रहेंगे जीवित जौलौं,
होने देंगे अहित न दुर्योधन का तौलौं।
लेंगे हम आमरण पक्ष उस बलधारी का,
करना क्या अपकार चाहिये उपकारी का?

(२५)

"कौरवपति की ओर धर्म्म को हम पालेंगे,
किन्तु तुम्हारे भी न वचन को हम टालेंगे।
एक पार्थ को छोड़ तुम्हारे हित-कारण से,
मारेंगे हम नहीं किसी पाण्डव को रण से।

(२६)

"अर्जुन ही या हमी एक जन लड़ स्वपक्ष में,
पावेंगे यदि विमल वीरगति को समक्ष में।
तो भी सुत हे जननि! रहेंगे पाँच तुम्हारे,
होंगे मिथ्या नहीं कभी ये वचन हमारे॥

(२७)

दृढ़-प्रतिज्ञ यों देख कर्ण को कुन्ती रानी,
बोल सकी इस हेतु न उससे फिर कुछ वाणी।
इसी विषय का चित्र बना कर यह मनभाया,
व्रज बाबू! चातुर्य्य-चरम तुमने दिखलाया।
यह दृश्य देख कर कौन जन
करता यों न विचार है—
"इस क्षण-भङ्गुर संसार में
एक धर्म्म ही सार है॥"

फ़ारस में हिन्दुओं का राज्य।

बहुत लोग समझते हैं कि भारतवर्ष सदा ही से दीन, हीन था। परन्तु यह बात ठीक नहीं। किसी समय भारतवर्ष ख़ूब सभ्य और समृद्धिशाली था। हिन्दू ही हिन्दुस्तान के स्वामी थे। हिन्दुस्तान ही क्यों फ़ारस आदि अन्य देशों में भी उनका आधिपत्य था। कितनेही संस्कृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष कर पुराणों, में इस बात के बहुत से उदाहरण पाये जाते हैं। परन्तु उन पर आज कल के कितनेही लोगों का विश्वास नहीं। अतएव हम विदेशियों के लिखे हुए इतिहासों तथा अन्य प्रमाणों से इस बात को सिद्ध करना चाहते हैं।

इस बात के बहुत से प्रमाण पाये जाते हैं कि किसी समय हिन्दूलोग फ़ारस में जाकर बस गये थे। विलफ़र्ड साहब "एशियाटिक रिसर्चेज़" के पचासवें भाग में लिखते हैं कि फ़ारस की प्राचीन निर्म्माणविद्या भारत की कारीगरी से मिलती जुलती है। नीबूर नाम के एक जर्मन यात्री ने फ़ारस के इस्ताखर नगर के खँडहरों में कई शिलालिपियाँ पाई हैं। ये सब भारतीय अक्षरों में हैं। टूटे फूटे जेमीसद नगर में भी भारतीय आधिपत्य के चिह्न पाये जाते हैं। हिन्दुस्तान की तरह यहाँ भी ग्रह आदिकों की पूजा प्रचलित थी। फ़ारस के इतिहास-लेखक मोहसन ने लिखा है कि फ़ारस के पहले राजा का नाम महावाद था। यह शब्द अवश्य ही संस्कृत-मूलक है। महावाद ने अपने राज्य भर की प्रजा को प्रधानतः जिन चार भागों में बाँटा था उनके नाम ये हैं :—धार्मिक (ब्राह्मण), सामरिक (क्षत्रिय), व्यवसायी (वैश्य), और दास (शूद्र)। उसने साक्षात् परमेश्वर से देव-भाषा (संस्कृत ?) में लिखी हुई एक किताब पाई थी। उसका नाम 'देशतीर' अर्थात् अनुशासन है। ज़ेन्द और संस्कृत भाषा बहुत कुछ मिलती जुलती है। इससे भी फ़ारस और भारत की घनिष्ठता प्रकट है। इब्न अरबशा के कथनानुसार खाता प्रदेश में जो वर्णमाला व्यवहृत होती थी वह पूर्णरूप से संस्कृत-वर्णमाला से मिलती है। उसने इस वर्णमाला का नाम "देलवारजिन" लिखा है। सम्भव है, यह "देवनागरी" शब्द का अरबी-रूपान्तर हो। किन्तु कोई कोई विद्वान् खाता, काथे या चीन को एक ही देश समझते हैं।

हिवट साहब अपनी पुस्तक (The ruling races of prehistoric times in India) में लिखते हैं कि सोमवंशी राजपूतों ने सिन्धप्रदेश को जीत कर अफ़ग़ानिस्तान, बलूचिस्तान और फ़ारस में अपना अधिकार जमाया था। इन देशों में क्रम से उन लोगों ने गान्धार (क़न्धार), वाह्लीक (बलख़) और सुषेण नामक राज्य स्थापित किये थे। Invasion of India by Alexander the Great नामक पुस्तक के कर्त्ता मेकक्रिंडल साहब का मत है कि तक्षशिलानिवासी कल्याण नाम के जिस पण्डित को सिकन्दर अपने साथ ले गया था उसने इसी सुषेण नगर में आत्महत्या की थी। परन्तु प्लूटार्क अपनी रची हुई सिकन्दर की जीवनी में लिखता है कि कल्याण ने पर्सिपोलिस नामक नगर में आत्मनाश किया था। इस कल्याण पण्डित का ज़िक्र स्ट्राबो, आरियन, लूशियन आदि सभी इतिहासकारों की पुस्तकों में पाया जाता है।

"बुन्दाहिश" नामक पुस्तक में तुर्कीस्थान (तुर्किस्तान) और चीनस्थान (चीन) के बीच के राज्य का नाम "सौकवस्थान" लिखा है। इस राज्य के एक शहर का नाम "ग़्वनिरास" था। ज़ेन्दावस्था में बदल कर यह "ह्वनिरथ" हो गया है। यहाँ के राजा का नाम अग्निरथ या गोवत्स था। उसके पिता का नाम पषंग था। हमारी समझ में ये सब नाम संस्कृतमूलक हैं। प्रसिद्ध चीनी यात्री हुयेन-संग ने फ़ारस की राजधानी का नाम सैरस्थान लिखा है। यह भी संस्कृत-शब्द जान पड़ता है।

मत्स्यपुराण में लिखा है कि मगध, कुशिक और गौतमवंश वालों का राज्य शाकद्वीप में था। किसी किसी विद्वान् का मत है कि गोवत्स राजा गौतम-वंशी था।

फ़ारस के कुछ राजाओं का नाम भी संस्कृत-मूलक मालूम होता है। जैसे—Ars-aces या Arses संस्कृत के आर्य शब्द का अपभ्रंश जान पड़ता है। इस राजा ने ईसा से दो सौ पचास वर्ष पहले पार्थि-यन राज्य स्थापित किया था। Cambyses = काम्बो-जीय नाम का राजा ईसा से ५२१ वर्ष पूर्व हुआ था। Cyaxares = शिक्षरस का दूसरा नाम इवक्ष-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तर था। Parysatis = पुरु। Bagous = भगवत्। Cyrus = सूर्य आदि नाम भी ऐसेही हैं।

ग्रीक-इतिहास-लेखक बेरोसस और विसिवियस कहते हैं कि बाबुल के राज्य के मिडियनवंश के पहले राजा का नाम ज़ोरास्टर (Zoroaster) था। यह राजा ईसा से २२३४ वर्ष पहले हुआ था। अध्यापक मैक्समूलर की राय है कि ज़ोरास्ट्रियन लोग किसी समय भारतीय आर्य जाति थे। कुछ दिनों बाद अनबन होने के कारण अपने देश भारतवर्ष को छोड़ कर ये लोग फ़ारस में जा बसे थे। वहाँ इनके नेता ज़रथुस्ट्र (१५०० ई० पू०) ने वैदिक धर्म के विरुद्ध ज़ोरास्ट्रियन धर्म का प्रचार किया। वे लोग 'देव' की घृणा करके 'अहुर' (असुर) की पूजा करने लगे। इतना करने पर भी वे लोग अपने को भारतीय आर्य्यों से एक दम अलग न कर सके। उनकी सब से प्राचीन 'गाथा' उनके भारतीय होने की घोषणा दे रही है। डाक्टर हाग का मत है कि इन लोगों की सब गाथायें ईसा के १५०० वर्ष पहले की बनी हुई हैं। एक गाथा का नाम है 'बहिष्ठ मथ्', (वशिष्ठ-मन्त्र-संस्कृत 'श' ज़ेन्द में 'ह' हो जाता है)। दूसरी गाथा का नाम 'यान' है; इसमें पाकप्रणाली और खाद्याखाद्य का विचार किया गया है। इन लोगों के धर्मशास्त्र का नाम 'न्यायाराम' है और प्रार्थना-पुस्तक का नाम 'गाह'। ज़ोरास्टर का नाम बहुत जगह 'मन्थ्रम' (मन्त्रम्) लिखा गया है। संस्कृत के बहुत से शब्द ज़ेन्द भाषा में हैं। जैसे होम (सोम), युष्माकम्, अहुरमज्द (असुर-मेध), दिव (देव), मिह (मित्र) अह्मिन (अर्य्य-मन), लोमेक (लम्बकराज्य) आदि। लम्बक-राज्य का महाभारत में भी ज़िक्र है।

भारत से अन्य सब सम्बन्ध छोड़ देने पर भी ये लोग धर्म और भाषा का सम्बन्ध न छोड़ सके। भारतीय आर्य्य-राजाओं के पीछे कैमोज़ (Kaioumortrz) नामक एक राजा ईसा से ३००० वर्ष पहले हुआ था। यह राजा असीरियन वंश का था। इस वंश के अन्तिम राजा के समय तक फ़ारस में शेष-नाग की पूजा होती थी। इबरानी भाषा में शेषनाग को 'शेषअहि' या 'अहिमन' कहते हैं। ज़ोरास्ट्रियन लोग शेषनाग और अग्नि के उपासक होने पर भी सर्वव्यापक 'ब्रह्मण' को ही सर्वेश्वर मानते हैं।

इबरानी भाषा में रामा (Raamah) नाम के एक राजा का उपाख्यान है। वह 'कुश' और 'शेवा' नाम के दो पुत्रों का पिता था। कितनेही विद्वानों का ख़याल है कि 'रामा' कुश और लव के पिता श्रीरामचन्द्रजी के सिवा और कोई नहीं। इन सब बातों से मालूम होता है कि भारतीय आर्यलोग फ़ारस, अरब, पैलेस्टाइन, ग्रीस, मिश्र आदि जीत कर वहीं जा बसे थे।

फ़ीजिया देश के निवासी अपने को अग्नि की सन्तान कहते थे। हिवट साहब का कथन है कि फ़ीजिया भृगुवंश के और डोरियन लोग (Dorians) द्रोणवंश के थे। हम्फ़्रीज़ साहब ने "The art of writing" नाम की स्वरचित पुस्तक में लिखा है कि प्राचीन मिश्रवासियों ने भारतीय आर्यों के मेल से एक मिश्र-जाति उत्पन्न की थी। भारतवासियों की मिश्रवालों की जाति-भेद-प्रथा भी एक सी थी। "India in greece" नामक पुस्तक में भी इस बात का समर्थन किया गया है।

हर्बेलो साहब ने एशियाटिक रिसर्चेज़ में एक किंवदन्ती लिखी है। उसका सारांश यह है कि भारतीय आर्य लोग फ़ारस की खाड़ी तक भूमध्यसागर को पार करके यूरप गये थे। रोमन और ग्रीक लोग इन्हीं के वंशधर थे। स्ट्राबो और हिरोडोटस ने भी इसका समर्थन किया है।

प्रसिद्ध इतिहास-लेखक लूशियन लिखता है कि आर्य लोग सीरिया तक जाते थे। इस राज्य का पौराणिक नाम "महाभाग" है। स्ट्राबो ने लिखा है कि टाइग्रीस नदी के किनारे "अनायता" देवी का एक मन्दिर है। सुनते हैं कि यह मन्दिर अब भी मौजूद है। कर्नीलियस नेप्स नाम के इतिहास-लेखक का कथन है कि हिन्दुओं ने बाल्टिकसागर तक राज्य विस्तार किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रालिन्सन साहब का कथन है कि हिन्दूकुश से लेकर फ़ारस की खाड़ी तक विस्तृत पवन-राज्य भी किसी समय हिन्दुओं के अधीन था और 'गुतुस्प' वंश (५२० ई० पू०) के पूर्ववर्त्ती कैयानियन (Kaiyanian) राजवंश के समय तक इस प्रदेश के निवासी बौद्धधर्मावलम्बी थे।

इन सब प्रमाणों से सिद्ध है कि केवल फ़ारस ही में नहीं किन्तु सम्पूर्ण एशिया, मिश्र और ग्रीस तक में किसी समय हिन्दुओं का अखण्ड राज्य था।*

उदयनारायण वाजपेयी।

कविता क्या है ?

कविता से मनुष्य-भाव की रक्षा होती है। सृष्टि के पदार्थ या व्यापार-विशेष को कविता इस तरह व्यक्त करती है मानों वे पदार्थ या व्यापार-विशेष नेत्रों के सामने नाचने लगते हैं। वे मूर्तिमान दिखाई देने लगते हैं। उनकी उत्तमता या अनुत्तमता का विवेचन करने में बुद्धि से काम लेने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती। कविता की प्रेरणा से मनोवेगों † के प्रवाह ज़ोर से बहने लगते हैं। तात्पर्य्य यह कि कविता मनोवेगों को उत्तेजित करने का एक उत्तम साधन है। यदि क्रोध, करुणा, दया, प्रेम आदि मनोभाव मनुष्य के अन्तःकरण से निकल जायँ तो वह कुछ भी नहीं कर सकता। कविता हमारे मनोभावों को उच्छ्वसित करके हमारे जीवन में एक नया जीव डाल देती है; हम सृष्टि के सौन्दर्य्य को देख कर मोहित होने लगते हैं; कोई अनुचित या निष्ठुर काम हमें असह्य होने लगता है। हमें जान पड़ता है कि हमारा जीवन कई गुना अधिक हो कर समस्त संसार में व्याप्त हो गया है।

कार्य्य में प्रवृत्ति।

कविता की प्रेरणा से कार्य्य में प्रवृत्ति बढ़ जाती है। केवल विवेचना के बल से हम किसी कार्य्य में बहुत कम प्रवृत्त होते हैं। केवल इस बात को जान करही हम किसी काम के करने या न करने के लिए प्रायः तैयार नहीं होते कि वह काम अच्छा है या बुरा, लाभदायक है या हानिकारक। जब उसकी या उसके परिणाम की कोई ऐसी बात हमारे सामने उपस्थित हो जाती है जो हमें आह्लाद, क्रोध और करुणा आदि से विचलित कर देती है तभी हम उस काम को करने या न करने के लिए प्रस्तुत होते हैं। केवल बुद्धि हमें काम करने के लिए उत्तेजित नहीं करती। काम करने के लिए मन ही हमको उत्साहित करता है। अतः कार्य्य-प्रवृत्ति के लिए मन में वेग का आना आवश्यक है। यदि किसी से कहा जाय कि अमुक देश तुम्हारा इतना रुपया प्रति वर्ष उठा ले जाता है; इसीसे तुम्हारे यहाँ अकाल और दारिद्र्य बना रहता है; तो सम्भव है कि उस पर कुछ प्रभाव न पड़े। पर यदि दारिद्र्य और अकाल का भीषण दृश्य दिखाया जाय, पेट की ज्वाला से जले हुए प्राणियों के अस्थिपञ्जर सामने पेश किये जायँ, और भूख से तड़पते हुए बालक के पास बैठी हुई माता का आर्त्तस्वर सुनाया जाय तो वह मनुष्य क्रोध और करुणा से विह्वल हो उठेगा और इन बातों को दूर करने का यदि उपाय नहीं तो संकल्प अवश्य करेगा। पहले प्रकार की बात कहना राजनीतिज्ञ का काम है और पिछले प्रकार का दृश्य दिखाना, कवि का कर्त्तव्य है। मानव-हृदय पर दोनों में से किसका अधिकार अधिक हो सकता है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं।

मनोरञ्जन और स्वभाव-संशोधन।

कविता के द्वारा हम संसार के सुख, दुःख, आनन्द और क्लेश आदि यथार्थ रूप से अनुभव कर सकते हैं। किसी लोभी और कंजूस दुकानदार को देखिए जिसने लोभ के वशीभूत हो कर क्रोध, दया,

---

* इस लेख की सामग्री "प्रवासी" के एक लेख से ली गई है।

† इन्हीं मनोवेगों का नाम अलङ्कारशास्त्र में रस रक्खा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्ति, आत्माभिमान आदि मनोविकारों को दबा दिया है और संसार के सब सुखों से मुँह मोड़ लिया है। अथवा किसी महाक्रूर राजकर्मचारी के पास जाइए जिसका हृदय पत्थर के समान जड़ और कठोर हो गया है, जिसे दूसरे के दुःख और क्लेश का अनुभव स्वप्न में भी नहीं होता। ऐसा करने से आप के मन में यह प्रश्न अवश्य उठेगा कि क्या इनकी भी कोई दवा है। ऐसे हृदयों को द्रवीभूत करके उन्हें अपने स्वाभाविक धर्म पर लाने का सामर्थ्य काव्य ही में है। कविताही उस दुकानदार की प्रवृत्ति भौतिक और आध्यात्मिक सृष्टि के सौन्दर्य्य की ओर ले जायगी; कविता ही उसका ध्यान औरों की आवश्यकताओं की ओर आकर्षित करेगी और उनकी पूर्ति करने की इच्छा उत्पन्न करेगी; कविता ही उसे उचित अवसर पर क्रोध, दया, भक्ति, आत्माभिमान आदि सिखावेगी। इसी प्रकार उस राजकर्मचारी के सामने कविता हो उसके कार्य्यों का प्रतिविम्ब खींच कर रक्खेगी और उनकी जघन्यता और भयङ्करता का आभास दिखलावेगी; तथा दैवी किंवा अन्य मनुष्यों द्वारा पहुँचाई हुई पीड़ा और क्लेश के सूक्ष्म से सूक्ष्म अंश को दिखला कर उसे दया दिखाने की शिक्षा देगी।

प्रायः लोग कहा करते हैं कि कविता का अन्तिम उद्देश मनोरञ्जन है। पर मेरी समझ में मनोरञ्जन उसका अन्तिम उद्देश नहीं है। कविता पढ़ते समय मनोरञ्जन अवश्य होता है, पर इसके सिवा कुछ और भी होता है। मनोरञ्जन करना कविता का प्रधान गुण है। इससे मनुष्य का चित्त एकाग्र हो जाता है; इधर उधर जाने नहीं पाता। यही कारण है कि नीति और धर्म-सम्बन्धी उपदेश चित्त पर वैसा असर नहीं करते जैसा कि किसी काव्य या उपन्यास से निकली हुई शिक्षा असर करती है। केवल यही कह कर कि "परोपकार करो", "सदैव सच बोलो", "चोरी करना महा पाप है" हम यह आशा कदापि नहीं कर सकते कि कोई अपकारी मनुष्य परोपकारी हो जायगा, झूठा सच्चा हो जायगा, और चोर चोरी करना छोड़ देगा। क्योंकि पहले तो मनुष्य का चि ऐसी शिक्षा ग्रहण करने के लिए उद्यत हो होता; दूसरे मानव-जीवन पर उसका कोई अङ्कित हुआ न देख कर वह उनकी कुछ परवा करता। पर कविता अपनी मनोरञ्जक शक्ति द्वारा पढ़ने या सुनने वाले का चित्त उचटने देती, उसके हृदय आदि अत्यन्त कोमल स्थानों स्पर्श करती है, और सृष्टि में उक्त कर्मों के और संबन्ध की सूचना देकर मानव-जीवन पर उ प्रभाव और परिणाम को विस्तृत रूप से करके दिखलाती है। इन्द्रासन ख़ाली कराने वचन देकर, हूर और ग़िलमाँ का लालच दिखा यमराज का स्मरण दिला कर और दोज़ख़ जलती हुई आग की धमकी देकर हम बहुधा मनुष्य को सदाचारी और कर्त्तव्य-परायण नहीं सकते। बात यह है कि इस तरह का लालच धमकी ऐसी है जिस से मनुष्य परिचित नहीं और इतनी दूर की है कि उसकी परवा करना प्रकृति के विरुद्ध है। सदाचार में एक अलौकि सौन्दर्य्य और माधुर्य्य होता है। अतः लोगों सदाचार की ओर आकर्षित करने का प्रकृत उ यही है कि उनको उसका सौन्दर्य्य और मा दिखा कर लुभाया जाय, जिससे वे बिना आगा सोचे मोहित हो कर उसकी ओर ढल पड़ें।

मन को हमारे आचार्य्यों ने ग्यारहवीं इ माना है। उसका रञ्जन करना और उसे सुख चाना ही यदि कविता का धर्म माना जाय कविता भी केवल विलास की सामग्री हुई। प क्या हम कह सकते हैं कि वाल्मीकि का रा काव्य, तुलसीदास का रामचरितमानस, या सूर का सूरसागर विलास की सामग्री है। यदि ग्रन्थों से मनोरञ्जन होगा तो चरित्र-संशोधन अवश्य ही होगा। खेद के साथ कहना पड़ता कि हिन्दी भाषा के अनेक कवियों ने शृङ्गार की उन्माद-कारिणी उक्तियों से साहित्य को भर दिया है कि कविता भी विलास की एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझी जाने लगी है। पीछे से तो ग्रीष्मोपचार आदि के नुस्ख़े भी कवि लोग तैयार करने लगे। ऐसी शृङ्गारिक कविता को कोई विलास की सामग्री कह बैठे तो उसका क्या दोष ? सारांश यह कि कविता का काम मनोरञ्जन ही नहीं, कुछ और भी है।

चरित्र-चित्रण-द्वारा जितनी सुगमता से शिक्षा दी जा सकती है उतनी सुगमता से किसी और उपाय द्वारा नहीं। आदि-काव्य रामायण में जब हम भगवान् रामचन्द्र के प्रतिज्ञा-पालन, सत्यव्रता-चरण और पितृभक्ति आदि को छटा देखते हैं; भरत के सर्वोच्च स्वार्थत्याग और सर्वांगपूर्ण सात्त्विक चरित का अलौकिक तेज देखते हैं; तब हमारा हृदय श्रद्धा, भक्ति और आश्चर्य्य से स्तम्भित हो जाता है। इसके विरुद्ध जब हम रावण की दुष्टता और उद्दंडता का चित्र देखते हैं तब समझते हैं कि दुष्टता क्या चीज़ है और उसका प्रभाव और परिणाम सृष्टि में क्या है। अब देखिए कविता द्वारा कितना उपकार होता है। उसका काम भक्ति, श्रद्धा, दया, करुणा, क्रोध और प्रेम आदि मनोवेगों को तीव्र और परिमार्जित करना तथा सृष्टि की वस्तुओं और व्यापारों से उनका उचित और उपयुक्त सम्बन्ध स्थिर करना है।

उच्च आदर्श।

कविता मनुष्य के हृदय को उन्नत करती है और ऐसे ऐसे उत्कृष्ट और अलौकिक पदार्थों का परिचय कराती है जिनके द्वारा यह लोक देवलोक और मनुष्य देवता हो सकता है।

कविता की आवश्यकता।

कविता इतनी प्रयोजनीय वस्तु है कि संसार को सभ्य और असभ्य सभी जातियाँ में पाई जाती है। चाहे इतिहास न हो, विज्ञान न हो दर्शन न हो, पर कविता अवश्य होगी। इसका क्या कारण है? बात यह है कि संसार के अनेक कृत्रिम व्यापारों में फँसे रहने से मनुष्य की मनुष्यता जाती रहने का डर रहता है। इसलिए मानुषी प्रकृति को जागृत रखने के लिए ईश्वर ने कवितारूपी ओषधि बनाई है। कविता यही प्रयत्न करती है कि प्रकृति से मनुष्य की दृष्टि फिरने न पावे। जानवरों को इसकी ज़रूरत नहीं। हमने किसी उपन्यास में पढ़ा है कि एक चिड़चिड़ा बनिया अपनी सुशीला और परम रूपवती पुत्रवधू को अकारण निकालने पर उद्यत हुआ। जब उसके पुत्र ने अपनी स्त्री की ओर से कुछ कहा तब वह चिढ़ कर बोला "चल चल! भोली सूरत पर मरा जाता है"। आह! यह कैसा अमानुषिक बर्ताव है! सांसारिक बन्धनों में फँस कर मनुष्य का हृदय कभी कभी इतना कठोर और कुंठित हो जाता है कि उस की चेतनता—उसका मानुष-भाव—कम हो जाता है। न उसे किसी का रूप-माधुर्य्य देख कर उस पर उपकार करने की इच्छा होती है; न उसे किसी दीन दुखिया की पीड़ा देख कर करुणा आती है; न उसे अपमानसूचक बात सुन कर क्रोध आता है। ऐसे लोगों से यदि किसी लोमहर्षण अत्याचार की बात कही जाय तो, मनुष्य के स्वाभाविक धर्मानुसार, वे क्रोध या घृणा प्रकट करने के स्थान पर रुखाई के साथ यही कहेंगे "जाने दो; हमसे क्या मतलब; चलो अपना काम देखो"। याद रखिए, यह महा भयानक मानसिक रोग है। इससे मनुष्य जीते जी मृतवत् हो जाता है। कविता इसी मरज़ की दवा है।

सृष्टिसौन्दर्य्य।

कविता सृष्टि-सौन्दर्य्य का अनुभव कराती है और मनुष्य को सुन्दर वस्तुओं में अनुरक्त करती है। जो कविता रमणी के रूप-माधुर्य्य से हमें आह्लादित करती है वही उसके अन्तःकरण की सुन्दरता और कोमलता आदि की मनोहारिणी छाया दिखा कर मुग्ध भी करती है। जिस बङ्किम की लेखनी ने गढ़ के ऊपर बैठी हुई राजकुमारी तिलोत्तमा के अङ्ग प्रत्यङ्ग की शोभा को अङ्कित किया है उसी ने आयशा के अन्तःकरण की अपूर्व सात्त्विकी ज्योति दिखा कर पाठकों को चमत्कृत किया है। भौतिक सौन्दर्य्य के अवलोकन से हमारी आत्मा को जिस प्रकार सन्तोष होता है उसी प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानसिक सौन्दर्य्य से भी। जिस प्रकार वन, पर्वत, नदी, झरना आदि से हम प्रफुल्लित होते हैं उसी प्रकार मानवी अन्तःकरण में प्रेम, दया, करुणा, भक्ति आदि मनोवेगों के अनुभव से हम आनन्दित होते हैं। और यदि इन दोनों पार्थिव और अपार्थिव सौन्दर्य्यों का कहीं संयोग देख पड़े तो फिर क्या कहना है। यदि किसी अत्यन्त सुन्दर पुरुष या अत्यन्त रूपवती स्त्री के रूप मात्र का वर्णन करके हम छोड़ दें तो चित्र अपूर्ण होगा; किन्तु यदि हम साथ ही उसके हृदय की दृढ़ता और सत्यप्रियता अथवा कोमलता और स्नेह-शीलता आदि की भी झलक दिखावें तो उस वर्णन में सजीवता आ जायगी। महाकवियों ने प्रायः इन दोनों सौन्दर्य्यों का मेल कराया है जो किसी किसी को अस्वाभाविक प्रतीत होता है। किन्तु संसार में प्रायः देखा जाता है कि रूपवान् जन सुशील और कोमल होते हैं और रूपहीन जन क्रूर और दुःशील। इसके सिवा मनुष्य के आन्तरिक भावों का प्रतिबिम्ब भी चेहरे पर पड़ कर उसे रुचिर या अरुचिर बना देता है। पार्थिव सौन्दर्य्य का अनुभव करके हम मानसिक अर्थात् अपार्थिव सौन्दर्य्य की ओर आकर्षित होते हैं। अतएव पार्थिव सौन्दर्य्य को दिखलाना कवि का प्रधान कर्म्म है।

कविता का दुरुपयोग।

जो लोग स्वार्थवश व्यर्थ की प्रशंसा और खुशामद करके वाणी का दुरुपयोग करते हैं वे सरस्वती का गला घोटते हैं। ऐसी तुच्छ वृत्ति वालों को कविता न करना चाहिए। कविता उच्चाशय, उदार, और निःस्वार्थ हृदय की उपज है। सत्कवि मनुष्य मात्र के हृदय में सौन्दर्य्य का प्रवाह बहाने वाला है। उसकी दृष्टि में राजा और रंक सब समान हैं। वह उन्हें मनुष्य के सिवा और कुछ नहीं समझता। जिस प्रकार महल में रहने वाले बादशाह के वास्तविक सद्गुणों की वह प्रशंसा करता है उसी प्रकार झोंपड़े में रहने वाले किसान के सद्गुणों की भी। श्रीमानों के शुभागमन कविता लिखना, और बात बात पर उनको बधाई सत्कवि का काम नहीं। हाँ जिसने निःस्वार्थ कर और कष्ट सहकर देश और समाज की का है, दूसरों का हित-साधन किया है, धर्म पालन किया है ऐसे परोपकारी महात्मा का गुण गान करना उसका कर्त्तव्य है।

कविता की भाषा।

मनुष्य स्वभाव ही से प्राचीन पुरुषों और वस्तु को श्रद्धा की दृष्टि से देखता है। पुराने शब्द लोगों को मालूम ही रहते हैं। इसी से कविता में कुछ न कुछ पुराने शब्द आ ही जाते हैं। उनका थोड़ा बहुत बना रहना अच्छा भी है। वे आधुनिक और पुरातन कविता के बीच सम्बन्ध-सूत्र का काम देते हैं। हिंदी में "राजते हैं," "गहते हैं," "लहते हैं," "सरसाते हैं," आदि प्रयोगों का खड़ी बोली की कविता में बना रहना कोई अचंभे की बात नहीं। अँगरेज़ी-कविता में भी ऐसे शब्दों का अभाव नहीं है जिनका व्यवहार बहुत पुराने ज़माने से कविता में होता आया है। 'Main,' 'swain' आदि ऐसे ही हैं। अँगरेज़ी-कविता समझने के लिए इनसे परिचित होना पड़ता है। पर ऐसे शब्द थोड़े आने चाहिए; वे भी ऐसे जो भद्दे और गए न हों। खड़ी बोली में संयुक्त क्रियायें बहुत होती हैं; जैसे—"लाभ करते हैं", "प्रकाश करते हैं" आदि। कविता में इनके स्थान पर 'लहते हैं' "प्रकाशते हैं" कर देने से कोई हानि नहीं। यह बात इस तरह के सभी शब्दों के लिए ठीक हो सकती।

कविता में कही गई बात हृत्पटल पर अस्थायी होती है। अतः कविता में प्रत्यक्ष स्वभावसिद्ध व्यापार-सूचक शब्दों की संख्या अधिक रहती है। "समय बीता जाता है" कहने की अपेक्षा "समय भागा जाता है" कहना अधिक सम्मत है। किसी काम से हाथ खींचना, किसी रुपया खा जाना, कोई बात पी जाना, दिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या डूबना, मन मारना, मन छूना, शोभा बरसना, आदि ऐसे ही कविसमयसिद्ध वाक्य हैं जो बोल चाल में आ गये हैं। नीचे कुछ पद्य उदाहरण-स्वरूप दिये जाते हैं:—

(क) धन्य भूमि बन पंथ पहारा।
जहँ जहँ नाथ *पावँ तुम धारा* ॥ तुलसीदास

(ख) मनहुँ उमगि अँग अँग छवि छलकै।—तुलसीदास, गीतावली

(ग) चूनरि चारु चुई *सी* परै चटकीली हरी अँगिया ललचावै।

(घ) वीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में बनन में बागन में *बगरो* बसंत है।—पद्माकर

(ङ) रंग रंग रागन पै, संग ही परागन पै, वृन्दावन बागन पै, बसंत *बरसो* परै।

बहुत से ऐसे शब्द हैं जिनसे एक ही का नहीं किन्तु कई क्रियाओं का एक ही साथ बोध होता है। ऐसे शब्दों को हम जटिल शब्द कह सकते हैं। ऐसे शब्द वैज्ञानिक विषयों में अधिक आते है। इनमें से कुछ शब्द तो एक विलक्षण ही अर्थ देते हैं और पारिभाषिक कहलाते हैं। विज्ञानवेत्ता को किसी बात की सत्यता या असत्यता के निर्णय की जल्दी रहती है। इससे वह कई बातों को एक मान कर अपना काम चलाता है; प्रत्येक काम को पृथक् पृथक् दृष्टि से नहीं देखता। यही कारण है जो वह ऐसे शब्द अधिक व्यवहार करता है जिनसे कई क्रियाओं से घटित एक ही भाव का अर्थ निकलता है। परन्तु कविता प्राकृतिक व्यापारों को कल्पना द्वारा प्रत्यक्ष कराती है—मानव-हृदय पर अङ्कित करती है। अतएव पूर्वोक्त प्रकार के शब्द अधिक लाने से कविता के प्रसाद गुण की हानि होती है और व्यक्त किये गये भाव हृदय पर अच्छी तरह अङ्कित नहीं होते। बात यह है कि मानवी कल्पना इतनी प्रशक्त नहीं कि एक ही बार में कई व्यापार उसके द्वारा हृदय पर स्पष्ट रीति से खचित हो सकें। यदि कोई ऐसा शब्द प्रयोग में लाया गया जो कई संयुक्त व्यापारों का बोधक है तो, सम्भव है, कल्पना-शक्ति किसी एक व्यापार को भी न ग्रहण कर सके; अथवा तदन्तर्गत कोई ऐसा व्यापार प्रकट करे तो मानवी प्रकृति का उद्दीपक न हो। तात्पर्य्य यह कि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग, तथा ऐसे शब्दों का समावेश जो कोई संयुक्त व्यापारों की सूचना देते हैं, कविता में वाञ्छित नहीं।

किसी ने "प्रेम फ़ौजदारी" नाम की शृङ्गार-रस-विशिष्ट एक छोटी सी कविता अदालती कारर-वाइयों पर घटा कर लिखी है और उसे "एक तरफ़ा डिगरी" आदि क़ानूनी शब्दों से भर दिया है। यह उचित नहीं। कविता का उद्देश इसके विपरीत व्यवहार से सिद्ध होता है। जब कोई कवि किसी दार्शनिक सिद्धान्त को अधिक प्रभावोत्पादक बना कर उसे लोगों के चित्त पर अङ्कित करना चाहता है तब वह जटिल और पारिभाषिक शब्दों को निकाल कर उसे अधिक प्रत्यक्ष और मर्मस्पर्शी रूप देता है। भर्तृहरि और गोस्वामी तुलसीदास आदि इस बात में बहुत निपुण थे। भर्तृहरि का एक श्लोक लीजिए:—

तृषा शुष्यत्यास्ये पिबति सलिलं स्वादु सुरभि
क्षुधार्त्तः सञ्छालीन्कवलयति शाकादिवलितान्।
प्रदीप्ते रागाग्नौ सुदृढतरमाश्लिष्यति वधूं
प्रतीकारो व्याधेः सुखमिति विपर्यस्यति जनः ॥

भावार्थ—प्यासे होने पर स्वादिष्ट और सुगन्धित जल-पान, भूखे होने पर शाकादि के साथ चावलों का भोजन, और हृदय में अनुरागाग्नि के प्रज्वलित होने पर प्रियात्मा का आलिङ्गन करने वाले मनुष्य विलक्षण मूर्ख हैं। क्योंकि प्यास आदि व्याधियों की शान्ति के लिए जल-पान आदि प्रतीकारों ही को वे सुख समझते हैं। वे नहीं जानते कि उनका यह उपचार बिलकुल ही उलटा है।

देखिए, यहाँ पर कवि ने कैसी विलक्षण उक्ति के द्वारा मनुष्य की सुख-दुःख-विषयक बुद्धि की भ्रामिकता दिखलाई है।

अँगरेज़ों में भी पोप कवि इस विषय में बहुत सिद्धहस्त था। नीचे उसका एक साधारण सिद्धांत लिखा जाता है:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"भविष्यत् में क्या होने वाला है, इस बात की अनभिज्ञता इस लिए दी गई है जिसमें सब लोग, आने वाले अनिष्ट की शंका से, उस अनिष्ट घटना के पूर्ववर्त्ती दिनों के सुख को भी न खो बैठें।"

इसी बात को पोप कवि इस तरह कहता है:—

The lamb thy riot dooms to bleed to day
Had he thy reason would he skip and play?
Pleased to the last he crops the flow'ry food
And licks the hand just raised to shed his blood.

.....

The blindness to the future kindly given.

—*Essay on Man.*

भावार्थ—उस भेड़ के बच्चे को, जिसका तू आज रक्त बहाना चाहता है, यदि तेरा ही सा ज्ञान होता तो क्या वह उछलता कूदता फिरता? अन्त तक वह आनन्दपूर्वक चारा खाता है और उस हाथ को चाटता है जो उसका रक्त बहाने के लिए उठाया गया है।.....भविष्यत् का अज्ञान हमें (ईश्वर ने) बड़ी कृपा करके दिया है।

'अनिष्ट' शब्द बहुत व्यापक और संदिग्ध है; अतः कवि मृत्यु ही को सबसे अधिक अनिष्ट वस्तु समझता है। मृत्यु की आशंका से प्राणिमात्र का विचलित होना स्वाभाविक है। कवि दिखलाता है कि परम अज्ञानी पशु भी मृत्यु सिर पर नाचते रहते भी सुखी रहता है। यहाँ तक कि वह प्रहारकर्त्ता के हाथ को चाटता जाता है। यह एक अद्भुत और मर्मस्पर्शी दृश्य है। पूर्वोक्त सिद्धान्त को यहाँ काव्य का रूप प्राप्त हुआ है।

एक और साधारण सा उदाहरण लीजिए। "तुमने उससे विवाह किया" यह एक बहुत ही साधारण वाक्य है। पर "तुमने उसका हाथ पकड़ा" यह एक विशेष अर्थ-गर्भित और काव्योचित वाक्य है। 'विवाह' शब्द के अन्तर्गत बहुत से विधान हैं जिन सब पर कोई एक दफ़े दृष्टि नहीं डाल सकता। अतः उससे कोई बात स्पष्ट रूप से कल्पना में नहीं आती। इस कारण उन विधानों में से सबसे प्रधान और स्वाभाविक बात जो हाथ पकड़ना उसे चुन कर कवि अपने अर्थ को मनुष्य के हृदय पर रेखाङ्कित करता है।

श्रुतिसुखदता।

कविता की बोली और साधारण बोली में जो अन्तर है। "शुष्को वृक्षस्तिष्ठत्यग्रे" और "नीरस तरुरिह विलसति पुरतः" वाली बात हमारे पण्डित-मण्डली में बहुत दिन से चली आती है। भाव-सौन्दर्य्य और नाद-सौन्दर्य्य दोनों के संयोग से कविता की सृष्टि होती है। श्रुति-कटु मान कर कुछ अक्षरों का परित्याग, वृत्त-विधान और अन्त्यानुप्रास का बन्धन, इसी नाद-सौन्दर्य्य के निर्वाह के लिए है। बिना इसके कविता करना, और केवल इसी को सर्वस्व मान कर कविता करने की कोशिश करना, निष्फल है। नाद-सौन्दर्य्य के साथ भाव-सौन्दर्य्य भी होना चाहिए। हिन्दी के कुछ पुराने कवि इस नाद-सौन्दर्य्य के इतना पीछे पड़ गये थे कि उनकी अधिकांश कविता निर्जीव और प्रायः भावशून्य हो गई है। यह देख कर आज कल के कुछ समालोचक इतना चिढ़ गये हैं कि ऐसी कविता को एक दम निकाल बाहर करना चाहते हैं। किसी को अन्त्यानुप्रास का बन्धन खलता है; कोई गणात्मक छन्दों को देख कर नाक भौं चढ़ाता है; कोई फ़ारसी के मुख़म्मस और रुबाई की ओर झुकता है। हमारी छन्दोरचना तक की कोई कोई अवहेलना करते हैं—वह छन्दोरचना जिसके माधुर्य्य को भूमण्डल के किसी देश का छन्दःशास्त्र नहीं पा सकता और जो हमारी श्रुति-सुखदता के स्वाभाविक प्रेम के सर्वथा अनुकूल है। जो लोग अन्त्यानुप्रास की बिलकुल आवश्यकता नहीं समझते उनसे मुझे यही पूछना है कि अन्त्यानुप्रास ही पर इतना कोप क्यों? छन्द (Metre) और तुक (Rhyme) दोनों ही नाद-सौन्दर्य्य के उद्देश से रक्खे गये हैं। फिर क्यों एक निकाला जाय और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं ? यदि कहा जाय कि सिर्फ़ छन्द ही से उस उद्देश की सिद्धि हो जाती है तो यह जानने की इच्छा बनी रहती है कि क्या कविता के लिए नाद-सौन्दर्य्य की कोई सीमा नियत है। यदि किसी कविता में भाव-सौन्दर्य्य के साथ नाद-सौन्दर्य्य भी वर्त्तमान हो तो वह अधिक ओजस्विनी और चिर-स्थायिनी होगी। नाद-सौन्दर्य्य कविता के स्थायित्व का वर्द्धक है; उसके बल से कविता ग्रंथाश्रय-विहीन होने पर भी किसी न किसी अंश में लोगों की जिह्वा पर बनी रहती है। अतएव इस नाद-सौन्दर्य्य को केवल बन्धन ही न समझना चाहिए। यह कविता की आत्मा नहीं तो शरीर अवश्य है।

नाद-सौन्दर्य्य-सम्बन्धी नियमों को गणित-क्रिया के समान काम में लाने से हमारी कविता में कहीं कहीं बड़ी विलक्षणता आ गई है। श्रुति-कटु वर्णों का निर्देश इस लिए नहीं किया गया कि जितने अक्षर श्रवण-कटु हैं वे एक दम त्याज्य समझे जायँ और उनकी जगह पर श्रवण-सुखद वर्ण ढूँढ ढूँढ कर रक्खे जायँ। इस नियम-निर्देश का मतलब सिर्फ़ इतनाही है कि यदि मधुराक्षर वाले शब्द मिल सकें और बिना तोड़ मरोड़ के प्रसंगानुसार खप सकें तो उनके स्थान पर श्रुति-कर्कश अक्षर वाले शब्द न लाये जायँ। संस्कृत से सम्बन्ध रखनेवाली भाषाओं में इस नाद-सौन्दर्य्य का निर्वाह अधिकता से हो सकता है। अतः अँगरेज़ी आदि अन्य भाषाओं की देखा देखी, जिनमें इसके लिए कम जगह है, अपनी कविता को भी हमें इस विशेषता से वञ्चित कर देना बुद्धिमानी का काम नहीं। पर, याद रहे, सिर्फ़ श्रुति-मधुर अक्षरों के पीछे दीवाने रहना और कविता को अन्यान्य गुणों से भूषित न करना सब से बड़ा दोष है।

एक और विशेषता हमारी कविता में है। वह यह है कि कहीं कहीं व्यक्तियों के नामों के स्थान पर उनके रूप, गुण या कार्य्यबोधक शब्दों का व्यवहार किया जाता है। पद्य के नपे हुए चरणों में खपाने के लिए शब्दों की संख्या का बढ़ाना ही इसका प्रयोजन जान पड़ता है; पर विचार करने से इसका इससे भी गुरुतर उद्देश प्रकट होता है। सच पूछिए तो यह बात कृत्रिमता बचाने के लिए की जाती है। मनुष्यों के नाम यथार्थ में कृत्रिम सङ्केत हैं जिनसे कविता की परिपोषकता नहीं होती। अतएव कवि मनुष्यों के नामों के स्थान पर कभी कभी उनके ऐसे रूप, गुण या व्यापार की ओर इशारा करता है जो स्वाभाविक होने के कारण सुनने वाले के ध्यान में अधिक आ सकते हैं और प्रसंग विशेष के अनुकूल होने से वर्णन की यथार्थता को बढ़ाते हैं। गिरिधर, मुरारि, त्रिपुरारि, दीनबन्धु, चक्रपाणि, दशमुख आदि शब्द ऐसे ही हैं। ऐसे शब्दों को चुनते समय प्रसंग या अवसर का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। जैसे, यदि कोई मनुष्य किसी दुर्धर्ष अत्याचारी के हाथ से छुटकारा पाना चाहता हो तो उसके लिए—"हे गोपिकारमण!" "हे वृन्दावन-विहारी!" आदि कह कर कृष्ण को पुकारने की अपेक्षा "हे मुरारि!" "हे कंसनिकंदन!" आदि सम्बोधनों से पुकारना अधिक उपयुक्त है। क्योंकि श्रीकृष्ण के द्वारा मुर और कंस आदि दुष्टों का मारा जाना देख कर उसे उनसे अपनी रक्षा की आशा हुई है, न कि उनका वृन्दावन में गोपियों के साथ विहार करना देख कर। इसी तरह किसी आपत्ति से उद्धार पाने के लिए कृष्ण को "मुरलीधर" कह कर पुकारने की अपेक्षा "गिरिधर" कहना अधिक अर्थ-संगत है।

अलङ्कार।

कविता में भाषा को ख़ूब ज़ोरदार बनाना पड़ता है—उसकी सब शक्तियों से काम लेना पड़ता है। कल्पना को चटकीली करने और रस-परिपाक के लिए कभी कभी किसी वस्तु का गुण या आकार बहुत बढ़ाकर दिखाना पड़ता है और कभी घटाकर। कल्पना-तरंग को ऊँचा करने के लिए कभी कभी किसी वस्तु के रूप और गुण को उसके समान रूप और धर्म्म वाली और और वस्तुओं के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामने लाकर रखना पड़ता है। इस तरह की भिन्न भिन्न प्रकार की वर्णन-प्रणालियों का नाम अलंकार है। इनका उपयोग काव्य में प्रसंगानुसार विशेष रूप से होता है। इनसे वस्तु-वर्णन में बहुत सहायता मिलती है। कहीं कहीं तो इनके बिना कविता का काम ही नहीं चल सकता। किन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि अलंकार ही कविता है। ये अलंकार बोल चाल में भी रोज़ आते रहते हैं। जैसे, लोग कहते हैं "जिसने शालग्राम को भून डाला उसे भँटा भूँनते क्या लगता है?"। इसमें काव्यार्थापत्ति अलंकार है। "क्या हम से वैर करके तुम यहाँ टिक सकते हो?" इसमें वक्रोक्ति है।

कई वर्ष हुए "अलंकारप्रकाश" नामक पुस्तक के कर्त्ता का एक लेख "सरस्वती" में निकला था। उसका नाम था—"कवि और काव्य"। उसमें उन्होंने अलंकारों की प्रधानता स्थापित करते हुए और उन्हें काव्य का सर्वस्व मानते हुए लिखा था कि "आज कल के बहुत से विद्वानों का मत विदेशी भाषा के प्रभाव से काव्य-विषय में कुछ परिवर्तित देख पड़ता है वे महाशय सर्वलोकमान्य साहित्य-ग्रन्थों में विवेचन किये हुए व्यंग्य-अलंकार-युक्त काव्य को उत्कृष्ट न समझ केवल सृष्टि-वैचित्र्य-वर्णन में काव्यत्व समझते हैं"। यदि ऐसा है तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या? रस और भाव ही कविता के प्राण हैं। पुराने विद्वान् रसात्मक कविता ही को कविता कहते थे। रसों अथवा मनोविकारों के यथेष्ट परिपाक ही की ओर उनका ध्यान अधिक था। अलंकारों को वे आवश्यकतानुसार वर्णित विषय को विशेषतया हृदयङ्गम करने के लिए ही लाते थे। यह नहीं समझा जाता था कि अलंकार के बिना कविता हो ही नहीं सकती। स्वयं काव्य-प्रकाश के कर्त्ता मम्मटाचार्य्य ने बिना अलंकार के काव्य का होना माना है और उदाहरण भी दिया है—"तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि"। किन्तु पीछे से इन अलंकारों ही में काव्यत्व मान लेने से कविता अभ्यासगम्य और सुगम प्रतीत होने लगी। इसी से लोग उनकी ओर अधिक झुक पड़े। धीरे धीरे इन अलंकारों के लिए आग्रह बढ़ने लगा। यहाँ तक कि चन्द्रालोककार ने लिख डाला कि—

अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलं कृती॥

अर्थात्—जो अलंकार-रहित शब्द और अर्थ को काव्य मानता है वह अग्नि को उष्णतारहित क्यों नहीं मानता? किन्तु यथार्थ बात कब तक छिपाई जा सकती है। इतने दिनों पीछे समय ने फिर पलटा खाया। विचारशील लोगों पर यह बात प्रकट हो गई कि रसात्मक वाक्यों ही का नाम कविता है और रस ही कविता की आत्मा है।

इस विषय में पूर्वोक्त ग्रंथकार महोदय को एक बात कहनी थी; पर उन्होंने नहीं कहा। वे कह सकते थे कि सृष्टि-वैचित्र्य-वर्णन भी तो स्वभावोक्ति अलंकार है। इसका उत्तर यह है कि स्वभावोक्ति को अलंकार मानना उचित नहीं। वह अलंकारों को श्रेणी में आ ही नहीं सकती। वर्णन करने की प्रणाली का नाम अलंकार है। जिस वस्तु को लो चाहें उस प्रणाली के अन्तर्गत करके उसका वर्णन कर सकते हैं। किसी वस्तुविशेष से उसका सम्बन्ध नहीं। यह बात अलंकारों की परीक्षा से स्पष्ट हो जायगी। स्वभावोक्ति में वर्ण्य वस्तु का निर्देश है; पर वस्तु-निर्वाचन अलंकार का काम नहीं। इससे स्वभावोक्ति को अलंकार मानना ठीक नहीं। उसे अलंकारों में गिनने वालों ने बहुत ठोकर खपाया है; पर उसका निर्दोष लक्षण नहीं कह सके। काव्यप्रकाश के कारिकाकार ने उसका लक्षण लिखा है:—

स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपवर्णनम्।

अर्थात्—जिसमें बालकादिकों की निज की क्रिया या रूप का वर्णन हो वह स्वभावोक्ति है। बालकादिक कहने से किसी वस्तुविशेष का बोध तो होता नहीं। इससे यही समझा जा सकता है कि सब की वस्तुओं के व्यापार और रूप का वर्णन स्वभावोक्ति है। इस लक्षण में अतिव्याप्ति दोष के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलंकारता नहीं आती। अलंकारसर्वस्व के कर्त्ता राजानक रुय्यक ने इसका यह लक्षण लिखा है :—

सूक्ष्मवस्तुस्वभावस्ययथावद्वर्णनं स्वभावोक्तिः।

अर्थात् वस्तु के सूक्ष्म स्वभाव का ठीक ठीक वर्णन करना स्वभावोक्ति है। आचार्य्य दण्डी ने अवस्था की योजना करके यह लक्षण लिखा है :—

नानावस्थं पदार्थानां रूपं साक्षाद्विवृण्वती।
स्वभावोक्तिश्च जातिश्चेत्याद्या सालंकृतिर्यथा॥

बात यह है कि स्वभावोक्ति अलंकार के अन्तर्गत आही नहीं सकती, क्योंकि वह वर्णन करने की प्रणाली नहीं, किन्तु वर्ण्य वस्तु या विषय है।

जिस प्रकार एक कुरूपा स्त्री अलंकार धारण करने से सुन्दर नहीं हो सकती उसी प्रकार अस्वाभाविक भद्दे और क्षुद्र भावों को अलंकार-स्थापना सुन्दर और मनोहर नहीं बना सकती। महाराज भोज ने भी अलंकार को "अलमर्थमलंकर्त्तुः" अर्थात् सुन्दर अर्थ को शोभित करनेवाला ही कहा है। इस कथन से अलंकार आने के पहले ही कविता की सुन्दरता सिद्ध है। अतः उसे अलंकारों में ढूँढ़ना भूल है। अलंकारों से युक्त बहुत से ऐसे काव्योदाहरण दिये जा सकते हैं जिनको अलंकार के प्रेमी लोग भी भद्दा और नीरस कहने में संकोच न करेंगे। इसी तरह बहुत से ऐसे उदाहरण भी दिये जा सकते हैं जिनमें एक भी अलंकार नहीं; किन्तु उनके सौन्दर्य्य और मनोरञ्जकत्व को सब स्वीकार करेंगे। जिन वाक्यों से मनुष्य के चित्त में रस-सञ्चार न हो,—उसकी मानसिक स्थिति में कोई परिवर्त्तन न हो—वे कदापि काव्य नहीं। अलंकारशास्त्र की कुछ बातें ऐसी हैं जो केवल शब्दचातुरी मात्र हैं। उसी शब्दकौशल के कारण वे चित्त को चमत्कृत करती हैं। उनसे रस-सञ्चार नहीं होता। वे कान को चाहे चमत्कृत करें, पर मानव-हृदय से उनका विशेष सम्बन्ध नहीं। उनका चमत्कार शिल्पकारों की कारीगरी के समान सिर्फ़ शिल्प-प्रदर्शिनी में रखने ही योग्य होता है। हर्ष की बात है कि एक ऐसी रचना अपने उचित स्थान पर पहुँच गई। सुनते हैं कि नागपुर की शिल्प-प्रदर्शिनी में चित्र-काव्य के बहुत अच्छे नमूने आये थे।

अलंकार है क्या वस्तु? विद्वानों ने काव्यों के सुन्दर सुन्दर स्थलों को पहले चुना। फिर उनकी वर्णन-शैली के सौन्दर्य्य का कारण ढूँढ़ा। तब वर्णन-वैचित्र्य के अनुसार भिन्न भिन्न लक्षण बनाये। जैसे "विकल्प" अलंकार को पहले पहल राजानक रुय्यक ने ही निकाला है। अब कौन कह सकता है कि काव्यों के जितने सुन्दर सुन्दर स्थल थे सब ढूँढ़ डाले गये, अथवा जो सुन्दर समझे गये—जिन्हें लक्ष्य करके लक्षण बने—उनकी सुन्दरता का कारण कही हुई वर्णन-प्रणाली ही थी। अलंकारों के लक्षण बनने तक काव्यों का बनना नहीं रुका रहा। आदि-कवि महर्षि वाल्मीकि ने—"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः" का उच्चारण किसी अलंकार को ध्यान में रख कर नहीं किया। अलंकार-लक्षणों के बनने के बहुत पहले कविता होती थी, और अच्छी होती थी। अथवा यों कहना चाहिए कि जबसे इन अलंकारों को हठात् लाने का उद्योग होने लगा तबसे कविता कुछ बिगड़ चली।

रामचन्द्र शुक्ल।

वृक्षों और जानवरों की लड़ाई।

प्राकृतिक लीलाओं में जीवन-संग्राम (Struggle of Existence), जो हमारे हर एक काम में बराबर सुबह से शाम तक जारी है, एक आश्चर्य्यकारक घटना है। सर्व-साधारण इसकी बाबत बहुत कम जानते हैं। बहुत से लोग ख़याल करते हैं कि दुनिया के कारोबार सब निश्चित हैं। लेकिन ऐसा नहीं है। हर चीज़ में कुछ न कुछ उलट फेर होता रहता है। हर रोज़ हम चिड़ियों को वृक्षों पर गाते हुए सुनते हैं; कोड़ों को फलों से लगे देखते हैं; गिलहरियों को वृक्षों की चोटियों पर चढ़ते हुए अवलोकन करते हैं। पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कितनी जांफिशानी, कितने जीवन-संग्राम, के बाद इन जीवधारियों को यह अवस्था प्राप्त हुई है, इसका विचार बहुत ही थोड़े आदमी करते होंगे।

हमको दुनिया में ख़ूराक तलाश करना पड़ती है, अपने दुश्मनों से लड़ना पड़ता है, और क़ुदरत की बड़ी बड़ी ताक़तों का सामना करना पड़ता है। यह लड़ाई, जो हमें अपनी ज़िन्दगी क़ायम रखने के वास्ते सुबह से शाम तक लड़नी पड़ती है, क़ुदरत के कामों में कुछ अजीब दिलचस्पी पैदा कर देती है। इस कारण हम पाठकों से विनय करते हैं कि थोड़ा सा अपना क़ीमती वक़्त इसमें लगायें, जिसमें हम उनको दिखा सकें कि जीवन-संग्राम (Struggle of Existence) ने दुनिया में क्या क्या नई बातें पैदा कर दी हैं।

यह तो मामूली बात है कि यदि किसी बाग़ से, जिसमें फूल-फल के पौधे ख़ूब हों, घास न उखाड़ी जाय तो फूल-फल के पेड़ कमज़ोर होकर बहुत जल्द नष्ट हो जायँगे। यदि कोई बाग़ बेमरम्मत छोड़ दिया जाय तो उसकी घास धीरे धीरे सूख जायगी और दूसरी क़िस्म की घास उस पर क़ब्ज़ा कर लेगी। ऐसी ही तबदीली हमेशा होती रहेगी। थोड़े रोज़ में पुराने फलफूल या घास के पेड़ों का नामोनिशान तक न रहेगा। उनकी जगह न मालूम कितनी और घासें उग उग कर नष्ट हो जायँगी। यह मामूली क़िस्म का जीवन-संग्राम (Struggle for Existence) है। इससे स्पष्ट है कि एक चीज़ दूसरी चीज़ पर अपना दख़ल कैसे जमा लेती है। पौधे कैसेही बढ़नेवाले और मज़बूत क्यों न हों, यदि कुछ दिन उनसे कोई न बोले तो वे धीरे धीरे ज़ाया हो जायँगे और दूसरे उनकी जगह पैदा हो जायँगे। लेकिन एक बात और हमारी नज़र से गुज़री है जो मुख़्तलिफ़ मिज़ाज के पौधों और जानवरों में उस मुल्क में रहने से पैदा होती है जिनकी आबोहवा उनको उसी तरह मुआफ़िक होती है जैसी कि उनको पैदाइश के मुल्कों की होती है। एगेसिज़ नाम के एक साहब अपनी किताब में, जो उन्होंने सुपीरियर झील नामक झील के बयान में लिखी है, कहते हैं कि अमेरिका के उत्तर-पूर्व में कोई एकसौ तीस तरह की ऐसी घासें हैं जो यूरप में पैदा होने वालीं हैं। जितने अमेरिका की ख़ुदरौ घासें थीं वे सब ग़ायब हो गई हैं। इसी तरह न्यूज़ीलेंड में भी यूरप में पैदा होने वाले क़रीब ढाई सौ क़िस्म के पौधे हैं जिनमें से १०० पौधे तमाम मुल्क में फैले हुए हैं और किस जगह न्यूज़ीलेंड के ख़ुदरौ पौधों को नहीं रहने देते वे उनको तबाह करके ख़ुद उनकी जगह क़ब्ज़ा कर लेते हैं। इसके सिवा सैकड़ों पौधे ऐसे हैं जो हमारे बाग़ों में तो ख़ूब होते हैं, पर न्यूज़ीलेंड में उनकी बाढ़ बहुत कम है; इसी वजह से वहाँ आम तौर से नहीं मिलते। बहुधा लोग ग़ैर मुल्क के पौधों को अपने मुल्क में लाकर उनको वहाँ की आबोहवा के मुताबिक़ बनाना चाहते हैं। लेकिन बहुतेरे इसमें नाकामयाब हुए हैं। केडोल साहब का कथन है कि जिस और पेरिस आदि के कितनेहीं वनस्पति-शास्त्र-ज्ञाताओं ने सैकड़ों क़िस्म के बीज ऐसी जगह बोये जो उनके बहुत मुआफ़िक़ थी; पर एक भी क़िस्म के पेड़ उस मुल्क की आबोहवा में उग कर बढ़ न सके।

आलू नाज़ुक दरख़्तों की जाति का पौधा नहीं है। बहुत से अंकुर होने की वजह से उसमें इस बात का माद्दा है कि बहुत जल्द तमाम मुल्क में फैल जाय। इन कारणों के होते हुए भी तमाम यूरप में कहीं भी आलू की ऐसी हालत न हुई कि जंगलों में ख़ुदरौ पाया जाय, अर्थात् वह यूरप की आबोहवा के मुआफ़िक़ न हो सका। यह ख़याल किया गया है कि आस्ट्रेलिया के पेड़ न्यूज़ीलेंड में बहुत जल्द जंगली हो सकते हैं। पर जोज़ेफ़ हुकर साहब कहते हैं कि बिडवेल साहब (Mr. Bidwell) आस्ट्रेलिया के पौधों के बीज न्यूज़ीलेंड ले जा कर हमेशा बोते रहे; तथापि मुश्किल से तीन पौधे वहाँ उगे; सो भी तब जब जुती और अच्छी ज़मीन में बोये गये। ऐसी हालत कभी नहीं हुई कि चाहे जैसी ज़मीन में बो दिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और तुरन्त तैयार हो जायँ। न तो वे ऐसी अधिक तादादही में पैदा हुए कि अपनी अधिकता के कारण दूसरे पौधों को तबाह कर डालते और अपना क़ब्ज़ा जमा लेते और न ऐसे ताक़तवरही हुए कि दूसरे पौधों की ताक़त को कम कर देते।

आपस की इस कशमकश के सिवा पौधों को जानवरों से भी लड़ना पड़ता है। उनकी कलियाँ चिड़ियाँ ख़राब कर देतीं हैं, पत्ते छोटे छोटे कीड़े खा डालते हैं, बीजों को भी कीड़े ख़राब कर देते हैं; कोई कोई टहनियों और पत्तों को छेद डालते हैं और कोई जड़ को कुतर डालते हैं। जानवरों में अंडे और छोटे बच्चों पर सबसे पहले आफ़त आती है और पौधों में सब से पहले कल्लों पर। पिछली बात को साबित करने के लिए डारविन साहब ने एक गढ़ा तीन फ़ीट लम्बा और दो फ़ीट चौड़ा खुदवाया और उसमें कई तरह की घासों के बीज डाल दिये। बीजों की कुल तादाद ३५७ थी, जिनमें से २५९ तो कीड़ों ने गढेही में ख़राब कर दिये; बाक़ी में से बहुत से अंकुर उगने पर चिड़ियों ने खा लिये। मतलब यह कि उन बीजों में से बहुत थोड़े बाक़ी रह गये। उन बाक़ी में से जब कुछ पेड़ साल दो साल के हुए तब उनको बड़े पेड़ों से सामना करना पड़ा। कोई उनका पानी खींच लेते हैं और पानी न पहुँचने के कारण उन्हें सुखा डालते हैं। यदि कोई बड़े पेड़ों की छाया के नीचे आ गये तो बेमौत मरे। पेड़ों को पालनपोषण को धूप चाहिए और पानी भी चाहिए। पुराने और ज़बरदस्त पेड़ इनमें से एक चीज़ भी नहीं मिलने देते। इससे बेचारे नन्हें पौधे प्राण छोड़ देते हैं।

इसके सिवा पौधों के और भी बहुत से दुश्मन हैं जिनसे उनको अपनी जान बचाना पड़ती है। जुदी जुदी क़िस्म के पौधे जुदे जुदे दरजे की गर्मी-सर्दी चाहते हैं। यानी हर एक अपने मुआफ़िक़ की गर्मी, सर्दी, नमी और खाद चाहता है। इनमें से अगर एक भी चीज़ ज़रूरत से ज़ियादा या कम होगी तो वही उनके लिए हानिकारक होगी और उससे कमज़ोर हो कर वे मर जायँगे। इन्हीं कारणों से हम ज़मीन पर कहीं कैसे ही और कहीं कैसे ही पौधे उगे हुए देखते हैं। किसी को गर्मी ज़ियादा लग गई तो पीले पड़ कर मुरझा गये; किसी की जड़ में पानी ज़ियादा भरा रहा तो जड़ सड़ गई; किसी को पाला मार गया तो पत्ते जल गये।

इसी तरह एक मुल्क के वृक्ष दूसरे मुल्क के वृक्षों से सूरत शकल में बिलकुल बदल जाते हैं। दूर की बात जाने दीजिए एक ही बाग़ में एक साथ के बोये हुए वृक्षों में हम कितना अन्तर देखते हैं। कुछ अन्तर तो पूर्वोक्त कारणों से होता है और कुछ ज़मीन के अच्छे बुरे होने से होता है। चन्द पौधों की क़िस्म शीघ्रता से बढ़नेवाली होती है, चन्द की बहुत कम बढ़नेवाली। यह अंतर तो जाति-विषयक हुआ। ज़मीन का फ़र्क़ इस तरह होता है कि बाज़ ज़मीन में बहुत बढ़नेवाली क़िस्म अगर लगाई जाय तो कम बढ़ती है और कम बढ़नेवाली अधिकता से होती है। फिर कीड़े भी बहुत ख़राबी पैदा करते हैं। कोई कोई कीड़े किसी किसी वृक्ष में ऐसा ज़हरीला मुँह मारते हैं कि वृक्ष क्षीण हो कर बहुत जल्द सूख जाता है। सन् १७४० ई० में एक क़िस्म के कीड़े ने स्वीडन देश की चरागाहों में ऐसा ज़हर फैला दिया कि उनमें दो बरस तक घास न उगी। एक और तमाशा हुआ। इन चरागाहों में जो अच्छे अच्छे फूलों के पौधे घास की अधिकता के कारण पहले सूख गये थे, अब घास उगना बंद होने पर फिर हरे हो गये और तमाम चरागाहों में फिर फुलवारी फूल उठी।

सेंट हेलीना द्वीप में बकरियों के लेजाने से वहाँ के जंगलों को, जिनमें अनेक प्रकार के फल फूल थे, बड़ी हानि पहुँची। छोटे छोटे पौधों के नये अंकुर उगतेही वे चर लिया करती थीं। इस तरह वे तमाम पेड़ों को ख़राब कर देती थीं। ऊँट भी इन पौधों का जानी दुश्मन है। एक विद्वान् का मत है कि बकरियाँ और ऊँट अरब और अफ़्रीक़ा के रेगिस्तानों के छोटे छोटे वृक्षों को जड़ से चर लेते हैं। हमारे ही मुल्क के बहुत से हिस्सों में वृक्षों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होना जानवरों के न होने पर ही अवलम्बित है। अर्थात् यदि जानवर कम हों तो वृक्ष ख़ूब फैलें। लायल साहब (Sir Ch. Lyell) अपने तजरिबे से लिखते हैं कि ऊदबिलाव की ख़ूराक सामन नाम की एक मछली है। यदि सील मछली और दूसरे दरियाई जानवर सामन को बिलकुल खा डालें, यहाँ तक कि ऊदबिलाव के खाने को सामन रहे ही नहीं, तो फिर वह चिड़ियों और छोटे छोटे चौपायों को खाना शुरू करेगा। इससे यह सिद्ध है कि अकेली सामन मछली के कम होने से ज़मीन पर रहनेवाली चिड़ियों और चौपायों पर कितनी आफ़त आ सकती है। वे धीरे धीरे कम होने लगेंगी। फिर चिड़ियों के कम होने का असर कीड़ों पर होगा; क्योंकि जब चिड़ियाँ, जो कीड़े खाती थीं, कम हो जायँगी तब कीड़े बढ़ने लगेंगे और छोटे छोटे पौधों को ख़राब करने लगेंगे। यह बात डारविन साहब ने बड़ी मिहनत के बाद साबित की है।

अब यह देखना है कि एक जानवर का दूसरे जानवर पर किस तरह और क्या असर होता है। डारविन साहब कहते हैं कि दुनिया के बहुत से हिस्सों में बाज़ बाज़ कीड़े किसी किसी जानवर की उत्पत्ति ही नहीं होने देते। प्रेग नामक नगर में इसको बहुत अच्छी मिसाल मिला है। ख़ास प्रेग शहर में घोड़े, कुत्ते वग़ैरह आवारा फिरते हुए नहीं दिखाई देते; पर प्रेग के उत्तर और दक्षिण में जंगली जानवरों के झुण्ड के झुण्ड फिरते रहते हैं। अजारा और रेंगर नाम के दो विद्वानों ने इसका कारण एक क़िस्म की मक्खी बतलाई है जो इन जानवरों के पैदा होते ही इनकी नाक में अंडे रखती है जिससे वे मर जाते हैं। यदि इन मक्खियों को तादाद किसी तरह कम हो सके तो इन जानवरों की तादाद बढ़े। पर इन मक्खियों को कम करने के लिए किसी और क़िस्म के कीड़े चाहिए। ऐसे कीड़े तो हैं जो मक्खियों को खाते हैं; पर मक्खियों की इतनी बड़ी तादाद कम करने के लिए कीड़ों की भी उतनी बड़ी तादाद चाहिए। यह तब हो सकता है जब कीड़े खानेवाली चिड़ियाँ प्रेग में रहें और कीड़ों का खाना बंद करें। बस तभी कीड़े बढ़ेंगे और बढ़ कर उस तादाद को पहुँचेंगे जितने मक्खियों को कम करने के लिए काफ़ी है। इतना होने पर कहीं जानवरों की तादाद ज़ियादा हो सकती है। अब देखना चाहिए कि सिर्फ़ एक जानवर दुनिया में क़ायम रखने के लिए कितनी दिक्कतें उठानी पड़ती हैं। डारविन साहब कहते हैं कि बाज़ बाज़ कीड़े पेड़ों को उनके बढ़ने में मदद भी पहुँचाते हैं। इसकी एक मिसाल भी उन्होंने दी है।

यह बात बहुत लोग जानते हैं कि बाज़ बाज़ फूलों को अपनी बाढ़ के लिए ऐसे कीड़ों की ज़रूरत पड़ती है जो एक फूल के पराग को दूसरे फूल पर डालें। ऐसा होने से उस फूल में बीज पैदा होते हैं। सब कीड़े ऐसा नहीं कर सकते। ख़ास ख़ास फूलों को ख़ास ही ख़ास कीड़े चाहिए। बहुत से फूलों के पराग को मक्खियाँ एक दूसरे से ले जाती हैं। यदि मक्खियाँ पराग ले जाने से रोक दी जायँ तो या तो बीज बिलकुल ही पैदा न हों या हों भी तो बहुत ही छोटे हों। देखने से मालूम हुआ है कि चूहे इन मक्खियों के छत्तों को बरबाद कर डालते हैं। कर्नल न्यूमेन ने इस बात की खोज की है। वे कहते हैं कि क़रीब दो तिहाई छत्ते चूहे इस तरह बरबाद कर देते हैं। पर चूहों का कम ज़ियादा होना बिल्लियों की कमी या ज़ियादती पर है। इससे यह साबित है कि इन फूलों की बढ़ती बिल्लियों पर मुनहसिर है। ब्लेंगस्टेड साहब (Mr. A. Blengsted) की तहक़ीक़ात में चूहों की आपस की लड़ाई का एक क़िस्सा हमको मिलता है। यह डेनमार्क के एक जंगल में हुई थी। उससे पूर्वोक्त बात की पुष्टि होती है।

लड़नेवाले पेड़ बीच और सनोबर के थे। झगड़े में बीच कामयाब हुए। दो एक रेतीले मैदान के सिवा ऐसा जंगल, जिसमें निरे सनोबर ही के पेड़ हों, कहीं नहीं हैं। ज़ियादा जंगल बीच ही के मिलते हैं। जहाँ कहीं ज़रा भी अच्छी ज़मीन होती है वहाँ बीच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सनोबर को निर्बीज कर देता है। बीच बड़ा साये-दार पेड़ होता है। साये ही ने बीच में इतनी ताक़त दी है। बीच के नीचे यदि कोई पौधा आ जाय तो कभी हरा नहीं रह सकता। बीच यदि सनोबर के नीचे उगे तो बीच ख़ूब बढ़ता है; पर यदि सनोबर बीच के नीचे आ जाय तो सनोबर तुरंत ही मुरझा जाता है। बीच में एक यह विशेषता है कि वह अपने आस पास के पेड़ों का पानी चूस लेता है। इससे वे पीले पड़ कर मुरझा जाते हैं। बीच इतना ताक़तवर होता है कि चीड़ और बलूत तक को अपने मुक़ाबिले में ठहरने नहीं देता। एक बीच क्या बहुत से ऐसे वृक्ष हैं जो एक दूसरे के सख़्त दुश्मन हैं। उनमें से जो ताक़तवर होते हैं वे कमज़ोरों पर जय पाते हैं। वही दिग्विजयी होते हैं। पहले डेनमार्क के जंगलों में बेत बड़ी कसरत से होता था। चीड़ बेत का दुश्मन है। उसने धीरे धीरे तमाम जगहों से बेतको निर्बीज कर दिया और अपना कब्ज़ा तमाम जंगलों पर जमा लिया। कई सदियों बाद बलूत चीड़ से भी बली निकला। उसने चीड़ का अस्तित्व मिटा कर अपना राज्य तमाम जंगलों में फैलाया। उसके बाद बीच ने अपना राज्य फैलाया। एक क़िस्म का वृक्ष दूसरे क़िस्म के वृक्ष पर कुछ दो चार वर्ष में कब्ज़ा नहीं जमा लेता। ऐसा करने के लिए १००, १५० बरस चाहिए। बीज से मालूम हुआ है कि डेनमार्क के जंगलों में किसी समय चीड़ का राज्य था। पर आज कल वहाँ बीच बड़ी कसरत से फैला हुआ है। जीवन-संग्राम में कामयाब होने के लिए सबसे बड़ी ज़रूरत इस बात की है कि पेड़ में कोई ऐसी विशेषता हो जिससे वह अपने को और दुश्मनों से बचा सके। हम इसकी एक मिसाल देते हैं कि विशेषता होने से पेड़ अपने को कैसे बचाते हैं। जिन पेड़ों में कोई विशेषता नहीं होती और जो न ताक़तवर ही होते हैं वे बहुत जल्द मर जाते हैं।

(असमाप्त)

"भ्रमर"

लम्बे होंठ वाले जंगली आदमी।

कुछ समय हुआ, यूरप में एक कम्पनी थी। वह विलक्षण विलक्षण जीव जन्तुओं का रोज़गार करती थी और अजीब अजीब जंगली आदमी ढूंढ़ ढूंढ़ कर अपने यहाँ रखती और लोगों को दिखा कर रुपया कमाती थी। यह कम्पनी अब टूट गई है। इसके यहाँ मेयर नाम के एक साहब नौकर थे। उन्होंने कहीं सुना कि अमेरिका की अमेज़न नदी के किनारे लंबे होंठ वाले विचित्र आदमियों की एक जंगली जाति रहती है। इस जाति के आदमी अपने जंगल छोड़ कर आज तक कभी सभ्य-भूमि में नहीं आये। इसलिए दो तीन लंबे होंठ वाले आदमी वहाँ से लाने का विचार मेयर के मन में आया। वह दक्षिणी अमेरिका के ब्रेज़ील देश में पहुँचा। वहाँ जाकर उसने जो कुछ किया और उस पर जो कुछ बीती वह सब उसी के मुँह से सुनिए। उसने अपनी सविस्तर कथा अँग-रेज़ी के "वाइड वर्ल्ड" नामक मासिक पुस्तक में प्रकाशित की है:—

इन जंगली आदमियों का होंठ कोई ६ इंच नीचे को लटकता रहता है। इससे उनका रूप बहुत ही भयानक और बीभत्स मालूम होता है। उनके दो एक नमूने प्राप्त करने का मैंने अपने मन में संकल्प किया। ब्रेज़ील के बाहिया नगर में पहुँच कर मैंने वहाँ के अफ़सरों से लंबे होंठ वालों के देश में जाने की आज्ञा माँगी। मेरी प्रार्थना नामंज़ूर हुई। मुझ से कहा गया कि एक भी लंबे होंठ वाला आदमी अपने गाँव से बाहर नहीं भेजा जा सकता। भेजना तो दूर रहा उनके गाँव के सौ मील आस पास तक भी किसी को जाने की आज्ञा नहीं मिल सकती। पर मैं नाउम्मेद नहीं हुआ। मैं एक हफ़्ते तक बाहिया में रह कर वहाँ जाने की तरकीबें सोचता रहा। अमेज़न नदी के रास्ते ही मैं वहाँ जा सकता था। रास्ता महीनों का था। कोई आदमी मुझे वहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेजाने को राज़ी न था। बड़ी मुशकिलों से कप्तान रोबेरिओ नाम का एक आदमी मुझे मिला। उसके पास एक छोटा सा जहाज़ था। अन्टोनिओ नाम का एक गोआनी भी मुझे मिला। वह दुभाषिये का भी काम कर सकता था और रास्ता भी उसका देखा हुआ था। हम लोगों ने छिप कर जाने का निश्चय किया। कप्तान से मैंने वादा किया कि वह रास्ते में व्यापार भी कर सकेगा। छः महीने के खाने पीने का सामान और गोलो, बारूद, बन्दूक आदि हम लोगों ने लिया। व्यापार की चीज़ें भी अन्टोनिओ ने जहाज़ पर लादीं। जंगली लोगों को देने लायक़ चीज़ें भी बहुत सी हम लोगों ने साथ लीं। तीन चार ख़लासी लेकर एक रात को हम सब ने चुप चाप जहाज़ का लंगर उठाया। अमेज़न को फाड़ते हुए धीरे धीरे हम आगे बढ़े।

अमेज़न बहुत चौड़ी नदी है। उसके मुँह की तरफ़, पश्चिम की ओर, हमारा जहाज़ चला। कई दिन चलने के बाद, किनारे पर, ब्रेज़ील गवर्नमेंट का एक क़िला मिला। उसे पार कर जाना मुश्किल था। अगर कोई देख लेता तो हम लोग आगे न जा सकते। अँधेरी रात में, जहाज़ का पेड़ों को हरी हरी डालों से तोप तापकर, हम लोग क़िले वालों की नज़र छिपा निकल गये। कोई डेढ़ महीने बाद हमारा जहाज़ पेरू देश की सीमा पर पहुँचा वहाँ से कुछ दूर आगे, गोयाज़ नाम के गाँव के पास, हम लोग ठहरे। अन्टोनिओ और रोबेरिओ यहाँ तक पहले एक दफ़े आ चुके थे। इसके आगे वे नहीं गये थे। गोयाज़ गाँव में याँगसिल नामक एक जंगली रहता था। वह उस गाँव का सरदार था। सभ्य आदमियों से कई दफ़े वह मिल चुका था। हम लोग उसके पास गये और बहुत कुछ इनाम देने का लालच देकर उसे अपने साथ लिया उसने अपने बहुत से साथियों को भी जहाज़ पर लिया। बिना इन लोगों की मदद के लंबे होंठ वालों के देश तक पहुँचना असम्भव था। ये लोग उन जंगलियों से वाकिफ़ थे और उनकी बोली भी समझ सकते थे।

गोयाज़ में मालूम हुआ कि जहाँ हम लोग जा रहे हैं वहाँ वाले बड़े ही भयङ्कर जीव हैं। उनके होंठ इतने लंबे हैं कि उन्हें उलट कर वे अपना सारा चेहरा ढक सकते हैं। वे बड़े ही लड़ाकू और विकट स्वभाव के हैं। वे बहुधा पेड़ों ही पर रहते हैं और ऐसा जानवर ऐसा नहीं जिसका मांस न खाते हों। लुटेरे भी वे बहुत बढ़े चढ़े हैं। जहाज़ के सा हमने गोयाज़ से ६ नावें लीं। एक एक नाव छः छः आदमी सवार हुए। जहाज़ पर याँगसिल और उसके दस आदमी चढ़े। आख़िरकार लोग वहाँ से रवाने हुए और तीन दिन बाद लंबे होंठ वालों की बस्ती के पास पहुँचे। वहाँ से उन लोगों का गाँव कुछही घंटों का रास्ता था। यहीं हमलोगों ने जहाज़ का लंगर डाला। दूसरे दिन वहाँ से लोग तीन नावों में आगे बढ़े। सब मिला कर ३२ आदमी थे। कुछ आदमी जहाज़ पर रह गये। कप्तान अन्टोनिओ और हमने अपनी अपनी बंदूकें और कारतूस साथ लिए। हम लोगों ने सोचा कहीं जंगली हम पर हमला न करें। इसलिए पहले ही से तैयार हो कर चले कपड़े हमने ख़ूब चमकते दमकते पहने।

हमें चले अभी दो ही घंटे हुए थे कि हमने लड़ाकू नावें अपनी तरफ़ आते देखा। प्रत्येक पर दस दस जंगली आदमी सवार थे। उन्हें देख हो हमने अपनी नावें रोक दीं। याँगसिल खड़ा गया। उसने अपने दोनों हाथ ऊपर उठा कर होंठ वालों की भाषा में चिल्ला कर कुछ कहना किया। इस पर उन लोगों ने भी अपनी नावें दीं। कुछ देर में हम लोग एक दूसरे के पास आ मैंने पहले पहल लंबे होंठवालों को अच्छी देखा। मुझे बेतरह घृणा हुई। ऐसा बीभत्स कभी नहीं देखा था। ऐसे घृणोत्पादक, ऐसे ऐसे मर्कटाकार आदमी पृथ्वी की पीठ पर और कहीं हों। आदमी नहीं, आदमी की के वे पूरे जानवर थे। आदमी भी इतने हो सकते हैं, इसका मुझे विश्वास ही न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन जंगली लोगों का सरदार एक नाव पर खड़ा था। उँचाई में वह ६ फ़ीट होगा। सिर खुला था। उस पर लंबे लंबे बाल थे। बालों की जटायें नीचे पीठ पर लटक रही थीं। और हेाँठ! कुछ न पूछिए। कोई हाथ भर नीचे लटक रहा था। उसने उसके चेहरे को बड़ाही भयङ्कर बना दिया था। वह चिल्ला रहा था और अपनी काली काली भुजायें पागल की तरह इधर उधर फेंक रहा था। मालूम होता था कि उस पर कोई भूत सवार है। बाक़ी के असभ्य जंगली अपने होठों को चूस चूस कर ऐसा अजीब शब्द कर रहे थे कि देखते डर मालूम होता था। सच मानिए, ऐसा दृश्य मैंने कभी पहले न देखा था।

कुछ देर बात-चीत होने के बाद याँगसिल ने कहा, सब ठीक है, कुछ डर नहीं। सरदार साहब कहते हैं कि हम लोग उनके साथ उनके गाँव चलें। वहीं हमारी ख़ातिर तवाज़ो होगी और सौदा सुलुफ़ भी वहीं होगा। याँगसिल ने सरदार से कहा कि मैं एक बादशाह का बेटा हूँ और सरदार की प्रभुता, शक्ति और बहादुरी का हाल सुन कर उसकी बीबियों के लिए उम्दा उम्दा चीज़ें नज़्र करने लाया हूँ। यह सुन कर सरदार साहब बहुत खुश हुए। हम लोगों ने उसके गाँव की ओर प्रस्थान किया। प्रत्येक जंगली के हाथ में भाला और धनुर्बाण था। तीरों से भरा हुआ चमड़े का तरकस कन्धे से लटकता था। तीर ज़हर से बुझे हुए थे। दो घंटे बाद हम लोग उनके गाँव के पास पहुँचे और किनारे पर क़दम रक्खा। उनकी औरतों को देख कर मैं काँप उठा। वे मरदों से भी ज़ियादा कुरूपोत्पादक थीं।

हम लोगों को सैकड़ों जंगली आदमियों ने घेर लिया। औरत, मर्द, लड़के सब एक जगह इकट्ठे हो गये। सब नंगे थे। बहुत देर तक बात-चीत के बाद एक पेड़ के नीचे हम लोग जमा हुए। मुझे जो कुछ कहना होता वह अंटोनिओ से कहता। अंटोनियो याँगसिल से, और याँगसिल सरदार से। करते क्या? बात करने का और कोई द्वारा ही न था। एक दूसरे की बात ही न समझते थे। मैं ने कहा, मैं तीन आदमियों को अपने साथ ले जाना चाहता हूं। वे अच्छी तरह रक्खे जायँगे। किसी बात की तकलीफ़ न होने पावेगी। वर्ष डेढ़ वर्ष बाद वे फिर यहीं लाकर छोड़ दिये जायँगे।

सरदार के आदमियों ने हमें रोटी और फल खिलाये। उसने कहा, आज रात को यहीं रहिए और हम लोगों का नाच देखिये। यह बात हमें मंज़ूर न थी। डर लगा कि रात को कहीं ये लोग हमला न करें। मैं ने कहा तुम लोग हमारे जहाज़ के पास आओ। वहीं नाच दिखाना, वहीं पर मैं तुम्हें वे चीज़ें भी नज़्र करूंगा जो बादशाह ने भेजी हैं। सरदार ने यह बात मान ली। हमारे साथी कप्तान ने, इस बीच में, ख़ूब सौदा किया। बहुत सी जंगली चीज़ें उन लोगों से बदले में लीं।

हम सब अपनी नावों पर सवार हेा कर जहाज़ की तरफ़ चले। आधी दूर तक जंगली सरदार, अपनी चार नावों के साथ, हमें पहुँचाने आया। उन्हें डराने के लिए हम लोगों ने अपनी बन्दूकें छोड़ीं। "धड़ाम" "धड़ाम" आवाज़ें हुईं। जंगली लोगों पर इसका बड़ा असर हुआ। वे चकित हेा कर इधर उधर देखने लगे। कुछ देर नाव चलाना भी भूल गये। जब वे लोग लौटने लगे, मैंने सरदार से कहा कि तीन छोटे सरदार मेरे साथ जहाज़ तक चलें तो अच्छा हेा; और जब तक सरदार साहब नाच दिखाने आवें तब तक वे वहीं रहें। मैं ने समझा था कि इस बात को वह मंज़ूर न करेगा। पर उसने मान लिया। यह देख कर मुझे बड़ा आश्चर्य्य हुआ।

जहाज़ पर पहुँच कर हमने उन तीन लंबे हेांठ वालों को खाना खिलाया और अच्छी तरह रक्खा। मैंने उनसे अपने साथ चलने को कहा। उन्होंने आपस में कुछ देर तक सलाह की और चलने पर राज़ी हेा गये। यह सुन कर मैं बहुत ख़ुश हुआ। जहाज़ को सफ़ाई होने लगी। झंडियाँ लगाई जाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगीं। सुबह हम लोग अपने जंगली मेहमानों की मार्ग-प्रतीक्षा बड़े चाव से करने लगे। कुछ दिन चढ़े दस नावें दूर से आती हुईं देख पड़ीं। हमारे जहाज़ पर छोटी छोटी दो तोपें भी थीं। उनसे सलामी दी गई। तब तक वे लोग पास आ गये। मैंने हुक्म दिया कि सिर्फ़ सरदार और उसके १५ साथी जहाज़ पर आवें। उन्होंने वैसाही किया। उनके आने पर मैंने उन्हें बैठने को जगह दी। जहाज़ को देख कर वे लोग आश्चर्य्य में डूब से गये। उसे देख देख भाँति भाँति की चेष्टायें करने लगे। कोई नाचने लगा, कोई कूदने लगा, कोई हेंठ हिलाने लगा।

सरदार और उसके साथियों के बैठने पर मैंने कहा, मैं तुम्हारे आने से बहुत प्रसन्न हुआ। मैंने कई चीज़ें सरदार को नज़्र कीं। उनमें आइने भी थे। आईनों में अपना अपना प्रतिबिम्ब देख कर वे लोग बे तरह ख़ुश हुए। उन्होंने उनको कोई जादू की चीज़ समझी। उनको सामने रख कर वे बन्दरों की तरह मुँह बनाने लगे। यह देख कर मुझे हँसी आने लगी। पर मैंने रोका। इतने में सरदार उठ कर जहाज़ के किनारे गया और अपने आदमियों से एक बण्डल ले आया। उसे खोल कर पूमा नामक जानवर की एक ख़ूबसूरत खाल, बन्दरों की १२ खालें और थोड़े से कोमल कोमल पर उसने मुझे नज़्र किये। ५ मन "गटापरचा" भी उसने मँगाया। उसे देख कप्तान साहब की छाती गज़ भर चौड़ी हो गई। आप मारे ख़ुशी के फूल उठे। तीन घंटे तक उन जंगली जीवों ने जहाज़ का एक एक कील काँटा तक देख डाला। दो दिन बाद लौट कर नाच दिखाने का उन्होंने वादा किया। तब वे अपने गाँव को रवाना हुए। साथ में वे उन तीन आदमियों को भी लेते गये।

मैंने समझा कामयाबी में देर नहीं। ये लोग ज़रूर दो तीन आदमी मेरे साथ भेजने पर राज़ी हो जायँगे। हम लोग चुप चाप उनका रास्ता देखने लगे। तीन दिन की इन्तिज़ारी के बाद वे लोग आये। स्त्री, पुरुष, बच्च मिला कर सब ७० थे। नदी के दूसरे किनारे पर उन्होंने डेरा डाला। हम लोग उनका नाच देखने के लिए उनके डेरे पर जाने लगे। वे लोग हमारे जहाज़ पर आने लगे। कोई एक घंटे तक यह कारवाई जारी रही। इस दरमियान कप्तान रोबेरिओ ने १० मन गटापरचा लिया। हम लोगों ने लौटने की ठानी। पिछले तीन दिन से, वे पहले वाले तीन जंगली सरदार जहाज़ पर ही सोने लगे थे। वे हम लोगों के साथ चलने को एक पैर के बल तैयार थे। तैयार थे या नहीं यह बात तो अभी मालूम हो जायगी; पर ये अपनी तैयारी ज़ाहिर ज़रूर करते थे। हम लोगों ने सलाह करके चुप चाप एक रात को चल देना विचारा। हमने कहा, ऐसा न हो जो कहीं इनका सरदार इन तीनों को हमारे साथ न जाने दे। इससे बेहतर यही होगा कि हम लोग बिना ख़बर किये चल दें।

अँधेरी रात में २ बजे हमने जहाज़ का लंगर उठाया। नावें भी हमारी हमारे साथ साथ चुपके चलीं। कोई एक घंटे तक हम लोग चले गये। कोई विशेष बात नहीं हुई। पर कुछ देर में किनारे पर आदमी चलते हुए मालूम हुए। याँगसिल ने यह ढंग देख कर कहा, हम पर हमला होना चाहता है। उसने अपने नाव-वालों से कहा, नाव छोड़ कर फ़ौरन जहाज़ पर आ जाव और जी जान से लड़ने के लिए तैयार हो। नहीं, मौत अब दूर नहीं। उन लोगों ने इसकी फ़ौरन तामील की। उनके जहाज़ पर आते ही किनारे पर भयङ्कर चिल्लाहट शुरू हुई और तीरों की वर्षा होने लगी। हम लोगों ने समझा कि हमला हुआ। सबने अपनी अपनी बन्दूक़ साफ़ कर हाथ में ली। दोनों तोपें भी भरी गईं।

इतने में मैंने देखा कि वे तीन लंबे हेंठ वाले जो जहाज़ पर सोये थे, भागने की कोशिश कर रहे हैं। मैंने उन्हें पकड़ा। बहुत धमकाने पर उन्होंने भागने का कारण बतलाया। उन्होंने कहा, हमारी दिली इच्छा तुम्हारे साथ जाने की हरगिज़ न थी। हम तो सिर्फ़ इसलिए जहाज़ पर आये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[भाग १०

इसमें यहाँ की सब बातें जान लें और तुम्हारे जाने की ख़बर सरदार को दें। क्योंकि यह निश्चय हो गया था कि ज्योंहीं तुम लोग यहाँ से जाने को तैयारी करों त्योंहीं तुम पर हमला किया जाय। यह सुन कर मैं क्रोध से जल उठा। मैंने इन दग़ाबाज़ों को जहाज़ के भीतर क़ैद कर रक्खा।

अब तक जहाज़ पर बाण-वर्षा बराबर जारी थी। याँगसिल के दो आदमी घायल भी हो चुके थे। कुछ देर में उन जंगली असभ्यों की कोई तीस नावों ने जहाज़ को घेर लिया। उनसे उतर कर वे जहाज़ पर चढ़ने लगे। पर याँगसिल के आदमियों ने बड़ी बहादुरी से उनका मुक़ाबिला किया। ज्योंहीं वे जहाज़ पर चढ़े त्योंही हम लोगों ने उन्हें पानी में फेंका। उनका सिर जहाज़ पर देख पड़ते ही वे बे-रहमी से ढकेले गये। एक आदमी ऊपर चढ़ आया। मारने पीटने पर उसने भी क़बूल किया कि सरदार का इरादा था, कि जहाज़ पर क़ब्ज़ा करके जो कुछ उस पर हो छीन लिया जाय और हम सब लोग एक एक करके मार डाले जायँ। अब हमने जाना कि इन कमबख़्तों ने क्यों हमारी इतनी ख़ातिर की थी और क्यों इतनी चीज़ें नज़्र को थीं। उन्होंने समझा था कि रबर, चमड़ा और गटापरचा आदि थोड़े ही जाने पावेंगे। अंत को वह सब हमी छीन लेंगे।

हम लोगों ने अब इन जंगली जीवों को अच्छी तरह सज़ा देनी चाही। ख़ूब लक्ष्य करके गोलियाँ छोड़ी जाने लगीं। दोनों तोपों में भी बत्ती दी गई। फायर होते ही लंबे होंठवालों की कितनीही नावें उलट गईं। कितने ही जंगली पानी में ग़ोते खाने लगे। कितने ही डूबे। कितने हीं गोलियाँ और गोले खाकर मरे। इससे वे लोग बेतरह घबरा गये। पर उन्होंने पीछा न छोड़ा। बराबर तीरों की वर्षा करते ही रहे। इतने में सबेरा हुआ। हमने देखा तीस नहीं, चालीस नावें हमारा पीछा कर रही हैं। इस पर हम लोगों ने जहाज़ की चाल तेज़ कर दी। यह देख लंबे होंठवाले और भी जोश में आकर लड़ने लगे। वे जहाज़ के बहुत पास आकर उस पर चढ़ने लगे। अब तक हम लोगों के ३ आदमी मर चुके थे और ८, १० घायल हो चुके थे। हमारी हालत ख़राब हो रही थी।

हमने फिर तोपों में बत्ती दी और गोले छोड़े। पास की कई नावें डूबीं और उन पर जो लोग सवार थे उड़ गये। इतने में हमने देखा कि कई नावें जहाज़ के नीचे पहुँच गईं। कितने ही जंगली जहाज़ पर चढ़ आये। उनसे हमारे आदमियों ने मल्ल युद्ध शुरू कर दिया। फल यह हुआ कि हम लोगों ने उन जंगलियों को जहाज़ से मार भगाया। जब उन लोगों ने देखा कि बलपूर्वक लड़कर वे जहाज़ को नहीं छीन सकते तब उन्होंने चिल्ला चिल्ला कर अपने क़ैदियों को माँगना शुरू किया। याँगसिल ने कहा अब बचने का सिर्फ़ यही एक उपाय है कि जिन जंगली लोगों को हमने क़ैद कर लिया है उन्हें छोड़ दें। इससे ये लोग शान्त हो जायँगे। अन्यथा बराबर पीछा करते रहेंगे।

यह बात सबको पसन्द आई। एक क़ैदी को हमने जहाज़ पर खड़ा किया। हमारे कहने पर उस ने ज़ोर से आवाज़ लगाई और अपने सरदार से कहा कि यदि बाणों की मार बंद की जाय, और जहाज़ पर हमला बन्द हो, तो हम लोग छोड़ दिये जायँगे। यह सुन कर उन लंबे होंठ वाले जंगलियों ने आपस में कुछ देर सलाह मशविरा किया। उन्होंने हमारी शर्त मान ली। इस पर हमने कहा कि तुम लोग अपने हथियार किनारे पर रख आवो। तब तक हम लोग तुम पर वार न करेंगे। यह भी उन्होंने मंज़ूर कर लिया। एक घंटे के भीतर ही वे अपने अस्त्र शस्त्र किनारे रख आये और ख़ाली हाथ अपनी अपनी नावों पर आगये। तब हमने उनके क़ैदियों को छोड़ दिया और तेज़ी के साथ घर को तरफ़ जहाज़ चलाया। इस लड़ाई में हमारे ३ आदमी जान से मारे गये और ११ घायल हुए। उन जंगली असभ्यों का नुक़सान इससे बहुत अधिक हुआ होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याँगसिल के गाँव पहुँच कर हम लोग वहाँ दो तीन दिन ठहरे। फिर वहाँ से रवाना हुए और २५ दिन बाद जहाँ से जहाज़ पर निकले थे वहाँ पहुँचे। हम लोग बहुत थक गये थे। बीमार भी हो गये थे। अनेक मुसीबतें झेलने से हम लोगों का बदन आधा न रह गया था। ख़ैर ग़नीमत हुई जो ज़िन्दा लौट तो आये।

आक्सफ़र्ड की सैर।

कुछ दिन हुए हम आक्सफ़र्ड गये थे वहाँ बाबू काशीप्रसाद जी के मेहमान थे। चार दिन ठहरे। घर की भाँति रहे। समय बड़े आनन्द से कटा। जायसवाल जी के द्वारा अनेक सज्जनों से भेंट हुई। केम्ब्रिज की अपेक्षा यहाँ हिन्दुस्तानी छात्रों की संख्या कम है। कुल तीस पैंतीस के भीतर है। इनके सिवा स्याम, जापान और मिसर देशों के भी कुछ विद्यार्थी हैं। परन्तु ये बहुत ही थोड़े हैं। आक्सफ़र्ड विद्या का सबसे प्राचीन केन्द्रस्थल है। इसकी विद्यारूपी मशाल का उजेला इँगलैंड भर में फैला है। इस देश के सिवा बाहरी देशों के छात्र भी यहाँ इतिहास और क्लासिक्स (ग्रीक, लैटिन भाषाओं) का अध्ययन करने आते हैं। आक्सफ़र्ड एक छोटा सा नगर है जिसकी मनुष्य-संख्या अनुमान ५० सहस्र के होगी। हर क़िस्म के कालेजों की संख्या ३२ के क़रीब है। जहाँ देखो तहाँ कालेज ही कालेज दिखाई पड़ते हैं। कालेज सब पुराने तर्ज़ के हैं। यहाँ के किसी किसी भाग में मकान भी बड़े पुराने हैं जिन पर मिट्टी के खपरों की जगह पत्थर छाये हैं, जो अँगरेज़ों की असभ्यता के साक्षी स्वरूप हैं। आक्सफ़र्ड एक नीचे स्थान में बसा है। चारों ओर टेम्स नदी बहती है। यहाँ टेम्स एक नाले की भाँति है; पर पानी बहुत स्वच्छ है। नदी में सैकड़ों छोटी छोटी किश्तियाँ पड़ी जिनमें विद्यार्थी बैठ कर नित्य सैर किया करते हैं। के सिवा किश्ती दौड़ाने का अभ्यास भी करते साल में एक जल-दौड़ (Boat race) होती है जगद्विख्यात है। यह जल-दौड़ आक्सफ़र्ड केम्ब्रिज के बीच में होती है। गत वर्ष इसमें केम्ने सफलता प्राप्त की थी। नगर के चारों सुन्दर पार्क और हरे हरे खेत दूर तक फैले हुए शहर में ट्राम गाड़ी चलती है। यहाँ केवल इतने दूकानदार, नौकर वग़ैरा रहते हैं जो छात्रों आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकें। यही हाल का है। इन घरों के मालिकों को विश्वविद्यालय से लैसंस लेने पड़ते हैं। वे छात्रों के खाने, पीने उनके अमुक समय से लेकर अमुक समय बाहर रहने इत्यादि के उत्तरदाता होते हैं। को शहर में विश्वविद्यालय का एक अधिकारी जिसे Proctor (प्राक्टर) कहते हैं, फिरा करता है जो छात्रों की आमदरफ़्त की जाँच रखता छात्र शहर में बहुधा नंगे सिर फिरा करते हैं; यदि वे बिना गौन के रहते हैं तो उन्हें दंड देना पड़ता है। यह गौन एक तमाशा है। इसे बगल में दबाये फिरा करते हैं। कोई कोई पहन लेते हैं। कभी कभी एक छात्र दूसरे की गौन कर ले जाता है ताकि दंड न देना पड़े। रात कोई कोई छात्र Cap (कैप) अर्थात् टोपी भी हैं। यह टोपी बड़ी विचित्र होती है। यह विद्यालय की एक निशानी है। यहाँ के मकानों दर्वाज़े, विशेष कर जिनमें छात्र रहते हैं, दिन खुले रहते हैं। लन्दन की भाँति इन्हें खड़ खड़ नहीं पड़ता। शहर की मुख्य सड़क का High Street (हाई स्ट्रीट) है। बहुधा यह छोटे छोटे नगरों में ऐसी आम सड़क का नाम स्ट्रीट रहता है। यह दूसरी सड़कों की चौड़ी होती हैं। बड़ी बड़ी दूकानें और मकान ऐसी ही सड़कों पर होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

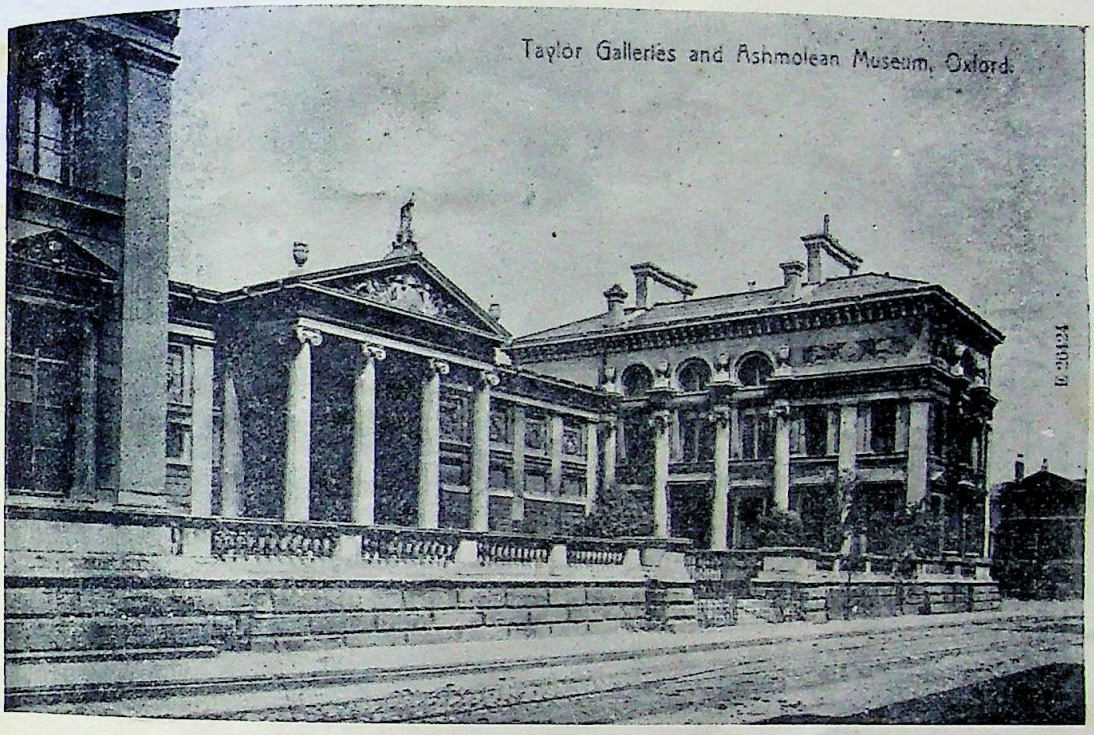

टेलर गैलरी और अशमोलियन अजायबघर ।

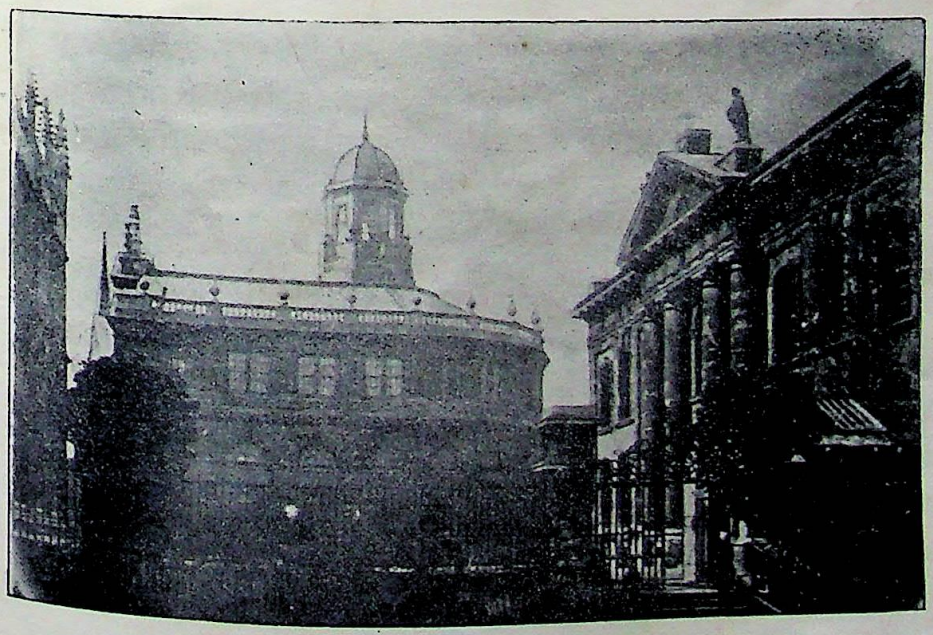

बाडलियन पुस्तकालय ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Bodleian Library.

बाडलियन पुस्तकालय।

इस विशाल पुस्तकालय की नींव बादशाह चौथे हेनरी के लड़के डूक आफ़ ग्लासटर (Duke of Gloucester) ने डाली थी। पीछे से इसकी दशा बिगड़ गई थी। पर अन्त में, सन् १५८८ ई० में, सर टामस बाडले (Sir Thomas Bodley) ने फिर से नई बना कर तैयार की। यह केवल पुस्तकालय ही नहीं किन्तु एक छोटा सा अजायबघर भी है। इस की इमारत पुराने ढंग की है। इसकी पुस्तक-संख्या कोई ७ लाख है। हस्तलिखित पुस्तकें कुछ ऊपर ३० हज़ार हैं। इसमें ग्रीक, लैटिन, हीब्रू, संस्कृत आदि मिश्रित हैं। पर लन्दन का ब्रिटिश म्यूज़ियम पुस्तकालय इससे कहीं ज़्यादा बड़ा है। उसमें २० लाख छपी और ६० हज़ार से ऊपर लिखी पुस्तकें हैं। बाडलियन पुस्तकालय में ख़ास शेक्सपियर के हाथ की लिखी हुई एक पुस्तक है जो तीन हज़ार पाउंड (४५,००० रु०) में ख़रीदी गई थी। कविवर मिल्टन के काव्य भी मौजूद हैं। चौथे एडवर्ड और महारानी एलीज़ैबथ के हाथ की लिखी हुई कापियाँ बड़ी सावधानी से काँच की सन्दूक़ों में रक्खी हैं। जितनी पुस्तकें इस देश में छप कर रजिस्टरी कराई जाती हैं उनकी एक एक प्रति इस पुस्तकालय को अवश्य भेजी जाती है। इस तरह इसकी पुस्तक-संख्या दिन पर दिन बढ़ती जाती है। इसके अजायबघर में चित्र, जहाज़, मंदिर, गिरजाघर, नाटकघर इत्यादि के सैकड़ों नमूने रक्खे हुए हैं। ग्लैडसटन, न्यूटन क्लिङ्टन आदि की पत्थरों की मूर्तियाँ भी मौजूद हैं। कविवर शैली का सितार और जापान के सिक्के भी इसके कौतुक को बढ़ाते हैं।

Indian Institute.

भारत-भवन।

इस भवन के बनाने का प्रस्ताव संस्कृत-संसार में प्रसिद्ध सर मानियर विलियम्स ने किया था। वे भारत-प्रेमी थे; उनकी इच्छा थी कि आक्सफ़र्ड में एक ऐसा स्थान बनाया जाय जिसमें भारत की नवीन और प्राचीन भाषाओं तथा साहित्यादि की चर्चा हो। इसलिए आज कल यहाँ हिन्दी, उर्दू, मराठी, गुजराती, बँगला, तामिल, तैलंगी, संस्कृत इत्यादि भाषायें पढ़ाई जाती हैं। सर मानियर विलियम्स मरते समय अपनी कुल पुस्तकें इस भवन को दे गये थे जो सब वहाँ मौजूद हैं। इसमें लायब्रेरी के सिवा एक छोटा सा अजायबघर भी है, जहाँ भारत के प्रत्येक प्रान्त की चीज़ें रक्खी हैं। एक ओर समाचारपत्रों का कमरा है जहाँ बहुधा एंग्लो इंडियन समाचारपत्र रक्खे रहते हैं। आज कल इस भवन के पुस्तकाध्यक्ष श्रीयुत विक्रमसिंह जी हैं जो तामील और तैलंगी भाषायें भी पढ़ाते हैं। आप बड़े मिलनसार और सच्चे देशभक्त हैं। इस भवन के बनाने में ३ लाख रुपये से अधिक ख़र्च हुए थे, जिसका क़रीब तीसरा भाग भारत के राजा महाराजाओं ने दिया था। इनमें से सबसे अधिक द्रव्य ठाकुर साहब गोंडाल ने दिया था। वे कदाचित् उस समय इसी देश में पढ़ते थे। भवन में इनका एक बड़ा चित्र भी टँगा है। भवन की नींव महाराज सप्तम एडवर्ड ने डाली थी जो उस समय महाराज-कुमार थे। नींव डालने के समय श्रीयुत श्यामजी कृष्ण वर्मा, उनके साले मि० रामदास छबीलदास, जो आज कल नागपुर में बैरिस्टर हैं, राज-मोरबी के कुमार हरनाम जी, जो दो साल पहले बरार में डिप्टी कमिश्नर थे, और कुछ मुसलमान-सज्जन उपस्थित थे। ये सब उस समय इस देश में पढ़ते थे। भवन के दर्वाज़े की बाँईं ओर वाली दीवार में पीतल के पत्र पर निम्नलिखित श्लोक लिखे हैं :—

शालेयं प्राच्यशास्त्राणां ज्ञानोत्तेजनतत्परैः।
परोपकारिभिः सद्भिः स्थापितार्योपयोगिनी ॥ १ ॥
आल्बर्टेड्वर्डितिख्यातो युवराजो महामनाः।
राजराजेश्वरीपुत्रस्तत्प्रतिष्ठां व्यधात्स्वयम् ॥ २ ॥
अङ्करामाङ्कचन्द्रेऽब्दे वैशाखस्यासिते दले।
दशम्यां बुधवारे च वास्तुविधिरभूदिह ॥ ३ ॥
ईशानुकम्पया नित्यमार्यविद्या महीयताम्।
आर्यावर्ताङ्ग्लभूम्योश्च मिथो मैत्री विवर्धताम् ॥ ४ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन श्लोकों का अँगरेज़ी-अनुवाद दूसरे पत्र पर यों लिखा है :—

"This building, dedicated to Eastern Sciences, was founded for the use of Aryàs (Indians and Englishmen) by excellent and benevolent men desirous of encouraging knowledge. The high-minded heir-apparent, named Albert Edward, son of the Empress of India, himself performed the act of inauguration. The ceremony of laying the memorial stone took place on Wednesday, the 10th lunar day of the dark half of the month of Vaisákha, in the Sambat year 1939 (= Wednesday, May 2, 1883). By the favour of God may the learning and literature of India be ever held in honour, and may the mutual friendship of India and England constantly increase."

हिन्दी भावार्थ—यह शाला परोपकारी पुरुषों के उद्योग से आर्यों के उपयोग के लिए बनी है। इसमें पूर्वी शास्त्र सिखाये जायगे। महारानी विक्टोरिया के पुत्र युवराज आलबर्ट एडवर्ड ने वैशाख वदि १०, संवत् १९३९ (बुधवार ता० २ मई सन् १८८३ ई०) को इसकी नींव डाला थी। परमात्मा करे कि भारत की विद्या और साहित्य का गौरव सदैव बना रहे तथा इंगलैंड से उसकी मित्रता बराबर बढ़ती रहे।

MARTYR'S MEMORIAL.

धर्म-वीरों का स्मारक।

यह बैलियल कालेज के सामने बना है। यह उन धर्म-वीरों की यादगार में बना है जो मेरी (Mary) रानी के समय में जीवित जलाये गये थे। वह समय विलायत में बड़े तूफ़ान का था। मेरी रोमन केथलिक सम्प्रदाय की थी। इससे वह सभी को अपने सम्प्रदाय में मिलाना चाहती थी। यह मामला १६ वीं सदी का है। तीन पादड़ियों ने रोमन केथलिक धर्म के विरुद्ध झंडा उठाया। उनके नाम क्रेनमर, रिडले और लेटीमर। अन्त में उनकी जो दु हुई वह ऊपर लिखी जा चुकी है। स्मारक "क्रास" लगा है और तीन ओर तीनों पादड़ियों खड़ी मूर्तियाँ बनी हैं। क्रेनमर अपने हाथ में बिल लिये है जिस पर मई सन् १५४१ ई० लिखा उसी वर्ष यहाँ बाईबिल का प्रथम प्रचार हुआ रिडले छाती पर हाथ रक्खे खड़ा है और लेटी बुढ़ापे के मारे झुका हुआ है। उस समय वह वर्ष का था। स्मारक की नींव का पत्थर १ सन् १८४१ ई० को रक्खा गया था।

Sheldonian Theatre.

शैलडोनियन नाटकगृह।

इसके नाम से कोई यह न समझ बैठे कि आज कल नाटक-घर होगा। यह यहाँ के विद्यालय का कनवोकेशन हाल है, जहाँ छात्रों डिग्री दी जाती है। योग्य पुरुषों को इसी हा D. CL. की उपाधि दी जाती है। ग्रीक और ले के प्रख्यात निबन्ध यहीं पढ़े जाते हैं। देखने छोटा सा मालूम होता है, पर भीतर चार ह आदामयों के बैठने को जगह है। यह सन् १६६ में बनाया गया था। उस समय विश्वविद्यालय चैन्सलर (बड़े पादड़ी) शैलडन साहब थे। उ इसके बनने का सब ख़र्च दिया था। इसी से उ नाम शैलडोनियन थियेटर पड़ा है। इसकी बना मार्सैलस (Marcellus) (जो कि रोम में है) के घर की तरह है। इसी कारण इसे थियेटर कहते इसके आस पास बाडलियन लायब्रेरी तथा दि ही कालेज हैं।

Ashmolean Museum.

अशमोलियन अजायबघर।

यह भी पुराना अजायबघर है। इसके बनने सन् १६८२ ई० है। सर इलायस अशमोल Elias Ashmole) नाम के एक सज्जन ने वि विद्यालय को बहुत सी पुरानी चीज़ें दी थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

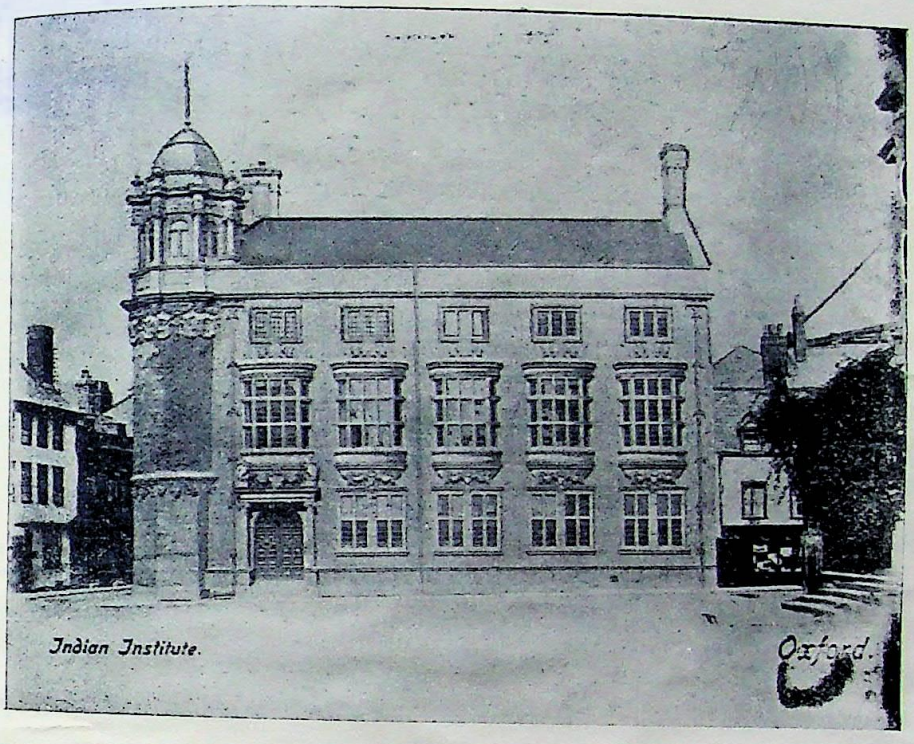

आक्सफ़र्ड का भारत-भवन।

आक्सफ़र्ड का विश्वविद्यालय।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से उसको अशमोलियन अजायबघर कहते हैं। इसमें ग्रीस, यूनान, मिसर आदि देशों के ज़ेवर, मूर्तियाँ, चित्र, सिक्के इत्यादि इसमें रक्खे हैं। प्राचीन वस्तुओं की खोज करने वाले के लिए इसमें अच्छा सामान है। इसमें Guy Fawkes' Lantern (गाई फ़ाक्स की लालटैन) रक्खी है। गाई फ़ाक्स वही है जो पार्लीमेन्ट को सुरंग द्वारा उड़ाना चाहता था। इसी लालटैन के सहारे वह भी पार्लीमेन्ट के तलघरे में घुसा था। गाई फ़ाक्स का काग़ज़ का पुतला इस देश में हर साल पाँचवीं नवम्बर को जलाया जाता है। यह लालटैन केवल पुराने लोहे का टूटा सा टुकड़ा है। उसमें काँच नहीं है। इसे राबर्ट हेवुड नाम के आदमी ने विश्वविद्यालय को दिया। यह आदमी उस न्यायाधीश का लड़का था जिसने गाई फ़ाक्स को गिरफ़्तार किया था।

अब हम दो एक कालेजों का वर्णन करके इस लेख को समाप्त करते हैं। यहाँ के सब कालेजों के भीतर बड़े सुन्दर बाग़ लगे हुए हैं, जिनकी सदैव अच्छी हिफ़ाज़त की जाती है। हरियाली हमेशा काटी जाती है। यहाँ पर बेंचें और कुर्सियाँ पड़ा रहती हैं जिन पर छात्र बैठ कर पढ़ते या वार्तालाप करते हैं। छात्रों के रहने को अलग अलग कमरे बने हैं। ये कालेजों के अहाते में हैं। एक एक गिरजाघर भी है। तात्पर्य यह है कि कालेज के अन्दर सब प्रकार का सुभीता है। यहाँ का बैलियल कालेज (Balliol College) बहुत पुराना और प्रसिद्ध विद्यालय है। यह १२६८ ई० में बना था। स्काटलैंड के राजा के पिता सर जान डी बैलियल ने इसे स्थापित किया था। इसके भूतपूर्व छात्रों में से कुछ के नाम ये हैं। मैथ्यु आरनाल्ड, लार्ड चीफ़ जस्टिस कालरिज, प्रो० जावेट, कवि स्विनवर्ड, मि० एसक्विथ (प्रधान मंत्री) सर एडवर्ड ग्रे (विदेशी विभाग के मंत्री) लार्ड चांसलर लारबर्न, लार्ड मिलनर और लार्ड कर्ज़न।

बैलियल कालेज के मुक़ाबले का दूसरा कालेज Christ Church (क्राइस्ट चर्च) है। इसकी इमारत बड़ी पुरानी और ख़ूब लम्बी चौड़ी है। भारत के बहुत से वाइसराय इसी के छात्र थे:—जैसे लार्ड एलगिन, लार्ड डैलहउसी, लार्ड कैनिङ्ग इत्यादि। विलायत के प्रायः सभी प्रधान मंत्री और कवि इसी कालेज के छात्र थे:—जैसे सर राबर्ट पील, बालिंगब्रोक, ग्रैनविल, मैन्सफील्ड, जान लाक, बेन जानसन, सर फिलिप सिडनी, ग्लेडस्टन, लार्ड साल्सबरी, लार्ड रोज़बरी इत्यादि।

इन कालेजों के सिवा Oxford Union (आक्सफ़र्ड यूनियन) भी है जिसमें एक बड़ा "हाल" पुस्तकालय इत्यादि हैं। यहाँ छात्र आकर समाचारपत्र और पुस्तकें पढ़ते हैं। लिखने का सामान अलग है। खेलने को भी स्थान है। यूनियन का "हाल" बहुत अच्छा सजा है। इसमें नामी नामी आदमियों के व्याख्यान होते हैं। बस, आक्सफ़र्ड का संक्षिप्त हाल यही है। बहुत सी बातें लिखने को रह गई हैं जिन के लिखने से लेख बढ़ जाने का डर है।

प्यारेलाल मिश्र।
(लन्दन)

सम्मुखोद्गार *।

(१)

शिवशङ्कर तू यदि शङ्कर है।
फिर क्यों विपरीत भयङ्कर है॥
करतार उदार सुधार इसे।
कर प्यार निहार न मार इसे॥
हरिचन्दन हाय पतङ्ग हुआ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ॥

[२]

धरणीश धनेश जनेश रहा।
अनुकूल सदा अखिलेश रहा॥
सब से बढ़िया घटिया कब था।
इस भाँति बड़ा जब था तब था॥
अब तो यह नंगम नङ्ग हुआ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ॥

---

* त्रोटकात्मक मलिन्दपाद (सुसहस)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[३]

जिसने सुविचार विकाश किया।
रच ग्रंथ-समूह प्रकाश किया॥
कविनायक पण्डितराज बना।
वह अज्ञ अशिक्षित आज बना॥
बिन पक्ष विवेक विहङ्ग हुआ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ॥

[४]

अबलों न कहीं वह देश मिला।
इसका न जिसे उपदेश मिला॥
उस गौरव के गुण अस्त हुये।
गुरु के गुरु शिष्य समस्त हुये॥
कितना प्रतिकूल प्रसङ्ग हुआ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ॥

[५]

उर मोह महातम छाय रहा।
अति लोभ कुचाल चलाय रहा॥
मद मन्द कुदृश्य दिखाय रहा।
कटु-भाषण क्रोध सिखाय रहा॥
बल-नाशक नीच अनङ्ग हुआ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ॥

[६]

घनघोर अमङ्गल गाज रहा।
भरपूर विरोध विराज रहा॥
घर घेर दरिद्र दहाड़ रहा।
मुख शोक-महासुर फाड़ रहा॥
रिपु रूप कराल कुसङ्ग हुआ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ॥

[७]

मद पान करे न तजे पल को।
अपनाय रहा खल-मण्डल को॥
पग पूज कलंक विभीषण के।
रस-रङ्ग रँगे गणिका-गण के॥
दृग-दीपक देख पतङ्ग हुआ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ॥

[८]

कुल-भाषण को अनखाय सुने।
पर-शब्द-समूह सुनाय सुने॥
जिनको गुरु मान मनाय रहा।
उनकी ध्वज आप बनाय रहा॥
पर श्यामल से न सुरङ्ग हुआ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ॥

[९]

अनरीति कटाकट काट रही।
पशु-पद्धति शोणित चाट रही॥
पल खाय अपव्यय खेल रहा।
ऋण बूचड़ खाल उचैल रहा॥
ससके सब घायल अङ्ग हुआ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ॥

[१०]

सुधरे सब देश सचैत हुये।
बिगड़ा यह अङ्ग अचैत हुये॥
वर वैभव-हीन हताश हुआ।
कुछ भी न रहा सब नाश हुआ॥
रजनीश प्रताप पतङ्ग हुआ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ॥

[११]

चिर संचित वैभव नष्ट हुआ।
उर-दाहक दारुण कष्ट हुआ॥
सुखवास न भोग-विलास नहीं।
उपवास करे धन पास नहीं॥
बिगड़ा सब ढङ्ग कुढङ्ग हुआ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ॥

[१२]

अघ-दोष वसंत निदाघ बने।
रुज भृङ्ग दुकाल विहङ्ग घने॥
पुर पत्तन कानन फूल रहे।
परिवार फली फल झूल रहे॥
कलि-शासन मत्त मतङ्ग हुआ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१३]

सब ठौर बड़े व्यवहार नहीं।
फिर शिल्पकला पर प्यार नहीं॥
कुछ दीन किसान कमाय रहे।
हल का हलका फल पाय रहे॥
अब उद्यम का मग तङ्ग हुआ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ॥

[१४]

कस पेट अकिंचन सोय रहे।
बिन भोजन बालक रोय रहे॥
चिथड़े तक भी न रहे तन पै।
धिक धूलि पड़े इस जीवन पै॥
यह देख दशा यम दङ्ग हुआ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ॥

[१५]

मत-भेद भयानक पाप रहा।
बिन प्रेम न मेल-मिलाप रहा॥
अभिमान अधोमुख ठेल रहा।
अधमाधम ढोँग ढकेल रहा॥
उपजा छल-वृक्ष उतङ्ग हुआ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ॥

[१६]

मत पंथ असंख्य असार बने।
गुरु लम्पट लंठ लबार बने॥
ठग ज्योतिष के सरताज बने।
यमराज-सखा कलिराज बने॥
इस हुल्लड़ का हुरदङ्ग हुआ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ॥

[१७]

सरके वर वेद रसातल को।
सिरधार अनर्थ महाचल को॥
अब दर्शन रूप न दर्शन हैं।
नव तन्त्र प्रमाद-निदर्शन हैं॥
हठ-वाद-विवाद षडङ्ग हुआ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ॥

[१८]

अब सिद्ध मनोरथ सिद्ध नहीं।
मुनि जीवन-मुक्त प्रसिद्ध नहीं॥
अविकल्प अनुष्ठित योग नहीं।
विधि-मूलक मंत्र प्रयोग नहीं॥
फल संयम का शशशृङ्ग हुआ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ॥

[१९]

अवधेश धराधव राम नहीं।
व्रजनायक श्रीघनश्याम नहीं॥
अब नाथ पुकार सुनो इसकी।
तुमको तज आस करे किसकी॥
तड़पे मृग तोय तरङ्ग हुआ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ॥

नाथूराम शङ्कर शर्म्मा।

चीन के अख़बार।

जिस देश में जितने ही अधिक समाचार पत्र होते हैं वह उतनी ही अधिक उन्नत अवस्था में समझा जाता है। यदि इस विचार से देखा जाय तो मानना पड़ेगा कि चीन दिन पर दिन अधिकाधिक उन्नति करता जाता है। सात वर्ष पहले वहाँ चीनियों का एक भी अख़बार न था। परन्तु आज चीन में दो सौ से अधिक ऐसे अख़बार हैं जिन के स्वामी, सम्पादक और प्रबन्धकर्त्ता चीनी ही हैं। पेकिन महानगरी में एक ऐसा दैनिक पत्र है जिसका सम्पादन और प्रबन्ध केवल स्त्रियाँ ही करती हैं। इस पत्र का उद्देश स्त्रियों की दशा सुधारना है। चीन की गवर्नमेंट भी पत्रों के ग्राहक बढ़ाने और मूल्य इकट्ठा करने में ख़ास ख़ास अख़बार वालों को मदद देती है। प्रान्तिक शासन-कर्त्ता भी इस काम में उनकी सहायता करते हैं। मंचूरिया के राज-प्रतिनिधि ने मकदन नगर के चौक में एक बड़ी भारी इमारत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनवाई है। यहाँ पर एक विद्वान् मुख्य मुख्य समाचार पत्रों को पढ़ कर सर्व साधारण लोगों को नित्य सुनाता है। पेकिन में भी कई पढ़े लिखे आदमी गली गली अख़बारों को ज़ोर ज़ोर से पढ़ते फिरते हैं। इस प्रकार निरक्षर मनुष्यों को भी देश की दशा और संसार की मुख्य मुख्य घटनाओं का ज्ञान हो जाता है।

चीनी अख़बार दो तरह के होते हैं। एक तो वे जो अत्यन्त पतले काग़ज़ पर एकही तरफ़ छापे जाते हैं। दूसरे वे जो दोनों तरफ़ छपते हैं और जिन का काग़ज़ भी मोटा होता है। दूसरे प्रकार के अख़बारों को लोग अधिक पसन्द करते हैं। इन पत्रों में विदेशी तार-समाचारों की अच्छी भरमार रहती है। इस के सिवा भिन्न भिन्न विषयों पर सम्पादकीय लेख भी रहते हैं।

चीन अत्यन्त संरक्षणशील देश है। पर आज कल वहाँ बड़ी शीघ्रता से परिवर्त्तन हो रहा है। यह बात अख़बार के लेखों की अपेक्षा विज्ञापनों से अधिक प्रकट होती है। एक उदाहरण सुनिए। अब तक चीन-देशवासी पृथिवी को चिपटी मानते थे। परन्तु अब चीनी समाचार-पत्रों में वर्तुलाकार पृथिवी के ग्लोबों (Globes) के विज्ञापन बहुत छपते हैं। इसी प्रकार अन्य सैकड़ों प्रकार की यूरोपियन चीज़ों के विज्ञापन ठेठ चीनी अख़बारों में धड़ा धड़ प्रकाशित होते हैं।

किसी किसी अख़बार में चीनी भाषा के साथ साथ अँगरेज़ी के भी कई कालम रहते हैं। वहाँ अँगरेज़ी भाषा का प्रचार दिन पर दिन बढ़ता जाता है। अँगरेज़ी में तार-समाचारों के सिवा शिक्षा, राजनीति और समाज-सुधार-सम्बन्धी लेख भी रहते हैं। इससे मालूम होता है कि चीन-देश-वासी अब जाग उठे हैं और समझने लगे हैं कि हमारी क्या दशा है और हमें क्या करना चाहिए।

उन्नति की इच्छा रखने वाली अन्य जातियों की तरह चीनी जाति के शिक्षित युवक भी अपने देश-वासियों को जगाने का प्रयत्न कर रहे हैं। इन लोगों के इस उद्देश की पूर्त्ति करने वाले कई पत्र निकलते हैं। यद्यपि सर्वसाधारण लोग इन पत्रों को बहुत पसन्द करते हैं तथापि राज-कर्मचारी और विदेशी लोगों को कोपदृष्टि इन पर अकसर पड़ा करती है। तिस पर भी इस प्रकार के पत्र दिन दिन उन्नति करते जाते हैं।

अख़बारवाले अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए बड़ा आन्दोलन कर रहे हैं। इसके सिवा वे लोग डाक और तार का महसूल भी कम कराना चाहते हैं और सरकारी कारर्वाइयों को प्रकाशित करने तथा बिना विचार के जेल में ठूँस न दिए जाने का अधिकार भी चाहते हैं। परन्तु गवर्नमेंट उनकी इन प्रार्थनाओं पर ध्यान नहीं देती और उनको अपने पंजे में दबाये रखना चाहती है। बड़ी लज्जा की बात है कि पूर्वोक्त अधिकारों से केवल चीनी-पत्र ही वञ्चित रक्खे जाते हैं; विदेशी लोगों के पत्र स्वच्छन्दतापूर्वक उनका उपभोग करते हैं। चीनी गवर्नमेंट ने अख़बारों के लिए एक नया क़ानून बनाया है। इसकी रू से पत्रों के प्रकाशक, सम्पादक और मुद्रक वही हो सकते हैं जिनकी अवस्था बीस वर्ष से अधिक हो, होश-हवास दुरुस्त हों और सज़ायाफ़्ता न हों। अङ्कशास्त्र, चित्रकला और शिक्षा-सम्बन्धी पत्रों को छोड़ कर प्रत्येक पत्र के लिए उसके संचालकों को सवा दो सौ रुपये की ज़मानत देनी पड़ती है। प्रत्येक अंक की एक कापी स्थानिक मैजिस्ट्रेट के पास और दूसरी पेकिन में किसी उच्च राज-कर्म-चारी के पास भेजी जाती है।

जो पत्र सरकारी गुप्त भेदों को प्रकाशित करते हैं उन्हें बड़ी कड़ी सज़ा दी जाती है। राज-विप्लव, शान्ति-भंगकारी अथवा रस्म-रिवाज के विरुद्ध लेख लिखनेवालों को छः महीने से लेकर दो वर्ष तक की जेल दिया जाता है। राजनैतिक दाँव पेंच की बातें प्रकाशित करने वाले पत्र कभी कभी कुछ दिनों के लिए बन्द भी कर दिये जाते हैं।

पत्र-सम्बन्धी क़ानून पर बड़ी सख़्ती से अमल किया जाता है। कुछ दिन हुए टांकाई सिंग नामक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक विख्यात अख़बार वाले ने किसी राज-विद्रोही-पत्र से एक लेख अपने पत्र में उद्धृत किया था। फिर क्या था, अधिकारी गण क्रोध से अंधे होगये। इन लोगों ने चट सिंग महाशय को गिरफ़्तार किया और बिना विचार के एक मुद्दत के लिए जेल में ठूँस दिया। इसी तरह पिछले साल एक अख़बार वाले के इतने बेंत लगाये गये कि वह मर ही गया।

कुछ समय से चीनी गवर्नमेंट अपने पत्र अलग निकालने और विदेशी पत्रों पर प्रभाव जमाने की चेष्टा कर रही है। वह इस लिए करती है जिसमें अन्य जातियों से झगड़ा होने पर उसका पक्ष प्रबल रहे। पर उसकी यह चेष्टा व्यर्थ और अनुचित है। इस तरह उसके उद्देश की सिद्धि नहीं हो सकती। बेहतर है कि वह चीनी अख़बारों को काफ़ी स्वाधीनता प्रदान करे। क्योंकि जब तक चीनी अख़बार स्वतंत्र और प्रबल न होंगे तब तक चीन की पूरी उन्नति न होगी।

यद्यपि चीनी अख़बार अभी बाल्यावस्था ही में हैं तथापि उन्होंने थोड़े ही दिनों में बहुत कुछ उन्नति की है और उनका बल बराबर बढ़ता जाता है। इससे विदेशियों के हृदय में वे काँटे की तरह चुभने लगे हैं। जो हो, एक उठती हुई जाति के प्रबल-वेग-वाही आकांक्षा-स्रोत को कोई रोक नहीं सकता।

देवगढ़ की पुरानी इमारतें।

ललितपुर पहले संयुक्त प्रदेश का एक ज़िला था। परन्तु अब वह ज़िला नहीं; किन्तु झाँसी का एक सब डिवीज़न मात्र है। झाँसी से ललितपुर ५६ मील है। ललितपुर के आस पास—देवगढ़, चन्देरी, चाँदपुर, दुधई, मदनपुर, तालबेहट, बानपुर, खजराहा और बुधनी इत्यादि में—अनन्त इमारतें पुरानी हैं। उन में से कितनीही बहुत प्राचीन हैं। चट्टानों के ऊपर कहीं कहीं ऐसी मूर्तियाँ और चित्र बने हुए हैं जो ऐतिहासिक समय के भी पहले के हैं। गवर्नमेंट ने एक महकमा खोल रक्खा है जिसका काम पुरानी इमारतों और शिला-लेखों इत्यादि का पता लगाना, उनका इतिहास लिखना और उनके नक़शे तथा फ़ोटोग्राफ़ इत्यादि प्रकाशित करना है। बाबू पूर्णचन्द्र मुकुर्जी इस महकमे से सम्बन्ध रखते थे। उनका शरीरांत हुए कई वर्ष हुए। १८८७ ईसवी में वे झाँसी में थे। उसी समय हम भी पहले पहल झाँसी गये थे। ललितपुर के सब-डिवीज़न में देवगढ़ की पुरानी इमारतें बहुत प्रसिद्ध हैं। पूर्ण बाबू से उनकी प्रशंसा सुन कर हमको उनके देखने की इच्छा हुई। अतएव कई मित्रों के साथ जाकर हमने उनको प्रत्यक्ष देखा। उन्हीं का संक्षिप्त वृत्तांत हम यहाँ पर लिखते हैं। पूर्वोक्त बाबू साहब ने ललितपुर प्रांत की इन पुरानी इमारतों पर एक रिपोर्ट लिखी है और उसी के साथ १३ नक़शे और ९८ चित्र भी दिये हैं। उनको, कोई दस वर्ष हुए, गवर्नमेंट ने प्रकाशित भी कर दिया है। यह लेख लिखने में हमको उससे बड़ी सहायता मिली है।

इंडियन मिडलैंड रेलवे की जो शाखा झाँसी हो कर बम्बई को गई है ललितपुर उसी पर है। वहाँ रेलवे स्टेशन है। ललितपुर से दक्षिण १० मील पर एक स्टेशन जाखलौन है। वहाँ से देवगढ़ का रास्ता है। जाखलौन से देवगढ़ कोई ५ मील है। हम, अपने मित्रों के साथ, जाखलौन उतरे। और स्टेशन-मास्टर तथा पुलिस के सब-इन्स्पेक्टर की सहायता से बैल-गाड़ियों में वहाँ से देवगढ़ के लिए रवाना हुए। देवगढ़ जाने का रास्ता पहाड़ी घाटियों के बीच से है। इस लिए, यदि कुछ सामान साथ हो तो, बैल-गाड़ियों के सिवा और किसी सवारी से काम नहीं चल सकता। देवगढ़ के पास पहुँच कर हमने देखा कि उसका पुराना क़िला एक पहाड़ी के ऊपर बना था। था, इसलिए, क्योंकि इस समय उसका बहुत ही कम अंश शेष है। क़िले की दीवारें गिर कर, पहाड़ी के चारों तरफ़, ऊँचे ऊँचे ढुस्स से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गये हैं। उनको देखने से यह अनुमान किया जा सकता है कि अपने समय में यह क़िला बहुत बड़ा और बहुत मज़बूत था। पहाड़ी के ऊपर, क़िले के भीतर, गहन जंगल है, जिसमें रीछ, भेड़िये, तेंदुवे और जंगली कुत्ते घूमा करते हैं। हिन्दू और जैनियों के पुराने मन्दिर इसी गहन जंगल के भीतर हैं। उनमें से बहुतेरे प्रायः भग्न अवस्था में हैं। क़िले के नीचे—या यों कहना चाहिए कि पहाड़ी के नीचे, बेतवा नदी की धारा ऊँची ऊँची चट्टानों के बीच से बहती है। बरसात में जब यह नदी बढ़ती है तब चट्टानों में टक्कर खाने से भयङ्कर शोर मचाती है। नदी से थोड़ी दूर पर एक छोटा सा गाँव है। उसमें भी दो एक पुराने मन्दिर हैं। गाँव में विशेष करके जंगली आदमी रहते हैं। उनका नाम सहरिया है। वे बहुधा शिकार पर, अथवा जंगल में पैदा होनेवाले गोंद, शहद और वन-फलों पर अपना निर्वाह करते हैं। कोई कोई खेती भी करते हैं और कत्था बनाकर देहाती बनियों के हाथ बेंचते हैं। ये लोग निहायत असभ्य होते हैं। देखने में बिलकुल काले, अतएव डरावने, मालूम होते हैं। इनके सिर के बाल बढ़ कर चेहरे के इधर उधर बेतरह लटका करते हैं। इनकी कमर में एक छोटा सा चीथड़ा लिपटा रहता है। उसी में ये लोग एक हँसुवा खोसे रहते हैं।

सहरिया लोग हिन्दोस्तान के पुराने जंगली आदमियों में से हैं। इनका नाम संस्कृत में शबर है। इस नाम का उल्लेख वेदों तक में पाया जाता है। महाभारत में लिखा है कि ये लोग बड़े भयानक थे; पर पाण्डवों ने इनको परास्त किया। वराहमिहिर ने शबरों के दो भेद लिखे हैं:—नग्न शबर और पर्ण-शबर। उस समय जो बिलकुल ही नंगे रहते थे वे नग्न और जो अपनी कमर में पत्ते लपेटे रहते थे वे पर्ण-शबर कहलाते थे। हज़ारों वर्ष हो गये, परन्तु इन लोगों की दशा में विशेष अन्तर नहीं हुआ। अब तक ये प्रायः दिगम्बर बने हुए जंगलों में घूमा करते हैं और कन्द, मूल, फल तथा मांस से किसी प्रकार अपना पेट पालते हैं। अब ये लोग धनुर्बाण और भाला नहीं बाँधते। इनके शस्त्र अब कुल्हाड़ी और हँसुवा ही हैं।

देवगढ़ प्रान्त में पहले सहरियों ही का आधिपत्य था। उन पर गोंड़ लोगों ने विजय पाया। गोंड़ों के अनन्तर देवगढ़ गुप्तवंशी राजाओं के अधिकार में आया। स्कन्धगुप्त आदि इस वंश के राजाओं के कई शिला-लेख अब तक देवगढ़ में विद्यमान हैं। गुप्तवंश के अनन्तर कन्नौज के भोजवंशी राजाओं ने इस प्रान्त को जीता। देवगढ़ में जैनियों का एक बहुत बड़ा मन्दिर है। उसके तोरण में, ८८३ ईसवी का एक लेख राजा भोजदेव के नाम से खुदा हुआ है। भोज-वंशी राजाओं का प्रतापसूर्य निस्तेज होने पर, ८३१ से १५६९ ईसवी तक, चन्देलवंशी अनेक राजाओं ने इस प्रान्त को अपने अधिकार में रक्खा। ललितपुर के आस पास इस वंश के राजाओं के अनेक शिलालेख पाये जाते हैं। इस वंश की राजधानी महोबा थी। इस घराने के वंशज ललितपुर के पास खजराहा में अब तक विद्यमान हैं। चन्देलों के अनन्तर मुसलमानों का बल बढ़ा। उनकी वृद्धि के साथ ही साथ प्राचीन महल, मकान और मन्दिरों की बरबादी की भी वृद्धि हुई। १६०० ईसवी में यह प्रदेश पुनर्वार हिन्दुओं की अधीनता में आया। बुँदेलों ने मुसलमानों से इसे छीन कर अपने अधिकार में कर लिया। आज तक इस प्रान्त में किसका कब तक प्रभुत्व रहा, इसका विवरण नीचे दिया जाता है:—

शबर अर्थात् सहरिया	समय का पता नहीं
पाण्डव	ईसा के ३००० वर्ष पहले
गोंड़	समय अज्ञात है
गुप्त-वंश	३०० से ६०० ईसवी तक
देव-वंश	८५० से ९६९ ईसवी तक
चन्देल-वंश	१००० से १२५० ईसवी तक
मुसलमान	१२५० से १६०० ईसवी तक
बुंदेल-वंश	१६०० से १८५७ ईसवी तक

यह समय-विभाग आनुमानिक है। पूर्ण बातें इस अनुमान के प्रमाण भी अपनी रिपोर्ट में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, परन्तु विस्तार कम करने की इच्छा से हम उन को यहाँ पर नहीं लिखते।

इस बात का ऐतिहासिक पता नहीं चलता कि कब, किसने देवगढ़ को बसाया और कब, किस तरह, वह उजड़ा। लोगों का कथन है कि देवपति और खेव (क्षेम) पति नाम के दो जैन-धर्म्मावलम्बी भाई थे। उन्हींने देवगढ़ का क़िला बनवाया और शहर बसाया। जैन-मन्दिर भी, जो वहाँ पर इस समय भी विद्यमान हैं, उन्होंने निर्म्माण कराये। परन्तु इन बातों का कोई अच्छा प्रमाण नहीं मिलता।

पुरानी इमारतों के लिए देवगढ़ बहुत मशहूर है। दूर दूर तक उसके खँड़हर चले गये हैं। इस समय वहाँ पर जो एक छोटा सा गाँव है वह पहाड़ी के नीचे है। वहीं पर गुप्तवंशी राजाओं का एक और हिन्दुओं का एक—ऐसे दो—मन्दिर हैं। एक तालाब भी वहाँ है। प्राचीन क़िला और शहर के भग्नावशेष भाग पहाड़ी के ऊपर हैं। उसके दक्षिण-पश्चिम भाग में वेत्रवती (बेतवा) बड़े वेग के साथ बहता है। जब हम लोग पहाड़ी के नीचे के अवलोकनीय स्थान देख चुके, तब, ऊपर, पहाड़ी पर चढ़ने का इरादा हुआ। इसलिए पाँच सात सहरिया पहले से ऊपर भेज दिये गये। उन्होंने बढ़ी हुई झाड़ियों को काट छाँट कर, किसी तरह, चलने लायक़ रास्ता बनाया। फिर उन्होंने "हाँका" किया, जिसमें, मन्दिरों के भीतर छिपे हुए जंगली जानवर आदि हों, तो निकल जायँ। इसके बाद हम लोगों ने पहाड़ी पर चढ़ना शुरू किया। मार्ग बड़ा विकट था। काँटेदार झाड़ियाँ इतनी घनी थीं कि बड़े कष्ट से हम लोग भीतर पहुँच सके। जंगल के भीतर हम लोगों ने अनेक प्राचीन मन्दिरों और मूर्त्तियों को देखा और जिस बली काल ने उन सब को उजाड़ कर इस दशा को पहुँचाया उसे बार बार धिक्कारा। हमारे सामने ही कई एक ख़रगोश और चिड़िये आहट पाकर उनके भीतर से निकल भागे। एक जैन-मन्दिर के भीतर रीछ के बाल मिले और उससे चिह्न दिखलाई दिये जिससे सूचित होता था कि वहाँ पर कुछ ही देर पहले एक रीछ था जो "हाँका" की आवाज़ से निकल गया था।

गुप्तवंशी राजाओं के समय का यहाँ पर एक प्राचीन मन्दिर है। वह कोई एक हज़ार वर्ष का पुराना है। उसका नाम दशावतार-मन्दिर है। उसके चारों तरफ़ विष्णु के दस अवतारों की मूर्तियां थीं। इसी लिए उसका नाम दशावतार पड़ा। वह लाल पत्थर का बना है। उसके चारों तरफ़ पहले बरांडा था; परन्तु वह अब गिर पड़ा है। मन्दिर के द्वार पर जो काम है वह बहुत अनमोल है। उसके ऊपर गंगा और यमुना की मूर्तियाँ हैं; मध्य में विष्णु की मूर्ति है जिसके ऊपर शेष अपने फनों की छाया किये हुए हैं। इसके सिवा स्त्री-पुरुषों और खर्वाकार बौनों की कई सुन्दर सुन्दर मूर्तियाँ हैं। यह सामने की बात हुई। शेष तीन तरफ़ विष्णु के तीन अवतारों की मूर्तियाँ हैं। एक जगह शेष पर नारायण सो रहे हैं; लक्ष्मी उनकी पाद-सेवा कर रही हैं; पञ्च पाण्डव और द्रौपदी नीचे खड़े हैं; ब्रह्मा, शिव और इन्द्र आदि देवता ऊपर हैं। दूसरी जगह राम-लक्ष्मण की मूर्तियां हैं; वे जंगल में हिरन और सिंह आदि हिंस्रजीवों के बीच में बैठे हैं। तीसरी जगह गज को ग्राह की पकड़ से छुड़ाने के लिए गरुड़ पर सवार होकर विष्णु भगवान् जा रहे हैं। जितनी मूर्तियाँ हैं सब अच्छी हैं। नीचे चबूतरे की दीवारों पर भी रामावतार से सम्बन्ध रखनेवाली कथाओं का सूचक कितनी ही मूर्तियाँ हैं। पहले बहुत थीं; परन्तु बिगड़ते बिगड़ते अब कम रह गई हैं। बरांडे के चार खंभे अभी तक बने हुए हैं। उन पर ऐसा साफ़, सुथरा और बारीक काम है कि देखकर आश्चर्य्य होता है। मन्दिर के शिखर का कुछ भाग गिर पड़ा है; कुछ बाक़ी है। मन्दिर के भीतर विष्णु की मूर्ति का पता नहीं; परन्तु उसका जगह पर शिव का एक लिङ्ग रक्खा हुआ है। विष्णु की मूर्ति का आवरण मात्र शेष है। यह पुराना और प्रसिद्ध मन्दिर बुरी हालत में है। शिखर की दशा बहुत बुरी है। बरांडे का निशान तक नहीं रहा। खंभे गिर गये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो सकता है। उनको प्रत्यक्ष देखना चाहिए। पशु, पक्षी, फूल, पत्ती, देव, देवी और मनुष्यों की मूर्तियाँ इस कौशल से बनाई गई हैं कि उनको देखकर उनके बनाने वालों की सहस्र मुख से प्रशंसा करने को जी चाहता है।

पहाड़ी के ऊपर, क़िले में, अनेक टूटी फूटी मूर्तियाँ और मन्दिरों इत्यादि के अंश इधर उधर पड़े हैं। वे इस बात को सूचित करते हैं कि किसी समय अनन्त मन्दिर, मकान और राज-प्रासाद इस शहर की शोभा को बढ़ाते थे। परन्तु, अफ़सोस है, वहीं आज जंगली जानवरों का वास है और जंगल इतना घना हो गया है कि मनुष्य का प्रवेश मुश-किल से होता है।

देवगढ़ में कई शिलालेख हैं। सिद्ध की गुफा, नाहरघाटी, राजघाटी और जैन-मन्दिर के लेखों का उल्लेख ऊपर हो चुका है। उनके सिवा और भी छोटे बड़े कई शिलालेख हैं। पूर्ण बाबू ने उन सब की नक़ल ले ली थी। उनको उन्होंने अपनी एक दूसरी रिपोर्ट में शामिल करके गवर्नमेंट को भेजा था। मालूम नहीं गवर्नमेंट ने उनको प्रकाशित किया या नहीं।

सायन-निरयन-वाद ।

यह विषय कुछ नया नहीं है। मराठी में इस विषय पर बहुत कुछ वाद-विवाद हो चुका है। परन्तु राज-नैतिक विषयों के आगे जैसे और सब विषय फीके पड़ गये हैं वैसेही यह विषय भी आज कल फीका पड़ गया है। इस विषय के मंदे पड़ने का एक कारण और भी है। वह यह है कि इसके मुख्य संचालक अब नहीं रहे। इस बारह वर्ष पहले मराठी पत्रों का यह सर्व-व्यापक विषय था। कई सभायें भी इस विषय के सत्यासत्य निर्णय के लिए हुईं जिनमें सायन-पञ्चाङ्ग को सत्य ठहराया गया। परन्तु निरयन-पञ्चाङ्ग का सब जगह प्रचार होने से वह बंद नहीं हुआ। संभव है कुछ पाठक सायन और निरयन शब्दों से अच्छी तरह परिचित भी न हों, क्योंकि हिन्दी में इस विषय की बहुत कम चर्चा हुई है। अतएव यहाँ पर इन दोनों शब्दों का मतलब बतला देना आव-श्यक जान पड़ता है।

सायन का अर्थ है अयन सहित; और निरयन का अर्थ ठीक इसका उलटा है। जो पंचांग अयनों के अनुसार होते हैं वे सायन कहाते हैं। और जो अयन को छोड़े हुए होते हैं उनको निरयन कहते हैं। जिस कक्षा में सूर्य चलता हुआ जान पड़ता है उसे क्रांतिवृत्त कहते हैं। अंगरेज़ी भाषा में क्रांतिवृत्त को इकलिप्टिक (Ecliptic) कहते हैं। क्रांतिवृत्त के जिन बिन्दुओं तक २२ दिसम्बर और लगभग २२ जून को सूर्य पहुँचता है, और आगे नहीं बढ़ पाता, उन्हें क्रम से दक्षिणायन और उत्तरायण कहते हैं। यही दोनों अयन हैं। अँगरेज़ी में इन्हें समर सॉल्स-टिस (Summer Solstice) और विन्टर सॉल्सटिस (Winter Solstice) कहते हैं।

ऋतु सूर्य की स्थिति पर अवलंबित हैं और अयन सूर्य की स्थिति बतलाते हैं। इस कारण यह कहना अनुचित अथवा अयथार्थ नहीं कि ऋतु अयनों ही के अनुसार होती हैं। ऋतुओं के विभागों ही का नाम मास है। अतएव अयन चूकने पर ऋतु-विपर्यास अवश्य होना चाहिए। जब ऋतु चूक गई तब निरयन-पंचांगों का उपयोग ही क्या रहा ?

यहाँ पर सायन और निरयन प्रथाओं का संक्षेप से वर्णन करना अनुचित न होगा। इससे उनके गुण और दोष भली भांति विदित हो जायँगे।

क्रांतिवृत्त बारह भागों में विभक्त माना गया है। उसके प्रत्येक भाग को राशि कहते हैं। इस कारण क्रान्तिवृत्त को राशि-चक्र भी कहते हैं। यह राशिचक्र अथवा क्रांतिवृत्त बराबर बराबर के सत्ताईस भागों में बँटा हुआ माना जाता है। इसके हर एक भाग को नक्षत्र कहते हैं। यहाँ तक किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार का भेद दोनों प्रथाओं के पंचांगों में नहीं है। राशिचक्र के सत्ताईस अथवा बारह विभाग करने के बिन्दु मात्र दोनों पंचांगों के भिन्न भिन्न हैं। निरयन प्रथा में रेवती तारे से बारह अथवा सत्ताईस भाग किये जाते हैं। यहाँ पर एक बात ध्यान में रखना चाहिए। वह यह है कि प्रत्येक तारे का वेग न्यूनाधिक है। इस सिद्धांत के अनुसार रेवती तारा भी स्थानान्तर करता है और उसके साथ राशियों के स्थान भी बदलते हैं। तदनुसार महीनों का समय भी बदलता जाता है। इसी का नाम ऋतु-विपर्यास है। यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिए कि रेवती तारे से और हमारी ऋतुओं से कोई संबंध नहीं है।

सायन-गणना में राशिचक्र के बारह अथवा सत्ताईस भाग संपात से किये जाते हैं। संपात उस बिन्दु को कहते हैं जहां खविषुववृत्त और क्रांतिवृत्त एक दूसरे का आपस में छेदन करते हैं। उत्तर और दक्षिण ध्रुव से समान अन्तर पर पृथ्वी की पीठ पर जो कल्पित रेखा है उसे विषुववृत्त कहते हैं। विषुववृत्त के कल्पित आकाशस्थ प्रतिबिंब का नाम खविषुववृत्त है। क्रांतिवृत्त और खविषुव-वृत्त दोनों पूर्व-पश्चिम हैं। परन्तु क्रांतिवृत्त, विषुववृत्त के उत्तर की ओर कुछ अंशों से और दक्षिण की ओर भी कुछ अंशों से झुका हुआ है। इस कारण ये दोनों वृत्त आपस में दो स्थानों पर कटते हैं, जिनको संपात कहते हैं।

प्राचीन काल में किसी समय रेवती का तारा संपात ही पर था और वहीं से गणना होती थी। इस कारण भ्रमवश लोग रेवती तारे ही को गणना का स्थान धीरे धीरे समझने लगे। तभी से निरयन प्रथा का जन्म हुआ।

जगद्गुरु शंकराचार्य ने सायन-प्रथा ही की यथार्थता मान्य की है। आचार्य महोदय का आज्ञापत्र, जो उन्होंने इस पक्ष के उत्पादक को दिया है, मिलने पर पाठकों की भेट किया जायगा। यहाँ पर जर्मनी के प्रसिद्ध पण्डित कीलहार्न साहब की सम्मति, जो उन्होंने सायन-पंचांग का परीक्षण करके इंडियन ऐन्टीक्वेरी के आगस्ट सन् १८९ ईसवी के अंक में सायन-प्रथा के विषय में दी थी, लिखी जाती है :—

"The Sankrantis put down in the (निरयन) calendars are clearly no longer what, according to the definitions of ancient and authoritative works, they should be. In the new (सायन) calendars the Karkata and Makara-Sankrantis fall, really as they should, on the longest and shortest days of the year. A Hindu who, in the performance of his religious ceremonies, should allow himself to be guided by those (सायन) calendars, would, at all times, perform those ceremonies at the right season."

अर्थात्—निरयन पंचांगों में दी हुई संक्रांति वैसी नहीं है जैसी कि पुरातन और मान्य ग्रन्थों की परिभाषा के अनुसार होनी चाहिए। नूतन अर्थात् सायन पंचांगों में कक और मकर-संक्रांति वास्तव में वैसीही पड़ती है जैसी कि वर्ष के सबसे बड़े और सबसे छोटे दिनों पर पड़नी चाहिए। जो हिन्दू अपने धर्म-कृत्य करने में इन (सायन) पंचांगों के अनुसार चलेगा वह उन कृत्यों को उचित ऋतु में करेगा।

अब विचार कीजिए कि हम लोग कहां तक सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करने के लिए तत्पर हैं। त्यागना और ग्रहण करना तो दूर रहा सत्यासत्य को लोग मुँह से क़बूल तक नहीं करते। जिस विषय में श्रीशंकराचार्य जी तक ने सम्मति दे दी और यूरप तक में जिसकी सत्यता मान्य हो गई उस विषय की हिन्दी में चर्चा तक नहीं। बड़े खेद की बात है! मराठी और हिन्दी सहोदर भगिनियां हैं और, और भगिनियों की अपेक्षा इनमें बहुत कुछ साम्य भी है। निवास भी अत्यंत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का है। तिसपर भी एक के घर की बात दूसरी पर विदित नहीं। पार्थक्य-भाव जितनाही कम हो जाय उतनाही अच्छा है।

ललूप्रसाद शर्म्मा।

तीस लाख वर्ष के पुराने जानवरों की ठठरियाँ।

प्राचीन काल में कुछ जानवर ऐसे होते थे जो आज कल नहीं पाये जाते। दो एक का हाल सरस्वती में निकल भी चुका है। दिनोसार जात्यन्तर्गत ट्रेचोडोंट शाखा के रेंगनेवाले जीव भी ऐसे ही जानवरों में हैं। इनकी दो ठठरियाँ न्यूयार्क (अमेरिका) के अजायबघर में, हाल ही में, प्रदर्शनी के लिए रक्खी गई हैं।

इस जानवर की ठठरियाँ अब तक योरप और अमेरिका में बहुत पाई गई हैं। पर ये दोनों ढाँचे ऐसे पूर्ण और जुदी जुदी हालतों में हैं कि इनकी परीक्षा करने में बड़ा सुभीता होता है।

विद्वानों का अनुमान है कि यह जानवर तीस लाख वर्ष पहले होता था। उस समय डिनोसार जाति की अन्य शाखाओं की अपेक्षा ट्रेचोडोंट शाखा के जानवर बहुत अधिक थे। इन ठठरियों के रंग-ढंग से मालूम होता है कि जिस समय में ये मरे हैं उस समय दोनों चर रहे थे। उनमें से एक अपने किसी वैरी जानवर के आ जाने से चौंक पड़ा है और उँगलियों के बल खड़ा हो गया है। दूसरे को आनेवाली विपद का ज्ञान नहीं है। वह चुप चाप चरने में मग्न है। इतने प्राचीन काल की घटना के इस अनुमान के ठीक होने में कोई सन्देह नहीं करना चाहिए। क्योंकि जिस समय हम इसके ढाँचे को और तत्कालीन पत्तियों, झाड़ियों, पेड़ों के तनों और फलों के चिह्नों को ध्यानपूर्वक देखते हैं उस समय इस अनुमान के सिवा और कोई अनुमान हो ही नहीं सकता। खड़ी ठठरी के पिछले बाँयें पैर पर तीन घाव हैं। वे इस जीव के किसी वैरी के किये हुए हैं। उन्हें देख कर यह अनुमान और भी दृढ़ हो जाता है।

जैसा हम पहले कह आये हैं ट्रेचोडोंट तीस लाख वर्ष पहले होता था। उस समय ये जानवर योरप और अमेरिका के कई स्थानों में पाये जाते थे। विशेष कर अमेरिका के न्यूजर्सी, मिसीसिपी, अलबामा, बोमिंग, मोटाना, डकोटा आदि स्थानों में। क्योंकि यहीं इसकी ठठरियाँ अधिकता से पाई गई हैं।

जबसे इस जाति के जानवर का वंश-नाश हुआ तब से अब तक इसकी ठठरियों के ऊपर आटलांटिक महासागर के किनारों पर कई हज़ार फ़ीट ऊँची चट्टानें जम गईं हैं। भूगर्भ-विद्या-विशारदों का कथन है कि इन चट्टानों की इतनी तहें तीस लाख वर्ष से अधिक काल में जम सकती हैं। इससे आप इन ठठरियों की प्राचीनता का अनुमान कर सकते हैं।

अमेरिका की पश्चिमी रियासतों में पहाड़ियों और घाटियों की बड़ी अधिकता है। इन्हीं पहाड़ियों के पास एक अत्यन्त ऊबड़ खाबड़ जगह में यह खड़ी ठठरी सन् १९०४ में पाई गई थी। जिस आदमी ने इसे पाया था उससे १९०६ में न्यूयार्क के अजायबघर के प्रबन्ध-कर्त्ताओं ने ख़रीद लिया।

दूसरी ठठरी डकोटा रियासत की मोरो नदी के पास मिली थी। इसे अध्यापक कोप नाम के एक साहब के आदमियों ने १८८२ में पाया था। उन्होंने बड़ी मुशकिल से, बहुत कहने सुनने पर, इसे अजायबघर वालों के हाथ बेचा।

ट्रेचोडोंट जानवर की गिनती रेंगने वाले जीवों में है। उसकी अगली टाँगें बहुत छोटी होती हैं। पर पिछली टाँगें और पूँछ ख़ूब लम्बी होती हैं। दाँतों की बनावट से मालूम होता है कि यह जानवर मांसभक्षी नहीं था; किन्तु फल, मूल, घास, पात, आदि खाकर जीवन-निर्वाह करता था। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का मुँह फैला हुआ होता था। और बत्तख़ की तरह चौड़ी चोंच भी होती थी, जो एक हड्डीदार ग़िलाफ़ से ढकी रहती थी। उसके मुँह में सब मिलाकर दो हज़ार दाँत होते थे।

शरीर के अगले भाग की अपेक्षा पिछला भाग छः गुना अधिक बढ़ा था। क़द और पैर की हड्डियों के आकार से जान पड़ता है कि वह तौल में बहुत भारी न होता था। ठठरियों में अगले पैर के सिरे पर चार उँगलियाँ हैं। पर अँगूठा बहुत छोटा है। स्थूलाकार पिछली टाँगों में तीन लम्बी लम्बी उँगलियाँ हैं जिनके सिरे खुर की तरह जान पड़ते हैं। जब यह खड़ा होता था तब इसकी उँचाई सत्रह फ़ीट होती थी।

लम्बी पूँछ से इस जानवर को पानी में चलने में बड़ी मदद मिलती होगी। ज़मीन पर खड़े होने में भी यह बहुत सहायता पहुँचाती होगी। विद्वानों का अनुमान है कि इस जाति के जानवर बड़े बेढब तैरने वाले होते थे। उनकी ठठरियाँ बहुधा ऐसी चट्टानों में पाई गई हैं जो समुद्र के भीतर मग्न थीं। इन चट्टानों में समुद्री घोंघे, सीपी आदि भी पाई गई हैं।

आज कल जितने प्रकार के रेंगने वाले जानवर जीवित हैं उनमें से दक्षिणी अमेरिका के इगुवाना नामक जानवर का स्वभाव और चाल ढाल इससे बहुत कुछ मिलती जुलती है। ये जानवर वहाँ के गलपागोस नामक टापू में झुंड के झुंड पाये जाते हैं। जो चीज़ें समुद्र में पैदा होती हैं उन्हीं पर ये अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। ये जानवर साँप की तरह सारा शरीर और लम्बी पूँछ हिलाकर समुद्र में बड़ी आसानी से तैरते हैं।

यह जानवर पानी में घुस कर मांस-भक्षी जन्तुओं से अपनी रक्षा करता होगा। क्योंकि सींग आदि रक्षा करने वाला कोई दृढ़ अङ्ग इसके नहीं होता था। इसका चमड़ा उभरे हुए छोटे छोटे दानों से ढका रहता था। हालही में एक ऐसी ठठरी मिली है जिसकी पूँछ की हड्डियों पर चमड़े के चिह्न हैं। इसकी हड्डियों के साथ तरह तरह की पत्तियों, फलों और पेड़ों के तनों के चिह्न चट्टानों में अब तक रक्षित हैं। इस जाति के पेड़ वर्त्तमान समय में गर्म देशों में पाये जाते हैं। इससे मालूम होता है कि उस समय की आबोहवा बहुत गर्म थी।

भूकम्प आदि प्राकृतिक कारणों से अमेरिका महाद्वीप के ऊँचे हो जाने से दलदलदार नीची भूमि लुप्त हो गई। आबोहवा भी गर्म की जगह ठंढी हो गई और पहले के से पौधे, पेड़ आदि भी न रहे। इससे कितनेहीं जलचर जानवरों की भी वही दशा हुई जो जल से बाहर निकाली हुई मछली की होती है। इस जाति का जानवर जो सदा के लिए लुप्त हो गया उसका मुख्य कारण यही है।

चित्र-दर्शन।

(१)

कर्ण और कुन्ती।

इस रँगीन चित्र के विषय में हम कुछ नहीं कहना चाहते। उसके सौन्दर्य्य आदि का विवेचन चित्र-कलानिपुण पाठक स्वयं ही करें। हाँ, कविवर मैथिलीशरण गुप्त जी ने इस चित्र के सम्बन्ध में जो कविता लिखी है, और जो इसी संख्या में अन्यत्र प्रकाशित है, उसे एक बार ज़रूर पढ़ लेने की हम बार बार प्रार्थना करते हैं।

(२)

राधा-कृष्ण का चित्र।

इस संख्या में राधा-कृष्ण का एक अनूठा चित्र प्रकाशित किया जाता है। यह चित्र एक बहुत पुराने रँगीन चित्र के फ़ोटो से तैयार किया गया है। टाड साहब ने राजस्थान का जो इतिहास लिखा है उसमें उन्होंने इसी चित्र का एक प्रतिबिम्ब दिया है। चित्र का प्राकृतिक दृश्य जैसा मनोहारी है, कृष्ण का गोपाल-वेश भी वैसाही स्वाभाविक और मनोहारी है। राधिका के पीछे जो खड़ी है वह उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सखी है। यह चित्र लफ़्टिनेंट अमरसिंह जी ने महू से भेजा है। अतएव इस कृपा के लिए सरस्वती उनकी बहुत कृतज्ञ है।

(३)

शाही बेगमों के चित्र ।

हमारे एक मित्र ने देहली से शाही बेगमों के कई चित्र भेजे हैं। उनमें से एक की पाठ पर लिखा है "जहाँ-आरा, दुख़्तरे शाहजहाँ"। इस चित्र को कुछ चित्र बेचनेवालों ने तो जहाँ-आरा ही का बताया, पर कुछ ने कहा यह जोधा बाई का है। ये बातें उन्होंने हमें लिख भेजीं। इस पर हमने इस चित्र को एक ऐसे महाशय के पास भेजा जो इतिहास का बहुत अच्छा ज्ञान रखते हैं और बहुत से प्राचीन चित्र भी जिनकी नज़र से गुज़रे हैं। इस विषय में उनकी क्या राय है सो उन्हीं के मुँह से सुनिए :—

"महाशय जी, मुझे तो यह चित्र जहाँ-आरा बेगम का नहीं मालूम होता; क्योंकि इसकी शक्ल बाप और भाइयों की तसवीरों से नहीं मिलती। दूसरे, पोशाक मुसलमानी नहीं मालूम होती, हिंदवानी है। तीसरे, दुपट्टा सिर पर ओढ़ने का दस्तूर मुसलमान बड़े घर की औरतों में कम है। चौथे, बेगमें सिर पर ताज़ रखती थीं। पाँचवें, बाँदी भी हिंदू औरत मालूम होती है। छठे, जोधा बाई भी नहीं मालूम होती—रानियों की ऐसी पोशाक नहीं होती। वे बहुधा पाजामा, अँगरखा पहिनती हैं। घाँघरा कम। हथियार, छुरी, कटारी, वा तलवार भी उनके पास अवश्य रहती थी। हुक्का जोधाबाई के समय में पेंचवान लगा हुआ था या नहीं, यह भी प्रश्न है। सातवाँ, बेगमों और राजपूत-रानियों के चित्र कभी नहीं लिये जाते थे। न अब लिये जाते हैं। आपने किसी अख़बार में ईरान, कम या अमीर काबुल की बेगमों के चित्र कभी न देखे होंगे। आठवें, परदा होने से कोई चित्रकार उनके पास नहीं जा सकता था, न उनके चित्र सर्व साधारण में दिखाये जा सकते थे। यहाँ एक शाहज़ादे हैं। कल मैंने उनको यह चित्र दिखाया तो बड़े ख़फ़ा हुए। कहा कि अब हमारी कमनसीबी की नौबत यहाँ तक पहुँच गई कि लोग रंडियों की तसवीरों के फ़ोटो लेकर हमारी दादी परदादियों के नाम से बेचते हैं। हमें अब तक यह मालूम ही नहीं है कि शाहज़ादियाँ कैसी होती थीं और कैसे कपड़े पहनती थीं।"

"मेरे पास भी ऐसे कई फ़ोटो हैं जिनके नाम फ़ोटो वाले कभी कुछ और कभी कुछ बता देते हैं। मेरे पास ऐसी ही एक तसवीर का फ़ोटो है। उसका नाम बाबर बादशाह की बेगम लिखा है। और यही फ़ोटोग्राफ़र ने लिखाया था। कहते हैं दिल्ली में किसी ने मुरक्के बेगमातके नाम से ऐसे कई फ़ोटो चलाये हैं।"

अच्छा यह तो जहाँ-आरा के चित्र की बात हुई। एक और चित्र है। उस पर लिखा है—"मोती-महल बेगम, मलिका सुल्तान अबूसईद मिर्ज़ा"—अबूसईद मिर्ज़ा से यदि मतलब बाबर बादशाह के दादे, समरक़न्द के बादशाह, से है तो यह चित्र भी बनावटी मालूम होता है। क्योंकि उसकी बेगम का नाम मोती-महल बेगम नहीं हो सकता। यह नाम हिन्दुस्तानी है। मुग़ल बादशाहों की बेगमों के नाम बहुधा तुर्की या फ़ारसी होते थे। इसके सिवा और भी कितनी ही बातें हैं जिनसे यह चित्र असली नहीं मालूम होता। जहाँ-आरा के चित्र के विषय में जो एतराज़ हो सकते हैं प्रायः वे सब इसके विषय में भी हो सकते हैं।

ये दोनों चित्र इस संख्या में इसलिए प्रकाशित किये जाते हैं जसमें सब लोग इन चित्रों के असली या नक़ली होने का निश्चय ख़ुदही कर लें। हमारी राय में तो ये असली नहीं जान पड़ते। सरस्वती में एक बार ज़ेबुन्निसा के नाम से जो चित्र निकला है वह भी इसी प्रकार का चित्र जान पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक-परीक्षा।

१—श्रीयादवेन्द्र। हिन्दी भाषा का मासिक पत्र। इसके सम्पादक पण्डित द्वारिकाप्रसाद जी चतुर्वेदी और पण्डित राधाकृष्णजी मिश्र हैं। श्रीराघवेन्द्र प्रेस, प्रयाग, में यह छपता और वहीं से प्रकाशित होता है। वार्षिक मूल्य दो रुपये है। यह पत्र इस साल के जनवरी मास से निकलता है। प्रत्येक अङ्क में डिमाई अठपेजी आकार के चालीस पृष्ठ रहते हैं। काग़ज़-छपाई सब अच्छी है। यद्यपि इस पत्र का मुख्य उद्देश सनातनधर्म का प्रचार करना है तथापि इसमें साहित्य-सम्बन्धी लेख भी रहते हैं। इसका रंग ढंग, लेख-प्रणाली सब श्रीराघवेन्द्र के सदृश है। लेख उत्तम और सुपाठ्य होते हैं। अन्त के आठ पृष्ठों में वारन हेस्टिंग्ज़ का चरित नियमित रूप से छपता है। हम इसकी हृदय से उन्नति-कामना करते हैं। आशा है कि इसके उत्साही सम्पादक प्रति मास इसे अधिकाधिक उन्नत करते जायँगे। ग्राहक होने की इच्छा रखने वालों को मैनेजर "श्रीयादवेन्द्र", पोस्ट देउरिया, ज़ि० ग़ाज़ीपुर को लिखना चाहिए और वहीं मूल्य भेजना चाहिए।

❁

२—श्रीगंगालहरी तथा गंगतरंग। इस पुस्तक में पण्डितराज-जगन्नाथ-कृत गङ्गालहरी नामक मनोहर काव्य के ऊपर तो संस्कृत-छन्द हैं नीचे उनका हिन्दी छायानुवाद। अनुवाद भी मूल की शिखरिणी छन्दों में है। पर अनुवाद कुछ कम सरस है। इसके अनुवादक पण्डित वनमालीशंकर मिश्र हैं और प्रकाशक साहू पुरुषोत्तमशरण, कोठी वाले रईस, मुरादाबाद। प्रकाशक महाशय इसे धर्म्मार्थ बाँटते हैं। पर जो लोग मोल लेना चाहें वे इस पते से चार आने में मँगा लें—पण्डित वनमालीशंकर मिश्र, मार्फ़त संभलनिवासी आयुर्वैदिक हकीम पण्डित हरिप्रसाद मिश्र, शहर मुरादाबाद।

३—वेदोपदेश, पहला भाग। डी० ए० वी० कालेज लाहौर के संस्कृताध्यापक पण्डित राजाराम शास्त्री कई वर्ष से आर्ष-ग्रंथावलि नाम की एक मासिक पुस्तक निकालते हैं। उसमें वेद, उपनिषद् और सूत्र के अनुवाद तथा भाष्य सरल हिन्दी में छपते हैं। वेदोपदेश पहले इसी में छपा था। अब आपने इसे पुस्तकाकार अलग प्रकाशित किया है। इसमें ईश्वर और वेद की महिमा वर्णन करने के बाद यह सिद्ध करने की चेष्टा की गई है कि वेदों में केवल परब्रह्म परमात्मा की उपासना का विधान है और अग्नि, इन्द्र आदि जो शब्द उनमें आये हैं वे प्राकृतिक पदार्थों के नहीं, किन्तु परमात्मा के वाचक हैं। शास्त्री जी ने अपने कथन की पुष्टि में वेद, उपनिषद्, सूत्र, आरण्यक, ब्राह्मण, मनुस्मृति, महाभारत आदि के प्रमाणों के सिवा कई देशी-विदेशी विद्वानों की सम्मत्तियाँ भी उद्धृत की हैं। शास्त्री जी की विद्वत्ता और खोज सर्वथा प्रशंसनीय है। मूल्य बारह आने। मिलने का पता—मैनेजर, आर्षग्रंथावलि, लाहौर।

❁

४—उपनिषदों की भूमिका। कर्त्ता पण्डित राजाराम शास्त्री, संस्कृत प्रोफ़ेसर डी० ए० वी० कालेज लाहौर। इस पुस्तक में ईश्वर, जीव, प्रकृति, पुनर्जन्म, कर्म, उपासना, ज्ञान, बन्ध, मोक्ष आदि के सिद्धान्त अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत और द्वैताद्वैत मत का भी वर्णन है। पुस्तक बड़ी योग्यता से लिखी गई है। जो लोग उपनिषदों का सारांश थोड़े ही में जान लेना चाहें उनके लिए यह बड़े काम की है। मूल्य चार आने में ग्रंथकर्त्ता से मिल सकती है।

Printed and published by Panch Kory Mittra at the Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती ।

भाग १०] १ मई, १९०९ । वैशाख शुक्ल ११, १९६५ । [संख्या ५

विविध विषय ।

१—गानेवाली तसवीरें ।

सरस्वती के कितनेहीं पाठकों ने चलने फिरने और नाचनेवाली तसवीरों का तमाशा कभी न कभी अवश्य देखा होगा । परन्तु चलने फिरनेवाली तसवीरें अब तक बोल न सकती थीं। अब फ़्राँस के कप्तान कोयेड नाम के एक वैज्ञानिक ने एक ऐसी तरकीब निकाली है जिसके द्वारा चलने फिरने और नाचनेवाली तसवीरें केवल बोल ही नहीं किन्तु गा भी सकती हैं। जिस यन्त्र के ज़ोर से निर्जीव तसवीरें सजीवों के समान चलती फिरती हैं उसमें आपने फोनोग्राफ़ का एक यन्त्र जोड़ दिया है । दोनों का सम्बन्ध ख़ूब घनिष्ठ कर दिया गया है । कल घुमातेही तसवीर नाचने और फोनोग्राफ़ गाने लगता है । क्या मजाल कि दोनों के ताल सुर में फ़र्क़ मालूम हो। बाहर बैठे हुए दर्शक यही समझते हैं कि नाचने वाली तसवीर ही भाव बता बताकर गा रही है। योरपवाले सचमुच कमाल करते हैं।

२—मृत मनुष्यों का प्रत्यक्ष दिखाई देना ।

योरप में यह विश्वास दिन पर दिन बढ़ता जाता है कि मरे हुए मनुष्य इस संसार में फिर लौट आते हैं। इस बात पर केवल मामूली आदमी ही विश्वास नहीं करते, किन्तु बड़े बड़े विद्वान् और विज्ञानवेत्ता तक इसे मानने लगे हैं। रिव्यू आव् रिव्यूज़ पत्र के जगद्विख्यात सम्पादक मिस्टर स्टीड ने हाल ही में विलायत के फोर्टनाइटली रिव्यू नामक पत्र में इस विषय पर एक लेख लिखा है। उसमें उन्होंने अपने अनुभवजन्य उदाहरणों के प्रमाण दे देकर यह सिद्ध करने का चेष्टा की है कि मृत मनुष्य प्रत्यक्ष देखे जा सकते हैं, उनके फोटोग्राफ़ लिये जा सकते हैं और उनके भेजे हुए समाचार भी प्राप्त किये जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकते हैं। पूरे पन्द्रह वर्ष तक इस विषय की गहरी खोज करने और पूर्वोक्त बातों के दृढ़ प्रमाण पाने के बाद स्टीड साहब ने यह लेख लिखा है। आपको अपनी बात पर पूरा विश्वास है। उन्होंने अपने लेख में मृत मनुष्यों के प्रत्यक्ष देखने, फोटोग्राफ़ लेने और समाचार प्राप्त करने की जिन घटनाओं का उल्लेख किया है वे अविश्वसनीय नहीं जान पड़तीं।

३—दुनिया भर के अख़बार।

एक साहब ने हिसाब लगाकर बताया है कि दुनिया भर के सब अख़बारों की प्रति वर्ष १२०००००००००० (बारह अरब) कापियाँ निकलती हैं। इस संख्या को थोड़ा न समझिए। यदि ये सब अख़बार फैलाकर रक्खे जायँ तो दस हज़ार चार सौ पचास वर्गमील जगह घेर लें। जिस काग़ज़ पर ये अख़बार छपते हैं वह तौल में दो करोड़ मन से भी अधिक होता है। यदि ये अख़बार एक के ऊपर एक रक्खे जायँ तो इनकी उँचाई दुनिया के सबसे ऊचे पहाड़ की ऊँचाई से भी अधिक हो जाय। हिमालय पर्वत को भी इसके सामने अपना उन्नत मस्तक झुकाना पड़े। एक हिमालय तो कोई चीज़ ही नहीं, यदि ऐसे सौ हिमालय एक के ऊपर एक खड़े हों तो कहीं अख़बारों की उँचाई की बराबरी कर सकें। हम इस बात को और भी स्पष्ट किये देते हैं। हिमालय की सबसे ऊची चोटी पाँच मील से अधिक ऊची नहीं। परन्तु इकट्ठे करने पर अख़बारों के ढेर की उँचाई पाँच सौ मील से भी अधिक ऊँची हो सकती है। कुछ ठिकाना है! इससे आप समझ सकते हैं कि सर्वशक्तिमान् समाचार-पत्र सभ्य संसार की नस नस में किस तरह समा गये हैं।

४—चीन की जागृति।

चीन दुनिया भर में सबसे अधिक आबाद देश है। तथापि चीनी लोग अन्य सभ्य जातियों की अपेक्षा बहुत पीछे हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि चीन में वर्त्तमान-समयानुकूल शिक्षा देने का अच्छा प्रबन्ध नहीं। इसका बार बार कुफल चखने के बाद अब वह जाग उठा है। हाल ही में चीन-सरकार ने अमेरिका में दो हज़ार चीनी विद्यार्थी भेजने का संकल्प किया है। सब विद्यार्थी इकट्ठे न भेजे जायँगे, किन्तु अगले चार वर्ष तक हर साल सौ सौ करके और उसके बाद पचास पचास करके भेजे जायँगे। इनमें से अस्सी फी सदी शिल्पकला सीखेंगे और बीस फी सदी क़ानून और राज-काज परिचालन-विधि। जो विद्यार्थी अमेरिका जायँगे वे १२ वर्ष से लेकर २० वर्ष तक की उम्र के होंगे। वहाँ वे सब एक ही जगह नहीं, किन्तु भिन्न भिन्न स्थानों में अध्ययन करेंगे जिसमें वे लोग अमेरिका की नस नस से परिचित हो जायँ।

५—अमेरिका के कर्ण।

अमेरिका-निवासी कारनेगी साहब जगद्विख्यात करोड़पति हैं। जैसे कठिन परिश्रम और अध्यवसाय से उन्होंने अनन्त धन उपार्जन किया है वैसेही उसका सद्व्यय भी आप कर रहे हैं। दानियों में यदि उन्हें कर्ण कहा जाय तो भी अत्युक्ति नहीं। अब तक वे करोड़ों रुपये ऐसे कामों के लिए दान कर चुके हैं जिनसे केवल उनके देश ही का नहीं किन्तु समस्त संसार का उपकार हो सकता है। कुछ दिन हुए उन्होंने कोई डेढ़ करोड़ रुपये से एक फ़ंड इसलिए स्थापित किया था कि उससे वीरोचित कार्य करने वाले अमेरिका-निवासियों को पुरस्कार और सहायता दी जाय। अब एक ऐसा ही फ़ंड आपने इँगलैंड वालों के लिए भी खोला है। इसमें आपने कोई साढ़े सैंतीस लाख रुपये दिये हैं। इतनी बड़ी रक़म विदेशी वीरों को दे डालना क्या थोड़ी उदारता और विश्व-प्रेम का काम है? धन्य कारनेगी! धन्य तुम्हारी दानशीलता! कारनेगी साहब ने अब तक जिन कामों के लिए जितना दान दिये हैं उनमें से मुख्य मुख्य की तफ़सील दी जाती है:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	रुपये
बीदहं सौ पुस्तकालय	१२६००००००
इक्यावन कालेज	२४०००००००
कारनेगी-इन्स्टिट्यूशन (शिल्प-विद्यालय)	३०००००००
कारनेगी-फाउण्डेशन (अध्यापकों के लिए पेंशन फ़ण्ड)	३०००००००
कारनेगी-सहायक-फ़ण्ड	१२०००००००
कारनेगी-वीर-फ़ण्ड	१५०००००००
स्काच-विश्वविद्यालय	४५०००००००
पिट्सबर्ग-शिल्पविद्यालय	३०००००००
हेग-शान्तिमन्दिर	४५०००००
न्यूयार्क-यञ्जिनियर-क्लब	३०००००००
पिट्सबर्ग-अजायबघर	६०००००००
एडवर्ड-अस्पताल-फ़ण्ड	१५०००००
एबर्डीन शिल्प-विद्यालय	१५००००
फलहम-पुस्तकालय	२२५०००
मिडिल्सबरो-पुस्तकालय	२२५०००
कोच-फ़ण्ड	३७५०००
लटन-पुस्तकालय	१५००००
ग्लासगो-पुस्तकालय	२२५०००
एक और काम के लिए देने का वादा	५१०००००
	३७७,८५०,०००

ऊपर लिखे हुए दान के सिवा कारनेगी साहब ने और भी सैकड़ों छोटी छोटी रक़में दान की हैं जिनका हिसाब लगाना मुशकिल है। व्यर्थ कामों में धन नष्ट करनेवाले हमारे देशवासी कारनेगी साहब से क्यों शिक्षा लेने लगे!

६—प्राचीनकाल का एक भयङ्कर जन्तु।

प्राचीनकाल में ऐसा अनेक जातियों के जानवर होते थे जिनका इस समय नामोनिशान भी नहीं पाया जाता। ऐसी ही जाति के एक अत्यन्त भीमकाय और भयङ्कर जन्तु का ढाँचा अभी हाल ही में मिश्रदेश के एक रेगिस्तान में पाया गया है। इसी के साथही कोई साढ़े पाँच सौ और जानवरों के ढाँचे भी पाये गये हैं। इनमें से कुछ ढाँचे ऐसे जानवरों के हैं जो अब भी होते हैं और कुछ ऐसे जानवरों के जिनकी जाति इस समय पूर्ण रूप से नष्ट हो गई है। ये सब जानवर अमेरिका के प्रसिद्ध प्राकृतिक-विज्ञानवेत्ता अध्यापक आसबर्न के तत्त्वावधान में खोदे और इकट्ठे किये गये हैं। आप जनवरी ०७ में इजप्ट गये थे। तब से लेकर गत वर्ष के सितम्बर मास तक आप वहाँ ढाँचों को जमा करते रहे। यह काम आपने दो साहबों और पचीस अरबी मज़दूरों की सहायता से किया। आपके पहले भी कई जर्मन और अँगरेज़ वैज्ञानिकों ने इस जगह ढाँचों की खोज की थी। पर उन लोगों को इस काम में उतनी कामयाबी नहीं हुई जितनी आपको हुई। जिस स्थान पर ये ढाँचे मिले हैं वह इजिप्ट की राजधानी केरो से कोई पचास मील दक्षिण-पश्चिम की ओर है। इस स्थान में इतने जानवरों के ढाँचे और हड्डियाँ कैसे इकट्ठी हो गईं, इस प्रश्न के उत्तर में आसबर्न साहब का कथन है कि कई लाख वर्ष पहले यहाँ एक बड़ी ही भयङ्कर और प्रलयकारिणी बाढ़ आई थी। आस पास के प्रायः सभी जानवर इसमें बहकर इस स्थान पर आ लगे थे; क्योंकि यहाँ पर बालू का एक बड़ा भारी तूदा था। आजकल इस स्थान पर सतह से चार छः फ़ीट नीचे बेशुमार हड्डियाँ मिलती हैं। आसबर्न साहब को जितने जानवर मिले हैं उनमें से एक, जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, बड़ाही भयङ्कर और भीमकाय है। वैज्ञानिक लोगों को इसकी ख़बर बिलकुल न थी; सबसे पहले आपही ने इसका पता लगाया है। आपने इसका नाम रक्खा है "Arsinoitherium"। आपका अनुमान है कि इस जाति के जानवर कोई तीस लाख वर्ष पहले होते थे। अपने समय का यह अवश्य ही पशुराज होगा; कोई जानवर इसका मुक़ाबला न कर सकता होगा। इसकी शकल गोया हाथी और गैंडे को मिलाकर बनाई गई है। इसकी नाक पर सीधे खड़े हुए दो दो फ़ीट लम्बे दो नुकीले सींग इसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भयङ्करता को और भी बढ़ाते होंगे। इस जानवर की ऊँचाई कोई छः फीट और लम्बाई क़रीब दस फ़ीट होती थी। हड्डियाँ चौड़ी और बदन भारी था। गर्दन यद्यपि छोटी होती थी तथापि चारों ओर घूम सकती थी। टाँगें छोटी और पैर की उँगलियाँ हाथा की सी होती थीं। इस जानवर के ढाँचे को दुरुस्त कराके आसबर्न साहब ने न्यूयार्क के अजायबघर में रखवा दिया है जिसमें सब लोग उसे आसानी से देख सकें।

७—अद्भुत लड़की।

फ़्राँस देश में मिली डायमंडी नाम की बीस वर्ष की अवस्थावाली एक ऐसी लड़की है जो पच्चीस का वर्ग, बारह का जोड़ बाक़ी, आठ और बारह का वर्गमूल, और दस तक का घनमूल बिना स्लेट-पेन्सल या पेन्सल-कागज़ के सहज ही में कर सकती है। कुछ दिन हुए पेरिस की एक सभा में उसने अपनी इस अद्भुत गणनाशक्ति का परिचय दिया। लोग देख कर दंग रह गये। वह और आदमियों की तरह गणना नहीं करती। वह कहती है कि मुझे प्रश्न के फलस्वरूप अङ्कों के रंग दिखाई देते हैं। उन्हीं को देखकर मैं उत्तर दे देती हूं। अर्थात् एक के लिए काला, दो के लिए पीला, तीन के लिए लाल आदि रंग उसे देख पड़ते हैं। जैसे, यदि किसी प्रश्न का उत्तर २३ है तो उसे पीला और लाल रंग दिखाई देगा; देखतेही वह २३ का अङ्क बोल देगी। इसी तरह और भी समझिए।

८—मुसलमान हिन्दी-कवि।

आजकल मुसलमान लोग हिन्दी का नाम सुनते ही नाक भौं सिकोड़ते हैं। पर किसी समय हमारे मुसलमान भाई हिन्दी में कविता करने में अपना गौरव समझते थे। उदाहरण स्वरूप क़ासिमशाह, मलिक मुहम्मद जायसी, मीर मुहम्मद, शेख़नबी आदि कितनेही कवियों के नाम गिनाये जा सकते हैं। इनमें से मलिकमुहम्मद जायसी मुख्य हैं। इन्होंने पद्मावत नामक एक उत्तम काव्य बनाया है। जो लोग हिन्दू होकर भी हिन्दी से घृणा करते हैं उन्हें इनसे शिक्षा ग्रहण करना चाहिए। क्या कोई समय आवेगा जब हमारे मुसलमान भाई पहले की तरह फिर हिन्दी से प्रेम करने लगेंगे?

९—जयपुर-राजगुरु श्रीयुत भट्ट नारायण पर्वणीकर।

इस जगत् में बड़ी बड़ी विलक्षणतायें भरी पड़ी हैं, जिनका कोई ठिकाना नहीं। इस विश्व में ऐसे ऐसे नर-रत्न उत्पन्न होते हैं जिनके वृत्तान्त बड़े अचरज देने वाले होते हैं। ऐसे ही पुरुषों में से भारतमार्तण्ड वेदान्त-भट्टाचार्य शतावधानी पण्डित गट्टलाल जी एक हो गये हैं। आज हम जयपुर राज्य के रत्न नहीं भारत के भूषण श्रीयुत भट्टनारायणजी पर्वणीकर का चित्र सरस्वती के पाठकों को समर्पित करते हैं। आप महाराष्ट्र ब्राह्मण हैं। संस्कृत के अच्छे पण्डित और कविता के सच्चे मर्मज्ञ हैं। बम्बई के निर्णयसागर प्रेस से जो काव्यमाला निकलती है उसके सम्पादक स्वर्गीय महामहोपाध्याय पण्डित दुर्गाप्रसाद जी ने आपकी ही सम्मति पाकर काव्यमाला निकाली थी। आपके नेत्र और कान दोनों नष्ट हो गये हैं। तथापि आप विद्याविनोद को निर्वाह किये जाते हैं। कोई नई पुस्तक आई कि आपने उस पर विचार करने के लिए उसे सुना। पुस्तक के सुनने की रीति आपकी अद्भुत है। आप अपने हाथ को सामने कर देते हैं। आपके पास के आदमी उस पुस्तक के एक एक अक्षर को आपके हथेली पर लिखते जाते हैं और आप उन्हें समझते जाते हैं। जब तक आप पुस्तक को नहीं सुन लेते चैन नहीं मिलती। हमारी आपसे कई बार भेंट हुई और अनेक विषयों पर वार्तालाप हुआ। कभी काव्य चर्चा, कभी शास्त्र-विचार, कभी देशहित, परन्तु सभी विषयों में आपके सुन्दर विचार पाये। आपसे वार्तालाप कर चित्त बड़ा ही प्रसन्न होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकर्णः कर्णवार्ताज्ञो मेधावी दिव्यदर्शनः ।
अयं सहृदयः श्रीमान् भट्टनारायणः कविः ॥

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप बड़े नम्र, सज्जन, मिलनसार और मिष्टभाषी हैं। आप अच्छे कवि हैं। मिलने पर कभी आपकी कविता का रस भी सरस्वती के पाठकों को चखायेंगे। आज केवल आपकी छवि इस नोट के साथ भेंट करते हैं। यह चित्र हमें जयपुर राज्य के ताज़ीमी सरदार पुरोहित रामप्रतापजी ने अपने हाथों से बना दिया है। इसलिए उन्हें धन्यवाद देते हैं।

गिरिधर शर्म्मा।

१०—राजा सर अमरसिंह का परलोकवास।

शोक की बात है कि वर्त्तमान काश्मीर-नरेश महाराज सर प्रतापसिंह के छोटे भाई, प्रधान मन्त्री और सेनापति, जेनरल राजा सर अमरसिंह के० सी० एस० आई० का गत २५ मार्च को देहान्त हो गया। राजा साहब का जन्म १८६४ ई० में हुआ था। मृत्यु के समय उनकी अवस्था केवल पैंतालीस बरस की थी। बाल्यावस्था में उनकी साधारण शिक्षा घरही पर हुई थी। वयस्क होने पर राज-काज में उन्होंने खूब दक्षता प्राप्त की। कुछ वर्षों से वे राज्य के दीवान और सेनापति होने के सिवा कितनेही अन्य विभागों के भी अध्यक्ष थे। सैनिक कार्य में वे बड़ेही निपुण थे। सेना का वे ऐसा अच्छा प्रबन्ध करते थे कि बड़े बड़े अँगरेज़ जेनरल तक उसे देख कर दंग रहजाते थे। राजा अमरसिंह बड़ेही धार्मिक, उदार, अध्यवसायी, दूरदर्शी और राज्य-कार्य-कुशल थे। इसी से वे राजा, प्रजा और अंगरेज़ी गवर्नमेंट सभी के प्रियपात्र थे। विशेष कर उनके ज्येष्ठ भ्राता, काश्मीरनरेश, उन्हें बहुत चाहते थे। वे अक्सर शिरोव्याधि से पीड़ित रहते थे। कुछ दिनों से यह रोग बहुत बढ़ गया था। बड़े बड़े वैद्य, हकीम और डाक्टर इसके दूर करने का कोई उपाय न कर सके। अन्त में यही व्याधि उनके प्राणों की घातक हुई। उनके परलोक-वास से काश्मीर-राज्य की बड़ी हानि हुई है जिसकी पूर्त्ति शीघ्र नहीं हो सकती।

११—मेडिकल कांग्रेस।

जिस मेडिकल कांग्रेस की महीनों से धूम मची हुई थी वह फ़रवरी के अन्तिम सप्ताह में हो गई। बाईस से लेकर पचीस तारीख़ तक बराबर चार रोज़ इसका अधिवेशन होता रहा। इसमें भारतवर्ष तथा अन्य देशों के कितने ही बड़े बड़े डाक्टर शामिल हुए थे। इसके सम्बन्ध में एक प्रदर्शिनी भी हुई थी। पहले दिन शुरू की कारर्वाई हो जाने पर कुछ बड़े बड़े डाक्टरों को पदक दिये गये। पदक पाने वालों में केवल एक मात्र भारतवासी अध्यापक गज्जर थे। इसके बाद लेख पढ़े गये। दूसरे, तीसरे और चौथे दिन भी लेखों की भरमार रही। उन पर वादविवाद भी ख़ूब हुआ। लेख पढ़नेवालों में यद्यपि कोई कोई अमेरिकन, जापानी और हिन्दुस्तानी भी थे, तथापि अँगरेज़ों की संख्या अधिक थी। जिन विषयों पर डाक्टरों ने लेख पढ़े उनमें से मलेरिया, प्लेग, सर्प-दंश आदि मुख्य हैं। प्रायः सभी लेख उपयोगी और युक्तिपूर्ण हैं। उन्हें पढ़ कर साधारण लोग बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। इनमें से कई लेख मराठी में भी पढ़े गये थे। वे हिन्दी में अनुवाद करने के योग्य हैं।

१२— पत्रसम्पादकों की महासभा।

अगले जून मास में सम्पूर्ण ब्रिटिशराज्य के समाचारपत्र-सम्पादकों की एक महासभा लन्दन में होगी। अनुमान किया गया है कि साम्राज्य भर के समाचारपत्रों के प्रतिनिधि बनकर बड़े बड़े कोई साठ सम्पादक महासभा में शामिल होंगे। सभा की कारर्वाई पाँच जून से शुरू होगी। पहले दिन इँगलैंड के अख़बारवाले प्रतिनिधियों को भोज देंगे। भोज में कोई एक हज़ार आदमी शामिल होंगे। राजकुमार प्रिन्स आव वेल्स ने एक गार्डन पार्टी देने की इच्छा प्रकट की है जिसमें सब प्रतिनिधि निमंत्रित किये जायँगे। इँगलैंड की गवर्नमेंट की तरफ़ से भी एक सरकारी भोज दिया जायगा। इसके सिवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहाँ के और भी कितने ही उच्चपदाधिकारी और रईस प्रतिनिधियों को दावतें खिलायँगे। इसके बाद प्रतिनिधियों को सरकारी सेना, जंगी बेड़ा, बड़े बड़े कारख़ाने, अच्छे अच्छे नगर और प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थान भी दिखलाये जायँगे। मतलब यह कि महासभा की कारर्वाई बड़ी धूमधाम से होगी। भारतीय समाचारपत्र-सम्पादकों के प्रतिनिधि बनकर बंगाली समाचारपत्र के सम्पादक बाबू सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी इस सम्पादक-महासभा या इम्पीरियल प्रेस कानफ़रेन्स में शरीक होंगे।

१३—लन्दन और कलकत्ते के बीच तार।

लन्दन और कलकत्ते के बीच स्थल के रास्ते सीधा तार लगाने की बहुत दिनों से कोशिश हो रही थी। अन्त में यह कोशिश कामयाब हुई। लन्दन और कलकत्ते के बीच स्थल की राह से सीधा तार लग गया। इसे इँगलैंड की इंडो यूरोपियन टेलीग्राफ़ कम्पनी ने लगाया है। कम्पनी को इतने लम्बे तार के लगाने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। क्योंकि रास्ते में शत्रु, मित्र, सभी राज्यों के देश पड़ते हैं। इसके सिवा रास्ता भी ऐसा विकट है कि वहाँ तार की लाइन लगाना साधारण बात नहीं। यह लाइन फ़्रांस, इटली, आस्ट्रिया, रूस, एशिया माइनर, फ़ारस और बलोचिस्तान होकर बनाई गई है। लन्दन और कलकत्ते का फ़ासिला सात हज़ार मील है। इतना लम्बा तार लगाना बड़ाही अद्भुत, असाधारण और आश्चर्य्यजनक काम है। अब इन दो नगरों में बैठे हुए आदमी आपस में इस तरह बात चीत कर सकते हैं मानो आमने सामने बैठे हैं। वास्तव में इस तार के लगने से इँगलैंड और हिन्दुस्तान का सम्बन्ध घनिष्ठतर हो गया। इससे अन्य लाभों के सिवा व्यापारिक तथा राजनैतिक लाभ भी है। अब लन्दन से कलकत्ते तक रेल बनाना बाक़ी है। वह भी किसी दिन बनी समझिए।

अब्राहम लिङ्कन की शतवर्षी।

रह फरवरी, १९०९, शुक्रवार को
अमरीका-निवासियों ने अपने
पुरुष अब्राहम लिङ्कन का
ब्दिक जन्मोत्सव मनाया। यू
टेड स्टेट्ज़ की सभी रियास
में उस दिन धर्म्मात्मा लि
का यश गाया गया। यही नहीं, बल्कि संसार
जिस जिस भाग में अमरीकन लोग कार्य्यवशात्
हुए हैं, वहाँ भी उन्होंने अपने इस देश-भूषण
जन्म की ख़ुशियाँ मनाईं और उसके जीवन
अपना आदर्श मान उससे लाभ उठाने का
किया। यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि इस महा
में ऐसे कौन से गुण थे जिनके कारण उसके
वासी उसे इतनी पूज्य दृष्टि से देखते हैं। कौन
कारण हैं जो इस धर्मात्मा की ख्याति को
दिन बढ़ा रहे हैं। इस बात का संक्षिप्त वर्णन
हम यहाँ पर उचित समझते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि
जब मनुष्य-समाज में धर्म की ग्लानि होती है
जन-समुदाय अपनी शक्ति से अपने दुखों को
नहीं कर सकता तब तब समाज की उलझनों
सुलझाने और उन्नति का मार्ग साफ़ करने के
महात्मा जन्म लेते हैं और मनुष्यों का दुख दूर
हैं। सभी जातियों पर ऐसी विपद पड़ती रही
और पड़ती रहेगी। अमरीकावालों पर ऐसी वि
१८५९ में पड़ी थी। वह विपद क्या थी, इसको
संक्षेप में कहे देते हैं।

सत्रहवीं सदी के आरम्भ में यूरोपियन
अपने अपने देशों से आकर उत्तरी अमरीक
बस्तियाँ बनाने लगे। अमरीका जंगली देश
इसलिए उन लोगों को जंगल साफ़ करने और
कामों के लिए मज़दूरों की सख़्त ज़रूरत
मज़दूर कहाँ से आवें? वहाँ तो सभी ज़मींदार
अतएव अमरीकावालों की इस ज़रूरत को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब्राहम लिङ्कन ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने और धन कमाने के लिए पुर्तगालवालों ने अफ़्रीका से हब्शी लाकर बेचने का ठेका लिया। धीरे धीरे यह व्यापार अँगरेज़ लोगों के हाथ में आया। हज़ारों निरपराध हब्शी हर साल भेड़ बकरियों की तरह बिकने लगे। नई दुनिया के मनुष्य-समाज की भावी विपद् के बीज इसी समय बोये गये।

१७७६ में जब उत्तरी अमरीका की तेरह बस्तियों ने स्वतन्त्रता का झंडा बुलन्द किया और—"मनुष्य मात्र ईश्वर की दृष्टि में सम हैं"—इस सिद्धान्त की सारे संसार में घोषणा दी, तब योरप की सभ्यता में एक नया परिवर्तन हुआ। यद्यपि फ़्रांस के रत्न रूसो ने इसका प्रचार पहले से ही किया था, तथापि वे केवल ज़बानी बातें थीं। अमरीकावालों ने अपना रक्त बहाकर इसका प्रमाण दिया। परन्तु एक बात में वे भी कसर कर गये। उस सत्य सिद्धान्त के महत्त्व को उन्होंने गौर वर्ण वालों तकही परिमित रक्खा। बेचारे हब्शी "मनुष्य" शब्द की व्याख्या में न लाये गये। ख़ैर, अमरीका वाले इँगलिस्तान से स्वतन्त्र हो गये। यद्यपि अमरीका वालों ने अपने यहाँ के हब्शी ग़ुलामों को आज़ादी तो न दी, मगर ग़ुलामों की तिजारत बन्द करने की कोशिश ज़रूर की। इँगलिस्तान वालों ने अपनी उदारता का प्रमाण देकर और अपने पापों पर पश्चात्ताप करके यह क्रूर कर्म बिलकुल ही बन्द कर दिया और दूसरी जातियों पर भी ग़ुलामों की तिजारत छोड़ देने के लिए ज़ोर दिया।

अच्छा, अमरीका वालों ने ग़ुलामी की प्रथा को बिलकुल ही क्यों न बन्द कर दिया? इसका उत्तर है—स्वार्थ के कारण। इन तेरह बस्तियों में से जो दक्षिण की ओर थीं उनका अधिकांश काम ग़ुलामों की मदद के सहारे चलता था। उनके खेतों पर ग़ुलाम लोग कड़ी धूप में काम करते और मालिक चैन उड़ाते थे। मगर १७७६ की घोषणा—'मनुष्य मात्र ईश्वर की दृष्टि में सम हैं'—अपना काम कर गई। उत्तरी रियासतों में ग़ुलामों को आज़ाद करने का बीड़ा लोगों ने उठाया। धीरे धीरे देश में इस बात पर दो दल बन गये। एक दल ग़ुलामों को स्वतन्त्र करना चाहता था और दूसरा उन्हें परतन्त्र रखना चाहता था। दोनों में बड़े बड़े झगड़े हुए। १८५९ में देश की दशा बड़ी नाज़ुक हो गई। देश-हितैषी कहने लगे कि यूनाइटेड स्टेटज़ को ईश्वर ही बचावे तो बच सकता है।

भँवर में पड़ी हुई यूनाइटेड स्टेटज़ को किश्ती को पार लगाना साधारण व्यक्ति का काम न था। इसके लिए एक असाधारण मल्लाह की आवश्यकता थी—अथवा यों कहिए कि उस समय एक ऐसे महात्मा की ज़रूरत थी जिसमें दैवी शक्ति हो; ईर्षा-द्वेष जिसे छू न गया हो; प्रसिद्धि की जिसको लालसा न हो; गोरे काले में जिसे सम प्रेम हो; जो नीति में कुशल हो; और जिसकी बुद्धि तीक्ष्ण हो। मतलब यह कि दूसरों के दुःख में दुःख और सुख में सुख समझने वाले तथा अपने देश की रक्षा के लिए सब कुछ स्वाहा करने वाले पुरुष की आवश्यकता थी। ऐसा पुरुष अनाथ हब्शी ग़ुलामों का दुःख दूर करने और अपने देश को दो टूक होने से बचाने के लिए पैदा हो चुका था। १८५९ में उसकी उम्र पचास वर्ष की थी। ग़रीब माता-पिता के घर उत्पन्न होकर अपने श्रेष्ठ गुणों से धीरे धीरे उन्नति करते करते यह महा पुरुष १८५९ में अपना उद्देश पूरा करने के लिए अपने देश-वासियों के सामने आया। इस समय वह यूनाइटेड स्टेटज़ का प्रेसीडेंट चुना गया।

पूर्व-सञ्चित पापों का प्रायश्चित्त अमरीकन जाति को ज़रूर करना था। १८६० में हब्शी ग़ुलामों के कारण उत्तरी और दक्षिणी रियासतों में घोर युद्ध प्रारम्भ हुआ। इस युद्ध का वर्णन पाठ करने योग्य है। प्रेसीडेंट लिङ्कन ने सबसे पहले इस बात के लिए सिर तोड़ कर कोशिश की कि बिना युद्ध के सब झगड़ों का निबटेरा हो जाय। मगर ऐसा कब हो सकता था। जब युद्ध प्रारम्भ हुआ और प्रेसीडेंट ने आदमियों के लिए अपील की तब उसके देश-वासियों ने उत्तर में कहा:—Father

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Abraham we are coming." पिता अब्राहम! हम आते हैं"। अमरीका स्वतन्त्र देश है; कोई आदमी ज़बरदस्ती फ़ौज में भरती नहीं किया जाता; दूसरे देशों की तरह "Standing Army" (सजी सजाई सेना) भी यहाँ नहीं रक्खी जाती। यहाँ तो जब ज़रूरत पड़ती है तब लोग अपना घर बार छोड़ कर देश के झंडे के नीचे आ खड़े होते हैं। बारह बार प्रेसीडेंट लिङ्कन ने आदमी माँगे। माँगे २,७६३, ६७० आदमी थे; और आये २,७७२,४०८ आदमी! पाँच साल युद्ध हुआ; सात लाख के क़रीब आदमी दोनों ओर से बलिदान हो गये; अर्बों रुपये की जायदाद नष्ट हो गई। तब कहीं जाकर ग़ुलामी की प्रथा का अन्त हुआ। तीस लाख हब्शी ग़ुलामी से छूट गये और पिता लिङ्कन का गुण गाने लगे। महात्मा लिङ्कन का उद्देश पूरा हो गया और वे भी अपने देश की बीमारी दूर करके बलिदान हो गये।

अब हम एक आध उदाहरण देकर इस महा पुरुष का महत्त्व दर्शाते हैं। युद्ध के समय जब सिपाहियों को किसी अपराध के कारण "कोर्ट मार्शल" की सज़ा मिलती थी तब अफ़सर लोग नियमानुसार उन फ़ैसलों को प्रेसीडेंट के पास दस्तख़त के लिए भेजते थे। प्रेसीडेंट लिङ्कन हमेशा इस बात का यत्न करते थे कि कोई न कोई ऐसा नुक्ता मिल जाय जिससे अपराधी बच जाय। क्षमा और दया उनमें बेहद थी। फ़ौजी अफ़सर प्रेसीडेंट की इस दयालुता की सदा शिकायत किया करते थे। परन्तु महात्मा लिङ्कन कुछ ध्यान न देते थे। एक बार एक लड़के को (फ़ौज में बीस पचीस वर्ष के लड़के ही अधिक थे) मृत्यु-दण्ड की सज़ा मिली। उसका मुक़द्दमा प्रेसीडेंट के पास आया। लड़के का क़ुसूर यह था कि वह पहरे पर सो गया था। प्रेसीडेंट लिङ्कन ने उसको क्षमा कर दिया। अफ़सरों के कारण पूछने पर उन्होंने कहा:—"मैं इस ग़रीब लड़के की हत्या अपने सिर लेकर सदा के लिए अपराधी नहीं बनना चाहता। यह लड़का खेतों पर पला और रहा है। आश्चर्य नहीं कि जिसको शामही से सोने की आदत हो वह रात को पहरा देते समय भूल से सो जाय। इस अपराध के लिए मैं इसको गोली नहीं मार सकता।" फ़्रेडरिक्सबर्ग की लड़ाई में वह लड़का मारा गया। जब उसके मृत शरीर से कपड़े उतारे गये तब लोगों ने देखा कि वह अपने हृदय के ऊपर प्रेसीडेंट लिङ्कन की तसवीर रक्खे हुए है। तसवीर पर लिखा है,—"God bless President Abraham Lincoln!" परमेश्वर प्रेसीडेंट अब्राहम लिङ्कन का कल्याण करे।

एक और उदाहरण सुनिए। बोस्टन की रहने वाली एक विक्सबी नाम का मेम के पाँच लड़के थे। वे पाँचों ही युद्ध में मारे गये। इस पर प्रेसीडेंट लिङ्कन ने दुखी माता की सांत्वना के लिए यह पत्र लिखा:—

"प्यारी मेडम, युद्ध-विभाग के काग़ज़ों की जाँच पड़ताल करने से मुझे मालूम हुआ कि आपके पाँच पुत्र वीरता से लड़ते हुए देश के लिए मर गये। उनकी मृत्यु से जो कष्ट आपको हुआ उसको दूर करने का यत्न तो मेरी शक्ति में कहाँ परन्तु मैं इस प्रजा-सत्ताक-राज्य की ओर से, जिसकी रक्षा की ख़ातिर आपके पुत्रों ने प्राण दिये आपको धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको शान्ति दे और आपके मृत पुत्रों का पवित्र स्मारक लोगों के लिये आपको शान्तिदायक हो।

स्वतन्त्रता रूपी यज्ञ में जो शुद्ध बलि आपने दी है उसका गौरव आपको सांत्वना देनेवाला हो।

आपका
अब्राहम लिङ्कन।

इस चिट्ठी ने उस पुण्यशीला माता को कुछ शान्ति दी और उसका नाम सदा के लिए अमर हो गया। जब तक अमरीकन जाति रहेगी तब तक अमरीकन क़ौम का इतिहास बना रहेगा तब तक विक्सबी का नाम स्थायी रहेगा। यह चिट्ठी लिङ्कन की महनोयता का अच्छा परिचय देती है। यूनाइटेड स्टेटज़ का प्रेसीडेंट, भयङ्कर युद्ध का समय, ज़िम्मेदारी का काम! उस काम को करते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माताओं, भगनियों और स्त्रियों के दुख दूर करने के लिए पत्र लिखना, जिनके बन्धु युद्ध में मारे गये थे। यह वही कर सकता है जिसके प्रेम का दायरा बहुत बड़ा हो; जो दूसरों के दुख को अपना समझता हो।

इस महात्मा के चरित का दूसरा पहलू देखिए। वे रियासतें जिन्होंने १८६० में प्रेसीडेंट लिङ्कन के विरुद्ध युद्ध किया था आज उसका जन्मोत्सव मनाती हैं। क्यों? कारण यह है कि प्रेसीडेंट लिङ्कन को वासियों से द्वेष नहीं था। ज्योंही लड़ाई समाप्त हुई और युद्ध में प्रेसीडेंट लिङ्कन का दल जीत गया त्योंही इस महापुरुष ने परास्त दल को अपनाया, बहुत ही नरम शरतें करके उससे सन्धि कर ली और युद्ध का ख़ातमा कर दिया।

यही वे गुण हैं जिनके कारण लिङ्कन का शताब्दिक जन्मोत्सव इस धूम धाम से मनाया गया। केनटकी और इलोनाए रियासतों में उत्सव की तैयारियाँ कई महीने पहले से की गईं और लाखों रुपये ख़र्च किये गये। लकड़ी के जिस घर में लिङ्कन पैदा हुए थे उसको सुरक्षित रखने और उस स्थान पर यादगार बनाने के लिए सभायें बनाई गईं। मतलब यह कि अमरीकावालों ने अपनी जाति के भूषण का हर तरह से सत्कार किया है। अन्त में हम उस गीत की नक़ल देते हैं जो अमरीका का क़ौमी गीत है और जो लिङ्कन के जन्मोत्सव के दिन सभी जगह गाया गया था। वह गीत यह है:—

1.

My country! 'tis of thee,
Sweet land of liberty,
of thee I sing:
Land, where my fathers died,
Land of the pilgrims pride,
From every mountain side
Let freedom ring!

2.

My native country thee,
Land of the noble free,
Thy name I love:
I love thy rocks and rills,
They woods and templed hills;
My heart with rapture thrills
Light that above.

3.

Let music sweet the breeze,
And ring from all the trees
Sweet freedom's song:
Let mortal tongue awake,
Let all that breathe partake,
Let rocks their silence break,
The sound prolong.

4.

Our father's God! to thee,
Author of liberty,
To thee we sing:
Long may our land be bright
With freedom's holy light;
Protect us with thy might,
Great God, our King.

सत्यदेव-अमरीका।

पण्डित केशवराम भट्ट।

पण्डित केशवराम भट्ट का जन्म पटना ज़िले के बिहार नगर में संवत् १९११ की आश्विन कृष्ण पञ्चमी, बुधवार, को हुआ था। इनके पिता हरनाथ भट्ट ने इनके जन्म के छः महीने पहले ही वैशाख कृष्ण पञ्चमी को संसार से यात्रा कर दी थी। इस कारण इनके पालन-पोषण और शिक्षण का भार इनके बड़े भाई बाबू मदनमोहन भट्ट पर आ पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित केशवराम भट्ट महाराष्ट्र ब्राह्मण थे। इनका उपनाम पाठक था, परन्तु इस देश के लोग महाराष्ट्र ब्राह्मण मात्र को "भट्ट" कहते हैं। इसी कारण से इनके नाम के साथ "भट्ट" शब्द यहाँ तक प्रसिद्ध हुआ कि ये आप भी अपने नाम के साथ "भट्ट" लिखने लगे। इनके पिता केवल महाजनी पढ़े थे, पर उनकी बुद्धि तीव्र थी। अपने बुद्धिबल से उन्होंने अच्छी सम्पत्ति और प्रतिष्ठा-लाभ की थी।

पण्डित केशवराम की माता शिक्षिता थीं। उन्होंने अपने पुत्र को पूजा के बहुतेरे मन्त्र शैशवावस्था ही में पढ़ा दिये थे। पाँचवें वर्ष केशवराम गुरुजी के यहाँ बिठाये गये। महाजनी का हिसाब-किताब, बही-खाता, चिट्ठी-पत्री आदि बाबू मदनमोहन भट्ट ने उन्हें घर ही पर पढ़ाया। अच्छी हिन्दी लिखने और बोलने की आदत इन्हें इसी समय से पड़ी थी।

कोई सात वर्ष की उम्र में केशवराम मकतब में बिठाये गये। यहाँ ढाई तीन वर्ष पढ़ने के बाद वे अपने बड़े भाई के साथ कलकत्ते गये। वहाँ उन्होंने बाबू केशवचन्द्रसेन के "कलकत्ता-स्कूल" में नाम लिखवाया। मदनमोहन जी भी इन पर विशेष ध्यान रखते थे। पहले वे मुज़फ़्फ़रपुर के राय नंदीपंति की कलकत्ते वाली कोठी में गुमाश्तगीरी करते थे। यहाँ उन्हें पच्चीस रुपये मासिक वेतन मिलता था। पीछे राय लक्ष्मीपतिसिंह बहादुर ने उन्हें नब्बे रुपये मासिक वेतन पर पुरनिया ज़िले की अपनी ज़मींदारी का प्रबन्ध-कर्त्ता नियत किया। भाई के साथ केशवराम भी पुरनिया गये। यहाँ कोई छः महीने घर पर पढ़ कर उन्होंने ज़िला-स्कूल में नाम लिखवाया। केशवराम कोई दो ढाई वर्ष पुरनिया में रहे। बारवें बरस इनकी माता परलोक सिधारीं। इससे वे बिहार लौट आये। इनके लिए यह साल बड़ी ही विपत्ति का था। माता मरी, बड़ी बहन मरी और केशवराम स्वयं ज्वर से आक्रान्त हुए। इसी साल के चैत्र में इनकी छोटी बहन विधवा हो गई। इसके बाद आषाढ़ में कलकत्ते जाकर कालिजियेट स्कूल के सेकण्ड क्लास में भर्ती हुए, पीछे उन्होंने हेयर स्कूल में नाम लिखाया। यहाँ भी ये बहुत दिन तक न पढ़ सके। इसके बाद वे भागलपुर गये और वहाँ के स्कूल में भर्ती हुए।

१८७१ ईसवी में वे फिर बिहार लौट गये। यहाँ गाज़ीपुर के बाबू नन्दराम टोपला की लड़की से उनका विवाह हुआ। उधर बिहार के तत्कालीन सब डिविज़नल आफ़िसर ब्रौडली साहब ने विद्योत्साह से स्थानीय स्कूल की अच्छी दशा थी। स्कूल में एन्ट्रेन्स तक पढ़ाई हो गई थी। बाबू लालगोपाल सेन बी० ए० प्रथम हेडमास्टर होकर आये थे। ब्रौडली साहब के दबाव से पं० मदनमोहन भट्ट ने केशवराम को यहीं भर्ती करा दिया। १८७२ ई० में केशवराम ने प्रवेशिका परीक्षा दी और द्वितीय श्रेणी में पास हुए। इसके बाद पं० मदनमोहन ने केशवराम का नाम कलकत्ते के प्रेसीडेन्सी कालेज में लिखवा दिया। पर पं० केशवराम कलकत्ता छोड़ कर पटना चले आये। जिस समय पं० केशवराम कलकत्ते ही में थे उसी समय बिहारबन्धु नामक समाचारपत्र जारी किया गया। भट्ट जी के सहपाठी मुन्शी हसनअली नामक एक मुसलमान नवयुवक उसके सम्पादक हुए। पं० मदनमोहन जी भी इसमें लिखते थे। पं० केशवराम भी बहुत कुछ सहायता करते थे।

मुँशी हसनअली और पं० केशवराम १८७३ ईसवी के मार्च महीने में बाँकीपुर आये और पटना कालेज में भर्ती हुए। लिखने पढ़ने में अब उनका मन न लगता था। १८७४ में एफ़० ए० की परीक्षा दी, पर पास न हुए। दूसरे साल उन्होंने पढ़ना फिर आरम्भ किया। पर कुछ ही महीने बाद सदा के लिए इति श्री कर दी। इसी समय "विहारबन्धु" छापाख़ाना बाँकीपुर में क़ायम किया गया।

इसके कुछ काल बाद बिहार सर्किल के इन्स्पेक्टर क्रौफ्ट साहब की आज्ञानुसार पं० केशवराम ने पण्डित ईश्वरचन्द्र-विद्यासागर-कृत "बोधोदय" का हिन्दी में अनुवाद किया और उसका नाम "विद्या की नदी" रक्खा। यह पुस्तक पाठशालाओं में जारी की गई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८७५ ईसवी में "विहारबन्धु" का सम्पादकत्व पण्डित केशवराम के हाथ में आया। उसमें अधिकांश लेख इन्हीं के रहते थे। इसी साल बिहार-उपकार-सभा स्थापित की गई। इस सभा के कारण पटने के हिन्दू रईसों से इनकी भेंट हुई। विद्याविनोद नाम का मासिक पत्र भी पं० केशवराम और पं० बदरीनाथ तिवारी ने इसी साल निकाला।

इन दिनों नाटक के अभिनय का शौक़ पटना में बढ़ा हुआ था। बिहार-टाइम्स के जन्म-दाता और बिहार के प्रसिद्ध नेता बाबू गोविन्दचरण एम० ए० और डुमराँव राज्य के भूत-पूर्व दीवान बाबू शिवशरणलाल बी० ए० इनके मित्र थे। पण्डित दामोदर शास्त्री प्रेस में नौकर थे। इन लोगों के साथ अभिनय का अभ्यास हुआ करता था। दिसम्बर महीने में भट्टजी का रचित शमशाद सौसन का अभिनय हुआ। दर्शक मण्डली बहुत प्रसन्न हुई।

१८७७ ईसवी में अपने मित्र बाबू गोविन्दचरण और साधोराम के साथ पण्डित केशवराम ने बनारस प्रयाग, मिर्ज़ापुर, कानपुर, आगरा, जयपुर, दिल्ली, लखनऊ आदि अनेक नगरों की सैर की।

इसी साल के जुलाई महीने में स्थानापन्न डिप्टी इन्स्पेक्टर आव् स्कूल्स होकर भट्टजी दरभंगा गये। वहाँ से दिसम्बर में शाहाबाद आये। इसी समय रोहतासगढ़ की प्राचीन इमारतों के भी आपने दर्शन किये।

१८७८ ईसवी में वे कलकत्ते गये। वहाँ बिहार सर्किल के तत्कालीन इन्स्पेक्टर सुप्रसिद्ध भूदेव मुकर्जी के आज्ञानुसार उनके बनाये हुए "हिन्दुस्तान का पूरा इतिहास" नाम के बँगला-ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद किया। पाँच छः महीने कलकत्ते में रह कर वे बाँकीपुर लौट आये।

१८७९ ईसवी में भट्टजी पटना के माडेल स्कूल के स्थानापन्न हेडमास्टर मुक़र्रर हुए। इस पद पर वे एक बरस तक रहे।

इसके बाद आपका अधिकांश समय बिहार ही में व्यतीत हुआ। यहाँ आप स्थानीय हाई इँगलिश स्कूल के प्रधान संस्कृत-पण्डित थे। यहीं आपने हिन्दी-व्याकरण लिखा। यह पहले विहार-बन्धु में बहुत दिनों तक छपता रहा। इस पर जो जो सम्मतियाँ आईं उनके अनुसार कुछ फेर फार करके आपने इसे पुस्तकाकार प्रकाशित किया। यह १९०४ ईसवी की बात है। १९०५ में क्या हुआ सो विहार-बन्धु के ही वाक्यों में सुनिए :—"सन् १९०५ में विहार-बन्धु पर घोर विपद् आई। बाँकीपुर में उस समय प्लेग का ज़ोर हुआ जिसके कारण विहार-बन्धु की बहुत क्षति हुई। विहार-बन्धु प्रेस के अहाते में कितनेही लोगों की मृत्यु हुई। उस समय विहारबन्धु के अध्यक्ष पं० लक्ष्मीनाथजी भट्ट थे। उनकी भी मृत्यु हुई। उनकी मृत्यु हो जाने पर पं० केशवरामजी भट्ट पुनः "बन्धु" की दशा सँभालना चाहते थे। परन्तु हिन्दी और विहार प्रान्त के दुर्भाग्य के कारण वे भी प्लेग से पीड़ित होकर इस असार संसार से चल बसे!"

पं० केशवराम भट्ट की जीवनी क्या है मानों विहारबन्धु और बिहारप्रान्त में हिन्दी-प्रचार का इतिहास है। पं० केशवराम तथा पं० मदनमोहन भट्ट ने बहुत से ग्रन्थ लिख कर हिन्दी का कलेवर पुष्ट किया है। विहारबन्धु का मुख्य उद्देश बिहार में हिन्दी प्रचार करना था। सो ईश्वर की कृपा से तत्कालीन छोटे लाट सर रिबर टौम्सन ने पूर्ण कर दिया। उस कार्य्य में पं० केशवराम भट्ट ने कम उद्योग नहीं किया था।

आपका सज्जाद-सुम्बुल मुंशी स्टाइल हिन्दी का ख़ासा नाटक है। इसकी प्रशंसा वर्तमान हिन्दी के आचार्य्य भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी अपने नाटक-निबन्ध में की है। इसका अभिनय भट्टजी के समय में ही कई जगह हुआ था। अब भी हुआ करता है। इनका हिन्दी-व्याकरण अपने ढंग का एक ही है। क्रिया-भाग छोड़ कर अन्य विषय बड़ी ख़ूबी से लिखे गये हैं। उदाहरण में केवल खड़ी बोली के शब्द और वाक्य दिये गये हैं। भट्ट जी अँगरेज़ी, संस्कृत और हिन्दी तो पूर्ण रूप से जानते ही थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनका हिन्दी-व्याकरण पढ़ने से इनकी फ़ारसी और उर्दू की अभिज्ञता भी सूचित होती है।

इनका स्वभाव सादा और मिलनसार था। ये खुले दिल के मनुष्य थे। अपना दोष भी प्रकाशित करने में न हिचकते थे।

इस जीवनी के लिखने में मुझे भट्ट जी के आत्म-चरित से बहुत सहायता मिली है। एतदर्थ उनके प्रिय पुत्र पं० कैलाशभट्ट का मैं अनुगृहीत हूँ।

युगलकिशोर अखौरी।

वैदिक कोश।

वेदों की भाषा बहुत प्राचीन होने के कारण अत्यन्त जटिल और दुरूह है। उसका व्याकरण ही जुदा है। जिन्होंने उसे अच्छी तरह पढ़ा है और जी लगा कर वेदों का अध्ययन और मनन किया है वही, बिना भाष्य की सहायता के, वैदिक मन्त्रों और गाथाओं का अर्थ समझने और समझाने में समर्थ हो सकते हैं। वैदिक शब्दों और पदों का यथार्थ अर्थ जानने में बड़े बड़े धुरंधर पण्डितों तक की बुद्धि चक्कर खाने लगती है। इस कठिनाई के होते भी वेदों का मतलब समझने की बड़ी आवश्यकता है। इस आवश्यकता को पूर्ण करने का आज तक कोई उत्तम साधन नहीं। कोई पुस्तक आज तक ऐसी नहीं बनी जिसकी सहायता से थोड़ा पढ़े लिखे लोग भी वैदिक शब्दों का अर्थ जान सकें। बड़े बड़े पुरातत्त्ववेत्ताओं और भाषा-शास्त्र-विशारदों में बहुधा विवाद हुआ करता है कि अमुक वैदिक शब्द का यह नहीं, यह अर्थ है; अमुक शब्द वेदों में इतनी दफ़े अमुक अर्थ में आया है; अमुक शब्द अमुक भाष्यकार या निघण्टुकार ने अमुक अर्थ का बोधक माना है। इस तरह के विवादों में बहुत समय नष्ट जाता है और बहुत परिश्रम भी पड़ता है। इससे बचने का एक मात्र उपाय यह है कि वैदिक शब्दों का एक बृहत्कोश तैयार किया जाय और उसमें सारे वैदिक शब्दों और पदों का संहार्य अर्थ लिख कर भिन्न भिन्न भाष्यकारों के किये हुए अर्थों का भी निदर्शन किया जाय। इससे वेदाध्ययन में बहुत सहायता हो सकती है और अनेक दुरधिगम्य बातों का बोध भी हो सकता है।

ख़ुशी की बात है, श्रीस्वामी विश्वेश्वरानन्द और नित्यानन्द जी ने इस आयास-साध्य और विद्वत्तासापेक्ष काम को हाथ में लिया है। इस कार्य के महत्त्व को अच्छी तरह समझ कर महाराजा गायकवाड़ ने पूर्वोक्त स्वामिद्वय का सहायक होना स्वीकार किया है। कोश का काम आरम्भ हो गया है। इस कोशके निर्म्माण में नीचे लिखी हुई प्रणाली से काम लिया जायगा :—

(१) वेद रूपी समुद्र को मथ कर आख्यात, नाम, उपसर्ग, निपात आदि सारे शब्द रूपी रत्न अकारादि क्रम से एकत्र किये जायँगे। साथ ही उनकी व्याकरण-सम्मत उपपत्ति भी दी जायगा।

(२) वैदिक व्याकरण के अनुसार प्रत्येक शब्द का अर्थ सरल संस्कृत में देकर यथासम्भव वैदिक वाक्यावतरण द्वारा उसका स्पष्टीकरण भी किया जायगा।

(३) भारतवर्ष, योरप, अमेरिका और अन्यान्य देशों के विद्वानों ने वैदिक शब्दों के जो जो अर्थ किये हैं उन सबका भी उल्लेख रहेगा।

(४) भिन्न भिन्न धर्म्मावलम्बियों और भिन्न भिन्न सम्प्रदायवालों ने जो अर्थ किये हैं उन अर्थों का भी निदर्शन होगा।

(५) भिन्न भिन्न अर्थों की योग्यता अर्थात् अयोग्यता का तारतम्य दिखलाकर जिस अर्थ की पोषकता वैदिक निघण्टु, उपनिषद् और ब्राह्मण आदि ग्रन्थों से होती होगी वही अर्थ ठीक समझा जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संख्या ५]

(६) इसके सिवा धार्म्मिक, सामाजिक, तथा ऐतिहासिक दृष्टि से शब्दों का जो अर्थ हो सकता होगा उसका भी उल्लेख किया जायगा।

मतलब यह कि कोश को सब प्रकार उपयोगी और ग्राह्य बनाने में कोई बात उठा न रक्खी जायगी। यह बहुत बड़ा काम है; बड़े पुण्य का काम है; बड़े परिश्रम, अध्यवसाय और विद्वत्त्व का काम है। इसलिए निम्नलिखित स्वामियुगल को इस सदनुष्ठान के लिए धन्यवाद—"शतशोथ सहस्रशः।"

इस वैदिक कोश की अभी सिर्फ़ अनुक्रमणिका प्रकाशित हुई है। इसमें चारों वेदों के पदों की—सविभक्तिक शब्दों की—अकारक्रम से सूची दी गई है। प्रत्येक वेद के पदों की सूची अलग अलग पुस्तकाकार छपी है। कुल पुस्तक चार जिल्दों में है। पृष्ठसंख्या सब की कोई एक हज़ार है। पुस्तक मोटे काग़ज़ पर छपी है। छपाई बंबई के निर्णय-सागर प्रेस की है और बहुत अच्छी है। पुस्तक बड़े साँचे की है। प्रत्येक पृष्ठ में तीन तीन कालम हैं।

इस अनुक्रमणिका में आपको वेदों के सारे शब्द मिलेंगे। जो शब्द आप चाहें निकाल लीजिए। परन्तु इस सूची के प्रकाशन का केवल यही उद्देश न समझिए। शब्दों को क्रम से लिखने के सिवा एक और बहुत बड़ी बात इसके निर्माताओं ने की है। उन्होंने प्रत्येक शब्द के आगे मण्डल, अध्याय, सूक्त, प्रपाठक आदि के और मन्त्र-निदर्शक अङ्क देकर यह भी बतलाया है कि अमुक शब्द कहाँ कहाँ पर प्रयुक्त हुआ है। उदाहरण के लिए "देवाः" शब्द को लीजिए। यह शब्द ऋग्वेद में कोई सौ जगह आया है। आपको इन सारी जगहों का हवाला इस शब्द के आगे मिलेगा। आप उन स्थलों को देख कर जान लीजिए कि उसका कहाँ पर क्या अर्थ है। अथवा किस भाष्यकार ने किस स्थल पर उसे किस अर्थ का द्योतक माना है। यह बड़े महत्त्व की बात है। इससे वैदिक पण्डितों को बेहद लाभ हो सकता है। वे लोग अब तक महीनों मेहनत करके यह जानने के लिए वेदों के पृष्ठ उलटा करते थे कि अमुक शब्द अमुक वेद में कितनी दफ़े आया है और किस किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। उनकी वह मेहनत अब सर्वथा बच गई समझिए। हाँ एक बात लिखना हम भूल गये। वह यह कि प्रसिद्ध संस्कृत-विद्वान् मैक्समूलर की बनाई हुई वैदिक शब्दों की एक सूची बहुत पहले से विद्यमान है। उसे इस वैदिक-पद-सूची के निर्माताओं ने शायद नहीं देखा। क्योंकि देखते तो उसका उल्लेख वे अपनी भूमिका में अवश्य करते।

इतनी उपयोगी और इतने महत्त्व की इस सम्पूर्ण पुस्तक का मूल्य सिर्फ़ १०) रुपये रक्खा गया है। पुस्तक बंबई के गिरगाँव-आर्य्यसमाज से मिल सकती है। आशा है सरस्वती के विद्याव्यसनी और अर्थ-समर्थ पाठक इसे मँगाकर ज़रूर लाभ उठावेंगे और एतद्द्वारा इस अनुपम वैदिक कोश के भावी खण्डों के प्रकाशन में सहायता करेंगे।

स्वामी विश्वेश्वरानन्द और नित्यानन्द जी से हमारा एक उपालम्भ है। उन्होंने इस अनुक्रमणिका का जो विज्ञापन अँगरेज़ी और हिन्दी में छपाकर प्रकाशित किया है उसके हिन्दी वाले भाग में आप लिखते हैं:—

"किन्तु किस किस शब्द का क्या क्या अर्थ है और सायण, महीधर, उव्वट और श्रीस्वामी दयानन्दजी आदि भाष्यकारों ने इन शब्दों के क्या क्या अर्थ किये हैं यह पता भी, इन शब्दों के भाष्यद्वारा उसी समय लग जाता है"।

इसमें उन्हों ने स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के नाम के पहले तो "श्री" और "स्वामी" ये दो आदरार्थक शब्द दिये हैं। पर अन्य प्राचीन भाष्यकारों के नाम के पहले ऐसा नहीं किया। यद्यपि स्वामियुग्म के ऐसा न करने से भी उन भाष्यकारों का गौरव किसी तरह कम नहीं हो सकता; तथापि, हमारी क्षुद्र बुद्धि में, विद्वानों के द्वारा इस तरह के भेद-भाव का होना खटकता है। इससे एक प्रकार का पक्षपात सूचित होता है, क्योंकि आप आर्य्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज के मेम्बर हैं। यदि स्वामीजी "श्री" के अधिकारी समझे गये थे तो सायण आदिने ही क्या अपराध किया था? उनके भाष्यों से तो स्वयं स्वामी दयानन्द सरस्वती जी को भी बहुत नहीं तो थोड़ी सहायता ज़रूरही मिली होगी। सम्भव है, इस त्रुटि का कारण असावधानता हो, जान बूझ कर न की गई हो। आशा है भिन्न भिन्न भाष्यकारों के किये हुए अर्थ का तारतम्य दिखलाने और वैदिक शब्दों का यथार्थ अर्थ ढूँढ निकालने में इस तरह का कोई पक्षपात न किया जायगा।

सात सुनार*।

किसी शहर में सात सुनार रहते थे, जिनमें आपस में बड़ी मित्रता थी, और जो अपने काम में बड़े दक्ष थे। सातों में यह बात निश्चित हुई कि चलो कहीं रुपया पैदा करें। एक दिन वे अपने घर से चल निकले और बड़े बड़े घने जंगलों में होते हुए एक गाँव के सरदार के यहाँ पहुँचे। सरदार ने आगत स्वागत के बाद उनसे कहा कि मेरी स्त्री के लिए कुछ गहने दरकार हैं, बना दीजिए। जब वे लोग इस बात पर राज़ी हो गये तब सरदार उनको एक कमरे में ले गया जहाँ गहना बनाने का सब सामान मौजूद था। पहले तो सुनार इस सरदार की भयानक आकृति देखकर बहुत डरे और चाहा कि इसके यहाँ काम न करें, परन्तु सरदार ने इनको अपने चँगुल से न निकलने दिया। उसने सुनारों को बहुत कुछ इनाम देने का वादा किया। "लालच बुरी बला होती है"। ये लोग भी मान गये और काम शुरू कर दिया। रात को सरदार ने इन्हें सोने के लिए एक कमरा बतलाया। कमरा बहुत छोटा था। उसमें एक चारपाई पड़ी हुई थी और एक कोने में एक बकरी बँधी हुई थी। सरदार ने कहा कि यह कमरा तुम सबके सोने के लिए है और यह बकरी दूध पीने के लिए। खाने के लिए तुम लोगों को कुछ न मिलेगा। केवल इस बकरा का दूध ही तुम सब के लिए काफ़ी होगा। परन्तु याद रक्खो कि सब काम सात दिन में हो जाय। सुनारों को यह सुनकर बड़ा डर लगा। परन्तु क्या करें, रुपये की लालच!

सरदार साहब तो चले गये। इधर इन लोगों ने बकरी को दुह कर दूध पिया तो सब छक गये। सोने का वक्त आया तो चारपाई एक, और सोने वाले सात। ख़ैर छः तो चारपाई पर जैसे तैसे लेट गये; एक उनमें से ज़मीन पर लेटा। जब आधी रात हुई तब ज़मीन पर सोये हुए आदमी का पैर बकरी चाटने लगी। धीरे धीरे उस बेचारे का सब ख़ून चूस गई और वह मर गया। इतने में सरदार आया। उसने बकरी से पूछा—"बहन क्या तेरा पेट भर गया"? बकरी ने कहा—"हाँ ख़ूब"। इसके बाद रात ही रात उस आदमी की लाश बाहर फिकवा दी गई।

जब प्रातःकाल हुआ तब सुनार बेचारे उठकर क्या देखते हैं कि उनमें से सात के छः ही रह गये। उन्होंने सातवें को बहुत ढूँढा; परन्तु कुछ पता न चला। आख़िर रो पीट कर वे बैठ रहे और फिर अपना काम आरम्भ कर दिया। काम पूरा होने में अब छः ही दिन रह गये और आदमी भी एक कम हो गया। इससे जान तोड़कर वे परिश्रम करने लगे। जब शाम हुई तब उन्होंने फिर उस बकरी का दूध पिया। दिन भर के थके तो थे ही, नींद आने लगी। आज उन्हें यह आशा थी कि छःहीं मिलकर एक ही चारपाई पर सोवेंगे। पर जब वे चारपाई पर लेटे तब उस पर पाँचही आदमी आसके। ख़ैर फिर एक ज़मीन पर सोया। जब आधी रात हुई तब फिर वही तमाशा हुआ। ज़मीन पर सोये हुए का ख़ून चूसकर बकरी ने उसका काम तमाम कर दिया। सबेरे छः के पाँचही सुनार रह गये। अब वे बड़

* "फोक टेल्स आव् हिन्दुस्तान" की एक कहानी का भावार्थ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठायें, परन्तु करें क्या ? फिर रो पीट कर काम आरम्भ करना पड़ा ! फिर रात को वही बात हुई। होते होते केवल दो सुनार शेष रह गये। उन दोनों में यह सलाह हुई कि आज रात को दोनों आदमी चोटी बाँधकर सोवेंगे, जिसमें यदि कोई एक को उठावे तो दूसरे को मालूम हो जाय। पर बिस्तर पर एक ही के लिए जगह रही। इससे एक ज़मीन पर सोया और चोटी से रूमाल बाँधकर उसका दूसरा छोर अपने साथी की चोटी से बाँध दिया। जब बकरी नीचे वाले का ख़ून चूस चुकी और उसे पलीटा तब चारपाई वाले के सिर में झटका लगा और वह जाग उठा। देखता क्या है कि वह बकरी नहीं, एक राक्षसी है। यह देखकर सुनार वहाँ से जान बचाकर भागा।

इधर राक्षसी बकरी का रूप बदल कर एक सुन्दरी स्त्री हो गई। वह उसके पीछे पीछे दौड़ी और आर्त्तनाद से चिल्लाने लगी—"हे प्राणनाथ! हे स्वामिन्! तुम मुझ निरपराधिनी दासी को छोड़कर कहाँ भागे जा रहे हो ? मुझको भी अपने साथ लेते चलो"। परन्तु सुनार किसकी सुनता है। वह समझ गया कि यह वही राक्षसी है जिसने मेरे छः साथियों के प्राण लिये हैं। वह और भी अधिक वेग से भागने लगा। रास्ते में एक बहुत ऊँचा बरगद का वृक्ष दिखलाई पड़ा। वह जल्दी से उसकी सब से ऊँची डाली पर बैठ गया और चिल्ला चिल्ला कर कहने लगा—"हे ईश्वर! हे दयानिधे! मुझ पर कृपा कीजिए। हे शिव! आपही के तो अधिकार में सब भूत पिशाच हैं। आप मुझको बचाइए"। इतने में वह स्त्रीरूपिणी राक्षसी उस वृक्ष के पास आई और सुनार को सबसे ऊँची डाली पर बैठा देखा तब उसने ऊपर चढ़ने की बहुत कोशिश की; परन्तु चढ़ न सकी। लाचार होकर नीचे ही बैठ गई और चिल्ला चिल्ला कर रोती हुई कहने लगी—"हे स्वामिन्! आपने मुझे क्यों छोड़ दिया ? अरे इतने में ही हो गये! अरे निर्दयी कुछ तो मेरे ऊपर दया कर। मैं इस ऊँचे वृक्ष पर नहीं चढ़ सकती हूँ। आइए उतर आइए।" इस तरह वह बहुत देर तक रोती रही। वह बार बार छाती पीटती जाती थी और प्रति क्षण अपने स्वर को उच्चही करती जाती थी।

दैवयोग से एक राजपुत्र उस वनमें शिकार खेलने आया था। वह इस युवती की आवाज़ सुनकर उस वृक्ष के पास आया और उससे उसके रोने और विलाप करने का कारण पूँछा। उसने उत्तर दिया कि जो पुरुष इस वृक्ष की डाली पर बैठा है, मेरा पति है और मुझको छोड़कर कहीं भागना चाहता है। इस पर राजकुमार ने सुनार से कहा—"अरे दुष्ट, क्यों इस रूपवती, नवयौवना स्त्री को छोड़ना चाहता है ? आ, उतर आ और इसको अपने घर ले जाकर सुख से जीवन व्यतीत कर"। यह सुनकर बेचारा सुनार सच कहने से बहुत हिचकिचाया। क्योंकि वह समझता था कि यदि मैं सब बात सच सच भी कह दूँगा तो भी राजपुत्र उसका विश्वास न करेगा। इससे वह बोला—"महाराज आपही इसको ले लीजिए; मेरी यह कोई नहीं है"। यह सुनकर राजकुमार बहुत प्रसन्न हुआ। वह सुनार से बोला—"नेकी और पूछ पूछ। परन्तु एक बात यह है कि मैं राजा हूँ। प्रजा की कोई वस्तु बिना उसका मूल्य दिये नहीं ग्रहण कर सकता। ये लेा दो लाख रुपये नीचे आकर गिनलेा"। सुनार बोला—"महाराज नीचे गिनकर रख दोजिए; मैं उतर कर ले लूँगा। मेरी प्रतिज्ञा है कि जब तक यह स्त्री मेरे सामने से न हट जायगी तब तक नीचे न उतरूँगा"। राजकुमार ने रुपये नीचे रख दिये और उस स्त्री को आठ घोड़ों की एक गाड़ी में बिठाकर अपने घर ले गया और बड़ी धूम धाम के साथ अपना विवाह उसके साथ किया।

उस राजा के पास एक कुत्ता और एक घोड़ा था। उसके एक पुत्र भी था। इन तीनों को वह अपनी जान से भी अधिक प्यार करता था। पहली ही रातको इस राक्षसी ने राजा के घोड़े को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खा लिया और हड्डियाँ राजा की दूसरी रानी के घर में फेंक दीं। प्रातःकाल जब राजा उठा और अपने प्यारे घोड़े को अस्तबल में न देखा तब बहुत व्याकुल हुआ। इसी समय वह अपनी नई रानी के घर आया और बड़े नम्रभाव से कहा—"हे प्रिये! आज मेरी एक प्राण से भी अधिक प्यारी वस्तु खो गई है"। राक्षसी ने कहा, रानियों के कमरों में ढुँढवाइए; कदाचित् वहाँ न चली गई हो"। इस राजा के सात रानियाँ थीं। वह सातों के यहाँ गया। एक के घर उस घोड़े की हड्डियाँ पड़ी मिल गईं। यह देखकर वह अपनी रानियों पर बहुत क्रोधित हुआ। ख़ैर जैसे तैसे उनके प्राण तो नहीं लिये; परन्तु उन बेचारियों की उसने बड़ी दुर्गति की।

दूसरे दिन राजा ने देखा कि उसका कुत्ता नहीं मिलता। तीसरे दिन उसका पुत्र भी ग़ायब हो गया। तब वह बहुत घबराया। साथही साथ अपनी रानियों पर बेहद कुपित हुआ; क्योंकि उन्हीं के घरों में उसके कुत्ते और पुत्र की भी हड्डियाँ पड़ी मिलीं। राजा ने आज्ञा दी कि सब फाँसी पर चढ़ा दी जायँ। उसके मंत्री ने बहुत समझाया बुझाया और कहा कि सब रानियाँ गर्भवती हैं। ऐसी दशा में इनको प्राण-दण्ड देने से बड़ा पाप होगा। इस पर राजाने अपनी आज्ञा बदल दी और कहा कि अच्छा एक अन्धे कुएँ में ये सब डलवा दी जाँय और भोजन इत्यादि कुछ न दिया जाय।

बेचारी रानियाँ अपने अपने अभाग्य को दोष देती हुईं उस कुएँ में रहने लगीं। भूखों के मारे वे एक दूसरे को खा गई होतीं, परन्तु भगवान् की कृपा से बड़ी रानी के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इससे सब में यह सलाह ठहरी कि इस पुत्र के सात टुकड़े किये जायँ और एक एक टुकड़ा खाकर सब अपनी अपनी प्राणरक्षा करें। अन्त को सबने यही किया। प्राण बड़ी प्यारी वस्तु है। परन्तु ६, ७ दिन बाद फिर वही हाल। अब दूसरी रानी के भी एक पुत्र हुआ और उसकी भी वही दशा हुई। इस तरह एक के बाद दूसरी के पुत्र उत्पन्न हुए और सब टुकड़े करके खा लिये गये। जब सातवीं के पुत्र हुआ तब और रानियों ने उससे कहा कि इसके टुकड़े करके हम सब का पेट भरो। इस पर रानी ने कहा—"ये लो, बहनो, ये छः टुकड़े जो तुम मुझको दिये थे, रक्खे हैं। मैं अपने पुत्रको नहीं मारूँगी। इनको खाओ और अपना अपना पेट भरो"। रानी का यह कहना था कि एक मनुष्य उस कुएँ पर आया। उसने कहा—"बेटी मुझको तुम्हारी दुर्दशा पर बड़ा शोक है। मैंने तुमको बहुत ढूँढा परन्तु तुम्हारा कहीं पता न मिला। आज से तुमको आठ थाल भोजन प्रति दिन मिला करेगा सात तुम सब रानियों के लिए और एक तुम्हारे पुत्र के लिए"। यह कहकर वह चला गया।

उस दिन से उन्हें प्रति दिन आठ थाल मिलने लगे जिनको वे सब आपस में बाँट लेती थीं। इस भोजन का यह फल हुआ, कि वह पुत्र साल भर में इतना बड़ा हो गया जितना कि और लड़के बीस वर्ष में होते हैं।

उस बालक ने एक दिन अपनी माता से कहा "हे माता, मेरे बाप, दादा कोई हैं या नहीं यदि हैं तो कहाँ हैं।" रानी यह सुन कर बहुत रोई और कहा "पुत्र, तुम्हारे कोई नहीं। हाँ तुम्हारे एक नाना हैं जो इस शहर से कुछ दूर पर रहते हैं वे बढ़ई का काम करते हैं और वही हम सबको भोजन देते हैं।" बालक ने कहा—"माता, मुझे बाहर जाने की आज्ञा दीजिए। मैं आपके निकालने की कोशिश करूँगा।" माता ने उसे बहुत रोका परन्तु उसके दिल में तो जाने की ठन गई था। कब मानने वाला था? उसने माँ की आज्ञा लेही और घर के बाहर नाना को ढूँढने के लिए निकला। माता के कहे हुए मार्ग से चलकर उसने अपने नाना के घर को ढूँढ़ लिया। घर जाकर वह नाना से मिला और बोला—"नानाजी, मैं आपकी सेवा के लिए आया हूँ।"

बुड्ढा आदमी अपने नाती को देख कर प्रसन्न हुआ और पूछा कि तुम क्या चाहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लड़के ने कहा कि मुझे एक लकड़ी के ऐसे घोड़े की ज़रूरत है जो हवा में उड़ सके और जो मैं कहूँ करे। बुड्ढे ने कहा कि अच्छा थोड़े दिन ठहर जाओ, मैं तुम्हें ऐसा घोड़ा बना दूँगा। उसने एक सप्ताह में लकड़ी का घोड़ा बनाकर उस राजपुत्र को दे दिया।

इस घोड़े पर सवार होकर वह राजा के पास गया और नौकरी करने की इच्छा प्रकट की। राजा ने यह न जाना कि यह मेराही पुत्र है। उसने उसे नौकर रख लिया और अपने सेना-विभाग का कप्तान बनाकर अपनी नई रानी के महल में पहरा देने के लिए नियत कर दिया। राजपुत्र अपने काठ के घोड़े पर सवार होकर महल के चारों ओर पहरा देने लगा।

इसके नियत होने की सूचना घर के अन्दर भी पहुँची और उस राक्षसी रानी ने इसको खिड़की से झाँक कर देखा। उसने एक नज़र डालतेही जान लिया कि हो न हो यह इसी राजा का पुत्र है। कदाचित् यह उन रानियों में से किसी का पुत्र हो जिनको राजा ने कुँए में डलवा दिया है। तब उसने माया रची। रात को उस दुष्टा रानी ने अपने सब गहने और वस्त्र उतार डाले और फटे पुराने कपड़े पहन कर क्रोध-भवन में जाकर सो रही। यथासमय राजा उसके पास आया और उससे पूँछा कि क्यों, क्या है? उसने उत्तर दिया कि मैं आपसे नहीं बोलना चाहती। यह कह कर रानी बिलख बिलख कर विलाप करने लगी। राजा उसके चरणों पर गिर पड़ा और नाराज़गी का कारण बतलाने के लिए आग्रह करने लगा। तब रानी ने कहा—मुझे अपने पिता की ख़बर बहुत दिनों से नहीं मिली। किसी आदमी को भेज कर तुरन्त उनकी ख़बर मँगालो। और जो वानस्पति चावल स्वयं पक जाता है और जिसका पौधा चालीस गज़ ऊँचा होता है वह भी मेरे वास्ते मँगवा दो। बेहतर होगा कि आप इस नये कप्तान को इस काम के लिए भेजें। यदि आप मेरा प्यार करते हैं तो अभी मेरी इच्छा पूर्ण कराइए।" राजा ने कहा—यह कौन सी बड़ी बात है। अभी इसको भेजता हूँ। कप्तान फ़ौरन बुलाया गया और सब काम समझाकर उसी समय उसे जाने की आज्ञा दी गई।

राजपुत्र चल दिया और राक्षसों के नगर की ओर घोड़ा दौड़ाया। वह महीनों चला गया। चलते चलते वह एक घने जंगल में पहुँचा। वहाँ घोड़े से उतर कर पैदल चलने लगा। कुछ दूर जाने पर उसे एक भयंकर सिंह मिला। वह पहले तो बहुत डरा; परन्तु धीरज धर कर बोला—"मामाजी राम राम"। सिंह ने समझा था कि आज ख़ूब शिकार हाथ लगा, परन्तु जब उसने जाना कि यह मेरा भानजा है तब प्रसन्नतापूर्वक उसका स्वागत किया। उसने कहा—"आओ भानजे, अपनी मामी से तो मिल लो।" राजपुत्र सिंहिनी के पास गया। वहाँ भी उसका ख़ूब सम्मान हुआ। और भी बहुत से हिंस्र जीव उसे उस जंगल में मिले; परन्तु उन सबको उसने नम्रता से अपने वश में कर लिया।

जब वह उस वन से बाहर हुआ तब उसने एक योगी की कुटी देखी। योगी ध्यानावस्थित थे। इससे वह बड़ी देर हाथ जोड़े खड़ा रहा। जब योगिराज ने आँख खोली तब वह उनके चरणों पर गिर पड़ा। उसने प्रार्थना की कि कृपानिधान! मेरी सहायता कीजिए। मुझे बतलाइए कि वानस्पतिक चावल कहाँ मिलेगा और मेरी रानी के माता पिता कहाँ रहते हैं। यह चिट्ठी देख कर आप कृपा करके यह बतलाइए कि इस पर किसका नाम लिखा है। योगी ने कहा—"हे राजपुत्र, आज यहीं ठहर जा, कल हम तुझे सब बातें बतला देंगे।"

राजपुत्र रात भर वहाँ एक चटाई पर सोया किया। जब उस योगी ने देखा कि वह थक कर सो गया है तब उसने उस चिट्ठी को धूनी की आग जला कर पढ़ा। उसमें लिखा था—"प्रिय भाई, इस पत्र के लानेवाले को देखतेही मार डालिएगा।" योगी ने उस चिट्ठी को फाड़ कर एक वैसी ही और चिट्ठी में लिख दिया कि—"प्रिय भाई! इस चिट्ठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का लानेवाला मेरा लड़का और तुम्हारा भानजा है। इसे बड़े आराम से रखना और सारे घर की सैर करा देना।" यह लिख कर योगी ने उस चिट्ठी को फिर राजपुत्र के थैले में रख दिया। प्रातःकाल होते ही योगी ने उसे राक्षसों के नगर का रास्ता बतला दिया और कहा कि यदि तुम अपने काम में सफल-मनोरथ हो तो कोई भी चीज़ वहाँ न छोड़ आना। सब लेते आना। राजपुत्र ने योगी को धन्यवाद दिया और प्रणाम करके फिर रवाना हुआ।

बड़ी मुसीबतें झेल कर वह राक्षसों के नगर में पहुँचा। यह वही नगर है जहाँ वह राक्षस सरदार के भेष में रहा करता था और जिसने सुनारों को गहना बनवाने के लिए रक्खा था। उनके मकान पर पहुँच कर राजपुत्र ने रानी की चिट्ठी दी, जिसे पढ़ कर सब राक्षस बड़े प्रसन्न हुए। उसका उन्होंने बड़ा आदर-सम्मान किया और भानजा समझ कर गले से लगाया। इसके बाद उस राक्षसराज ने राजपुत्र को अपनी माता पिशाचिनी के पास ले जाकर सौंप दिया। बहुत हँसी ख़ुशी से वह वहाँ रहने लगा। परन्तु दिलही दिल में वह सोचता था कि जिस काम के लिए मैं आया हूँ वह भी तो किसी प्रकार होना चाहिए। इससे एक दिन उसने पूछा—"ऐ नानी! मुझे अपने इस क़िले की भी तो कुछ चित्रकारी दिखला दो। मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुम्हारी मृत्यु और जीवन किस वस्तु में है? नानी मुझे आप लोगों से बड़ी प्रीति हो गई है।" तब राक्षसी ने कहा—"बेटा, हम लोगों का जीवन और मृत्यु आदि जादू से है। हम लोग दानव हैं। किसी के मारे नहीं मर सकते हैं।"

इसके बाद राक्षसी उसे एक कमरे में ले गई जहाँ बहुत से तोतों, मोरों, कबूतरों, गिलहरियों, लवों आदि के पिँजरे लटके हुए थे। राक्षसी ने कहा—यही पक्षिशाला हमारी जान है। जब तक ये पक्षी जीवित हैं तब तक हम भी जीवित हैं। जब ये मरेंगे तब हम भी मर जायँगे। पर इनको कोई मार नहीं सकता। क्योंकि ये यहाँ बड़ी होशियारी से रक्खे जाते हैं। इन्हें कोई देखने तक नहीं पाता। यह द्रोण काक मेरी जान है, यह काला काक तुम्हारे मामा की जान है और यह मुरग़ी तुम्हारी माता की जान है। तब राजपुत्र ने पूछा—"नानी वानस्पति वृक्ष कहाँ है"? यह सुनकर राक्षसी उसको दूसरे कमरे में ले गई। वहाँ उसने एक बाग़ दिखलाया जिसमें वह वृक्ष लगा हुआ था। राजपुत्र ने उस राक्षसी को बहुत धन्यवाद दिया। उसने वह भी कमरा देखा जिनमें खाये हुए मनुष्यों की हड्डियाँ पड़ी हुई थीं। एक दिन वह राक्षस और राक्षसी किसी के विवाह में बाहर गये। राजपुत्र मौक़ा पा कर उस घर में घुस गया और एक एक करके सब चिड़ियों को मार डाला। केवल मुर्ग़ी की जान उसने बचा दी, क्योंकि वह राजा की रानी की जान थी। पक्षियों की लाशों से सब घर भर गया। यह सब करके राजपुत्र वानस्पति का वृक्ष लेकर और सब हड्डियों को एकत्र करके योगी का कुआँ की ओर चल दिया। वहाँ सब चीज़ें उसने सामने उसने रख दीं। योगी ने हड्डियों पर एक ओषधि डाली। डालतेही सब आदमी जी उठे। उनमें वे छः सुनार भी थे जिनको कि वह बड़ी राक्षसी खा गई थी। इन सुनारों ने इस योगी को पहचान लिया। यह वही सातवाँ आदमी था जो वृक्ष पर चढ़ गया था।

इस योगी सुनार ने सब भेद बतलाया और कहा कि मैंने बड़ी तपस्या इस लिए की कि मेरे मित्र किसी प्रकार मिल जायँ। आज उसका फल मैंने पाया। फिर उसने राजपुत्र से कहा कि तुम उसी राजा के लड़के हो जिसके कार्य्य के लिए तुम गये थे। चलो अब हम सब मिलकर राजा के यहाँ चलें। राजपुत्र ने और सब आदमियों को छोड़ दिया। केवल उन सात सुनारों को और मुर्ग़ी और वानस्पति के वृक्ष को लेकर राजा के यहाँ पहुँचा। वहाँ सबने जादूगरों का वेश बनाया। राजा के यहाँ जाकर उन्होंने ख़बर कराई कि राक्षसों का जादूगर आया है। वह अपना तमा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखलाना चाहता है। राजा उनका तमाशा देखने के लिये आये। राजपुत्र ने तमाशा आरम्भ किया। उसने सब पक्षियों और जानवरों को छोड़ दिया और अपनी बीन बजाकर सबको नचाना शुरू किया। फिर उसने वानस्पति का वृक्ष लगाया। वह देखतेही देखते बढ़ गया और पका पकाया भात उससे गिरने लगा। जादूगर ने सब मनुष्यों को वह भात खिलाया। लोगों ने कहा कि उन्होंने कभी वैसा मीठा चावल नहीं खाया था। यह तमाशा सात दिन तक होता रहा। सात दिन बाद राजपुत्र ने कहा कि आज हम अपना आख़िरी खेल दिखाते हैं। उसने वह मुर्ग़ी निकाली और नचाना शुरू किया। ज्योंही वह मुर्ग़ी नाची त्योंही राजा की वह रानी भी घर से बाहर निकल आई और उसके साथ नाचने लगी। राजा को यह देख कर बड़ा आश्चर्य्य हुआ। परन्तु इतनी भीड़ में वह चुपचाप बैठा रहा। थोड़ी देर यों नाचने के बाद राजपुत्र ने मुर्ग़ी की एक टाँग तोड़ डाली। टाँग का तोड़ना था कि रानी की भी एक टाँग टूट गई। तब भी वह मुर्ग़ी नाचती ही रही और साथ ही साथ रानी भी नाचती रही। इसके बाद राजपुत्र ने मुर्ग़ी की दूसरी टाँग भी तोड़ डाली, परन्तु तब भी मुर्ग़ी नाचती रही। रानी को भी दूसरी टाँग टूट गई और वही भी नाचती रही। अन्त में राजपुत्र ने मुर्ग़ी की गर्दन तोड़ डाली। तब वह राक्षसी बहुत चिल्लाई और अपना असल रूप दिखाया। अब तक तो वह रानी की सूरत में थी अब राक्षसी हो गई। दर्शक लोग यह देख कर बेहद चकित हुए। राजपुत्र ने चिल्लाकर सब लोगों से कहा कि देखिए यह वही राक्षसी है जिसने इस राज्य का नाश कर डाला है। राजपुत्र बाहर चला गया और उस योगी को साथ लाया। उस सुनार ने राजा की सातों रानियों और सातों पुत्रों को लाकर राजा से कहा कि ये आपकी रानियाँ हैं और ये आपके पुत्र हैं। जब आपने इन रानियों को कुँवे में डलवाया था तब ये पुत्र इनकी रानियों के गर्भ में थे।

इसके बाद योगी ने राजा से सारी कथा कह सुनाई। राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उस योगी के क़दमों पर उसने अपना सिर रख दिया। उसने हँसी ख़ुशी से अपनी सातों रानियों और सातों पुत्रों को ग्रहण किया और उनके साथ आनन्द से अपने दिन व्यतीत करने लगा।

शिवनारायण शुक्ल।

शकुन्तला को दुर्वासा का अभिशाप।

१—शान्ति-स्थान महान कण्व मुनि के
पुण्याश्रमोद्यान में,
बाह्य-ज्ञान-विहीन लीन अति ही
दुष्यन्त के ध्यान में।
शोभा-पूर्ण शकुन्तला स्थित हुई
यों सोहती थी अति,—
मानों होकर चित्र में खचित सी
थी चित्त को मोहती॥

२—हो के भी प्रकृत स्वरूप उसका
अप्राकृत-श्रेष्ठ था;
लज्जा से मुख-चन्द्र देख उसका
अम्भोज निश्चेष्ट था।
सूना होकर भी शरीर उसका
आभूषणों से अहा!
दूना दर्शन-योग्य दूषण बिना
सौन्दर्य्य था पा रहा॥

३—दोनों ओर कपोल-देश पर से
थे केश छूटे पड़े;
हो के लोल समीर से ललित यों
वे दीखते थे बड़े—
श्रेणीबद्धमुखारविन्द पर थे
वे भृङ्ग मानों अड़े,
थे किंवा घन-वृन्द इन्दु-वर को
स्वच्छन्द घेरे खड़े॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४—थे चाञ्चल्य-विहीन लोचन खुले
सौन्दर्य्य के सद्म यों ,—
पीते थे मकरन्द भृङ्ग सुख से
पा के खिले पद्म ज्यों।
था ऐसा वपु वन्दनीय उसका
स्वर्गीय-शोभा-सना ,—
मानों लेकर सार-भाग शशि का
हो मार-द्वारा बना॥

५—भोली सूरत प्रेम-वृष्टि उसकी
थी पूरती दृष्टि में ,
हो ली सुन्दर रूप की चरम थी
सीमा सभी सृष्टि में।
थे स्वाभाविक भव्य भाव उसके
है वेश की क्या कथा ?
बैठी व्यस्त वसन्त के विरह में
हो वन्य देवी यथा॥

६—नाना दृश्य नये समक्ष उसके
थे चित्तहारी तहाँ ;
आते थे पर लक्ष्य में न उसके
वे एक कोई वहाँ।
थे सर्वत्र विशाल नेत्र उसके
दुष्यन्त को देखते ;
पाण्डु-ग्रस्त समस्त वस्तु जग में
ज्यों पीत ही लेखते॥

७—छाई तत्र नितान्त शान्ति-सहिता
सर्वत्र ही शान्ति थी ;
प्यारी कान्ति विलोक इन्द्र-वन की
होती सदा भ्रान्ति थी।
क्रीड़ा में वन-जीव थे रत सभी
आनन्द से, क्षेम से ;
थे स्वच्छन्द इतस्ततः उड़ रहे
पक्षी बड़े प्रेम से॥

८—पूरी निर्मल नीर से बह रही
थी पास ही मालिनी ;
वृक्षाली जिसके प्रतीर पर थी
भूरि-प्रभा-शालिनी।
लीला से लहरें अनेक उठतीं
थीं लीन होतीं तथा ;
मीनाक्षी सरिता कटाक्ष करती
भ्रूक्षेप से थी यथा॥

९—नीलाकाश अपार ऊपर यथा
फैला हुआ था बड़ा ;
शस्य-श्यामल निश्चलातल तथा
था श्रेष्ठ नीचे पड़ा।
थोड़ा भी इनका परन्तु उसको
था ध्यान होता नहीं ;
चिन्ता-युक्त पवित्र चित्त उसका
अन्यत्र ही था कहीं !

१०—ऐसे अद्भुत ध्यान के समय में
विख्यात क्रोधी महा ,
दुर्वासा मुनिवर्य धीर गति से
दैवात् पधारे वहाँ।
तेजोवन्त शरीर शुद्ध उनका
अत्यन्त ही कान्त था ,
मार्तण्डोपम-वक्त्र-मण्डल तथा
उद्दण्ड भी शान्त था॥

११—दीर्घश्मश्रु-जटा समेत उनके
थे केश सारे सित ;
होता था मुख दीप्तिमान उनसे
यों सर्वदा शोभित।
होके मुक्त नितान्त मेघ-गण से
वर्षान्त में ज्यों रवि ,
पाता रश्मि-समूह-संयुत सदा
तेजोमयी है छवि॥

१२—होने से प्रिय-प्रेम-मुग्ध उसने
आते न जाना उन्हें ;
वैसी ही, अतएव, निश्चल रही
मानों न माना उन्हें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला को दुर्वासा का अभिशाप।

कर पसार कर क्रोध से पाकर अति उत्ताप। ये दुर्वासा दे रहे शकुन्तला को शाप॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिन्ता से जिसको न आप अपने
देहादि का ज्ञान हो,
क्या आश्चर्य न और का यदि उसे
आते हुए ध्यान हो ?

१३—आया जान उन्हें उसे पवन भी
मानों जगाने लगी ;
खींचा वस्त्र अनेक बार उसने
तो भी न बाला जगी।
थी प्यारे पति के समीप वह तो
कैसे भला जागती ;
निद्रा निश्चल प्रेम की सहज ही,
बोलो, किसे त्यागती ?

१४—माना किन्तु महापमान अपना
जी में उन्होंने इसे ;
क्रोधाधिक्य विचारवान रखता
संसार में है किसे ?
होते खिन्न कदापि वे न सहसा
यों सोचते जो कहीं—
"होता है मन एक ही मनुज के
दो चार होते नहीं" ॥

१५—होके रुष्ट अतः अतीव मन में
पा के वृथा ताप वे,
कर्ण-क्रूर-कठोर-कण्ठ-रव से
देने उसे शाप वे।
बोले शीघ्र पसार पाणि अपना
यों व्यक्त वाणी सही ;
ज्यों वाताहत मेघ से उपल की
धारा धरा में बही ॥

१६—"चिन्ता में जिसकी निमग्न रह के
देखा न तूने मुझे,
स्वामी मैं तप का, तथापि कुछ भी
लेखा न तूने मुझे।
आवेगा तव ध्यान ही न उसको
कोई कहे भी न क्यों ;
पीछे पूर्व कथा प्रमत्त जन को
है याद आती न ज्यों" ॥

१७—था सम्भाषण कोप-पूर्ण मुनि का
जो जो उन्होंने कहा ;
तो भी ध्यान हुआ न भग्न उसका
सो पूर्व सा ही रहा।
शोभा को जब है चकोर-रमणी
आलोकती सोम की,
होती है तब कर्णगोचर उसे
क्या घोषणा व्योम की ? ॥

मैथिलीशरण गुप्त।

एरी का रेशम और उसके कीड़े।

"पाट कीट ते होइ ताते पाटम्बर रुचिर।
कृमि पालै सब कोइ परम अपावन प्राण सम॥"
तुलसीदास।

भारत अन्य देशों की अपेक्षा बहुत पीछे पड़ा हुआ है। यहाँ कुछ लोग तो ऐसे हैं जिनको यही नहीं मालूम कि रेशम कपास की तरह किसी पौधे से निकाला जाता है अथवा वह कोई विशेष वस्तु है। परन्तु कुछ इतना अवश्य जानते हैं कि वह एक प्रकार के कीड़ों से प्राप्त होता है जैसा कि ऊपर के सोरठे से विदित है। तथापि वे भी ठीक ठीक यह नहीं कह सकते कि वह कैसे प्राप्त होता है। हमने अपने कानों से सैकड़ों अपढ़ मनुष्यों को यह कहते सुना है कि रेशम का डोरा रेशम के कीड़े की विष्ठा है! शिक्षा पाये हुए भी कुछ लोग कभी कभी ऐसा ही कह बैठते हैं। आज हम इस लेख द्वारा पाठकों पर यह विदित करना चाहते हैं कि रेशम का सूत किसी पौधे से नहीं पैदा होता और न वह किसी कीड़े की विष्ठा ही है। किन्तु रेशम एक वस्तु है जिसे कीड़ा अपनी सुषुप्ति-अवस्था में रहने के लिए बनाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे वह अपने मुँह से बहुत बारीक सूत के रूप में निकाल निकाल कर बनाता है। वह उस अवस्था में उसके लिए घर का काम देता है।

इस देश में रेशम प्राचीन समय से पाया जाता है। यह कहा जाता है कि सर्वोत्तम रेशम भारत में सबसे पहले चीन से आया था। और यथार्थ में यह बात ठीक भी है। इस समय भी चीन और जापान का रेशम विख्यात है और सर्वोत्तम होता है। चीन देश की कारीगरी सर्वश्रुत है। वहाँ घर घर में रेशम के कीड़े पाले जाते हैं। उनकी कुकड़ियाँ से उत्तम सूत निकाला जाता है। पश्चात् उससे बारीक रेशम का कपड़ा बुना जाता है।

कीड़ा।

आज कल भारत में मुख्य मुख्य चार प्रकार के कीड़ों से चार प्रकार का रेशम पाया जाता है। यथाः-

(१) मलबेरी अर्थात् शहतूत या तूत का कीड़ा। यह कीड़ा शहतूत की पत्ती खाता है और पहले पहल चीन या जापान से भारत में लाया गया था।

(२) टसर का कीड़ा। यह बेर की पत्ती खाता है और सबसे प्रथम बङ्गाल के जङ्गलों से लाया गया था।

(३) मूँगे का कीड़ा। यह मूँगे की पत्ती खाता है जिसका वृक्ष कटहल के वृक्ष से मिलता जुलता है और जिसकी पत्ती भी कटहल की पत्ती से बहुत मिलती है। यह पेड़ आसाम में बहुत होता है।

(४) एरी अथवा अंडी या रेंड़ का कीड़ा। यह रेंड़ की पत्ती खाता है और इसका मुख्य स्थान आसाम है।

हम इस लेख में केवल एरी के रेशम और उस के कीड़ों का वर्णन करना चाहते हैं और पाठकों पर यह दरसाया चाहते हैं कि हमारे देश के रईस, ज़मींदार, राजे, महाराजे, सेठ, साहूकार यदि अंडी के कीड़ों को पालें और उनकी बनाई हुई एरी की कुकड़ियाँ या उनसे निकले हुए सूत आदि का व्यापार करें तो वे स्वयं लाभ उठा कर दीन दुखिया मज़दूरों की जीविका का एक उत्तम उपाय निकाल सकते हैं और उसके व्यापार से देशोन्नति भी कर सकते हैं।

एरी के कीड़े की पूरी आयु चार अवस्थाओं में विभक्त है। पहली अवस्था में केवल अंडा होता है। दूसरी में अंडे से पिलुवा या कीड़ा अंडा फोड़ कर निकल आता है और घूम फिर कर पत्तियों को खाता है। अपनी आयु का अधिकाँश वह इसी अवस्था में व्यतीत करता है और दिन दिन बढ़ता जाता है। तीसरी में चारा छोड़ कर वह सिकुड़ जाता है। तदनन्तर थोड़ी देर बाद वह सुषुप्त-दशा को प्राप्त होता है। तब न तो वह घूम फिर सकता है और न उसके टाँगे ही होती हैं। उसका रङ्ग रूप भी निराला ही हो जाता है। इस अवस्था में वह कुकड़ी के भीतर पड़ा रहता है। समय पाकर उस निश्चेष्ट सुषुप्त अवस्था वाले जीवित कीड़े की तितली बन जाती है और वह कुकड़ी से बाहर निकल आती है। कीड़े की यही चौथी अवस्था है। ग्रीष्म की अपेक्षा शरद या शिशिर ऋतु में इस कीड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की आयु अधिक होती है जैसा कि निम्नलिखित हिसाब से स्पष्ट है। साल भर में लगभग सात झोल इसके होते हैं।

	गर्मी के दिनों में	जाड़े के दिनों में
अंडे की अवस्था	७ से ६ दिन तक... ...	लग भग २० दिन
कीड़े की अवस्था	१६—१८	१—१½ महीना
सुषुप्त कीड़े की अवस्था	१५—१८	३० वा ६० दिन
तितली की अवस्था	५—६	५ वा ६ दिन
	कुल ४३—५१ दिन	८५—१३१ दिन

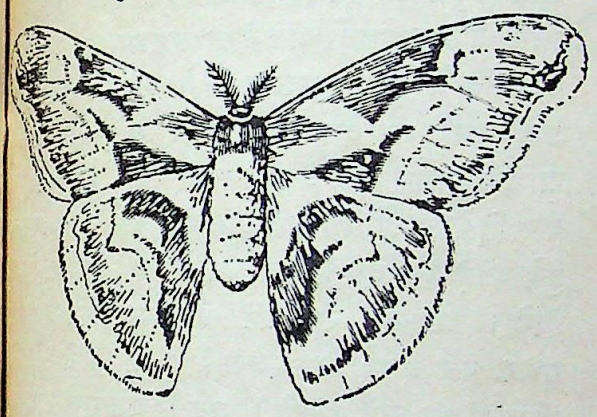

तितली।

तितली लग भग २ इञ्च की होती है। मादे का पेट नर से अधिक फैला हुआ और कुछ बड़ा होता है। नर का मोंछ कंघीनुमा और मादी के मोंछ से बहुत बड़ा और फैला हुआ होता है। एक मादा २५० से ३०० तक अंडे देती है। वह सब अंडे एक बारगी नहीं दे देती, किन्तु तीन बार में देती है। प्रथम बार तिहाई से कुछ अधिक अंडे देती है। द्वितीय और तृतीय में लग भग बराबर देती है। जोड़ा खाने के पश्चात् नर मर जाता है और मादा भी अंडे देकर मर जाती है। परन्तु नर से वह कुछ रोज़ अधिक जीती है।

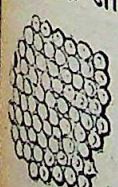

अंडे।

नवीन अंडा कुछ कुछ पीले रङ्ग का सरसों के दाने से कुछ छोटा और लसलसा होता है। अंडे एक दूसरे से मिले हुए होते हैं। जब अंडे के भीतर का कीड़ा पुष्टता हो जाता है तब उसका रङ्ग ख़ाकी मायल हो जाता है। अंडे से निकला हुआ नया बच्चा लग भग ⅛ इञ्च लम्बा और कुछ कुछ भूरे रङ्ग का होता है। उसे कोमल रेंड़ की पत्ती खाने के लिए देना आवश्यक है। ज्यों ज्यों वह बड़ा होता जाय बड़ी और कड़ी पत्ती भी दी जा सकती है। चारा केवल टोकरियों में रख देने से कीड़े आप से आप पुरानी खाई हुई बासी पत्तियों को छोड़ कर नवीन ताज़ी पत्तियों पर आ जावेंगे। उन्हें अधिक छूना या छेड़ना न चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से वे रोगी हो जाते हैं और रोगी हो जाने पर या तो वे मर जाते हैं या यदि जीवित भी रहे तो अच्छी और बड़ी कुकड़ी नहीं बना सकते। कीड़ों को पत्तियों के साथ रखने के लिए टोकरी या डलिया की आवश्यकता होती है। और टोकरियों को रखने के लिए मचान बनवाना अधिक लाभदायक होता है। टोकरी का व्यास २ फुट होना चाहिए और उँचाई क़रीब ४ इञ्च। टोकरी के पेंदे में चारों ओर ३ इञ्च का किनारा होना उत्तम है जिसमें पेंदा भूमि से ऊँचा रहे। टोकरियों के पेंदे में चलनी की तरह छोटे छोटे छेद होने चाहिए। भिन्न भिन्न टोकरियों में छेदों का आकार भिन्न भिन्न प्रकार का होना चाहिए—अर्थात् बड़े कीड़ों के लिये बड़े बड़े छेदों की टोकरियां और छोटों के लिए छोटे छेदों की। इन छेदों से यह अभिप्राय है कि कीड़ों का विष्ठा उनके रास्ते बाहर निकल जाया करे। हर टोकरी में बड़े कीड़े २१५ से २२५ तक रक्खे और पाले जा सकते हैं। लग भग ३½ फुट ऊँचा एक मचान बनवाना चाहिए और उसके ठीक नीचे आधी दूर के अंतर पर उतना ही लम्बा चौड़ा एक दूसरा मचान होना चाहिए। ऊपर वाले मचान पर एक चटाई बिछा देना चाहिए। इसके बाद कीड़ों और पत्तियों समेत टोकरियाँ रख दी जानी चाहिए। चटाई से तात्पर्य यह है कि टोकरियों के कीड़ों की विष्ठा उसी पर इकट्ठी हो, नीचे की टोकरियों में न पड़े। इस बात का स्मरण रखना उचित है कि कीड़ों को भीगी या नम और मैली पत्तियाँ कदापि न दी जायँ और न उचित संख्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से अधिक कीड़े टोकरियाँ में रक्खे जायँ। इन बातों पर ध्यान न देने से कीड़ों के रोगी हो जाने का भय है जिससे हानि होने की सम्भावना है।

जैसे साँप अपनी पुरानी केंचली को उतार देता है उसी प्रकार ये रेशम के कीड़े भी अपने पुराने चमड़ों को उतार कर नये चमड़े धारण कर लेते हैं। इसे अँगरेज़ी में मोल्ट कहते हैं। ग्रीष्म ऋतु में हर एक कीड़ा चौथे दिन अपना पुराना चमड़ा उतार देता है। इस प्रकार चार मोल्ट तक तो वह खाता पीता रहता है और पांचवें में वह कुकड़ी के भीतर सोया रहता है। हर मोल्ट (सिवा पांचवें) के पश्चात् कीड़ा कुछ बढ़ जाता है और क्रमशः मोटा भी हो जाता है। तीसरे मोल्ट के बाद उसे चारा खाने की शक्ति अत्यंत अधिक हो जाती है। ज्यों ज्यों वह बड़ा होता जाता है उसके शरीर पर के काँटे बड़े और कड़े होते जाते हैं।

जब कीड़ा अपनी पूरी अवस्था को पहुँच जाता है तब वह कुकड़ी बनाने की फ़िक्र करता है। इस दशा के पूर्व वह—

(१) चारा खाना छोड़ देता है।

(२) इधर उधर घूमता फिरता है।

(३) उसका रङ्ग बदल जाता है; कुछ पीला होजाता है।

(४) पानी के समान गीली बिष्ठा निकालता है।

जब ऐसी दशा आ पहुँचे तब किसी टोकरी में, जिसका व्यास १½ फ़ुट और गहराई भी उतनी ही हो, सूखी घास या तिनका अथवा रद्दी काग़ज़ इत्यादि डाल कर लग भग ३५० कीड़े उसमें छोड़ दिये जायँ। वे स्वयं आड़ खोज खोज कर कुकड़ियों को बनालेंगे। चार दिन में वे अपना काम पूरा कर लेंगे। तब पाँचवें दिन उन कुकड़ियों को टोकरी में के घास फूँस से पृथक करके किसी चटाई पर बिछा देना चाहिए। समय पाकर इन कुकड़ियों से तितलियाँ निकल आवेंगी। यदि जाड़े की ऋतु में शीत अधिक पड़ता हो और तितलियों के निकलने में अधिक समय लगने की सम्भावना हो तो कुकड़ियों में यंत्र के द्वारा गर्मी पहुँचाने की आवश्यकता होती है। गर्मी लगतेही तितलियाँ निकलने लगेंगी। इन तितलियों से नर और मादा चुन कर एक टोकरी में पास पास रख दिये जायँ। एक जोड़े से दूसरे जोड़े में २ इञ्च का अन्तर होना चाहिए। इसी क्रम से जितने जोड़े उस टोकरी में आ सकें रख देना चाहिए। पश्चात् दूसरी, तीसरी इत्यादि टोकरियों में भी इसी रीति से तितलियाँ जोड़े के साथ रख दी जावें। कुछ तो स्वयं जुट खाने के बाद पृथक हो जाती हैं और मादी अंडे देना आरम्भ कर देती है। पर यदि ये स्वयं पृथक न हों तो २४ घंटे के पश्चात् उन्हें अलग कर देना चाहिए। यदि २४ घंटे से अधिक समय तक वे जुट खाते रहेंगे और पृथक न कर दिये जायँगे तो मादी के अंडे और उनसे निकले हुये कीड़े हृष्ट पुष्ट होने की जगह रोगी या दुर्बलेन्द्रिय होंगे। अतएव २४ घंटे बीत जाने पर जोड़े को पृथक कर देना आवश्यक है। मादी टोकरी की दीवारों पर अंडे देदेगी। जब वे अंडे सूख जायँ या उनकी चिपचिपाहट जाती रहे तब उन्हें किसी काग़ज़ या कपड़े के टुकड़े में रख देना चाहिए।

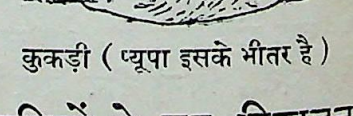

कुकड़ी (प्यूपा इसके भीतर है)

कुकड़ियों से सूत निकालना।

कुकड़ियों का डोरा लगातार नहीं होता। और न वह रील किया जा सकता है। लगातार न होने का कारण यह है कि कुकड़ी बनाते समय कीड़ा बीच बीच में थक कर तागे का निकालना बंद कर देता है और विश्राम कर लेने के पश्चात् फिर उस स्थान से बनाना आरम्भ करता है जहाँ बंद कर दिया था। इसी प्रकार ४ या ५ बार में वह सूत का निकालना समाप्त करता है और कुकड़ी बन कर तैयार हो जाती है। उन कुकड़ियों को जिनमें से तितलियाँ निकल गई हों चुन कर पहले सादे पानी में खौ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भग एक घंटे के डुबो रखना चाहिए जिसमें उनका मैल या गर्द इत्यादि साफ़ हो जाय। पानी में डुबोने के लिए उन्हें किसी भारी वस्तु से दबा देना चाहिए। फिर उन्हें एक कनिस्टर में, जिसमें पानी में घोली हुई राख या सज्जी हो, रख कर चूल्हे पर उबालना चाहिए। राख को कनिस्टर के पानी में घोलने के पूर्व एक कपड़े में रख कर पानी के साथ छान लेना उचित है। मिट्टी के तेल के कनिस्टर में, जो पानी से आधा भरा हुआ हो, आध सेर कुकड़ी उबाली जा सकती है।

¼ पाव सज्जी और ½ सेर राख ½ सेर कुकड़ी के लिये बस है। कुकड़ियों को एक बारगी पानी में डाल देना अच्छा नहीं। उन्हें एक कपड़े के टुकड़े में बाँध कर कनिस्टर के पानी में डालना उचित है। एक घंटा या जब तक कुकड़ियाँ अच्छी तरह नरम न हो जायँ कड़ी आँच से उन्हें उबालना चाहिए। पश्चात् वे पानी से अलग कर दी जायँ। भीगी हुई या कुकड़ियाँ सुभीते से मशीन या ताकू पर काती जा सकती हैं। सूखी भी उन पर काती जा सकती हैं पर सुभीते के साथ नहीं। हाँ सूखी कुकड़ियाँ चरखे पर आसानी से काती जा सकती हैं।

कुकड़ी, डोरा, और रेशम के कपड़े की क़ीमत और उनसे लाभ।

१ सेर कुकड़ी का बाज़ार दर २) है। १ या २ सेर कुकड़ी से १२ छटाँक डोरा तैयार हो सकता है। ६५ फ़ुट डोरा किसी मशीन या चरखे से ५ मिनट में तैयार होता है। उत्तम रेशम के कपड़े के लिए डोरे की मुटाई मध्यम दरजे की होनी चाहिए और सूत बराबर और अच्छे प्रकार से बटा हुआ होना चाहिए। सूत कातने की मज़दूरी का दर उसकी बारीकी और गुण पर अवलंबित है। ½) से लेकर ५) फ़ी सेर तक हो सकता है। सेर सूत कातने में ३ सप्ताह समय लगता है। १२ छटाँक डोरे से १० हाथ × २½ हाथ का कपड़ा तैयार होता है। ऐसे उत्तम कपड़े का दाम १५) तक होता है। और उसकी बुनाई २) है।

आसाम में ६ हाथ × ३ हाथ के टुकड़े का दाम ४) से २०) तक होता है। जैसा अच्छा कपड़ा हो वैसा ही उसका दाम होता है। सर्वोत्तम रेशम के टुकड़े की लागत इस प्रकार है :—

१ सेर कुकड़ी जिससे १२ छटाँक सूत तैयार होता है	...	...	२)
१२ छटाँक सूत की कताई	...	...	३॥)
कपड़े की बुनाई	...	...	२॥)
कुल ख़र्च			८।)
इस टुकड़े की बाज़ार में क़ीमत			१५)
लाभ			६॥)

ख़र्च में राख इत्यादि का मूल्य नहीं रक्खा गया है क्योंकि वास्तव में उसमें ख़र्च ही कितना हो सकता है।

कीड़ों के लिये खेत।

बिहार और युक्त प्रदेश के पूर्वी भागों में एक बीघे भूमि में, जिसमें साल भर रेंड़ का पौधा लगा रहे, एक लाख कीड़ों के लिये चारा पैदा हो सकता है। इन प्रांतों में साल भर में सात झोल कीड़ों की होती हैं। १ लाख कीड़ों से १ मन कुकड़ी अवश्य निकलेगा। वास्तव में १ लाख कीड़ों से १ मन से अधिक कुकड़ी निकल सकती है। परन्तु १ लाख कीड़ों में से २० या ३० सहस्र या इससे अधिक कोड़े बहुधा मर जाते हैं। इसी से मरे हुए कीड़ों की गिनती भी हमने १ लाख कीड़ों में कर ली है। साल भर में एक बीघे से एक मन तक की कुकड़ी तैयार होती है :—

१ सेर कुकड़ी का दाम २) कहा गया है
अतएव १ मन का मूल्य ८०) हुआ।

केवल कुकड़ी ही का रोज़गार करने से जो लाभ होता है वह यहाँ पर पाठकों को दिखाया गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। और यह एक ही बीघे की आमदनी है। अब विचार करने का स्थान है कि यदि हमारे देश के धनी, सेठ, महाजन या भूमि-स्वामी इस व्यापार को हस्तगत करें तो इससे बड़ा लाभ हो।

खेत में रेंड़ के पौधों को दो दो हाथ के अन्तर पर लगाना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से वे अच्छी तरह और शीघ्र बढ़ते हैं। मोटे ताज़े होते हैं और रोगों से भी बचते हैं। जब वे आधी उँचाई तक बढ़ चुकें तब उनके ऊपर के भाग को छाँट देना चाहिए।

ये कीड़े रेंड़ की पत्ती के अभाव में पपीता या अरंड ख़र्बूज़े की पत्ती भी खा सकते हैं। पर यह इतनी लाभदायक नहीं है जितनी कि रेंड़ की पत्ती है। पपीते की ताज़ी पत्तियाँ देने के पूर्व उन्हें कुछ देर तक घाम में फैला देना चाहिए जिससे उनका दूध सूख जाय और कीड़ों को हानि न पहुँचा सके। परन्तु स्मरण रहे कि पत्तियाँ सूख न जायँ। सुनते हैं कि आसाम वाले रेंड़ और पपीते की पत्तियों के अतिरिक्त एक और प्रकार की पत्ती भी कीड़ों को खिलाते हैं जिसे वे लोग ग्वालोसो फूल की पत्ती कहते हैं।

जिनको इस रेशम के व्यापार की इच्छा हो और जिनको रेशम के कीड़ों के अंडे न मिलते हों वे कृपा कर पूसा के कृषि-विभाग के डाइरेक्टर साहब या इन्टोमालोजिकल सेकशन (कृमि-विभाग) के अधिष्ठाता मिस्टर लेफ़राय साहब एम० ए०, एफ़० ज़ड० एस०, एफ़० ई० एस० के पास पत्र लिखें। वे अंडे और उनके रखने और पालने की पूरी विधि उनके पास भेज देंगे। जिनको इस विषय में अधिक जानने की उत्कंठा हो वे भी श्रीमान् लेफ़राय साहब के पास पत्र भेज कर सब बातें पूछ सकते हैं।

मुहब्बतसिंह दोनवार, बी० ए०।

महाराज कनिष्क।

हिन्दू जाति बड़ी ही राजभक्त है। इससे बढ़कर राजभक्त जाति संसार में शायद दूसरी न होगी। यदि कोई राजा, चाहे वह विदेशी और विधर्मी ही क्यों न हो, हिन्दुओं पर ज़रा भी उपकार करता है तो वे उसके केवल कृतज्ञ ही नहीं होते, किन्तु चिरकाल के लिए भक्त हो जाते हैं। हिन्दुओं का यह गुण नया नहीं, बहुत पुराना है। इतिहास में इसके अनेक दृष्टान्त पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ अनार्य नरपति कनिष्क को लीजिए। यद्यपि वह अनार्य अर्थात् शक जाति का था, तथापि हिन्दुओं के दिल में उसकी बड़ी इज़्ज़त थी और है। वे उसे किसी आर्य राजा की अपेक्षा कम भक्ति और श्रद्धा की दृष्टि से नहीं देखते। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि उसके पितामह के चलाये हुए शक संवत् को वे वैसेही आदर से लिखते हैं जैसे कि "शकारि" महाराज विक्रमादित्य के चलाये हुए संवत् को। ऐसे चिरस्मरणीय नरेश का वृत्तान्त जानने के लिए सरस्वती के पाठक अवश्य ही उत्सुक होंगे। अतएव हम उनकी उत्कण्ठा-निवारणार्थ महाराज कनिष्क का संक्षिप्त परिचय देते हैं।

वंश-परिचय।

यह हम लिख चुके हैं कि महाराज कनिष्क शक जाति के थे। यह जाति अत्यन्त प्राचीन काल में भारत में आकर बस गई थी। इसने जगह जगह पर अधिकार भी जमा लिया था। महाराज विक्रमादित्य के समय में ये लोग ख़ूब प्रबल थे। इन्हीं लोगों को परास्त करके महाराज ने "शकारि" पदवी प्राप्त की थी। मुसलमानों के आने के पहले भी भारत के किसी किसी अंश में इनका राज्य था। इसी शक जाति की कुशन शाखा ने किसी समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत में सार्वभौम सम्राट् का पद प्राप्त किया था। इस शाखा के नरेशों में अपने सुशासन के गुण से जिन्होंने ख्याति लाभ की थी उनमें महाराज कनिष्क सर्वश्रेष्ठ हैं।

पूर्वज।

कुशान-वंश के पहले राजा ईसा के बाद प्रथम शताब्दी में हुए थे। इनका नाम कैडकाइसिस था। सन् ७८ ई० में इन्होंने शकाब्द अथवा शालिवाहन संवत्सर चलाया। इससे इनका नाम चिरकाल तक स्मरणीय रहेगा। इनकी मृत्यु के बाद इनका पुत्र द्वितीय कैडकाइसिस गद्दी पर बैठा। चीनियों ने इनका नाम इयेन-काओ-चिंग लिखा है। इनका राज्य काशी से लेकर काबुल तक विस्तृत था। चीन पर भी इन्होंने चढ़ाई की थी। पर उसमें ये कामयाब न हो सके; हारकर लौट आये। इसी समय इन्होंने रोम के सम्राट् आगस्टस के पास दूत भेजा था। सन् १२० ई० के लग भग इनकी मृत्यु हुई।

सिंहासनारोहण और राज्य-विस्तार।

इसके बाद महाराज कनिष्क गद्दी पर बैठे। रोम के सम्राट् हेड्रियन या मारकस अरेलियस के ये समकालीन थे। इनके समय के तरह तरह के सिक्कों के देखने से मालूम होता है कि इन्होंने बहुत दिन तक राज्य किया और इनका धर्म-विश्वास धीरे धीरे विकसित हुआ। महाराज कनिष्क का राज्य उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में विन्ध्याचल तक और पूर्व में बनारस से लेकर पश्चिम में खोतन तक फैला हुआ। काश्मीर के इतिहास राजतरङ्गिणी में लिखा हुआ है कि कनिष्क ने काश्मीर में अधिकार जमाकर वहाँ कनिष्कपुर नाम की नगर बसाया। काश्मीर की वर्त्तमान राजधानी श्रीनगर का निकटवर्ती कनिसपुर नामक गाँव कनिष्क के विजय-गौरव की साक्षी अब तक दे रहा है। बौद्ध-इतिहासकार तारानाथ का कथन है कि महाराज कनिष्क ने मगध की राजधानी पाटलीपुत्र को भी जीता था। पर वे वहाँ ठहरे नहीं; बुद्धचरित के रचयिता अश्वघोष को लेकर अपने राज्य को लौट गये। मतलब यह कि आधुनिक बिहार, युक्तप्रदेश, पंजाब, सिन्ध, काश्मीर, सीमान्तप्रदेश, काबुल आदि उत्तर भारत के सम्पूर्ण प्रान्त कनिष्क के अधीन थे। उनकी राजधानी पुरुषपुर अर्थात् वर्त्तमान पेशावर में थी। कनिष्क के समय में एक बार पार्थियन लोगों ने भारत पर आक्रमण किया। यह देखकर कनिष्क से बैठे न रहा गया। आपने चट उनका पीछा किया और उनके देश पार्थिया में जाकर उस पर अधिकार जमा लिया। इसके बाद अपने पूर्वजों का गौरव-उद्धार करने के लिए आपने चीन पर आक्रमण किया और थोड़े ही दिनों में काशगर, यारक़न्द और खुतन पर क़बज़ा कर लिया। यद्यपि चीन-सम्राट् ने मुक़ाबला किया; पर अन्त में उसको हार माननी-पड़ी। इसलिए अपने राजकुमार को कनिष्क के पास ज़मानत के तौर पर रखने के लिए मजबूर हुआ।

चीनी राजकुमार और चीन में बौद्धधर्म।

चीनी राजकुमार के भिन्न भिन्न ऋतुओं में रहने के लिए तीन भिन्न भिन्न स्थान नियत हुए। गर्मी के दिनों में राजकुमार काबुल के उत्तर कपीश स्थान में रहते थे। यहाँ पर उनका ध्यान पहले पहल बौद्ध-धर्म की ओर आकृष्ट हुआ। उनकी प्रचुर आर्थिक सहायता से यहाँ का बौद्ध-विहार थोड़े ही दिनों में चमक उठा। कपीश-निवासी भी उनके इस उपकार का बदला देने के लिए बड़े उत्सुक हुए। इसलिए उन लोगों ने राजकुमार के बहुत से चित्र अङ्कित कराकर बिहार में टँगवा दिये। ये चित्र ईसा की सातवीं शताब्दी तक जैसे के तैसे मौजूद थे। चीनी यात्री हुयेनसंग ने अपनी पुस्तक में इनका ज़िक्र किया है।

राजकुमार के जाड़े की ऋतु में रहने के लिए पंजाब के पूर्व भाग का चीनापाटी स्थान निर्दिष्ट था। यहाँ हीनयान सम्प्रदाय के बौद्ध रहते थे। राजकुमार इन्हीं लोगों के द्वारा बौद्ध धर्म में दीक्षित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए। स्वदेश लौटने पर इन्हीं ने पहले पहल चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार किया। किसी किसी का मत है कि अशोक के समय में ही चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ था। पर यह मत भ्रमात्मक है। क्योंकि अशोक के समय में कोई बौद्ध याजक चीन में नहीं गया और कनिष्क के पहले चीन और भारत में किसी प्रकार के सम्बन्ध का कोई प्रमाण नहीं पाया जाता। ऐतिहासिक प्रमाणों से यह सिद्ध है कि जब चीन-सम्राट् ने हार मानकर भारत-सम्राट् की अधानता स्वीकार की तभी उसने बौद्ध धर्म के आगे सिर झुकाया। चीनी राजकुमार ने चीन में ऐसे ज़ोरो शोर से बौद्ध धर्म का प्रचार किया कि थोड़े ही दिनों में सारा चीन बौद्धधर्मावलम्बी हो गया। अनार्यराज कनिष्क के ही प्रताप से महा-पराक्रमशाली चीन-साम्राज्य ने भारत की राजनैतिक और धर्म-सम्बन्धी अधीनता स्वीकार की। चीन और जापान का धर्म आज भी कनिष्क का यश गा रहा है।

कनिष्क का बौद्धधर्मानुराग।

कहते हैं कि कनिष्क को शुरू में धर्माधर्म का कुछ ख़याल न था। वे बौद्धधर्म से घृणा करते थे। पर कुछ दिनों बाद उनके ये विचार पलट गये। वे पक्के बौद्ध हो गये। यह बात उनके समय समय पर प्रवर्त्तित सिक्कों से अच्छी तरह प्रकट होती है। कनिष्क की नई उम्र के सिक्के ग्रीक भाषा और अक्षरों में लिखे हुए हैं और उनके ऊपर चन्द्र तथा सूर्य की मूर्त्ति खुदी हुई है। इसके बाद के सिक्कों के अक्षर तो ग्रीक हैं, पर उनकी भाषा फ़ारसी है और उनके ऊपर खुदी हुई मूर्त्तियाँ फ़ारसी, यूनानी और भारतीय देवताओं के अद्भुत मेल से बनी हैं। परन्तु सबसे पीछे के सिक्कों पर भगवान् बुद्ध की सौम्यमूर्त्ति विराज-मान है और ग्रीक अक्षरों में उनका नाम खुदा हुआ है। कनिष्क की बौद्धधर्म पर प्रगाढ़ अनुरक्ति थी। अपनी इस धर्मासक्ति के निदर्शन-स्वरूप उन्होंने एक तेरह-मंज़िला गुम्बज़ बनवाया था। कहते हैं कि यह गुम्बज़ उस समय के असाधारण शिल्पनैपुण्य का अत्युत्कृष्ट नमूना था। चीनी यात्री फ़ाहियान और हुयेनसंग दोनों ही ने इसके दर्शन किये थे। इसके निकट अशेष-शोभा-सम्पन्न एक विहार भी था। पर इस समय न गुम्बज़ का पता है, न विहार का। इनकी जगह पर मिट्टी का एक ऊंचा ढेर जमा है। आज कल लोग इसे "शाह जी की ढेरी" कहते हैं। प्रसिद्ध यात्री अलबरुनी के समय तक वह ध्वंस न हुआ था। उन्होंने अपनी किताब में इस "कनिष्क-चैत्य" का ज़िक्र किया है। ईसा की नवीं शताब्दी तक बौद्ध शिक्षा का यह प्रधान केन्द्रस्थान था। कहते हैं कि मगध के राजकुमार ने भी यहाँ कुछ दिन विद्या-भ्यास किया था। सम्भव है कि भारत के प्राचीन ऐश्वर्य्य और गौरव को लूटने वाले महमूद ग़ज़नवी ने इसे ध्वंस किया हो।

चतुर्थ बौद्धसंघ।

महाराज कनिष्क ने अपने जीवन के अन्तिम काल में चौथा बौद्धसंघ इकट्ठा किया था। यह सम्मिलन पार्शिक नामक बौद्धधर्मात्मा के उपदेश से वसुमित्र की अध्यक्षता में हुआ था। सर्वास्तिवादी और वैभाषिक मत के अनुसार शास्त्र-पाठकों पर जो टीकायें रची गई थीं उनकी समालोचना और समर्थन करना इस महासमिति का मुख्य उद्देश था। इसमें बौद्धधर्म-तत्त्ववेत्ताओं ने वाद विवाद के बाद जो सिद्धान्त निश्चित किये थे उनसे बौद्ध-धर्म की यथेष्ट उन्नति हुई। हुयेनसंग का कथन है कि इस महासंघ के द्वारा जो जो बौद्ध-ग्रंथ प्रामाणिक माने गये उनके नाम ताम्रपत्रों पर खुदवा कर स्तूपों में जड़वा दिये गये। वास्तव में यह संघ बौद्ध धर्म के इतिहास में चिरस्मरणीय हो गया है। संसार में जब तक बौद्ध धर्म बना रहेगा तब तक धार्मिक इतिहास के गगनमण्डल में महाराज कनिष्क का नाम चमकता रहेगा। इसलिए अनार्यराज कनिष्क केवल आर्य भारतवासियों ही के गौरवपात्र नहीं, किन्तु समस्त बौद्ध-संसार उनका चिरऋणी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्यु ।

महाराज कनिष्क की कब और कैसे मृत्यु हुई, इसका ठीक पता नहीं चलता। श्रीधर्मपीठक में उनकी मृत्यु के विषय में एक प्रवाद का उल्लेख है। लिखा है कि कनिष्क की राज्यपिपासा अधिक बढ़ जाने के कारण लोगों ने धोखा देकर उन्हें मार डाला। हमारी समझ में यह प्रवाद विश्वसनीय नहीं। क्योंकि एक तो इन पीठकों में बेशुमार अत्युक्तिपूर्ण, असम्भव और मिथ्या बातें भरी हुई हैं; दूसरे ऐसे धर्मात्मा राजा की इस प्रकार मृत्यु होना युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता। जो हो इस बात के कितने ही प्रमाण पाये जाते हैं कि महाराज कनिष्क ने कोई तीस वर्ष राज्य करने के बाद, १५० ई० में, प्राण त्याग किये और हुविष्क उनके विस्तृत राज्य के अधिकारी हुए। हुविष्क के बाद ही से भारतीय शकसाम्राज्य की गौरवशिखा क्रमशः हीनप्रभ होने लगी। आर्यों को अपने अधिकार के पुनरुद्धार करने का फिर मौक़ा मिला।

उदयनारायण वाजपेयी।

कुलीनाथ पांडे।

१—पढ़े लिखे जन नहीं हुए थे जब कौड़ी के तीन,
कुलीनाथ पांडे बन बैठे गिन्ती सीख अमीन।
पढ़ने लिखने का पांडे को बहुत नहीं था काम;
करते थे केवल साहिब को झुककर बहुत सलाम॥

२—दफ़्तर में उम्मेदवार जो आते थे विद्वान,
बातें देकर कुली लिखाते उनसे सब चालान।
जो करता "नाहीं" करने को यह सरकारी काज
कुली कराते उस पर अपने साहिब को नाराज॥

३—कुलीनाथ सब कागज पूरे रखते थे तैयार;
इस करनी से जिलाधीश का उमड़ा उन पर प्यार।
धीरे धीरे साहिब का भी सब अँग्रेज़ी काम
लगे कराने पांडे पूरा करके अपना नाम॥

४—देख अलौकिक कार्य-कुशलता जिलाधीश मतिमान
हुए प्रसन्न कुली पांडे पर पूरे पिता समान।
बालक पांडे ने भी अपने जन्म, नाम का भेद
कह डाला सब धर्म-पिता से किया न कुछ भी खेद॥

५—सेवक-स्वामि-भाव अब सच्चा बढ़ने लगा विशेष;
अलख प्रेम लख इन दोनों का घबराता था देश।
मेम साहिबा भी यों अपना लगीं दिखाने नेह,
पांडे की पत्नी ने उनको अर्पण कर दी देह॥

६—जिलाधीश से हुए कमिश्नर ज्योंही साहिब हाग
नराधीन किस्मत पांडे की उठी साथ ही जाग।
पौरुष पाकर कुली पिता का डिपटी हुए कमाल;
पेंचीले झगड़ों में बाँके करने लगे सवाल॥

७—सरल वकील, मिलाऊ मुंशी, चतुर सरिश्तेदार;
अड़ने लगे मोह के मारे नित डिपटी के द्वार।
बड़ी बड़ी मिसलों में लिख कर केवल अपना नाम
हुए प्रसिद्ध कुली कानूनी, न्याय-मूर्ति, गुणधाम॥

८—प्रभुता पाकर "कुली" कहाना लगने लगा भदेस;
किन्तु कुली "न" नाथ बन पांडे रहे न कुछ भीशेष।
कभी कभी पांडे के पहिले भ्रम से जोड़ नकार
कुली न नाथ न पांडे पूरे बनते थे बेकार॥

९—न्याय-कार्य से जब मिल जाता पांडे को अवकाश;
फैला देते घर-भर में निज विद्या-बुद्धि-प्रकाश।
सुनकर पति के मुँह से पतिका दंड-दान-अधिकार
पत्नी करती तन मन धन से पति पर पूरा प्यार॥

१०—प्रतिमा एक विष्णु की भारी थी घर में प्राचीन;
पूजा नित्य नियम से उसकी करते कुली कुलीन।
जब मुकद्दमों में आसामी पाजाते थे जीत,
भेंट चढ़ाते तब सब आकर प्रभु को सदा सप्रीत॥

११—भेड़ों की भी ऊन कतरना हुआ शीघ्र आरंभ;
समझे जाने लगे कुली तब दृढ़ सरकारी खंभ॥
बेटे और बहू से पाकर गरम ऊन का भाग
दोनों पर दोनों दिन दूना प्रगटाते अनुराग॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२—कुछ दिन पीछे नर के लायक रहा न उनका काम;
तीव्र बुद्धि के कारण पद से मिला विवश विश्राम।
तो भी धर्म-पुत्र पर उनका घटा न दृढ़ अनुराग;
रायबहादुर करा कुली को गये देश निज हाग॥

१३—करते ही प्रस्थान हाग के हुआ अविद्या-नाश;
पढ़े लिखे अब यहाँ वहाँ से करने लगे प्रकाश।
रायबहादुर कुलीन पांडे यह दुर्दशा विलोक
हुए उदास निराश बहुत ही सके न आँसू रोक॥

१४—तोभी उचित न समझा करना पिता कुली ने आन;
जल्दी ही कलि की लीला से प्राप्त किया निर्वाण।
न्यायासन से बिदा सदा को हो कर कुली कुलीन
रहने लगे विवश घर ही में विष्णु-प्रेम में लीन॥

१५—एक दिवस प्यारी पत्नी ने ठाना ऐसा मान
रायबहादुर बहादुरी की भूल गये सब शान।
किया मान-मोचन प्यारी का लेकर ग्राम हज़ार;
कुलीन पांडे इसी बहाने बने ताल्लुकेदार॥

१६—पत्नी का अनुरोध मानकर सब प्रबंध का काम
लिखा कुली ने मुहर लगा कर प्रिय साले के नाम।
राजा के साले ने ऐसा किया प्रबंध महान,
राजा रानी को अति सुख में रहा न धन का ध्यान॥

१७—पर साले का बहुत दिनों तक फला न शासनकाल;
एक बरस के भीतर भारी पड़ा अकाल कराल।
हुई भूमि उपजाऊ पड़ती; लाखों मरे किसान;
तब भी राजा के साले ने किया वसूल लगान॥

१८—साहिब एक जाँच को पहुँचे ज्योंही मिटा अकाल;
हाग-गंज के पास बाग़ में गाड़ा अपना पाल।
इसी समय साले के डर से करने अदा लगान
ठहरे हुए वहाँ करते थे भोजन कई किसान॥

१९—कुलीराज ने किया साहिबी साहिब का सत्कार;
पल में पलट गये साहिब के सब विज्ञान-विचार।
वह समझे यह नित देते हैं अकालियों को अन्न;
कहा कुली से हम हैं राजा! तुम पर परम प्रसन्न॥

२०—साहिब के जाने के लग भग एक माह के बाद
मिला तार में कुली नाथ को यह मङ्गल संवाद—
रायबहादुर कुलीन पांडे! किया आप को आज
महादान पर बड़े लाट ने महाराज-अधिराज।

२१—कुली महाराजाधिराज को चिंता-हीन विलोक
जग-असारता पर रानी ने किया एक दिन शोक।
मर्म-वचन सुन कर प्यारी के राजा गये प्रयाग;
कहते हैं तन बीच-बाट में दिया उन्होंने त्याग॥

२२—'राजनि मृते' यदपि रानी ने पाया सब अधिकार,
साले करते रहे पूर्व-वत निज यश का विस्तार।
प्रिय भगिनी को बड़े प्रेम से करा मुक्ति-रस-पान
भोग रहे हैं राज्य कुली का साले बन संतान।

विद्यानाथ

धारा नगरी।

धार मालवे में एक रियासत है। पुराने हिन्दुओं के समय में इसे धारा नगरी कहते थे। राजा भोज यहीं हुए थे। मुसलमानों ने अपने समय में यहां बड़े बड़े उपद्रव किये हैं। इस लिए उनके पहले के हिन्दू-राज्य के चिह्न आज कल बहुत कम पाये जाते हैं। इनमें से राजा भोज की पाठशाला मुख्य है। पर इसकी बनावट मसजिद की सी है, पाठशाला की सी नहीं। यह बिलकुल पत्थर की बनी हुई है; छत के सिवा चूना और कहीं नहीं है। इसमें कहीं कहीं बड़े बड़े काले पत्थर जड़े हुए हैं। इनके नीचे की ओर पुराने ज़माने के लेख खुदे हुए हैं। इनमें से दो पत्थर निकाल कर और लकड़ी के चौखटों में जड़ा कर मैंने अपने पास रख लिये हैं। लेखों की खुदाई ऐसी अच्छी है कि वर्त्तमान समय के छापे के अक्षरों को मात करती है। पुराने हिन्दुओं के ज़माने का दूसरा निशान दो 'सपबंध' लेख हैं। इनके सिवा और कोई पुराने चिह्न नहीं मिलते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धार-नरेश श्रीऊदाजीराव बहादुर पँवार।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धार में पहले पँवार राजपूतों का राज्य था। आश्चर्य्य की बात है कि सात सौ साल तक मुग़लों का राज्य रहने के बाद फिर भी यह राज्य पँवारों के हाथ में आया। जब मरहठों ने मुग़लों से यह देश अठारवीं सदी के शुरू में जीता तब ऊदाजी पँवार ही ने धार के दुर्ग पर पहले पहल अपना झंडा उड़ाया। उस समय तो इनको यह क़िला छोड़ देना पड़ा, पर जब दूसरा पेशवा बाजीराव गद्दी पर बैठा तब उसने इस देश पर पूरा अमल करने का विचार किया। इसलिए वह नीमाड़ में आया। उस समय मालवे का सूबादार दिया बहादुर था। धार से छः मील पश्चिम की ओर तिरला के पास भारी संग्राम हुआ; उसमें दिया बहादुर मारा गया और मुसलमान हार गये। इसी समय से इनकी हुकूमत यहाँ से जाती रही। इसके दो साल बाद पेशवा ने ऊदाजी के छोटे भाई आनन्दराव पँवार को मालवा और गुजरात में चौथ इकट्ठा करने के लिए नियत किया। धार और इसके आस पास के परगने उसे फ़ौज-ख़र्च के लिए मिले। आनन्दराव के स्वर्गवासी होने पर उनका पुत्र यशवन्तराव गद्दी पर बैठा और सन् १७६१ में पानीपत की लड़ाई में काम आया। इसके बाद इसका पुत्र कूँडीराव, जिसकी उम्र सिर्फ़ दो ही बरस की थी, गद्दी पर बैठा। इसके समय में धार-राज्य की दशा बिगड़ने लगी। जब राघोबा दादा पर आफ़त आई तब उसने अपनी औरतों को धार में शरण लेने के लिए भेजा। यहीं उसकी स्त्री आनन्दी बाई के पुत्र हुआ, जो पीछे से बाजीराव नाम का अन्तिम पेशवा हुआ। इसके बाद आनन्दराव गद्दी पर बैठा। वह बड़ौदे के महाराज का भानजा था। १७ साल की आयु तक वह वहीं रहा। जब उसने अपने देश में आना चाहा तब उसके दीवान ने बखेड़ा मचाया। पर ज्योंही आनन्दराव ने अपना दख़ल जमा लिया त्योंही दीवान भगकर सेंधिया और होलकर से जा मिला और उनको धार पर चढ़ा लाया। इसी समय आनन्दराव स्वर्गवासी हुए। पर उनकी वीर बेवा रानी मैनाबाई ने बिगड़ी हुई रियासत का भार अपने ऊपर लेतेही सब काम सँभाल लिया। स्वामी की मृत्यु के समय वह गर्भवती थी। वह मांडू में जाकर रहने लगी। वहीं उसके रामचन्द्रराव नाम का पुत्र हुआ। परमात्मा का जिस पर कोप होता है उस पर आफ़त पर आफ़त आती है। तीन साल बाद इस वीर रानी का पुत्र भी मर गया। पर उसने सेंधिया और होलकर की आज्ञा लेकर अपनी बहन के पुत्र रामचन्द्र पँवार को गोद लिया। सात साल तक जैसे तैसे समय कटा। जब सरकार अँगरेज़ी का मालवे में आगमन हुआ तब रामचन्द्र की वार्षिक आय ३५००० रुपये से अधिक न थी। दस जुलाई सन् १८१९ को सरकार के साथ इस राज्य की सन्धि हुई। बंदावार का परगना सेंधिया से और बइसिया का परगना पिंडारियों के अफ़सर करीमख़ाँ से लेकर सरकार ने धार को दे दिया।

सन् १८३३ में रामचन्द्र देवलोकवासी हुए। उनके कोई पुत्र न था; इसलिए उनकी बेवा रानी ने मलथान से यशवन्तराव पँवार को गोद लिया। कालिका देवी का मन्दिर उन्हीं का बनवाया हुआ है। सन् १८५७ के मई महीने में आपकी अचानक मृत्यु हुई। मृत्यु के समय आनन्दराव पँवार को आपने गोद लेलिया। उस समय आनन्दराव की अवस्था केवल १३ बरस की थी। इसी समय इनका रियासत में भी ग़दर हुआ। उसको ये न रोक सके। इनकी सेना में ज़ियादातर मकरानी और पठान थे। वे बदल गये और भोपावार की एजन्सी को लूट कर धार में आ घुसे। जब महू से जनरल स्टुवर्ट (General Stewart) फ़ौज ले कर गये और क़िले की दीवार में तोपों से रास्ता बनाया तब वे लोग रात को चुप चाप भाग गये। इस बलवे के कारण सरकार ने धार की रियासत ख़ालसा कर ली। पर कुछ दिनों बाद दया करके आनन्दराव को लौटा दा। परन्तु बदसिया का परगना न मिला क्योंकि वह भोपाल को सिकन्दर बेगम को, ग़दर में सरकार को सहायता देने के इनाम में, देदिया गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। आनन्दराव के बालकपन में सरकारी बन्दोबस्त रहा। इससे आमदनी में चार लाख का फ़ायदा हुआ। सन् १८७७ के दिल्ली दरबार में राजा साहब को महाराजा की पदवी इनायत हुई। सन् १८९८ में वे परलोक सिधारे। पर उन्होंने अपने भतीजे ऊदाजीराव पँवार को पहले ही गोद लेलिया था।

वर्तमान राजा साहब ने इन्दौर के डेली कालेज में शिक्षा पाई है। अभी पिछले सालही आपको अपनी रियासत में शासन के पूरे अधिकार मिले हैं। उसके दो महीने बाद ही आपकी शादी हुई। राजा साहब को घोड़ा, पोलो और शिकार का बड़ा शौक़ है। आज कल आप एक पुस्तक लिख रहे हैं। आशा है कि थोड़े ही दिनों में हम लोगों को पढ़ने को मिलेगी। पर आप रियासत के काम को इन सबसे बढ़ कर समझते हैं। इस लिए उसी में अपना बहुत सा समय व्यतीत करते हैं। परमात्मा से हमारी प्रार्थना है कि महाराजा साहब दीर्घायु हों और प्रजा-पालन में इसी तरह चित्त लगाये रहें।

धार में ऐतिहासिक स्थान ये हैं—धार का क़िला, लाट मसजिद, कमाल मौला, राजा भोज की पाठ-शाला, अब्दुल्लाशाह चंगाल की क़ब्र, कालिका देवी का मन्दिर और नटनागरा।

धार का क़िला बहुत बड़ा या ऊँचा नहीं है। कहते हैं कि दिल्ली के बादशाह सुलतान महमूद तुग़लक़ ने इसे बनवाया था। ऐतिहासिक बातें इसमें केवल दो ही हैं। प्रथम यह कि इसमें अन्तिम पेशवा बाजीराव का जन्म हुआ था। दूसरी यह कि जब सन् १८५७-५८ में ग़दर हुआ तब धार की सेना के मकरानी और पठान भोपावर की एजन्सी लूट लाये और क़िले में घुस गये। महू से सरकारी फ़ौज ने जाकर इसे घेर लिया और इसकी दीवार तोड़ डाली। उसके चिह्न अब तक बने हुए हैं। तीसरी बात और है जो ऐतिहासिक तो नहीं, पर बड़े मज़े की है। ऊपर के दरवाज़े के पास ही दाता-बंधी चोर की क़ब्र है। इसको लोगों ने पीर बना रक्खा है। इसका नाम हज़रत महबूब था और यह क़िले में नौकर था। अपनी माता के कहने से इसने क़िले के कुल क़ैदियों को छोड़ दिया। पहरे वालों से युद्ध होने पर यह मारा गया। इसका मस्तक इसी दर्वाज़े के सामने गिरा जहाँ इसकी क़ब्र है। परन्तु बग़ैर सिर ही के कबन्ध उत्तर की तरफ़ २०० गज़ तक लड़ता चला गया और वहाँ जाकर गिरा तथा वहीं दफ़नाया गया। बहुत लोग इन क़ब्रों को पूजने जाते हैं।

दूसरा पुराना निशान ख़रबूज़ा महल है। क़िले में रहने लायक़ जगह केवल यही एक है। ख़रबूज़ा महल नाम इसका कैसे पड़ा, इसका कुछ पता नहीं चलता। इस महल के पास ही बच्चों के खेलने का एक छोटा सा कुँआ और एक तख़्त है। कहते हैं कि बाजीराव के खेलने के लिए ये बनाये गये थे। क़िले में एक बहुत बड़ी बावड़ी भी है और आज कल जेलख़ाना भी वहीं है। क़िले में अच्छी सफ़ाई रहती है।

लाट मसजिद। इसका यह नाम इसलिए पड़ा क्योंकि इसके उत्तर की ओर लोहे का एक बहुत बड़ा लाट है। यह चौकोर है और इसका घेर चार फ़ुट के लगभग है। इस मसजिद के उत्तरी दरवाज़े पर लिखा हुआ है कि सन् १४०५ में अहमदशाह ने (जिसको दिलावर ख़ाँनचो कहते हैं) ने इसकी नींव डाली। जब गुजरात के सुलतान बहादुर ने मालवा फ़तह किया तब वह इस लाट को ले जाना चाहता था। पर उखाड़ते समय यह गिर कर टूट गई। इसका बड़ा टुकड़ा २४ और छोटा १२ फ़ीट का है। जहाँगीर ने भी इसको ले जाकर आगरे में अपने पिता अकबर को क़ब्र में लगाने का हुक्म दिया था। पर न मालूम किस कारण से यह आज तक यहीं पड़ी है। कुछ साल हुए छोटा टुकड़ा भोपावार भेज दिया गया था। वहाँ वह एजन्सी के बाग़ीचे में खड़ा है।

कमाल मौला—यह कमालुद्दीन मालवी की क़ब्र है। ये दिल्ली के निज़ामुद्दीन औलिया के शिष्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

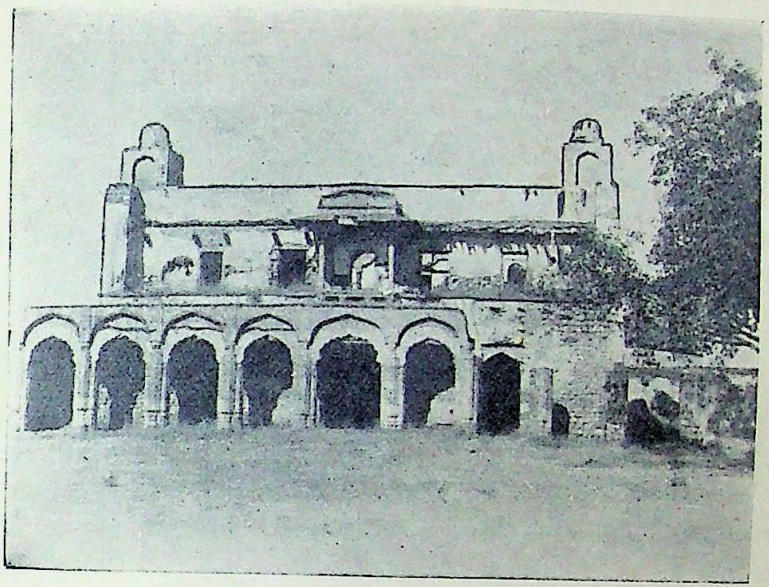

ख़रबूज़ा महल-पूर्व की तरफ़ से।

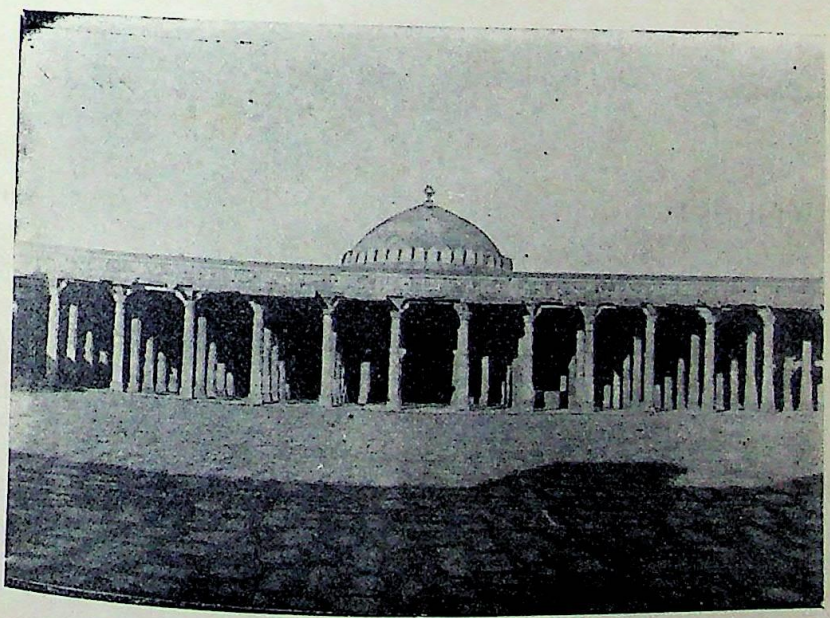

राजा भोज की पाठशाला।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

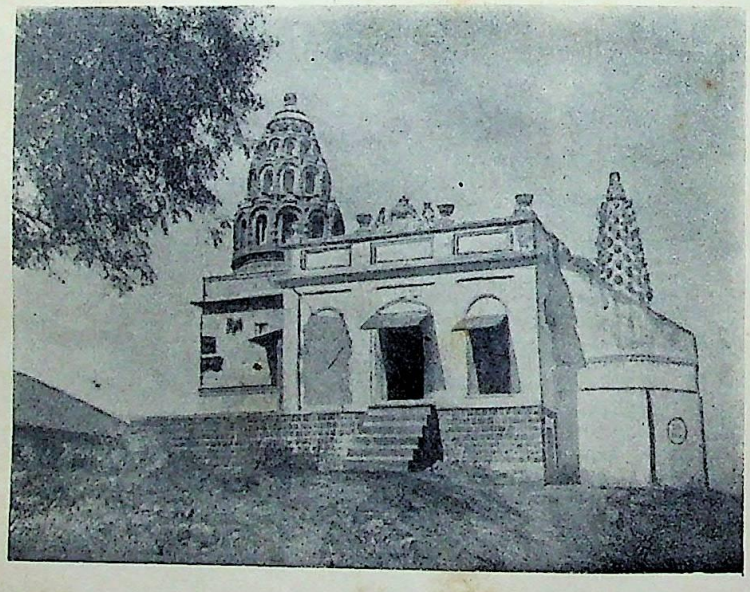

गणपति का मन्दिर ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। मालवे में ज़्यादह दिन रहने के कारण ये मालवी कहलाने लगे थे। इनकी क़ब्र महमूद ने बनवाई थी। क़ब्र के दरवाज़े के ऊपर विचित्र अक्षरों का एक लेख है जिसका आशय यह है—"इस संसार में भले मनुष्यों का उनकी भलाई के सिवा और कुछ नहीं रहता"। कमालुद्दीन की क़ब्र के सामने ही खुद महमूद की क़ब्र है।

राजा भोज की पाठशाला। इसका वृत्तान्त मैंने शुरू में लिख दिया है। यहाँ इतना और कहना है कि मेरे विचार में राजा भोज की पाठशाला यहीं थी; उसको तोड़कर मुसलमानों ने उसी के पत्थरों से मसजिद बनाली होगी। इसमें तो कुछ सन्देह नहीं कि यह वर्त्तमान दशा में मसजिद ही सी जान पड़ती है।

अबदुल्ला शाह चंगाल की क़ब्र। यह बहुत छोटी सी है। मालूम होता है कि दो मनुष्य इसमें गड़े हुए हैं। अबदुल्ला मदीने का रहनेवाला था। इस क़ब्र के बाहर एक लैन में और बहुत सी क़ब्र हैं। ये ४० मुल्लाओं की हैं जो राजा भोज की आज्ञा से मारे गये थे। चँगाल की क़ब्र पर एक लेख है जिसके एक अंश का आशय यह है—"इसको चंगाल इसलिए कहते थे कि जो कोई इससे मिलता था वही मोहित हो जाता था। इसका राजा भोज पर इतना असर हुआ कि वह मुसलमान हो गया। उसने अपना नाम अबदुल्ला रक्खा और अपने गुरु के पास ही दफ़नाया गया"। नहीं मालूम यह राजा भोज कौन हैं और यह बात कहाँ तक सही है।

कालिका देवी का मन्दिर एक छोटी सा पहाड़ी पर है। इसके सामने एक सुन्दर तालाब है जो कमलों से भरा रहता है। इस मन्दिर को इस सुन्दरता से तो वर्त्तमान महाराज के पितामह यशवन्तराव ने बनवाया, पर यह स्थान मुसलमानों के समय से पहले भी था। जब मुसलमान आये तब मूर्त्ति को उनसे बचाने के लिए शहर में लाकर लोगों ने छिपा दी। गणपति का एक मन्दिर भी एक सुन्दर तालाब के किनारे है।

नटनागरा। इस स्थान के इतिहास को मैं नहीं जानता। यह भी एक सुन्दर तालाब के किनारे पर है। इसके मकान इस समय बिलकुल टूटे फूटे हैं। एक विद्वान् का ख़याल है कि रत्नागरा बिगड़कर नटनागरा हुआ है।

धार बहुत ही सुन्दर स्थान है। ज़मीन ऊँची नीची होने के कारण बहुत सुहावनी लगती है। विद्या का प्रचार अच्छा है। एक पुस्तकालय भी है।

अमरसिंह।

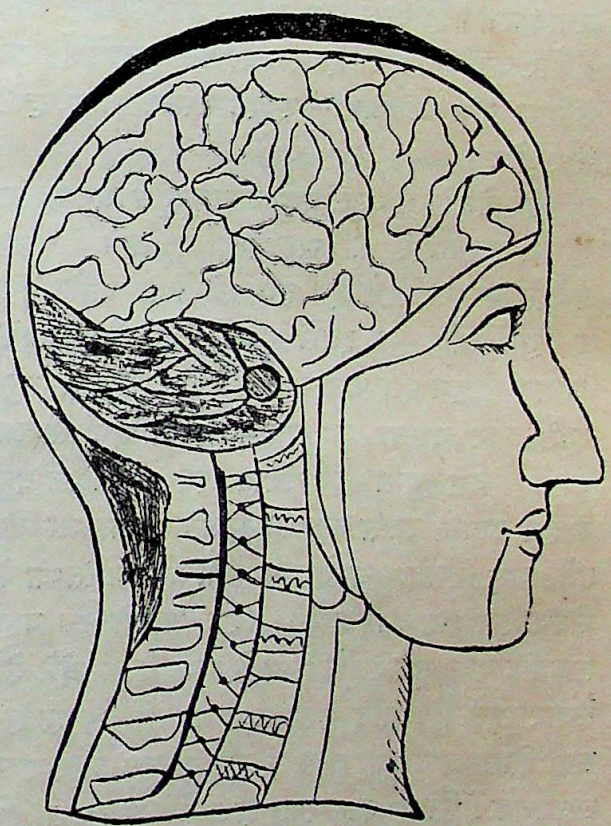

मनुष्य का मस्तिष्क।

स शरीररूपी क़िले का नायक मस्तिष्क अर्थात् मग़ज़ है। आप का स्थान सबसे ऊँचा है। आप सिर पर विराजमान रहते हैं। अवयवरूपी सेना से आप कुछ न कुछ काम लिया ही करते हैं। आप बड़े मेहनती हैं। अपने क़िले और सेना की ख़बरदारी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए आप रात दिन चिन्तित रहते हैं। आप कभी छुट्टी नहीं लेते। जाड़ा, गरमी, बरसात सब आपके लिए एकसाँ हैं। काम आप प्रायः २४ घण्टे करते हैं; पर थकते बहुत कम हैं। आप में एक और विशेषता है। आप संसार की सारी बातें जानते हैं। आप की स्मरण-शक्ति सीमा-रहित है।

सेनापति मस्तिष्क के पाँच सहायक हैं। ये सहायक परम स्वामिभक्त और लायक़ हैं। अपने काम में ये बहुत ही दक्ष हैं। ये हमेशा अपने मालिक से लगाव रखते हैं, क्षण क्षण में उसके पास आते जाते हैं और कहाँ पर क्या हो रहा है उसे सुनाते हैं। इन के नाम सुन लीजिएः—स्पर्श, रसन, घ्राण, दृष्टि और श्रोत्र।

इन सेवकों में बहुत बड़ी सहानुभूति और एकता है। ये एक दूसरे को सहायता पहुँचाने के लिए हमेशा तत्पर रहते हैं। हम लोगों को चाहिए कि इन गुणों को हम इनसे सीखें। क्योंकि इन्हीं के अभाव से हम इस अधोगति को पहुँचे हैं। सहानुभूति और एकता का अभाव बहुत दिनों से हम लोगों में चला आता है। बिना इनके पुनरुज्जीवन के हम कदापि उन्नत नहीं हो सकते। इस बात को हमें याद रखना चाहिए। सेनापति मस्तिष्क के सेवक इस बात को अच्छी तरह जानते हैं। यहाँ तक कि एक दूसरे के लिए वे प्राण तक देने को तैयार रहते हैं। यदि ऐसा न होता तो यह शरीर-रूपी क़िला बात की बात में टूट जाता और इस अवयवरूपी सेना का एक क्षण में सर्वनाश हो जाता। इन सेवकों को, क़िले के भीतर, अपने अपने लिस्ट पर क्या क्या काम करना पड़ता है सो सुनिएः—

स्पर्श। आप हमेशा पहरे पर रहते हैं। आपका काम संत्री का है। आप यद्यपि हमेशा जागृत रहते हैं तथापि कभी थकते नहीं और न कभी सोने की इच्छा ही करते। आपके कई अखाड़े हैं।

यथाः—चमड़ा, होंठ, नाक का अग्र-भाग, जीभ, और अँगुलियों के छोर। यहीं आप अक्सर रहते हैं। इसके सिवा आप क़िले के सब दरवाज़ों की भी रखवाली करते हैं। जब किसी शत्रु या सन्देहजनक जीव को आप आते देखते हैं तब फ़ौरन ही सेनापति को उसकी ख़बर देते हैं। इससे वह होशियार हो जाता है और किसी ग़ैर आदमी को क़िले के पास नहीं पहुँचने देता।

रसन। आप बहुत आराम से अपने दिन काटते हैं। आप कभी अपने घर से बाहर नहीं जाते। काम भी आप ज़रा कम करते हैं। आप एक छोटे से स्वच्छ घर में रहते हैं। आप के घर के चारों तरफ़ सुन्दर हाथीदाँत की सफ़ेद दीवार है। उसके सामने लालरङ्ग का एक फाटक है। आपके घर का नाम है आनन। आप को डाकृर का काम करना पड़ता है। प्रति दिन क़िले के भीतर रहने वाले सैनिकों के लिए जो भोजन लाये जाते हैं उसकी आप जाँच करते हैं। आप सिर्फ़ सुस्वादु, स्वच्छ और बलकारी भोजन क़िले के भीतर जाने देते हैं। सड़ा-गला रोगजनक और स्वादु-रहित भोजन आप के मारे अन्दर नहीं जाने पाता। काम आपके पास है थोड़ा; परन्तु जितना है बहुत बड़ी जवाबदेही का है। काम हो चुकने पर ठाकुर रसनसिंह अपने लाल रङ्ग की मख़मली गद्दी पर पड़े हुए आराम किया करते हैं।

घ्राण। आप डाकृर रसनसिंह के सहकारी हैं। उन्हीं के घर के पास आप रहते भी हैं। आपके घर में दो दरवाज़े हैं। इन्हीं दरवाज़ों की राह से क़िले के भीतर हवा आने जाने का हुक्म है। और सैनिकों के लिए हवा को बड़ी ज़रूरत है। इसी से बाबू घ्राण घोष अपने घर के दोनों दरवाज़े दिन रात खुले रखते हैं। अथवा यों कहना चाहिए कि उन्होंने दरवाज़ों में किवाड़े ही नहीं लगाये। उन्होंने सोचा कि यदि भूल से भी कहीं दरवाज़ा बन्द हो गया तो यह क़िला कलकत्ते की काल-कोठरी से भी बदतर हो जायगा और सारे सैनिक पाँच मिनट के अन्दर ही लोट पोट हो जायँगे। घोष बाबू बड़े ही दयालु हैं। यदि ये इतने उदाराशय न होते तो क़िले के सैनिक कभी स्वस्थ और ज़िन्दा न रहते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि। दृष्टि देवी एक कोठरी में वास करती हैं। वह कोठरी सब तरफ़ से ढकी है। पर उसमें दो खिड़कियाँ हैं। उनमें किवाड़े भी हैं। वे दृष्टि देवी के इच्छानुसार खुलते और बन्द होते हैं। दृष्टि देवी इन्हीं खिड़कियों से सब बातें देखा करती हैं और जो कुछ देखती हैं उसकी ख़बर सेनानायक मगज़ को पहुँचाती हैं। सेनानायक के बँगले और इनकी कोठरी के बीच में तार लगा है। उसी से ख़बरें जाया करती हैं। जब वे अपना काम समाप्त कर के भीतर चली जाती हैं तब खिड़कियाँ लगा कर कोठरी को भीतर से बन्द कर लेती हैं। फिर वे मज़े से आराम करती हैं।

श्रोत्र। इनका अजब हाल है। इन्होंने अपना घर एक कन्दरा में बना रक्खा है। उसमें कई दरवाज़े हैं पर मुख्य दो ही हैं। आपकी कन्दरा मज़बूत दीवारों से घिरी हुई है। दुश्मन उसमें नहीं प्रवेश कर सकते। आपको भी बहुत जागना पड़ता है। आपका काम सुनना है। जो कुछ आपको सुन पड़ता है उसकी वर्दी आप अपने सेनापति को तत्क्षण पहुँचा देते हैं। आकस्मिक दुर्घटनाओं से क़िले की रक्षा करने में आप सदैव तत्पर रहते हैं।

सेनापति के जितने सहायक हैं सब स्वकर्म्म-निष्ठ, कर्त्तव्यदक्ष, स्वामिभक्त और निरालसी हैं। मनुष्यों को ये सब गुण उनसे सीखना चाहिए।

पाण्डेय लोचनप्रसाद।

वृक्षों और जानवरों की लड़ाई।

(गताङ्क से आगे)

दुनिया में रह वही सकते हैं जो ख़ूब ताक़तवर हैं और गर्मी सर्दी बरदाश्त कर सकते हैं। एक साल ऐसी ख़ुश्क साली हुई कि ५०००० जानवर भूख और प्यास से मर गये। जानवरों ने तमाम ज़मीन जड़ें वग़ैरा खाने के लिए खोद डाली। ऐसी हालत में कोई पेड़ न बच सकता था जब तक कि उसकी विशेष रक्षा न की जाती। इस अचानक आपत्ति के कारण सिर्फ़ दो तरह के पेड़ बच सके। एक तो हेमलक (Hemlock) नाम का पेड़ जो बड़ा ज़हरीला होता है; दूसरा एक छोटी जाति का पेड़ जिसमें बड़े बड़े बेशुमार काँटे होते हैं। उन पर भूखे से भूखे जानवर ने भी मुँह नहीं डाला। यदि इन पेड़ों में काँटे न होते या वे ज़हरीले न होते तो इनका भी बचना असंभव हो जाता। ऊपर जो मिसालें हमने दीं हैं उनसे सिद्ध है कि दुनिया में हमेशा इसी तरह के झगड़े चला करते हैं। एक प्रकार के जानवर दूसरे प्रकार पर हमला करके उनको नष्ट किया करते हैं।

इन जीवों के नष्ट होने की वजह क्या है और इसका असर तमाम दुनिया पर कितना पड़ता है, ये सोचने की बातें हैं। सबसे बड़ी वजह इसकी यह है कि जितने जानवर और पेड़ हैं सब यथाशक्ति अपनी वंश-वृद्धि करने का यत्न करते हैं। छोटे छोटे जानवरों में यह बात बहुत ही अधिक पाई जाती है। मांस खाने वाली एक मक्खी (Musca-Carnaria) के ही २०,००० अंडे होते हैं। ये ऐसी जल्दी बढ़ते हैं कि ४-५ दिन में पूरे बड़े हो जाते हैं। स्वीडन के प्राकृतिक विज्ञानवेत्ता लिनियस ने लिखा है कि ऐसी तीन मक्खियाँ एक मरे हुए घोड़े को इतनी जल्दी खा कर ख़तम कर सकती हैं जितनी जल्दी कि एक शेर खा सकता है।

यदि यह मान लिया जाय कि लगातार चार महीने यह मक्खी इसी तरह अपनी पूरी तादाद से बढ़े, अर्थात् एक एक मक्खी के बीस बीस हज़ार अंडे हों, तो सिर्फ़ एक मक्खी की सन्तान चार महीने में शंखों तक पहुँच जाय। हमने सिर्फ़ एक ही जाति की मक्खी का ज़िक्र किया है। ऐसी ही सैकड़ों और मक्खियाँ हैं जिनकी वंश-वृद्धि हुआ करती है। यदि कोई इनकी सन्तान का नष्ट करनेवाला न हो तो शायद थोड़े ही दिनों में सारी दुनिया इन्हीं से परिपूर्ण हो जाय और यह तमाम जनावरों को उनकी ख़ूराक समेत हज़म कर जायँ। पर ऐसा नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता। इन मक्खियों के तीन चौथाई हिस्से को चिड़ियाँ, साँप और दूसरे जानवर खा डालते हैं। इसके सिवा गर्मी, सर्दी वग़ैरह का, और जानवरों की तरह, इन पर भी असर होता है।

हम इस बात के समझाने के लिए एक और मिसाल देते हैं। कई तरह की चिड़ियाँ, उदाहरण के लिए, लाल, गौरैया, श्यामा, तूती आदि एक एक दफ़े में तीन या चार अंडे साल में दो मर्तबे देती हैं। इसलिए हर साल का औसत फ़ी जोड़ा ६ या ७ समझना चाहिए। हमारे यहाँ पाली जाने पर १५ से २० बरस तक ये रहती हैं। इसलिए हम ख़याल करते हैं कि स्वतन्त्रता की दशा में इससे कम तो क्या ज़्यादा ही दिन जीती होंगी। ख़ैर इनके जीने का औसत दस ही वर्ष रखिए। अब यदि हम सिर्फ़ एक जोड़ा लें, इनको पालें पोसें, और कोई तकलीफ़ न होने दें, यहाँ तक कि वे अपनी पूरी उम्र अर्थात् दस बरस की हो कर मरें, तो दस ही बरस में उनकी तादाद ४०००००० चार करोड़ पर पहुँचेगी। यद्यपि इनकी बाढ़ मक्खियों के मुक़ाबिले में कुछ भी नहीं है।

अब यह सवाल पैदा हो सकता है कि चिड़ियाँ, कीड़े वग़ैरः जो इतने पैदा होते हैं उनका होता क्या है? साफ़ ज़ाहिर है कि या तो ये सब ख़ुद मरते होंगे या मारे जाते होंगे। बहुत सी चिड़ियाँ अपनी मौत से मर जाती हैं; बहुतों को शिकरा, बिल्ली वग़ैरः खा जाती हैं; बहुत सी गर्मी-सर्दी के असर से मर जाती हैं; बहुत सी जाड़े में एक मुल्क से दूसरे मुल्क को जाते समय रास्ते में ज़ाया जाती हैं। जो यहीं रह जाती हैं वे जाड़े के कारण बाहर नहीं निकल पातीं और भूख प्यास से कमज़ोर होकर मर जाती हैं। यह हाल पौधों और जानवरों दोनों का एकसाँ होता है; चाहे छोटे हों चाहे बड़े। ये सब इतना बढ़ते हैं कि यदि उनकी बाढ़ रोकी न जाय तो तमाम दुनिया एक ही क़िस्म के जीवों से भर जाय। पर सब की बाढ़ रोकने के लिए कोई न कोई सूरत मौजूद है। इसका फल यह होता है कि इनकी तादाद अधिक नहीं होने पाती। और यदि हो भी जाती है तो दूसरी क़िस्म को उसके बढ़ने से ज़रूर नुक़सान पहुँचता है। अर्थात् दूसरी क़िस्म उसी हिसाब से कम हो जाती है जिस हिसाब से पहली बढ़ती है। यह बात याद रखना चाहिए कि जो जानवर जितना ही ज़्यादा पैदा होता है वह उतना ही ज़्यादा मरता भी है। इसकी मिसालें हम आगे चल कर देंगे। बड़े बड़े जानवर भी, जिनकी औलाद बहुत ही धीरे धीरे बढ़ती है, यदि नये मुल्क में सब हालतें उनके मुआफ़िक़ हों तो, इतना बढ़ते हैं कि उनकी बाढ़ को देख कर ताज्जुब होता है। इसकी एक मिसाल अमेरिका में मिली है। कोलम्बस साहब जब दूसरी मर्तबा अमेरिका गये थे तब थोड़ी सी भैंसें लेते गये थे। इन्हें वे सेंट डोमिंगो प्रदेश में छोड़ आये थे। यह बात बहुत लोग जानते होंगे कि भैंस के १०-११ महीने में सिर्फ़ एक ही बच्चा होता है। अर्थात् भैंस की बाढ़ बहुत कम होती है। मगर तब भी कोलम्बस साहब के भैंसें छोड़ आने के सिर्फ़ २७ ही बरस बाद वहाँ भैंसों के आठ आठ हज़ार के झुंड वन में फिरने लगे थे। ये जानवर जब मेक्सिको और अमेरिका के दूसरे हिस्सों में पहुँचाये गये तब, सन् १५८७ में, अर्थात् मेक्सिको के फ़तह किये जाने के ६५ बरस बाद, स्पेनवालों ने भैंसों की ६४३५० खालें मेक्सिको से और ३५४४४ सेंट डोमिंगो से बाहर भेजीं। यह तादाद, जो ऊपर दी गई है, कुल जानवरों की तादाद से बहुत ही कम होगी। क्योंकि ऊपर दी हुई तादाद तो सिर्फ़ मरे हुओं की तादाद है। उन्नीसवीं सदी के अख़ीर में सिर्फ़ एक न्यूनेज़ एरीन के मैदान में १२००००० गायें और ३०००००० भैंसे थीं। यही हाल वहाँ सुअरों की बढ़ती का है। सिर्फ़ एक नेलसन नाम के प्रदेश में २१ महीने में २५००० सुअर मारे गये थे। ख़रगोशों की तादाद बढ़ने का इससे भी अधिक आश्चर्यजनक क़िस्सा है। सिर्फ़ न्यूज़ीलेंड और आस्ट्रेलिया से एक साल के अंदर ७००००० ख़रगोशों की खालें बाहर भेजी गईं। उनकी क़ीमत ६७००० पौंड थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब रही पौधों की बाढ़। सो इनमें जानवरों से भी ज़्यादा बढ़ने की ताक़त होती है। सैकड़ों वर्ग मील लाल्टेा का मैदान सिर्फ़ २-३ क़िस्म की घासों से भरा हुआ है। इनके बहुत बढ़ने से और पेड़ों को बहुत नुक़सान पहुँचता है। आस्ट्रेलिया में Cryptostenima-Calenda-Laceum नाम की एक घास ने अपनी बढ़ती से अच्छे अच्छे बाग़ों को सुखा दिया। बैरन ह्यगेल साहब ने बहुत चाहा कि इस घास को निर्बीज कर दें; पर वे नाकामयाब रहे। हार कर उन्होंने कहा कि यह घास कभी नहीं जा सकती। पर ईश्वर की कृपा से ४० बरस बाद सूसन नाम की घास ने उसे बिलकुल ही दबा लिया। थायटस नाम के एक साहब अपनी एक किताब Enumeration of Ceylon Plants में लिखते हैं कि कुछ कम ५० बरसें हुईं जब अमेरिका से एक पेड़ लंका में लाया गया था। उसका नाम Lautana mirita था। उसने आस पास की सब वनस्पतियों में, यहाँ तक कि ३००० फ़ीट उँचाई तक के पेड़ों के स्वभाव में, फ़र्क़ डाल दिया। अब वह लंका में हज़ारों एकड़ भूमि में फैला हुआ है। उसमें पत्ते बहुत होते हैं। उसके फल चिड़ियाँ बहुत पसंद करती हैं। ज़्यादा तादाद में होने के लिए इस बात की ज़रूरत नहीं है कि चीज़ ज़्यादा ही पैदा होने वाली हो। एक प्रकार के कबूतर (Ectopistes Migratorius) उत्तरी अमेरिका के किसी किसी हिस्से में इतने होते हैं कि जब उनके झुंड के झुंड एक मुल्क से दूसरे मुल्क को जाते हैं तब तमाम आसमान काला मालूम होता है। पर यह कबूतर सिर्फ़ दो अंडे देता है। ऐसेही एक और चिड़िया, जिसका नाम Fulmar Petrel है, सेंट किल्डा में बेशुमार होती है। पर वह सिर्फ़ एक अंडा देती है। बहुत सी चिड़ियाँ ऐसी होती हैं जो एक मर्तबे में ६-७ अंडे देती हैं, पर तादाद में बहुत नहीं होतीं।

यही हाल पौधों का भी है। उनके बहुतायत से होने और बहुत से बीज पैदा करने की ताक़त में कोई सम्बन्ध नहीं है। अर्थात् यह कोई ज़रूरी बात नहीं है कि यदि कोई पेड़ हमको किसी जगह अधिकता से मिले तो उससे हम यह नतीजा निकालें कि इस पेड़ के बीज भी बहुत होते होंगे। बहुत सी घासें और वृक्ष ऐसे होते हैं जो बाज़ बाज़ जगह बहुत कसरत से होते हैं। पर उनके बीज बहुत ही कम होते हैं। बहुत से ऐसे भी होते हैं जिनमें छोटे छोटे बहुत से बीज होते हैं; हवा उनको उड़ा कर कहीं का कहीं पहुँचा देती है; पर ख़ास ख़ास जगहों के सिवा वे और कहीं नहीं होते।

अमेरिका का पूर्वोक्त कबूतर, जिसका हमने अभी ऊपर ज़िक्र किया है, इस बात की बहुत अच्छी मिसाल है कि ऐसी कम तादाद में बढ़ने वाला पक्षी (यानी एक दफ़े में सिर्फ़ दो अंडे देनेवाला) इतनी तादाद में किस तरह बढ़ता है; हालाँकि वही सब आफ़तें, जो औरों पर आती हैं, इस पर भी आती हैं। इस कबूतर के विषय में अमेरिका के विलसन साहब ने एक बहुत अच्छा क़िस्सा बयान किया है। अमेरिका में एक जगह केंटकी है। वहाँ ४० मील लम्बा एक जंगल था। पाँच बरस पहले वहाँ कबूतर रहते थे और अंडे दिया करते थे। इस जंगल में क़रीब क़रीब सब वृक्षों पर पक्षी रहते थे। कोई भी डाली ख़ाली न थी। ये कबूतर वहाँ १० अपरैल को आये और २५ मई को चले गये। कुछ आदमियों को मालूम हुआ कि उस जंगल में कबूतर बहुत हैं। फ़ौरन कुल्हाड़ियाँ लेकर उस जंगल में वे पहुँच गये और लगे उनको पकड़ने। जंगली आदमियों ने जो देखा तो टोल के टोल जमा होकर कबूतरों पर हमला करना शुरू कर दिया। कबूतर अपने बच्चों की हिफ़ाज़त के लिए पेड़ों से २० फ़ीट की उँचाई पर उड़ रहे थे और उनके परों की आवाज़ बिजली की कड़क के समान सुनाई दे रही थी। आदमियों ने एक पेड़ पर से २०० बच्चे पकड़े। चिड़ियों पर उनकी तमाम ज़िंदगी में ऐसी आफ़त शायद कभी न आई होगी। विलसन साहब कहते हैं कि मैंने इस मैदान को कई मील तक घूम फिर कर ख़ुद देखा है। अब भी वहाँ घोंसलों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निशान बने हुए हैं। पर कबूतर अब उस मैदान को छोड़ गये हैं और ग्रीन रिवर नामक जगह की तरफ़ चले गये हैं। वहाँ भी वे उसी कसरत से हैं जिस कसरत से केंटकी में थे। ग्रीन रिवर से कबूतर सूरज निकलने के पहले ६० मील के फ़ासले पर चुगने जाया करते थे। प्रातःकाल जाकर १० बजे लौट आते थे। हम भी घूमने गये थे। सड़क हमने छोड़ दी थी और अपनी बंदूक़ लिये इधर उधर घूम रहे थे। इतने में १० बजने का वक्त हुआ और कबूतर आने लगे। आसमान बिलकुल काला हो गया। जहाँ तक निगाह जाती थी कबूतरही कबूतर उड़ते हुए दिखाई देते थे। १० बजे से हमने देखना शुरू किया था। जब बहुत देर हुई तब घड़ी निकाली। मालूम हुआ कि १½ बजा है। मैंने एक घंटा और इंतिज़ार किया; पर उनका आना बद न हुआ। इससे विलसन साहब ने नतीजा निकाला कि चिड़ियों की तादाद २,०००,०००,००० से कम न होगी। यह सिर्फ़ एक गरोह की बात हुई। अमेरिका में ऐसे न मालूम कितने गरोह रहते हैं। केंटकी का क़िस्सा पढ़कर मालूम होता है कि सचमुच ही कोई जानवर आराम से नहीं रह सकता। हर एक को सुबह से शाम तक अपनी रक्षा के लिए दूसरे जानवरों और आदमियों से लड़ना पड़ता है। सच है, दुनिया में कोई सुखी नहीं। यह बात सनातन है कि ताक़तवर कमज़ोर को नहीं रहने देता।

दुनिया में कुछ ऐसी बेइन्साफ़ी है कि ताक़तवर आदमी हक़दारों के भी हक़ छीन लेते हैं। ऊपर वाला क़िस्सा इस बात का सच्चा उदाहरण है। भला यह भी कोई इन्साफ़ की बात है कि एक क़िस्म इतनी बढ़ जाय कि दूसरी को रहने को जगह भी न मिले।

इस जीवन-संग्राम के कारण इन जानवरों को उतनी तकलीफ़ नहीं होती जितनी हम समझते हैं। उसका उनको कभी ध्यान भी नहीं आता। हमेशा ख़ुश रहते हैं। पहली बात जो जानवरों को ख़ुश रखती है यह है कि परमेश्वर ने जानवरों को उस तकलीफ़ से आज़ाद कर दिया है जो हमको मौत का ख़याल करके होती है। यदि कोई काम अचानक हो जाय तो उसकी तकलीफ़ कम होती है। यहां पर हम लिविंगस्टोन साहब का एक मशहूर क़िस्सा बयान करते हैं। साहब लिखते हैं:—"मैं एक ऊँचे पेड़ पर बैठा था। मुझको कुछ खटका मालूम हुआ। ज्योंहीं मैंने मुड़कर देखा कि एक शेर मेरे ऊपर उछल कर आया और मुझको कंधों से पकड़ कर नीचे गिरा दिया। मुझे नींद सी आगई। दर्द या ख़ौफ़ का बिलकुल ज्ञान नहीं रहा। जो झटके शेर मुझे दे रहा था वह सब मैं देखता था और दिल में समझता भी था कि यह बात हो रही है। तथापि मेरी ठीक वही हालत हो गई जो रोगी को क्लोरोफ़ार्म देने से हो जाती है। ऐसी हालत में दिमाग़ में कोई ख़लल नहीं होता। ख़ौफ़ दिल से बिलकुल जाता रहता है। बर्फ़ में जो आदमी मरते हैं उनको भी नींद सी आ जाती है। इससे मरने में तकलीफ़ नहीं होती"।

आप पूछेंगे कि जानवरों की उम्र क्योंकर हँसी ख़ुशी से कटती है। जानवरों की कुछ ऐसी हालत है कि जब उनको ख़ूब खाने को मिलता है तब उनके औलाद भी इफ़रात से होती है और जब बहुत औलाद होती है तब रोज़ी तलाश करने का मौक़ा भी कम रह जाता है। जब मौक़ा कम रह जाता है तब उनको मिहनत ज़्यादा करना पड़ती है जिससे वे ख़ूब तन्दुरुस्त और ख़ुशहाल रहते हैं। वे ख़ूब मिहनत करते हैं, ख़ूब खाते हैं, और रंज-ग़म को जानते ही नहीं। हमारी उम्र का बहुत सा हिस्सा रंज में कटता है; बहुत सा सुस्त पड़े रहने से नष्ट होता है। मिहनत हम लोग बहुत कम करते हैं। जिन लोगों को आसानी से रोज़ी मिल जाती है उनकी दशा कुछ दिनों में बहुत हीन हो जाती है। वृक्षों और जानवरों का जो हाल है मनुष्यों का भी वही है। पर मनुष्यों के विषय में फिर कभी लिखेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि जीवन-संग्राम न हो तो दुनिया की तरक्क़ी हो न हो। दुनिया में रहकर वैसी हालत कभी नहीं हो सकती जैसी एक फ़ारसी के कवि ने कहा है:

بہشت آنجا کہ آزارے نہ باشد
کسے را با کسے کارے نہ باشد

यह हालत अच्छी भी नहीं है। इससे हम यही कहेंगे कि दुनिया के काम यथावत् चलने के लिए जीवन-संग्राम की बड़ी ज़रूरत है। इसीसे ईश्वर ने उसकी योजना की है।

"भ्रमर"।

मङ्गल-माहात्म्य ।

परिमाण में मङ्गल यद्यपि पृथिवी से क़रीब आधे के है तथापि जन-साधारण की दृष्टि में यह ग्रहों में से एक प्रधान ग्रह है। भूमि का यह सबसे समीपवर्ती पड़ोसी है। यदि किसी अच्छी दूरबीन से देखा जाय तो हमें इसमें कई ऐसे ऊँचे नीचे स्थल दिखाई देते हैं जो अनुमान द्वारा पहाड़, समुद्र, द्वीप, झील इत्यादि मालूम होते हैं। मङ्गल का इस प्रकार का हृदय-ग्राही वृत्तान्त पहले पहल विलायत में सर विलियम हारशल को ज्ञात हुआ। सन् १७८१ में उसने ग्रहों की-विशेष करके मङ्गल की-नियमबद्ध परीक्षा प्रारम्भ की। उसका लक्ष्य ग्रहों की गति मालूम करके पार्थिव दिन की स्थिरता या अनस्थिरता का निश्चय करना था। इस प्रख्यात ज्योतिषी के लेख इस विषय पर लन्दन की रायल सोसाइटी के सामने सन् १७८३ में पढ़े गये। ज्योतिष-शास्त्र के इतिहास को उन्होंने बहुत कुछ उलट पलट दिया। इस ज्योतिषी ने मङ्गल पर कई काले धब्बे मालूम किये। धब्बे कभी कभी छिप जाते थे। इसका कारण उसके विचार में मङ्गल का वायुमण्डल और बादल मालूम हुआ। इन धब्बों के नियत समय पर दीखने और छिप जाने से उसने मङ्गल के दिन का भी अनुसन्धान किया और मालूम किया कि मङ्गल का एक दिन हमारे २४ घण्टे ३९ मिनट २१ सेकण्ड के बराबर है। इस ग्रह को अच्छी तरह देखने से उसे यह भी ज्ञात हुआ कि इसमें बर्फ़ से ढके हुए उत्तर और दक्षिण दो ध्रुव भी हैं। मङ्गल की बहुत सी बातें पृथिवी से मिलती जुलती देखकर सर हारशल ने यह सिद्धान्त निकाला कि पृथिवी और मङ्गल का परस्पर साहश्य सब ग्रहों से बढ़कर है। उसने अनुमान किया कि कई बातों में मङ्गल के मनुष्य भी बहुत करके हमारी ही सी दशा में होंगे। इस प्रसिद्ध ज्योतिषी के सिद्धान्तों ने लोगों में ऐसी उत्तेजना पैदा कर दी कि जिन्हें इस विषय का कुछ भी शौक़ था सब इस ओर झुक पड़े। नई नई परीक्षायें होने लगीं। यूरप के कई विज्ञान-वेत्ताओं ने इस ओर ध्यान दिया। फल यह हुआ कि वहाँ वाले आज कल मङ्गल के आसपासी महकमें के विशाल कार्य्यों की लागत जाँच रहे हैं और उसके यंजिनियरों की सूक्ष्म बुद्धि पर चकित हो रहे हैं!

मङ्गल की देश-दशा और देशों के नाम-करण की ओर भी बहुत ध्यान दिया गया है। मङ्गल का एक नक़शा प्राक्टर साहब ने, १८६९ ईसवी में, पादरी डाज़ के चित्रों की सहायता से बनाया था। उसमें यह ग्रह कई देशों में विभक्त दिखलाया गया है। उनके नाम हारशल द्वीप और लाकियर-लैंड इत्यादि हैं। नाम सब अँगरेज़ी हैं जिससे आशा की जा सकती है कि अँगरेज़ों का मुबारिक क़दम कदाचित् एक दिन मङ्गल में भी पहुँच जाय।

जो कुछ ऊपर कहा गया वह सत्य है या असत्य, इसका विचार आवश्यक है। सबसे पहले बोलोना नामक नगर के एक ज्योतिषी कैसिनी नामी ने, १६६७ में, मङ्गल के काले धब्बे एक लम्बी दूरबीन से देखे। बड़ी देर तक देखते रहने पर उसे निश्चय हुआ कि ये धब्बे स्थिर हैं। बाद में उसने मालूम किया कि मङ्गल अपनी धुरी पर २४ घंटे ४० मिनट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में घूमता है। यही इसके दिन का परिमाण है। कुछ काल के अनन्तर उसके भतीजे मरालडी ने इस विषय की फिर परीक्षा की। उसके हिसाब से मङ्गल का दिन, २४ घण्टे ३९ मिनट का निकला। कुछ दिनों बाद इस नौ-जवान ज्योतिषी ने इस ग्रह की बड़े ही मनोनिवेशपूर्वक परीक्षा प्रारम्भ की। उसने मङ्गल के कई चित्र खींचे जिनमें जल और थल की सीमायें चित्रित कीं; थल का रङ्ग हलका और जल का गहरा रक्खा। जिस समय इस ग्रह की गति एक ऐसे स्थान में थी जहाँ से अच्छी तरह परीक्षा हो सकती थी उस समय वह निरन्तर ३७ रात तक उसे देखता रहा। उसके चित्रित एक धब्बे का चित्र ऐसा सच्चा है कि आजतक वह "आवर ग्लास" के नाम से प्रसिद्ध है। उसने एक कोहनी की शक्ल का भी धब्बा मालूम किया जो थल-प्रविष्ट समुद्र का शाखा-समूह सा मालूम होता है। परन्तु उसका सबसे उपयोगी अनुसन्धान मङ्गल के ध्रुवों का मालूम करना है। उसे मङ्गल का केवल दक्षिणी ध्रुव ही बर्फ़ से ढका हुआ दिखाई दिया। उत्तरी ध्रुव सर हारशल ने पीछे से दरियाफ़्त किया। ध्रुव-प्रदेश, द्वीप और समुद्र के आश्चर्य्यकारक दृश्यों से उसे विश्वास हो गया कि मङ्गल भी पृथिवी ही की तरह एक दुनिया है, और उसकी दशा भी पृथिवीही के समान है। इसी से सम्भव है कि इसमें पृथ्वीही के ऐसे जीवधारी भी हों।

मरालडी के साठ साल पीछे सर हारशल ने फिर इस मङ्गल-रहस्य की उद्घाटना प्रारम्भ की। मरालडी को उत्तरी ध्रुव नहीं दिखाई दिया था, परन्तु हारशल ने उसे भी मालूम कर लिया। उसके चित्रों में बर्फ़ से ढके हुए कई स्थल दृष्टिगोचर होते हैं। उसने लिखा है कि कई जगह उसे श्वेत रेखायें दिखाई दी हैं, जो बहुत करके हिमाच्छादित पर्वत-शिखर हैं। यदि कोई आदमी आकाश से पृथ्वी की ओर देखे और यन्त्र इत्यादि की सहायता से भूमि आँख का विषय हो जाय तो उसे पहले हिमालय के सदृश ऊँचे पर्वतों की हिमपिहित चोटियांही दिखाई देनी चाहिए; उसके बाद भूमि*।

शैलानामवरोहतीव शिखरादुन्मज्जतां मेदिनी;
पर्णाभ्यन्तरलीनतां विजहति स्कन्दोदयात्पादपाः।
संतानैस्तनुभावनष्टसलिला व्यक्तिं भजन्त्यापगाः;
केनाप्युत्क्षिपतेव पश्य भुवनं मत्पार्श्वमानीयते॥

हारशल साहब ने लिखा है कि मङ्गल और पृथिवी की दैनिक गति एक सी है और सूर्य्य के गिर्द इनके गति-चक्र का झुकाव भी एक सा है। अन्य ग्रहों की अपेक्षा सूर्य्य, पृथिवी और मङ्गल से प्रायः एक सी दूरी पर है; और मङ्गल के वर्ष की अवधि भी बृहस्पति और शनि के आश्चर्य्यजनक वर्षों की अपेक्षा पार्थिव वर्ष से कुछ अधिक भिन्न नहीं है। जैसे पृथिवी के ध्रुव-प्रदेश सदैव हिम से ढके रहते हैं और उनका थोड़ा थोड़ा अंश बारी बारी से सूर्य्य के सम्मुख आने से पिघलता है, वैसे ही मङ्गल में भी ये सब बातें होती हैं। हमें इसके ध्रुव-प्रदेश सूर्य्य की किरणों को प्रत्यावृत्ति के कारण दिखाई देते हैं, और बर्फ़ के पिघलने पर हमें इनका आकार भी घटा हुआ प्रतीत होता है।

हारशल की सबसे उत्तम खोज मङ्गल के ध्रुवों की घटती बढ़ती का पता लगाना है। गरमी के दिनों में मङ्गल के ध्रुव छोटे और जाड़े में बड़े दिखाई देते हैं। इसका कारण हारशल बर्फ़ का पिघलना और जाड़े में जमजाना बताता है। इस सिद्धान्त में अभी तक किसी ने दूषण नहीं निकाला।

लौवल नामक एक पादरी साहब कहते हैं कि मङ्गल के बर्फ़ानी ध्रुव पृथिवी के ध्रुवों के सदृश ग्रीष्म ऋतु की अपेक्षा जाड़े में सौ गुना बढ़ जाते हैं और ध्रुव-प्रदेश की नियत सीमा से भी पन्द्रह साठ अक्षांश नीचे उतर आते हैं। जब बर्फ़ पिघल चुकती है और हिम-प्रदेश की सीमा पर एक नीली रेखा बँधजाती है तब एक अद्भुत घटना होती है अर्थात् यह हिम-प्रदेश कई जगह से फट जाता है

* कालिदास ने "शकुन्तला" में इन्द्रलोक से उतरते दुष्यन्त की आँखों के सामने ऐसा ही दृश्य खींचा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले तो काली काली दरारें ही दिखाई देती हैं, परन्तु धीरे धीरे वे भीतर धँसती जाती हैं। निदान उनकी बड़ी बड़ी खाड़ियाँ बन जाती हैं और ध्रुव-प्रदेश के दो टुकड़े हो जाते हैं। आश्चर्य्य तो यह है कि यह घटना प्रति वर्ष एकही नियत जगह पर होती है। लौवल साहब ने सिद्ध किया है कि श्वेत धब्बे, जिन्हें हम मङ्गल के ध्रुव कहते हैं, जमे हुए जल के सिवा और कुछ नहीं। यद्यपि कई ज्योतिषियों का ख़याल है कि यह केवल वायुमण्डल का आभास है।

मङ्गल और पृथिवी में इतना सादृश्य होने पर भी इनके ध्रुवों में भेद है। मङ्गल में हिमाच्छादित ध्रुव-प्रदेश की घटती बढ़ती बहुत होती है। फिर उसके ध्रुव एक से नहीं घटते बढ़ते। दक्षिण का हिम-प्रदेश उत्तर से बहुत बड़ा है। १९०३ ईसवी में यह ध्रुव माङ्गलिक वर्ष की २७ तारीख़ को ९० अंश नीचे उतर आया था। यही हाल १९०५ में भी हुआ था। परन्तु १९०४ में एक बड़ी अद्भुत घटना हुई। उस साल दक्षिण हिम-प्रदेश सारा का सारा लुप्त हो गया। यही घटना १८७७ और १८९४ में भी हुई थी।

अब हम इस ग्रह के इतिहास के उस मनोहर अंश का वर्णन करेंगे जिसके सम्बन्ध में जो० बी० शिआर पेरिली नामक, इटली के मिलान नगर की वेधशाला के परिचालक, ने बड़ा नाम पाया है।

मङ्गल में चमकीला रङ्ग स्थल का होता है और गहरा रङ्ग जल का। शिआर पेरिली ने पहले यह मालूम किया कि स्थल-भाग कई द्वीपों में बँटा हुआ है और द्वीपों का विभाग कई समुद्र-गामी नदियों द्वारा हुआ है। उसने अपने मङ्गल के चित्र में कई सीधी रेखायें खींची हैं जो समुद्र से जा मिली हैं। अधिक परीक्षा से उसे यह भी ज्ञात हुआ कि इन रेखाओं के साथ साथ एक एक रेखा और भी है। यह बात कई परीक्षाओं द्वारा सच्ची सिद्ध हुई। उसने इन दूसरी रेखाओं का नाम (Canale) अर्थात् नाड़ी रक्खा। परन्तु लोगों ने इसे (Canal) नहर समझा। यह कहने की ज़रूरत नहीं कि खाड़ी और नहर में बड़ा अंतर है। खाड़ी पानी की मार से आप से आप बन जाती है और नहरें मनुष्य बनाता है। न जाने लोगों ने "Canale" शब्द से नहर कैसे समझ लिया। कुछ भी हो इस बात से लोगों के हृदय में बड़ी हलचल मच गई। वे मंगल में भी सभ्य और शिक्षित आदमियों के अस्तित्व, उनके विशाल कार्य्य, और उनके जलाभाव के प्रतीकारों की समस्याओं पर दिल को परेशान करने लगे। बड़े बड़े ज्योतिषी भी कहने लग गये—"भला ये नहरें ध्रुव-प्रदेश से जल खींच लाने और व्यापारी नगरों का परस्पर सम्बन्ध क़ायम रखने के सिवा और क्या काम देती होंगी?" शिआर पेरिली यद्यपि इन सब बातों को सुनता था और इनकी सत्यता वा असत्यता से भी ख़ूब वाक़िफ़ था, तथापि वह बोला नहीं; क्योंकि इन कल्पनाओं का खण्डन उस की पुस्तक (L' astronomy) में मौजूद था। इस पुस्तक की पहली जिल्द में लिखा है कि "मङ्गल के नक़शे पर जो काली रेखायें हैं उन्हें हम "Canale" कहेंगे। यद्यपि हमें अभी तक मालूम नहीं कि ये क्या हैं, तथापि यह हम जानते हैं कि ये रेखायें उन काले धब्बों में, जिन्हें हम समुद्र कहते हैं, जा मिलती हैं; और स्थल पर इनका एक जाल सा फैला हुआ है। इन रेखाओं की जगह स्थिर है। तो भी इनकी शकल सदा एक सी नहीं रहती। इसका कारण हम नहीं जान सकते; क्योंकि इस विषय में हमारा ज्योतिष-सम्बन्धी ज्ञान काफ़ी नहीं। १८७९ में कई रेखायें १८७७ की अपेक्षा अधिक दिखाई दीं; और १८८२ में पिछली सब रेखायें और भी कई नई रेखाओं सहित देख पड़ीं। कभी कभी ये रेखायें अनिश्चित और धुँधली दशा में दिखाई देती हैं। पर कभी कभी ये ऐसी साफ़ और निश्चित देख पड़ती हैं मानों क़लम से खींची गई हैं। हर एक रेखा समुद्र में, या किसी अन्य रेखा में, जा मिलती हैं। यही नहीं किन्तु विशेष विशेष ऋतुओं में ये रेखायें दुगुनी दिखाई देती हैं। यह दृश्य नियत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय पर देखा जाता है और ग्रह की सारी भूमि पर इसका प्रभाव पड़ता है। जनवरी १८८० से कुछ पहले मैंने नाइल नामक रेखा को दुगुनी होते देखा। इससे मुझे बड़ा आश्चर्य्य हुआ था"।

अगले वर्ष भी शिआर पेरिली ने इसी प्रकार की कई दूसरी रेखायें देखीं। वह आश्चर्य्य में आकर कहता है—"अचरज पर अचरज मेरी आँखों के सामने से गुज़रता था। मैंने ओरोन्टिस, यूफ्रेटीज़, फीज़ान, गङ्गा* इत्यादि कई रेखायें देखीं; परन्तु सब की सब दूनी नज़र आती थीं"।

शिआर पेरिली को अपनी परीक्षा पर पूर्ण विश्वास है। उसके मत में इन घटनाओं का कारण ग्रह की स्वाभाविक स्थिति और उसकी ऋतुओं का परिवर्त्तन है।

लौवल साहब के विचार इस ज्योतिषी के विचारों से भी बढ़कर मनोरञ्जक हैं। आप कई वर्ष तक अपनी फ्लैगस्टाफ नामक वेधशाला में इस ग्रह का निरीक्षण करते रहे हैं। आपके विचार में भी मङ्गल में रेखायें हैं। आप भी उन्हें अन्य ज्योतिषियों की तरह स्थलान्तर्गत-समुद्र और नद समझते हैं। परन्तु आपका मत है कि मङ्गल बड़ा पुराना और जीर्ण ग्रह है। उसके बड़े बड़े जलार्द्र प्रदेश अब बंजर पड़े हुए हैं, और बड़े बड़े पर्वत भूमिसात् हो गये हैं। इसमें सन्देह नहीं कि सब ज्योतिषी मङ्गल को बहुत ही पुराना ग्रह मानते हैं। पर लौवल साहब की यह उपपत्ति कि, मङ्गल में आबपाशी के बड़े बड़े काम हो रहे हैं, सब पण्डितों को सम्मत नहीं। १८९६ में मङ्गल के विषय में आप लिखते हैं कि—"यदि मङ्गल में कारीगरी के कामों के निशानात का होना सम्भव है तो यह आवश्यक है कि उनके निर्म्माता भी उच्च कोटि की बुद्धि रखते हों और यदि वहाँ आबपाशी का प्रबन्ध विज्ञान-हीन आदमी करते हों तो यह सम्भव नहीं कि उनके नहरों इत्यादि में ऐसा याथार्थ्य परिमाण पाया जाय। सम्भव है कि मङ्गल-निवासियों ने ऐसे ऐसे आविष्कार किये हों जिनका हमें अभी तक स्वप्न भी नहीं है और हमारे बढ़िया से बढ़िया ज्योतिष-यन्त्रों को वे कोई चीज़ही न समझते हों। जो कुछ हम इस ग्रह में देखते हैं उससे जान पड़ता है कि वहाँ हमसे भी अधिक उन्नत मनुष्य-सृष्टि विद्यमान है"।

लौवल का मत है कि मङ्गल में आबपाशी के लिए अगणित नहरें बनी हुई हैं, जो ग्रीष्म ऋतु में ध्रुवों से जल खींच लाती हैं और इस वर्षा-हीन ग्रह में जल की आवश्यकता दूर करती हैं। लौवल साहब स्थल में बड़ी बड़ी झीलों और तालाबों का होना नहीं मानते।

यद्यपि मङ्गलस्थ मनुष्यों के विषय में लौवल के विचार बड़े ही हृदय-ग्राही हैं, तथापि हम लोगों को जो थोड़ा बहुत ज्ञान इसकी प्राकृतिक दशा का है उसके बल पर लौवल की कपोल-कल्पनायें सहसा मान लेना ठीक नहीं। मङ्गल की नहरों को लौवल साहब भूमि की नहरों से उपमा देते हैं। आपके विचार में ध्रुवों का शीतल जल इनमें बहता हुआ आस पास की भूमि को हरियाली से हरित करता है और रेतीली बंजर और ऊसर भूमि को उर्वरा बनाता है। इसी हरियाली के कारण ये नहरें हमें पृथिवी से रेखाओं के रूप में नज़र आती हैं।

लौवल और शिआर पेरिली के नक़शों में कुछ अन्तर है। शिआर पेरिली के नक़्शे भी एक दूसरे से नहीं मिलते। उनमें रेखायें भी अव्यवस्थित और मोटी हैं। पर लौवल के नक़शे में ये रेखायें बारीक और स्पष्ट हैं और शिआर पेरिली के नक़्शों से कुछ भिन्न भी हैं। लौवल के नक़्शे पर कुछ काले धब्बे हैं जो शिआर पेरिली के नक़्शे पर नहीं हैं। कोई कोई इन्हें झीलें मानते हैं; परन्तु लौवल साहब इन्हें मरु-प्रदेश के सरसब्ज़ स्थान बताते हैं।

१८७४ में, अध्यापक बरनार्ड ने एक बहुत बड़ी दूरबीन से इन धब्बों को जो देखा तो उनके रङ्ग तक भी ज्ञात हो गये। उसे सफ़ेदी मायल कुछ हरे रङ्ग

* ये मङ्गल की नदियों के नाम हैं और योरप के ज्योतिषियों के रक्खे हुए हैं। इन्हें पृथिवी की नदियाँ न समझना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखाई दिये, जिनका पानी होना असम्भव है एक और आश्चर्य्य की बात देख पड़ी कि उसने कई दफ़े मङ्गल में ऐसे पेचीदा और बारीक चिह्न देखे जिनका चित्र लेना असम्भव था। समुद्र पर ऐसे चिह्न स्थल की अपेक्षा अधिक थे। इन चिह्नों में न तो कोई सीधी रेखा देख पड़ी और न कोई काले रङ्ग की। परन्तु उनके रङ्ग में कुछ भेद ज़रूर मालूम हुआ। सच तो यह है कि हम अभी मङ्गल के विषय में निश्चय-पूर्वक कुछ कह नहीं सकते, और न उसके विज्ञान-वृद्ध लोगों के अस्तित्व आदि परही छाती ठोंक कर कुछ कह सकते हैं। हमने मङ्गल में ऐसी कौन सी वस्तु देखली है जिस पर हम हवाई क़िले बांध रहे हैं। देखी हैं केवल हमने रेखायें। बाक़ी और सब कल्पना मात्र है, जिसकी सत्यता के हमारे पास कोई प्रमाण नहीं हैं। साढ़े तीन करोड़ से लेकर छ करोड़ मील तक की दूरी से इन रेखाओं के दिखाई देने का यह अर्थ है कि हर एक रेखा हज़ारों मील लम्बी और कम से कम ढ़ाई मील चौड़ी होनी चाहिए। और उन के साथ जो दूसरी रेखायें देख पड़ती हैं वे २०० से ४०० मील की दूरी पर होनी चाहिए। यद्यपि फ्लैगस्टाफ वेध-शाला के मिस्टर लेम्पलेंड ने बड़ी मेहनत से इन रेखाओं का फ़ोटो भी लिया है, परन्तु दूरबीन के ठीक प्रयोग में जब हमें अनेक मुश्किलें पड़ती हैं तब फ़ोटो के चित्र विश्वसनीय नहीं माने जा सकते।

जून १९०३ में माडर नामक एक ज्योतिषी ने अपने विचार लिखकर रायल एस्ट्रा नोमिकल सोसाइटी नामक ज्योतिषियों की सभा को भेजे। इससे दस वर्ष पहले माडर साहब ने इस बात की परीक्षा की थी कि काले चिह्न कितनी दूरी तक आँख से देखे जास-कते हैं। तरीक़ा बहुत सीधा था। उसने पाँच लड़के अपने इच्छानुसार चुन लिये और एक मोटे काग़ज़ पर मङ्गल का स्थूल चित्र बना कर लड़कों से कोई १० फ़ीट की दूरी पर रक्खा। फिर उनसे कहा कि इस चिह्न की नक़ल उतारो। पहिली परीक्षा में पाँच में से केवल एक लड़के ने नहरें इत्यादि बनाई, बाक़ी चार ने नहीं। इसका कारण चित्र की दूरी थी। जो बालक बहुत ही समीप थे वे अत्यन्त समीपता के कारण कुछ घबरा गये। जो बहुत दूर थे वे केवल चित्र के मोटे मोटे स्थान ही चित्रित कर सके। जो मध्य में था उसने कई प्रकार की उलटी सीधी रेखायें और चिह्न खींचे। केवल वह लड़का शिआर पेरिली की नहरों इत्यादि का पूरा चित्र खैंच सका जो न बहुत दूर था न बहुत समीप। इस से मांडर ने यह परिणाम निकाला कि रेखायें केवल आभास मात्र ही हैं। प्राक्टर नाम के विद्वान् के विचार में रेखाओं का कारण किरणों का विप्र-सारण (Refraction) है। फ्लैमेरियन साहब का भी कथन है कि कई दशाओं में जो दूसरी नहरें हमें दिखाई देती हैं वे किरणों के वक्रीभाव से उत्पन्न होती हैं।

सत्तरहवीं शताब्दी के ज्योतिषियों ने लिखा है कि मङ्गल की आकृति सदा एकसी नहीं देख पड़ती। इसका कारण वे आँख को थकावट, बादलों का होना और ग्रह की दैनिक गति बताते हैं। इस ग्रह के किसी किसी स्थान के रङ्ग भी समय समय पर बदलते नज़र आते हैं। लाल रङ्ग, नारङ्गी देख पड़ने लगता है और हरा कुछ भूरा सा। २८५° रेखाँश में लीडन नगर के एक ज्योतिषी हारकेसर ने कुछ मटियाले से चिह्न दो काले धब्बों के दरमियान देखे। इन्हें उसने जल समझ कर इन के नाम हारशल का मुहाना और फ्लैमे-रियन् का समुद्र रख दिया। इस ग्रह के विषय में फ्लैमे-रियन् के विचार बड़ेही सादे और भोले भाले से हैं। उसके विचार में मङ्गल को भूमि की जाँच पृथिवी के अक्षान्वेषण की अपेक्षा सुगमता से हो सकती है। उसकी राय है कि मङ्गल के द्वीप पृथ्वी की द्वीपों से कहीं बढ़ कर हैं। मङ्गल में जल की अपेक्षा स्थल अधिक है, और उसमें भी पृथ्वी की तरह भूमध्य-सागर और झीलें तथा खाड़ियाँ है।

आश्चर्य्य की बात है कि यूरप का एक ऐसा प्रसिद्ध ज्योतिषी इन मनोहर कल्पनाओं के फन्दे में कैसे फँस गया। यह जल और स्थल का विभाग जो फ़्लैमेरियन् ने किया है, ठीक नहीं जान पड़ता। सम्भव है कि जिसे वह जल मानता है वह केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जलार्द्र स्थल हों। कई ज्योतिषियों के विचार में मङ्गल के सब्ज़ीमायल मटियाले स्थल पानी हैं, और लाल रङ्ग भूमि का है। परन्तु स्थल-चिह्न पृथिवी की झीलों और स्थलान्तर्गत-समुद्रों की तरह के ही हैं। सर हारशल मङ्गल की भूमि के लाल रङ्ग का कारण ग्रह की प्राकृतिक अवस्था बतता है; परन्तु फ्लैमेरियन् की राय है कि मङ्गल पकी हुई खेती के कारण लाल देख पड़ता है।

पहले ज्योतिषियों का ख़याल था कि मङ्गल के गिर्द पृथिवी की तरह वायुमण्डल है। परन्तु १८२२ और १८६५ में सर जे० सौथ और डौज़ साहबों ने सिद्ध किया कि मङ्गल के गिर्द वायुमण्डल नहीं है। पृथिवी की अपेक्षा मङ्गल में आकर्षण-शक्ति भी बहुत कम है। डाक्टर स्टोनी कहते हैं कि चन्द्रमा और अन्य कई छोटे छोटे ग्रहों में आकर्षण-शक्ति की न्यूनता के कारण उनके गिर्द वायु-मण्डल नहीं बन सकता। आकर्षण-शक्ति की निर्बलता के कारण मङ्गल के समीप बादल भी नहीं हैं।

इस बात को कितने ही ज्योतिषियों ने सिद्ध किया है। हम मङ्गल को दूरबीन से अच्छी तरह देख सकते हैं। इससे यह भी कहा जा सकता है कि यदि मङ्गल के पास थोड़ी बहुत वायु है भी, तो वह बहुत सूक्ष्म दशा में है। पृथिवी पर प्रत्येक मनुष्य के कन्धों पर ७½ सेर फ़ी इञ्च के हिसाब से वायु का बोझ पड़ता है। परन्तु मङ्गल में वह केवल सवा सेर ही है। यदि कोई ६ फ़ीट लम्बा आदमी मङ्गल पर पहुँच जाय तो वह प्रायः १५ फ़ीट लम्बा हो जायगा। इसी हिसाब से उसकी शक्ति और फुरती भी बढ़ जायगी। परन्तु वह बेचारा श्वास न ले सकेगा। मङ्गल सूर्य्य से कम से कम चौदह करोड़ पन्द्रह लाख मील की दूरी पर है। मङ्गल पर पृथिवी से आधा प्रकाश सूर्य्य का पहुँचता है। उसके स्थल-भाग पर पृथिवी की अपेक्षा बहुत ही कम उष्णता है। मङ्गल पर बर्फ़ से भी ३४ अंश कम गरमी है। मङ्गल सूर्य्य के गिर्द बड़े पेच और बल खा कर घूमता है जिससे इसे कोई एक करोड़ तीस लाख मील का चल पड़ता है। मङ्गल का वर्ष इसी से हमारे वर्ष से साढ़े दस महीने बड़ा है। परन्तु इसके ऋतु सब पृथ्वी ही के सदृश हैं। क्योंकि इसका दैनिक गति पृथिवी के समान है।

लौवल साहब कहते हैं कि इस ग्रह में रङ्गों की तबदीली नियत समय पर होती है। जैसे खेतों के उगने और पकने से भिन्न भिन्न ऋतुओं में पृथिवी के भिन्न भिन्न रङ्ग होते जाते हैं वैसेही मङ्गल में भी रङ्गों की तबदीली खेती इत्यादि के उगने और पकने से होती है। परन्तु ये सब कपोल-कल्पनायें हैं। इन पर विश्वास करने को जी नहीं चाहता। लौवल ने मालूम तो यह किया कि मङ्गल एक पुराना और जीर्ण ग्रह है, पर सिद्ध करने की आपने यह चेष्टा की है कि मङ्गल भी पृथिवी ही के सदृश है। अध्यापक पिकरिङ्ग के मङ्गल-विषयक विचार अधिक युक्तिसंगत हैं। उन्होंने चन्द्रमा के विषय में जो कुछ लिखा है वह मङ्गल के विषय में भी चरितार्थ होता है। आपका मत है कि चन्द्रमा में जो रेखायें दिखाई देती हैं उनमें कई स्थानों पर पर्वत-मुख बने हुए हैं। ये रेखायें आग्नेय पर्वतों के उद्गार से तहों के फटजाने से बनी हैं। उनमें पानी बहता है जिससे नीचे वाले प्रदेश हरे रहते हैं। अन्य छोटी छोटी खाड़ियों से भी पानी बहता है और हरियाली को बढ़ाता है। इसलिए जिन भागों को हम झीलें कहते हैं वे वस्तुतः हरित स्थल हैं। बादल, जो वायु के बहुत सूक्ष्म होने के कारण आकाश में नहीं रह सकते, भूमि से लगे हुए हैं। ठीक यही हाल मङ्गल का है।

चन्द्रमा और मङ्गल पुराने हैं। दोनों के जवानी के दिन बीत गये हैं। प्रकृति देवी ने उन्हें ऐसी प्रगाढ़ निद्रा में परिणत कर दिया है जो कदाचित् प्रलय से पहले न टूटेगी। इस निद्रित दशा में मङ्गल पर मनुष्य-सृष्टि का होना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असम्भव है। अतएव हमें समझना चाहिए कि बङ्गल में मनुष्य नहीं रहते।

श्रीविश्वनाथ शर्म्मा

जंगलों से लाभ।

जब कोई वस्तु हाथ से निकल जाती है तब उसके लाभ अच्छी तरह प्रकट होते हैं। जैसे कोई मनुष्य जब मर जाता है तभी उसके गुणों को लोग अच्छी तरह समझते हैं। ठीक यही दशा इस समय जंगलों की है। जंगलों के नाश से जो जो हानियाँ मनुष्य-जाति को हुई हैं वे अब हम लोगों की समझ में आने लगी हैं।

बहुत से जंगल तो खेती करने के लिए काटे गये हैं। परन्तु इस बात का ख़याल बहुत कम रक्खा गया है कि जहाँ जहाँ वे काटे जाते हैं वहाँ वहाँ की भूमि उपजाऊ है या नहीं। इसके सिवा वे जलाने, घर बनाने, व्यापार करने इत्यादि के लिए भी काटे गये हैं। इसमें इस बात का आगा पीछा नहीं सोचा गया कि ख़र्च के लिए जितने जंगल की आवश्यकता है उतना ही काटा जाय। मनुष्यों की आपसी ऊपराचढ़ी ने भी जंगलों का सत्यानाश किया है। क ने एक पेड़ काटा तो ख ने दो काट लिये। किसी समय यह भी हवा चली थी कि जंगलों से मैलेरिया आदि रोग फैलते हैं। यह भी एक प्रबल कारण जंगलों के नाश होने का है। जंगलों में आग लगा कर पशुओं के चारे के लिए नई घास पैदा की जाती है। इससे भी जंगलों को बड़ी हानि पहुँची है।

इस प्रकार इधर तो मनुष्य-संख्या बढ़ी। उधर जंगलों का लोप होता गया। फल यह हुआ कि जलाने के लिए काफ़ी लकड़ी नहीं मिलती। कोयले, उपले, या तेल से आग जलाने का काम लिया जाता है। मकानों के लिए लकड़ी मिलनी कठिन हो गई है। साल-देवदार की जगह धनी लोग लाहे को काम में लाते हैं। निर्धनी बाँस से ही अपनी गुज़र चलाते हैं। घास का अभाव सा हो गया है। खेतों में घास उगाने की नौबत आ पहुँची है। गाय, भैंस पालना मुशकिल हो गया है। इससे दूध, दही, घी की कमी हो गई है। बहुत सी जड़ी-बूटियाँ, जिनका वर्णन प्राचीन पुस्तकों में मिलता है, अब अदृश्य हो गई हैं। कन्द, मूल आदि भी अब नाम मात्र को रह गये हैं।

किन्तु समय ने पलटा खाया है। कुछ दिनों से जंगलों का भाग्य चमका है। विद्वानों ने खोज और अनुभव से जान लिया है कि जंगलों की कमी होना बड़े भारी अनर्थ का कारण है। पहले पहल जर्मन लोगों ही ने इस तत्त्व को समझा। उन्हीं ने जंगल संरक्षित रख कर उससे सांसारिक काम निकालने की युक्ति निकाली। क्रमशः यह विद्या जर्मनी से सारी दुनिया में फैल गई है। यहाँ तक कि जंगलों का एक विभाग ही अलग हो गया है। जंगलों से अच्छी आमदनी होती है। वनविद्या (Forestry) विद्या की एक शाखा हो गई है। वनस्पति-विज्ञान (Botany) की भी अच्छी उन्नति हुई है। संसार की प्रत्येक जाति जंगलों की रक्षा और उन्नति करने में बद्धपरिकर है। भारतवर्ष में भी अँगरेज़ी सरकार और देशी राज्यों का ध्यान इस ओर आकर्षित हो गया है। कई जगह तो यह देखने में आता है कि प्रायः पचास वर्ष में इतनी आमदनी आबादी से नहीं हुई जितनी कि जंगलों से हुई है।

वन-विद्या वनों की उचित रक्षा करना सिखलाती है। जो पेड़ निकम्मे हैं वे काट दिये जाते हैं। जो होनहार हैं वे पाले पोसे जाते हैं। जंगल कई भागों में बाँट दिये जाते हैं। हर एक भाग बीस या तीस वर्ष में काटा जाता है। इससे वे ज्यों के त्यों बने रहते हैं। जिस जगह जो पेड़ ख़ूब हो सकते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं उसी जगह वे लगाये जाते हैं। आग, लताओं, और कीड़ों से वन की रक्षा की जाती है। लतायें काट दी जाती हैं। ख़ास ख़ास टुकड़ों में गायें, भैंसें नहीं चरने पातीं, इससे पौधों को हानि नहीं पहुँचती। सारांश यह कि वनों का यथोचित बचाव किया जाता है, और साथ ही लकड़ी, घास, कोयला इत्यादि की आमदनी उनसे होती जाती है। उनकी पैदावार से व्यापार भी किया जाता है। जंगल की पैदावारों में फल, फूल, पत्तियाँ, जड़, शहद, जंगल के खनिज पदार्थ, पत्थर, धातु, मछली इत्यादि भी सम्मिलित हैं। ये सब चीज़ें जंगल ही की सीमा के भीतर होती हैं।

वन-विद्या ने बहुत उन्नति की है। उसके अधिकारियों की, जिनके आचार्य्य इस समय जर्मनी देशवासी डाक्टर शिलक हैं, यह राय है कि जंगलों से और भी अनेक लाभ हैं। देश के जलवायु पर जंगलों का बड़ा असर पड़ता है। वे उसे समभाव पर रखते हैं। जंगलों के होने से वर्षा अधिक होती है और वह कहीं कम कहीं ज़्यादा नहीं होने पाती। अर्थात् सब जगह बराबर होती है। उनसे नदियों का पानी एकसा रहता है। क्योंकि जंगलों से बाढ़ की रुकावट होती है। जंगलों से ज़मीन नहीं कटने पाती और टूट टूट कर नीचे नहीं गिरती। बर्फ़ की विस्तृत और भारी चट्टानें फिसलने नहीं पातीं। नदियों में बजरी जमा नहीं होती। जंगलों के कारण रेत एक जगह से दूसरी जगह नहीं जाते। जंगल गर्म या ठंडी हवा के क्रूर झकोरों से फसल की रक्षा करते हैं। उनकी सहायता से फसल बिगड़ने नहीं पाती। तत्त्वदर्शियों ने ये सिद्धान्त बहुत खोज कर निकाले हैं। कहा जाता है कि काश्मीर में महाराजा गुलाबसिंह के ज़माने में आदमी के कंधे तक बर्फ़ गिरती थी। पर महाराजा रणवीरसिंह के समय में घुटनेही तक गिर कर रहजाती थी। अब तो कभी कभी बिना हिमवृष्टि के ही हेमन्त चला जाता है। नदियों का पानी भी घट गया है। जिन गांवों में पहले धान बोये जाते थे वहां पानी न रहने से अब नहीं बोये जाते। सोतों का पानी घट चला है। काश्मीर की आबोहवा अब पंजाब की सी होती जाती है। यही दशा दक्षिण हिन्दुस्तान की भी है। वहाँ अब पहले की अपेक्षा वर्षा कम होती है। पंजाब, राजपूताना, संयुक्त-प्रदेश और बंगाल में भी जलवायु तथा पवन के परिवर्त्तन और नदियों में पानी कम हो जाने का उलाहना है। नदियों में पानी कम होने से व्यापार को भी धक्का लगता है, क्योंकि उनमें बड़ी बड़ी नावें नहीं चल सकतीं। जंगलनाशही इसका मुख्य कारण है। पहाड़ी प्रदेशों में यह प्रत्यक्ष देखा जाता है कि जिन पहाड़ों का जंगल कट गया है वहाँ के सोतों का पानी भी घट गया है या सूख गया है। उनके नीचे की सम भूमि में अब वैसी अच्छी खेती नहीं होती, जैसी कि पहले होती थी, क्योंकि जंगल के कटने से ज़मीन की तरी जाती रही है और पत्तियाँ बह कर खेतों में नहीं आतीं। इस लिए उनकी पैदावार घट गई है। जिन बस्तियों के आसपास के वन कट गये हैं वहां धूप और हवा अब बहुत सताती है।

परमेश्वर की अपार माया है। जिन जंगलों का पहले इतना अनादर था अब उनका उतनाही आदर है। इस समय अमेरिका में जंगल-रक्षा की बड़ी धूम मची है। भारत-गवर्नमेंट ने भी जंगल-सम्बन्धी विविध प्रस्तावों पर अनुसंधान करने की आज्ञा दी है। इस से आशा की जाती है कि जंगलों का निष्ठुर नाश बन्द हो जायगा और उस नाश से होने वाली हानियों से देश की रक्षा होगी।

गोविन्दप्रसाद धिलडियाल

पुस्तक-परीक्षा।

१—हिन्दी-बालसुधा। भवानी प्रेस, हुशंगाबाद। मैनेजर पण्डित यशवन्त मुकुन्द सोले इस मासिक पत्र को जनवरी १९०९ से निकालने लगे हैं। [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका प्रथम अङ्क हमारे पास आया है। इसके सम्पादक का कथन है कि "इस मासिक पत्रिका के निकालने में पाठकों का मनोरञ्जन करने के सिवा हमारा और कोई उद्देश नहीं है।" जो हो, नाम और लेखों से मालूम होता है कि यह बालकों के लिए निकाला गया है। नया होने के कारण अभी इसके विषय में और कुछ नहीं कहा जा सकता। वार्षिक मूल्य सवा रुपया है।

❁

३—महात्मा बुद्ध का जीवन-चरित। बाबू वृन्दावनलाल वर्मा द्वारा संकलित और कुँवर हनुमन्तसिंह रघुवंशी, अध्यक्ष राजपूत ऐंग्लो-ओरियण्टल प्रेस, आगरा द्वारा प्रकाशित। प्रकाशक से चार आने में आया। सभ्य संसार की प्रायः सभी भाषाओं में बुद्ध के चरित-विषयक अब तक सैकड़ों ग्रंथ बन चुके हैं। पर हिन्दी में दो एक पुस्तकों के सिवा और नहीं है। बाबू वृन्दावनलाल ने अच्छा किया जो यह छोटी सी पुस्तक लिखी। पुस्तक पढ़ने लायक़ है। आपका परिश्रम प्रशंसनीय है। बुद्ध के संक्षिप्त चरित के सिवा इस पुस्तक के अन्त में बौद्ध धर्म का भी संक्षिप्त वर्णन है।

❁

४—पशुजगत्। इस पुस्तक में सब मिलाकर दस परिच्छेद हैं। इनमें से शुरू के सात परिच्छेदों में पशुओं की उत्पत्ति, श्रेणियाँ, रूप, आकार, स्वभाव, गुण, दुर्गुण आदि का वर्णन है। आठवें में नाना प्रकार के पशुओं के साथ नाना प्रकार के मनुष्यों की तुलना की गई है। नवें में पशुओं पर मनुष्यों के दुराचार का वर्णन है। दसवें में पशुओं के सम्बन्ध में मनुष्यों के कर्त्तव्य बतलाये गये हैं। पुस्तक बहुत अच्छी है और प्रत्येक विचारशील मनुष्य के पढ़ने योग्य है। इसके लेखक का नाम पुस्तक में कहीं नहीं लिखा। मूल्य ढाई आने। मिलने का पता—सुपरिन्टेंडेंट, देवसमाज-प्रधानकार्य्यालय, लाहौर।

४—सरल भगवद्गीता। यह श्रीमद्भगवद्गीता का हिन्दी अनुवाद है। अनुवाद की भाषा सरल है; कम पढ़े आदमी भी इसे अच्छी तरह समझ सकते हैं। अनुवादकर्त्ता का नाम है—बाबू अयोध्याप्रसाद (उपनाम रसिकलाल) भंडारी खत्री। मूल्य आठ आने। मिलने का पता—अयोध्याप्रसाद एंड सन्स मुज़फ़्फ़रपुर।

❁

५—तिलक केश (?)। इस पुस्तक में पण्डित बाल गंगाधर तिलक के मुक़द्दमे की कारर्वाई के सिवा आदि में उनकी संक्षिप्त जीवनी और अन्त में अपील तथा कुछ कवितायें हैं। भाषा में व्याकरण और छापे की बेहद ग़लतियाँ हैं। बीच बीच में न मालूम कितने विज्ञापन भी हैं। इससे मालूम होता है कि इस पुस्तक के कर्त्ता का मुख्य उद्देश विज्ञापन देना ही है। इसके "सम्पादक प्रकाशक-प्रिंटर-और मालिक" पण्डित रामदेव शर्म्मा हैं। मूल्य आठ आने। मिलने का पता—श्रीराम कम्पनी, बम्बई, नं० २।

❁

६—हेमलता। बङ्गभाषा में हेमलता नामक एक उपन्यास है। उसी का यह श्रीवैद्यनाथसिंह कृत अनुवाद है। अनुवादक ने मूल लेखक का नाम पुस्तक भर में कहीं नहीं लिखा। उपन्यास साधारणतः अच्छा है। पर अनुवाद की भाषा कुछ क्लिष्ट है। इसके सिवा उसमें विहारी शब्दों की भी भरमार है। मूल्य छः आने। मिलने का पता—श्रीवैद्यनाथसिंह, राजविद्यालय, चम्पानगर, पुरनियाँ।

❁

७—कर्म्मदिवाकर डायरी। यह डायरी अन्य डायरियों की तरह नहीं है; किन्तु उन सबसे भिन्न प्रकार की है। सबेरे से शाम तक कौन कौन सुकर्म किये और कौन नहीं—जो लोग इस बात का लेखा रखना चाहते हैं यह उन्हीं के काम की है। मारवाड़ी-पाठशाला, भागलपुर, के अध्यापक पाण्डेय शिवयत्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शर्म्मा ने इसे प्रकाशित किया है। वही इसे एक आने में बेचते हैं।

❁

८—प्रेमी महात्मा या भिवानी के गुप्त भेद। आनन्दलहरी-उपन्यासमाला का यह प्रथम अङ्क है। इसके रचयिता पण्डित चुन्नीलाल तिवाड़ी हैं और प्रकाशक बाबू रामलाल नेमाणी, अध्यक्ष रामप्रेस, न० ५९ तूलापट्टी, कलकत्ता। चार आने में प्रकाशक से प्राप्य। इस उपन्यास में दुराचारियों के दुराचार का वर्णन है। हमारी समझ में ऐसे कुरुचिपूर्ण उपन्यासों के प्रचार से दुराचार कम होने की अपेक्षा अधिक बढ़ता है। इसके सिवा इसमें कितनी ही अस्वाभाविक बातें भी हैं। भाषा भी दोष-पूर्ण है। लेखक महाशय को चाहिए कि इन सूचनाओं के कारण हमसे रुष्ट न होकर इन पर विचार करें और यदि हो सके तो उपन्यास लिखने में रेनाल्ड की जगह सर वाल्टर स्काट, मेरी कारेली, जार्ज एलियट, बङ्किमचन्द्र, रवीन्द्रनाथ, गोवर्द्धनराम त्रिपाठी आदि में से किसी को अपना आदर्श मानें।

❁

९—श्रीमद्भागवत, दशमचरितोपखान, भाषा। इसमें श्रीकृष्णजी की लीलाओं का छन्दोबद्ध वर्णन है। प्रत्येक छन्द के अन्तिम चरण में एक लोकोक्ति है जो उस छन्द में वर्णन की हुई घटना से कुछ न कुछ सम्बन्ध रखती है। इसको रचना कवि जगतनन्द ने की है और चतुर्वेदी चतुर्भुज पाँडे ने पण्डित शिवप्रसाद शर्म्मा से शुद्ध कराकर इसे प्रकाशित किया है। संशोधक महाशय से कटनी मुड़वारा के पते पर यह एक आने में मिल सकती है।

❁

१०—शृंगारतिलक-सटीक। महाकवि कालिदास-प्रणीत शृंगारतिलक का यह हिन्दी में पद्यानुवाद है। ऊपर मूल श्लोक हैं, नीचे उनका छन्दोबद्ध अर्थ। अनुवादकर्त्ता पण्डित जानकीप्रसाद द्विवेदी हैं और प्रकाशक कटनी मुड़वारा के स्कूलों के डिपटी इन्सपेक्टर बाबू फदालीलाल बी० ए०। जो लोग चाहें प्रकाशक महाशय से तीन पैसे में मँगालें।

❁

११—कलिचरित्र। कवि बाण पाठक-द्वारा रचित, पण्डित शिवप्रसाद शर्म्मा द्वारा संशोधित और चतुर्वेदी चतुर्भुज पाँडे द्वारा प्रकाशित। इस पुस्तिका में कलियुग की लीलाओं का पद्य में वर्णन है। मूल्य आध आना। मिलने का पता—पण्डित शिवप्रसाद शर्म्मा, हेडमास्टर, ब्रेंच स्कूल, कटनी मुड़वारा, ज़िला जबलपुर।

❁

१२—पवित्र जीवन और नीतिशिक्षा। श्रीयुत मुंशीलाल एम० ए० कृत। इस छोटी सी पुस्तक में सब मिलाकर बीस छोटे छोटे पाठ हैं। उनमें धर्म और नीति की उत्तम शिक्षा दी गई है। मुंशीलाल जी ऐसी ऐसी पुस्तकें लिखने में सिद्धहस्त हैं। पुस्तक बालक, युवा, वृद्ध सबके लिए लाभदायक है। यदि इसकी भाषा अपेक्षाकृत अधिक सरल और परिमार्जित होती तो और भी अच्छा होता। मूल्य डेढ़ आना। मिलने का पता—श्रीयुत मुंशीलाल, एम० ए०, गवर्नमेंट पेंशनर, कालीमाता की गली, गुमटी बाज़ार, लाहौर।

❁

१३—संवत् १९६९ का पञ्चाङ्ग। यह पञ्चाङ्ग भारत को सुखसञ्चारक कम्पनी ने टाइप में छपाकर प्रकाशित किया है। पञ्चाङ्ग अच्छा छपा है। साइज़ बहुत बड़ा नहीं; इससे पास रखने में सुभीता होता है। पञ्चाङ्ग-सम्बन्धी प्रायः सभी बातें इसमें हैं। डाक, तार, रेलवे और अदालत से सम्बन्ध रखने वाली कितनीहीं बातें भी इसमें हैं जो पञ्चाङ्ग रखने वालों के बहुत काम आ सकती हैं। सुसञ्चारक कम्पनी के विज्ञापन भी इस पञ्चाङ्ग में हैं। यह पञ्चाङ्ग सरस्वती के ग्राहकों को पूरा कम्पनी मुफ़्त देती है। और लोगों को भी शायद यह मुफ़्त ही मिलता होगा।

Printed and published by Panch Kory Mittra at the Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

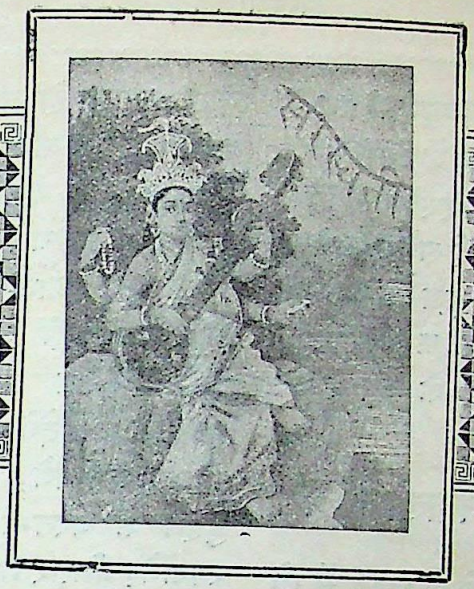

सरस्वती।

भाग १०] १ जून, १९०९। ज्येष्ठ शुक्ल १३, १९६५। [संख्या ६

विविध विषय।

१—काग़ज़ का ख़र्च।

यदि यह कहा जाय कि जिस देश में जितनाही अधिक काग़ज़ ख़र्च होता है वह देश उतनाही अधिक शिक्षित है तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं। क्योंकि काग़ज़ विशेष कर पुस्तकों, मासिक पत्रों और समाचारपत्रोंही पर ख़र्च होता है। और यही चीज़ें विद्या का भाण्डार तथा शिक्षा का द्वार हैं। इस हिसाब से संयुक्त राज्य अमेरिका दुनिया भर में सबसे अधिक शिक्षित देश है। क्योंकि वहीं सबसे अधिक काग़ज़ ख़र्च होता है। साल भर में जितना काग़ज़ अमेरिका में ख़र्च होता है यदि वह इकट्ठा किया जाय तो ३०० फ़ीट ऊँचा और ३७७ फ़ीट घेरे का एक बड़ा मीनार तैयार हो सकता है। तौल में यह कोई २८ लाख टन (एक टन क़रीब अट्ठाईस मन का होता है) होगा। दूसरा नम्बर जर्मनी का है। उसमें साल भर में जितना काग़ज़ ख़र्च होता है यदि उसका खम्भा बनाया जाय तो वह उँचाई में ५८८ फ़ीट, घेरे में २६७ फ़ीट और तौल में १० लाख टन होगा। इसी तरह इंगलैंड वाले की उँचाई ४९५ फ़ीट, घेरा २२५ फ़ीट और तौल ६ लाख टन होगी। फ़्राँसवाले की उँचाई ४४५ फ़ीट, घेरा २०२ फ़ीट और तौल कोई ४½ लाख टन होगी। आस्ट्रिया वाला उँचाई में ४१८ फ़ीट, घेरे में १९० फ़ीट और तौल में ४ लाख टन होगा। सब के पीछे इटली वाले का नम्बर है। उसकी उँचाई ३७९ फ़ीट, घेरा १७२ फ़ीट और तौल ३ लाख टन होगी। इन छहों देशों में काग़ज़ पैदा करने के काम में कोई तीस खरब रुपये लगे हुए हैं। कुछ ठिकाना है! इतना अधिक धन केवल छः देशों के काग़ज़ बनाने में! दुनिया के अन्य देशों का हिसाब जोड़ा जाय तो शायद पद्मों तक नौबत पहुँचेगी। इससे पाठक समझ जायँगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि दुनिया भर में कितना काग़ज़ ख़र्च होता है और वह सभ्य संसार की नस नस में किस तरह समा गया है। तिस पर भी उसका इस्तेमाल दिन पर दिन बढ़ता जाता है। शायद कोई समय आवेगा जब दुनिया के समस्त जंगल काग़ज़ के रूप में परिणत हो जायँगे। इसी आशङ्का से अमेरिकावाले जंगलों की रक्षा के लिए तरह तरह के उपाय कर रहे हैं।

२—इमारतों के दो टुकड़े करनेवाला यन्त्र।

कुछ दिन पहले जो बातें किसी के ध्यान में भी नहीं आ सकती थीं आज वही बातें करके योरप के वैज्ञानिक-गण संसार को चकित कर रहे हैं। क्या यह बात किसी साधारण आदमी के ध्यान में आ सकती है कि बड़ी बड़ी इमारतें, लकड़ी के कुन्दे की तरह आरे से चीरी जा सकती हैं? नहीं। पर योरप में एक ऐसा यन्त्र ईजाद हुआ है जिससे यह अद्भुत और आश्चर्य्यजनक काम किया जा सकता है। अब तक इससे दो इमारतें चीरी जा चुकी हैं। एक तो जर्मनी का एक गिरजाघर और दूसरी पेरिस नगर की एक चौमंज़िला इमारत। ख़ूबी यह कि इमारतों के चीरने से न तो उनमें कमज़ोरी आती है और न उनके रहनेवालों के काम में ख़लल पड़ता है। इस यन्त्र का मुख्य अङ्ग बिजली का एक तार होता है जो पत्थर के बड़े बड़े टुकड़ों को बड़ी आसानी से काट डालता है। यह यन्त्र बिजली के ज़ोर से चलता है। सबसे बड़ी बात यह है कि इमारतों के चीरने में बहुत थोड़ा समय और बहुत कम ख़र्च लगता है। देखें यह कल कभी हिन्दुस्तान में भी आती है या नहीं।

३—शुद्ध और पवित्र दूध।

शुद्ध और पवित्र दूध मिलना बहुत कठिन है। इसकी शिकायत केवल हिन्दुस्तान ही में नहीं, पश्चिमी देशों में भी है। पर हम लोगों में और उनमें बड़ा अन्तर है। हम लोग केवल शिकायत करके सन्तुष्ट हो जाते हैं; वे लोग उसे दूर करने का उपाय भी करते हैं। अपने इसी गुण के अनुसार डेनमार्क की राजधानी कोपेनहेगिन के निवासियों ने शुद्ध दूध बेचने के लिए एक कम्पनी बनाई है। इसकी पूँजी आजकल ४५००० रुपये है। यह कम्पनी ख़ुद गायें नहीं रखती; किन्तु ग्वालों को ठेका दे देती है और उनसे शर्तें कर लेती है कि वे लोग ख़ालिस दूध देंगे; गायों को कम्पनी की बनाई हुई चीज़ें खिलायँगे; गायों की, चौपाये घर की, दूध दुहने के बरतनों की और अपनी ख़ूब सफ़ाई रक्खेंगे; बीमार गायों को अलग रक्खेंगे और डाक्टर द्वारा उनका इलाज करायेंगे। कम्पनी के इन्सपेक्टर समय समय पर ग्वालों के घर जाकर देखते हैं कि इन शर्तों की पाबन्दी ठीक ठीक होती है या नहीं। जिन लोगों ने देखा है वे कहते हैं कि इन शर्तों की पाबन्दी पूरे तौर से की जाती है। गायघर, गायें और ग्वाले ख़ूब साफ़ रहते हैं। दुहने के बाद ही दूध छाना जाता है और ठंढा करने के लिए एक ठंढे कमरे में रख दिया जाता है। इसके बाद कम्पनी के घर में भेज दिया जाता है। वहाँ वह तौला, नापा और श्रेणीबद्ध किया जाता है। इसके बाद नमूने के तौर पर थोड़ा सा दूध रासायनिक परीक्षागार में और थोड़ा चखकर परीक्षा करने वाली स्त्रियों के पास भेजा जाता है। क्योंकि मनुष्यों की अपेक्षा स्त्रियों की रसनेन्द्रिय अधिक प्रबल होती है। फिर तीन छन्नों से तीन बार छानकर उसे ठंढा कर लेते हैं और बोतलों में भर कर यथास्थान भेज देते हैं। इस कम्पनी में इस समय ४३० आदमी काम करते हैं। कोई चालीस ग्वालों से ठेका है जो पाँच हज़ार गायों का दूध कम्पनी के कारख़ाने में नित्य भेजते हैं। शुद्ध दूध मिलने का प्रबन्ध हो जाने से अब कोपेनहेगन में दूना दूध ख़र्च होने लगा है। कम्पनी की देखा देखी अब वहाँ और लोग भी शुद्ध दूध बेचने लगे हैं। केवल उसी देश में नहीं, किन्तु नारवे, स्वीडन और जरमनी में भी अब शुद्ध दूध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेचने वाली कम्पनियाँ बन गई हैं। क्या हिन्दुस्तान में ऐसी कम्पनियाँ नहीं बन सकतीं?

४—पक्की स्याही उत्पन्न करने वाला वृक्ष।

हालही में एक ऐसे वृक्ष का पता लगा है जिसके फल से वैसी ही उत्तम और पक्की स्याही निकलती है जैसी कि छापेख़ानों में काम में लाई जाती है। इस जाति के वृक्ष को वनस्पति-शास्त्र-वेत्ता लोग Semecarpus Anacardium कहते हैं। यह भारतवर्ष, उत्तरी आस्ट्रेलिया और वेस्ट इंडीज़ नामक टापुओं में उत्पन्न होता है। इसका फल सूखने पर काला हो जाता है। इसके भीतर का रस भी काले रंग का होता है। यह सूत रँगने, वार्निश करने और लिखने के काम में आ सकता है। ईश्वर ने संसार में अनेक अद्भुत अद्भुत पदार्थ पैदा किये हैं। यह वृक्ष भी उन्हीं में से है।

५—स्टाम्प-विक्रेता यन्त्र।

योरप और अमेरिका में लोग दिन रात अपने अपने कामों में व्यस्त रहते हैं। डाक के टिकटों की उन्हें हर घड़ी आवश्यकता पड़ती है। पर डाकख़ानों में हर वक़्त टिकट नहीं मिलते। इससे काम में विघ्न आता था। इसे दूर करने के लिए कुछ दिनों से योरप वालों ने टिकट बेचने वाले यन्त्र ईजाद किये हैं। वहाँ ये यन्त्र दिन रात टिकट बेचा करते हैं। अमेरिका में अब तक ऐसे यन्त्र न थे। हालही में वहाँ वालों ने भी ऐसे तीन यन्त्र न्यूयार्क शहर में रक्खे हैं जो आध आना, एक आना और ढाई आने के डाक-टिकट बेचते हैं। इन यन्त्रों के द्वारा एक आने का टिकट बेचने में बड़ी गड़बड़ होने का डर था। कारण यह कि अमेरिका में एक आने का कोई सिक्का नहीं। इसके लिए यह तरकीब निकाली गई है कि जब आध आने वाला सिक्का यन्त्र में दो बार डाला जाय तभी टिकट मिले। जितनी क़ीमत वाले जितने टिकट लेने हों उतनी ही क़ीमत वाले उतने सिक्के यन्त्र में डाल देने से उतनेही मूल्य के टिकट एक छेद के द्वारा बाहर निकल पड़ेंगे। यन्त्र छूने या घुमाने की कोई ज़रूरत नहीं। जिस यन्त्र में जो सिक्का डालना चाहिए उससे बड़ा तो जाही नहीं सकता, और यदि छोटा डाला जाय तो यन्त्र चट उसे बाहर फेंक देता है! इस तरह कोई उसे धोखा भी नहीं दे सकता।

६—सोना निकालने की एक नई कल।

पहाड़ी घाटियों और नदियों के पेंदों तथा उनके आस पास की भूमि में मनों सोना मिट्टी और बालू में मिला पड़ा है। कुछ दिन पहले उसके निकालने की तरकीब लोगों को मालूम न थी। अभी थोड़ा समय हुआ न्यूज़ीलैंड-निवासी एक विद्वान् ने इसके लिए भी एक कल बना डाली। ऐसी पाँच सौ कलें अमेरिका के संयुक्त राज्य और कनाडा में चल रही हैं। कुछ ही दिनों में इन कलों के द्वारा बालू और मिट्टी से कोई साढ़े दस करोड़ रुपये का सोना निकला है। इस अद्भुत यन्त्र के द्वारा सोना निकालने के लिए हाल ही में और भी कई कम्पनियाँ खड़ी हुई हैं जो अपना काम बड़े उत्साह से कर रही हैं। इन कलों से काम लेने से जैसा लाभ होता है और जितना अधिक सोना निकलता है उसे देख कर यूरप और अमेरिकावालों का ध्यान इसकी तरफ़ विशेष रूप से आकर्षित हुआ है। लोगों का अनुमान है कि यदि पाँच सौ कलें और काम करने लगें तो दुनिया भर में जितना सोना इस समय निकलता है उससे दूना निकलने लगे और उसका मूल्य घट कर आधा रह जाय।

७—अमेरिका के ग्रेजुएट अर्थात् एम० ए०, बी० ए०।

बैरनस नाम के एक साहब ने अमेरिका के येल-विश्वविद्यालय के ग्रेजुएटों का कुछ हाल प्रकाशित किया है। उससे इस बात का अच्छा पता चलता है कि पिछले सौ वर्षों में अमेरिका के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षित लोगों के विचारों में कितना अन्तर हो गया है। अठारहवीं शताब्दी में प्रति सैकड़ा सत्रह ग्रेजुएट वकील बनते थे; परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में प्रति सैकड़ा पैंतीस ग्रेजुएट वकील बनने लगे। इसी तरह अठारहवीं शताब्दी में सौ में छत्तीस ग्रेजुएट पादरी बनते थे; परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में उनकी संख्या सौ में आठ ही रह गई। इससे मालूम होता है कि अब ग्रेजुएट लोग पादरी बनने की अपेक्षा वकील बनना अधिक पसंद करते हैं। इसके सिवा बैरनस साहब ने यह भी सप्रमाण सिद्ध किया है कि विवाहित ग्रेजुएटों की संख्या दिन पर दिन घटती जाती है। अठारहवीं शताब्दी में प्रति सैकड़ा अठठासी ग्रेजुएट विवाहित होते थे; परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में उनकी संख्या घट कर सौ में तिरसठही रह गई। इसी तरह पिछले सौ वर्षों में विवाह करने की उम्र भी बढ़ गई है। अर्थात् पहले विवाह के समय की उम्र का औसत सत्ताईस था; परन्तु अब तीस है। ग्रेजुएटों के बच्चे भी पहले की अपेक्षा कम पैदा होते हैं। सौ वर्ष पहले प्रत्येक ग्रेजुएट के बच्चों की संख्या का औसत पाँच था; परन्तु अब यह घट कर दोही रह गया है। इन सब बातों से पाठक अमेरिका के वर्त्तमान शिक्षित लोगों की प्रवृत्ति का अनुमान कर सकते हैं और यदि चाहें तो कुछ सीख भी सकते हैं।

८—मृत्यु।

मृत्यु के समान भयंकर और रहस्य-पूर्ण चीज़ की चर्चा बहुत कम लोग करते हैं। पर अमेरिका के हमिस्टन नामक एक डाक्टर ने लगातार पाँच वर्ष तक मृत्यु से सम्बन्ध रखनेवाली बातों का अध्ययन और अनुशीलन किया है। इतने दिनों में आपने कोई पन्द्रह हज़ार मनुष्यों की मृत्यु की वैज्ञानिक रीति से परीक्षा की है। मृत्यु के विषय में आपने जो सिद्धान्त स्थिर किये हैं वे ध्यान देने योग्य हैं। डाक्टर साहब का कथन है कि पापी और पुण्यात्मा दोनों की मृत्यु एकसी होती है। अर्थात् दुनिया के अधिकांश लोगों का यह ख़याल, कि मरते समय पापी मनुष्य को अपेक्षाकृत अधिक कष्ट होता है, ग़लत है। आपके मतानुसार मृत्यु के कुछ देर पहले सब प्रकार के दुख-दर्द दूर होजाते हैं; मरने में कोई कष्ट नहीं होता।

९—शीघ्र-लिपि-प्रणाली।

संक्षिप्त लेखन-प्रणाली या शार्ट हैंड राइटिंग किसे कहते हैं और उससे क्या लाभ हैं, इसे सब लोग जानते हैं। इसके प्रचार ने अँगरेज़ी-भाषा-भाषी संसार को अनन्त लाभ पहुँचाये हैं। इसके आविष्कारक आइज़क पिटमैन नाम के एक साहब थे। भारतवर्ष की देश-भाषाओं में यदि इसका प्रचार हो जाय तो राजा और प्रजा का बहुत कुछ लाभ हो सकता है। इसी विचार से बँगाल गवर्नमेंट बँगला की शीघ्र-लिपि-प्रणाली निकालने के लिए कुछ दिनों से उद्योग कर रही है। कुछ महीने हुए मदरास गवर्नमेंट ने भी उन लोगों को पुरस्कार देने का विज्ञापन दिया था जो तामील, तैलंगी, कनाड़ी और मलयालम की ऐसी शीघ्र-लिपि-प्रणाली का आविष्कार करें जिसके द्वारा उन भाषाओं के कम से कम साठ शब्द एक मिनिट में लिखे जा सकें। इकत्तीस आदमियों के कोशिश करने पर भी तैलंगी, कनाड़ी और मलयालम की सन्तोषजनक शीघ्र-लिपि-प्रणाली कोई न निकाल सका। तामील के लिए चौदह आदमियों ने कोशिश की थी। इनमें से तीन की शीघ्र-लिपि-प्रणाली सन्तोषजनक समझी गई। उन्हें नियत पुरस्कार भी मिला। इन तीन सज्जनों में दो ब्राह्मण हैं, एक पादरी। पहले ही परीक्षा एक बार फिर होनेवाली है। उसमें केवल सरकारी नौकर और पुलिस-कर्मचारी ही प्रविष्ट हो सकेंगे। कुछ दिन हुए देहली के एक मुसलमान सज्जन ने लिखा था कि वे उर्दू की संक्षिप्त लेखनप्रणाली निकालने का उद्योग कर रहे हैं। मालूम नहीं उनका उद्योग कहाँ तक सफल हुआ। सुनते हैं कि हिन्दी की शीघ्र-लिपि-प्रणाली-सम्बन्धी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक पुस्तक लिखी जा चुकी है और उसे काशी की नागरी-प्रचारणी सभा ने छपने के लिए इँगलैंड भेजा है। हिन्दी के लिए यह बड़े गौरव की बात है।

१०—एक नर्त्तकी बालिका ।

नृत्य और गीत की गिनती ललित कलाओं में है। समय के हेर फेर से यह काम इस देश में निन्दित समझा जाता है। परन्तु योरप में इसे ऐसा नहीं समझते। वहाँ क्या गृहस्थ और क्या पेशेवाली, सभी स्त्रियाँ, नाचना और गाना बाल्यावस्था से सीखती हैं। बालिकाओं को विद्यालय में या घर में जो शिक्षा दी जाती है उसमें नृत्य भी शामिल रहता है। कोई कोई लड़कियाँ इस विद्या में बड़ी निपुणता प्राप्त करती हैं। लन्दन में एक ऐसी अल्पवयस्का बालिका है जो नृत्य-विद्या में सविशेष निपुणा है। सूरत भी उसकी अत्यन्त मनोमोहिनी है। थियेटर में देवकन्या या अप्सरा का पार्ट यह बड़ी ही ख़ूबसूरती से अदा करती है। कुछ दिन से लन्दन में इसकी बड़ी धूम मची हुई है। जिस थियेटर में यह खेल करती है उसकी चाँदी हो जाती है। इस समय अपने नृत्यनैपुण्य की बदौलत यह छः हज़ार रुपये मासिक कमा पाती है। अर्थात् दो सौ रुपये प्रति दिन !!! इतने बड़े भारतवर्ष में एक आध को छोड़ कर ऐसा कोई भी हिन्दुस्तानी सरकारी अफ़सर नहीं है जो इतनी तनख़्वाह पाता हो।

११—शिक्षा और सरकार ।

लौकिक और पारलौकिक उन्नति का एक मात्र कारण शिक्षा ही है। जो जातियाँ जितनी ही अधिक शिक्षित होती हैं वे उतनी ही अधिक उन्नत होती हैं। पश्चिमी जातियों की उन्नति का मुख्य कारण यही है कि उनमें शिक्षा का ख़ूब प्रचार है और उन देशों के अधिकांश निवासी उच्चशिक्षा प्राप्त हैं। इसीलिए जातियों की, विशेष कर भारतवासियों की, अवनति का मुख्य कारण यह है कि इनमें शिक्षा का प्रचार बहुत कम है और यहाँ के अधिकांश निवासी निरक्षर भट्टाचार्य हैं। यूरप में शिक्षा का प्रचार अधिक क्यों है और यहाँ क्यों नहीं? इसका कारण यह है कि वहाँ की गवर्नमेंट लोगों को शिक्षित बनाने में उदारतापूर्वक धन व्यय करती है; परन्तु हमारी सरकार अनेक कारणों से शिक्षा-प्रचार के लिए अधिक नहीं ख़र्च कर सकती। यह बात नीचे के नक़शे से और भी स्पष्ट हो जायगी :—

देश का नाम।	सरकार प्रति मनुष्य की शिक्षा के लिए क्या ख़र्च करती है। रु०—आ०
फ़्रांस	४—०
जर्मनी	३—०
इटली	१—४
आस्ट्रिया	१—१२
नीदरलैंडस	३—३
हिन्दुस्तान	०—१½

नाना फड़नवीस ।

देश-प्रेम को जागृत और उन्नत करने के लिए अपने देश के प्रसिद्ध पुरुषों का चरित अवश्य अवलोकन करना चाहिए और विचार करना चाहिए कि किन कारणों से इन महात्माओं ने इतना नाम पाया। नामी आदमियों का चरित पढ़ने से मनोरञ्जन भी होता है, इतिहास-ज्ञान भी बढ़ता है और उनका बातों का अनुकरण करने की इच्छा भी होती है। यदि वाल्मीकि ने रामचन्द्र का गुण-गान न किया होता और व्यास ने कृष्ण और कुरु-पाण्डवों की कथा न लिखी होती तो वीर-शिरोमणि शिवाजी के हाथ से अद्भुत अद्भुत वीरता के काम कभी न होते। संभव है वे उस पन्थ में पैर ही न रखते जिसके कारण उनका इतना नाम हुआ और जिसके कारण महाराष्ट्रों का झंडा अटक तक फहराया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराष्ट्र-शूरता में जैसे शिवाजी का नाम सबसे पहले लिया जाता है वैसे ही पेशवाओं के मंत्रियों में नाना फड़नवीस का नाम लिया जाता है। फड़नवीस मराठी में हिसाब-किताब रखनेवाले को कहते हैं। दक्षिणी ब्राह्मण जो चतुरता के लिए इतने प्रसिद्ध हैं उसका प्रधान कारण नाना फड़नवीस ही हैं। उन्हीं की अद्भुत चातुरी के कारण ये लोग सभी चतुर समझे जाते हैं। पूने के कई पेशवाओं के राज्य-काल में ये प्रायः प्रधान मंत्री रहे और अपने चातुर्य्य और राज्य-कार्य्य-कौशल से पेशवाई को अत्यधिक उन्नत करके छोड़ा। दाक्षिणात्यों की तो बात ही नहीं, अन्यान्य प्रान्तों के भी इतिहास-प्रेमियों की जिह्वा पर नाना फड़नवीस का नाम सदा नृत्य सा किया करता है। इन्हीं नाना का संक्षिप्त चरित आज हम पाठकों को सुनाते हैं।

दक्षिण में एक ज़िला रत्नागिरी है। उसके वेलास नामक गाँव में बालाजी महादेव भानु नामक एक कर्म्मठ ब्राह्मण रहते थे। इसी गाँव के पास श्रीवर्धन नाम का एक और गाँव था, जिसमें बालाजी विश्वनाथ भट नाम के एक और ब्राह्मण रहते थे। इन भट और भानु कुलों में बहुत दिनों से प्रेम-सम्बन्ध चला आता था। इस से हब्शी लोगों ने जब भट वंशवालों को बहुत सताया तब वे अपना गाँव छोड़कर वेलास चले गये और वहाँ अपने मित्र बालाजी महादेव भानु के आश्रय में रहने लगे। परन्तु वहाँ भी यवनों का उपद्रव बहुत बढ़ते देख उन दोनों मित्र-कुटुम्बों ने वहां से भी अन्यत्र चले जाने का निश्चय किया। वे लोग भगे, पर रास्ते में बालाजी विश्वनाथ पकड़ लिये गये। उन्हें उनके शत्रुओं ने अंजनवेल के क़िले में कैद कर लिया। बालाजी महादेव भानु को इस पर बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने अपने मित्र को क़ैद से छुड़ाने का प्रयत्न आरंभ कर दिया और बहुत सा रुपया घूस देकर अंत को उन्होंने भटजी को छुड़ाही लिया। इस कारण इन दोनों कुटुम्बों का प्रणय-सम्बन्ध और भी दृढ़ हो गया। बालाजी विश्वनाथ भट ने प्रतिज्ञा की कि यदि एक रोटी हमें मिलेगी तो हम उसे भानु महाशय के साथ बाँट कर खायँगे। इस बात का उन्होंने बड़ी दृढ़ता से निर्वाह किया, और भानुवंश वालों ने भी उनकी सेवा तन, मन, धन से की। याद रहे इसी भटवंश को आगे चल कर पूने की पेशवाई मिली और उसने इसी भानुवंश को अपना फड़नवीस बनाया।

बालाजी महादेव भानु भी तीन भाई थे और बालाजी विश्वनाथ भट भी तीन भाई थे। ये लोग सतारे पहुँचे। वहाँ बालाजी विश्वनाथ धनाजी यादवराव सेनापति के यहाँ मुहर्रिर हो गये। भानु-भाइयों में से भी एक भाई वहां नौकर हो गया। बालाजी विश्वनाथ ने अपने काम में बड़ी दक्षता दिखाई। उनके असीम साहस और योग्यता से प्रसन्न होकर सतारे के शाहूजी महाराज ने शक १६३५ में उन्हें पेशवा बना दिया। उस समय उन्होंने शाहू महाराज से विनती की कि फड़नवीस नियत करने का अधिकार भी हमें दिया जाय। यह प्रार्थना मंज़ूर हो गई। तब उन्होंने बालाजी महादेव भानु के भाई हरि महादेव भानु को अपना फड़नवीस बनाया।

हरि महादेव भानु चार महीने फड़नवीसी का काम करके मर गये। उनके बाद उनकी जगह उनके भाई बालाजी महादेव को मिली। शक १६३९ में बालाजी विश्वनाथ पेशवा ने सैयद-भाइयों को मदद देने के लिये फर्रुख़सियर पर चढ़ाई की। उनकी मदद से फर्रुख़सियर मारा और महम्मद शाह तख़्त पर बिठाया गया। सैयद लोगों ने पेशवा को अपने राज्य स्वतंत्रता-पूर्वक करने और 'चौथ' लेने की सनदें बादशाह से दिलवा कर अपनी कृतज्ञता प्रकट की। इस पर बादशाह के दरबारी बहुत नाराज़ हुए। उन्होंने रास्ते ही में पेशवा को मारकर सनदें छीन लेनी चाहीं। उस समय बालाजी महादेव भी पेशवा के साथ थे। पेशवा ने इस विषय में उनसे सलाह की। बालाजी महादेव ने कहा,—आप वेश बदल कर सनदें अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राघोबा दादा ।

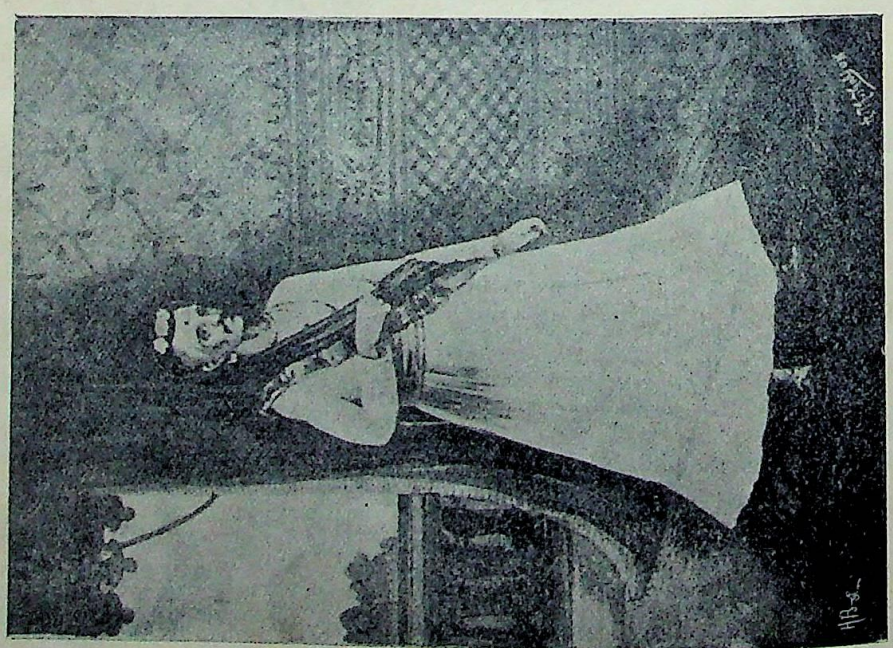

नाना फड़नवीस ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लीजिये और छिप कर निकल जाइए । आपकी जगह आपकी पालकी में मैं बैठा रहूँगा । यही हुआ । पेशवा की फौज पर हमला हुआ । शत्रुओं ने बालाजी महादेव को पेशवा समझ कर मारडाला। बालाजी विश्वनाथ तो सकुशल पूने पहुँच गये; पर उनके फड़नवीस ने उन्हें बचाने के लिये अपनी जान दे दी। स्वामिभक्ति की उन्होंने हद कर दी ।

नाना फड़नवीस इन्हीं बालाजी महादेव के पौत्र थे।

बालाजी महादेव के बाद उनके भाई रामाजी महादेव फड़नवीस हुए । शक १६४१ में बालाजी विश्वनाथ पेशवा का शरीरान्त हुआ । इसके चारही वर्ष बाद रामाजी महादेव ने भी उनका अनुसरण किया । बालाजी विश्वनाथ पेशवा के मरने पर उनके जेष्ठ पुत्र बाजीराव ने पेशवाई पाई । उन्होंने भी भानुवंश का सम्बन्ध दृढ़ रक्खा । रामाजी महादेव के पुत्र बाबूराव रामचन्द्र और बालाजी महादेव के पुत्र जनार्दन बल्लाल को उन्होंने फड़नवीसों की खिलतें दीं। उस समय ये दोनों पाँच पाँच वर्ष के नाबालिग़ लड़के थे । जब ये बड़े हुए तब अपना अपना काम ये लोग भी बड़ी योग्यता से करने लगे ।

माघ कृष्ण ४ शुक्रवार शक १६६३ में जनार्दन बल्लाल की पत्नी रखमाबाई के एक पुत्र हुआ । नाम रक्खा गया बालाजी जनार्दन भानु। वही इसचरित के नायक हैं। फड़नवीस उनके पद का नाम और नाना उनका आदर-सूचक उपनाम है ।

नाना के पिता और चचा बहुधा बाहर ही रहा करते थे। वह समय भारतवर्ष में राज्य-क्रान्ति का था। सदा कोई न कोई लड़ाई छिड़ी ही रहती थी और पेशवाओं की सेना सदाही अपने भालों की नोकें तेज़ बनाये रखती थी। इस कारण नाना की शिक्षा का भार उनकी माता पर पड़ा । उसने इनको थोड़ा सा प्रारंभिक शिक्षा दी । पर इनका मन पढ़ने में कम, कथा-पुराण सुनने और पूजा-पाठ करने में अधिक लगता था। कुछ बड़े होने पर पेशवा के चचेरे भाई सदाशिवराव ने पेशवा के दो लड़कों के साथ इन्हें भी पढ़ाना शुरू किया । इनके सहपाठियों में इन तीन लड़कों के सिवा और भी दो एक लड़के थे । अच्छी लिपि लिखना, जमा ख़र्च का हिसाब सीखना, राज्य की जमाबन्दी का ज्ञान प्राप्त करना, मराठी राज्य का इतिहास पढ़ना, घोड़े पर बैठना, हथियार चलाना, कसरत करना आदि उनकी शिक्षा के विषय थे । सन्ध्योपासन करना आदि धार्म्मिक शिक्षा भी इन्हें दी गई । नाना शरीर से अशक्त थे । इससे शक्ति की अपेक्षा रखनेवाली शारीरिक शिक्षा में ये अपने सहपाठियों की बराबरी नहीं कर सकते थे । पर और बातों में ये सबसे बड़े चढ़े थे। धार्म्मिक, व्यावहारिक और मानसिक शिक्षा में कोई इनकी बराबरी न कर सकता था ।

इनका यज्ञोपवीत तो बहुत ही छोटी उम्र में हो गया था । विवाह भी दसहो वर्ष की उम्र में हो गया । यह इनका पहला विवाह था । बाद में इन्होंने ऐसे कई विवाह और भी किये ।

बारह तेरह वर्ष की उम्र में जो कुछ इन्हें सीखना था सीख लिया । इनके समयोचित भाषण और बुद्धि-चातुरी को देख कर बाजीराव पेशवा बहुत प्रसन्न थे । इससे उन्होंने नाना को चौदही वर्ष की उम्र से अपने पास रख लिया ।

शक १६७८ में नाना के पिता जनार्दन बल्लाल पेशवाओं की फ़ौज के साथ उत्तरी हिन्दुस्तान में चढ़ाई पर गये । वहाँ उनकी मृत्यु हो गई । उनकी जगह पर पेशवा ने इन्हें फड़नवीस बनाया—इस पद के सूचक वस्त्र, आभूषण और पालकी आदि सब चीज़ें इन्हें मिलीं । इसके कुछ दिनों बाद ये अपने चचा बाबूराव और चचेरे भाई मोरोपन्त से अलग हो गये । उनसे इनकी नहीं पटती थी । इसी से अलग होना पड़ा । तबसे ये अपनी माँ और स्त्री के साथ अलग रहने लगे।

वयस्क होते ही नाना को विषयासक्ति ने आ घेरा । इस दुर्गुण को वे बहुत बुरा समझते थे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु उसे दमन नहीं कर सकते थे। इससे उन्होंने ईश्वरोपासना और भजन-पूजन की मात्रा बढ़ा दी और गोदावरी के किनारे एक तीर्थ में रहने लगे। विषय-वासना के नाश के लिए उन्होंने बहुत प्रयत्न किये और इसमें उन्हें बहुत कुछ सफलता भी हुई।

नाना फड़नवीस पहले पहल श्रीरङ्ग-पट्टन की चढ़ाई में फ़ौज के साथ बाहर निकले। यह उनका पहला प्रवास था। उस समय उनकी उम्र बहुत थोड़ी थी। इसके बाद शक १६८२ में उन्हें उस फ़ौज के साथ उत्तरी हिन्दुस्तान जाना पड़ा, जो अहमदशाह अब्दाली के मुक़ाबले में बालाजी बाजीराव पेशवा ने भेजी थी। इस फ़ौज के प्रधान सेनापति सदाशिवराव भाऊ थे। कई लोग इस चढ़ाई में अपने कुटुम्ब की स्त्रियाँ भी ले गये थे। नाना ने भी अपनी माँ और स्त्री को साथ लिया था। उनका इरादा इस तरफ़ के तीर्थ-स्थानों में पर्य्यटन करके चित्त को शान्ति देने का था। मथुरा और वृन्दावन में इनका जी इतना रम गया कि फ़ौज का साथ छोड़ कर ये कुछ दिन वहीं रह गये। वहाँ से वे दिल्ली गये। दिल्ली में सदाशिवराव भाऊ ने मिर्ज़ा जवाँबख़्त को तख़्त पर बिठाया था। वह नाना फड़नवीस से मिल कर बहुत प्रसन्न हुआ और इन्हें शाही ख़िलत दी।

सदाशिवराव के हाथ से कई काम ऐसे अविचार-पूर्ण हो गये कि मराठे सरदार उनसे बिगड़ उठे। फ़ौज के ख़र्च के लिए उन्होंने देहली का बादशाही ख़ज़ाना लूट लिया। इससे कितनेही शाही सरदार भी उनसे नाराज़ हो गये और उनका पक्ष छोड़ कर अब्दाली से जा मिले। पानीपत के मैदान में मराठों और मुसलमानों में तीन युद्ध हुए। इनमें से पहले दोनों युद्धों में जीत मराठों ही को रही और बहुतसा माल असबाब उनके हाथ लगा।

दूसरे युद्ध में नाना फड़नवीस के मामा बलवन्तराव मेंहदले मारे गये। वही इस युद्ध में सेनापति थे। नाना की मामी पति के मारे जाने पर सती हो गई। युद्ध में जाने के पहले बलवन्तराव और उनकी पत्नी में जो बातें हुई थीं उन्हें सुन कर उत्तरा और अभिमन्यु की याद आती है। अपने भाई और भौजाई के न रहने से नाना की माता को बहुत दुःख हुआ। नाना ने अपना दुःख भूल कर किसी तरह अपनी माता का प्रबोध किया।

तीसरा युद्ध बहुतही भयङ्कर हुआ। सदाशिवराव भाऊ के साथ नाना फड़नवीस भी युद्ध-स्थल में थे। पेशवा के पुत्र विश्वासराव इस युद्ध में मारे गये। उस समय उनके पास सदाशिवराव की स्त्री हाथी पर थीं। वे शोक करने लगीं। इस पर नाना फड़नवीस की माँ ने उन्हें बहुत कुछ समझा बुझाकर शान्त किया। वे भी रण-भूमि में उपस्थित थीं। वही क्या और भी कितनी ही महाराष्ट्र-स्त्रियाँ वहाँ थीं और सुनते हैं उन्होंने बहुत से पराक्रम के काम भी किये थे। दुर्दैव से इस युद्ध में मराठों की हार हुई। सेनापति सदाशिवराव मारे गये। नाना फड़नवीस सदाशिवराव से अलग जा पड़े। उन्हें युद्ध से भागना पड़ा। नाना को इस बात पर पीछे से बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वे अपना आत्मचरित लिख गये हैं। उसमें उन्होंने एक जगह लिखा है कि जिस समय सदाशिवराव भाऊ साहब युद्ध-स्थल से अदृश्य हुए उस समय उनको भी मर जाना था।

समराङ्गण से भगने पर मार्ग में नाना को शत्रुओं ने बड़े बड़े कष्ट दिये। उन्हें भिखारी का वेष धारण करना और कई दफ़े घास की खरही में छिपना पड़ा। एक दफ़े पत्ते खा कर उन्हें क्षुधा निवृत्त करनी पड़ी। वे भरतपुर की तरफ़ जा रहे थे कि जिगनीगाँव में नारोपन्त गोखले नामक एक गृहस्थ के यहाँ उन्हें अपनी स्त्री के पहुँचने की ख़बर मिली। युद्ध से भगने पर उनकी स्त्री और माता दोनों उनसे छूट गई थीं। जिगनी में स्त्री तो मिल गई। पर माता का कहीं पता न चला। भरतपुर युद्ध से भगे हुए उन्हें बहुत से आदमी मिले। उनकी माँ के साथ भगा हुआ एक नौकर भी कुछ दिनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें मिला। उससे उन्होंने सुना कि राह में घोड़े से गिर कर उनकी माँ का शरीरपात हो गया। यह सुन कर वे शोक-सागर में डूब गये। उन्हें महादुःख हुआ कि हाय! हम विपत्काल में माता के पास न रह सके। कुछ दिन बाद झूठी ख़बर उड़ी कि उनकी माँ अब्दाली के हाथ क़ैद हो गई है। इस पर उन्होंने देहली में रहनेवाले पेशवा के वकील को एक बड़ाही कारुणिक पत्र लिखा। उससे उनकी विलक्षण मातृभक्ति टपकती है। उन्होंने लिखा कि यदि "सर्वस्व" दे डालने पर भी माता का छुटकारा हो सकता हो तो भी हम वैसा करने को तैयार हैं। परन्तु उनकी माता तो पहले ही परलोक-गामिनी हो चुकी थीं।

इस समय नाना को विषम वैराग्य हुआ। उन्होंने काशी जा कर वहीं आमरण वास करने का विचार किया। इस इरादे से वे ग्वालियर आये। वहाँ सिंधिया के कई सरदारों से उनकी भेंट हुई। उन्होंने बहुत आग्रह करके नाना के इस इरादे को पूरा न होने दिया। उन्हें समझा बुझा कर पूना लौट जाने और फिर पेशवाई का काम करने के लिए राज़ी कर लिया। यह अच्छाही हुआ। यदि ऐसा न होता तो पेशवाओं के राज्य की जो इतनी उन्नति हुई वह न होती। क्योंकि उस उन्नति के प्रधान कारण नाना फड़नवीस ही थे।

सदाशिवराव की हार का वृत्तान्त सुन कर बालाजी बाजीराव पेशवा बहुत सी फ़ौज लेकर उनकी मदद के लिए पूने से चले। राह में इन्हें सदाशिवराव और अपने पुत्र विश्वासराव के पतन की ख़बर मिली। इससे उन्हें अपार दुःख हुआ। उन्होंने आगे बढ़ना व्यर्थ समझा। वे लौट पड़े। बुरहानपुर में नाना फड़नवीस से उनकी भेंट हुई। इन्हें देख कर पेशवा का चित्त कुछ शान्त हुआ। इसके बाद बालाजी नाना फड़नवीस टोंक गये। वहाँ उन्होंने अपनी माता का मरण-संस्कार किया। उस समय नाना की उम्र केवल २० वर्ष की थी। पर ईश्वर-निष्ठा उनमें अपार थी। लाला बालगोविन्द नामक एक सज्जन के पास देहली में वे अपनी नर्म्मदेश्वर महादेव की मूर्त्ति भूल आये थे। इस मूर्त्ति के मँगाने के लिए उन्होंने टोंक से देहली को एक पत्र लिखा था। पाँच सौ कोस से महादेव की मूर्त्ति!

इसके बाद पेशवा की आज्ञा से कुछ दिन तक नाना ने गङ्गातट पर वास किया। वे पूने को जा रहे थे कि रास्तेही में उन्हें पेशवा के मरने की ख़बर मिली। इस पर उन्होंने बहुत विलाप किया और अनेक प्रकार से अपनी स्वामि-निष्ठा प्रकट की। पूने पहुँच कर पेशवा बालाजी बाजीराव के दूसरे पुत्र माधवराव को पेशवाई की ख़िलअ़त दिलाने के लिए वे सतारा-नरेश के दरबार में गये। इनके साथ मृत पेशवा के भाई राघोबा दादा भी थे। वहाँ से लौटते समय वे एक नदी में डूबने से बाल बाल बचे।

कुछ दिन तो ये पूने में चुपचाप अपने घर रहे; पर, पीछे, पेशवा माधवराव के कहने से धीरे धीरे राज-काज करने लगे। इस समय तक इनको राज्य-विषयक बातों का बहुत कुछ अनुभव हो गया था।

माधवराव पेशवा अभी लड़केही थे। इससे पेशवाई का प्रायः सारा काम उनके चचा राघोबा दादा करते थे। इन्होंने पहली स्त्री के मरने पर दूसरा विवाह किया था। इनकी दूसरी स्त्री का नाम आनन्दी बाई था। यह बड़ी रूपवती थी। पर पहले नंबर की कुटिला थी। राघोबा को इसने अपनी मुट्ठी में कर रक्खा था। राघोबा शूर-वीर तो एकही थे; पर विचार, विवेचना और बुद्धिचातुर्य्य में कुछ भी न थे। इससे आनन्दी बाई जैसा नाच नचाती थी वैसा ही ये नाचते थे। इन्होंने सखाराम बापू नामक एक नीति-निपुण मनुष्य को अपना मंत्री बनाया था। वे और आनन्दी बाई, यही दो इनके प्रधान सचिव थे। आनन्दी बाई स्वभाव की ऐसी दुष्टा थी कि उसकी मंत्रणा का फल सदा बुराही होता था। यदि यह कहा जाय कि यही स्त्री महाराष्ट्र-राज्य के पतन का कारण हुई तो भी अत्युक्ति न होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पेशवा की माँ को राघोबा दादा का एकाधिपत्य पसन्द न था। उसने उनसे कहा कि माधवराव को भी अपने साथ राज-काज में योग देने दीजिए। राघोबा ने यह बात नामंज़ूर की। वे काम छोड़ बैठे। वे समझते थे कि उनके बिना कामही न चलेगा। पर माधवराव पेशवा ने नाना फड़नवीस और चार अन्य सज्जनों का एक मंत्रिमण्डल बना दिया। वह सब काम अच्छी तरह चलाने लगा। यह बात राघोबा दादा को बहुत खली। वे औरंगाबाद में मुग़लों से जा मिले और ५१ लाख का मुल्क देने की प्रतिज्ञा करके उनकी फ़ौज पूने पर चढ़ा लाये। पेशवा माधवराव ने गृहकलह को बचाना चाहा। वे दादा साहब से मिले और कहा कि आपही राज्य-प्रबन्ध कीजिए; मैं न बोलूंगा। इस पर दादा साहब ने मुग़लों की फ़ौज लौटा दी और आप पूने चले आये। इससे सिद्ध हुआ कि ये हज़रत कितने स्वार्थ-परायण थे।

राघोबा दादा ने राज्य-प्रबन्ध अपने हाथ में लेकर माधवराव पेशवा को नज़रबन्द कर दिया और उनके मंत्रियों की जागीरें छीन लीं। इससे इनमें से कुछ लोग रुष्ट होकर मुग़लों से जा मिले। पर नाना फड़नवीस और अन्यतर मंत्री हरीपन्त फड़के ने ऐसा करना उचित नहीं समझा। इतने में निज़ामअली ने महाराष्ट्र-सरदारों से अभिसन्धि करके पूने पर चढ़ाई की। चार महीने लड़ाई हुई। पर मुग़लों का ज़ोर न घटा। अन्त में राघोबा के हितचिन्तक सखाराम बापू ने फिर सब सरदारों को मिला लिया और गोदावरी के किनारे मुग़लों पर हमला करके उनके दस हज़ार आदमी और बाईस सरदार मारे। तब जाकर कहीं राघोबा दादा को मुग़लों से फ़ुरसत मिली। उन्होंने अपनी पूर्व भूल स्वीकार करके मराठे सरदारों को उनकी जागीरें लौटा दीं। नाना को फिर फड़नवीस बनाया। माधवराव पेशवा को क़ैद से छोड़ दिया। मोरोबा दादा नाम के एक राजनीति-कुशल सज्जन को प्रधान मंत्री नियत किया।

शक १६८७ में राघोबा दादा बहुत सी सेना लेकर उत्तर हिन्दुस्तान पर चढ़ाई करने गये। मार्ग में मल्हारराव होल्कर के मर जाने से उनकी जागीर आपने ज़ब्त कर लेने का विचार किया। पर अहल्या बाई के कौशल से वे ऐसा न कर सके। इस समय नाना फड़नवीस ने अहल्या बाई की तरफ़दारी की। पेशवा माधवराव ने भी अहल्या बाई के ही पक्ष में फ़ैसिला किया।

राणोजी सेंधिया के तीन पुत्र तो पानीपत की लड़ाई में मारे गये थे। चौथे महादजी सेंधिया बच रहे थे। उन्हें राघोबा दादा क़ैद कर लेना चाहते थे। पर पेशवा और नाना फड़नवीस को यह बात अभीष्ट न थी। इससे उन्होंने दस्तंदाज़ी करके सेंधिया को क़ैद होने से भी बचा लिया और उन्हें उनकी जागीर भी दिला दी।

होलकर और सेंधिया की तरफ़दारी करने के कारण दादा साहब फिर पेशवा से बिगड़ उठे। उत्तर हिन्दुस्तान से लौट आने पर उन्होंने पेशवा से कहा कि आधा मुल्क हमें बाँट दीजिए। पेशवा ने यह बात मंज़ूर न की। इस पर राघोबा दादा ने फ़ौज जमा करके पेशवा से युद्ध किया; पर हार गये। पेशवा ने उन्हें क़ैद कर लिया।

उधर होलकर और सेंधिया का प्रेम, अपनी मदद करने के कारण, नाना फड़नवीस पर हो गया। सब बातें वे नाना की सलाह से करने लगे।

माधवराव पेशवा ने बड़े बड़े काम किये। अपने शत्रुओं में से किसी को भी पदानत किये बिना न छोड़ा। दिल्लीश्वर तक को अपना अधीन बनाया। रुहेलों की नाकों दम कर दी। पानीपत की हार से कमज़ोर हुए महाराष्ट्र-बल को फिर से उन्नत बढ़ाया। चारों तरफ पेशवा का आतङ्क छा गया।

माधवराव पेशवा चढ़ाइयों पर बरसों रहते थे। उनकी ग़ैरहाज़िरी में नाना फड़नवीस राज्य का काम बड़ी ही दक्षता से चलाते थे। सामग्री भेजने, राज्य की रक्षा करने और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का ख़र्च यथासमय रवाना करने का भार नानाहीं पर था। वे इस काम को ऐसी अच्छी तरह करते थे कि माधवराव पेशवा उन्हें अपना दक्षिण हस्त समझते थे। नाना फड़नवीस विलक्षण सम्पत्ति-शाली थे। ज़रूरत पड़ने पर वे करोड़ों रुपये को कुछ नहीं समझते थे, पर व्यर्थ एक कौड़ी भी नहीं जाने देते थे। एक बार जिस समय पेशवा पूने में न थे, उनकी रानी ने अपने ख़र्च का पुर्ज़ा नाना फड़नवीस के पास भेजा। नाना ने उसमें से पान-तम्बाकू की रक़म तुरन्तही काट दी। इस पर रानी साहबा ने, पेशवा के लौटने पर, नाना की शिकायत की। पर पेशवा ने नानाहीं का पक्ष लिया। उन्होंने कहा, जिस स्त्री का पति विदेश में है उसे पान-बीड़े से क्या काम?

शक १६९४ में माधवराव पेशवा को राज-यक्ष्मा रोग हुआ। जब वे आसन्न-मरण हुए तब अपने छोटे भाई नारायणराव को उन्होंने राघोबा दादा और उनके मंत्री सखाराम बापू के सिपुर्द किया। उन्होंने नारायणराव का पालन करने का दृढ़ वचन दिया। मरने के समय पेशवा ने कहा कि हमारी तीन इच्छायें मनहीं में रह गईं:—गिलज़ई लोगों को परास्त करना, हैदर का मान-मर्दन करना और अपना क़र्ज़ अदा करना। यह सुनकर नाना फड़-नवीस ने प्रतिज्ञा की कि आपकी ये तीनों बातें मैं करूंगा। और उन्होंने ऐसा ही किया भी। पेशवा का क़र्ज़ तो उन्होंने उनका प्राणान्त होने के पहलेही चुका दिया। धन्य नाना की स्वामिभक्ति!

नारायणराव पेशवा ने अपनी माँ की सलाह से राघोबा दादा को क़ैद कर लिया। यह उनका दुबारा क़ैद किया जाना था। उन्होंने समझा, अपने पिता के समय की तरह ये फिर न कोई फ़साद खड़ा करें। इस काम में नाना फड़नवीस का हाथ न था—उनकी सलाह से यह बात नहीं हुई। वे इस बात के विरुद्ध थे। राघोबा ने क़ैद किये जाने पर पेशवा के ख़िलाफ़ हैदर अली को उभाड़ना चाहा। इससे वे पहले की अपेक्षा अधिक सख़्ती से क़ैद किये गये। हैदर से उनका पत्र-व्यवहार बन्द हो गया। इससे परस्पर का वैमनस्य बढ़ गया और यही बात पेशवा के प्राणनाश का कारण हुई।

नागपुर के भोसले राजा ने राघोबा का पक्ष लिया। उसकी सहायता से राघोबा क़ैद से छूट गये। तब राघोबा ने नारायणराव पेशवा को क़ैद करना चाहा। पर उनकी स्त्री आनन्दी बाई ने उन्हें मार डालने की ठानी। राघोबा इस पाप कर्म्म के प्रतिकूल थे। उनसे आनन्दी बाई ने लिखा लिया—"नारायण को धरो"—पर मार्ग में अपनी आँखों के काजल से 'ध' का 'मा' करके—"नारायण को मारो"—कर दिया! बेचारे नारायणराव जमादार सुमेरुसिंह के हाथ से मारे गये।

नारायणराव के मारे जाने पर राघोबा दादा ख़ुदही पेशवा बन बैठे। पर उनसे और उनकी स्त्री, पापिष्ठा आनन्दी, से सब लोग बेतरह नाराज़ थे। इसलिए नाना फड़नवीस आदि सरदारोंने राघोबा के मंत्री सखाराम बापू को अपनी तरफ़ करके राघोबा को पदच्युत कर दिया और नारायणराव की रानी गंगाबाई के नाम से राज-काज चलाना आरम्भ किया। गंगाबाई उस समय गर्भवती थी। राघोबा दादा चुपचाप बैठने वाले न थे। उन्होंने युद्ध की ठानी। इधर नाना फड़नवीस और उनके साथी सरदारों ने भी उनके मुक़ाबले की तैयारी की। युद्ध हुआ। यद्यपि राघोबा ने युद्ध में बड़ी वीरता दिखाई तथापि पूने की गद्दी वे छीन न सके। इसके कुछही दिन बाद गंगाबाई के पुत्र हुआ। वह जब ४० दिन का हुआ तब नाना फड़नवीस ने उसे राज्यासन पर बिठा दिया और सखाराम बापू के साथ ख़ुदही राज्य का सारा कारोबार देखने लगे। इस प्रकार राघोबा दादा के पेशवाई प्राप्त करने का मार्ग एक दमही बन्द होगया।

राघोबा अनेक प्रकार के षडयंत्र रचने लगे; पर नाना फड़नवीस ने उनकी एक न चलने दी। वे होलकर और सेंधिया से मदद माँगने के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्दौर की तरफ़ रवाना हुए। परन्तु नाना ने उन दोनों सरदारों को मिलाकर अपनी तरफ़ कर लिया। तब राघोबा दादा ने गुजरात की तरफ़ प्रस्थान किया। मार्ग में धार के क़िले में महाराष्ट्र-राज्य के डुबाने वाले अन्तिम बाजीराव ने दुष्टा आनन्दीबाई की कोख से जन्म लिया।

राघोबा का पीछा करने के लिए नाना फड़नवीस ने फ़ौज का प्रबन्ध पहले ही से कर रक्खा था। राघोबा के गुजरात पहुँचने पर उसने उन पर हमला किया। राघोबा बेतरह परास्त होकर खंभात को भगे। वहाँ उन्होंने अँगरेज़ों की शरण ली।

दादा बहादुर ने और कोई इलाज न देखकर अँगरेज़ों को बहुत सा मुल्क देने का वादा किया और उन्हें अपने साथ पूने पर चढ़ा लाये। नाना ने भी सेंधिया और होलकर आदि सरदारों को मिलाकर बहुत सी सेना इकट्ठी की। घनघोर संग्राम हुआ। अँगरेज़ों की बहुतसी सेना मारी गई। कप्तान स्टुअर्ट भी इस युद्ध में काम आये। अन्त को अँगरेज़ों ने सेंधिया और भोंसले को बहुतसा रुपया और मुल्क देने का लालच दिखाकर उन्हें नाना फड़नवीस से फोड़ लिया और उनकी मारफत सुलह का संदेश भेजा। नाना की इच्छा अँगरेज़ों के निश्चित किये हुए नियम के अनुसार सुलह करने की न थी। पर सेंधिया ने बड़ा ज़ोर दिया और नाना को आपस में फूट पैदा करना अभीष्ट न था। इससे सेंधिया की स्वार्थ-परता पर ध्यान न दे कर उन्होंने सन्धि कर ली। इस उपलक्ष्य में अँगरेज़ों ने सेंधिया को ५० लाख रुपया नक़द और भड़ोंच का सूबा दिया और उत्तरी हिन्दुस्तान में स्वाधीनता-पूर्वक राज्य करने की सनद भी दी। यदि सेंधिया अँगरेज़ों का पक्ष न लेते तो इस युद्ध का परिणाम अँगरेज़ों के लिए बड़ा ही भयङ्कर और कष्टकर होता।

सखाराम बापू और नाना फड़नवीस बड़ी ही दक्षता से राजकार्य्य निर्वाह करने लगे। परन्तु कुछ दिनों में इन दोनों सरदारों के बीच वैमनस्य उत्पन्न हुआ। नाना ने सखाराम बापू को क़ैद कर लिया। क़ैदही में उनका प्राणान्त हुआ। तबसे राज्य का सूत्र एक मात्र नाना के हाथ में रह गया। उन्होंने राज्य का ऐसा अच्छा प्रबन्ध किया कि पेशवा के सारे शत्रु हतवीर्य्य हो गये। पेशवाई का दबदबा ख़ूब बढ़ा। टीपू, फ़्रेंच, अँगरेज़, निज़ाम सभी नाना की योग्यता और राज-नीति-कुशलता को देख कर दंग हो गये।

कुछ दिन बाद टीपू सुलतान ने उपद्रव मचाया। नाना ने निज़ाम और अँगरेज़ों को मिलाकर उस पर हमला किया। टीपू की हार हुई। ४० लाख का मुल्क नाना को मिला। पेशवाई राज्य की सीमा और भी बढ़ी।

इस समय महादजी सेंधिया की चढ़ती कला थी। उत्तरी हिन्दुस्तान में वे बड़े बड़े काम कर रहे थे। देहली के बादशाह से वे खिलअतें पर खिलअतें और पदवियों पर पदवियाँ बाल-पेशवा को दिलवा रहे थे। यह बात नाना को पसन्द न थी। वे मुसलमानों का आधिपत्य न मानना चाहते थे। इस कारण सेंधिया उनसे द्वेष करने लगे। उन्होंने नाना का सारा अधिकार छीन कर अपने हाथ में कर लेना चाहा। यह बात उन्होंने पेशवा से कही। पर पेशवा ने नाना को निकालना एकदम अस्वीकार किया। उन्होंने कहा—"हमारा दाहिना हाथ नाना और बाँयाँ सेंधिया है"। इसके कुछ दिन बाद महादजी सेंधिया का परलोकवास हुआ। उनके पुत्र दौलतराव उनके उत्तराधिकारी हुए।

निज़ाम से पेशवा को बहुत सा कर पाना था। उसे देने में निज़ामअली ने आना कानी की। तब नाना ने अपने वकील की मारफ़त सख़्त तक़ाज़ा किया। इस पर निज़ाम के वज़ीर मशीरुलमुल्क ने नाना और पेशवा की बड़ी निन्दा की। यह बात नाना से न सही गई। उन्होंने अपने बड़े बड़े सरदारों को इकट्ठा करके उनकी सलाह से युद्ध की ठानी। पेशवा की प्रचण्ड सेना परशुराम भाऊ पटवर्धन के सेनापतित्व में पूने से चली। नाना फड़नवीस बालक-पेशवा को साथ लेकर निज़ाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को दण्ड देने के लिए रवाना हुए । उधर से निज़ाम ने भी पेशवा का मुक़ाबला करने के लिए प्रस्थान किया। खर्डा नामक स्थान में घनघोर युद्ध हुआ। निज़ामअली बेतरह परास्त हुए। उन्होंने सुलह की दरख़्वास्त की। नाना ने निज़ाम से बहुत सा मुल्क, लड़ाई का ख़र्चा, और कुछ नक़द रुपया लेकर सुलह कर ली। निज़ाम के वाचाल और निन्दक वज़ीर को क़ैद भी उन्होंने कर लिया। इस जीत से मराठों का यशः सौरभ पहले से भी अधिक फैल गया। नाना का बड़ा नाम हुआ। चारों ओर पेशवाई भाले का आतङ्क छा गया। नाना फड़नवीस के कार्य्य-कौशल से पेशवाओं का ख़ज़ाना भर कर उफनाने लगा । सारे सरदार नाना फड़नवीस के आज्ञाधारक बन कर काम करने लगे। सब लोग सवाई माधवराव पेशवा को, नाना फड़नवीस के समान योग्य प्रबन्धकर्त्ता पाने के कारण, परम सौभाग्यशाली समझने लगे। नाना के वैभव की सीमा न रही। उनके यश की छटा समग्र भारत ही में नहीं, सात समुद्र पार करके श्वेतद्वीप तक में पहुँच गई। परन्तु, खेद है, इसके कुछ ही दिन बाद महाराष्ट्रों के राज्य का अधःपतन आरंभ हुआ। सच है, जो बढ़ता है, वह कभी न कभी घटता भी है।

आश्विन शुक्ल १२, शक १७१७ को माधवराव पेशवा अपने महल से कूद पड़े । इसके तीन दिन बाद उनकी मृत्यु हुई। यह दुर्घटना नाना फड़नवीस के पतन और सारे महाराष्ट्र-देश की विपत्ति का कारण हुई। कुछ लोग इस दुर्घटना का उत्तरदाता नाना को ही समझते हैं। वे कहते हैं कि नाना फड़नवीस पेशवा पर ज़ुल्म करते थे । उन्होंने पेशवा पर अपनी सत्ता की सीमा यहाँ तक बढ़ा दी थी, कि पेशवा से वह सहन न हुई । इसी से उन्होंने आत्महत्या कर ली। पर बहुत से ग्रन्थकार इस बात का खण्डन करते हैं और यह पिछली बातही सच जान पड़ती है। नाना बड़े धर्म्मिष्ठ और सात्विक वृत्तिवाले थे। उनसे ऐसी बात होना असंभव जान पड़ता है। हाँ, एक बात वे ज़रूर करते थे। बाजीराव से हेल मेल न रखने के लिए वे माधवराव पेशवा पर दबाव ज़रूर डालते थे। कारण यह था कि बाजीराव, स्वदेश-द्रोही राघोबा दादा और दुष्टा आनन्दी बाई के पुत्र थे और अँगरेज़ों से मिले रहते थे।

नाना ने प्रतिज्ञा की थी कि नारायणराव का ख़ून करानेवाले राघोबा दादा और उनकी दुःशीला स्त्री आनन्दी की सन्तान को यथाशक्ति राज्य का अधिकार कभी न मिलने देंगे। माधवराव पेशवा के मरने पर उस प्रतिज्ञा के टूटने का समय आ गया। क्योंकि बाजीराव के सिवा इस समय राज्य का और कोई अधिकारी न था। नाना ने सब सरदारों को इकट्ठा करके कौंसिल किया। उसमें निश्चिंत हुआ कि माधवराव पेशवे की रानी एक दत्तक पुत्र ले और उसी के नाम से राज्य चलाया जाय । परन्तु यह सलाह सेंधिया को अच्छी न लगी। उन्होंने बाजीराव का पक्ष लेकर पूने पर चढ़ाई कर दी। नाना ने देखा कि अब भारी उपद्रव मचेगा। इससे उन्होंने अपना आग्रह छोड़ दिया और ख़ुदही बाजीराव को गद्दी पर बिठाने का प्रस्ताव किया । शक १७१८ में बाजीराव पेशवा हुए। नाना साहब पूर्ववत् राजकाज करते रहे।

कुछ दिन बाद नाना का महत्त्व कम करने के इरादा से बाजीराव ने उनमें और सेंधिया में वैमनस्य पैदा कर दिया। फल यह हुआ कि सेंधिया ने नाना फड़नवीस को क़ैद कर लिया। यह बात बाजीराव की आज्ञा से हुई। बाजीराव बड़ेही अदूरदर्शी और मूर्ख थे। इस घटना के बाद सेंधिया से भी उनका बिगाड़ हो गया। इस मौक़े को अच्छा हाथ आया देख नाना फड़नवीस दस लाख रुपये सेंधिया को देकर क़ैद से छूट गये।

बाजीराव की नादानी और कुप्रबन्ध के कारण चारों ओर राज्य में उपद्रव और बलवे होने लगे। सरदारों और अधिकारियों में फूट पैदा हो गई। अँगरेज़ों का बल बढ़ने लगा । नाना को यह सब असह्य था। इस कारण एक बार अपमानित होने पर भी वे राज्य का काम करते रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी बीच में अँगरेज़ों ने पेशवे से कहा कि तुम अपने यहाँ हमारी पलटनें नौकर रक्खो। परन्तु नाना ने एक न मानी। बहुत से दंगे फ़साद हुए। उन सब को नाना ने बड़ी चतुरता से शान्त किया। अन्त में कोल्हापुर वालों से लड़ाई छिड़ गई। उसमें पेशवा के शूर सेनापति परशुराम भाऊ पटवर्धन मारे गये। इस पर नाना को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कोल्हापुर वालों पर एक जंगी चढ़ाई करने की तैयारी की और उन्हें ख़ूब हैरान करके छोड़ा। इतने में फाल्गुन वदि ३ शक १७२१ को उनका शरीरान्त हो गया। महाराष्ट्र-देश का सर्वोत्तम राजनीति-धुरन्धर मंत्री खो गया।

नाना ने ९ विवाह किये थे। मरने के समय उनकी दो पत्नियाँ जीवित थीं। उनमें से एक उनकी मृत्यु के चौदह ही दिन बाद उनकी अनुगामिनी हुई। दूसरी, छोटी स्त्री, की उम्र उस समय बहुत कम थी। उसने ५४ वर्ष वैधव्य दशा में काटे। पेशवाई से उसे १२ हज़ार रुपये सालाना पेन्शन मिलती रही।

राज्य-प्रबन्ध और राजनीतिज्ञता में नाना परम कुशल थे। यदि उनकी सलाह से सब काम होते तो पेशवाई का पतन इतना शीघ्र न होता। चतुरता की वे नाक और कूट राजनीति के वे अगाध सागर थे। उनके समय में प्रजा कभी दुखी नहीं हुई। अकाल पड़ने पर एक बार उन्होंने बहुत ही अच्छा प्रबन्ध करके प्रजा को अन्न-वस्त्र पहुँचाया था।

धर्म्मनिष्ठा, स्वामिनिष्ठा और स्वदेशाभिमान के नाना जागरूक दृष्टान्त थे। वे दयालु, उद्योगी, परोपकारी और सत्पथ-परायण थे। संयमशीलता और धनसञ्चय में भी वे बहुत बढ़े चढ़े थे। उनका वेतन ५ लाख रुपये सालाना था। उसमें से वे साढ़े तीन लाख रुपया ख़र्च कर डालते थे। अपने इष्ट-मित्रों और बन्धु-बान्धओं की वे नियमित रूप से सहायता करते थे। उनका बहुत सा रुपया धर्म्मार्थ ख़र्च होता था। उन्होंने न मालूम कितने मकान, मन्दिर, कुँवें, तालाब और धर्म्मशालायें बनवाई थीं।

नाना फड़नवीस ने बहुत से जासूस रक्खे थे। वे हिन्दुस्तान के सब प्रान्तों में रहते थे और नाना को महत्त्व की ख़बरें दिया करते थे। विदेश तक में उनके जासूस थे। फ़्रेंच और अँगरेज़ों की गुप्त से भी गुप्त बातें उन्हें मालूम हो जाया करती थीं।

नाना फड़नवीस कभी हँसते न थे। पर यदि कोई उन्हें विचित्र बात या उत्तम श्लोक सुनाता था तो बहुत प्रसन्न होते थे। उनके मातहत तीन चार सौ लेखक और कारकुन थे। उनमें एक मनुष्य तात्या कांकर्डे नामक था। वह बहुश्रुत, चतुर और कवि था। उसने नाना को यह नया श्लोक बनाकर सुनायाः—

अलङ्कारप्रियो विष्णुर्जलधाराप्रियः शिवः।
नमस्कारप्रियो भानुर्ब्राह्मणो भोजनप्रियः॥

अर्थात्—विष्णु को अलङ्कार प्रिय हैं; शिव को जल की धारा प्रिय है; भानु (सूर्य) को नमस्कार प्रिय है; ब्राह्मण को भोजन प्रिय है। इसमें 'भानु' शब्द के दो अर्थ हैं—एक तो सूर्य, दूसरा नाना के कुल का नाम। उस समय यह कवि बेकार था। उससे यह श्लोक सुनकर नाना बहुत प्रसन्न हुए और उसे अपने यहाँ नौकर रख लिया।

इस कवि-कारकुन ने कुछ दिन तक अपना काम अच्छी तरह करके अपनी तरक्की के लिए नाना से इस प्रकार विनती कीः—

एतावत् सरसि सरोरुहस्य कृत्यं
भित्त्वाम्भः सपदि बहिर्विनिर्गतं यत्।
आमोदो निकसन-मिन्दिरानिवास-
स्तत्सर्वं दिनकरकृत्यमामनन्ति॥

अर्थात्—कमल का सिर्फ़ इतना ही काम था कि सरोवर में पैदा होकर उसके जल को फोड़कर ऊपर निकल आवे। सो यह बात उसने कर दिखाई। अब उसमें सुगन्ध पैदा करना, उसका विकास करना और उसे लक्ष्मी का निवास-स्थान बनाना ये सब काम दिनकर (भानु) के हैं; सो वे करें!

नाना फड़नवीस के समय में राम शास्त्री नामक एक विद्वान् न्यायाधीश थे। वे महा पण्डित थे और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनते हैं, विधवा-विवाह को शास्त्रसङ्गत समझते थे। नारायणराव पेशवा के ख़ून के सम्बन्ध में उन्होंने राघोबा दादा के ख़िलाफ़ अपनी राय बहुत ही निडर होकर दी थी। उनके मरने पर तात्या काकिडें ने उनकी मृत्यु की रिपोर्ट नाना फड़नवीस से इस प्रकार की:—

वाग्विलासैरनुपमैर्जित्वा भूदेवमण्डलम्।
जेतुं सुरगुरुं शास्त्री रामनामा दिवं गतः॥

अर्थात्—अपने वक्तृत्व के बल से भूलोक के देवता ब्राह्मणों को जीतकर राम शास्त्री अब देवताओं के गुरु बृहस्पति को जीतने के लिए देवलोक को गये हैं।

नाना फड़नवीस बड़े सवेरे उठते थे। प्रातः कृत्य से निवृत्त होकर स्नान-सन्ध्या करते थे। इसमें दो घंटे लगते थे। इसी समय विद्वानों, पण्डितों और साधु-सन्तों से मिलते थे। इसके बाद बेलबाग़ नामक वाटिका में जाकर बैठते थे और शहर की ख़बरें, बाज़ार-भाव आदि की रिपोर्टें सुनते थे। दोपहर के पहले अपने महल में आकर भोजन करते थे। फिर कुछ विश्राम करके घड़ी भर दिन रहने तक राज्य का काम करते थे। शाम को कुछ देर विश्राम करके और दो एक छोटे मोटे काम करते थे। फिर सायं-सन्ध्या, स्तोत्र-पाठ आदि करके भोजन करते थे। तदनन्तर आधी रात तक जासूसों की ख़बरें सुनते, पत्र-व्यवहार करते, राजनीतिकुशल मित्रों और मंत्रियों से मन्त्रणा करते थे। उनके सब काम नियमानुकूल होते थे। समय का ज़रा भी अपव्यय न होने पाता था। इससे न मालूम कितना काम उनके हाथों से हो जाता था।

बड़े बड़े अँगरेज़ अधिकारियों ने नाना की योग्यता को स्वीकार किया है और उनके गुणों की प्रशंसा की है। एलफिन्स्टन साहब ने लिखा है कि जिस समय नाना पेशवाई के प्रधान सूत्रधार थे उस समय महाराष्ट्र-राज्य उन्नति के शिखर पर विराजमान था। ग्रांट डफ ने अपने इतिहास में लिखा है कि विपत्ति के समय में भी नाना का स्वदेश-प्रेम और निष्कपट बर्ताव प्रशंसा के योग्य था। नाना के मरने की ख़बर पाने पर गवर्नर जनरल लार्ड वेलसली ने बाजीराव पेशवा को लिखा था:—

"I have received with great concern the intelligence of the much lamented death of Balaji Pandit. The loss of persons, distinguished for their talents, great qualities and abilities is, at all times, a subject of regret. The meloncholy news, therefore, of the death of Balaji Pandit, the able minister of your State, whose upright principles and honourable views and whose zeal for the welfare and prosperity both of the dominions of his own immediate superiors and of other Powers, were so justly celebrated, occasion extreme grief and concern."

इस प्रकार लाट साहब ने नाना की मृत्यु पर दुःख प्रकाशित किया; उनके सद्गुणों की, योग्यता की, कार्य्यदक्षता की, और सत्य प्रीति की प्रशंसा की; और साथ ही यह भी कहा कि नाना अपने स्वामी ही की हितचिन्तना न करते थे, अपने पड़ोसी राज्यों की भी वे भलाई चाहते थे। धन्य नाना फड़नवीस! विदेशी भी जिनका गुणगान करें।

"भवो हि लोकाभ्युदयाय ताहशाम्"।

लक्ष्मीधर वाजपेयी।

रत्नावली।

(१)

देखो है प्रतिमा सजीव छवि की रत्नावली सुन्दरी,
राजा विक्रमबाहु की प्रिय सुता वामोरु बिम्बाधरी।
दैवात् आज समुद्र में पतित हो है क्लेश पाती यह,
मानो देव-वधू गिरी गगन से यों है सुहाती यह॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२)

काले और विशाल बाल बिखरे कल्लोल के कारण,
फूलों के सम फेन-जाल जिनमें शोभा किये धारण।
माला और दुकूल भी ललित हैं होके जलान्दोलित;
आपद्ग्रस्त तथापि मञ्जुल-मुखी रत्नावली शोभित॥

(३)

आभा-पूर्ण मनोज्ञ नील मणि से हैं दिव्य दोनों चख;
हीरों के सम दाड़िमी दशन हैं, मुक्ताफलों से नख।
त्योंही विद्रुम-पद्मराग सम है बिम्बोष्ठ-शोभा भली;
श्रीसंयुक्तसुवर्ण-गात्रि यह यों है ठीक रत्नावली॥

(४)

श्री-श्रीहर्ष नरेश का विदित है रत्नावली नाटिका;
है साहित्य-विभाग में वह यथा शृङ्गार की वाटिका।
है सारा इसका चरित्र उसमें आनन्ददायी महा;
देते हैं हम सार आज उसका थोड़ा इसीसे यहाँ॥

(५)

"होवेगा इसका विवाह जिससे कल्याणकारी सदा,
होगा निश्चय सार्वभौम नृप सो पाके सभी सम्पदा"
ऐसा सिद्ध वर-प्रदान सुन के रत्नावली के लिए,
कौशाम्बी-पति वत्सराज उसके लाभाभिलाषी हुए॥

(६)

ब्याही विक्रमबाहु की पर उन्हें थी भानजी पूर्व ही;
पुत्री उज्जयिनी-महीप वर की थी मुख्य रानी वही।
अस्तु श्रीयुत-वत्सराज नृप के वाभ्रव्य दूत-प्रति—
की आपत्ति यही प्रकाश उसने जा योग्य भी थी अति॥

(७)

देखा स्वप्रभु-कार्य्य को बिगड़ते बाभ्रव्य ने यों जब
स्वामी के हित-साधनार्थ उसने यों वञ्चना की तब।
"रानी तो सहसाग्नि में जल गईं दुर्दैव के कारण,
स्वामी को इस शोक से न मिलती है शान्ति एक क्षण"॥

(८)

राजा ने सुन दूत के वचन ये जी में दुखी होकर—
सोचा यों मन में विचार करके सम्पूर्ण पूर्वापर।
"दूंगा मैं अब वत्सराज-कर में रत्नावली जो नहीं,
तो सम्बन्ध समस्त अस्त उनसे होगा हमारा यहीं"॥

(९)

मन्त्री श्रीवसुभूति-सङ्ग उसने रत्नावली को तब,
भेजा सिंहलदेश से कर बिदा दे योग्य शिक्षा सब।
थे किन्तु द्रुत सिन्धु पार करते जाते चले ये जब,
नौका टूट गई तदीय सहसा; भावी रुकी है कब?॥

(१०)

ऐसी घोर विपत्ति के समय में रत्नावली ने वहाँ
पाके एक सुकाष्ठ-खण्ड उससे पाया सहारा महा।
व्यापारी फिर एक सिन्धु-पथ से जो आ रहा था घर,
ले आया निज देश को वह इसे बैठाल नौका पर।

(११)

कौशाम्बी-पति-योग्य जान इसको मोद-प्रदा सर्वथा,
सौंपी भूपति-मन्त्रि को वणिक ने सारी सुनाके कथा।
मन्त्री ने रनिवास में तब इसे दी सुन्दरी जान के,
रानी ने नृप से बचा कर वहाँ रक्खी सखी मान के।

(१२)

कन्दर्पोत्सव में परन्तु इसने भूपाल का दर्शन
पाया ज्यों दिवसान्त में कुमुदिनी चन्द्रांशु-संस्पर्शन।
साक्षात् काम-महीप जान उनकी की वन्दना प्रीति से,
रङ्गों से फिर एक चित्र उनका खींचा यथारीति से।

(१३)

राजा का वह चित्र देख इसकी प्यारी सखी ने वहाँ
इसको भी लिख यों कहा "रति बिना क्या काम देखा कहीं
हैं वत्सेश्वर कामदेव यदि तो रत्नावली है रति"-
आली की सुन बात यों वह हुई अत्यन्त लज्जावती।

(१४)

बातें यों घन-कुंज में कर रहीं थीं प्रेम से ये जहाँ
बैठी पादप पै उन्हें सुन रही थी एक मैना वहाँ।
वैसे ही कहते उसे निज कथा ज्योंही इन्होंने सुना
दौड़ीं तत्क्षणही उसे पकड़ने, वे पा सकीं किन्तु ना।

(१५)

कौशाम्बी-पति भी उसी समय थे उद्यान में डोलते
आलोकी वह सारिका नृपति ने आश्चर्य्य से बोलते
हो उत्कण्ठित मार्ग में उलझते नाना लता-पुञ्ज में
पीछेही उसके नृपाल चल के आये उसी कुञ्ज में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रत्नावली ।

रत्नावली जलधि में यह दर्शनीय : किंवा हुई प्रकट चन्द्रकला द्वितीय ।
या हो गई प्रकट है वडवाग्नि-ज्वाला ; है कान्तिमान अथवा यह कञ्जमाला ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१६)

पाई चित्रपटी वहाँ नृपति ने रत्नावली की वही ;
शोभा देख तदीय मोहित हुए न प्रेम-सीमा रही।
हो तल्लीन विलोक चित्र फिर जो बातें उन्होंने कहीं,
प्रीहर्ष-प्रतिभा-प्रकाशन बिना वे हैं दिखाती नहीं ?॥

(१७)

"लीलापूर्वक बार बार जिसने की नम्र पद्मा, तथा,
मेरा जो अति पक्षपात करती मोदप्रदा सर्वथा।
मेरे मानस में प्रविष्ट अतिही जो राजहंसी सम,
है ऐसी यह कौन चित्र-लिखिता बाला अनन्योपम ?

(१८)

ब्रह्माने मुख चन्द्र-तुल्य इसका होगा बनाया जब ;
दों चातुर्य्य-कला-कलाप उसने होगा दिखाया जब।
होते से निज आसनाम्बुज अहो ! तत्काल विन्मीलित,
अच्छी भाँति वहाँ कभी रह सका होगा न धाता स्थित"॥

(१९)

देखे चित्रपटी वही थकित सी मातङ्ग की चाल में,
बाला सागरिका सखी-युत वहाँ आई उसी काल में।
लज्जा-नम्रमुखी हुई पर वहाँ को देख के भूप को,
मानी भूपति ने तथा सफलता होलोक तद्रूप को॥

(२०)

"हैं इन्दीवर नेत्र, चन्द्र मुख है, हैं कञ्ज दोनों कर,
हे रम्भोरु ! मृणाल बाहु तव हैं, हैं दिव्य-द्राक्षाधर।
सो आलिङ्गन हर्षदायिनि मुझे निःशङ्क तू देकर,
अङ्गों को सुख दे अनङ्ग-कृत त्यों सन्ताप मेरा हर"॥

(२१)

राजा के सुन वैन यों वह हुई रोमाञ्चिता, स्तम्भिता,
लज्जा-सङ्कुचिता प्रकम्पित तथा स्वेदाम्बु-संशोभिता।
मानी मुख्य वहाँ उसी समय में भूपाल की आगई ;
लीला अद्भुत देखते वह वहाँ सक्रोध में छागई॥

(२२)

रानी को सहसा विलोक नृप को सङ्कोच भारी हुआ,
लज्जा-युक्त हुए यथा कमल को चन्द्र-प्रभा ने छुआ।
रानी ने अति रुष्ट होकर पुनः रत्नावली सत्वर
उसी यत्न-समेत गुप्त-गृह में तत्काल बन्दी कर॥

(२३)

आया एक महेन्द्रजालिक पुनः उज्जैन-वासी वहाँ,
विद्या देख तदीय भूप-वर ने आश्चर्य माना महा।
नाना दृश्य दिखा विचित्र उसने की एक लीला यह,
मानों वह्नि समस्त राजगृह में हो छागई दुःसह॥

(२४)

ऐसा भीषण दृश्य देख महिषी अत्यन्त भीता हुई ;
बन्दी सागरिका-हितार्थ नृप से प्रार्थी विनीता हुई।
राजा ने सुन के प्रिया-वचन यों निःशङ्क हो तत्क्षण,
जा के शीघ्र किया स्वयं अनल से रत्नावली-रक्षण॥

(२५)

मन्त्री सिंहल का उसी समय में चिन्तार्त्त दुःखी महा,
आया दूत समेत नीरनिधि से उद्धार पाके वहाँ।
भेदोद्घाटन हो गया तब सखे ! रत्नावली का सभी ;
क्या से क्या कब हो, चरित्र हरि के जाने न जाते कभी॥

मैथिलीशरण गुप्त।

क़ैदी बालकों के स्कूल।

न् १८७६ ई० में यह क़ानून पास हुआ कि पन्द्रह वर्ष के नीचे की अवस्था के बालकों और बालिकाओं को यदि किसी अपराध के लिए दंड दिया जाय तो उनको जेलख़ाने भेजने के बदले विशेष प्रकार के स्कूलों में भेजा जाय। इस प्रकार के स्कूल, जिनको रिफ़ार्मेटरी स्कूल्स (Reformatory Schools) कहते हैं, इँगलैंड आदि सभ्य देशों में बहुत दिनों से स्थापित हैं। सन् १८७६ में इँगलैंड के स्कूलों के नमूने के चार स्कूल भारतवर्ष में भी खोले गये। एक मद्रास प्रान्त में, दूसरा बम्बई प्रान्त में और शेष दो बंगाल प्रान्त में। १८८९ ई० में ऐसा ही एक और स्कूल बरेली में भी खोला गया जो १९०२ में बरेली से चुनार हटा दिया गया। १८९१ में एक स्कूल जबलपुर में और सन् १९०२ में दिल्ली में भी खोला गया। इस समय ऐसे स्कूल सूबेवार इस प्रकार हैं:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मद्रास—चिङ्गलपट रिफार्मेटरी स्कूल
बम्बई—यरावदा (पूना के पास) ,,
बंगाल { अलीपुर (कलकत्त के पास) ,,
हज़ारीबाग़ (छोटा नागपुर में) ,,
संयुक्तप्रदेश—चुनार ,,
मध्यप्रदेश—जबलपुर ,,
पंजाब—दिल्ली ,,

इनके सिवा एक स्कूल बरमा के इनसीन नगर में भी है। सब मिलाकर ऐसे आठ सरकारी स्कूल हैं। इनमें केवल लड़के ही भरती किये जाते हैं। लड़कियों के लिए न तो ऐसे स्कूल ही खोले गये हैं और न उनको ऐसी कन्या-पाठशालाओं में जहाँ बोर्डिङ्ग हौस हों, भेजने का ही प्रबन्ध किया गया है। यद्यपि ये दोनों बातें क़ानून के अनुसार की जा सकती हैं। परन्तु दोनों में बड़ी कठिनाइयाँ हैं। थोड़ी सी लड़कियों के लिए एक अलग रिफार्मेटरी स्कूल खोलने के लिए एक तो भर पूर ख़र्च चाहिए। फिर इस देश की रस्म के मुताबिक़ उस स्कूल का प्रबन्ध स्त्रियों के ही द्वारा कराना पड़ेगा। परन्तु ऐसी स्त्रियाँ अभी हमारे देश में नहीं मिल सकतीं जो दुराचारी लड़कियों को सँभाल और सुधार सकें। बाक़ी रहा उनको "प्राइवेट" कन्या-पाठशालाओं में भेजना, यह और भी कठिन है। क्योंकि जिन स्कूलों में वे लड़कियाँ भरती की जायँगी जिनको अदालत ने चोरी आदि अपराधों के लिए दंड दिया हो उन स्कूलों में भद्र पुरुष अपनी लड़कियों को क्यों भेजने लगे।

जो लड़के इन स्कूलों में भेजे जाते हैं उनकी अवस्था १५ वर्ष से कम होती है। वे १८ वर्ष की अवस्था के बाद नहीं रक्खे जाते। लड़कों को इन स्कूलों में कम से कम तीन वर्ष और अधिक से अधिक सात वर्ष रहना पड़ता है।

इन स्कूलों का प्रबन्ध पहले जेलख़ाने के महकमे के अधीन था। परन्तु मद्रास गवर्नमेन्ट ने १८८८ ई० में अपने प्रान्त के स्कूल को शिक्षा-विभाग के अफ़सरों के अधीन कर दिया। इसका फल बहुत ही अच्छा हुआ। इसलिए १८९९ ई० में बड़े लाट की आज्ञा से हर एक प्रान्त के स्कूल शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर के अधीन कर दिये गये। पहले जब कोई बालक अपनी पढ़ाई समाप्त करके घर जाता था तब उसकी रिपोर्ट उस ज़िले की पुलिस को भेजी जाती थी जहाँ उसका घर होता था। परन्तु १९०१ ई० से यह सूचना उस ज़िले के शिक्षा-विभाग के अफ़सर के पास भेजी जाती है। इन अफ़सरों को समय समय पर सज़ायाफ़्ता लड़के के चालचलन, रोज़गार इत्यादि विषयों पर उस रिफार्मेटरी स्कूल के अफ़सर के पास रिपोर्ट करनी पड़ती है जिसमें वह आया हो। इस अधिकार के परिवर्तन का फल अच्छा हुआ और तुरन्त ही देखने में आया। स्कूलों में शिक्षा-प्रणाली का सुधार हो गया। लड़कों में मेहनत, ख़बरदारी, बुरे कामों से घृणा इत्यादि गुण पैदा होने लगे। जब ये लड़के स्कूल छोड़ देते हैं तब इन पर पुलिस की निगरानी नहीं रहती और इस बात का यत्न किया जाता है कि उनको कोई रोज़गार मिल जाय। संयुक्त प्रदेश और अन्य कई सूबों में इन पर निगरानी करने का भार डेप्युटी इन्सपेक्टर आफ़ स्कूलस पर है। ये लोग सुशिक्षित और सभ्य होते हैं और लड़कों के सुधारने का अनुभव भी रखते हैं। इसलिए ये पुलिस की तरह डाँट डपट के साथ लड़कों के चालचलन की जाँच पड़ताल नहीं करते। इन लड़कों में से अगर कोई फिर किसी अपराध के कारण सज़ा पाता है तो उसकी सूचना अदालत रिफार्मेटरी स्कूल के सुपरिन्टेनडेंट को देती है। जबसे इन लड़कों की निगरानी शिक्षा-विभाग के अफ़सरों के द्वारा होने लगी है तबसे ऐसे लड़कों की संख्या, जिनको फिर से सज़ा मिली हो, बहुत कम होती जाती है। १९०२ से १९०७ तक की जो रिपोर्ट मिस्टर औरेंज महोदय ने अभी निकाली है उसमें उन ऐसे लड़कों की संख्या केवल १० फ़ी सदी बतलाई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन स्कूलों में चार प्रकार की शिक्षा दी जाती है। (१) साधारण पढ़ना लिखना, (२) औद्योगिक शिक्षा, (३) शारीरिक शिक्षा और (४) धार्मिक शिक्षा।

पहले प्रकार की शिक्षा अभी तक अपर प्राईमरी कक्षा से अधिक कहीं नहीं दी जाती। बहुत से लड़कों को स्कूल में पढ़ाना शुरू कराया जाता है। क्योंकि वे बिलकुल गँवार आते हैं। अलीपुर स्कूल में जो लड़का चाहे थोड़ी अँगरेज़ी भी पढ़ सकता है। परन्तु दूसरे स्कूलों में प्रायः देश-भाषा में लिखना, पढ़ना और हिसाब सिखाया जाता है। चुनार स्कूल से एक लड़के ने स० १९०५ में अपर प्राईमरी का इम्तिहान पास करके वज़ीफा पाया और देहाती स्कूलों के मास्टरों के ट्रेनिङ्ग स्कूल में भरती किया गया। वहाँ से पास होकर वह अब एक स्कूल में मुदर्रिस है।

औद्योगिक शिक्षा कई प्रकार की दी जाती है। किसी स्कूल में कुछ ज़्यादा है किसी में कम। परन्तु हर एक स्कूल में इस पर बहुत ध्यान दिया जाता है। क्योंकि यह अक्सर देखा गया है कि छोटे लड़के खाने का ठिकाना न होने के कारण चोरी करने लगते हैं। इसलिए उनको किसी व्यवसाय की शिक्षा देना उनके जीवन को हमेशा के लिए सुधारना है। नीचे लिखे काम इन लड़कों को सिखलाये जाते हैं:—जिल्दबंदी, लोहार का काम, बढ़ई का काम, बर्तनों पर क़लई करना, लकड़ी पर वार्निश चढ़ाना, जूता बनाना, कपड़ा बुनना, संगतराशी करना, मिट्टी के बर्तन बनाना, कपड़ा सीना, बेंत का काम, हजामत बनाना, खेती करना, बाग़बानी, खाना पकाना इत्यादि। किसी किसी स्कूल को तो लड़कों की बनाई हुई वस्तुओं को बेचने से ख़ासी आमदनी हो जाती है। जहाँ तक हो सकता है लड़कों को ऐसी शिक्षा दी जाती है जो उनके बाप दादे करते आये हों या जो उनकी ज़ात के प्रतिकूल न हो।

शारीरिक शिक्षा भी कई प्रकार से दी जाती है। इस देश की साधारण कसरत डंड, बैठक से लेकर फुट बाल, हैाकी और क्रिकेट तक लड़के सीखते हैं। चुनार और दिल्ली में देशी कसरत पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

अब रही धार्मिक शिक्षा—इस पर जहाँ तक हो सकता है बड़ा ध्यान दिया जाता है, क्योंकि चरित्र सुधारने में धर्म का प्रभाव सबसे अधिक पड़ता है। किसी किसी स्कूल में पढ़ाई शुरू होने से पहले कुछ भजन गाये जाते हैं। कहीं कहीं पंडितों के द्वारा धर्मोपदेश कराया जाता है। किसी किसी जगह हिन्दू लड़कों को मन्दिरों में और मुसलमानों को मस्जिदों में भेजने का प्रबन्ध किया जाता है। अलीपुर के स्कूल में लड़कों ने एक संकीर्तन-मंडली बनाई है। इसके साथ ही बड़ा ध्यान इस बात पर रक्खा जाता है कि हर एक लड़का सच बोले; आपस में मेल रक्खे; दूसरे की चीज़ पाकर अपने पास न रख ले इत्यादि। जो लड़के बहुत अच्छे चाल चलन के साबित होते हैं उनको कई प्रकार के पुरस्कार दिये जाते हैं और वे मानीटर बनाये जाते हैं। अर्थात् सब लड़कों पर उनको विशेष प्रकार के अधिकार दिये जाते हैं।

इन स्कूलों का प्रबन्ध एक सुपरिन्टेन्डेंट के अधीन होता है। परन्तु एक कमिटी भी रहती है जिसको Committee of Visitors कहते हैं। कमिश्नर, कलेक्टर इत्यादि इसके सभासद होते हैं। नियमानुसार दो हिन्दुस्तानियों का मेम्बर होना भी आवश्यक है।

डेविड ससून (David Sassoon) बम्बई में एक बड़े दानी पुरुष हैं। इन्होंने भी अपने ख़र्च से बम्बई में एक रिफार्मेटरी स्कूल खोला है जिसमें प्रायः २०० लड़के रहते हैं। इस स्कूल की ड्राइङ्ग और दस्तकारी की शिक्षा अच्छी कही जाती है।

सं० १९०० में इन स्कूलों में ११४६ लड़के पढ़ते थे। इनमें से ३३२ इसी साल भरती हुए थे। इन लड़कों में ७०९ हिन्दू हैं, ३१६ मुसलमान, ५५ बौद्ध और ६६ अन्यधर्मावलम्बी। इनमें से ३०५ खेती का काम सीखते हैं और ८४१ दूसरे व्यवसाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन लोगों को शिक्षा-सम्बन्धी कुछ भी अनुभव है वे जान सकते हैं कि साधारण बालकों को शिक्षा देना कितना कठिन है। कितने प्यार से, कितनी धमकी से, कितना आँख दिखाकर, और कितना पुचकार कर लड़के पढ़ने की तरफ़ प्रवृत्त किये जाते हैं। अब सोचिए कि उन बालकों को पढ़ाना कितना कठिन है जिन पर बुराई का रंग पहलेही से चढ़ चुका है और जो चोरी, व्यभिचार, मार पीट में पड़ कर अदालत तक का मुंह देख चुके हैं। यथार्थ में रिफार्मेटरी स्कूल खोल कर सरकार ने इस देश पर बहुत उपकार किया है। मूर्खों की अपेक्षा दुष्टों को सुधारना कठिन है। इतना प्रबन्ध रखने पर भी प्रति वर्ष एक दो लड़के भाग जाते हैं। वे फिर पकड़े जाते हैं और उनको दंड दिया जाता है। किस दर्जे तक के दुष्ट लड़के इन स्कूलों में आते हैं यह इससे मालूम हो सकता है कि दिल्ली के स्कूल में १९०७ में एक लड़के ने अपने साथी को, जो मानीटर था, मार डाला। इस पर वह काले पानी भेजा गया। परन्तु कितनेही दुष्ट दुराचारी लड़कों ने यहाँ तक उन्नति की है कि प्रदर्शनियों में अपने औद्योगिक परिश्रम से बनाई हुई वस्तुओं के लिए पदक पाये हैं। सैकड़ों ऐसे लड़के, जिन्होंने इन स्कूलों में शिक्षा पाई है, इस समय स्वतंत्रता के साथ रोज़गार कर रहे हैं और अपना और अपने कुटुम्ब का इज़्ज़त के साथ पालन करते हैं।

रामनारायण मिश्र।

दालिया।

[१]

जब शाहशुजा, औरंगज़ेब के डर से भाग कर आराकान-नरेश का मेहमान हुआ उस समय उसके साथ उसकी तीन कन्याएँ भी थीं। आराकान-नरेश की इच्छा थी कि उन शाहज़ादियों को वह अपनी पुत्र-बधू बनावे। किन्तु शाहशुजा इस छोटे मुँह से बड़ी बात को सुनकर बहुत ही नाराज़ हुआ। आराकान-नरेश ने भी "रस्सी जल गई पर ऐंठन न छूटी" देखकर मन ही मन कुढ़ा, और किसी बहाने नाव पर चढ़ा कर उन चार, पिता-पुत्रियों को जल-प्रवाह कर देनाही उन अतिथियों का योग्य सत्कार समझा। जब शाहशुजा को अपने ऊपर आने वाली विपद की सूचना हुई, तब उसने अपनी छोटी लड़की "अमीना" को अपने ही हाथ से नदी में डुबो दिया। बड़ी लड़की ने .खुदकुशी कर डाली और मँझली लड़की .जुलेख़ा पानी में जा कूदी। किन्तु रहमतख़ाँ नामक शुजा के एक विश्वासपात्र नौकर ने नदी में तैर कर .जुलेख़ा की प्राण-रक्षा की और उसे लेकर कहीं भाग गया। अमीना एक मछुवे के जाल में जा फँसी और उसी के घर प्रतिपालित होने लगी। इसके कुछ दिनों बाद आराकान-नरेश की मृत्यु हुई और उसका पुत्र राज्याधिकारी हुआ।

[२]

एक दिन, सबेरे, बुड्ढा मछुवा कहीं से आकर कुछ रूखेपन से कहने लगा,—"तिन्नी![*] तुझे आज क्या हो गया है कि अब तक काम-धन्धे में तूने हाथ नहीं लगाया और न नाव हो—"

अमीना बूढ़े के पास जाकर प्यार से कहने लगी,—"आज मेरी हमशीरा साहबा (जीजी) नहीं आई हैं। इसी से आज छुट्टी है।"

"तेरी जीजी कौन हैं री?"

.जुलेख़ा झट न जाने कहाँ से आकर बोल उठी "मैं हूं।"

पहले तो बूढ़ा निर्वाक सा हो रहा; फिर .जुलेख़ा के अति निकट जाकर उसे भली भाँति घूर कर देखने लगा; और झट सवाल कर बैठा,—"तू काम काज कुछ जानती है?"

---

* मछुवे ने अपनी भाषा में (प्यार से) अमीना का नाम तिन्नी रक्खा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमीना ने जवाब दिया, "अब्बा! मेरी हमशीरा काम न कर सकेंगी; उनके बदले मैं ही काम कर दूंगी"।

मछुवे ने कुछ सोच कर ज़ुलेख़ा से पूंछा,—"तुम रहोगी कहाँ?"

"अमीना के पास, और कहाँ?"

बूढ़े ने सोचा, यह कहाँ की चुड़ैल आई। फिर उसने पूंछा—"खाओगी क्या?"

ज़ुलेख़ा ने कहा "इसके लिए कौन सी चिन्ता है? यह लो"—कह कर झट उसके सामने एक अशर्फ़ी उसने फेंक दी। अमीना उसे मछुवे के हाथ में देकर कहने लगी, "अब बहुत दिन चढ़ आया; तुम अपना काम करने जाओ"।

ज़ुलेख़ा वेश बदल कर बहुत जगह घूम फिर कर, अन्त में अमीना का पता पाकर, मछुवे की झोंपड़ी में आई है। उधर रहमतख़ाँ गुप्त रूप से आराकान-नरेश के दर्बार में काम करने लगे हैं।

[३]

ग्रीष्म ऋतु में प्रातःकाल के परम रमणीय समय में एक छोटी सी नदी के तीर एक पेड़ की छाया में बैठकर ज़ुलेख़ा अमीना से कह रही है,—"ख़ुदा ने जो हम दोनों बहनों की जाँ-बख़्शी की है यह क़ुदरत वालिद के मारे जाने का बदला लेने के लिए है; नहीं तो इसकी और दूसरी कोई वजह नहीं दिखाई देता।"

"मेरी प्यारी बहन! अब उन गुज़श्तः बातों का ज़िक्र छोड़ो। मुझे तो अभी इस दुनिया में रहना मंज़ूर है। जिसे मरना हो वह जाकर लड़-झगड़ मरे। मुझे तो यहाँ किसी बात की तकलीफ़ नहीं है"।

ज़ुलेख़ा ने कहा, "छिः छिः, अमीना तू क्या शाहज़ादे की लड़की नहीं है? कहाँ देहली का शाही तख़्त और कहाँ यह एक मछुवे की झोंपड़ी!"

अमीना हँस कर कहने लगी—"मुझ सा एक मामूली लड़की को यदि यह झोंपड़ा और पेड़ की छाया ही ज़्यादः पसन्द हो तो इस रंज के वक़्त में भी देहली के तख़्त के लिए आँसू बहाने की क्या ज़रूरत"?

ज़ुलेख़ा कुछ अनमनी सी होकर कहने लगी,—"इस लिए मैं तुझे गुनाहगार नहीं समझती। पर ज़रा तू सोच तो सही अमीना! वालिद साहब सब से ज़ियादह तुझी को प्यार करते थे। इसी लिए तुझे अपने हाथों से उन्होंने दरिया में फेंक दिया था। उनकी दी हुई उस मौत से तू ज़िन्दगी को बेहतर न समझ! अगर तू वालिद के मारे जाने का पूरा बदला ले सकेगी तो तेरी यह थोड़े दिनों की ज़िन्दगी कुछ काम आ जायगी"।

इन बातों को सुन कर अमीना चुप हो रही! यह तो स्पष्ट ही विदित हो रहा है कि उस नदी तीर की सघन वृक्षावली और उसके इस नवीन वय ने उसे आत्मविस्मृता कर रक्खा था। कुछ देर बाद अमीना बोली—"बहन, तुम बैठो; मैं आती हूं। अगर मैं खाना न पका रक्खूंगी तो बूढ़ा भूखों मर जायगा।"

[४]

ज़ुलेख़ा अमीना की इस हार्दिक दुर्बलता को देख अत्यन्त उदास हो रही थी कि इतने में पीछे से किसी के पैरों की आवाज़ आई। उसने आकर पीछे से उसकी आँखें मूँद लीं।

ज़ुलेख़ा ने अकचकाकर पूंछा—"कौन है?" ज़ुलेख़ा का स्वर सुनते ही वह युवक ज़ुलेख़ा की आँखों से झट अपना हाथ हटा सामने आकर खड़ा हो गया, और ज़ुलेख़ा की ओर देखकर कहने लगा, "यह क्या? तुम तो तिन्नी नहीं हो"!

ज़ुलेख़ा अपने वस्त्र सँभाल कर उठ खड़ी हुई और आँखों से मानो आग की चिनगारियाँ बरसा कर पूंछने लगी,—"तुम कौन हो?"

युवा ने उत्तर दिया,—"तुम हमें नहीं पहचानोगी; तिन्नी पहचानती है। तिन्नी कहाँ है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिन्नी इन दोनों का शोर-गुल सुनकर बाहर निकल आई। ज़ुलेख़ा का क्रोध से भरा हुआ चेहरा और युवा की अकचकाई हुई सूरत देखकर अमीना क़हक़हा मार के कहने लगी,—"बहन! तुम इसकी बातों से ख़फ़ा न हो। यह आदमी नहीं है। इसे एक जंगली जानवर समझो। अगर आपसे इसने कुछ बेअदबी की हो तो मैं इसे अभी सज़ा देती हूं। दालिया, तूने क्या किया! नामाक़ूल, नाशाइस्तः कहीं का।"

युवाने झट उत्तर दिया,—"किया क्या! कुछ तो नहीं; सिर्फ़ आँखें मूँद ली थीं। मैंने जाना वह तिन्नी है!"

तिन्नी सहसा कुपित होकर कहने लगी,—"फिर वही छोटे मुँह बड़ी बात कहता है। अब तू बड़ाही निडर और ढीठ होता जाता है। कब तूने तिन्नी की आँखें मूंदी थीं?"

युवा ने कहा,—"आँखें मूँदने के लिए तो कुछ साहस का प्रयोजन नहीं दिखता; तिस पर यदि पहले से अभ्यास किया गया हो। पर आज तो मैं सचमुचही कुछ डर सा गया था।" ज़ुलेख़ा दालिया से अँगुली का इशारा करके चुपके से हँसने लगा।

अमीना ने कहा—"तुम बड़े बेवक़ूफ़ हो। तुम शाहज़ादियों के पास रहने लायक़ नहीं हो। अब तुम्हें कुछ अदब, क़ायदे की तालीम दी जायगी। देखो, इस तरह सलाम करो।"

अमीना ने सिर झुकाकर ज़ुलेख़ा को अभिवादन किया। दालिया ने बड़ी कठिनाई से उस अभिवादन की थोड़ी बहुत नक़ल कर दिखाई। अमीना ने कुछ पीछे हटकर फिर उसे सलाम करने को कहा। युवाने तुरन्त उसकी आज्ञा का पालन किया। अमीना उसे झोपड़े के पास लेजाकर कहने लगी,—"भीतर चलो"। उसके भीतर घुसने पर वह कहने लगी "जाओ आग सुलगा दो। मैं आती हूं।" अमीना ने बाहर से दरवाज़ा बन्द कर दिया।

ज़ुलेख़ा के पास बैठ कर अमीना कहने लगी "बहन, यहाँ के आदमी सब इसी तरह के नाशाइस्तः होते हैं। ये तहज़ीब से कोसों दूर हैं। मुझे तो इन लोगों ने बहुत ही तंग कर रक्खा है।"

अमीना के व्यवहार से तो तंग होने का कुछ भी लक्षण नहीं प्रतीत होता था। बल्कि ऊपर से वहाँ वालों पर उसका कुछ अन्याय और पक्षपात ही प्रकट होता था। ज़ुलेख़ा अत्यन्त रुष्ट होकर कहने लगी—"सच कहती हूँ, अमीना, तेरा चाल चलन देख कर मैं हैरान हूँ। उस जंगली आदमी की यह मजाल कि वह तेरा बदन छुवे!" ज़ुलेख़ा अमीना की हाँ में हाँ मिलाकर कहने लगी "देखो तो सही, ख़ुदानख़्वास्तः आज कोई शाहज़ादा या नवाबज़ादा अगर ऐसी बेअदबी करता तो उसे मैं जहन्नुम रसीदः कर देती।"

इस बात पर ज़ुलेख़ा की हँसी रोके न रुकी। वह कहने लगी—"सच बता, अमीना, तू जो कहती थी कि मुझे यह दुनिया प्यारी लगती है, उस बात से इस जंगली का तो कुछ तअल्लुक़ नहीं है?"

सच कहती हूँ बहन! मैं इस वहशी दालिया की बड़ी ही अहसानमन्द हूँ। वह मेरे लिए फूल तोड़ कर ला देता है; मेरे लिए ताज़े ताज़े मेवे ला देता है; जब तब मेरे सोने को जगह में झाड़ दे देता है; और अगर मैं किसी काम के लिए बुलाऊँ तो फ़ौरन कुत्ते की तरह दौड़ कर चला आता है। मैं बहुत चाहती हूँ कि इसे डाटूँ, पर वह ग़ुस्से के बदले लड़कों की तरह हँस देता है, या रोने लग जाता है। अगर उसे दो चार थप्पड़ लगाये भी जाते हैं तो मारे ख़ुशी के वह उछलने लग जाता है। इस की भी मैं आज़माइश कर चुकी हूँ। अभी उसे भीतर बन्द कर आई हूँ; जाके देखूँगी कि वह निगोड़ा ख़ुशी से चूल्हा फूँक रहा है। मैं इस तरह इस वहशी के जंगलीपन से हैरान रहा करती हूँ।"

ज़ुलेख़ा कहने लगी—"मैं इसका जंगलीपन छुड़ाने की कोशिश करूँगी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमीना ने हँस कर और विनयपूर्वक कहा—"नहीं, बहन! तुम उसे कुछ मत कहो।" इन बातों को अमीना ने इस ढँग से कहा मानो दालिया अमीना का अभी थोड़े दिन का पालतू मृगशिशु है; अभी दूसरे मनुष्यों को देख कर जंगल में भाग जाने की उसकी आदत बनी है। इतने में मछुवे ने आकर पूँछा "तिन्नी! आज दालिया नहीं आया?"

"आया तो है!"

"कहाँ है?

"बहुत दिक़ कर रहा था, इससे कोठरी में बन्द कर आई हूँ।"

बूढ़े ने कुछ सोच कर कहा,—"अगर उसने दिक़ किया तो नाराज़ मत हो। कम उम्र में सभी ऐसे चंचल होते हैं। कभी तू भी ऐसी ही रही होगी। इसलिए उस पर कठोर शासन मत कर। दालिया ने कल एक थलु * देकर तीन आम ख़रीदे थे।"

"इसकी क्या परवा है? बिना आम लिये ही उससे अभी दो थलु दिलवा दूँगी।"

बूढ़े ने अपनी पालिता कन्या की इस अल्पावस्था में ही ऐसी चालाकी और बुद्धिमानी देख कर बहुत ख़ुशी ज़ाहिर की और तिन्नी के मस्तक पर वह अपना हाथ प्यार से फेरने लगा।

* * *

आश्चर्य्य की बात है कि अब दालिया के आने जाने में ज़ुलेख़ा को विशेष आपत्ति नहीं रही। पर थोड़ा सा विचारपूर्वक देखने से स्पष्ट बोध हो जायगा कि इसमें कुछ भी आश्चर्य्य की बात न थी। दालिया, जननी प्रकृति देवी का एक उच्छृङ्खल सन्तान था। शाहज़ादियों के पास आने में वह अपने हृदय में कुछ भी सङ्कोच न करता था। दालिया का स्वभाव बड़ा ही हँसोड़, सरल, कौतुक-प्रिय और उद्दण्ड था। वह सब अवस्थाओं में निडर रहता था। वह रात रात भर सघन अरण्य में पर्वतों के शिखरों पर निर्द्वन्द्व बिचरा करता था।

एक दिन प्रातःकाल दालिया के आने पर ज़ुलेख़ा उसका हाथ पकड़ कर कहने लगी, "दालिया! इस देश के जो राजा हैं उन्हें तुम दिखा सकते हो?"

"क्यों नहीं दिखा सकता? पर यह तो बताओ तुम उन्हें देख कर क्या करोगी? मेरे पास एक ज़हर का बुझा हुआ ख़ंजर है। उसे मैं राजा के सीने में घुसेड़ना चाहती हूँ।"

ज़ुलेख़ा की बातें सुन कर दालिया पहले तो कुछ अचम्भे में आया। फिर ज़ुलेख़ा की हिंसा-पूर्ण आकृति देख कर उसके मुँह पर मुस्कराहट आ गई। मानो इस प्रकार की रहस्य-पूर्ण बातें उसने इसके पहले कभी सुनीही न थीं। यह परिहास अवश्य शाहज़ादी के योग्य था। यदि सचमुच ही कहीं राजा साहब के दुर्भाग्य से उनकी ज़ुलेख़ा के साथ भेंट हो गई, और इसने निज प्रतिज्ञानुसार उनका सत्कार किया, तो उस समय राजा महाशय कितने आनन्दित होंगे और उस समय उन्हें क्या सूझेगी, यह सोच कर दालिया क़हक़हा मार कर हँसने लगा।

[५]

ऊपर लिखी हुई घटना के दूसरे ही दिन रहमत-ख़ाँ ने चोरी से ज़ुलेख़ा को एक पत्र लिखा कि—"आराकान के नवीन महाराज मछुवे के झोंपड़े में दोनों बहिनों के रहने का पता पा चुके हैं। वे छिप कर अमीना को देख भी आये हैं और उसे महारानी बनाने के लिए जल्द राजमहल में लायेंगे। बदला लेने का इससे बढ़ कर और मौक़ा न दस्तयाब होगा।

पत्र पढ़ कर ज़ुलेख़ा, दृढ़ता से अमीना का हाथ पकड़ कर कहने लगी—"ख़ुदा की मर्ज़ी तो साफ़ मालूम हो रही है। अमीना, अब नादानी मत कर। अब अपनी ज़िन्दगी के फ़र्ज़ को अदा कर। लड़कपन छोड़ दे।"

दालिया भी वहीं उपस्थित था। अमीना ने देखा, वह बड़ेही कौतुक के साथ हँस रहा है।

* थलु मोहर को कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी उस हँसी से अमीना मर्म्माहता होकर कहने लगी—"जानते हो, दालिया! मैं आज महारानी बनने जाती हूँ।"

दालिया ने हँसते हँसते कहा—"बहुत देर के लिए तो नहीं न?"

अमीना पीड़ित और विस्मित चित्त से सोचने लगी—"इस जंगली हिरन के सङ्ग आदमी का सा बर्ताव करना मेरी भूल है।" फिर भी अमीना से न रहा गया। दालिया को और भी सचेत करने के लिए वह यों कहने लगी—"दालिया, क्या राजा को मारने के बाद मैं फिर लौट कर तुझसे मिल सकूँगी?"

[६]

बहुत बाजे, गाजे, हाथी, घोड़े, लश्कर के साथ राजमहल से दो बहुमूल्य पालकियाँ दोनों बहनों के लिए आ गईं।

अमीना ज़ुलेख़ा के हाथ से उस छुरे को लेकर भली भाँति देखने लगी। एक बार अपने हृदयस्थल पर रख उसने उसकी धार की परीक्षा ली। जीवन-मुकुल के वृन्त के पास एक बार स्पर्श करा के उसे फिर उसने म्यान में धर के कपड़े के भीतर छिपा लिया। अमीना की अत्यन्त इच्छा थी कि मृत्यु-यात्रा के प्रथम एक बार दालिया से और भी भेंट हो जाय तो उत्तम है। किन्तु कल सायंकाल से दालिया का कहीं भी पता नहीं है। दालिया जो कल हँस रहा था, क्या उसके संग अभिमान की ज्वाला तो नहीं छिपी थी?

पालकी पर चढ़ने के पहले अमीना ने अपने बचपन के आश्रय को प्रबल अश्रुधाराओं से तर आँखों से एक बार देखा। अमीना रोती हुई मछुवे का हाथ पकड़ कर कहने लगी—"बूढ़े बाबा! मैं तो जाती हूँ। तिन्नी के न रहने से तेरा घर अब कौन सँभालेगा।" मछुवे ने बालकों की भाँति रोना शुरू कर दिया। अमीना बोली—"बाबा, अगर दालिया आवे तो यह अँगूठी उसे दे देना और कहना अमीना जाते वक्त तुझे दे गई है।"

इतना कह के अमीना झट पालकी में जाकर बैठ गई। राज-कर्म्मचारी लोग धूमधाम से अपने होनेवाली रानी को लेकर चलते हुए। अमीना की वह पर्ण-कुटी, वह नदी तीर, वह तरुतल, सब अन्धकार में लीन हो गया।

यथासमय पालकी राजमहल के अन्दर जा पहुँची। दोनों बहनें पालकी से उतारी गईं। अमीना के मुँह पर न तो हँसी है, न आँखों में आँसू हैं। ज़ुलेख़ा की सूरत फीकी पड़ गई है। जब तक कर्तव्य-क्षेत्र दूर था तब तक उत्साह की तीव्रता थी। अब ज़ुलेख़ा कम्पित हृदय से अमीना को गले लगाकर सोचने लगी—"आज इस खिले हुए गुलाब को किस ख़ून की नदी में बहाने जाती हूँ"।

पर अब कुछ सोच विचार करने का समय नहीं रहा। परिचारिकायें दोनों बहनों को उस कमरे में ले गईं जिसमें राजा साहब उनकी अपेक्षा कर रहे थे। द्वार के समीप जाकर अमीना थोड़ी देर के लिए ठहर गई और बोली, "बहन"! ज़ुलेख़ा ने उसे चट गले से लगा लिया।

अन्त में दोनों बहनें कमरे के भीतर गईं। राजा साहब मसनद पर राजसी ठाठ से बैठे थे। अमीना तो मारे लज्जा के द्वार के पास ही खड़ी रह गई पर ज़ुलेख़ा बीबी आगे बढ़ गईं और राजा के पास जाकर चिल्ला उठीं—"दालिया!"

अमीना इस आश्चर्य्यमय दृश्य को देख वहीं मूर्च्छिता होकर गिर पड़ी।

चेत होने पर अमीना ज़ुलेख़ा की ओर और ज़ुलेख़ा दालिया की ओर देखने लगी। दालिया दोनों का मनोगत भाव समझ कर हँसने लगा। वह कहने लगा—"मैं वही दालिया हूं जो तुम लोगों के चूल्हे का मुँह फूँका करता था!"*

वङ्ग-महिला

---

* श्रीयुत बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर-लिखित एक बँगला गल्प का अनुवाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतवर्ष की कारीगरी के कुछ नमूने।

एक समय था जब यह देश सब तरह की कारीगरी के लिए और देशों का शिरोभूषण था। कारीगरी की कोई शाखा ऐसी न थी जिसमें इसने प्रसिद्धि न पाई हो। लोहे, लकड़ी का काम यहाँ बढ़िया होता था; सोने, चाँदी का काम यहाँ बढ़िया होता था; मिट्टी, पत्थर का काम यहाँ बढ़िया होता था। रेशमी और सूती कपड़े जैसे यहाँ होते थे वैसे किसी विलायत में न होते थे। प्रायः सब तरह की उत्तमोत्तम कारीगरी के लिए सारी दुनिया इस देश का मुँह ताकती थी। कला-कौशल में भारत बहुतही बढ़ा चढ़ा था। जब और कितनेही देशों में सोने चाँदी का नाम तक लोगों को न मालूम था तब यहाँ इन धातुओं के कंठे, जेवर और अनेक प्रकार के बर्तन बनते थे। आज कल जो देश अपने को सभ्यता के सिर पर चढ़ा हुआ मानते हैं उनके पूर्वज जब कन्दराओं में रात काटते थे तब भारत में बड़े बड़े बादरचाट महल खड़े थे। इस समय, अनेक कारणों से, इस देश का कला-कौशल यद्यपि अधोगति को प्राप्त हो गया है; यद्यपि सब तरह की कारीगरी में अवनति के लक्षण देख पड़ते हैं—अथवा यों कहिए कि कोई कोई कला-कौशल्य बिलकुलही लोप होगये हैं—तथापि अब भी कहीं कहीं कारीगरी के ऐसे अच्छे नमूने यहाँ पाये जाते हैं जिनकी तारीफ़ नहीं हो सकती। इस बात के कुछ नमूने यहाँ दिखाना है।

१—चित्राङ्कन।

भारत में ललित-कलाओं का प्रचार बहुत पुराने ज़माने से है। ऋषियों तक के पुरातन ग्रन्थों में इस बात का पता चलता है। यहाँ की स्त्रियों तक को ललित-कलायें—गाना, बजाना और चित्र खींचना आदि सिखलाया जाता था। वात्स्यायन मुनि का प्रसिद्ध एक ग्रन्थ है; उसमें लड़कियों को ललित-कला सिखाने का ज़िक्र है। ६४ प्रकार की कलाओं के नाम भी उसमें दिये हुए हैं। पुरुषों की कौन कहे स्त्रियाँ तक उस समय चित्र खींचती थीं। नाटकों में इस बात के प्रमाण मौजूद हैं। चित्रलेखा चित्र-विद्या में कितनी निपुण थी, पुराण इसके साक्षी हैं। पर अब स्त्रियों की चित्रकुशलता दीवार पर रंग से दो चार भद्दे दृश्य पोत देनेही में रह गई है। यहाँ के पुराने मन्दिरों और गुफाओं की चित्रावली देखने वालों के मन को अब तक मुग्ध कर रही है। यहाँ की पुरानी पुस्तकों तक में सुन्दर सुन्दर चित्र बनवा कर लगवाये जाते थे। ज्योतिषी लोग जन्मपत्रिकाओं में भाँति भाँति के चित्र बनाते थे। पुरानी प्रथा के कुछ लोग यह बात अब भी करते हैं। राजे महाराजे और अमीर आदमियों के लिए जो पुस्तकें लिखी जाती थीं उनमें बड़ेही मनोहर और मूल्यवान् चित्र रहते थे। महाराजा बनारस के संग्रह में जो रामायण है उसके विचित्र चित्रों का प्रतिबिम्ब पाठकों ने इंडियन प्रेस के रामचरित-मानस में देखाही होगा। मुर्शिदाबाद के नवाब के यहाँ कई सचित्र पुस्तकें ऐसी हैं जिनके चित्र बड़ेही सुन्दर हैं। सुनते हैं महाराजा दतिया के यहाँ बिहारी-सतसई की एक प्रति है। वह सचित्र है। उसका एक एक चित्र चित्रकारी का अद्भुत नमूना है।

१९०३ में जो प्रदर्शिनी देहली में हुई थी उसमें कितनेही पुराने उत्तमोत्तम चित्र दिखलाये गये थे। उनमें से बहुत से महाराजा अलवर के यहाँ से आये थे। कई एक मुर्शिदाबाद के भी थे। देहली के रायबहादुर पण्डित जानकीनाथ ने ७२ चित्र वाल्मीकि-रामायण के भेजे थे। ये चित्र लोगों को बहुत ही पसन्द आये। चित्रविद्या के पारदर्शी पण्डितों तक ने इन चित्रों की प्रशंसा की। ये चित्र संस्कृत-रामायण की एक पुस्तक के लिए बनाये गये थे। बादशाह जहाँगीर के समय में यह रामायण सोने के अक्षरों में कश्मीर में लिखी गई थी। इस बात को कोई ३०० वर्ष हुए। रामायण तो न मालूम क्यों नष्ट कर दी गई; पर चित्र रख लिये गये। वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देहली के शाही पुस्तकालय में रक्खे थे। ग़दर के समय वे एक सिपाही के हाथ लग गये। उससे पण्डित जानकीनाथ ने ख़रीदे। ये चित्र यद्यपि इतने पुराने होगये हैं तथापि अभी तक नये मालूम होते हैं। उनका रंग पूर्ववत् बना हुआ है। महाराजा अलवर के यहाँ से गुलिस्ताँ की एक सचित्र पुस्तक प्रदर्शिनी में आई थी। उसके चित्र अलवर के चित्रकार ग़ुलामअ़ली ख़ाँ और बलदेव के बनाये हुए थे। इन चित्रों की भी बड़ी तारीफ़ हुई थी।

इन उदाहरणों से सिद्ध है कि यद्यपि चित्र-कला का यहाँ अब बहुत कुछ ह्रास होगया है तथापि ह्रासारंभ हुए अभी बहुत दिन नहीं हुए। अब भी कहीं कहीं पुराने नमूने मिलते हैं जिन्हें देख कर आश्चर्य्य होता है। आज कल भी जयपुर और देहली आदि में कुछ चित्रकार हैं जो इस विद्या में बहुत कुछ नैपुण्य रखते हैं। देहली में तो काठ और हाथी-दाँत के छोटे छोटे बक्सों पर तक बहुत ही उत्तम रंगीन चित्र बनाये जाते हैं। कलकत्ता, बंबई, मदरास और जयपुर आदि में जो "स्कूल आव आर्ट्स" हैं उनकी बदौलत इस कला का कुछ कुछ पुनरुज्जीवन होने के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। यह सन्तोष की बात है।

२—मूर्ति-निर्म्माण।

मूर्ति-निर्म्माण में बंबई के म्हातरे महाशय ने बड़ा नाम पैदा किया है। उनका सचित्र चरित और उनकी बनाई हुई मूर्तियों के कुछ नमूने सरस्वती में दिये जा चुके हैं। अतएव उनके विषय में अधिक लिखने की ज़रूरत नहीं।

मिट्टी की मूर्तियाँ और खिलौने लखनऊ में बहुत ही अच्छे बनते हैं। वहाँ के टेकनिकल स्कूल में बाबू भगवन्तसिंह मूर्तिकार हैं। मिट्टी की मूर्तियाँ बनाने में आप सिद्धहस्त हैं। इन्होंने बनिये की स्त्री की एक मूर्ति बनाई है। उसे देख बड़े बड़े आदमियों तक ने इनके हस्त-कौशल की प्रशंसा की है। इनकी बनाई हुई अन्धों, अपाहिजों और अकाल के कँगलों की मूर्तियाँ देख कर देहली की प्रदर्शिनी के अधिकारियों ने इन्हें बार बार "शाबाश" कहा था। यही नहीं, सोने का एक तमग़ा भी इन्हें पहनाया था।

ब्रह्मावाले तो लकड़ी तक की मूर्तियाँ बनाते हैं। लकड़ी के काम के ये लोग बड़े कारीगर होते हैं। मन्दिरों और मठों के किवाड़ों और खंभों आदि में इनकी खोदी हुई मूर्तियाँ और बेल बूटे देखते ही बनता है। एक साहब तो इनकी लकड़ी की कारीगरी देख कर इतने मोहित होगये कि रंगून से उन्होंने फ़ोटोग्राफ़र बुलाया और रेल से बहुत दूर एक गाँव में उसे ले गये। वहाँ एक मन्दिर में जितने चित्र और कारीगरी के काम थे सबके आपने फ़ोटो उतरवा लिये। ब्रह्मावाले पौराणिक देवी-देवताओं और साधारण आदमियों की भी लकड़ी की मूर्तियाँ बनाने में अपना सानी नहीं रखते।

३—क़ालीन-कौशल।

फ़ारस और टर्की क़ालीनों के लिए बहुत प्रसिद्ध है। पश्चिमी देशों वाले, कुछ समय हुआ तब तक, यही समझते थे कि यही दो देश ऐसे हैं जहाँ अच्छे क़ालीन बनते हैं। परन्तु कश्मीर, अमृतसर, लाहौर और मुल्तान आदि के बने हुए क़ालीन जब उन लोगों ने देखे तब उनका ख़याल बदल गया। अमृतसर के लाला देवीसहाय चम्पामल के कारख़ाने के बने हुए कोई कोई क़ालीन ऐसे सुन्दर होते हैं कि विलायत वाले अब फ़ारस और टर्की के क़ालीनों की क़दर करना भूलने लगे हैं। वे क़ीमती भी बहुत होते हैं और ख़ालिस ऊन के बनते हैं। कश्मीर में तो इस समय कितनी ही कम्पनियाँ हैं जो सिर्फ़ क़ालीन बनाकर विदेश भेजती हैं। जिन लोगों ने इस विषय की जाँच की है वे कहते हैं कि यद्यपि बादशाही ज़माने में यहाँ क़ालीन अधिकता से बनते थे और कोई कोई क़ालीन, जो अमीरों की फ़रमायश से बनाये जाते थे, बहुत ही अच्छे और बेशक़ीमती होते थे, तथापि अब भी इस देश में क़ालीन कम नहीं बनते। कोई सूबा ऐसा नहीं जहाँ दो एक जगह क़ालीन बनते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

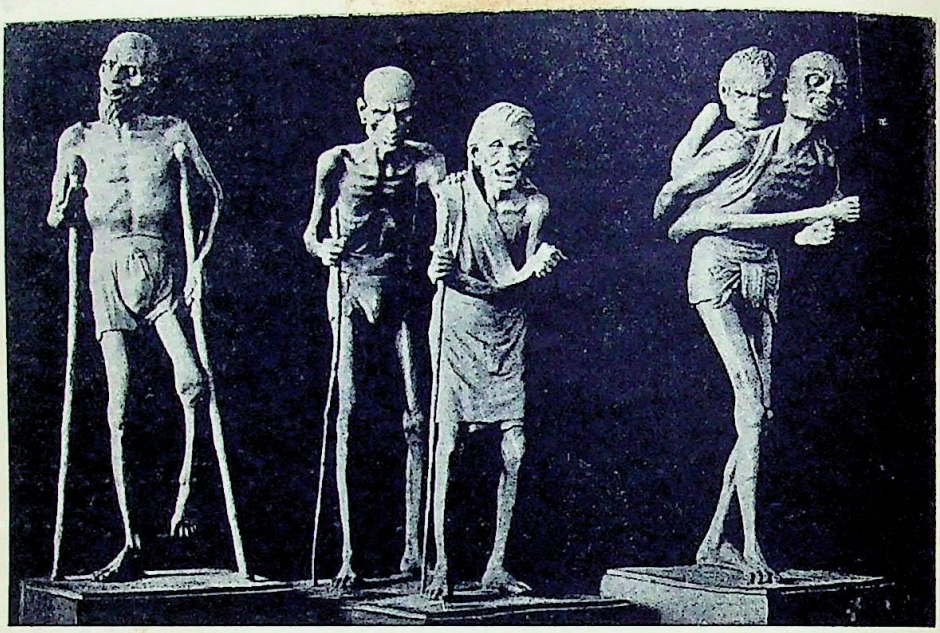

लखनऊ के मिट्टी के बने हुए कँगले।

ब्रह्मदेशवालों की बनाई लकड़ी की मूर्तियाँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

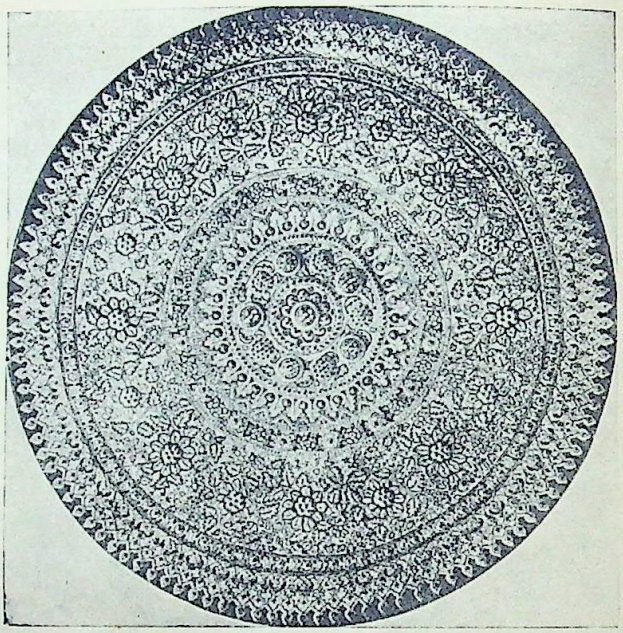

मोतियों का क़ालीन ।

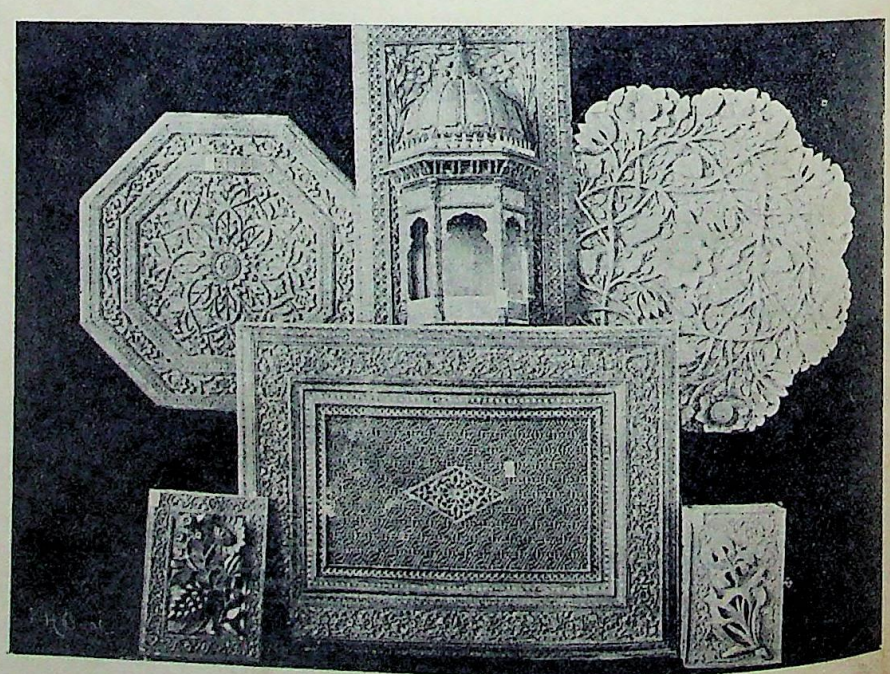

पंजाब और कश्मीर की नक़्क़ाशी ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

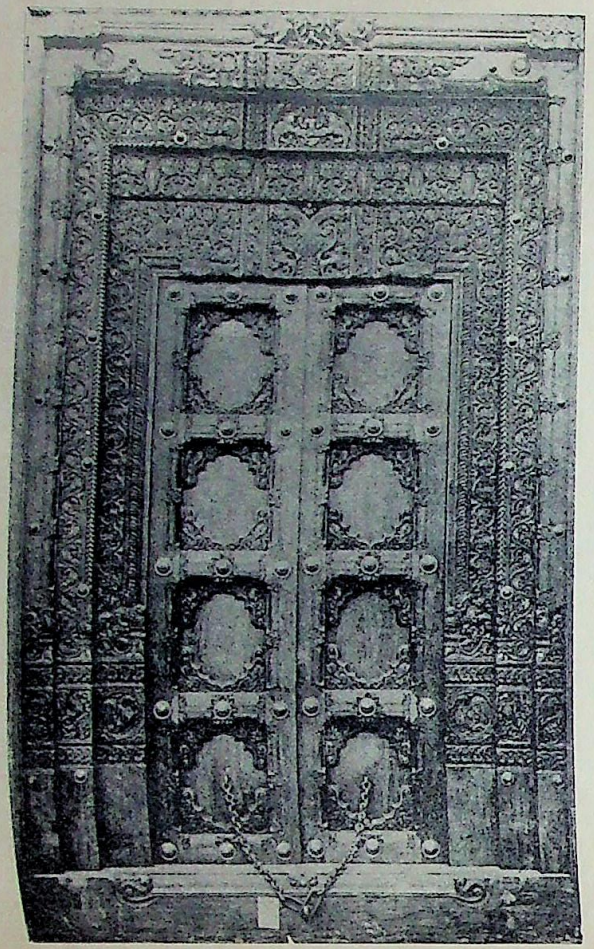

बिलारी की नक़ाशी ।

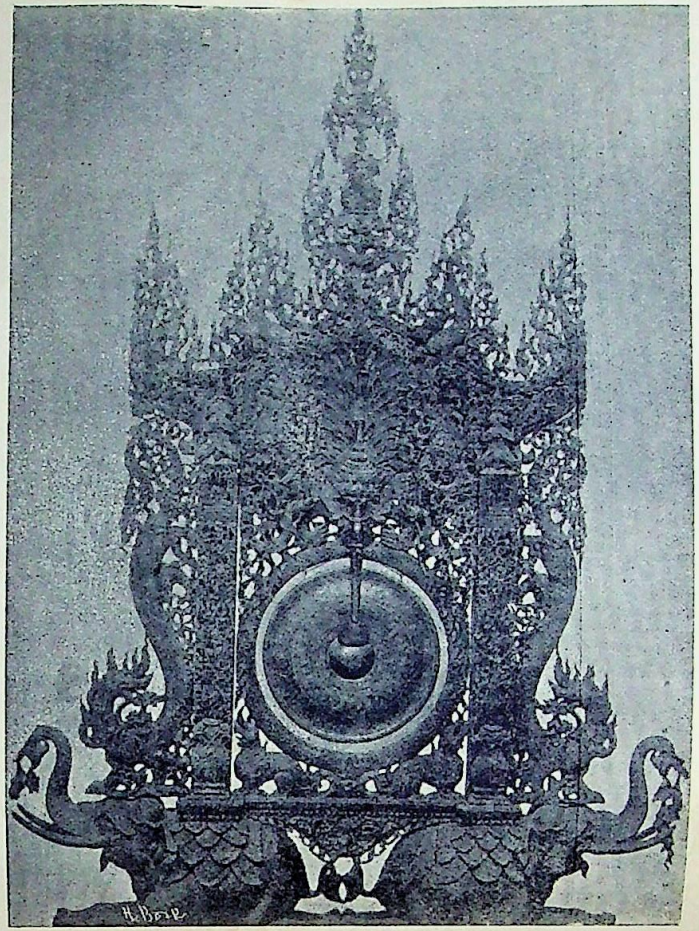

रंगून के कारीगर का बनाया हुआ घंटाघर ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

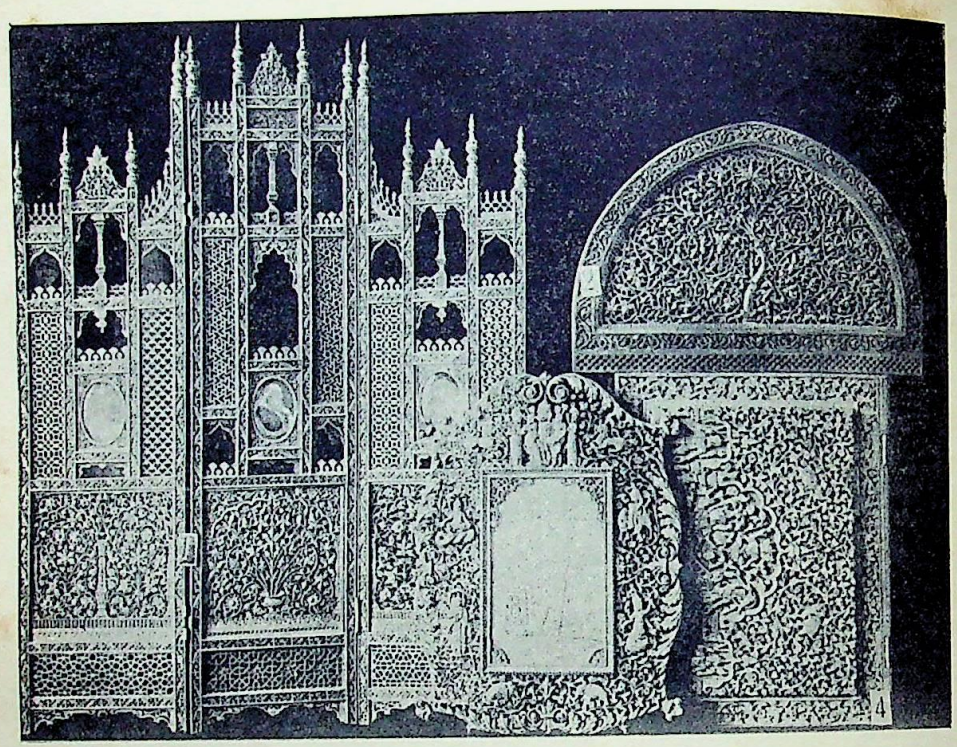

बम्बई, अहमदाबाद और सूरत का चन्दन का काम।

माइसोर में बने हुए चन्दन के बाक्स का ढक्कन।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का व्यवसाय न होता हो। आगरा, मिर्ज़ापुर, जयपुर, अजमेर, बीकानेर, मसूलीपटम, वारंगल, माइसोर, पूना आदि में क़ालीन और दरी बनाने का बड़ा व्यवसाय होता है।

कोई ३०० वर्ष पहले कश्मीर में ऐसे अच्छे क़ालीन बनते थे जिनकी नक़ल करने की आज तक बहुत लोगों ने कोशिश की, पर कामयाबी न हुई। उन पुराने क़ालीनों के ९ नमूने बीजापुर के असर-महल में अब तक विद्यमान हैं। इस महल में मह-म्मद साहब की डाढ़ी के २ बाल रक्खे हैं। मुसलमान लोग, इस कारण, इसे पवित्र समझते हैं। अली आदिलशाह के समय में ये क़ालीन कश्मीर से आये थे। पुराने होजाने के कारण यद्यपि ये कहीं कहीं ख़राब हो गये हैं तथापि इस देश की पुरानी कारीगरी की गवाही देने भर के लिए ये अब भी काफ़ी हैं।

हिन्दुस्तान भर में सबसे अधिक मूल्यवान् और बढ़िया क़ालीन महाराजा गायकवाड़ के संग्रह में है। इसका नाम है "मोतियों का क़ालीन"। सर जार्ज वर्डउड ने हिन्दुस्तान के कला-कौशल पर एक पुस्तक लिखी है। उसमें उन्होंने इस क़ालीन को एक प्रकार की "चादर" बतलाया है और बड़ी तारीफ़ की है। सचमुच यह क़ालीन अप्रतिम है। शायदही कहीं और कोई क़ालीन इसके जोड़ का निकले। यह क़ालीन खण्डेराव गायकवाड़ ने महम्मद साहब की क़ब्र के लिए बनवाया था। पर वह मदीना नहीं भेजा जा सका। यह क़ालीन ज़री का है। इसमें बेशुमार मोती और अन्यान्य रत्न टँके हुए हैं। इसकी लागत एक करोड़ रुपये से कम नहीं कूती जाती। यह एक अद्भुत चीज़ है। यद्यपि इसमें न मालूम कितना रत्न-समूह टँका हुआ है तथापि इसकी शोभा-हानि नहीं हुई; उलटा बढ़ गई है। जिस समय यह धूप में बाहर बिछाया जाता है उस समय इसकी रत्न-दीप्ति और मनोहर छटा देखतेही बन आती है। रंग बरंगे रत्नों और मोतियों के टाँकने में इसमें ऐसी कारीगरी दिखाई गई है जिसकी सुन्दरता का यथेष्ट अनुमान शब्द-वर्णन से नहीं हो सकता। इसके कई टुकड़े हैं। वे सब मिलकर एक क़ालीन होता है। यदि हो सका तो इस संख्या में इसके बीच के गोलाकार टुकड़े का चित्र देने की चेष्टा की जायगी।

४—लकड़ी का काम।

लकड़ी का काम हिन्दुस्तान में सैकड़ों तरह का बनता है। पुरातत्त्ववेत्ताओं का ख़याल है कि अनन्त समय से हिन्दुस्तान में लकड़ी का व्यवहार घर बनाने में होता आया है। एक समय था जब पत्थर और ईंटों से इमारतें न बनाई जाती थीं, किन्तु सब काम लकड़ी ही से लिया जाता था। इसी से हज़ारों वर्ष के अभ्यास से यहाँ के कारीगर लकड़ी के काम में बहुत अधिक कुशल हो गये हैं।

यों तो सब प्रान्तों में लकड़ी का काम होता है पर नक़्क़ाशी के काम में पंजाब और कश्मीर सबसे आगे हैं। पंजाब में अमृतसर, बटाला और भेड़ा के कारीगर इस काम में बड़े प्रवीण हैं। वहाँ की बनी हुई एक एक खिड़की तीन तीन सौ रुपये को बिकती है। मामूली मेज़ें सौ सौ की बिकती हैं। अमृतसर में ठाकुरसिंह नाम का एक कारीगर है। उसका बनाया हुआ पिँजरे के काम का एक परदा, कुछ समय हुआ, ६२५ रुपये का कूता गया था!

नगीना, अलीगढ़, सहारनपुर, फ़र्रुखाबाद, अहमदाबाद, माइसोर, मदूरा, ट्रावनकोर आदि में भी लकड़ी पर नक़्क़ाशी का काम प्रशंसनीय होता है। सर जार्ज वाट अपनी एक किताब में लिखते हैं कि दक्षिण के बिलारी शहर में एक विलक्षण कारी-गर है। पुराने ज़माने में द्राविड़ और चालुक्य चाल के जो दरवाज़े और किवाड़ बनते थे उनकी नक़ल करने में वह अद्वितीय है। उसकी कारीगरी को कोई नहीं पा सकता। साहब के कहने से उसने एक जोड़ी किवाड़ पर नक़्क़ाशी करके अपने हस्त-कौशल का नमूना दिखलाया। उसमें उसने ऐसा बारीक, ऐसा मनोहर और ऐसा सुन्दर काम किया जिसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रशंसा नहीं हो सकती। भारत की इस गिरी हुई दशा में भी ऐसी ऐसी कारीगरी को देखकर ही फिर यहाँ के कला-कौशल के उन्नत होने की आशा होती है।

ब्रह्मा में तो लकड़ी की कारीगरी उन्नति की चरम सीमा को पहुँच गई है। एक तो वहाँ लकड़ी की अधिकता, फिर बड़े बड़े मन्दिरों और मठों की अधिकता। फिर सब लोग प्रायः लकड़ी ही के मकानों में रहते हैं। इस कारण ब्रह्मा के कारीगरों को लकड़ी पर सैकड़ों तरह की कारीगरी दिखाने का अभ्यास है। शोभा और सुन्दरता बढ़ाने के लिए ब्रह्मा के कारीगर लकड़ी पर इतने बेल-बूटे, लतायें, चिड़ियां, जीव-जन्तु आदि बनाते हैं जिनका ठिकाना नहीं। उनके काम में एक प्रकार की सजीवता आ जाती है। परन्तु कभी कभी वे किसी किसी चीज़ को अपनी कारीगरी से इतना लाद देते हैं कि उसकी मनोहरता उलटी मारी जाती है। वह आँखों को खटकने लगती है। रंगून में माँग को न्याउन नाम का एक कारीगर है। उसने देहली की प्रदर्शिनी में रखने के लिए एक छोटी सी चीज़ बनाई थी। वह चीज़ थी, घंटादान। यह घंटाघर या घंटादान, ब्रह्मा के बौद्ध-मन्दिरों में जो घड़ियाल रहते हैं उनके टाँगने के लिए था। इसके शिखर इस कारीगर ने इतने ऊंचे कर दिये थे और उनमें ऐसा अच्छा काम किया था कि देखनेवालों के आश्चर्य्य की सीमा न रहती थी। इस छोटी सी चीज़ की क़ीमत, आप जानते हैं, कितनी थी? डेढ़ हज़ार रुपये!

यहाँ तक साधारण लकड़ी पर जो नक्काशी की जाती है उसकी बात हुई। चन्दन एक विशेष प्रकार की और क़ीमती लकड़ी है। हाथीदाँत के नीचे उसी का नम्बर है। उस पर भी नक़श का काम कहीं कहीं बहुतही उत्तम होता है। कटक, देहली, इन्दौर, सूरत और अहमदाबाद इसके लिए प्रसिद्ध हैं। पर सब से बढ़कर चन्दन का काम दक्षिण में होता है। वहाँ चन्दन अधिक होता भी है। माइसोर, ट्रावनकोर, ट्रिचनापली, मदुरा और कोयमबटोर आदि में ऐसे ऐसे कारीगर हैं जिनका बनाया हुआ चन्दन का सन्दूक़ हज़ार हज़ार दो दो हज़ार रुपये को बिकता है! खेद की बात है, और और कामों की तरह इस की भी बेक़दरी हो रही है। इससे जिन लोगों के घर पीढ़ी दर पीढ़ी यही व्यवसाय होता आया है वे अब इसे छोड़कर लकड़ी का साधारण काम करने लगे हैं। इस काम में मेहनत और धीरज की बड़ी ज़रूरत रहती है। जिस नमूने का काम बनाना होता है वही नमूना चन्दन की लकड़ी पर या तो खींच लिया जाता है, या नमूना खिँचा हुआ काग़ज़ उस पर चिपका दिया जाता है। फिर खुदाई होती है। जो जगह ख़ाली रहती है वह छीलकर कुछ गहरी कर दी जाती है। इससे नक़श किया हुआ काम ऊपर उभड़ा हुआ देख पड़ता है। इस काम के लिए बड़े बारीक औज़ार दरकार होते हैं। किसी किसी कारीगर के खोदे हुए बेल-बूटे और जालियाँ आदि इतनी बारीक होती हैं कि समझ में नहीं आता कि ये लोग किस तरह हाथ से इतना सूक्ष्म काम कर सकते हैं। कुछ समय हुआ माइसोर के कई कारीगरों ने मिलकर चन्दन का एक बाक्स बनाया था। उसके चारों तरफ़ तो जंगल और शिकार का दृश्य था और ढकने पर युद्ध का। इन दृश्यों में कुछ ऐसी सजीवता थी—कुछ ऐसा जादू था—कि देखने वाले मोहित हो जाते थे। इसका मूल्य कोई चौदह सौ रुपया कूता गया था।

लकड़ी पर पच्चीकारी भी होती है। होशियारपुर, जालन्धर, चिन्नट, मैनपुरी, माइसोर, मुंगेर आदि जगहें इस काम के लिए प्रसिद्ध हैं। जिसने इस तरह का और काम न देखा होगा उसने मैनपुरी की बनी खड़ाऊँ तो ज़रूरही देखी होगी। इन पर बहुत सिर्फ़ तार खिँचा रहता है; तिस पर भी वे कितनी सुन्दर मालूम होती हैं। इस काम के कारीगर हड्डी, आबनूस, सीप, पीतल और हाथीदाँत आदि की चीज़ें लकड़ी में पच्ची करते हैं। जिस चीज़ को पच्ची करके लगाना होता है उसके टुकड़े पहले काट लिये जाते हैं। फिर वे टुकड़े लकड़ी पर रख कर चि

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बना लिये जाते हैं। इसके बाद चिह्नों के भीतर की जगह खोदकर पूर्वोक्त टुकड़े सरेश आदि से जमा दिये जाते हैं। कहीं कहीं तो सीप और हाथीदाँत आदि के टुकड़ों पर नक़्श भी होता है और तरह तरह के रंगीन बेल-बूटे भी निकाले जाते हैं। यह काम विशेष करके माइसोर में होता है।

अकेले लकड़ी के काम में इस देश के कारीगर कितनी कारीगरी दिखलाते हैं, यह इस संक्षिप्त विवरण से सिद्ध है। पर दुःख की बात है कि स्वदेशी कारीगरी की क़दर कम है। जिन्हें अपने देश, अपने देश-वासियों और अपने कर्तव्य का कुछ भी ख़याल है उन्हें विदेश-वस्तु-प्रियता छोड़ देना चाहिए।

यदि हो सका तो इस देश की अन्यान्य कारीगरी के विषय में भी लिखेंगे। अभी बहुत कुछ लिखना बाक़ी है।

दक्षिणी ध्रुव की यात्रा।

पिछले सौ वर्षों में योरप और अमेरिका के सैकड़ों साहसी मनुष्यों ने उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव की यात्रायें की हैं। उनमें से कितने ही लोग इन दुर्गम और भयङ्कर स्थानों में बहुत दूर तक गये हैं। वहाँ के अद्भुत दृश्यों का हाल भी उन्होंने लिखा है। इस विषय पर सरस्वती में कितने ही लेख और लेख निकल चुके हैं। कुछ दिन हुए लेफ्टिनेंट शैकिलटन अपने साथियों समेत दक्षिणी ध्रुव की यात्रा करने गये थे। आपके जाने का समाचार हम पाठकों को सुना चुके हैं। अब आप वहाँ से लौट आये हैं। अपनी यात्रा का वृत्तान्त उन्होंने एक विलायती अख़बार में लिखा है। उसका सारांश सुनिए।

शैकिलटन साहब अपने साथियों समेत २९ अक्टूबर १९०७ को दक्षिणी ध्रुव की यात्रा के लिए न्यूज़ीलैंड से रवाना हुए थे। वे अपने साथ कुत्तों की जगह मञ्चूरिया के टट्टू और मोटर ले गये थे। बालू खाने के कारण यद्यपि कुछ टट्टू मर गये और कुछ मार डाले गये तथापि कुत्तों की अपेक्षा वे अधिक लाभदायक सिद्ध हुए। शैकिलटन साहब कोई चौदह महीने तक इधर उधर घूमते और तरह तरह की चीज़ें खोजते रहे। अन्त में वे ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ से ठेठ दक्षिणी ध्रुव सिर्फ़ १११ मील है। ध्रुव के इतने निकट अब तक कोई न पहुँचा था। आपही पहले मनुष्य हैं जो यहाँ तक पहुँचे। आपके पहले, १९०२ में, जो मनुष्य दक्षिणी ध्रुव की ओर सबसे अधिक दूर गया था वह कैप्टेन स्काट था। परन्तु वह जिस स्थान तक पहुँचा था वह ठेठ दक्षिणी ध्रुव से ४६१ मील की दूरी पर था। इससे आप समझ सकते हैं कि शैकिलटन साहब कैप्टेन स्काट से कोई ३५० मील आगे तक पहुँच गये। यहाँ पहुँच कर आपने अँगरेज़ों का जातीय झण्डा (Union Jack) उड़ाया। यह चिरस्मरणीय घटना ९ जनवरी १९०९ ई० की है। इसके आगे ऐसा दुर्गम मार्ग था कि आगे बढ़ना आपने असम्भव समझा। इसलिए वहाँ से आप लौट पड़े और न्यूज़ीलैंड होते हुए इंगलैंड को रवाना हुए।

शैकिलटन साहब ने अपना एक दूसरा दल दाक्षिणात्य-चुम्बक-ध्रुव (South Magnetic Pole) की खोज के लिए दूसरी तरफ़ भेजा था। कहते हैं कि यह स्थान दक्षिणी ध्रुव से भी अधिक दुर्गम, निर्जन और भयङ्कर है। वहाँ तक पहुँचना बहुत बड़े साहस का काम था। तिस पर भी इस दल को कामयाबी हुई। इस दल के लोग १६ जनवरी १९०९ को उस चुम्बकीय ध्रुव के पास पहुँच गये और वहाँ अपने देश का दिग्विजयी झंडा गाड़ दिया। इस स्थान पर भी इन लोगों के पहले कोई मनुष्य न पहुँचा था।

शैकिलटन साहब और उनके साथियों ने दक्षिणी ध्रुव की इस चढ़ाई में कौन कौन सी बातें जानी—अथवा यों कहिए कि कौन कौन से अद्भुत और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहसिक काम किये तथा किन किन बातों की खोज की—इसका विवरण इस प्रकार है:—

(१) ऐसे स्थान पर पहुँच गये जहाँ से दक्षिणी ध्रुव केवल १११ मील की दूरी पर है।

(२) दाक्षिणात्य-चुम्बक-ध्रुव तक पहुँचे।

(३) आठ पर्वतश्रेणियों को खोज निकाला।

(४) कोई सौ पहाड़ों की पैमाइश की।

(५) एरीबस नाम के ज्वालामुखी पर्वत पर चढ़े। यह पर्वत १३१२० फ़ीट ऊँचा है।

(६) विक्टोरियालैंड टापू के पश्चिमी ओर के ऊंचे ऊंचे पहाड़ों को दरियाफ़्त किया।

(७) कोयले की कानों के निशान पाये।

(८) दक्षिणी ध्रुव के चारों ओर का वायुमण्डल शान्त है, इस कल्पित मत की असारता प्रत्यक्ष अनुभव की।

५ मार्च सन् १९०८ को शैकिलटन साहब ने एरीबस पहाड़ पर चढ़ना प्रारम्भ किया। साथ में सात आदमी और थे। सब लोग अपना असबाब अपनी पीठ पर लादे हुए थे। ७ मार्च की रात को वे लोग ९५०० फ़ीट की उँचाई पर पहुंचे। यहां पर इतनी सख़्त सर्दी पड़ रही थी कि थर्मामीटर का पारा शून्य से पचास डिगरी नीचे पहुँच गया था। इसी समय एक बड़ा भयङ्कर तूफ़ान आया जो कोई तीस घंटे तक बराबर बना रहा। इसलिए दूसरे दिन वे लोग वहीं रहे। ९ मार्च को उन्होंने फिर चढ़ना प्रारम्भ किया। ११००० फ़ीट की उँचाई पर पहुँचने के बाद उन्हें इस ज्वालामुखी पर्वत का एक दहाना देख पड़ा जिसमें से आग की लपटें सदा निकला करती हैं। पर ख़ूबी यह कि उसमें धुआँ का नामोनिशान तक नहीं। जब वे लोग चोटी पर पहुँचे तब उन्होंने देखा कि वहाँ पूर्वोक्त दहाने की अपेक्षा एक बहुत बड़ा दहाना मौजूद है। इसका घेरा आध मील से अधिक होगा। गहराई अस्सी फ़ीट के क़रीब मालूम होती थी। यह भाफ और गन्धक की गैस को ऐसी तेज़ी से उगल रहा था कि उसकी लपटें बीस हज़ार फ़ीट की उँचाई तक जाती थीं। इस स्थान के कई फ़ोटो लिये गये और बहुत से भूगर्भ-विद्या-सम्बन्धी पदार्थ भी इकट्ठा किये गये। इसके बाद वे लोग वहाँ से लौट पड़े और दूसरे दिन, ११ मार्च को, अपने नियत स्थान पर पहुँचे। कोई तीन महीने तक इस पहाड़ के चारों ओर शान्ति रही। यकायक १४ जून १९०८ की रात को यह फट पड़ा। पर्वत के चारों ओर की भूमि अग्निमय हो गई। यह घटना शुक्ल पक्ष की है। चाँदनी रात में बर्फ़ीले पहाड़ पर धधकती हुई अग्नि का कलोल करना, भयानक होने पर भी, कैसा सुन्दर दृश्य था, इसको वही समझ सकते हैं जिन्होंने उसे कभी देखा है। शैकिलटन साहब के साथियों ने इस मनोमुग्धकारी दृश्य के कई फ़ोटोग्राफ़ लिये।

शैकिलटन साहब के साथ कोई आठ दस विज्ञानवेत्ता भी गये थे। उनमें से हर मनुष्य विज्ञान की एक न एक शाखा का पण्डित है। उन लोगों ने अपना अपना काम बड़ी ख़ूबी से पूरा किया। किसी ने ज्योतिष्क तारकाओं की जाँच की; किसी ने वायुमण्डल की परीक्षा की; किसी ने जल का, किसी ने जलजन्तुओं का, किसी ने वनस्पतियों का अनुशीलन किया। फ़ोटोग्राफ़रों ने फ़ोटो लिये। पैमाइश करनेवालों ने पैमाइश की और संग्रह करनेवालों ने नाना प्रकार की वस्तुओं का संग्रह किया। इन साहसी वैज्ञानिकों ने वहाँ ऐसी कितनी ही चीज़ों का पता लगाया जिनकी सहायता से जड़ और जीव-विज्ञान की बहुत कुछ उन्नति हो सकती है।

मेरा मनोराज्य।

१—मङ्गल मूल सच्चिदानन्द।
हे शङ्कर स्वामी सुखकन्द॥
देव रहो मेरे अनुकूल।
दूर करो सारे भ्रम शूल॥

२—व्याकुल करें न पातक रोग।
जीवन भर भोगूँ सुख-भोग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होय अभ्युदय का जब अन्त।
मुक्ति मिले तब हे भगवन्त॥

३—चेतनता न तजे विश्राम।
मन-मयूर नाचे निःकाम॥
वाणी कहे वचन गम्भीर।
खोटे कर्म न करे शरीर॥

४—ध्रुव की भाँति पढ़ादो वेद।
ब्रह्म जीव में रहे न भेद॥
करे निरङ्कुश मायावाद।
मिटे अविद्या-जन्य प्रमाद॥

५—जाति पाँति मत पंथ अपार।
विविध वेश आचार विचार॥
मण्डल भर का मिश्रित मर्म।
लोक-प्रसिद्ध "सनातन धर्म"॥

६—जिसमें सब की शक्ति समाय।
मैं भी उस मत को अपनाय॥
धार विश्व की विमल विभूति।
शैव कहाय करूँ करतूति॥

७—हे हर द्वार दया का खोल।
कर दो दान मुझे भूगोल॥
सागर सारे देश अनेक।
सबका ईश बनूँ मैं एक॥

८—रहें सहायक पाँचो भूत।
बरसें मन माने जीमूत॥
बिजली करे अनूठे काम।
फलें सिद्धियों के परिणाम॥

९—कर कुबेर को चकनाचूर।
धन से कोश भरूँ भरपूर॥
कमला पाय राज-गृह-वास।
जाय न अपने पति के पास॥

१०—भाँति भाँति के पत्तन ग्राम।
बन जावें सारे सुरधाम॥
सबको मिले मेल की लूट।
मिटजावे आपस की फूट॥

११—कुल्याकूल बहें अविराम।
फूल फलें कानन आराम॥
प्राणी पाय शुद्ध जल वायु।
सुख से भोगें पूरण आयु॥

१२—दैशिक सम्मेलन के हेतु।
बँधें सिन्धु नदियों के सेतु॥
जिनके द्वारा अन्तर त्याग।
मिलें समस्त भूमि के भाग॥

१३—व्योम-मार्ग में उड़ें विमान।
तरें महोदधि में जल-यान॥
धरणीतल में दौड़ें रेल।
चलें अन्य वाहन पँचमेल॥

१४—बनें राज-पथ चारों ओर।
चलें बटोही मिलें न चोर॥
सुन्दर पादप रोकें धूप।
दान करें जल वापी कूप॥

१५—चलें सदुद्यम के व्यवहार।
शिल्प रसायन बढ़ें अपार॥
पौरुष-रवि का पाय प्रकाश।
उन्नति-नलिनी करे विकाश॥

१६—लगे भूमि पर स्वल्प लगान।
जल पावें बिनमोल किसान॥
उपजें जीवन-रक्षक माल।
पड़ें न महँगी और दुकाल॥

१७—आयुर्वेद-विहित कविराज।
सादर सबका करें इलाज॥
बटें सदाव्रत रुकें न हाथ।
मरें न भिक्षुक दीन अनाथ॥

१८—दो दो विद्यालय सब ठौर।
खोलें अध्यापक सिरमौर॥
करें निरन्तर विद्यादान।
उपजावें विदुषी, विद्वान॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९—साङ्गवेद, दर्शन, इतिहास, ।
ललित काव्य, साहित्य-विलास ॥
गणित, नीति, वैद्यक, संगीत ।
पढ़ें प्रजा जन बनें विनीत ॥

२०—सीखें सैनिक शस्त्र-प्रयोग ।
वीर बनें साधारण लोग ॥
धारें टेक टिकाय कृपाण ।
समझें राज-समर्पित प्राण ॥

२१—अखिल बोलियों के भंडार ।
विद्या के रस-रङ्ग-विहार ॥
भुवन-भारती के शृङ्गार ।
रहें सुरक्षित ग्रंथागार ॥

२२—निकलें नये नये अख़बार ।
पाठक पढ़ें विचार विचार ॥
सबके कर्म कुयोग, सुयोग ।
प्रकट करें सम्पादक लोग ॥

२३—जो सदर्थ का सार निचोड़ ।
परखें पक्षपात को छोड़ ॥
शुद्ध न्याय को करें प्रसिद्ध ।
बनें समालोचक वे सिद्ध ॥

२४—संवित्-सागर, सभ्य, सुजान ।
नीति-विशारद, न्याय-निधान ॥
पर-हितकारी, पण्डित-राज ।
सर्व-शिरोमणि मिले समाज ।

२५—जिनके पास न राग न रोष ।
सत्य कहें सबके गुण दोष ॥
ऐसे भूतल-तिलक प्रधान ।
विधि-निषेध का करें विधान ॥

२६—युक्तिवाद-पटु, निर्भय, वीर ।
धीर, महामति, अति गंभीर ॥
कर्म-प्रवीण, कुलीन, सपूत ।
परम साहसी दरसें दूत ॥

२७—न्यायाधीश बड़े पद पाय ।
करें ठीक मारालिक न्याय ॥
चाकर चलें न टेढ़ी चाल ।
खाय न चक्र घूँस का माल ॥

२८—लड़ें न ऊत अशिक्षित लोग ।
चलें न जाल भरे अभियोग ॥
प्रजा पुरोहित वीर वकील ।
बनें न न्याय-विपिन के भीत ॥

२९—हेल मेल का बढ़े प्रचार ।
तजें प्रतारक अत्याचार ॥
जपें मनुज उद्यम के मंत्र ।
निकलें नये नये नित यंत्र ॥

३०—करे न कोप महासुर मोह ।
उठे न अधम राज-विद्रोह ॥
चलें न छल-भट के नाराच ।
पिये न रक्त प्रपंच-पिशाच ॥

३१—मिटें अमङ्गल-मूलक तंत्र ।
बनें न नीचों के षडयंत्र ॥
वैर-भाव की लगे न लाग ।
मार काट की जले न आग ॥

३२—ज्ञानोदय-सेना कर कोप ।
करदे खल-मण्डल का लोप ॥
धीर वीर गरजें घनघोर ।
भागें प्रतिभट वञ्चक चोर ॥

३३—राज-कर्म-पद्धति की चूक ।
जो कवि कह डालें दोटूक ॥
उनको मेरा चक्र प्रचण्ड ।
कभी न देवे कोई दण्ड ॥

३४—जिस आलस्य-दास के पास ।
दीर्घसूत्रता करे विलास ॥
ऐसे दल का दृश्य निहार ।
दूर रहें प्यारे परिवार ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३५—चाटुकार, विट, षंढ, सपाट।
भाँड़, भगतिये, भँडआ, भाट॥
पाखंडी, खल, पिशुन, अजान।
सब का संग तजें कुलवान॥

३६—जुआरी, जार, वधिक, ठग, चोर।
अधम, आततायी, कुलबोर॥
लोलुप, लम्पट, लंठ, लबार।
बढ़ें न ऐसे असुर असार॥

३७—हिंसक लोग कृपालु कहाय।
शुद्ध निरामिष भोजन पाय॥
करें दुग्ध घृत से तन पीन।
कभी न मारें खग, मृग, मीन॥

३८—धरें न मौर धनी बहुबार।
रहें न वित्त-विहीन कुमार॥
ठगें न कुलटा के रस-रङ्ग।
करे न मादकता मतिभङ्ग॥

३९—मायिक मत की लगे न छूत।
कायर करें न कल्पित भूत॥
रहें सदा सुख से सब लोग।
होवे कभी न कोई रोग॥

४०—मात, पिता, गुरु, भूपति, मित्र।
सिद्ध, प्रसिद्ध, पवित्र-चरित्र॥
गण्य-गुणीजन, धन्य धनेश।
सबका मान करें सब देश॥

४१—ग्रन्थकार, कवि, कोविद, छात्र।
उपदेशक, भट, साधु, सुपात्र॥
चित्रकार, गायक, नट, धार*।
सबको मिला करें उपहार॥

४२—जो जगदम्बा† को उर धार।
करें अलौकिक आविष्कार॥
उन देवों के दर्शन पाय।
पूजा करूँ किरीट झुकाय॥

४३—जो निशङ्क नामी कविराज।
आय निहारे राज-समाज॥
करे प्रबन्धों के गुणगान।
वह पावे दरबारी दान॥

४४—घटे न मङ्गल पुण्य प्रताप।
बढ़े न पाप-जन्य परिताप॥
भाव सत्ययुग का भरजाय।
कलियुग की नानी मरजाय॥

४५—यों राजोचित धर्म पसार।
करूँ प्रजा पर पूरा प्यार॥
पकड़े न्याय-रीति का हाथ।
विचरे दण्ड दया के साथ।

४६—नाना विध विभाग संयोग।
दिव्य दृश्य देखें सब लोग॥
धरें सुकृति का सीता नाम।
समझें मुझे दूसरा राम॥

४७—क्या बकवाद किया बेजोड़।
बस होली सिड़ियों को होड़॥
धार मन्दभागी मुख मौन।
तेरी सनक सुनेगा कौन॥

४८—पाया घोर नरक में वास।
बीते हायन हाय पचास॥
आ पहुँचा है अंतिम काल।
क्या होगा बन कर भूपाल॥

४९—अब तो सबसे नाता तोड़।
बन्धन-रूप दुराशा छोड़॥
रे मन ज्ञान-सिन्धु के मीन।
होजा परम तत्त्व में लीन॥

नाथूराम शङ्कर शर्मा।

---

* धरावक्ता = जगा।
† प्रकृति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनरेबुल श्रीयुत सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह, बारिस्टर-एट-ला।

सरस्वती के पाठक मिस्टर एस० पी० सिंह के नाम से अवश्य ही परिचित होंगे। गत वर्ष जब आप एडवोकेट जनरल नियत हुए थे तब सरस्वती में आप पर एक नोट निकला था और आपका चित्र भी छपा था। अब आप भारत के बड़े लाट की सुप्रीम एग्ज़ीक्यूटिव कौंसिल के ला (क़ानूनी) मेम्बर बनाये गये हैं। अब तक इस प्रतिष्ठित और अत्युच्च पद के पाने का सौभाग्य किसी भारतवासी को नहीं प्राप्त हुआ था। सिंह महाशय पहले हिन्दुस्तानी हैं जो इस पद पर प्रतिष्ठित किये गये हैं। वास्तव में यह पद बड़ा ही दायित्वपूर्ण है; इस पर वही मनुष्य नियत किया जाता है जो विशेष बुद्धिमान्, विद्वान्, दूरदर्शी, अनुभवशील, विश्वासपात्र, व्यवहारकुशल और राजनीतिज्ञ हो। भारत-गवर्नमेंट ने सिंह महाशय को यह पद प्रदान करके दिखला दिया है कि उनमें पूर्वोक्त गुण पूर्ण रूप से मौजूद हैं। हम समझते हैं कि ऐसे असाधारण-गुणसम्पन्न पुरुष का वृत्तान्त जानने के लिए सरस्वती के पाठक अवश्य ही उत्सुक होंगे। अतएव हम उनका संक्षिप्त चरित इस संख्या में प्रकाशित करते हैं।

पूर्वपुरुष और जन्म।

श्रीयुक्त सत्येन्द्रप्रसन्नसिंह का जन्म २४ मार्च, सन् १८६३ ई० को राईपुर ज़िला वीरभूमि में हुआ था। जाति के आप कायस्थ हैं और सिंह आपकी वंशगत उपाधि है। आपके पूर्वज मेदिनीपुर और मुर्शिदाबाद ज़िलों के रहने वाले थे। परन्तु आपके वृद्ध प्रपितामह लालचाँद ईस्ट इंडिया कम्पनी के ज़माने में राईपुर ग्राम में आ बसे थे। यहाँ पर वे अपने पुत्र श्यामकिशोर के साथ जुलाहों से कपड़े बिनवाने और उन्हें ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथ बेचने का रोज़गार करते थे। कहते हैं कि इससे उन्हें एक हज़ार रुपये रोज़ का मुनाफ़ा होता था। धीरे धीरे उन्होंने इतना धन सञ्चय किया कि थोड़े ही दिनों में सम्पूर्ण सेनभूमि परगने की ज़मींदारी ख़रीद कर ली। यह परगना इस समय भी सिंह-परिवार की सम्पत्ति है। इसकी वार्षिक आय एक लाख रुपये से अधिक है। इसके कुछ ही दिनों बाद (सन् १७८४ में) श्यामकिशोरसिंह ने कोई सत्तर बीघे ज़मीन में एक प्रकाण्ड प्रासाद बनवाया, जिसमें इस वृहत् परिवार के लोग अब भी रहते हैं। श्यामकिशोर के तीन पुत्र थे, जिनमें मनोमोहन कनिष्ठ थे। मनोमोहन के भी तीन लड़के थे, जिनमें शितिकण्ठ सिंह सब से छोटे थे। यही शितिकण्ठ हमारे चरितनायक के पिता थे। शितिकण्ठ बड़े ही धीर, गम्भीर और संयत स्वभाव के पुरुष थे। सफ़ाई उन्हें बहुत पसंद थी। सर्व साधारण लोगों में शिक्षा का प्रचार करने के लिए उन्होंने अपने गाँव में एक स्कूल भी खोला था जो अब तक जारी है। सुनते हैं वे स्त्री-शिक्षा के पक्षपाती और बाल-विवाह के विरोधी थे। शितिकण्ठ महाशय के तीन कन्याएँ और सात पुत्र हुए, उनमें से तीन पुत्र अब तक जीवित हैं। श्रीसत्येन्द्रप्रसन्न सिंह इन तीनों में कनिष्ठ हैं। जब आप केवल दो ही वर्ष के थे तभी आपके पिता का देहान्त हो गया था।

साधारण शिक्षा।

सत्येन्द्रप्रसन्न की शिक्षा गाँव के स्कूल ही में प्रारम्भ हुई। यहाँ पर कुछ दिनों तक पढ़ने के बाद उन्होंने माइनर वृत्ति परीक्षा पास की। इसके बाद वे वीरभूमि के ज़िला-स्कूल में जाकर प्रविष्ट हुए। उस समय ज़िला स्कूलों में माइनर परीक्षोत्तीर्ण छात्रों को चतुर्थ श्रेणी में भरती करने का नियम था। परन्तु वीरभूमि ज़िला स्कूल के तात्कालिक हेडमास्टर श्रीयुक्त शिवचन्द्र सोम परीक्षोत्तीर्ण छात्रों को भी बिना स्वयं परीक्षा लिये भरती न करते थे। श्रीयुक्त सत्येन्द्रप्रसन्न की परीक्षा के लिए उन्होंने उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अंगरेज़ी समाचारपत्र दिया और कहा कि इसके इस अंश का अर्थ हमें समझादो। उसे पढ़ते ही सत्येन्द्रप्रसन्न ने उसका ठीक ठीक अर्थ समझा दिया। यह देख कर हेडमास्टर साहब बड़े प्रसन्न हुए। बस बिना कहे सुने उन्होंने आपको तृतीय श्रेणी में दाख़िल कर लिया।

सत्येन्द्रप्रसन्न लड़कपन ही से जैसे असाधारण स्मृति और मेधाशक्ति-सम्पन्न रहे वैसे ही विपुल परिश्रमी भी। स्कूल में वे व्यर्थ खेलकूद में समय न नष्ट करके सदा पढ़ने लिखने में लगे रहते थे। क्या शिक्षक और क्या सहपाठी सभी उन्हें स्नेह और आदर की दृष्टि से देखते थे। सत्येन्द्रप्रसन्न अपने साथियों के साथ कैसी सच्ची मित्रता और उदारता का व्यवहार करते थे, इसका एक दृष्टान्त सुनिए। हिन्दू स्कूल, कलकत्ता, के वर्त्तमान हड मास्टर राय रसमय मित्र बहादुर, सिंह महाशय के सहपाठी थे। उस समय उनकी आर्थिक दशा कुछ अच्छी न थी। आवश्यकीय पुस्तकें भी वे न ख़रीद सकते थे। एक बार संस्कृत-व्याकरण के न मिलने से उनका बड़ा हर्ज होने लगा। यह बात जानते ही बाबू सत्येन्द्रप्रसन्न एक नया व्याकरण किसी बहाने उनके घर में रख आये। रसमय बाबू ने समझा कि शायद सत्येन्द्रप्रसन्न यह किताब भूल गये हैं। अतएव वे इसे लौटाने के लिए सत्येन्द्र के घर गये। इस पर सिंह महाशय ने कहा कि—"उसे अपने घर ही में रक्खो; हम तुम उसको साथही पढ़ा करेंगे।" वे ऐसी उदारता का व्यवहार अपने सहपाठियों के साथ बहुधा किया करते थे।

सत्येन्द्रप्रसन्न ने १८७७ ई० में प्रवेशिका परीक्षा पास की। परीक्षा में वे पहले दरजे में पास हुए। इसलिए उनको दस रुपये मासिक छात्रवृत्ति मिली। इसके बाद वे प्रसीडेंसी कालेज गये। वहाँ उन्होंने यथासमय एफ़० ए० की परीक्षा पास की। इस परीक्षा में उन्होंने संस्कृत की जगह लैटिन ली थी। तदनन्तर वे बी० ए० में पढ़ने लगे। इसी समय (सन् १८७९ में) बर्दवान ज़िले के माहाता ग्राम-निवासी कृष्णचन्द्र मित्र की कन्या श्रीमती गोविन्द-मोहिनी दासी के साथ आपका विवाह हुआ।

विलायत-गमन।

सत्येन्द्रप्रसन्न की इच्छा इँगलैंड जाने की बहुत दिनों से थी। सन् १८८० में उनकी यह इच्छा पूर्ण हुई। इस समय वे प्रेसीडेंसी कालेज की चतुर्थ वार्षिक श्रेणी में पढ़ते थे। कालेज छोड़कर सत्येन्द्र-प्रसन्न अपने भाई नरेन्द्रप्रसन्न के साथ इँगलैंड सधारे। वहाँ पहले उनकी इच्छा सिविल सर्विस परीक्षा देने की थी। परन्तु उसमें अनेक झंझट देखकर उन्होंने यह इच्छा छोड़ दी और बारिस्टरी के लिए पढ़ने लगे। इसके सम्बन्ध में जितनी परी-क्षायें होती हैं उन सबको उन्होंने असाधारण योग्यता के साथ पास किया। इससे उनकी विल-क्षण प्रतिभा का सिक्का जम गया। क़ानून के अध्यापक और परीक्षक लोग सत्येन्द्रप्रसन्न महाशय के क़ानूनज्ञान की गहराई को देखकर ऐसे सन्तुष्ट और मुग्ध हुए कि उन्होंने अध्ययन के निर्दिष्टकाल के पहले ही उनको बारिस्टरी की सनद दे दी। यह घटना जुलाई सन् १८८६ की है। इँगलंड में सत्येन्द्र-प्रसन्न कितने विख्यात हो गये थे और उनकी योग्यता का सिक्का लोगों के हृदय में किस क़दर बैठ गया था, इसे स्पष्ट रूप से समझाने के लिए हम एक घटना का उल्लेख करते हैं। एक बार एक वृद्ध सालीसिटर महाशय अर्थलाभ की आशा से एक पुरस्कार-परीक्षा में उपस्थित हुए। सालीसिटर साहब ने समझा था कि परीक्षा में कृतकार्य होकर वही पुरस्कार प्राप्त करेंगे। परन्तु जब परीक्षागृह में उन्होंने अन्यान्य छात्रों के बीच में सत्येन्द्रप्रसन्न को भी देखा तब हताश होकर लौट गये। सालीसिटर साहब जानते थे कि सत्येन्द्रप्रसन्न को प्रतियोगिता में परास्त करना एकदम असम्भव है। इँगलंड में रहने के समय सिंह महाशय ने लैटिन, फ़्रञ्च, जर्मन, स्पैनिश आदि कई यूरोपियन भाषायें सीख लीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारिस्टरी।

बारिस्टरी की सनद प्राप्त करने के कुछही दिनों बाद श्रीसत्येन्द्रप्रसन्न सिंह जी इँगलैंड से लौट आये और १८ नवम्बर, सन् १८८६ ई० से कलकत्ता हाई-कोर्ट में बारिस्टरी करने लगे। शुरू शुरू में आपकी बारिस्टरी अच्छी नहीं चली। इसलिए उन्होंने मुफ़स्सिल के किसी छोटे शहर में जाकर अपना व्यवसाय करने का इरादा किया। परन्तु इसी समय उन्हें दैवयोग से सिटी कालेज के क़ानून-अध्यापक की जगह मिल गई। इसके सिवा और भी कुछ कारण ऐसे हुए जिससे उन्होंने कलकत्ता छोड़ने का इरादा शीघ्र ही त्याग दिया। धीरे धीरे उनकी बारिस्टरी ऐसी चमकी कि वे प्रथम श्रेणी के बारिस्टरों में समझे जाने लगे। स्वर्गवासी मिस्टर डबल्यू० सी० बानरजी, बाबू मनोमोहन घोष और मिस्टर टी० पालित आदि बड़े बड़े विख्यात बारिस्टरों ने सत्येन्द्रप्रसन्नजी के असाधारण गुणों का परिचय शुरू ही में पा लिया था। एक बार मिस्टर डब्ल्यू० सी० बानरजी ने कहा था—"Mr. Sinha is marked out for a great man"। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह बात अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई है। हाईकोर्ट के तात्कालिक जज जस्टिस नारिस भी सिंह महाशय के बड़े गुण-ग्राही थे। एक दिन प्रसंगवश उन्होंने कहा था—"Mr. Sinha will be Mr. Bonnerjee one day". सो सिंह महाशय मिस्टर बानरजी की अपेक्षा भी एक अंगुल बढ़ गये।

पदोन्नति।

१८९४ ई० में हाई कोर्ट में किसी अटार्नी का एक मुक़द्दमा पेश हुआ। उसमें सिंह महाशय ने अपनी असाधारण तर्क-शक्ति और गभीर क़ानून-ज्ञान का ऐसा परिचय दिया कि लोग देखकर दंग रह गये। इससे उनकी ख्याति बहुत बढ़ गई। जब बंगाल गवर्नमेंट को यह मालूम हुआ कि मिस्टर सिंह क़ानून के असाधारण ज्ञाता हैं तब उसने उन्हें कलकत्ता हाई कोर्ट के स्टैंडिंग कौंसल के पद पर नियुक्त किया। यह बात १९०४ ई० की है। इसके बाद १९०६ के अपरैल में वे बंगाल के अस्थायी एडवोकेट जनरल बनाये गये। इस प्रतिष्ठित पद पर आप कोई छः महीने तक नियुक्त रहे। गत वर्ष, मार्च में, आप फिर इस पद पर नियत किये गये। इसी साल के जून मास में आप इस पद पर मुस्तक़िल कर दिये गये। अब आप महाराज सप्तम एडवर्ड की आज्ञा से बड़े लाट के व्यवस्था-सचिव अर्थात् क़ानूनी मंत्री (Law member) बनाये गये हैं। इस अत्युच्च पद को आपके पहले किसी भारत-वासी ने न प्राप्त किया था। भारतसचिव लार्ड मारली ने सिंह महाशय के गुणों का उल्लेख करते हुए कहा है—"A lawyer of large practice and great experience in his profession and a man of sustained professional and personal repute।" ये बातें सोलहो आने सत्य हैं।

मिस्टरसिंह को इस नये पद पर सम्भवतः बहुत परिश्रम करना पड़ेगा। परन्तु इसमें आप लड़कपन ही से अभ्यस्त हैं। आपके समान असाधारण परिश्रमी मनुष्य मुशकिल से मिलेगा। आप अकसर दो तीन बजे रात तक एक जगह बैठे काम किया करते हैं।

उपसंहार।

श्रीयुत सत्येन्द्रप्रसन्नसिंह जी की उम्र इस समय केवल सैंतालीस वर्ष की है। अभी आप पन्द्रह सोलह वर्ष और बारिस्टरी कर सकते थे। परन्तु उसे न करके आपने अपने देश के लिए बहुत कुछ स्वार्थ-त्याग किया है। बारिस्टरी के समय वे कोई चालीस हज़ार रुपये महीने पैदा करते थे। परन्तु अब आपको सिर्फ़ सवा छः हज़ार रुपये मासिक मिला करेंगे। क्या तीस पैंतीस हज़ार रुपये मासिक आमदनी को अपनी इच्छा से छोड़ देना असाधारण, अलौकिक और अपूर्व त्याग नहीं है? है, और अवश्य है। सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाशय ने इस पद के लिए ज़रा भी कोशिश नहीं की। गवर्नमेंट ने अपनी इच्छा से उन्हें इस पद पर नियुक्त किया है।

श्रीयुत सत्येन्द्रप्रसन्नसिंह अपूर्व राज-सम्मान से सम्मानित होकर भी पहलेही की तरह निरहङ्कारी हैं। आप बड़ेही विनीत स्वभाव के हैं। ईर्ष्या, द्वेष, अभिमान और क्रोध का आप में लेश भी नहीं। आप सदा अपने व्यवसाय सम्बन्धी काम या पढ़ने लिखने में लगे रहते हैं।

अपने अन्य भाइयों की तरह अतिरिक्त रूप से मुकद्दमत न होने पर भी श्रीसत्येन्द्रप्रसन्नसिंह जी उपयुक्त पात्र को दान देने के लिए सदा प्रस्तुत रहते हैं। यदि उन्हें मालूम होजाय कि उनके दिये हुए धन का सद्व्यवहार होगा तो वे धन-दान करने में कभी नहीं हिचकते। वे सिटी कालेज, ब्राह्मस्कूल आदि कितनेही विद्यालयों को नियमित रूप से यथेष्ट अर्थ-साहाय्य करते हैं। इसके सिवा अपने पिता के स्थापित किये हुए स्कूल और चिकित्सालय का सम्पूर्ण व्यय वे अकेले वहन करते हैं। साहाय्यार्थी आत्मीय स्वजनों और दुर्दशाग्रस्त अन्य व्यक्तियों को नियमित रूप से मासिक अर्थ दान करने की उन्होंने अच्छी व्यवस्था कर दी है। अपनी मातृ-भाषा बँगला की उन्नति और प्रचार के लिए भी वे अकसर दान किया करते हैं। देशी करघों का प्रचार करने के लिए उन्होंने बहुत कुछ धन-व्यय किया है। आपकी सहायता से राईपुर के एक युवक ने इस विषय में बड़ी उन्नति की है। उसने कलकत्ते और मदरास की शिल्पप्रदर्शिनियों में नई चाल के करघों को दिखाकर प्रथम श्रेणी का पुरस्कार प्राप्त किया है।

श्रीयुक्त सत्येन्द्रप्रसन्न जी की धर्मपत्नी श्रीमती विनोदमोहिनी दासी सुगृहिणी हैं। यद्यपि उन्होंने विद्यालय में कभी नहीं पढ़ा तथापि घर में उन्होंने यथेष्ट विद्योपार्जन किया है। अपने परिवार के शासन और व्यवस्था करने में वे बड़ी निपुण हैं। इतनी सम्पत्ति की अधिकारिणी होने पर भी वे अपने ही हाथ से भोजन बनाती हैं। भगवान ने इस दम्पति को सब तरह से सुखी किया है।

सिंह महाशय के चार पुत्र और तीन कन्यायें हैं। दो पुत्र इँगलैंड में पढ़ते हैं। दिन रात अपने काम में लगे रहने पर भी सत्येन्द्र महाशय अपने पुत्र और कन्याओं की शिक्षा पर तेज़ निगाह रखते हैं; केवल गृहशिक्षक पर इसका भार देकर निश्चिन्त नहीं रहते।

सिंह महोदय जबसे इँगलैंड से लौट कर आये तबसे साहबी ठाट बाट से रहते हैं। इसीलिए लार्ड मारले ने आपके विषय में कहा था—"In close touch with European Society" अर्थात् यूरोपियन लोगों से आपका बहुत कुछ मेल जोल रहता है। अस्तु।

उदयनारायण वाजपेयी।

शरीर की अद्भुत रचना।

आदमी के शरीर के विषय में जो कुछ हम जानते हैं वह व्यवच्छेद ही के द्वारा ज्ञात हुआ है। डाक्टर लोग शरीर के सब भागों को बड़ी सावधानी से चीड़ फाड़ कर उनकी एक एक रग को ख़ुर्दबीन से देखते हैं तब शरीर के भीतर का हाल मालूम होता है। ख़ुर्दबीन और नश्तर, बस, यही दो यंत्र डाक्टरों के प्रायः सबसे बड़े मददगार हैं।

शरीर में जब तक प्राण हैं वह चुप चाप कभी नहीं रहता। प्रति क्षण न जाने वह कितने काम सम्पादन किया करता है। उनमें से बहुतों का हमें ज्ञान होता है और बहुतों का नहीं, अथवा होता भी है तो बड़े ध्यान से देखने पर। पेट के भीतर के अवयव जो काम करते हैं उनका भी ज्ञान हमें नहीं होता। पलक जब खुलती और बन्द होती है तब साधारण तौर पर हमें उसका कुछ भी ज्ञान नहीं होता। पर जब हम ध्यान से देखते हैं तब जान पड़ता है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह कब खुली और कब बन्द हुई । परन्तु, इस समय लिखने में मैं अपनी अंगुलियों का हिलना डुलना प्रत्यक्ष रूप से देख रहा हूँ । शरीर के कोई कोई अवयव—चाहे हम सोते हों या जागते—कुछ न कुछ काम करतेही रहते हैं । सोते में भी सांस आती जाती है; फेफड़े फूलते और पटकते हैं; हृदय प्रत्येक अंगों में रुधिर बहाता है; आमाशय खाना पचाता है; जिगर पित्त को, जिससे कि शरीर की चरबी गलती है, बनाता है; सब अङ्गों की आवश्यकताओं से जो जल शरीर में अधिक है उसको गुर्दा मूत्र बनाकर बाहर निकालने का प्रयत्न करता है । इसी प्रकार सभी अपने अपने कामों में व्यग्र रहते हैं। कोई भी किसी क्षण चुप चाप नहीं रहता ।

जब सब अवयव इस प्रकार हमेशा परिश्रम करते हैं तब उनका बल और द्रव्य भी (अर्थात् वह पदार्थ जिससे वे बने हैं) प्रति क्षण कुछ न कुछ घटताही है । इस बात को, जब चाहो, परीक्षा कर लो । किसी आदमी को, जब वह सवेरे सोकर उठे है और शान्त हो, तोलो; और फिर उसको कोई बड़े परिश्रम का काम करने को दो । जब वह थक जाय तब फिर उसको तोलो । तब तुम देखोगे कि पहले की अपेक्षा उसका वज़न कम है । अब यदि मनुष्य प्रत्येक क्षण इसी प्रकार घटता जाय तो भला काहे को कोई बहुत दिन तक ज़िन्दा रहे । इस त्रुटि को दूर करने के लिये परमात्मा ने भूख और प्यास पैदा की है । कचहरी से काम करके आये तो भूख लगी; कुछ खाया पिया; शान्त हुये; बस, दिन के परिश्रम से बल का जो कुछ क्षय हुआ था पूरा हो गया ।

इस प्रकार भले चंगे आदमीके पेट में किसी न किसी तरह थोड़ी थोड़ी देर में आहार पहुँचा करता है, जिससे परिश्रम-जनित हानि पूर्ण हुआ करती है और मनुष्य ज़िन्दा रहता है । शरीर को एक येंजिन समझना चाहिए । जैसे येंजिन में थोड़ी थोड़ी देर के बाद कोयला और पानी देना पड़ता है, तब वह चलता है । वैसेही शरीर को भी थोड़ी थोड़ी देर के बाद खाना पानी देना चाहिए, जिससे वह काम कर सके और मन जो शरीर का ड्राइवर (गाड़ीवान, खींचनेवाला) है उससे वह काम ले सके । बहुत से दार्शनिकों के मत में शरीर एक महातुच्छ पदार्थ है । वे उसका कुछ आदर नहीं करते । यहाँ तक कि वे उसका पोषण तक करना पाप समझते हैं और कहते हैं कि जितनी हा जल्दी उससे छुटकारा मिलजाय उतनाही अच्छा ! प्राचीन काल में ऐसे मतों का भारतवर्ष में बहुत प्रचार था। आज कल भी ऐसे लोग कहीं कहीं देख पड़ते हैं। ये लोग नहीं जानते कि स्वयं भगवान् को भी जब कोई काम करना होता है तब इन्हीं हाथ पाँव वाले शरीर का आश्रय लेना पड़ता है । यदि "दुष्कृतां विनाश" और "धर्म्मस्थापन" बिना "सम्भवामि" के हो सकते तो काहे को भगवान् जीवन-मरण के झंझट में पड़ते। बिना कर्म किये सिद्धि मिलही नहीं सकती। और कर्म बिना इन्द्रियों के हो नहीं सकते। बात तो यह है कि "शरीरमाद्यं खलु, धर्मसाधनम्"। बिना शरीरोन्नति के आत्मोन्नति का होना सम्भव नहीं। हाँ बिलकुलही इन्द्रियों के वश में होना अच्छा नहीं। उनको एक नियत हद तक दमन करना अच्छा है। परन्तु इस दमन को बेहद—बेहिसाब—बढ़ाना अक़लमन्दी का काम नहीं। आज कल के बहुत से शरीर-विद्या-विशारद (Physiologists) तो यहाँ तक कहते हैं कि शरीर के विनाश होने पर जीव और मन का भी विनाश होजाता है । कुछ तो यहाँ तक बढ़ गये हैं कि जीव कुछ है ही नहीं; जो कुछ है शरीर ही है । प्रसिद्ध पाँच तत्त्व जब एक विशेष रूप से मिलकर इस शरीर के आकार में हो जाते हैं तब उनमें एक प्रकार की चेतनता, जिसको प्राण दायक शक्ति (Vital Force) कहते हैं उत्पन्न हो जाती है, और, फिर, जब कोई विकार हो जाता है तब वह चेतनता जाती रहती है । यह चाहे सच हो या सच; पर इतना तो प्रत्यक्ष है कि प्रकाश की किरणें जब आँख की राह से शरीर में जाती हैं तभी मन को पदार्थ देख पड़ता है । वायु का आन्दोलन जब कान के पर्दे पर लगता है तभी मन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को शब्द का ज्ञान होता है। पदार्थ से निकलते हुए परमाणु जब नासिका को क्षुब्ध करते हैं तभी मन को सुगन्धि वा दुर्गन्धि का ज्ञान होता है। इन्द्रियाँ यदि न हों तो मन को किसी प्रकार का ज्ञान ही न हो सके। इसलिए मनुष्य को उचित है कि वह सर्वथा शरीर की रक्षा करे। परन्तु शरीर की रक्षा के नियम बिना शरीर-विद्या के जाने अच्छी तरह समझ में नहीं आसकते। इसलिए हम सबको चाहिए कि कुछ न कुछ शरीर-विषय-ज्ञान अवश्य प्राप्त करें।

साधारण रीति से मनुष्य के शरीर के तीन विभाग हो सकते हैं। सिर, धड़ और अवयव-अर्थात् हाथ, पैर इत्यादि। सिर के दो भाग हैं, चेहरा और कपाल। शरीर में १४ हड्डियाँ हैं और कपाल में ८। ये आठों हड्डियाँ परस्पर मिलकर सिर के आकार की हो जाती हैं। कपाल की हड्डियाँ एक प्याले के आकार में जुड़ी हुई हैं। यह प्याला दिमाग़ के गूदे की रक्षा करने के लिए उसके ऊपर औंधाया हुआ है। उसके नीचे घ्राण, स्वादु, श्रवण और दृष्टि आदि के अत्यन्त कोमल तथा सूक्ष्म ज्ञानतन्तु हैं। यदि उनको ज़रा भी किसी प्रकार की हानि पहुँचे तो ये ज्ञानेन्द्रियाँ व्यर्थ होजायँ।

धड़ के दो भाग हैं—छाती और पेट। छाती के ऊपर जत्रु (Collar Bone) है। छाती में, सामने की ओर, जत्रु के नीचे से, पसुलियाँ आरम्भ होती हैं। कमान की शकल में ये दोनों तरफ़ होती हैं। इनमें से सात के सामने के सिरे (Costal Cartilages) एक चौड़ी सी हड्डी से, जो दोनों तरफ़ पसुलियों के बीच में होती है, जुड़े होते हैं। इस चौड़ी सी हड्डी को छाती की हड्डी (Breast Bone) कहते हैं। पसुलियों के दो जोड़े सामने आकर छाती की हड्डी से नहीं, किन्तु दाहने बायें, ऊपर वाली पसुलियों से जुड़े रहते हैं। बाक़ी पसुलियाँ किसी से नहीं जुड़ी रहतीं। इन (न जुड़ी हुई) पसुलियों को झूँठी पसुलियाँ (False Ribs) कहते हैं। ये चौबीसों पसुलियाँ, दूसरी ओर, पीछे जाकर, कसेरुका, अथवा रीढ़, से मिल जाती हैं। भोजन की नली (Alimentary Canal) छाती के बीच से जाकर आमाशय से मिलती है जहाँ कि भोजन जाकर पचता है। फेफड़े, दोनों तरफ़, एक एक होते हैं। इनका आकार स्पञ्ज के सदृश होता है। श्वासोच्छ्वास इन्हीं के द्वारा होता है। दाहनी तरफ़ का फेफड़ा बाईं तरफ़ के फेफड़े से छोटा होता है, क्योंकि उसी तरफ़ हृदय होता है; उसके लिए भी जगह चाहिए। बाईं तरफ़ अपना हाथ छाती पर रखने से कुछ धड़कता हुआ जान पड़ता है। यही हृदय है। धड़ के नीचे के भाग में उदर होता है। उसके बीचों-बीच आमाशय और आँतें होती हैं। उसके दहनी तरफ़ जिगर अर्थात् यकृत और बाईं तरफ़ तिल्ली होती है। जिगर एक प्रकार का रस उत्पन्न करता है जिसे जठराग्नि रस (Gastric Juice) कहते हैं। यह रस खाने में जाकर मिलता है और जठराग्नि को बढ़ाता है। तिल्ली ख़ून को साफ़ करने के लिए सफ़ेद कण (White Corpuscles) बनाती है। रुधिर में छोटे छोटे जो हानिकारक जीव (Germs) आ जाते हैं उनको ये कण नाश करते हैं। उससे कुछ नीचे हट कर बस्ति-देश (Pelvis) के पास दोनों तरफ़ गुरदे होते हैं। वे ख़ून में से पानी निकाल कर मूत्र बनाते हैं। जिनके गुर्दे अच्छी हालत में नहीं होते उनको जलोदर का रोग हो जाता है, क्योंकि उनके रुधिर में पानी का भाग अधिक रह जाता है।

जो इन्द्रियाँ इधर उधर हिल डुल सकती हैं उनके दो जोड़ होते हैं—धड़ के ऊपर के भाग में बाहु और नीचे टाँगें। बाहु और टाँगें फिर अपनी अपनी ग्रन्थियों से दो दो भागों में विभक्त हैं।

कसेरुका, अर्थात् रीढ़ में २४ हड्डियाँ होती हैं। वे माला की तरह मेरु-रज्जु में पुही होती हैं और एक बड़े लसदार और चिमड़े पदार्थ से आपस में बड़ी दृढ़ता के साथ जुड़ी होती हैं, जिससे धड़ का बोझ संभाल सकें। हड्डियों की यही ज़ंजीर सिर को धड़ से मिलाती है। यह मेरु-रज्जु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत ही कोमल और भग्नशील होती है। इसी के दोनों तरफ़ से ज्ञानतन्तु (Nerves) निकल निकल कर शरीर भर में फैले रहते हैं; और इसी के द्वारा सारे शरीर का समाचार मस्तिष्क में पहुँचता है। यदि ज़रा भी इसे हानि पहुँचे तो शरीर से स्पर्श का ज्ञान होना जाता रहे। इस कारण परमात्मा ने इसको रीढ़ के भीतर रक्खा है।

यहाँ तक मैंने साधारण रीति से शरीर की बनावट का कुछ हाल बयान किया। अब शरीर के प्रधान प्रधान अवयवों के विषय में भी थोड़ा सा लिखता हूँ। परन्तु पहले तन्तुजाल (Nervous System) और मस्तिष्क के सम्बन्ध में कुछ लिखना आवश्यक है, क्योंकि यही दोनों शरीर के अङ्गों के प्रधान प्रेरक हैं।

मनुष्यशरीर का प्रधान अङ्ग मस्तिष्क है। यह सब अङ्गों का राजा, तथा इस समस्त कायव्यूह का सेनानी और शासक है। उसमें तनिक भी विकार हो जाने से अङ्ग विशेष व्यर्थ हो जाते हैं। यदि मस्तिष्क पुष्ट और बलवान् रहे तो अन्य अङ्गों में बहुधा कोई विकार नहीं होने पाता। मनुष्य का बल, बुद्धि, तेज, पराक्रम इत्यादि जितनी बातें हैं वे मस्तिष्क ही के द्वारा उसे प्राप्त हैं। मेस्मेरिज़्म और हिपनाटिज़्म आदि अँगरेज़ी शब्दों से जिनका बोध होता है ऐसी आत्म और अध्यात्मविद्या की जितनी विचित्र लीलायें आजकल सुनने में आती हैं वे सब इसी मस्तिष्क का खेल हैं। मस्तिष्क की शक्तियाँ बड़ी अद्भुत और विचित्र हैं। यह केवल शरीरही का नहीं, किन्तु सारे संसार का शासन कर सकता है। हम भारतवासियों की मस्तिष्क-शक्ति तो अच्छी तरह बढ़ने ही नहीं पाती। बचपन ही से उसमें कीड़ा लग जाता है।

यदि मनुष्य के आचरण सदा ठीक रहें तो मस्तिष्क की शक्ति का इतना क्षय न हो; और न बादाम के तेल की आवश्यकता पड़े, न यख़नी पीने की। दैहिक कारणों में से, मस्तिष्क का सबसे अधिक निर्बल करने वाला कारण, छोटी ही अवस्था से विषयों में पड़ जाना है। मैंने बहुत से पढ़े लिखों को कहते सुना है कि लड़के का विवाह सत्तरह या अठारह वर्ष की उम्र में कर देना हानिकर नहीं है। परन्तु वास्तव में ऐसा समझना भूल है। मस्तिष्क की सारी शक्तियाँ पच्चीस वर्ष की उम्र के पहले बहुत ही कम मनुष्यों में प्रौढ़ता को प्राप्त हो सकती हैं। उन महात्माओं की बात जाने दीजिए जिन्होंने अपनी कैशोर अवस्था ही में अपनी बुद्धि के बल से संसार भर को चकित कर दिया; क्योंकि सब लोग शंकराचार्य या जान स्टुअर्ट मिल की समता नहीं कर सकते। हम लोगों के मस्तिष्क का विस्तार तो धीरे ही धीरे होता है। धीरे ही धीरे उसकी शक्तियाँ प्रौढ़ होती हैं। पच्चीस वर्ष की उम्र तक यदि मनुष्य विषयों से बचा रहे तो उसके मस्तिष्क की शक्तियों का जितना विस्तार होना सम्भव है उतना हो चुके। उसके बाद विषय-भोग से मस्तिष्क को बहुत कम हानि पहुच सकती है।

मस्तिष्क उस पदार्थ का एक छोटा सा गोला है जिससे कि तन्तुजाल बना हुआ है। वह लिपटी हुई रस्सी के समान कपाल के भीतर रक्खा हुआ मालूम पड़ता है। उसके दो विभाग हैं; प्रधान मस्तिष्क आगे की ओर ललाट में रहता है। मनुष्य के कपाल के भीतर का अधिक हिस्सा इसी से घिरा हुआ है। उपप्रधान मस्तिष्क प्रधान मस्तिष्क के पीछे गुद्दी के पास रहता है। यह प्रधान मस्तिष्क से छोटा होता है। प्रधान मस्तिष्क से प्रधान प्रधान तन्तु निकल कर सिर के जुदा जुदा भागों में फैले रहते हैं। कुछ तन्तु नाक की ओर जाते हैं; इनके द्वारा घ्राण का ज्ञान होता है। कुछ तन्तु आँखों की ओर जाते हैं; इनसे दृष्टि-ज्ञान होता है। कुछ तन्तु कानों की तरफ़ जाते हैं; इनसे शब्द-ज्ञान होता है। कुछ तन्तु जिह्वा से जा मिलते हैं; इनके द्वारा रस का ज्ञान होता है। इसी प्रकार कुछ तन्तु हमारे गाल और जबड़ों से जुड़े रहते हैं। इनकी सहायता से हम अपने जबड़ों को हिला डुला सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपप्रधान मस्तिष्क से बहुत से तन्तु डालों की तरह निकलकर नीचे के सब अङ्गों में—धड़, हाथ, पैर, आदि में जाते हैं। पहले उसमें से एक मोटी मोटी शाखा निकलकर सीधी रीढ़ की हड्डी के भीतर चली जाती है। इस शाखा को मेरुरज्जु कहते हैं। इसी मेरुरज्जु से फिर अगणित शाखा प्रशाखा, उपशाखा निकल निकल कर सब अङ्गों में फैल जाती हैं। इन सब तन्तुओं के समूह को तन्तुजाल या शिराजाल कहते हैं। यह तन्तुजाल यदि न हो, या यदि इसे कोई हानि पहुँचे, तो हम को किसी अङ्ग से किसी प्रकार का ज्ञान हो न हो, और न कोई अङ्ग हमारे इच्छानुसार कुछ काम ही कर सके। यह तन्तुजाल ख़बर पहुँचाने वाले तारों की मानों एक शृङ्खला है जो शरीर के एक देश से दूसरे देश को और अन्त में मस्तिष्क को ख़बर पहुँचाती है। मस्तिष्क मानों इन तारों का सब से बड़ा तारघर है। तन्तुजाल बहुत बारीक तन्तुओं और छोटे छोटे घटकों (Cells) का बना होता है। ये तन्तु और घटक इतने सूक्ष्म होते हैं कि एक वर्ग इंच में करोड़ों आ जाते हैं। एक तन्तु की मुटाई एक इंच के एक लाखवें भाग से भी कम होती है। जो तन्तु सिर की इन्द्रियों में आते हैं वे स्वयं प्रधान मस्तिष्क से निकल कर कपाल के छेदों के द्वारा आते हैं। शरीर के और विभागों के तन्तु मेरुरज्जु से फूट फूट कर आते हैं, जोकि स्वयं उपप्रधान मस्तिष्क की एक प्रधान शाखा है। फिर ये नीचे तक चले जाते हैं। इन्हीं तन्तुओं के कारण सब अङ्गों प्रत्यङ्गों में ज्ञानशक्ति और बल रहता है; और उनसे जो काम हम चाहते हैं ले सकते हैं। कल्पना कीजिए कि एक सुई अँगुली में चुभ गई। अँगुली के तन्तु ने, जो मेरुरज्जु द्वारा मस्तिष्क में चला गया है, तुरन्त मस्तिष्क को ख़बर पहुँचा दी कि अमुक चीज़ अँगुली में चुभी। वहाँ से मन ने आज्ञा दी कि अँगुली को हटा लो। तन्तु द्वारा चट अँगुली हटा ली गई। इतना सब काम कोई आधे सेकण्ड में हो गया। मस्तिष्क के इस संक्षेप वर्णन से विदित हो गया होगा कि मस्तिष्क शरीर का प्रधान अङ्ग है। सारे शरीर का प्रेरक और वियोजक वही है। इसी कारण सिर में स्थान विशेष पर भारी चोट लग जाने से मनुष्य संज्ञा-शून्य हो जाता है। क्योंकि उस समय कोई अङ्ग कुछ काम नहीं कर सकता।

शरीर की रचना का कुछ हाल ऊपर दिया गया है। अब देखना चाहिए कि यह सारा शरीर रूपी यंत्र कैसे चलता रहता है। जहाँ श्रम है वहाँ क्षय अवश्य है। यह प्रकृति का एक साधारण नियम है। जो कल बराबर काम करती रहती है उसके पुर्ज़े कुछ दिनों बाद घिस जाते हैं और उनको फिर बदलना पड़ता है। इसी तरह काम करने से तन्तु और पुट्ठों की चीज़ें भी घटती रहती हैं। इसी घाटे की पूर्ति कहीं न कहीं से अवश्य होना चाहिए। नहीं तो शरीर रूपी यह कल थोड़ेही समय में बेकार हो जायगी। इस बात की पूर्ति पचनेन्द्रिय (Digestive Organs) करती है। वह भोजन को रुधिर में बदल देती है। फिर यह रुधिर हृदय में पहुँचता है। रुधिर को हृदय सब अङ्गों प्रत्यङ्गों में पहुँचाता है। रुधिर को फेफड़े साफ़ करते हैं। साफ़ किया हुआ रुधिर हृदय-द्वारा शरीर की रक्त-वाहक नलियों में जाता है। रुधिर से सब अङ्ग पुष्ट बने रहते हैं और श्रम-जनित घाटा पूरा होता रहता है।

पचनेन्द्रिय के प्रधान प्रधान भाग ये हैं:—मुँह, गला—अर्थात् वह नल जिसमें से होकर भोजन पेट में जाता है—आमाशय, और अँतड़ियाँ। पहले भोजन मुँह में लिया गया। फिर चबाया गया। चबाने से मुँह के भीतर की छोटी छोटी नलियों के द्वारा लार निकल निकल कर उसमें मिली। फिर भोजन नली के द्वारा आमाशय में पहुँचा। वहाँ, जिगर से गैस्ट्रिकजूस (Gastric juice) अर्थात् वह द्रव पदार्थ जिसे जठराग्नि कहते हैं, निकल कर भोजन में मिल गया। जठराग्नि वास्तव में अग्नि नहीं है वह एक प्रकार का तेज़ाब है जो अग्निहो का काम करता है। उसने भोजन को अच्छी तरह पचाकर उसके पुष्टि-कर अंश को उससे निकाल लिया। बचे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए भाग को आँतों में ढकेल दिया। आँतों ने उसे बाहर निकाल कर म्युनीसिपलटी के हवाले किया।

मुँह की लार और जठराग्नि रस, ये दो पदार्थ पाचन शक्ति के बड़े सहायक हैं। जब इनकी कमी होजाती है, या जब ये दुर्बल होजाते हैं, तब भोजन अच्छी तरह नहीं पचता और चूर्ण खाने की ज़रूरत पड़ती है। इसीलिए वैद्यक-शास्त्र में बहुत थूकना मना है। क्योंकि बहुत थूक निकल जाने से भोजन पचाने के लिए उसकी कमी होजाती है। तंबाकू खानेवाले दिन भर पिच्च पिच्च किया करते हैं, यह अच्छा नहीं। यदि भोजन अच्छे प्रकार चबाया न जाय तो उसमें लार कम मिलती है। इस कारण यदि कम चबाया हुआ भोजन आमाशय में जाता है तो आमाशय को अधिक परिश्रम करना पड़ता है। इससे वह थक जाता है और उससे विकार उत्पन्न होजाता है। इसलिए भोजन ख़ूब चबाकर खाना चाहिए। और एक बार के भोजन के बाद दूसरी बार के भोजन तक इतना अन्तर देना चाहिए कि आमाशय को पहली बार का भोजन पचाकर आराम करने के लिए कुछ समय मिल जाय। अर्थात् थोड़ी देर भूँखे रह कर भोजन करना अच्छा है। भोजन करते समय अधिक पानी पीना भी पाचन-शक्ति को हानि पहुँचाता है। इससे जठराग्नि रस पतला हो जाता है और उसका बल घट जाता है।

इस तरह पचनेन्द्रिय ने तो रुधिर बना डाला। अब उसको शरीर के सब अङ्गों में पहुँचाना हृदय का काम है—रुधिर इकट्ठा करने का प्रधान यंत्र हृदय है। वह दो बड़े बड़े विभागों में विभक्त है। ये विभाग एक दूसरे से एक दीवार के द्वारा अलग हैं। इन दोनों विभागों में परस्पर कोई संबंध नहीं। फिर एक दूसरी दीवार बेंड़ी बेंड़ी चली गई है जो पहले के दोनों विभागों को फिर विभक्त करती है। इस दीवार के ऊपर वाले भागों को अङ्गरेज़ी में हृदय (Auricles) और नीचे वालों को कोष (Ventricles) कहते हैं। इन दोनों विभागों में आपस में सम्बन्ध होता है। इस तरह हृदय के चार विभाग हुए:—दहिना हृदय, दहिना कोष; बायाँ हृदय, बायाँ कोष।

मनुष्य का हृदय मनुष्य की मुट्ठी के बराबर होता है। वह मांस के पतले पतले असंख्य तन्तुओं का बना होता है। वे ऐसे होते हैं कि हृदय अच्छी तरह घट बढ़ सकता है। हृदय और कोष के बीच में जो दीवार होती है उसमें छेद होते हैं जिनके कारण उनमें आपस में संबंध रहता है। इन छेदों में पट होते हैं जो एक तरफ़ धक्का लगने से खुल जाते हैं और दूसरी तरफ़ से बन्द हो जाते हैं। इससे रुधिर जाकर फिर नहीं लौटने पाता। प्रधान रक्त-वाहिनी नली बायें कोष से रुधिर ले लेकर सारे शरीर में संचार करती है। सब अङ्गों प्रत्यंगों में घूमकर रुधिर दाहने हृदय में आता है और फिर नीचे दाहने कोष में से होकर फेफड़े में पहुँचता है। वहाँ से साफ़ होकर वह बायें हृदय में फिर आता है। वहाँ से वह फिर सब शरीर में जाता है। इसी को रुधिर-संचार कहते हैं और यह यावज्जीवन सदा हुआ करता है। इस सम्बन्ध में विलियम हार्वी का नाम सदा स्मरण किया जायगा, क्योंकि इन्होंने सत्रहवीं शताब्दी के आदि में इस रुधिर-संचार का पता लगाया था।

अब केवल श्वासेन्द्रिय के विषय में मुझे और कहना है। इसके बाद मैं अपना निबन्ध समाप्त करूंगा। फेफड़े के दो कार्य्य हैं। वे केवल अस्वच्छ चीज़ों को निकाल कर रुधिर को स्वच्छही नहीं करते, किन्तु शरीर के भीतर एक अत्यन्त उपयोगी वस्तु भी पहुँचाते हैं। इस वस्तु का नाम आक्सीजन है। यदि आक्सीजन शरीर में न पहुँचा करे तो शरीर में गरमी न रहे; और रुधिर जम जाय। रुधिर शरीर भर में घूमघाम कर मलिन हो जाता है। इस कारण साफ़ होने के लिए वह फिर फेफड़ों में आता है। जो प्राण वायु हम बाहर से भीतर को खींचते हैं वह फेफड़े की सब नलियों में व्याप्त हो जाती है। इन नलियों के भीतर बाल के बराबर और असंख्य सूक्ष्म नलियाँ होती हैं जिनमें रुधिर भरा रहता है। इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह स्वच्छ प्राण वायु के साथ रुधिर का सम्पर्क होता है। वायु का आक्सीजन निकल कर रुधिर में मिल जाता है और उसको साफ़ कर देता है। रुधिर का कारबोनिक एसिड गैस जो, शरीर में घूमने के कारण उसमें आता है और यदि न निकलने पावे तो शरीर भरको विषाक्त कर देता है, निकलकर वायु में मिल जाता है। वह वायु फिर नाक और मुँह की राह से निकल जाती है। इस प्रकार फेफड़े रुधिर को स्वच्छ किया करते हैं।

यह हमारा छोटा सा शरीर परमात्मा की अपार महिमा का भण्डार है। इसकी विचित्र रचना को देखकर हमारे आश्चर्य्य का कोई ठिकाना नहीं रहता, और प्रभु की प्रभुता हमारे हृदय पर छा जाती है। हे भगवान् हम लोगों का सामर्थ्य नहीं जो हम आप के रहस्यों को जान सकें।

कृपाशङ्कर निगम।

पुस्तक-परीक्षा।

१—भगवद्गीता-भाष्यम्। गीता ज्ञान का भाण्डार है। इसका बड़ा आदर है। यह बड़ा अद्भुत ग्रन्थ है। कोटि कोटि हिन्दू नर नारी इसे भक्ति और श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं और इसके पठन तथा श्रवण से परम पद पाने की आशा रखते हैं। हिन्दू ही क्या योरप और अमेरिका के निवासी तक इसकी इज़्ज़त करते हैं और इसे दुनिया की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक मानते हैं। अब तक गीता के सैकड़ों भाष्य, टीकायें, टिप्पणियाँ, अनुवाद और सारांश संसार की कितनीही भाषाओं में निकल चुके हैं और निकलते चले जा रहे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि गीता के समान गम्भीर-भाव-पूर्ण, शिक्षाप्रद और ज्ञानप्रद ग्रंथ संस्कृत-साहित्य में दूसरा मुश्किल से मिलेगा। इसी से बड़े बड़े आचार्य्यों ने इसे इतना ऊँचा आसन प्रदान किया है और कहा है कि जो गीता नहीं पढ़ता उसका ज्ञान अधूरा है। पर बड़े आश्चर्य्य और दुःख की बात है कि जिस गीता की महिमा ऐसी अपार है, जो बीस करोड़ राजभक्त हिन्दुओं के कण्ठ का हार है और जिसे पढ़ कर बड़े बड़े ज्ञानी और संसार-त्यागी महात्मा आनन्द और शान्ति के निकेतन, मोक्ष, के पाने की आशा रखते हैं उसे कुछ अदूरदर्शी लोग यह कह कर बदनाम कर रहे हैं कि उससे बम बनाने और हत्या के समान महा घोर पाप करने की शिक्षा मिलती है। उनका ख़याल है कि बंगाले के बम के गोले उसके चिन्तन और मनन का फल है। भ्रममूलक होने पर भी यह मत बहुत ही भयङ्कर और हानिकारक है। इसी से बंगाल के कुछ समझदार लोगों ने गीता का प्रचार करनेवाली सभायें ख़ुदही बन्द कर दी हैं। ऐसे समय में ब्रह्मप्रेस, इटावा, से पण्डित भीमसेन शर्म्मा ने सटीक गीता प्रकाशित करके बड़े साहस का काम किया है। इसकी टीका दमोह-निवासी श्री-हरिदास ने हिन्दी में की है और उक्त पण्डितजी ने उसका संशोधन और सम्पादन किया है। भाष्य को पं० भीमसेनजी ने अपनी टिप्पणी से विभूषित करके पुस्तक के गौरव को और भी बढ़ा दिया है। प्रत्येक श्लोक का शब्दार्थ और भावार्थ अच्छी तरह समझाया गयाहै। टीका की भाषा सरल है और साधारण पढ़े लिखे लोगों के समझने लायक़ है। शुरू में गीता-माहात्म्य और गीता-पाठ-विधि भी है। पृष्ठ-संख्या ६७२। मूल्य ढाई रुपये। प्रकाशक से प्राप्य।

गीता का यह संस्करण बहुत अच्छा निकला है। परन्तु इसके भाष्य की हिन्दी में त्रुटियाँ रह गई हैं। जान पड़ता है इसके भाष्यकार को अच्छी हिन्दी लिखने का अभ्यास नहीं। उदाहरणार्थ—७८ वें पृष्ठ पर लिखा है—"काष्ठ से काष्ठ रगड़ने बिना"—यहाँ पर—काष्ठ से काष्ठ रगड़े बिना—चाहिए। इसी पृष्ठ पर है—"अपन अमुक वस्तु खाते पीते हैं—यह हिन्दी का महाविरा नहीं। विशुद्ध हिन्दी में 'अपन' शब्द नहीं आता। इसी तरह के भाषा-सम्बन्धी और भी कितनेही दोष इस पुस्तक में हैं। पर वे गीता का भावार्थ समझने के बाधक नहीं।

हमें एक बात कहना है। वह यह है कि आज कल जिस रीति से गीता की टीकायें की जाती हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह बहुत पुरानी हो गई है। ऐसी टीकायें आवश्यकता से अधिक निकल चुकी हैं। अब उनकी उतनी ज़रूरत नहीं। कारण यह कि आज कल अँगरेज़ी पढ़े लिखे लोग उन्हें रुचि से नहीं पढ़ते। फल यह होता है कि गीता में जो ज्ञान-भाण्डार भरा है उससे वे वञ्चित रहते हैं। इसलिए इस समय इसकी सख़्त ज़रूरत है कि लोगों को गीता का सच्चा सच्चा अर्थ और आशय नये ढंग से समझाया जाय। सम्पूर्ण गीता का मूल तत्त्व क्या है, उसमें कैसा अमूल्य ज्ञान भरा हुआ है और उसकी लोकोत्तर शिक्षा से हम लोग कहाँ तक लाभ उठा सकते हैं, यह बात गीता का विश्लेषण करके, उस पर निबन्ध लिखकर, मनोहारिणी भाषा में कथा अथवा और किसी मिष से लोगों के सामने रखना चाहिए। इससे शिक्षित, अल्पशिक्षित तथा नई पुरानी रुचि के सभी लोग लाभ उठाकर अपना लोक परलोक सुधार सकेंगे।

ऊपर जो मत हमने अपना लिखा वह नया नहीं है। उसके अनुसार बंगाल और महाराष्ट्र देश के साहित्यानुरागी बहुत दिनों से चल रहे हैं। वे इसके लाभों को जानते हैं। इसी से बँगला और मराठी में पूर्वोक्त प्रकार की कितनी ही पुस्तकें अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं। उन्हें सब तरह के लोग बड़े प्रेम से पढ़ते हैं और उनसे लाभ उठाते हैं। श्रीनीलकण्ठ मजूमदार, एम० ए० ने बँगला में गीतारहस्य नाम की एक बड़ीही उपयोगी पुस्तक लिखी है। एक एक दिन के हिसाब से इसके १८ भाग करके उन्होंने गोपीनाथ और विनोदविहारी नामक दो व्यक्तियों के मुख से गीता का रहस्य वर्णन किया है। हमारी प्रार्थना है कि पं० भीमसेन शर्म्मा इस तरह की कोई पुस्तक बनाकर गीता के रहस्य को समझाने की कृपा करें। गीता पर भाष्य, वृत्ति, टीका, टिप्पणी आदि अर्थद्योतक रचनायें शङ्कराचार्य्य और आनन्दगिरि के समय से लेकर आज तक बहुत हो चुकीं।

❀

२—शुभचिन्तक। पण्डित रमादत्त त्रिपाठी, मन्त्री, आर्यसमाज, नैनीताल कृत। इस पुस्तक में यह दिखलाया गया है कि मांस-भक्षण करना स्वास्थ्य तथा देश के लिए अत्यन्त हानिकारक है और धर्म विरुद्ध भी है। बीच बीच में स्वामी दयानन्द सरस्वती और आर्यसमाज की प्रशंसा की गई है। इसमें कितनीहीं बातें ऐसी भी लिखी गई हैं जिनका मूल विषय से कोई सम्बन्ध नहीं। मूल्य तीन आने। मिलने का पता—मैनेजर, सरस्वती-विलास प्रेस, नरसिंहपुर।

❀

३—ताम्बूलपद्धति। इस किताब में पान की उत्पत्ति, उसके गुण-दोष, खाने की विधि और माहात्म्य आदि का वर्णन हिन्दी-अनुवाद-सहित संस्कृत-पद्य में है। पुस्तक बड़े मज़े की है; पान के शौक़ीन लोगों के देखने लायक़ है। धन्वन्तरि-धर्म्मामृत-औषधालय, काशी के अध्यक्ष दीक्षित बाबू नन्दन शर्मा वैद्य ने इसकी रचना की है। वही इस पच्चीस पृष्ठ की छोटी सी किताब को चार आने में बेचते हैं।

❀

४—प्रशस्तित्रितयम्। आठ पृष्ठ की यह छोटी सी पुस्तिका संस्कृत-छन्दों में है। इसमें ताम्रकूट (तमाखू), वीटिका और मदिरा नाम की तीन प्रशस्तियाँ हैं। कविता मनोहारिणी है। कवि-काव्य-रत्नाकर भट्ट श्रीबलभद्र शर्मा ने इसकी रचना की है। उन्हीं से सातस्वरूप की हवेली, भूलेश्वर बम्बई के पते पर यह मिल सकती है।

मनोरञ्जक श्लोक।

पृच्छति काचित्सरला दुग्धं पीतं किमद्य महयित।
नहि नहि दुग्धं श्वेतं कथयसि मुग्धे कथं पीतम्॥

एक सीधी सादी स्त्री अपने पति से पूँछती है—"हे प्रियतम, दुग्धं पीतं किम्"? क्या आपने दूध पिया? इसके उत्तर में उसका पति कहता है—"हे मुग्धे, दूध श्वेत होता है, उसे तू पीत कैसे कहती है"? यहाँ "पीत" शब्द द्व्यर्थक है। संस्कृत में उसका अर्थ पीला और पिया या पीलिया दोनों होते हैं।

रामजीलाल शर्मा

Printed and published by Panch Kory Mittra at the Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती।

भाग १०] १ जुलाई, १९०९। आषाढ़ शुक्ल १३, १९६६। [संख्या ७

विविध विषय।

१—उत्तरी भारत के पुरातत्त्व-विभाग का वार्षिक विवरण।

पुरा-तत्त्व-सम्बन्धी खोज करने के लिए एक सरकारी विभाग है जिसे पुरातत्त्व-विभाग कहते हैं। इसकी ओर से हर साल एक रिपोर्ट प्रकाशित होती है। गत वर्ष की रिपोर्ट मथुरा-अजायब घर के अध्यक्ष ने कृपा करके हमारे पास भेजी है। उसकी पहुँच हम धन्यवाद-पूर्वक स्वीकार करते हैं। इस रिपोर्ट से मालूम हुआ कि गत वर्ष पुरातत्त्व-सम्बन्धी खोज विशेष कर गोंडा-फ़ैज़ाबाद ज़िलों के सहेट-महेट स्थान में हुई। वहाँ की कच्ची और पक्की कोठी के खोदने से ऐसे सैकड़ों शिलापट्ट, शिलालेख और मूर्त्तियाँ निकली हैं जो ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्त्व की हैं। यहाँ के दो एक शिलालेखों पर सरस्वती में एक नोट निकल चुका है। यहाँ पर एक ताम्रपत्र ऐसा भी मिला है जो यह सिद्ध करता है कि इतिहास-प्रसिद्ध श्रावस्ती नगर इसी स्थान पर बसा हुआ था। इसके बाद मथुरा का नम्बर है। वहाँ भी उस साल दो सौ से ऊपर शिलालेख, ताम्रपत्र और मूर्त्तियाँ मिली थीं। इन्हें मथुरा-अजायब घर के सहकारी अध्यक्ष पण्डित राधाकृष्ण ने ढूँढ निकाला था। इनमें से दो एक मूर्त्तियों और शिलालेखों पर भी सरस्वती में एक नोट निकल चुका है। यहाँ पर महात्मा बुद्ध की एक अत्यन्त प्राचीन मूर्त्ति मिली है। कहते हैं कि इतनी प्राचीन मूर्त्ति भारतवर्ष में अब तक और नहीं पाई गई।

२—गहरवार-नरेशों के दानपत्र।

गत वर्ष की पुरातत्त्व-सम्बन्धी खोज में जितने पदार्थ मिले हैं उनमें से तीन दानपत्र मुख्य हैं। तीनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताम्रपत्रों पर लिखे हुए हैं और क़नौज के गहरवार-वंशी तीन भिन्न भिन्न नरेशों से सम्बन्ध रखते हैं। इनमें से पहला बनारस ज़िले के चन्द्रावती स्थान में पाया गया था। इसे गहरवार या राठोर वंश के प्रथम नरेश राजा चन्द्रदेव ने संवत् ११४८ (१०९० ई०) में लिखा था। दूसरा दानपत्र सहेट-महेट में मिला था। इसे राजा चन्द्रदेव के पौत्र राजा गोविन्द-चन्द्र ने संवत् ११८६ (११२८ ई०) में लिखा था। जैतवन के बौद्ध महन्तों को छः गाँव दान करने का इसमें उल्लेख है। मालूम होता है कि गोविन्दचन्द्र बड़ा दानी नरेश था। क्योंकि उसके लिखे हुए दान-पत्र अब तक बहुत से पाये गये हैं। ये सब ११०४ और ११५५ ई० के बीच के हैं। गोविन्दचन्द्र के पौत्र जयचन्द्र क़नौज के अन्तिम हिन्दू नरेश थे। वे ११९३ ई० में मारे गये। मालूम होता है कि उनके पुत्र हरि-श्चन्द्र के पास अपने पैतृक राज्य का कुछ अंश बाक़ी रह गया था। क्योंकि तीसरा दानपत्र, जो संवत् १२५३ (११९५ ई०) में लिखा गया था, इसी राजा का लिखा हुआ है। इस राजा से सम्बन्ध रखने वाला ताम्रपत्र अब तक कोई भी न पाया गया था। यह दान पत्र जौनपुर ज़िले के मछली शहर में मिला है।

३—स्टिनोटाइपर यन्त्र।

आजकल सभ्य और उन्नत देशों में शार्ट हैंड राइटिंग् के बिना काम नहीं चल सकता। हमारे देश, भारतवर्ष, में भी लेकचरबाज़ी की उन्नति के साथ साथ इसका प्रचार बढ़ता जाता है। अब तक शार्ट हैंड लिखनेवाले अपना लेख हाथ से लिखते थे। परन्तु अब एक ऐसा यन्त्र ईजाद हुआ है जिसके द्वारा शार्ट हैंड वैसी ही सफ़ाई और शीघ्रता से लिखा जा सकता है जैसे कि हाथ से। यह यन्त्र बहुत सादा होता है। इसमें केवल छः कुंजियाँ होती हैं जिनके दबाने से यह यन्त्र चलता है। मिस बाडीकाट नाम की एक मेम इसका प्रचार बढ़ाने के लिए भारतवर्ष में आई हैं। उनका कथन है कि इसके द्वारा शार्ट हैंड लिखना ऐसा सहज है कि कोई भी मनुष्य केवल डेढ़ महीने में इसका चलाना सीख सकता है। जिन लोगों ने इस यन्त्र की परीक्षा की है वे कहते हैं कि मिस बाडीकाट का कथन सर्वथा सत्य है। कुछ दिनों से विलायती अख़बारों में भी इस यन्त्र की धूम मची हुई है। उन्होंने इसकी एक स्वर से प्रशंसा की है और कहा है कि इसके प्रचार से संक्षिप्त-लेखनप्रणाली में असाधारण उन्नति हो जायगी।

४—प्राचीन भारत की मन्दिर-निर्माण-विद्या।

अध्यापक मेकडानल या मुग्धानलाचार्य को सरस्वती के पाठक जानते ही हैं। कोई डेढ़ वर्ष हुआ आप इस देश में घूमने आये थे। यहाँ से लौटने के बाद इंगलैंड में भारतीय विषयों पर आपने कितनेही व्याख्यान दिये हैं। कुछ दिन हुए आपने प्राचीन भारत की स्थापत्य-विद्या पर भी एक व्याख्यान लन्दन में दिया था। उसमें आपने २५० ई० पू० से लेकर ११०० ई० तक की भारतीय मन्दिर-निर्माण-रीति का वर्णन किया। आपने इस समय को बौद्ध-काल और हिन्दू-काल नाम के दो भागों में विभक्त किया। मेकडानल साहब कहते हैं कि बौद्ध काल में तीन प्रकार की इमारतें बनती थीं—स्तूप, चैत्य और विहार। इनमें से प्रथम प्रकार की इमारतें २५० ई० पू० से लेकर ५० ई० तक, दूसरे प्रकार की ५० ई० से लेकर ३५० ई० तक और तीसरे प्रकार की ३५० ई० से लेकर ६५० ई० तक बनती थीं। अध्यापक महाशय का मत है कि हिन्दुओं ने अपने मन्दिर बनाना बौद्धों से सीखा है। और हिन्दू-मन्दिरों को दो हिस्सों में बाँटते हैं—एक उत्तरी भारत के और दूसरे दक्षिणी भारत के। आपका ख़याल है कि दक्षिणी भारत के हिन्दू मन्दिर बौद्ध-विहारों की नक़ल हैं और उत्तरी भारत वाले बौद्ध-स्तूपों की। आपने अपने व्याख्यान में स्तूप, चैत्य, विहार और सब प्रकार के हिन्दू-मन्दिरों की बनावट का वर्णन भी किया और उन Lantern Slides की सहायता से लोगों को दिखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाया भी। इस देश की भवन-निर्म्माण-विद्या के ज्ञाताओं को अध्यापक महाशय की पूर्वोक्त उक्तियों पर यदि कुछ कहना हो तो ज़रूर कह डालना चाहिए।

५—मुर्दों के फ़ोटोग्राफ़।

अमेरिकावाले लौकिक बातों की उन्नति की चरम सीमा पर तो पहुँचे ही हुए हैं, वे आध्यात्मिक बातों में भी कमाल कर रहे हैं। मृत मनुष्यों को बुलाना और उनसे बातचीत करना तो वहाँ वालों के लिए एक मामूली बात है। कुछ दिनों से वे ऐसे लोगों के फ़ोटो भी लेने लगे हैं जो बरसों पहले परलोक जा चुके हैं। इसे गप न समझिए। कुछ दिन हुए दक्षिण के एक हिन्दू-समाचारपत्र-सम्पादक इस बात की परीक्षा करने के लिए अमेरिका गये थे। वहाँ उन्होंने कहा कि यदि कोई मेरी मृत स्त्री (वह कई वर्ष पहले मर चुकी थी) का फ़ोटो उतार दे तो मैं समझूं कि अमेरिका ने सचमुच ही आध्यात्मिक बातों में और देशों की अपेक्षा अधिक उन्नति की है। अमेरिका पहुँचने के थोड़े ही दिनों बाद उनकी कामना सिद्ध हुई। बेंग नाम की दो बहनों ने उनकी स्त्री का पूरे क़द का फ़ोटोग्राफ़ केवल चौबीस मिनिट में दिन दहाड़े सैकड़ों आदमियों के सामने उतार कर रख दिया। सम्पादक महाशय उसे देखकर चकित और स्तम्भित हो गये। उन्होंने इस घटना का वृत्तान्त स्वयं प्रकाशित किया है।

६—नई तोप।

स्थल और जलयुद्ध के उपयोगी अस्त्र शस्त्र तो योरप में बहुत बन चुके हैं। अवसर पड़ने पर वे काम भी खूब देते हैं। परन्तु जबसे व्योमयान बनने लगे और हवाई-युद्ध की आशङ्का होने लगी तबसे उनसे होने वाली हानि से बचने के उपयोगी हथियार बनाने की भी योरप के कारीगर चेष्टा करने लगे हैं। हालही में जर्मनी की क्रप कम्पनी ने एक ऐसी तोप बनाई है जिसके द्वारा हवाई जंगी जहाज़ नष्ट किये जा सकते हैं। यह तोप आसानी से चारों तरफ़ चलाई जा सकती है। इसके द्वारा क़रीब चार सेर वज़न के गोले बड़ी तेज़ी से फेंके जा सकते हैं। ये तोपें मामूली गाड़ी की जगह मोटरगाड़ी पर लादी जायँगी जिसमें आकाश में तेज़ी से दौड़ते हुए जंगी जहाज़ों का पीछा कर सकें। इस नई तोप के गोले भी नई चाल के बनाये गये हैं। ये गोले हवाई जहाज़ों में लगते ही उन्हें जलाकर नष्ट भ्रष्ट कर देंगे। हालही में इस तोप की परीक्षा की गई थी। दो छोटे छोटे ग़ुब्बारे आकाश में एक हज़ार फ़ीट की उँचाई पर इसने उड़ा दिये। यह तोप उनसे ५३३० फ़ीट की दूरी पर रक्खी गई थी। उस समय हवा बड़ी तेज़ी से चल रही थी। दोनों ग़ुब्बारे इधर उधर डोल रहे थे। तब भी एक ग़ुब्बारा दूसरे गोले को और दूसरा ग़ुब्बारा पाँचवें गोले को खाकर नष्ट भ्रष्ट हो गया।

७—ईसपात का अद्भुत गुण।

प्रकृति की लीला बड़ी ही विचित्र है। उसके रहस्यों को समझना बहुत कठिन है। जिस बात को हम लोग बिना देखे सुने कभी नहीं जान सकते उसे कोई कोई जड़ पदार्थ सहज ही में जानकर बता देते हैं। उदाहरणार्थ अंडे को लीजिए। यह हम लोग कभी नहीं बता सकते कि इसके अन्दर नर है या मादा। परन्तु तार में बँधा और लटका हुआ ईसपात का लट्टू इस बात को तुरन्त बता देता है। ईसपात के लट्टू के इस गुण को पहले पहल इँग-लैंड के विलियम्स नामक एक यञ्जिनियर ने जाना। यदि यह लट्टू किसी नर के ऊपर लटकाया जाता है तो चारों ओर घूमने, यानी चक्कर काटने, लगता है। परन्तु यदि किसी मादा पर लटकाया जाता है तो घड़ी के पेंडुलम की तरह आगे पीछे हिलने लगता है। केवल अंडे ही नहीं किन्तु चूहा, बिल्ली, कुत्ता, सुअर, घोड़ा आदि सभी पशुओं के विषय में यह लट्टू बता देता है कि वे नर हैं या मादा। पशुही क्या पक्षियों, मछलियों यहाँ तक कि मनुष्यों के भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिङ्गभेद को यह लट्टू अपनी चाल से प्रकट कर देता है।

८—राय बहादुर माननीय पण्डित सुन्दरलाल सी० आई० ई०।

यह सुनकर हमें बहुत हर्ष हुआ कि प्रयाग हाई कोर्ट के प्रसिद्ध वकील पण्डित सुन्दरलाल अवध के अतिरिक्त जुडिशल कमिश्नर नियत किये गये हैं। इस पद पर अब तक कोई हिन्दुस्तानी कभी नियुक्त न हुआ था। पण्डित सुन्दरलालजी पहले भारतवासी हैं जो इस उच्च और प्रतिष्ठित पद पर प्रतिष्ठित किये गये हैं। माननीय पण्डित जी की उम्र इस समय ५२ वर्ष की है। कोई पच्चीस वर्ष से आप वकालत करते हैं। इलाहाबाद में इस समय जितने वकील और बारिस्टर हैं उनके आप नेता समझे जाते हैं। इलाहाबाद-विश्वविद्यालय की आपने बड़ी सेवा की है। कई साल तक आप उसके वाइस चेंसलर रहे हैं। इसके सिवा छोटे लाट की व्यवस्थापक सभा में भी आप कई वर्ष तक मेम्बर रहे हैं। इस दशा में आप राजा-प्रजा के कल्याण-साधन की सदा चेष्टा करते रहे हैं। सरकार ने पहले कई बार आपको जुडिशल कमिश्नर बनाना चाहा था। परन्तु आप सदा इनकार करते रहे। इस बार ऐसे सुयोग्य व्यक्ति को इस दायित्वपूर्ण पद पर नियुक्त करने में सरकार को कामयाबी हुई है।

९—गुरुमुखी बनाम उर्दू।

कुछ दिन से पंजाब में उर्दू और गुरुमुखी के विषय में झगड़ा चल रहा है। कुछ लोग कहते हैं कि प्रारम्भिक पाठशालाओं में गुरुमुखी पढ़ाई जाय; परन्तु कुछ कहते हैं कि प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू ही में दी जाय। उर्दू के पक्ष में अधिकतर मुसलमान और काश्मीरी हैं; परन्तु गुरुमुखी के पक्ष में प्रायः सभी पंजाबी और शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर, पंजाब-विश्वविद्यालय के चेंसलर और वाइस चेंसलर हैं। द्वितीय पक्ष प्रबल मालूम होता है। इससे सम्भव है कि उसी की जीत हो। परन्तु हमारी समझ में यदि उर्दू या गुरुमुखी की जगह हिन्दी में प्रारम्भिक शिक्षा दी जाय तो बहुत लाभ हो सकता है। कारण यह कि एक तो गुरुमुखी सब पंजाबियों की मातृभाषा नहीं; दूसरे उसमें कोई साहित्य भी नहीं। इधर उर्दू को कुछ पढ़े लिखे मुसलमानों और काश्मीरियों के सिवा कोई पूछता नहीं। परन्तु हिन्दी एक ऐसी भाषा है जिसे सारे पंजाबी समझते हैं; फिर हिन्दी का साहित्य भी बढ़ता जाता है और वह देशव्यापी भाषा बनती जाती है। इसके सिवा पंजाब में हिन्दी के पक्षपातियों की कमी भी नहीं है। इस दशा में यदि हिन्दी-हितैषी लोग पंजाब में हिन्दी का प्रचार बढ़ाने और प्रारम्भिक पाठशालाओं में हिन्दी का प्रवेश कराने की चेष्टा करें तो बहुत अच्छा हो।

१०—प्राचीन आर्य।

सरस्वती के पाठक डाक्टर टीबो के नाम से अवश्यही परिचित होंगे। आप म्योर सेंट्रल कालेज, इलाहाबाद, के बहुत दिन तक प्रधान अध्यापक रहे हैं। अब आप कलकत्ता-विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार हैं। कलकत्ते में इंडियन एसोसियेशन नाम की एक सभा है। उसका उद्देश विज्ञान की उन्नति करना है। कुछ दिन हुए इस सभा के भवन में डाक्टर टीबो ने प्राचीन आर्यों के विषय में एक व्याख्यान दिया। जस्टिस मुकर्जी, जो कलकत्ता-विश्वविद्यालय के वाइस चेंसलर हैं, सभापति थे। डाक्टर टीबो ने एक प्राचीन शिलालेख के आधार पर यह सिद्ध किया कि प्राचीन आर्यों का आदिम स्थान, यद्यपि मिस्टर तिलक के कथनानुसार उत्तरी ध्रुव के आस पास नहीं माना जा सकता, तथापि भारत के बाहर उत्तर की ओर कहीं ज़रूर रहा होगा। उन्होंने कहा कि जर्मनी में एक ऐसी सभा है जिसका काम पुरातत्त्व की खोज करना है। उसे एशिया माइनर के उत्तर-पूर्व भाग में, कुछ समय हुआ, एक ऐसा शिलालेख मिला है, जो कोई साढ़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रायबहादुर माननीय पण्डित सुन्दरलाल, सी० आई० ई०।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

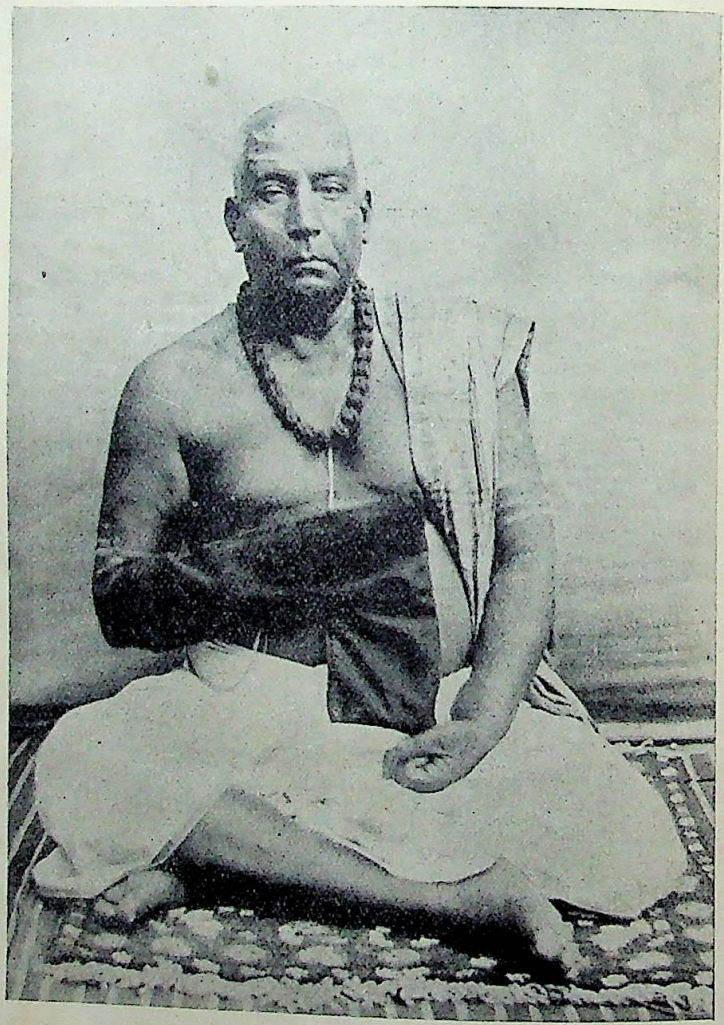

महामहोपाध्याय पण्डित कैलाशचन्द्र शिरोमणि।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन हज़ार वर्ष का पुराना है। इस शिलालेख की इबारत को डाक्टर साहब ने बोर्ड पर नक़ल करके यह बतलाया कि इसमें मित्र, वरुण, इन्द्र और अश्विन् इन चार वैदिक देवताओं के नाम हैं। इससे यह ज़ाहिर है कि किसी समय प्राचीन आर्य एशिया माइनर में रहते थे। उन्होंने कहा कि यह शिलालेख जितना पुराना है उतना पुराना और कोई ऐसा शिलालेख, जिसमें वैदिक देवताओं का उल्लेख हो, नहीं पाया गया।

महामहोपाध्याय पण्डित कैलाशचन्द्र शिरोमणि।

काशी के सुप्रसिद्ध दर्शनशास्त्रवेत्ता पण्डित कैलाशचन्द्र शिरोमणि का गत चैत्र मास में ७८ वर्ष की अवस्था में परलोकवास हो गया।

कैलाशचन्द्र महाशय धात्री ग्राम, ज़िले बर्दवान, के रहने वाले थे। वहीं उनका जन्म, संवत् १८८७ में, हुआ था। उनके पिता, पितृव्य और पितामह आदि सभी प्रसिद्ध विद्वान् थे। शिरोमणि महाशय की शिक्षा घर ही में शुरू हुई। पहले पहल उन्होंने अपने पितृव्य जनार्दन तर्कवागीश से मुग्धबोध व्याकरण पढ़ना प्रारम्भ किया। इसे समाप्त कर वे देवीपुर गये। वहाँ उन्होंने कोई आठ वर्ष तक एक पण्डित से व्याकरण और न्यायशास्त्र का अध्ययन किया। इसके बाद चौबीस पचीस वर्ष की अवस्था में वे सुप्रसिद्ध पण्डित त्रैलोक्यनाथ न्यायरत्न के पास पाठ समाप्त करने के लिए नवद्वीप गये। पर नवद्वीप पहुँचने के कोई तीन चार महीने के बाद ही न्यायरत्न महाशय का देहान्त हो गया। इसलिए पण्डित कैलाशचन्द्र ने उनके पुत्र त्रैलोक्यनाथ प्रसन्नकुमार तर्करत्न के पास न्यायशास्त्र का अवशिष्ट अंश अध्ययन किया।

पढ़ाई समाप्त करके शिरोमणि महाशय अपने गाँव लौट आये। यहाँ पर वे कुछ विद्यार्थियों को अपने चण्डीमण्डप में पढ़ाने लगे। परन्तु उनके पिता ने विचार किया कि यदि एक चतुष्पाठी बन जाय तो बहुत अच्छा हो। इसके लिए उन्होंने कलकत्ते जाकर अपने मन्त्रशिष्यों से सहायता माँगने का संकल्प किया। इसी संकल्प के अनुसार पिता-पुत्र कलकत्ते गये और वहाँ जो कुछ धन मिला उससे, घर लौट कर, एक प्रशस्त चतुष्पाठी निर्माण कराई। अब कैलाशचन्द्र महाशय इसी सुन्दर चतुष्पाठी में अपने विद्यार्थियों को पढ़ाने लगे।

पण्डित कैलाशचन्द्र जी को अध्यापन करते बहुत दिन न बीते थे कि उनकी माता का परलोकवास हो गया। उनके श्राद्ध सपिंडीकरण में बहुत कुछ व्यय हुआ। इसके कुछही दिनों बाद पण्डितजी के ज्येष्ठ पुत्र राजवल्लभ का बड़ी धूमधाम से उपनयन संस्कार हुआ। इसी समय दैवदुर्विपाक से ऐसा तूफ़ान आया कि चतुष्पाठी भूमिसात् हो गई। उसके दोबारा बनवाने में बहुत ख़र्च पड़ा। इन सब कारणों से पण्डित कैलाशचन्द्र ऋणग्रस्त हो गये। पर धनाढ्यों के द्वार पर जाकर हाथ पसारना उनकी प्रकृति के विरुद्ध था। अतएव उन्होंने ऋणजाल से मुक्त होने के लिए अन्यान्य उपायों का अवलम्बन किया।

एक बार देवीपुर के बाबू राजकृष्णसिंह ने शिरोमणि महाशय से कहा कि यदि आप पश्चिम की ओर जायँ तो जीविका का अच्छा प्रबन्ध हो सकता है। इसी बात को स्मरण कर शिरोमणि महाशय ने इस समय पश्चिम की यात्रा की। पटना पहुँचने पर उन्होंने सुना कि रामकृष्ण बाबू इस समय पटना में नहीं हैं। अतएव यहाँ से निराश होकर उन्होंने काशी जाने का इरादा किया। कुछ दिन पहले एक छात्र ने उनसे काशी में मिलने का वादा किया था। परन्तु जब वे उसके निवास-स्थान पर पहुँचे तब उन्हें मालूम हुआ कि वह यहाँ नहीं है। वहाँ से भी निराश होकर वे एक दूसरे शिष्य के घर में जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उतरे। दो चार दिन बाद उन्होंने स्वतन्त्र घर किराये पर ले लिया और उसी में विद्यार्थियों समेत रहने लगे।

इसी समय काशी के संस्कृत-कालेज के न्याया-ध्यापक ने तीन महीने की छुट्टी ली। अतएव सुप्रसिद्ध पण्डित बापूदेव शास्त्री ने इस पद के लिए एक मैथिल पण्डित को चुना। परन्तु उसने इस पद को ग्रहण करने से इनकार किया और कहा कि यदि आप पण्डित कैलाशचन्द्र को इस पद पर नियुक्त करें तो बहुत अच्छा हो। यह सुनकर शास्त्रीजी ने शिरोमणि महाशय को बुलाया और कालेज के अध्यक्ष की सलाह से उन्हें चालीस रुपये मासिक पर अस्थायी भाव से इस पद पर नियुक्त कर दिया।

कुछ दिनों बाद पण्डित कैलाशचन्द्रजी इस पद पर स्थायी कर दिये गये और केवल न्यायशास्त्र ही नहीं, किन्तु छहों दर्शन पढ़ाने लगे। धीरे धीरे उनकी उन्नति होने लगी और शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान उनका यश बढ़ने लगा। कुछ समय बाद काशी की विद्वन्मण्डली में उनका सिक्का जमगया और वे दर्शनशास्त्र के अद्वितीय ज्ञाता समझे जाने लगे। गवर्नमेंट ने भी उनके असाधारण पाण्डित्य की क़दर की और १८९६ ई० में उन्हें महामहोपाध्याय की उपाधि से विभूषित करके अपनी गुण-ग्राहकता का परिचय दिया।

पचपन वर्ष की अवस्था होने पर पण्डित कैलाशचन्द्र को पेंशन मिल जाती। परन्तु उन्होंने छोटे लाट से प्रार्थना की कि "यदि मैं कालेज से पेंशन ले लूँगा तो भी मुझे घर पर अध्यापन-कार्य्य करना पड़ेगा; अतएव मुझे इस समय पेंशन न दी जाय तो बहुत अच्छा हो।" इस पर छोटे लाट महोदय ने आज्ञा दे दी कि जब तक आप चाहें कालेज की अध्यापकता कर सकते हैं।

शिरोमणि महाशय ७६ वर्ष की उम्र तक अध्यापकता करते रहे। इस समय उनका मूत्रातिशय रोग बहुत बढ़ गया। अतएव उन्होंने १९०७ ई० में गवर्नमेंट से पेंशन पाने की प्रार्थना की। प्रार्थना स्वीकृत हुई। इस समय वे संस्कृत-कालेज के सर्वश्रेष्ठ अध्यापक थे और ढाई सौ रुपये मासिक वेतन पाते थे। परन्तु पेंशन उन्हें सौही रुपये मासिक मिली। जो हो, उन्होंने नेकनामी के साथ कालेज से अवसर ग्रहण किया।

पेंशन लेने पर भी शिरोमणि महाशय नित्य कालेज जाते थे। कारण यह था कि वे कालेज के परिदर्शक नियत किये गये थे। यद्यपि परिदर्शकों के लिए यह आवश्यक नहीं कि वे नित्य कालेज जायँ तथापि शिरोमणिजी को कालेज से इतना प्रेम हो गया था कि वे नित्य वहाँ जाते थे और जिस दिन जो अध्यापक न आता उस दिन उसके स्थान पर पढ़ाते थे। इसके सिवा वे घर पर भी विद्यार्थियों को पढ़ाते थे। यही हाल उनका मरने के कुछ दिन पहले तक था।

शिरोमणि महाशय केवल अगाध पण्डित ही न थे; किन्तु सच्चरित्र और सदाचारी भी थे। अभिमान या अहङ्कार उनमें ज़रा भी न था। क्रोध या विरक्ति उनके पास फटकने भी न पाती थी। क्या बालक और क्या वृद्ध वे सभी से सस्नेह आलाप करते थे। जिन्होंने उनकी निरभिमानता, सरलता, निष्कपट, विलास-वितृष्णा और कोमलता को एक बार भी देखा है वे उन्हें कभी नहीं भूल सकते। सच पूछिए तो ऐसे महान् पण्डित और असाधारण सद्गुणी के परलोकगमन से एक अमूल्य रत्न खो गया। इससे काशी की विद्वन्मण्डली की जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति शीघ्र नहीं हो सकती।

उदयनारायण वाजपेयी।

कारुण्य-भारती।

करुणा रस के रुदन से मिलता जितना मोद।
होता क्या हास्यादि से उतना कभी विनोद?

(१)

प्रतिकूल इस हतभाग्य जन से हो रहे सम्प्रति सभी।
चिर सहचरी करुणे! हमें तू किन्तु मत तजना कभी।
करती हमारा एक तू ही सतत हित एकान्त है।
आपत्ति में कुछ रुदन से ही चित्त होता शान्त है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२)

सूरत सँभाली हाय! जबसे कष्ट भोगे सर्वथा,
त्रुटी नहीं कोई कभी है एक दिन को भी व्यथा।
है चित्त! फिर क्यों आज तू होता उसी से पोच है,
यह नित्य का ही काम जो उसके लिए क्या सोच है?

(३)

किसको हुआ है सुख यहाँ, यह दुःखमय संसार है,
जो वस्तु है ही नहीं उसका व्यर्थ सोच विचार है।
हे हृदय! धैर्य बिना कठिन है शान्ति पाना शोक में,
आती नहीं है मृत्यु भी हत-भाग्य को इस लोक में॥

(४)

हे दुःखगण! जितना बने हमको सतालो तुम सभी,
अवसर मिलेगा फिर न ऐसा दूसरा तुमको कभी।
होंगे हमारे बाद तुम इतने न अङ्गीकृत कहीं,
अवलम्ब नष्टों का कहीं भी ठीक होता है नहीं॥

(५)

जिस भाँति रक्खोगे दयामय! हम रहेंगे सर्वदा,
जो जो दिखाओगे हमें तुम वही देखेंगे सदा।
जो कुछ कराओगे करेंगे कर कलेजे पर धरे,
होते तुम्हारे ही किये हैं काम सारे हे हरे?

(६)

इच्छा तुम्हारी ही प्रभो! अविरत अटल अविचल रहे,
चिन्ता न निज दुख की हमें है चित्त चाहे जो कहे।
सन्तुष्ट हो जिस बात में तुम हम उसी में हैं सुखी,
प्रभु-कार्य्य होना चाहिए सेवक भलेही हो दुखी॥

(७)

हों क्लेश जितने और भी विश्वेश! शेष बड़े बड़े,
दीजे उन्हें भी भोगने को हम सदा प्रस्तुत खड़े।
कष्ट और तो होंगे सुखी जो हम सहेंगे सब बला—
है धन्य वह जिस एक जन से हो अनेकों का भला॥

(८)

हे सौख्यसिन्धो! दुःख तुम जितने हमें देते रहे,
हम नित्य उन सबको किसी विध शीश पर लेते रहे।
तो भी प्रसन्न हुए नहीं हा हन्त! तुम हम पर कभी;
अनुकूलता से लोक में सन्तुष्ट होते हैं सभी॥

(९)

फल भोगने को कर्म्म के हम तो उपस्थित हैं सदा,
है भाग्य से ही प्राप्त होती सम्पदा या आपदा।
है किन्तु विश्वम्भर! तुम्हारे विरुद की चिन्ता बड़ी,
सब भाँति रखनी चाहिए निज नाम की सुध हर घड़ी॥

(१०)

हे भक्तवत्सल दीनबन्धो! हम कहा कर आपके—
अफ़सोस! अब तक भी बने हैं पात्र जो सन्ताप के।
सच जानिए इस दुर्दशा के योग्य हम न कदापि हैं,
चाहे बुरे हों किन्तु हम जन और के न तथापि हैं॥

(११)

यद्यपि तुम्हारे निकट हमने है रुदन इतना किया,
अशरणशरण! तो भी न उस पर ध्यान कुछ तुमने दिया!
अब तक तुम्हें हम जानते थे कारुणिक कोमल बड़े,
होती परीक्षा है किसी की क्या बिना अवसर पड़े?

(१२)

भ्रू-क्षेप से ही आपके हरि! क्या न हो सकता कहो?
दुर्भाग्य से पर हमें वह भी हो रहा दुर्लभ अहो।
सुन कर तदपि गुण आपके होता न चित्त हताश है,
जग में बड़ों के कथन का रहता बड़ा विश्वास है॥

(१३)

जो यों गिराते हो अहो तो क्यों चढ़ाया था हमें?
जो यों घटाते हो कहो तो क्यों बढ़ाया था हमें?
पहले हँसा कर फिर रुलाना है प्रभो! अनुचित बड़ा,
वह काम ही किस काम का पीछे पलटना जो पड़ा॥

(१४)

तुमने दयामय! प्रथम तो सब भाँति अपनाया हमें,
किस दोष से अब दूर कर यह दुःख दिखलाया हमें?
तजते उसे न कभी जिसे स्वीकार करते वीर हैं,
विपरीत भाव कहीं कभी धारण न करते धीर हैं॥

(१५)

हे प्रभो! तुम सर्वज्ञ, तुमसे कुछ न कहना है हमें,
जिस भाँति रखना है तुम्हें उस भाँति रहना है हमें।
अनुचित कथन करिये क्षमा यह जन अबुध अज्ञान है,
विचलित हृदय के वेग में रहता नहीं कुछ ध्यान है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१६)

करुणानिधे ! यह तनु हमारा है तुम्हारा ही दिया,
रचकर इसे इस लोक में पैदा तुम्हीं ने है किया।
अतएव चाहे जिस दशा में ईश ! तुम रक्खो इसे,
अधिकार अपनी वस्तु का कहिए नहीं होता किसे ?॥

मैथिलीशरण गुप्त।

चन्देल-राजवंश।

मुसलमानों का अधिकार जमने के पहले उत्तरी भारत की राज्यलक्ष्मी जिन छोटे छोटे राजवंशों के हाथ में थी उनमें चन्देल या चँदेला वंश मुख्य था। इस वंश के राजा परमाल से इन प्रान्तों के अपढ़ लोग भी परिचित हैं, क्योंकि उसका ज़िक्र आल्हा में पाया जाता है। इस राजवंश के इतिहास के विषय में पुरातत्त्ववेत्ताओं ने जनश्रुति, शिलालेख, ताम्रपत्र और सिक्कों की सहायता से अब तक जो कुछ पता लगाया है उसी का सारांश आज हम यहाँ पर लिखते हैं।

जिस भूखण्ड में चन्देलों का राज्य था उसे आजकल बुँदेलखण्ड कहते हैं। परन्तु चन्देलों के समय में इसका नाम जिझोति या जेजाभुक्ति था। प्रसिद्ध चीनी यात्री हुयेनसंग के समय में इस राज्य की राजधानी एरन में थी। यह स्थान सागर से पैंतालीस मील पश्चिम की ओर बीना नदी के किनारे है। परन्तु दसवीं शताब्दी के आदि में इसकी राजधानी खजुराहो हो गई थी। खजुराहो आजकल छत्रपुर-रियासत के अन्तर्गत है और महोबा से कोई चौंतीस मील की दूरी पर दक्षिण की ओर है। यहाँ के मन्दिर बड़ेही सुन्दर और भव्य हैं। इस रद्दी हालत में भी जो लोग उन्हें देखते हैं वे उनके बनानेवालों के शिल्प-नैपुण्य की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। खजुराहो पर एक सचित्र लेख सरस्वती में प्रकाशित हो चुका है। अतएव उसके विषय में अधिक लिखने की ज़रूरत नहीं।

चन्देले क्षत्रिय या राजपूतों के अन्तर्गत समझे जाते हैं। परन्तु इस बात का ठीक ठीक पता नहीं चलता कि इस वंश की उत्पत्ति कहाँ से है। चन्देलों का कथन है कि चन्द्रदेव और एक ब्राह्मण कन्या के संयोग से उनको उत्पत्ति हुई है। जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि विदेशी आक्रमणकारी हून जाति से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता विन्सेंट स्मिथ साहब का अनुमान है कि चन्देलों की उत्पत्ति गोंड तथा इसी प्रकार की अन्य कई जातियों के मेल से हुई है और वे छत्रपुर-राज्य के अन्तर्गत मनियागढ़ नामक स्थान के मूलनिवासी थे। इस बात को खजुराहो के वर्त्तमान चन्देल ज़मींदार भी मानते हैं। महाकवि चन्द का कथन है कि मनियागढ़ में गोंडो का राज्य था। इसके सिवा सोलहवीं शताब्दी में चन्देल राजकुमारी दुर्गावती ने गढ़मण्डल के गोंड-सरदार से विवाह भी किया था। इससे मालूम होता है कि स्मिथ साहब का अनुमान असत्य नहीं।

यह बात अनेक प्रमाणों से सिद्ध हो चुकी है कि सातवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में महाराज हर्षवर्द्धन समस्त उत्तरी भारत के सार्वभौम सम्राट थे। जेजाभुक्ति या वर्त्तमान बुँदेलखण्ड भी हर्ष के साम्राज्य के अन्तर्गत था। हुयेनसंग कहता है कि उस समय (६४२ ई० में) जेजाभुक्ति में एक ब्राह्मण राजा राज्य करता था। यह राजा महाराज हर्ष के अधीन था। सन् ६४८ ई० में महाराज हर्ष की मृत्यु हो जाने से सारा साम्राज्य नष्ट भ्रष्ट हो गया और छोटे छोटे राजे स्वतन्त्र हो गये। इसके बाद सातवीं और आठवीं शताब्दी के इतिहास का पता नहीं लगता। मालूम नहीं इस बीच में ब्राह्मण-राज्य की क्या दशा हुई।

ऐसा सुअवसर पाकर मनियागढ़ के वीर चन्देलों ने अपना राज्य बढ़ाना प्रारम्भ किया। पहले उन्होंने महोबा अपने क़ब्ज़े में किया। इसके बाद धीरे धीरे वे सारे जेजाभुक्ति राज्य के अधिपति बन गये। इस वंश में कौन कौन से नरेश हुए और वे किस किस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय सिंहासनासीन हुए, इसकी तालिका नीचे लिखी जाती है:—

संख्या	नरेशों के नाम	सिंहासनारोहण का साल ई०
१	नन्नुक	८३१
२	वाक्पति	८४५
३	जयशक्ति (जेजाक)	८६०
४	विजयशक्ति (विज्जाक)	८८०
५	राहिल	९००
६	हर्ष	९१५
७	यशोवर्म्मन् (लक्षवर्म्मन्)	९३०
८	धङ्ग	९५०
९	गण्ड	१०००
१०	विद्याधर	१०२५
११	विजयपाल	१०४०
१२	देववर्म्मन्	१०५५
१३	कीर्त्तिवर्म्मन्	१०६०
१४	लक्ष्मणवर्म्मन्	११००
१५	जयवर्म्मन्	१११०
१६	पृथ्वीवर्म्मन्	११२०
१७	मदनवर्म्मन्	११२८
१८	परमार्दि	११६५
१९	त्रैलोक्यवर्म्मन्	१२०३
२०	वीरवर्म्मन्	१२४५
२१	भोजवर्म्मन्	१२८७

पुरातत्त्ववेत्ताओं का अनुमान है कि दसवीं शताब्दी के आदि तक चन्देलराज्य क़नौज के महाराजाओं के अधीन करद राज्य था। अर्थात् शुरू के कितने चन्देलराजे (८३१ से ९१५ ई० तक) स्वतन्त्र नरेश न थे। उनके समय का कोई विशेष वृत्तान्त अभी नहीं मालूम होता। जान पड़ता है कि वे लोग अपना पैत्रिक राज्य भोग करने और साधारण रूप से राज-काज चलाने में सन्तुष्ट रहते थे।

चन्देलवंश के छठे नरेश राजा हर्षदेव (९१५-९३०) ने क़नौज की अधीनता की बेड़ी तोड़ दी। केवल यही नहीं, किन्तु उसने क़नौज पर आक्रमण करके वहाँ के तत्कालीन नरेश महाराज क्षितिपाल को गद्दी से उतार दिया और जब उसने चन्देलराज की अधीनता स्वीकार कर ली तब उसे फिर दोबारा सिंहासन पर बिठा दिया। यह घटना ९१७ ई० की है। कहते हैं कि क़रीब क़रीब इसी समय राष्ट्रकूट-नरेश तृतीय इन्द्र ने भी क़नौज पर आक्रमण करके क्षितिपाल (या महीपाल) को सिंहासनच्युत किया। सम्भव है कि इन्द्र और हर्षदेव दोनों राजाओं ने मिलकर क़नौज को विजय किया हो; पर इसमें सन्देह नहीं कि क़नौज-राज को दोबारा गद्दी पर बिठाने का यश हर्षदेव ही को प्राप्त है। मालूम होता है कि राष्ट्रकूट और चन्देलराज में से कोई भी ऐसा शक्तिशाली न था जो क़नौज में स्थायी आधिपत्य जमा सकता। इसी से उन लोगों को केवल विजय-वीर कहला कर सन्तुष्ट रहना पड़ा।

हर्षदेव के बाद उसका पुत्र यशोवर्म्मन् ९३० ई० में गद्दी पर बैठा। यह चन्देल-वंश का सातवाँ राजा था। इसने कालिंजर का क़िला जीतकर तथा उसे अपने राज्य में मिलाकर अपने वंश की कीर्त्ति और राज्य की शक्ति ख़ूब ही बढ़ाई। इसके समय में क़नौज का रहा सहा प्रभुत्त्व और भी कम हो गया। खजुराहो में इसने विष्णु का एक बड़ाही आलीशान मन्दिर बनवाया। इस मन्दिर में जिस मूर्त्ति की प्रतिष्ठा की गई थी वह उसने क़नौज-राज देवपाल से प्राप्त की थी। इस घटना से मालूम होता है कि क़नौज के राजा चन्देलराज के कृपापात्र बनने में अपना सौभाग्य समझते थे। वास्तव में यशोवर्म्मन् बड़ाही प्रतापी राजा था। उसने गौड़, खसिया, कोशल, काशमीर, मिथिला, मालवा, चेदी, गुर्जर आदि कितने ही शक्तिशाली राज्यों पर आक्रमण करके विजय प्राप्त की थी। उसकी विजय-पताका हिमालय से लेकर नर्मदा तक सारे उत्तरी भारत में फहराती थी। पूरे बीस वर्ष तक अखण्ड राज्य करने के बाद ९५० ई० में उसकी मृत्यु हुई।

यशोवर्म्मन् के बाद जेजाभुक्ति राज्य का सूत्र धङ्ग के हाथ में आया। इस समय पराक्रमी चन्देल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजों के यशःसौरभ से सम्पूर्ण भरतखण्ड महक रहा था। चन्देलों का राज्य अब केवल जेजाभुक्ति ही की सीमा के भीतर बद्ध न था; किन्तु उसका विस्तार उत्तर में यमुना से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी तक और पूर्व में काशी से लेकर पश्चिम में बेतवा नदी तक फैला हुआ था। उत्तर-पूर्व में गोपाद्रि या ग्वालियर धङ्ग का करद राज्य था। मतलब यह कि चन्देल राज्य की गिनती अब बड़े बड़े शक्तिशाली राज्यों में हो गई थी।

क़रीब ९८९ ई० में भटिण्डानरेश जयपाल ने चन्देलराज धङ्ग से प्रार्थना की कि वे, अन्य राजाओं के साथ, यवनराज सुबुक्तगीन के मुक़ाबले में उसे सहायता दें। धङ्ग ने इसे स्वीकार किया। देहली, अजमेर, कालिंजर, क़नौज और भटिण्डा के राजाओं की फ़ौजें भारत की उत्तर-पश्चिम सीमा पर जमा हुईं। ग़ज़नी के सुलतान सुबुक्तगीन और हिन्दू राजाओं की सेनाओं में कई दिन तक विकट युद्ध होता रहा। पर अन्त में नाना कारणों से विजय-श्री सुबुक्तगीन ही को प्राप्त हुई। हिन्दुओं को हार मानना पड़ी। उनकी सेना तितर-बितर हो गई।

अपने पिता की तरह धङ्ग ने भी खजुराहों में कितनेही सुन्दर, सुसज्जित और भव्य मन्दिर बनवाये। इनमें से कंडेरिया महादेव का मन्दिर सर्वोत्तम है। धङ्ग ने ९५० ई० से लेकर कोई १००० ई० तक राज्य किया। कहते हैं कि इतने अधिक काल तक किसी चन्देल राजा ने राज्य नहीं किया। एक शिलालेख से मालूम होता है कि उसने सौ वर्ष से अधिक आयु पाई। उसकी मृत्यु प्रयाग में गंगा और यमुना के संगम पर हुई।

राजा धङ्ग के बाद उसका पुत्र गण्ड विस्तृत चन्देल-राज्य का अधिकारी हुआ। इसी समय सुबुक्तगीन के उत्तराधिकारी सुलतान महमूद ने जयपाल के पुत्र आनन्दपाल पर आक्रमण किया। अपने पिता की तरह आनन्दपाल ने भी उज्जैन, ग्वालियर, देहली, अजमेर, कालिंजर और क़नौज के राजाओं की सहायता माँगी। सब राज्यों की सेनायें युद्ध-स्थल में जमा हुईं। पहले तो हिन्दुओं ने वीरता दिखाई; पर आनन्दपाल के हाथी के भागने से फ़ौज में गड़बड़ पड़ गई। मैदान मुसलमानों के हाथ रहा। आनन्दपाल की सहायता के लिए जो सेनायें एकत्र हुई थीं उनमें गण्ड की भेजी हुई सेना भी थी। मालूम नहीं कि गण्ड स्वयं युद्ध में उपस्थित था या नहीं।

सन् १०१९ ई० में सुलतान महमूद ग़ज़नवी ने क़नौज पर आक्रमण किया। पर क़नौज-नरेश राज्यपाल के अधीनता स्वीकार कर लेने पर वह मथुरा चला गया और वहाँ लूटपाटकर ग़ज़नी को लौट गया। यह देखकर कि राज्यपाल ने अति शीघ्र अधीनता स्वीकार करली, चन्देलराज गण्ड बड़ा क्रोधित हुआ। इसलिए उसने अपने पुत्र विद्याधर को, अन्य कई सहायकों के साथ, क़नौज पर आक्रमण करने के लिए भेजा। समवेत सेना ने क़नौज घेर लिया और विदेशी आक्रमणकारी की अधीनता स्वीकार कर लेने के अपराध में राज्यपाल को प्राण-दण्ड दिया। सुलतान महमूद को ज्योंही इस घटना की ख़बर मिली त्योंही, क़नौजराज का बदला लेने के लिए, वह ग़ज़नी से रवाना हुआ। रास्ते में लूट-पाट करता हुआ वह १०२० ई० में गण्ड के राज्य में जा पहुँचा। इधर गण्ड ने भी मुक़ाबले के लिए कोई डेढ़ लाख फ़ौज इकट्ठा कर रक्खी थी। इतनी बड़ी सेना को देखकर पहले तो महमूद सहम गया; पर जब दूसरे दिन सुना कि गण्ड अपने कुछ सेवकों के साथ रात को ला पता हो गया तब उसके जी में जी आया। उसने राज्य लूट लेने की आज्ञा दे दी। फिर क्या था, वह समृद्धशाली राज्य बात की बात में उजड़ गया। इस तरह महमूद विजय का डंका बजाते हुए ग़ज़नी को लौट गया। पर यह समझ में नहीं आता कि जो गण्ड क़नौजराज को दण्ड देने के लिए इतना उत्सुक था और जिसने युद्ध की इतनी तैयारी की थी वह महमूद का मुक़ाबला किये बिना ही यकायक क्यों भाग गया। पूर्वोक्त वृत्तान्त मुसलमानों के लिखे हुए इतिहासों के आधार पर लिखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है। इसलिए नहीं कह सकते कि वह कहाँ तक सत्य है। कहते हैं कि १०२३ ई० में महमूद ने चन्देलराज्य पर फिर आक्रमण किया था। इस बार गण्ड ने महमूद की अधीनता स्वीकार की और बहुत धन तथा तीन सौ हाथी देकर उससे पीछा छुड़ाया।

गण्ड के बाद उसके उत्तराधिकारी विद्याधर, विजयपाल और देववर्म्मन् ने १०२५ ई० से लेकर १०६० ई० तक राज्य किया। इनके समय में क्या क्या घटनायें हुईं, इसका कुछ भी पता नहीं लगता। एक शिलालेख से केवल यह मालूम होता है कि विद्याधर और क़नौज के तत्कालीन नरेश त्रिलोचनपाल में कुछ दिनों तक युद्ध होता रहा था।

देववर्म्मन् के कोई सन्तान न थी। इसलिए उसके बाद उसका भाई कीर्त्तिवर्म्मन् गद्दी पर बैठा। उसने १०६० ई० से लेकर ११०० ई० तक राज्य किया। कीर्त्तिवर्म्मन् अपने वंश में बड़ा प्रसिद्ध राजा हुआ। गद्दी पर बैठतेही चेदिराज कर्णदेव के साथ उसका युद्ध छिड़ गया। पहले तो कर्णदेव ने कीर्त्तिवर्म्मन् को परास्त करके सिंहासनच्युत कर दिया और जेजाभुक्ति को अपने राज्य में मिला लिया; पर अन्तमें कीर्त्तिवर्म्मन् ही की जीत हुई और कर्णदेव ऐसा परास्त हुआ कि फिर न सिर उठा सका। यह घटना १०६५ ई० की है। इसका ज़िक्र कृष्णमिश्र-रचित प्रबोध-चन्द्रोदय नाम के प्रसिद्ध नाटक की प्रस्तावना में भी है। कहते हैं कि जब कीर्त्तिवर्म्मन् ने कर्णदेव को परास्त करके लौटा तब यह नाटक उसके ब्राह्मण सेनापति गोपाल के आज्ञानुसार उसके दरबार में खेला गया था।

कीर्त्तिवर्म्मन् के उत्तराधिकारी लक्ष्मणवर्म्मन्, हरिवर्म्मन् और पृथ्वावर्म्मन् के राजत्वकाल की घटनाओं का भी कुछ पता नहीं लगता। इन लोगों ने ११०० ई० से लेकर ११२८ ई० तक राज्य किया।

सन् ११२८ ई० में मदनवर्म्मन् जेजाभुक्ति की राज-गद्दी पर बैठा। उसने ११६५ ई० तक अर्थात् पूरे सैंतीस वर्ष राज्य किया। यह बड़ा वीर था। चन्द के काव्य और कई शिला-लेखों से मालूम होता है कि इसके समय में चन्देलराज्य की सीमा बहुत दूर तक बढ़ गई थी। इसने गुजरात, चेदी, मालवा, काशी आदि कई राज्यों के नरेशों को सम्मुख-युद्ध में परास्त कर अपने अधीन बना लिया था।

मदनवर्म्मन् का पौत्र परमार्दि उसका उत्तराधिकारी हुआ। वह ११६५ ई० में गद्दी पर बैठा। साधारण लोग उसे परमाल कहते हैं। चन्द के काव्य और आल्हा में वह इसी नाम से विख्यात है।

परमाल महा कायर था। पर इसमें सन्देह नहीं कि उसके सेनापति आल्हा और ऊदल बड़े वीर थे। इलाहाबाद के ज़िले में यमुना के दक्षिणी किनारे पर चिल्ला नामक एक गाँव है। वहाँ आठवीं या नवीं शताब्दी का बना हुआ एक बहुत पुराना किन्तु ख़ूब मज़बूत मकान है। गाँववालों का कथन है कि बनाफर-वंशावतंस आल्हा और ऊदल इसी घर में रहते थे। मालूम नहीं यह बात कहाँ तक सत्य है।

पृथ्वीराजरासो के महोबाखण्ड में लिखा है कि संवत् १२३९ (सन् ११८३) में पृथ्वीराज और परमाल के बीच में बड़ा विकट युद्ध हुआ। यह युद्ध कई महीने तक होता रहा। अन्त में पहूज नदी के किनारे सिरसागढ़ के मैदान में परमाल की हार हुई। परमाल की सेना के भागने पर चौहान-सेना ने पीछा किया। महोबा में फिर एक क्षुद्र युद्ध हुआ। पर चन्देलों के पैर उखड़ गये। मैदान चौहानों के हाथ रहा। कुछ दिनों तक पृथ्वीराज महोबा पर दख़ल जमाये पड़ा रहा। अन्त में परमाल के पितामह मदनवर्म्मन् के बसाये हुए मदनपुर (ज़िला झाँसी) में अपने विजय का वृत्तान्त चिरस्थायी रखने के लिए कुछ शिलालेख लिखवाकर वह देहली को चल दिया।

इसके बाद बीस वर्ष तक की किसी घटना का हाल नहीं मालूम होता। सन् १२०३ ई० में क़ुतुबुद्दीन ऐबक ने चन्देल-राज्य पर आक्रमण किया। परमाल ने पहले तो मुक़ाबला किया, पर जब जीतने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की आशा न रही तब अधीनता स्वीकार कर ली। क़ुतुबुद्दीन ने कालिंजर पर दख़ल जमा लिया और हज़ब्बरुद्दीन हसन अनील को कालिंजर का हाकिम बनाकर बदायूँ की ओर लौट गया। इसके कुछ दिनों बाद परमाल की मृत्यु हो गई।

सन् १२०३ ई० में महोबा और कालिंजर मुसलमानों के हाथ में आने तथा परमाल के मरने के साथ ही चन्देलवंश के शक्तिशाली राज्य का इतिहास समाप्त होता है। इसके बाद इस वंश में जो नरेश हुए वे केवल नाम मात्र के राजा थे।

हिन्दी की वर्त्तमान दशा।

१—अहो मातृभाषे! दशा देख तेरी
न होती निराशा कभी दूर मेरी।
बड़ा कष्ट है! तू अभी दीन ही है;
सभी भाँति से हो रही हीन ही है॥

२—बने राष्ट्र-भाषा तुही योग्य ऐसी;
नहीं जानता कौन तू श्रेष्ठ जैसी?
निराधार तो भी अभी तू बनी है;
पड़ी पा रही हाय! पीड़ा घनी है॥

३—गुण श्रेष्ठ तेरे सभी जानते हैं;
न तो भी तुझे लोग सम्मानते हैं।
गुणों को न जो मानते जान के भी,
कहे जायँ क्या सभ्य सज्ञान वे भी?

४—समुत्थान की मूल है जो हमारी,
वही तू जहाँ हो रही क्षीण भारी।
वहाँ ज्ञान-विस्तार की है कथा क्या?
कभी दूर होगी हमारी व्यथा क्या?

५—रहेगी इसी भाँति तू रङ्क जौ लों,
न होगी कभी बुद्धि की वृद्धि तौ लों।
दशा बीज की शोचनीया जहाँ है,
फलों की भला कौन आशा वहाँ है?

६—न दे जो हमें तू ज़रा भी सहारा,
न हो तो हमारा कभी भी गुज़ारा।
सभी काम होते हमारे तुझी से;
जनाते मनोभाव सारे तुझी से॥

७—सभी भाँति है तू हमें मोददायी;
न तेरे बिना है हमारी भलाई।
महा पूजनीया सदा तू हमारी;
अहो कष्ट! तो भी गई तू बिसारी॥

८—सभी यातना जो हमारी हरेगी;
भला सर्वदा जो हमारा करेगी।
वही तू गई है हमी से बिसारी;
अहो! बुद्धि मारी गई है हमारी॥

९—न सत्कार तेरा कहीं कीर्तिकारी;
दशा हाय! जाती न तेरी निहारी।
न तेरा ज़रा भी हमें ध्यान आता;
भला क्या करेगा हमारा विधाता!

१०—जहाँ पूज्य का है तिरस्कार होता,
वहाँ बन्द कल्याण का द्वार होता।
जहाँ आत्म-कर्तव्य पाला न जाता,
वहाँ क्या कभी सौख्य है पास आता?

११—बना रिक्त साहित्य-भाण्डार तेरा;
लुटा सा पड़ा पुस्तकागार तेरा।
दशा देख तेरी सभी विज्ञ रोते;
नहीं चार छै ग्रन्थ साहित्य होते॥

१२—कहीं तो उपन्यास हैं नाशकारी;
कहीं नायिका-भेद की धूम भारी।
किये हैं कहीं कोक बे-रोक डेरा;
किसी काम का है न साहित्य तेरा!

१३—नहीं श्रेष्ठ साहित्य होता जहाँ का,
न उत्कर्ष होता कभी है वहाँ का।
सभी जातियों की भलाई बुराई,
गई नित्य साहित्य ही से लगाई॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

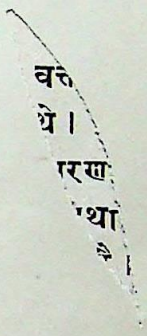

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिस्टर जैन वैद्य ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४—पड़े सभ्य सम्पूर्ण सोते जहाँ हैं,
ज़बानी जमा-ख़र्च होते जहाँ है।
बता, कौन तेरा वहाँ दुःख खोवे—
कहाँ से तुझे प्राप्त साहित्य होवे?

१५—बने जो यहाँ लोग साहित्य-सेवी,
न तेरा ज़रा वे करें मान देवी!
धन-प्राप्ति के ध्यान में मग्न कोई;
वृथावाद में हाय! हैं लग्न कोई॥

१६—न बोले बिना काम होता हमारा;
सु-भाषा बिना बोलना व्यर्थ सारा।
न होगो अहो! पुष्ट जौ लों स्वभाषा,
हमारी फलीभूत होगी न आशा॥

मैथिलीशरण गुप्त।

मिस्टर जैन वैद्य।

जयपुर के प्रसिद्ध विद्यारसिक और हिन्दीहितैषी श्रीयुत जैन वैद्यजी अब इस जगत् में नहीं हैं। गत १४ अप्रैल को उन्होंने इस असार संसार को त्याग दिया। उनकी अकाल मृत्यु से हम जैसे दुखी हुए हैं उसे लिख नहीं सकते। मरने के समय उनकी अवस्था सिर्फ़ अट्ठाईस उनतीस वर्ष की थी।

जैन वैद्यजी का जन्म १८८० ई० में जयपुर नगर में हुआ। वे दिगम्बर सम्प्रदाय के जैन थे। उनके वृद्ध पिता जयपुर राज्य के तोशेख़ाने के अध्यक्ष हैं। जैन वैद्यजी का असली नाम लाला जवाहरलाल था। परन्तु वे अपने को जैन वैद्य नामही से प्रसिद्ध करते थे।

जैन वैद्यजी ने स्कूल में केवल यंट्रंस क्लास तक शिक्षा पाई थी। परन्तु स्कूल छोड़ने के बाद उन्होंने घर पर ग्रंथावलोकन के द्वारा अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी। साथ ही साथ उर्दू, बँगला, मराठी, गुजराती, और मागधी का भी उन्होंने थोड़ा बहुत अभ्यास कर लिया था। मासिक पुस्तक और समाचारपत्र पढ़ने का शौक़ उनको शुरूही से था। इसलिए मातृभाषा का प्रेम और विद्यारसिकता का अङ्कुर बाल्यावस्था ही से उनके हृदय में अङ्कुरित होगया था। वह धीरे धीरे बढ़ताही गया।

वे जैनधर्म की उन्नति और जैनियों का उपकार करने के लिए सदा व्यस्त रहते थे। वे जैनगज़ट आदि पत्रों में समाज-हितकारी लेख अकसर लिखा करते थे। उन्होंने जैनियों के उपकार के लिए उचित वक्ता, जैन और जैनप्रदीप नाम के पत्र भी निकाले थे। पर वे सर्वसाधारण की सहायता के अभाव के कारण चल न सके। उन्होंने जयपुर में एक जैन-अनाथालय भी खोला था, जो अब हिसार में उठ गया है। इसके सिवा उन्होंने एक जैनकन्यापाठशाला भी स्थापित की थी। कितनेही जैन-विद्यार्थियों को भोजन और वस्त्र देकर वे पढ़वाते थे। जैन मन्दिरों में जाकर जैन धर्म पर व्याख्यान भी देते थे और जैन कानफरेंस आदि में भी शरीक होते थे।

एक देशी रियासत में रह कर भी जैन वैद्य जी देश-हित-सम्बन्धी कामों में बराबर शरीक होते थे। कांग्रेस के वे पक्षपाती थे। १९०४ ई० में जब कांग्रेस बम्बई में हुई थी तब उन्होंने उसके सभापति सर हेनरी काटन को कलाबत्तू की एक माला भेजी थी। उसे सर फ़ीरोज़शाह मेहता ने अपने हाथ से उन्हें पहनाया था। बनारस और कलकत्ते के कांग्रेसों की स्वागतकारिणी सभाओं के वे सभ्य थे। सुनते हैं जयपुर में उन्होंने स्वदेशी वस्तुओं की एक दूकान भी खोली थी।

श्रीयुत जैन वैद्य जी कितनी ही धार्मिक और साहित्य-सम्बन्धी सभाओं के सभासद् थे। इनमें से थियोसोफ़िकल सोसाइटी, बम्बई टेम्परेंस कौंसिल, रायल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल एशियाटिक सोसाइटी और काशी की नागराक्षर-प्रचारिणी सभा मुख्य हैं। अन्यों की अपेक्षा काशी की सभा की वे विशेष रूप से सहायता करते रहते थे। सभा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए उन्होंने सैकड़ों पुस्तकें खोज कर उनकी नोटिसें लिखदी थीं। उसके डेपूटेशन को जयपुर बुलाकर बहुत कुछ आर्थिक सहायता दी और दिलवाई थी। सभा के भवन में सर एंटोनी मेकडानल का जो तैलचित्र टँगा है वह जैन वैद्य महाशय ही का दिया हुआ है। वे सभा समाजों ही की नहीं, किन्तु दरिद्र व्यक्तियों की भी अकसर आर्थिक सहायता किया करते थे।

जैन वैद्यजी में सबसे बड़ा गुण यह था कि वे हिन्दी के असाधारण प्रेमी थे। हिन्दी भाषा और देवनागरी अक्षरों के प्रचार के लिए उन्होंने बहुत प्रयत्न किया। इसके लिए उन्होंने बहुत कुछ धन भी ख़र्च किया। वे ख़ुद भी हिन्दी लिखते थे और औरों से लिखाते थे। अपनी छात्रावस्था में उन्होंने "कमलमोहिनी भँवरसिंह नाटक", "व्याख्यानप्रबोधक" और "ज्ञानवर्णमाला" नाम की तीन पुस्तकें लिखी थीं। इसके सिवा उन्होंने अन्य लेखकों के लिखे हुए दो ग्रंथ भी प्रकाशित किये। कोई चार साल तक समालोचक नाम का एक अच्छा मासिकपत्र भी वे निकालते रहे थे। सच पूछिए तो हिन्दी-संसार में उनकी कीर्त्ति को इसी पत्र ने फैलाया। इस पत्र को चार साल तक चलाने में बहुत घाटा उठाना पड़ा। अफ़सोस, हिन्दी बोलनेवालों ने जैसी चाहिए वैसी क़दर उसकी न की। समय समय पर जैन वैद्यजी ऐसी पुस्तिकायें और कवितायें भी छपाकर बाँटते थे जिनसे हिन्दी का प्रचार बढ़े। इस तरह की कविताओं में से "हिन्दी क्या है" और "नागरी" आदि कवितायें मुख्य हैं। जयपुर में नागरी का प्रचार करने के लिए उन्होंने कुछ दिन हुए अपने मित्रों के साथ एक "नागरीभवन" खोला था। यह भवन जैन वैद्य जी की यादगार का काम दे रहा है। आशा है कि जैन वैद्य के मित्रगण उसे जीवित रखकर अपने स्वर्गीय बन्धु की कीर्त्ति चिरकाल तक स्थिर रक्खेंगे।

इन बातों से पाठक समझ सकते हैं कि श्रीयुत जैन वैद्यजी कैसे विद्यानुरागी, विद्याप्रचारक, हिन्दी-प्रेमी, धार्मिक, उदार, परोपकारी और स्वदेशभक्त थे। उनके समान नम्र, अतिथि-सत्कार-परायण और मित्रवत्सल मनुष्य बहुत कम मिलेंगे।

लन्दन का अजायबघर।

ब्रिटिश म्यूज़ियम (British Museum) अर्थात् विलायती अजायबघर बाहर से किसी पुराने, जन-हीन और ऊजड़ महल की याद दिलाता है। कारण यह है कि इसका बाहरी भाग बिलकुल काला है। काले होने का कारण धुआँ है जो नगर की चिमनियों से निकलकर श्वेत से श्वेत वस्तु को भी बहुत जल्द अपने रंग की बना लेता है। इसी धुएँ से यहाँ कुहरा भी कभी कभी ख़ूब पड़ता है जिसकी प्रशंसा हम किसी लेख में कर चुके हैं। अजायबघर के बाहरी फाटक पर पुलिस का दिन रात पहरा रहता है। इस फाटक के भीतर दोनों ओर की धरती हरी घास की सुन्दर चादरों से सदा ढकी रहती है। कुछ दूर चलकर बड़ा ऊँचा द्वार दृष्टि पड़ता है। इसके दोनों ओर दो लंबे चौड़े और ऊँचे बरामदे हैं। ये पत्थर के हैं। यह दर्वाज़ा कलकत्ते के कनवोकेशन हाल का स्मरण दिलाता है। सीढ़ियों पर चढ़ते ही सामने पानी का नल दिखाई देता है। इसके पास एक सुन्दर कटोरा पानी पीने के लिए रक्खा रहता है। यह सब ठीक है। पर जब नीचे नज़र करो तब फ़र्श कबूतरों की कृपा से बड़ा ही मैला दिखाई देता है। पूछने से मालूम हुआ कि कबूतर बस्ती वालों के हैं और यहाँ बसेरा लेते हैं। कई बार उनके रोकने का प्रबन्ध किया गया पर कुछ फल न हुआ। इसलिए कबूतरों पर म्यूज़ियम वालों का वश नहीं। भीतर जाते ही फिर पुलिस वाले दिखाई देते हैं। रास्ते के दोनों ओर दो आदमी खड़े रहते हैं, जो दर्शकों के छाते छड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

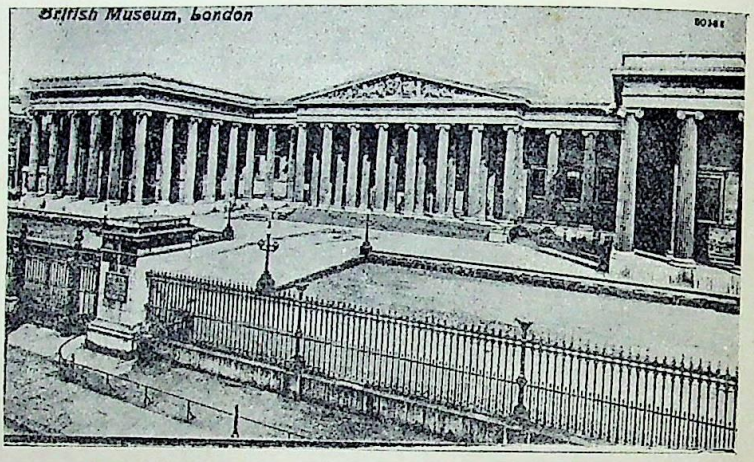

लन्दन का अजायबघर ।

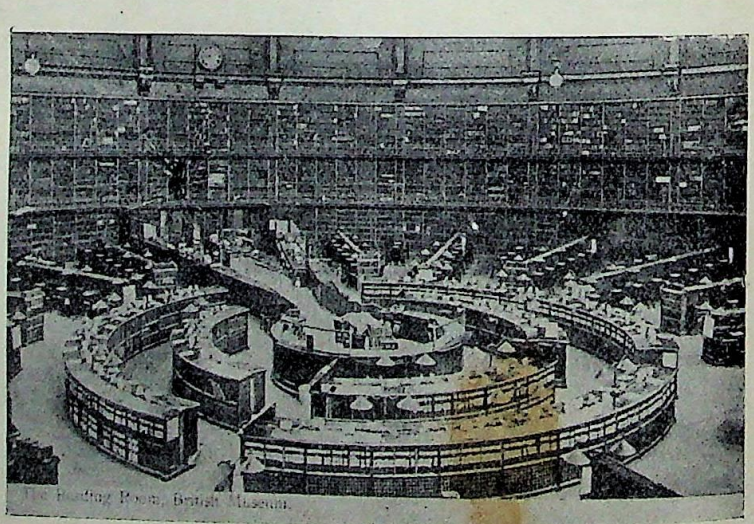

अजायबघर में पढ़ने का एक कमरा ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की रक्षा करते हैं। क्योंकि छाता छड़ी लेकर भीतर जाने की आज्ञा नहीं है। लौटने के बाद जो चीज़ जिसकी होती है वह उसे दे दी जाती है। हर एक चीज़ के याद रखने का एक सुगम उपाय है। लोहे की छोटी गोल चकती रहती है जिस पर सफ़ेद अक्षर लिखे हैं। एक चकती छाते या छड़ी के मालिक को दे दी जाती है और दूसरी, जिसमें छोटा सा धागा रहता है, उस वस्तु से बाँध दी जाती है। इस युक्ति में न समय लगता है न कोई कष्ट होता है। कोई कोई लोग इन दरबानों को ख़ुशी से कुछ इनाम दे देते हैं।

म्यूज़ियम की उत्पत्ति।

यह अद्भुत विद्या-भाण्डार यहाँ के विद्यारसिक और परोपकारी पुरुषों के उत्साह और उद्योग का फल है। संसार में यह एक अच्छी वस्तु है। पंद्रह जनवरी सन् १७५९ ई० को इसकी नींव डाली गई थी। इसके प्रधान जन्मदाता दो अँगरेज़ थे, जिन्हें संसार की प्राचीन वस्तुओं के संग्रह करने का बड़ा शौक था। उनके पास कई सहस्र पुस्तकें भी थीं। ये सब उन्होंने म्यूज़ियम को दे दीं। इनके नाम थे—सर हैन्स स्लोन (Sir Hans Slone) और सर राबर्ट काटन (Sir Robert Cotton)। सर स्लोन डाक्टर थे और सर काटन एक रईस। आप वही काटन हैं जिन्होंने आक्सफर्ड का पुस्तकालय बनाने में बाडली साहब को सहायता दी थी। अर्ल आव् आक्सफ़र्ड (Earl of Oxford) ने इस म्यूज़ियम को बहुत सी हस्तलिखित पुस्तकें दान की थीं, जिनका मूल्य डेढ़ लाख रुपये था। तबसे हस्त-लिखित पुस्तकों का और भी संग्रह हो गया है। सबसे पहल पुस्तकालय और अजायबघर के लिए जो मकान लिया गया था उसकी क़ीमत १५ लाख रुपये थी। अब यह इमारत और भी बढ़ती जाती है। इसके बढ़ाने के लिए ६० लाख रुपये ख़र्च किये जा रहे हैं जो तैयार होने पर दूनी शानदार हो जायगी। परन्तु शोक इस बात का है कि इसके सम्बन्ध में कोई पार्क या बाग़ीचा नहीं है। इसका कारण यह है कि अजायबघर शहर के भीतर है जहाँ जगह मिलना बहुत कठिन है।

संग्रह।

म्यूज़ियम की कुल चीज़ों का वर्णन करने के लिए यहाँ स्थान नहीं है। उस पर कितनीही पुस्तकें लिखी जा सकती हैं। संसार की पुराने समय की कुल चीज़ें यहाँ मौजूद हैं जिन्हें देखने के लिए महीनों की आवश्यकता है। भारत, यूनान, रोम, मिसर, चीन, जापान और अन्य आधुनिक देशों की विचित्र विचित्र चीज़ें यहाँ देखने में आती हैं। जिन बातों को इतिहास में पढ़ा था वे यहाँ प्रत्यक्ष दिखाई दीं। पृथ्वी के प्रायः सभी जंगली जातियों के नमूने, वस्त्र, आभूषण, सिक्के इत्यादि यहाँ आसानी से देखे जा सकते हैं। विलायत के प्राचीन और नवीन शासन-कर्त्ताओं और उनके प्रधान मंत्रियों के हस्तलिखित पत्र बड़ी सावधानी से काँच की सन्दूक़ों में रक्खे हुए हैं। वेद, बाइबिल, क़ुरान, पुराण, ज़न्दावस्ता इत्यादि धार्मिक पुस्तकें राजा-रंक सबके देखने के लिए मौजूद हैं। अमरावती और भिलसा की तोपें म्यूज़ियम की गैलेरी (ऊपरी भाग) के मुख्य दर्वाज़े पर लगी हुई हैं। ये स्टेट् सेक्रेटरी के द्वारा प्राप्त हुई थीं।

पढ़ने के कमरे।

(Reading Rooms)

इन कमरों में हर एक को जाने की आज्ञा नहीं है। इनमें बैठकर पढ़ने लिखने के लिए लाइब्रेरियन अर्थात् पुस्तकाध्यक्ष की विशेष आज्ञा लेनी पड़ती है। एक अर्ज़ी देनी पड़ती है जिस पर यहाँ के किसी प्रतिष्ठित पुरुष की सही करानी होती है। रीडिंग रूम दो प्रकार के हैं। एक में केवल अँगरेज़ी की पुस्तकें रहती हैं और दूसरे में पूर्वी देशों की छपी तथा लिखी हुई पुस्तकों का संग्रह रहता है। दोनों के लिए अलग अलग अर्ज़ी दी जाती है। आज्ञा १० दिन से लेकर ३ और ६ महीने तक के लिए मिलती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसके बाद फिर लेनी पड़ती है। बाहरी आदमी इन कमरों में नहीं जा सकते। बाहर चपरासियों के पहरे रहते हैं जो बिना टिकट देखे किसी को भीतर नहीं घुसने देते। पढ़ने लिखने का समय १० बजे से संध्या के सात बजे तक है। रीडिंग रूम एक बड़ा गोलाकार कमरा है। इसके आस पास अलमारियों में पुस्तकें रक्खी हैं। ये अलमारियाँ कई हिस्सों में बँटी हैं। पुस्तकें लाने और रखने के लिए अलग अलग आदमी नौकर हैं। कमरे के आस पास विलायत के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवि, वैज्ञानिक और तत्त्ववेत्ताओं के नाम मोटे और काले अक्षरों में लिखे हुए हैं। सामने बीच में एक बड़ी घड़ी लगी है। अँधेरा होने पर बिजली की रोशनी होती है। बीच में गोलाकार टेबिल और कुरसियाँ कर्म्मचारियों के लिए लगी हुई हैं, जहाँ से वे पुस्तकें लेते देते हैं। चारों ओर पुस्तकों के बड़े बड़े सूचीपत्र, कोष और एनसाइकलोपिडिया अर्थात् बृहत्कोश (Encyclopædia) रक्खी हैं। पढ़ने वाले को जिस पुस्तक की आवश्यकता होती है उसे वह इन सूचीपत्रों में देखता है। फिर उस पुस्तक का नाम, नम्बर और अपना नाम एक छपे परचे पर लिखकर सामने वाले कर्मचारियों की टोकनी में डालकर अपने स्थान पर आ बैठता है। इस परचे में अपने स्थान का भी नम्बर लिखना पड़ता है। कर्मचारी शीघ्र ही पुस्तकें लाकर आगे रख देता है। पढ़ने लिखने वाले को एक कुरसी, क़लम, पेंसिल, दवात, स्याही और सोख़्ता मिलता है। पुस्तक रखने के लिए भी अच्छा सुभीता है। सामने बिजली का चिराग़ हर एक के लिए अलग अलग लगा रहता है। नीचे का फ़र्श बड़ा मुलायम है जिस पर चलने फिरने का शब्द तक नहीं होता। इस कमरे में कम से कम सवा चार सौ पढ़ने वालों के लिए स्थान है। हर साल कोई ढाई तीन लाख पढ़ने वाले यहाँ आते हैं। पुस्तकों की संख्या ४० लाख है। हस्तलिखित पुस्तकें ६० हज़ार से ऊपर हैं। यदि इन पुस्तकों को अलमारियाँ एक क़तार में रक्खी जायँ तो कुल ४४ मील की लम्बाई में पूरी होंगी। पुस्तकों की संख्या बढ़ती पर है। क्योंकि विलायत तथा उसके मातहत देशों से यहाँ हर एक रजिस्टरी की हुई पुस्तक की एक प्रति अवश्य आती है। इससे लोगों का अनुमान है कि कुछ काल में पुस्तकालय को अजायबघर से पृथक् कर देना पड़ेगा। समाचार-पत्रादि अलग कमरों में रक्खे जाते हैं। इसी रीडिंग रूम में कवि ग्रे और उसके साथी लिखा पढ़ा करते थे। उस समय यह एक छोटी सी तंग कोठरी थी, जहाँ एक लम्बी पुरानी टेबिल और कुछ कुर्सियाँ पड़ी रहती थीं। फ़्राँस के ग़दर के भागे हुए फ़्रासीसी भी यहीं आकर पढ़ते थे। धीरे धीरे यह छोटी सी कोठरी आज एक महान् वाचन-मन्दिर बन गई है, जहाँ हर एक देश, हर एक रंग और हर एक धर्म के नर-नारी एक दूसरे के निकट बैठकर विद्या का आनन्द लिया करते हैं। चीनी, जापानी, हिन्दुस्तानी, फ़रासीसी, हबशी, जर्मन, इटालियन, यहूदी, तुर्क इत्यादि यहाँ आसानी से देखे जा सकते हैं। स्त्री-पुरुष के बैठने के लिए कोई अलग प्रबन्ध नहीं है। सम्पादक, संवाददाता, उपन्यास-लेखक, गणितज्ञ, खगोलवेत्ता, इतिहास-लेखक, दर्शन-शास्त्री इत्यादि सभी लोग इस कमरे में लिखते पढ़ते दिखाई देते हैं। तरुण स्त्री-पुरुष तो आते ही हैं। पर वृद्ध स्त्री-पुरुषों की संख्या भी कम नहीं। इस विद्वज्जन-समूह को देखने से बड़ा हर्ष होता है। अनायास इन लोगों से भेंट हो जाती है। एक जीवन क्या अनेक जीवन की पढ़ने की सामग्री इस स्थान में मौजूद है। यदि कोई अपना जीवन सार्थक करना चाहे तो यहाँ अवश्य आवे। हर एक प्रकार का सामान यहाँ आसानी से प्राप्त हो सकता है। इस स्थान की बदौलत बड़े बड़े ग्रन्थकार आज सारी पृथ्वी पर फैले हैं। इस स्थान से बढ़कर सुख कहाँ मिल सकता है? इसे मुसलमानों का मक्का, हिन्दुओं की काशी, और क़स्तानों का जैरुसलम कहें तो अन्याय न होगा। इस तीर्थ-क्षेत्र में सम्पूर्ण संसार के यात्रियों का मेल होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य सुबिधायें।

पढ़ने लिखने वालों तथा दर्शकों को और भी अनेक आराम हैं। जाड़े में सारे कमरे भाप द्वारा गरम किये जाते हैं। गरमी में ठंडी हवा आने के लिए एक वायु-यंत्र लगा है जिसके द्वारा शीतल शुद्ध वायु सम्पूर्ण स्थान में पहुँचा करती है। दर्शकों की थकावट मिटाने के लिए जगह जगह बेंचें और कुर्सियाँ पड़ी हैं। हाथ, मुँह धोने और पेशाब या पाखाने का अलग अलग कई जगह प्रबन्ध है। एक ओर भोजन-गृह है, जहाँ हर कोई दाम देने पर खा पी सकता है। निदान भीतर ही सब तरह के आराम हैं। बाहर जाने की ज़रूरत नहीं। रीडिंग-रूम के बारे में एक बात कहनी बाक़ी रह गई। वह यह है कि यहाँ इतना पहरा चौकी रहने पर भी कभी कभी चोरियाँ हो जाती हैं। चोरी खास टोप, ओवरकोट, छाता, छड़ी आदि की सुनी गई है। ऊपर कह चुके हैं कि इन सब चीज़ों का रीडर के पास रखने का बड़ा सुभीता है। पर फिर भी कोई कोई महाशय अपनी चीज़ों को साथ ही लेकर बैठते हैं। इनके यहाँ वहाँ हिलने पर ये चीज़ें अदृश्य हो जाती हैं। फिर कोई पता नहीं लगता। एक समय एक वृद्ध साहब हमारे निकट तुर्की टोपी लगाये पढ़ रहे थे। टोप टेबिल के नीचे रख दिया। बीच में कई दफ़े यहाँ वहाँ चले फिरे। किताबों को चलने के पूर्व टोप पहिनने को तैयार हुए। पर वहाँ कुछ न पाया। हमने और अन्य निकटवर्ती लोगों ने बहुत कुछ खोज की पर सब व्यर्थ हुआ। साहब बहादुर कान से ऊँचा सुनते थे; इसलिए बोलने वालों को ज़ोर से चिल्लाना पड़ता था। बहरा होना दूसरों को भी बहरा समझता है। अतएव साहब बड़े ज़ोर से जवाब देते थे। बड़ी हँसी हुई। कमरे में खलबल मच गई। पर हाथ कुछ न लगा। अन्त में तुर्की ही टोपी लगाकर साहब को घर जाना पड़ा। इसी प्रकार बात की बात में और भी कई छोटे और ओवरकोट ग़ायब हो गये। यह ऐसे स्थान के लिए कलंक की बात है। लोगों का कहना है कि शायद वहीं के छोटे कर्मचारी ऐसा करते हों। पर बिना सुबूत के कोई किसी पर दोष नहीं लगा सकता।

प्यारेलाल मिश्र।
(लन्दन)

भयङ्कर भूत-लीला।

पढ़े लिखे एतद्देशीय लोगों का भूत-प्रेतों के अस्तित्व पर बहुत कम विश्वास है। अंग्रेज़ों की तो कुछ पूछिए ही नहीं। वे तो इस तरह की बातों को बिलकुल ही मिथ्या समझते हैं। परन्तु एक असल अंग्रेज़ बहादुर को—कम असल को भी नहीं—एक भूत ने बेतरह छकाया—उनका कलेजा दहला दिया। भूत ने उन पर एक प्रकार दया ही की, नहीं तो साहब बहादुर इँगलैंड लौट कर अपनी कहानी कहने को जीते ही न रहते। आप हिन्दुस्तान की एक पल्टन में कर्नल थे। कोई ऐसे वैसे डरपोक आदमी भी न थे। आप पर बीती हुई बातें आपके एक मित्र ने आपकी तरफ़ से अंग्रेज़ी की मासिक पुस्तक आकल्ट रेव्यू में प्रकाशित की हैं। कर्नल साहब ने उन बातों की सचाई की सर्टिफ़िकट दी है। अब आपकी कहानी आप ही से सुनिए:—

जिस अजीब घटना का मैं ज़िक्र करने जाता हूं उसे हुए कोई १६ वर्ष हुए। उस समय मैं हिन्दुस्तान में था। मैं अपना नाम नहीं देना चाहता। क्योंकि हिन्दुस्तान में मुझे बहुत आदमी जानते हैं। नाम लेने से वे मुझे झट पहचान लेंगे। मैं एक दफ़े शिकार के लिए अपनी छावनी से दूर एक गाँव को गया। साथ में सिर्फ़ दो आदमी थे—मेरा बेहरा और मेरा ख़ानसामा। प्रायः दिन भर मैं घोड़े की पीठ पर रहा। शाम को मैं एक गाँव के पास आया। मैं ख़ाक में डूबा हुआ था। भूका भी बहुत था। थका भी बहुत था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह गाँव रास्ते से ज़रा हट कर था और कपास के खेतों के बीच में बसा हुआ था।

एक कुदरती तालाब वहीं पर था। उसी के किनारे मैंने डेरा डाला। यह तालाब गाँव के पास ही था। तालाब के किनारे एक बहुत बड़ा छायादार बरगद का पेड़ था। उसी के नीचे मैंने रात काटने का विचार किया। जो कुछ सामग्री वहाँ मिल सकी उसी से मेरे "नेटिव" नौकरों ने मेरे लिए खाना बनाने की तैयारी की। वे लोग मेरे लिए खाना बनाने में लगे और मैं यह देखने के लिए कि पास पड़ोस में क्या है एक दौरा लगाने निकला। चलते ही मुझे एक फ़क़ीर देख पड़ा। ये लोग हिन्दुस्तान के सब हिस्सों में अधिकता से पाये जाते हैं। इसकी जटायें बढ़ी हुई थीं। कमर में एक मैला लँगोटा था। सारे बदन में ख़ाक लिपटी हुई थी। तालाब के दूसरे किनारे पर यह फ़क़ीर ध्यान में मग्न सा था। इस तरह के धार्म्मिक विक्षिप्तों का लोग बड़ा आदर करते हैं। उनसे डरते भी हैं। क्योंकि इन लोगों में अलौकिक शक्तियाँ होती हैं। ये अघटित घटनायें दिखलाने में बड़े पटु होते हैं। ये लोग अपने मनको यहाँ तक अपने क़ाबू में कर लेते हैं कि जब चाहते हैं समाधिस्थ हो जाते हैं। इस दशा में इनका शरीर तो जड़वत् पृथ्वी पर पड़ा रह जाता है, पर आत्मा इनका आकाश में यथेष्ट भ्रमण किया करता है। जब मैं इस बुड्ढे फ़क़ीर के पास हो कर निकला तब इसने अपना ध्यान भङ्ग करके मेरी तरफ़ नज़र उठाई। इसने मुझे सलाम किया और मुझ से यह प्रार्थना की कि तुम इस तालाब का पानी न तो पीना और न छूना। पानी को हाथ भी न लगाना, नहीं तो कहीं कोई आफ़त न तुम पर आ जाय।

मैंने समझा कि इसमें इसका कुछ स्वार्थ है। यह भी मैंने अपने मन में कहा कि यह फ़क़ीर शायद मुझे कोई ऐसा ही वैसा आदमी समझता है। यह मुझे भला कहाँ गवारा था। मैंने दपट कर कहा "चुप रहो"। मैंने उससे यह भी कह दिया कि इस तालाब का पानी न पीने से तुम क्या, कोई आदमी दुनिया भर में मुझे नहीं मना कर सकता।

मेरे नौकर फ़क़ीर की बातें सुन कर बेतरह डर गये। डरते और काँपते हुए मेरा बेहरा तालाब से पानी निकाल लाया। मैंने उससे ख़ूब नहाया; ख़ूब रगड़ रगड़ कर बदन धोया। इससे मेरे बदन की गरमी और थकावट बहुत कुछ दूर हो गई। मैं फिर तरोताज़ा हो गया। इसके बाद मैं तालाब की, और उस फ़क़ीर की बात बिलकुल ही भूल गया। मगर कुछ देर में मैंने देखा कि बहुत से देहाती, और मेरे दोनों नौकर भी, एक दूर के तालाब से पानी लाने दौड़े चले जा रहे हैं। तब मुझे फिर वे बातें याद आगईं। मैंने इस बात की तहक़ीक़ात की कि ये लोग इस पास के तालाब से पानी न लेकर उतनी दूर दूसरे तालाब से क्यों पानी लाने जाते हैं। इस पर मुझे मालूम हुआ कि एक आदमी ने अपनी स्त्री को मार डाला था और मारकर ख़ुद भी इस तालाब में डूबकर आत्महत्या कर ली थी। इस घटना के कारण लोगों को यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि जो कोई इस तालाब में स्नान करेगा या इसका पानी पियेगा वह या तो उस मनुष्य के प्रेतात्मा से मारा ही जायगा, या यदि बच जायगा तो उस पर कोई बहुत बड़ी विपत्ति आवेगी।

उस रात को दस बजे बाद मैंने अपना सब असबाब अपने नौकरों के साथ अगले पड़ाव पर भेज दिया। उनके साथ कुछ कुली भी गये। उनको भेज कर मैं अपने बिस्तरे पर लेट रहा और उसी बरगद के नीचे कम्मल ओढ़ कर तीन चार घंटे सोया।

दो बजे मैं उठा। बन्दूक़ मैंने हाथ में ली। घोड़े पर मैं सवार होगया। साथ में मैंने एक पथदर्शक ले लिया। मेरा एक नौकर भी मेरे साथ हुआ। खेतों से होकर मैं सीधाही रवाना हुआ। मैंने कहा क्या डर है, क्यों दूर की राह जाकर व्यर्थ फेर खाँय। चलो सीधे खेतों ही से निकल चलें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस वक़्त रात के ३ बजे होंगे। हवा ख़ूब ठँडी ठँडी चल रही थी। कुछ दूर तक हम लोग मज़े में गये और तेज़ी से गये। मैं घोड़े पर था। मेरे दोनों हमराही मेरे अग़ल बग़ल दौड़ रहे थे।

इस समय हम एक ऐसी जगह पहुँचे जिसके चारों तरफ़ कपास के खेत दूर दूर तक थे। मैंने अकस्मात् आगे देखा। मुझे जलती हुई आग का एक धुँधला सा छोटा गोला देख पड़ा। मैं उसी की तरफ़ ध्यान देखता रहा। देखते देखते मुझे ऐसा मालूम हुआ कि वह बड़े वेग से मेरीही तरफ़ आ रहा है। मुझे मालूम हुआ कि वह एक मशाल है और बराबर आगे को बढ़ रही है। इस पर मैंने अपने साथी, उन दोनों हिन्दुस्तानियों, से पूछा कि यह जंगमशील ज्वाला क्या चीज़ है? मेरे पूँछते ही वे लोग भय से बेतरह चिल्लाने और काँपने लगे। उनका दम फूलने लगा। वे चिल्ला उठे—"यह तो बिजली है"। यह दशा देख मेरे आश्चर्य्य की सीमा न रही। बिजली से उन लोगों का मतलब उसी तालाब वाले भूत से था। मैं और कुछ कहने भी न पाया था कि वे दोनों कापुरुष भयभीत होकर अपनी अपनी जान लेकर पीछे को भगे। मैं अकेला रह गया। इस कापुरुषता के लिए मैंने उनको बहुत कोसा। पर कोसने से क्या होता था। मैंने घोड़े के ऐंड़ मारी और जिस तरफ़ से वह ज्वाला उड़ती हुई आ रही थी उसी तरफ़ को मैं बढ़ा। अब मुझे साफ़ साफ़ देख पड़ने लगा कि वह मशाल एक हिन्दुस्तानी हरकारे के हाथ में है। इसलिए जहाँ तक मुझ में ज़ोर था मैंने हिन्दी में आवाज़ दी कि तू वहीं ठहर। मैंने इस बात का प्रण कर लिया था कि मैं अपने उन दोनों डरपोक साथियों के निर्मूल भय का कारण ज़रूर मालूम करूँगा। परन्तु उस मशालवाले ने मेरे चिल्लाने की कुछ भी परवा न की। वह पूर्ववत् बेतहाशा आगे को दौड़ता हुआ देख पड़ा। इस हुक्म उदूली पर—इस गुस्ताख़ी पर—मुझे बड़ा ग़ुस्सा आया। मैंने घोड़े की बग़ल में ज़ोर से ऐंड़ मारी और चाहा कि उस गुस्ताख़ मशालवाले को अपने दौड़ते हुए घोड़े से कुचल दूँ। पर अफ़सोस है, मेरा घोड़ा भी अकस्मात् बिगड़ उठा। उसने अपनी टापें वहीं ज़मीन के भीतर गाड़ सी दीं। वह फुफकारने लगा। पर एक क़दम भी आगे को न बढ़ा। जब मैंने उसे आगे बढ़ने के लिए बहुत तंग किया तब वह यहाँ तक बिगड़ उठा कि उसने मुझे क़रीब क़रीब ज़मीन पर पटक देना चाहा। घोड़े का प्रत्येक अङ्ग काँपने लगा। अब मेरे लिए उतर पड़ने के सिवा और कोई चारा न रहा। इससे मैं उतर पड़ा और पैदल ही आगे बढ़ा। ज्योंही मैंने घोड़े की रास छोड़ी त्योंही वह भयभीत होकर पीछे को उसी गाँव की तरफ़ भगा जिसे हम लोगों ने एक घंटा पहले छोड़ा था।

मामला ज़रा संगीन होता जाता था। न मेरे पास मेरा घोड़ा ही रहा और न वे दोनों आदमी ही रहे। वक़्त रात का। राह का पता ठिकाना नहीं। खेतों का बीच। मैंने समझा, इस अवस्था में आगे बढ़ना मुशकिल है। सो, मैंने अपनी रफ़ल को उठाकर कन्धे पर रक्खा और ज़ोर से आवाज़ दी—"बे हिले डुले, ख़ामोश, अपनी जगह पर खड़ा रह; नहीं मैं तुझ पर गोली छोड़ता हूँ"! मुशकिल से मेरे मुँह से ये शब्द निकले होंगे कि मुझे बेतरह ख़ौफ मालूम हुआ। इसलिए कि जो आदमी अभी तक मेरी तरफ़ वेग से दौड़ता हुआ आता मालूम होता था, और मुझ से कुछ ही गज़ के फ़ासले पर था, वह आदमी ही न था। वह आदमी की अस्थिमय खोपड़ी मात्र थी। आँखों की जगह उसमें सिर्फ़ आँखों के गड्ढे थे। एक हाथ भी था; पर उसे हाथ नहीं, हाथ की ठठरी कहना चाहिए। उसी से वह मशाल थामे था। उसके शेष अङ्ग धुँधले धुँधले धुवें से मालूम होते थे। उनकी हड्डियाँ भी न देख पड़ती थीं।

मैं वहीं पर ठहरा रहा। मेरी उँगली रफ़ल के घोड़े पर थी। वह प्रेत उस समय मुझ से सिर्फ़ १० या १५ फ़ीट पर होगा। अब क्या हुआ कि वह सहसा एक तरफ़ को मुड़ा और मुझ से कोई बीस फ़ीट पर, पलक मारते मारते, ज़मीन के भीतर घुस गया। वह उस समय मेरे बहुत निकट था। इससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं उसे अच्छी तरह देख सका। उसके ज़मीन में लेाप होतेही मैं उस जगह दौड़ गया। पर वहाँ मुझे उसका कुछ भी पता न मिला। मैंने उस जगह ज़ोर से लात मारी। पर वहाँ क्या था? थी सिर्फ़ मशाल की लाल लाल जलती हुई आग का कुछ अंश! मैंने उसे हाथ से उठा लिया। पर वह इतना गरम था कि फौरनही मुझे फेंक देना पड़ा। यह मैंने इसलिए किया, जिसमें मेरा संशय दूर हो जाय और इस बात का मुझे विश्वास हो जाय कि सच-मुचही वह मशाल थी कि नहीं। ख़ैर मेरा संशय दूर हो गया और मेरा हाथ जलने से बचा। इस पर मुझे बड़ा अचम्भा हुआ और मैं पीछे लौटा। मैं कुछही दूर लौटा हूँगा कि सौभाग्य से मुझे अपना घोड़ा चरता हुआ मिल गया। मैं प्रसन्न होकर उस पर सवार हुआ और बहुत पुकारने पर मुझे अपने उन दोनों भगेड़ुओं का पता लगा। ख़ैर किसी तरह मैं सूर्य निकलते निकलते, राम राम करके, अपने पड़ाव पर पहुँचा।

इस घटना की ख़बर मेरे पथदर्शक ने चारों ओर फैला दी। उसे सुनकर गाँव का नम्बरदार मेरे पास आया। उसने कहा—"साहब आपको बिजली ने दर्शन दे दिये। अब आप पर कोई न कोई आफ़त आने का बड़ा डर है"। उसने और मेरे नौकरों ने मुझसे बहुत कुछ कहा सुना, मेरे बहुत कुछ हाथ पैर जोड़े, कि मैं वहाँ आस पास के जंगल में शिकार न खेलूं। उन्होंने कहा,—"साहब, क्या आपको यंजिनियर साहब की बात भूल गई? उन्होंने जिस रात बिजली को देखा था उसके दूसरे ही दिन उनके तम्बू के भीतर घुस कर तेंदुये ने उनको मार डाला। साहब, आप शिकार को न जाइए। शिकार को जाने से कोई न कोई संकट आप पर ज़रूर आवेगा"। उन्होंने यह भी कहा कि एक हिन्दुस्तानी ने एक वर्ष पहले इसी तालाब का पानी पिया था। पर फल क्या हुआ? जिस मैदान में मेरी बिजली से भेंट हुई उसी में वह आदमी एक दिन मरा हुआ पाया गया। उसके सिर पर जल जाने का एक बड़ा घाव था। मैं उन लेागों के इस अन्ध-विश्वास पर बहुत हँसा और शिकार के लिए चल दिया।

एक पखवारा हो गया। मैं एक पहाड़ी गुफ़ा के पास आया। मैंने सुना कि गत रात को दो रीछ वहाँ देख पड़े थे। मैंने कुछ आदमियों को भेजा कि वे हल्ला करके रीछों को अपनी माँद से निकालें। वे उधर गये। इधर मैं उस गुफ़ा के मुँह पर बैठकर रीछों की राह देखने लगा।

सहसा वे दोनों रीछ दौड़ते हुए बाहर निकले। मैंने उनमें से एक पर फ़ैर की। गोली उसे भर पूर लगी। परन्तु ज्योंहीं मैंने दूसरी तरफ़ गरदन फेरी, मैंने आश्चर्य्य से देखा कि अकस्मात् एक तीसरा रीछ मेरी तरफ़ आ रहा है। उसे देखकर मैं इस लिए ज़रा पीछे हटा कि उसके आघात से बचूँ और संभल कर उस पर गेाली छोड़ूँ। परन्तु ऐसा करने में मेरा पैर फिसल गया और मैं एक बहुत गहरे खड्ड में जागिरा। गिरने से मेरा हाथ टूट गया। मेरी कोहनी भी उतर गई और एक लकड़ी मेरे गाल में घुस गई, जिससे बड़ा भारी घाव हो गया। किसी तरह अपने घावों पर पट्टी बाँध कर हिन्दुस्तानियों की मदद से मैं घोड़े पर सवार हुआ और बड़ी मुशकिलों से अपने ठहरने की जगह पहुँचा। वहाँ मैं कई रोज़ तक विषमज्वर और दर्द की यातनायें भेागता हुआ पड़ा रहा। जब ज़रा तबीयत ठीक हुई और मैं उठने बैठने लायक़ हुआ तब छावनी को आया। वहाँ आकर मैंने डाक्टर साहब की शरण ली।

मुझे इस बात का पूरा पूरा विश्वास है कि यदि मैं बिजली को देखकर ज़रा भी डर जाता; अथवा यदि बिजली की खोपड़ी की आँखें और ज़रा नज़दीक से मेरी तरफ़ घूरतीं; अथवा यदि कहीं वह मेरे किसी अंग को छू देता, तो इस घटना का अन्तिम फल यही होता कि मैं मौत के मुँह में चला जाता। फिर मेरा बचना सर्वथा असम्भव था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन।

(१)

जो धन किसी समय था यहाँ अटूट ;
मची हुई है अब तक जिसकी लूट ;
जिसे यहाँ के पुरखा समझे पोच ;
आज उसी का हमको है अति सोच।

(२)

जो धन होता पूरा अपने पास
जाती नहीं देश तज-तुच्छ कपास।
रेत धूल नदियों की धन के संग
होजाती पल-भर में कंचन-रंग।

(३)

ऊँचे पर्वत बनते गहरी खान ;
गहरी भूमि चमकती सूर्य-समान ;
भारी भाठे होते सुन्दर खेत ;
खेत न करते धारण भेष सुपेद।

(४)

निज यंत्रों से बुनते हम निज-वस्त्र ;
क्यों हम भूखों मरते निशि दिन त्रस्त ;
यहीं कातकर मोटी ऊन महीन ,
जल से उसे पठाते बिकने चीन।

(५)

पढ़े-लिखे सब होते दीन किसान ;
बनिया पूरे बनते विप्र सुजान ;
दूध दही घी खाकर कुली मजूर ;
देश-प्रेम के मद में रहते चूर।

(६)

शास्त्र-लिखे सब होते अपने खेल
शारीरिक बल बढ़कर बढ़ता मेल।
जाति जाति में बढ़ती प्रीति अपार
सबके मन में आते धर्म-विचार।

(७)

वश में करके अपने पाँचों तत्त्व
नष्ट कर दिया होता निज दीनत्व।
तज अयोग्य-जन-पूजा, मांत्रिक तंत्र ,
नर-नारायण भजते परम स्वतंत्र।

(८)

निज हाथों हम लिखते निज इतिहास ;
निज टीका-मय करते ग्रंथ-प्रकाश ;
सदा बोलते बोली अपनी शुद्ध ;
ठाना करते उस पर भारी युद्ध।

(९)

अलग फेंक हम मग से काँटे धूल
प्रति पग वहाँ बिछाते कोमल फूल।
पावक-तुल्य पवन में देकर शीत
ग्रीषम की गरमी को लेते जीत।

(१०)

निर्जन भूमि बनाते हम जनवास ;
देशाटन को देते पूर्ण सुपास।
धन-चुंबक से जग का सब धन खींच
सुर पुर नया बसाते अपने बीच।

(११)

जो घर में धन रहता अपने अल्प
पल-भर में सब होता काया-कल्प।
जान हमारा वैभव, पौरुष, नाम ,
अन्य देश सब डरते आठो याम।

(१२)

पर-धन का यह सपना है निर्मूल ;
कमला हम पर होगी क्यों अनुकूल ?
फिर यह धन है जग में दुखद महान ;
बुरा इसे कहते हैं सब विद्वान।

(१३)

धन पाकर करता है जग अभिमान ;
जग को दिखलाता है कोरी शान।
धन से जन होते हैं बे-परवाह ;
दिखती नहीं किसी को राह कुराह।

(१४)

धन ही से बढ़ता है जग में पाप ;
धन ही से भोगे हैं सब त्रय ताप।
धन से जन खोते हैं प्यारे प्राण ;
कर देता है दुर्लभ धन-निर्वाण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१५)

धन से बन जाते हैं मूढ़ प्रवीण ;
मिश्र वर्ण के संकर शुद्ध कुलीन।
द्विज से पूजे जाते नीच लबार ;
पतित दस्यु तक करते वेद-प्रचार।

(१६)

धन से घट जाती है सच्ची प्रीति ;
धन से मिट जाती है कुल की रीति।
होने पर भी आँखें, वाचा, कान,
अंधे, गूँगे, बहरे हैं धनवान।

(१७)

होता जो न जगत में धन का नाम
न्याय-सहित सब करते हाकिम काम।
एक न फिर ढूंढ़े भी मिलता चोर ;
धनियों का मिट जाता संकट घोर।

(१८)

पीला चपटा टुकड़ा गोलाकार
जग के भले बुरे का है आधार।
जितना है यह अच्छा उतना मंद ;
जितने इसमें गुण हैं उतने फंद।

(१९)

तोभी धन है ऐसा मोहन-मंत्र
सुनकर कोई रहता नहीं स्वतंत्र।
नहीं एक भी जग का ऐसा काज
जिसमें हो न अकंटक धन का राज।

[२०]

दुबिधा में हम पड़कर हैं निरुपाय ;
मित्रो ! करो हमारी शीघ्र सहाय।
धन-संचय है अच्छा या धन-त्याग ?
या दोनों से उत्तम परम विराग ?

विद्यानाथ।

रुक्मिणीहरण का स्थान।

श्री कृष्ण जी के द्वारा रुक्मिणी-हरण का वृत्तान्त एक प्रसिद्ध बात है। रुक्मिणी-मंगल की कथा सरस्वती के पाठकों में से बहुतों ने सुनी होगी। रुक्मिणी-हरण के स्थान के विषय में अब तक जो कुछ मालूम हुआ है उसका उल्लेख आज यहाँ पर किया जाता है।

ज़िला बुलन्दशहर में अनूपशहर नाम की एक तहसील है। अनूपशहर गंगा जी के किनारे बसा हुआ है। वहाँ से क़रीब ५ मील की दूरी पर अम्बिका या अमन्तिका देवी का एक स्थान है। अनूप शहर से अमन्तिका की राह कच्ची और रेतीली है और गंगा के किनारे किनारे जाती है। अम्बिका देवी का मन्दिर पक्का बना हुआ है। उसके काठ के किवाड़ों पर संवत् १७४५ लिखा है। बीच में चूने की मज़बूत गोल डाट है और मन्दिर के चारों तरफ़ पक्का चबूतरा है। इसी से मिला हुआ एक और मन्दिर है जिसमें शिव और पार्वती जी की प्रतिमा है और बाहर महावीर की मूर्त्ति है। एक पक्का दालान बग़ल में है और मन्दिर के बिलकुल सामने एक अधबना दालान और पड़ा है। ये दोनों दालान ठाकुर चण्डिकाप्रसादसिंह ने (जो किसी समय अनूपशहर में तहसीलदार थे और अब कहीं डिप्टी कलक्टर हैं) यात्रियों के सुभीते के लिए बनवाये थे। इसके सिवा इस स्थान पर न कोई और इमारत है न आबादी। पंडे लोग सबेरे आते हैं और संझा को लौट जाते हैं। रात को वहाँ कोई नहीं रहता। चारों तरफ़ बहुत ऊँचे ऊँचे दरख़्तों का घना जंगल है, जिसमें जंगली जानवर रहते हैं। इस जंगल में शेर भी लगते हैं। इसी कारण रात को यहाँ कोई नहीं ठहरता। दोनों तरफ़ श्रीगंगा जी की धारा बहती है।

यह टीला गंगाजी से क़रीब २५ फ़ीट की ऊँचाई पर है। उसी पर मन्दिर बना हुआ है। गंगाजी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर और पवित्र धारा जैसी इस स्थान पर है वैसी हरिद्वार को छोड़कर और किसी दूसरी जगह नहीं। यहाँ घड़ियालों की पाँतें की पाँतें दिखलाई पड़ती हैं। ख़ास गंगा के किनारे झाऊ का सघन जंगल मनुष्य की उँचाई के बराबर बहुत दूर तक चला गया है। लोग कहते हैं कि यह जंगल हरद्वार तक है। अम्बिकादेवी और गंगाजी के कारण यह स्थान बहुत पवित्र समझा जाता है। यहाँ यात्री लोग बहुधा आते हैं। कभी कभी महात्मा लोग भी तप करने आजाते हैं। इस स्थान से क़रीब २½ मील पर एक गाँव है जिसको पहले कुण्डिनपुर या कुन्दनपुर कहते थे और अब अहार कहते हैं। दिन भर तप करने के बाद महात्मा लोग रात्रि के लिए इसी गाँव में चले जाते हैं। देवी के पंडे भी यहीं के रहने वाले हैं।

लोग कहते हैं कि यह गाँव किसी समय रुक्मिणी के पिता भीष्मक की राजधानी था। विवाह के दिन इसी देवी के दर्शन करने के लिए रुक्मिणीजी आई थीं। यहीं से श्रीकृष्ण उन्हें हर ले गये थे। इसकी कथा श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में अध्याय ५२—५५ तक पाई जाती है।

विदर्भ देश के राजा भीष्मक का श्रीमद्भागवत में "कुण्डिनपतिः" लिखा जाना और अहार का नाम कुण्डिनपुर होना लोगों के कथन को पुष्ट भी करता है। सम्भव है कि गाँव का नाम अहार रुक्मिणी-हरण ही के कारण पड़ा हो।

रुक्मिणी के हरे जाने का दृश्य और उनके रूप का वर्णन श्रीमद्भागवत में बड़ा ही मनोहर है। उसके चार श्लोक सुन लीजिएः—

तां देवमायामिव वीरमोहिनीं
सुमध्यमां कुण्डलमण्डिताननाम्।
श्यामां नितम्बार्पितरत्नमेखलां
व्यंजत्स्तनीं कुन्तलशंकितेक्षणाम्॥ ५१॥

शुचिस्मितां बिम्बफलाधरद्युतिं
शोणायमानद्विजकुन्दकुड्मलाम्।
पदा चलन्तीं कलहंसगामिनीं
सिंजत्कलानूपुरधामशोभिना॥ ५२॥

विलोक्य वीरा मुमुहुः समागता
यशस्विनस्तत्कृतहृच्छयार्दिताः।
यां वीक्ष्य ते नृपतयस्तदुदारहास
व्रीडावलोकहृतचेतस उज्झितास्त्राः॥ ५३॥

पेतुः क्षितौ गजरथाश्वगता विमूढा
यात्राच्छलेन हरयेऽर्पयतीं स्वशोभाम्।
सैवं शनैश्चलयती चलपद्मकोशौ
प्राप्तिं तदा भगवतः प्रसमीक्षमाणा॥ ५४॥

उत्सार्य वामकरजैरलकानपांगैः
प्राप्तान् ह्रियैक्षत नृपान्दृशेऽच्युतं सा।
तां राजकन्यां रथमारुरुक्षतीं
जहार कृष्णो द्विषतां समीक्षताम्॥ ५५॥

रथं समारोप्य सुपर्णलक्षणं
राजन्यचक्रं परिभूय माधवः।
ततो ययौ रामपुरोगमैः शनैः
शृगालमध्यादिव भागहद्धरिः॥ ५६॥

तं मानिनः स्वाभिभवं यशःक्षयं
परे जरासन्धवशा न सेहिरे।
अहो धिगस्मान् यशआत्तधन्वनां
गोपैर्हृतं केसरिणां मृगैरिव॥ १७॥

अहो, कैसा हृदयहारी वर्णन है।

खड्गजीत मिश्र।

कवि और काव्य।

(कवि)

[१]

दोही अमर हुए हैं, होंगे भी और हो रहे हैं भी।
जो कविता करते हैं, या कविता को कराते हैं॥

[२]

कवि के बिना न कोई, पाता है स्वाद काव्यों का।
भौंराही लेता है, स्वाद कमल का न भेक कभी॥

[३]

कविकी कटु कविता को, मधुर स्वर से सुजन सुनाताहै।
वारिधि-जल को जैसे, घन मीठा कर बरसता है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[४]

काव्य बिना जाने जो, कवि बनता है वही सही कपि है।
चाल नकल करने से, हंस बराबर न बक होगा॥

[५]

पर की कविता सुनकर, सच्चा सहृदय प्रसन्न होता है।
वारिद-धुनि सुनकर क्यों, रसिक-कलापी न नाचेगा॥

[६]

अट पट पद रच रच कर, कभी न कोई कवीन्द्र बनता है।
काँ काँ अधिक करे पर, काक कभी भी न पिक होगा॥

[७]

कवि निर्धन भी होकर, शठकी सेवा कभी न करता है।
रत्नाकर में जाकर, हंस कभी क्या विचरता है॥

[८]

ऐसा कौन विषय है, कविकी प्रतिभा जहाँ नहीं जाती।
नभ से अछूत कोई, वस्तु नहीं देख पड़ती है॥

(कविता)

[१]

सिता-स्वाद से बढ़कर, मधुर-सुधा में मिठास होता है।
उससे कहीं अधिकतर, मिलता है स्वाद काव्यों में॥

[२]

रवि, शशि जब मिट जाते, कविकी कविता तभी नष्ट होती।
यह दृढ़ करके बुधवर, कविता-सेवा सदा करिये॥

[३]

स्तुति से, गुणसे, रससे, अलंकृता भी तथा अलंकृति से।
कविता हो या बनिता, दोनों सबको लुभाती हैं॥

[४]

खग मृग भी वश होते, सुनते ही मधुर गीत सुस्वर को।
पशु से बढ़ कर वे हैं, जिन्हें नहीं काव्य से प्रेम॥

[५]

सुरनगरी सुरवनिता, दोनों से है अधिक सुखद कविता।
कवियों के इस मतको, कौन नहीं मान सकता है॥

[६]

अच्छी भी कविता हो, अरसिक जनको कभी नहीं भाती।
कभी नपुंसक का भी, क्या रंभा मोह सकती है॥

[७]

टेढ़ी भी कवि-वाणी, रसिक जनों को प्रफुल्ल करती है।
शशधर-वक्र-कला क्या, नहीं हँसाती चकोरों को॥

[८]

नव-रत्नों को नव-रस, कवि कहते हैं सभी सुकाव्यों में।
भूल रहे हैं वे जो, पत्थर को रत्न कहते हैं॥

रामचरित उपाध्याय।

भारतवर्ष का नौकानयन।

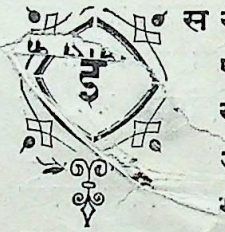

स समय जहाज़ पर समुद्र पार करना एक प्रकार से मना है। जहाज़ पर सवार होकर दूर देशों को जाने से जाति चली जाती है—धर्म्म जाता रहता है; काशी के पण्डितों की बन आती है, उन्हें तार-द्वारा व्यवस्थायें भेजनी पड़ती हैं; सभा-समाजों की धूम मच जाती है; एक पक्षवाले कहते हैं यह विलायत हो आया इससे पतित होगया; दूसरे पक्षवाले कहते हैं, अजी राम का नाम लो, विलायत जाना भी क्या कोई पातक है? ख़ैर यह तो आज कल की बात हुई।

अब प्रश्न यह है कि जिन भारतवासियों ने लङ्का और जावा आदि टापुओं में जाकर बौद्ध-मत का प्रचार किया; जो पुराने ज़माने में, अलेग्ज़ांड्रिया और फ़ारस आदि से व्यापार करते थे; जो म्लेच्छ माने गये लोगों के देश ग्रीस और रोम आदि में बेखटके जाते थे उनके क्या पँख थे जो सुबह वहाँ उड़ जाते थे और शाम को फिर अपने घर आ जाते थे? अथवा क्या उन्हें हनूमान् जी की ऐसी सौ योजन की छलाँगें भरनी आती थीं कि दो चार छलाँगों में लंका और मिश्र पहुँच जाते थे और रात को फिर मज़े में अपने घर कूद आते थे! क्या कोई व्यवस्थादानी पण्डित कृपा करके बता सकते हैं कि अम्बष्ठ के "शतारित्रां नावम्" का क्या मतलब है? और जतुगृहदाह की कथा से सम्बन्ध रखनेवाली भग-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत की मनो-मारुतगामिनी यन्त्रयुक्ता नावों का ठीक ठीक क्या अर्थ है ? कालिदास तक ने रघुवंश में लिखा है :—

"वङ्गानुत्थाय तरसा नेता नौ-साधनोद्यतान्"

ये "नौ-साधन" वाले बंगाली अपनी नावें नदी-नालों ही में चलाते थे या कुछ दूर समुद्र में भी जाने का साहस करते थे ?

अच्छा ये सब पुरानी बातें हुईं। नई बातों का भी बहुत कुछ पता चलता है। कुछ समय हुआ सरस्वती में एक नोट निकला था। उसमें बंगाल के मुसलमान अधिकारियों के जहाज़ों की संख्या आदि का उल्लेख था। जिसे इस विषय में और अधिक जानना हो वह "रियाज़ुस्सलातीन" नाम का ऐतिहासिक ग्रन्थ देखे। उससे मालूम हो जायगा कि मुग़ल-बादशाह बंगाले की खाड़ी में जहाज़ों के बड़े बड़े बेड़े रखते थे और ज़रूरत पड़ने पर विदेशियों से घमासान के जल-युद्ध करते थे। उनकी जलयुद्ध-सामग्री बहुत बढ़ी चढ़ी थी। इससे मग और पोर्चुगीज़ आदि विदेशी लोग उनसे बेतरह डरते थे। बाबू यदुनाथ सरकार ने "दि इंडिया आव औरंगज़ेब" (The India of Aurangzeb) नाम की एक पुस्तक लिखी है। उसमें उन्होंने बंगाल के महाराजा प्रतापादित्य के जहाज़ी बेड़ों का, बन्दरगाहों का और सेना आदि का वर्णन किया है। इससे स्पष्ट है कि बहुत नहीं चारही पाँच सौ वर्ष पहले भारतवर्ष में खूब जंगी जहाज़ बनते थे, और आवश्यकता होने पर सामुद्रिक लड़ाइयाँ भी होती थीं। याद रहे, ये जहाज़ और देशों से बनवा कर नहीं मँगाये जाते थे; सब यहीं तैयार होते थे। जहाज़ बनाने के यहाँ बड़े बड़े "डाक्स" (Docks) थे। पर ये सब बातें अब स्वप्न होगई हैं। जो लोग भारतवर्षीय जहाज़ों पर एडमिरल, यंजिनियर और कप्तान का काम करते थे उन्हीं को अन्य देशवाले अपने जहाज़ों पर अब ख़लासी तक नहीं रखते!

यह तो पूर्व में बंगाले की बात हुई। दक्षिण में भी शिवाजी के समय में जहाज़ बनाने और चलाने का पता लगता है। शिवाजी के जल-सेनापतियों ने तो बहुत दफ़े विदेशियों को जल-युद्ध में परास्त किया था। कुलाबा, रत्नागिरी और विजयदुर्ग में महाराष्ट्रों के बड़े बड़े कारख़ाने जहाज़ बनाने के थे। शिवाजी के दो एडमिरल (जल-सेनापति) बहुत प्रसिद्ध होगये हैं। एक का नाम था आनन्दराव, दूसरे का आँग्रे। चालीस चालीस पचास पचास जहाज़ों का बेड़ा इनमें से एक एक के अधीन था। प्रत्येक बड़े जहाज़ में दस हज़ार मन तक माल लादा जा सकता था। लड़ाकू जहाज़ों में तीन तीन चार चार सौ सैनिक रहते थे। तोपें भी उनमें रहती थीं। एक एक सेनापति के अधीन एक दो नहीं, सैकड़ों तोपें रहती थीं। इन बातों को कपोल-कल्पना न समझिए। मराठों और पोर्चुगीज़ों के पुराने काग़ज़-पत्रों में इस विषय का सविस्तर और सप्रमाण वर्णन मिलता है।

ये तो कुछ पुरानी बातें हुईं। जहाज़ चलाने और बनाने की विद्या तो इस देशवालों को अभी सौ वर्ष पहले तक मालूम थी। और ऐसी अच्छी मालूम थी कि और देशवाले यहाँ के जहाज़ों को देखकर दाँतों तले उँगली दबाते थे।

उन्नीसवीं सदी के आरंभ तक ढाके और कलकत्ते में अच्छे से अच्छे जहाज़ बनते थे। वहाँ जहाज़ बनाने के बड़े बड़े कारख़ाने थे। कलकत्ते के बन्दरगाह में सैकड़ों जहाज़ दूसरी दूसरी विलायतों को माल ले जाने के लिए हमेशा तैयार रहते थे। यहाँ के जहाज़ों की मज़बूती और जहाज़ चलानेवालों की कुशलता देख कर योरपवाले चकित होते थे—उनके जी में डर समा गया था कि यदि उन लोगों ने अपने जहाज़ों में तरक्की न की, तो भारत के जहाज़ों के सामने उन्हें कोई कौड़ी को भी न पूँछेगा। १८०१ ईसवी में लार्ड वेलसली ने विलायत को भारतीय जहाज़ों की महिमा इस प्रकार लिख भेजी थी :—

"The port of Calcutta contains about 10,000 tons of shipping, built in India, of a description

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

calculated for the conveyance of cargoes to England. * * * * * *

From the quality of private tonnage now at command in the port of Calcutta and from the state of perfection which the art of ship-building has already attained in Bengal, it is certain that this port will always be able to furnish tonnage to whatever extent may be required for conveying to the port of London the trade of the private British merchants of Bengal."

अर्थात् कलकत्ते के बन्दरगाह में कोई २७ हज़ार मन माल लाद कर इँगलैंड पहुँचाने के लिए काफ़ी जहाज़ हैं। ये सब जहाज़ हिन्दुस्तान ही के बने हुए हैं। बँगाल में जहाज़ बनाने की कला उन्नति की चरम सीमा तक पहुँच गई है और कलकत्ते के बन्दरगाह में हमेशा इतने जहाज़ तैयार रहते हैं कि अँगरेज़ सौदागर चाहे जितना माल लन्दन भेजें सब यहीं के बने हुए जहाज़ आसानी से ले जा सकते हैं।

तूतीकोरिन में जहाज़ चलानेवाली स्वदेशी कंपनी का नाम सुनकर कोई कोई आश्चर्य्य करने लगते हैं कि—हाँ, हम लोग भी जहाज़ चलाने लगे? उन्हें शायद नहीं मालूम कि बंबई से वेरावल और द्वारका आदि तथा कलकत्ते से गंगासागर, रंगून, चटगाँव, नरायनगंज आदि तक अब भी कितनेही ऐसे जहाज़ चलते हैं जिनके स्वामी हिन्दुस्तानी हैं। पर ये जहाज़ उन्नीसवीं सदी के आरंभ वाले जहाज़ों के सामने कोई चीज़ही नहीं समझे जा सकते। उनकी गिनती दस पाँच नहीं हज़ारों थी। वे ऐसे अच्छे थे कि फ्रांस, पुर्तगाल और इँगलैंड के जहाज़ बनाने वालों को भारतीय जहाज़ देख कर शरम से सिर नीचा करना पड़ता था। वे जहाज़ सौ दो सौ मील का सफ़र न करते थे। किन्तु तीन तीन हज़ार मील की जल-यात्रा आसानी से तै करते थे!

यह कलकत्ते के बने हुए जहाज़ों की बात हुई। अब बंबई के बने जहाज़ों का कुछ हाल सुनिए। लफ्टिनेंट कर्नल वाकर की लिखी हुई एक पुस्तक है। वह १८११ ईसवी में लिखी गई थी। उसका नाम है—"Considerations on the Affairs of India" उसमें लिखा है :—

"Every ship in the navy of Great Britain is renewed every 12 years. It is well-known that teak-wood-built ships last 50 years and upwards. Many ships, Bombay-built, after running 14 to 15 years, have been brought into the navy and considered as strong as ever. The *Sir Edward Hughes* performed, I believe, 8 voyages before she was purchased by the navy. No Europe-built ship is capable of going more than 6 voyages with safety."

अर्थात् ग्रेट ब्रिटन के बने हुए जहाज़ १२ वर्ष से अधिक नहीं चलते। पर भारतवर्ष के सागौन के बने हुए जहाज़ ५० वर्ष से भी अधिक चलते हैं। बंबई के बने हुए कितनेही जहाज़ १४, १५ वर्ष तक चल चुकने के बाद विलायत के जलसेना-विभाग द्वारा मोल ले लिये जाते हैं और मालूम होते हैं कि अभी कल के बने हैं। योरप का बना हुआ एक भी जहाज़ ऐसा नहीं जो विलायत और कलकत्ते के बीच छ दफ़े से अधिक आ जा सके। पर हिन्दुस्तान का बना हुआ एक जहाज़, जो आठ दफ़े आया गया था, नये की तरह हमारे जल-सेना-विभाग के द्वारा मोल ले लिया गया था!

कुछ ठिकाना है यहाँ के बने हुए जहाज़ों का मज़बूती का! वाकर साहब ने यह भी लिखा है कि जो जहाज़ विलायत में १००० रुपये में बनता था वही जहाज़ हिन्दुस्तान में ७५० रुपये में ही बन जाता था। तिस पर भी वह विलायती जहाज़ से चौगुना मज़बूत होता था। अर्थात् विलायती जहाज़ १२ वर्ष से अधिक नहीं चलता था; पर हिन्दुस्तानी जहाज़ ५० वर्ष बराबर काम देता था।

जब हिन्दुस्तानी जहाज़ों में लदा हुआ हिन्दुस्तानी माल विलायत पहुँचने लगा तब विलायत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के जहाज़ बनाने वाले डर गये कि यदि इन जहाज़ों का आवागमन ऐसे ही बना रहा और इनका बनना हिन्दुस्तान में ऐसेही जारी रहा तो हमारे मुँह की रोटी ज़रूर छिन जायगी। उस समय यहाँ ईस्ट इंडिया कम्पनी व्यापार करती थी। उसी ने कलकत्ते और बंबई में जहाज़ बनाने के कारख़ाने खोले थे। विलायत जाने वाले ये जहाज़ उसी कम्पनी के थे। इससे विलायत वालों ने कम्पनी पर ज़ोर डालना शुरू किया कि तुम्हें यदि जहाज़ बनवाने हैं तो यहीं विलायत में बनवाओ। इससे तुम्हारा काम होगा और अपने देशवालों का भी पेट पलेगा। हाँ, रही मज़बूती की बात सो जिस ढँग से तुम्हारे जहाज़ हिन्दुस्तान में तैयार होते हैं उसी ढँग से यहाँ तैयार कराओ। ख़र्च यदि कुछ अधिक भी यहाँ पड़े तो उसकी तरफ़ तुम्हें न देखना चाहिए। क्योंकि स्वदेश-भक्ति भी कोई चीज़ है। उसके लिए यदि कुछ अधिक भी ख़र्च हो जाय तो करना चाहिए।

उस समय कलकत्ते में व्यापारी जहाज़ बनाने के दो तीन कारख़ाने थे। उनमें पाँच-पाँच छः-छः हज़ार मन माल लादने योग्य जहाज़ बनते थे। उनका बनाना धीरे धीरे बन्द किया जाने लगा। पहले विलायत में "ओक" नाम की लकड़ी से जहाज़ बनाये जाते थे। अब ईस्ट-इंडिया कम्पनी ने हिन्दुस्तान से सागौन की लकड़ी, जिससे यहाँ जहाज़ बनते थे; विलायत भेजना शुरू किया। यह लकड़ी "ओक" की लकड़ी से बहुत अधिक मज़बूत होती है। वह अब तक ब्रह्मा और भारतवर्ष से जहाज़ बनाने के लिए विलायत जाती है। कम्पनी ने लकड़ी के सिवा जहाज़ बनाने की और सामग्री भी विलायत भेजी और वहीं यहाँ की तरह मज़बूत जहाज़ बनाने लगी। इस देश के ख़लासी भी धीरे धीरे कम कर दिये गये। इस प्रकार जहाज़ बनाने की कला क्रम क्रम से यहाँ लोप होगई। एक समय था जब भारत के बने हुए कोई तीस चालीस हज़ार जहाज़ भिन्न भिन्न देशों को माल ले जाते थे और वहाँ से इस देश में माल लाते थे। पर आज कल इन जहाज़ों की संख्या घट कर बहुतही थोड़ी रह गई है। एक डाक्टर साहब ने इस देश पर कुछ "नोटस" (Notes) लिखे हैं। ये नोट्स लिखे उन्हें कोई पचास साठ वर्ष हुए। उनमें आप एक जगह लिखते हैं:—

"The correct forms of ships, only elaborated within the past ten years by the science of Europe, have been familiar to India for ten Centuries."

अर्थात् जैसे अच्छे जहाज़ योरप में बने अभी दसही वर्ष हुए वैसे जहाज़ आज दस सौ वर्ष से भारत में बनते आये हैं। सुना! यह न समझिए कि ईस्ट इंडिया कम्पनी ने ही इस देश में पहले पहल जहाज़ बनाने के कारख़ाने खोले थे। नहीं, जहाज़ यहाँ बहुत पहलेही से बनते थे और बहुत पहले ही से दूर दूर देशों से व्यापार होता था। व्यापारिक जहाज़ों के सिवा शिवाजी और बंगाले के मुग़लसूबेदारों के अधीन जंगी जहाज़ भी इस देश में थे।

जबसे भारतवासियों का ध्यान देश की औद्योगिक दशा सुधारने की तरफ़ गया है तबसे जहाज़ बनाने और जहाज़ी कम्पनियाँ खड़ी करके माल और मुसाफ़िर लेजाने का भी प्रबन्ध हो चला है। बंगाल स्टीम नैविगेशन कम्पनी के नाम से एक कम्पनी खुली है। इसका दफ़्तर रंगून में है। चटगाँव और रंगून, और कलकत्ता और रंगून के बीच इसके जहाज़ चलते हैं। ईस्टर्न बंगाल स्टीम सर-विस नाम की एक और कम्पनी खड़ी हुई है। इसे हुए तीन चार वर्ष बीते। यह सिर्फ़ माल ले जाने का काम करती है। तीसरी कम्पनी तूतीकोरिनवाली है। इसका नाम है स्वदेशी स्टीम नैविगेशन कम्पनी। तूतीकोरिन और कोलंबो के बीच इस कम्पनी के जहाज़ आते जाते हैं। माल और मुसाफ़िर दोनों का काम होता है। ये कम्पनियाँ बहुत अच्छी दशा में हैं। ख़ूब तरक्क़ी कर रही हैं। इनके हिस्सेदारों को सात सात आठ आठ रुपया सैकड़ा सालाना सूद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनके हिस्सों पर मिलता है। नये नये जहाज़ ये कम्पनियाँ बनवा रही हैं। आशा है बहुत जल्द इनके काम में और भी अधिक उन्नति हो। इनके सिवा बंबई और कलकत्ते में कुछ और भी व्यवसायी हैं जिनके जहाज़ चलते हैं।

यद्यपि भारत-वर्ष का नौकानयन इस समय नाम लेने योग्य भी नहीं, तथापि १९०१ की मनुष्य-गणना के अनुसार ४२, ९४० आदमी जहाज़ और नावें बना कर अपनी जीविका चलाते हैं। इनमें से अधिक लोग नावें ही बनाने वाले हैं, जहाज़ बनाने वाले कम।

इस समय भारत-वर्ष में सब मिला कर बड़े बड़े १३० जहाज़ ऐसे हैं जो समुद्र में दूर दूर तक का सफ़र कर सकते हैं और माल तथा मुसाफ़िर ले जाते हैं। इनके सिवा कोई सात हज़ार छोटे छोटे जहाज़ हैं जो समुद्र के किनारे ही किनारे माल और मुसाफ़िर एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाते हैं।

डॉन सोसायटी की मैगेज़ीन में प्रकाशित एक लेख के अनुसार १९०१ से १९०५ तक भारत-वर्ष में सब मिला कर ७५० बड़े बड़े जहाज़ बने और कोई ५ लाख रुपया इनके बनाने में ख़र्च हुआ। इस से पाठक अनुमान कर सकेंगे कि ये जहाज़ बहुत बड़े न होंगे। ख़ैर छोटे ही सही, बनना जारी तो है—दिन दिन उन्नति तो होती जाती है। यही ग़नीमत है।

यदि हमारी गवर्नमेंट अपने जंगी जहाज़ बनाने का एक आध कारख़ाना इस देश में भी खोलने की कृपा करे तो बड़ी अच्छी बात हो। ऐसा करने से सरकार का काम भी किफ़ायत के साथ हो और थोड़े से हिन्दुस्तानी मज़दूरों और कारीगरों का पेट भी चले।

भुजङ्गभूषण भट्टाचार्य्य।

राव संसारचन्द्र सेन बहादुर, एम० बी० ओ०, सी० आई० ई०, प्रधान मन्त्री, जयपुर।

बाबू संसारचन्द्र सेन का जन्म बंगाल के चौबीस-परगना के उच्च वैद्य-कुल में हुआ था। आप श्रीयुत नीलाम्बर सेन के ज्येष्ठ पुत्र थे। आगरा-कालिज में शिक्षा पाकर जयपुर महाराजा-कालेज में आप अध्यापक हुए। वहाँ से जयपुर के राजपूत-स्कूल के हेड मास्टर हुए। संयोग की बात है वहाँ उनके छात्रों में जयपुर के वर्तमान महाराजा साहब बहादुर भी थे। इनके राज्यसिंहासनारूढ़ होते ही बाबू साहब प्राइवेट सेक्रेटरी के प्रतिष्ठित पद पर नियत किये गये। फिर राव बहादुर बाबू कान्तिचन्द्र मुकर्जी, सी० आई० ई०, के स्वर्गवास के पीछे वे पहले तो कौंसिल के इलाक़े-ग़ैर के मेम्बर और पीछे प्रधान मन्त्री किये गये। महाराजा साहब ने इन्हें ताज़ीम और पाँच हज़ार रुपये की पुश्तैनी जागीर प्रदान करके इनकी सेवाओं का पारितोषिक दिया है और अपनी गुण-ग्राहकता दिखाई है। दिल्ली दरबार के अवसर पर ये राव बहादुर बनाये गये। जब प्रिन्स आफ़ वेल्स जयपुर पधारे थे तब उनने स्वयं इन्हें एम० बी० ओ० का तमग़ा दिया था। गत वर्ष इन्हें सी० आई० ई० की उपाधि मिली थी जिसका पदक राजपूताना के एजेन्ट गवर्नर जनरल ने स्वयं बाबू साहब के घर जाकर दिया था। सौम्य स्वभाव और सुशील वृत्ति से बाबू साहब सर्वप्रिय हो गये थे। उनकी स्वामि-भक्ति से उनके स्वामी अति प्रसन्न थे, उनके मधुर-भाषण से उनके मिलने भेंटने वाले अति प्रसन्न थे, उनके न्याय और सरल स्वभाव से प्रजा अति प्रसन्न थी और उनके सत्कार से उनके अतिथि अति प्रसन्न थे। इनका स्थान जयपुर में, और इनके भाई स्वर्गीय हेमचन्द्र सेन का देहली में, प्रवासी बङ्गालियों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राव संसारचन्द्र सेन बहादुर, एम० बी० ओ०, सी० आई० ई०।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ा भारी आश्रय था। जयपुर महाराजा साहब की विलायत-यात्रा, दुर्भिक्ष और प्लेग का सुप्रबन्ध, युवराज का स्वागत, राजसेवा में शिक्षितों की अधिक नियुक्ति, कालिज में विज्ञान की उच्च शिक्षा का प्रबन्ध, डाकख़ाने का सुधार और सरकार से कन्वेनशन आदि इनके समय की मुख्य घटनाएँ हैं। ता० ११ मई को इस संसार-चन्द्र का अस्त होने से जयपुर के आकाश में अन्धकार छा गया!

श्रीचन्द्रधर शर्म्मा गुलेरी।

वैगा जाति के अनार्य्य।

आर्य लोगों के आने के पहले जो लोग भारत-वर्ष में बसते थे, इतिहासज्ञ पुरुषों ने उन्हें अनार्य नाम से सम्बोधन किया है। ये लोग पहले पहल कब इस देश में बसे, इतिहास इसका पूरा पूरा पता नहीं बता सकता; क्योंकि उस समय का कोई लिपिबद्ध प्रामाणिक इतिहास प्राप्त नहीं। इसी से ये लोग अनार्य्य या आदिम निवासियों की सन्तान कहे जाते हैं।

आर्यों का इस देश पर आधिपत्य होने के बाद ये लोग जंगलों और पहाड़ों में बसने और वहीं अपनी जीविका निर्वाह करने लगे। विशेष करके उन्हीं स्थानों में इन लोगों की बस्ती बहुतायत से पाई जाती है जहाँ जंगल और पहाड़ बहुत हैं।

भारत-वर्ष का वह भाग जो गंगा के दक्षिण में है, और जिसमें विन्ध्याचल और सतपुड़ा पहाड़ हैं, इन लोगों के बसने का मुख्य स्थान है। यहाँ के अनार्य गोंड कहलाते हैं। इसी से इस प्रान्त का नाम गोंडवाना पड़ा है। यद्यपि इस देश में गोंडों के सिवा और भी अनेक अनार्य्य जातियाँ बसती हैं, पर गोंडों ही की अधिकता है।

इन्हीं अनार्य्य लोगों की एक जाति वैगा कहलाती है। वह मध्य-प्रान्त के पूर्वोत्तर मंडला ज़िले में और उसके आस पास अमरकंटक के पहाड़ों में रहती है। इन लोगों के रहने की परिपाटी विचित्र है। ये गाँव में आकर कभी नहीं बसते, किन्तु जंगलों के बीच अपने झोंपड़े बनाते हैं और ४, ६ कुटुम्ब मिल कर रहते हैं। घर का मुखिया मालिक होता है। वही जाति-बिरादरी सम्बन्धी पंचायत और मामलों में घर के सब लोगों की तरफ़ से प्रतिनिधि समझा जाता है। इन लोगों में आपस में वैर-विरोध कम होता है। दूसरी जाति के आदमियों से ये बहुत कम मिलते हैं। और यदि किसी से इनका हेल मेल हो जाता है तो उसके बुरे बर्ताव की भी परवा न करके उसका बुरा नहीं चाहते।

ये लोग लोहे को उपयोग में लाना अच्छी तरह नहीं जानते। हथियार इनके सिर्फ़ कुल्हाड़ी और तीर कमान हैं। तीर कमान से ये अपने शिकार या दुश्मन को मारते हैं। तीर चलाने में ये बड़े ही सिद्धहस्त होते हैं। ये अपने निशाने को कभी नहीं चूकते। एक बार एक महाशय ने इनकी तीरन्दाज़ी देखी। वे कहते हैं कि—एक आदमी दूसरे से कोई ४ फ़रलाँग की दूरी पर खड़े होकर परस्पर एक दूसरे पर तीर चलाने लगे। ज्योंही एक का तीर छूटा कि साथ ही दूसरे का भी छूटा। और दोनों के तीर बीच में एक दूसरे से भिड़ गये। इतनी अच्छी शिस्त से तीर चलाना बहुत कम सुनने में आया है।

खेती करने की रीति भी इनकी निराली है। जहाँ की धरती कुछ नीची होती है वहाँ का जंगल ये लोग कुल्हाड़ी से काट डालते हैं। कटी हुई लकड़ियाँ वहीं पड़ी रहती हैं। गरमी के दिनों में जब वे भली भाँति सूख जाती हैं तब उनमें आग लगा देते हैं। इससे सब लकड़ियाँ जल कर राख हो जाती हैं। जब राख में थोड़ी सी गरमी होती है ये लोग अनाज के दाने उसी में छोड़ देते हैं। ज्यों ही पानी बरसा कि वे दाने उस राख में से, जो यथार्थ में एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार का खाद है, अंकुर देकर ऊपर को बढ़ने लगते हैं और फिर मौसम पर पक जाते हैं। पकने पर ये लोग उन्हें काट कर सुखा डालते हैं और काठ के एक मोटे डंडे से कूट कर उसमें से अनाज निकाल लेते हैं। मुख्य खेती की चीज़ इनकी एक प्रकार का धान है जिसका दाना छोटी ज्वार के समान होता है। इस के सिवा ये लोग शकरक़ंद भी बोते हैं। इनका शकरक़ंद वज़न में कोई दो दो सेर तक का होता है। शकरक़ंद को ये लोग आग में भूनकर खाते हैं। परन्तु चावल को उबाल कर और उसका पानी अलग करके खाते हैं। इनका चावल पकने पर कोई आध इंच के लग भग लम्बा हो जाता है और उस में एक प्रकार की चिकनाहट आ जाती है।

इन लोगों का क़द यद्यपि विशेष लम्बा नहीं होता तो भी ये बड़े बलवान् होते हैं और जंगल पहाड़ों में निडर फिरा करते हैं।

जङ्गल की जितनी जड़ी बूटियाँ हैं ये जानते हैं। उन्हें बस्ती के लोग इनसे ख़रीदते हैं। जड़ के बदले इन्हें नमक, कपड़ा और पैसे देते हैं।

औरत और मर्द दोनों अपने सम्पूर्ण शरीर पर गोदना गोदते हैं। गोदने के कारण इनके चेहरे बड़े ही विचित्र बन जाते हैं। इनके प्यारे आभूषण गुंजा हैं, जिनकी अनेक प्रकार की मालायें बना कर ये अपने गले भरे रहते हैं।

इन लोगों में एक स्थान बैठक का होता है जिसे चौपाल कहते हैं। वहाँ शाम को स्त्री-पुरुष और ख़ास कर लड़के-लड़कियाँ बैठते और खेलते हैं। लड़के-लड़कियाँ मिल जुल कर खेलती कूदती हैं। लड़के-लड़कियों में यदि बहुत मित्रता हो जाती है और यदि वे परस्पर पुरुष स्त्री भाव से रहने के इच्छुक होते हैं तो दोनों उसी चौपाल से जंगल को भाग जाते हैं। वहाँ तीन दिन तक छिपे रहते हैं। जब गाँव में यह बात ज्ञात हो जाती है तब लड़की और लड़का दोनों के बाप एक एक जोड़ा धोती का पीले रंग से रंगते हैं और जंगल में जहाँ वे होते हैं जाकर एक एक कपड़ा लड़के लड़की को दे देते हैं। उसे वे पहनते और पुराने कपड़ों को उसी जंगल में छोड़ देते हैं। पीछे वे उसी चौपाल में आते और वहाँ से भीख माँगते हर एक के घर जाते हैं। जो सामान भीख में पाते हैं उसका भोजन तैयार करते हैं और सब जातिवालों को बुलाकर दोनों लड़के लड़की परोसते और सबको खिलाते हैं। फिर वे अलग झोंपड़ी बना कर रहने लगते हैं। यही इन लोगों की शादी का दस्तूर है। कोई कोई अलग झोंपड़ी नहीं बनाते। अपने माता पिता ही के साथ रहते हैं।

जब इन लोगों में स्त्री ऋतुमती होती है तब उसे एक झोंपड़ी में बंद कर देते हैं। नौ दिन तक वह उस घर में रहती है। ज़रूरत के लिए बाहर आने जाने को एक ओर से दीवार फोड़ कर खिड़की सी बना ली जाती है। जब नौ दिन पूरे हो जाते हैं तब वह खिड़की बंद कर दी जाती है।

जंगल में उत्पन्न होने वाली चीज़ें—शहद, मोम, चिरौंजी और जड़ी बूटी आदि इनके व्यापार की चीज़ें हैं। बस्ती वाले, इन्हें भोले भाले जान कर, इनसे बहुत सस्ते दामों पर ये चीज़ें ले लिया करते हैं।

जंगल में ये ऐसी जगह रहते हैं जहाँ किसी को इनके स्थान का पता जल्दी नहीं लगता। इनका स्वभाव भी दूसरों से कम मिलने का होता है। परन्तु इनमें एक रीति ऐसी होती है जिसके कारण बस्ती वाले इनसे मेल मिलाप कर लेते हैं। वह रीति यह है कि जब कोई दूसरी जगह का रहने वाला इनकी जाति का आदमी इनके यहाँ आता है तब वह अपने साथ लाल कपड़ा लाता है। उस कपड़े को ये लोग टुकड़े टुकड़े कर डालते हैं और अपने घर वालों तथा पड़ोसियों के बीच उन्हें बाँटते हैं। फिर आने वाला कुछ जंगली फल और शराब सब लोगों को देता है। तब वह उन लोगों का परिचित (मीत) समझा जाता है, और उसका उसी प्रकार विश्वास किया जाता है जैसा माता पिता का किया जाता है। इसके बदले वे भी अपने मीत को अपनी चीज़ें देते हैं। गाँव के रहनेवाले उनकी इस रीति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के द्वारा लाल कपड़े का थान और एक घड़ा शराब देकर उनके मीत बन जाते हैं और इसके बदले वे लोग बस्ती वालों को अपने आभूषण या गाय वग़ैरः देते हैं।

अभी इन लोगों में सभ्यता का प्रचार नहीं हुआ है। इन्होंने अपने पुराने आचार व्यवहार नहीं छोड़े। बीमारी या और किसी दुःख के समय ये लोग अपने देवता (बड़ा देव) की बड़े विस्तार से पूजा करते हैं। पूजा की चीज़ें शराब, मुर्ग़ी और हिरन का मांस है। ये लोग बैल को जोतना बड़ा पाप समझते हैं। परन्तु गाय को पालते हैं और उसका दूध खाते हैं। इनका धर्म-विश्वास गोंड लोगों से बहुत मिलता जुलता है।

जब इनमें से किसी बड़े बूढ़े की मृत्यु हो जाती है तब ये लोग उसकी लाश को दो दिन तक घर ही पर रक्खे रहते हैं, और उसके पास बैठ कर गाते बजाते और नाचते हैं। दूसरे दिन गाँव वाले इकट्ठे होकर उसे किसी जलाशय के पास ले जाकर पानी में छोड़ देते हैं। फिर मृत पुरुष के लड़के आदि उसे पानी से निकाल कर एक गढ़ा खोद कर उसमें गाड़ देते हैं और तीन दिन तक उस स्थान पर नाचते गाते हैं। इसके पश्चात् अपने अपने घर जाते हैं।

यद्यपि अँग्रेज़ी सरकार ने शिक्षा का बहुत कुछ इस देश में प्रचार किया है; पर इन लोगों में अभी तक कुछ भी शिक्षा नहीं फैली। यहाँ तक कि कोई कोई तो दूसरे आदमी को देख कर भाग जाते हैं।

अमरकंटक के पहाड़ों में, जहाँ से नर्मदा निकली है, इन लोगों की बहुत बस्ती है। अमरकंटक बंगाल नागपुर रेलवे की कटनी-बिलासपुर शाख़ के पिंडरा रोड स्टेशन से कोई २० मील दक्षिण की ओर है। वहाँ जाने का रास्ता बहुत पेचीदा और टेढ़ा मेढ़ा है। कुछ दूर ही विकट मार्ग से पहाड़ के ऊपर जाना होता है। अमरकंटक पहुँचने पर धरती सम मिलती है। वहाँ इतनी ठंढ होती है कि गरमी के दिनों में भी कपड़ा ओढ़ने की ज़रूरत पड़ती है। वहाँ इन लोगों की अक्सर आमद-रफ़्त रहा करती है।

और लोग समझते हैं कि ये बड़े जादूगर हैं और दूसरे लोगों पर टोना कर दिया करते हैं। पर मुझे इस पर विश्वास नहीं। क्योंकि मैं स्वयं अमरकंटक गया हूँ और वहाँ इन लोगों से बात चीत की है। ये लोग बड़े सीधे, सच्चे और मिहनती होते हैं। परन्तु ये मिलते कम हैं। यदि इनके साथ कोई थोड़ा भी सख़्ती का बर्ताव करे तो ये उसके पूरे दुश्मन हो जाते हैं और फिर उसकी जान लिये बिना नहीं रहते। यदि इन्हें शिक्षा दी जाय तो संभव है इनकी जंगली आदतें छूट जायँ और ये थोड़ा बहुत सभ्य हो जायँ। शिक्षा-विभाग के अधिकारियों को इस पर ध्यान देना चाहिए।

शिवप्रसाद शर्म्मा।

सलज्जा।

(१)

कर धरे चिबुक पर रुचिर महा,
सङ्कुचित हुई सी खड़ी यहाँ।
अवलोक तुझे लज्जिते प्रिये!
लज्जित लज्जा भी आज हिये॥

(२)

रसना-विहीन है दृष्टि यदा,
है रसना दृष्टि-विहीन सदा।
फिर तेरा अनुपम रूप अहा!
क्यों कर यथार्थ जा सके कहा?

(३)

हो पुष्प-भार से नम्र लता
धारण करती जो सुन्दरता
यह तेरी मञ्जुल-मूर्त्ति-छटा
देती है उसका मान घटा॥

(४)

कर ओट वदन को अञ्चल की
तूने जो दृष्टि अचञ्चल की।
जिसने यह रूप निहार लिया
मानों अपना मन हार दिया॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५)

लम्बित नितम्ब-पर्यन्त पड़े
हैं मानों काले नाग अड़े।
ये तेरे कोमल बाल बड़े
हर लेते हैं मन खड़े खड़े॥

(६)

होकर जब चन्द्र कलङ्कित भी
प्रकटित होते रुकता न कभी।
फिर तव मनोज्ञ मुख देख कहीं
आश्चर्य कौन जो छिपे नहीं॥

(७)

कुछ मुँदे और कुछ खुले हुए
सम-भाव परस्पर तुले हुए।
ये देख विलोचन बड़े बड़े
शतपत्र सड़ेंगे पड़े पड़े॥

(८)

पाई न प्रभा पङ्कज-गण में
देखी न लालिमा दर्पण में।
इन गोल कपोलों की सुषमा
रखती है एक नहीं उपमा॥

(९)

निकला प्रकोष्ठ भर जो पट से
सटका सा कुछ जङ्घा-तट से।
शोभित तेरा दक्षिण कर यों
सरिता-तट सुन्दर पुष्कर ज्यों॥

(१०)

भेदन करके आच्छादन को
तन की द्युति मोह रही मन को।
अति निपुण सघन-तम-नाशन में
छिपती न यथा चपला घन में।

(११)

अवलोकन करती हुई मही
तू तो नीचे को देख रही।
जा सकता नहीं परन्तु कहा
जो कुछ तेरा मन देख रहा॥

(१२)

यों देख तुझे हे मनोहरे!
आश्चर्य्य नहीं यदि जी न भरे।
सुखकर सुधांशु पर दृष्टि दिये
होते क्या तृप्त चकोर हिये?

कृत्रिम दाँत।

कृत्रिम दाँतों का प्रचार अब इस देश में भी बढ़ता जाता है। जिनके दाँत गिर जाते हैं वे कृत्रिम दाँत लगवा कर उनसे असली दाँतों का यथेष्ट काम लेते हैं। ये दाँत, यदि किसी अच्छे दन्त-वैद्य के यहाँ से लिये जाँय तो, बिलकुल असली दाँतों की तरह मालूम होते हैं, इच्छानुसार निकाल लिये जा सकते हैं और साफ़ करके फिर लगा दिये जा सकते हैं।

अमेरिका वालों की तरह व्यापार-कुशल और किसी देश के आदमी नहीं हैं। वहाँ जैसे नाक, कान, हाथ और पैर आदि शरीर के कृत्रिम अवयवों के कारख़ाने हैं वैसे ही दाँतों के भी कारख़ाने हैं। फिलाडेलफिया में एक कारख़ाना दाँतों का इतना बड़ा है कि दुनिया में और कोई कारख़ाना उसकी बराबरी नहीं कर सकता। उसमें कोई ८० लाख दाँत हमेशा बने बनाये तैयार रहते हैं। इस कारख़ाने के बने हुए दाँत जहाज़ों पर लद कर दूर दूर तक के देशों को भेजे जाते हैं। यहाँ तक कि अफ़रीका, तिब्बत और तातार तक से उनकी माँग आती है। पहले हर एक दन्त-वैद्य को ख़ुद ही अपने छोटे से कारख़ाने में दाँत बनाने पड़ते थे। पर अब इसकी कोई ज़रूरत नहीं रही। अब बड़े बड़े कारख़ानों से सब तरह के दाँत मँगा लिये जाते हैं और जिस समय जैसे दाँतों की ज़रूरत होती है उस समय वैसे ही दाँत जबड़े में लगा दिये जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

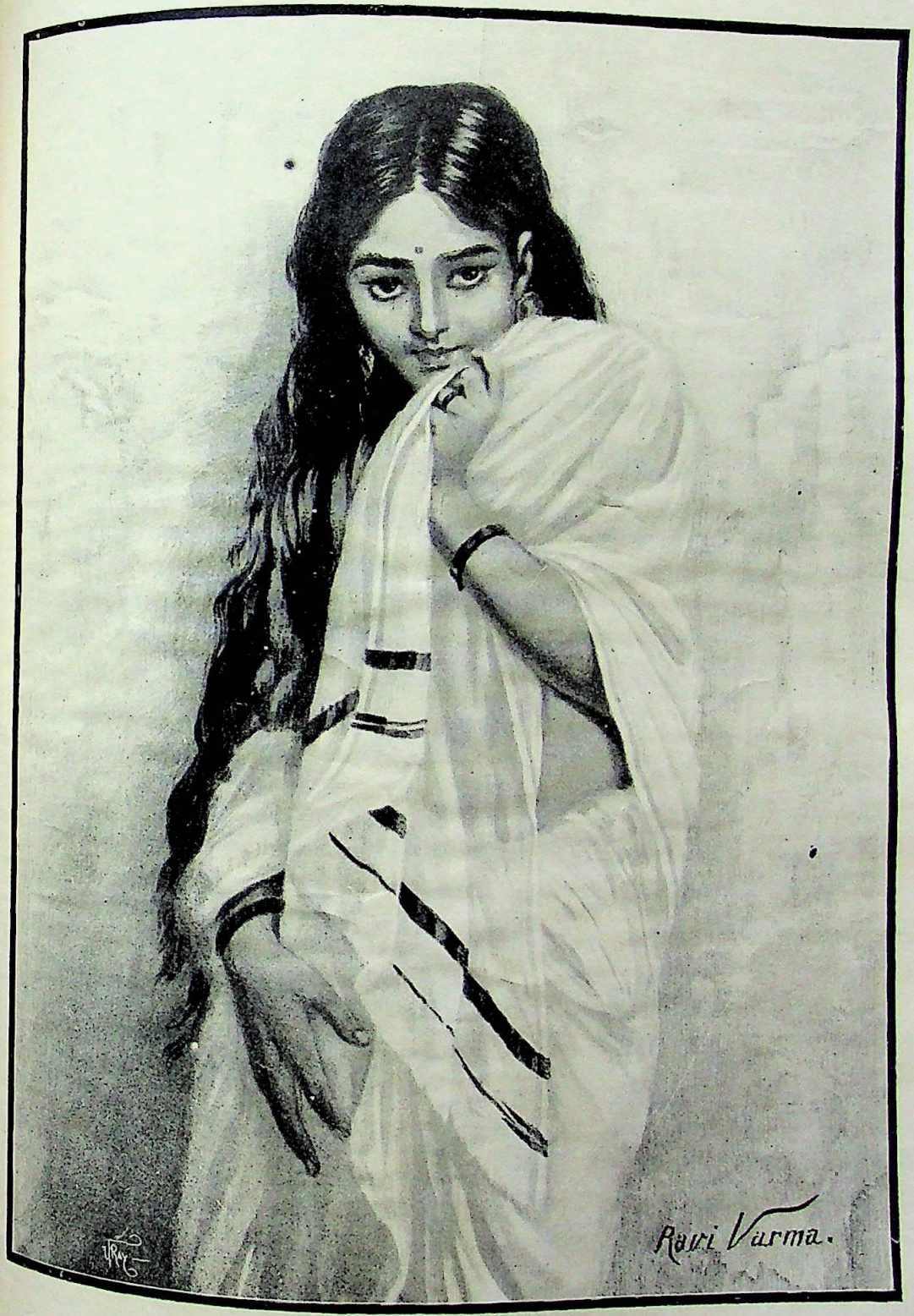

सलज्जा ।

लज्जा-समान आभरण कहीं, होता है एक प्रधान नहीं ।
है वेश-भाव अद्भुत जिसका, दृष्टान्त सलज्जा है इसका ॥

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी समय कृत्रिम दाँत हड्डियों के बनाये जाते थे। हाथी-दाँत भी इसके लिए काम आता था। पशुओं के दाँत भी आदमियों के मुँह की शोभा बढ़ाते थे। यहाँ तक कि मरने के बाद आदमियों के दाँत उखाड़ लिये जाते थे और ज़िन्दा आदमियों के मुँह में रक्खे जाते थे। पर अब वे बातें गईं। विज्ञान ने कृत्रिम दाँतों के बनाने की अब और ही तरकीबें निकाली हैं। हाथी-दाँत और दूसरे जानवरों की हड्डियों के बने हुए दाँत बहुत जल्द ख़राब हो जाते थे। वे सड़ने लग जाते थे और वे तरह बदबू करते थे। मुर्दा आदमियों के दाँत लगाने की याद करके तो लोग घबरा उठते थे। इससे पुरानी चालें चल गईं। अब पोर्सलेन नामक चीनी मिट्टी की तरह की एक चीज़ के दाँत बनाये जाते हैं। इनके सड़ने गलने या घुलने का डर नहीं रहता। कहीं कहीं शंख के भी दाँत बनते हैं। पर पोर्सलेन के सर्वोत्तम होते हैं। पोर्सलेन में सबसे बड़ा गुण यह है कि इसके दाँतों पर असली दाँतों का ऐसा रंग चढ़ाया जा सकता है।

अमेरिका के दाँत के कारख़ानों में अनेक प्रकार की कलें चलती हैं और हज़ारों आदमी काम करते हैं। काम करने वालों में औरतें ही अधिक होती हैं। उनको रंग का ज़ियादह पहचान होती है। रंगे हुए दाँतों के रंग में यदि थोड़ा भी फ़रक होता है तो तजरिबेकार स्त्रियाँ झट उस ऐब को जान लेती हैं, पर पुरुष नहीं जान सकते। इसी तरह दाँतों के बनने वग़ैरह में यदि ज़रा भी दोष रह जाता है तो बारीक हाथ से छूकर स्त्रियाँ उसे जान लेती हैं।

पोर्सलेन कई चीज़ों से मिल कर बनता है। रसायन-शास्त्र के जानने वाले ख़ूब परीक्षा करके उसे बनाते हैं। पहले वह मिट्टी में जलाया जाता है। जब वह तेज़ आग से लाल हो जाता है तब निकाल कर ठंढे पानी में डाला जाता है। ठंढा होने पर उसके ऊपर का मैल इत्यादि साफ़ कर दिया जाता है। इसके बाद वह कलों में ख़ूब बारीक पीसा जाता है। तब और कई एक चीज़ें मिला कर उसकी बट्टियाँ सी बना ली जाती हैं। इस समय वह ख़ूब चमकदार हो जाता है। इसी के दाँत बनते हैं और बन जाने पर उनके ऊपर रंग चढ़ा कर जिला दिया जाता है।

दाँतों के भी फैशन होते हैं। कोई किसी फैशन के दाँत पसन्द करता है कोई किसी फैशन के। कारख़ानों में सब फैशनों के लिए अलग अलग साँचे बनाने पड़ते हैं। कारीगर, जो विशेष करके स्त्रियाँ होती हैं, हाथ से दाँत बना कर इन साँचों में रखते हैं। तब साँचे का मुँह बन्द कर दिया जाता है और वह भट्टी में रख दिया जाता है। जब आग से पक कर दाँत ख़ूब मज़बूत हो जाते हैं तब वे साँचे कारख़ाने के उस हिस्से में भेजे जाते हैं जहाँ दाँतों की सफ़ाई होती है और उनके किनारे रेत कर असली दाँतों के ऐसे बनाये जाते हैं। इसके बाद वे दुबारा बहुत तेज़ आग की भट्टी में पकाये जाते हैं। वहाँ से निकालने पर उनकी परीक्षा होती है और स्त्रियों के कर-कमलों का स्पर्श पाकर अलग किये जाने से जो बच जाते हैं वे रंग और जिला दिये जाने पर दिसावर को जाने के लिए तैयार होते हैं।

प्रायः २५ रंग के दाँत बनाये जाते हैं। पर योरप और अमेरिका की कोई कोई शौक़ीन औरतें कभी कभी किसी विलक्षण रंग के दाँत मँगा बैठती हैं। या जिन आदमियों के दाँत तम्बाकू पीने से और रंग के हो जाते हैं वे उसी रंग के दाँत माँगते हैं। तब कारख़ाने वालों को बड़ी होशियारी से काम करना पड़ता है।

कारख़ाने के सब विभागों के कुशल और तजरिबेकार कारीगर और रासायनिक सब सोच समझ कर और कई बार परीक्षा करके नई तरह के दाँत बनाते हैं।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्च-पुरावृत्त।

क्या रे पाठक, शायद आप समझते होंगे कि मैं आपको आज रामायण, महाभारत या पुराणों के अन्तर्गत पाँच पुरानी घटनाओं को सुनाऊँगा। अथवा पंचकर्म्मेन्द्रिय, पंचज्ञानेन्द्रिय, पंचप्राण या पंचभूतों का उल्लेख करूँगा। यदि आप ऐसा समझते हों तो मुझे अफ़सोस है कि आपका अनुमान ठीक नहीं। मैं आज आपको वे "पंच-पुरावृत्त" सुनाना चाहता हूँ जो केवल हिन्दी भाषा के जाननेवालों को प्रायः न मालूम होंगे और इसलिए, आशा है, कि यह लेख सर्वसाधारण को रुचे। इन पाँच पुराने वृत्तान्तों को मैं ठीक उसी भाँति लिखूँगा जैसा कि ईसाइयों का मत है। उसमें अपनी तरफ़ से नोन मिर्च मिलाकर उनके याथातथ्य को भ्रष्ट करना मैं कदापि नहीं चाहता। ईसाइयों का विश्वास है कि ये घटनायें ऐतिहासिक समय के पूर्व की हैं; अतएव अधिक कुतूहल-जनक हैं। कहीं कहीं पर यथासम्भव मैं इन घटनाओं की हिन्दू पौराणिक कथाओं से तुलना करने की भी कोशिश पाद-टीकाओं में करूँगा।

सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ने आरम्भ में आकाश और पृथिवी को सिरजा; तथा सितारों की रचना करके उनके मध्य में सूर्य को स्थापित किया; और सूर्य की चारों तरफ़ नक्षत्रों के परिभ्रमण के मार्ग नियुक्त किये। ईश्वर ने पृथ्वी को सब प्रकार से जीवधारियों के निवास के योग्य बनाकर उसमें अनेक भाँति के जीव उत्पन्न किये। तदनन्तर उसने भूमि की धूल से अपने स्वरूप में एक पुरुष की उत्पत्ति की और उसके नथुनों में जीवन का श्वास फूँका। यही पुरुष, जो आदम के नाम से प्रसिद्ध है, मानव-जाति का जनक हुआ। अदन में पूर्व की ओर एक वाटिका थी। उसी में आदम निवास करने लगे। उस वाटिका को प्रायः "ईडन का बाग़ीचा" कहते हैं। सुनते हैं ये सब काम छः दिन में समाप्त किये गये। सातवें दिन परमेश्वर ने विश्राम किया और उस दिन को पवित्र ठहराया।

सृष्टि (१)

अब तक ईसाई सप्ताह के अन्तिम दिन, रविवार, को विश्राम करते तथा ईश्वरीय कार्यों में ही व्यतीत करते हैं। आदम सब पशुओं के स्वामी हुए। उन्होंने प्रत्येक पशु का जो नाम रक्खा वही उसका नाम नियत हो गया। यद्यपि आदम का शरीर भी पशुओं की भाँति मांस, हड्डी, चमड़ा, लहू, चरबी इत्यादि से बना था तथापि एक बड़ा भारी भेद यह था कि मनुष्य की आत्मा परमेश्वर के स्वरूप से सादृश्य रखने के कारण अमर थी, अर्थात् शरीर के नष्ट हो जाने पर भी* नहीं मरती थी। दूसरा भेद मनुष्य और पशुओं में, जो ध्यान देने के योग्य है, यह था कि ज्ञान केवल मनुष्य ही में पाया जाता था। फिर, परमेश्वर ने आदम को गाढ़ी नींद में सुलाकर उसकी पसुलियों में से एक को निकाल लिया और उसके स्थान में मांस भर दिया। उसी पँसुली से एक स्त्री का निर्म्माण किया। यही पहली नारी, जो हौआ के नाम से प्रसिद्ध है, मनुष्य-जाति की जननी हुई। प्रसिद्ध अँगरेज़ कवि मिलटन ने इन मानव जाति के आदिमा

* हिन्दू लोग ब्रह्मा से लेकर कीट पतंग तक की आत्मा को अमर मानते हैं; पर ईसाई नहीं मानते। उनका विश्वास है कि मनुष्य के ही आत्मा होती है, जो मरती नहीं। पशुओं के आत्मा नहीं होती।

† ईसाइयों के आदम और हौआ की तुलना कुछ लोग तो हिन्दुओं की प्रकृति और पुरुष से करते हैं, कुछ ब्रह्मा और ब्रह्माणी से। परन्तु मेरी समझ में इनका यथार्थ मिलान मनु और सतरूपा के साथ घटित होता है। प्रथम तो सूक्ष्म प्रकृति और पुरुष को स्थूल आदम और हौआ के साथ मिलाना उपयुक्त नहीं। दूसरे पुरुष और प्रकृति ने तो स्थावर—जंगम—मय सम्पूर्ण सृष्टि की रचना की, पर आदम और हौआ ने केवल मानव जाति की वृद्धि की। क्योंकि मनुष्य की रचना ईसाई मत से स्वयं परमेश्वर ने की थी। ब्रह्मा और ब्रह्माणी वाली समता ठीक नहीं। क्योंकि मनुष्य की तुलना देवता के साथ नहीं शोभती। गोस्वामी तुलसीदास की एक चौपाई मैं नीचे उद्धृत करता हूँ, जिससे यह होगा कि मनु और सतरूपा के साथ आदम और हौआ का मिलान अधिकतर उपयुक्त है:—

स्वायम्भू मनु अरु सतरूपा।
जिनते भई नरसृष्टि अनूपा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिता-माता, आदम और हौवा, की स्वाभाविक छवि और रहन सहन की तसवीर अपने विचित्र ग्रन्थ "पारेडाइज़-लास्ट" में बड़ी ही ख़ूबसूरती के साथ उतारी है।

स्त्री और पुरुष, ये दोनों जन, परम सुख, शान्ति और स्वतन्त्रता से ईडन के बाग़ीचे में विहरण किया करते थे। न तो इन्हें दुःख-शोक था और न चिन्ता। परमेश्वर की ओर से इन्हें केवल एक ही बात का निषेध किया गया था। वह यह कि वे 'विद्यावृक्ष' के फल न चखें। जब तक इन लोगों ने इस ईश्वरीय आज्ञा का पालन किया तब तक परम आनन्द के साथ उनके दिन बीते। परन्तु कुछ काल बाद शैतान (एक विद्रोही फ़रिश्ता) ने सर्प बन कर हौआ को बहकाया और हौआ ने अपने पति आदम को। इस-का परिणाम यह हुआ कि उस दम्पति ने ईश्वरीय आज्ञा का उल्लंघन करके निषिद्ध फल का भक्षण किया। ईसाई मत के अनुसार यही उल्लंघन संसार में पाप तथा पाप के फल, दुःख, की जड़ है। यही मनुष्य का पतन है। फल खातेही दोनों की आँखें खुल गईं और दोनों समझने लगे कि वे नंगे हैं। लज्जा से अभिभूत होकर पुरुष और स्त्री दोनों ही ने चाहा कि अपने अपने उत्पादक भागों को वे ढाँपें। परन्तु, हाय! वहाँ वस्त्र कहाँ? लाचार उन लोगों ने गूलर के पत्तों से अपने गुप्त अंगों का किसी तरह आच्छादन किया। सर्वान्तर्यामी परमेश्वर ने इन घट-नाओं को जान कर आदम, हौआ और सर्प, तीनों को शाप दिया।

पतन (२)

आदम को यह शाप दिया कि—"तू जिस धूल से बना है उसी धूल में जब तक न मिल जायगा तब तक तुझे अपने ललाट के पसीने से रोटी प्राप्त करनी पड़ेगी"। हौआ को शाप मिला कि—"तुझे गर्भ धारण और प्रसव के दारुण दुःख सहन करने पड़ेंगे। तेरी प्रीति अपने पति पर होगी और वह तुझ पर प्रभुता करेगा"। सर्प यों शापित हुआ कि—"तू सभी वन्य पशुओं में निकृष्ट होकर पेट के बल से चलेगा और अपने जीवन भर धूल छानेगा। तेरे वंश से मनुष्य वैर करेगा और तू भी उसकी ऐंड़ी काटेगा"। इन शापों के अनन्तर आदम और हौआ परमेश्वर की विशेष अनुकम्पा और रक्षा के पात्र न रहे। उन्हें पहले बिना परिश्रम ही भोजन मिल जाता था; पर अब मेहनत करनी पड़ी। पहले वे नंगे धड़ंगे, निर्लज्ज से, बेपरवा रहा करते थे; पर अब उन्हें अपने शरीर छिपाने के लिए कपड़ों की चिन्ता हुई। पहले स्त्री और पुरुष दोनों समान थे; पर अब स्त्री, पुरुष से नीची समझी जाने लगी। आदम और हौआ को उस समय कोई बचानेवाला न था। इससे वे शैतान के बहकाने से अनेक बुरे कर्मों को करने लगे, जिसका यथार्थ दंड भी उन्हें मिलने लगा। पहले वे दुःख, पश्चात्ताप और मृत्यु से बिलकुलही रहित थे; पर अब वही नहीं बल्कि उनके सन्तान भी इन दारुण पीड़ाओं के ग्रास में पड़ने लगे। उस बाग़ीचे में, जहाँ ईसाइयों के अनु-सार हमारे प्रथम माता पिता का वास-स्थान था, एक और विचित्र पेड़ था जिसके फल में यह अद्भुत शक्ति थी कि उसका खानेवाला अमर होजाय। परमेश्वर ने यह सोच कर कि कहीं आदम और हौआ उस वृक्ष के फल को चख के अमर न होजायँ उनको ईडन के बाग़ीचे से बाहर निकाल दिया। इस अमृत-फल के देनेवाले वृक्ष का नाम "जीवन-वृक्ष" बतलाया जाता है।

ईसाई कहते हैं कि ऐसी दशा में भी परमेश्वर ने आदम और हौआ पर दया दिखाई और आकाश-वाणी द्वारा कहा कि एक कन्या से एक पुरुष उत्पन्न होगा जो अपरिमित विपत्तियाँ झेल कर सर्परूपी शैतान के जाल से मानव-जाति का परित्राण करेगा। उसी ईश्वरीय वाक्य के अनुसार सृष्टि के प्रारम्भ से, अर्थात् आदम के समय से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४००३* वर्ष बाद और आज से १९०५ वर्ष पूर्व, जूड़िया प्रान्त के बेतुलहम नामक नगर में एक बालक का जन्म हुआ। उस समय जूड़िया में हेरड नाम का राजा राज्य करता था। यही बालक हज़रत ईसा अथवा क्राइस्ट, के नाम से प्रसिद्ध ईसाई धर्म्म का संस्थापक हुआ।

प्रतिज्ञा (३)

आज्ञा-भङ्ग के अनन्तर भी आदम और हौआ दोनों ईश्वर के यहाँ प्रार्थना करने वाले थे। ईश्वर की प्रसन्नता के लिए उन्हें किसी निरपराध पशु का बलिदान भी करना पड़ता था। यद्यपि पशु-बलि मनुष्य के बदले में काफ़ी नहीं थी तथापि इस बात की सूचक तो अवश्य थी कि हमारे आदिम माता पिता का विश्वास उस आगामी परित्राणकर्त्ता में था जो अपनी जान की बलि देकर उन्हें तथा उनके सन्तान, मानव जाति, को ईश्वर से मिलाकर उद्धार करेगा। ९३० वर्ष जीवन धारण करने के अनन्तर आदम का देहान्त हुआ।

आदम का पहला बेटा केन किसानी का काम और दूसरा अबिल चरवाहे का काम करता था। अबिल ने अपनी भेंड़ी के एक बच्चे का बलिप्रदान किया जिसे ईश्वर ने स्वीकार कर लिया; परन्तु उसके बड़े भाई केन ने जो बलि की वह उसके श्रद्धाहीन होने के कारण परमेश्वर को स्वीकृत न हुई। यह बलिप्रदान पृथ्वी पर "प्रथम वध" समझा जाता है। तदुपरान्त केन के पिता ने उसे उस अपराध के कारण घर से निकाल दिया। आप लोग ख़याल करते होंगे कि केन पर्वत के कन्दरों वा वृक्षों की छाया में रहता होगा। परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। जब उसके अनेक सन्तान हो गये तब उसने बहुत से मकानों को बनवाकर एक नगर बसाया। उस नगर से पवित्रता के दिनों का स्मरण बिलकुल जाता रहा। परन्तु आदम के घर की यह दशा न थी। वहाँ अब तक भी पवित्रता और दया-दाक्षिण्य की बातों का कुछ कुछ स्मरण था। इससे आदम का तीसरा पुत्र, सेथ, और उसके सन्तान कुछ पुण्य-कर्म्मों में भी रत थे। केन के पड़पोते लामेक ने एक विवाह के नियम को तोड़ कर दो स्त्रियों से विवाह कर लिया। पाप कर्म्म के अनन्तर लामेक के हृदय से अनुताप भरे विलाप के जो शब्द निकले उन्हीं से एक गीतमय ग्रन्थ बन गया है, जो "आदिकाव्य" कहा जाता है। कहते हैं कि इन्हीं गीतों से एक प्रकार का रूढ़ पूजा-विधान प्रारम्भ हुआ। इसके बाद अनेक प्रकार के वाद्य-यन्त्रों की रचना भी हुई। लामेक के प्रथम पुत्र जुवल ने कछुये की हड्डी या किसी दूसरे प्रकार के चौखटे, में ताँतों को तानकर वीणा और खोखले नरकट में कई छेद करके वंशी की सृष्टि की। ये वाद्ययन्त्र भोज, नाच और पूजा सम्बन्धी अनेक नये नये विधानों के अवसर पर बजाये जाते थे। लामेक के दूसरे पुत्र जबल ने पहले पहल तम्बू ईजाद किया जो बकरी के रोयें से बनाया गया था। यह तम्बू एक चरागाह से दूसरी चरागाह में सर्वदा भ्रमण करनेवाली पशु चराने वाली जाति के लिए अत्यन्त उपयोगी पदार्थ हुआ।

---

* यह लेन्ड मार्क्स आव् एन्शेन्ट हिस्ट्री (Landmarks of Ancient History) नामक ग्रन्थ के कर्त्ता का मत है। प्रायः सभी एन्टिक्रेरियन अर्थात् पुरातत्त्ववेत्ताओं और उनके अनुयायी लोगों का ऐसा ही मत है। इस मत के अनुसार सृष्टि हुए केवल लगभग ६००० वर्ष हुए हैं। आश्चर्य ही क्या है, यदि ये लोग हिन्दुओं के सत्य, त्रेता आदि चतुर्युगों को इन्हीं ६००० वर्षों के अभ्यन्तर गिन डालें। परन्तु हिन्दुओं के मत से तो केवल कलि ही, जिसका अभी प्रथम चरण बीत रहा है, ५००० वर्ष से अधिक व्यतीत हो चुका। इस विषय में हिन्दुओं का पंचाङ्ग सुदृढ़ प्रमाण है, जिसमें एक एक करके संवत्सर बढ़ाये जाते हैं, जिससे गणित की अशुद्धि का कोई डर नहीं। उक्त ग्रन्थकर्त्ता महाशय के हिसाब से तो महाभारत की लड़ाई से थोड़े ही पहले आदम और हौआ विद्यमान थे; परन्तु यह सिद्धान्त हम भारतवासियों को पूर्ण रूप से अनुपयुक्त और अविश्वसनीय तथा हास्यास्पद प्रतीत होता है। यदि सत्यादि युगों के वर्ष-प्रमाण और कल्पों का निर्णय पश्चिमीय पुरातत्त्ववेत्ताओं को सुनाये जाँय तो शायद हमारे सिद्धान्त उनको भी ठीक वैसे ही हास्यास्पद प्रतीत होने लगें जैसे उनके हम को। मैं यहाँ पर कह देना चाहता हूँ कि पूर्व्वोक्त ग्रन्थ से मैंने अनेक अंश इस लेख में लिये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय पुत्र तुबलकेन ने कठिन धातुओं की प्रयोग-विधि को प्रकाशित किया और पहले पहल पीतल के बर्त्तन बनाकर लोहे के हथियारों को ख़रीद पर बढ़ाने की रीति निकाली।

जहाँ कहीं पत्थर के बने हुए तीर के सिरे और छुरियाँ पृथ्वी में गड़ी हुई पाई जाती हैं वहाँ सबसे पुराने ज़माने के मनुष्यों के निवास का पता लगता है। यही पहला ज़माना है। पीतल के हथियार तथा अन्य पदार्थ जहाँ गड़े पाये जाते हैं, समझना चाहिए कि वहाँ बिचले ज़माने के लोग रहा करते थे। अन्त में लोहे के तेज़ हथियार होने से अन्तिम ज़माने के लोगों ने अपने पूर्वजों को परास्त करके अपना अधिकार जमाया। पुरानी किंवदन्तियों ने इन ज़मानों को चार युगों में बाँटा है*—स्वर्ण, रौप्य, ताम्र और लौह। कहते हैं कि स्वर्ण-युग में मनुष्यों की उम्र आज कल की अपेक्षा दसगुनी होती थी। उस समय शान्ति और सुख सर्वत्र दीख पड़ते थे; क्योंकि लोग निश्चल, पवित्र और शुद्ध हृदय के थे। यह दैवी-आज्ञोल्लंघन के पूर्व का समय है। रौप्य युग ठीक उसके बाद का ज़माना है। उस समय, प्रीति होने के कारण, मनुष्य वैसे सुखी तो नहीं थे; परन्तु अशान्ति भी नहीं फैली थी। ताम्र युग में छल, पाखंड और पाप ने अपने अधिकार ख़ूबही जमाये। लौह युग प्रचंड लड़ाई का ज़माना है।

सेथ के पुत्र, जो अन्यजातियों की अपेक्षा अब तक धर्म्मपरायण थे, पाप में प्रवृत्त होने लगे। कोई ऐसा स्थान न बचा जहाँ पर पाप और पाखंड ने अपना भयङ्कर प्रताप न फैला दिया हो। पृथिवी पर बड़े बड़े भयानक और क्रूर स्वभाव के जीव (अनुमानतः दैत्य) इधर उधर घूम कर उपद्रव मचाने लगे। काम, क्रोध, लोभ और मोह के फन्दों में बेतरह फँस कर मनुष्य विषयों में यहाँ तक आसक्त हो गये कि अत्याचारों की पराकाष्ठा होगई। मनुष्य की सभी शक्तियाँ अधर्म्म की रक्षा में प्रवृत्त हो गईं। दीर्घ आयु और प्रचंड बल, पाप के पूरे सहायक बन गये। प्रिय पाठक, इसी घोर समय में सेथ का पुत्र नूह, जो धर्म्मी और सिद्ध पुरुष था, सब लोगों को समझाने और चेताने लगा। उसने कहा कि इन सब पाप कर्म्मों के फल, अनेक प्रकार के दुःख, अवश्य भोगने पड़ेंगे। यदि तुम लोग मेरी बात न मान कर पापों से निवृत्त न होगे तो इसका अति विषम परिणाम होगा।

विप्लव (४)

एक बड़ा भारी विप्लव होगा और वह सम्पूर्ण पापियों को जलप्रवाह में बहा ले जायगा। परन्तु नक्कारख़ाने में तूती की आवाज़ कौन सुनता है? सब लोग ज्यों के त्यों पापासक्त ही बने रहे। निदान जब किसी ने नूह का कहना न सुना तब उसने ख़ुद गोफर नाम की लकड़ी का एक जहाज़ तैयार किया और उसके भीतर, बाहर, सर्वत्र, राल का चिकना लेप कर दिया गया। उसने उस जहाज़ में अनेक कोठरियाँ बनवाईं। जहाज़ की लम्बाई ३०० हाथ, चौड़ाई ५० हाथ, और उँचाई ३० हाथ, ईसाइयों की पुरानी धर्म्म-पुस्तक में लिखी है। नूह ने उस जहाज़ पर खाने पीने की सामग्रियों को भी सज्जित किया और अपनी स्त्री, पुत्र और पतोहुओं के साथ उसमें जा बैठा। इतनाही नहीं, बल्कि उसने खाने और बलि देने के लिए घराऊ पशुओं के सात सात जोड़े और दूसरे पशुओं के एक एक जोड़े उस जहाज़ पर रख लिये। नूह के इस भाँति सचेत होजाने पर ऐसा मूसलाधार पानी बरसने लगा कि समुद्र और नदियों ने बढ़ कर सम्पूर्ण पृथ्वी को जलप्लावित कर दिया। इस समय नूह की उम्र ६०० वर्ष की थी। समूची पृथ्वी पूरे एक वर्ष तक पानी में डूबी रही। नूह के जहाज़ में जो लोग सुरक्षित थे वही बचे। शेष समग्र पृथ्वी-मंडल पर जो कुछ था नष्ट होगया। पहले युगों के

* इन चार युगों की तुलना हिन्दुओं के सत्य, द्वापर, त्रेता और कलियुगों के साथ होती है जिनमें क्रमशः धर्म्म की अवनति और अधर्म की उन्नति होती गई तथा मनुष्य की उम्र भी यथा-क्रम कम होती गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पापों के धोये जाने से पृथ्वी-मंडल पवित्र और स्वच्छ होगया। पृथ्वी की हर एक जाति ने इस विप्लव * के वृत्तान्त को, किसी न किसी प्रकार से, स्मरण रक्खा है। इस सार्वभौमिक प्रलय, तथा कुछ लोगों के जहाज़ पर बचजाने की कहानी, पृथ्वी के दूर दूर देशों में प्रचलित हैं।

बहुत से ईसाई विद्वानों का अनुमान है कि आदम के समय से लगभग १५४० वर्ष बाद यह विप्लव हुआ था। पर इसका कोई दृढ़ प्रमाण नहीं है। वर्ष के अन्त में आरमीनिया देश के आरारात पहाड़ पर नूह की किश्ती ठहर गई। तब नूह सपरिवार उससे उतरे। उस समय पानी घट कर यथास्थान चला गया था और पृथ्वी सूख सी गई थी। परमेश्वर ने नूह से प्रतिज्ञा की कि अब से सृष्टि जलाप्लावन के द्वारा नष्ट न की जायगी। मेघों में इन्द्रधनुष इस ईश्वरीय प्रतिज्ञा का चिह्न नियत किया गया। तब से आज तक इन्द्रधनुष परमेश्वर की दया का सूचक है।

जहाज़ से उतरने पर मनुष्यजाति ने अपने को पश्चिमी एशिया में पाया। यह वह स्थान है जहाँ भिन्न भिन्न जातियों के लोग अपनी जड़ और अपने पूर्वजों का आदिम निवास बताते हैं। जहाज़ के लोग निकटवर्त्ती दजला और फ़ुरात नदियों के किनारों पर मकान बनाकर रहने लगे। अब नूह और उसके तीनों पुत्र शेम, हेम और जेफ़ेट तथा उनकी भार्यायें मनुष्य-संसार में बच रही थीं। कहते हैं कि नूह के इन्हीं तीनों बेटों के सन्तानों से सारी पृथ्वी बसी। हेम ने अपने पिता का निरादर किया, इससे उसे शाप हुआ कि उसके सन्तान अपने भाइयों के अनुचर बन कर रहेंगे। जेफ़ेट अपने भाई शेम के साथ एक ही तम्बू में रहने लगा। फ़ुरात नदी के किनारे उपजाऊ भूमि में हेम का परिवार बसा। इन लोगों ने यहाँ एक नगर बसाने की इच्छा की और दूसरे विप्लव को रोकने की अभिलाषा से चिकनी मिट्टी की ईंटों से एक ऐसा मीनार बनाना प्रारम्भ किया जिसकी चोटी आसमान को छू ले। परन्तु परमेश्वर ने अपने विरुद्ध ऐसी कारर्वाई देख कर न जानें क्या कर दिया कि अचानक वे लोग एक दूसरे की बोली समझने में असमर्थ हो गये। इसलिए मीनार का बनना रुक गया। पहले सब लोग एकही भाषा बोला करते थे; पर अब भाषा में बड़ा गोलमाल हो गया। उस मीनार के बनाने वाले जहाँ तहाँ तितर बितर हो गये। उसी समय से उस स्थान का नाम 'बेबल' पड़ा, जिसका अर्थ है गोलमाल।

प्रसार (५)

उसी समय से मनुष्य-जाति अनेक सम्प्रदायों में विभक्त हो गई। भिन्न भिन्न सम्प्रदायों की भिन्न भिन्न भाषा और भिन्न भिन्न चाल ढाल हो गई। इतिहास-वेत्ताओं का अनुमान है कि पश्चिमी एशिया के मनुष्य थोड़े ही दिनों में मध्य-एशिया तक फैल गये। उनका ख़याल है कि बहुत पुराने समय में, जिसका ठीक पता नहीं लगता, आर्य्यों का प्राचीनतम निवासस्थल मध्य-एशिया ही था। वहाँ ही ग्रीक, रोमन, अँगरेज़ और अन्यान्य योरपीय क़ौमें तथा पारसी और उच्चकुल के हिन्दू एक रहा करते, एक भाषा बोला करते और एक ही

* हमारे पुराणों में विष्णु के वराहावतार के प्रसंग में विप्लव का वर्णन है, जो नूह के विप्लव से सादृश्य रखता है। विष्णु-भगवान् ने वराह का रूप धारण कर हिरण्याक्ष नामक दैत्य को मारा और पृथ्वी को, जिसे वह दैत्य चुरा ले गया था, फिर लाकर जलराशि पर स्थापन किया। एक महाशय "सेन्ट्रल हिन्दू कालेज मैगेज़ीन" नामक मासिक पत्रिका में अवतारों का आभ्यन्तरिक अर्थ समझाते हुए वराहावतार के विषय में लिखते हैं—"एक समय जब पृथ्वी जलमय हो रही थी पवनों (मरुत्) की शक्ति और वेग ने जल को यथायोग्य स्थान में कर दिया और पृथ्वी कीचड़ से निकले हुए एक शूकर के सदृश रूप में दिखाई देने लगी। पुराणों में इस महाजलाप्लावन का नाम हिरण्याक्ष, और पवन की शक्ति का नाम वराह, है। इसी कारण वर्त्तमान कल्प, वाराह कल्प कहलाता है। इस अवतार से बल की उत्कृष्टता प्रमाणित होती है"। इस विषय में परम वैष्णव जगत्प्रसिद्ध श्रीजयदेव जी ने अपने गीतगोविन्द काव्य में जो "वसति दशनशिखरे" इत्यादि लिखा है उसका भाव इन लेखक महाशय के कथन से नहीं मिलता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को मान कर चला करते थे। जब आर्यों की संख्या बहुत बढ़ गई तब वे एकट्ठे नहीं रह सके। अनेक दल बाँध कर, भिन्न भिन्न समयों में, भिन्न भिन्न दिशाओं में, दूसरे दूसरे स्थानों में बसने के लिए वे प्रस्थान करने लगे। कई दल उत्तर-पश्चिम की ओर गये और योरप को जीत कर वहीं बस गये। जो लोग मध्य-एशिया में रह गये थे वे धीरे धीरे दक्षिण-पूर्व की ओर फैलने लगे और हिन्दू-कुश पर्वत को पार करके पंजाब में आये। कालान्तर में इस दल की दो शाखायें हो गईं। एक पश्चिम को गई, दूसरी पूर्व को। पश्चिमी शाखा पारसी या ईरानी और पूर्वी शाखा हिन्दू के नाम से प्रसिद्ध हुई। यद्यपि परस्पर विभाग का नियम बेबल के आदिम प्रसार (फैलाव) के समय से बढ़ता ही गया तथापि गहरी जाँच करने से सब सम्प्रदायों में कुछ न कुछ सम्बन्ध का पता अब भी लगता है। धार्म्मिक किंवदन्तियों, भाषाओं और शकल सूरतों पर ध्यान देने से यह बात भली भाँति सिद्ध होती है कि सब सम्प्रदायों और जातियों के मनुष्यों की जड़ एक ही है। बाहरी बनावट को लेकर मनुष्य-जाति का विभाग करने से दुनिया में तीन प्रकार के मनुष्य दिखाई देते हैं—निग्रो, मंगोलियन और काकेशियन। इन तीनों का वर्णन मैं यहाँ पर नहीं किया चाहता। हिन्दू मध्य-एशिया से आये—इस पश्चिमी सिद्धान्त पर मेरी श्रद्धा नहीं है। मध्य-एशिया वाला ऐतिहासिक निर्णय कहाँ तक सत्य है, इसका विचार मैं किसी दूसरे समय करूँगा।

बेबल के प्रसार से ही आधुनिक इतिहास आरंभ होता है। इस प्रकार ईसाई-धर्म्म के अनुकूल "संसार की सृष्टि"—"मनुष्य का पतन"—"ईश्वर की प्रतिज्ञा" "नूह का विप्लव" और "बेबल का प्रसार" इन प्राचीन पाँच घटनाओं का संक्षेप वर्णन पाठकों को सुना कर मैं अपना लेख समाप्त करता हूँ।

इस लेख में कही गई कितनी ही बातें पाठकों को नई और अटपटी मालूम देंगी। पर ये बातें ईसाई धर्म्म के अनुयायियों को वैसी ही मान्य हैं जैसी कि वेद, वेदाङ्ग, श्रुति, स्मृति, पुराण और उपपुराणों में कही गई बातें हम लोग हिन्दुओं को मान्य मालूम होती हैं।

जितने धर्म्म, जितने मत, जितने सम्प्रदाय इस पृथ्वी-मण्डल पर हैं सबमें कुछ न कुछ विशेषता अथवा भिन्नता अवश्य ही होती है। यदि ऐसा न हो तो उनकी विशेषता ही नष्ट हो जाय। अतएव सरस्वती के जो पाठक ईसाई धर्म्म से सम्बन्ध रखने वाले इन पाँच पुराने वृत्तान्तों से अनभिज्ञ होंगे उन्हें इनके ज्ञान से ज़रूर कुछ न कुछ कुतूहल और अचरज होगा। तथापि इससे उनकी तद्धर्म्मसम्बन्धिनी अभिज्ञता ज़रूर ही बढ़ जायगी। और इस लाभ को थोड़ा न समझना चाहिए।

दामोदरसहायसिंह।

भवन-निर्माण-कौशल।

भूमिका।

विधि हरि हर के पद पदम बन्दउँ बारहिंबार।
जे सिरजहिं पालहिं जगत करहिं पुनः संहार॥ १॥

बन्दउँ बिसुकर्मा बहुरि संज्ञा-जनक सुजान।
निजतनया हित जिन कियउ रविमुख एक समान॥ २॥

निरमाई लंकापुरी रचे अमर आगार।
सुरगन के कारज कियेउ राछस जन उपकार॥ ३॥

पांडव-मनिमय-भवन के निरमाता मय-नाम।
दानव जे त्रिपुराधिपति तिन्हकहँ करउँ प्रनाम॥ ४॥

जुग तीनहु बीते गए देवासुर निज धाम।
निमिति तिन्ह की लुप्त सब रहेउ एक बस नाम॥ ५॥

नाम मात्र की सरन लइ नल-भूपाल समान।
कलि-छल-बल तें बचि गयउ कला रत्न 'निर्मान'॥ ६॥

भयउ ताहि के तेज कर देस देस विस्तार।
देवालय सुन्दर बने मुदित भयउ संसार॥ ७॥

गौरी-सुवन मनाइ करि सारद वासव सेस।
रहस 'भवन-निर्मान' कर विवरन लिखउँ असेस॥ ८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत बाबुल मिस्र अरु गाथ रोम यवनान।
चीन रूम अरु अरब कर कौसल करउँ बखान॥ ९॥
या पुस्तक के जे मनुज पढ़इँ दसहुँ अध्याय।
तुष्ट होहिँ त्वष्टा अवसि कलिमल कछु नसिजाय॥ १०॥

१—सतजुगी बातें।

श्रीमद्भागवत और अन्य प्रामाणिक पुराणेतिहास ग्रन्थों से हमको मालूम हुआ है कि आदि में श्री ब्रह्माजी ने पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश बनाये और फिर इनके मेल से सूरज चाँद, तारे, बादल, वृक्ष, पशु, पक्षी वग़ैरा स्थावर जंगम संसार की रचना की। जब प्रकृति के सब काम ठीक ठीक होने लगे तब परब्रह्म श्री विष्णुभगवान् की आज्ञा से ब्रह्माजी ने देवता, असुर, गंधर्व, अप्सरा, किन्नर वग़ैरा लोगों की सृष्टि की। कुछ समय पीछे किसी कारण से राक्षस प्रगट हुए, और फिर बहुत समय बीतने पर देवताओं के अनुरोध और विष्णुभगवान् की अनुमति से यथासमय मनुष्य-जाति की उत्पत्ति हुई। इससे सिद्ध हुआ कि निर्माण-विद्या के आदि मूल श्री ब्रह्माजी हैं।

ब्रह्माजी ने सृष्टि करते तो कर दी, मगर जब सृष्टि बढ़ने लगी तब वह घबराए। इधर देवताओं को तरह तरह के सुख भोगने की इच्छा हुई। उधर मनुष्य-जाति को सरदी, गर्मी और बरसात ने सताया और उसको विवश देख कर राक्षसों ने खाना शुरू किया। मनुष्य दुहाई देते हुए विष्णु-भगवान् के पास पहुँचे, तब सब की सलाह से ब्रह्माजी ने विश्वकर्मा को उत्पन्न करके अपना नायब बनाया और आज्ञा दी कि देवताओं के रहने के लिए अमरावती वग़ैरा नगर बनावें और उनकी हवाख़ोरी के वास्ते पुष्पकादिक विमान तैयार करें। इसी तरह असुरों को रहने के लिये ठिकाना बतलाया गया। अब रहे राक्षस सो उनसे मनुष्य-जाति की रक्षा करने का यह उपाय किया गया कि समुद्र के बीच में एक बहुत बड़े और ऊँचे पहाड़ पर एक बड़ा भारी क़िला बनाया गया और राक्षसों को उसमें रहने की आज्ञा मिली। यह सब नगर, क़िले और विमान विश्वकर्मा ने ब्रह्माजी के उपदेश और अपनी चतुराई से जैसे चाहिये थे वैसे ही निर्माण किये। और असुरों को छोड़ कर अन्य सब लोगों को पूरा पूरा आराम मिला। मनुष्यों के लिये कोई ख़ास इन्तिज़ाम नहीं किया गया, मगर ब्रह्माजी ने कृपा करके मनुष्य-जाति को यह ज्ञान और अधिकार प्रदान किया कि विश्वकर्मा की बनाई हुई चीज़ों को देख कर और अपनी ज़रूरत को समझ कर पृथ्वी के समस्त पदार्थों को यथेच्छ तोड़ जोड़ कर अपने काम और आराम की चीज़ें बना लेवे। मगर उसको यह स्मरण कराने के लिये कि वह देवता, असुर राक्षसों की तरह स्वतंत्र नहीं है, बल्कि देवताओं के भोजन बनाने के लिये पैदा किया गया है, उसके ज्ञान और अधिकार की यह सीमा बाँध दी कि किसी समय वह अपनी प्राण रक्षा और अपनी जाति की चिरस्थिति के साधनों के सिवा और कुछ न कर सके। सृष्टि के आदि में मनुष्यों की संख्या कम थी और कन्दमूल, फल आदि जंगली चीज़ों की बहुतायत थी। इसलिये उस प्राचीन समय के लोग गुफाओं और कुटियों में रहते थे, और इन्हीं फल फूलों वग़ैरा को खाकर अपना निर्वाह करते और अपना समय भगवद्भजन में बिताते थे। जैसी उनकी ज़रूरियात थीं वैसा ही उनका ज्ञान और अधिकार था। जब कभी राक्षस उनको सताते थे या कोई ऐसी आफ़त पड़ती थी जिससे बचना उनकी शक्ति से बाहर था, तब देवता लोग अपने भक्तों को किसी तरह बचा लेते थे और पापियों को नष्ट होने देते थे। यह सतजुग की बातें हैं।

२—त्रेता और द्वापर की बातें।

श्री विष्णु-भगवान् की आज्ञा थी कि सुर और असुर आपस में न मिलें, मगर मर्त्यलोक में आने जाने के कारण इन दोनों जातियों के व्यक्ति कभी कभी मिल जाते थे। देवता भोले भाले थे, असुर लोग इनके घरों का बहुत कुछ भेद मालूम कर लिया करते थे। इस तरह से मय नामक एक असुर ने विश्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मा की विद्या का बहुत कुछ हाल मालूम कर लिया और उस विद्या के बल से असुरों के निवास-स्थान में त्रिपुर आदि बहुत अच्छे अच्छे नगर और मकान बनाये। अपनी चालाकी और देवताओं के भोलेपन की वजह से असुर लोग बहुत प्रबल हो गए, और एक दफ़े देवताओं से उनकी लड़ाई छिड़ गई। ख़ैर, मनुष्य-जाति की दी हुई आहुतियों के बल से देवताओं ने विजय पाई. मगर असुरों को परास्त करके देवता विषय-भोग में ऐसे आसक्त हुए कि मनुष्य-जाति को बिल्कुल ही भूल गये। मनुष्य-जाति पर आपत्तियाँ पड़ने लगीं, मगर कोई देवता उनकी रक्षा करने न आया। जब यह हालत हुई तो मनुष्यों ने अपनी रक्षा के उपाय निकाले। कुटियों और गुफाओं में अकेले दुकेले रहने के बदले वह गाँव बना कर रहने लगे। प्राकृतिक-खाद्य-पदार्थों के कम हो जाने की वजह से उनको खेती करने और दूधवाले पशु पालने की ज़रूरत पड़ी। लौकिक धन्धों में पड़ कर लोगों ने देवताओं की रसद में कमी कर दी, देवताओं ने अप्रसन्न होकर—रक्षा करनी तो दरकिनार—उन पर आपत्तियाँ डालनी शुरू कीं। मगर विष्णुभगवान् की कृपा से मामला ज़ियादा न बिगड़ने पाया। विद्वान देवताओं ने प्रतिज्ञा की कि जो मनुष्य जिस देवता की सेवा करे वही देवता उस मनुष्य की रक्षा करे। फिर क्या था? स्वार्थी मनुष्यों ने अपना काम सिद्ध करने और अपने वैरियों को हानि पहुँचाने की नियत से अपने अपने देवता पसन्द कर लिए। देवता भी अपने अपने भक्तों का पक्ष लेकर आपस में युद्ध करने लगे। नतीजा यह हुआ कि मनुष्यों ने इन रोज़ के झगड़ों से तंग आकर बड़े बड़े नगर बनाये और राजा और पुरोहित नियत करके देवताओं का काम इनके सुपुर्द कर दिया। देवता भी ईर्ष्या छोड़ कर परस्पर मिल गये और यथासमय मनुष्यों की सहायता करने लगे।

देवताओं को देखकर असुर भी मनुष्य की ख़ुशामद करने लगे, और जो जो काम उस समय मनुष्य जाति के ज्ञान और अधिकार से बाहर था उसको पूरा करने के लिये सहायता देने लगे। इसके बहुतेरे उदाहरण रामायण और महाभारत में मिलते हैं। जिस तरह उन युगों में देवताओं और असुरों ने मनुष्यों की तरफ़ से लड़ाइयाँ लड़ीं, उनके लिये अस्त्र, वस्त्र और शस्त्र बनाये, उसी तरह दोनों ने अपने अपने पक्ष के राजाओं के वास्ते महल तैयार किए, तरह तरह के रथ बनाए, और सब तरह की ओषधियाँ और सुख-सामग्रियाँ पैदा कीं। ग़रज़ त्रेता और द्वापर में ब्राह्मण और राजा देवताओं को बढ़िया बढ़िया खाने खिलाते थे और वे लोग सब काम जो इनकी सामर्थ्य से बाहर थे कर देते थे। ऐसा संबंध बहुत काल तक नहीं रह सकता था। राजा लोग काम क्रोध लोभ मोह के वश हो विषय-सेवन में लग गए, और देवता और असुर निराश होकर लोप हो गये। इन राजाओं की आँख बन्द होते ही द्वापर युग भी समाप्त हो गया, और जो बड़े बड़े महल और क़िले विश्वकर्मा और मयासुर ने बनाये थे, जो विलक्षण अस्त्र, वस्त्र और शस्त्र, तथा विमान और रथ जो देवताओं ने मनुष्यों के लिये भेजे थे वह सब के सब ऐसे ग़ायब हो गए जैसे हवा के झोंके से चिराग़ की लौ। द्वापर के अन्त में मनुष्य-जाति की सभ्यता वैसी ही रह गई जैसी सतजुग के अन्त में थी, भेद बस इतना ही था कि जैसा सतजुग में पाप का अभाव था, वैसे ही अब मनुष्यों को पाप ने आ घेरा।

३—कलजुगी बातें।

पाठक गण! हम और आप दोनों कलजुगी मनुष्य हैं। इसलिये आशा है कि यदि हम आपसे कलजुगी बातें करें तो आप न आश्चर्य करेंगे न बुरा मानेंगे, क्योंकि कलजुग का प्रभाव दोनों पर है। अब सुनिए कि जिस तरह दरिद्री ब्राह्मण स्वप्न में अमरावती का राजा हो जाता है, उसी तरह भारतवर्ष के इतिहास में त्रेता और द्वापर युगों की कथायें हैं। सच्ची बात यह है कि भारतवर्ष में सतजुग बीतने पर कलजुग आ गया न यहाँ त्रेता हुआ न द्वापर। हम फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याद दिलाते हैं कि हम इस वक्त कलजुगी बातें लिख रहे हैं :—भारतवर्ष के प्राचीन मनुष्य गुफाओं और पर्णकुटियों में रहते थे, कन्दमूल और पशुपक्षी खाकर अपना गुज़ारा करते थे। उस प्राचीन काल में न वर्ण थे न आश्रम। शनैः शनैः मनुष्य-संख्या के बढ़ने और भक्ष्य पदार्थों की कमी के कारण कृषि और पशुपालन के कर्मों ने उन्नति की। अपने अपने खेत की रक्षा करने के लिये किसानों को परिवार समेत झोंपड़ी डाल कर रहना पड़ा, हाथ की महनत बचाने के लिये तरह तरह के यंत्र और हथियार बनाने पड़े। जैसे जैसे मनुष्य-संख्या बढ़ती गई वैसे ही वैसे अन्न के उपजाने और आत्मरक्षा के उपाय निकलते आए। आत्मरक्षा का एक मुख्य साधन यह है कि रहने के वास्ते सुरक्षित और आराम का मकान मिले, मगर जब तक मनुष्य का चित्त प्रसन्न न हो तब तक कोई साधन लाभदायक नहीं, क्योंकि बग़ैर सुख के मनुष्य चिरायु नहीं हो सकता और सुख जब ही होता है जब हर एक काम मनुष्य की पसन्द के अनुसार हो। ईश्वर ने मनुष्य के स्वभाव में ही चिरायु होने की अभिलाषा पैदा कर दी है, इसलिए जो काम मनुष्य करता है वह अपने सुख को बढ़ाने ही की नीयत से करता है। जो सुख कर्मेन्द्रियों के द्वारा मनुष्य पाता है वह तो उसकी उम्र को बढ़ाता हो या न बढ़ाता हो, मगर जो सुख उसको ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा मिलता है वह अवश्य उसको दीर्घायु बनाने में मदद देता है। इन सब बातों को जान कर हर एक आदमी समझ सकता है कि हर एक देश में, और हर एक जाति में क्यों इस बात का प्रयत्न किया जाता है कि रहने के मकान यथाशक्य मज़बूत, स्वच्छ, सुखद और सुन्दर बनाए जावें।

भारतवर्ष में ऐसे सुन्दर मकानों का अभाव नहीं है, मगर यह याद रखना चाहिये कि जो मकान या मन्दिर आज कल बड़े बड़े शहरों में मिलते हैं, वह या तो विदेशियों के बनाए हुए हैं, या अन्य देशों में बने हुए मकानों की नक़ल करके बनाए गए हैं। भारतवर्ष में अन्य विद्याओं की अवस्था कुछ ही रही हो,—"भवन-निर्माण-कौशल" के विषय में हम दृढ़ता से कह सकते हैं कि इसका इस देश में हमेशा सर्वतः अभाव नहीं रहा तो न्यूनता तो अवश्य ही रही है। इसमें संदेह वही लोग कर सकते हैं जो इस विद्या से अनभिज्ञ हैं। अगर हमारे देश के बहुत से लोग हमारी इस कलजुगी बात पर हुज्जत करें तो हमको कुछ भी आश्चर्य न होगा। भारतवर्ष में कुछ मन्दिर और अन्य इमारतें ऐसी वर्तमान हैं जो ख़ास भारतवासियों ने अपनी ही योग्यता से बनाई हैं, विदेशी लोगों की सहायता का उनमें कोई निशान नहीं पाया जाता। ऐसी इमारतों को देख कर बहुत लोग ख़ुश होते हैं और घमंड से कहा करते हैं कि प्राचीन भारतवर्ष में स्थापत्यविद्या की बड़ी उन्नति थी। हमको उनकी इस कम समझी पर दया आती है। यह लोग सजावट को ही सौन्दर्य समझते हैं, या यों कहो कि इन्होंने 'तक्षण' (Sculpture) ही का नाम 'स्थापत्य' रख छोड़ा है। हम तक्षणकला को स्थापत्य से घटिया नहीं कहते, बल्कि कला-समुदाय में दोनों को बराबर दर्जे का समझते हैं, अपनी अपनी जगह दोनों कलायें बहुत ऊँचे दर्जे की हैं, मगर तक्षण को स्थापत्य समझ लेना, या इन दोनों में तक्षण को प्रधान मान लेना बड़ी भारी भूल है। इसमें सन्देह नहीं कि स्त्री की शोभा आभूषणों से बहुत कुछ बढ़ जाती है, मगर आभूषित का अर्थ रूपवती तो नहीं है? सर्वांग सुसज्जित स्त्री बहुत लोगों को अच्छी मालूम होती है—यह अपनी अपनी पसन्द की बात है—मगर 'आभूषण' एक चीज़ है और 'सौन्दर्य' दूसरी चीज़। हाथ, पैर, आँख, नाक तो प्रायः सब ही स्त्रियों के होते हैं, और भारतवर्ष में गहना भी हज़ारों स्त्रियाँ पहनती हैं, मगर क्या भारतवर्ष के शृंगार-रसिक कवियों ने अपनी कविता इन्हीं राज-कन्याओं या साधारण स्त्रियों पर ख़तम की है? नहीं! देखिए, एक कवि कहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

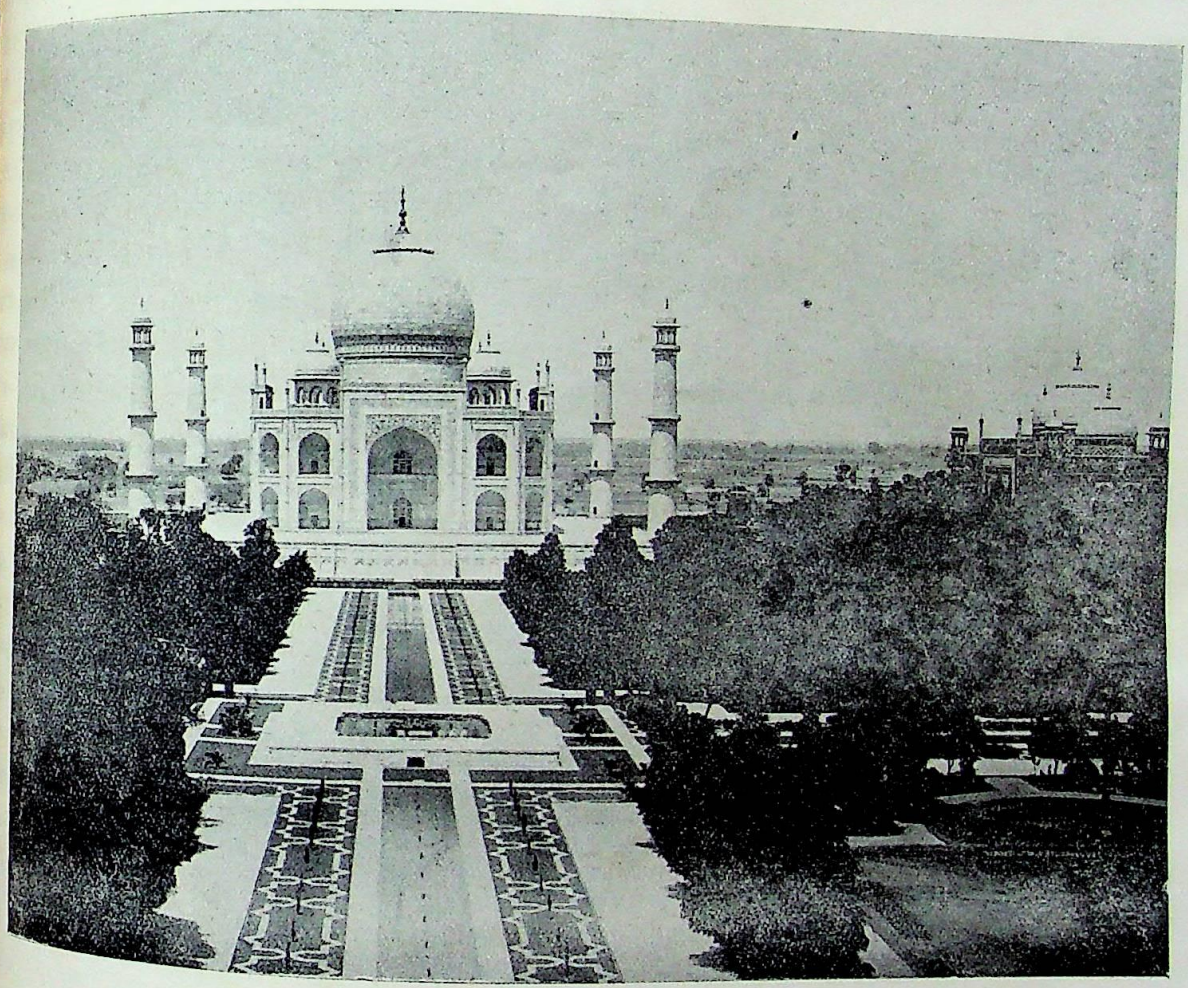

अवयवेषु परस्परबिम्बितेष्वतुलकान्तिषु राजति तत्ततोः ।
अयमयं प्रविभाग इति स्फुटं जगति निश्चिनुते चतुरोऽपि कः ॥

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहा! यह किसी दिव्य कामिनी के अलौकिक सौन्दर्य की कल्पना है, अथवा किसी ठीक ठीक निर्माण किए हुए मकान का यथार्थ वाक्चित्र?

खेद की बात है कि हिन्दी के प्रेमियों में बहुत कम लोग ऐसे हैं जो इस शास्त्र के तत्त्व को अच्छी तरह समझते हों और यही कारण है कि आज कल के हिन्दुस्तानी मकानों में स्तंभ, महराब, गुंबज़ और कलश के अनमिल संयोग दिखाई देते हैं। अगर इन मकानों के बनानेवाले मकान के स्तंभ आदि अवयवों के लक्षण और प्रयोजन जानते होते, तो वह ऐसी भूलें न करते, और विदेशी सभ्यजनों के मुँह से नक़लची या लकीर के फ़क़ीर न कहलाते!

पाठक गण, हमारे इस कलजुगी स्पष्टवाद से आप बुरा न मानिए। यदि आपको हमारी बात वृथा मालूम हो तो आप कृपा करके इस पुस्तक को शान्ति-पूर्वक शुरू से अख़ीर तक पढ़ जाइये। फिर आप चाहें जितनी गालियाँ हमको दें, हम बुरा न मानेंगे!

हाँ, गालियाँ देने से पहले आप एक काम कर रखें। जिस व्यक्ति को यूरोपवाले Architect और अरबवाले مهندس कहते हैं, उसके लिये संस्कृत में क्या नाम है? यदि आप इसका ठीक ठीक उत्तर देंगे तो हम मान लेंगे कि प्राचीन भारतवासियों ने Architecture में ऐसी ही दक्षता प्राप्त की थी जैसी तक्षण-कला अथवा दर्शनशास्त्र में।

४—साधारण बातें।

भला, अब ज़रा इन चतुर्युगी बातों को छोड़ कर लौकिक, ऐतिहासिक और साधारण समझदारी की बातों की तरफ़ ध्यान दीजिए।

इसमें कोई संदेह नहीं कि जीवों को सरदी गर्मी के क्लेश और शत्रुओं के आक्रमण से अपने और अपनी सन्तान के प्राण और संपत्ति बचाने के लिये घर बनाने की ज़रूरत होती है। अगर दुनिया में सदा वसंत रहता और सब जीव मित्रभाव से रहते होते तो शायद बये को अपना घोंसला और चूहे को अपना बिल बनाने की आवश्यकता न होती। इसी तरह जब तक मनुष्य को मौसिमों और जंगली जानवरों की तरफ़ से डर रहा, तब तक उसने भी पहाड़ों की गुफ़ाओं और पर्णकुटियों में रह कर गुज़ारा किया। मगर जब इन दोनों के सिवा मनुष्य जाति के लोग चोरी और एक दूसरे पर आक्रमण करने लगे तब लोगों को दूसरी तरह के मकान बनाने की ज़रूरत हुई। मगर इस काम के पूरा करने की अक़्ल उनको एक दम से नहीं, बल्कि आहिस्ता आहिस्ता, बहुत कष्ट उठाने पर आई।

मनुष्यजाति के बनाए हुए घरों के मूल अवयव यह होते हैं—

(१) घर में आने जाने के लिये एक या कई दरवाज़े।

(२) वर्षा, ओस, धूप वग़ैरा के बचाव के लिये छत।

(३) वायु और जल के वेग, और शत्रुओं के आक्रमण से बचने के लिये दीवारें।

(४) शुद्ध हवा और रोशनी के आने और मलिन वायु के निकास के लिये खिड़की, दर, और दरवाज़े।

(५) इन 'दरों' वग़ैरा के बनाने और 'छत' के सँभालने के लिये स्तंभ, पाये, वग़ैरा।

(६) लेटने बैठने और चलने फिरने के वास्ते भूमि।

(७) अन्दर रह कर आराम पाने और जी सुखी रखने के लिये खिड़की, आले, बेलबूटे और तरह तरह की सजावट।

इन्हीं चीज़ों को अच्छा बनाने की चेष्टा करते हुए मनुष्यजाति को हज़ारों वर्ष बीत गए। और अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस काम में इतनी उन्नति हो गई है कि इसका सब हाल जाननाही एक उत्कृष्ट विद्या मानी जाती है।

संसार भर की भिन्न जातियों में इस विद्या की कम या ज़ियादा तरक्क़ी जो हुई, उसके प्रधान कारण यह हैं।—(१) भौगोलिक स्थिति (२) भूमि-रचना (३) ऋतु प्रकृति (४) धर्म (५) सामाजिक और राजकीय अवस्था (६) ऐतिहासिक घटनायें। इन सब कारणों के मेल की बदौलत हर एक देश के "भवन-निर्माण-कौशल" में जो जो परिवर्तन हुए उन सबका विस्तार इस पुस्तक में किया जावेगा। हमारा इरादा है कि यथावकाश निम्न लिखित देशों और जातियों के भवन-निर्माण-कौशल का हाल इस लेखमाला में बतलावें—(१) बाबुल (२) मिस्र (३) यूनान (४) रोम (५) रूम (६) गाथ (७) अरब (८) चीन (९) भारतवर्ष। शायद हिन्दी के रसिक यह चाहते हों कि पहले भारतवर्ष का हाल सुनाया जावे, इसलिये हम यहीं पर यह कह देना मुनासिब समझते हैं कि कई कारणों से ऐसा करना उचित नहीं है, बल्कि भारत-वर्ष का बयान सबसे पीछे होना चाहिये। दूसरी बात जिसका कह देना हम ज़रूरी समझते हैं, यह है कि हमको जब कभी सर्कारी काम से अवकाश मिलेगा केवल उसी वक्त हम इस विषय पर लेख लिख सकेंगे। इसलिये किसी को यह न समझना चाहिये कि यह लेख बराबर लगातार छपते रहेंगे। हिन्दी के प्रेमियों के लाभार्थ इन लेखों का आरंभ हमने कर दिया है, मगर इस काम का पूरा करना समय और सुभीते के अधीन है। यदि किसी कारण से हम इस लेखमाला को पूरा न कर सकें तो आशा है कि कोई और महाशय जो इस विषय में गति रखते हों हमारी कमी को पूरा कर देंगे।

इस लेखमाला में जो ऐतिहासिक बातें लिखी जावेंगी या तसवीरें दी जावेंगी वह प्रायः उन पुस्तकों से ली जावेंगी जो संसार भर के मुख्य आचार्यों ने इस विषय पर लिखी हैं। इन सबके नामों की सूची देना व्यर्थ है। यह कह देना काफ़ी होगा कि—

धन्यः खलु फलचर-फ़र्गसनादिवर्गो
माली यदीयकुसुमाकरतः सुमानि।
आदाय वाणि! सुगुणैर्मम गुम्फितेयं
माला विभातु तव कन्धरकन्दलेऽस्मिन्॥

अलबत्ता जहाँ कहीं किसी विषय में स्वतन्त्र सम्मति दी गई है उसके उत्तर-दाता हम ही हैं। अगर इन लेखों में कोई बात ग़लत हो तो पाठक कृपा करके उसको हमारी ही भूल समझें, इस विद्या के आचार्यों को दोष न दें। उन लोगों की सब बातें ठीक होती हैं।

पर्यवसान में हम आशा करते हैं कि जो महाशय इस निबन्ध में बताये हुए सिद्धान्तों को ध्यान-पूर्वक पढ़ेंगे, और मकान, मन्दिर, या धर्मशाला बनाते वक्त इन बातों पर विचार कर लेंगे, वह अवश्य पुण्य-प्राप्ति के अतिरिक्त अपने कुटुम्बियों को सुख देवेंगे, अपने ग़रीब कारीगरों को लाभ पहुँचावेंगे, और उन के यश की पताका चिरकाल तक लहराती रहेगी।

अद्भुत जीव-जन्तु।

ईश्वर ने संसार में कोई कोई जीव-जन्तु बहुत ही अद्भुत बनाये हैं। उसकी सारी सृष्टि अद्भुतता की खान है। कहीं चिउँटी के समान छोटा जीव, कहीं हाथी के समान पर्वतप्राय चौपाया, कहीं सर्प के समान प्राणहारक प्राणी, कहीं सर्प को ही खा जाने वाले गरुड़ और नेवले आदि जीव, कहीं रंग-बिरंगी चिड़ियाँ, कहीं प्रकाशमान पतंगे, कहीं अद्भुत अद्भुत मछलियाँ, कहीं मनुष्य के आकार से मिलते हुए अद्भुत अद्भुत बन्दर। पर सब जीव सब कहीं नहीं पाये जाते। कोई कहीं होता है, कोई कहीं।

हमारे देश में सैकड़ों तरह के कीड़े मकोड़े होते हैं। उनमें से एक का नाम झींगा है। हमारी तरफ़ उसका यही नाम है; और प्रान्तों में शायद उसे लोग कुछ और ही कहते हों। यह एक बहुत छोटा कीड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। यह चार या पाँच अंगुल से अधिक बड़ा नहीं होता। पर अमेरिका में इस जाति का एक बहुत ही बड़ा कीड़ा मिला है। वह वहाँ के अजायबघर में एक अजीब चीज़ समझ कर रक्खा गया है। वह कुछ कम चार फ़ीट लम्बा है—अर्थात् लग भग तीन हाथ! वज़न उसका १८ सेर है!! उसके अगले झंकड़े इतने बड़े हैं कि वह एक बहुत मोटे ताज़े आदमी की कमर को अगर पकड़े तो उनसे उसे वह पूरा घेर ले और उनका कुछ हिस्सा बच भी जाय!!!

लेमर नामक एक बिल्ली की तरह का जीव होता है। वह मैडेगास्कर, सुमात्रा, जावा, बोर्नियो और फिलीपाइन नाम के टापुओं में बहुत रहता है। उस की कई जातियाँ हैं। एक जाति के लेमर की पूँछ बहुत बड़ी होती है। सिर और शरीर की लम्बाई से भी पूँछ की लम्बाई अधिक होती है। पूँछ पर बहुत मुलायम बाल होते हैं। उसमें अनेक घेरे या छल्ले होते हैं। इससे वह बड़ा सुन्दर मालूम होता है। यह जीव पेड़ों पर तो रहता है, पर बन्दरों की तरह नहीं सोता। वह डाल को पकड़ कर नीचे लटक जाता है और चमगीदड़ों की तरह सिर नीचा कर के सोया करता है। यह जीव रात्रिंचर है। पर कोई कोई जाति के लेमर दिन को भी बाहर निकलते हैं। रात को ये जीव, सूर्यास्त होते ही, अपने शिकार की तलाश में निकलते हैं। फल, फूल, कोमल कोमल पत्तियाँ, पतंगे और चिड़ियों के अंडे इन की खूराक है। इनकी आँखें बिल्ली और उल्लू की आँखों की तरह पीली पीली होती हैं। वे दिन को छोटी और रात को बड़ी हो जाती हैं। यह प्राणी बड़ा खिलाड़ी है। अजायबघरों में पिंजड़े के भीतर रात को इसकी कुतूहलजनक कूद फाँद देख कर देखने वालों के पेट में हँसते हँसते बल पड़ जाते हैं। धारीदार पूँछ वाले लेमर पेड़ों पर कम रहते हैं। वे पहाड़ों की गोहों में रहना अधिक पसन्द करते हैं और बहुत कर के दिन को ही बाहर निकलते हैं, रात को नहीं।

लेमरों की जितनी जातियाँ हैं उनमें से एक जाति बहुत ही सुस्त और मन्दगामिनी है। संसार में और कोई जीव इतना मन्दगमन नहीं करता जितना इस जाति के लेमर करते हैं। एक दफ़े एक इस तरह के लेमर ने एक बड़े से पतंगे को देखा। वह उससे चार फ़ीट के फासले पर था। पर इतनी दूर चल कर उसे पकड़ने में उसको ३२ मिनट लगे! यदि इस जाति के लेमर फल, फूल, पत्त और नरम नरम जड़ न खाते तो कीड़े, मकोड़ों वग़ैरह का पकड़ना इन्हें कठिन हो जाता। इस दशा में वे शायद ही भूखों मरने से बचते। पर ईश्वर ने सबके लिए ऐसी खुराक निश्चित की है जिसे प्राप्त करने का उसके पास पूरा साधन है।

चिड़ियों का नाम पक्षी है, क्योंकि उनके पक्ष अर्थात् पंख होते हैं। परन्तु एक ऐसी भी चिड़िया होती है जिसके पंखही नहीं होते। यह चिड़िया न्यूज़ीलैंड में होती है। उसकी आवाज़ से "किवि-किवि" शब्द निकलता है। इसलिए उसका नाम "किवि-किवि" ही पड़ गया है। इस तरह की कोई एक दरजन चिड़ियाँ लंडन के अजायबघर में, कुछ दिन हुए, आई हैं। यह चिड़िया बिलकुल नहीं उड़ सकती। इसके बदन पर लंबे लंबे बाल होते हैं। चोंच भी इसकी बहुत लंबी होती है। उससे यह कीड़े उठा उठाकर खाती है। यह चिड़िया साधारण मुर्ग़े के आकार की होती है। पर इसका अंडा बहुत बड़ा होता है। नाप में वह ५ इंच लंबा और ३ इंच चौड़ा होता है!

नैपाल में एक बहुत ही अद्भुत चिड़िया होती है। उसके पैर छोटे होते हैं, पर चोंच उसकी बेतरह बड़ी होती है। वह चोंच क्या है, एक तरह का सींग है। इस तरह की चिड़ियाँ अब बहुत कम मिलती हैं। इसका एक नमूना बड़ी मुशकिलों में मिला है। वह हमारे अँगरेज़-राज ने अपनी विलायती जन्तुशाला में रक्खा है।

सुमात्रा और बोर्नियो में एक विचित्र प्रकार के बन्दर पाये जाते हैं। उनका नाम है "ओरंग-ओटंग" "ओरंग" का अर्थ है सरदार और "ओटंग" का जंगली—अर्थात् जंगल का सरदार। इन बन्दरों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकार आदमी के आकार से बहुत मिलता है। यह बुद्धिमान् भी बहुत होता है। डील डौल इसका बहुत बड़ा होता है और मुशकिल से पकड़ा जाता है। इस जाति के बन्दर का एक बच्चा, अभी कुछ दिन हुए, पकड़ कर लंदन लाया गया है। यह जाड़े में कपड़े ओढ़कर बैठता है। इसे देखने के लिए लोगों की बड़ी भीड़ रहती है।

पुस्तक-परीक्षा।

१—बलदेव विचारार्क। ज़िला सीतापुर, डाकख़ाना बिसवाँ, ग्राम बलदेव-नगर-दासापुर निवासी पण्डित बलदेवप्रसाद रचित। मूल्य लिखा नहीं। ग्रंथकर्त्ता से प्राप्य। इस पुस्तक में छाँट छाँट कर वे बातें लिखी गई हैं जिन्हें जानकर बालक कई प्रकार के ठगों से बच सकते हैं। जादूगर, कीमियागर, पण्डे, पुजारी और सयानों की ठगी की क़लई खोलने के सिवा इसमें धर्म-कर्म की बातें और कितनेही रोगों की दवाइयाँ भी लिखी हैं। इसका अधिक भाग गद्य में है; बीच बीच में दोहे भी हैं। पुस्तक बालकों के लिए बड़ी लाभदायक है। पर इसका विषय-विभाग ठीक नहीं और भाषा में भी कहीं कहीं गड़बड़ है। विराम-चिह्नों का तो ढूँढने से भी कहीं पता नहीं लगता।

२—प्रेमतरङ्ग। इस २३ पृष्ठ की पुस्तक में प्रेमतरङ्ग के सिवा वीरतरङ्ग और बलदेवविनय भी हैं। प्रेमतरङ्ग के सभी कवित्त और सवैये शृङ्गाररस के हैं। वीरतरङ्ग में रीवाँ, रामपुर, मथुरा, इटौंजा, कसमण्डा, मल्लापुर, प्रतापगढ़ आदि के राजाओं के सिवा सप्तम एडवर्ड, लार्ड कर्ज़न, लार्ड किचनर, हनूमान् और गंगाजी की भी प्रशंसा और स्तुति है। इसको भी रचना पण्डित बलदेवप्रसाद और उनके पुत्र पण्डित गंगाधर अवस्थी ने की है। मूल्य मालूम नहीं। मिलने का पता—पण्डित रामरत्न वाजपेयी, मैनेजर लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस, लखनऊ।

३—शृंगारसरोज। पण्डित बलदेवप्रसाद अवस्थी रचित। इसमें सब मिलाकर कोई छत्तीस कवित्त, सवैया और दोहे हैं। प्रायः सभी कवित्त शृङ्गाररस-प्रधान हैं। इनमें से कोई कोई बहुत सरस और काव्यगुणालङ्कृत हैं। मूल्य लिखा नहीं। मिलने का पता—पण्डित रामरत्न वाजपेयी, मैनेजर लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस, लखनऊ।

४—शिक्षाप्रकाश। शिक्षासम्बन्धी मासिक पत्र है। इसके सम्पादक पण्डित रघुवरप्रसाद जी द्विवेदी, बी० ए० और प्रकाशक श्रीयुत शंकरराव डबीर, भालदारपुरा, जबलपुर, हैं। एप्रिल, ०९ से जबलपुर से निकलता है। वार्षिक मूल्य डेढ़ रुपया। प्रत्येक अङ्क में डिमाई अठपेजी आकार के २४ पृष्ठ रहते हैं। काग़ज़, छपाई सब अच्छी है। इसका प्रथम अङ्क अभी हमारे पास आया है। इसमें भिन्न भिन्न लेखकों के लिखे हुए पाँच छः लेखों के सिवा कुछ वैज्ञानिक और साधारण टिप्पिणियाँ भी हैं। प्रायः सभी लेख उत्तम, उपयोगी और सुपाठ्य हैं। शिक्षक और विद्यार्थिगण उन्हें पढ़ कर बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। शिक्षाविभाग से सम्बन्ध रखनेवाले लोगों को तो इसे अवश्य ख़रीदना चाहिए। ऐसा पत्र हिन्दी में आज तक देखने में नहीं आया। इसकी बड़ी ज़रूरत थी। जिन सज्जनों ने इस ज़रूरत को रफ़ा किया है उनका उत्साह प्रशंसनीय है। इस पत्र को ख़रीद कर हम लोगों को चाहिए कि उनके उत्साह को बढ़ावें। इस पत्र के सम्पादक बड़े योग्य और अनुभव-शील अध्यापक हैं। आप जबलपुर के हितकारिणी-हाई-स्कूल के हेड मास्टर हैं। अतएव हमें विश्वास है कि यह पत्र प्रति दिन अधिकाधिक उन्नति करता जायगा।

५—सरस्वतीन्द्र-जीवनचरित। स्वामी दयानन्द सरस्वती के जितने जीवन-चरित प्रकाशित हो चुके हैं उनमें से श्रीयुत लेखरामजी का उर्दू में लिखा हुआ जीवन-चरित सर्वश्रेष्ठ है। उसी के आधार पर बाबू चिमन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाल जी ने यह सरस्वतीन्द्र-जीवन-चरित लिखा है। आपने लेखरामजी की पुस्तक से प्रायः सारी मुख्य मुख्य घटनाओं की सामग्री उद्धृत करके इस पुस्तक की रचना की है। इसके सिवा मास्टर आत्माराम और लाला राधाकृष्णजी के लेखों से भी आपने सहायता ली है। पुस्तक में स्वामी जी के साधारण चरित के अतिरिक्त उनके शास्त्रार्थ, उनके धर्म्मोपदेश और उनके ग्रन्थ-निर्माण आदि की भी बातें हैं। पुस्तक बड़े बड़े कोई ४०० पृष्ठों में समाप्त हुई है। टाइप अच्छा है। काग़ज़ मोटा है। स्वामी जी, पं० लेखरामजी और पं० गुरुदत्तजी विद्यार्थी के हाफ़टोन चित्र भी पुस्तक में हैं। इस पर भी इतनी बड़ी पुस्तक का मूल्य सिर्फ़ १=) रक्खा गया है। महात्मा-जन चाहे जिस देश, जाति, धर्म्म और सम्प्रदाय के हों उनका चरित पढ़ने से कुछ न कुछ लाभ अवश्य ही होता है। जो ऐसा समझते हों उन्हें स्वामी जी का चरित भी पढ़ना और अपने संग्रह में रखना चाहिए।

❁

६—नारायणी-शिक्षा। सम्पादक बाबू चिम्मनलाल गोस्वामी। पृष्ठ-संख्या ६१२। साँचा बड़ा। काग़ज़ अच्छा। छपाई बंबई के टाइप की। मूल्य सिर्फ़ १।) रक्खा गया। इस इतनी सस्ती परन्तु उपयोगी पुस्तक का दूसरा नाम गृहस्थाश्रम-शिक्षा है। पुस्तक कोई ३० अध्यायों में विभक्त है। गृहस्थाश्रम से सम्बन्ध रखनेवाली शिशु-पालन, शरीर-रक्षा, ब्रह्मचर्य्य, विवाह, पति, स्त्री धर्म्म, नित्य-कर्म्म आदि कितनीही बातों का इसमें वर्णन और विचार है। श्रुति, स्मृति, उपनिषद्, पुराण आदि से जगह जगह पर विषयोपयोगी प्रमाण उद्धृत किये गये हैं। पुस्तक में सैकड़ों बातें ऐसी हैं जिनका जानना गृहस्थ के लिए बहुत ज़रूरी है। इस पुस्तक को लोगों ने इतना पसन्द किया है कि आज तक इसके ६ संस्करण हो चुके हैं।

❁

७—गृहस्थ-चरित्र। कुँवर हनुमन्तसिंह रघुवंशी और पण्डित पन्नालाल शर्म्मा द्वारा रचित। इस छोटी सी पुस्तक में सब मिलाकर पाँच आख्यायिकायें हैं। उनमें आज कल के गृहस्थों का अच्छा चित्र खींचा गया है। प्रायः सभी कहानियाँ मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद हैं। उन्हें पढ़ कर स्त्रियाँ बहुत कुछ शिक्षा प्राप्त कर सकती हैं। हिन्दी-साहित्य में ऐसी पुस्तकों की कमी है। हर्ष की बात है कि पूर्वोक्त कुँवर जी के उद्योग से हिन्दी-साहित्य के इस अङ्ग की पुष्टि होती जाती है। मूल्य चार आने। मिलने का पता—कुँवर हनुमन्तसिंह रघुवंशी, अध्यक्ष राजपूत एँग्लो ओरियंटल प्रेस, आगरा।

❁

८—गृहिणीकर्त्तव्यदीपिका। ठाकुर पूर्णसिंह वर्मा द्वारा लिखित और कुँवर हनुमन्तसिंह रघुवंशी, अध्यक्ष ऐंग्लो ओरियंटल प्रेस, आगरा, द्वारा मुद्रित और प्रकाशित। प्रकाशक से छः आने में प्राप्य। इस पुस्तक में दस अध्याय हैं। उनमें ये बातें हैं—घर, पति, कुटुम्ब और अतिथियों के प्रति कर्त्तव्य, सफ़ाई, भोजन बनाना, धनसंग्रह, समय और श्रम, बाल-रक्षण और शिक्षणविधि। स्त्रियों को जो जो बातें जानना चाहिए प्रायः उन सबका थोड़े में इस पुस्तक में समावेश है। जिन लोगों के घर में पढ़ी लिखी लड़कियाँ या स्त्रियाँ हों उन्हें इसकी एक कापी ज़रूर ख़रीदना चाहिए।

❁

९—मथुरा डायरेक्टरी। पण्डित विश्वनाथ शर्मा द्वारा संगृहीत और सुखसञ्चारक कम्पनी, मथुरा, के मालिक पण्डित क्षेत्रपाल शर्म्मा द्वारा प्रकाशित। इस डायरेक्टरी में मथुरा, वृन्दावन, गोकुल, नन्दगाँव बरसाना तथा आस पास के अनेक स्थानों की कितनी ही ज्ञातव्य बातों का समावेश है। इसके सिवा इस में संवत् १९६६ की डायरी भी है। बीच में सुख-सञ्चारक कम्पनी की दवाइयों का विज्ञापन भी है। व्रजमण्डल, विशेष करके मथुरा, के यात्रियों के लिए यह पुस्तक बड़े काम की है। सब तीर्थों के लिए ऐसी ऐसी पुस्तकों की आवश्यकता है। प्रकाशक से एक आने में यह मिलती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०—भागवत विश्राम। पण्डित भागवतप्रसाद-दास कृत तीस पृष्ठ की इस पुस्तिका में श्रीमद्भागवत का दोहे और चौपाइयों में संक्षिप्त वर्णन है। भागवत का कथा पहले से न जानने वाले लोग इस पुस्तक को पढ़ कर उसका कुछ आभास पा सकते हैं। कविता में कहीं कहीं छन्दोभङ्ग आदि दोष आ गये हैं। मूल्य चार आने। मिलने का पता—
पण्डित भागवतप्रसाद-दास, अन्नपूर्णागंज, काशी।

❀

११—संवत् १९६६ का पञ्चाङ्ग। कलकत्ते के डाकूर वर्मन् कोई तेरह वर्ष से हर साल पञ्चाङ्ग प्रकाशित करते हैं। इस साल का पञ्चाङ्ग हमें हाल ही में मिला है। प्रतिवर्ष की तरह इस वर्ष भी इसमें पञ्चाङ्ग-संबंधी सब बातों के सिवा और भी दो चार उपयोगी बातें हैं। बीच बीच में थोड़े से चित्र भी हैं। अन्त में दवाइयों के विज्ञापन हैं। पञ्चाङ्ग पुस्तकाकार छपा है। साँचा छोटा है। रूप रंग मनोहर है। प्रकाशक महाशय इसे मुफ़्त बाँटते हैं। जो लोग चाहें डाकूर एस० के० वर्म्मन, नं० ५, ६ ताराचन्द दत्त स्ट्रीट, कलकत्ता से मँगा लें।

❀

१२—भारतबन्धु। साप्ताहिक पत्र है। प्रति शुक्रवार को कलकत्ते से निकलता है। वार्षिक मूल्य दो रुपये। यह पत्र पहली जनवरी, ०९ से प्रकाशित होने लगा है। इसके प्रकाशक बाबू रामलाल नेमाणी, नं० ५९, तूलापट्टी, कलकत्ता हैं। इसकी तीसरी संख्या हमारे सामने है। इसमें साधारण समाचारों के सिवा लेख भी हैं। अधिकांश लेख समाज-सुधार-सम्बन्धी हैं और मारवाड़ी वैश्यों के लिए विशेष उपयोगी हैं। पत्र अच्छे टाइप में छपता है। काग़ज़ भी अच्छा है। आशा है नेमाणीजी इस पत्र को जारी रक्खेंगे।

❀

१३—श्रीप्रेमगंगा प्रथम भाग। "श्री स्वामी मित्रसेन राममित्र जी महाराज" रचित और क़िला दीदार सिंह, ज़िला गुजरानवाला, निवासी बाबू गंगाराम, सत्य अभिलाषी, की प्रिय पत्नी श्रीमती कर्मदेवी द्वारा प्रकाशित। ग्रंथकर्त्ता ने इस प्रेमगंगा को पाँच धाराओं में प्रवाहित किया है। उनके नाम क्रम से उपदेश, वैराग्य, साधन, प्रेम और आनन्द हैं। इन धाराओं में सब मिलाकर कोई छः सौ भजन और दोहे हैं। इसके प्रायः सभी भजन भक्ति-रस-पूर्ण हैं। भाषा में कुछ पंजाबीपन है। कहीं कहीं छन्दोभङ्ग भी पाया जाता है। जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि पुस्तक भक्तजनों के मतलब की है। बाबू गंगाराम, सब ओवरसियर, बम्बाँवाला, ज़िला स्यालकोट, को लिखने से यह २८८ पृष्ठ की पुस्तक बिना मूल्य मिल सकती है।

❀

१४—ब्रह्मानन्द भजन-माला। स्वामी ब्रह्मानन्द जी रचित और गोधूराम शर्म्मा द्वारा प्रकाशित। प्रकाशक से ट्राम्वे कम्पनी, कराची के पते पर साढ़े चार आने में प्राप्य। इस छोटी सी पुस्तक में सब मिलाकर १३१ भजन हैं। प्रायः सभी भजन ज्ञान, वैराग्य, या ईश्वरभक्ति विषयक हैं। कोई कोई भजन बहुत अच्छा है। पर भाषा में प्रान्तिकपन की मात्रा अधिक है। यह इसका तीसरा संस्करण है; इससे मालूम होता है कि लोगों ने इसे पसन्द किया है। काग़ज़, छपाई अच्छी है। शुरू में स्वामी जी का एक साधारण चित्र भी है।

❀

१५—श्रीरामलीला नाटक। स्वर्गवासी श्रीव्रजचन्द्रजन-वल्लभी द्वारा लिखित और हीरालाल श्रीवास्तव द्वारा प्रकाशित। मूल्य सवा रुपये। पृष्ठ-संख्या १८४। काग़ज़ साधारण। टाइप बड़ा। गोस्वामी तुलसी-दासजी कृत रामायण के आधार पर गद्य-पद्य-मय नाटक के रूप में इसकी रचना की गई है। इसमें सब मिला कर नौ मरीचियाँ है। इस नाटक के कोई कोई पद्य बहुत सरस और मनोरम हैं। पुस्तक राम-लीला करने वालों के काम की है। साधुसन्तों के जैसी भाषा होना चाहिए वैसी ही इसकी भी है। मिलने का पता—हीरालाल बद्रीप्रसाद, पियरीकलाँ बनारस।

Printed and published by Panch Kory Mittra at the Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती।

भाग १०] १ अगस्त, १९०९। अधिक श्रावण शुक्ल १५, १९६६। [संख्या ८

विविध-विषय।

१—बिजली की करामात।

यूरप और अमेरिका वाले प्राकृतिक शक्तियों को घर की दासी बनाने में बड़े सिद्धहस्त हैं। बिजली के पंखे, गाड़ियाँ, रोशनी, तार आदि तो हिन्दुस्तान में भी काम में लाये जाते हैं। अमेरिका आदि की तो बात ही क्या है; वहाँ तो ये चीज़ें घर घर देखी जाती हैं। इसके सिवा वहाँ टेलीफ़ोन और यन्त्रिन चलाने के काम में भी बिजली का उपयोग होता है। पर सबसे बढ़कर आश्चर्य्य की बात यह है कि अब वहाँ बिजली से वे काम लिये जाने लगे हैं जो अब तक नौकर-चाकरों से लिये जाते थे। इस विषय पर एक नोट सरस्वती में निकल चुका है। वह यूरप से सम्बन्ध रखता था। अब सन्त निहाल-सिंह ने माडर्न रिव्यू में एक लेख अमेरिका से लिखा है। उसमें उन्होंने एक ऐसे घर का हाल दिया है जिसमें घंटी बजाने, दरवाज़ा खोलने, पैर गरम करने, बूट झाड़ने, कमरा साफ़ करने, पियानो बजाने, भोजन बनाने, पानी गरम करने, बाल सँवारने, कपड़ा धोने, कपड़ा सीने, पंखा झलने, रोशनी करने, दूध गरम करने, घड़ी चलाने और बजाने, घर को गरम रखने, चोरों से माल-असबाब की रक्षा करने आदि के प्रायः सभी घरेलू काम बिजली के द्वारा लिये जाते हैं। उसमें किसी नौकर-चाकर की आवश्यकता नहीं। सिंहजी कहते हैं कि अमेरिका में ऐसे घर दिन पर दिन बढ़ते जाते हैं। विद्या, बुद्धि और अध्यवसाय में बड़ी शक्ति है। इन गुणों से सम्पन्न जाति सब कुछ कर सकती है।

२—सात सौ फ़ीट ऊँची मीनार।

न्यूयार्क (अमेरिका) में एक बीमा कम्पनी है। उसकी एक दस मंज़िला इमारत है जो सवा चार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौ फ़ीट लम्बी और दो सौ फ़ीट चौड़ी है। उसी के पचासी फ़ीट लम्बे और पचहत्तर फ़ीट चौड़े एक भाग को कम्पनी वाले सात सौ फ़ीट ऊँचा बनवा रहे हैं। इसमें चवालीस मंज़िलें रहेंगी। इसे बनते हुए कोई ढाई वर्ष हो गये। पर अभी तैयार नहीं हुई। शायद पाँच छः महीने में सब बन जायगी। यह इमारत सिर्फ़ ईस्पात और संगमर्मर ही की बनेगी। इसके हर एक खंड में बारह बारह खिड़कियाँ रहेंगी। अब तक यह छः सौ फ़ीट बन चुकी है। बड़े बड़े इंजिनियरों की राय है कि मज़बूती में यह अपना सानी नहीं रखती। भूकम्प आदि किसी भी प्राकृतिक कारण से यह नहीं गिर सकती। ज़मीन से तीन सौ चौबीस फ़ीट की उँचाई पर इमारत के चारों तरफ़ इतनी बड़ी बड़ी घड़ियाँ लगाई जायँगी जो इमारत के दो खंडों को ढक लेगीं। उनके डायल की लम्बाई साढ़े पचीस फ़ीट होगी और अङ्क तथा सूइयों की लंबाई क्रम से चार और बारह फ़ीट। इसमें एक वेधशाला भी छः सौ सैंतीस फ़ीट की उँचाई पर बनाई जायगी। उसके ऊपर एक लालटेन लगाई जायगी जो चालीस फ़ीट ऊँची होगी। उसका प्रकाश इतना तेज़ होगा कि मीलों तक रोशनी पहुँचेगी। इस प्रकाश से रात को समय जानने का काम लिया जायगा। लाल रोशनी के एक टुकड़े से पाव घंटा, दो से आध घंटा और तीन से पौन घंटा मालूम होगा। सफ़ेद रोशनी के एक टुकड़े से एक घंटा समझा जायगा, दो से दो घंटे इत्यादि। उदाहरणार्थ—रात के साढ़े ग्यारह बजे रोशनी के निशान यों होंगे :—सफ़ेद रोशनी के ग्यारह टुकड़े और लाल के दो। अधिक से अधिक छः सौ साठ फ़ीट तक लोग जा सकेंगे। ऊपर जाने के लिए उत्तोलन-यंत्रों (Elevators) से काम लिया जायगा। यदि कोई पैदल ही जाना चाहे तो उसे वहाँ तक पहुँचने के लिए एक हज़ार सत्तावन सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ेंगी!

३—अख़बारों की नाव।

अमेरिका-निवासी अपूर्व और अद्भुत काम करने में सबसे बढ़कर हैं। वे लोग कोई न कोई आश्चर्य्यजनक काम किया ही करते हैं। अभी हाल ही में कैप्टैन जानसन नाम के एक अमेरिकन ने केवल अख़बारों की एक नाव बनाकर संसार को चकित कर दिया है। इस नाव के बनाने में दुनिया भर के सब देशों और सब भाषाओं के कोई तीन हज़ार अख़बार लगे हैं। नाव बीस फ़ीट लम्बी और तैयार में कोई पचहत्तर सेर के क़रीब है। यह न समझिएगा कि यह नाव सिर्फ़ देखने की चीज़ होगी। इस पर सवार होकर कैप्टैन साहब ने समुद्र में कोई बारह सौ मील का सफ़र किया है। यद्यपि आपका यह सफ़र किनारे ही किनारे हुआ है तथापि कहीं कहीं पर आप ज़मीन से बारह मील की दूरी तक समुद्र के भीतर चले गये हैं। यह थोड़ी बात न समझिए। काग़ज़ की नाव पर बीच समुद्र में चला जाना क्या कुछ कम साहस और आश्चर्य्य की बात है? अध्यवसायी और साहसी मनुष्य सब कुछ कर सकता है।

४—कीट-भक्षक पौधा।

ईश्वर की भी विचित्र लीला है। अन्य प्राणियों को मार कर खा जाने वाले जीव अब तक केवल मनुष्यों और जानवरों ही में पाये जाते थे; परन्तु अब ऐसे पौधों का भी पता लगा है जो कीट, पतङ्गे और छोटी छोटी चिड़ियों को पकड़ कर खा जाते हैं। ब्रिटिश गाइना में घूमते हुए मारशल कीन नाम के वनस्पतिशास्त्र-वेत्ता ने एक बड़ा अद्भुत पौधा देखा। ज्योंही कोई कीड़ा या पक्षी उसके निकट आता त्योंही उसकी टहनियाँ इधर उधर हिल कर उसे तुरन्त पकड़ लेतीं। कीन साहब के सामने ही उसने कई कीड़ों को पकड़ा। पर उनके छूने पर उसने ज़रा भी हरकत न की। इस तरह के और भी कितने ही पौधे दरियाफ़्त हो चुके हैं। दो एक का हाल सरस्वती में निकल भी चुका है।

५—कारोबारी बादशाह।

हमारे देश के कितने ही राजे महाराजे और ज़मींदार लोग शिल्प या व्यापार-सम्बन्धी काम करने में अपनी बेइज़्ज़ती समझते हैं। हम लोगों की अ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृत्ति का यह भी एक कारण है। पर यूरप की दशा यहाँ से ठीक उलटी है। वहाँ के ज़मींदारों की तो बात ही क्या है बड़े बड़े बादशाह तक शिल्प-कार्य्य और व्यापार करने में अपनी अप्रतिष्ठा नहीं समझते। उदाहरणार्थ हम दो चार बादशाहों के कारोबार का उल्लेख करते हैं।

जर्मनी के सम्राट बरतन बनाने के एक बड़े भारी कारख़ाने के मालिक हैं। इससे उनको कोई डेढ़ लाख रुपये साल की आमदनी है। इसका प्रबन्ध जर्मन सम्राट ख़ुद करते हैं और किसी किसी बरतन का नमूना अपने हाथ से बनाते हैं।

सर्विया के बादशाह हजामत बनाने की एक दूकान के, एक दवाख़ाने के और एक मोटरगाड़ी की दूकान के मालिक हैं।

डेटमोल्ड के राजा मक्खन, अंडों और ईंटों का रोज़गार करते हैं।

वर्टम्बर्ग के बादशाह दो होटलों के मालिक हैं, जिससे उन्हें डेढ़ लाख वार्षिक आय है।

आस्ट्रिया के सम्राट् चीनी बरतनों का एक कारख़ाना चलाते हैं। इसमें कोई एक हज़ार कारीगर नौकर हैं। सेक्शनी-नरेश भी यही काम करते हैं।

शाही व्यापारियों में बेलजियम के महाराज लियोपोल्ड सबसे बढ़ कर हैं। रबर के व्यापार में वे अपना सानी नहीं रखते। अफ़रीका के कांगो राज्य में उनके हज़ारों आदमी बारहो मास रबर इकट्ठा किया करते हैं। इस काम में उन्होंने कोई साढ़े सात करोड़ रुपये लगा रक्खे हैं। इससे उन्हें डेढ़ करोड़ रुपये साल की आमदनी है। पर कुछ दिन से उनका यह कारोबार उनकी निज की जायदाद नहीं रही। वह बेलजियम राज्य में शामिल कर ली गई है।

पुर्तगाल की महारानी का लिसबन नगर में एक दवाख़ाना है। इसमें कभी कभी वे ख़ुद दवाइयाँ बनाती और अपने हाथ से नुसख़े लिखती हैं। ऊपर लिखे हुए बादशाहों के कारख़ानों और महारानी के इस दवाख़ाने में एक अंतर है। वह यह कि और लोग अपने स्वार्थ के लिए व्यापार करते हैं, पर पुर्त्तगाल की महारानी यह दवाख़ाना केवल धर्म्मार्थ चलाती हैं। इसकी सारी आमदनी को वे दान-पुण्य में लगा देती हैं।

६—रोज़गारी स्त्रियाँ।

हमारे देश की तरह इँगलैण्ड की स्त्रियाँ निरुद्यम और पुरुषों पर आश्रित रहना पसन्द नहीं करतीं। वे देश-विदेश में अनेक प्रकार के रोज़गार करके अपना जीवन-निर्वाह करती हैं। इँगलैण्ड में इस समय कारोबार करने वाली कोई पचास लाख स्त्रियाँ हैं। इनमें से क़रीब बीस लाख तो धनवानों के घरों में दासी आदि का काम करती हैं। आठ लाख सरसठ हज़ार पुतलीघरों में नौकर हैं। नौ लाख तीन हज़ार पोशाकें बनाती हैं। अस्सी हज़ार पाँच सौ व्यापार करती हैं। कोई एक लाख स्त्रियाँ खेती करती हैं। इसके सिवा ५५७८४ स्त्रियाँ क्लर्क, दो लाख अध्यापिका, चवालीस हज़ार गाने और नाचने वाली, उन्नासी हज़ार दाइयाँ, और दो सौ बानवे डाक्टर हैं। जिस देश की स्त्रियाँ तक आत्मबल की महिमा इस क़दर समझतीं हैं वह देश यदि उन्नति के शिखर पर विराजमान हो तो आश्चर्य्य ही क्या है?

७—डाक्टरों की फ़ीस।

पश्चिमी देशों के अन्य पेशेवालों की तरह डाक्टरों की आमदनी भी ख़ूब बढ़ी चढ़ी है। लन्दन के डाक्टर सिर्फ़ सलाह देने के बत्तीस रुपये लेते हैं। चिकित्सा की तो बात ही और है; उसमें तो वे हज़ारों रुपये लेते हैं। एक दिन की फ़ीस वे डेढ़ हज़ार रुपये तक लेते हैं। किसी पोलो खेलने वाले की एक उँगली टूट गई थी। उसने डाक्टर को बुलाकर उसे दिखाया। डाक्टर साहब ने देख दाखकर दवा बता दी। बस केवल इतने काम के लिए आपने उससे तीन हज़ार रुपये ले लिये। इसी तरह एक और डाक्टर साहब ने एक रोग की दवा करने की फ़ीस ४५००० रुपये लिये!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक करोड़पति महाशय ने एक डाक्टर से सात दिन दवा कराके उसे ७५००० रुपये दिये !!! न्यूयार्क के एक डाक्टर ने किसी जहाज़ पर एक रोगी की सात दिन चिकित्सा की। बन्दरगाह पर पहुँचते ही इधर डाक्टर साहब अपनी फ़ीस १८०,००० रुपये लेकर अपने घर को चले, उधर रोगी का प्राणपखेरू स्वर्ग-लोक को सिधारा!

८—प्रसिद्ध पुस्तकालय।

प्राचीन पुस्तकालयों में सबसे पहला पुस्तकालय भारतवर्ष में था। पर उसमें पुस्तकें बहुत अधिक न थीं। सबसे बड़ा पुस्तकालय सिकन्दर के सेनापति टालेमी ने मिश्रदेश की राजधानी सिकन्द्रिया में ईसा से ४७ वर्ष पूर्व खोला था। इसमें ४००,००० पुस्तकें थीं। इसको सन् ६४१ ई० में ख़लीफ़ा उमर ने जला कर ख़ाक कर डाला था। उनका ख़याल था कि संसार की सारी विद्या क़ुरान में भरी हुई है। इस कारण अन्य ग्रन्थों की कोई ज़रूरत नहीं!

इसके पश्चात् मिश्र में फिर एक पुस्तकालय खोला गया था। इसमें १००,००० ग्रन्थ तो केवल जिल-बन्दी ही के थे।

स्पेन देश के एक पुस्तकालय में ६००,००० पुस्तकें थीं। इनमें से चवालीस सूचीपत्र थे!

आधुनिक पुस्तकालयों में सबसे बड़ा पेरिस का बिबलीओथिक नेशनेलि है। इसमें १,४००,००० ग्रन्थ, ५००,००० चम्पू, १७५,००० हस्तलिखित पोथियाँ, ३००,००० मानचित्र, १५०,००० सिक्के और पदक, १,४००,००० शिलालेख जो १०,००० पुस्तकों में नक़ल किये गये हैं, और १००,००० चित्र यथास्थान रक्खे हुए हैं। इसके बाद लन्दन की ब्रिटिश म्यूज़ियम लाइब्रेरी का नम्बर है। इसकी केवल अलमारियाँ ३२ मील का स्थान घेरे हुए हैं। पुस्तकें इसमें १,२००,००० हैं और हस्तलिखित पोथियाँ ८९,०००। इस पुस्तकालय में प्रति वर्ष कोई ४०,००० पुस्तकें बढ़ाई जाती हैं।

पृथ्वी के बड़े पुस्तकालयों में सबसे छोटा कोपिनहेगिन का पुस्तकालय है। परन्तु उसमें भी ५००,००० ग्रन्थ और १५,००० हस्तलिखित प्रतियाँ हैं। यहाँ हमारे भारतवर्ष में बड़े बड़े शहरों में भी पुस्तकालय नहीं। यदि कहीं एकाध है तो उसमें भी चार छः हज़ार से अधिक पुस्तकें नहीं हैं। फिर हिन्दी के पुस्तकालयों की बात क्या कहना! हिन्दी का तो कोई पुस्तकालय ही नहीं। हिन्दी वालों की उन्नति में उनकी एक प्रथा बड़ा विघ्न डालती है। वह यह कि एक मनुष्य की पुस्तक सारे शहर के काम आती है। शिक्षित और सभ्य देशों में लोग केवल पढ़ने ही का शौक़ नहीं रखते; किन्तु उन्हें पुस्तकों से भी प्रेम होता है। क्या भारत-वासी ऐसा नहीं कर सकते? वे भी तो सभ्य हैं *।

राजा सर टी० माधवराव, के० सी० एस० आई०।

भारतवर्ष में गत उन्नीसवीं शताब्दी में ऐसे कितनेही राजनीतिज्ञ और शासनकर्त्ता हो गये हैं जिन्होंने अपनी प्रतिभा के बल पर केवल इस देश ही में नहीं, किन्तु यूरप तक में सुख्याति लाभ की है। ऐसे लोगों में महाराज सर जंगबहादुर, राजा सर दिनकरराव, सर सालारजंग और राजा सर माधवराव मुख्य थे। इनमें से प्रथम तीन महाशयों के जीवनचरित सरस्वती में छप चुके हैं। आज हम चौथे राजनीतिज्ञ-शिरोमणि का हाल पाठकों को सुनाते हैं।

जन्म और शिक्षा।

माधवराव का जन्म १८२८ ई० में मदरास प्रान्त के अन्तर्गत कुम्भकोण नगर में हुआ था। आप उस

* यह नोट बाबू वृन्दावनलाल वर्मा का भेजा हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा सर टी० माधवराव, के० सी० एस० आई०

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वंश के महाराष्ट्र ब्राह्मण थे। आपके पिता, श्रीरंगराव, ट्रावनकोर रियासत के दीवान थे। माधवराव की शिक्षा मदरास में शुरू हुई। वहाँ आप कई साल तक वहाँ के हाई स्कूल में पढ़ते रहे। पढ़ने की दशा में आपने अपनी परिश्रम-शीलता और तीव्र बुद्धि के कारण अच्छा नाम पैदा किया। आपके सब शिक्षक, विशेष कर पावेल साहब, आपसे बड़े प्रसन्न रहते थे। शुरूही से आपको गणित और विज्ञान से बड़ा शौक़ था। इसके सिवा आप पावेल साहब के बँगले की छत पर नित्य रात को जाकर खगोल-विद्या भी सीखते थे। आपने खोखले बाँसों में विशेष प्रकार के शीशों के टुकड़े लगाकर खुर्दबीनें और दूरबीनें भी बनाईं थीं। इन्हीं से आप तारों का निरीक्षण करते थे। कई साल तक पढ़ने के बाद, १८४६ ई० में, आपने उस समय की सबसे ऊँची और अन्तिम परीक्षा बड़ी इज़्ज़त के साथ प्रथम श्रेणी में पास की। बस, यहीं से आपकी स्कूली शिक्षा समाप्त हुई।

प्रारम्भिक जीवन।

परीक्षा पास करने के बाद ही माधवराव उसी स्कूल में गणित और भौतिकशास्त्र के शिक्षक नियत किये गये, जिसमें उन्होंने शिक्षा पाई थी। यहाँ आपने कुछ ही दिनों काम किया। इसके बाद एकौंटेंट जेनरल के दफ़्तर में आपको एक जगह मिल गई। पर वहाँ भी आप अधिक दिन न ठहरे। इसी समय ट्रावनकोर के तत्कालीन महाराज ने आपको अपने राजकुमारों का शिक्षक नियत करना चाहा। आपने इसे स्वीकार कर लिया। कोई चार वर्ष तक आप शिक्षक का काम बड़ी योग्यता से करते रहे। इससे प्रसन्न होकर महाराज ने आपको माल-विभाग के एक ऊँचे पद पर नियुक्त किया। धीरे धीरे आपकी उन्नति होने लगी। यहाँ तक कि थोड़ेही दिनों में आप दीवान-पेशकार के पद पर पहुँच गये। यहाँ आपने अपनी प्रतिभा का अच्छा चमत्कार दिखाया। ट्रावनकोर का दक्षिणी भाग उस समय कुप्रबन्ध, अत्याचार और अशान्ति से अत्यन्त पीड़ित था। उसका आपने ऐसा अच्छा प्रबन्ध किया कि थोड़ेही दिनों में सब अशान्ति और गड़बड़ दूर होगई। इससे राजा और प्रजा दोनों ही प्रसन्न हुए और आपकी इज़्ज़त दिन पर दिन बढ़ने लगी। ट्रावनकोर के तत्कालीन रेज़ीडेंट ने इस समय आपकी योग्यता की जी खोल कर ख़ूब प्रशंसा की और लिखा कि यदि ऐसा असाधारण राज-कार्य-कुशल मनुष्य रियासत का दीवान बना दिया जाय तो रियासत की सब गड़बड़ एक दिनमें दूर हो जाय और वह ख़ालसा होने से बच जाय।

ट्रावनकोर के दीवान।

रेज़ीडेंट की इच्छा शीघ्र ही पूर्ण हुई। ट्रावनकोर के तत्कालीन दीवान अच्छे दूरदर्शी न थे। महाराज भी रियासत की ओर कुछ कम ध्यान देते थे। एक आध को छोड़ कर प्रायः सभी राजकर्मचारी अपना काम दिल लगाकर न करते थे। नौकरों की तनख़्वाहें वर्षों की चढ़ी हुई थीं। ब्रिटिश गवर्नमेंट का कर भी बाक़ी पड़ा था। ख़ज़ाने में एक फूटी कौड़ी भी न थी। भारी भारी करों और कर्मचारियों के अत्याचार से प्रजा पीड़ित थी। ट्रावनकोर की ऐसी दुर्दशा देख कर अँगरेज़ी गवर्नमेंट का ध्यान इधर आकर्षित हुआ। लार्ड डलहौसी रियासत को अँगरेज़ी राज्य में मिलाने की तदबीरें करने लगे। यहाँ तक नौबत पहुँची कि ट्रावनकोर के ख़ालसे की शर्तें भी ठीक हो गईं। ठीक इसी समय महाराज ने माधवराव की शरण ली और उन्हें अपना दीवान नियत किया। माधवराव ने अँगरेज़ी गवर्नमेंट से रियासत की उन्नति के लिए सात वर्ष की मुहलत माँगी। गवर्नमेंट ने बड़े पसोपेश के बाद इसे स्वीकार किया। यह घटना १८५७ ई० की है। इस तरह अपनी योग्यता, बुद्धिमत्ता, सत्यनिष्ठा और अध्यवसाय के बल पर माधवराव केवल तीस ही वर्ष की उम्र में देशी रियासतों के सबसे ऊँचे पद पर पहुँच गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ट्रावनकोर का सुधार और उन्नति।

यह हम लिख चुके हैं कि ट्रावनकोर की हालत इस समय बहुत ख़राब थी और प्रजा नाना प्रकार के करों से पीड़ित थी। दीवान के पद पर नियत होतेही माधवराव प्रजारक्तशोषणकारी भारी भारी करों को क्रमशः घटाने और बन्द करने लगे। थोड़े ही दिनों बाद कोई सौ सवा सौ प्रकार के छोटे छोटे कर आपने एक दम उठा दिये। मालगुज़ारी और व्यापारी माल पर महसूल भी आपने कम कर दिया और कोचीन रियासत तथा अँगरेज़ी गवर्नमेंट से व्यापार-सम्बन्धी सन्धि कर ली। इससे ट्रावनकोर का व्यापार चमक उठा और प्रजा की सुख-समृद्धि दिन पर दिन बढ़ने लगी।

ट्रावनकोर में प्रजा को सुखी और समृद्धिशाली बनाना ही माधवराव का एकमात्र उद्देश न था। आपने कर वसूल करने का ऐसा अच्छा प्रबन्ध किया कि थोड़े ही दिनों में रियासत का ख़ज़ाना भर गया। इसके बाद आपने रियासत के सब विभागों के संस्कार और सुधार का प्रारम्भ किया। माल, शासन, न्याय, पुलिस, सेना आदि सभी विभागों में थोड़ी बहुत उन्नति की और अयोग्य कर्मचारियों को निकाल निकाल कर उनकी जगह योग्य, सुशिक्षित और अनुभवी लोगों को बड़ी बड़ी तनख़्वाहों पर नियत किया। जिन पुश्तैनी डाकुओं के कारण प्रजा की जान और माल सदा सङ्कट में रहते थे उन्हें आपने जड़ से नेस्त-व-नाबूद कर दिया। ट्रावनकोर की जिस राजधानी में पहले केवल मिट्टी के झोंपड़े ही झोंपड़े नज़र आते थे उसे आपने सुन्दर सुन्दर महलों से सजा दिया। इसके सिवा रियासत भर में सड़कें, पुल और नहरें आदि बनवाकर आपने उसे सुगम और सरसब्ज़ बना दिया। जंगलों और पड़ती ज़मीन का आपने ऐसा अच्छा प्रबन्ध किया कि कुछ ही दिनों में उनसे ख़ासी आमदनी होने लगी। कितनी ही नई नई शिल्प-कलाओं का भी आपने रियासत में प्रचार किया। इस तरह माधवराव ने अपने सुप्रबन्ध और सुशासन से अन्धकाराच्छन्न रियासत को प्रकाशित और दरिद्र तथा अत्याचार-पीड़ित प्रजा को समृद्धिशाली और सुखी कर दिया। माधवराव के दीवानपद पर नियुक्त होते समय जो ट्रावनकोर ख़ालसा होनेवाला था वही ट्रावनकोर कुछ साल बाद केवल माधवराव के सुप्रबन्ध से, एक उच्च-पदप्रतिष्ठित अँगरेज़ के कथनानुसार, "आदर्शराज्य" बन गया। ब्रिटिश गवर्नमेंट ने भी आपके इस असाधारण परिश्रमसाध्य काम की क़दर की और आपको के० सी० एस० आई० की उच्च और प्रतिष्ठित उपाधि से विभूषित किया। इसी साल आप मदरास-विश्वविद्यालय के फ़ेलो नियत किये गये। माधवराव के यशःसौरभ से इस समय दक्षिण-भारत महक रहा था।

दीवानी से इस्तेफ़ा।

दूसरे की बढ़ती देख कर जलनेवाले महात्मा सभी जगह होते हैं। ट्रावनकोर में भी उनकी कमी न थी। उन लोगों ने माधवराव के विरुद्ध महाराज के कान भरने शुरू किये। महाराज भी उनकी बातों में आ गये। फल यह हुआ कि माधवराव ने १८७२ ई० में दीवानी का पद त्याग दिया और एक हज़ार रुपये मासिक पेंशन पर मदरास में जाकर रहने लगे। यह पेंशन आप बराबर उन्नीस वर्ष तक पाते रहे। इस समय बड़े लाट की लेजिसलेटिव कौंसिल की मेम्बरी आपको मिलती थी। पर आपने उसे लेने से इनकार कर दिया। जब माधवराव के इस्तेफ़े की ख़बर इँगलैंड पहुँची तब वहाँ के बड़े बड़े राजनीतिज्ञों ने आन्दोलन मचाया और कहा कि ऐसे योग्य और राजकार्यकुशल मनुष्य को बेकार रखना उचित नहीं, उसे कोई अच्छी जगह देना चाहिए। यही बात माधवराव के शिष्य और तत्कालीन ट्रावनकोर-नरेश, महाराज रामवर्मा, ने भी "कलकत्ता-रिव्यू" के अपने एक लेख में कही। सर्वसाधारण के दबाव और भारतसचिव की आज्ञा के अनुसार गवर्नमेंट ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माधवराव के लिए कोई अच्छी और प्रतिष्ठित जगह तलाश करना प्रारम्भ किया।

इन्दौर के दीवान।

इसी समय इत्तिफ़ाक़ से इन्दौर-नरेश महाराज तुकोजीराव होलकर को अपनी रियासत के लिए एक दीवान की आवश्यकता हुई। आपने भारत-गवर्नमेंट से इस पद के लिए कोई योग्य मनुष्य ढूँढने को कहा। गवर्नमेंट तो ताक ही में बैठी थी। उसने इन्दौर की बागडोर चट माधवराव को सौंप दी। यह घटना १८७३ ई० की है।

इन्दौर में आप दो साल रहे। यहाँ भी आपने कितनेही सुधार किये। इन्दौर में सबसे बड़ा काम आपने यह किया कि इस रियासत के लिए आपने एक दण्ड-संग्रह (Indore Penal Code) का मसौदा तैयार किया। १८७४ ई० में आपने रियासत से सम्बन्ध त्यागना चाहा, पर दबाव पड़ने पर एक साल और रहने को राज़ी हुए।

बरौदा के दीवान।

इसके कुछ ही दिनों बाद बरौदा-नरेश, मल्हार राव गायकवाड़, नाना कारणों से गद्दी से उतारे गये। अतएव बरौदा-राज्य का सुधार करने के लिए भारत गवर्नमेंट ने महाराज होलकर से सर माधव राव को माँगा। फल यह हुआ कि माधवराव १८७५ ई० में बरौदा के संरक्षक दीवान नियत हुए।

बरौदा का सुधार।

बरौदा-राज्य इस समय बड़ी ख़राब हालत में था। लूट खसोट और मार काट से प्रजा पीड़ित थी। अत्याचार का बाज़ार गरम था। राज्य की सारी माल-गुज़ारी की तहसील स्वार्थी लोगों के हाथ में थी। वे जिसे चाहते थे बात की बात में तबाह कर देते थे। रियासत में पहुँचते ही माधवराव ने साम, दाम, दण्ड, भेद से काम लेना शुरू किया। आपके दृढ़ शासन से थोड़े ही दिनों में राज्य में शान्ति विराजने लगी। इसके बाद आपने नये नये क़ानूनों के द्वारा माल-गुज़ारी वसूल करने का सब काम सरदारों के हाथ से अपने हाथ में ले लिया और पुरानी फ़ौज को बरख़ास्त करके आपने नये सिरे से सेना और पुलिस का प्रबन्ध किया। इसके सिवा आपने रियासत भर में जगह जगह कचहरियाँ, स्कूल और पुस्तकालय क़ायम किये; बम्बई और मदरास से बड़े बड़े योग्य और अनुभवी लोगों को बुलाकर शासन-विभाग में नियुक्त किया; प्रजा-पीड़नकारी करों को एकदम बन्द कर दिया; गंदे स्थान भस्म-सात् करके उनकी जगह सुन्दर और स्वच्छ मकान सरकारी ख़र्च से बनवा दिये; शहर को सजाने के लिए अच्छे अच्छे महल और प्रजा के मनोरञ्जन तथा शिक्षा के लिए अच्छे अच्छे पार्क और अजायब-घर तैयार कराये। मतलब यह कि बरौदा-राज्य का आमूल संस्कार करके आपने उसकी काया पलट दी। बरौदा-राज्य की अत्याचार-पीड़ित प्रजा आपकी बदौलत थोड़े ही दिनों में स्वर्ग-सुख भोगने लगी। आपकी इस असाधारण राज-कार्यकुशलता को देख और उसका हाल सुनकर योरप के बड़े बड़े राज-नीतिज्ञ दंग रह गये और माधवराव की सहस्रमुख से प्रशंसा करने लगे।

इसी समय आप बम्बई-विश्वविद्यालय के फ़ेलो बनाये गये। इसके कुछ ही दिनों बाद वायसराय ने माधवराव को फाइनेंस-कमिटी के सामने साक्षी देने के लिए इँगलैंड जाने को कहा; पर आपने कई कारणों से वहाँ जाना स्वीकार न किया। सन् १८७७ ई० में माधवराव देहली-दरबार में निमन्त्रित किये गये। वहाँ आपकी बड़ी इज़्ज़त हुई। आप "राजा" की अत्युच्च और दुर्लभ उपाधि से विभूषित किये गये। वहाँ से लौट कर आपने रियासत का प्रबन्ध करने के लिए एक कौंसिल बनाई। रियासत के अन्य काम करने के साथ ही साथ आप युवक गायकवाड़ की शिक्षा का भी निरीक्षण करते थे और कभी कभी स्वयं बैठ कर पढ़ाते थे। १८८२ ई० में नौजवान महाराज और माधवराव में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ अनबन हुई। उससे विरक्त होकर आपने इस्तेफ़ा दे दिया। महाराज ने पेंशन की जगह आपको तीन लाख रुपये पुरस्कार देकर छुट्टी पाई।

अन्तिम जीवन।

राज-काज की चिन्ता का बोझ उतार कर राजा माधवराव अपने जीवन के अन्तिम दिन मदरास में बिताने लगे। यहाँ आप एकान्त में रहते थे और दिन रात पढ़ने लिखने में लगे रहते थे। देशी-विदेशी मासिक पुस्तकों और समाचारपत्रों का ढेर आपके पास सदा लगा रहता था। पढ़ने लिखने से जो समय बचता था उसे आप अपने मित्रों के साथ साधारण वार्त्तालाप या राजनैतिक और सामाजिक चर्चा में बिताते थे।

राजनैतिक और सामाजिक विचार।

पिछली अवस्था में माधवराव का मन समाज-सुधार की तरफ़ विशेष रूप से आकर्षित हुआ था। आप समाज-सुधार-सम्बन्धी सभाओं में योग भी देने लगे थे। आपका विचार था कि स्त्री-शिक्षा के प्रचार और बाल-विवाह के बन्द हो जाने से देश की सामाजिक अवस्था बहुत कुछ सुधर सकती है। इसलिए आप इन्हीं दो बातों पर अपेक्षाकृत अधिक ज़ोर देते थे। आपका मत था कि हिन्दू-शास्त्र प्राचीन काल के हिन्दुओं की सामाजिक अवस्था के अनुकूल बनाये गये थे; इसलिए वे उन्हीं लोगों के लिए उपयोगी थे। वे हम लोगों के लिए उपयोगी नहीं हो सकते। क्योंकि हम लोगों की सामाजिक दशा पहले से बहुत कुछ बदल गई है। अतएव हम लोगों के लिए नये शास्त्र बनने चाहिएं। पुराने शास्त्रों की बताई हुई चाल पर चलने और लकीर के फ़क़ीर बने रहने से हम लोगों की उन्नति कभी नहीं हो सकती। इसके साथ ही उनकी यह भी राय थी कि समाज-सुधार करने में दौड़ कर न चलना चाहिए; किन्तु धीरे धीरे सुधार करना चाहिए। आपका राजनैतिक मत वही था जो आज कल के नरम दलवालों का है। आप कांग्रेस के तीसरे अधिवेशन की स्वागतकारिणी सभा के सभापति हुए थे। मरने के तीन चार साल पहले से आप हर्बर्ट स्पेंसर के बड़े भक्त हो गये थे और उनकी किताबों को बड़े प्रेम से पढ़ते थे। उनका प्रभाव आप पर इतना पड़ा था कि इस समय आपके सम्पूर्ण राजनैतिक और सामाजिक मत स्पेंसर के मतों के साँचे ही में ढल गये थे।

लेख और पुस्तकें।

सर माधवराव अख़बारों और मासिक पुस्तकों में अकसर लेख लिखा करते थे। एक बार, १८७० ई० में, आपने वीनस तारे पर एक बड़ाही गम्भीर और गवेषणापूर्ण लेख लिखा था। इससे योरप की विद्वन्मण्डली में आपकी ख़ूब प्रशंसा हुई थी। पिछले दिनों में आप नाना विषयों पर छोटे छोटे चुटकुले बहुत लिखते थे। ये बड़े मार्के के होते थे। सन् १८८९ में आपने एक छोटी सी किताब लिखी थी। इसका नाम है—"Hints on the Training of native children" यह पुस्तक बड़े महत्त्व की है। इसका अनुवाद मराठी, गुजराती, मलयालम, तामील आदि भारत की कई भाषाओं में हो गया है। सुनते हैं कि हिन्दी में भी हो रहा है। एक बार "German Occupation of Africa" शीर्षक निबन्ध लिखकर आपने आधुनिक जर्मनी के विधाता प्रिंस बिस्मार्क के पास भेजा था। इस उपयोगी और मार्के के प्रबन्ध को पढ़ कर बिस्मार्क दंग रह गये। इस लेख का प्रभाव उन पर इतना पड़ा कि उन्होंने माधवराव को एक पत्र लिखा और उसमें उन्हें अनेक धन्यवाद दिये। केवल यही नहीं, किन्तु उस प्रबन्ध का अनुवाद जर्मन भाषा में किया गया और छाप कर प्रत्येक जर्मन सिपाही को पढ़ने के लिए दिया गया। माधवराव केवल अँगरेज़ी ही के लेखक न थे, किन्तु वे अपनी मातृ-भाषा के भी कवि थे। जिन्होंने उनकी कविताओं को पढ़ा है वे कहते हैं कि वे सरल, सुपाठ्य और शिक्षाप्रद हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्यु।

माधवराव को २२ दिसम्बर, १८९० ई० को अकस्मात लक़वा मार गया। इससे आप कोई तीन मास तक पीड़ित रहे। अन्त में ४ अप्रैल, १८९१ को आपका जीवात्मा इस नश्वर शरीर को त्याग कर परब्रह्म में लीन हो गया। राजा सर माधवराव बड़े ही चतुर, राजनीतिज्ञ, असाधारण राज-कार्यकुशल और दृढ़ शासनकर्त्ता थे। उनके समान उन्नत-चरित्र, योग्य, अनुभवी, दूरदर्शी और प्रतिभाशाली सज्जन भारत में बहुत कम हुए होंगे। भारत ही क्यों योरप तक में एक छोड़ तीन तीन पतित राज्यों का उद्धार करनेवाले महात्मा एक ही दो हुए होंगे। ईश्वर करे ऐसे असाधारण प्रतिभाशाली महात्मा भारत में बार बार जन्म लें।

अमेरिका के गाँव।

जिस तरह भारतवर्ष अत्यन्त दरिद्र है उसी तरह अमेरिका अत्यन्त धनवान् है। यह बात दोनों देशों के गाँवों की तुलना करने से अच्छी तरह प्रकट हो जाती है। हमारे देश के गाँव दरिद्रता और मूर्खता के केन्द्रस्थान हैं। अकेला गँवार शब्द ही इस बात का साक्षी है। गाँवों के घर निरी मिट्टी के झोंपड़े होते हैं। रहने का घर, चौपायों का घर, कूड़ाघर प्रायः सब एक ही जगह होते हैं। एक ही तालाब में गाँव भर के लोग नहाते, कपड़े धोते, पशुओं को पानी पिलाते और स्वयं उसका पानी पीते हैं। इसके सिवा वे लोग आधे नंगे, आधे भूखे रहकर अपना जीवन बिताते हैं। उनके लिए "काला अक्षर भैंस बराबर" है। दीन-दुनिया की उन्हें कुछ ख़बर नहीं। इस संसार की ऐशो-आराम की चीज़ें उन्हें स्वप्न में भी नसीब नहीं होतीं। मतलब यह कि यदि उन्हें झोंपड़ों का समूह और वहाँ के अधिवासियों को दरिद्रता और अविद्या का मूर्तिमान अवतार कहा जाय तो कुछ अत्युक्ति नहीं।

परन्तु अमेरिका की दशा यहाँ से ठीक उलटी है। वहाँ के गाँव हमारे देश के अधिकांश शहरों से अधिक अच्छी हालत में हैं। कुछ दिन हुए सन्त निहालसिंह का लिखा हुआ एक लेख इस विषय पर माडर्न रिव्यू में निकला था। उसमें उन्होंने उदाहरण-स्वरूप अमेरिका के एक गाँव का वर्णन किया है। सिंहजी के उस लेख से हमारे पूर्वोक्त कथन की पुष्टि होती है। इसलिए उसकी मुख्य मुख्य बातें हम यहाँ पर लिखते हैं। इससे पाठकों को मालूम हो जायगा कि अमेरिका कैसा उन्नत, सभ्य और सम्पत्तिशाली देश है।

निहालसिंह महाशय ने जिस गाँव का वृत्तान्त लिखा है उसका नाम केम्ब्रिज है। यह अमेरिका की इलीयन (Illinois) रियासत में है। जहाँ पर यह गाँव बसा हुआ है साठ वर्ष पहले वहाँ जंगली जानवर रहते थे; मनुष्य या वृक्ष का मीलों तक पता न था। परन्तु इस समय यहाँ जंगली जानवरों का नामोनिशान तक नहीं है। एक सुन्दर छोटा सा गाँव बस गया है। इसका रक़बा कोई एक वर्ग मील होगा और सब मिला कर कोई चौदह सौ मनुष्य इसमें रहते हैं।

परन्तु इतना छोटा गाँव होने पर भी केम्ब्रिज उन्नति की चरम-सीमा तक पहुँच गया है। उसके प्रायः सभी घर पक्के दो मंज़िले हैं और क़रीने से बने हुए हैं। रेलवे स्टेशन, तार-घर, डाकख़ाना, स्कूल, अस्पताल आदि उसमें सब कुछ है। गाँव भर में रात को बिजली की रोशनी होती है। जगह जगह टेलीफोन लगे हुए हैं। प्रत्येक चौराहे और मकान में गहरे कुएँ और पम्प बने हुए हैं। उनका निर्म्मल और रासायनिक क्रिया से साफ़ किया हुआ जल अत्यन्त स्वादिष्ठ और स्वास्थ्यकर है। गाँव भर में ऐसी कोई सड़क नहीं जिसपर पत्थर न जड़े हों। सड़कों की तो बात ही क्या है, गलियों तक में ईंटें लगी हुई हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उन पर सीमेंट बिछा हुआ है, जिससे वे बारहो मास पक्की गच सी बनी रहती हैं। बरसात तक में कीचड़ के दर्शन नहीं होते।

यह हम लिख चुके हैं कि केम्ब्रिज में रेलवे स्टेशन, तारघर डाकख़ाना, हाई स्कूल। और अस्पताल आदि सब कुछ है। इनके सिवा वहाँ आग बुझानेवाली टोली और एक कचहरी भी है। बिजली की रेल चलने का भी प्रबन्ध हो रहा है। डाकख़ाना दिन में चार दफ़े डाक बाँटता है। गाँववाले साल भर में कोई पन्द्रह हज़ार रुपये के डाक-टिकट ख़रीदते हैं। डाकख़ाने में एक पोस्ट मास्टर, एक सहकारी पोस्ट मास्टर, एक क्लर्क और पाँच चिट्ठीरसाँ हैं। जो किसान गाँव से कई मील दूर खलिहानों में रहते हैं उन्हें चिट्ठी लेने या देने के लिए गाँव में नहीं आना पड़ता। चिट्ठीरसाँ लोग ख़ुद जाकर डाक दे आते हैं और ले आते हैं। इससे किसानों को बड़ा सुभीता रहता है; उनके काम में विघ्न नहीं पड़ता।

केम्ब्रिज में एक सार्वजनिक पुस्तकालय भी है। इसमें कई हज़ार किताबें हैं। इससे सर्वसाधारण को बड़ा लाभ होता है। जिसका जी चाहता है इन ग्रन्थों से मुफ़्त फ़ायदा उठाता है। इसके सिवा गाँव में एक गायनशाला, तमाशा-घर और नाट्यशाला भी है। उनमें क्रम से नित्य गाना-बजाना, चलती फिरती तसवीरों के तमाशे और थीयेटर हुआ करते हैं। यहाँ ईसाई मत के भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के पाँच गिरजे भी हैं। इनमें हर इतवार को अच्छी धूम रहती है। गाँव वालों की एक बैंड कम्पनी भी है। इसकी मुखिया एक स्त्री है।

केम्ब्रिज-गाँव में छः वकील और सात डाक्टर हैं। इनमें से दो स्त्री-डाक्टर हैं। दो दन्तचिकित्सक और एक पशु-चिकित्सक है। तीन बैंक हैं। चार भोजनशालाओं और चार पानशालाओं के सिवा एक नानबाई की, एक कल से कपड़े धोने की, तीन हजामत बनाने की, दो शौक़ के सामान की, तीन मामूली असबाब की, एक जूतों की, तीन बज़ाज़ी की, दो काग़ज़ की, चार बरतनों की, तीन पंसारियों की, दो दरज़ियों की और छः पोशाक बनानेवालों की दूकानें हैं। सिलाई का एक स्कूल भी है, उसमें नौजवान स्त्रियाँ कपड़े सीना सीखती हैं। पूरी दो बाज़ारें गोश्तवालों की हैं। इनमें से एक एक बाज़ार में कई कई दूकानें हैं। इनके सिवा गाँव में तीन लोहार, तीस बढ़ई, तीन ठेकेदार, दो पैमाइश करने वाले और दस चित्रकार हैं। घोड़ों की दो और मोटरगाड़ी की एक दूकान है। यहाँ घोड़े और गाड़ियाँ किराये पर भी मिलती हैं। दो यन्त्रशालायें भी हैं, जहाँ से किसान लोग अपने लिए औज़ार ख़रीदते हैं। सरस्वती के पाठकों को यह सुनकर शायद आश्चर्य्य होगा कि इतने छोटे गाँव से तीन साप्ताहिक समाचार-पत्र भी निकलते हैं। इनमें से हर एक के पास कई कई प्रेस हैं। उनमें बढ़िया से बढ़िया और बारीक से बारीक काम छप सकता है। फ़ोटोग्राफ़र की भी यहाँ एक दूकान है। ये सब दूकानें ख़ूब चलती हैं और सबेरे से लेकर आधी रात तक इनमें भीड़ लगी रहती है। इन शोभासम्पन्न दूकानों के सिवा प्रत्येक सड़क और गली के दोनों तरफ़ लगे हुए मनोहर फूल इस गाँव की सुन्दरता को और भी बढ़ाते हैं। सुनते हैं कि एक सार्वजनिक पार्क भी बन रहा है।

केम्ब्रिज के निवासी बड़े उन्नतशील हैं। वे अपनी वर्त्तमान अवस्था से कभी सन्तुष्ट नहीं रहते। दिन रात उन्नति की धुन में लगे रहते हैं। वे अपने घरों को वर्त्तमान सभ्य संसार की प्रत्येक आवश्यक और आराम देनेवाली चीज़ से पूर्ण रखते हैं। सन्त निहाल सिंह, जो केम्ब्रिज में कई महीने रहे हैं, कहते हैं कि "केम्ब्रिज के निवासी की एक मामूली पशुशाला हिन्दुस्तान की किसी सार्वजनिक इमारत (Public Building) से भी अधिक अच्छी हालत में है। केम्ब्रिज की पशुशालाओं में (अर्थात् जहाँ घोड़े और गायें बँधती हैं) बिजली की रोशनी होती है। गायें ग्लेब चढ़े हुए क़ीमती लेम्पों की रोशनी में दुही जाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केम्ब्रिज के स्कूल की इमारत बड़ी ही भव्य और विशाल है। यह एक सौ सत्ताइस फ़ीट लम्बी और छियत्तर फ़ीट चौड़ी है। इमारत ख़ूब ऊँची कुरसी पर बनाई गई है और तिमंज़िला है। इसमें हवा आने जाने, गरमी पहुँचाने और सफ़ाई रखने का बड़ा अच्छा प्रबन्ध है। ये सब काम नवाविष्कृत यन्त्रों के द्वारा होते हैं। इसमें एक ऐसा भी यन्त्र लगा हुआ है जिससे रोगोत्पादक कीड़े स्कूल में पैदा ही नहीं हो सकते।

प्रत्येक मंज़िल में कई कई कमरे हैं। प्रत्येक कमरा एक एक काम के लिए है। कोई पढ़ाई के लिए है; कोई व्यावहारिक शिक्षा के लिए; किसी में शिक्षक रहते हैं; किसी में विद्यार्थी; कोई शिक्षकों के बैठने के लिए है; कोई विद्यार्थियों के खेलने और व्यायाम करने के लिए; किसी में दफ़्तर है; किसी में पुस्तकालय; कोई कमरा सभा करने के लिए है; कोई कविता पढ़ने के लिए; इसी तरह किसी में अजायबघर रहता है; किसी में यन्त्र और यंजिन। मतलब यह कि सब चीज़ों के लिए स्थान नियत है।

स्कूल से सम्बन्ध रखनेवाला वैज्ञानिक परीक्षागार नवीन से नवीन यन्त्रों से पूर्ण है। वैज्ञानिक शिक्षागृह में न मालूम कितने जीवित पक्षी हैं। हर एक कमरे में टेलीफ़ोन लगा हुआ है। पढ़ाई के कमरों को छोड़ कर बाक़ी सब इमारत में कोई एक सौ साठ जगह बिजली की रोशनी होती है। टाइम टेबुल का काम घड़ियों से लिया जाता है। ज्योंही एक विषय पढ़ाने का समय समाप्त होता है त्योंही घड़ी घंटी बजा देती है। इमारत के प्रत्येक कमरे में आवश्यकीय और सजावट का कितना सामान है, यदि इसका विशेष वर्णन भी किया जाय तो भी लेख बहुत बढ़ जायगा; इसलिए इस विषय में केवल इतनाही कहना काफ़ी है कि हिन्दुस्तान के बड़े से बड़े कालिज को जो सामान नसीब नहीं वह सब अमेरिका के छोटे से गाँव केम्ब्रिज के स्कूल में विद्यमान हैं।

स्कूल में सब मिला कर एक सौ सत्रह लड़के और एक सौ अड़तीस लड़कियाँ हैं। उन्हें पढ़ाने के लिए स्कूल में बारह शिक्षक नियत हैं। इनके सिवा दो शिक्षक और भी हैं; एक गाना सिखाने और दूसरा ड्राइंग सिखाने के लिए। चौदह सौ की बस्ती के गाँव में इतने लड़के लड़कियाँ इसलिए पढ़ती हैं कि वहाँ ज़बरदस्ती शिक्षा का नियम है। अर्थात् रियासत भर में सात से सोलह वर्ष की उम्र तक का प्रत्येक लड़का और लड़की स्कूल जाने के लिए मजबूर है। जो माता-पिता अपने बच्चों को पढ़ने नहीं भेजते उन्हें गवर्नमेंट दण्ड देती है।

स्कूल से कुछ दूर पर "क्रानिकल" नामक समाचारपत्र का दफ़्तर है। केम्ब्रिज से निकलनेवाले अख़बारों में यह मुख्य है। यह साप्ताहिक पत्र है और कोई पचास वर्ष से निकलता है। इसके पास तीन प्रेस हैं, जो स्टीम-इंजिन के द्वारा चलते हैं। इस पत्र के प्रत्येक अङ्क में आठ पृष्ठ रहते हैं। इनमें से चार छपे छपाये एक सभा से सादे काग़ज़ के मूल्य पर ख़रीद लिये जाते हैं। इनमें देश-विदेश की ख़बरों के सिवा राजनैतिक गपशप भी रहती है। व्यापारी, किसान, अहीर और दरज़ियों के काम के लेख और समाचार भी इनमें रहते हैं। उपन्यास, आख्यायिका और यात्रा-वृत्तान्त भी प्रत्येक अंक में रहता है। इस पत्र की बिक्री ख़ूब होती है।

अमेरिका के गाँवों के मकान बड़े ही साफ़ और क़रीने से सजे हुए होते हैं। इस बात को स्पष्ट रूप से समझाने के लिए सन्त निहालसिंह ने केम्ब्रिज के उस मकान का वृत्तान्त लिखा है जिसमें वे कुछ दिन रहे थे। उनके कथन का सार मर्म्म यह है।

यह घर दो मंज़िला बना हुआ है। पहली मंज़िल के बीच का कमरा सुन्दर चित्रों से सजा हुआ है। इसके एक कोने में पियानो रक्खा है और दूसरे में लिखने का डेस्क। फ़र्श पालिश की हुई लकड़ी का है, जिस पर बेलबूटेदार गलीचा बिछा है। नियत स्थान पर झूले और कुरसियाँ रक्खी हुई हैं। इससे मिला हुआ मुलाक़ात का कमरा है। इसमें दो तीन आराम कुरसियाँ, एक मेज़ और एक आलमारी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेज़ पर कुछ मासिक पुस्तकें और ग्रंथ रक्खे हुए हैं और आलमारी सुन्दर जिल्द-बँधी किताबों से पूर्ण है। इसके आगे भोजनशाला, पाकशाला और धोबी-घर हैं। पाकशाला में तीन चूल्हे हैं। इससे तीन चीज़ें एक साथ पक सकती हैं। ये तीनों गैस के द्वारा जलते हैं। इस कमरे में कई मेज़ें और आलमारियाँ हैं जिनमें खाने की चीज़ें, बरतन और अन्य सामान रक्खे जाते हैं। धोबीघर में धोने की एक मशीन है। यह जल-शक्ति के द्वारा चलती है। इसमें बड़ी आसानी से कपड़े धोये जा सकते हैं और इतने साफ़ होते हैं मानो किसी धोबी के धोये हुए हैं। इसलिए केम्ब्रिज-निवासी अपने कपड़े अपनेही घर में धो लेते हैं। इस धोबीघर में मशीन के सिवा और भी कितने ही यन्त्र हैं, जिनसे कपड़े धोने से सम्बन्ध रखनेवाले अन्य काम लिये जाते हैं। इस घर की एक आलमारी में कुछ रासायनिक पदार्थ रक्खे रहते हैं। ये कपड़ों के दाग़ आदि छुटाने के काम में आते हैं। दूसरे खंड में शयनकक्ष, स्नानागार और सिलाईघर हैं। ये कमरे भी ख़ूब सुसज्जित और नाना प्रकार की आवश्यक चीज़ों से पूर्ण हैं।

गर्विता।

(१)

विद्वानों के निकट अपना नाम मैं क्या बताऊँ?
शम्पा, चम्पा-कनकलतिका आदि क्या क्या गिनाऊँ?
होता है जो रुचिकर जिसे ज्ञात इच्छानुसार
रक्खे मेरे अलग सब हैं नाम नाना प्रकार॥

(२)

काव्य-द्वारा कविजन मुझे "गर्विता" हैं बताते;
जाने क्या वे प्रकट मुझमें गर्व का चिह्न पाते।
लाता मेरा चरित उनके काव्य में दिव्य स्वाद—
देते होंगे यह इसलिए वे मुझे साधुवाद!

(३)

होती जाती अब जब सभी लुप्त है जाति-पाँति;
"सद्वंशा हूँ"-कथन फिर यों योग्य है कौन भाँति?
माने जाते सब सम जहाँ काक, केकी, मराल;
विज्ञों को है समुचित वहाँ मौन ही सर्वकाल॥

(४)

हैं शृङ्गार-प्रमुख* जितने और शीतांशु-भाग*
भोगे मैंने निज वयस के वर्ष हैं सानुराग।
जाना तो भी अब तक कभी रोग मैंने न कोई;
दैवेच्छा से मुदित सुख की नींद है नित्य सोई॥

(५)

"होता कार्य्य प्रकटित कहीं कारणाभाव में भी"—
काव्यज्ञों के इस कथन में हूँ हुई बाध्य मैं भी॥
है कोई भी गुण न मुझमें मान-सम्मान-योग्य;
तो भी मेरे स्वजन मुझको मानते हैं मनोज्ञ।

(६)

हो के पत्नी प्रवर-पति की चित्त से नित्य प्यारी,
पाऊँगी मैं सब सुख सदा कामना-पूर्णकारी।
होंगे नित्य स्वजन मुझ से तुष्ट वात्सल्यधारे—
दैवज्ञों के वचन मुझको ये हुए सत्य सारे॥

(७)

नीतिज्ञों का यह कथन है "भूल जाते सभी हैं"—
कैसे माँनू फिर न मुझसे दोष होते कभी हैं?
तो भी स्वामी मुझ पर सदा हैं कृपा ही दिखाते;
प्रेमज्ञों को प्रणयिजन के दोष भी हैं सुहाते॥

(८)

"मैंने ऐसा मृदुल-तनु! क्या दोष तेरा किया है?
प्यारी! जो यों† गुण-वश मुझे बाँध तूने लिया है"
स्वामी के यों वचन सुनती जो सदा प्रेम-जन्य,
मानूँ मैं क्यों न इस जग में आपको धन्य धन्य!

(९)

सोती पीछे यदपि पति से मैं गये भूरि रात;
होती किन्तु प्रथम सबसे भङ्ग निद्रा प्रभात।
तो भी ग्लानि, श्रम, मद तजा है न आलस्य आता;
हो जाती है प्रकृति उसकी जो किया नित्य जाता!

---

* सोलह।

† गुण = सुशीलता, पति-भक्ति आदि गुण और रस्सी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्विता ।

हो जाती है निरख जिसको कौमुदी-कान्ति फीकी, देखो कैसी सरस छवि है गर्विता सुन्दरी की।
देता जैसे झलक मधु है काच के पात्र में से, होता गर्व प्रकट इसके स्वर्ण से गात्र में से॥

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१०)

"अज्ञानों के मलिन मन में है न होता विवेक"—
पाती हूँ मैं सतत इसका आप दृष्टान्त एक।
जाती लेने सुमन जब मैं बाग़ में पूजनार्थ,
देते त्रास भ्रमर मुझको जान वल्ली यथार्थ॥

(११)

"भाते जैसे सरस हमको पाक तेरे बनाये—
वैसे मीठे, रुचिकर, वधू! दूसरे के न पाये।
है तू पद्मा* सच मुच सदा गेह-लक्ष्मी हमारी"
होते मेरे श्वशुर मुझ से नित्य यों तुष्ट भारी॥

(१२)

"आई ज्योत्स्ना*, जिस दिवस से गेह में तू हमारे,
माला धारे भजन करती छोड़ मैं काम सारे।
पाये मैंने सब सुख, वधू! हो बड़ी आयु तेरी"—
यों वात्सल्य प्रकट करती सर्वदा सास मेरी॥

(१३)

"आली! तू तो विदित सबको है सदा निष्कलङ्क,
ग्रन्थों से भी प्रकटित तथा है कलङ्की मयङ्क।
पावें कैसे फिर हम तुझे चारुचन्द्रा नवेली"—
हैं यों मेरी सतत कहती स्नेहशीला सहेली॥

(१४)

पापा जी से बहुत मुझको पालतू मोर मेरा;
मेरे आगे सतत वह है नाचता प्रेम-प्रेरा।
उत्कण्ठा से चिकुर मम ये चोंच से खींचता है†
योंही मेरी प्रणय-लतिका हर्ष से सींचता है॥

(१५)

सीखी मैंने निज जननि से सत्कलायें अशेष;
भाती किन्तु प्रथित मुझको चित्रविद्या विशेष।
होती हूँ मैं सहचि कर में लेखनी स्वस्थ ज्यों ही;
हो जाती है पुलकित सदा देह सम्पूर्ण त्योंही॥

(१६)

कान्ताओं को सहज रहती भूषणेच्छा महान;
किन्तु स्वर्णादिक न गहना मानती मैं प्रधान।
विद्या आदि प्रवर गुण ही हैं अलङ्कार-सार;
होते सारे कनक-मणि के ये परिष्कार-भार॥

(१७)

शोभा ही है वह न जिसको हों अलङ्कार इष्ट;
भाता है जो स्वयमपि वही रूप होता वरिष्ठ।
पाते हैं क्या प्रकृत गुण को कृत्रिम-श्रेष्ठता में?
देखी जाती द्युति न विधु की दीप की चेष्टता में॥

(१८)

है स्वामी को सुखित करना नारि-धर्म्म प्रधान;
होते किन्तु प्रिय न वश में देख भूषा-विधान।
चाहे जैसे रुचिर गहने हों न क्यों विद्यमान;
होते हैं वे सब गुण बिना व्यर्थ शोभायमान॥

(१९)

"होता कोई मनुज जग में है नहीं दोष-हीन;
देते हो क्यों फिर तुम मुझे दोष कोई कभी न?"
स्वामी मेरे वचन सुन यों दोष देते यही हैं—
श्यामा! दोष प्रकट तुझ में दूषणाभाव ही हैं॥

[२०]

मानें जाते इस जगत में सौख्य जो श्रेष्ठ सार,
हैं सो सारे सतत मुझको प्राप्त सर्व प्रकार।
पृथ्वी में है मुझ पर कृपा ईश की आज जैसी—
प्रार्थी हूँ मैं सब पर करे नित्य विश्वेश वैसी॥

मैथिलीशरण गुप्त।

---

* पद्मा, ज्योत्स्ना प्रभृति नामों से पहले पद्य में कही हुई बात का समर्थन होता है।

† मर्मज्ञ पाठकों को यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि क्यों "गर्विता" का पालतू मोर उसके बालों को खींचता है। जब कवियों को केशों में मेघ और भुजङ्गों की उपमा होती है तब मयूर का तो कहना ही क्या है।

लार्ड टेनिसन।

सरस्वती में कई महाकवियों के जीवन-चरित छप चुके हैं। आज हम इंगलैंड के विख्यात महाकवि लार्ड टेनिसन का संक्षिप्त चरित पाठकों की भेंट करते हैं। आप अपने समय के सर्व-श्रेष्ठ कवि थे। इसी कारण महारानी विक्टो-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिया ने आपको राजकीय-प्रधान-कवि (Poet Laureate) के उच्च और प्रतिष्ठित पद पर नियत किया था।

आप का जन्म ६ अगस्त १८०९ ई० में लंकाशायर सूबे के सेामरसवाई नगर में हुआ था। आपके पिता यहाँ पादरी थे। इनका नाम जी० सी० टेनिसन था। आप तीन भाई थे; इनमें से सबसे छोटे आप ही थे। कविता तीनों भाई करते थे; परन्तु आप सबसे बढ़े चढ़े थे।

सात वर्ष की अवस्था में आप लाउथ ग्रामर स्कूल में पढ़ने बैठाये गये। कुछ वर्ष पीछे आप वहाँ से लौट आये। इसके बाद १८ वर्ष की उम्र तक घर ही में अपने बाप से पढ़ते रहे। सन् १८२८ में इन्होंने केम्ब्रिज-नगर के ट्रिनिटी कालेज में प्रवेश किया। यहीं से इनका कवि-जीवन आरम्भ हुआ। साल भर बाद इन्होंने टिम्बकटू (Timbuctoo) नाम की एक कविता लिखी जिसके पारितोषिक में इन्हें सोने का एक पदक मिला (Chancellor's gold medal) इसी समय अपने बड़े भाई चार्ल्स की सहायता से "दो भाइयों की कवितायें" (Poems by two brothers) नामकी एक पुस्तक प्रकाशित की। सन् १८३० में आपने "Poems, chiefly Lyrical" नाम की कविता लिखी।

आपकी इस किताब का कुछ अधिक आदर न हुआ। परन्तु इससे आप हतोत्साह नहीं हुए। सन् १८३२ में कुछ नई कविताओं के साथ आपने इसे फिर प्रकाशित किया। इस बार समालोचकों ने आपके विचारों और काव्य-रचना-प्रणाली में बहुत कुछ विशेषता बतलाई।

जन-साधारण में फिर भी इस किताब की कुछ क़दर न हुई। इसके बाद ९ वर्ष तक इन्होंने कोई किताब न प्रकाशित की। लेकिन ये दिन इन्होंने वृथा नहीं खोये। इस बीच में इन्होंने कई कवितायें लिखीं जो आजकल बहुत प्रसिद्ध हैं; जैसे Locks by Hall Dora, and The Gardener's Daughter. इनमें से Morte d' Arthur and Sir Galahad आदि कुछ कविताओं से मालूम हुआ कि इनका मन इंगलैंड के प्राचीन वीरों के कारनामों के वर्णन की ओर झुका हुआ है। इनकी यह प्रवृत्ति दिन पर दिन प्रबल होती गई। आख़िरकार इन्होंने The Idylls of the King एक बड़ी मशहूर कविता सन् १८५९ में प्रकाशित की।

सन् १८४३ में इनकी यह स्तब्धावस्था भंग हुई। इन्होंने फिर एक किताब संसार की भेंट की। इसमें ऊपर लिखी हुई कविताओं के सिवा और बहुत सी मनोहर और रोचक कवितायें थीं। अब तो आपकी ख्याति सारे इंगलैंड में फैल गई। आपकी सारी मिहनत सफल हुई। आप अपने समय के सर्व-श्रेष्ठ कवि मान लिये गये। जिन गुणों ने आपका यश फैलाया वे ये हैं:—

अनुभव-शक्ति की गम्भीरता (Depth of feeling) विचारों की शुद्धता Purity of sentiment) स्वच्छ कल्पना-शक्ति (Brilliant fancy) और काव्य-रचना की मधुरता (Perfect sweetness of versification.)

सन् १८४७ में आपने एक और किताब लिखी। यह अन्त्यानुप्रासरहित छन्दों में लिखी गई है। इसका नाम है The Princess, a Medley. यह हास्यरस-प्रधान काव्य है। इसमें कवि ने राजकुमारी इडा (Princess Ida) के मुँह से स्त्रियों को पुरुषों के बराबर शिक्षा देने का दावा कराया है। उससे स्त्रियों को उच्च शिक्षा देने के लिए एक विश्वविद्यालय स्थापित कराया है। उसको इसका अधिष्ठाता नियत किया है। लेकिन थोड़े दिन बाद उसका जी इस काम से हटाकर प्रेमपाश में बँधाया है। और जब वह अपने प्रेमी के पास जाती है तब सहसा उसे यह मालूम होता है कि स्त्रियों के लिए घर का काम-काज, गणित और रसायन-विद्या सीखने की अपेक्षा अधिक श्रेयस्कर है। इस किताब के पद्य बड़े मधुरता और हृदय-ग्राही उपहास टपकता है। परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

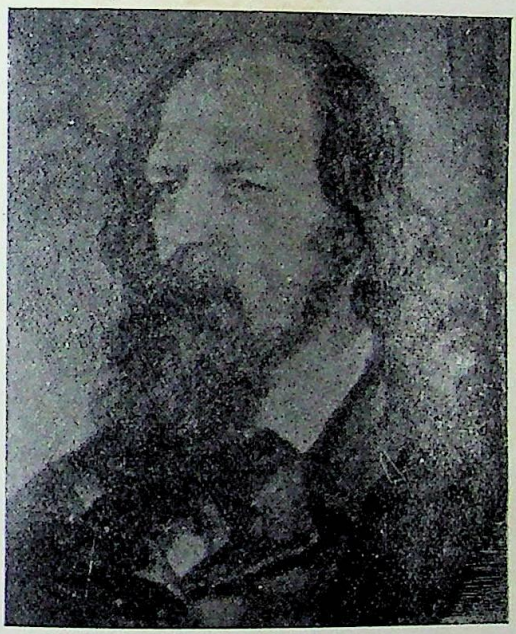

लार्ड टेनिसन ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उससे कवि का मनोरथ सिद्ध न हुआ। क्योंकि जब वह लिखी गई थी तबसे स्त्रियों की उच्च शिक्षा में बड़ी उन्नति हुई है। इस समय बहुत सी स्त्रियाँ बड़े बड़े विश्वविद्यालयों में शिक्षा पा रही हैं।

टेनिसन साहब जब कालेज में पढ़ते थे तब हेलम साहब (Arthur Henry Hallams) के साथ आपकी बड़ी गहरी मित्रता हो गई थी। परन्तु यह मित्रता बहुत समय तक न रह सकी। पाँच वर्ष बाद ही उक्त महाशय कराल काल के गाल में पड़ गये। इनकी मृत्यु से टेनिसन साहब के दिल पर बड़ी कड़ी चोट लगी। वियोग की ज्वाला हृदय जलाने लगी। आग से पानी निकल पड़ा अर्थात् उस तप्त हृदय में शोक-सागर उमड़ उठा और आप उसी में गोते खाने लगे। बड़ी लगड़ झगड़ के बाद इन्हें विचाररूपी जहाज़ का सहारा मिला। इसी जहाज़ पर बैठ कर यह शोकसागर में इधर उधर डोलने लगे। मोहरूपी तरंगें इनके जहाज़ को डाँवाँ-डोल करने लगीं। कुतर्करूपी झोंके जहाज़ को और भी भयङ्कर स्थल पर बहा ले जाने लगे। अशान्ति ने जहाज़ के मल्लाह पर पूरा रोब जमा लिया। परन्तु इस असार संसार में प्रत्येक वस्तु की सीमा है। जिसका आदि है उसका अन्त भी है। आख़िर-कार इनकी इस मानसिक व्याधि का अन्त आया। कुतर्करूपी तूफ़ान कम हुआ। मोहरूपी लहरें भी धीमी पड़ गईं। शान्ति ने फिर अपना दख़ल जमाया। जहाज़ बड़े समारोह के साथ किनारे लगा। मल्लाह ने भी फ़ुरसत पाई। इसी समय टेनिसन साहब ने अपने स्वर्ग-वासी मित्र के स्मरणार्थ "इन मेमोरियम" (In Memoriam) नाम की एक कविता लिखी। इससे इनके मित्र का नाम अमर हो गया। जब तक अंगरेज़ी भाषा जीवित रहेगी तब तक हेलम महाशय का नाम भी संसार को याद रहेगा। यह कविता इन्होंने १८३३ और १८५० ई० के बीच में लिखी थी। इसमें सब मिला कर १३१ छन्द हैं।

इस कविता में आपने दिखलाया है कि किसी प्यारी के मरने पर मनुष्य किस तरह व्याकुल होता है और अन्त में शान्ति कैसे लाभ करता है। इस कविता का अंगरेज़ी-साहित्य में बड़ा आदर है। यह अपने ढंग की एक ही है।

महाकवि वर्डसवर्थ (Wordsworth) के मरने पर राज-कवि (Poet Laureate) की जगह ख़ाली हुई। इंगलैंड के प्रधान राजकवि का पद उसी को मिलता है जो इंगलैंड के कवियों में सर्व-श्रेष्ठ हो। टेनिसन की श्रेष्ठता सारे देश में विख्यात थी। सन् १८५१ में आप इस पद पर प्रतिष्ठित किये गये। इस अवस्था में इन्होंने अपने कर्तव्यानुसार कई कवितायें लिखीं। उनमें से मुख्य मुख्य ये हैं:—

(1) Ode on the death of the Duke of Wellington (1852).

यह कविता ड्यूक आव् वेलिंगटन के मरने पर लिखी गई थी, जो ठीक उसी सुबह को प्रकाशित हुई थी जब कि उनका शरीर गड़ने को था।

(2) The Charge of the Six Hundred (1854).

इसमें ६०० सिपाहियों का क्रीमिया-युद्ध में रूसियों की एक बड़ी भारी फ़ौज से मुक़ाबिला करने और वीरता के साथ मरने का वर्णन है।

(3) The Welcome to Alexandra (1863).

अर्थात् अलेक्ज़ेण्ड्रा को स्वागत।

यह कविता हमारी वर्तमान महाराज्ञी के विवाह के समय लिखी गई थी।

(4) The Dedication of the Idylls of the King.

यह महारानी विक्टोरिया के पति के स्मरणार्थ लिखी थी।

इसके सिवा इन्होंने और बहुत सी छोटी बड़ी कवितायें लिखी थीं जिनको हम विस्तार-भय के कारण छोड़े देते हैं।

सन् १८५९ में प्रसिद्ध काव्य, The Idylls of the King प्रकाशित करने के बाद इन्होंने कई अच्छी अच्छी कवितायें लिखीं। The Revenge, a Ballad

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

of the Fleet अंगरेज़ी-साहित्य के सर्व-मान्य Ballads में है। The Dead Prophet, The Lines to Virgil, the Valstness भी बड़ी अच्छी कवितायें हैं।

वृद्धावस्था में इन्हें नाटक लिखने का शौक़ हुआ था। इनके Queen Mary, Harold और Becket नाटक इनकी प्रतिभा का अच्छा परिचय देते हैं। इनसे मालूम होता है कि आपको शाब्दिक चित्रण-कला और भिन्न भिन्न मनो-भावों पर कैसा अधिकार प्राप्त था। परन्तु उनमें घटना वैचित्र्य नहीं। इसी से ये खेलने की जगह अध्ययन ही के योग्य अधिक हैं।

आप अपनी प्रतिभा के प्रताप से अनेक उपाधियों से आभूषित किये गये थे। सन् १८५५ में आक्सफ़र्ड यूनीवर्सिटी ने आप को D. C. L. अर्थात् डाक्टर आव् सिविल लाज़ की उपाधि प्रदान की। इसके कुछ दिनों बाद इनके कालेज के सभ्यों ने इनका फ़ोटो इनके सम्मानार्थ अपने पुस्तकालय में टाँगा।

सन् १८६९ ई० में ये इसी कालेज के आनरेरी फ़ेलो नियत किये गये। सन् १८८३ में आप लार्ड बनाये गये।

सन् १८९२ में आप इस असार संसार को छोड़ परलोक सिधारे।

इनकी कविता का ढंग बहुत सीधा है। शब्द बहुत सरल हैं। अधिकांश कविताओं में नित्य प्रति की साधारण बातों का वर्णन है। परन्तु ये बातें ऐसे मनोहर शब्दों से संगठित की गई हैं कि इनके पढ़ने से जी कभी नहीं ऊबता। शाब्दिक सरलता के साथ ही साथ इनके विचार बड़े उच्च हैं। भाव बहुत पवित्र हैं। कल्पना-शक्ति का विकास भी प्रशंसनीय है। इनकी कविता में प्रकृति-चित्रण भी बहुत है। देशभक्ति की कविताओं की भी कमी नहीं है। आत्म-संबंधी बातों को भी आपने छन्दोबद्ध किया है। परन्तु एक बात है जो इनको सार्वभौमिक कवि मानने में बाधा डालती है। आप केवल इंगलैंड ही के कवि-कुल-चूड़ामणि कहे जा सकते हैं; सारे संसार के नहीं। आपका देशानुराग केवल इंगलैण्ड ही तक महदूद था। इन्होंने दूसरे देशों और जातियों के विषय में बहुत कम कवितायें लिखी हैं। इनकी सब कवितायें इंगलैंड और वहाँ के प्राचीन या अर्वाचीन निवासियों ही के गुणगान से भरी हुई हैं। इसलिए ये शेक्सपियर, वर्डसवर्थ आदि की तरह सार्वभौमिक या यूरोपियन कवि नहीं कहे जा सकते। हाँ, इँगलैंड के उच्चतम श्रेणी के कवियों में आप अवश्य हैं।

आपके राजकीय विचार भी संकीर्ण थे। आप का मत था कि राज्य का भार केवल उच्चवंशात्मज धनी मानी पुरुषों ही के हाथ में रहना चाहिए। सर्वसाधारण को बड़े बड़े अधिकार देने की ज़रूरत नहीं। आज्ञापालन ही उनका मुख्य कर्तव्य है! परन्तु ऐसे विचारों के अनुयायी अब इंगलैंड आदि में इने गिने मनुष्य होंगे।

आपके धार्मिक विचार बड़े उच्च थे। ईश्वर में आपको पूर्ण विश्वास था। इनके समय में नास्तिकता और आस्तिकता का झगड़ा बड़ा घोर रूप धारण किये हुए था। इँगलैंड के बड़े बड़े शिक्षित पुरुष नास्तिकता की ओर झुके हुए थे। परन्तु आप अपने स्थान से कभी विचलित नहीं हुए। ईश्वर की ईश्वरता में आपका विश्वास दिन प्रति दिन बढ़ता ही गया। इसी विश्वास के सहारे इन्होंने बड़ी शान्ति के साथ अपना शरीर त्याग किया।

ब्रजविहारी शुक्ल।

राजधर्म।

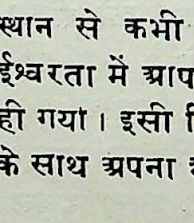

स देश की सारी प्रजा हृदय से यही चाहती है कि स्वदेशी राज्य बने रहें। उनका मान और गौरव बढ़ता रहे। उनकी दृढ़ता और कलेवर अखण्डित रहें। यही नहीं, किन्तु वह स्वदेशी रियासतों की प्रजा के साथ एकरक्त की भावना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, सनातन सम्बन्ध में, सुख दुःख में—सब बातों में—एक सूत्र में बँधी रहना चाहती है। इन सब बातों का विचार करके यदि सब लोग एकीभाव का विस्मरण न होने दें, तो बड़े ही आनन्द का विषय है।

पाठकों ने परम-नीति-निपुण सर टी० माधवराव का नाम ज़रूर ही सुना होगा। अन्यत्र आपका जीवनचरित प्रकाशित किया जाता है। आप इस समय इस लोक में नहीं हैं। पर आपकी कीर्ति-लता का यहाँ अब भी उड्डीयमान है। आपने स्वदेशी-राज्यों में बहुत काल तक ऊँचे ऊँचे पदों पर रह कर गवर्नमेंट की गूढ़ नीति और देशी राज्यों की अवस्था का सर्वोत्तम ज्ञान प्राप्त किया था। आपने प्रजा-पालन और राज्य-प्रणाली-विषयक अपने अनुभव को वर्तमान महाराजा गायकवाड़ से एक बार निवेदन किया था और देशी राज्यों की हितैषणा से प्रेरित होकर ऐसी ऐसी अनमोल बातें कही थीं जो सोने के अक्षरों में लिखा कर स्वदेशी नरेशों को सदैव अपने सामने रखना चाहिए। उस समय सर टी० माधवराव बड़ोदा में सर्वोच्च राज-प्रतिनिधि थे। अवसर था महाराजा गायकवाड़ के गद्दी पर बैठने का। आपकी अप्रतिम वक्तृता "मेजर ऐंड माइनर हिंट्स" नाम की अंगरेज़ी पुस्तक में प्रकाशित हुई है। इसी के आधार पर मैं माधवराव जी की अमृतमयी शिक्षा का कुछ अंश पाठकों को सुनाता हूं। सुनिए:—

इस समय सारे भारतवर्ष की यही इच्छा है कि स्वदेशी नरेश अपने को उत्तम शासनकर्ता सिद्ध करें। अतएव सारे राजा महाराजाओं को चाहिए कि वे उन सब सिद्धान्तों से जानकारी प्राप्त करें जिन्हें सब अच्छी अच्छी सरकारों ने स्वीकार किया है। बिना सिद्धान्तों के चलना बहुत ही भयङ्कर है। विशेष करके बड़े बड़े नरेशों के लिए तो सिद्धान्तों को जानना बहुत ही ज़रूरी है। क्योंकि उनके कामों से लाखों आदमियों को हानि-लाभ पहुँचने की सम्भावना रहती है।

कितने हीं पुरानी चाल के आदमी शायद यह कह बैठेंगे कि शासन-सम्बन्धी सिद्धान्तों की जानकारी से लाभ ही क्या है? क्यों उनके जानने में सिरखपी की जाय? पुराने राजे महाराजे कहाँ सिद्धान्त पढ़े थे? तो क्या वे अपने राज्य का कारोबार नहीं चला सके? इन बातों के उत्तर में हम सिर्फ़ इतनाहीं कहना चाहते हैं कि ऐसे आदमी देश, काल और इतिहास से बिलकुल ही अनभिज्ञ हैं। इनका कुछ भी ज्ञान उन्हें नहीं।

यदि सच पूछिए तो पुराने राज-वर्गों में बहुत ही कम राजे ऐसे निकलेंगे जिन्होंने उत्तमतापूर्वक राज्य किया हो। पुराने नरेशों को अर्वाचीन राज्य-शासन-पद्धति ही से अनभिज्ञता न थी; किन्तु और भी अनेक बातों से वे परिचित न थे। वह समय ही और था। जैसे जैसे मामले और जैसी जैसी पेचीदा बातें आज कल आ पड़ती हैं वैसी पुराने ज़माने में न पड़ती थीं। तबसे और अबसे ज़मीन आसमान का फ़रक हो गया है। पहले राजाओं के राज्य-प्रबन्ध की तरफ़ औरों का ध्यान इतना न जाता था। इससे वे अपनी अपनी रियासतों और राज्यों में मनमानी बातें किया करते थे। पर अब रेल, तार, डाक और अख़बारों की बदौलत उनकी राज्य-प्रबन्ध-सम्बन्धी ख़बरें बहुत जल्द सब तरफ़ फैल जाती हैं और एक कोलाहल सा मच जाता है। जितने स्वदेशी राज्य थे पहले सबमें कुछ न कुछ कुप्रबन्ध ज़रूरही थे। अंगरेज़ी राज्य की भी अवस्था आज कल की ऐसी न थी। परन्तु अब उन्नति का ज़माना आ गया है। स्वदेशी राज्यों के पड़ोस में अंगरेज़ी राज्य की उन्नतिशीलता देख कर मिलान करने का अब अच्छा मौक़ा मिलता है। देशी और अंगरेज़ी राज्य की प्रजा का सम्बन्ध अब प्रति दिन घनिष्ठ होता जाता है। आमद रफ़्त बढ़ती जाती है। हेल-मेल अधिक होता जाता है। शिक्षा की वृद्धि होती जाती है। अतएव देशी राज्यों में रहने वाले लोगों की राज्य-प्रबन्ध-सम्बन्धी भावनायें पहले की अपेक्षा अधिक उच्च हो गई हैं। पुराने ज़माने में कुप्रबन्ध के कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने जो कष्ट उठाये हैं वे अब नहीं उठा सकते। पहले थोड़े से ही कल्याण से उनको सन्तोष हो जाता था। थोड़े से ही सुप्रबन्ध से वे प्रसन्न हो जाते थे। पर अब वह बात नहीं। अब उतने से उनकी तुष्टि होनी असंभव है। इस समय चारों ओर उन्नति का घंटानाद हो रहा है। अतएव यदि स्वदेशी राजे महाराजे देश-प्रबन्ध में क़दम आगे न बढ़ावेंगे तो उनका पीछे रह जाना छिपा नहीं रह सकता। उसकी तरफ़ लोगों का ध्यान गये बिना न रहेगा और ध्यान जाने से ज़रूर असन्तोष पैदा होगा।

अंगरेज़ी सरकार स्वदेशी नरेशों के ऊपर है। वह ख़ुद अपना राज्य-प्रबन्ध उन्नत कर रही है। अतएव देशी राज्यों के प्रबन्ध को वह ध्यान से देखा करती है। इस विषय में वह ख़ूब सचेष्ट रहती है। स्वदेशी राज्यों में अच्छा राज्य-प्रबन्ध रखने का वह अपने ऊपर ज़िम्मा लेती है। वह कहती है कि सब तरह की जवाबदारी हमारे सिर पर है। इसी लिए उसने रेज़िडंट और पोलिटिकल ऐजंट रक्खे हैं। अब वह देशी राज्यों से कहती है—"पहले ज़माने में आपने जो कुप्रबन्ध किये—प्रजा-पालन में जो भूलें कीं—उनका प्रतीकार भी पुरानी रीति से हुआ। अर्थात् प्रजा ने बलवा करके कुप्रबन्ध और अन्याय को दूर कर दिया। इन दुर्घटनाओं के कारण कुप्रबन्ध की मात्रा कम हो जाया करती थी। अन्याय कम हो जाता था। परन्तु इस ओषधि का प्रयोग अब हम न करने देंगे। अब हम आपकी प्रजा को बग़ावत न करने देंगे। अगर कभी बग़ावत होगी तो हम अपनी सेना के बल से बाग़ियों का पारिपत्य करेंगे; शान्ति स्थापन करने में हम इसी ओषधि से काम लेंगे। बग़ावत करके अप्रबन्ध और अन्याय को दूर करने की अनुमति हम प्रजा को नहीं दे सकते। परन्तु अन्याय का प्रतीकार होना ही चाहिए। कुप्रबन्ध को दूर करना ही चाहिए। यह काम हमने अपने ऊपर लिया है। प्रजा को हम यह काम नहीं दे सकते। अतएव जब कुप्रबन्ध और अन्याय की शिकायतें हमें सुन पड़ेंगी तब हम ख़ुद जाँच करके शिकायत के कारणों को निर्मूल कर देंगे। इसके लिए यदि ज़रूरत होगी तो कुप्रबन्धकारी और अन्यायी राजा को हम पदच्युत भी कर देंगे और उसकी जगह किसी दूसरे को गद्दी पर बिठावेंगे"। अंगरेज़ी सरकार का यह कहना अनुचित नहीं। यह न्याय और नीति-सङ्गत है। अतएव देशी राजाओं को याद रखना चाहिए कि जिस सरकार की सत्ता हिमालय से कन्याकुमारी तक अबाधित है, यह उसी की राय है, उसी की दलील है, उसी का निश्चय है। आज तक जो कई राजे पदच्युत हो चुके हैं वे इस निश्चय की दृढ़ता के ताज़े उदाहरण हैं। अतएव स्वदेशी नरेशों को चाहिए कि वे इस बात के समझने की कोशिश करें कि अँगरेज़ी सरकार किस तरह के प्रबन्ध को अच्छा और किस तरह के प्रबन्ध को बुरा समझती है। उन्हें यह भी चाहिए कि जिन सिद्धान्तों को ख़ुद अँगरेज़ी सरकार ने स्वीकार किया है उनमें से मुख्य मुख्य सिद्धान्तों को वे अच्छी तरह जान लें और तदनुकूल व्यवहार करें।

अच्छा, वे सिद्धान्त कौन से हैं जिनके अनुसार व्यवहार करने से स्वदेशी नरेश उत्तम शासक हो सकते हैं?

राजाओं के लिए सबसे पहला और मुख्यतम सिद्धान्त "प्रजा के सुख को बढ़ाना" है। राजाओं का सबसे बड़ा कर्तव्य यही है। इतिहास इस बात की गवाही दे रहा है कि जिन राजाओं ने—जिन राज्यों ने—प्रजा के सुख का सबसे अधिक ख़याल रक्खा है और इस सिद्धान्त को सबसे अधिक आदरणीय जाना है उनकी सत्ता अधिक समय तक बनी रही है। विपरीत इसके, जिन्होंने इस सिद्धान्त की अवहेलना की है उनको फल भी विपरीत ही भोगना पड़ा है।

इस सर्वोत्तम सिद्धान्त के अनुसार स्वदेशी राजाओं को ख़ुद भी चलना चाहिए और बड़े से लेकर छोटे अधिकारियों तक को—सब को—सब कहीं, इसी का अनुसरण करने के लिए आज्ञा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देना चाहिए। उन्हें चाहिए कि वे इस सिद्धान्त को अपने सम्मान, समृद्धि, ऐश्वर्य्य और सुख का मूल मन्त्र समझें। कोई कोई स्वदेशी नरेश इस सिद्धान्त को मानते तो हैं; पर इसके अनुसार व्यवहार नहीं करते—इसकी उपयोगिता को सिर्फ़ मुँह से स्वीकार करते—हैं। ऐसे राजाओं को उनकी प्रजा कठोर और घृणा की दृष्टि से देखती है। इसी सिद्धान्त की बदौलत अँगरेज़ी सरकार को इतना स्थैर्य्य और इतना सामर्थ्य मिला है। जब तक प्रजा का यह विश्वास है कि अँगरेज़ी सरकार का एक मात्र उद्देश प्रजा के सुख की वृद्धि करना है तभी तक सरकार अपना कल्याण समझती है। जब इतने बड़े साम्राज्य ने भी अपनी भलाई इसी सिद्धान्त का अनुसरण करने में समझ रक्खी है तब देशी राज्यों के लिए इस बात की कितनी ज़रूरत है, इसके कहने की आवश्यकता नहीं।

इस सिद्धान्त का अभिप्राय अच्छी तरह समझाने के लिए दो एक उदाहरणों की ज़रूरत है। यदि कोई राजे महाराजे यह समझते हों कि उनका राज्य सिर्फ़ उन्हीं के लिए है—राज्य की आमदनी सिर्फ़ उन्हीं के ऐशो आराम के लिए है—तो यह उनकी भूल है। प्रजा के रुपये को वे मनमाने तौर पर नहीं ख़र्च कर सकते। व्यर्थ रुपया उड़ाना इस सिद्धान्त के सर्वथा विरुद्ध है। राज्य किसी राजा की जागीर नहीं। उसके घर का माल नहीं। वह प्रजा की धरोहर है। राज्य की आमदनी सिर्फ़ प्रजा के फ़ायदे के लिए ख़र्च करने की शर्त पर सौंपी गई है। हाँ उस आमदनी का जो अंश राज-महल और अपने निज के ख़र्च के लिए राजा को मिले वह उसका है। उसे वह जिस तरह चाहे ख़र्च कर सकता है।

यदि कोई राजा या महाराजा मनमाने जवाहरात ख़रीद करके, एक के बाद दूसरा—दूसरे के बाद तीसरा महल बनवाकर, सोने चाँदी की तोपें ढलवाकर, सिर्फ़ आडम्बर के लिए व्यर्थ सेना बढ़ाकर, या अपने कृपा-पात्रों को अनुचित धन-सम्पदा देकर प्रजा की धरोहर का अपव्यय करे तो वह सर्वथा अनुचित है। परन्तु ऐसे भी राजे हैं जो इस तरह की बातें करते हैं और जो रुपया उनको अपने निज के ख़र्च के लिए मिलता है उससे कहीं ज़ियादह फूँक तापते हैं। यह किसी प्रकार इस सिद्धान्त के अनुकूल नहीं। इस तरह के ख़र्ची कामों से प्रजा को क्या लाभ? इनसे प्रजा के सुख की रत्ती भर भी वृद्धि नहीं। जो रुपये राजा को उसके निज के ख़र्च के लिए मिलता है उसी से यदि वह चाहे तो इस तरह के काम अपनी आत्मा को ख़ुश करने के लिए कर सकता है। राजा को चाहिए कि वह अपनी प्रजा के सुख का भी ख़याल रक्खे और उसे सुखी करके ख़ुद भी सुखानुभव करे। प्रजा को सुख न देकर ख़ुद सुखानुभव में मग्न होना और मनमौजी बनकर जो चाहना करना महा अन्याय है। बल्कि यह कहना चाहिए कि इस तरह का व्यवहार राजाओं के लिए घोर आपत्ति का कारण है।

हिन्दू-मुसलमान, धनी-निर्धनी और प्रबल-निर्बल का ज़रा भी ख़याल न करके राजा-महाराजाओं को सबके सुख की वृद्धि करना चाहिए। सारांश यह कि प्रजापालक राजा को प्रजा के साथ पितृवत् व्यवहार करना चाहिए। कालिदास ने रघुवंश में क्याही अच्छा कहा है:—

प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः॥

स्वदेशी नरेशों का व्यवहार ऐसा ही होना चाहिए। रक्षण और भरण-पोषण आदि के विचार से उसे प्रजा का पिता हो जाना चाहिए। भेदभाव छोड़कर प्रजा के सब वर्गों के मनुष्यों को योग्यता के अनुसार उसे राजकीय पद देने चाहिए। सबके साथ समान नीति का व्यवहार रखना चाहिए। यह न्याय्यही नहीं, किन्तु उत्तम राजनीति का सर्व-श्रेष्ठ नमूना भी यही है। जो नरेश अपनी प्रजा को कृपा-दृष्टि से देखते हैं उनकी प्रजा सदा उनकी सहायक बनी रहती है। और राजा के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजा की सहायता की बहुत बड़ी ज़रूरत है। पर जो राजे अपनी प्रजा के किसी एकही विशेष अंश पर कृपा-दृष्टि रखते हैं, प्रजा के दूसरे अंश उनके विरोधी हो जाते हैं। इससे राजशक्ति निर्बल हो जाती है और भयङ्कर परिणाम होने का डर रहता है।

जो नरेश अपनी सारी प्रजा पर कृपादृष्टि रखते हैं और पुत्रवत् उनका पालन करते हैं उनकी प्रजा अपने नरेश के विषय में सदा इस तरह की भावना रखती है:—"हमारे महाराज हमारे सुख की वृद्धि के लिए सदा सचेष्ट रहते हैं। हमें सब तरह के आराम पहुँचाने के लिए वे सदा उद्योग किया करते हैं। अतएव वे अपनी सन्तति को भी इसी तरह प्रजापालन करने का ज़रूर उपदेश देंगे। ईश्वर करे हमारे महाराज का वंश इस राज्य का चिरकाल तक उपभोग किया करे"! अतः स्वदेशी राजा-महाराजाओं को चाहिए कि पूर्वोक्त सिद्धान्त का अनुसरण करने में सदा सचेष्ट रहें।

कुमार श्रीकेसरीसिंह बारहट।

दीन-निहोरा।

(१)

दया दयामय नाथ! सदा है अमित तुम्हारी;
जो तुमने सुधि कभी दीन की नहीं बिसारी;
कौतुक जग में करे तुम्हारी करुणा नाना;
धन, प्रभुता, बल, बुद्धि, व्यर्थ है निरा बहाना॥

(२)

जो कौड़ी को दुखी दीन रो रो तरसै है,
सहसा कंचन-मेह उसी के घर बरसै है।
मरणहार जो फँसा कठिन रोगों के दल में
जीव-दान तुम नाथ! उसे देते हो पल में॥

(३)

खुले ठौर की कड़ी शीत में जो मरता है,
दिव्यधाम में वही वास सुख से करता है।
आश-हीन की आश नाथ! तुम ही हो जग में;
बिछ जाते हैं फूल दीन के कंटक-मग में॥

(४)

बालक बिन धन-भरा महल है जिनका सूना,
सातों सुख के सहज बनें हैं वही नमूना।
नहीं नेकु भी सह्य कभी है कोप तुम्हारा;
संसारी बल इसे सके क्या रोक विचारा॥

(५)

रहता है शुभ नाम तुम्हारा मुख पर दुख में,
हाय! उसे हम अधम भूल जाते हैं सुख में।
तोभी करुणा नहीं रावरी कम होती है;
अंतर्यामी-दृष्टि जगत पर सम होती है॥

(६)

मद-माता जग भला दीन-दुख क्या पहचाने;
दीन-बंधु बिन कौन दीन के हिय की जाने।
होता जो न अधार शोक में नाथ! तुम्हारा,
निराधार यह जीव भटकता फिरता मारा॥

(७)

कभी कभी हैं काज तुम्हारे यदपि अनोखे,
तोभी उनसे लाभ सृष्टि पाती है चोखे।
जन्म, मरण, दुख, हर्ष नियम का सहकर बंधन,
करते हैं आदेश तुम्हारा निशि-दिन पालन॥

कामताप्रसाद गुरु।

श्रीमद्भागवत और बोपदेव।

ठारह पुराणों में श्रीमद्भागवत की जैसी महिमा है वैसी और किसी की नहीं। सनातनधर्मावलम्बी हिन्दू इसे बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। है भी यह बड़ा गम्भीर ग्रंथ। ऐसे वैसे पण्डित का काम नहीं कि इसका अर्थ समझ ले। जो अच्छे पण्डित हैं, जिन्होंने व्याकरणशास्त्र में खूब अभ्यास किया है, वही इसे अच्छी तरह समझ सकते हैं। इस उत्कृष्ट ग्रंथ के कर्त्ता के विषय में लोगों में मत-भेद है। यह मत भेद नया नहीं, किन्तु सैकड़ों वर्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का पुराना है। केवल नई रोशनीवाले विद्वानों ही में नहीं, किन्तु पुरानी चाल के पण्डितों में भी इस विषय पर कितनेही शास्त्रार्थ हुए हैं। उन लोगों ने इस विषय पर कई ग्रंथ भी लिखे हैं। ये ग्रंथ लन्दन के इंडिया-आफ़िस-पुस्तकालय में अब तक मौजूद हैं।

पुरानी चाल के पण्डित इस विवाद को अब भूल गये हैं। अब वे एकमत होकर व्यासजी को श्रीमद्भागवत का कर्त्ता मानते हैं। पर नई रोशनी के कुछ पण्डित उनसे सहमत नहीं। वे कहते हैं कि भागवत के रचयिता वेदव्यास नहीं, किन्तु बोपदेव हैं। पर यह मत ठीक नहीं जान पड़ता; क्योंकि इसके विरुद्ध कई प्रमाण पाये जाते हैं।

नई-पुरानी चाल के प्रायः सभी विद्वानों का मत है कि बोपदेव तेरहवीं शताब्दी में हुए थे। वे वैद्यवर केशव के पुत्र, धनेश मिश्र के शिष्य और देवगिरि-नरेश महाराज महादेव के दरबारी पण्डित थे। इस राजा ने सन् १२६० ई० से लेकर १२७१ ई० तक राज्य किया था। इसी समय के लग भग बोपदेव ने अपने सब ग्रंथ रचे थे। उनके नाम ये हैं—हरिलीला, मुक्ताफल, परमहंसप्रिया, शतश्लोक-टीका, मुग्धबोध-व्याकरण, कविकल्पद्रुम (सटीक), वोपदेवकामधेनु, रामव्याकरण इत्यादि। इनमें मुग्ध-बोधव्याकरण खूब प्रसिद्ध है। यदि यह मान लिया जाय कि भागवत की रचना भी बोपदेव ने की है तो यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि उनके पहले उसका अस्तित्व न था। परन्तु इस बात के कई प्रमाण मिलते हैं कि भागवत बोपदेव के पहले वर्त्तमान था। यहाँ पर हम उनमें से कुछ का उल्लेख करते हैं।

यह बात सब लोग मानते हैं कि शङ्कराचार्य्य बोपदेव से कई सौ वर्ष पहले हुए थे। उन्होंने अपने रचे हुए विष्णुसहस्रनाम-भाष्य और चतुर्दशमत-विवेक में भागवत का ज़िक्र किया है। इसके सिवा शङ्कराचार्य्य के पूर्ववर्त्ती हनुमत् और चित्सुख मुनि ने भागवत की टीका की है। इस दशा में भागवत बोपदेव प्रणीत कैसे हो सकती है? सिद्धान्त-दर्पण नामक ग्रंथ में लिखा है :—

"बोपदेवकृतत्वे च बोपदेवपुराभवैः।
कथं टीका कृता वै स्युर्हनुमच्चित्सुखादिभिः॥"

अर्थात् यदि भागवत बोपदेव कृत होती तो उनके पूर्ववर्त्ती हनुमत् और चित्सुखाचार्य आदि महात्मा उसकी टीका कैसे कर सकते थे। गौड़-पदाचार्य ने भी भागवत का प्रमाण माना है। वे शङ्कराचार्य्य के पहले मौजूद थे। वेदान्ती लोग जिस श्लोक को पढ़ कर अपने सम्प्रदायप्रवर्त्तकों को नमस्कार करते हैं उससे भी इस मत की पुष्टि होती है। श्लोक यह है :—

"नारायणं पद्मभवं वशिष्ठं शक्तिञ्च तत्पुत्रपराशरञ्च।
व्यासं शुकं गौडपदं महान्तं गोविन्दयोगीन्द्रमथास्य शिष्यम्।
श्रीशङ्कराचार्य्यमथास्य शिष्यम्.....।"

रामानुज के भी किसी किसी ग्रंथ में भागवत का प्रमाण उद्धृत किया गया है। विद्वानों का मत है कि रामानुज १०४९ शकाब्द में मौजूद थे। इस-लिए वे भी बोपदेव के पूर्ववर्ती हुए।

काश्मीर के क्षेमेन्द्र पण्डित ने भी क्षेमेन्द्रप्रकाश नामक अपने ग्रंथ में भागवत का उल्लेख किया है। क्षेमेन्द्र राजतरङ्गिणीकार की अपेक्षा प्राचीन हैं। क्योंकि राजतरङ्गिणीकार ने अपने ग्रंथ में क्षेमेन्द्र की राजावली का ज़िक्र किया है। इससे भी भागवत की प्राचीनता प्रमाणित होती है। यदि भागवत बोपदेव के बहुत पहले का बना न होता तो बोपदेव के समकालीन हेमाद्रि अपने ग्रंथ चतुर्वर्गचिन्तामणि में आदर के साथ उसका प्रमाण कैसे ग्रहण करते? भागवत पर अब तक जितनी टीकायें बनी हैं उनमें अधिकतर बोपदेव के पहले की है; कुछ बोपदेव के समय की हैं; और तीन ख़ुद बोपदेव की बनाई हैं। यदि बोपदेव ने भागवत बनाई होती तो उसकी सब टीकायें भी उनके पीछे की बनी होतीं। परन्तु जब ऐसा नहीं है, अर्थात् जब भागवत की टीकायें बोप-देव के पहले बन चुकी थीं, तब भागवत को बोपदेव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृत मानना कैसे युक्तिसंगत हो सकता है। टीकाओं के नाम ये हैं:—

"श्रीधरीय, परमहंसप्रिया, हरिलीला, विद्वत्-कामधेनु, सम्बन्धोक्ति, तत्त्वदीपिका, सुदर्शनी, मुनिप्रकाशिका, प्रहर्षणी, यादुपती, बृहत्तोषिणी, चक्रवर्त्तीया, माधवीय, वामनी, एकनाथी, पुरुषोत्तमी, इत्यादि।"

हिन्दी की भी एक किताब से भागवत का प्राचीनत्व सिद्ध होता है। उसका नाम है:—"भागवत दशमस्कन्ध"। यह श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध का हिन्दी में पद्यानुवाद है। अनुवादकर्त्ता का नाम भूपति है। इसकी रचना संवत् १३४४ (सन् १२८७ ई०) में हुई थी। यह बात इस पुस्तक के अन्त में लिखे हुए दोहे से सिद्ध है। दोहा यह है:—

"संवत तेरह सै भए, चारी अधीक चालीस।
मरगेसर सुद एकादसी, बुधबार रजनीस॥"

अब यदि भागवत बोपदेव की बनाई होती तो यह सम्भव न था कि उसका तुरन्त ही इतना अधिक प्रचार होजाता और वह इतनी प्रसिद्ध हो जाती कि उसके अनुवाद तक होने लगते। क्योंकि उस समय रेल, तार, छापेख़ाने, अख़बार आदि कुछ न थे। इसलिए मानना पड़ता है कि अनुवाद होने के बहुत दिन पहले भागवत की रचना हुई होगी और उस समय तक यह पुस्तक देश भर में ख़ूब विख्यात हो गई होगी। इस दशा में उसके कर्त्ता बोपदेव नहीं हो सकते। यह हिन्दी-अनुवाद बाबू कृष्णप्रसाद के यहाँ गोरखपुर में मौजूद है। जिसका जी चाहे जाकर देख सकता है।

श्रीमद्भागवत ही के विषय में नहीं, किन्तु अन्य कई पुराणों के विषय में भी अनेक विद्वानों को उनके बहुत पुराने होने में शङ्का है। पर अब कितनेही ऐसे प्रमाण पाये गये हैं जिनसे पुराणों का प्राचीनत्व अच्छी तरह सिद्ध होता है। कई एक पुराण, अधिक नहीं तो ईसा की दूसरी शताब्दी में ज़रूरही विद्यमान थे।

उदयनारायण वाजपेयी।

आर्यभट।

सरस्वती के बहुत से पाठक आर्यभट के नाम से परिचित होंगे। आर्यभट बहुत पुराने ज्योतिषी हैं। आज तक ज्योतिष-सिद्धान्त-भाग के जितने ग्रन्थ पाये जाते हैं आर्यभट का सिद्धान्त सबसे पुराना है। आर्यभट के पहले का कोई मनुष्यकृत सिद्धान्त उपलब्ध नहीं है। हमारे देश के बहुत से सिद्धान्ती पण्डित आर्यभट के नाम और उनके सिद्धान्त से अपरिचित हैं। इसके कई कारण हैं। एक तो किसी पाठशाला में यह सिद्धान्त पढ़ाया नहीं जाता। दूसरे कहीं पूरी और शुद्ध लिखी हुई पुस्तकें नहीं हैं। जो हैं भी वे राजकीय पुस्तकालयों में किसी तरह खोज खोज कर आधी तिहाई जैसी मिली हैं रक्खी हैं। वे नियमित पुरुषों के सिवा और किसी को मिलती नहीं। तीसरे जो पुस्तकें छपी हैं शुद्ध नहीं हैं। जहाँ तक मैं जानता हूँ, चार पाँच साल हुए किसी बङ्गाली ज्योतिषी ने एक बार यह सिद्धान्त प्रकाशित किया था। परन्तु मुजफ़्फ़रपुर ज़िले के शास्त्र प्रकाश कार्य्यालय ने इसकी हिन्दी-टीका करके फिर निकाला है।

इस दशा में आर्यसिद्धान्त को कितने मनुष्य पढ़कर उसका उपयोग कर सकते हैं? पढ़ना और चीज़ है और मनन करना दूसरी चीज़ है। हमारे देश के ज्योतिषी किसी क़दर पढ़ने के सिवा मनन से कोसों दूर भगते हैं। उन लोगों को पढ़ लिख कर भी यह शौक़ नहीं पैदा होता कि ज्योतिष-सिद्धान्त की बातों का पूर्वापर विचार करें और कोई नई बात खोज निकालें। यद्यपि सिद्धान्तशिरोमणि, सिद्धान्ततत्त्वविवेक, सूर्यसिद्धान्त आदि प्रचलित सिद्धान्त ग्रन्थों की बराबरी का आर्य-सिद्धान्त नहीं है तो भी जैसा प्राचीन प्रारंभिक सिद्धान्त होना चाहिए वैसा ज़रूर है। उसमें कई एक बातें बिलकुलही नई हैं जिनका पता यूरोपियन ज्योतिषियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को भी सैकड़ों वर्ष बाद लगा है। विद्या की उन्नति का मूल कारण रुचि है। जिनको रुचि ही नहीं है वे अपने घर की ही पुस्तकें न देखेंगे। आर्यसिद्धान्त ढूँढ़ कर उस पर भला वे विचार क्यों करेंगे? हमारे सिद्धान्तियों के भाग्य में ये बातें कहाँ? ये तो यूरोपियन विद्वानोंहीं के भाग्य में हैं। वही उनका आनन्द ले रहे हैं। वही यहाँ या यूरप में जो चाहें प्रकाशित करें। कई साल हुए डाक्टर कर्न ने आर्य-सिद्धान्त का संशोधन करके उसे पहले पहल यूरप में प्रकाशित किया था।

आर्यभट ने अपने ग्रन्थ में अपना समय इस प्रकार लिखा है:—

षष्ट्यब्दानां षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादाः।
व्यधिका विंशतिरब्दास्तदेह मम जन्मनोऽतीताः॥

अर्थात् ३६०० वर्ष कलिके व्यतीत होने पर मेरी उम्र २३ वर्ष की थी। इससे सिद्ध हुआ कि कलि के ३५७७ वें वर्ष उसका जन्म हुआ था। कलि-वर्षों में ३१७९ घटाने से शकाब्द होता है। इसलिए ३९८ शक अर्थात् ४७६ ईसवी में आर्यभट का जन्म सिद्ध हुआ। यह समय स्वयं ग्रन्थकार ने लिखा है। इसलिए इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है। प्रायः सभी पुरातत्त्व-पण्डितों ने इसे माना है। मद्रास के प्रभावशाली मासिकपत्र "इंडियन रिव्यू" (Indian Review) के जुलाई ०५ के नम्बर में आर्यभट पर एक लेख निकला है। उसके लेखक टी० रामलिङ्गम् पिल्ले बी० ए० हैं। पिल्ले महाशय का यह लेख उनके पिता के मलयालम लेख का अँगरेज़ी-अनुवाद है। इस लेख में आर्यभट का समय वही ४७६ ईसवी स्थिर किया गया है। परन्तु कप्तान वारन (Captain Warren) नाम के एक ग्रन्थकार ने अन्यथा लिखा है। उसने १३२२ ईसवी स्थिर किया है। इसका पिल्ले महाशय ने खण्डन किया है।

आर्यभट का समय ४७६ ईसवी ही ठीक है। डाक्टर भाऊ दाजी, कर्न आदि सभी ने इसी को ठीक माना है।

आर्यभट का निवास कुसुमपुर में था। यह बात उन्होंने ख़ुदही लिखा है:—"कुसुम-पुरेऽभ्यर्च्य तज्ज्ञानम्"। कुसुमपुर उस समय पटने का नाम था। बहुत समय तक पटना भारत की राजधानी था। पण्डितों का वहाँ अधिक जमाव रहता था। उसके बाद उज्जयिनी में, और अन्त में धारा नगरी में रहा। यदि कुसुमपुर आर्यभट का जन्म-स्थान न भी हो, तोभी ग्रन्थ-रचना वहीं हुई है।

आर्यभट का सिद्धान्त उनके नाम से ही प्रसिद्ध हुआ। उसका नाम आर्यभटीय, आर्यसिद्धान्त, आर्यभट-सिद्धान्त, आर्यभटीय सूत्र आदि भिन्न भिन्न पुस्तकों में भिन्न भिन्न मिलता है। जहाँ तक मेरा अनुमान है, आर्यभटीय ही नाम ठीक मालूम पड़ता है। इंडियन रिव्यू वाले लेख में लेखक महाशय लिखते हैं कि आर्यभट ने वेध-द्वारा ग्रहों के विषय में जो बातें जानीं वे पहले आचार्यों के सिद्धान्तों से विरुद्ध ठहरीं। इससे संशय में पड़कर आर्यभट ने ज्ञान-वृद्धि के लिए ईश्वर की उपासना की। ईश्वर ने सन्तुष्ट होकर उनकी इच्छा पूर्ण की * *। यह बात आर्यभटीय के टीकाकार परमेश्वर ने लिखी है। और आर्यभट ने भी ग्रन्थान्त में इस विषय का संक्षेप से उल्लेख किया है।

आर्यभट दो हुए हैं। दूसरे आर्यभट, पहले आर्यभट के कई सौ वर्ष बाद हुए हैं। उन्होंने अपने सिद्धान्त में पहले आर्यभट को वृद्धार्यभट लिखा है और अपने सिद्धान्त का आधार भी उन्हीं के ग्रन्थ को माना है। जैसा—

वृद्धार्यभटप्रोक्तं सिद्धान्ताद्यं महाकाज्ञात्।
पाठैर्गतमुच्छेदं विशेषितं तन्मया सम्यक्॥

और भी,

एवं परोपकृतये स्वोक्त्योक्तं खेचरानयनम्।
किंचित्पूर्वागमसमं.....॥

पहला आर्यभट-सिद्धान्त बहुत छोटा है। पर यह बड़ा है। इसमें १८ अध्याय हैं। इसका नाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं कहीं "आर्यभट-महासिद्धान्त" लिखा मिलता है। पहले आर्यसिद्धान्त से भी यह अधिक दुर्लभ है। आज कल जो छपी या लिखी पुस्तकें मिलती हैं वे पहले आर्यसिद्धान्तही की हैं। बृहत्संहिता की भूमिका में डाक्टर कर्न के लेख से मालूम पड़ता है कि उनके पास जो पुस्तक थी उसका नाम "आर्यभट-महासिद्धान्त" या "आर्यभटाख्यो महासिद्धान्तः" था। आलबिरुनी ने अपने ग्रन्थ में आर्यसिद्धान्त का कुछ अंश उद्धृत किया है। वह उस सिद्धान्त से नहीं मेल खाता जो आज कल प्रचलित है। इससे जान पड़ता है कि वह अवतरण आर्यभट-महासिद्धान्त से ही लिया गया होगा।* सम्भव है दूसरे आर्यभट का भी नाम आर्यभट रहा हो। कुछ भी हो आर्यभट का अनुसरण करने से यह भी आर्यभट-सिद्धान्त कहलाया। कर्न साहब का मत तो यह है कि ग्रन्थकर्ता का नाम अज्ञात है। और लोगों ने भी विचार से यही स्थिर किया है। डाक्टर भाऊ दाजी के मत से दूसरे आर्यभट का समय १३२२ ईसवी है। लासन साहब ने लिखा है कि इनकी बनाई सूर्यसिद्धान्त पर एक टीका भी है। उसका नाम सूर्यसिद्धान्त-प्रकाश है।

वृद्धार्यभट के सिद्धान्त के मुख्य दो खण्ड हैं। पहला दशगीति, दूसरा आर्याष्टोत्तरशत*। दूसरा खण्ड गणितपाद, कालक्रियापाद और गोलपाद इन तीन भागों में विभक्त है। पहला खण्ड गीति छन्द में और दूसरा आर्या छन्द में है। गीतिखण्ड में चारों युगों की व्यवस्था, ग्रह, नक्षत्र, उच्च और पात की व्यवस्था दिखलाई गई है। गणितपाद में पाटीगणित का विषय है। कालक्रिया में काल और क्षेत्र विभाग हैं। गोलपाद में ग्रह और गोलगणित की बातें हैं। इस सिद्धान्त पर परमेश्वर नाम के एक पण्डित ने टीका लिखी है। मूल के साथ यह एक दो दफ़े प्रकाशित हुई है। यह टीका प्रौढ़ नहीं है। दूसरी टीका "भटप्रकाशिका" नामक है। इसके निर्माता सूर्यदेव नामक कोई ज्योतिषी हैं। यह टीका परमेश्वर की टीका से पुरानी है। क्योंकि इसमें कई जगह सूर्यदेव का मत परमेश्वर ने लिखा है। सूर्यदेव भास्कराचार्य से भी प्राचीन हैं। इससे सिद्ध होता है कि परमेश्वर भास्कराचार्य के परवर्ती हैं। इन दोनों टीकाओं को एकत्र करके डाक्टर कर्न ने आर्यभटीय, बहुत दिन हुए, विलायत में प्रकाशित किया था। यह पुस्तक इस देश में दुर्लभ है।

इण्डियन रिव्यू वाले लेख में लेखक महाशय लिखते हैं कि आर्यभटीय पर केरली नीलकण्ठ सोमयाजी कृत एक टीका है। वह पूरा भाष्य है। पर उसकी लिखित प्रति केरल देश में भी दुर्लभ है। वह आज तक कहीं नहीं छपी। नीलकण्ठ सोमयाजी ने इस भाष्य को छोड़कर ज्योतिष के स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखे हैं। उनके नाम हैं—

---

* बेंटली साहब एक बड़े धुरन्धर विद्वान् हो चुके हैं। उन्होंने भारतीय ज्योतिषशास्त्र की आलोचना की है। आलोचना मैंने देखी है। जहाँ तक हो सका है, बेन्टली ने सारे देश के दोषों को हमारे यहाँ के ज्योतिष और ज्योतिषियों के सिर मढ़ा है और यथेष्ट प्रमाद-पूर्ण अनर्गल बातें उन्मत्त होकर लिखी हैं। अस्तु। इन्होंने इस द्वितीय आर्यसिद्धान्त को ही प्रथम मूलसिद्धान्त माना है। इस बात का डा० कर्न प्रतिवाद करते हैं और लिखते हैं:—"As Bentley knew no Sanskrit, it is but charitable to try to believe that he had not seen or heard of the passages communicated above....." पाठक, बेंटली संस्कृत नहीं जानते थे देखा! बस यही उनकी सत्यता के लिए काफी है।

* आर्याष्टोत्तरशत में १०८ श्लोक हैं। इस भाग का ठीक नाम आर्याष्टशत है। कोलब्रुक साहब ने ग्रन्थ को बिना देखे ही लिख दिया है कि इसमें ८०० श्लोक हैं। कर्न साहब ने भी कोलब्रुक साहब की इस बात का खण्डन किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) तत्त्वसंग्रह
(२) ग्रहणनिर्णय
(३) सिद्धान्तदर्पण

इन ग्रन्थों में से किसी में नीलकण्ठ का समय १४९९—१५०० ईसवी लिखा है। इससे सिद्ध है कि आर्यभट को अपना सिद्धान्त लिखे उस समय एक हज़ार वर्ष हो चुके थे। लेखक महाशय ज़ोर देकर कहते हैं कि ऐसी टीका दूसरी नहीं है। इस टीका से आर्यभटीय के वैज्ञानिक अर्थ-गाम्भीर्य का अच्छा पता लगता है।

पिल्ले महाशय ने अपने लेख में आर्यभट के ग्रन्थ से भूमि का आकार, भूमि की स्थिति, भूमि का आकर्षण, भूमि का भ्रमण, भूमि की वार्षिक गति, ग्रहकक्षाओं की अण्डाकारता आदि आठ दश बातें लेकर, नीलकण्ठ की टीका के सहारे, वर्तमान यूरोपियन मतों के साथ उनकी तुलना की है। इन्होंने सिद्ध किया है कि आर्यभट वैज्ञानिक ज्योतिषी थे। उनकी सब बातें आजकल के सिद्धान्तों की समता रखती हैं। कहीं कहीं लेखक महाशय ने शब्दार्थों को खींच खाँच कर आर्यभटीय ही को सारे विज्ञानों का आधार सिद्ध करने की चेष्टा की है। पर ऐसा करने में आपसे भ्रम हो गया है।

वास्तव में आर्यभट को भारतवर्ष का न्यूटन कहना चाहिए। आर्यभट ने अपना सिद्धान्त प्राचीन ग्रहसिद्धान्तानुसार बनाया है। और जैसा मूल सिद्धान्त होना चाहिए वैसाही है। इसका आदर पुराने ज़माने में कितना था, यह इसी से स्पष्ट है कि हज़ारों वर्ष बाद भी इसपर टीका टिप्पणियाँ लिखी गईं और ग्रन्थ सुबोध किया गया। पर गति विचित्र है। इस समय इसको सिद्धान्ती घृणित घृणा की दृष्टि से कभी कभी स्मरण मात्र कर लेते हैं। अस्तु।

आर्यभट की विशेष ख्याति का कारण यह है कि इन्होंने इस देश में हज़ारों वर्ष पहले भूमि का भ्रमण अपने ग्रन्थ में दिखलाया। इसका पता यूरोपियन ज्योतिषी कोपर्निकस को १५ वीं सदी में लगा है। वही यूरप में भूभ्रमण के आविष्कारक माने जाते हैं। आर्यभट का भूभ्रमण वाला प्रसिद्ध श्लोक यह है :—

अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।
अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लङ्कायाम्॥

मतलब यह कि नाव पर चढ़कर पूर्व दिशा की तरफ़ जानेवालों को, दोनों किनारों के अचल वृक्ष, अपनी दिशा से विलोम अर्थात् पश्चिम को चलते हुए जैसे नज़र आते हैं, वैसेही निरक्ष देश में अचल नक्षत्र पश्चिम दिशा को जाते हुए मालूम पड़ते हैं। यह एक मोटा दृष्टान्त है। ऐसी कई एक नई नई बातें आर्यभट ने लिखी हैं। बहुतों का अनुमान है कि आर्यभट के समय में ग्रीक ज्योतिषियों का भारत से अधिक सम्बन्ध था। और यह भूभ्रमण आर्यभट को उन्हीं लोगों से ज्ञात हुआ है। अँगरेज़ लोग ग्रीक सभ्यता के बड़े पक्षपाती हैं। इससे जो अनुमान करें ठीकही है। आर्यभट ने १, २, ३, आदि संख्याओं को क, ट, प, य आदि अक्षरों के क्रम से लिखा है। यह भी ग्रीकवालों की रीति है। पण्डित सुधाकर द्विवेदी आदि विद्वानों ने भी यह बात मानी है। ख़ैर, जो कुछ हो।

बड़े दुःख की बात है कि भूभ्रमण का विषय हमारे यहाँ के ज्योतिषियों के मन में न आया। वराहमिहिराचार्य, त्रिस्कन्ध-ज्योतिष में अद्वितीय और आर्यभट के प्रायः समकालीन थे। उन्होंने ही इस पर ध्यान न दिया तो औरों की बात ही क्या है। परमेश्वर, जो आर्यभटीय के टीकाकार हैं, वे पूर्वोक्त श्लोक की टीका में लिखते हैं "परमार्थतस्तु स्थिरैव भूमिः"। "भूमेः प्राग्गमनं नक्षत्राणां गत्यभावं चेच्छन्ति केचित्तन्मिथ्याज्ञानवशात्"। वाह! ख़ूब टीका हुई। यही नहीं लल्ल, श्रीपति, भास्कर, कमलाकर सभी ने बड़े बड़े दृष्टान्तों से भूभ्रमण का खण्डन किया है। "कुँवे में ही भंग पड़ गई"! सबको एक ही बात सूझी। विवेकशक्ति मोहमयी हो गई। जिन लोगों ने ग्रहतत्त्व की बड़ी बड़ी गहन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातें खोज निकालीं और नवीन सिद्धान्त बना डाले, ऐसे महापुरुषों की—फिर एक की नहीं सब की—बुद्धि मारी गई, यह अपूर्व दैवी लीला है। इसी भूभ्रमण को आज कल यूरोपियन विद्वानों ने बड़ी योग्यता और प्रमाण-पूर्ण दृष्टान्तों से सिद्ध किया है, जिसे देखकर अलौकिक आह्लाद होता है। सच तो यह है कि आर्यभट को ही भूभ्रमण-विज्ञान का सुयश मिला। हमारे यहाँ के और ज्योतिषियों के नसीब में वह न था।

गिरिजाप्रसाद द्विवेदी।

माड़िये और मुरिये।

सरस्वती में कई जंगली जातियों का विचित्र हाल छप चुका है। इसलिए आज मैं भी मध्यप्रदेश के माड़िया और मुरिया जाति के जंगली लोगों का संक्षिप्त हाल सुनाता हूँ।

माड़ियों और मुरियों के घर।

ये लोग या तो पहाड़ियों के ऊपर या उनके बीच में अथवा मैदानों में छोटी छोटी झोंपड़ियाँ बनाकर रहते हैं। हर एक झोंपड़ी में दो कोठरियाँ होती हैं। एक चूल्हे के लिए, दूसरी घरवालों के सोने के लिए। धान आदि जो चीज़ें ये लोग अपने खेतों में पैदा करते हैं उन्हें वे या तो जंगल में या पहाड़ियों के ऊपर रख देते हैं।

घोटुल।

ये लोग अपनी झोंपड़ियाँ अकसर दो क़तारों में बनाते हैं। इनके बीच में एक और झोंपड़ी बनाई जाती है जिसे "घोटुल" कहते हैं।

इस घोटुल में गाँव के कुँवारे लड़के रात को बीच में आग जलाकर सोते हैं। ये लोग सोते समय कभी कभी गीत गाकर और कहानियाँ कह कर मन बहलाते हैं। कभी कभी ढोल बजाकर नाचते भी हैं।

जो गीत ये लड़के गाते हैं उनमें से एक गीत का कुछ अंश इस प्रकार है :—

गिव गीव वड़ि वाँता लोन मने लाल।
गिव गीव वड़ि वाँता लोन मने लाल।
जिमजीम पिर वाँता लोन
मंदे किन आका लोन मंदे कीन।
सिव सीव पीनि मंदे किस मासे
किन आका किस मासे कीन॥

यह एक शृंगार रस-पूर्ण गीत है जिसका मतलब लिखने की ज़रूरत नहीं।

यदि घोटुल में सोनेवालों में से कोई कुँवारा युवक किसी युवती पर आसक्त होजाता है तो वह रात को उठ कर उस युवती के पास जाता है। कुछ दिन में घोटुल के लड़के इस बात को जान जाते हैं और उस लड़की और लड़के के मा-बाप से सब हाल कह देते हैं। तब उन दोनों की शादी बहुत जल्द कर दी जाती है। यदि उनके मा-बाप शादी करना नहीं चाहते और उन दोनों के प्रेमरूपी तार को काट देना चाहते हैं तो वे दोनों उस गाँव से भाग जाते हैं और किसी दूसरे गाँव में पति-पत्नी के रूप में आनन्द के साथ अपने दिन बिताते हैं। कुछ समय के बाद अपने गाँव को वे लौट आते हैं।

खेती करना।

माड़िये और मुरिये लोग मिहनती नहीं होते। ये लोग पहाड़ और जंगल काट कर जलाते हैं। उसमें मोटा अन्न बो देते हैं और पकने पर काट लेते हैं। ये लोग साल भर में इतनाही काम करते हैं। अब कुछ मुरिये खेती करना सीख रहे हैं।

किसी किसी माड़िये के पास कुछ गायें भी रहती हैं। पर उनकी रक्षा करना या दूध दुहना बिलकुल नहीं जानते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवता।

माड़िये और मुरिये बहुत से देवताओं को मानते हैं। उनके नाम भी अलग अलग रखते हैं। इन देवताओं के कभी कभी बच्चे भी पैदा होते हैं।

नवजात देवता का नाम भी नया रक्खा जाता है। इन लोगों का विश्वास है कि संसार में अच्छा या बुरा जो कुछ होता है वह सब इनके देवता ही करते हैं। यदि कोई बीमारी गाँव में फैल गई तो ये कहेंगे कि देवता नाराज़ हो गया है; उसे सुअर या मुर्गी देना चाहिए। जब वर्षा ऋतु में पानी नहीं बरसता तब ये लोग कहते हैं कि कोई देवता दौरा कर रहा है; इसी से पानी नहीं बरसता। जब वह देवता अपने घर लौट जायगा तब पानी बरसेगा। यदि बहुत दिनों तक पानी न बरसा तो ये लोग अपने देवता को मनाते हैं और कहते हैं कि हे देव! तू दौरे से अपने घर शीघ्रही लौटजा और पानी बरसने दे।

जब कभी लगातार बहुत दिनों तक पानी बरसता रहता है तब ये लोग कहते हैं कि किसी देवता की शादी हो रही है; इसी से इतना पानी बरस रहा है। लगातार बरसने वाले पानी को बंद करने के लिए अपने गाँव के एक देवता को घर के भीतर से निकाल कर छत पर रख देते हैं और उससे कहते हैं कि देख, जब तक पानी बरसना बंद न होगा तब तक तुझे इसी छत पर भीगते रहना पड़ेगा। इसलिए पानी बरसना जल्दी बंद कर दे। जब कुछ दिन बरसने के बाद पानी बंद होजाता है तब ये लोग उस देवता के पास जाते हैं और हँसते हुए उससे कहते हैं कि जब कुछ दिन पानी में भीगे बिना पानी बरसना बंद किया; यदि पहले ही बंद कर देते तो क्यों भीगना पड़ता। इस तरह हँसी मज़ाक के बाद वह देवता कोठरी के भीतर रख दिया जाता है और उस पर एक सुअर, कुछ मुर्गियाँ और थोड़ी सी शराब चढ़ाई जाती है।

जब कोई बीमार होता है तब यह समझा जाता है कि उस पर यातो कोई देवता नाराज़ हो गया है या किसी ने जादू किया है। इन दोनों में से एक बात निश्चित करने के लिए एक आदमी 'देव' बैठाया जाता है जो देवता की तरफ़ से कोई भी एक बात बता देता है और यह भी कह देता है कि अमुक देवता को कुछ सुअर या मुर्गियाँ देने से वह आराम हो जायगा। मैंने एक दिन एक मुरिये से पूछा कि तुझे 'देव' किस प्रकार आता है? उसने जो कुछ कहा उसका सारांश यह है :—

जब मैं 'देव' बैठने के इरादे से चोटी खोल कर बैठ जाता हूँ तब एक बहुत छोटी और अनेक भूषणों से भूषित अत्यन्त रूपवती कन्या मेरे सामने आकर खड़ी हो जाती है। उसे देखतेही मैं उसके ध्यान में निमग्न हो जाता हूँ और प्रश्नों का उत्तर उसकी आज्ञानुसार देता हूँ।

उस अद्भुत कन्या को ये लोग "नेला मुत्ते" कहते हैं। उसका अर्थ "भूमाता" (Queen of the Earth) हो सकता है।

जादू।

प्रायः सभी माड़िये और मुरिये जादू करना जानते हैं। इसे वे कई तरह से करते हैं। अपने वैरी पर जादू करने का ढंग बिलकुल साधारण है। शत्रु का अनिष्ट चाहनेवाला मुरिया अपने देवता के सामने जाकर प्रार्थना करता है कि अमुक मनुष्य मेरा वैरी है। तू उसे मार डाल। मैं तुझे सुअर दूँगा। कुछ लोग शायद कुछ मंत्र-तंत्र भी जानते हैं। लेकिन पूछने से नहीं बताते।

इन लोगों का विश्वास है कि किसी दुश्मन पर जादू करने से वह ज़रूर मरेगा।

तेवहार।

इन लोगों के छोटे बड़े कई तेवहार होते हैं। पर मुख्य तीन ही हैं :—(१) कटा पंडुम, (२) हिडका पंडुम और (३) काड़े पंडुम। पंडुम का अर्थ तेवहार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) कटा पंडुम :—यह तेवहार हर साल सितम्बर के महीने में मनाया जाता है। इस तेवहार में माता देवी की पूजा मुर्ग़ी के चार पाँच बच्चों और एक सुअर के द्वारा की जाती है। इस तेवहार के बाद तीन दिन तक ये लोग कोई काम नहीं करते। अर्थात्—तीन दिन तक छुट्टी मनाई जाती है।

(२) हिडका पंडुम :—यह तेवहार हर साल अक्टोबर या नवम्बर में किया जाता है। इस तेवहार में माता देवी और "नूल हिडमा" (नूल=धागा अर्थात् धागा देव) की मन्नत मानते हैं। कहते हैं कि हम आज से नई चीज़ें खायँगे; तुम हम पर अप्रसन्न न होना। हम तुमको "काडे पंडुम" तेवहार में घर पीछे मुर्ग़ी का एक एक बच्चा और गाँव भर की तरफ़ से एक सुअर देंगे। इस तेवहार के बाद से ये लोग नई चीज़ें खाने लगते हैं।

(३) काडे पंडुम :—यह तेवहार माघ मास में (जिसे मुरिये महालेंज कहते हैं) होता है। इसमें सबेरे मातादेवी को एक सुअर चढ़ाया जाता है और उसी दिन "नूलहिडमा" को एक सुअर गाँव की तरफ़ से और घर पीछे मुर्ग़ी का एक एक बच्चा दिया जाता है। इस तेवहार के बाद जंगल के कन्द-मूल और फल आदि खाने की आज्ञा है। इसके होने के पहले कोई भी जंगली चीज़ नहीं खाई जाती।

विवाह।

मँगनी :—जब लड़की माँगने के लिए मुरिये या माड़िये लोग जाते हैं तब काँसे का एक सींग और काँसेही की एक अँगूठी लड़की वाले को देने के लिए ले जाते हैं। लड़की वाले के घर में जाकर ये दो चीज़ें उसके सामने रख देते हैं और अपना मतलब कह देते हैं। यदि लड़की वाले को अपनी लड़की देना मंज़ूर होता है तो वह उन दो चीज़ों को रख लेता है और उनके बदले लड़की माँगने वालों को दो सेर चाँवल और एक मुर्ग़ी दे देता है। इससे लड़की माँगने वालों को मालूम होजाता है कि उसे लड़की देना मंज़ूर है।

शादी:—इसके बाद लड़केवाले अपने गाँव को लौट जाते हैं। कुछ दिनों के बाद वे गाँव भर के लोगों को लेकर ढोल बजाते हुए लड़की वाले के यहाँ से लड़की लाने के लिए जाते हैं।

इस समय लड़कीवाला इन लोगों को कुछ चाँवल, एक सुअर और थोड़ी सी शराब देता है और इन्हीं लोगों के साथ अपनी लड़की लेकर दूल्हे के गाँव जाता है। लड़कीवाला भी अपने गाँव के लोगों को अपने साथ ले जाता है। दूल्हे की तरफ़ से दुलहिनवाले को उतना ही सामान दिया जाता है जितना कि दुलहिनवाले मँगनी के समय दूल्हे की तरफ़ के लोगों को देते हैं। खाने पीने के बाद रात भर मर्द-औरतों का नाच होता है। इस नाच में रात भर के लिए स्त्री-पुरुष स्वतंत्र समझे जाते हैं। सब लोग शराब पीकर मस्त हो जाते हैं। इस समय वहाँ वैसा ही दृश्य देखने में आता है जैसा कि वाममार्गियों और चोली-मार्गियों की पूजा के समाप्त होने पर होता है।

ढोल बाजों के साथ रात भर नाच होने के बाद शादी ख़तम होती है। सबेरे लड़की को दूल्हे के घर में छोड़ कर सब लोग चले जाते हैं। लड़की की मा को एक कपड़ा या एक रुपया दिया जाता है।

मृतक कर्म।

जब इन लोगों में कोई मर जाता है तब मामूली रोने गाने के बाद मुर्दे को गाड़ने या जलाने की तैयारी की जाती है। मुर्दे के साथ उसकी चीज़ वस्तु गाड़ दी जाती है। यदि उसका कोई वारिस हुआ तो आधा माल उसे दे दिया जाता है। उसके कपड़ों के छोटे छोटे टुकड़े कर डाले जाते हैं और उस गढ़े के चारों तरफ़ झंडियों की तरह लटकाये जाते हैं। तीसरे दिन बर्षी की जाती है। उसमें एक गाय या बैल मारा जाता है। इस तरह उसका क्रिया-कर्म ख़तम होजाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रियों की दिगम्बरता।

माड़िया जाति के लोग, ख़ास कर औरतें, अब भी अधनंगी ही रहती हैं। अपने गाँव के तेवहार में जब औरतें चाँवल आदि तैयार करती हैं तब वे बिलकुल नंगी हो जाती हैं। यह समझती हैं कि नंगी होकर काम करने से बरकत होती है।

अद्भुत विश्वास।

इन जंगली लोगों को दृढ़ विश्वास है कि इंद्रावती नदी का जितना हिस्सा कुटरू की ज़मीदारी (ज़िला रायपुर) में है उतने में एक प्रकार के सर्प और नागिनियाँ रहती हैं जिनको ये लोग "पेन तरस" (देव-सर्प) कहते हैं। ये कहते हैं कि ये सर्प अपने रूप और शरीर को मनमाना बदल सकते हैं। ये सर्प कभी छोटे कभी बहुत बड़े हो जाते हैं और कभी बिलकुल ग़ायब हो जाते हैं। कभी किसी दूसरे जानवर का रूप धारण करते और कभी कभी मनुष्य भी बन जाते हैं। बरसात में जब इंद्रावती नदी में बाढ़ आती है तब ये लोग इन सर्पों के कारण नदी के पास जाने से बहुत डरते हैं। इन लोगों का कथन है कि इन्द्रावती नदी में जहाँ जहाँ गहरा पानी होता है वहाँ वहाँ इन सर्पों के सोने के बने हुए बड़े बड़े महल और बड़ी बड़ी बस्तियाँ हैं।

यदि नागिनियाँ किसी आदमी पर आसक्त हो जाती हैं तो उसे ले जाकर वे अपने महल में रखती हैं और उसे खिलाती पिलाती हैं। यदि उनकी इच्छानुसार वह आदमी नहीं चलता तो उसे मार डालती हैं और यदि वह उनकी इच्छानुसार चले तो उसे स्वर्ग का ऐसा सुख अनुभव कराती हैं।

मतलब यह है कि इन अद्भुत जीवों के विषय में जंगली लोग ऐसी ऐसी बातें बताते हैं जिनका कुछ ठीक ठिकाना नहीं।

नामकरण की विचित्र रीति।

इन लोगों के नाम रखने का एक अद्भुत ढँग है। जिस मौक़े पर बच्चा पैदा होता है उसी मौक़े के अनुसार उस बच्चे का नाम रक्खा जाता है। यदि धान की फ़सल के समय बच्चा पैदा होता है तो उसका नाम "धानिया" रखते हैं। अपनी भाषा में वे उसे "वंजा" कहते हैं, क्योंकि उन की भाषा में धान को वंजी कहते हैं। जब कोई बड़ा हाकिम या साहब दौरा करते हुए इन लोगों के गाँव में पहुँच जाता है तब यदि अकस्मात् उस गाँव में किसी के यहाँ बच्चा पैदा हुआ तो उस बच्चे का वही नाम रक्खा जाता है जो उस हाकिम या साहब का होता है। यदि उसका नाम सीधा साधा छोटा सा और आसानी से उच्चारण करने योग्य हुआ तो असल नाम ही काम में लाया जाता है नहीं तो "साहब, सायब या साइब" इतनाही उस बच्चे का नाम रक्खा जाता है। और जब कोई उस बच्चे के बाप को बुलाता है तो "साहब के बाप" कह कर बुलाता है। क्योंकि इन लोगों में बुलाने की रीति ही ऐसी है कि जब बाल-बच्चे वाले आदमी को बुलाते हैं तब उसका नाम न लेकर उसके लड़के का नाम लेकर लाते हैं। जैसे किसी साहब का नाम "लाँग" हो और वह किसी माड़िया के गाँव में जाय और उसी दिन उस गाँव में किसी के घर लड़का पैदा हो तो उस लड़के का नाम "सायब, लौंग या लोंगा" रक्खा जायगा। जब उस लड़के के बाप को दूर से बुलायँगे तो "लौंग का बाप" कह कर बुलायँगे। इसी तरह एक दिन एक साहब के नाम की दुर्दशा होते देख कर मैं हँसते हँसते लोट गया था।

निज़ामशाह।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिन्न भाषाओं की कविता का विम्ब-प्रतिबिम्ब-भाव।

१

साधु कामुकता मुक्ता शान्तस्वान्तैर्मखोन्मुखैः।
सारङ्गलोचनासारां दिवं प्रेत्यापि लिप्सुभिः॥

(श्रीहर्ष—नैषध)

कब हक़परस्त[3] ज़ाहिदे[2] जन्नत[1]-परस्त है।
हूरों[4] पै मर रहा है यह शहबत[5]-परस्त है॥

(ज़ौक़)

२

लघुतामुपयाति यन्मृतः पुरुषस्तद्विदितं मयाधुना।
ननु लाघवहेतुरर्थिता न मृते तिष्ठति सा मनागपि॥

ज़िन्दा तो डूबे है और तैरे है मुर्दा आब में।
बोझ शायद जिस्म का कम है नफ़स[6] के बोझ से॥

३

यथा खरश्चन्दनभारवाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य।
तथैव शास्त्राणि बहून्यधीत्य क्रियाविहीनाः खरवद्वहन्ति॥

(सुश्रुत)

न मुहक्किक़ बुवद न दानिशमन्द
चारपाये बरो कितावे चन्द।
आं तिही मग़ज़राचे इल्मो ख़बर
कि बरओ हे ज़िमस्त या दफ़्तर॥

(शैख़ सादी)

भावार्थ—चौपाये पर कितनी ही किताबें लादो, इससे उसका विद्वान् या बुद्धिमान् होना तो एक ओर रहा वह यह भी नहीं जानेगा कि उसके ऊपर लकड़ियाँ लदी हैं या किताबें!

४

गणयति गगने गणकश्चन्द्रेण समागमं विशाखायाः।
विविधभुजङ्गक्रीडासक्तां गृहिणीं न जानाति॥

तू बर अौजे फ़लक चेदानी चीस्त।
चूँ न दानी के दर सराए तो कीस्त॥

(शैख़ सादी)

भावार्थ—तू क्या जाने कि ऊपर आकाश में क्या है, जब तू यही नहीं जानता कि तेरे घर में कौन है?

५

तपस्यन्तः सन्तः किमधिनिवसामः सुरनदीं,
गुणोदारान् दारानुत परिचरामः सविनयम्।
पिबामः शास्त्रौघान् द्रुतविविधकाव्यामृतरसान्,
न विद्मः किं कुर्मः कतिपयनिमेषायुषि जने॥

(भर्तृहरि)

फ़िकरे-मआश[1] इश्के-बुताँ यादे-किर्दगार[2]।
थोड़ी सी उम्र में कोई क्या क्या किया करे॥

६

याददारी के वक्ते ज़ादने तो
हमा ख़न्दाँ बुदन्द तो गिरयाँ।
आं चुनाँ ज़ी के वक्ते मुरदने तो
हमा गिरयाँ बुवन्द तो ख़न्दाँ॥

अर्थात् जब मनुष्य जन्मता है तब सब ख़ुश होते और हँसते हैं। मनुष्य को चाहिए कि अपने जीवन में ऐसे काम करे कि मरते समय वह हँसे और सब रोवें।

तुलसी जब जग में भये जगत हँसे तुम रोय।
ऐसी करनी कर चलौ कि तुम हँसमुख जग रोय।

७

किं जातोसि चतुष्पथे धनतरो! छन्नोसि किं छायया
छन्नश्चेत्फलितोसि किं यदि फलैः पूर्णोसि किं सज्जनैः।
हे सद्वृत्त! सहस्व सम्प्रति सखे शाखाशिखोत्कर्षणं
लोभाभीटनभंजनानि जनतः स्वैरेवदुश्चेष्टितैः॥

१—स्वर्गाभिलाषी २ तपस्वी ३ ईश्वरोपासक-मुमुक्षु ४ अप्सराएँ ५ कामुक।
६—प्राण या विषयवासना।

१ जीविका की चिन्ता २—ईश्वर-भजन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यों उपज्यौ नरलोक ? ग्राम के निकट भयो क्यों ?
सघन पात से सीतल छाया दान दयो क्यों ?
मीठे फल क्यों फल्यो ? फल्यो तो नम्र भयो कित
वज्र भयो तो सहु सिर पैं बहु विपति लोककृत
तोहि तेरि मरोरि उपारि हैं पाथर हनि हैं सबहि नित।
जे सज्जन ह्वै नै कै चलहिं तिन की यह दुरगति उचित ॥

८

ग्रामं सितं च सुदृशो न दृशोः स्वरूपं
किन्तु स्फुटं गरलमेतदथामृतञ्च ।
नोचेत्कथं निपतनादनयोस्तदैव
मोहं मुदञ्च नितरां दधते युवानः ॥

(पण्डितराज-जगन्नाथ)

ग्रामी हलाहल मद भरे स्वेत स्याम रतनार।
लियत मरत झुक झुक परत जिहि चितवत इकबार ॥

९

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥

(कालिदास)

वचन अर्थ इव एकमय वचन अर्थ के हेतु।
वन्दौं जग जननी जनक पारवती वृषकेतु ॥

(रामचरण)

पद्मसिंह शर्म्मा।

मृत्यु के बाद की घटनायें।*

लंदन के "डेलीमेल" अख़बार में पार्लियामेंट के मेम्बर मिस्टर जी० सी० लिकट साहब ने निम्नलिखित घटनायें प्रकाशित की हैं :—

(१) कुछ काल हुआ, दक्षिणी आफ़्रीक़ा में एक अँगरेज़ डाकूर मर गया। तार या डाक द्वारा इस समाचार के पहुँचने से पहले दक्षिणी इँगलैंड में उसके पिता की बहनों को उसका आकार प्रत्यक्ष दिखाई दिया। इससे उन्होंने यह निश्चय किया कि उनके भतीजे की मृत्यु होगई है। पता लगाने से यह बात सत्य प्रमाणित हुई। उस डाकूर के पिता इँगलैंड के विख्यात पुरुषों में से एक हैं। उन्होंने स्वयं इस घटना के सत्य होने की पोषकता की है।

(२) लिकट साहब के एक सम्बन्धी ने उनसे बताया कि वह एक दिन अपने कमरे का दरवाज़ा खोल कर सामने के कमरे में देखने लगा, तो उसे उसमें एक वृद्ध मनुष्य सौ वर्ष पहले की प्रथा के अनुसार वस्त्र पहने हुए अँगीठी के सामने बैठ कर हाथ सेकता हुआ दिखाई दिया। परन्तु जब साहब का सम्बन्धी उससे बात चीत करने के लिए आगे बढ़ा तब वह ग़ायब हो गया। इसके बाद उसी कमरे में सोने के लिए जब दो बच्चे अपनी चारपाई पर लेटे तब भी यह क़हर कर चिल्ला उठे कि अंगीठी के सामने कोई आदमी मख़मली कोट पहने हुए हाथ सेंक रहा है। जाँच करने पर मालूम हुआ कि प्रायः सौ साल पहले इस मकान में मनुष्य-वध की एक घटना हुई थी और जिस आदमी का आकार इन लोगों को दिखाई दिया था उसका इस घटना के साथ सम्बन्ध था। अर्थात् वह मारनेवाले या मरनेवाले में से कोई था।

(३) उत्तरी इँगलैंड के एक प्रतिष्ठित सौदागर ने, जो अपने शहर का लार्ड मेयर रह चुका था, मिस्टर लिकट से अपनी एक अनुभूत बात बताई, कि कई रातों तक निरंतर उसे कोई आदमी, जिसे वह नहीं देख सकता था, बुलाकर आग देता था और उसके ऊपर का ओढ़ने का कपड़ा उतार कर चारपाई के नीचे फेंक देता था। उसने इस बात का निर्णय करने के लिए बहुत प्रयत्न किया कि घर का कोई मनुष्य तो ऐसा नहीं करता, परन्तु सब यत्न निष्फल हुआ।

(४) उत्तरी इँगलैंड के एक प्रतिष्ठित आदमी के घर के एक भाग में रात के समय कोई आदमी

* लाहौर के साप्ताहिक उर्दू-पत्र "जीवनतत्त्व" के लेखों का अनुवाद। अनुवादक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं जाता। वहाँ घर की एक दासी विष खा कर मर गई थी। जो लोग वहाँ रहते हैं वे बताते हैं कि इस मकान की चीज़ें अपने स्थान से इधर उधर हो जाती हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि कोई मकान के अन्दर टहल रहा है। परन्तु कोई दिखाई नहीं देता। घरवाले इन घटनाओं को देखने के इतने अभ्यासी हो गये हैं कि वे आपस में अकसर कहा करते हैं कि लो जी! आज मिस बरौन (उस दासी का नाम) अमुक काम कर गई है।

(५) मिस्टर लिकट के दो नवयुवक विश्व-विद्यालय में शिक्षा पाते थे। वे अपने अपने कमरों में परीक्षा की तैयारी के लिए रात को देर तक बैठे पढ़ा करते थे। उन कमरों के बीच एक बैठक ख़ाली थी। सोने से पहले रात को उन्हें ऐसा प्रतीत होता था कि कोई आदमी चुप चाप सीढ़ियों से चढ़ कर बैठक में आता है। पहले उन्हें सन्देह हुआ कि नीचे का किरायेदार रात को चुप चाप ऊपर चढ़ आता है; परन्तु खोज लगाने पर यह बात असत्य प्रमाणित हुई। जब नीचे का घर ख़ाली हो गया, तब भी उस बैठक में से निरन्तर आवाज़ें सुनाई देती रहीं। यद्यपि कई बार ये विद्यार्थी सीढ़ियों पर और उस बैठक में गये, परन्तु उन्हें कुछ पता न मिला। कई बार उस बैठक के काग़ज़ भी बिखरे हुए पाये गये। एक बार एक ज़रूरी काग़ज़ उसके नियत स्थान से उठाकर किसी और स्थान में छिपाया हुआ पाया गया। अन्त में उन्हें यह निश्चय हुआ कि कुछ काल पहले उस बैठक में एक वैद्यक-विद्या का विद्यार्थी रहा करता था। वह उसी बैठक में ज्वर से रोगी होकर मर गया था।

"जीवनतत्त्व" के सम्पादक ने अपने एक सम्पादकीय नोट में लिखा है कि एक बहुत ही विश्वासपात्र स्त्री* ने अपनी आँख से देखी हुई एक घटना का वर्णन उनसे इस प्रकार किया है:—

(६) मेरी माता की मृत्यु बहुत ही अचानक हुई। उनकी मृत्यु से एक दिन पहले मैं उनसे जुदा होकर अपने ननिहाल गई थी। रात को उन्हें साँप ने काटा और वह प्रातःकाल होने से पहलेही मर गईं। मेरे ननिहाल में इस मृत्यु की ख़बर दिन के क़रीब आठ बजे पहुँची। इससे रोना धोना शुरू हो गया। इस दुर्घटना की ख़बर वहाँ अभी मिली ही थी कि मेरी नानी की बहिन भी क़रीब दस कोस से चल कर रोती पीटती वहाँ पहुँच गई। हम सब को बहुत आश्चर्य्य हुआ कि उसे इतनी दूर इतना जल्द इस बात का क्यों कर पता लग गया, जो वह इस तरह रोती हुई यहाँ आ गई। क्योंकि हमारे गाँव से, जहाँ मेरी माता की मृत्यु हुई थी, उसका गाँव बहुत दूर है। पूछने पर मेरी नानी की बहिन ने बताया कि उसी दिन प्रातःकाल से बहुत पहले (क़रीब उसी समय जब मेरी माता की मृत्यु हुई थी) उसने मेरी माता को देखा, कि वे मेरे पिता के साथ (जिनकी कई साल पहले ही मृत्यु हो चुकी थी) जा रही हैं। मेरी माँ से उसने पूछा कि बेटी! तुम इनके साथ क्यों जाती हो? माँ ने उत्तर दिया कि मौसी जी! मैं अपनी लड़कियों को अब इस दुनिया में छोड़ कर उनसे अलग हो चुकी हूँ। अब (मेरे पिता को दिखाकर) इनके साथ परलोक को जा रही हूँ। मेरी नानी की इस बहिन ने बताया कि यह बात चीत उसने ऐसी स्पष्ट सुनी और मेरी माता और मेरे पिता के आकार को ऐसे स्पष्ट रूप में देखा कि उसे किसी प्रकार का सन्देह बाक़ी न रहा। वह जान गई कि मेरी माँ ज़रूर आज मर गई है। इसलिए वह प्रातःकाल होतेही वहाँ से मातमपुर्सी के लिए अपने घर से चल पड़ी।

"जीवनतत्त्व" में शिकारपुर (सिंध) के हाई स्कूल के अध्यापक बाबू पेसूमल मूलराज साहब का निम्न-लिखित एक पत्र प्रकाशित हुआ है:—

(७) क़रीब तीन वर्ष की बात है कि मेरी ससुराल में एक वृद्धा स्त्री का देहान्त हो गया। वह मेरे ससुर की दादी थी। उसकी उम्र क़रीब ८० वर्ष की

* हम भी इन श्रीमती जी से परिचित हैं। सच मुच ही ये बहुत ही विश्वास-पात्र हैं। अनुवादक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यों। हमारे यहाँ की रीति है कि मृत्यु के तीसरे दिन चिता में से प्रेत की अस्थियां और भस्म को नदी में प्रवाहित करते हैं। मेरी ससुराल जिस गाँव में है वहाँ कोई नदी नहीं है। इसलिए उस स्त्री की अस्थियाँ 'सक्खर' को लाई गईं, जहाँ पर सिन्धु नद बहता है। जो दो आदमी इन अस्थियों को सक्खर पहुँचाने के लिए नियत किये गये थे वे वहाँ पाँच दिन प्रातःकाल पहुँचे। उस समय कुछ अँधेरा था। इससे वे वहाँ रेलवे स्टेशन के पास की एक दुकान पर सो गये। उन दोनों में से एक मज़दूर था, जो अस्थियाँ उठाकर लाया था। सोते समय वह हड्डियों की गठरी अपने नीचे दबाकर सो गया। उसे इस प्रकार सोये हुए थोड़ी ही देर हुई होगी कि उस बेचारे पर लाठियाँ पड़नी शुरू होगईं। वह घबरा कर चिल्ला उठा कि मुझे कोई मार रहा है। उसकी चिल्लाहट और हाय हाय को सुन कर बहुत से लोग इकट्ठे हो गये। तो भी उसकी मार पीट का क्रम बन्द न हुआ। सब लोग विस्मित हो रहे थे। पर उसे मारनेवाला दिखाई नहीं देता था। इस पर किसी को सूझा कि सम्भवतः इसके पास कोई अपवित्र अथवा अपवित्र वस्तु है। पूछने पर मालूम हुआ कि उसके पास किसी की हड्डियाँ हैं। तब उससे यह कहा गया कि तुम इन हड्डियों को प्रणाम करो और जिसकी ये हड्डियाँ हैं उसका नाम लेकर उससे अपने अपराध के लिए क्षमा माँगो, क्योंकि तुमने उसकी हड्डियों को अपने नीचे दबाकर उसका अपमान किया है। आश्चर्य्य की बात है कि जब उस बेचारे मज़दूर ने ऐसा किया तब शीघ्र ही लाठियों की मार बंद हो गई। परन्तु वह बेचारा पीछे से कई दिनों तक बीमार पड़ा रहा और उसके शरीर पर कितनेही दिनों तक इन लाठियों की मार के चिह्न बने रहे।

लाहौर के दैनिक पत्र "ट्रीब्यून" में प्रकाशित हुआ है:—

(८) न्यूयार्क में एक प्रसिद्ध डाक्टर हैं। एक दिन रात को वे अपनी पत्नी के साथ अपने कमरे में बैठे हुए थे। थोड़ी देर के बाद नौकर ने आकर कहा कि एक लड़की बरामदे में खड़ी है और आप से मिलना चाहती है। डाक्टर साहब ने कहा कि अब मिलने का समय नहीं है। तुम लड़की से पूछो कि वह क्या चाहती है। नौकर ने उससे पूछ कर जवाब दिया कि लड़की की माँ अत्यन्त बीमार है। वह प्रार्थना करती है कि आप उसे चल कर देखें। डाक्टर साहब ने उत्तर दिया कि उससे कहो, किसी और डाक्टर को अपनी बीमार माँ को देखने के लिए ले जावे। नौकर फिर आया और कहने लगा कि आपसे मिले बिना वह लड़की जाना नहीं चाहती। तब डाक्टर साहब कमरे से बाहर निकले और थोड़ी देर में अपनी पत्नी के पास आकर कहने लगे कि उस कन्या की बात चीत ने मुझ पर बड़ा असर किया है। अतएव मैं उसकी माँ को देखने जाऊँगा। गाड़ी के लिए हुक्म दिया गया। डाक्टर साहब उस लड़की के साथ उसके घर की ओर रवाना हुए। उन्होंने घर पहुँचकर बीमार को देखा और उससे कहा कि तुम्हें अमुक रोग हो गया है। तुमको किसी अच्छे अस्पताल में जाना चाहिए। तुम्हारी बेटी तुम्हारे पास है। वह तुम्हारी सेवा करेगी। इस पर उस स्त्री ने करुणोत्पादक रुदन प्रारंभ कर दिया और रोते रोते कहा कि मेरे पास मेरी बेटी नहीं। अब मैं इस पृथिवी पर अकेली हूँ। डाक्टर साहब ने कहा, तुम्हारी बेटी अभी मेरे पास गई थी और वह मुझे तुम्हारे पास बहुत आग्रह करके लाई है। माँ ने कहा, नहीं, मेरे तो एक ही लड़की थी। परन्तु वह अभी थोड़ी ही देर हुई मर चुकी है। उसकी लाश दूसरे कमरे में पड़ी हुई है। डाक्टर साहब ने दरवाज़ा खोला तो देखा कि सचमुच उस लड़की की लाश वहाँ पड़ी हुई है और अब वह लड़की नज़रों से गायब हो गई है।

कलकत्ते के दैनिक पत्र "इंडियन मिरर" में प्रकाशित हुआ है:—

(९) बाबू हरी मोहन बैनर्जी, एम० ए० कलकत्ते में रहते हैं और पाइकपाड़ा के रईस कुमार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरच्चन्द्रसिंह के प्राइवेट सेक्रेटरी हैं। उनकी ससुराल रियासत मोरभंज के बारापद नगर में है। १७ वर्ष का निरञ्जन बैनर्जी नामक उनका पुत्र वहाँ (अपने ननिहाल) गया हुआ था। वहीं पर उसकी मृत्यु हो गई। जिस समय वह मरा, क़रीब उसी समय वह कलकत्ते में अपनी बहिन को दिखाई दिया। उस समय उनके घर में अन्नपूर्णा देवी की पूजा हो रही थी। उस लड़के ने अपनी बहिन को उस पूजा में योग देने के लिए बुलाया। उसी दिन वह लड़का अपने उस भाई को भी दिखाई दिया जिसे वह बहुत प्यार करता था।

पूर्वोक्त पत्र में यह भी प्रकाशित हुआ है कि इस प्रकार की और भी कितनीही घटनायें सुनी गई हैं। मरे हुए लोगों के साथ बातचीत करने के उपाय आज कल कलकत्ते के कितनेही घरों में किये जाते हैं। इस विषय की अत्यन्त आश्चर्य्य-जनक घटनायें होती हैं। इस तरह के उपाय करनेवाले लोग कहते हैं कि जिन अत्यन्त प्रिय और निकट के सम्बन्धियों के मृत्यु-जन्य वियोग से वे दुखी रहते थे, उन्होंने उन्हें धैर्य्य दिया है और उन पर यह प्रकट किया है कि यह वियोग-जन्य क्लेश थोड़ेही काल तक रहेगा। उनको विश्वास हो गया है कि जब उनका वर्तमान स्थूल शरीर छूट जायगा तब वे अपने प्रिय सम्बन्धियों से फिर जा मिलेंगे।

(१०) डाक्टर फ़िचिट फ़्राँस के वैज्ञानिक पण्डितों में एक विख्यात पुरुष हैं। उन्होंने कितनेही स्थूल देह-त्यागी आदमियों की अस्सी तस्वीरें (फ़ोटोज़) ली हैं। जैसे इँगलैंड के विख्यात विज्ञानी लार्ड कोलून परलोक और परलोक-वासियों के दृढ़ विश्वासी हैं, वैसेही डाक्टर फ़िचिट भी हैं। वैज्ञानिक परीक्षाओं से वे यह सिद्ध कर रहे हैं कि मृत्यु के अनन्तर भी आत्मा का स्थूल शरीर यहाँ के स्थूल शरीर के अनुरूपही होता है। "ट्रुथ" नाम के अख़बार के एक पत्र-प्रेरक ने लिखा है कि फ़्राँस के एक कर्नेल साहब भी मृत आदमियों के चित्र (फ़ोटो) उतारने में कृतकार्य्य हुए हैं। उसने लिखा है, कि एक बरात की तसवीर खींची जा रही थी। उसमें कितनेही चित्र ऐसे आदमियों के खिंच गये जिन्हें अपना स्थूल शरीर छोड़े कई वर्ष हो चुके थे।

परमेश्वरदत्त।

स्वर्ग-सहोदर।

१—जितने गुणसागर नागर हैं,
कहते यह बात उजागर हैं।
अब यद्यपि दुर्बल आरत है,
पर भारत के सम भारत है॥

२—बसते वसुधा पर देश कई,
जिनकी सुषमा सविशेष नई।
पर है किसमें गुरुता इतनी—
भरपूर भरी इसमें जितनी?

३—गुण गुम्फित हैं इसमें इतने—
पृथिवी पर हैं न कहीं जितने।
किसकी इतनी महिमा वर है?
इस पै सब विश्व निछावर है॥

४—जन तीस करोड़ यहाँ गिनके—
कर साठ करोड़ हुए जिनके।
जग में वह कार्य्य मिला किसको—
यह देश न साध सके जिसको?

५—उपजें सब अन्न सदा जिसमें—
अचला अति विस्तृत है इसमें।
जग में जितने प्रिय द्रव्य जहाँ—
समझो सबकी भव-भूमि यहाँ॥

६—प्रिय दृश्य अपार निहार नये,
छवि-वर्णन में कवि हार गये।
उपमा इसकी न कहीं पर है,
धरणी-धर ईश-धरोहर है॥

७—जल-वायु महा हित-कारक है—
रुज-हारक स्वास्थ्य-प्रसारक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्युतिमन्त दिगन्त मनोरम है,
क्रम षड् ऋतु का अति उत्तम है॥

८—सुखकारक ऊपर श्याम घटा,
दुखहारक भूपर शस्य-छटा।
दिन में रवि लोक-प्रकाशक है,
निशि में शशि ताप-विनाशक है॥

९—छविमान कहीं पर खेत हरे,
वन-बाग़ कहीं फल-फूल भरे।
गिरि तुङ्ग कहीं मन मोह रहे,
सब ठौर जलाशय सोह रहे॥

१०—रतनाकर की रसना पहने,
बहु पुष्प-समूह बने गहने।
परिधान किये तृण-चीर हरा,
अति सुन्दर है यह दिव्य धरा॥

११—बहु चम्पक, कुन्द, कदम्ब बड़े,
वकुलादि अनन्त अशोक खड़े।
कितने न इसे वर वृक्ष मिले,
अति चित्र विचित्र प्रसून खिले॥

१२—मृदु*, बेर, मुखप्रिय†, जम्बु फले,
कदली, शहतूत, अनार भले।
फलराज रसाल समान कहीं,
फल और मनोहर एक नहीं॥

१३—कृषि केसर की भरपूर यहाँ,
मृग-गन्ध‡, कुसुम्भ, कपूर यहाँ।
समझो, मधु का बस कोश इसे,
रस हैं इतने उपलब्ध किसे?

१४—अमृतोपम अद्भुत शक्ति-मयी—
जिनकी सुगुण-श्रुति नित्य नई।
इसमें बहु ओषधियाँ खिलतीं,
जल में, थल में, तल में मिलतीं॥

१५—कृषि में इसने जग जीत लिया,
किसने इस सा व्यवसाय किया?
सन, रेशम, ऊन, कपास अहो!
उपजा इतना किस ठौर कहो?

१६—अवनी-उर में बहु रत्न भरे,
कनकादिक धातु-समूह धरे।
वह कौन पदार्थ मनोरम है—
जिसका न यहाँ पर उद्गम है?

१७—कवि, पण्डित, वीर, उदार महा,
प्रकटे मुनि-धीर अपार यहाँ।
लख के जिनकी गति के मग को—
गुरु ज्ञान सदा मिलता जग को॥

१८—बहु भाँति बसे पुर ग्राम घने,
अब भी नभ-चुम्बक धाम बने।
सब यद्यपि जीर्ण-विशीर्ण पड़े,
पर पूर्व दशास्मृति-चिह्न खड़े॥

१९—अब भी वन में मिल के चरते—
बहु गो-गण हैं मन को हरते।
इन सा उपकारक जीव नहीं,
पय तुल्य न पेय पदार्थ कहीं॥

२०—मद-मत्त कहीं गज झूम रहे,
मुद मान कहीं मृग घूम रहे।
शुक, चातक, कोकिल बोल रहे,
कर नृत्य शिखी-गण डोल रहे॥

२१—शतपत्र कहीं पर फूल रहे,
मधु-मुग्ध मधुव्रत भूल रहे
कलहंस कहीं रव हैं करते,
जल-जीव प्रमोद भरे तरते॥

२२—शुचि, शीतल, मन्द, सुगन्ध-सनी,
फिरती पवन प्रिय नारि बनी।
हरती सबका श्रम सेवन में,
भरती सुख है तन में, मन में॥

---

* मृदु = अमरूद। † सुखप्रिय = नारङ्गी।
‡ मृगगन्ध = कस्तूरी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२३—जगतीतल में वह देश कहाँ—
निकले गिरि-गन्ध विशेष जहाँ ?
इसमें मलयाचल शोभन है,
जिसमें घन चन्दन का वन है॥

२४—सिर है गिरिराज अहो ! इसका—
इस भाँति महत्त्व कहो किसका ?
तुहिनालय यद्यपि नाम पड़ा,
विभवालय है वह किन्तु बड़ा॥

२५—वर विष्णुपदी बहती इसमें,
रवि की तनया रहती इसमें।
अघ-नाशक तीर्थ अनेक यहाँ,
मिलती मन को चिर शान्ति जहाँ॥

२६—क्षिति-मण्डल था जब अज्ञ सभी,
यह था अति उन्नत, सभ्य तभी।
बहु देश समुन्नत जो अब हैं,
शिशु-शिष्य इसी गुरु के सब हैं॥

२७—शुचि शौर्य्य-कथा इतनी किसकी—
जग-विश्रुत है जितनी इसकी।
अमरों तक का यह मित्र रहा,
अति दिव्य-चरित्र पवित्र रहा॥

२८—ध्रुव धर्म्ममयी इसकी क्षमता,
रखती न कहीं अपनी समता।
गरिमा इसकी न कहाँ पर है—
किससे न लिया इसने कर है ?

२९—श्रुति, शास्त्र, पुराण तथा स्मृतियाँ,
बहु अन्य सुधी-गण की कृतियाँ।
नय-नीति-नियन्त्रित तन्त्र बने,
सब ही विषयों पर ग्रन्थ घने॥

३०—कविता, कल नाट्य, सुशिल्प-कला,
इस भाँति बढ़ी किस ठौर भला ?
किस पै न रहा इसका कर है—
किस सद्गुण का न यहाँ घर है ?

३१—सुखमूल सनातन धर्म्म रहा,
अनुकूल अलौकिक कर्म्म रहा,
वर वृत्त बढ़े इतने किसके ?
नर क्या, सुर भी वश थे इसके!

३२—सुख का सब साधन है इसमें,
भरपूर भरा धन है इसमें।
पर हा ! अब योग्य रहे न हमीं—
इससे दुख की जड़ आन जमीं॥

३३—सुन के इसकी सब पूर्व कथा,
उठती उर में अब घोर व्यथा।
इसमें इतना घृतक्षीर बहा,
जितना न कहीं पर नीर रहा॥

३४—अब दीनदयालु ! दया करिए,
सब भाँति दरिद्र-दशा हरिए।
भरिए फिर वैभव नित्य नया
चिर काल हुआ सुख छूट गया॥

३५—अवलम्ब न और कहीं इसको,
तजिए हरि, हाय ! नहीं इसको।
खलता दुख-दैत्य महोदर है
यह भारत स्वर्ग-सहोदर है॥

मैथिलीशरण गुप्त।

मूँगा के रूपान्तर।

लाल और गुलाबी रंग का मूँगा इस देश में बहुत काम आता है। बच्चे और स्त्रियाँ उसकी माला इत्यादि पहनती हैं। कोई कोई पुरुष भी मूँगा हाथ में बाँधते हैं। और रंग का मूँगा पहनने के काम नहीं आता। उससे सिर्फ़ चूना बनाया जाता है। पर लाल और गुलाबी मूँगे का बड़ा ख़र्च रहता है। चीन के मन्दारिन नामक अफ़सरों के बटन अकसर मूँगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

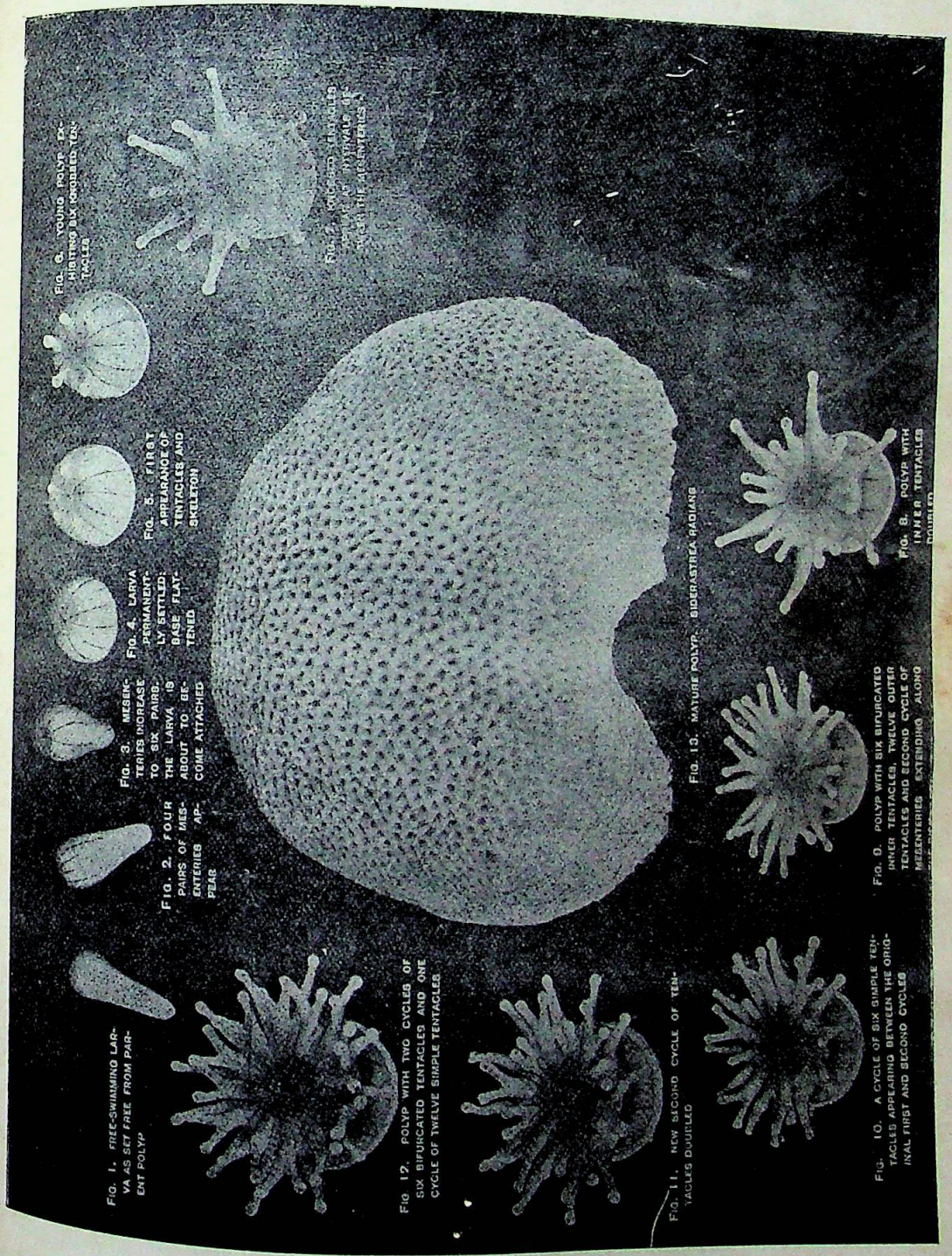

मूँगा के रूपान्तर

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के ही बनते हैं। अफ़रीक़ा, अमेरिका और मध्य एशिया के असभ्य या आधे असभ्य लोग मूँगे के तरह तरह के आभूषण बनाकर पहनते हैं। इस देश के लोगों को भी इसका थोड़ा बहुत शौक़ है। यहाँ वाले भी तो योरपवालों की दृष्टि में असभ्य ही हैं। मूँगे की गिनती यहाँ वाले रत्न में करते हैं। एक किताब में हमने पढ़ा है कि बहुत अच्छे गुलाबी रंग के मूँगे का दाम ७००) रु० तोले तक होता है। लाल मूँगा भूमध्य-समुद्र के टापुओं ही के आस पास अकसर पैदा होता है। मूँगा समुद्र के भीतर जिस जगह पैदा होता है वह जगह किनारे से २ से १० मील तक दूर होती है। मूँगा कहीं कहीं कम गहराई में होता है कहीं अधिक में। अफ़रीक़ा के ट्यूनिस, आलजीरिया और मुराको के किनारों में लाल मूँगा अधिक पैदा होता है। इस सामुद्री मूँगे पर फ़्राँस ने अपना अधिकार जमा रक्खा है। जो लोग मूँगा निकालने जाते हैं उन्हें फ़्राँस के अधिकारियों से लाइसंस लेना पड़ता है। इसमें उनका बहुत रुपया ख़र्च होता है।

किसी किसी मूँगे का रङ्ग दूध के समान सफेद होता है। पर भूमध्य को छोड़कर और समुद्रों में प्रायः भूरे या मटमैलेही रंग का मूँगा पाया जाता है।

मूँगा है क्या चीज़? वह एक प्रकार के सामुद्री कीड़ों की ठठरी है। उसका रंग खड़िया मिट्टी की तरह सफेद होता है। यह ठठरी बहुत सख़्त होती है। अपनी रक्षा करने और उसके आधार पर समुद्र में रहने के लिए ही कीड़े, मूँगे की ठठरी बनाते हैं। ठठरी नहीं उसे मूँगों का घर कहना चाहिए। यह घर कभी तो झाड़ी की तरह, कभी पंखे की तरह, कभी फूल की तरह और कभी आदमी के सिर की भीतरी बनावट की तरह इधर उधर फैला रहता है। मूँगों की यह गृहावली कभी कभी चट्टानों की शकल की हो जाती है और दो चार गज़ से लेकर सैकड़ों मील दूर दूर तक पानी के भीतरही भीतर, और कभी कभी ऊपर भी, चली जाती है। कभी कभी मूँगों के बड़े बड़े टापू तक बन जाते हैं। इन टापुओं में से, किसी किसी टापू के बीच के हिस्से में, पानी भरा रहता था और चारों तरफ मूँगों की मन्दिरमाला रहती है।

जैसा ऊपर कहा गया है मूँगा कीड़ों से पैदा होता है। एक छोटे कीड़े से अनन्त कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं। इनकी जननशक्ति बहुत विलक्षण होती है। पुराने कृमि-समूह के कभी तो ये ऊपर हिस्से से पैदा होते हैं, कभी निचले हिस्से से, और कभी कभी बीच ही से। जहाँ से पाते हैं वहीं से ये निकल आते हैं। नये कीड़े पुराने कीड़ों से अलग नहीं हो जाते; वे उन्हीं में चिपटे रहते हैं। उनसे और कीड़े पैदा होते हैं। इसी तरह वे दिन दूने रात चौगुने बढ़ते हैं और धीरे धीरे अपनी बस्ती के विस्तार को बेहद दूर तक बढ़ा ले जाते हैं। ये कीड़े अपने घररूपी छिलके के भीतर रहते हैं। पैदा होने से पूर्णावस्था तक पहुँचने में इनके अनेक रूपान्तर होते हैं। कुसियारी, या रेशम के कीड़े की तरह इनको भी "अनेकरूपरूपाय" होना पड़ता है।

जमाइका में मूँगा बहुत होता है। वहाँ डाक्टर ड्यूडेन ने मूँगों के जीवन के सम्बन्ध में बहुत कुछ जाँच की है। उन्होंने अपनी जाँच का फल एक किताब में लिखा है। उसमें मूँगों के रूपान्तर का बहुतही आश्चर्य्यकारक और मनोरंजक वर्णन है। अमेरिका के वाशिंगटन शहर में एक बहुत बड़ा जादूघर या अजायब घर है। उसके अधिकारियों ने पूर्वोक्त डाक्टर की किताब के रूपान्तरों के नमूने बनाकर अजायब घर में रक्खे हैं। मूँगों के रूपान्तरों के ये नमूने मोम के हैं।

मूँगा की भी कुसियारी होती है। जब वह अपनी उत्पादक कृमिमाला से निकल कर बाहर होती है तब वह इतनी छोटी होती है कि आँख से मुशकिल से देख पड़ती है। वह कभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी पुराने कृमिसमूह से अलग हो जाती है और कभी पानी पर तैरा करती है। धीरे धीरे उसमें खरबूजे की सी लकीरें देख पड़ने लगती हैं और उसका आकार कुछ चौड़ा हो जाता है। पाँचवीं शकल में उसमें आँकड़ों के से चिह्न हो जाते हैं और छठी शकल में वे चिह्न आँकड़ों या भुजाओं के रूप में बाहर निकल आते हैं। पहले पहल छः भुजायें देख पड़ती हैं। क्रम क्रम से उनकी संख्या बढ़ती है। आख़िरी सूरत में मूँगे की गृहावली परिपूर्ण अवस्था को पहुँच कर स्थिर हो जाती है। पर वह उतनी ही नहीं रहती। वह भी बढ़ती है। जैसे एक भुजा या आँकड़े से अनेक हो जाते हैं वैसे ही एक गृहावली से अनन्त गृहावलियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

किसी किसी भूगर्भवेत्ता का मत है कि आरम्भ में मूँगों की अवस्थिति समुद्र के भीतर की पर्वत-मालाओं के आधार पर रही होगी। मूँगों की बढ़ती होते होते उनकी चट्टानें बन गई होंगी। पानी के प्रवाह से उन चट्टानों के टुकड़े होकर समुद्र के भीतर चले गये होंगे। वहाँ मूँगों ने फिर से अपना वंश बढ़ाया होगा। उनकी वंश-वृद्धि के साथ साथ उनके घरों की उँचाई भी बढ़ती गई होगी। इस तरह धीरे धीरे वे फिर समुद्र के ऊपर तक निकल आये होंगे। क्योंकि, मूँगे की किसी किसी गृहावली की नीव हज़ार हज़ार दो दो हज़ार फुट समुद्र के भीतर रहती है। और एकदम इतनी गहराई में जाकर घर बनाना मूँगों के लिए असम्भव है। पर, किसी किसी के मत में मूँगे किसी टापू के किनारे अपना घर पहले पहल बनाते हैं। काल क्रम से टापू समुद्र के भीतर डूबकर नष्ट हो जाता है। पर अधिक कठोर होने के कारण मूँगे वैसे ही बने रहते हैं।

संस्कृत में मूँगे को प्रवाल या विद्रुम कहते हैं। मूँगा की भस्म वैद्य लोग दवा के काम में लाते हैं। कई रोगों में उससे फ़ायदा होता है।

प्रत्युपकार का एक अद्भुत उदाहरण।

जिस समय इँगलिस्तान में घोर अशान्ति फैली थी, राजा और पार्लियामेंट में परस्पर युद्ध हो रहा था, और दोनों दल वाले आपस में प्रचंड मारकाट कर रहे थे, राजा प्रथम चार्ल्स की जगह क्रामवेलही हर्ता धर्ता हो गये थे। चार्ल्स के दलवाले कई बार युद्ध में हारे। उनके पक्षवाले जो शस्त्र-सहित पकड़े जाते थे वे उन न्यायाधीशों के सम्मुख लाये जाते थे जिन्हें क्रामवेल ने प्रत्येक नगर में शासन के लिए नियत किया था। वे क़ैदी राज्य के विद्रोही समझे जाते थे और उन्हें प्राणदण्ड होता था।

इन्हीं शासनकर्त्ताओं में से एक सर पैट्रिक न्यू कैसल भी थे। ये बड़े कड़े स्वभाव के दृढ़-प्रतिज्ञ और न्यायी थे। क्रामवेल इनकी बड़ी इज़्ज़त करता था और बहुत मानता था। स्वास्थ्य अच्छा न रहने के कारण ये सेना में नहीं जा सके। मनुष्य इनको कार्य्य-कुशल और उद्योगी कहते थे। परन्तु इसके साथ ही देश भर में ये कठोर न्यायी भी विख्यात थे।

एक दिन सन्ध्या समय सर पैट्रिक ने अपने मित्रवर्गों को निमन्त्रण दिया और अपने कुटुम्बियों सहित उनके साथ अपने घर में आनन्द से भोजन करने लगे। इसी समय बहुत से सिपाही, राज-पक्षीय सेना के एक अफ़सर को, जिसे उन्होंने अभी क़ैद किया था, लिये हुए आये। उसने महाराज चार्ल्स के हारने पर, समुद्र के किनारे पहुँच, जहाज़ पर सवार होकर फ़्राँन्स देश को भागने का यत्न किया था। पर मनोरथ सफल नहीं हुआ।

सर पैट्रिक ने उसकी हथकड़ियों को खोलने की आज्ञा दी और एक दूसरा मेज़ मँगवाकर अँगीठी के समीप लगाया और कहने लगे—"आज मेरा जन्म दिन है। इसलिए मेरी इच्छा है कि यह भोजन जिस आनन्द से प्रारम्भ हुआ है वैसे ही समाप्त भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाय। राजपक्षपाती अफ़सर के सम्मुख भोजन लाकर रक्खो और उन सिपाहियों को भी भोजन दो जो इन्हें बन्दी बनाकर लाये हैं। अभी तो ये मेरे अतिथि हैं, परन्तु आधी घड़ी के बाद मैं इनका शासनकर्त्ता बनूँगा—" सिपाहियों ने उसे धन्यवाद दिया और अपने कैदी के नज़दीक भोजन करने बैठ गये। कैदी, जो अपने भाग्य पर भरोसा किये बैठा था, सहर्ष भोजन करने लगा।

सर पैट्रिक भी अपने स्थान पर बैठकर भोजन करने लगे और जिस वार्तालाप में इन सिपाहियों के आने से विघ्न हुआ था उसे फिर यों कहना आरम्भ किया। "हाँ, जैसा कि मैं तुमसे कह रहा था, मैं पन्द्रह वर्ष की उम्र में ऐसा आलसी और निर्बल था कि प्रत्येक मनुष्य मुझे घृणा की दृष्टि से देखता था और दुर्बलता के कारण मुझे अनेक प्रकार के कष्ट सहने पड़ते थे जिससे मैं सदैव महा दुखी रहा करता था"।

"मुझे अपनी सौतेली माता का असद्व्यवहार और दूसरे अपने सहपाठियों की कुचेष्टा सहन करनी पड़ती थी। मैं अपनी दुर्बलता के कारण कायर भी हो गया था। मेरे साथ जैसा कठोर बर्ताव होता था उसे साहसपूर्वक सहन करने के बदले मैं और भी अधिक उससे पीड़ित और भयभीत होने लगा था। पाठशाला में मैं अपने अध्यापक के बेंत से बहुत डरता था; मुझे उन्होंने दो बार बेंत मारे थे। उनकी याद ही ऐसी भयावनी थी कि मेरा शरीर काँप उठता था"।

"मैंने तुमसे अभी कहा है कि मैं वेस्ट मिनस्टर पाठशाला में पढ़ता था। वहाँ दो दरजे थे, जिनके बीच में एक परदा था और इस परदे को स्पर्श करने का हमको हुक्म न था।

"ग्रीष्म-काल में एक दिन अध्यापक महाशय अरिस्टाटेल का एक पाठ समझा रहे थे कि मुझे निद्रा आगई। कुछ देर में दरजे में हलचल होने से मैं चौंक पड़ा और गिरने लगा। इस घबराहट में मैंने परदे को पकड़ा तो वह फट गया और उसके बीच में एक बड़ा सा छेद हो गया, जिससे दूसरा दरजा देख पड़ने लगा। दोनों दरजों के अध्यापकों ने कोलाहल सुनकर घूमकर देखा। जो हानि हुई थी उसे वे तत्क्षण समझ गये"।

"जिस प्रकार वे मुझे अपराधी ठहराते वैसेही वे दूसरे दरजे के लड़के को, जो परदे के दूसरी ओर बैठा था, दोषी ठहरा सकते थे। परन्तु मेरी व्याकुलता ने मुझे तत्काल ही प्रकट कर दिया और अध्यापक ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर मुझे बारह बेंत लगाये जाने की आज्ञा दी"।

"मैं उन्मत्त की तरह काँपता हुआ उठा और क्षमा माँगने का यत्न करने लगा। पर मेरी जिह्वा भय से ऐंठ गई। मेरे पैर लड़खड़ाने लगे। पसीने से मेरा शरीर भीग गया। अन्त में अध्यापक के निकट जाकर मैं घुटनों के बल गिर पड़ा"।

"अध्यापक महाशय का विकट बेंत मेरे मारने को उठही चुका था कि मैंने किसी को पुकारते सुना।

'अपराध मैंने किया है, इसे न पीटिए'। यह वही लड़का था जो परदे के दूसरी ओर बैठा था।

"वह लड़का हमारे दरजे में बुलाया गया और उसे बारह बेंत लगे। पहले मैंने सोचा कि अपने दोष को प्रकट करके इस अन्याय-पूर्ण दण्ड को रोकूँ। पर मुझमें बोलने तक की शक्ति न थी और जब पहला बेंत लग चुका तब मैं लज्जा के मारे कुछ कह न सका। दण्ड पाने के उपरान्त लोहूलुहान हाथों से जब वह विद्यार्थी मेरे निकट होकर गया तब उसने मुसकराहट-पूर्ण भाव से, जिसे मैं अपने जीवन-पर्य्यन्त कभी न भूलूँगा, धीरे से कहा :—

'प्रिय मित्र, अब फिर परदे को कभी स्पर्श न करना, क्योंकि बेंत से बड़ी चोट लगती है। यह सुन कर मैं घुटनों के बल नीचे गिर कर रोने लगा। इस हालत में मैं स्कूल के बाहर भेजा गया।"

"उस दिन से मैं अपनी दुर्बलता और कायरपन से घृणा करने लगा और जहाँ तक हो सका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्हें दूर करने की चेष्टा भी करने लगा। मैं आशा करता हूँ कि मैं इसमें सफल भी हुआ।"

इस पर एक पाहुने ने पूछा कि क्या तुम अपने उस उदारचरित साथी को नहीं जानते और क्या फिर तुमने उसे कभी नहीं देखा?

"दुर्भाग्य से मैंने फिर उसे नहीं देखा। वह विद्यार्थी मेरे दरजे का न था और मैंने कुछ दिनों बाद पाठशाला भी छोड़ दी। आह! ईश्वर मेरा साक्षी है, मैंने कई बार फिर उस लड़के को, जिसने मेरे निमित्त इतना कष्ट सहा, देखने की प्रार्थना की। एक बार उसके साथ यहाँ आनन्द से यदि शरबत पीने को मिलता तो मैं कृतकृत्य हो जाता।"

ठीक इसी समय एक ग्लास सर पैट्रिक के सम्मुख किसी ने बढ़ाया। उन्होंने आश्चर्य्य से फिर कर जो देखा तो यह वही राज-पक्षपाती अफ़सर था जो मुसकरा कर आदरपूर्वक शरबत दे रहा था। उस अफ़सर ने कहा :—"यह शरबत, सर पैट्रिक, वेस्टमिन्स्टर पाठशाला में परदा फटने की याद में है परन्तु, तुम्हें ठीक ठीक याद नहीं है। मुझे केवल बारह ही बेंत नहीं लगे थे। किन्तु अपना अपराध शीघ्र प्रकट न करने और तुम्हें कष्ट होने के कारण इससे दुगने बेंत लगे थे।"

शासन-कर्त्ता ने उत्तर दिया—"हाँ हाँ ठीक है। अब मुझे याद आगई। इसके सिवा तुम्हारे शिक्षक ने दण्ड के रूप में एक लेख लैटिन भाषा में जान बूझ कर पाप करने के विषय में घर से लिख लाने की तुम्हें आज्ञा दी थी। अब मुझे सब बात अच्छी तरह याद आ गई। परन्तु क्या सच मुच वह साहसी बालक तुम्हीं हो?" सर पैट्रिक फिर उसकी ओर देख कर कहने लगे—"ठीक है, तुम वही हो। मैं तुम्हारे मुख की आकृति को पहचानता हूँ। पर कैसे स्थान, कैसी दशा और किस सैन्यवेश में तुमसे मिलना हुआ?"

"सरपैट्रिक, मैं अपने राजा के सैन्यवेश में हूँ। स्काटलैंड के एक कुलीन वंश में मेरा जन्म है। जो कुछ मुझे कर्तव्य कर्म बतलाया गया था वही मैंने किया। महाराज चार्ल्स की सेना में मैं अपने पिता के साथ आया। मेरे पिता वीर-गति को प्राप्त हुए। मैं भी अब मारा जाऊँगा। यही ठीक है। अब मेरी केवल यही अन्तिम प्रार्थना है कि ईश्वर राजा को बचावे।"

यह कह कर वह अफ़सर सिपाहियों के निकट फिर बैठ गया और भोजन करने लगा। परन्तु सर पैट्रिक मौन धारण किये सोच विचार में मग्न थे। भोजनोपरान्त अपने नौकरों को बुलाकर क़ैदी के साथ सद्व्यवहार और उसे सुख चैन से रखने की आज्ञा देकर उसी रात को बिना किसी से कुछ कहे सुने वे कहीं चल दिये और तीन दिन तक ग़ायब रहे। चौथे दिन घर आकर उन्होंने उस अफ़सर को अपने पास बुलाया। क़ैदी ने शान्त भाव से पूछा—"क्या अब मेरा विचार होगा? दया करके अब शीघ्र ही मेरा निर्णय कीजिए। मैं आपके घर में ऐसे सुख चैन से हूँ कि यदि मैं कुछ दिन और यहाँ रहा तो मुझे अपने प्राणों के जाने का बड़ा रंज होगा।"

गद्गद् होकर न्यायाधीश ने कहा—"लार्ड डर्बी, बीस वर्ष हुए लोहूलुहान हाथों से तुमने मुझसे कहा था :—'अब फिर परदे के समीप न जाना, क्योंकि बेंत से बड़ी चोट लगती है।' यह लीजिए आपका क्षमापत्र है। इसमें राज्य-पालक क्रामवेल के हस्ताक्षर हैं। अब मेरी बारी है। मैं भी आपसे विनती करता हूँ। अब फिर पार्लियामेंट के विरुद्ध शस्त्र धारण न करना, क्योंकि क्रामवेल को मनाना बड़ा दुर्घट है।"

इन शब्दों के पूरा होतेही दोनों मित्र परस्पर बड़ी प्रीति से मिले और राजकीय विषयों में मत-विरोध होने पर भी दोनों में जीवन-पर्य्यन्त दृढ़ मित्रता बनी रही*।

कुन्दनलाल।

---

* Translated from the Student's Own Magazine.
Translator.

CC-0. In Public Domain: Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी की उच्च शिक्षा।

मते हैं, एक दिन ऐसा आनेवाला है जब हम लोगों को उच्च शिक्षा हिन्दी में मिलेगी। यदि यह सच है तो हम समझते हैं कि वह दिन अवश्य कलियुग के पीछे आवेगा। क्योंकि अभी हमारी हिन्दी इस काम के योग्य नहीं है। यह योग्यता प्राप्त करने के लिए उसे सैकड़ों नहीं, हज़ारों बरस लगेंगे। उच्च शिक्षा के लिए सब प्रकार की उच्चता आवश्यक है। परन्तु हिन्दी में उच्चता का नामोनिशान नहीं। प्रवेशिका परीक्षा की थोड़ी सी इनी गिनी सामग्री तो इसमें किसी प्रकार इकट्ठी होगई है, और धीरे धीरे भिक्षोपजीवी भिक्षा के समान इकट्ठी होती जाती है। परन्तु ऊपर के लिए इसका भरोसा करना मानो दिवाला निकालना है। सोचने की बात है कि जिस भाषा में एक शताब्दी के बाद आज भी तुकबंदी की कविता और अनुवाद के लेख लिखे जाते हैं वह भाषा भला क्या और कब उच्चता प्राप्त करेगी! शेक्सपीयर की समता का दम भरने वाले इसके लेखक और अपने को टैनीसन समझनेवाले इसके कवि दूसरी भाषाओं के विचार चुरालेनेही को प्रतिभा समझते हैं। दूर क्यों जायँ; पास के बंगाली बंकिम-चंद्र की बराबरी का भी कोई लेखक इसमें होने की संभावना नहीं है। यद्यपि भाषा की उभरती दशा में बहुधा अनुवादों की आवश्यकता होती है तोभी हिन्दी में मूल की झलक तक नहीं दिखाई देती। आज कल जिस लेख को देखिए उसी में "छाया", "भावार्थ", "भावानुवाद", "आधार" और "उद्धृत", के सिवा कुछ भी नहीं रहता। "विलायत के विद्वान् ऐसा कहते हैं"; पर आप क्या कहते हैं सो तो बताइए! आप लोगों से अच्छे तो नक़ली-लेखक हैं जो बिना आधार के "दानलीला" और "छबीली भटियारी" लिख सकते हैं। अँगरेज़ी पढ़े हिन्दी बोलने पर भी हिन्दी नहीं समझते; वकील और हाकिम लोग सोने की झनझनाहट ही में मस्त रहते हैं; मास्टर लोग छपी हुई किताबें पढ़ाकर ही अपने कर्त्तव्य की इति समझते हैं; और संस्कृत के विद्वान् अपने पेट की चिंता से छुट्टी नहीं पाते। इधर उपन्यास-वाले अपने टके सीधे करने के लिए उपन्यासों में दुनिया भर की ऐसी बातें भरते हैं जो न कभी हुईं न होंगी। ऐसी अवस्था में हिन्दी किसका मुँह ताके? आज कल के लालबुझक्कड़ लोग ही हिन्दी की थोड़ी बहुत लाज रक्खे हुए हैं; नहीं तो इतना भी दुर्लभ था।

अब देखना चाहिए कि हिन्दी में कौन से ऐसे ग्रंथ हैं जिन्हें पढ़ कर लोग आचार्य या महामहोपाध्याय हो सकते हैं? पुराने काव्यों और संस्कृत के कुछ अनुवादों की बात छोड़ दीजिए; क्योंकि इन पर आज कल के अहंमन्य धुरंधरों का कुछ भी दावा नहीं। इन प्राचीन ग्रंथों का भी न कोई ऊँचा कोष है और न व्याकरण। कुछ वर्ष पहले सरस्वती में एक फ़ेहरिस्त निकली थी जिसमें अँगरेज़ी के कई मान्य ग्रंथों के नाम इसलिए दिये गये थे कि हिन्दी में भी उसी प्रकार के ग्रंथ बनें। पर वह निरी फ़ेहरिस्त ही रही। काशी की सभा कुछ उपयोगी काम अवश्य कर रही है। पर उसका कारख़ाना नवाबों के दौरे की तरह चलता है। एक व्याकरण ही के लिए ताजबीबी के रौज़े के समान प्रबंध हो रहा है। हम लोग धन और समय की कमी पर आठ आठ आँसू रोते हैं; पर उनका ख़र्च इस तरह कर रहे हैं मानों दोनों की जड़ें पाताल पहुँची हुई हैं। एक दो पुस्तकों की तैयारी में जब यह हाल है तब अँगरेज़ी के सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्, अंतर्यामी, सच्चिदानंद और अनंत साहित्य की समानता करने में हिन्दी को कलियुग के अन्त की राह न देखनी होगी तो और क्या होगा? हिन्दुस्तानी लोग अपने को शिक्षित कहते हैं और स्वराज्य का अधिकारी समझते हैं, पर उनका ऐसा दावा तभी ठीक जँचेगा जब वे अपनी घर की बोली में एक दो ग्रंथ भी लिखने की योग्यता कर लेंगे। क्योंकि सच्ची शूरता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षितों पर राज्य करने में है। केवल सिंह की खाल ओढ़ लेने से गीदड़ को सिंहत्व प्राप्त नहीं हो सकता। इसमें संदेह नहीं कि शतकों की पराधीनता और अपनी भाषा के परित्याग से हम लोग शील और आचार से भ्रष्ट हो गये हैं; पर भूल जब चाहे तब सुधारी जा सकती है। कई लोग कदाचित् यह कहेंगे कि हम अँगरेज़ी ही के द्वारा लोगों को लाभ पहुँचाते हैं। पर इससे उन्हें क्या लाभ है जो नंगे पैर बड़े साहब के घोड़े के आगे दौड़ते हुए उन्हें दिन को रास्ता बताते हैं और जिनकी शिक्षा पर ही सब कुछ है। इस विषय में "अभ्युदय" का उद्योग सराहनीय है कि वह अँगरेज़ी खाल ओढ़ कर नहीं निकला, यद्यपि उसका नाम और बोली बहुत लोग नहीं समझते। जिन लोगों का यह विचार है कि हम अपनी संतान को केवल हिन्दी में ऊँची और पूरी शिक्षा देंगे वे कदाचित् यह नहीं जानते कि हिन्दी शिक्षा इस्माईल जोगी का झोला नहीं है। वे लोग मानो यह समझते हैं कि हिन्दी भाषा को ऊँची शिक्षा के योग्य बनाना मगध के महाराज का काम है। बहुत से ज़मीदारों को तो अपने गाँव में थोड़ी भी हिन्दी-शिक्षा की ज़रूरत नहीं है; क्योंकि जब उनके किसान बिना पढ़े ही उनकी गुप्त विद्या जान लेते हैं तब वे लोग पढ़ लिख कर उन्हें कौन सा कष्ट न देंगे। हिन्दू लोग अपने को निर्धन और धर्मात्मा कहते हैं; पर जो लोग गंगा के तट पर सैकड़ों और विवाह में हज़ारों ख़र्च करके शिक्षा के लिए एक फूटी कौड़ी भी नहीं देते वे यथार्थ में धनवान और धर्महीन क्यों नहीं हैं। क्योंकि निर्धन इतना ख़र्च नहीं कर सकता और धर्मात्मा लोग शिक्षा को एक बड़ा पुण्य-कार्य समझते हैं। पंडित लोग अहंकार से कहते हैं कि बीजगणित हमारे यहाँ की विद्या है। यहाँ से उसे मुसलमान लोग ले गये और उसे यूरोपवालों को सिखा कर आप उसके आचार्य बन बैठे। पर आज तक किसी भी पंडित ने उसका हिन्दी रूप न दिखाया और न यह भी बताया कि अँगरेज़ी में आज जो हज़ारों एक से एक बढ़ कर ग्रंथ इस विषय के पाये जाते हैं वे कहाँ से आये। नहीं जान पड़ता कि हमारी यह सौ रुपये की पूंजी कौन सा भारी कारख़ाना खोलने वाली है। किसी भी साधारण अँगरेज़ी दूकानदार की पुस्तक-सूची देखने से जान पड़ेगा कि अलग अलग दुकानों में अलग अलग विषयों पर अलग अलग ग्रंथकारों के अलग अलग लाखों अँगरेज़ी ग्रंथ बिकते हैं। यदि अँगरेज़ी की आज तक की लिखी सब पुस्तकें बंगाल की खाड़ी में डाल दी जायँ तो जल की जगह स्थल हो जायँ। जो यह कहो कि हिन्दी में लेखक नहीं हैं सो भी ठीक नहीं। क्योंकि जिसने "चंद्रकान्ता" और उसकी "संतति" लिखी है उसने कुछ कम काम नहीं किया। पर यदि वैसा ही उद्योग कर्त्तव्य के पालन में किया जाय तो फिर किसी को कुछ कहने की जगह ही न रहे।

इधर लेखक लोग जो कुछ संक्षेप में लिखते हैं उसके लिए वे निरंकुश होकर मनमानी भाषा काम में लाते हैं और हम लोगों से कहते हैं कि जिसे आप हिन्दी कहते हैं वह यही है, दूसरी नहीं। इसके विरुद्ध जो ठेठ हिन्दी का ठाठ जमाते हैं उनके विषय में पंडितों का यह तिरस्कार-पूर्ण मत हो जाता है कि लेखक ने संस्कृत न जानने के कारण ही ऐसी भाषा लिखी है। अँगरेज़ी आदि विदेशी भाषाओं में साहित्य की भाषा का रूप स्थिर है और सब विद्वान् उसे निर्विवाद मानते हैं। पर आर्यों के मध्य देश में एक लेखक दिल्ली को जाता है और दूसरा लखनऊ को। यहाँ संस्कृत-विशेषज्ञ के साथ फ़ारसी संज्ञा लगाकर "यत्परोनास्ति इंशा" लिखा जाता है और लेख में भूल निकालनेवाले को शाप दिया जाता है। व्याकरण का ऐसा अनादर होता है कि वैयाकरणों के चिल्लाने पर भी और सितारे हिंद के लिख देने पर भी 'राजा' का बहुवचन 'राजे' बनाया जाता है। लेखकों की यह अवस्था हो रही है कि—"परम स्वतंत्र न सिर पर कोई, भावै मनहिँ करहु तुम सोई"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन सब बातों का सार यही है कि जब तक हिन्दी में साहित्य की भाषा नियत न होगी, अनावश्यक विदेशी शब्दों का प्रचार कम न किया जायगा, मूल लेख और सच्ची कविता की रचना न होगी और ऊँचे दर्जे के ग्रन्थों की बहुतायत न होगी तब तक हिन्दी जैसी सौ बरस पहले दीन थी वैसी ही सौ बरस आगे तक बनी रहेगी। इस दुर्दशा को दूर करने का एक मुख्य उपाय लेख और लेखकों की एकता है। जब तक हिन्दी के लेखक समय समय पर मिलकर उन नियमों का निश्चय न कर लेंगे जिनके अनुसार चलने से हमारी भाषा की यथार्थ उन्नति हो सकती है तब तक हम लोग यहाँ वहाँ भटकते रहेंगे और बरसों तक ठिकाने पर न पहुँचेंगे। अपनी अपनी डफली और अपने अपने राग का जो परिणाम हुआ है उसे हम लोग भोग रहे हैं। तोभी यह नहीं समझते कि सर्व-साधारण के लाभ के लिए मत-भेद रखने से कोई लाभ नहीं होता। जो लोग यह समझते हैं कि नियम बनाकर काम करने से स्वतंत्रता में बाधा आती है वे लोग अँगरेज़ी सेना के उन नियमों पर विचार करें जिनके योग से आज तीन-चौथाई संसार अँगरेज़ों के चरणों पर लोट रहा है। इसके सिवा हम लोगों में एक ऐसी संस्था का होना आवश्यक है जो लोगों में निरर्थक ग्रंथों का प्रचार यथाशक्ति न होने दे। दैवयोग से एक दो महाराजा हिन्दी के सहायक हैं। उनकी सहायता से हिन्दी-लेखकों का शीघ्रातिशीघ्र सम्मिलन कठिन नहीं है। यदि दस लेखक भी इसमें योग दें तो भी हमारा आधा काम पूरा हो सकता है। हम स्वयं इस काम के लिए सौ रुपये देने को तैयार हैं। इस संमिलन में सब बातों का निश्चय हो सकता है और हम समझते हैं कि बहुत कम लोग इसके नियमों को अमान्य ठहरावेंगे। कोई महाराज की हिन्दी-ग्रंथ-प्रकाशक मंडली से बहुत कुछ आशा थी। पर दुःख की बात है कि राजनीति की प्रचण्ड आँधी में उसका पता ही नहीं रहा।

पाठक लोग कदाचित् यह प्रश्न करेंगे कि जिस लेखक का नाम ही 'विद्यानाथ' है और जो लम्बी चौड़ी बातें लिखकर औरों को रास्ता बताता है वही क्यों आगे नहीं होता और मूल लेख और सच्ची कविता की रचना नहीं करता? ऐसे लोगों से हमारा यह कहना है कि हम केवल नाम के 'विद्यानाथ' हैं। हिन्दी के अधिकांश लेखकों के समान यदि हम नाममात्र भी 'बी० ए०' होते और संस्कृत, फ़ारसी, अरबी, बंगाली, और मराठी का 'भावार्थ' भी समझ लेने की योग्यता रखते तो हम इस लेख के बदले आज ही आप लोगों के सामने और नहीं तो हिन्दी का विश्वकोश ज़रूर बनाकर रख देते। पर हमारा तो यह हाल है कि हमारा लिखा हमारी ही समझ में नहीं आता। ईश्वर का भी कैसा जटिल प्रबंध है कि जिनके पास धन है उनके पास त्याग नहीं और जिनके पास त्याग है उनके पास धन नहीं। पर जिनके पास धन और त्याग दोनों हैं उनके पास मन नहीं है। तोभी हम कुछ न कुछ करते ही रहते हैं। हमने कई 'निराधार' हिन्दी ग्रंथ लिखे हैं। 'निराधार' कहने का अर्थ यह है कि वे न तो किसी ग्रंथ के आधार पर लिखे गये हैं, न उनमें लिखी बातों के लिए कहीं आधार मिलता है और न उनके छपाने के लिए हमें कोई आधार मिलने की आशा है। इसके सिवा जिस हिन्दी में वे ग्रंथ लिखे गये हैं वह भी निराधार है। हमारे इस लेख से कोई हमें "विद्या-बहार" के रचयिता "विद्यानाथ शर्मा" न समझले। हम दोनों में केवल नाम की समानता है। पर यथार्थ में हम राजापुर के चतुर्वेदी और वे शाहाबाद के त्रिवेदी हैं। अब हम अपने कामों की सूची देकर इस लेख को समाप्त करते हैं:—

(१) हम उर्दू अक्षरों के नीचे बिंदी नहीं देते।

(२) हम 'धर्म' के बदले 'मज़हब' नहीं लिखते।

(३) हम 'पिता' का बहुवचन 'पिते' नहीं बनाते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) हम फ़ारसी के बदले हिन्दी में संस्कृत की कहावतें और वाक्य रखते हैं; पर 'इसलिए' के बदले 'सुतरां' नहीं लिखते।

(५) जिस पदार्थ पर हम कविता लिखते हैं उसका अंग अंग इस प्रकार बारीकी से देखते हैं जैसे डाक्टर लोग लाश को जाँचते हैं।

(६) हम जितने वाक्य लिखते हैं या बोलते हैं वे व्याकरण के किसी न किसी नियम के उदाहरण होते हैं।

(७) हम विभक्तियों को विभक्त और सामासिक शब्दों को संयुक्त करके लिखते हैं।

(८) हम जैसे गद्य लेख लिखते हैं वैसे कभी कहीं किसी भाषा में नहीं लिखे जाते।

विद्यानाथ शर्मा।

वर्षा-विषयक एक कवि की सूक्तियाँ।

(१)

विरहिन दुखदाई परम, रितु बरसा दरसात।
और आँच बुति जात त्यों, विरह आँच बढ़ि जात॥

यह वर्षा ऋतु विरहियों को बड़ी दुखदाई जान पड़ती है। क्योंकि इससे और आँच जिस प्रकार दब जाती है उसी प्रकार विरह-अग्नि जल उठती है।

(२)

छाई चित्र कदम्बिनी, झीनी बरसा होइ।
जनु भींजी निज चूनरी, चित्रा रही निचोइ॥

चित्र विचित्र मेघ-माला छाई है। झीनी वर्षा हो रही है। ऐसा जान पड़ता है, मानो चित्रा अपनी भींगी चूनरी निचोड़ रही है। यह पद्य चित्रा नक्षत्र की झीनी वर्षा का वर्णन करता है।

(३)

इन्द्र धनुस लखि बावरी, विरहिनि कही पुकार।
अरी! भीतरैं आवना, तौ धनु मरि है मार॥

इन्द्र-धनुष को देखकर उस बावरी विरहिणी ने अपनी सखी से पुकार कर कहा—"अरी! भीतर चली आ, नहीं तो मार तुझे धनुष से मार देगा"।

(४)

तडित-दीप तें तासु मुख, देख मेघ हहरात।
किधौं सुधाकर चलि गयो, भूतल पै जल साथ॥*

रात को बिजली के दीप से उस सुन्दरी के मुख को देख—क्या जल धारा के संग कहीं चन्द्रमा तो भूतल पर नहीं चला गया—यही विचार कर मेघ रो रहे हैं।

(५)

काम-चिता कर धूम यह विरहिन जारन हेत।
लखु न बार बहु, अग्नि सिख, अग्नि, दिखाई देत॥

सखी! यह विरहियों की जलाने वाली काम-चिता का धूम दिखाई देता है क्योंकि, देख न, बार बार उसमें अग्नि-शिखा और अग्नि दिखाई देती हैं।

(६)

नागिन कारी अहै यह, ता रसना दरसात।
होति चन्द्रिका जबै तब डंसि उलटी ह्वै जात॥†

अरे यह मेघ-माला नहीं काली नागिन है जिसकी रसना (विद्युत्) बार बार दिखाई पड़ती है। और जब कभी चाँदनी निकल आती है तब वह डँस कर उलट जाती है। नागिन का क़ायदा है कि वह डँस कर उलट जाती है और उसका पेट सफ़ेद होता है। वही भाव इसमें अङ्कित है।

कृष्णदास काशी।

---

* इसी भाव का एक श्लोक भी सरस्वती की सितम्बर ०८ वाली संख्या में निकल चुका है। लेखक

† इस दोहे में और सूरदास के निम्नलिखित पद के चरणों में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव है :—

पिया बिनु नागिन कारी रात।
जौ कबहूँ के उगत जुन्हैया डसि उलटी ह्वै जात॥

लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाहे आलम सानी का दरबार ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

चक्कर में डालने वाला चित्र ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रदर्शन।

शाहेआलम सानी का दरबार।

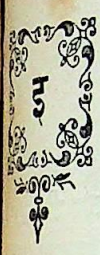

स संख्यामें शाहआलम सानी के दरबार का एक चित्र दिया जाता है। दिल्ली के ये अन्तिम बादशाहों में थे। सन् १७७१ में गद्दी पर बैठे, सन् १८०३ में सिंहासन-च्युत किये गये और १८०६ में इनकी मृत्यु हुई। अलीअहदी के ज़माने में लखनऊ के तत्कालीन नवाब के साथ इन्होंने पटना पर चढ़ाई की थी। पर अँगरेज़ों से हार कर लौटना पड़ा। इसके कुछ दिनों बाद ये अगरेज़ों से मिल गये और उनकी संरक्षा में बहुत समय तक इलाहाबाद में रहे। मरहटों की मदद से इन्हें दिल्ली की बादशाहत मिली। पर ये महा सेंधिया के हाथ की पुतली रहे। सन् १८०३ में लार्ड लेक ने दिल्ली पर विजय पाई। उसी समय के शाही दरबार का यह चित्र है। चित्र में बाँई तरफ़ लार्ड लेक खड़े हैं। तबसे सन् १८०६ तक ये अँगरेज़ों की क़ैद में पेंशन पाते रहे।

चक्कर में डालने वाला चित्र।

न्होंने पहले दो तीन साल की सरस्वती पढ़ी है वे काशीवासी बाबू दुर्गाप्रसाद जी, बी० ए० के नाम से अवश्य परिचित होंगे। आपके दो एक लेख उस समय की सरस्वती में निकल चुके हैं। बाबू साहब काशी के एक प्रतिष्ठित ज़मींदार हैं। वैज्ञानिक विषयों और ललित कलाओं से आप अत्यधिक प्रेम रखते हैं। चित्रकला में तो आप बहुतही प्रवीण हैं। आपके अङ्कित चित्र देखकर आपके चित्रविद्यानैपुण्य की शतमुख से प्रशंसा करने को जी चाहता है। कुछ समय हुआ काशी में हमें आपसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपके शिष्ट-सम्मत और सज्जनोचित-व्यवहार से हमें जितना आनन्द हुआ, आपके सञ्चित अनमोल चित्रों और पुरातन सिक्कों के समूह को देखकर उससे भी अधिक आनन्द हुआ। इन्हीं चित्र-कलाकोविद बाबू दुर्गाप्रसाद जी ने सरस्वती के लिए कुछ विलक्षण चित्र बनाये हैं। इन चित्रों में यह विलक्षणता और विशेषता है कि प्रत्येक प्रधान चित्र के अभ्यन्तर अन्य चित्र ऐसी गुप्त रीति से अङ्कित हैं कि उन्हें पहचानना और ढूँढ निकालना सहज काम नहीं। ये चित्र एक एक करके सरस्वती में प्रकाशित किये जायँगे।

इस संख्या में चक्कर में डालने वाला जो चित्र अन्यत्र प्रकाशित किया जाता है वह फूलों के एक गमले का है। इसी चित्र की इसमें प्रधानता है। पर इसके भीतर मनुष्य के पाँच चेहरे भी गुप्त रीति से अङ्कित हैं। पाठकों से निवेदन है कि वे इन पाँचों गुप्त चित्रों को ढूँढ निकालने का यत्न करें। जो कोई उन्हें ढूँढ निकालेगा, और प्रधान चित्र में वे कहाँ कहाँ पर हैं इसका विवरण हमें साफ़ साफ़ और निर्भ्रान्त लिख भेजेगा, उसे इंडियन प्रेस की कोई एक या एक से अधिक पुस्तकें उपहार में दी जायँगी। अथवा यदि उसकी इच्छा होगी तो एक वर्ष तक उसे सरस्वती बिना मूल्य दी जायगी। उपहार पानेवाले का नाम भी सरस्वती में प्रकाशित किया जायगा।

एक ही मनुष्य एक वर्ष में यदि एकसे अधिक गुप्तचित्रों का स्पष्टीकरण करेगा तो एक वर्ष से अधिक समय के लिए उसे सरस्वती न मिलेगी। हाँ, हर स्पष्टीकरण के उपलक्ष्य में हर बार उसे एक नई पुस्तक अवश्य दी जायगी। कौन पुस्तक दी जाय, इसका निश्चय इंडियन प्रेस करेगा। उपहार सबसे अच्छा स्पष्टीकरण करने वाले को मिला करेगा। एकही तरह के एकसे अधिक स्पष्टीकरण आवेंगे तो जो स्पष्टीकरण सबसे पहले प्राप्त होगा उसी के भेजनेवाले को उपहार मिलेगा। स्पष्टीकरण सम्पादक के नाम जुही, कानपुर भेजना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक-परीक्षा।

१—वैश्यवर्णधर्ममीमांसा। महार्य्यनिवासी पण्डित मन्नालाल-द्वारा संगृहीत और बालचन्द्र-यन्त्रालय जयपुर में मुद्रित। इस में प्रश्नोत्तर के रूप में वैश्य-वर्ण तथा उसके धर्म की मीमांसा की गई है। पुस्तक बहुत दिन की छपी हुई मालूम होती है। दो आने में सदाचार-विद्यालय, चौपड़, आमेर, जयपुर से मिल सकती है।

❀

२—स्त्रीधर्मशिक्षा, प्रथम भाग। सवेरे से शाम तक स्त्रियों को क्या क्या करना चाहिए, इसी का इस पुस्तिका में वर्णन है। महार्य्यनिवासी पं० मन्नालाल की प्रथम स्त्री ने इसे बनाया और पण्डितजी ने बाल-चन्द्र यन्त्रालय, जयपुर में छपवा कर प्रकाशित किया है। आपही इसे दो आने में बेचते हैं।

❀

३—जैनतत्त्वादिग्दर्शन। कुछ दिन हुए कलकत्ते में एक धर्म-महासभा हुई थी। उसमें संसार के मुख्य मुख्य मतों और धर्मों पर कितनेही लेख पढ़े गये थे। जैन धर्म पर जो लेख पढ़ा गया था वह अब पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ है। इसमें जैन धर्म के मुख्य मुख्य सिद्धान्तों का स्थूलरूप से हिन्दी में वर्णन है। इसे शास्त्रविशारद जैनाचार्य श्रीविजयधर्मसूरि ने लिखा और हर्षचन्द्र भूराभाई, श्रीयशोविजयजी जैन पाठशाला, मोहल्ला नन्दनसाह, बनारस, ने प्रकाशित किया है। इस छोटी सी पुस्तक में जैन धर्म्म का तत्त्वनिरूपण उत्तमता पूर्वक किया गया है। थोड़े में जिसे इस धर्म्म का सार जानना हो उसे ४ आने में यह पुस्तक प्रकाशक से मँगाकर ज़रूर पढ़ना चाहिए। इतना भी जो न कर सके उसके सुभीते के लिए हम इस पुस्तक के आरंभ का श्लोक उद्धृत किये देते हैं। उसीसे जैन-धर्म्म का लक्षण मालूम हो जायगा। लीजिए:—

स्याद्वादो वर्त्तते यस्मिन् पक्षपातो न विद्यते।
नास्त्यन्यपीडनं किञ्चित् जैनधर्मः स उच्यते॥

इस पुस्तक के अन्त में पुस्तककर्त्ता ने अपनी शालीनता और नम्रता का दर्शक वीर-प्रार्थना पर जो एक पद्य दिया है उससे इस धर्म्म के अनुयायियों का हृद्गतभाव अच्छी तरह व्यक्त होता है:—

न श्रद्धयैव त्वयि पक्षपातो न द्वेषमात्रादरुचिः परेषु।
यथावदाप्तत्वपरीक्षया तु त्वामेव वीरप्रभुमाश्रिताः स्मः॥

❀

४—श्रीशान्तिनाथचरित्रम्। श्री-अजित-प्रभाचार्य-कृत। काशीनिवासी मुनीन्द्र इन्द्रविजय जी द्वारा सम्पादित और बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, ५७ पार्क स्ट्रीट, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित। यह ग्रंथ जैन-धर्म-सम्बन्धी है। इसमें श्रीशान्तिनाथ का चरित संस्कृत-पद्य है। अभी इसके कुछ कम तीनही प्रस्ताव प्रकाशित हुए हैं। शेष अंश आगे प्रकाशित होगा। पुस्तक बड़ी योग्यता से सम्पादित की गई है। मुनिवर श्रीइन्द्रविजयजी संस्कृत के उत्तम विद्वान् और जैन-शास्त्र के पारगामी पण्डित हैं। उन्होंने बहुत अच्छा किया जो इस मनोहर और शिक्षाग्राह्य चरित का सम्पादन आरंभ किया।

❀

५—गोवरगणेश नाटक। भालरापाटन के माहराज यशवन्तसिंह कृत। इस नाटक में सब मिलाकर चार दृश्य हैं। इसमें एक कल्पित गोवर-गणेश (पुरुषार्थहीन) मनुष्य के चरित्र का पद्यात्मक वर्णन है। इसकी भाषा शुद्ध हिन्दी नहीं, किन्तु मालव प्रान्त की है। इसमें ऐसे बहुत से शब्द आये हैं जिन्हें अन्य प्रान्त के निवासी नहीं समझ सकते। इसलिए नाटककार ने उनके अर्थ फुटनोट में दे दिये हैं। इससे इसकी उपयोगिता बढ़ गई है। आधुनिक नाटकों में जितने गुण चाहिएँ यद्यपि वे सब इसमें नहीं, तथापि यह नाटक मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद है। हास्य रस तो इसका प्रधान गुण है। जो लोग चाहें इसे दस आने में ग्रंथकर्त्ता से मँगालें।

❀

६—भारत-नररत्न-चरितावली। लेखक और प्रकाशक पण्डित रामचन्द्र वैद्य-शास्त्री, स्वदेश-हितैषी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय, अलीगढ़ । मूल्य एक रुपया । प्रकाशक से प्राप्य । इस पुस्तक में बारह स्वदेशभक्त पुरुषों के जीवन-चरित एकत्र किये गये हैं । इसमें शक नहीं कि ऐसे लोगों के चरित पढ़कर सर्व साधारण बहुत कुछ शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं । पर इस पुस्तक में चरित इतने संक्षेप से लिखे गये हैं कि साधारण लोग जितना चाहिए उतना लाभ उनसे नहीं उठा सकते । तिस पर भी पुस्तक उपादेय है । सबसे बड़ी बात इसमें यह है कि जिन लोगों के चरित इसमें लिखे गये हैं उनके चित्र भी साथही साथ दे दिये गये हैं । इससे इस पुस्तक की उपयोगिता बढ़ गई है । इसमें जीवनचरितों के सिवा शुरू में वन्देमातरम् गीत और अन्त में कर्म्मवीर कविता है । यह पिछली कविता सरस्वती की सम्पत्ति है । कोई दो साल हुए यह इस पत्रिका में छपी थी । पर ग्रंथकर्त्ता ने उसे अपनी किताब में इस तरह छाप दिया है मानो वह उन्हीं के लिए लिखी गई हो । हाँ आपने इतनी कृपा ज़रूर की है कि "सरस्वती" का नाम दे दिया है । इस कृपा के लिए धन्यवाद !

❁

७—मैथिल-कोकिल विद्यापति । कोई पांच सौ वर्ष हुए मिथिला देश में महामहोपाध्याय विद्यापति ठाकुर नाम के एक बड़े प्रसिद्ध कवि हो गये हैं । बंगाल और बिहार में उनकी कविता का बड़ा आदर है । पण्डित से लेकर साधारण मनुष्य और स्त्रियों तक विद्यापति के पद बड़े प्रेम से गाती हैं । यद्यपि विद्यापति ने अपनी पदावली मैथिल भाषा में रची थी तथापि वंगवासियों ने उसे तोड़मरोड़ कर अपना लिया है और वङ्गाक्षरों में उसे प्रकाशित किया है । विद्यापति की कविता बँगला में कई जगह पर कई बार छप चुकी है । पर अब तक वह अपने वास्तविक रूप और देवनागरी अक्षरों में न प्रकाशित हुई थी । आरा-नागरीप्रचारिणी सभा ने ऐसा संस्करण निकालकर बड़ा अच्छा काम किया है । आरा के वकील बाबू व्रजनन्दनसहाय ने इसका सम्पादन किया है । इसमें विद्यापति के कोई चार सौ पद होंगे । मैथिल भाषा में होने के कारण उनके कितनेही शब्द साधारण हिन्दी जानने वाले नहीं समझ सकते । इसलिए प्रत्येक पद के नीचे उसके कठिन शब्दों के अर्थ भी हिन्दी में दे दिये गये हैं । शुरू में विद्यापति की जीवनी भी है । इस ग्रंथ को पढ़कर कविता-प्रेमी और भगवद्भक्त दोनों ही आनन्द लाभ कर सकते हैं । जिनका जी चाहे पूर्वोक्त सभा से इस ग्रंथ को सवा रुपये में मँगालें ।

❁

८—शिक्षाविधि । श्रीयुत रामचन्द्र आनन्दराव देशपाण्डे, अध्यापक, हाई स्कूल, बालाघाट कृत । इस पुस्तक में पढ़ना, लिखना, हिज्जे करना, भूगोल और महाजनी हिसाब-किताब सिखाने की विधि का वर्णन किया गया है । प्रत्येक बात उदाहरण, नक़शों और चित्रों के द्वारा अच्छी तरह समझाई गई है । हिन्दी की प्रारम्भिक पाठशालाओं के शिक्षक लोग इसे पढ़ कर बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं । उन्हीं के लिए यह बनाई भी गई है । मध्यप्रदेश में इस पुस्तक का अच्छा प्रचार है । वहाँ वालों ने इसकी क़दर की है । यह बात इसी से प्रकट है कि केवल दो ढाई वर्ष में इसके तीन संस्करण निकल चुके हैं । इस विषय की किसी अच्छी पुस्तक का प्रचार इन प्रान्तों में नहीं हैं । अतएव यहाँ की प्राइमरी पाठशालाओं के शिक्षक इस पुस्तक से लाभ उठाने की चेष्टा करें तो बहुत अच्छा हो । मूल्य तेरह आने । मिलने का पता—मैनेजर बुकडिपो, रायपुर ।

❁

९—धम्मपद । धम्मपद बौद्धों का जगद्विख्यात ग्रंथ है । योरप और इस देश की कितनी ही भाषाओं में अनुवाद और टिप्पणी सहित इसके कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं । हिन्दी में इस प्रकार का यह पहला ही संस्करण है । इसमें धम्मपद के मूल श्लोकों के साथ श्रीयुत चन्द्रमणि भिक्खु कृत हिन्दी अनुवाद भी है । मूल श्लोक मागधी भाषा में हैं । शुरू में बुद्धदेव का चरित भी लिखा गया है । पुस्तक बहुत अच्छी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। धार्मिक प्रवृत्ति के मनुष्यों को तो इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य चौदह आने। मिलने का पता—जगन्नाथ लालताप्रसाद, बुकसेलर, चौक, इलाहाबाद।

❀

१०—गुरुकुलसमाचार। "सिकन्दराबादस्थ गुरुकुलसमाचार परिचायक और वेद-सिद्धान्त-मण्डक मासिकपत्र।" सम्पादक पण्डित श्यामलाल शर्म्मा। वार्षिक मूल्य एक रुपया। इस पत्र के प्रथम वर्ष के पाँचवें, छठे और सातवें मास की संयुक्त संख्या हमारे पास समालोचनार्थ आई है। इसमें रायल अठपेजी आकार के कोई चालीस पृष्ठ हैं। यद्यपि इसके अधिकांश लेख और समाचार गुरुकुल सम्बन्धी हैं तथापि कुछ साधारण विषयों पर भी हैं। आशा है इसके सञ्चालक इसे दिन पर दिन उन्नत करते जायँगे।

❀

११—जाह्नवी। मासिक पत्रिका है। सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक श्रीयुत श्रीकान्त उपासनी, चुनार। वार्षिक मूल्य एक रुपया। इसके प्रथम वर्ष के पहले और दूसरे अंक की संयुक्त संख्या हमारे सामने है। इसमें रायल अठपेजी आकार के कोई २८ पृष्ठ हैं। शुरू के बारह पृष्ठों में दो तीन मामूली लेखों के सिवा चुनार के समाचार दिये गये हैं। इसके बाद आठ पृष्ठों में मामक़ीमा का हिन्दी-अनुवाद है। ऊपर फ़ारसी के मूल अशआर हैं, नीचे उनका अर्थ दोहों में दिया हुआ है। अन्त के आठ पृष्ठों में रिपवान विंकल नाम के अँगरेज़ी उपन्यास का हिन्दी-अनुवाद है। पत्रिका में उन्नति की बहुत गुंजाइश है।

❀

१२—सारस्वत। सारस्वत ब्राह्मणों का "जातीय-धर्म-विषयक-मासिकपत्र"। सम्पादक और प्रकाशक—"पाठक ज्योतःस्वरूप शर्मा सारस्वत, सप्त-भाषज्ञ, काशीधाम"। वार्षिक मूल्य एक रुपया। इस पत्र का अभी यह प्रथम अंक है। इसमें रायल अठपेजी आकार के बीस पृष्ठ हैं। लेख साधारणतः अच्छे हैं। मिलने का पता—श्रीसरस्वती-भाण्डार, काशी।

अमेरिका से आया हुआ पत्र।

ओ३म्

सियेटल, वाशिङ्गटन,
२३ वीं मई १९०९

महोदय वर,

आपको यह जान कर हर्ष होगा कि यहाँ पर एक "हिन्दू-साहित्य-समिति" है जिसका उद्देश शुद्ध हिन्दी-साहित्य का प्रचार करना है। इस समिति ने अपने एक ख़ास अधिवेशन में इस बात का निश्चय किया है कि जो भारतीय छात्र—"भारत में सामाजिक अन्याय" इस विषय पर एक हृदय-विदारिणी कहानी लिखेगा उसको यह समिति ५० रुपये का एक सुवर्ण-पदक उपहार में देगी। कहानी (short story) चार हज़ार शब्दों से कम और आठ हज़ार से अधिक न हो; और लेखक महाशय विद्यालय या कालिज के विद्यार्थी ही हों, हाई स्कूल के नहीं। भाषा सरल और आम बोल चाल की हो। यह कहानी पसन्द आने पर सरस्वती या और किसी पत्र या पत्रिका में छपेगी। सियेटल में सब कहानियां २५ नवम्बर ०९ तक नीचे लिखे पते पर मेरे पास पहुँच जानी चाहिए:—

S. Deva,
P. O. Box 160
University Station,
Seattle, Wash, U. S. A.

भेजनेवाले महाशय पूरे टिकट लगाकर तथा मज़बूत काग़ज़ लपेटकर कहानियाँ भेजें, क्योंकि सफ़र लम्बा है।

यदि हिन्दी तथा उरदू के दूसरे पत्र भी इस सूचना को अपने परचों में छाप देंगे तो यह समिति उनको बहुत धन्यवाद देगी।

विनीत,
सत्यदेव।

Printed and published by Panch Kory Mittra at the Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

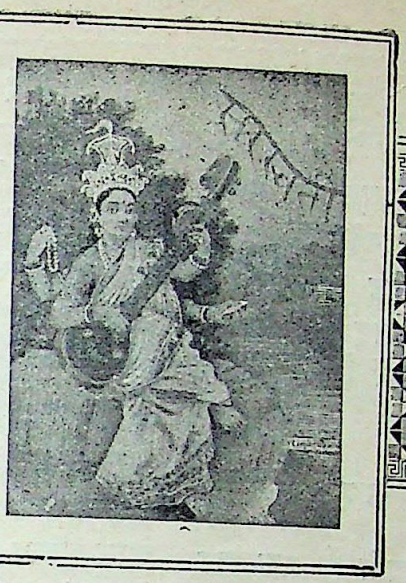

सरस्वती।

भाग १०] १ सितम्बर, १९०९। भाद्रपद कृष्ण १, १९६६। [संख्या ९

विविध-विषय।

१—आश्चर्य्य-जनक अस्त्र-चिकित्सा।

शिकागो-विश्वविद्यालय के अध्यापक डाक्टर कारेल अस्त्रचिकित्सा-शास्त्र के बढ़िया पण्डित हैं। कुछ दिनों से वे अस्त्र-चिकित्सा-सम्बन्धी ऐसी परीक्षायें कर रहे हैं जिनके द्वारा इस शास्त्र की असाधारण उन्नति होने की आशा है। सब लोग जानते हैं कि मनुष्य की नाड़ी और नसें कैसी नाज़ुक होती हैं। किसी विशेष रोग के कारण उनके ख़राब हो जाने पर उन्हें चीरने या बदलने की हिम्मत डाक्टरों को नहीं पड़ती। क्योंकि वे समझते हैं कि ऐसा करने से रोगी बच नहीं सकता। परन्तु डाक्टर कारेल ने अपनी परीक्षाओं से इस विचार को भ्रमात्मक सिद्ध कर दिया है। उन्होंने कितनेही मनुष्यों, कुत्तों, और बिल्लियों की नसें और नाड़ियाँ निकाल निकालकर एक दूसरे के शरीर में यथास्थान बिठा दी हैं और वे सब अब तक जीवित हैं। डाक्टर कारेल की परीक्षा से जो सबसे बड़ी बात सिद्ध हुई है वह यह है कि मृत मनुष्य का हृदय भी पुनर्जीवित किया जा सकता है और यदि वह किसी प्राणी की देह में यथास्थान स्थापित कर दिया जाय तो अपना काम भी कर सकता है। डाक्टर कारेल की परीक्षाओं से अस्त्रचिकित्सा-शास्त्र की कितनी उन्नति होगी और उससे संसार का कितना लाभ होगा, यह बात सरस्वती के पाठक सहजही में समझ सकते हैं।

२—लार्ड मारले की एक नई पुस्तक।

सरस्वती के कितनेही पाठक शायद इस बात को जानते होंगे कि भारतसचिव लार्ड मारले की गिनती इँगलैंड के सुप्रसिद्ध साहित्यसेवियों में है। उन्होंने अब तक विविध विषयों पर न मालूम कितनी पुस्तकें लिख डाली हैं। सुनते हैं कि आज कल वे भारतवर्ष पर एक ग्रंथ लिख रहे हैं। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रंथ बहुत बड़ा होगा। उनके लिखे हुए ग्लैडस्टन साहब के जीवनचरित से भी बड़ा होगा। किसी किसी का कथन है कि उन्होंने भारतसचिव के पद को इसीलिए स्वीकार किया है कि उनको इस ग्रंथ के लिखने में सहायता मिले। यदि यह ख़बर सच है तो वास्तव में मारले साहब का यह ग्रंथ बड़ा ही महत्त्वपूर्ण और उपादेय होगा। देखें तैयार होकर यह कब प्रकाशित होता है।

३—पुस्तकों का पुरस्कार।

डाक्टर स्वेनहेडिन पर सरस्वती में एक नोट निकल चुका है। आपने अपनी यात्रा-सम्बन्धी एक पुस्तक लिखी है। सुनते हैं कि उसके पुरस्कार में आप डेढ़ लाख रुपये माँगते हैं। पाठकों को शायद आश्चर्य होगा कि एक साधारण किताब का इतना पुरस्कार! पर आश्चर्य की कोई बात नहीं। इँगलैंड आदि पश्चिमी देशों में एक किताब के डेढ़ लाख रुपये माँगना कुछ बड़ी बात नहीं समझी जाती। गिबन साहब को "रोमसाम्राज्य की अवनति और विनाश" नाम की किताब के पुरस्कार में डेढ़ लाख रुपये सहजही में मिल गये थे। स्काट साहब को भी अपने एक एक उपन्यास के लिए इतनीही इतनी रक़में कई बार मिलीं थीं। मेकाले साहब को अपने "इँगलैंड के इतिहास" के केवल आंशिक पुरस्कार में एक बार तीन लाख रुपये मिले थे। इसी तरह मेरी कारेली, बेरी, हालकेन आदि ने अपने एक एक उपन्यास के पुरस्कार में इसकी चौगुनी पँचगुनी रक़में तक पाई हैं।

४—एक अद्भुत व्यापार।

कुछ दिनों से कितनेही भारतवासी अमेरिका में बड़ी बड़ी अद्भुत करामातें दिखा रहे हैं। हालही की एक करामात का वृत्तान्त सुनिए। अमेरिका के एक नगर में जाकर एक हिन्दू जादूगर ने विज्ञापन दिया कि हम मनुष्य को आठ दिन तक ज़मीन में गड़ा रखकर फिर जीवित अवस्था में निकाल सकते हैं, यदि कोई गड़ने के लिए राज़ी हो तो हमसे मिले। गड़नेवाले को इनाम भी मिलेगा। इनाम के लालच से १९ वर्ष की एक दरिद्र लड़की ने गड़ना स्वीकार किया। गड़ने का दिन और स्थान नियत हुआ। हज़ारों आदमी तमाशा देखने के लिए जमा हुए। जादूगर ने सम्मोहन-विद्या के द्वारा पहले उस लड़की को सुलाया। फिर उसे एक संदूक़ में बन्द करके पाँच फ़ीट की गहराई में गाड़ दिया। केवल एक सूराख़ भीतर हवा जाने के लिए रक्खा। लड़की आठ दिन तक गड़ा रही। उसके बाद कोई सात हज़ार आदमियों के सामने वह निकाली गई। निकलने के कुछ ही देर बाद वह जागी और उठकर अपने घर चली गई। सब लोग इस आश्चर्यजनक और अद्भुत व्यापार को देखकर दंग रह गये और हिन्दू जादूगर की असाधारण शक्ति और लड़की के साहस की प्रशंसा करने लगे। अमेरिका के अख़बारों में इस घटना की ख़ूब धूम रही। एक समय था जब भारतवर्ष में योगिजन ऐसी ऐसी समाधियाँ अकसर लगाया ही करते थे।

५—मृतात्मा का पुनरागमन।

किसी मरे हुए मनुष्य की आत्मा दूसरे जीवित मनुष्य के शरीर में प्रविष्ट होकर वहाँ कुछ काल तक निवास कर सकती है या नहीं, इस विषय में बहुत मतभेद है। कोई इसे सम्भव समझते हैं, और कोई असम्भव। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसी घटनायें संसार के सभी देशों में समय समय पर हुई हैं और अब भी होती रहती हैं। सरस्वती के कितनेही पाठकों ने भी ऐसी घटनायें कभी न कभी अवश्य देखी या सुनी होंगी। कुछ दिन हुए इसी तरह की एक अद्भुत घटना अमेरिका के एक स्थान में हुई थी। कोई बारह वर्ष पहले एक लड़की मर गई। उसके माता, पिता, भाई, बहन अब भी जीवित हैं। एक दिन पड़ोस की एक लड़की पर पूर्वोक्त मृत लड़की ने अपना प्रभाव जमाया—वह उसके शरीर में प्रविष्ट हो गई और वहीं रहने लगी। बस उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन से वह जीवित लड़की ऐसी हरकतें करने लगी मानो वह मृत लड़की ही है। अर्थात् उसके गुण, कर्म और स्वभाव मृत लड़की के से हो गये। मृत लड़की के माता, पिता तथा अन्य लोगों ने उसकी हर तरह परीक्षा की। इससे सिद्ध हो गया कि जीवित लड़की के शरीर में मृत लड़की की आत्मा अवश्य ही प्रविष्ट हो गई है। क्योंकि जो बातें उसने कभी देखी सुनी न थीं, जिनका जानना उसके लिए बिलकुल असम्भव था, उन्हें वह इस भावभङ्गी से वर्णन करती थी मानो साक्षात् मृत लड़की ही उन्हें बता रही है! पूरे सौ दिन तक यही दशा रही। इसके बाद मृत लड़की की आत्मा ने उस जीवित लड़की के शरीर को त्याग दिया। बस उस दिन से उसका स्वभाव फिर वैसा ही हो गया जैसा कि पहले था। जीवित लड़की का नाम लूरेन्सी वेनम (Lurancy Vennum) है और मृत लड़की का नाम मेरी राफ़ (Mary Roff) था। इस घटना का विस्तृत वृत्तान्त "The Watseka Wonder" नाम की छोटी सी पुस्तक में प्रकाशित हुआ है। उसमें इसकी सचाई के प्रमाण भी दिये गये हैं। हिन्दू ईस्पिरिचुएल मैगेज़ीन, कलकत्ता के मैनेजर इसे बेँचते हैं। जो लोग चाहें उनसे मँगा सकते हैं।

६—सौ वर्ष तक जीवित रहने का उपाय।

पूर्व और पश्चिम वालों में अनेक भेद हैं। उनमें से एक यह भी है कि हम लोग संसार को दुःखागार समझकर यहाँ चिर काल तक जीवित रहने की इच्छा नहीं करते। परन्तु योरपवाले संसार को सुखागार समझते हैं; इसलिए वे अपने जीवन को शीघ्र त्यागना पसंद नहीं करते। अधिक काल तक जीवित रहने के उपायों पर वहाँ अकसर लेख और पुस्तकें प्रकाशित हुआ करती हैं। हालही में डाक्टर [illegible] नाम के एक विद्वान् ने इस विषय पर एक लेख लिखा है। उसमें उन्होंने सौ वर्ष तक जीवित रहने के उपाय बतलाये हैं। उपाय ये हैं:—(१) थोड़ा कमाओ और थोड़ा ख़र्च करो; (२) आवश्यकता से अधिक न खाओ, न पियो; (३) स्वास्थ्यकर भोजन और जल व्यवहार में लाओ; (४) सदा शान्त, प्रसन्न और मिताचारी रहो; (५) काम करने में कभी मत ऊबो; (६) दुख, निराशा और आलस्य को अपने पास न फटकने दो; (७) जवानी में ख़ूब काम करो, परन्तु बुढ़ापे में आराम करो; (८) बालकों से मिलो जुलो और कभी कभी उनके खेलों में भी शामिल हो; (९) जो कुछ बीत चुका उसकी चिन्ता मत करो; (१०) मृत मनुष्यों का स्मरण न करो; (११) अपने को सदा हट्टाकट्टा और वीर युवा समझो।

७—ज़बानी तारबर्क़ी।

साधारण तारबर्क़ी को तो सभी जानते हैं। पर ज़बानी तारबर्क़ी अब तक सुनने में न आई थी। हालही में एक साहब ने उसकी भी तरकीब निकाली है। तरकीब बड़ी सीधी सादी है। दो तारों को बराबर इस तरह रखना चाहिए जिसमें वे मिल न जायँ। इनके दोनों सिरों पर दो आदमी मुँह में दो दो चम्मच और तार के दोनों सिरे दबा कर बैठें। एक चम्मच चाँदी का होना चाहिए दूसरा अलूमीनियम धातु का। चाँदी वाला चम्मच मुँह के एक तरफ़ रहे और अलूमिनियम वाला दूसरी तरफ़। जीभ अलूमिनियम वाले की तरफ़ रहनी चाहिए। दोनों मिलने न पावें और मज़बूती से दबे रहें। इनमें से जो आदमी ख़बर भेजना चाहे वह एक तार को तोड़ दे और उसके दोनों सिरे हाथ में ले ले। जैसे साधारण तारबर्क़ी में 'डाट' और 'बार' के द्वारा अक्षर बनते हैं वैसेही इसमें भी। टूटे हुए तार के दोनों सिरे मिलाकर यदि तुरन्त हटा लिये जायँ तो डाट हो गया और यदि कुछ देर तक मिले रहें तो बार। इस प्रकार डाट बार से अक्षर और उनसे शब्द बनते जायँगे। तार के दूसरे सिरे वाला आदमी, चाहे जितनी दूर बैठा हो, तार के मिलाने-हटाने का तुरन्त अनुभव करेगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और समझ जायगा कि कौन सी बात कही गई। बस, ज़बानी तार देने की यही तरकीब है।

८—लार्ड रिपन की मृत्यु।

१० जूलाई ०९ को हिन्दुस्तान के भूत-पूर्व वाइसराय लार्ड रिपन का शरीर-पात हो गया। यह सुन कर किस हिन्दुस्तानी को दुःख न होगा? लार्ड रिपन इस देश के सच्चे शुभचिन्तक थे। ५६ वर्ष तक गवर्नमेंट की नौकरी करके ८२ वर्ष की उम्र में उन्होंने इस नश्वर शरीर को छोड़ा। जब जब उन्हें इस देश की भलाई करने का मौक़ा मिला तब तब उसे उन्होंने हाथ से नहीं जाने दिया। समाचारपत्रों के पुराने पाठकों को "इल्बर्ट बिल" का ज़माना ज़रूर याद होगा। अतएव उन्हें इस बात की याद दिलाने की ज़रूरत नहीं कि लार्ड रिपन ने हिन्दुस्तान के लिए क्या किया और यदि उन्हें कारणवश इस्तेफ़ा देकर असमय में ही विलायत लौट न जाना पड़ता तो वे और क्या क्या करते। आत्मशासन-प्रणाली (Local Self Government) की नीव उन्होंने इस देश में डाली। माइसोर को उन्होंने वर्तमान हिन्दू-राजवंश को लौटाया। विलायत जाकर सिविल सरविस की परीक्षा पास किये बिनाही जो दो चार सिविलियन इस देश में देख पड़ते हैं वे उन्हीं की कृपा-कटाक्ष का फल है। परन्तु यह बात उनके इस देश से चले जाने तक ही रही। वे ऐसे महामना और प्रजारञ्जक थे कि प्रसिद्ध प्रसिद्ध अख़बारों के भारतवासी सम्पादकों से अकसर मिलते थे और बड़े बड़े राजकीय कार्यों के सम्बन्ध में उनसे सलाह लेते थे। यह सौभाग्य आज तक फिर किसी सम्पादक को नहीं प्राप्त हुआ।

९—भारतोदय।

बड़ी ख़ुशी की बात है कि हिन्दी में एक और मासिक पत्र का प्रादुर्भाव हुआ है। नाम इसका "भारतोदय" है। हरद्वार के पास एक क़सबा ज्वालापुर है। वहाँ गङ्गाजी की नहर के किनारे एक बहुत ही रमणीय उद्यान में कुछ विद्या-व्यसनी और सदुद्योगी सज्जनों ने महाविद्यालय नाम का एक "गुरुकुल" खोला है। इस गुरुकुल में कोई ४० ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य्य-व्रत पालन करते हुए विद्याध्ययन करते हैं। उन्हें अन्न-वस्त्र भी मिलता है और विद्यादान भी। उन्हें सच्चरित्र बनाने और नीरोग रखने का भी ख़ूब ख़याल रक्खा जाता है। ये सब बातें हम अपनी आँखों देख आये हैं। इसमें जो अध्यापक, अधिष्ठाता, आचार्य्य और कर्म्मचारी हैं सब विद्वान्, योग्य और कर्तव्य-परायण हैं। यह परमोपयोगी विद्यादान-शाला चन्दे से चलती है। धन्य हैं वे लोग जो इसे चलाते हैं और जो इसके सञ्चालनार्थ दान देकर अपने धन-धान्य का सदुव्यय करते हैं, क्योंकि यह बहुत बड़ा पुण्य-कार्य्य है। "भारतोदय" इसी शाला का मासिक "मुखपत्र" है। सौभाग्य से इसके लिए सम्पादक भी बहुत अच्छे मिले हैं। दो विद्वान् इसका सम्पादन करते हैं। एक पण्डित पद्मसिंह जी शर्म्मा, जिनसे सरस्वती के पाठक परिचित ही हैं। दूसरे पण्डित नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ। ये पिछले महाशय भारतोदय के सहायक सम्पादक हैं। ऐसे बड़े कार्य्य के लिए ऐसे सुयोग्य सम्पादक प्राप्त करना भी इस महाविद्यालय के सौभाग्य और सुप्रबन्ध का सूचक है। इस मासिक पत्र का जन्म गत ज्येष्ठ में हुआ है। इस नोट के लिखने तक इसकी दो संख्यायें प्रकाशित हो चुकी हैं। पत्र में यद्यपि विशेष करके सामाजिक और धार्म्मिक विषयों पर ही लेख रहते हैं तथापि साधारण साहित्य और शिक्षा-सम्बन्धी लेख भी इसमें अच्छे अच्छे निकलते हैं। इसके प्रथम दो अङ्कों में जो हिन्दी और संस्कृत की कवितायें निकली हैं उनसे जान पड़ता है कि यह पत्र कविता से भी अपने पाठकों का अच्छा मनोरञ्जन करेगा। समालोचनायें भी इसमें दो एक मार्के की निकली हैं। कोई ४० पृष्ठ हर अङ्क में रहते हैं। मूल्य सिर्फ़ १॥) वार्षिक है। प्रबन्ध-कर्ता भारतोदय, ज्वालापुर, सहारनपुर को लिखने से यह पत्र प्राप्त हो सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लार्ड रिपन।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। पत्र के सञ्चालक आर्य्यसमाज से सम्बन्ध रखते हैं। अतएव आर्य्य महाशयों को तो यह पत्र अवश्य ही लेना चाहिए। और लोग भी यदि लेंगे तो उनका भी मनोरञ्जन हुए बिना न रहेगा।

१०—पुरुषपुर में गौतम बुद्ध की अस्थियों की प्राप्ति।

पाठकों ने सरस्वती में महाराजा कनिष्क का संक्षिप्त चरित पढ़ा होगा। कोई दो हज़ार वर्ष पूर्व उनका राज्य था। ये चक्रवर्ती राजा थे। अनार्य्य से बौद्ध हुए थे। पेशावर का पुराना नाम पुरुषपुर है। वही इनकी राजधानी थी। कनिष्क ने पुरुषपुर में एक विशाल विहार और स्तूप बनवाया था। चीनी परिव्राजक ह्वेनसांग ने उनका विस्तृत वर्णन अपनी पुस्तक में किया है। उसने लिखा है कि ऐसी अच्छी इमारत भारतवर्ष में दूसरी नहीं। उसका कथन है कि यहीं पर एक स्तूप के भीतर बुद्ध की अस्थियाँ सञ्चित हैं। इस स्थान को खोज निकालने की आज तक कितनेहीं विद्वानों ने चेष्टा की। पर सफलता न हुई। यह सफलता डाक्टर स्पूनर के भाग्य में थी। एक फ़रासीसी विद्वान् से इशारा पाकर उन्होंने पेशावर से आध मील पर पड़े हुए मिट्टी के टीलों को खोदना शुरू किया तो बड़े बड़े प्रचण्ड मन्दिर और प्राचीन स्तूप के भग्नावशेष मिले। उन पर कितनीहीं बौद्ध-मूर्तियाँ और खरोष्ठी लिपि में लिखे हुए लेख भी मिले। सबसे प्रसिद्ध और इतिहास की दृष्टि में सबसे अधिक महत्त्व की बात यह हुई कि बुद्ध की अस्थियों के तीन टुकड़े एक कनिष्क के बाक्स में ज्यों के त्यों रक्खे हुए मिले। बाक्स पर महाराज कनिष्क की मुहर पूर्ववत् लगी हुई पाई गई। क्या ही अच्छा हो जो गवर्नमेंट इन अस्थियों को ब्रह्मा, चीन और जपान को न भेजकर यहीं रहने दे और स्तूप आदि के भग्नावशेषों के भी यहीं रक्खे जाने का प्रबन्ध कर दे।

राजा बलवन्तसिंह, सी० एस० आई०।

अत्यन्त खेद की बात है कि श्रीमान् राजा बलवन्तसिंह जी, सी० एस० आई० अवागढ़-नरेश का तारीख़ २१ जून ०९ को दिन के ४॥ बजे ५७ वर्ष की अवस्था में स्वर्गवास हो गया।

आप यादव क्षत्रिय थे। आपका जन्म २१ सितम्बर सन् १८५३ ई० को हुआ था और तारीख़ १६ नवम्बर सन् १८९२ ई० को अपने ज्येष्ठ भ्राता की मृत्यु के पश्चात् गद्दी पर बैठे थे। आपके दो पुत्र हैं:—ज्येष्ठ कुमार सूर्य्यपालसिंह अवस्था १२½ वर्ष और कनिष्ठ कुमार कृष्णपालसिंह आयु ९¾ वर्ष। अवागढ़, आगरा प्रान्त की रियासतों में सबसे अधिक आमदनी की रियासत है।

आप में क्षत्रियोचित अनेक गुण थे। बड़े बलवान्, पराक्रमी, शूर-वीर और पुरुषार्थी थे। आप कर्त्तव्य-निष्ठ और अध्यवसायशील भी थे। अपने सिद्धान्तों में आप बड़े दृढ़ थे। आप स्वतन्त्र विचार के नरेश थे। आप मितव्ययी और सुप्रबन्धक थे। स्वजाति-हितैषिता आपमें अकथनीय थी। क्षत्रिय-महासभा के एकमात्र प्रधान कार्य्यकर्त्ता आपही थे। आपके ही उत्साह और उद्योग से महासभा के सब कार्य निर्विघ्न होते रहे। आप बड़े स्वजाति-प्रेमी थे। जाति की सहायता के लिए आपने जिस काम के सम्बन्ध में एक बार अपने मुख से 'हाँ' कह दी, उसको अवश्य किया। जब जातीय पत्र निकालने की आवश्यकता हुई तब आपने "राजपूत" पत्र निकलवा कर १ वर्ष तक सम्पूर्ण व्यय अपने पास से दिया। जब उपदेशक नियत करने की आवश्यकता हुई तब उपदेशकों का पूर्ण व्यय अपने पास से देते रहे। गत-पूर्व वर्ष प्रेस की क्षति-पूर्त्ति का और गत वर्ष डेप्यूटेशनों का सम्पूर्ण व्यय भी आपने अपने पास से देना स्वीकार किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिल्ली-दरबार के समय क्षत्रिय-महासभा बड़े समारोह और असाधारण धूमधाम से हुई थी। उसका सम्पूर्ण व्यय-भार भी अपने ऊपर लिया था। क्षत्रिय-महासभा, काशी, में जब जातीय कालेज स्थापित होना निश्चय हुआ तब १ लाख रुपया कालेज के लिए प्रदान करने का आपने वचन दिया। उस महासभा में किसी किसी महाशय ने यह आग्रह किया कि जातीय कालेज की इतनी आवश्यकता नहीं है जितनी कि वज़ीफ़ों की। यह सुनकर आपने तुरन्त १० हज़ार रुपये "स्कालरशिप फंड" में देने की प्रतिज्ञा की और आगरे में आते ही १ लाख १० हज़ार रुपये बंगाल बैंक में, कालेज फंड के खाते में, जमा होने को भेज दिये। इन रुपयों के सिवा गत-पूर्व वर्ष ५ लाख रुपये राजपूत-हाई-स्कूल के लिए भी प्रदान किये और जब श्रीमान् राजा साहब भिनगा जातीय कालेज के लिए १० लाख रुपये प्रदान करने को उत्साहित हुए तब आपने भी अपना दान ५ लाख से १० लाख कर दिया। परन्तु पीछे से विद्यालय-सम्बन्धी दो तीन बातों में परस्पर मतभेद होने से दोनों नरेशों के सम्मिलित फंड से जातीय कालेज स्थापित न हो सका।

श्रीमान् राजा साहब अवागढ़ ने प्रथम श्रेणी का हाई स्कूल तो गत वर्ष ही खोल दिया था और एक विशाल इमारत बोर्डिंग हाउस की बनवा दी थी; परन्तु अपने १० लाख रुपये के दान की आवश्यक लिखा पढ़ी न की थी। इसलिए अपने स्वर्गवास से २२ दिन पहले एक प्रार्थना-पत्र स्कीम-सहित गवर्नमेंट को भेज गये कि हमारी स्कीम स्वीकृत करके हमारा ९ लाख रुपया "चैरीटेबिल एन्डोमैन्ट फंड" में जमा कर लिया जाय। आशा है कि हमारी प्रजाप्रिय गवर्नमेंट राजा साहब की उपर्युक्त प्रार्थना को स्वीकृत कर क्षत्रियों को उपकृत करेगी।

राजा साहब दूरदर्शिता से एक वसीअतनामा भी लिख गये हैं। उसमें अपने उत्तराधिकारी, स्थानापन्न व वसीअत के वसीओं को हिदायत कर गये हैं, कि यदि किसी कारण से गवर्नमेंट हमारे प्रार्थनापत्र को स्वीकार न करे तो इमारत-फंड के १ लाख रुपये, के सिवा जिससे गत वर्ष से ज़रूरी इमारतें बन रही हैं, ९ लाख रुपये हमारे उन रुपयों में से, जो बंगाल बंक में जमा हैं, हमारे नियत किये हुए ट्रस्टीज़ की कमिटी को प्रामिसनरी नोट्स ख़रीदने को दे दें। आपने अपने वसीअतनामे में स्कूल के ट्रस्टीज़ को हिदायत की है कि ९ लाख रुपयों के सूद से जो रुपये स्कूल के आवश्यक ख़र्च से बचें वे कालेज-फंड में जमा किये जायँ। यदि राजा साहब हम लोगों के सौभाग्य से दो एक वर्ष और जीवित रहते तो जातीय कालेज अपने ही द्रव्य से अवश्य स्थापित कर जाते। मृत्यु से कुछ दिन पहले आप कालेज के लिए बड़े मौक़े की ज़मीन भी १२ हज़ार रुपये में ख़रीद करके काश्तकारों को पूरा मुआवज़ा दिला कर बेदख़ल करा गये हैं। आपको कालेज बनाने की इतनी उत्कण्ठा थी कि कालेज का अहाता बनाने के लिए ईंटों के एक कारख़ाने वाले को २० लाख ईंटों की आज्ञा भी दे दी थी। परन्तु ज़मीन पर दख़ल मिलने में कुछ देर होने से इस आज्ञा का पालन न हो सका।

कालेज के सिवा आप "स्कालरशिप फंड" की वृद्धि करने के लिए भी बड़े अभिलाषी थे। आपको अपनी रियासत के कार्य्यों से बहुत ही कम अवकाश रहता था। इसलिए आपकी यह इच्छा थी कि रियासत का कार्य्य-भार किसी सुयोग्य मैनेजर को सौंप कर आप पूर्णतः जातीय कार्य्य में संलग्न हो जायँ। अपनी इस इच्छा के अनुसार कार्य्य करने का आप विचार ही कर रहे थे कि इतने में उदरशूल रोग में ग्रस्त हो गये और प्रायः एक वर्ष रोगग्रस्त रहकर परलोक-प्रयाण ही कर गये।

आपको अपने कर्त्तव्य-कार्य्यों का बड़ा ध्यान रहता था। आप कहा करते थे कि यात्रा समाओं में नये नये कार्य्यों के लिए प्रस्ताव ही पास न किये जायँ और यदि किये जायँ तो अवश्य पूर्ण होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा बलवन्तसिंहजी, सी० एस० आई०।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिएँ। आप अपनी रुग्णावस्था में भी सब जातीय कार्य्यों और विशेषतः स्कूल और कालेज के कार्य्यों का अधिक ध्यान रखते थे और जब तक १० लाख रुपये के दान की काररवाई पूर्ण न हुई तब तक आप बड़े चिन्तित थे।

महासभा के स्थापित होने से कोई १० वर्ष पहले आपके और श्रीमान् ठाकुर उमरावसिंह जी रईस टोंटला के उत्साह से आगरे में जब राजपूत बोर्डिंग हाउस स्थापित हुआ तब कितने ही विद्यार्थियों को वज़ीफ़ा देते रहने के सिवा आप १००) मासिक निरन्तर राजपूत बोर्डिंग हाउस को देते रहे और ४ वर्ष हुए कि इस १००) मासिक चन्दे के बदले में अपनी अलीगढ़ की एक कोठी, जिसका किराया १००) मासिक है, प्रदान कर दी। आपने महारानी विक्टोरिया की डायमंड जुबिली की यादगार में कुछ वज़ीफ़े और ६ वज़ीफ़े ज्येष्ठ कुमार के अक्षरारम्भ के उपलक्ष्य में स्थायीरूप से क़ायम किये।

आप बचपन में साधारण हिन्दी और उर्दू ही पढ़े थे। परन्तु बुद्धि बड़ी तीव्र और मस्तिष्क-शक्ति विलक्षण थी। विद्या और विद्वानों की आपके हृदय में बड़ी क़दर थी। आप निष्पक्ष और उदारहृदय थे। अपनी किसी बात का कभी हठ या दुराग्रह न था। उचित बात को मानने के लिये हर वक्त तैयार रहते थे। बड़े निरभिमान और सरलस्वभाव थे। मिलने जुलने और बात चीत करने पर बड़प्पन या अहंकार की कोई बात न प्रकट होती थी। यद्यपि राजसी ठाठ और राजोचित मान-मर्यादा रखते थे; परन्तु अपना जीवन बहुत सादगी से व्यतीत करना पसन्द करते थे।

प्रायः ३ वर्ष हुए आप एक डेप्युटेशन में इलाहाबाद गये तो वहाँ पर "क्षत्रिय-स्टुडेंटस-ऐसोसियेशन" के विद्यार्थियों ने आपको अभिनन्दन पत्र समर्पण किया। इस समय आपने विद्यार्थियों के उत्साह-वर्द्धनार्थ ५००) का नोट प्रदान किया।

जातीय कार्य्यों में ही नहीं किन्तु देशोपकारी कार्य्यों में भी आप सहायता पहुँचाते थे। भारत-धर्म-महामण्डल, नागरी-प्रचारिणी-सभा, ज़मींदार-ऐसोसियेशन मुज़फ़्फ़रनगर, अनाथालय आगरा आदि कितनी ही संस्थाओं के कार्यकर्त्ताओं के प्रार्थना करने पर आपने अभीष्ट द्रव्य प्रदान किया। लाट मेकडानल ने जब न्यायालयों में प्रार्थना-पत्रादि नागरी में दिये जाने की आज्ञा दी तब आपने भी तत्काल अपनी रियासत के सब काग़ज़ात नागरी में लिखे जाने की आज्ञा दी। नागरी अक्षरों का प्रचार कचहरियों में कराने के लिए जो डेप्युटेशन लाट मेकडानल के पास गया था उसमें आप भी शामिल थे।

आपमें राज्यप्रबन्ध की बड़ी योग्यता थी। अपने सुप्रबन्ध से रियासत को भी आपने बहुत बढ़ाया और धनवृद्धि भी बहुत की। संवत् ५६ के विकराल अकाल के समय आपने अपनी प्रजा को बहुत सहायता दी और प्रान्तिक गवर्नमेंट को भी रिलीफ़ वर्क्स के लिए अच्छा चन्दा दिया। अपने राज्य में आपने ३ सड़कें, तालाब और कितने ही कुए बनवाये। हज़ारों दीन-दरिद्र लोगों का प्रायः १ वर्ष तक आपने पालन किया। अवागढ़ में एक शफ़ाख़ाना आपके ज्येष्ठ भ्राता ने स्थापित किया था। आप उसको अपने निरीक्षण में बहुत उत्तम रीति से चलवाते रहे और निर्धन रोगियों के खान-पान का भी उत्तम प्रबन्ध कर दिया। लार्ड मेकडानल आपकी योग्यता और कार्य्यों से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने आपको सी० आई० ई० की उपाधि दिलाई और अपनी प्रान्तिक कौंसिल का मेम्बर नियत किया।

आप कहीं पर किसी दशा में हों रियासत के प्रत्येक विभाग के ज़रूरी काग़ज़ात आपके सामने पेश होने को नित्य प्रति पहुँचते थे और सब काग़ज़ात नियत समय पर ध्यान से सुन कर आप आवश्यक आज्ञा पेशकार से लिखवाते थे। प्रति दिन ५–६ घंटा से कम आपका इजलास न होता था। दिन भर के ख़र्च का चिट्ठा रोज़ सायंकाल को आप की मंज़ूरी के लिए पेश होता था। रियासत के सम्पूर्ण कर्म्मचारियों के कामों की आप परी निग-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रानी रखते थे। जहाँ किसीने भूल या बददियानती की कि फ़ौरन् उससे जवाब तलब होता था। आश्चर्य्य है कि रोग-पीड़ित अवस्था में भी अपने सब कार्य्यों को आप पूर्ववत् करते कराते रहे। जब अत्यन्त शारीरिक निर्बलता के कारण पलँग से उठने तक की शक्ति न रही तब भी मुख्य मुख्य कार्य्यों का निरीक्षण करते रहे। जिस दिन मृत्यु हुई उसके प्रातःकाल आपने एक मैनेजर नियत करके अपनी रियासत-सम्बन्धी कार्य्यों का चार्ज दिया। सारांश यह कि अपने जीवनान्त तक आप निज कर्त्तव्य-पालन में उद्यत रहे।

एक दो मास से रोग के असाध्यावस्था को पहुँचने पर आप समझ गये थे कि अब हमारा शरीरान्त-समय समीप है। परन्तु फिर भी निश्चिन्तता से सब कार्य्य नियम-पूर्वक इस रीति से करते कराते थे मानो कोई दुर्घटना शीघ्र घटित होने वाली नहीं है; या मृत्यु आपके लिए चिन्तित वस्तु नहीं है।

मरण-दिवस से पूर्व, रात्रि को, आपने अपने परलोक-गमन के विषय में एक स्वप्न देखा और सवेरा होते ही अपने मित्रों और मुख्य कर्मचारियों से कहा कि "आज हमारे जीवन का अन्तिम दिन है"। निदान अन्त समय के सब कार्य्य करके आप परलोक-प्रयाण के लिए उद्यत हो गये। आपके होशो हवास अन्तिम समय तक ठीक रहे। आपकी मृत्यु से कुछ मिनट पहले आपके दोनों कुमार आपके पास बुलाये गये। आपने बिना किसी मोह-माया के एक दो मिनट उनकी ओर देख कर आँखों से उनके जाने का संकेत किया और हाथ उठाकर उनका अन्तिम प्रणाम लिया। फिर आँख बंद करके चिर-निद्रा में लीन हो गये। आपके परलोकगमन से आपके स्वजन-सम्बन्धियों, इष्ट-मित्रों और स्वामि-भक्त नौकर-चाकरों को जो दुःख हुआ वह अवर्णनीय है।

स्वर्गवासी राजा साहब अपने दोनों राजकुमारों की शिक्षा, दीक्षा और राज्यप्रबन्ध के लिए योग्य ट्रस्टी नियत करके एक वसीअतनामा लिख गये हैं। आशा है कि रानी साहब राजा साहब की वसीअत की सब बातों को पूर्ण कराने में सहायक और सहमत रहकर अपने सुयश को बढ़ावेंगी।

हनुमन्तसिंह।

मेरी डायरी के कुछ पृष्ठ।

बीस मई १९०९, बुधवार, के रोज़ मेरे विश्वविद्यालय का साल पूरा हुआ। परीक्षाओं से छुट्टी पाई। अब यह फ़िक्र लगी कि अगले साल की पढ़ाई के लिए रुपया कमाने का प्रबन्ध करना चाहिए।

जबसे मैं अमरीका आया हूँ मैं इस तरह रहता हूँ कि विश्वविद्यालय का साल पूरा होने तक मेरे पास कुछ न कुछ रुपया अवश्य ही बचा रहे, जिसमें मज़दूरी ढूँढने के समय तक खाने पीने के लिए कष्ट न हो। पिछले साल इन दिनों मेरे पास १२० रुपये थे। उस पूँजी को मैंने छः सप्ताह बेकार बैठ कर खाया था। बाक़ी सात सप्ताह मुझे काम मिल गया था। गत वर्ष अमरीका में आर्थिक उद्वेग था। इस कारण मज़दूरी की बड़ी क़िल्लत रही। इस साल सियेटल नगर में, जहाँ मैं हूँ, प्रदर्शिनी है। इससे ख़याल था कि ख़ूब काम मिलेगा। प्रदर्शिनी में न सही और जगहों में काम मिल जाने की बहुत उम्मेद थी। मन में यह भी विचार था कि यदि कुछ दिन काम न मिला तो बैठ कर सरस्वती के लिए लेख ही लिखेंगे। क्योंकि फ़ुरसत की कमी के कारण इस साल मैं बहुत कम लेख सरस्वती के लिए भेज सका हूँ। परन्तु भावी के खेल विचित्र हैं। बात जैसी मैं चाहता था वैसी न हुई।

मई के आरम्भ में मेरी आँखें दुखने लगीं। पढ़ना लिखना कठिन हो गया। परीक्षा के दिन निकट। मज़बूरन एक अमरीकन डाक्टर के पास जाना पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[illegible] भगाड़े में मेरी पूँजी का रुपया ख़तम हो गया। १६ मई को परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर जो मैंने अपनी बैंक की किताब देखी तो केवल बारह रुपये रह गये थे। मकान का एक सप्ताह का किराया ६ रुपये और बनिये के ९ रुपये मेरे ज़िम्मे निकलते थे। अब क्या किया जाय? सोचा कि दिन चढ़ते ही मज़दूरी की खोज में निकलेंगे।

२७ मई—जलपान करके और कपड़े पहन कर बैठा ही था कि विष्णुदास ने मेरा दरवाज़ा खट खटाया। मैंने दरवाज़ा खोल दिया।

विष्णु०—"कहिए, चलने को तैयार हैं?"

मैं —"जी, हाँ।"

विष्णु०—"आपकी घड़ी में क्या वक्त है?"

मैं —"साढ़े आठ बजे हैं।'

विष्णु०—"मेक्सिको देश का रहनेवाला वह मेक्सिकन कहाँ है? हम लोगों के साथ चलेगा कि नहीं?"

मैं —"ज़रूर चलेगा। वह अभी नीचे से आता है।"

थोड़ी देर हम लोग बातें करते रहे। जब मेक्सिकन आ गया तब तीनों आदमी नौकरी की तलाश में बाहर निकले।

अपने इन दो साथियों का परिचय पाठकों से करा देना आवश्यक है। विष्णुदास वाशिङ्गटन-विश्वविद्यालय में इलेक्ट्रिक इंजनीयरिङ्ग पढ़ते हैं और मेरी तरह मेहनत मज़दूरी पर ही बसर करते हैं। विद्यालय में इनका यह पहला ही साल था। पहले साल तो इनका अच्छी तरह कट गया, क्योंकि इनके पास विद्यालय-प्रवेश करते समय काफ़ी रुपया था, जो इन्होंने वेंकोवर में रह कर कमाया था। दूसरे साल की पढ़ाई के लिए ये भी द्रव्योपार्जन के चक्कर में थे। दूसरे महाशय, सिसारिनो मघा-मेक्सिकन हैं जो सिर्फ़ रुपया कमाने के लिए अमरीका आये हैं। आदमी नेक और मिलनसार होने से हमारे साथी हो गये हैं। पास के दूसरे कमरे में रहने के कारण तथा एक ही धुन के होने की वजह से हम लोगों का मन इनसे मिल गया है। इसीलिए तीनों परदेशी साथ ही मज़दूरी की तलाश में निकले।

अमरीका में सब काम पेशे के तौर पर होते हैं। मज़दूरी तलाश कर देना भी एक पेशा है। बड़े बड़े शहरों में कितनीही एजन्सियाँ ऐसी हैं जिनका काम नौकरी तलाश कर देने का है। अँगरेज़ी में इनको एम्प्लायमेंट एजेन्सीज़ (Employment Agencies) कहते हैं। हम लोग इन्हीं एजन्सियों में नौकरी की बाबत पूछने चले थे।

कोई साढ़े दस बजे के क़रीब हम लोग सियेटल के प्रान्त-भाग से शहर में पहुँचे। सियेटल शहर भी अमरीका के और बड़े शहरों की तरह मीलों लम्बा चौड़ा चला गया है। वाशिङ्गटन-विश्वविद्यालय भी यहीं है। बिजली की गाड़ियाँ इधर से उधर, उधर से इधर दौड़ती फिरती हैं। प्रदर्शिनी के कारण इन दिनों गाड़ियों में बहुत भीड़ रहती है; ख़ास कर उन गाड़ियों में जो विश्वविद्यालय से शहर आती जाती हैं। क्योंकि प्रदर्शिनी के भवन विद्यालय की भूमि पर बनाये गये हैं और हम लोग विश्वविद्यालय के पास रहते हैं। इसी से हमें शहर पहुँचने में देर लगी।

सियेटल की बड़ी बड़ी सड़कों पर इन एजन्सियों के अड्डे हैं। वहाँ जाकर हमने पूछ पाछ शुरू की। भिन्न भिन्न प्रकार के कामों के इश्तहार एजन्सियों के बाहर दीवारों पर लगे हुए देखे। नमूने के तौर पर दो चार का तरजुमा हम नीचे देते हैं:—

१—बीस मज़दूर सड़क पर काम करने के लिए दरकार हैं। तनख़्वाह ६ रुपये रोज़।

२—तीन मज़दूर लकड़ी के कारख़ाने में काम करने के लिए। तनख़्वाह १२० रुपये माहवार। रहने को मकान मुफ़्त।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३—दो आदमी एक होटल में बरतन धोने के लिए चाहिए। तनख़्वाह ९० रुपये। खाना और मकान मुफ़्त।

४—छः बढ़ई पश्चिमी सियेटल में दरकार हैं। तनख़्वाह ९ रुपये रोज़।

इस प्रकार के बहुत से इश्तिहार बहुत जगहों पर पाये। हमारा विचार एलास्का जाने का था; इसलिए हमने वहाँ का हाल दरियाफ़्त किया। मगर पता लगा कि एलास्का की भरती अभी शुरू नहीं हुई। एक जगह पर हमने अमरीकन गवर्नमेंट के काम के मुताल्लिक़ नोटिस देखा। उस पर मज़दूरी साढ़े सात रुपये रोज़ लिखी हुई थी। पूछने पर मालूम हुआ कि वहाँ हम लोगों को नौकरी नहीं मिल सकती, क्योंकि हम लोग काले हैं! एजन्सी के कर्म्मचारी ने मुझको गवर्नमेंट के एक अफ़सर की चिट्ठी दिखलाई। उसमें साफ़ लिखा था कि मज़दूर अमरीका या आयर-लैंड आदि के गोरे हों, काले हिन्दू न भेजे जायँ। इस चिट्ठी को पढ़ कर भाँति भाँति के विचार मेरे दिल में उठे, जिनका उल्लेख करना यहाँ पर उचित नहीं।

इस तरह घूमते घामते हम लोग "पायोनियर" नामक एजन्सी के पास पहुँचे। वहाँ भी कई प्रकार की मज़दूरी के इश्तिहार देखे। दो चार हमारे मतलब के भी थे। सो पूछ पाछ करने के लिए एजन्सी के दफ़्तर में घुस गये। वहाँ तीन आदमी अपने काम में मशग़ूल पाये, जो मज़दूरों से बात चीत करके उनके लिए काग़ज़ लिख रहे थे। हमारी बारी आने पर मैंने एक से कहा कि हमारे लिए कोई अच्छा काम बतलाओ। ऐसी जगह भेजो जहाँ तीन महीने तक लगातार काम रहे और हम लोग अपने पढ़ने भर के लिए रुपया कमालें। उसने कहा कि यहाँ सियेटल में ही आपको अच्छा काम मिल जायगा। आप एक एक डालर (तीन तीन रुपये) दें; बहुत अच्छा पक्का काम दिला दूँगा। हमने स्वीकार कर लिया और तीन आदमियों की जगह चार आदमियों की फ़ीस, चार डालर, (बारह रुपये) अदा कर दिये। मेरे पास तो कोई डालर था नहीं। विष्णुदास के पास पाँच डालर थे। सो उन्होंने चार डालर दे दिये। एजन्सी वाले ने हमको एक चिट्ठी दी, जिस पर मेरे हस्ताक्षर करवा लिये।

यह चिट्ठी जेनिङ्गस नाम के एक मनुष्य के नाम थी। चिट्ठी क्या थी, एक प्रकार का प्रपञ्च था, जिससे बेचारे अनजानों का धन लूटा जाता है। हमसे एजन्ट ने कहा कि कल सुबह साढ़े सात बजे फलानी जगह पर जाना और मिस्टर जेनिङ्गस को यह रुक्का दे देना। उन्हें चार आदमियों की ज़रूरत है। बड़ा आसान काम है और पक्का है।

बड़ी ख़ुशी ख़ुशी हम तीनों एजन्सी से निकले। दिल में समझा कि काम मिल गया। अब कोई चिन्ता नहीं है। बाहर निकल कर हम दोही चार क़दम गये थे कि एक अपनी जान पहचान के मिले।

मुलाक़ाती—"अच्छा, आप लोगों ने फ़ीस कितनी दी?"

मैं—"एक डालर, फ़ी आदमी।"

मुलाक़ाती (हँसकर)—"आप लोगों को एजन्सी वाले ने ठग लिया। शहर के काम के केवल पचास सेन्ट (आधा डालर) देने पड़ते हैं। आप लोगों ने एक एक डालर कैसे दे दिया?"

मैं—"हम लोगों को बहुत आसान और पक्का काम मिला है। इसलिए उसने एक एक डालर लिया होगा।"

मुलाक़ाती (मुसकरा कर)—"यह बात कल सबेरे मालूम हो जायगी।"

हम लोगों ने उसकी बात का कुछ ख़याल न किया। शहर में घूमते फिरते अपने अपने रहने की जगह पहुँचे। रात को लम्बी तान कर सो रहे ताकि सबेरे काम पर ठीक समय पर पहुँच जायँ और आसानी से काम कर सकें।

२८ मई—प्रातःकाल उठ कर मैंने कुछ खाया पीना तैयार किया। नियत समय पर तीनों जने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाड़ी में बैठ कर मिस्टर जेनिङ्गस् के पास चले। हमारा आदमी सरदार तेजासिंह हमको रास्ते में मिल गया था। बातें करते हुए हम रीपबलिकन कालोनी में पहुँचे। यहीं पर जेनिङ्गस् का काम था। वहाँ देखते क्या हैं कि सड़क पर कुटाई हो रही है और पचास साठ आदमी काम कर रहे हैं। हम लोगों ने उस मेक्सिकन को मिस्टर जेनिङ्गस् के पास भेजा। उसने काग़ज़ देख कर हम चार आदमियों को गाड़ियाँ खेंचने पर लगा दिया। यह काम बड़ा मुश्किल था। एक ढलवाँ जगह पर एक मशीन खड़ी थी जिसमें गारा तैयार हो रहा था। गाड़ियाँ उसके मुँह के नीचे खड़ी कर दी जाती थीं और वह मशीन उनको गारे से भर देती थी। दो आदमियों का काम था कि भरी हुई गाड़ी को घोड़ों की तरह खेंच कर तीन सौ गज़ नीचे लेजायँ और वहाँ जाकर पलट दें। फिर ख़ाली गाड़ी को खींच कर ऊपर चढ़ा लावें और मशीन के मुँह के आगे धर दें। इसी ख़च्चरों काम करने के लिए हम यहाँ भेजे गये थे। विष्णुदास और मैं एक गाड़ी से चिपट गये। हमारे दूसरे दो साथी दूसरी से। मैं और विष्णुदास तो ख़ैर रोते धोते इस चढ़ाई उतराई में लगे रहे; परन्तु हमारे दूसरे साथियों ने एक ही बार गाड़ी खेंच कर तौबाह किया और अलग खड़े हो गये। मेक्सिकन ने चिल्लाकर हमसे काम छोड़ने को कहा। हमने भी छोड़ दिया।

मेक्सिकन (एजन्ट को गाली देकर)—"देखा उसकी बदज़ाती। यह ख़च्चरों का काम करने के लिए हमें यहाँ भेजा और एक डालर फ़ीस ली। बदमाश!"

मैं (हँसकर)—"अच्छा, तो अब क्या सलाह है?"

मेक्सिकन (ग़ुस्से में)—"क्या सलाह है? चल कर अपने चार डालर वापस लेंगे।"

मैंने विष्णुदास से कहा कि जाकर मिस्टर जेनिङ्गस से इस काग़ज़ पर लिखा लाओ कि यहाँ पक्का काम नहीं है। जेनिङ्गस ने काग़ज़ पर लिख दिया—"हम लोग गाड़ियाँ खींचना नहीं चाहते।"

वहाँ से चक्कर लगाते, क़बरिस्तान देखते, हम लोग फिर उसी एजन्सी में पहुँचे। जाकर काग़ज़ दिखाया और अपनी फ़ीस वापस माँगी। अब फ़ीस भला ये लुटेरे क्यों वापस देने लगे! उलटा हम लोगों को बेवक़ूफ़ बनाना शुरू किया कि तुमने जेनिङ्गस् के काम का हर्ज किया। मैंने उससे कहा कि तुम्हारा हमारा यह इक़रार था कि आसान और पक्का काम मिले। इसी पर हमने एक डालर फ़ीस भी दी। बड़े झगड़े के बाद यह तै हुआ कि उसने हम को दूसरी जगह काम करने के लिए भेजा और एक दूसरा काग़ज़ हम लोगों को दिया।

यह काम विश्वविद्यालय के निकट ही मिट्टी काटने का था। फावड़े से मिट्टी काट काट कर गाड़ी में भरने की नौकरी थी। एजन्सी वाले ने हम लोगों से कहा कि अभी तुम लोग वहाँ जाओ और दोपहर को एक बजे से काम शुरू करो।

चार डालर देकर हम फँस गये थे। अब फटकने से क्या हो सकता था। दिल में निश्चय हो गया कि ये डालर तो गये। यदि इनके द्वारा एक भी सप्ताह का काम मिल जाय तो हम समझलें कि गंगा नहाये। जिस ख़ुशी से पहले दिन हम एजन्सी से निकले थे वह आज न थी। मेरे साथियों के चेहरे पर मायूसी छा रही थी। यही बात उनके मुँह से निकलती थी—"काम न मिलेगा तो क्या होगा? विष्णुदास मुझ से बार बार पूछते—"कहो, देव, काम न मिलेगा तो कैसे अगले साल पढ़ेंगे?" उनको मैंने समझाया कि धीरज धरो, काम मिल जायगा। मगर उनको यह पता न था कि देव के रहने बैठने का भी ठिकाना नहीं है। मकान वाली यदि आज किराया माँगे तो सख़्त परेशानी हो। लेकिन मुझे विष्णुदास के चार डालरों की बड़ी फ़िक्र थी, क्योंकि उस बेचारे ने मेरी ही ख़ातिर से चार डालर निकाल कर सबकी फ़ीस अदा की थी।

ख़ैर, इसी उधेड़बुन में हम वापस आये। भोजन कर एक बजे जहाँ जाना था वहाँ पहुँचे। वहाँ जाकर कार्य्याध्यक्ष को एजन्सी वालों का काग़ज़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखाया। उसने कहा कि आज मेरे पास काम नहीं है। कल सवेरे साढ़े सात बजे तुम लोग यहाँ आओ, काम मिल जायगा। लो! यह दिन भी ख़राब गया। उलटा आने जाने में ट्राम के पैसे पल्ले से ख़र्च हुए। मगर क्या किया जाता। अपना सा मुँह लेकर अपने कमरों में लौट आये। रात को यह सोचकर मैं सो रहा कि कल काम ज़रूर ही मिल जायगा।

२९ मई—प्रातःकाल का नाश्ता करके मैंने दोपहर का खाना साथ बाँधा और अपने साथियों को लेकर काम पर चला। वहाँ ठीक साढ़े सात बजे हम लोग पहुँच गये। कार्य्याध्यक्ष ने कहा कि तुम लोग घंटे डेढ़ घंटे इन्तज़ार करो। मेरा छकड़ा आजाय तो काम शुरू करना। हमने कहा—"अच्छा" और लगे छकड़े का इन्तज़ार करने। सवा नौ बजे के क़रीब छकड़े साहिब आये और हमने काम शुरू किया। बारह बजे तक मशीन की तरह काम करते रहे। हमारे साथ दस अमरीकन मज़दूर भी काम करते थे। वे हम लोगों को देख देखकर बेतरह कुढ़ते थे। हम लोग चुप चाप काम करते रहे। तेजासिंह और मेक्सिकन मघाइयाँ तो ऐसे कामों के आदी थे। उनको कुछ भी न मालूम हुआ। मगर मुझको और विष्णुदास को नानी याद आगई। सड़क पर फावड़े से मिट्टी तो मैं भी कई बार काट चुका था; परन्तु काट काट कर छकड़े में भरने का अभ्यास मुझे न था। जब जब मैं फावड़े से काटकर मिट्टी छकड़े में फेंकता, धूल उड़ उड़ कर आँख, कान, नाक में जाती। सारे दिन इसी प्रकार धूल फाँकते रहे। सारे कपड़े मिट्टी से भर गये। सिर में मिट्टा ही मिट्टी।

ख़ैर, पाँच बजे छुट्टी हो गई। आज शनिवार था। विचार किया कि यह भी अच्छा हुआ। रविवार को आराम करके सोमवार को फिर काम पर आडटेंगे और एक सप्ताह के बाद अभ्यास पड़ जाने पर कुछ भी कष्ट न होगा।

क़ायदे के मुताबिक़ आज मज़दूरी मिलने का दिन था। क्योंकि यहाँ पर सप्ताह के सप्ताह मज़दूरी मिल जाती है। हम लोग भी मज़दूरों की क़तार में खड़े हो गये। हमारी बारी आई तो हम लोगों को कार्य्याध्यक्ष ने एक डालर पचपन सेन्ट फ़ी आदमी दिये। अमरीका के क़ानून के मुताबिक़ तो हम लोग पूरे दो डालरों के मुस्तहक़ थे, क्योंकि हम लोग ठीक साढ़े सात बजे वहाँ पहुँच गये थे। हमसे क्या, छकड़ा चाहे नौ बजे आता चाहे दस बजे। हम तीन जने तो हिन्दू थे। इसलिए अपने भारतवर्षीय संस्कारों से वेष्टित होने के कारण एक डालर पचपन सेन्ट ही लेकर चुप रह गये। पर वह मेक्सिकन, जो सबके अख़ीर में था, अपने चेक को देखकर बोला :—

मेक्सिकन—"ऐ मिस्टर, क्यों तुम हम लोगों को दो डालर नहीं देते"?

कार्य्या०—"तुम लोगों ने साढ़े नौ बजे काम शुरू किया था"।

मेक्सिकन—"हम लोग साढ़े सात बजे यहाँ आ गये थे। हमको क्या, चाहे तुम्हारा छकड़ा दस बजे आवे चाहे बारह बजे।

कार्य्या०—"तुमको लेना हो तो लो, नहीं न लो"

मेक्सिकन ने अपना चेक उसको वापस दे दिया। उस अन्यायी ने हम लोगों से कह दिया कि सोमवार को काम पर मत आना और पजर्स्ती वाले काग़ज़ की पीठ पर लिख दिया—"They are no good"—अर्थात् ये लोग ठीक काम नहीं करते। चार डालरों के वापस आने की जो थोड़ी बहुत आशा थी उस पर भी इसने पानी फेर दिया।

इस बेइन्साफ़ी का क्या इलाज! साल भर में तीन महीने के लिए काम माँगते हैं। काम नहीं मिलता। अपनी गिरह से फ़ीस देकर नौकरी ढूँढ़ते हैं। ईमान्दारी से काम करते हैं। एक दिन काम करवाकर जवाब! मज़दूरी भी पूरी नहीं!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बार डालर मुफ़्त में गये। यह क्यों? क्या इस भूमि पर रहने का हमारा कोई अधिकार नहीं है? क्या माता वसुन्धरा के दत्त भोगों में हमारा हिस्सा नहीं? क्या यह न्याय है कि एक आदमी बारहों महीने लाखों रुपये पैदाकर आनन्द उड़ावे और दूसरे को विद्याऽध्ययन के लिए भी धन कमाने का मौक़ा न दिया जाय? क्या यह इन्साफ़ है कि एक तो हवा गाड़ी पर बैठ कर बेफ़िकरी से दिन काटे और दूसरा खाने के लिए भी मोहताज घूमे? हे मनुष्य-समाज! इस बेइन्साफ़ी का कुछ ठिकाना है!

इसी प्रकार के प्रश्न मेरे हृदय में उठ रहे थे और मैं धीरे धीरे अपने साथियों के साथ जा रहा था। चलते चलते एक चबूतरे के पास पहुँचे, जहाँ हम लोग कुछ देर के लिए बैठ गये। विष्णुदासजी को एक एक डालर दे दिया गया। कुछ देर सुस्ता कर विष्णुदास और तेजासिंह अपने अपने रहने की जगह गये। मैं और मघाइयाँ अपने कमरों की ओर रवाना हुए।

यद्यपि मैं इतना थका हुआ था तथापि रात को बड़ी देर तक मुझे नींद न आई। मनुष्य-समाज के स्वार्थ का भयङ्कर चित्र मुझको कष्ट देता रहा। आदमी दूसरों की पीड़ा तभी समझता है जब ख़ुद उस पर बीतती है। आज की बेइन्साफी के दृश्य ने मुझपर बेढब असर किया। घंटों मैं समाज के अन्याय पर विचार करता रहा। अन्त को मैंने निद्रा-देवी के भवन में प्रवेश किया।

सत्यदेव—अमरीका।

आत्मोत्सर्ग।

सिवि, दधीचि हरिचन्द नरेसा।
सहे धरम हित कोटि कलेसा॥
रामचरितमानस,

[१]
रखते स्वधर्म्म में जो रति थे,
ज्ञानी उदार दानी अति थे।
न्यायी नितान्त शुचि सन्मति थे,
शिवि नामक एक महीपति थे॥

[२]
वे एक बार आनन्द पगे,
करने अनेक शुभ यज्ञ लगे।
चिन्तित सुरराज हुए इससे,
है त्यागा स्वार्थ गया किससे?

[३]
तब रूप श्येन का वे धरके,
पारावत पावक को करके।
कर कपट मन्त्र दोनों जुड़ के,
मखशाला में आये उड़के॥

[४]
फिर बैठे थे नृपवर्य्य जहाँ,
पहुँचा कपोत भयभीत वहाँ।
हो शरणागत कर दुःख बड़ा,
उनकी गोदी में आन पड़ा॥

[५]
पीछे ही उसके रुष्ट महा,
आ पहुँचा तत्क्षण श्येन वहाँ।
करके कपोत पर किन्तु दया,
नृप से वह वारण किया गया॥

[६]
रोका वह श्येन गया जब यों,
बोला नरपालक से तब यों—
"मेरा अहार यह विहग अहो!
क्या तुम्हें छुड़ाना योग्य कहो?"

[७]
सुन वचन बाज़ के व्यथा भरे,
भूपति अधर्म्म से हिये डरे।
दो कार्य्य विरोधी पड़ने पर,
अति व्याकुल होते हैं बुधवर॥

[८]
था शरणागत का स्मरण उधर,
है अन्य-जीविका-हरण इधर।
इससे उनका मन लोल हुआ,
मानों आन्दोलित दोल हुआ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[९]

तदनन्तर वे अति चिन्ता कर,
यों देने लगे उसे उत्तर—
"आक्षेप तुम्हारा हे खग-वर!
यह अनुचित नहीं हुआ हम पर॥

[१०]

"दे चुके किन्तु हम शरण जिसे,
त्यागें फिर क्यों कर कहो उसे?
जो तजते हैं शरणागत को,
धिक है उनके धार्म्मिक व्रत को॥

[११]

"हैं अभय दान देते जिसको,
निज शरण मान लेते जिसको।
तजते न सुजन उसको तबलों,
हैं प्राण शेष रहते जबलों॥

[१२]

"होकर इसलिए उदार-मना,
है योग्य तुम्हें ऐसा करना—
मिटजाय तुम्हारी क्षुधा-तृषा,
हो तथा न मेरे वचन मृषा॥"

[१३]

नृप-वचन श्येन ने यों सुनके,
गुणगान किये मन में उनके।
फिर हो कपोत भारी जितना,
आमिष माँगा उनका उतना॥

[१४]

कहना नृप ने यह मान लिया,
सुख से निज आमिष-दान दिया।
कट गई किन्तु नृप-देह सभी,
पूरी न तौल उतरी फिर भी!

[१५]

करने को तौल बराबर फिर,
वे लगे काटने अपना सिर।
हो नष्ट भले ही और सभी,
तजते न वीर-वर धर्म्म कभी॥

[१६]

वे लगे काटने सिर ज्योंही,
प्रकटित होकर हरि ने त्योंही।
कह धन्य धन्य कर पकड़ लिया,
उनका अभीष्ट सब सिद्ध किया॥

मैथिलीशरण गुप्त।

राखीबन्द भाई।

(१)

जपूताना की दक्षिण-पश्चिम सीमा पर नागौर एक छोटा सा राज्य है। अकबर के शासनकाल में नागौर के राजा वहीं के एक निकटवर्ती दृढ़ क़िले में रहते थे। उस समय उत्तर के कुछ भीलों ने राज्य में बड़ी हलचल और बग़ावत मचा रक्खी थी। राजा ने भीलों को दबाने के लिए अपनी सब सेना इकट्ठी की। पास ही एक और रजवाड़ा था। उसका नाम राजपुर था। राजपुर में क़िला भी था। वहाँ के नौजवान और शूर-वीर राजा रुद्रसिंह को भी नागौर-राज ने युद्ध में शामिल होने के लिए निमन्त्रण भेजा। रुद्रसिंह झिलमिलाते हुए कवच, अस्त्र, शस्त्र और झिलम धारण करके ससैन्य आ पहुँचे। भीलों को मार भगाना इस वीर के लिए कुछ कठिन काम न था। अकेले सिर्फ़ इसी के दल ने भीलों का तहस-नहस कर दिया। नागौरराज को अपनी तलवार खींचने की ज़रूरत नहीं पड़ी।

भीलों को भगाने पर रुद्रसिंह को उन लोगों के शिविर में बहुत सा सोना और चाँदी मिली। उन लोगों की कुछ ज़मीन भी वहाँ थी। रुद्रसिंह का पराक्रम सुन कर नागौरराज बड़े प्रसन्न हुए। परन्तु जब सोना, चाँदी और ज़मीन बाँटने का समय आया तब इन दोनों में अदावत हो गई। रुद्रसिंह ने इस लड़ाई में बड़ा काम किया था और अच्छी वीरता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखाई थी। इसलिए वह अपना हिस्सा ज़्यादा माँगते थे। लोभ के कारण नागौरराज अपनी ही बातों से हट जाते थे। वे रुद्रसिंह को सिर्फ़ आधा ही हिस्सा देना चाहते थे। इसी खींचातानी में दोनों तरफ़ से कड़े कड़े शब्दों का प्रयोग होने लगा। अन्त में नागौरराज से न रहा गया। वे बोले "तू मेरे सामने बिलकुल बच्चा है। यदि बहुत बड़ बड़ करेगा तो तेरी ख़ैरियत नहीं। डरपोक भीलों को हरा देने से बड़ा वीर नहीं होता होगा। मैं अब तक सैकड़ों लड़ाइयाँ में अपनी तलवार आज़मा चुका हूँ। पर तुम्हारी तरह घमंड कभी नहीं किया। तू कल का छोकड़ा है। अभी तक युद्ध में कभी नहीं गया था। इसलिए कल एक ज़रा सी मुठभेड़ में विजय पाने से इतनी ऐंठ करने लगा। शायद इस लड़ाई में तुझे अपनी तलवार खींचने का भी काम न पड़ा होगा। निकल यहाँ से।"

एक वीर को क्रोध से पागल बनाने के लिए ये शब्द काफ़ी थे। परन्तु रुद्रसिंह ने क्रोध न प्रकट किया। बड़े धैर्य्य से कलेजा थाम कर उन्होंने कहा "आप मुझसे बड़े हैं, शायद आपने बहुत बार तलवार भी आज़माई है! पर आपके शरीर में उतना लोहू नहीं है जितना कि घमंड है। इसका बदला किसी न किसी दिन ज़रूर लूँगा" इतना कह कर जुहार मुजरा किये वे वहाँ से चल दिये।

जिस समय घोड़े पर सवार रुद्रसिंह राजा के महलों के नीचे से जा रहे थे उस समय खिड़की में एक बहुत ही सुन्दर रमणी-मूर्ति को उन्होंने देखा। वह इनकी ओर न देखती थी। उसका ध्यान किसी दूसरी तरफ़ था। रुद्रसिंह ने साहस कर घोड़े की बाग खींच लो और थोड़ी देर तक उसकी ओर टकटकी लगाये देखते रहे। पर ज्योंही उसकी दृष्टि इनकी तरफ़ गई त्योंही वह शर्मा कर भीतर चली गई। रुद्रसिंह ठंडी साँस भर कर आगे बढ़े और अपना साथ लेकर अपने घर चले गये।

(२)

आज नागौर-राज्य की राजधानी के क़िले में सन्नाटा छाया हुआ है। नागौर-राज दिलीपसिंह के ख़ास महल में बहुत से सफ़ेद दाढ़ी और लाल लाल आँखों वाले पुराने सरदार बैठे हैं। सबके सिर झुके हुए हैं। श्मशान का सा सन्नाटा छाया हुआ है। सब के चेहरों से उदासी और निराशा टपक रही है। बड़ी देर के बाद निस्तब्धता भंग हुई। राजा दिलीपसिंह गला भर कर बोले—"निःसन्देह अब रक्षा का कोई उपाय नहीं। लड़के सेना के साथ मुग़लों की दक्षिणी लड़ाइयों में फँसे हुए हैं। क्या गुजरात के धूर्त और पापात्मा ग़यासुद्दीन की इच्छा पूरी होगी? कभी नहीं। जब तक नागौर में क्षत्रिय-रक्त का एक भी बूँद बाक़ी है तब तक मेरी प्यारी पन्ना को कोई देख भी नहीं सकता। बताओ तो सरदारो! क्या अब केसरिया बाना पहिनने और भङ्ग खाने का समय नहीं आ गया है? मैं समझता हूँ कि अपनी वीरता दिखलाने का इससे अच्छा समय अब कभी न मिलेगा। आप लोगों की क्या राय है?"

उन बुड्ढों में भी कैसा बेढब जोश था। सब एकाएक खड़े होगये और तलवार पर हाथ रख कर कहने लगे—"स्वर्ग की तैयारी हो। महाराज, साका में विलम्ब न किया जाय।" ऐसा मालूम होता था मानो किसी एक ही आन्तरिक शक्ति ने इन सबके विचार एक साथ सञ्चालित किये हैं। राजा दिलीपसिंह ने इस बात को स्वीकार किया। सामन्त और सरदार लोग एक एक करके केसरिया बाना पहनने और भङ्ग खाने के लिए जाने लगे। राजा दिलीपसिंह भी उठ कर रनिवास में पहुँचे। भीतर जातेही उन्हें पन्द्रह सोलह वर्ष की एक युवती मिली। सुन्दरता, लावण्य, सतीत्व और पवित्रता की यह मूर्ति थी। राजा ने आँखों में आँसू भर कर उससे कहा—"प्यारी पन्ना, अब हम लोग इस संसार से बिदा होना चाहते हैं। बेटी, हम लोगों का मिलाप अब स्वर्ग में होगा। साके के सिवा अब कोई उपाय नहीं। जा माँ से कह दे कि सब वीराङ्गनाओं को इस महोत्सव के लिए बहुत शीघ्र तैयार कर लें।" पन्ना बोली—"बाबा साका होगा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साका!" इतना कह कर वह हँसती हुई दौड़ी और जाकर पितामही से सब हाल कह दिया। पन्ना की माता उसकी बाल्यावस्था में ही मर चुकी थी। वह अपनी पितामही को ही माँ कहती थी। यह समाचार सुन कर रनिवास की सब ललनाओं के चेहरों पर धैर्य्य और दृढ़ता की रेखा खिंच गई। उनको इसी दशा में छोड़ कर पन्ना एक खिड़की में जा बैठी। वहाँ से कोसों तक का दृश्य साफ़ साफ़ दिखाई देता था। इस समय अस्त होते हुए सूर्य्य की किरणों से मैदान की हरी हरी घास सुवर्णमय हो रही थी। चहचहाते पक्षी अपने अपने घोंसलों की तरफ़ जा रहे थे। पन्ना के तेजस्वी नेत्र इस मनोहर दृश्य को छोड़ कर बहुत आगे बढ़ गये और कोई दस कोस की दूरी के एक पहाड़ पर जाकर ठहर गये। वह इस पहाड़ पर के क़िले को जानती थी। क्योंकि उसने इसी जगह से उसे कई बार देखा था। एकाएक उसका चेहरा खिल उठा। वह वहाँ से दौड़ती हुई सीधी अपने पिता के पास पहुँची। दिलीपसिंह ने कुछ कड़ेपन से कहा—"यह क्यों? क्या इस समय भी बच्चों का सा खेल शोभा देता है?" पन्ना ने बड़े भोलेपन से मधुर शब्दों में कहा:—"बाबा! यहाँ से दस बारह कोस उत्तर-पूर्व की ओर किसका क़िला है?" दिलीपसिंह ने लापरवाही के साथ जवाब दिया:—"राजा रुद्रसिंह का। पर इससे क्या?"। "मैं उनके पास राखी भेजूँगी"—पन्ना ने चट उत्तर दिया। पहले तो राजा दिलीप ने इस बात को स्वीकार करने से साफ़ नाहीं कर दी। उन्होंने कहा कि वह हमारा शत्रु है। हम विपद् के समय शत्रु की शरण न लेंगे। पर जब पन्ना ने विनीत और नम्र-भाव से कहा:—"आपत्तिकाल में शत्रुता भूल जानी चाहिए। फिर वे तो क्षत्रिय ही हैं। इसमें कोई हानि नहीं"। तब बड़ी कठिनाई से राजा ने उसका प्रस्ताव स्वीकार किया। उसने तुरन्त एक ज़री के कामवाले एक रेशमी रूमाल में एक रेशम की राखी और पीले चाँवल रख दिये और अपने एक विश्वस्त नौकर रामलाल के हाथ में वह छोटी सी अमूल्य पोटली दे दी। रात होतेही कमन्द के सहारे वह पीछे की दीवार से उतर गया और वहाँ से चल दिया।

(३)

क़िले के चारों तरफ़ गुजरात के बादशाह ने चौकी थाने लगवा दिये थे। थोड़े थोड़े से अन्तर पर चौकी वाले आग जला रहे थे। रामलाल बड़ी सावधानी से उनसे बच बच कर जा रहा था। इस तरह वह एक घंटे में आध मील से अधिक न गया होगा कि एक सिपाही की निगाह उसपर पड़ही गई। यद्यपि वह बहुत सावधानी से जा रहा था तथापि चौकीवाले भी कुछ कम चालाक न थे। चौकीदार ने डाट कर पूछा—"कौन जाता है?" ये शब्द जङ्गल भर में गूँज उठे। इससे सब चौकी वालों के कान खड़े हो गये। इन भयङ्कर शब्दों को रामलाल ने भी सुना। वह बड़ी तेज़ी से भागा। सैकड़ों घुड़सवार—"पकड़ो पकड़ो मारो मारो"—चिल्लाते हुए इधर उधर दौड़ने लगे। रामलाल भाग कर निकल जाता; पर उसका मुड़ासा छूट कर गिर गया। मुड़ासे की तो कोई चिन्ता न थी। पर पन्ना का भेजा हुआ अनमोल संदेसा उसी में रक्खा था। उसके छोड़ने से सब काम बिगड़ जाता। यही सोच कर आत्मत्यागी और निर्भय रामलाल पीछे लौटा। थोड़ी दूर पर उसे मुड़ासा मिल गया। परन्तु सामने ही एक साईस एक चञ्चल और गठीले घोड़े को थामे खड़ा था। उसके सामने से बचकर निकल जाना मुश्किल काम था। साहसी और धीर रामलाल ने सब काम बना लिया।

वह निश्चिन्तता के साथ उस साईस के पास गया और कहने लगा—"अहह भाई! तुम्हें बड़ी तकलीफ़ हो रही है। घोड़ा बड़ा पाजी है। लाओ, हम इसे टहलाते हैं; तब तक तुम आराम करो"। आलसी साईस ने बड़ी ख़ुशी के साथ उस कसे कसाये घोड़े की बाग रामलाल को सौंप दी। रामलाल घोड़े को धीरे धीरे टहलाने लगा। टहलाते टहलाते वह उसे थोड़ी दूर ले गया। फिर तो एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौशल मारने का काम था। रामलाल बड़ी फुर्ती के साथ घोड़े पर चढ़ गया और एँड़ लगाकर साईस की आँखों की ओट हो गया। साईस हल्ला मचाने लगा। तब शत्रुपक्ष के घुड़सवारों ने उसका पीछा किया। पर सब व्यर्थ हुआ। रामलाल कुछ कच्चा सवार तो था नहीं। वह १२ मील तक बराबर तेज़ी के साथ चला गया। परन्तु अब उसने घोड़े को बेकाम समझा। क्योंकि मुसलमान सवार टापों की आहट पाकर अब भी दौड़े चले आ रहे थे। घोड़े को उसने यहीं छोड़ दिया और बड़ी सावधानी से कितने ही रास्तों के द्वारा सवेरा होते होते वह राजपुर के दृढ़ क़िले में पहुँच गया। बड़ी कठिनाई से फाटक खुलवा कर वह रुद्रसिंह के महलों तक पहुँचा। रामलाल का सँदेसा पाकर रुद्रसिंह स्वयं बाहर आये और पद्मा की चिट्ठी पाकर प्रसन्न हुए। अभी तक उन्हें राखी नहीं मिली थी। इससे कुछ गर्म होकर वे बोले:—"कुछ भी हो, मैं उस घमण्डी राजा की सहायता करने नहीं जाऊँगा।" इतने ही में रामलाल ने राखी दी। अब राजा का क्रोध शान्त हो गया। कुछ सोच बिचार कर बोले:—"अच्छा सहायता करूँगा और बहुत शीघ्र करूँगा"। फिर उन्होंने अपने मन में कहा:—"अब मेरा बदला पूरा होगा।"

(४)

गुजरात के बादशाह को नागौर घेरे दो महीने से अधिक बीत गये। तोपें पास न होने के कारण क़िला जीतने के लिए जब उसके सब प्रयत्न व्यर्थ हुए तब बादशाह ने गुजरात से पुर्तगाली तोपें मँगाईं। उनके आने पर क़िले के हाथ आने में सन्देह ही क्या था? पर कहावत है कि—"नरचेती नहिँ होत दनुजचेती तत्काल"। क़िला हाथ में न आया। मुसलमानों को दुर्दशा के साथ गुजरात लौटना पड़ा। रुद्रसिंह और दिलीपसिंह के बीच में बड़ी शत्रुता थी। क्या वीर रुद्रसिंह दिलीप के अपमान-जनक वचन भूल सकता था? कभी नहीं। परन्तु उसे वे वचन भुलाने ही पड़े। एक स्त्री विपद् में पड़ी है वह निस्सहाय है। उसने एक वीर से अपना रक्षक बनने की प्रार्थना की है। और फिर राखी भेजकर अपना भाई भी बना लिया है। शिव! शिव!! इस पवित्र बन्धन को कौन तोड़ सकता था? यदि कोई भी स्त्री अपनी रक्षा के लिए किसी सच्चे सामन्त के पास राखी भेजे तो फिर वह निराश न रह सकती। रुद्रसिंह ने सामन्तता और वीरता के नियमों का उल्लङ्घन नहीं किया। चाहे प्राण ही क्यों न चले जायँ, सामन्त की प्रतिज्ञा पूर्ण हुए बिना नहीं रह सकती। रुद्रसिंह ने इसी के अनुसार व्यवहार किया।

रुद्रसिंह के पास कुल पाँच सहस्र योद्धा थे। प्रायः सभी सवार थे। उस समय पैदल सेना बहुत लाभदायक और उपयोगी न समझी जाती थी। इससे राजपूत लोग सवारों ही को अधिक पसन्द करते थे।

रुद्रसिंह ने अपनी सेना के पाँच भाग किये। सब भाग बराबर थे। एक हिस्सा मेवाड़ से गुजरात जाने वाली राह पर भेजा गया और शेष चार गुजराती सेना के चारों ओर डट गये। इनमें से तीन भाग बिलकुल छिप गये। एक ने रात को कोई दो हज़ार पटाख़े छुटाये और ख़ूब हल्ला मचाया। गुजराती सेना धोखे में आगई। सबके सब तैयार होकर जिधर शोर होता था उधरही चले। परन्तु ज्यों ज्यों वे आगे बढ़े त्यों त्यों शोर भी आगे बढ़ता गया।

इस तरह ये लोग क़िले से बहुत दूर निकल गये। क़िलेवालों को रुद्रसिंह के आने की और यह चाल चलने की बात मालूम थी। उन लोगों ने फाटक खोल दिये। कोई ५०० कट्टर राजपूत क़िले के पास वाली मुसलमानी सेना पर टूट पड़े। उधर उस भूली हुई सेना पर तीनों तरफ़ से छिपी हुई सेना टूट पड़ी और जो सेना इन्हें धोखे में डाल चुकी थी वह भी लौट पड़ी। गुजराती सेना बहुत थी। परन्तु अचानक आक्रमण, राजपूतों की कट्टर वीरता, और बादशाह की कायरता के कारण उन लोगों के पैर उखड़ गये। उधर पाँचवीं टुकड़ी ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी अपना कर्तव्य पूरा किया। थोड़े से सिपाहियों की रक्षा में बड़ी बड़ी तोपें गुजरात से आरही थीं। बारूद और गोले साथ थे। गोलन्दाज़ पुर्तगाली थे। परन्तु भाग्यवश रुद्रसिंह की टुकड़ी घाटी के ऊपर थी। इससे उसे जीतने में कोई विघ्न न पड़ा। इस तरह बड़ी अप्रतिष्ठा और दुर्दशा के साथ गुजराती सेना नागौर को पीठ दिखाती हुई भगी। रुद्रसिंह की वीरता और चतुरता ने नागौर बचा लिया।

(५)

आज नागौर में बड़ा उत्सव हो रहा है। शहनाई, नगाड़े, शंख इत्यादि आनन्द के बाजे बज रहे हैं। नगर में कीर्तन हो रहा है। आज नागौर का पुनर्जन्म हुआ है।

इसी उत्सव और आनन्द के बीच रुद्रसिंह अपने कट्टर योद्धाओं के आगे आगे राज-महल की ओर आ रहे हैं। उनके तेजस्वी चेहरे से शूरता, वीरता, पराक्रम और उमङ्ग टपकी पड़ती है।

उनकी आँखें एक तरफ़ टिकी हुई हैं। उनके दोनों तरफ़ जो लोग जुहार करने को खड़े हुए हैं उनकी उन्हें ख़बर भी नहीं। एक बार उन्होंने एक मोहिनी मूर्त्ति राजमहल की खिड़की में देखी थी। आज भी उनका ध्यान उसी की ओर लगा हुआ है। धीरे धीरे यह सामरिक जलूस उसी खिड़की के नीचे पहुँचा। पहले की सी एक झलक फिर दिखाई दी। परन्तु अब की बार की झलक में बड़ा अन्तर था। जिसे रुद्रसिंह देख रहे थे उसके मुखमण्डल पर निराशा, उदासी और हार्दिक वेदना के काले काले बादल छा रहे थे। यह पन्ना थी। रुद्रसिंह इसे न पहचानते थे। वे पन्ना के केवल पूर्व-परिचित मुख को पहचानते थे।

थोड़ी देर में वे राज-महल में बुलाये गये। पन्ना के राखीबन्द भाई से रनिवास में भी किसी को पर्दा न था। राजा ने अपने पूर्व अपराध की क्षमा माँगी। जिसमें क्षमता होती है वह अवश्य क्षमा करता है। रुद्रसिंह राजा को क्षमा कर और उनका आदर-सत्कार ग्रहण कर रनिवास में गये।

परन्तु हाय! यहाँ पहुँच कर उनके हृदय पर वज्रपात हुआ। जिस मूर्ति को हृदय में रख कर वे आकाश में कोट बाँधते थे वह स्वयं पन्ना थी। जिसने राखी भेजी थी वह तो बहिन हुई। हृदय का वह बबूला वहीं बैठ गया। परन्तु हा! उसका आघात इतना कठोर हुआ कि राजपुर-नरेश ने इस संसार को असार समझ कर स्वर्ग का रास्ता लिया। पन्ना के लिए भी यह संसार दुःखमय होगया। मालूम नहीं करुणानिधि जगदीश्वर ने इन दोनों का क्या न्याय किया।

वृन्दावनलाल वर्मा।

विलक्षण मछलियाँ।

सुन कर विश्वास नहीं होता कि संसार में ऐसे भी जीव हैं जो अपने से दूने जीव को एकही दफ़े में निगल जाते हैं। पर बात सच है। इस में ज़रा भी बनावट नहीं। कुछ मछलियाँ ऐसी हैं जो बहुत गहरे समुद्र के भीतर रहती हैं। वे इतनी गहराई में रहती हैं कि वहाँ घोर अंधकार छाया रहता है और वहाँ का पानी बर्फ़ के समान ठंडा होता है। बहुत अधिक गहराई में रहने के कारण इन मछलियों के एक वर्ग-इञ्च शरीर के ऊपर छः मन से लेकर सौ मन तक पानी रहता है। पर इस बोझ से उनको कुछ भी तकलीफ़ नहीं होती।

गहरे और उथले समुद्र की परिभाषा क्या है? उसका लक्षण क्या है? कितने पानी की गिनती गहरे पानी में की जाती है? समुद्र की जहाँ जैसी स्थिति होती है वहाँ उसी हिसाब से सूर्य्य की किरणें उसके भीतर प्रवेश करती हैं। मामूली तौर पर वे १०० फ़ीट की गहराई के आगे नहीं जातीं; पर कभी कभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२४००० फ़ीट तक, नहीं इसके भी आगे चली जाती हैं। जहाँ तक सूर्य्य की किरणें पानी के भीतर घुसती हैं वहाँ तक के समुद्र की गिनती उथले और उसके नीचे की गहरे समुद्र में होती है। पर मछलियाँ इतनी गहराई की कुछ भी परवा नहीं करतीं। वे हज़ारों फ़ीट गहरे समुद्र के भीतर आनन्द से रहती हैं। इतनी गहराई में रहने के कारण उनके शरीर की बनावट और उनकी आदत वग़ैरह में बहुत फ़रक़ होना चाहिए था। पर फ़रक़ बहुत थोड़ा होता है। जो प्राणी हमेशा अन्धकार में रहते हैं उनको आँखों से बहुत कम काम पड़ता है। इसलिए उनकी देखने की शक्ति जाती रहती है। उनके आँखें होतीही नहीं। प्रकृति जिस चीज़ की जिसको ज़रूरत नहीं समझती उसको उसे वह देतीही नहीं। पर मछलियों के विषय में विचित्रता है। इतनी दूर गहरे समुद्र के भीतर उनको आँखों से काम नहीं पड़ता। पर कुछ विशेष प्रकार की मछलियों को छोड़ कर औरों के आँखें होती हैं। इस विशेषता को छोड़ कर गहरे समुद्र की मछलियों की बनावट जैसी होनी चाहिए वैसीही होती है।

गहरे समुद्र की मछलियाँ जब समुद्र के ऊपर लाई जाती हैं तब उनकी स्थिति में अन्तर पड़ जाता है। हड्डियाँ मुलायम हो जाता हैं—गुँधे हुए पतले आटे के समान नरम मालूम होती हैं। आँखें बाहर निकल आती हैं। मेदा फूल कर बड़ा हो जाता है और बाहर निकल कर लटकने लगता है। ये मछलियाँ अपने से बहुत बड़ी मछलियों को निगल लेती हैं। कभी कभी ये समुद्र की सतह पर आजाती हैं और धीरे धीरे तैरती हुई दिखलाई देती हैं। जब ये मछलियाँ बहुत बड़ा शिकार निगल जाती हैं तब वह शिकार इनके पेट के भीतर छटपटाता है और निकलने की कोशिश करता है। इससे इनको तकलीफ़ होती है और बहुत बेचैन हो कर ये अपना गहरा घर छोड़ कर ऊपर आजाती हैं।

कोई कोई मछलियाँ ऐसी भी देखने में आती हैं जो रहती तो बहुत गहरे समुद्र में हैं पर उनका डील डौल समुद्र की सतह पर रहने वाली मछलियों से बहुत कुछ मिलता है। इससे सूचित होता है कि उनकी कोई अलग जाति नहीं है। गहराई में रहने के कारण सिर्फ़ थोड़ासा फ़र्क़ उनकी बनावट में हो गया है। समुद्र की सतह पर रहने वाली मछलियां भी अकसर गहरे समुद्र के भीतर पाई जाती हैं। क्यों ऐसा होता है ठीक मालूम नहीं। जो जीव गहरे समुद्र में रहे उसका शरीर उसकी स्थिति के अनकूल होना चाहिए और जो ऊपर रहे उसका उसकी स्थिति के अनकूल। शायद इस तरह की मछलियों को प्रकृति ने दोनों स्थितियों में रहने योग्य बनाया है। या यदि नहीं बनाया तो प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करने से कुछ विकार उनके शरीर में होजाता है जिससे उन की बनावट में फ़र्क़ मालूम होता है।

गहरे समुद्र में रहने वाली मछलियाँ बेतरह खाऊ होती हैं। जो जीव उनके सामने पड़ जाता है उसे वे निगले बिना नहीं छोड़तीं। उस समय वे छोटे बड़े का ख़याल नहीं करतीं। एक बार एक ४ इञ्च की मछली के पेट में ७½ इञ्च की मछली मिली। दो मछलियाँ साढ़े छ छ इञ्च की थीं। उनका पेट खोलने पर देखा गया कि साढ़े दस दस इञ्च की मछलियाँ उन्होंने निगली थीं। जब ये लम्बी लम्बी मछलियाँ निगली जाती हैं तब मेदे में लिपट कर उन का गोलासा बन जाता है। उसी हालत में वे धीरे धीरे हज़म हुआ करती हैं। इनका मेदा रबर की तरह घट बढ़ सकता है। जब ये भूखी होती हैं तब मेदा सिकुड़ कर छोटा हो जाता है और पेट के नीचे एक छोटी सी थैली की तरह लटका करता है। पर जब ये किसी बड़ी मछली को निगल जाती हैं तब वह खिँच कर बेतरह बढ़ जाता है और बहुत दूर तक पेट के नीचे लटक पड़ता है। इन मछलियों के दाँत पीछे की तरफ़ कुछ झुके हुए होते हैं। उनकी मदद से बड़ी बड़ी मछलियों को ये अपने गले के नीचे उतार देती हैं। यदि कोई मछली इनके दाँतों के बीच आ जाती है तो हज़ार कोशिश करने पर भी वह नहीं छूट सकती। इनके दाँत ऐसे होते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि वे शिकार को पकड़ कर भीतर ही की तरफ़ ढकेलते हैं। इन मछलियों का चमड़ा भी घट बढ़ सकता है। इससे शिकार को निगलते समय ये अपने मुँह के चमड़े को आगे खींच कर शिकार को बहुत जल्द मुँह के भीतर कर देती हैं।

एक साहब ने इन विलक्षण मछलियों के पेट में इनसे कई गुना बड़ी मछलियाँ पाई हैं। किसी किसी मछली के पेट में दस दस पन्द्रह पन्द्रह जलचर एक साथ पाये गये हैं। एक बार एक मछली के पेट में कटल फिश नाम की एक मछली निकली थी। जिसने इस मछली को निगला था वह चौड़ाई में इससे बहुत कम थी। पर जान पड़ता था कि वह इसे सहज ही में निगल गई थी।

गहरे समुद्र में रहने वाली मछलियों में एक और विलक्षणता है। इस जाति की जो मछलियाँ हैं उनमें से किसी किसी के बदन से फास्फ़र के रूप में एक तरह का प्रकाशपुञ्ज निकला करता है। सम्भव है समुद्र के भीतर अंधेरे में ये मछलियाँ इसी प्रकाश से सब चीज़ें देखती हों और इसी लिए वे अपनी आँखें काम में ला सकती हों। यह प्रकाशपुञ्ज अक्सर गलफड़ों के पास से निकलता है। पर किसी किसी मछली का सारा बदन चमकीला होता है; किसी ख़ास जगह से प्रकाश नहीं निकलता। एक मछली का नाम है "अग्निगर्भ मछली"। उसकी पीठ पर अभ्रक के समान, पर ख़ूब चमकदार, निर्जीव मांस के छोटे छोटे टुकड़ों की एक क़तार होती है। उसी से प्रकाश निकला करता है।

इन मछलियों का रंग काला या भूरा होता है। रंगों की उत्पत्ति के लिए सूर्य की किरणों का मिलना बहुत ज़रूरी ख़याल किया जाता है। पर गहरे समुद्र की कोई कोई मछली लाल या गुलाबी रंग की भी होती है। जहाँ वे रहती हैं सूर्य की किरणें नहीं जातीं। नहीं मालूम किस तरह उनको ये रंग मिलते हैं।

गहरे समुद्र के भीतर रहने वाली इन मछलियों के विषय में अभी तक बहुत कम बातें मालूम हुई हैं। कोई चालीस या पचास वर्ष सेही इस तरफ़ योरप और अमेरिका वालों का ध्यान गया है। इनकी जाँच हो रही है। आशा है और भी अनेक विलक्षण बातें इनके विषय में मालूम हों।

मन।

१—अति अभेद है तू मन मेरे!
चरित विचित्र सभी हैं तेरे।
क्या कब क्यों तुझको भाता है—
नहीं समझ में कुछ आता है॥

२—कभी प्रियों से तू लड़ता है;
तुच्छ बात पर ही अड़ता है।
कभी अपात्र तुझे है प्यारा,
मानो तेरा प्राण सहारा॥

३—कभी कभी तू परम सुखी है;
कभी हाय! फिर महा दुखी है।
कभी प्रेम में तू चंचल है;
कभी द्वेष में निपट अचल है॥

४—कभी द्रव्य का तू भूखा है;
कभी विषय-रस से रूखा है।
बुरा कभी तू, कभी भला है;
गहरा कभी, कभी उथला है॥

५—प्रिय है तुझको आज परोदय;
कल होता है उस पर विस्मय।
नहीं व्यापती जिसको माया
फिरता है वह लोभ-सताया॥

६—होकर इंद्रिय-गण का स्वामी
करता है तू कभी गुलामी।
नहीं सिंधु में जो समाता है,
सो कौड़ी में भर जाता है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७—कभी सत्य है तेरा बाना,
कभी कपट की बात बनाना।
कभी महा धर्मी बनता है;
कभी पाप में तू सनता है॥

८—कभी मोम सा तू कोमल है;
कभी वज्र सम निष्ठुर-दल है।
कभी कर्ण इव है तू दानी;
रावण तुल्य कभी अभिमानी॥

९—कभी आपको तू भूले है;
भक्ति-भेद पाकर फूले है।
खुलते हैं तब अन्तर्लोचन;
सत्य समझ पड़ता है जीवन॥

१०—सुख दुख नर का तेरे कर है;
तन, धन, जन का तू ही घर है।
तू चाहे तो स्वर्ग दिखावे,
चाहे रौरव में भटकावे॥

११—मन से मनु, मनु से मानव है
मनुज क्या बिना मन संभव है?
मन यथेच्छ तन को गढ़ता है
उसको बढ़ा आप बढ़ता है॥

१२—नर से नारायण का अंतर,
सब प्रकार है मन ही के कर।
जब लौं मन तब लौं यह जग है;
मन ही इस जग में पारग है॥

१३—सब पदार्थ बढ़ते घटते हैं;
आगे बढ़ पीछे हटते हैं।
पर मन में यह गुण है बढ़ कर
गिरता नहीं कभी यह चढ़ कर॥

१४—जिस नरके वश में यह मन है
सफल उसी का नश्वर तन है।
कहते हैं जब मन चंगा है
भरी कठौती में गंगा है॥

१५—त्याग यही मन भारत-वासी
बने हुए हैं निपट उदासी
क्या मन बिना स्वत्व संभव है!
स्वत्व-हीन का क्या गौरव है!

विद्यानाथ शर्मा।

कर्तव्य-पालन।

ऐसे विरले ही मनुष्य होंगे जिन्हें कल्पित या सत्य कथा-कहानियों के पढ़ने या सुनने का थोड़ा बहुत शौक़ न हो। इस शौक़ का क्या कारण है? विचार करने से तो यही मालूम होता है कि इन कथाओं में ऐसे अनेक प्रसंगों का उल्लेख रहता है जिनमें अनेक मानवीय सद्गुणों का समावेश पाया जाता है। इन कथाओं के नायक-नायिका आदि पात्रों की आपत्तियाँ, प्राण-सङ्कट, साहस, सहिष्णुता, निर्भीकता आदि के प्रसङ्ग पाठकों तथा श्रोताओं के हृदयों में एक प्रकार का आवेग उत्पन्न करते हैं, जो इनकी रोचकता का मूल कारण प्रतीत होता है।

इस प्रकार की रुचि यद्यपि सर्वथा प्रशंसनीय नहीं, तथापि न होने से अच्छी ही है। इस संसार में ऐसे भी स्त्री-पुरुष हैं जिन्हें केवल वही बातें प्रिय होती हैं जिनका सम्बन्ध उनके आर्थिक हानि-लाभ से रहता है। ऐसे स्वार्थ-परायण मनुष्यों की अपेक्षा पूर्वोक्त रुचि वाले मनुष्य बहुत अच्छे हैं। पर देखने में आया है कि यह रुचि भी कभी कभी बड़ी हानि-कारक होती है। इस रुचि के मनुष्यों को साधु-महात्माओं के शान्तिमय आख्यान नीरस प्रतीत होते हैं और उनका सारा समय हत्यारों, लुटेरों, बट-मारों के चरित्र तथा समाचारपत्रों के वे स्तंभ, जिनमें फ़ौजदारी अभियोगों की रिपोर्टें रहती हैं, पढ़ने या सुनने में व्यतीत होता है। दर्शनशास्त्र का यह एक बड़ा गूढ़ सिद्धान्त है कि मनुष्य के जैसे विचार होते हैं वैसा ही उसका आचरण हो जाता है। जिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार बार बार गाड़ियों के निकलने से मार्ग में गहरे चिह्न पड़ जाते हैं उसी प्रकार बार बार एक ही तरह के विचार मन में आने से मनुष्य के आचरणों पर बड़ा गंभीर प्रभाव पड़ता है। कहते हैं कि अन्त-काल के समय प्राणी को जिस बात का अधिक ध्यान रहता है उसी के अनुसार वह दूसरा जन्म लेता है। हरिण के साथ अधिक प्रेम होने से महाराज भरत सदृश योगीश्वर को दूसरे जन्म हरिण होना पड़ा था। मतलब यह कि विचारों का प्रभाव केवल इसी जन्म में नहीं, किन्तु दूसरे जन्म में भी पड़ता है। इस लिए क्या आश्चर्य कि जो मनुष्य सदा कामी, क्रोधी, हत्यारे, लुटेरे मनुष्यों के चरित्रों का मनन किया करे वह स्वयं वैसा ही हो जाय।

इसलिए ऐसी रुचि को अधिक न बढ़ाना चाहिए। जहाँ तक हो सके सज्जनों के चरित्र पढ़ने और सुनने का अभ्यास डाला जाय। ऐसा करने से हमारी सहानुभूति पराक्रमी, सदाचारी, सहनशील, शान्त-चित्त सज्जनों के साथ सदा रहेगी। इसलिए हम भी धीरे धीरे उनका अनुकरण करने लगेंगे और उनके तुल्य होने की चेष्टा करने से हमारे आचरण सुधरने लगेंगे। हमारे चित्त में सदा यही लालसा लगी रहेगी कि हम भी अमुक नायक या नायिका के सदृश यशोलाभ करें और अवसर आने पर कुछ थोड़ा बहुत करही सकेंगे। अतएव ऐसे सत्पुरुषों के जीवनचरित पढ़ने या सुनने की रुचि होना सर्वथा प्रशंसनीय है।

मनुष्य-जाति में यह एक स्वाभाविक गुण है कि परोपकार और त्याग की ओर उसकी बहुधा पूज्य-बुद्धि रहती है। जो मनुष्य अपने सुख-आराम और धन के त्याग से दूसरों का उपकार करता है उसका आदर और प्रशंसा करना हमारे लिए एक स्वाभाविक बात है। किसी बड़े प्रयोजन की सिद्धि के लिए जब कोई व्यक्ति कठिन क्लेश भोगता और अपने प्राण तक संकट में डालता है तब हमारे हृदय में उसके आदर का आविर्भाव होता है और हमारे मुख से आपही आप वाह वाह निकलता है।

मनुष्य बहुधा क्षुद्र प्रयोजन से भी बड़े बड़े कार्य्य करता है और अपने को बड़ा साहसी, शूर-वीर सिद्ध करता है। कई ऐसे मनुष्य हैं जो इस भय से कि हमारी निन्दा न हो अपने कर्तव्य के पालन में उग्र साहस दिखलाते हैं और धनक्षति स्वीकार करते हैं। कई ऐसे भी हैं जो लालच-वश साहस के बड़े बड़े कार्य करते हैं और प्राण-सङ्कट पड़ने पर भी स्वार्थ-सिद्धि से विमुख नहीं होते। कोई कोई निरी वाह वाह लूटने की इच्छा से पराक्रम के बड़े बड़े कार्य करने में समर्थ होते हैं। ऐसे लोगों के कार्य्य यद्यपि प्रथम श्रेणी की प्रशंसा के पात्र नहीं कहलाये जा सकते; तथापि ऐसे मनुष्य उन आलसी कापुरुषों से, जो हाथ पर हाथ रक्खे बैठे रहने ही में परमानन्द समझते हैं, कई अंशों में प्रशंसनीय हैं।

अब यहाँ हम इस बात की विवेचना करना चाहते हैं कि कौन कौन से ऐसे कार्य्य हैं जो सच्ची प्रशंसा के योग्य हैं और जिनके करनेवालों की विशुद्ध चरितावली पढ़ने या सुनने से हम वास्तविक लाभ उठा सकते हैं। ऐसे कार्य्यों की उपमा चमकते हुए स्वर्ण से दी जा सकती है।

निरी निर्भीकता सच्ची प्रशंसा के योग्य नहीं है। ऐसा साहस और निर्भयपन तो साधारण चोर या डाकुओं में भी पाया जाता है। मनुष्य लोभ-वश बड़े बड़े साहस के कार्य्य करने में समर्थ होता है। धन या भूमि के लालच से चंगेज़ ख़ां, तैमूरलंग और स्पेन देश-वासी वीर पिज़ारो ने जो पराक्रम दिखाया है उसका हाल सुन कर हम दांतों में उँगली दबा कर रह जाते हैं। पर क्या विचारशील सज्जन पुरुष या इतिहासलेखक लोग इनको प्रथम श्रेणी की प्रशंसा का पात्र समझते हैं?

कोई कोई कार्य आत्मश्लाघा की इच्छा से किया जाता है। इस प्रकार का कार्य्य कुछ थोड़ी बहुत प्रशंसा के योग्य तो अवश्य है; पर उसकी पूर्ण प्रशंसा नहीं की जा सकती। एक बार ग्रनाडा नगर के क़िले का मुहासरा स्पेन देश के राजा फर्दिनंड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने किया था। उन दिनों में स्पेन का दक्षिणी भाग उत्तरी आफ़्रिका के निवासी मूर मुसलमानों के अधिकार में था। उनको स्पेन देश से मारकर भगा देने के अभिप्राय से फर्दिनंद उनसे युद्ध करता था। एक दिन मूर सिपाही क़िले की दीवार पर, और फर्दिनंद की गोरी सेना सदर दरवाज़े से कुछ दूरी पर, लड़ने की इच्छा से सुसज्जित खड़ी थी। इतने में एक गोरा सवार घोड़ा मारता हुआ क़िले के दरवाज़े की ओर बढ़ता दिखाई दिया और शीघ्र ही उस दरवाज़े पर एक काग़ज़ का टुकड़ा, जिसमें प्रभु यीशु मसीह की माता मरियम की स्तुति लिखी थी, चिपकाकर फिर अपने स्थान पर जा खड़ा हो गया। पल भर में यह घटना हो गई और मूर सैनिक भी इस अनुपम साहस को देख चित्र में खिंचे से अवाक और स्तब्ध रह गये। मारे आश्चर्य के किसी को कुछ भी न सूझा। यह कार्य्य अत्यन्त साहसिक था, इसमें कोई सन्देह नहीं। पर उससे लाभ क्या हुआ? हाँ, मुसलमान मूरों के हृदय पर तो अवश्य इसका कुछ न कुछ प्रभाव पड़ा ही होगा। उनको गोरे सैनिकों के शूरवीर होने का निश्चय तो अवश्य हुआ ही होगा। पर क्या उस सवार ने इस अभिप्राय से अपने प्राण संकट में डाले होंगे? नहीं, उसने यह साहस अपनी बहादुरी दिखाकर वाह वाह लूटने के ही प्रयोजन से किया था, न कि और किसी कारण से।

लार्ड क्लैव को हमारे पाठक जानते ही होंगे। शैशव काल में एक बार यह वीर अपने नगर के गिरिजाघर के अत्यन्त ऊँचे मीनार पर चढ़ कर बैठा था। यदि तनिक भी पैर फिसलता तो गिरकर उसकी हड्डियाँ चूर चूर हो जातीं और न जाने हमारे देश का शासन किसके हाथ में जाता। पर इतनी ऊँचाई पर चढ़कर प्राणों को ख़तरे में डालने से क्या कुछ लाभ हुआ? ऐसे कार्य्य की प्रशंसा कौन करेगा?

जिस कार्य्य के करने में इस प्रकार निरी निर्भीकता दिखलाई गई है और जिसका करना हमारा कर्तव्य नहीं है, वरन् वाह वाह लूटने की इच्छा से प्राणों को व्यर्थ सङ्कट में डालना है, उसे कोई भी विचारवान् पुरुष प्रशंसा के योग्य नहीं समझता। कर्तव्य-पालन में जितनी अधिक निर्भीकता प्रदर्शित की जाय उतनी ही थोड़ी है। पर पूर्वोक्त स्पेनियार्ड सवार या क्लैव के समान व्यर्थ मृत्यु के कवल बनने की चेष्टा करना निरा उजड्डपन है। ऐसे कार्य्य की सराहना कौन करेगा? जिस साहसिक कार्य्य के सम्पादन में कर्तव्य-पालन भी होता हो, वही पूर्ण प्रशंसा का पात्र कहा जा सकता है। इटली देश में विसूवियस नामक ज्वालामुखी पर्वत के फटने से जो धन तथा प्राणहानि हुई थी उसे इतिहास पढ़ने वाले जानते ही हैं। इसी दुर्घटना के समय दो विशाल नगर गरम राख, अंगारों तथा पिघले हुए पत्थरों की वर्षा से दब कर नष्ट हो गये थे। इस उत्पात के आरंभ में नगर भर के नरनारी तो भाग गये, पर एक संत्री ने अपना स्थान नहीं छोड़ा। वह पहरे पर था। इसलिए दूसरे किसी संत्री के आये बिना पहरे पर से कैसे हटे? वह अपने कर्तव्य-पालन में ऐसा तत्पर रहा कि थोड़ी देर में दबकर मर गया। अभी गत शताब्दि में जब वह नगर खोदकर निकाला गया तब फाटक पर इस कर्तव्य-परायण संत्री का पञ्जर मिला। इसने प्राण भलेही दे दिये, पर कर्तव्य-विमुख न हुआ। ऐसेही साधारण दशा तक के लोगों की कर्तव्यपरायणता से रूमी साम्राज्य किसी दिन उन्नति के शिखर पर चढ़ा था। इस रूमी संत्री के इस कार्य्य की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। जिस देश में ऐसे सपूत होते हैं वही अपने तथा अन्यान्य देशों पर शासन करते हैं। हमारे भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास में राजपूतों की कर्तव्य-परायणता भी ऐसी वैसी न थी। उन लोगों ने भी अपनी देश-रक्षा में बड़ा शौर्य्य दिखलाया और अपने प्राणों की कभी परवा नहीं की। राजपूत-वीर-नारियों के भी ऐसे अनेक दृष्टान्त मिलेंगे। यह भारतवर्ष ही एक देश है जहाँ की स्त्रियाँ अपने पति के परलोक-वासी हो जाने पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना कर्तव्य समझ अत्यन्त क्लेशकर रीति से, अर्थात् जीते जी अग्नि में भस्म होकर, अपने प्राण दे देती थीं।

कासावियांका नामक अल्पवयस्क फ़रासीसी बालक की पैतृक भक्ति और आज्ञापालन की कथा भी बड़ी मर्म्मभेदी और प्रशंसनीय है। युद्ध के समय एक फ़रासीसी जहाज़ के कप्तान ने अपने १० वर्ष के पुत्र को एक स्थान में खड़ा करके कह दिया कि बेटा जब तक मैं न कहूँ तब तक तुम इसी स्थान पर खड़े रहना, तनिक भी न हटना। पिता तो लड़ाई में मारा गया और जहाज़ में आग लग जाने से वह धधक कर जलने लगा। फ़रासीसी अफ़सर और मल्लाह एक भी जीते न बचे जो उस अबोध बालक की सुध लें। पर वह व्रतधारी बालक अपने नियत स्थान से तनिक भी नहीं हटा। उस वीर ने आग की तीव्र लपटों को चारों ओर बढ़ते देख कई बार—"पिता जी अब आऊँ"? ऐसा कहकर पुकारा। पर पिताजी तो इस संसार में थे ही नहीं; उत्तर कहाँ से दें? यहाँ वह आज्ञाकारी बालक भी अपने कर्तव्य से विमुख कैसे हो? बस अन्त में वह वीर जलकर भस्म हो गया। पर उसने अपना धर्म्म और व्रत नहीं त्यागा।

इस प्रकार कर्तव्य-पालन में प्राणोत्सर्ग तक कर डालना वास्तव में एक बड़ा प्रशंसनीय कार्य्य है। पर यह भी सर्वोत्तम नहीं कहा जा सकता। यह खरे सोने के सदृश तो है पर उसमें पालिश (Polish) की कमी है। देदीप्यमान स्वर्ण के समान होने के लिए एक दूसरा गुण अपेक्षित है। वह गुण है परोपकार-बुद्धि। दूसरों की भलाई या रक्षा को अपना कर्तव्य समझकर जो कार्य्य किया जाय और उसमें स्वार्थ-बुद्धि का लेशमात्र न हो वह सर्वोत्तम एवं सर्वथा प्रशंसनीय कार्य्य है। ऐसा कार्य्य करने वाले उस समय स्वार्थ को बिलकुल भूल जाते हैं और निरी कर्तव्य-बुद्धि से उसे करते हैं। उस समय उन्हें इस बात का स्मरण भी नहीं होता कि हम कोई अनोखी बात कर रहे हैं, जिससे जगत् में हमारा यश होगा या हमको किसी प्रकार का लाभ पहुँचेगा। जिस मनुष्य के कार्य्य में तनिक भी स्वार्थ की झलक आ जाती है उसका वह कार्य्य सर्वोत्तम नहीं कहाता। निष्काम कर्म्म, जो कर्तव्य समझ कर किया जाता है, परमोत्तम है। हमारे शास्त्रकारों ने भी कहा है कि सब काम निस्पृह होकर अर्थात् फल की इच्छा न करके कृष्णार्पण करना उचित है। जो साहसिक कार्य्य आत्मश्लाघा, अर्थलाभ या यशोलाभ की इच्छा से किया जाता है वह पन्नी के समान ऊपर से तो चमकदार सोना सा देख पड़ता है पर वास्तव में वह सोना नहीं है। इसी तरह कोई कोई कार्य्य खोटे सोने के समान होते हैं और कोई खरे सोने के। पर कोई कोई पालिशदार खरे सोने के सदृश भी होते हैं। ऐसे कार्य्य सर्वोत्तम और सर्वथा प्रशंसनीय समझे जाते हैं और उनके करनेवाले निस्पृह, कर्तव्य-परायण और परोपकारी होते हैं। ये लोग किसी उच्च उद्देश से सर्वस्व त्यागने तक से नहीं हिचकते। अपने धर्म्म की रक्षा में, मातृभूमि की सेवा में, कर्तव्यपालन में, अपने कुटुम्बियों या मित्रों का कल्याण करने में अथवा किसी अज्ञात मनुष्य की भी दीन दशा देख कर सकरुण होकर उसे आपत्ति से विमुक्त करने में प्राणोत्सर्ग करने तक में आगापीछा नहीं करते। वे ऐसे कार्य्यों के करने में बड़े बड़े असह्य क्लेश सहने के लिए, कारागारवास करने के लिए, यहाँ तक कि फाँसी पर भी चढ़ने के लिए सदा तैयार रहते हैं। धनधाम त्याग की तो बात ही क्या, ये लोग अपने अभीष्ट की सिद्धि में—अपने कर्तव्य के पालन में—अपने प्राण तक देने को तैयार रहते हैं। पर निरपराधी मनुष्यों को हानि पहुँचाकर कार्य्य नहीं करते। ऐसा कोई कार्य्य नहीं करते जिससे किसी को तनिक सी भी हानि पहुँचे। ये लोग भली भाँति समझते हैं कि देशोपकार आदि में हत्या आदि पातक करना हमारा कर्तव्य नहीं; वरन ऐसे अधम कार्य्य उसके विरुद्ध हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्थेंस नगर में एक समय शासनकर्त्ता लोग प्रजा को बड़ा क्लेश देते और लोगों पर बड़े बड़े अत्याचार करते थे। प्रजा की सारी स्वतंत्रता छीन ली गई थी और हर तरह से प्रजा को पीड़ा दी जाती थी। इन दुष्ट शासकों के अत्याचार से प्रजा को छुड़ाने के अभिप्राय से थोड़े से देशहितैषी सज्जनों ने एक स्त्री के घर में एकत्र होकर मंत्रणा की। अत्याचारी शासकों को इस बात की ख़बर मिल गई और उन दुष्टों ने इस अबला को पकड़कर उससे उन लोगों के नाम और विचार प्रकट करने का दुराग्रह किया। वह स्त्री विश्वासघात करना महापातक समझती थी। इसलिए उसने शासकों की आज्ञा न मानी। इस पर उन नराधमों ने यह आज्ञा दी कि उस स्त्री को जब तक वह नाम न बतलावे तब तक घोर कष्ट दिया जाय। वह बेचारी स्त्री ही तो थी। उसने देखा कि यदि कहीं घोरयंत्रणा न सहकर विश्वासघात हो गया तो मुझे कर्तव्य-विमुख होने का पातकी बनना पड़ेगा। इस भय से उसने अपने दाँतों से अपनी जीभ ही काटकर फेंक दी! धन्य ऐसी स्त्री! धन्य उसका कर्तव्य-पालन!! लीना नामकी इस यूनानी वीर नारी के देश बान्धवों ने इसका नाम चिरस्थायी रखने के लिए एक जिह्वाहीन सिंहिनी की प्रतिमा बनवाकर स्थापित की और बहुत काल तक उसके गौरव की कथाओं से यूनानी लोग अपने को धन्य समझते रहे। स्मरण रहे कि यूनानी भाषा में लीना शब्द का अर्थ ही सिंहिनी है।

इसी प्रकार एक रोमन बाला ने अपने प्राण हथेली पर रख अपनी प्रिय माता को जीवन-दान दिया और दिलाया। राजाज्ञा हो चुकी थी कि उसकी माँ को निराहार रख कर प्राण-दण्ड दिया जाय। कारागार में उसे एक बूँद पानी मिलना भी कठिन था। उसकी प्यारी बेटी प्रति दिन उसके पास आकर उसे अपने स्तनों से दूध पिलाती थी। जब वह स्त्री कई दिनों तक निर्जल और निराहार रह कर भी जीवित रही तब शासकों को बड़ा अचरज हुआ। तहक़ीक़ात करने पर यह रहस्य प्रकट हुआ। इस अलौकिक मातृभक्ति ने उन वज्र-हृदय शासकों के चित्तों को भी दयार्द्र कर दिया और इस अकथनीय स्नेह को सुन कर उन लोगों ने उस स्त्री को बन्दी-गृह से मुक्त कर दिया। इसी तरह यूनान देश की यूफ़्रोशिया नाम की एक महिला ने अपने पिता के प्राणों की रक्षा की थी।

सन् १४०१ ई० में स्काटलेंड के राजकुमार डेविड को उसके क्रूर-चित्त मुंज-सदृश काका ने उसे एक अँधेरी कोठरी में बन्द कर दिया और आज्ञा दे दी कि उसे खाने पीने को कुछ न दिया जाय। भाग्यवश इस कोठरी में ज़मीन से लगा हुआ एक जँगला था। इसी की छड़ों के बीच से एक किसान की दयालु स्त्री उस अभागे को रोटियाँ देती और एक नल के द्वारा अपने स्तनों से निचोड़ निचोड़ कर दूध पिलाती थी। यह स्त्री भली भाँति जानती थी कि यदि राजा के शत्रु की इस प्रकार सहायता करने की बात प्रकट हो गई तो मेरे प्राण किसी प्रकार बचने के नहीं। पर उसे तो कर्तव्य-पालन से बढ़ कर और कुछ नहीं था। एक दिन वह दयावती स्त्री पकड़ी गई। पर उस ईसाई राजा ने मूर्ति-पूजक रोमन शासकों के बराबर भी उस पर दया प्रदर्शित न की और उस आदर्श नारी को मरवा डाला। हमारे भारतवर्ष में भी ऐसे दयालु और कर्तव्य-परायण अबलारत्नों की कमी नहीं रही। कुन्ती ने दीन ब्राह्मण की रक्षा के लिए अपने प्रिय पुत्र भीम को भयङ्कर राक्षस के पास भेजने में तनिक भी संकोच नहीं किया। फिर एक पन्ना नामक धात्री ने एक राजपूत राजकुमार के स्थान में अपने निज पुत्र को लिटा कर उसका वध अपनी आँखों से देखा और राजकुमार की प्राणरक्षा की। इन कथाओं को पढ़ कर कौन ऐसा मनुष्य होगा जिसके मुख से—"धन्य, धन्य" न निकले!

अब एक पितृ-भक्ति का दृष्टान्त भी लीजिए। स्विटज़रलेंड में एक दरिद्र मनुष्य को एक अत्यन्त भयङ्कर एवं प्राणघातक रोग ने दबाया। पर उस बेचारे के पास इतना धन कहाँ जो वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी चिकित्सा कर सकता। डाक्टरों ने स्पष्ट कह दिया कि यदि इसे पौष्टिक भोजन, आषधि और स्वच्छ वायु न मिलेगी तो यह अधिक दिन नहीं जी सकता। इस प्रकार की चिकित्सा के लिए द्रव्य की आवश्यकता थी। यह दीन मनुष्य न जाने किस प्रकार अपने कुटुम्ब का पालन किया करता था। उसके लिए दस बीस रुपये भी एक बड़ी रक़म थी। उसके दो बालक दिन रात अपने पिता के प्राण बचाने की चिन्ता में रहते थे। एक दिन उन दोनों ने सुना कि कोई विदेशी यात्री उक़ाब के एक जोड़ी बच्चों की तलाश में है और अच्छे दाम देने कहता है। उन बालकों ने देखा कि पिता की प्राणरक्षा के लिए यह एक उत्तम साधन है। वे दोनों उक़ाब के बच्चों की खोज में पहाड़ों पर फिरने लगे। अन्त में उन्हें एक ऊँची दुर्गम पहाड़ी की चोटी पर एक घोंसला दिखाई दिया। वहाँ तक पहुँचना असंभव सा मालूम होता था। पर "कोऽतिभारः समर्थानां, किं दूरं व्यवसायिनाम्" सत्य कहा है। सच्चे प्रेमी के लिए कुछ भी कठिन नहीं है। इन अबोध दुधपिये बालकों ने अपने प्यारे बाप के लिए तनिक भी आगा पीछा न किया। वे न जाने किस प्रकार उस पर्वत के दुर्गम शिखर पर चढ़ कर उक़ाब के दो बच्चे ले आये और उस यात्री से यथेष्ट धन प्राप्त किया। इस तरह अपने प्रिय पिता के जीवन-दाता बनने की उन्होंने सुख्याति पाई।

स्वामि-भक्ति के अनेक अनुपम दृष्टान्त हैं। छोटे छोटे बालक भी पाठ्य पुस्तकों में पढ़ चुके हैं कि किस प्रकार रूस देश के एक रईस के प्राण एक दीन टहलुए ने भूखे भेड़ियों के एक झुंड से बचाने में प्राणोत्सर्ग किया था।

अमेरिका देश की एरी नामक झील में यात्रियों से लदा हुआ एक धूमपोत किनारे से कुछ दूर था कि उसमें आग लग गई। माँझी ने देखा कि यदि सावधानी के साथ जहाज़ का चक्र चलाया जाय तो जहाज़ किनारे लग सकता है और यात्रियों की प्राण-रक्षा हो सकती है। पर चक्र के समीप ही आग का बड़ा प्रकोप था और चलाने वाला भस्म हुए बिना नहीं रह सकता था। इस कर्तव्यपरायण माँझी ने अलौकिक साहस से चक्र घुमाना आरंभ किया और जहाज़ पवन के वेग से किनारे की ओर दौड़ने लगा। वह बेचारा लपटों से झुलसने लगा और उसका शरीर जल जल कर गिरने लगा। पर जब तक श्वास रहा तब तक वह अपने कर्तव्य का निर्वाह करता रहा। अन्त में विवश होकर वह अग्नि के बीच में गिर कर राख हो गया। पर इसी समय नौका भी किनारे लग गई और किसी यात्री का बाल तक बाँका न हुआ।

सन् १८५४ के क्रीमिया युद्ध में एक दिन बड़ी भयङ्कर लड़ाई होते होते शाम हो गई। घायलों को अस्पताल तक पहुँचाने का अवसर न रहा। इस पर टामसन नामक एक अँगरेज़ डाक्टर सारी रात खुले मैदान में उभय पक्ष के घायल सैनिकों की सेवा-शुश्रूषा में लगा रहा। वहाँ के भयङ्कर जाड़े की उसने ज़रा भी परवा न की। एक ही रात में उसने जो असह्य वेदना सही उसका वर्णन करना कठिन है। पर सच्चे कर्तव्य-व्रतधारी कभी किसी बात से नहीं डरते और अपने व्रत-पालन में कठिन से कठिन शरीर-यंत्रणा सहन कर सकते हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि सन् १८५७ के भयङ्कर सिपाही-विद्रोह के समय हमारे देश-भाइयों ने अपने प्राण हथेली पर रख कर कई गोरे साहिबों की प्राण रक्षा की थी और अनेक दीन ग्रामीण इस परोपकार के बदले सिपाहियों के क्रोधानल में भस्म भी हुए थे। पर शोक की बात है कि अँगरेज़ों के तो छोटे से छोटे साधारण कार्यों का विस्तार-पूर्वक वर्णन इतिहासों में किया गया है; पर इन बेचारे देशी भाइयों का कहीं नामोनिशान भी नहीं मिलता। क्याही अच्छी बात हो यदि कोई एत-देशीय सज्जन अपने देश-बान्धवों के परोपकार की कथाओं का संग्रह करके उनका एक नया कीर्तिस्तंभ खड़ा करे। मेरी शार्लोट यंग रचित "ए बुक अफ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोल्डिन डीड्स" के समान एक ग्रंथ के लिखे जाने से बड़े लाभ की संभावना है। इस ग्रंथ में प्राचीन और आधुनिक भारतवासियों के इस प्रकार के चरित्रों का सङ्कलन किया जाना चाहिए।

इस भयङ्कर समय में, जिसका नाम लेने से क्या अंगरेज़ क्या भारतवासी सभी के रोएँ खड़े हो जाते हैं, बनारस के एक अँगरेज़ डाकूर ने कर्तव्य-पालन का एक अलौकिक दृष्टान्त दिखाया था। बनारस से बाग़ियों के भय से सारे अँगरेज़ भाग कर कलकत्ता आदि नगरों में जा जा कर छिपे थे। ऐसे समय में साधारण मनुष्यों को कर्तव्य का विचार नहीं रहता। सभी चाणक्य के "आत्मानं सततं रक्षेत् दारैरपि धनैरपि" इस नियम का अनुसरण करने लगते हैं। ऐसे विरले मनुष्य हैं जिनको ऐसे घोर विपत्ति के समय में भी अपने कर्तव्य का स्मरण रहता है। पर ऐसे ही मनुष्यों से कुटुम्ब, जाति और देश का गौरव बढ़ता है। इस समय प्रायः सभी गोरे साहब सभी हिन्दुस्तानी आदमियों को अपना शत्रु समझते थे। बनारस में एक गोरे डाकूर साहब हिन्दुस्तानी मरीज़ों के एक बड़े अस्पताल के अधिकारी थे। उनके अफ़सरों ने उन्हें बनारस से चले जाने की आज्ञा दे दी और उनके जातिवालों ने कई दफ़े उनको साथ चलने के लिए बहुत कुछ समझाया बुझाया और कहा कि अपनी जाति के शत्रु हिन्दुस्तानियों के लिए अपने प्राण सङ्कट में डालना बड़ी मूर्खता है। पर इस कर्तव्यव्रतधारी अँगरेज़ ने किसी की एक न मानी। वह दयालु अँगरेज़ प्रभु यीशु का सच्चा अनुयायी था। उसने देखा कि इन मरीज़ों को छोड़ कर भाग जाने से ये बड़े कष्ट में पड़ेंगे और कई मर भी जायँगे। इस विचार से वह अपने स्थान से नहीं हटा। धन्य है इस ईसाई डाकूर को! उसकी महिमा उस रोमन सैनी से भी कई अंश बढ़ कर है।

बाबू नफ़रचन्द्र कुंडू का नाम इस देश में बहुत समय तक प्रसिद्ध रहेगा। इस वीर बंगाली ने दो मुसलमान मिहतरों के प्राण बचाने में अपना जीवन दान कर डाला और भारत जननी के उज्ज्वल मुख को उज्ज्वलोत्तर किया। हमारे देश में ऐसे अनेक कुंडू बाबू भरे पड़े होंगे, पर उनके पुनीत चरित्रों का लेखक अभी पैदा नहीं हुआ।

युद्ध के सदृश भयङ्कर घटना दूसरी नहीं होती। यह कैसा भीषण काण्ड होता है, इसकी कल्पना करना कठिन है। युद्ध ख़तम होने पर मैदान में जाकर देखने से ही युद्ध की भीषणता का बोध हो सकता है। सन् १८५४-५६ के क्रीमिया युद्ध में सैनिकों को विशेष कष्ट सहना पड़ा था। इस कष्ट के समाचार जब अँगरेज़ी पत्रों में प्रकाशित होने लगे तब फ्लोरेंस नाइटिंगेल नाम की एक अँगरेज़-महिला का दयालु कोमल चित्त विदीर्ण होने लगा। उसने थोड़ी सी दयालु स्त्रियों के साथ युद्ध-क्षेत्र में जाकर घायल सिपाहियों की सेवा करने का संकल्प कर क्रीमिया का मार्ग लिया और सैकड़ों रूसी, अँगरेज़, फ़रासीसी और तुर्क घायल सैनिकों की, महाकष्ट सह कर, बहिन और माताओं के समान सेवा की। इस दयावती अँगरेज़-महिला का अनुपम दृष्टान्त ऐसा फलीभूत हुआ कि आज कल प्रत्येक देश में ऐसी अनेक समितियाँ स्थापित हैं जो युद्ध, अकाल, प्लेग आदि आपत्तियों के समय सैकड़ों अच्छे अच्छे घरानों की स्त्रियों को भेज भेज कर मनुष्यों के कष्टों को कम करती हैं। जिन देशों में ऐसी कर्तव्य-परायण स्त्रियाँ हैं उनकी उत्तरोत्तर उन्नति होने में क्या आश्चर्य्य है? यदि जापानी स्त्रियाँ पुरुषों के हाथ निरा खिलौना बनी रहतीं तो आज जापान का नाम इस भूतल में इतना प्रसिद्ध न हो सकता। इस दयावती नारी का नाम सुन कर सहस्रों वीर सैनिकों के हृदय में वही सात्विक भाव उत्पन्न होता है जो बालकों को अपनी माता का नाम सुनने से हुआ करता है।

इन कथाओं के पाठकों को मालूम होगा कि संसार के सभी देशों और समयों में ऐसे ऐसे पुण्य-चरित्र स्त्री-पुरुष हुए हैं जिनके नाम प्रातः स्मरणीय हैं और जिनकी जीवनी पढ़ने से हम लोगों को,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और विशेष कर हमारे होनहार बालकों को, बड़ा लाभ हो सकता है। इनके उच्च उद्देश, कर्तव्य-पालन, स्वार्थत्याग, परोपकार आदि गुण हम लोगों के लिए आदर्शरूप हैं। धन्य है उस अमेरिका के वीर सिपाही को जो शारीरिक घोर यंत्रणा सहते हुए भी औरों के क्लेशों को नहीं भूला! वह जहाज़ के पहले खंड में घायल पड़ा हुआ था। उसे ऐसा गंभीर घाव लगा था कि उसके बचने की कोई आशा न थी। तनिक भी हिलने डुलने से उसके प्राण से निकलने लगते थे। इतने में दूसरा सिपाही, जिसकी दशा इससे भी अधिक शोचनीय थी, लाया गया। इस खंड में अब कोई चारपाई नहीं बची थी। इससे लोग उसे ऊपर के खंड में ले जाने लगे। ऐसा करने से उस बेचारे को बड़ा कष्ट सहना पड़ता। यह विचारकर पहले सिपाही का हृदय करुणा से उबलने लगा। उसने अधिकारियों से निवेदन किया कि इसको मेरी चारपाई पर लिटा दो और मुझे ऊपर ले चलो। मैं कदाचित् उठाये जाने का कष्ट सह लूँ। पर यह बेचारा नहीं सह सकेगा। धन्य है इस वीर सैनिक का साहस और स्वार्थ-त्याग!

अमेरिका के एक और सज्जन का चरित्र सुनिए। एक रेलगाड़ी क़ैदियों से खचाखच भरी ऐलमारा नामक स्थान को जा रही थी। बीच में एक दूसरी गाड़ी सामने से आती हुई दिखाई पड़ी। यदि ये दोनों आपस में टक्कर खा जातीं तो न जाने कितनी प्राण-हानि होती। यंजिन पर विलियम इंग्रेम नाम का एक यंजिनियर था। वह चाहता तो गाड़ी से कूदकर अपने प्राण बचा लेता। पर उसे ऐसे भयङ्कर समय में बेचारे क़ैदियों की जान बचाने के सिवा और कुछ नहीं सूझा। उसे अपनी रक्षा का तो स्मरण ही न रहा। सच्चे परोपकारी सज्जनों को यही हाल होता है। वे सङ्कट पड़ने पर आत्मरक्षा को भूलकर औरों की रक्षा का ही उपाय सोचने लगते हैं। वह अपने कर्तव्य में मग्न हो गया और यंजिन को, गाड़ी लौटाने के अभिप्राय से, घुमाने लगा। पर मुठभेर हो ही गई और यंजिन के चकनाचूर हो जाने से बेचारा इंग्रेम दब गया। उसके ऊपर का बोझ दूर करने पर जब उसका शरीर बाहर दिखाई दिया तब मालूम हुआ कि वह बायलर से चिपटा हुआ भर्ता बन रहा है और ऐसा जकड़ा है कि उसे जीते जी निकालना असंभव नहीं तो अत्यन्त दुस्साध्य है। पर तो भी कई लोग उसके निकालने की चेष्टा करने के लिए उसके समीप जाने लगे। इस पर उसने पुकार कर उन लोगों से कहा कि—"भागो, बायलर फटने चाहता है। व्यर्थ प्राण मत खोओ।" ऐसे शूरवीर पुरुष को सामने देखकर भीरु पुरुषों में भी वीरत्व आ जाता है। लोगों ने बायलर के फटने से तनिक भी भय न खाकर उसे निकालने की बहुत चेष्टा की, पर जीते जी नहीं निकाल सके।

एक नवयुवक को एक प्रकार का ऐसा रोग हो गया था कि किसी दूसरे के शरीर का जीवित चमड़ा निकालकर उसके शरीर के उस भाग पर लगाये बिना उसके बचने की कोई आशा न थी। माता-पिता, भाई-बहिन आदि आत्मीय जनों में से किसी को साहस न हुआ कि वह अपने शरीर से दो बालिश्त खाल खींचने दे। निदान एक अज्ञात बाला से न रहा गया। वह अपने शरीर का चमड़ा देने को राज़ी हुई। डाक्टर ने बड़ी सावधानी से वह खाल निकाली। रोगी तो अच्छा हो गया; पर हाय! इस वीराङ्गना ने बड़ा भयङ्कर कष्ट सहा और सहस्रों उपाय करने पर भी उसके प्राण न बचे। धन्य है उसका परोपकार! धन्य है वह भूमि जहाँ ऐसी स्त्रियाँ पाई जाती हैं। कुछ समय हुआ कलकत्ते के बंगाल बैंक के ख़ज़ानची एक वृद्ध कान्यकुब्ज सज्जन (उनका नाम याद नहीं रहा) बीमार पड़े। उनकी जान उनके पुत्र ने अपने शरीर का चमड़ा देकर बचाई।

इस जगत् में तरह तरह की आपत्तियाँ, क्लेश, दुःख आदि देखने में आते हैं। चाहे इनका होना अच्छा हो या बुरा। पर इतना तो अवश्य है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके बिना मनुष्य के अनेक उत्तम गुण प्रकाशित नहीं होते। हमारे नवयुवक पाठकों के चित्त में यह बात आना संभव है कि हम भी अवसर पड़ने पर ऐसे प्रशंसनीय कार्य्य करें। पर मौक़ा मिलने पर भी उन्हीं लोगों को यह सौभाग्य प्राप्त हो सकता है जो स्वार्थ को छोड़कर सदा परोपकारी कार्य्यों में लगे रहते हैं। श्रीमान् सर एन्ड्रू फ्रेज़र को जब घातक ने तमंचे से मारना चाहा तब क्या उस समय पादरी बारबर और महाराजा वर्दवान-नरेश ही वहाँ पर उपस्थित थे ? समाचारपत्रों के पढ़ने से मालूम हुआ कि लोग इस बात को देखते ही घबर्टन हाल से भागने लगे। केवल पूर्वोक्त दो वीर सज्जनों ने ही श्रीमान् छोटे लाट की रक्षा की। सब कार्य्य अभ्यास से ही सिद्ध हो सकते हैं। सदा परोपकार का अभ्यास करते रहने से ही अवसर पड़ने पर मनुष्य कुछ कर सकता है। यदि मनुष्य छोटी छोटी सी बातों में कर्तव्य-पालन करता रहे तो बड़े बड़े कार्य्यों में भी फलीभूत हो सकता है। साधारणतः सभी को ऐसा अवसर प्राप्त नहीं होता। पर प्रतिदिन के साधारण व्यवहार में भी मनुष्य अनेक दिव्य गुणों का प्रकाश कर सकता है। घर में बालबच्चों, इष्टमित्रों अथवा अज्ञात जनों के साथ व्यवहार में सहनशीलता, सत्यप्रियता, स्वार्थत्याग, कर्तव्य-पालन आदि अनेक उत्तमोत्तम गुणों का अवलम्बन किया जा सकता है। ऐसे लोग चाहे जगत् में कीर्तिमान् और यशस्वी न हों, पर उन्हें स्वयं एक प्रकार का अलौकिक आनन्द प्राप्त होता रहता है। कर्तव्य-पालन करने वाले को सदा सन्तोष रहता है और इस जगत् में तथा दूसरे जन्म में उसका अवश्य कल्याण होता है। कीर्तिमान् और यशस्वी होने की अपेक्षा इस प्रकार का आन्तरिक सन्तोष प्राप्त होना कुछ कम नहीं है।

रघुवरप्रसाद द्विवेदी।

उत्तरा का उत्ताप ।

(१)

वाचक ! विचारो तो ज़रा इस समय की अद्भुत छटा—
कैसी अलौकिक घिर रही है शूर-वीरों की घटा।
हैं सामने सम्पूर्ण कौरव चक्रव्यूह रचे खड़े,
अभिमन्यु उसके भेदने को हो रहे आतुर बड़े॥

(२)

इस युद्ध में सौभद्र ने जो की प्रदर्शित वीरता—
अनुमान में आती नहीं उसकी अगम गम्भीरता।
जिस धीरता से शत्रुओं का सामना उसने किया—
असमर्थ हो उसके कथन में मौन वाणी ने लिया॥

(३)

करता हुआ कर-निकर दुर्द्धर सृष्टि के संहार को—
कल्पान्त में सन्तप्त करता सूर्य्य ज्यों संसार को।
तजता हुआ सर्वत्र त्यों ही प्रखरतर-शर-जाल को—
करने लगा वह वीर व्याकुल शत्रु-सैन्य विशाल को॥

(४)

कब खींच कर तूणीर से वर बाण सन्धाने गये,
निज लक्ष्य पर ही पहुँच कर वे शत्रु से जाने गये।
कोदण्ड कुण्डल तुल्य ही उसका वहाँ देखा गया,
अविराम रण करता हुआ वह राम सम लेखा गया॥

(५)

कटने लगे अगणित भटों के रुण्ड-मुण्ड जहाँ तहाँ;
गिरने लगे कट कर तथा कर-पद सहस्रों के वहाँ।
दुर्वचन-भाषी किसी नृप की नासिका ही काट दी;
क्षण मात्र में ही अरिगणों से भूमि उसने पाट दी॥

(६)

करता हुआ वध वैरियों का वैर-शोधन के लिए—
सब ओर वह फिरने लगा रण में निडर होकर हिए।
उस समय सूत सुमित्र के रथ हाँकने की रीति से
देखा गया वह एक ही दस-बीस सा अति भीति से॥

(७)

ज्यों भेद जाता भानु का कर अन्धकार-समूह को,
वह पार्थनन्दन घुस गया त्यों भेद चक्रव्यूह को।
थे वीर लाखों, पर किसी से गति न उसकी रुक सकी,
छाती किसी की भी वहाँ सम्मुख न उसके झुक सकी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८)

पर साथ भी उसके न कोई जा सका निज शक्ति से,
था द्वार-रक्षक नृप जयद्रथ सबल शिव की भक्ति से।
अर्जुन बिना उसको न कोई जीत सकता था कहीं;
थे किन्तु उस संग्राम में भवितव्यता-वश वे नहीं॥

(९)

उस एकही अभिमन्यु से फिर युद्ध जिस जिसने किया,
मारा गया अथवा समर से विमुख होकर ही जिया।
जिस भाँति विद्युद्दाम से होती सुशोभित घन-घटा,
सर्वत्र छिटकाने लगा संग्राम में वह निज छटा॥

(१०)

तब सप्त रथियों ने वहाँ अन्याय और अधर्म्म से
मिलकर किया आरम्भ उसको विद्ध करना मर्म्म से।
कृप, कर्ण, दुःशासन, सुयोधन, शकुनि, सुतयुत द्रोण भी,
उस एक बालक को लगे वे मारने बहुविध सभी॥

(११)

अर्जुन-तनय अभिमन्यु तो भी अचल सम अविचल रहा
इन सप्त रथियों का वहाँ आघात सब उसने सहा।
पर एक साथ प्रहार करते हों चतुर्दश कर जहाँ—
युग कर कहो क्या क्या यथायथ कर सकें विक्रम वहाँ?

(१२)

कुछ देर में जब रिपु-शरों से अश्व उसके गिर पड़े,
तब कूद कर रथ से चला वह थे जहाँ वे सब खड़े।
था यदपि अन्तिम दृश्य यह उसके अलौकिक कर्म्म का,
पर मुख्य परिचय भी यही था वीर जन के धर्म्म का॥

(१३)

होता प्रविष्ट मृगेन्द्र-शावक ज्यों गजेन्द्र-समूह में,
करने लगा वह शौर्य्य त्यों उन वैरियों के व्यूह में।
तजते हुए कोदण्ड से सब ओर चण्ड शरावली,
मार्तण्ड-मण्डल के उदय की छवि मिली उसको भली॥

(१४)

यों विकट विक्रम देख उसका धैर्य्य रिपु खोने लगे;
उसके भयङ्कर वेग से अस्थिर सभी होने लगे।
अतएव उनको युद्ध से विचलित विरुद्ध विचार के,
कहने लगा वह बुद्धवर वाणी विशुद्ध पुकार के॥

(१५)

"मैं एक, तुम बहु सहचरों से युक्त विश्रुत सात हो;
एकत्र फिर अन्याय से करते सभी आघात हो।
होते विमुख फिर भी अहो! झिलता न मेरा वार है,
तुम वीर कैसे हो, तुम्हें धिक्कार सौ सौ बार है"!

(१६)

उस शूर के सुन वचन ये बोला सुयोधन आप यों—
"है काल अब तेरा निकट करता अनर्थ प्रलाप क्यों?
जैसे बने निज वैरियों को मारनाही चाहिए;
जिस भाँति हो निज मार्ग को विस्तारनाही चाहिए"॥

(१७)

"यह कथन तेरे योग्य ही है" कह गिरा तब रिस भरी।
अभिमन्यु ने दस शरों से संज्ञा त्वरित उसकी हरी।
इस समय ही जो पार्श्व से छोड़ा गया था तान के—
दुःशासनाशुग ने किया धनु-खण्ड उसका आन के॥

(१८)

यों रिक्तहस्त निरस्त्र वह जब होगया रिपु-भीर में,
होने लगे तब शत्रुओं के शर प्रविष्ट शरीर में।
वह पाण्डु-वंश-प्रदीप यों शोभित हुआ उस काल में—
कोमल कुसुम ज्यों पड़ गया हो कण्टकों के जाल में॥

(१९)

"हा! तात, हा! पितु, हाय मातुल, हा! जननि, हा! उन्हों
निरुपाय तव अभिमन्यु यह अन्याय से मरता हरे!"
कहता हुआ वह वीर यों रण-भूमि में फिर गिर पड़ा;
हो भङ्ग शृङ्ग सुमेरु-गिरि का गिर पड़ा हो ज्यों बड़ा!

(२०)

इस भाँति उसको भूमि पर देखा पतित होते यदा—
बन वीर, दुःशासन-तनय ने शीश में मारी गदा!
दृग बन्द कर तब वह यशोधन सर्वदा को सोगया,
हा! एक अनुपम रत्न मानों मेदिनी का खो गया!

(२१)

हे वीर-वर अभिमन्यु! अब तुम हो यदपि सुर-लोक में,
पर प्रलय तक रोते रहेंगे हम तुम्हारे शोक में।
दिन दिन तुम्हारी कीर्त्ति का विस्तार बढ़ता जायगा,
तव शत्रुओं के नाम पर धिक्कार मढ़ता जायगा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरा का उत्ताप।

निज वीर पति अभिमन्यु का शव गोद में धारे हुए—बुध बुध बिसारे शोक से सर्वस्व सा हारे हुए।
हतभागिनी यह उत्तरा देखो कदम करती कहाँ—"हा नाथ! मुझ को छोड़ कर आये कहो तुम हो कहाँ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२२)

इस भाँति पाई वीर गति सौभद्र ने संग्राम में ;
होने लगे उत्सव निहत भी शत्रुओं के धाम में।
पर शोक पाण्डव-पक्ष में सर्वत्र ऐसा छागया—
मानों अचानक सुखद-जीवन-सार सर्व बिलागया !

(२३)

प्रिय-मृत्यु का अप्रिय महा संवाद पाकर विष भरा,
निस्पन्द सी निर्जीव मानों रह गई हत उत्तरा।
चेष्टा-रहित तत्काल ही फिर वह धरा पर गिर पड़ी ;
उस समय मूर्च्छा भी अहो ! हितकर हुई उसको बड़ी॥

(२४)

कुछ देर तक दुर्दैव ने रहने न दी यह भी दशा
दूत दासियों से की गई जागृत वहाँ वह परवशा।
उस तपन नामक नरक से भी यातना पाकर कड़ी,
दीक्षित सी तत्क्षण शिविर से निकल कर वह चलपड़ी॥

(२५)

अपने जनों द्वारा उठाकर समर से लाये हुए—
रज-पूर्ण, निष्प्रभ और शोणित-पङ्क से छाये हुए।
आदेश-शव के निकट जाकर चरम दुख सहती हुई,
वह नव-वधू फिर गिरपड़ी "हा नाथ!" यह कहती हुई॥

(२६)

उसके अनन्तर गोद में रक्खे हुए सुस्नेह से—
शोभित हुई इस भाँति वह निर्जीव पति के देह से।
मानों निदाघारम्भ में सन्तप्त आतप-जाल से—
आच्छादित हुई विपिनस्थली नव पतित किंशुक शाल से॥

(२७)

फिर पीट कर सिर और छाती अश्रु बरसाती हुई,
करुणा सदृश सकरुण गिरा से दैन्य दरसाती हुई।
बहुविध विलाप-प्रलाप वह करने लगी उस शोक में,
"इस प्रिय-वियोग समान दुख होता न कोई लोक में॥

(२८)

"गति, मति, सुकृति, धृति, पूज्य, पति, प्रिय, स्वजन, शोभन-सम्पदा
सब एक ही जो विश्व में सर्वस्व था तेरा सदा।
हा नष्ट उसको देख कर भी बन रहा तू भार है—
अयि कष्टमय जीवन ! तुझे धिक्कार बारंबार है॥

(२९)

था जो तुम्हारे सब सुखों का सार इस संसार में,
वह गत हुआ है अब यहाँ से श्रेष्ठ स्वर्गागार में।
हे प्राण ! फिर अब किस लिए ठहरे हुए हो तुम अहो !
सुख छोड़ रहना चाहता है कौन जन दुख में कहो ?

(३०)

अपराध सौ सौ सर्वदा जिसके क्षमा करते रहे,
हँस कर सदा सस्नेह जिसके हृदय को हरते रहे।
हा ! आज उस मुझ किङ्करी को कौन से अपराध में—
हे नाथ ! तजते हो यहाँ तुम शोक-सिन्धु अगाध में ?

(३१)

तज दो भले ही तुम मुझे पर मैं न तज सकती तुम्हें ;
वह थल कहाँ पर है जहाँ प्रिय ! मैं न भज सकती तुम्हें ?
है विदित मुझको वह्नि-पथ त्रैलोक्य में तुम हो कहीं—
हम नारियों की पति बिना गति दूसरी होती नहीं॥

(३२)

जो "सहचरी" का पद मुझे तुमने दया कर था दिया—
वह था तुम्हारा, इसलिए प्राणेश ! तुमने ले लिया।
पर जो तुम्हारी "अनुचरी" का पुण्य-पद मुझ को मिला
है दूर हरना तो उसे, सकता नहीं कोई हिला॥

(३३)

क्या बोलने के योग्य भी अब मैं नहीं लेखी गई ?
ऐसी न पहले तो कभी प्रतिकूलता देखी गई।
वे प्रणय-सम्बन्धी तुम्हारे प्रण पुनीत नये नये—
हे प्राण-वल्लभ, आज ही सहसा समस्त कहाँ गये ?

(३४)

है याद उस दिन जो गिरा तुमने कही थी मधुमयी,
जब नेत्र कौतुक से तुम्हारे मूँद कर मैं रह गई।
"यह करतल-स्पर्शन प्रिये ! मुझ से न छिप सकता कहीं"
फिर इस समय क्या नाथ ! मेरे हाथ वे ही हैं नहीं ?

(३५)

एकान्त में हँसते हुए सुन्दर रदों की पाँति से,
धर चिबुक मम रुचि पूछते थे नित्य तुम बहु भाँति से।
उस समय की वह छवि तुम्हारी याद आते ही वहीं—
हे आर्य्यपुत्र ! विदीर्ण होता चित्त जाने क्यों नहीं !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३६)

परिणय-समय मण्डप तले सम्बन्ध-दृढ़ता हित अहा,
ध्रुव देखने को वचन तुमने नाथ! मुझ से था कहा।
पर विपुल-व्रीड़ा-वश न उसका देखना मैं कह सकी,
सङ्कृति हमारी क्या इसीसे ध्रुव न हा! हा! रह सकी!

(३७)

बहु भाँति सुनने से प्रशंसा मुग्ध होकर निज हिये,
सुरपुर गये हो नाथ! क्या तुम अप्सराओं के लिए?
पर बात यह मुझ को न मन में जान पड़ती है खरी,
मेरे समान न मानते थे तुम किसी को सुन्दरी॥

(३८)

जो भूरि-भाग-भरी विदित थी निरुपमेय सुहागिनी—
हे हृदयवल्लभ! हूँ वही अब मैं महा हतभागिनी।
जो साथिनी होकर तुम्हारी थी अतीव सनाथिनी,
है अब उसी मुझ सी जगत में और कौन अनाथिनी?

(३९)

हा! जब कभी अवलोक कुछ भी मौन धारे मान से,
प्रियतम! मनाते थे जिसे तुम विविध वाक्य-विधान से
विह्वल उसी मुझ को अहो! अब देखते तक हो नहीं,
यों सर्वथा ही भूल जाना है सुना न गया कहीं॥

(४०)

मैं हूँ वही जिसका हुआ था ग्रन्थि-बन्धन साथ में,
मैं हूँ वही जिसका लिया था हाथ अपने हाथ में।
मैं हूँ वही जिसको किया था विधि-विहित अर्द्धाङ्गिनी,
भूलो न मुझको नाथ! हूँ मैं अनुचरी चिरसङ्गिनी॥

(४१)

जो अङ्गरागाङ्कित रुचिर सित सेज पर थी सोहती,
सुषमा अपार निहार जिसकी मैं मुदित हो मोहती।
तव मूर्त्ति क्षत-विक्षत वही निश्चेष्ट अब भूपर पड़ी,
बैठी तथा मैं देखती हूँ हाय! री छाती! कड़ी!!!

(४२)

हे जीवितेश! उठो, उठो, यह नींद कैसी घोर है!
है क्या तुम्हारे योग्य, यह तो भूमि-सेज कठोर है!
रख शीश मेरी जाँघ पर जो लेटते थे प्रीति से,
यह लेटना अति भिन्न है उस लेटने की रीति से॥

(४३)

कितना विनय मैं कर रही हूँ क्लेश से रोते हुए,
सुनते नहीं हो किन्तु तुम बेसुध पड़े सोते हुए।
अप्रिय न मन से भी कभी मैंने तुम्हारा है किया;
प्राणेश! फिर इस भाँति क्यों निज हृदय निर्दय कर लिया?

(४४)

होकर रहूँ किसकी अहो! अब कौन मेरा है यहाँ?
कह दो तुम्हीं बस न्याय से अब ठौर है मुझको कहाँ?
माता-पिता आदिक भले ही और निज जन हों सभी
पर, पति बिना पत्नी जगत में सुख न पा सकती कभी।

(४५)

रोका बहुत था हाय! मैंने "जाइए मत युद्ध में",
माना न तुमने किन्तु कुछ भी, निज विपक्ष विरुद्ध में।
हैं देखते यद्यपि जगत में दोष अर्थी जन नहीं;
पर वीर जन निज नियम से विचलित न होते हैं कहीं।

(४६)

किसका करूँगी गर्व अब मैं भाग्य के विस्तार से?
किसको रिझाऊँगी कहो अब नित्य नव शृङ्गार से?
ज्ञाता यहाँ अब कौन है मेरे हृदय के हाल का?
सिन्दूरबिन्दु कहाँ चला हा! आज मेरे भाल का?

(४७)

हा! नेत्र-युत भी अन्ध हूँ वैभव-सहित भी दीन हूँ,
वाणीविहित भी मूक हूँ, पदयुक्त भी गति-हीन हूँ।
हे नाथ! घोर विडम्बना है आज मेरी चातुरी,
जीती हुई भी तुम बिना मैं हूँ मरी से भी बुरी॥

(४८)

जो शरण अशरण के सदा, अवलम्ब जो गतिहीन के,
जो सुख दुखीजन के, तथा जो बन्धु दुर्विधि दीन के।
चिर शान्तिदायक देव हे यम! आज तुम भी हो कहाँ?
लोगे न क्या हा हन्त! तुम भी सुधि स्वयं मेरी यहाँ?

(४९)

कहती हुई बहु भाँति यों ही भारती करुणामयी,
फिर भी हुई मूर्च्छित अहो! वह दुःखिनी विधवा नई।
कुछ देर को फिर शोक उसका सो गया मानों वहीं,
हतचेत होना भी विपद में लाभदायी है महा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५०)

वर्षा हमें इस विषय पर है और भी लिखना अभी,
देखा करेंगी किन्तु उसकी स्वस्थ होकर फिर कभी।
इस समय तो हे मित्र! उसका चित्र दिखलाकर यहीं,
जी खोल कर रोये बिना हमसे रहा जाता नहीं!

मैथिलीशरण गुप्त।

भारत के जातीय पुस्तकालय।

बहुत लोग समझते हैं कि प्राचीन भारत के निवासी निरे असभ्य थे। वे पुस्तकों की रक्षा करना अथवा पुस्तकालय स्थापित करना बिलकुल न जानते थे। ये सब बातें उन्होंने अब अँगरेज़ों की कृपा से सीखी हैं। परन्तु वस्तव में ऐसा नहीं है। भारतवासी प्राचीन काल से लेकर अब तक सदा विद्याव्यसनी रहे हैं। पुस्तकें लिखने और लिखवाने तथा पुस्तकालय स्थापित करने को वे सदा से परोपकार और पुण्य का काम समझते रहे हैं। कुछ दिन हुए डॉन नामक अँगरेज़ी मासिक पत्र में इस विषय पर एक लम्बा लेख प्रकाशित हुआ था। आज हम उसी की सहायता से भारतवर्ष के पुस्तकालयों का सिलसिलेवार वृत्तान्त सुनाते हैं।

वर्तमान और प्राचीन पुस्तकालयों में भेद।

आजकल छापे की नई नई कलों की सहायता से बहुत थोड़े समय और ख़र्च में एक एक किताब की हज़ारों कापियाँ तैयार हो सकती हैं। परन्तु प्राचीन काल में ऐसा न था। उस समय एक किताब की सिर्फ़ एक प्रति तैयार करने में बरसों लग जाते थे। इस दशा में बड़े बड़े पुस्तकालय खोलना पूर्वकाल में कितना कठिन काम था, उसे पाठक सहज ही में समझ सकते हैं। परन्तु तिस पर भी यहाँ प्राचीन काल में जगह जगह बड़े बड़े पुस्तकालय स्थापित थे। इससे सिद्ध होता है कि हमारे पूर्वज बड़े ही अध्यवसायी और विद्या-व्यसनी थे।

विषय-विभाग।

इस विषय पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है। परन्तु हम केवल निम्नलिखित बातों को बहुत संक्षेप में यहाँ पर लिखेंगे :—

(१) जातीय-साहित्य-रक्षा की अत्यन्त प्राचीन विधि।

(२) गुप्त-नरेशों के समय में भारतीय साहित्य की उन्नति और प्रचार तथा पुस्तकालयों का स्थापित किया जाना।

(३) तीन प्रकार के पुस्तकालय—(१) विहार, (२) मन्दिर और (३) राज-दरबार से सम्बन्ध रखने वाले।

(४) नालन्दा, ओदन्तपुरी और विक्रमशिला के बौद्ध-पुस्तकालय।

(५) जैन-पुस्तकालय या भारती-भाण्डार।

(६) हिन्दू और जैन राजाओं के दरबारों के पुस्तकालय।

साहित्य-रक्षा की प्राचीन विधि।

बहुत प्राचीन काल के भारतवासी अपने साहित्य की रक्षा बहुधा पुस्तकों के द्वारा न करते थे। वे लोग इस बहुत बड़े कार्य को अपनी स्मरणशक्ति की सहायता से पूरा करते थे। वैदिक युग में यह प्रथा पूर्ण रूप से विद्यमान थी। उस समय सारी शिक्षा वाणी के द्वारा दी जाती थी। गुरु अपने शिष्य को जो कुछ सुनाता था उसी को वह कण्ठस्थ कर लेता था। पुस्तकों की कोई वैसी आवश्यकता न थी। यह प्रथा कहीं कहीं पर अब भी बनी हुई है। भारतवर्ष में जब लिखने का प्रचार अच्छा तरह हो गया था तब भी धार्मिक ग्रंथ लिखने से लोग परहेज़ करते थे। बौद्ध धर्म की प्राचीन पुस्तकों में ऐसी कितनी ही बातों का उल्लेख है जिनसे यह सिद्ध होता है कि बौद्ध काल की आदिम अवस्था में पुस्तकें लिखने का रिवाज न था। धार्मिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य लोगों को कण्ठ करना पड़ता था। फाहियान नाम का चीनी यात्री ईसा की पाँचवीं शताब्दी में इस देश में आया था। उसने लिखा है कि इस समय भी लिखे हुए बौद्ध ग्रंथ बहुत कम पाये जाते हैं। अधिकाँश ग्रंथ लोगों के मस्तिष्क ही में विराजमान हैं।

आदिम पुस्तकालय।

फाहियान के बहुत कोशिश करने पर केवल पाटलीपुत्र के महायान विहार में कुछ हस्तलिखित बौद्ध ग्रंथ मिले थे। यह पहला पुस्तकालय था जिसका हम लोगों को पता लगता है। इसके बाद ईसा की पाँचवीं, छठी और सातवीं शताब्दी में बौद्ध और पौराणिक साहित्य की ख़ूब उन्नति हुई। ग्रंथ पर ग्रंथ लिखे जाने लगे। काव्य, विज्ञान, दर्शन और धर्म-सम्बन्धी ग्रंथ दिन दूने रात चौगुने बढ़ने लगे। जगह जगह पुस्तकालय स्थापित हो गये। यहाँ तक कि कोई विहार, उपाश्रय, मठ या मन्दिर ऐसा न बचा जहाँ कुछ न कुछ ग्रंथ एकत्र न हों। हिन्दू, जैन और बौद्ध लोग मन्दिरों, मठों और विहारों में पुस्तक दान करना पुण्य-कार्य समझने लगे। फल यह हुआ कि कुछ दिनों में ये स्थान विद्या के भाण्डार और शिक्षा के केन्द्रस्थान बन गये।

पुस्तकालयों की तीन श्रेणियाँ।

शुरू में दो प्रकार के पुस्तकालय इस देश में थे। एक तो वे जो जैन या बौद्ध विहारों से सम्बन्ध रखते थे; दूसरे वे जो हिन्दू-मन्दिरों में बने हुए थे। इन दोनों प्रकार के पुस्तकालयों के अधिकांश ग्रंथ धर्मसम्बन्धी थे। परन्तु काव्य आदि अन्य प्रकार के साहित्य की उन्नति के साथ साथ एक तीसरे प्रकार के पुस्तकालयों की आवश्यकता हुई, जिन्हें उस समय के राजा-महाराजाओं ने आश्रय दिया। आजकल भी इन तीनों प्रकार के पुस्तकालयों के नमूने पाये जाते हैं। इनमें से पश्चिमी भारत के जैनियों के भारती-भाण्डार, दक्षिण के हिन्दू-मठों से सम्बन्ध रखने वाले पुस्तकालय और तंजोर, माइसोर, काश्मीर, नैपाल और राजपूत-नरेशों के दरबारों के पुस्तकालय मुख्य हैं।

नालन्दा, विक्रमशिला और ओदन्तपुरी के बौद्ध-पुस्तकालय।

प्राचीन काल के बौद्ध-पुस्तकालयों में सबसे बड़ा और प्रसिद्ध नालन्दा का पुस्तकालय था। यह स्वनाम-विख्यात नालन्दा-विश्वविद्यालय से सम्बन्ध रखता था। यह पुस्तकालय जिस इमारत में था वह नौमंज़िला थी! इसे सब लोग रत्नोदधि अर्थात् रत्नों का समुद्र कहते थे। इस सुन्दर और विशाल भवन में बौद्ध-धर्म के महायान और हीनयान सम्प्रदाय के प्रायः सभी ग्रंथ विद्यमान थे। कहते हैं कि बौद्ध लोगों का इतना बड़ा पुस्तकालय उस समय संसार में दूसरा न था। नालन्दा-विश्वविद्यालय उस समय ख़ूब उन्नतावस्था में था। हुयेनसंग ने उसके बाह्य और आन्तरिक वैभव का जैसा हृदयग्राही वर्णन किया है वह सरस्वती के किसी गताङ्क में प्रकाशित हो चुका है। यद्यपि उसने रत्नोदधि पुस्तकालय का स्पष्टतापूर्वक वर्णन नहीं किया, तथापि वह यहाँ से चलते समय कोई ६५७ ग्रंथ ले गया। इनमें से कोई ७४ ग्रंथों का उसने चीनी भाषा में अनुवाद किया। हुयेनसंग के सिवा और भी कितनेही चीनी और भारतीय विद्वानों ने उस समय चीन, कोरिया और जापान में बौद्ध ग्रंथों का प्रचार किया। यही कारण है कि जिन संस्कृत-बौद्ध-ग्रंथों का भारतवर्ष में नामोनिशान तक नहीं मिलता उनके चीनी और जापानी अनुवाद चीन और जापान के मठों में अब भी पाये जाते हैं। शोक की बात है कि आठवीं शताब्दी में कुछ नादान भिक्षुकों ने इस विख्यात पुस्तकालय को जला कर राख कर दिया।

नालन्दा के नष्ट होने पर मगध में दो अन्य विश्वविद्यालयों का उदय हुआ। एक ओदन्तपुरी में और दूसरा विक्रमशिला में। इन दोनों विश्वविद्यालयों में बड़े बड़े पुस्तकालय थे। इन्हीं पुस्तकालयों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से ग्रंथ ले जाकर तिब्बतनिवासियों ने अपने साहित्य की पुष्टि की। ओदन्तपुरी का विहार (जिसमें ग्रंथ रक्खे हुए थे) नालन्दा के विहारों से भी अधिक बड़ा था। उसमें बौद्ध-ग्रंथों के सिवा हिन्दुओं के ग्रंथ भी थे। यह विहार और पुस्तकालय भी सन् १२०२ में बख़्तयार ख़िलजी के द्वारा जला दिया गया।

पश्चिमी भारत के जैन-पुस्तकालय।

इस समय यद्यपि बौद्ध-पुस्तकालयों का पता नहीं, तथापि जैन-पुस्तकालय अब भी मौजूद हैं। इसका कारण यह है कि बौद्ध धर्म देश से विलुप्त हो गया है; पर जैन धर्म अब भी जीवित है। राजपूताना और गुजरात के कई नगरों में जैनियों के उपाश्रय बने हुए हैं। इनमें से प्रत्येक उपाश्रय में थोड़े बहुत धार्मिक और ऐतिहासिक ग्रंथों का संग्रह अवश्य है। ये पुस्तक-संग्रह या पुस्तकालय भारती-भाण्डार कहलाते हैं। ये भाण्डार विशेष कर राजपूताना और गुजरात ही में पाये जाते हैं। कारण यह है कि जैनियों की बस्ती वहाँ बहुत अधिक है। यों तो इन प्रान्तों के नगर नगर और मुहल्ले मुहल्ले में उपाश्रय और भाण्डार बने हुए हैं। तथापि पाटन, अहमदाबाद, बड़वान, सूरत, काम्बे, थराड़, जैसलमीर और जेसलमेर के भाण्डार मुख्य हैं। इन भारतीभाण्डारों में से अधिकांश में दस दस हज़ार से अधिक हस्तलिखित ग्रंथ मौजूद हैं। पाटन या सिद्धपुर पाटन, जिसे पूर्वकाल में अन्हिलवाड़ कहते थे, बहुत पुराना शहर है। जैनियों का तो यह केन्द्रस्थान है। जितने अधिक जैनी यहाँ रहते हैं उतने अन्यत्र नहीं। उपाश्रय भी यहाँ बहुत से हैं। प्रत्येक उपाश्रय में कुछ न कुछ ग्रंथ अवश्य हैं। जो उपाश्रय जितना अधिक प्राचीन होगा उतनेही अधिक ग्रंथ उसमें होंगे। पाटन के चौदह पन्द्रह पुस्तकालयों में से कई बहुत पुराने हैं। इससे आप समझ सकते हैं कि केवल पाटन ही में कितने हस्तलिखित ग्रंथ होंगे। पाटन के समस्त पुस्तकालय नगर सेठ और कुछ पञ्चों की देख भाल में रहते हैं। इनमें से हर एक भाण्डार उस गली के नाम से प्रसिद्ध है जिसमें वह स्थित है। भाण्डार की पुस्तकें सन्दूक़ों में रक्खी रहती हैं। उन्हें महन्त लोग अकसर पढ़ा करते हैं। इसके सिवा वे अपने पुस्तकालय के लिए बाहरी ग्रंथों की नक़ल भी करते रहते हैं। इसे वे पुण्य का कार्य समझते हैं।

पाटन के बाद जेसलमीर के पारसनाथ-भारती-भाण्डार का नम्बर है। यह ओसवाल जैनियों का है। इस भाण्डार में जैन-ग्रंथों के सिवा बहुत से काव्य और हिन्दुओं के धर्मशास्त्र भी हैं। बिल्हण-कृत विक्रमाङ्क-चरित और उपेन्द्रहर्ष-पालित-कृत एक ऐतिहासिक काव्य पहले पहल यहीं पाया गया था। उनमें से पहले काव्य में दक्षिण के चालुक्यवंशी नरेश विक्रमाङ्कदेव का ऐतिहासिक वृत्तान्त है और दूसरे में गौड़-नरेश पर क़नौजराज यशोवर्म्मन की विजय की गाथा गाई गई है। इससे मालूम होता है कि इन भारतीय भाण्डारों में केवल एक विशेष धर्म या मत ही के ग्रंथ नहीं रहते, किन्तु अन्य प्रकार के साहित्य-सम्बन्धी ग्रंथ भी रहते हैं।

दरबारी पुस्तकालय।

यह हम लिख चुके हैं कि विहार, उपाश्रय और मठों की तरह राज-दरबारों में भी पुस्तकालय रहते थे। ईसा की चौथी शताब्दी के बाद की जितनी प्रशस्तियाँ अब तक मिली हैं उन सबमें नरपतिगण विद्यारसिक और विद्वानों के संरक्षक कहे गये हैं। परन्तु सबसे पहला पुस्तकालय, जिसका पता लगता है, धार के सुप्रसिद्ध-नरेश राजा भोज का था। अपने समय का यह अत्यन्त विख्यात पुस्तकालय था। जब ११४० ई० में सिद्धराज जयसिंह ने मालवा को विजय किया तब वह इस पुस्तकालय के समस्त ग्रंथों को अपने साथ अन्हिलवाड़ ले गया। यहाँ उसने अपने दरबारी पुस्तकालय में इन ग्रंथों को मिला लिया।

इस समय भी अलवर, बीकानेर, जम्बू, माईसोर, तंजोर और नैपाल के दरबारों में बड़े बड़े पुस्तका-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लय विद्यमान हैं। इन दरबारी पुस्तकालयों में किस किस प्रकार के कौन कौन ग्रंथ विद्यमान हैं, इसका विवरण भी भारत-गवर्नमेंट प्रकाशित कर चुकी है। इनके सिवा राजपूत-नरेशों के दरबारों में भी संस्कृत, हिन्दी, फ़ारसी और अरबी की अच्छी अच्छी किताबों का संग्रह है। इनमें से जयपुर-दरबार का पुस्तकालय मुख्य है। इसे महाराज सवाई जयसिंह ने स्थापित किया था। वर्तमान जयपुर नगर उन्हीं का बसाया हुआ है। वे ज्योतिषशास्त्र के बड़े भारी ज्ञाता थे। उन्होंने उत्तर भारत के मुख्य मुख्य पाँच नगरों में वेधशालायें स्थापित की थीं, जिन्हें देख कर अब भी बड़े बड़े विद्वान् दंग रह जाते हैं।

राजपूताने के अन्य शाही पुस्तकालयों में जोधपुर, बीकानेर और अलवर के पुस्तकालय भी उल्लेख योग्य हैं। कहते हैं कि महाराजा जोधपुर के पुस्तकालय में कोई १८०० हस्त-लिखित ग्रंथ मौजूद हैं। इसके सिवा बहुत सी छपी हुई संस्कृत और हिन्दी की पुस्तकें भी वहाँ हैं। बीकानेर के पुस्तकालय में कोई दो हज़ार हस्तलिखित संस्कृत-ग्रंथ हैं। इसी तरह अलवर के दरबारी पुस्तकालय में भी कई सौ संस्कृत-ग्रंथ हैं। सुनते हैं, अलवर में अरबी और फ़ारसी ग्रंथों का भी अच्छा संग्रह है।

राजपूताने के बाहर उत्तर-भारत में काश्मीर और नैपाल के पुस्तकालय मुख्य हैं। काश्मीर कई शताब्दियों से साहित्यचर्चा का केन्द्रस्थल रहा है। पिछले छः सौ वर्षों में वहाँ सैकड़ों अच्छे अच्छे कवि हुए हैं। इनमें से कुछ ऐसे भी हैं जो महाकवि कहे जा सकते हैं। व्याकरण और अलङ्कारशास्त्र में भी काश्मीर ने अच्छी उन्नति की है। पतञ्जलि-कृत सुप्रसिद्ध महाभाष्य काश्मीरी पण्डितों की कृपा से ही हम लोगों को देखने को मिला है। इतने बड़े भारतवर्ष में काश्मीर ही एक ऐसा प्रदेश है जहाँ संस्कृत में एक ऐतिहासिक ग्रंथ लिखा गया। काश्मीर के महाराज सदा से विद्याव्यसनी और विद्वानों के संरक्षक रहे हैं। इस समय भी काश्मीर के दरबार में बहुत से पण्डित हैं, जो उत्तर और मध्य भारत में हस्तलिखित संस्कृत-ग्रंथों को सदा खोजते और जमा करते रहते हैं। जम्बू के दरबार में इस समय एक बड़ा भारी पुस्तकालय है। इस पुस्तकालय के ग्रंथों का काग़ज़, लिखाई और जिल्दबन्दी बहुतही अच्छी है; बेल-बूटों से उनका सौन्दर्य्य और भी बढ़ गया है।

भारतवर्ष में जितने संस्कृत-पुस्तकालय हैं उनमें नैपाल का शाही पुस्तकालय सबसे अधिक प्राचीन है। वहाँ का कोई कोई हस्तलिखित ग्रंथ गुप्त-वंशी नरेशों के समय का है। इस पुस्तकालय में सब मिलाकर कोई पाँच हज़ार ग्रंथ हैं। उनमें कुछ ताड़पत्रों पर लिखे हुए हैं और कुछ काग़ज़ पर। ताड़पत्रों पर लिखे हुए ग्रंथ १०१ बंडलों में बँधे रक्खे हैं। काग़ज़वाले ग्रंथों की अपेक्षा ये अधिक प्राचीन हैं। यह पुस्तकालय किसी एक मनुष्य का स्थापित किया हुआ नहीं है। अत्यन्त प्राचीन काल से लेकर अब तक नैपाल में जितने राजा हुए हैं उनमें से प्रत्येक ने कुछ न कुछ ग्रंथ इस पुस्तकालय में अवश्य बढ़ाये हैं। नैपाल की आबोहवा ऐसी अच्छी है कि वहाँ पुस्तकों में कीड़े नहीं लगते। यदि कोई पुस्तक ख़राब होने लगती है तो उसकी नई प्रति तुरन्त तैयार कर ली जाती है।

दक्षिण भारत में तंजोर और माइसोर के नरेशों के पुस्तकालय बड़े महत्त्व के हैं। इनमें से पहला बड़ा प्रसिद्ध है। डाक्टर बरनेल का कथन है कि इतना बड़ा और महत्त्वपूर्ण पुस्तकालय संसार में दूसरा न होगा। यह पुस्तकालय केवल तीन सौ वर्ष का पुराना है। इसे तंजोर के तत्कालीन अधिपति तैलंग-नायकों ने स्थापित किया था। इस समय १८००० से अधिक हस्तलिखित संस्कृत-ग्रंथ मौजूद हैं, जो ग्यारह भिन्न भिन्न लिपियों में लिखे हुए हैं। लिपियों के नाम ये हैं—देवनागरी, नन्दीनागरी, तैलंगी, कनाड़ी, ग्रंथी, मलयाली, बँगला, पंजाबी, काश्मीरी और उड़िया। यह पुस्तकालय कैसा उपयोगी और मूल्यवान् है, यह बात डाक्टर बरनेल के निम्न लिखित कथन से स्पष्ट हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

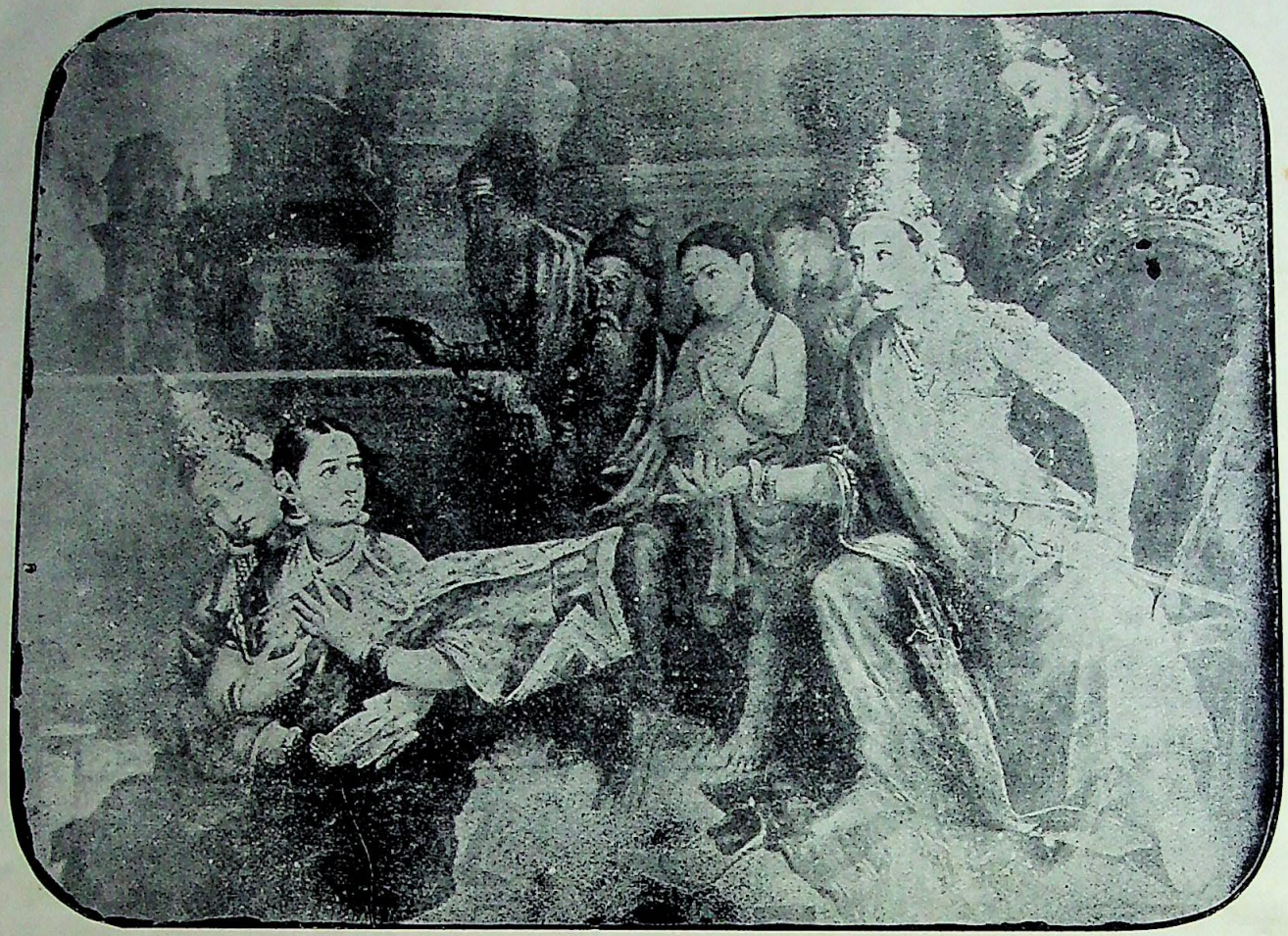

सीताजी का पृथिवी-प्रवेश ।

ये अवनी-अङ्कस्थ, लगाये दृष्टि राम में—हैं प्रविष्ट हो रहीं जानकी धरा-धाम में ।
सिंहासन से झुके हुए आगे को दुख से—"नहीं, नहीं" कह रहे राम हैं विस्मित मुख से ॥

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायगी। डाक्टर साहब कहते हैं:—"यह बात सब लोग जानते हैं कि संस्कृत के प्रायः सभी मुख्य मुख्य ग्रंथों के भिन्न भिन्न संस्करण पाये जाते हैं। तंजोर का पुस्तकालय इस विषय में अद्वितीय है। क्योंकि वहाँ संस्कृत के समस्त ग्रंथों के सब संस्करण या आवृत्तियाँ मौजूद हैं। हमारी समझ में इतना बड़ा पुस्तकालय साढ़ेसात लाख रुपये से कम की लागत में नहीं खुल सकता।"

उदयनारायण वाजपेयी।

सीताजी का पृथ्वी-प्रवेश।

(१)

सगर्भा सीता को तज कर प्रजा-रञ्जन-हित,
हुए अन्तर्यामी रघुपति महा-व्यग्र व्यथित।
तथा सीता देवी प्रिय-विरह से दग्ध मन में
रहीं ज्यों त्यों जीती विधि-विहित वाल्मीकि-वन में॥

(२)

वहीं जन्मे प्यारे लव-कुश यथाकाल उनसे;
हुए वे दोनोंही निज जनक ज्यों रूप-गुण से।
महा शोभा-शाली विदित उनसे सो तप-वन
दिखाता था मानों प्रकटित हुआ राज-भवन॥

(३)

रघुपुत्रों के जैसा समझ मन से आदि-कवि ने
महा ब्रह्मज्ञानी तप-सदन ज्यों चंद-रवि ने।
स्वयं शिक्षा दे के समुचित उन्हें प्रेम-सहित,
पढ़ाया पीछे से निज-रचित श्रीराम-चरित॥

(४)

बड़ी श्रद्धा से वे विधि-युत उसे गान करके,
लगे श्रोताओं को चकित करने चित्त हरके।
सुहाता है योंही सतत सबको गान हित हो,
कथा ही क्या है जो शुभ-चरित से संगठित हो॥

(५)

किये वैदेही की कनक-प्रतिमा स्थापित, फिर,
लगे रामस्वामी सविधि करने यज्ञ रुचिर।
दिया था रानी को तज कुछ उन्होंने न मन से,
किया था सम्बन्ध प्रकट नृप का लोक-जन से॥

(६)

अतः आये थे जो मुदित मुनि के संग मख में,
लगे दो चन्द्रों से लवकुश वहाँ लोक-चख में।
प्रशंसा विज्ञों से श्रवण करके रूप-गुण की,
परीक्षा लेने में तब रत हुए राम उनकी॥

(७)

सभा में आये वे जिस समय आमन्त्रित हुए,
खुले नेत्रों वाले सकल जन आश्चर्यित हुए।
मनोहारी दोनों, कर न सकते साम्य सुर थे,
किशोरावस्था की रघुवर-छटा के मुकुर थे॥

(८)

हुए नाना भाव स्फुरित उनको देख करके,
रहे तो भी राम प्रकृत मन में धैर्य धरके।
भले ही हो सिन्धु द्रवित विधु के अभ्युदय से,
कभी मर्यादा को न वह तजता है हृदय से॥

(९)

सुरीले कण्ठों के लघु वयस के किन्नर यथा,
लगे गाने दोनों जिस समय रामायण-कथा।
सभी के नेत्रों से जल बह चला प्रेम-मय यों,
खिले अम्भोजों से हिम-सलिल प्रातः समय ज्यों॥

(१०)

अनिच्छा दोनों की लख फिर पुरस्कार-धन में,
हुआ जो सभ्यों को उन पर महाश्चर्य मन में।
हुआ विद्या से भी प्रकट उतना विस्मय नहीं,
बड़ाई पाती है प्रकृति गुण से भी सब कहीं,

(११)

"सुधा से भी मीठी किस सुकवि की है यह कृति?
तुम्हारा गाने में गुरुवर तथा कौन सुकृती?"
स्वयं पूछे जाके हित-सहित यों राम-मुख से,
बताया दोनों ने प्रथम-कवि का नाम सुख से।

(१२)

सदा शुद्धाचारी भुवन-भयहारी रघुपति,
हुए भ्राताओं के सहित तब उत्कण्ठित अति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा जाके शीघ्र श्रुत-सुकृत वाल्मीकि-निकट,
लगे देने सारा सविनय उन्हें राज्य प्रकट॥

(१३)

सती सीता के वे सुत-युग उन्हीं के कह कर,
पुनः बोले होके सदय उनसे यों मुनिवर।
"विशुद्धा वैदेही तव भजन ही काम उसको;
करो अङ्गीकार प्रणय-युत हे राम! उसको"॥

(१४)

दशग्रीवारति श्रवण कर प्यारे वचन यों,
हुए कारुण्यार्द्र द्रुत जल भरे नम्र घन ज्यों।
लगे देने पीछे सविनय उन्हें उत्तर यथा—
धरा में सो दृश्य प्रचुरतर आश्चर्यमय था॥

(१५)

"अमर्त्यों के आगे, मम निकट रत्नाकर-तट,
हुई वह्नि-द्वारा जनकतनया शुद्ध प्रकट।
न की तो भी श्रद्धा उस पर प्रजा ने हृदय से;
तजा है सो मैंने विवश उसको धर्म्म-भय से॥

(१६)

"दिखा के लोगों को सब विध विशुद्धात्मचरित,
करावे विश्वास प्रकट अब जो भक्ति-भरित।
तुम्हारी आज्ञा से उस सुतवती को सदन में
करूँ तो हे तात! ग्रहण फिर हो तुष्ट मन में"॥

(१७)

सुखी होके जी में सुखद हरि के यों कथन से,
बुलाया सीता को प्रथम कवि ने पुण्य-वन से।
सभा में एकत्र प्रिय पुरजनों को तब कर,
हुए सीतानाथ स्थित विमल सिंहासन पर॥

(१८)

महातेजःपूर्णा रुचिकर रमा और रति से,
किये नीची ग्रीवा, गमन करती शान्त गति से।
तपों की अर्चा सी अरुण पट धारे, कृश महा,
गई जानी सीता 'प्रकृत शुचि' शोभामय वहाँ॥

(१९)

झुकाये लोगों ने समझ कर देवी सिर उसे,
सभा में दी आज्ञा प्रथम-कवि ने यों फिर उसे।
"त्रिलोकी में वत्से! अमल यश फैला कर अभी,
मिटा तू लोगों का निज विषय में संशय सभी॥"

(२०)

पवित्राम्बु-द्वारा कर तब क्रिया आचमन की,
लगाये लोगों की निज विषय में वृत्ति मन की।
उठाके थोड़ा सा वर-वदन वाणी कथन को,
कहे सीता ने यों सच वचन शङ्का-मथन को॥

(२१)

"किसी का सोते भी निज पति बिना राघव कहीं,
किया हो जो मैंने निज हृदय में चिन्तन नहीं।
हुआ हो जो मेरा व्रत न पति में खण्डित कभी,
करो पृथ्वी देवी! ग्रहण मुझ को तो तुम अभी॥"

(२२)

सती सीता के यों कथन करते ही झट वहाँ,
हुआ पृथ्वी में से प्रकटित प्रभा-मण्डल महा।
उसी में रक्खे थे सिर पर जिसे पन्नग-वर,
हुई पृथ्वी देवी प्रकट शुभ सिंहासन पर।

(२३)

अनेकों रत्नों के रुचिर गहने धारण किये,
पसारे बाहों को निज शुचि सुता में दृग दिये।
जगद्धात्री-गोत्रा विमल-वसना शान्त-वदना,
हुई क्या लोगों को उस समय आश्चर्यप्रद ना?

(२४)

उठाके सीता को त्वरित फिर सो अङ्क-थल में,
क्षमारूपा क्षोणी प्रविशित हुई आत्म-तल में।
गई सीता देवी प्रिय-विरह का दुःख सहते,
रहे राम स्वामी 'नहिँ नहिँ नहीं' शब्द कहते॥

(२५)

महा मर्म-स्पर्शी इस समय की ही यह छवि,
इसे वाणी-द्वारा कर न सकते वर्णन कवि।
घटी है ज्यों ऐसी प्रकट घटना अद्भुत यहीं,
छटा है वैसी ही अनुपम तथा सुन्दर सही।

मैथिलीशरण गुप्त।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्योमयान ।

मनुष्य की यह इच्छा प्राचीन काल सेही रही है कि वह स्थल और जल की तरह आकाश में भी स्वतन्त्रता से विचरण करे। आकाश-विहार का ज़िक्र संस्कृत-काव्यों, पुराणों और रोम तथा ग्रीस के प्राचीन ग्रंथों में कितनेही जगह आया है। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि ये कहानियाँ कहाँ तक सत्य हैं। क्योंकि उनकी सत्यता का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं पाया जाता। हाँ, जिन आकाश-उड्डानों का ठीक ठीक पता लगता है उनमें सबसे पहला १७८३ ई० में हुआ था।

उस समय फ़्रांस के अनोने नगर में मांट गोल-फ़ियर नाम के दो सगे भाई रहते थे। एक दिन उन्हें दैवयोग से मालूम हो गया कि यदि किसी थैले में गर्म हवा भर दी जाय तो वह उड़ने लगेगा। बस यही विचार ग़ुब्बारों के बनने का मूल कारण हुआ। दोनों भाई ग़ुब्बारों में गर्म हवा भर कर कई बार उड़े और पौन पौन घंटे तक उड़ते रहे। कुछ दिन बाद ग़ुब्बारों में गर्म हवा की जगह हाइड्रोजन भरी जाने लगी और उनपर काग़ज़ के स्थान पर रेशम के ग़िलाफ़ चढ़ाये जाने लगे। पहला मनुष्य, जिसने ग़ुब्बारे पर इँगलिश चेनल को पार किया, बैंकार्ड था। उसने यह असाधारण वीरता १७८५ ई० में दिखलाई थी।

उसी समय से इस बात की कोशिश की जाने लगी कि ग़ुब्बारे ऊपर, नीचे, इधर, उधर अथवा आगे, पीछे चढ़नेवाले की इच्छानुसार चलाये जा सकें। परन्तु सत्तर वर्ष तक इसमें कोई सफ़लता नहीं हुई। हाँ, ख़ुद ग़ुब्बारे की बनावट में तरह तरह की उन्नति की गई। १८५२ ई० में जिफ़र्ड नाम के एक साहब ने तीन घोड़ों की शक्ति का एक यंजिन बनाया। यह तौल में कोई पचास सेर था। इसने सोचा कि इस यंजिन की सहायता से ग़ुब्बारे अपनी इच्छानुसार चलाये जा सकेंगे। इसलिए उसने सिगार की शकल का एक ग़ुब्बारा तैयार किया और उसमें इस यंजन को लगाया। इस प्रकार उसने ऐसे कई ग़ुब्बारे बनाये जो हवा में स्वेच्छानुसार चलाये जा सकते थे। परन्तु इनमें ख़र्च बहुत पड़ता था। इसलिए उसने इस काम को छोड़ दिया। इसके बाद से लेकर पेरिस के घेरे के समय तक इसकी ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। हाँ, इस समय डुपाय डी लोम नाम के एक फ़्रेंच ने पूर्वोक्त गुणविशिष्ट एक ग़ुब्बारा तैयार किया। कहते हैं कि इसको आठ आदमी चलाते थे। इसके बाद पाल हेनलिन नामक एक जर्मन ने एक ऐसा ग़ुब्बारा बनाया जो आजकल के ग़ुब्बारों से बहुत मिलता जुलता है। परन्तु इसके यंजिन में केवल कोयले का गैस भरा गया था। इसलिए वह उठ न सकता था।

सन् १८८४ में कैपटेन रेनार्ड ने नौ घोड़ों की शक्ति का एक ऐसा यंजिन बनाया जो बिजली के ज़ोर से चलता था। इसे उसने एक ग़ुब्बारे में लगा कर कोई सात बार उड़ाया। उनमें से पाँच दफ़े वह उसी स्थान पर लौट आया जहाँ से उड़ा था। यद्यपि इसमें यथेष्ट सफलता नहीं हुई तथापि इसने यह बात अच्छी तरह सिद्ध कर दी कि हवा में ग़ुब्बारे उसी तरह चलाये जा सकते हैं जिस तरह पानी पर जहाज़। उन्नीसवीं शताब्दी में व्योमयानों के द्वारा वायु-विजय करने का यह अन्तिम उपाय था।

जब तक मोटर की यथेष्ट उन्नति न हुई थी तब तक वायु-विजय की आशा दुराशा मात्र थी। मोटर के हलके, छोटे किन्तु शक्तिशाली यंजिनों को देखकर चतुर यंजिनियरों के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि उनकी सहायता से मनमाने आकाशयान भी बनाये जा सकते हैं। इस बीसवीं शताब्दी के आदि से लेकर अब तक इस विषय में जो कुछ उन्नति हुई है वह पेट्रोलियम या मिट्टी के तेल के यंजिन की सहायता ही से हुई है।

अब तक जितने प्रकार के व्योमयान बने हैं वे मुख्यतः दो भागों में विभक्त किये जा सकते हैं। एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो वे जो वायु की अपेक्षा हलके हैं और दूसरे वे जो वायु की अपेक्षा भारी हैं। पहले प्रकार के व्योमयान कई तरह के होते हैं। इनमें से गोलाकार, अनमनीय सिगार के आकार के, अर्धनमनीय सिगार के आकार के और नमनीय सिगार के आकार के ग़ुब्बारे मुख्य हैं।

सब प्रकार के सिगार-आकार वाले ग़ुब्बारों की शकल एक सी होती है। इनमें से अनमनीय नमूने के सिगार-आकार ग़ुब्बारों के बनाने की रीति पहले पहल कौंट जेपलिन ने निकाली। वे इस नमूने को बहुत पसंद करते हैं। यद्यपि इस प्रकार के ग़ुब्बारे वायु की अपेक्षा हलके होते हैं तथापि वे हवा में बहुत ऊँचाई पर नहीं जा सकते। लैबाडी नाम का एक फ़्रेंच अर्धनमनीय सिगार-आकारवाले ग़ुब्बारों का प्रचारक है। परन्तु हाल ही में कई फ़्रेंच यंजिनियरों ने ऐसे ग़ुब्बारे बनाये हैं जो बिलकुल नमनीय हैं। इन तीनों क़िस्मों के सिगार-आकार ग़ुब्बारे पहले पहल फ़्रांस में बने थे। परन्तु अब इँगलैंड तथा योरप के अन्य देशों में भी बनने लगे हैं।

हमने ऊपर लिखा है कि "वायु की अपेक्षा हलके" व्योमयान चार प्रकार के होते हैं। इनमें से गोलाकार ग़ुब्बारे तमाशा देखने के सिवा किसी काम के नहीं होते। इसलिए उनका ज़िक्र करना व्यर्थ है। हाँ, शेष तीन प्रकार के सिगार-आकार के ग़ुब्बारे वायु-विजय में थोड़ी बहुत सहायता दे सकते हैं। इनमें कौंट ज़ेपलिन का अनमनीय सिगार-आकार वाला ग़ुब्बारा सबसे अधिक उपयोगी और प्रसिद्ध है। इसमें छोटे छोटे कई थैले होते हैं जिनमें गैस भरा रहता है। इसके फट पड़ने की आशङ्का बहुत कम होती है। इसका प्रत्येक अङ्ग ख़ूब दृढ़ होता है। परन्तु इसमें सबसे बड़ा दोष यह है कि यह केवल मन्द-वायु में व्योमविहरण कर सकता है; तेज़ हवा के झोंके इसके लिए कालस्वरूप हैं। कुछ दिन हुए इस नमूने के एक ग़ुब्बारे की इसी दोष के कारण बड़ी दुर्दशा हुई थी।

दूसरे दो प्रकार के सिगार-आकार वाले ग़ुब्बारों की रक्षा तेज़ हवा के झोंकों से, यद्यपि उनकी गैस निकालकर, की जा सकती है तथापि गैस निकलते ही वे बेकाम हो जाते हैं। इस दशा में उन्हें भूमि पर उतार लेने ही में कुशल होती है। परन्तु युद्ध आदि के समय ऐसा करना बड़ा ही भयङ्कर काम है। इसलिए वे भी उपयोगी नहीं कहे जा सकते। इन्हीं दोषों के कारण अब तक न मालूम कितने सिगार-आकार के ग़ुब्बारे और उनके सवार अकाल-काल-कवलित हो चुके हैं। यदि उनका ब्यौरेवार वृत्तान्त लिखा जाय तो एक पोथा तैयार हो सकता है। इसलिए प्रकट है कि "वायु की अपेक्षा हलके" ग़ुब्बारों में ऐसा एक भी नहीं जो आकाश में विहार करने वालों के लिए उपयोगी हो अथवा जिसके द्वारा वायु-विजय करने में सहायता मिल सके।

ऊपर जिन "वायु की अपेक्षा हलके" आकाशयानों का उल्लेख हुआ है उनका नाम हमने ग़ुब्बारा लिखा है। क्योंकि आकार के विचार से उनका यही नाम ठीक है। परन्तु जो आकाशयान वायु की अपेक्षा भारी होते हैं उन्हें ग़ुब्बारे कहना ठीक नहीं। क्योंकि वे एक प्रकार के यन्त्र होते हैं। इसलिए हम उन्हें व्योमविहारी यन्त्र या व्योमयान के नाम से पुकारेंगे। ये व्योमविहारी यन्त्र चार प्रकार के होते हैं। उनके नाम ये हैं:—उड्डान-यन्त्र, व्योमयान, पक्षियन्त्र और वायुपोत। इनमें से उड्डानयन्त्र और व्योमयान में विशेष अन्तर नहीं। क्योंकि दूसरा यन्त्र पहले ही की सहायता से बनाया गया है। तीसरे प्रकार का यन्त्र बनाने में पक्षियों की नक़ल की गई है। परन्तु इसमें सफलता नहीं हुई। इसलिए इस प्रकार के यन्त्रों का बनना प्रायः बन्द हो गया है। वायुपोत केवल वायु की सहायता से चलता है। उसके चलाने के लिए यंजिन आदि की आवश्यकता नहीं। जिन नियमों के अनुसार पतंग आकाश में उड़ती है उन्हीं के अनुसार व्योमयान भी व्योमविहरण करते हैं। डोरी का काम इसमें "स्क्रू" के द्वारा लिया जाता है। सच पूछिए तो व्योमयान बनाने में पतंग से बड़ी सहायता मिली है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उड्डानयन्त्र पहले पहल लिलियन्थल नाम के
हब ने बनाया था। उसके दोनों ओर दो पंख
र पीछे पूँछ या पतवार थी। पंखों के बीच में
हब बहादुर लटक जाते थे और अपना शरीर
गे, पीछे, इधर, उधर हिलाहिलाकर यन्त्र को
गे बढ़ाते जाते थे। प्रत्येक पंख की लम्बाई और
ड़ाई तेईस फ़ीट थी। पहले वे चपटे बनाये गये
। परन्तु पीछे से कुछ ख़मदार कर दिये गये थे।
छ दिनों बाद लिलियन्थल साहब ने अपने यन्त्र के
नों ओर एक एक पंख और लगाया। इससे यन्त्र
मज़बूती और उड़ने की शक्ति कुछ कुछ बढ़
ई। परन्तु १८९६ ई० में इस यन्त्र ने धोखा दिया।
ल यह हुआ कि पूर्वोक्त साहब एक दिन इससे
कर अकाल मृत्यु के ग्रास बन गये। आज कल
से व्योमविहारी यन्त्र बनाये जाते हैं उनके पिता
लियन्थल साहब ही हैं। क्योंकि जिन सिद्धान्तों
अनुसार आपने अपना यन्त्र बनाया था उन्हीं के
नुसार वर्तमान समय के यन्त्र बनाये जाते हैं।

लिलियन्थल के बाद पिलचर नाम के एक अँग-
ने उड्डानयन्त्र बनाने और उड़ाने में अच्छी ख्याति
म की। उसने अपने एक यन्त्र में मोटर लगाई।
न्तु दुर्भाग्यवश उसकी भी वही दशा हुई जो
लियन्थल की हुई थी। कुछ दिन हुए अमेरिका
केन्यूट और हेरिंग नाम के दो साहबों ने भी
नयन्त्र बनाने में बहुत उन्नति की थी।

यह तो हुई उड्डानयन्त्र की बात; अब व्योमयान
हाल सुनिए। कहते हैं कि सबसे पहला और
दर्श व्योमयान बनाने का यश अध्यापक लैंग्ली
प्राप्त है। अध्यापक महाशय वाशिंगटन (अमे-
) के स्मिथसोनियन इन्स्टिट्यूट के डाइरेक्टर
। लैंग्ली साहब ने अपना व्योमयान पहले पहल
९६ में उड़ाया। वह पौने दो मिनिट में कोई एक
क तक उड़ा। यन्त्र की लम्बाई साढ़े आठ फ़ीट
और चौड़ाई १५ फ़ीट थी। इसमें दोनों ओर दो दो
ने लगे थे। पंखों के बीच में एक यंजिन था,
पके ज़ोर से यन्त्र चलता था। सम्पूर्ण यन्त्र की
तौल केवल १४ सेर थी। मतलब यह कि लैंग्ली साहब का व्योमयान बड़ा ही दृढ़ और उपयोगी था। वे इसकी और भी उन्नति करना चाहते थे। परन्तु निर्दयी मृत्यु ने मन की बात मनही में लेजाने के लिए उन्हें मजबूर किया।

कुछ दिन हुए सर हरिम मैक्ज़िम साहब ने कोई तीन लाख रुपये की लागत का एक बड़ा भारी व्योमयान बनाया। इसमें कई पंख और पतवार लगाये गये थे। इसका यंजिन अत्यन्त शक्तिशाली होने पर भी तौल में बहुत हलका था। सम्पूर्ण यन्त्र का वज़न कोई ९८ मन था। यह दो बार उड़ाया गया। परन्तु दोनों बार उड़ाने के साथ ही इसके यंजिनों का चलना बन्द होजाता था। इसलिए इसके द्वारा व्योमविहार की आशा असंभव समझी गई। हाँ, इसके बनाने में ऐसी कई नई बातें मालूम हुईं जो व्योमविहारी यन्त्र बनाने में पीछे से बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

कई साल हुए फ़्राँस की गवर्नमेंट ने उस मनुष्य को पुरस्कार देने की प्रतिज्ञा की जो ऐसा व्योमयान बनाये जिस पर कम से कम एक मनुष्य चढ़कर उड़ सके और जो उसकी इच्छानुसार ऊपर, नीचे, इधर, उधर आ-जा सके। यह पुरस्कार सैंटोस डुमंट नाम के एक साहब ने प्राप्त किया। डुमंट साहब का व्योमयान एक बड़े भारी चमगीदड़ की शकल का था। इस यन्त्र पर डुमंट साहब पहले पहल १८९६ ई० में उड़े थे। उस बार कुछ कामयाबी न हुई। परन्तु १९०६ में वे इस पर २४१ फ़ीट उड़ सके। पीछे से उन्हें मालूम हुआ कि इस यन्त्र में अनेक दोष हैं। इसलिए उन्होंने उसे सदा के लिए त्याग दिया।

गत दो वर्षों में व्योमयान बनाने और उड़ाने में बहुत कुछ उन्नति हुई है। सच पूछिए तो इस विषय में अमेरिकन और फ़्रेंच लोग ही अग्रणी हुए हैं। क्योंकि इन दिनों जितने अच्छे अच्छे व्योमयान बने हैं वे इन्हीं दोनों जाति के प्रतिभाशाली यंजिनियरों की प्रतिभा का प्रसाद हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई डेढ़ साल हुआ हेनरी फारमैन नाम के एक साहब अपने व्योमयान पर ८२० गज़ तक आकाश में उड़े थे। इसे देख और सुन कर लोग दंग रह गये थे। सच पूछिए तो सारे सभ्य संसार में इसकी खलबली मच गई थी। तबसे लेकर अब तक व्योमयानों के उड़ाने में बहुत कुछ उन्नति की गई है। जैसा कि निम्नलिखित नक़शे से स्पष्ट होजायगाः—

तारीख़	नाम	दूरी मी०	ग०	समय घं०	मि०	से०
१३ सितम्बर, १९०६	डुमण्ट	०	१२	———		
१२ नवम्बर, १९०६	,,	०	२३०	०	०	२१
२६ अक्तूबर, १९०७	फारमैन	०	८२२	०	०	५२
१३ जनवरी, १९०८	,,	०	१०९३	०	१	२८
२१ मार्च, १९०८	,,	१	४३०	०	३	३१
११ अपरैल, ,,	डेलाग्रेंज	२	७६९	०	६	३०
३० मई, ,,	,,	७	१६४१	०	१५	२६
६ जुलाई ,,	फारमैन	०	०	०	२०	१९
६ सितम्बर ,,	डेलाग्रेंज	१४	१४०२	०	२९	५३
९ ,,	आर्विल राइट (एक यात्री समेत)	३	१६८४	०	६	०
१२ ,, ,,	,,	४५	०	१	१४	२०
२१ ,, ,,	विलबर राइट	५६	०	१	३१	२५
२ अक्तूबर ,,	फारमैन	२५	०	०	४४	३२
३ ,,	विलबर राइट (एक यात्री समेत)	३६	०	०	५५	३१
३ ,, ,,	ब्लेरियट	३	०	०	४	३०
६ ,,	विलबर राइट (एक यात्री समेत)	४२	०	१	४	२६
११ ,, ,,	,, ,,	५०	०	१	९	३
३० ,, ,,	फारमैन	१६	०	(आकाश-मार्ग के द्वारा एक नगर से दूसरे नगर गये।)		
३१ अक्तूबर, १९०८	ब्लेरियट	८	०	०	०	०
१८ दिसम्बर, १९०८	वि० राइट	७४½	०	१	५४	२२
३१ दिसम्बर, १९०८	वि० राइट	९३	०	२	२०	४४

ऊपर की सूची से मालूम होगा कि अमेरिका के विलबर राइट साहब सबसे अधिक दूर उड़े। आपने अपने व्योमयान को लगातार कई वर्ष तक कठिन परिश्रम करने के बाद तैयार किया है। तब भी उसमें कई दोष हैं। सबसे बड़ा दोष यह है कि ज्योंही वह उड़ते उड़ते एक बार भूमि छू जाता है त्योंही बेकार हो जाता है। फिर उत्तोलनयन्त्र की सहायता बिना नहीं उठ सकता। इस दोष को दूर करने के लिए कोशिश हो रही है। आशा है कि कुछ दिनों में यह गड़ बड़ भी मिट जायगी।

शुरू से लेकर अब तक किन किन लोगों ने कैसे कैसे व्योमयान बनाये और उन पर कितनी कितनी दूर तक उड़े—यदि इस बात का विस्तृत वृत्तान्त लिखा जाय तो एक महाभारत ही होजाय। इस लेख में केवल मुख्य मुख्य व्योमयानों के उड़ान का उल्लेख किया गया है। आज कल योरप और अमेरिका में नित्य नये व्योमयान बनते और उड़ते हैं। कुछ दिन हुए सुना था कि सर्ज बलोटफ़ नाम का एक रूसी नवयुवक एक बहुत ही उत्तम और अपूर्व व्योमयान बना रहा है। कह नहीं सकते कि वह तैयार हो गया या नहीं। तैयार होने पर वह निस्सन्देह अत्युत्तम और अद्वितीय व्योमयान होगा और उसके द्वारा उसी तरह से व्योमविहरण किया जा सकेगा जिस तरह कि जहाज़ के द्वारा लोग जल में चल फिर सकते हैं। जिन लोगोंने उसे देखा है उनका ऐसाही मत है।

अब तक जितने व्योमयान बने हैं उनमें अनेक दोष हैं। परन्तु हतोत्साह होने की कोई बात नहीं। क्योंकि अभी वे अपनी शैशवावस्था ही में हैं। यदि उनकी उन्नति करने के लिए लोग वैसीही कोशिश करते रहे जैसी कि आज कल कर रहे हैं तो सम्भव है कि दो चार वर्ष में युद्धादि के लिए उपयोगी व्योमयान बनने लगेंगे।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चक्कर में डालनेवाला चित्र—एक मेम।

इण्डियन प्रेस इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चक्कर में डालने वाला चित्र।

(२)

इस दफ़ एक मेम का चित्र प्रकाशित किया जाता है। इसमें इँगलैंड के एक राजमान्य महाकवि और एक सब से बड़े राजनीतिज्ञ के चित्र गुप्त रक्खे गये हैं। बतलाइए वे कहाँ हैं और किनके हैं।

उपहार की बात।

गत संख्या में जो चक्कर में डालने वाला चित्र प्रकाशित हुआ था उसके सम्बन्ध में लोगों ने आशातीत आतुरता दिखाई है। ३ अगस्त को प्रयाग से सरस्वती प्रकाशित हुई। उसके दूसरेही दिन से चिट्ठियों के ढेर के ढेर हमारे पास आने लगे। आज अगस्त की नवीं तारीख़ है। आज तक अनन्त-पत्र-राशि हमारे पास पहुँच चुकी है। अभी और कितने पत्र आवेंगे, इसका कुछ ठिकाना नहीं। इन पत्रों के भेजनेवालों में से आधे से अधिक लोगों के उत्तर सही हैं। उन सबके नाम प्रकाशित करने से सरस्वती के कई पृष्ठ ख़र्च हो जायँगे। अतएव हम ऐसा करने में असमर्थ हैं। पुरस्कार मिलने वाला है एक को, पत्र भेजे हैं हज़ारों ने। जिन्हें न पुरस्कार ही मिलेगा और न जिनका नाम ही प्रकाशित किया जायगा उन्हें ज़रूर निराश होना पड़ेगा। और किसी को निराश करना हम चाहते नहीं। अतएव अगले महीने से अब कोई ऐसा चित्र न प्रकाशित किया जायगा। गत मास का पुरस्कार फ़तेहपुर ज़िले के मिस्टर बी० डी० शुक्ल नाम के एक सज्जन को मिला है। उन्हें एक वर्ष तक सरस्वती मुफ़्त मिलेगी। इस मास का पुरस्कार भी जिसे मिलेगा उसके पास भेज दिया जायगा। पर उसका उल्लेख सरस्वती में न किया जायगा। क्योंकि इस चक्कर की बात को हम किसी महीने समाप्त करना चाहते हैं।

इस विषय की जो हज़ारों चिट्ठियाँ हमारे पास आई हैं प्रायः सबमें यही लिखा है कि पुरस्कार में हमें सरस्वती ही चाहिए। सरस्वती के मालिकों के लिए यह बड़ीही उत्साह-वर्द्धक बात है कि लोग सरस्वती को इतना चाहते हैं। इससे यह भी सिद्ध है कि सरस्वती के जितने ग्राहक हैं उससे कई गुना अधिक लोग उसे यहीं मुफ़्त पढ़ते हैं। क्योंकि सरस्वती को पुरस्कार में पाने के इच्छुक उसके ग्राहक नहीं हो सकते। वे तो एक वर्ष का मूल्य पहलेही दे चुके हैं। जो उसके ग्राहक नहीं हैं उन्हीं ने उसके मुफ़्त पाने की इच्छा प्रकट की है। मतलब यह कि किसी कारण से वे उसे मोल तो नहीं ले सकते अथवा नहीं लेना चाहते, परन्तु पाना ज़रूर चाहते हैं। यदि धनाभाव या धन की कमी के कारण लोग सरस्वती को नहीं ले सकते—महीने में पाँच आने भी अपनी मातृभाषा के निमित्त नहीं ख़र्च कर सकते—तो अभागे भारतवर्ष की दारिद्र-दशा पर शोक है। यदि और किसी कारण से नहीं लेना चाहते तो हम परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह ऐसे महाशयों की सुरुचि और सुन्दर समझ को परिवर्तित करने की दया दिखावे।

चित्र-दर्शन।

(१)

इस दफ़े इटली के विख्यात चित्रकार रैफ़ेल द्वारा अंकित एक और चित्र दिया जाता है। यह चित्र अलग-ज़ांड्रिया की साधु-स्त्री सेंट कैथरिन का है। रैफ़ेल की बराबरी करने वाला और कोई चित्रकार आज तक नहीं पैदा हुआ। उसने रोम के धर्म्माचार्य्य पोप के लिए कितनेहीं धार्म्मिक चित्र बनाये थे। यह भी उन्हीं में से है। यह लन्दन की चित्रशाला में लगा हुआ है। इसका नम्बर १६८ है। चित्र काठ पर है। २ फ़ीट ४ इंच ऊँचा और १ फ़ुट ९॥ इंच चौड़ा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक-परीक्षा।

१—रामरसोदधि, सुन्दरकाण्ड। पण्डित महावीर-प्रसाद मालवीय वैद्य उपनाम वीर कवि द्वारा रचित और गंगा विष्णु श्रीकृष्णदास, मालिक लक्ष्मीवेंकटेश्वर छापाख़ाना, कल्याण, बम्बई द्वारा प्रकाशित। प्रकाशक से एक रुपये में प्राप्य। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के सुन्दरकाण्ड का यह भावानुवाद है। तुलसीकृत रामायण की तरह यह पुस्तक भी चौपाई-छन्द में लिखी गई है। बीच बीच में दोहे, सोरठे और अन्य छन्द भी आये हैं। रामभक्तों को चाहिए कि इस पुस्तक को पढ़कर रामरसायन का आस्वादन करें।

❀

२—नागरी-भवन-पुस्तकालय जयपुर का विवरण। जयपुर नगर में नागरीभवन नामक एक पुस्तकालय है। वहाँ के कुछ हिन्दी-प्रेमियों ने इसे १९०६ ई० में स्थापित किया था। पुस्तकालय के सुयोग्य मन्त्री पण्डित सोमदेव शर्मा गुलेरी ने शुरू के तीन वर्ष का विवरण अभी हाल में प्रकाशित किया है। इससे मालूम होता है कि पुस्तकालय के सञ्चालकों ने अपना कर्त्तव्य बड़ी योग्यता से पालन किया है। उनके सुप्रबन्ध से पुस्तकालय की अच्छी उन्नति हुई है और उससे जयपुर-निवासियों को बहुत कुछ लाभ पहुँचा है और आगे भी पहुँचने की आशा है। जयपुर-निवासियों को इस पुस्तकालय की सहायता करना चाहिए।

❀

३—प्रश्नोपनिषत्। "पण्डित भीमसेन मिश्र श्रोत्रिय कृत संस्कृत नागरी भाष्यद्वयविभूषिता।" इस उपनिषद् में पहले मूल है; उसके बाद क्रम से पदच्छेद, अन्वय, संस्कृत-पदार्थ और संस्कृत-भावार्थ है; फिर हिन्दी-पदार्थ और भावार्थ लिखा गया है। भाष्य साधारणतः अच्छा है; भाषा भी सरल है। संस्कृत जानने और न जाननेवाले दोनों ही प्रकार के पाठक इसे पढ़कर लाभ उठा सकते हैं। ब्रह्म-विद्या के जिज्ञासुओं के लिए यह उपनिषद् बहुत उपयोगी है। मूल्य आठ आने। मिलने का पता—पण्डित भीमसेन शर्मा, ब्रह्म प्रेस, इटावा।

❀

४—श्रीसुदामाकृष्णनाटक। पण्डित मातादीन शुक्ल और पण्डित बन्दीदीन दीक्षित प्रणीत तथा पण्डित नीलकण्ठ द्वारकाप्रसाद, पुस्तक विक्रेता, अमीनाबाद, लखनऊ द्वारा प्रकाशित। पृष्ठ-संख्या ५३; मूल्य चार आने। प्रकाशक से प्राप्य। इस नाटक में सब मिलाकर तीन अङ्क हैं। इसमें सुदामा और कृष्ण की पौराणिक कथा का वर्णन है। भाषा गद्य-पद्यमय है। नाटक खेलने लायक़ है। इसमें एक दोष यह है कि जिस पात्र की जैसी भाषा होनी चाहिए वैसी नहीं है। उदाहरणार्थ श्रीकृष्ण की भाषा में कहीं कहीं पर बहुत से गँवारू शब्द आगये हैं। परन्तु सुदामा की स्त्री की भाषा अपेक्षाकृत परिष्कृत है। नाटक के प्रत्येक छन्द में रचयिता ने अपना नाम रख दिया है। हमारी समझ में इसकी कोई आवश्यकता न थी।

❀

५—राजा साहब की वक्तृता। कोरी सुदौली, ज़िला रायबरेली, के प्रसिद्ध तअल्लुक़ेदार राजा रामपाल-सिंह सी० आई० ई० ने युक्त-प्रदेश की दूसरी सोशेल कानफरेंस में सभापति की हैसियत से जो अँगरेज़ी में वक्तृता दी थी उसी का यह हिन्दी-अनुवाद है। अनुवादक उक्त राजा साहब के सेक्रेटरी ठाकुर तिलकसिंह जी हैं। राजा साहब ने अपनी इस वक्तृता में सामाजिक सुधार के प्रश्न पर बड़ी गम्भीरता से विचार किया है और उसके महत्त्व का अच्छी तरह निरूपण किया है। वक्तृता प्रत्येक विचारवान् आदमी के पढ़ने और मनन करने योग्य है। आध आने का टिकट भेजने वाले को अनुवादक महाशय इसे मुफ़्त देते हैं। हमारी राय में यह आध आना भी राजा साहब माफ़ करा देते तो अच्छा था।

Printed and published by Panch Kory Mittra at the Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

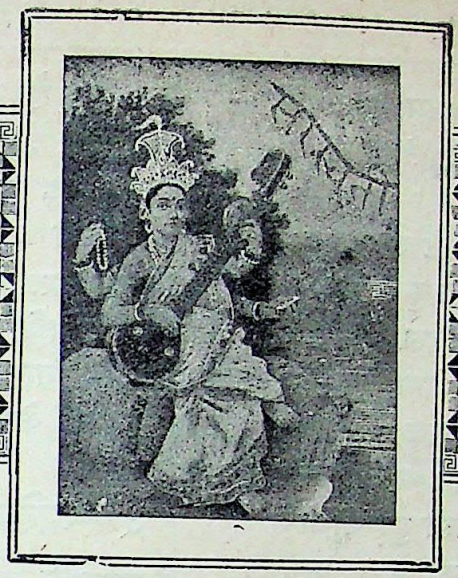

सरस्वती ।

भाग १०] १ अक्टूबर, १९०९। आश्विन कृष्ण २, १९६६। [संख्या १०

विविध-विषय ।

१—देशव्यापी भाषा ।

भारतवर्ष भर के लिए एक देशव्यापी भाषा का होना कितना आवश्यक है, इस बात को प्रायः सभी लोग समझते हैं। इस विषय पर बहुत दिनों से चर्चा हो रही है। समय समय पर सामयिक पत्रों में लेख निकलते रहते हैं। हाल ही में इस विषय पर रिव्यू में एक बड़ा महत्त्व-पूर्ण और लम्बा निकला है। इसके लेखक मदरास की अडियार लाइब्रेरी के डाइरेक्टर डाक्टर श्रेडर हैं। श्रेडर साहब पहले इस विषय पर विचार किया है कि किस प्रकार की भाषायें देशव्यापी भाषा हो सकती और भारत की कौन कौन सी भाषा देशव्यापी भाषा बनने के लिए कहाँ तक उपयोगी या अनुपयोगी है। आपकी राय में भारत की कोई भी देशी भाषा देशव्यापी बनने की पूरी योग्यता नहीं रखती। श्रेडर साहब के मतानुसार सरल संस्कृत देशव्यापी भाषा बनने की पूरी योग्यता रखती है। जिस प्रकार की सरल संस्कृत को आप देशव्यापी भाषा बनाने का प्रस्ताव करते हैं उसके उदाहरण भी आपने अपने लेख में दिये हैं। वास्तव में डाक्टर श्रेडर का लेख बहुत युक्तिपूर्ण है। उस पर सब विचारशील पुरुषों को विचार करना चाहिए। हमारी तुच्छ बुद्धि में संस्कृत का अङ्ग भङ्ग करके उसे सरल बनाना असाध्य काम है। अगर कोई भाषा देशव्यापी होगी तो हिन्दी ही होगी।

२—एक अत्यन्त प्राचीन कुआँ ।

जहाँ पर प्राचीन पाटलीपुत्र था उस स्थान के पास एक बहुत पुराना कुआँ बिगड़ा हुआ पड़ा है। इसे लोग आगम कुआँ कहते हैं। यह कुआँ कोई ढाई हज़ार वर्ष का पुराना है। हाल ही में यह कुआँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोदा गया था। खोदने से मालूम हुआ कि उसमें ऐसी कितनी ही चीज़ें भरी हुई हैं जिनसे पुरातत्त्व-सम्बन्धी बहुत सी नई नई बातों का पता लग सकता है। अब तक यह चालीस फ़ाट की गहराई तक खोदा जा चुका है। सुनते हैं कि कुएँ का पेंदा भी तीस फ़ीट तक खोदा जायगा। इस कुएँ से न मालूम कितने ताम्रपत्र, दानपत्र, शिलालेख और अत्यन्त प्राचीन काल के बने हुए पीतल के बरतन निकल चुके हैं। इनमें बाबर और शाहेआलम आदि के खुदाये हुए ताम्रपत्र भी हैं। निकली हुई चीज़ों में अधिकांश मुसलमानों के समय की हैं। परन्तु बहुतेरी ऐसी भी हैं जो बौद्धकाल और उसके भी पहले की हैं।

३—हवाई जहाज़।

दिन पर दिन तरह तरह के व्योमयान बनते जाते हैं। धीरे धीरे उनकी उपयोगिता भी बढ़ती जाती है। इनकी सहायता से स्थल और जलसेना की तरह हवाई सेना भी रखनी पड़ेगी। कहीं कहीं इस हवाई बेड़े के बनने की तैयारियाँ भी होने लगी हैं। अब तक जितने व्योमयान बने थे वे स्थल ही से आकाश को चढ़ते और वहीं लौट आते थे; परन्तु अब ऐसे भी व्योमयान या हवाई जहाज़ बनने लगे हैं जो समुद्र में तैरा करेंगे, ज़रूरत पड़ने पर आकाश में पैंतालीस मील प्रति घंटे की चाल से उड़ेंगे और फिर समुद्र में लौट आवेंगे।

४—शक्कर की वायुशोधन-शक्ति।

हमारे देश में शक्कर और शक्कर मिले हुए पदार्थों की आहुति अग्नि में देने की चाल बहुत दिन से है। इससे यह न समझना चाहिए कि अग्नि में जलाकर ये पदार्थ व्यर्थ ही नष्ट किये जाते हैं। नहीं, इससे बड़े लाभ हैं। पेरिस के विख्यात विज्ञ-नवेत्ता अध्यापक ट्रिलवर्ट का कथन है कि जली हुई शक्कर में वायु शुद्ध करने की बहुत बड़ी शक्ति है। उन्होंने इस बात को पेरिस के सैकड़ों विद्वानों के सामने वैज्ञानिक रीति से प्रमाणित करके दिखला दिया है। जिन्होंने उसे देखा है वे कहते हैं कि जली हुई शक्कर वायु में फैले हुए क्षयरोग, चेचक, हैज़ा आदि के कीड़ों को बात की बात में नष्ट करके उसे शुद्ध और स्वास्थ्यकर बना देती है। मालूम होता है कि हमारे प्राचीन ऋषि शर्करा और शर्करामिश्रित पदार्थों को जलाने के लाभ अच्छी तरह जानते थे। यदि ऐसा न होता तो वे मिष्ट पदार्थों को अग्नि में जलाने की प्रथा क्यों चलाते।

५—पालिश किये हुए चावल।

योरपवाले बड़ी ही विचित्र प्रकृति के मनुष्य हैं। बाहरी तड़क भड़क और टीम टाम उन्हें बहुत पसंद है। क्या घर, क्या कपड़े, क्या भोज्य-पदार्थ सभी चीज़ें तड़क भड़कदार होनी चाहिए। इससे चाहे उनका आन्तरिक सौन्दर्य्य, गुण और शक्ति तक क्यों न नष्ट हो जाय। उदाहरणार्थ चावल को लीजिए। एशियाई देशों में छिलका, भूसी और चूनी अलग करने के बाद चावल जैसा का तैसा पकाया जाता है। यहाँ तक कि कोई कोई उसे धोते भी नहीं। इस दशा में वह शीघ्र पच भी जाता है और स्वादिष्ट तथा पुष्टिकारक भी होता है। परन्तु योरप वाले इससे सन्तुष्ट नहीं। वे लोग चावलों को साफ़ करके पहले रगड़ते हैं। जब उनकी भिल्ली उतर जाती है तब उन्हें पालिश करते हैं। इसके बाद उन्हें खाते हैं। इससे चावलों का स्वाद और पुष्टि-कारक शक्ति नष्ट हो जाती है। यद्यपि बहुतेरे यूरोपियन इस बात को समझने लगे हैं तथापि वे पालिश के चावलों को खाना वे गवारा नहीं कर सकते। इस बात से आप समझ सकते हैं कि बाहरी तड़क भड़क के वे लोग कैसे भक्त हैं; इससे चाहे उनकी हानि ही क्यों न होती हो। अफ़सोस की बात है कि यह दोष अँगरेज़ोदाँ हिन्दुस्तानियों में भी धीरे धीरे बढ़ता जाता है। जापान ने इस बात को वैज्ञानिक रीति से अच्छी तरह साबित कर दिया है कि चावल को पालिश करने से उसकी सारी पुष्टिवर्द्धक शक्ति जाती रहती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

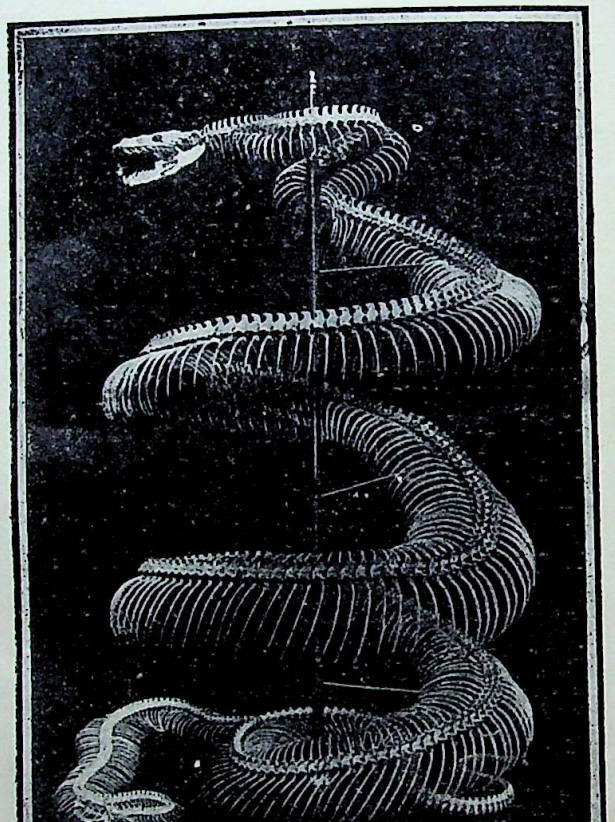

एक अजगर-राज का अस्थि-पञ्जर।
(नीचे दो पञ्जर और साँपों के हैं)

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६—नक़ली नीलम।

ज़ोरपवाले प्रकृति को अपनी दासी बनाने में बड़े सिद्धहस्त हैं। अपनी बनाई हुई चीज़ों को वे प्राकृतिक पदार्थों से इस तरह मिला देते हैं मानो उन्हें प्रकृति ही ने बनाया है। अब तक वे ऐसी न मालूम कितनी नक़ली चीज़ें बना चुके हैं जो असली को मात करती हैं। यहाँ तक कि नक़ली हीरा और लाल बनाने में भी किसी किसी ने सफ़लता प्राप्त करली है। परन्तु बहुत कोशिश करने पर भी कोई नक़ली नीलम न बना सका था। अब सुनते हैं कि फ़्रांस के एक वैज्ञानिक ने इसके बनाने में भी कामयाबी हासिल की है। आप इसके बनाने के लिए बहुत दिनों से परिश्रम कर रहे थे; अन्त में आपका श्रम सफल हुआ। वैज्ञानिकों का मत है कि असली नीलम केवल दो चीज़ों से मिलकर बना होता है। इनमें से एक का नाम Alumina है और दूसरी का Oxide of Cobalt। नीलम में जो पीलापन होता है वह इसी दूसरी चीज़ का होता है। पूर्वोक्त वैज्ञानिक महाशय ने इन्हीं दोनों चीज़ों को मिलाकर और ख़ूब गर्म करके नक़ली नीलम बनाया है। गर्म करते समय आपने थोड़ा चूना और मेगनीशिया भी डाल दिया था, ताकि वे जम कर पत्थर की तरह सख़्त हो जायँ। जिन्होंने उसे देखा है वे कहते हैं कि क्या रासायनिक संगठन में और क्या मूर्त शकल में नक़ली नीलम असली नीलम ही की तरह है। यहाँ तक कि बड़े बड़े रसायन-शास्त्री भी दोनों के फ़र्क़ को नहीं बता सकते।

७—अजगर साँपों का भोजन।

अजगर साँप हमारे देश, भारतवर्ष, में बहुत होते हैं। विषैले न होने पर भी ये बड़े भयानक होते हैं। ये इतने बड़े और भारी होते हैं कि एक जवान आदमी एक साँप को मुश्किल से उठा सकता है। कहते हैं कि ये अपने भोजन के लिए मारे मारे नहीं फिरते; किन्तु एक ही स्थान में पड़े रहते हैं; वहीं पर जो इनके सामने आता है उसी को ये हड़प कर जाते हैं। यों तो अजगर जो कुछ पाते हैं वही खा लेते हैं तथापि कबूतर, हिरन, बकरे और सुअर को ये बहुत पसंद करते हैं। एक साहब ने साइंटिफ़िक अमेरिकन नामक पत्र में इस विषय पर एक लेख लिखा है। उसमें उन्होंने ऐसे कई छोटे बड़े अजगर का ज़िक्र किया है जिन्होंने पचीस सेर से लेकर पचास सेर वज़न तक के कितने ही हिरनों, बकरों और सुअरों तथा अन्य पशु-पक्षियों को एकदम निगल लिया है। साहब का कथन है कि अजगर अपने शिकार को एकदम निगल लेता है। एक बात बड़ी विचित्र है। वह यह कि यदि अजगर के प्रिय खाद्य की गन्ध किसी वस्तु में आती हो तो वह उस पर भी आक्रमण करता है। एक बार सुअर के पास पड़े रहने के कारण एक कम्मल में उसकी गन्ध आने लगी थी। एक दिन यह कम्मल ज्योंही एक अजगर के सामने लाया गया त्योंही वह उस पर झपटा और उसे तुरन्त निगल गया। छोटे छोटे अजगरों का बड़े बड़े पशुओं तथा अन्य पदार्थों को निगल जाना वास्तव में अद्भुत और आश्चर्यजनक बात है। जब ये साँप बड़े बड़े जानवरों को निगल जाते हैं तब इनका पेट बेहद फूल जाता है। उसी समय इनकी अजगर संज्ञा अन्वर्थ होती है। फिर ये मुश्किल से हिल डुल सकते हैं। एक बार एक छोटे अजगर को हमने गङ्गा के किनारे एक नाले में एक ख़रगोश निगलते देखा। हम अकेले थे। आधा ख़रगोश साँप के पेट के भीतर जा चुका था। हमारे पास पहुँचने और ढेले फेंकने की आपने ज़रा भी परवा नहीं की। रह रह कर ज़ोर से साँस ज़रूर आप खींचते थे। शायद आपके ग़ुस्सा ज़ाहिर करने का यही तरीक़ा हो। दो घंटे बाद जो हम लौटे तो देखा कि अजगर जी का पेट थैला सा हो गया है और आपकी शकल बिलकुल ही बदल गई है। इस जाति के साँपों में से कोई कोई साँप बहुत ही बड़े होते हैं। इस तरह का दीर्घकाय एक साँप हमने गत एप्रिल में हरद्वार में देखा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८—फ्रेंड ऐंड कम्पनी, मथुरा, के ताले।

भारतवर्ष की कारीगरी के विषय में एक लेख जो अभी हाल में सरस्वती में प्रकाशित हुआ है उसे देखकर मथुरा की फ्रेंड ऐंड कम्पनी ने एक ढाई इंच का पीतल का ताला हमारे पास भेजा है। ताला बहुत सुन्दर बना है और बहुत मज़बूत भी है। उसकी मज़बूती की हमने कई तरह से जाँच की और सब परीक्षाओं में उसे 'पास' पाया। सुन्दरता और सफ़ाई के विषय में सिर्फ़ इतनाही कहना है कि विलायती "चब्स" नाम के तालों से यह ताला किसी अंश में कम नहीं। इस ताले में एक विशेषता भी है। इसमें ऐसी कारीगरी है कि इसके साथ फ्रेंड ऐंड कम्पनी जो व्यवस्थापत्र भेजती है उसमें लिखी हुई तरकीब जाने बिना कोई इसे, और चाभी से तो क्या, ख़ास इसकी चाभी से भी इसे खोल नहीं सकता। स्वदेशी कारीगरी की उन्नति चाहने वालों को ये ताले ज़रूर ख़रीदने चाहिए। दाम इसका ५) रुपया है।

९—व्यावर की कृष्णा मिल्स।

स्वदेशी वस्तु का व्यवहार प्रति दिन अधिकाधिक बढ़ता जाता है। ६ वर्ष हुए कानपुर में सिर्फ़ एक दूकान थी जहाँ देश के बने हुए कपड़े बिकते थे। पर अब ऐसी दूकानों की संख्या क़रीब एक दर्जन के होगी। लोग धीरे धीरे अपने देश की उद्यम-शीलता बढ़ाने के महत्त्व को समझने लगे हैं। सबसे अधिक ज़रूरत हम लोगों को कपड़े की पड़ती है। अमीर ग़रीब किसी का भी काम बिना कपड़े के नहीं चल सकता। यदि हम लोग इस देश के बने हुए कपड़े की क़दर करें तो थोड़े ही दिनों में इसका व्यवसाय ख़ूब चमक उठे और नई नई मिलें खुल जायँ। परन्तु खेद है, लोगों का ध्यान इस तरफ़ जैसा चाहिए नहीं गया। राजपूताने में एक जगह व्यावर है। वहाँ कृष्णा मिल्स नाम का कपड़ा बुनने का एक कारख़ाना है। इस मिल में महीन से महीन कपड़े (विशेष करके धोती जोड़े और दुपट्टे) तैयार होते हैं। इस समय इस मिल का बना हुआ एक धोती जोड़ा हमारे सामने है। यह ११ नम्बर का है। चौड़ाई ४४ इंच और लम्बाई १० गज़ है। पोत इसका इतना महीन है कि शायद ही यहाँ और किसी स्वदेशी मिल ने आजतक इतने महीन सूत की धोतियाँ बनाई हों। दाम इस जोड़े का २॥) है। जिन लोगों की यह शिकायत है कि हमारे यहाँ की मिलों में अच्छे कपड़े नहीं बनते उनको जानना चाहिए कि और नहीं तो धोती जोड़े तो ज़रूर ही अच्छे बनते हैं। अतएव हमारा कर्तव्य है कि हम यथाशक्ति अपने देश के बने हुए कपड़े लें और तद् द्वारा कपड़े के व्यवसायियों को उत्तेजित करके देश की आर्थिक अवस्था को सुधारें। कृष्णा मिल्स, व्यावर, में और कपड़े भी तैयार होते हैं जिनकी फ़ेहरिस्त मिल्स के एजेंट को लिखने से मिल सकती है। बड़े बड़े शहरों में इस मिल्स की एजेंसियाँ भी हैं। अकसर बज़ाज़ों के यहाँ भी इस मिल के बने हुए कपड़े मिलते हैं।

१०—पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्म्मा।

अन्यत्र पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्म्मा की "शङ्कर रोदन" नामक कविता प्रकाशित की जाती है। साथही उसके आपका चित्र भी इस संख्या में दिया जाता है। सरस्वती के पाठकों को यह बतलाने की ज़रूरत नहीं कि "शङ्कर" जी कैसे कवि हैं। क्योंकि आज तक आपकी कितनीहीं कवितायें निकल चुकी हैं और पाठकों ने उनका अच्छी तरह रसास्वादन किया है।

११—मडियों और मुरियों के चित्र।

गत अगस्त की सरस्वती में मडियों और मुरियों पर एक लेख प्रकाशित हुआ है। उस समय बहुत चेष्टा करने पर भी इन लोगों के चित्र नहीं प्राप्त हो सके। श्रीयुक्त निज़ामशाह जी की कृपा से अब प्राप्त हुए हैं। अतएव इस संख्या में अन्यत्र प्रकाशित किये जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्मा।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

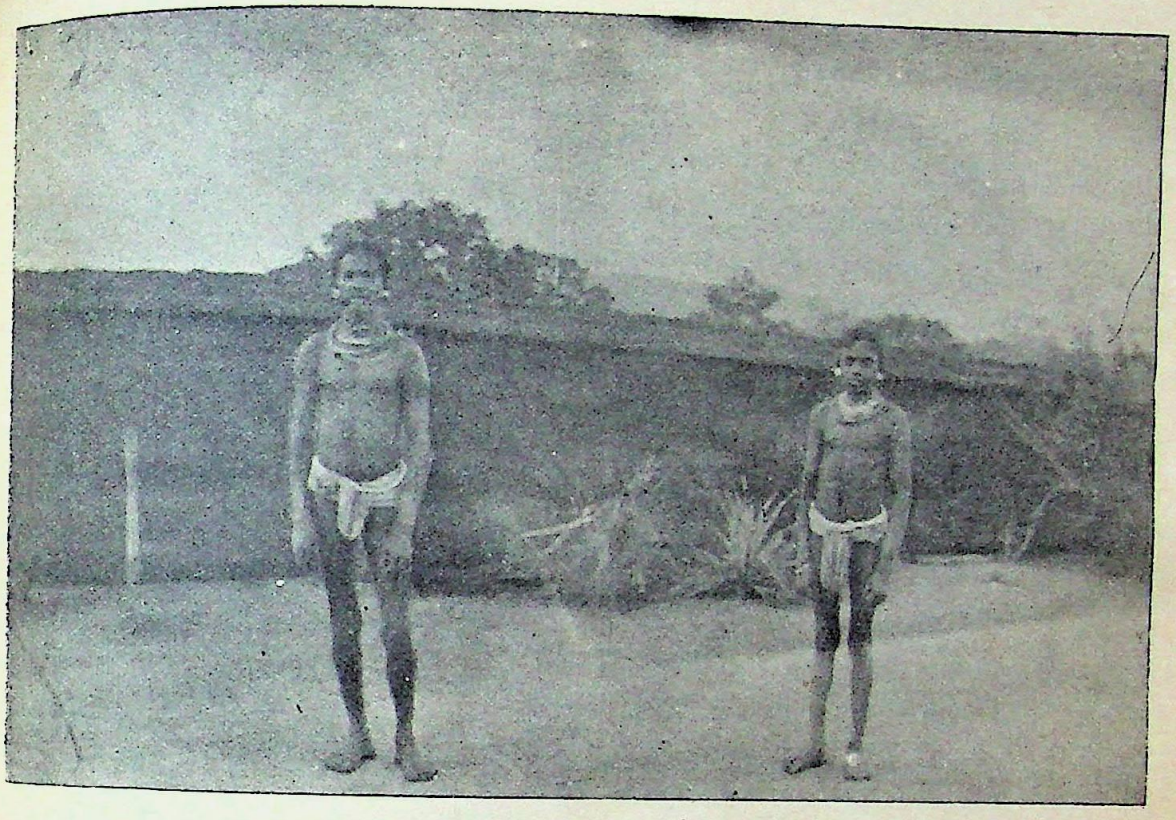

मुरिये ।

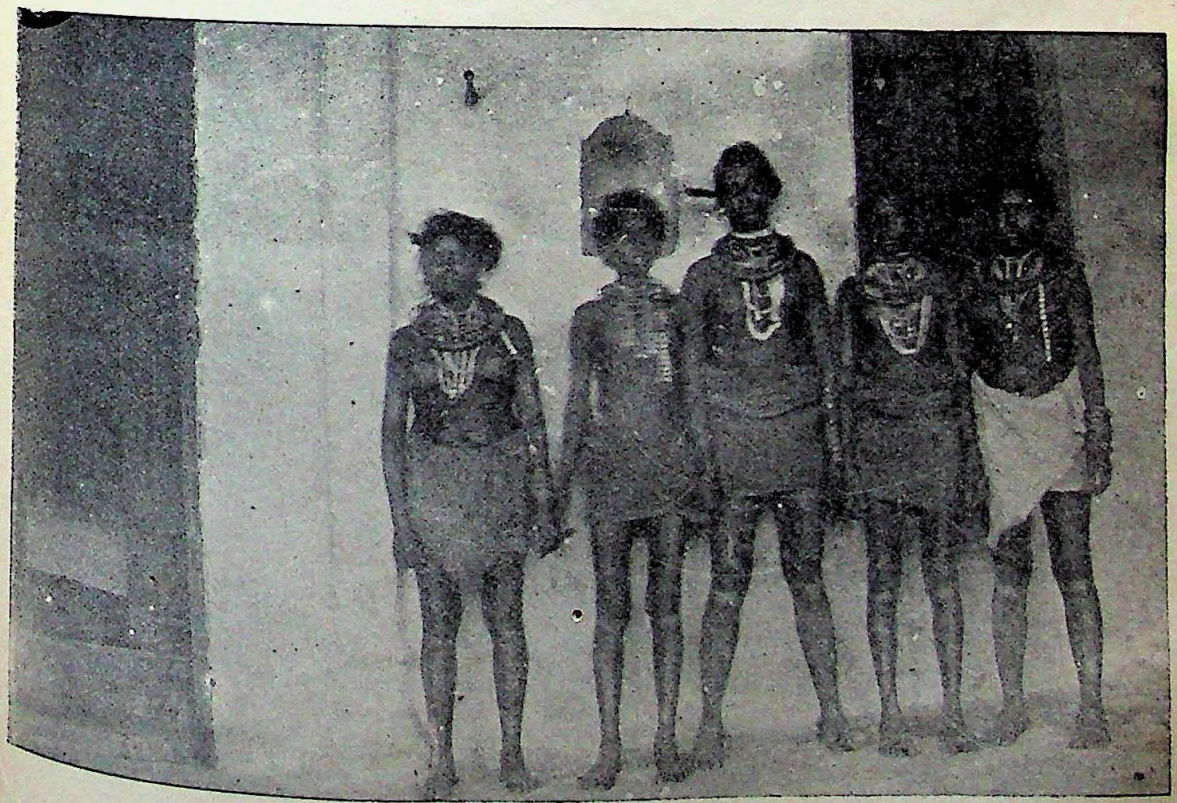

मुरियों की स्त्रियां ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२—व्योम-विहरण में असाधारण सफलता।

योरप और अमेरिका में व्योमयानों की कुछ दिनों से बड़ी धूम मची हुई है। उनके बनाने और उड़ाने में बहुत कुछ उन्नति हो चुकी है। अब तक व्योमयान केवल स्थल ही पर उड़ाये जाते थे। परन्तु सुनते हैं कि अब वे समुद्र पर भी उड़ने लगे। फ्रांस और इँडलैंड के बीच एक समुद्र है; इसे इँगलिश चेनल कहते हैं। व्योमयानों के द्वारा इस समुद्र को पार करने की कोशिशें कई बार की जा चुकी हैं। परन्तु पहले कामयाबी न हुई थी। अन्त में गत २५ जुलाई को ब्लेरियट नाम के एक साहब ने अपने व्योमयान पर इस समुद्र को पार कर डाला। इस घटना की ख़बर फैलते ही योरप भर में खलबली मच गई। योरपवालों ने ब्लेरियट साहब की अपूर्व सफलता और असाधारण साहस की एक स्वर से प्रशंसा की है। इस घटना से यह अनुमान किया जा सकता है कि वह समय कभी न कभी अवश्य आवेगा जब लोग रेल या जहाज़ की तरह व्योमयानों पर भी देश-विदेश की यात्रा आनन्दपूर्वक कर सकेंगे।

१३—इलाहाबाद का विश्वविद्यालय।

"विश्व" शब्द जब विशेष्य पुँल्लिंग हो तब उसका अर्थ दस देवता अर्थात् वसु, सत्य, क्रतु, काल, काम, धृति, कुरु, पुरुरवाः और मद्रवा होता है। जब विशेष्य नपुंसकलिंग हो तब उसका अर्थ जगत् और ब्रह्माण्ड होता है। परन्तु जब विशेषण हो तब उसका अर्थ सकल, समस्त होता है। विद्यालय के पूर्व "विश्व" शब्द विशेषण है। समस्त विश्वविद्यालय का अर्थ है सकल विद्याओं का घर अर्थात् ऐसी संस्था (Institution) जहाँ सकल विद्याओं में शिक्षा दी जाती है।

वर्त्तमान काल में भरतखण्ड में पाँच विश्वविद्यालय हैं, अर्थात् बिम्बई, कलकत्ता, मद्रास, इलाहाबाद और पञ्जाब। प्रत्येक विश्व-विद्यालय के लिए प्रदेश बँटे हुए हैं। इलाहाबाद के विश्वविद्यालय की सीमा के भीतर संयुक्त प्रदेश, मध्य प्रदेश, बरार, मध्यभारत और राजपूताना ये पाँच प्रदेश अवस्थित हैं। इन्हीं प्रदेशों के कालेजों और हाई स्कूलों के छात्रगण इलाहाबाद विश्व-विद्यालय की परीक्षाओं में बैठते हैं। १९०९ की परीक्षायें गत मार्च और अप्रेल मासों में ली गई थीं, और परीक्षा-फल गत जून में मुद्रित हुआ था। परीक्षा-फलों का विवरण नीचे दिया जाता है:—

परीक्षा का नाम	परीक्षित छात्रसंख्या	उत्तीर्ण छात्र संख्या	उत्तीर्ण छात्रों की प्रति शत संख्या
एम० ए०	लगभग २४	१३	५४
बी० एस० सी०	,, १४१	४०	२८
बी० ए०	,, ५२१	२२४	४३
इंटर मिडिएट (पुराना एफ़०ए०)	,, १५१२	५७३	३८
मैट्रिक्यूलेशन (पुराना इंट्रेंस)	,, ३२००	१०४०	३३

सबसे ख़राब बी० एस० सी० का परीक्षा-फल दृष्टि-गोचर होता है, परन्तु यथार्थ में विश्व-विद्यालय इलाहाबाद ने हाई स्कूलों के ऊपर हाथ फेरा है। हाई स्कूलों से मैट्रिक्यूलेशन परीक्षा में छात्रगण बैठते हैं। इस परीक्षा-फल से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि विश्व-विद्यालय इलाहाबाद ने अपने मन में यह ठान लिया है कि मैट्रिक्यूलेशन परीक्षा ख़ूब कड़ी कर दी जाय। अब हाई स्कूलों के प्रबंधकर्त्ताओं को चाहिए कि अपने अपने स्कूलों में यथोचित मासिक वेतन देकर सुयोग्य शिक्षक नियत करें और शिक्षा-सामग्री भी पूरी पूरी प्रदान करें।

उल्लिखित १०४० छात्रों में से प्रथम श्रेणी में २०, द्वितीय श्रेणी में ३६२, और तृतीय श्रेणी में ६५८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छात्र उत्तीर्ण हुए हैं। उक्त परीक्षा में उत्तीर्ण छात्रों का जाति-विवरण इस प्रकार है :—३३६ ब्राह्मण, २४३ कायस्थ, १७२ मुसलमान, ११६ बनिया, ५७ क्षत्री, ३४ ईसाई, २७ खत्री, ६ जैन, ४ ओसवाल, ४ जाट, ३ कलार, ३ लभाना, ३ महाजन, २ पारसी, २ कुरमी, २ वैष्णव, २ अहीर, २ पटेल, २ भार्गव, १ गुसाईं, १ जैसवाल, १ सुनार, १ तेली, १ झुसिया, १ मधिसिया, १ बरनवाल, १ तमोली, १ वैद्य, १ कतिया, १ टेली, १ लाड़, १ प्रभु, १ मरहठा, १ बढ़ई, १ तैलूगू, १ नाई, १ धामन, १ शेटी, १ सरावगी।

उत्तीर्ण छात्रों की संख्या प्रत्येक प्रदेश में इस प्रकार है :—

मध्य प्रदेश	१४६
बरार	२३
मध्यभारत	६८
राजपूताना...	५३
संयुक्त-प्रदेश	७५०

गणपतिलाल चौबे
एजेंसी इंस्पेकूर स्कूल्स
छत्तीसगढ़ रियासत समूह
रायपुर
मध्यप्रदेश।

१४—उत्तरीय ध्रुव के दर्शन।

उत्तरीय ध्रुव तक पहुँचने की आज तक बहुत लोगों ने कोशिश की, पर कामयाबी किसी को नहीं हुई। अब एकदम दो आदमियों के ध्रुव तक पहुँच जाने की ख़बर आई है। एक का नाम डाकूर कुक और दूसरे का कमाँडर पीरी है। कुक साहब को डेनमार्क के बादशाह ने भेजा था और पीरी साहब को अमेरिकावालों ने। पहले समाचार मिला कि कुक साहब, जिनका आजतक किसी को नाम भी न मालूम था, ध्रुव की सैर करके लौट आये। उसके तीन ही चार दिन बाद कमाँडर पीरी के भी ध्रुव तक पहुँच जाने के तार अमेरिका और योरप के अख़बारों में चमकने लगे। डाकूर कुक डेनमार्क लौट आये हैं। वहाँ उनकी ख़ातिर तवाज़ो हो रही है। डेनमार्क के बादशाह उनसे मिलकर और उनके मुँह से ध्रुव-प्रदेश का आश्चर्य्यपूर्ण वृत्तान्त सुनकर कृतार्थ हो रहे हैं। बड़े बड़े ख़िताबों और तमग़ों की डाकूर कुक पर वृष्टि हो रही है। इधर अमेरिका के अख़बार और अमेरिका के प्रेसीडेंट टैफ्ट साहब कमाँडर पीरी का यशोगान कर रहे हैं। इस सम्बन्ध में अब एक नया ही गुल खिला है। पीरी साहब कहते हैं कि डाकूर कुक झूठे हैं, वे ध्रुव तक नहीं पहुँचे। उधर डाकूर कुक पीरी साहब पर यही इलज़ाम लगाते हैं। अख़बारों में बेतरह वाग्युद्ध छिड़ गया है। ज़्यादातर लोग कमाँडर पीरी ही की बात को विश्वासयोग्य समझते हैं; क्योंकि अभी उस साल पीरी साहब ध्रुव के बहुत पास तक पहुँच गये थे। इसलिए उनका ठीक ध्रुव के दर्शन का आना लोग अधिक सम्भवनीय समझते हैं। लन्दन में जो वहाँ की प्रसिद्ध भौगोलिक सभा है उसने पीरी साहब ही को वहाँ जाकर ध्रुव-प्रदेश के सम्बन्ध में व्याख्यान देने को बुलाया है। लन्दन के टाइम्स आदि बड़े बड़े पत्रों ने भी डाकूर कुक की अपेक्षा कमाँडर पीरीही की बात पर अधिक विश्वास किया है।

वीर-वर फूलासिंह।

पंजाब में फूलासिंह नाम का एक बड़ा वीर अकाली हो गया है। वह जाट जाति का सिक्ख था। उसका पिता एक ग़रीब अकाली था जो अमृतसर के किसी अकाल बूंगा का नौकर था। फूलासिंह को नामवरी पाने का मौक़ा पहले पहल सन् १८०९ में मिस्टर मैटकाफ़ की अरदली के लोगों पर हमला करने वालों का मुखिया बनने में मिला। इस हमले के निष्फल होने के थोड़े ही दिनों बाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीरवर फूलासिंह ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फूलासिंह अपने कुछ साथियों के साथ महाराजा रणजीतसिंह के महल में ज़बरदस्ती घुस गया और वहाँ टिके हुए परदेशी अँगरेज़ों को मारने के लिए तैयार हुआ। इस बात में उसने रणजीतसिंह की भी सहायता चाही और कहा कि यदि ऐसा न किया जायगा तो मैं ख़ुद महाराज और उसके घराने से बदला लूंगा। रणजीतसिंह को इस बात पर बड़ा आश्चर्य हुआ। संभव है उन्हें इस पागल आदमी और उसके साथियों के घुस आने पर घबराहट भी हुई हो। पर फूलासिंह की बात मानना रणजीत सिंह के लिए असम्भव था। क्योंकि वे जानते थे कि इसका फल क्या होगा।

रणजीतसिंह बड़े गंभीर स्वभाव थे। उन्होंने फूलासिंह से कहा कि तुम्हारी इच्छा बदला लेने ही की है तो बेहतर है कि तुम मुझी को मार डालो, क्योंकि अगर मैं अँगरेज़ों के एलची को मरवा डालूँगा या उसका निरादर तक करूँगा तो मेरा नाश अवश्य ही होगा। बहुत लंबी चौड़ी दलीलें के बाद उन्होंने फूलासिंह और उसके साथियों के हथियार रखवा लिये और अँगरेज़ों से बदला लेने की उसकी लालसा को कम से कम उस समय के लिए दमन कर दिया। इसके बाद फूलासिंह को सोने के कड़ों की जोड़ी और उसके साथियों को कम क़ीमत की अन्य चीज़ें दे कर प्रसन्नतापूर्वक विदा कर दिया।

इस समय फूलासिंह अक्काली ख़ूब प्रसिद्ध हो गया था। थोड़े दिनों में अक्काली लोगों ने उसको अपना सरदार मान लिया। उसकी आज्ञा में कोई तीन चार सौ सवार और पैदल सिपाही रहने लगे। इनके साथ वह चारों तरफ़ के गाँवों में अनेक प्रकार के अत्याचार करने लगा और पूरा पूरा डाकू हो गया। वह ग़रीबों पर दया करता था। परन्तु धनाढ्यों को ख़ूब लूटता था। इससे उसे बड़ा लाभ हुआ। ग़रीब लोग उसके मित्र और साथी बन गये और उसे सहायता भी देने लगे।

फूलासिंह के डाकूपन की ख़बर महाराजा रणजीतसिंह के पास भी शीघ्रही पहुँच गई। इसके पहुँचाने वाले वे लोग थे जिनको इस अक्काली सरदार ने लूटा था। महाराज इस आदमी को अच्छी तरह जानते थे। इसलिए उन्होंने उससे ज़ाहिरी नाराज़ी प्रकट करना ठीक नहीं समझा। उन्होंने उसको नरमी से दरबार में हाज़िर होने को कहला भेजा। जब वह आया तब उन्होंने उसे बहुत सी बेश क़ीमती चीज़ें इनाम दीं और उससे अच्छे रास्ते पर चलने और ईमानदारी से काम करने को कहा। फूलासिंह पर इसका कुछ भी असर न पड़ा और उसने अपनी आदतें न छोड़ीं। इसके बाद रणजीत सिंह ने उसके पीछे बड़ी बड़ी फ़ौजें भेजीं और उसे डराना चाहा। पर वीर अक्काली ऐसी थोथी धमकियों से कब भयभीत होनेवाला था। वह अपने लूट मार के मार्ग पर बराबर चलता रहा। लोग भी उसके साथ बहुत जमा हो गये। यहाँ तक कि कभी कभी चार पाँच हज़ार मनुष्य तक जमा हो जाते थे। स्वयं रणजीतसिंह के दरबार और डेरों में लुटेरे अक्कालियों का डर फैल गया। कभी कभी फूलासिंह बड़े बड़े सरदारों के घर में घुस जाता और उनके अच्छे से अच्छे घोड़ों या अन्य चीज़ों को दिन दहाड़े उठा लेजाता। सरदारों से वह दंड भी लेता था और स्वयं अपने और अपने साथियों के ख़र्च के लिए कर उगाहता था। यदि लोग दंड और कर न देते थे तो इसका फल तुरन्त चखते थे। स्वयं रणजीतसिंह भी इस दंड से न बचे थे और अपने सरदारों की तरह वे भी सब कुछ चुप चाप सहन करते थे। महाराज बुद्धिमानी से कभी कभी बिना माँगेही उसके पास रुपये भेज देते थे। इससे फूलासिंह महाराज रणजीतसिंह के साथ नर्मी का बरताव करता था। अंत में बुद्धिमान् रणजीतसिंह को यह बात सूझी कि इस अक्काली सरदार और उसके साथियों से, जो उसको इतना दुख देते थे, अपना मतलब निकालना चाहिए। इसलिए उसने इन सब लोगों को नौकर कर लिया। रणजीतसिंह का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वभाव था कि जब कभी वे किसी वीर डाकू का नाम सुनते तब उसको तुरन्त बुलवाते और नौकर रख लेते। इस प्रकार जब रणजीतसिंह अफ़ग़ान या दूसरे शत्रुओं से लड़ते तो इन्हीं लोगों की वीरता से विजय पाते। ये लोग मौत और आफ़तों का कुछ भी भय न करते थे। इसीसे विजय-लक्ष्मी इन्हीं को प्राप्त होती थी।

जब फूलासिंह अपने साथियों के साथ रणजीत सिंह का नौकर हो गया तब उनके पक्ष में होकर उसने कई बार बड़ी सहायता दी। सन् १८१८ में मुलतान की शहरपनाह की दीवार को तोपों से तोड़ कर हमला करने का मार्ग बनाया गया था। उसमें सबसे पहले चढ़नेवाला फूलासिंह के साथियों में से एक अक्काली ही था, जो बिना आज्ञा मिलेही अपने साथ के लग भग चालीस मनुष्यों को लेकर घुस गया और सब सेना के लिए मार्ग साफ़ कर दिया। यदि वह ऐसा न करता तो सेना को शायद और कुछ दिनों तक घेरा दिये बैठे रहना पड़ता। कहते हैं कि इस वीर अक्काली को, जिसका नाम जस्सासिंह था, अमल का नशा करा दिया गया था। पर यह बात असत्य है। क्योंकि यह मनुष्य धर्म का बड़ा पाबन्द था। इसलिए लोग इसको मालासिंह कहते थे। माला का अर्थ यहाँ पर उसी माला से है जिसे सिक्ख लोग परमात्मा का नाम लेते समय फेरते हैं। कुछ भी हो, इसी जस्सा या मालासिंह और उसके साथियों की सहायता से रणजीतसिंह ने इतनी जल्दी और सुगमता से मुलतान ले लिया। क़िले से इतने गोले आ रहे थे कि सेना को अपने मोरचों में पड़ा रहना पड़ता था। इस काम में जस्सासिंह और उसके पैंतीस साथी मारे गये। क़िला लेने के बाद ये सब लोग मरे हुए दीवार के भीतर पड़े मिले।

सन् १८१९ में फूलासिंह ने अपनी वीरता काश्मीर-विजय के समय दिखलाई। इसके बदले में रणजीतसिंह ने इसको बहुत कुछ देकर सरदार बनाया। इसके बाद वह महाराज की अरदली में रहने लगा। अफ़गानों के साथ जो लड़ाइयाँ हुईं उनमें भी यह साथ गया था और बहुत कुछ सहायता दी थी।

सन् १८२३ में काबुल नदी के उत्तरी किनारे टीरी नाम के स्थान पर एक युद्ध हुआ। पहले फ़तह अफ़ग़ानों की होते दिखाई दी। महाराज और उनके यूरोपियन जेनरल वैनटूरा और येलार ने बहुत कुछ उद्योग किया। पर सेना में भारी घबराहट और भय फैल गया। महाराज की सेना अफ़ग़ानों के सामने से भागने ही वाली थी। शत्रु टीरी की पहाड़ी पर मोरचा लगाये बैठे थे। उनको वहाँ से हटाने के लिए कई बार धावा किया गया। पर सफलता न हुई। इसी से इनका साहस टूट गया। हार के पूरे पूरे सामान देख पड़ने लगे। स्वयं महाराजा साहब ने धमकी दी और उनको परमेश्वर की और गुरु के नाम की क़सम दिलाकर आगे बढ़ने को कहा। आप स्वयं घोड़े से उतर कर और तलवार खींच कर शत्रु के सामने बढ़े और कहा कि मेरे पीछे पीछे चले आओ। पर इन सब बातों से कुछ भी लाभ नहीं हुआ। उनकी धमकी, बिनती और क़समें सब निष्फल हुईं। रणजीतसिंह बड़े निराश हुए। अब वह अपनी अन्तिम हिकमत (जो ईश्वर से प्रार्थना करने और माला फेरने की थी) करनेवाले थे। ठीक इसी समय उन्होंने फूलासिंह और उसके साथी अक्कालियों का काला झंडा पहाड़ी के बराबर और फिर ऊपर चढ़ते देखा। अक्काली सरदार अपने पाँच सौ योद्धाओं के साथ शत्रु पर धावा मारने जा रहा था। लड़ाई में रणजीतसिंह ने फूलासिंह को अपने आदमियों के आगे लड़ते और घोड़े से गिरते देखा। उसके घुटने की हड्डी पर गोली लगी थी जिससे हड्डी बिलकुल टूट गई थी। उसको लोग उठाकर पीछे ले गये थे। ऐसा जान पड़ता था कि यह अपंग हो गया है। परन्तु फूलासिंह साधारण आदमी न था। वह अपने हाथी पर बैठा हुआ अक्कालियों के हमले के आगे चल रहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अक्कालीं लोग अपने सरदार के पीछे बढ़ रहे थे। वह हाथी पर बैठा हुआ सब सेना को पुकार पुकार कर उसके साहस को बढ़ा रहा था। पर फ़ौज ने इस पर कुछ ध्यान नहीं दिया। केवल फूलासिंह और उसके साथी पहाड़ पर शत्रु की तरफ़ गये। अफ़गानों ने इनके धावे की राह न देखी। इसलिए वे लोग अपने मोरचों में से निकल कर पहाड़ी के नीचे दौड़ते हुए आये और स्वयं धावा करने लगे। इस समय फूलासिंह ने अपने साथियों को घोड़ों से उतर कर चलने के लिए कहा। उन्होंने ऐसाही किया। इसके साथ ही "वाह गुरुजी" कह कर वे गरज उठे। उत्तर में मुसलमान "अल्लाह अल्लाह" की ध्वनि करने लगे। घोड़े कुछ तो इस हल्ले से चमक कर और कुछ स्वभाववश सीधे शत्रु की तरफ़ भागे। इस अचानक धावे से अफ़गानों में गड़ बड़ मच गई। इस मौक़े को देखकर अक्कालियों ने अपनी बन्दूकें फेंक दीं और तलवारें खींच कर ऐसे वेग से दौड़े कि शत्रु को हटा दिया और पहाड़ी पर अपने पैर जमा लिये। अक्कालियों की इस विजय को देखकर सब सिपाहियों की हिम्मत बँध गई और सब मिलकर इस मौक़े का लाभ उठाने को दौड़े। इस समय अक्कालियों और सिपाहियों की फ़ौज के बीच में बारह या पंद्रह सौ अफ़गानों की टोली पड़ गई। दोनों तरफ़ घिरे जाने से वे भागने लगे और अक्कालियों से बचने का, जो उनके ऊपर थे, बहुत उद्योग किया। उन्होंने पहाड़ी के ऊपर जाना चाहा जहाँ उनके कोई आठ दस सहस्र साथी मज़बूत मोरचों में थे। परन्तु फूलासिंह उनको सहज में छोड़नेवाला असामी न था। उसने पलट कर इतने ज़ोर से धावा किया कि इनको वहीं ठहरना पड़ा। अक्कालियों का धावा रोकने के उद्योग में उनके छः सौ से ज़्यादा आदमी मारे गये। अक्कालियों के भी बहुत से लोग काम आये। अब केवल डेढ़ सौ अक्काली बाक़ी रह गये। परन्तु इन वीरों की इस वीरता से शत्रु को इतना साहस बँध गया कि इनकी सहायता के लिए तुरन्त दौड़े और अफ़गानों को मार भगाया। फिर पहाड़ी के ऊपर वाले शत्रुओं को मारने को बढ़े। फूलासिंह की देह में एक गोली और लग गई। परन्तु इसकी भी कुछ परवा न करके वह अपने हाथी पर बैठा आगे बढ़ता गया। उसके अक्काली भी सेना के आगे बढ़ते रहे। जब वे मोरचे के निकट पहुँचे तब अफ़गानों की गोलियों की तड़ातड़ी मची और अक्कालियों की भारी हानि हुई। फूलासिंह के हाथी के महावत के तीन गोलियाँ लग चुकी थीं। जब शत्रु की बन्दूक़ों के निकट हाथी पहुँचा तब महावत बहुत डरा। उसने आगे बढ़ने में हिचकिचाहट की। सरदार ने उसको बढ़ने को कहा। परन्तु महावत डर गया था। इसलिए वह पीछे भागने की तजबीज़ करने लगा। इस पर फूलासिंह ने अपनी कमर से पिस्तौल निकाल कर उसके सिर में मारा और उसे नीचे गिरा दिया। फिर अपनी तलवार की नोक से हाथी को शत्रु की तरफ़ बढ़ाया। वह बहुत दूर न बढ़ने पाया था कि किसी अफ़गान की गोली उसके सिर में लगी। वह हौदे में गिर गया और गिरतेही स्वर्गवासी हुआ। अपने सरदार के मारे जाने से अक्कालियों को इतना रोष आया कि वे शत्रु पर टूट पड़े। यद्यपि उनका पहला हमला सफल नहीं हुआ तो भी वे बारंबार और भी ज़्यादा वीरता से हमले करते रहे। अन्त में सिपाहियों की सेना ने अफ़गानों के मोरचे तोड़ दिये और उनको वहाँ से हटा दिया। शुरू में सफलता न होने से जो बहुत सी सेना भाग गई थी वह भी अब महाराज रणजीतसिंह के साथ आ मिली और अफ़गानों पर, जो ऊपर से निकाले जाने पर पहाड़ के नीचे जमा हो गये थे, टूट पड़ी। इससे इनमें बड़ी गड़ बड़ मच गई। सिक्खों के कोई पाँच हज़ार से ज़्यादा आदमी रण-भूमि में काम आये। परन्तु अफ़गानों के इससे दूने से भी ज़्यादा मारे गये।

महाराज रणजीतसिंह ने टीरी का युद्ध फूलासिंह की वीरता और उसके साथियों की सहायता से ही जीता था। अक्कालियों के सरदार की वीरता की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तारीफ़ सिक्ख और मुसलमान दोनों ही ने की। जहाँ वह मारा गया था उस स्थान पर उसकी छतरी बनाई गई। यद्यपि इसकी रखवाली अक्काली लोग करते हैं तोभी यह स्थान हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों के लिए एक तीर्थ सा हो गया है। यह स्थान लूंडा यानी काबुल नदी के यूसुफ़ ज़ाइयों की तरफ़ के किनारे पर नौशेरा में है।

फूलासिंह के समय के बाद से अक्काली बहुत गिर गये हैं। अब वे नीची जातिवालों के साथ मिलते जुलते हैं। ये बातें उनका प्रसिद्ध सरदार नहीं होने देता था। सिवा अक्काली बूँगों के (जैसे अमृतसर आदि) और जगह अब असली जाटों की खान का अक्काली बहुत कम मिलता है। असल अक्काली वीर, स्वतंत्र और घमंडी होता है। ग़रीबों का मित्र और धनाढ्यों का शत्रु होने में अपना सौभाग्य समझता है। धर्म के विषय में तो उसे लगभग पागलही समझना चाहिए। अपने गुरु गोविन्दसिंह के बनाये हुए क़ायदों का वह बड़ा पाबंद होता है। जिस वस्तु की उसको आवश्यकता होती है उसे वह अपने मित्र से भी छीनने में नहीं हिचकिचाता। परन्तु अपने ऊपर किये गये अहसानों का बदला देने को सदैव तैयार रहता है। दौलत की उसे कुछ परवा नहीं। आवश्यक पदार्थ मिल जाने पर उसको सन्तोष हो जाता है। धर्म के लिए मरने को सदा तैयार रहता है। फूलासिंह इसी तरह का अक्काली था। परन्तु, अफ़सोस, यह जाति अब लगभग नष्ट हो गई है।

अमरसिंह।

रङ्क-रोदन।

क्या शङ्कर प्रतिकूल काल का अन्त न होगा।
क्या मङ्गल से मेल मृत्यु पर्य्यन्त न होगा॥
क्या अनुभूत दरिद्र-दुःख अब दूर न होगा।
क्या दाहक-दुर्दैव-कोप कर्पूर न होगा॥ १॥

होकर मालामाल पिता ने नाम किया था।
मैंने उनके साथ न घर का काम किया था॥
विद्या का भरपूर अटल अभ्यास किया था।
पर औरों की भाँति न कुछ भी पास किया था॥२॥

उद्यम की दिन रात कमान चढ़ी रहती थी।
यश के सिर पर वर्ण-उपाधि मढ़ी रहती थी॥
दान मान की ज्योति अखण्ड जगी रहती थी।
भिखमंगों की भीड़ सदैव लगी रहती थी॥३॥

जीवन का फल पूज्य पिताजी पाय चुके थे॥
कर पूरे सब काम कुलीन कहाय चुके थे।
सुन्दर स्वर्ग समान विलास बिसार चुके थे।
हम सब उनका अन्त अनन्त निहार चुके थे॥४॥

बाँध बाप की पाग बना मुखिया घर का मैं।
केवल परमाधार रहा कुनबे भर का मैं॥
सुख से पहली भाँति निरङ्कुश रहता था मैं।
क्या करता है कौन न कुछ भी कहता था मैं॥५॥

जिनका सञ्चित कोश खिलाया खाया मैंने।
करके उनकी होड़ न द्रव्य कमाया मैंने॥
लूट रहे थे लोग न छल पहचाना मैंने।
घाटे का परिणाम कठोर न जाना मैंने॥ ६॥

बिगड़े चाकर चोर पुरानी बान बिगाड़ी।
दिया दिवाला काढ़ बनी दूकान बिगाड़ी॥
आधे दाम चुकाय बड़ों की बात बिगाड़ी।
मुझ से किया बिगाड़ न अपनी घात बिगाड़ी॥ ७॥

अटके डिगरीदार किसी ने दाम न छोड़े।
छीन लिये धन धाम ग्राम आराम न छोड़े॥
हाय किसी के पास विभूषण वस्त्र न छोड़े।
नाम रहा निरुपाधि पुलिस ने शस्त्र न छोड़े॥ ८॥

न्यायालय में जाय दरिद्र कहाय चुका हूँ।
सब देकर "इनसौलवेंट"* पद पाय चुका हूँ॥
अपने घर की आप विभूति उड़ाय चुका हूँ।
सर्वनाश से हाय न पिण्ड छुड़ाय चुका हूँ॥ ९॥

* दिवालिया—(ऋणमोचक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठ रहे मुखमोड़ पुराने आने वाले।
लेते नहीं प्रणाम लूटकर खाने वाले॥
देते हैं दुर्वाद बड़ाई करने वाले।
लड़ते हैं बिन बात अड़ी पर मरने वाले॥ १०॥

कविता-प्रेमी लोग न अब सत्कवि कहते हैं।
हा न विज्ञ विज्ञान-गगन का रवि कहते हैं॥
धर्म-धुरन्धर धीर नहीं गुरुजन कहते हैं।
मुझको सब कंगाल धनी निर्धन कहते हैं॥ ११॥

वित्त बिना विख्यात बिरद विपरीत हुआ है।
मन मेरा निश्शङ्क महा भय भीत हुआ है॥
कंगाली की मार पड़ी रस भङ्ग हुआ है।
जीवन का मग हाय विधाता तङ्ग हुआ है॥ १२॥

प्रतिभा को प्रतिवाद प्रचण्ड लताड़ चुका है।
आदर को अपमान-पिशाच पछाड़ चुका है॥
[illegible] का सिर नीच निरुद्यम फोड़ चुका है।
[illegible] हर्ष का रक्त विषाद निचोड़ चुका है॥ १३॥

[illegible]से देश उदास जाति अनुकूल नहीं है।
[illegible] करें उपहास मित्र सुखमूल नहीं है॥
[illegible] नातेदार किसी से मेल नहीं है।
[illegible] में हाहाकार ख़ुशी का खेल नहीं है॥ १४॥

[illegible] का रिपु घोर अमङ्गल घेर रहा है।
[illegible] त्रास के बीज विनाश बखेर रहा है॥
[illegible] मलीन कुटुम्ब कर्म को कोस रहा है।
[illegible] कण्ठ अदम्य दरिद्र मसोस रहा है॥ १५॥

[illegible]ड़ों की भरमार यहाँ सुख-साज नहीं है।
[illegible]का गोरस भात पिसान अनाज नहीं है॥
[illegible]ड़ा भी भरपूर किसी के पास नहीं है।
[illegible] भर में कौन अधीर उदास नहीं है?॥ १६॥

[illegible] में भूनी मोठ मसूर चबा लेते हैं।
[illegible] रूखे रोट रात को खा लेते हैं॥
[illegible] दलिया दाल उदर में भर लेते हैं।
[illegible] मूली पाय कलेवा कर लेते हैं॥ १७॥

बालक चोखे खान पान पर अड़ जाते हैं।
खेल खिलौने देख पिछाड़ी पड़ जाते हैं॥
पर मन मानी वस्तु बिना बस रो जाते हैं।
हाय हमारे काढ़ कलेजे सो जाते हैं॥ १८॥

सिर से संकट-भार उतार न लेगा कोई।
मुझको एक छदाम उधार न देगा कोई॥
करुणाकर कुलवीर कृपा न करेगा कोई।
हम दीनों के पेट न हाय भरेगा कोई॥ १९॥

फूल फूलकर फूल फली फल खाने वाले।
नाना व्यञ्जन पाक प्रसादी पाने वाले॥
दूध रसाला आदि सुधारस पीने वाले।
हाय बने हम शाक चनों पर जीने वाले॥ २०॥

घर में कुरते कोट सलूके सिल जाते हैं।
बाहर से दो चार टके बस मिल जाते हैं॥
जो कुछ पैसे हाथ हमारे आजाते हैं।
उन सबका सामान मँगाकर खा जाते हैं॥ २१॥

लड़के लकड़ी बीन बीन कर ला देते हैं।
ईंधन भरका काम अवश्य चला देते हैं॥
वृद्ध चचा दो तीन बार जल भर देते हैं।
माँग माँग कर छाछ महेरी कर देते हैं॥ २२॥

ठाकुर जी का ठौर मँगेनू माँग लिया है।
आँगन में तिरपाल पुराना टाँग लिया है॥
बासन भाँड़े बेच उसारा छवा लिया है।
फूटा कोठा एक दुबारा दबा लिया है॥ २३॥

छप्पर में बिन बाँस घुने ऐरंड पड़े हैं।
बरतन का क्या काम घने घट-खण्ड पड़े हैं॥
खाट कहाँ छै सात फटे से टाट पड़े हैं।
चक्की पीसे कौन बिना भिड़ पाट पड़े हैं॥ २४॥

जाड़े का प्रतियोग न उष्ण विलास मिलेगा॥
गरमी का प्रतिकार न शीतल वास मिलेगा।
घेर रही बरसात न सूखा ठौर मिलेगा।
इस खँडहर को छोड़ कहाँ घर और मिलेगा॥ २५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर कर केहरि-नाद वलाहक बरस रहे हैं।
अस्थिर विद्युद्दृश्य दसो दिस दरस रहे हैं॥
गँदला पानी छेद छत्त के छोड़ रहे हैं।
इन्द्रदेवजी टाँग त्राण की तोड़ रहे हैं॥ २६॥

दिया जले किस भाँति तेल को दाम नहीं है।
काटें मच्छर डाँस कहीं आराम नहीं है॥
टूट पड़े दीवार यहाँ सन्देह नहीं है।
करदे पनियाँढार नहीं तो मेह नहीं है॥ २७॥

बीत गई अब रात अँधेरा दूर हुआ है।
संकट का कुल हाय न चकनाचूर हुआ है॥
आज तीसरा रुद्र-रूप उपवास हुआ है।
हा हम सबका घोर नरक में वास हुआ है॥ २८॥

भारत-भक्त अनेक धर्मधारी मिस्टर हैं।
थानेदार वकील डाक्टर बैरिस्टर हैं॥
मैं भी उनकी भाँति प्रतिष्ठा पा सकता हूँ।
पर न प्रजा की छाक छीनकर खा सकता हूँ॥ २९॥

हिन्दूपन के पन्थ मतों में मेल नहीं है।
सत्य सनातन धर्म कपट का खेल नहीं है॥
शिष्टों का सत्कार कहीं अवशिष्ट नहीं है।
धोखा देकर माल उड़ाना इष्ट नहीं है॥ ३०॥

वैदिक दल में दान-मान कुछ भी न मिलेगा।
प्रतिदिन तीन छटाँक हवन को घी न मिलेगा॥
कर्महीनता देख पुण्य-परिषद न मिलेगा॥
रोटी दाल समेत महाशय पद न मिलेगा॥ ३१॥

बपतिसमा सकुटुम्ब विशप से ले सकता हूँ।
धन्यवाद प्रभु गॉड-पुत्र को दे सकता हूँ॥
धन-गौरव-सम्पन्न आज ही हो सकता हूँ।
पर क्या अपना धर्म पेट पर खो सकता हूँ॥ ३२॥

सामाजिक बल पाय फूल सा खिल सकता हूँ।
योग-समाधि लगाय ब्रह्म से मिल सकता हूँ॥
धर्मधार संसार-सिन्धु से तर सकता हूँ।
हा पर वल्लाहार बिना क्या कर सकता हूँ॥ ३३॥

देश-भक्ति की चाल कटीली चल सकता हूँ।
नोटिस देकर पुण्य-प्रसाद निगल सकता हूँ॥
लोलुप लीला भाँति भाँति की रच सकता हूँ।
फिर क्या मैं कापट्य-पाप से बच सकता हूँ॥३४॥

जो जगती पर बीज पाप के बो न सकेगा।
जिसका साहस सत्य धर्म को खो न सकेगा॥
जो विधि के विपरीत कभी कुछ कर न सकेगा।
रो रो कर वह रङ्क कहाँ तक मर न सकेगा॥ ३५॥

नाथूराम शङ्कर शर्मा।

मैथिलों की विवाह-परिपाटी।

यद्यपि मैथिल ब्राह्मणों के विवाह की रीति दूषित नहीं तथापि दूरदेशीय लोग उस पर अनेक प्रकार के दोषारोपण करते हैं और उसे अपने यहाँ की व्यवस्था से भी अधिक निन्दित समझ कर हँसते हैं। मैंने अन्यदेशीय ब्राह्मणों के मुख से यह बात कई बार सुनी है। अतएव मैं चाहता हूँ कि मैथिलों की विवाहसम्बन्धी सब बातों का यथावत् उल्लेख कर उपहास करने वाले महाशयों के भ्रम का संशोधन करूँ। यद्यपि मुझ में इतना सामर्थ्य नहीं तथापि अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार जो कुछ जानता हूँ उसे लिखना आवश्यक समझता हूँ।

विहार का एक प्रान्त जिसके उत्तर में नैपाल, दक्षिण में गङ्गा, पूरब में कौशिकी और पश्चिम में गण्डकी नदी है, तीरभुक्ति वा मिथिला * देश कहलाता है। किसी समय मिथिला देश की राजधानी जनकपुर था, जो इन दिनों तीर्थ के नाम से विख्यात है। यहाँ प्रति वर्ष रामनवमी को मेला

* कितने ही विज्ञ मैथिल आधुनिक कौशिकी नदी के प्रवाह से कुछ दूर पूरब तक मिथिला देश की सीमा बताते हैं और कुछ प्रमाण भी देते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगता है और इसे पुण्यभूमि समझ दूर दूर के लोग दर्शन करने आते हैं।

कुछ कम* छः सौ वर्ष हुए मिथिला देश के शासक महाराज हरिसिंह† देव थे। ये जाति के क्षत्रिय थे। उनके बाद मिथिला के शासन का भार महाराज शिवसिंह (मैथिल ब्राह्मण) के पूर्वजों के हाथ में आया। इनके वंश में किसने कबसे कब तक मिथिला का शासन किया, इसका ठीक ठीक पता नहीं लगता। पर हमारे परिपालक श्रीनगर पुर्निया के राजासाहब इसके अन्वेषण में तत्पर हैं। आशा है कि वे महाराज हरिसिंह देव और महाराज शिवसिंह के शासनकाल का हाल विशेष रूप से लिख कर शीघ्र ही प्रकाशित करेंगे।

आज कल मिथिला की राजधानी दरभङ्गा है और महाराज श्रीरमेश्वरसिंह बहादुर के० सी० आई० ई० मिथिला के शासक हैं। मैथिल ब्राह्मणों में जाति-सम्बन्धी उच्च नीच विभाग का सूत्रपात महाराज हरिसिंह देव के समय से ही हुआ है। उस के पहले मैथिलों की विवाह-प्रथा और ही प्रकार की होगी। जनरव है कि महाराज हरिसिंह देव ने किसी समय मिथिला के कितने ही प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध गाँवों के मैथिल ब्राह्मणों को निमन्त्रित किया और उनके धर्म कर्म की परीक्षा लेकर जिन को जैसा समझा, मूलग्राम निर्दिष्ट करके उन्हें वैसी ही श्रेणी में विभक्त किया। जो ब्राह्मण वेद जानते थे और तदनुसार उत्तम कर्म्म करते थे उन्हें श्रोत्रिय (सोति) की उपाधि दी। जो उनसे कुछ न्यून कर्मकाण्डी विद्वान् थे उनको योग्य की पदवी दी। उनसे यथाक्रम न्यून आचार विचार वालों को ग्राम नामानुसार प्रतिष्ठासूचक पञ्जी (पांजि) प्रदान की। और जो आचार-विचार-विहीन केवल यज्ञोपवीतधारी ब्राह्मण थे उनका सामान्य ब्राह्मणों (गृहस्थों) की श्रेणी में नाममोल्लेख किया। तभी से मूल ग्राम की परिपाटी चली और पञ्जीकार* लोगों के द्वारा मैथिल ब्राह्मणों की वंशावली लिखी जाने लगी जो अबतक बराबर चली जा रही है। जाति विषयक छुटाई बड़ाई का ख़याल भी प्रायः तभी से लोगों के दिमाग़ में घुसा। जबसे यह प्रथा चली है तबसे विवाहाधिकार का व्यवस्था-पत्र, जिसे सिद्धान्त कहते हैं, पंजीकार से लिखाये बिना कोई मैथिल ब्राह्मण विवाह नहीं कर सकता। क्योंकि बिना सिद्धान्त लिखाये विवाह करने में भय रहता है कि कहीं अनधिकार† में विवाह न हो जाय। विवाहाधिकार के लिए कितने सम्बन्ध त्याज्य हैं, इस विषय का विचार याज्ञवल्क्य प्रभृति मुनिप्रणीत वाक्यों से कर लेने पर पञ्जीकार सिद्धान्त लिख देते हैं कि अमुक गोत्रोत्पन्न अमुक शर्म्मा की कन्या का विवाहाधिकार अमुक गोत्रीय अमुक शर्म्मा के पुत्र से हो सकता है। तब विवाह का निश्चय होता

---

* वाणाब्धियुग्मशशिसम्मितशाकवर्षे (१२४५) वैक्रम्य शुक्रनवमीशशिसूनुवारे ॥ त्यक्त्वा स पट्टनपुरीं हरिसिंहदेवो दुर्दैवदैवविपरीतगिरिं प्रविष्टः ॥ १ ॥

हरिसिंह देव के समय में तिरहुत की राजधानी शायद पट्टना थी।

* म० हरिसिंह देव ने कितने ही कुलीन मैथिलों को मैथिल ब्राह्मणों की पञ्जी (परिचय) लिखने के लिए नियत किया था। वे ही पञ्जीकार कहलाते थे। उनके वंश में यह वृत्ति परम्परा से अबतक क़ायम है।

† असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ॥ तथाः—मातृतः पञ्चमीं त्यक्त्वा पितृतः सप्तमीं भजेत्—इत्यादि आर्ष वचनों के विचार से यदि कन्या का कोई सम्बन्ध वर के साथ ठहर जाय तो उसको अनधिकार कहते हैं। मैथिल ब्राह्मणों को पितृपक्ष और मातृपक्ष की ओर आर्षवचनानुसार कितने सम्बन्ध विवाह-कर्म्म में त्याज्य हैं और विवाहाधिकार की गणना किस प्रकार की जाती है, इस विषय का एक बृहत् लेख श्रीनगर के राजा श्रीकमलानन्दसिंहजी महोदय प्रकाशित करना चाहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। जो सिद्धान्त लिखाये बिना केवल घटक* के वाक्य पर विश्वास कर विवाहाधिकार स्थिर कर लेते हैं उन्हें कभी कभी धोखा खाना पड़ता है, अर्थात् अनधिकार (सम्बन्ध) में विवाह कर पछताना पड़ता है। इस अविचार के कारण उनका वंश दूषित हो जाता है। अतएव जिनका वंश निर्दोष है वे उनसे विवाहादि सम्बन्ध नहीं करना चाहते। जो अच्छे कुल-शील के लोग हैं वे बिना सिद्धान्त लिखाये कदापि विवाह नहीं करते।

पूर्वनियमानुसार मैथिल ब्राह्मण जिन चार श्रेणियों में विभक्त किये गये थे उनकी अब कई श्रेणियाँ हो गई हैं। इनमें से सात मुख्य हैं। यथा (१) श्रोत्रिय, (२) योग्य, (३) पञ्जीबद्ध, (४) वंशज, (५) व्यापक, (६) सामान्य (गृहस्थ), (७) अक्रिय।

इन सातों के विवाह-सम्बन्धी व्यवहार की बातें संक्षेप से नीचे लिखता हूँ।

श्रोत्रिय।

मैथिल ब्राह्मणों में श्रोत्रिय सर्व-श्रेष्ठ माने जाते हैं। क्योंकि उनके कुल की मर्यादा परम्परा से सर्वोत्कृष्ट मान ली गई है। वे अपनी मण्डली को पृथक् रखने के अभिप्राय से अपने को पुवारी† पारवाले कहते हैं और योग्य प्रभृति अच्छे कुल वाले मैथिलों को पछवारी पारवाले के नाम से पुकारते हैं। अर्थात् दो विभाग क़ायम करके एक में अपने को और दूसरे विभाग में अन्य मैथिलों को गिनते हैं। श्रोत्रियों के विवाहादि व्यवहार पछवारी पार वालों से कुछ विलक्षण होते हैं और उनके आचार-विचार में भी किञ्चित् भिन्नता पाई जाती है। यद्यपि इन दिनों श्रोत्रियत्व वेदादि शास्त्र पढ़ने और तदनुसार कर्म करने पर अवलम्बित नहीं रहा तथापि श्रोत्रियों में बहुधा तन्त्रोक्त पूजा-पाठ की विधि और वंशमहत्त्व की मात्रा कुछ अधिक अवश्य है। श्रोत्रियों का विवाह अपने ही पार में अर्थात् श्रोत्रिय-मण्डली ही के अन्तर्गत होता है। इन लोगों के विवाह में लेन देन का कुछ विशेष नियम नहीं है। और ये लोग विवाह-कार्य में परिमित और उचित ख़र्च करने का ध्यान जहाँ तक हो सकता है अवश्य रखते हैं। कोई श्रोत्रिय अपने बालक या बालिका का विवाहाधिकार-विषयक सिद्धान्त, मिथिलाधीश से परवानगी (आज्ञापत्र) पाये बिना स्थिर नहीं कर सकता। श्रोत्रियों के ऊपर मिथिलाधीश की दृष्टि इसलिए अधिक रहती है क्योंकि वे स्वयं श्रोत्रिय हैं। जिन श्रोत्रियों को अपने पार में विवाहाधिकार की संकीर्णता हो जाती है वे महाराज से आज्ञापत्र ले कर योग्य मैथिल की बालिका से विवाह करते हैं। विवाह-विधि समाप्त होने के साथ ही वधू को अपने घर ले आते हैं; फिर यावज्जीवन उसे बाप के घर नहीं जाने देते। उससे जो सन्तान होती है वह श्रोत्रियों ही में परिगणित होती है। पर इस प्रकार का सम्बन्ध बहुत कम होता है। महाराज मिथिलेश की आज्ञा बिना जो श्रोत्रिय ऐसा सम्बन्ध करते हैं उनकी सन्तान श्रोत्रिय-मण्डली में आदृत नहीं होती। यदि कोई योग्य से श्रोत्रिय होना चाहे और महाराज की कृपा उस पर हो तो वह श्रोत्रिय हो सकता है। परन्तु श्रोत्रिय हो जाने पर वह पछवारी पार में विवाहादि सम्बन्ध पहले की तरह नहीं कर सकता। विवाहादिकार्य में महाराज बहादुर की आज्ञा लेनी पड़ती है और सर्वदा उनकी आज्ञा के वशवर्ती होकर रहना पड़ता है। जो श्रोत्रिय महाराज की आज्ञा के विरुद्ध पछवारी पार में अपने लड़के वा लड़की का विवाह करते हैं वे सदा के लिए श्रोत्रिय-मण्डली से अलग

---

* घटक उसे कहते हैं जो वर-कन्या के विवाह की घटना लगाता है और मैथिलों के वंश का परिचय विशेष रूप से जानता है।

† जान पड़ता है कि श्रोत्रियों का वास पहले कौशिकी नदी के पूर्व भाग में रहा होगा। इसी से वे लोग अपने को पुवारी पार वाले कहते हैं। अब तक भी कितने ही श्रोत्रिय कौशिकी के उस पार रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर दिये जाते हैं। उनके साथ कोई श्रोत्रिय विवाहादि सम्बन्ध नहीं करता; यहाँ तक कि न उनको अपने साथ बिठा कर खिलाते हैं और न उनके हाथ की बनाई रसोई खाते हैं।

श्रोत्रिय लोग पछवारी पार के ब्राह्मणों के हाथ का बनाया हुआ अन्न प्रकट रूप से नहीं खाते। यद्यपि खाने में कोई दोष नहीं है तथापि उनकी मण्डली में यह व्यवहार विहित नहीं है। पछवारी पार के ब्राह्मण श्रोत्रियों से विवाहादि सम्बन्ध करना परम सौभाग्य समझते हैं। अतएव इस पार के कितने ही धनवान् दस पाँच हज़ार रुपये देकर श्रोत्रिय को कन्या देते हैं और उनको अपने यहाँ रखने की चेष्टा करते हैं। भरण पोषण के लिए गुज़ारा या कुछ ज़मीन भी उन्हें देते हैं। केवल द्रव्य के लोभ से कोई कोई श्रोत्रिय अपनी मण्डली के लोगों से आँख बचाकर ऐसा काम करते हैं। परन्तु आजीवन उन्हें अपने समाज से अलग होकर रहना पड़ता है। श्रोत्रिय-मण्डली में यह बात यदि ज़ाहिर हो जाय कि अमुक व्यक्ति रुपये के लोभ से पछवारी पार वाले से सम्बन्ध करना चाहता है तो सब मिल कर उसे रोकते हैं और यथाशक्ति इस काम में बाधा डालते हैं। छिप कर भलेही कोई ऐसा काम कर ले, पर ज़ाहिरा नहीं कर सकता। जो श्रोत्रिय द्रव्य-लोलुप या निर्धन होते हैं वे अपने बालक को तो पछवारी पार विवाह करने की अनुमति दे देते हैं; परन्तु अपनी कन्या को इस पार में देना कदापि स्वीकार नहीं करते। अपनी मण्डली में दरिद्र, अन्धा, बहरा, गूँगा तक भी वर मिल जायगा तो वे उसी को कन्या देंगे; पर पछवारी पार में सर्वगुण-सम्पन्न वर मिलने पर भी वे उसको लड़की देना उचित न समझेंगे। वे पछवारी पार में योग्य को कन्या तभी दे सकते हैं जब उन्हें अपने पार में अनधिकार के कारण वर नहीं मिलता। एतदर्थ पहले महाराज से अनुज्ञापात्र लेना पड़ता है; तब कन्यादान की बात ठीक की जाती है। पछवारी पार वाले का यदि श्रोत्रिय कन्या से विवाह हो जाय तो वह इसे अलभ्य लाभ समझता है। इस प्रकार विवाह होने पर उससे जो सन्तान उत्पन्न होती है वह योग्य न कहलाकर श्रोत्रिय ही कहलाती है और उसका विवाहादि सम्बन्ध फिर पूर्ववत् अपने ही पार में होता है। यदि कोई श्रोत्रिय रुपये लेकर गुप्त रीति से अपनी लड़की पछवारी पार वाले को दे दे तो वह सदा के लिए श्रोत्रिय श्रेणी से अलग कर दिया जाता है और उसके वंशज, अनेक प्रयत्न करने पर भी, श्रोत्रियों में नहीं मिलने पाते। श्रोत्रियों में भी मूलग्राम, लौकिकता और वंशविशेष के तारतम्य से छुटाई, बड़ाई का ख़याल किया जाता है।

योग्य।

पछवारी पार में सबसे ऊँचा आसन योग्य का ही है। इनकी प्रतिष्ठा अपने पार में सबसे बड़ी है। पूर्वोक्त उत्तम वंश में जन्म पाने और परम्परा से विवाह-सम्बन्धी उत्तम क्रिया-कलाप करने से ही योग्यता प्राप्त होती है। विशेष विद्या पढ़ने या विशेष धनोपार्जन करने अथवा और तरह की विशेष योग्यता प्राप्त कर लेने पर भी कोई सामान्य मूल का ब्राह्मण योग्य नहीं कहला सकता। जिनके वंश में वैवाहिक सम्बन्ध द्वारा योग्यता की रक्षा पहले से होती चली आई है उनकी सन्तान और तरह से अयोग्य होने पर भी योग्य ही कहलाती है और उसका जाति विषयक सम्मान उन धनवानों और विद्वानों से कहीं बढ़ कर होता है जो साधारण मूल ग्राम के ब्राह्मण हैं। जो मैथिल योग्य हैं ये अपनी योग्यता के रक्षार्थ अपने से कुछ ऊँचे योग्य के साथ वैवाहिक सम्बन्ध करते हैं। तभी उनकी योग्यता क़ायम रहती है और उनकी सन्तान योग्य कहलाती है। यदि ऐसा न कर वे अपने से छोटे वंश की लड़की से विवाह करेंगे तो श्वशुर-पक्ष की न्यूनता उनकी सन्तान में चली आवेगी—अर्थात् उनकी सन्तान अपने मातामह की पंजी के अन्तर्गत होगी। मातृपक्ष और पितृपक्ष में जिनकी पंजी न्यून होती है वही सन्तान के सिर सवार होती है। इस-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए जो प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं वे अपने से कुछ श्रेष्ठ कुल की लड़की से विवाह करते हैं, जिससे उनकी जातीय प्रतिष्ठा क़ायम रहे।

दूर देशों में जो यह जनरव है कि मैथिल ब्राह्मण कन्या बेचते हैं, यह आकाश कुसुमवत् झूठ है। तब लोग ऐसा क्यों समझते हैं? यह आगे के लेख से प्रकट होगा।

योग्य से लेकर सामान्य ब्राह्मण तक सबकी इच्छा यही रहती है कि उच्च कुल वालों के साथ सम्बन्ध करें। जिनकी स्थिति अच्छी है वे प्रायः ऐसा ही करते हैं। अब यहाँ पर पहले इस बात का उल्लेख करना मैं आवश्यक समझता हूँ कि पछवारी पार के ब्राह्मणों में विवाह की रीति किस प्रकार की है।

(१) पछवारी पार में अपने से श्रेष्ठ कुल वाले के साथ जो सम्बन्ध किया जाता है उसे तीख वा उत्तम कार्य कहते हैं।

(२) अपने मूल के समान वंश वाले के साथ जो सम्बन्ध किया जाता है वह कुटमैती के नाम से प्रसिद्ध है। कोई कोई इसे मध्यम कार्य भी कहते हैं।

(३) अपने कुल से न्यून कुल वाले के साथ जो सम्बन्ध किया जाता है उसे बिकरी * या न्यून कार्य कहते हैं। यही तीन प्रणालियाँ विवाह के लिए मुख्य मानी गई हैं। इनका विवरण यों है :—

(१) न्यून वंशवाला यदि अपनी लड़की का विवाह श्रेष्ठ कुल के वर से करना चाहेगा तो उसे घटक और पंजीकार की सलाह से वर को कुछ धन अवश्य देना पड़ेगा। कन्यावाले से रुपये लिये बिना प्रतिष्ठित वंश का कोई वर विवाह नहीं करता। जिन्हें द्रव्य की आवश्यकता होती है वही प्रायः ऐसा काम करते हैं।

(२) कुटमैती विवाह में लेन देन का उतना रिवाज नहीं है। हाँ, लड़कीवाला कभी कभी अपनी दरिद्रता के कारण वर को खिलाने पिलाने और दान दहेज़ देने के अभिप्राय से कुछ रुपये पहले ही उससे ले लेता है। पर यह रीति कुछ दिनों से बहुत बिगड़ गई है। जिनके पास धन है वे भी कुटमैती विवाह में वर से बिना रुपया लिए कन्या देना अपनी मान-हानि समझते हैं। पंजीबद्धों में इसका प्रचार विशेष रूप से है। क्याही अच्छा होता यदि इस प्रकार के विवाह में वर से रुपया लेने का व्यवहार उठा दिया जाता।

(३) सामान्य ब्राह्मण यदि श्रेष्ठ कुल (पंजीबद्ध) की कन्या से विवाह करना चाहे और यह सम्बन्ध लड़की वाले को क़बूल हो तो वह उस वर से न्यूनकुलोचित दण्ड स्वरूप द्रव्य ज़रूर लेगा। द्रव्य का परिमाण वर के हीन वंश और कन्यावाले के उच्च वंश के अनुसार निश्चित होता है, जिसकी निष्पत्ति घटक और पंजीकार के द्वारा की जाती है। रुपये की नियत संख्या व्यवस्था के नाम से व्यवहृत है। लड़की वाला यदि समझदार होता है तो वर में और तरह के सद्गुण देख कर व्यवस्था के रुपयों में कुछ रिआयत कर देता है।

इस प्रकार वर से जो रुपये लिये जाते हैं उसी को अन्य देशीय लोग कन्या-विक्रय कह कर मैथिलों का उपहास करते हैं। पर समझने की बात है कि यदि मैथिलों का उद्देश कन्या बेचने ही का होता तो वे अपने से उच्चकुलवाले वर को रुपये क्यों देते। इसके सिवा वंश का विचार न करके लड़की की ख़ूबसूरती आदि गुणों ही पर मूल्य निर्धारित होता। पर यह बात नहीं है। केवल हीन कुलवालों के साथ सम्बन्ध होने से जो अपने उच्चकुल के महत्त्व की हानि होती है उसी के बदले लड़की

* "बिकरी" शब्द का प्रयोग कन्या और वर दोनों के लिए किया जाता है। अर्थात् कन्या के बदले रुपये लेने को कन्या की बिकरी कहते हैं और वर के बदले रुपये लेने को वर की बिकरी कहते हैं। जो उच्चकुलोत्पन्न वर रुपये ले कर छोटे कुल की लड़की से विवाह करते हैं वे बिकौआ कहलाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाला वर से रुपये लेना उचित समझता है। इस प्रकार के कन्यादान को बिकरी के नाम से भलेही लोग ख्यात करें, पर यह कन्या की विक्री न हो कर वंशमहत्त्व की विक्री अवश्य है। इसलिए इसे कन्या-विक्रय न कह कर वंश विक्रय कहना ही उचित जान पड़ता है।

पंजीबद्ध।

यद्यपि श्रोत्रिय (सोति) और योग्य भी पञ्जीबद्ध होते हैं, किन्तु यहाँ मेरा मतलब उन पंजीबद्धों से है जिनकी श्रेणी उन दोनों से पृथक है और जो उनकी अपेक्षा न्यून समझे जाते हैं। पंजीबद्धों की संख्या उन दोनों से अधिक है। पंजी में कौन बड़ा है और कौन छोटा, इसका विचार बड़ा ही सूक्ष्म है। वंशपरम्परा से जिनका वैवाहिक सम्बन्ध उच्चकुलवालों या समानकुलशीलवालों के साथ होता आया है उनकी पंजी में अन्तर नहीं पड़ता; यदि पड़ता भी है तो बहुत अल्प। किन्तु जो पंजीबद्ध वंशक्रमागत उत्तरोत्तर न्यून कुल से सम्बन्ध जोड़ते आते हैं उनकी पंजी क्रमशः न्यून होते होते अन्त में शून्य हो जाती है। बस केवल वंश का नाम रह जाता है—अर्थात् जो मूलग्राम निर्दिष्ट है उसका लोप नहीं हो सकता। इन लोगों में भी पूर्वोक्त विवाह की तीनों प्रणालियाँ प्रचलित हैं।

वंशज* ।

बहुतेरे पंजीबद्ध द्रव्य के लोभ से या किसी और कारण से सामान्य मूलग्राम वाले (गृहस्थ ब्राह्मण) की लड़की से विवाह करते हैं। उनसे जो सन्तान उत्पन्न होती है वह वंशज कहलाती है। पितृकुल प्रतिष्ठित होने के कारण पंजीबद्ध न होने पर भी, लोगों की मर्यादा सामान्य ब्राह्मणों की अपेक्षा उत्तम समझी जाती है। वंशज चाहे तो उत्तरोत्तर उच्च कार्य करके फिर अपने वंश को पंजी से अलंकृत कर सकता है। इन लोगों में भी विवाह की वही पूर्वोक्त तीनों रीतियाँ व्यवहृत हैं।

* मैं इसी श्रेणी के अन्तर्गत हूँ। लेखक

व्यापक।

जो सामान्य ब्राह्मण (छोटे मूलग्रामवाले) अपनी प्रतिष्ठा और मर्यादा बढ़ाने के अभिप्राय से अधिक रुपये ख़र्चकर लड़के और लड़की का विवाह परम्परा से पंजीबद्ध लोगों के यहाँ करते आते हैं, और जिनके कुल का व्यवहार प्रतिष्ठित वंश के सदृश होता चला आया है, वे मैथिल सामान्य होने पर भी उत्तम क्रिया-कलाप के कारण व्यापक या परिचित ब्राह्मण कहलाते हैं। तीनों प्रकार के विवाह करने का अधिकार रखते हुए भी ये सहसा अपने से निकृष्ट कुलवालों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध करना उचित नहीं समझते। वे यदि ऐसा करने लगें तो उनकी वंशक्रमागत मर्यादा का लोप होते देर न लगे।

यहाँ पर इतना और समझ लेना चाहिए कि उत्तम से उत्तम क्रिया करने पर या न्यून से न्यून कार्य करने पर भी जिसका जो मूलग्राम पूर्व से नियत है वह कदापि नहीं बदल सकता। अर्थात् न छोटे मूल वाले उत्तमोत्तम वैवाहिक क्रिया करने पर श्रेष्ठ मूलवाले बन सकते हैं और न श्रेष्ठ मूलवाले उत्तरोत्तर न्यून वैवाहिक सम्बन्ध करने पर छोटे मूलग्रामवाले हो सकते हैं। हाँ क्रिया के अनुसार वंश में श्रेष्ठता और न्यूनता की झलक अवश्य आ जाती है। उत्तरोत्तर उत्तम वैवाहिक क्रिया और सद्व्यवहार करने के कारण सामान्य ब्राह्मण को भी, उनके ग्राम या प्रसिद्ध पूर्वपुरुष के नामानुसार, प्रतिष्ठा-सूचक नवीन पंजी से पंजीकार सम्मानित करते हैं और तब से वे प्रतिष्ठित मैथिलों में गिने जाते हैं। नवीन पंजी प्राप्त करने पर ये लोग अपने लड़के का, जहाँतक हो सकता है, उच्च कुल में विवाह कराते हैं और ख़ूब रुपये ख़र्च करते हैं। किन्तु लड़की की शादी कुटमैती रीति के अनुसार ही करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामान्य ब्राह्मण।

महाराज हरिसिंहदेव के समय में जो मैथिल आचार-विहीन समझे गये और जिनकी जैसे हीन-क्रिया देखी गई तदनुसार उस समय उन लोगों का मूल ग्राम अलग अलग निर्दिष्ट किया गया। खेद का विषय है कि अब उस वंश में कितने ही शिष्ट लोग उत्तमोत्तम आचार विचार करने पर भी उसी पूर्वोक्त मूलग्रामानुसार सामान्य श्रेणी में गिने जाते हैं, और प्रतिष्ठित वंश वाले उनके साथ विवाहादि सम्बन्ध करने में अपनी अप्रतिष्ठा समझते हैं। जब तक इनसे पूरा रुपया न गिना लेंगे तब तक प्रतिष्ठित मैथिल इनकी लड़की से विवाह न करेंगे और न बिना रुपया लिये इन सामान्य ब्राह्मणों के लड़के का विवाह अपने यहाँ होने देंगे।

जान पड़ता है इसी से कितने ही सामान्य मैथिल उन पंजीबद्धों के साथ सम्बन्ध करने में असमर्थ होते हैं और कितने ही उन प्रतिष्ठित मैथिलों की अवहेला से मर्माहत हो अपने ही सदृश कुलवालों के यहाँ विवाहादि सम्बन्ध करना उचित समझते हैं और पंजीबद्ध लोगों से कोसों भागते हैं। पर कुट-मैती विवाह की व्यवस्था का व्यवहार इन लोगों में भी पाया जाता है। अर्थात् लड़की वाले अपने सदृश कुल के वर से कुछ रुपये ले कर कन्यादान करने में अपना महत्त्व समझते हैं।

अक्रिय।

जो मैथिल द्रव्य के लोभ या किसी और कारण से दूषित कुलवाले के यहाँ अथवा कृत्रिम* मैथिल के यहाँ वैवाहिक सम्बन्ध करते हैं, या अपने कुलोचित आचार-विचार को छोड़ कर निन्दित कर्म करते हैं वे अक्रिय कहलाते हैं। जो अच्छे कुल शील वाले मैथिल हैं वे उनके साथ वैवाहिक सम्बन्ध करना नहीं चाहते। जो कोई प्रतिष्ठित मैथिल भूल से इनके यहाँ सम्बन्ध करता है वह मैथिल-मण्डली में हेय समझा जाता है। जो मैथिल अक्रिय के सम्पर्की होते हैं उनका विवाहादि सम्बन्ध उन अक्रियों के ही साथ होता है। आज कल इन अक्रियों की संख्या कुछ अधिक बढ़ गई है। इसका कारण यह है कि ये लोग घटक पंजीकार को मुँहमाँगा रुपया दे कर अपना परिचय ठीक करा लेते हैं। तदनन्तर प्रतिष्ठित मैथिलों के आगे रुपयों का जाल फैला कर विवाह-सूत्र में उन्हें फँसा लेते हैं। पोल पोल खुल जाने पर फिर होता ही क्या है। इस प्रकार के सम्बन्ध से कितने ही प्रतिष्ठित मैथिलों का वंश कलङ्कित हो रहा है।

सुनने में आया है कि गतवर्ष सौराठ की सभा में मिथिलाधीश महाराज बहादुर की तरफ़ से इस बात की बड़ी ताकीद थी कि कोई पंजीकार बिना पूरा परिचय पाये किसी का सिद्धान्त न लिखे। यदि महाराज बहादुर की दृष्टि इस ओर यों ही बनी रही तो मैथिलों में विवाह की रीति जो बिगड़ती जाती है वह थोड़े ही दिनों में सुधर जायगी।

मैथिल ब्राह्मणों के विवाहार्थ जो शुद्ध समय में सभायें होती हैं उसके विषय में थोड़ा सा और लिखना मैं आवश्यक समझता हूँ। बहुत से दूर देशीय लोगों की प्रायः यह भावना है कि—"मैथिल ब्राह्मणों में वर कन्या की एक बड़ी भारी हाट लगती है जिसमें लड़कियों का क्रय-विक्रय होता है। उसी को मैथिल लोग सभा कह कर पुकारते हैं"। पर यह बात नितान्त भ्रान्तिमूलक है। सभा सम्बन्धी कार्यों से अनभिज्ञ होने के कारण ही लोग ऐसा समझते हैं।

मिथिलादेश के अन्तर्गत कई नियत स्थानों में सभायें होती हैं। उनमें सबसे बड़ी सभा सौराठ नामक प्रसिद्ध गाँव में होती है, जो दरभंगे से आठ दस कोस उत्तर और पूरब के कोने में है। सभा के लिए शुद्ध का अन्तिम समय ही परम्परा से उपयुक्त माना जाता है। आठ दस दिन से अधिक

* कृत्रिम मैथिल उन्हें कहते हैं जो अपनी असल जाति छिपा कर और बनावटी मूलग्रामादि बताकर अपने को मैथिल बताते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभा नहीं होती। इतने ही दिनों में वहाँ लाखों मैथिल ब्राह्मण इकट्ठे होते हैं। जो कन्यादान के अभिप्राय से आते हैं वे कन्यागत और जो लड़के का विवाह कराने आते हैं वे वरागत कहलाते हैं। जो विवाह करना चाहता है उसे घटक लोग उम्मीदवर कह कर पुकारते हैं। इनके अतिरिक्त कितने ही दर्शक, कितने ही सदावर्त देने वाले और कितने ही दूकानदार जमा होते हैं। कितने ही विद्वान् वहाँ उपस्थित होकर शास्त्रार्थ करते हैं। घटकों की संख्या अधिक रहती है। पंजीकार लोग वंशावली की पोथी लेकर अलग अलग बैठते हैं। यद्यपि प्रतिष्ठित मैथिलों की वंशावली प्रायः प्रत्येक अच्छे पंजीकार की पोथी में लिखी रहती है तथापि भिन्न भिन्न मैथिलों के पंजीकार भिन्न भिन्न होते हैं। जिनके जो पंजीकार पूर्व से नियत हैं वे उन्हीं से सिद्धान्त लिखाते हैं। अपने पंजीकार की अनुपस्थिति में दूसरे पंजीकार से सिद्धान्त लिखा लेने में कोई प्रति नहीं है। बिना रुपये लिये कोई पंजीकार सिद्धान्त नहीं लिखते। कोई कोई पंजीकार तो विवाहसम्बन्धी बातों का जवाब भी बिना रुपये लिये नहीं देते। सिद्धान्त लिखाई का रुपया उन्हीं को देना पड़ता है जो रुपये गिनते हैं। अर्थात् लड़की वाला वर को रुपया देगा तो सिद्धान्त लिखाई का रुपया भी उसी को देना होगा। यदि कन्यावाले को वर की तरफ़ से रुपये दिये जायँगे तो सिद्धान्त लिखाई का रुपया वर को देना होगा। दुर्मैती विवाह में दोनों (कन्यागत और वरागत) को रुपया देना पड़ता है। सिद्धान्त लिखाई के रुपये की संख्या नियत नहीं है। दो रुपये से कम प्रायः नहीं दिया जाता। आगे जिसकी जैसी हैसियत होती है वह उसी के अनुसार पंजीकार को रुपये देता है।

विवाह की बात वास्तव में घटकों ही के द्वारा निश्चित होती है। घटक सभा में चारों ओर घूमते फिरते हैं और लोगों से पूछते हैं कि "आप किस देश से आये हैं।" जिस अभिप्राय से जो आता है वह उनसे कहता है। पूर्वोक्त तीन प्रकार की विवाह-प्रणालियों में जो जिस प्रणाली के अनुसार अपने पुत्र या कन्या का विवाह करना चाहते हैं उसी के अनुसार घटक लोग घटना स्थिर करते हैं। कार्यार्थी के निकट दो चार लोगों की बात घटक कहता है। उनमें जो बात पसन्द आई उसे ठीक करने के लिए घटक को आदेश मिलता है। तदनन्तर घटक दोनों (कन्यागत और वरागत) की रुचि के अनुसार लेन देन का निबटारा करके विवाह की बात तै करता है। बातचीत पक्की हो जाने पर घटक उन दोनों से, या एक से, मेहनताने के कुछ रुपये ले लेता है और पंजीकार के यहाँ ले जाकर सिद्धान्त लिखा देता है। सिद्धान्त हो जाने पर कन्यागत वर को अपने साथ लेकर घर की ओर रवाना होता है और घर पहुँचने के साथ ही शुभ मुहूर्त का कुछ विशेष विचार न करके उस वर के साथ वेद-विधि से अपनी लड़की को ब्याह देता है। विवाह हो जाने पर यह ख़बर वर के घर भेजी जाती है।

सभा का मुख़्तसर हाल इतना ही है। इस प्रकार की सभा होने से लाभ है या हानि, इसकी विवेचना मैं पाठकों की विचार-बुद्धि पर छोड़ता हूँ। मेरी समझ में इससे हानि और लाभ दोनों हैं। हानि तो यह है कि कन्यावाले वर के घर का कुछ हाल नहीं जानते। जो घटक कह देते हैं उसी पर सन्तोष करना पड़ता है। और वर को यह ठीक ठीक नहीं मालूम होने पाता कि कन्या कैसी है। उसको भी घटक के ही वाक्य पर विश्वास करना पड़ता है। सच पूछिए तो कन्यागत और वरागत दोनों बहुधा आँखें बन्द करके ही काम कर लेते हैं जिसका परिणाम विवाह होने के पीछे कभी कभी बहुत बुरा होता है!

लाभ यह है कि वरागत या कन्यागत को जिस प्रणाली का वैवाहिक सम्बन्ध करना होता है उसी प्रणाली की अनेकानेक बातें बिना कहीं घूमे फिरे, एक ही जगह इकट्ठी मालूम हो जाती हैं। अपनी इच्छानुसार जिनके विवाह की बात ठीक नहीं होती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे अकृतकार्य होकर घर लौट जाते हैं और आगे होने वाली सभा की प्रतीक्षा करते हैं।

मैथिलों का वैवाहिक कर्म वेदोक्त विधि से होता है। इसके सिवा इनके विवाह में कोई विशेष आडम्बर नहीं होता। बारात सजाने, नाच मुजरा कराने या आतशबाज़ी छुटाने इत्यादि में वृथा रुपये फूकने का व्यवहार नहीं है। रुपया लड़कीवाले के घर रहे चाहे वर के घर, अन्यत्र प्रायः नहीं जाने पाता। हाँ, ख़र्च यदि कुछ है तो इतना ही कि अपने सश्रोक भाई बन्धुओं को और आप्त सम्बन्धियों को निमन्त्रित कर यथाशक्ति भोजन वस्त्रादि से उनका सत्कार किया जाता है। इसके अतिरिक्त अच्छे कुलशीलवाले मैथिलों में चतुर्थी के दिन पान सुपारी बाँटने का व्यवहार भी है, जो बस्ती भर के लोगों को बुलाकर सम्मानपूर्वक दिया जाता है।

मैथिलों में सबसे बढ़ कर सुभीता यह है कि जिनके पास द्रव्य नहीं उन्हें कन्यादान के लिए विशेष कष्ट नहीं उठाना पड़ता। मैथिलातिरिक्त ब्राह्मणों या क्षत्रियादि जातियों में जिनके पास धन नहीं है उनको कन्यादान करने में बड़ी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती हैं। जब तक तिलक और दान दहेज़ के लिए पूरे तौर से रुपये न मिलेंगे तब तक कन्या का विवाह न हो सकेगा। कहीं कहीं तो रुपये के अभाव से कन्या कुमारी ही रह कर अपना यौवनकाल बिता डालती है। लड़की के बाप दरिद्र होने के कारण कर ही क्या सकते हैं। कितनेही विचारवान् तो कन्या की दुर्दशा पर दृष्टिपात कर और उस मार्मिक पीड़ा के सहन करने में असमर्थ होकर घर छोड़ सदा के लिए लापता हो जाते हैं। पर यह बात मैथिलों में नहीं है। मैथिल कैसाही दरिद्र से दरिद्र क्यों न हो, उसके घर में दस बारह बरस से अधिक उम्र वाली लड़की कुमारी नहीं रहने पाती। उसका विवाह ज़रूरही हो जाता है।

हाँ, मैथिलों में यदि कोई दोष है तो यह कि कुलीन बंगाली ब्राह्मणों की देखा देखी बहुविवाह की रीति बहुत दिनों से प्रचलित हो गई है। पर इसका रिवाज अब दिनों दिन घटता जाता है। जो प्रतिष्ठित मैथिल केवल द्रव्य के लोभ से अधिक विवाह करते हैं उनका आदर भी अब उतना नहीं होता है। यहि सच पूछा जाय तो बहुविवाह करने वाले बिकौआ की बड़ी दुर्दशा होती है। न उसका आदर अपने समाज ही में होता और न श्वशुर के घर में ही। आज यहाँ, कल वहाँ, इसी प्रकार वे मारे मारे फिरते हैं।

इस प्रकार की कुरीति के निवारणार्थ वर्तमान मिथिलाधीश और उनके प्रधान कर्म्मचारी विशेष चेष्टा कर रहे हैं। आशा है कि उनके प्रयत्न से मैथिलों में विवाह-सम्बन्धी बुरे व्यवहार दूर हो जायँगे।

अन्त में अभिज्ञ मैथिल महानुभावों से मेरी प्रार्थना है कि इस लेख में जो कुछ त्रुटि रह गई हो उसे पूर्तिकर धन्यवाद के पात्र बनें और यदि मुझ से कुछ अनुचित लिखा गया हो तो तदर्थ मुझे क्षमा करें।

जनार्दन झा।

कन्या-दान।

नयनों की गंगा।

धन्य हैं वे नयन जो कभी कभी प्रेम-नीर से भर आते हैं। प्रति दिन गंगा-जल से तो स्नान होता ही है परन्तु जिस पुरुष ने नयनों की प्रेम-धारा में कभी स्नान किया है वही जानता है कि इस स्नान से मनके मलिन भाव किस तरह बह जाते हैं; अन्तःकरण कैसे पुष्प की तरह खिल जाता है; हृदय-ग्रन्थि किस तरह खुल जाती है; कुटिलता और नीचता का पर्वत कैसे चूर चूर हो जाता है। श्रावण, भादों की वर्षा के बाद वृक्ष जैसे नवीन नवीन कोपलों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारण किये हुए एक विचित्र मनोमोहिनी छटा दिखाते हैं उसी तरह इस प्रेम-स्नान से मनुष्य की आन्तरिक अवस्था स्वच्छ, कोमल और रसभीनी हो जाती है। प्रेम-धारा के जल से सींचा हुआ हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। हृदयस्थली में पवित्र भावों के जो बीज उगते, बढ़ते और फलते हैं। वर्षा और नदी के जल से तो अन्न पैदा होता है; परन्तु नयनों की गंगा से प्रेम और वैराग्य के द्वारा मनुष्य-जीवन को अगर और बर्फ़ से बपतिस्मा मिलता है अर्थात् नया जन्म होता है—मानो प्रकृति ने हर एक मनुष्य के लिए इस नयन-नीर के रूप में मसीहा भेजा है, जिससे हर एक नर-नारी कृतार्थ हो सकते हैं। यही वह यज्ञोपवीत है जिसके धारण करने से हर आदमी द्विज हो सकता है। क्याही उत्तम किसी ने कहा है:—

हाथ ख़ाली मर्दुमे दीदा बुतों से क्या मिलें।
मोतियों की पंज-ए-मिज़गाँ में इक माला तो हो॥

आज हम उस अश्रु-धारा का स्मरण नहीं करते जो ब्रह्मानन्द के कारण योगी जनों के नयनों से बहती है। आज तो लेखक के लिए अपने जैसे साधारण पुरुषों की अश्रु-धारा का स्मरण करना ही इस लेख का मंगला-चरण है। प्रेम की बूंदों में यह असार संसार मिथ्या रूप होकर घुल जाता है और हम पृथ्वी से उठ कर आत्मा के पवित्र नभो-मंडल में उड़ने लगते हैं। अनुभव करते हुए भी ऐसी खोई हुई अवस्था में हर कोई समाधिस्थ हो जाता है; अपने आपको भूल जाता है; शरीराध्यास न जाने कहाँ चला जाता है; प्रेम की काली घटा ब्रह्म-रूप में लीन हो जाती है। चाहे जिस शिल्पकार, चाहे जिस कला-कुशल-जन, के जीवन को देखिए उसे इस आत्मावस्था का स्वयं अनुभव हुए बिना अपनी कला का तत्त्वज्ञान नहीं होता। चित्रकार सुंदरता को अनुभव करता है और तत्कालही मारे ख़ुशी के आँखों में जल भर लाता है। बुद्धि, प्राण, मन और तन सुंदरता में डूब जाते हैं। सारा शरीर प्रेम-वर्षा के प्रवाह में बहने लगता है। वह चित्र ही क्या जिसको देख देख कर चित्रकार की आँखें इस मद-होश करनेवाली ओस से तर न हुई हों। वह चित्र-कारी ही क्या जिसने हज़ार बार चित्रकार को इस योग-निद्रा में न सुलाया हो।

कवि को देखिए, अपनी कविता के रस पान से मत्त होकर वह अन्तःकरण के भी परे आध्यात्मिक नभो-मंडल के बादलों में विचरण करता है। ये बादल चाहे आत्मिक जीवन के केन्द्र हों, चाहे निर्विकल्प समाधि के मन्दिर के बाहर के घेरे, इनमें जाकर कवि ज़रूर सोता है। उसका अस्थि-मांस का शरीर इन बादलों में घुल जाता है। कवि वहाँ ब्रह्म-रस को पान करता है और अचानचक बैठे बिठाये श्रावण भादों के मेघ की तरह संसार पर कविता की वर्षा करता है। हमारी आँखें कुछ ऐसी ही हैं। जिस प्रकार वे इस संसार के कर्त्ता को नहीं देख सकतीं उसी प्रकार आध्यात्मिक देश के बादल और धुन्ध में सोये हुए कलाधर पुरुष को नहीं देख सकतीं। उसकी कविता जो हमको मदमत्त करती है वह एक स्थूल चीज़ है और यही कारण है कि जो कलानिपुण जन प्रति दिन अधिक से अधिक उस आध्यात्मिक अवस्था का अनुभव करता है। वह अपनी एक बार अलापी हुई कविता को उस धुन से नहीं गाता जिससे वह अपने ताज़े से ताज़े दोहों और चौपाइयों का गान करता है। उसकी कविता के शब्द केवल इस वर्षा के दाने हैं। यह तो ऐसे कवि के शान्तरस की बात हुई। इस तरह के कवि का वीररस इसी शान्तरस के बादलों की टक्कर से पैदा हुई बिजली की गरज और चमक है। कवि को कविता में देखना तो साधारण काम है; परन्तु आँखवाले उसे कहीं और ही देखते हैं। कवि की कविता और उसका आलाप उसके दिल और गले से नहीं निकलते। वे तो संसार के ब्रह्म-केन्द्र से आलापित होते हैं। केवल उस आलाप करनेवाली अवस्था का नाम कवि है। फिर चाहे वह अवस्था हरे हरे बाँस की पोरी से,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहे नारद की वीणा से, और चाहे सरस्वती के सितार से बह निकले। वही सच्चा कवि है जो दिव्य-सौन्दर्य के अनुभव में लीन हो जाय और लीन होने पर जिसकी जिह्वा और कंठ मारे ख़ुशी के रुक जायँ, रोमांच हो उठे, निजानन्द में मत्त होकर कभी रोने लगे और कभी हँसने।

हर एक कला-निपुण पुरुष के चरणों में यह नयनों की गंगा सदा बहती है। क्या यह आनन्द हमको विधाता ने नहीं दिया! क्या उसी नीर में हमारे लिए राम ने अमृत नहीं भरा! अपना निश्चय तो यह है कि हर एक मनुष्य जन्म से ही किसी न किसी अद्भुत प्रेम-कला से युक्त होता है। किसी विशेष कला में निपुण न होते हुए भी राम ने हर एक हृदय में प्रेम-कला की कुञ्जी रख दी है। इस कुञ्जी के लगते ही प्रेम-कला की सम्पूर्ण सम्भूति अज्ञानियों और निरक्षरों को भी प्राप्त हो सकती है :—

All arts are nothing but Samadhi applied to love.

We are all born geniuses only if we will. The painter, the sculptor, the poet and the prophet have only been selected to love objects unseen by the ordinary human eye.

कवि सदा बादलों से घिरे हुए और तिमिराच्छन्न देश में रहता है। वहीं से चले हुए बादलों के टुकड़े माता, पिता, भ्राता, भगनी, सुत, दारा इत्यादि के चक्षुओं पर आ कर छा जाते हैं। मैंने अपनी आँखों इनको छम छम बरसते देखा है। जिस आध्यात्मिक देश में कवि, चित्रकार, योगी, पीर, पैग़म्बर, औलिया विचरते हैं और किसी और को घुसने नहीं देते, वह सारे का सारा देश इन आम लोगों के प्रेमाश्रुओं से घुल घुल कर बह रहा है। आओ, मित्रो! स्वर्ग का आम नीलाम हो रहा है (Paradise is at auction and any body can buy it).

सर वाल्टर स्काट (Sir Walter Scott) अपनी "लेडी आव दि लेक" (Lady of the Lake) नामक कविता में बड़ी ख़ूबी से उन अश्रुओं की प्रशंसा करते हैं जो अश्रु पिता अपनी पुत्री को आलिङ्गन करके उसके केशों पर मोती की लड़ी की तरह बखेरता है। इन अश्रुओं को वे अद्भुत दिव्य प्रेम के अश्रु मानते हैं। सच है, संसार के गृहस्थ मात्र के सम्बन्धों में पिता और पुत्री का सम्बन्ध दिव्य प्रेम से भरा है। पिता का हृदय अपनी पुत्री के लिए कुछ ईश्वरीय हृदय से कम नहीं।

पाठक, अब तक न तो आपको और न मुझेही ऊपर की लिखी हुई बातों का ऊपरी दृष्टि से कन्यादान के विषय से कुछ संबन्ध मालूम होता है। तो फिर लेखक ने सरस्वती के सम्पादक को नीली पेंसल फेरने का अधिकार क्यों न दिया। उसका कारण केवल यह है कि ऊपर और नीचे का लेख लेखक की एक विशेष देश-काल-सम्बन्धी मनोलहरी है। पता लगे, चाहे न लगे कन्यादान से सम्बन्ध अवश्यमेव है।

एक समय आता है जब पुत्री को अपने माता पिता का घर छोड़कर अपने पति के घर जाना पड़ता है।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगंधिं पतिवेदनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीयमामुतः। शु० यजु०

"आओ आज हम सब मिलकर अपने पतिवेदन उस त्रिकाल-दर्शी सुगंधित पुरुष का यज्ञ करें जिससे, जैसे दाना पकने पर अपने छिलके से अलग हो जाता है, वैसे ही हम इस घर के बन्धनों से छूटकर अपने पति के अटल राज को प्राप्त हों"।

प्राचीन वैदिक काल में युवा कुवारी लड़कियाँ यज्ञाग्नि की परिक्रमा करती हुई ऊपर की प्रार्थना ईश्वर के सिंहासन तक पहुँचाया करती थीं।

हर एक देश में यह बिछोड़ा भिन्न भिन्न प्रकार से होता है। परन्तु इस बिछोड़े में त्याग-अंश नज़र आता है। योरप में आदि काल से ऐसा रवाज चला आया है कि एक युवा कन्या किसी वीर, शुद्धहृदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सोहने नौजवान को अपना दिल चुपके चुपके पेड़ों की आड़ में, या नदी के तट पर, या वन के किसी सुनसान स्थान में दे देती है। अपने दिल को हार देती है—मानो अपने हृत्कमल को अपने प्यारे पर चढ़ा देती है। अपने आपको त्याग कर वह अपने प्यारे में लीन हो जाती है। वाह! प्यारी कन्या तूने तो जीवन के खेल को हारकर जीत लिया। तेरी इस हार की सदा संसार में जीत ही रहेगी। उस नौजवान को तू प्रेम-मय कर देती है। एक अद्भुत प्रेम-योग से उसे अपना कर लेती है। उसके प्राण की रानी हो जाती है। देखो! वह नौजवान दिन रात इस धुन में है कि किस तरह वह अपने आपको उत्तम से उत्तम और महान् से महान् बनाये—वह उस बेचारी निष्पाप कन्या के शुद्ध और पवित्र हृदय को ग्रहण करने का अधिकारी हो जाय। प्रकृति ऐसा दान बिना पवित्रात्मा के किसी को नहीं दे सकती। नौजवान के दिल में कई प्रकार की उमंगें उठती हैं। उसकी नाड़ी नाड़ी में नया रक्त, नया जोश और नया ज़ोर आता है। लड़ाई में अपनी प्रियतमा का ख़याल ही उसको वीर बना देता है—

उसी के ध्यान में यह पवित्र दिल निडर हो जाता है। मौत को जीत कर उसे अपनी प्रियतमा को पाना है ("The paradise is under the shade of swords"). ऊँचे से ऊँचे आदर्श को अपने सामने रखकर यह राम का लाल तन मन से दिन रात उसके पाने का यत्न करता है। और जब उसे पा लेता है तब हाथ में विजय का फुरेरा लहराते हुए एक दिन अकस्मात् उस कन्या के सामने आकर खड़ा हो जाता है। कन्या के नयनों से गंगा बह निकलती है और उस लाल का दिल अपनी प्रियतमा की सूक्ष्म प्राण गति से लहराता है, काँपता है, और शरीर ज्ञानहीन हो जाता है। विवश होकर वह उसके चरणों में अपने आपको गिरा देता है। कन्या तो अपने दिल को दे ही चुकी थी; अब इस नौजवान ने आकर अपना दिल अर्पण किया। इस पवित्र प्रेम ने दोनों के जीवन को रेशमी डोरों से बाँध दिया—तन मन का होश अब कहाँ है। मैं तू और तू मैं वाली मदहोशी हो गई। यह जोड़ा मानो ब्रह्म में लीन हो गया; इस प्रेम में कदूरत लेश मात्र नहीं होती। विक्टर ह्यूगो (Victor Hugo) ने ले-मिज़ाबल (Les Miserables) में मैरीयस (Marius) और कौसट (Cosett) के ऐसे मिलाप का बड़ा ही अच्छा वर्णन किया है। चाँदनी रात है। मंद मंद पवन चल रही है। वृक्ष अजीब लीला में आस पास खड़े हैं। और यह कन्या और नौजवान कई दिन बाद मिले हैं। मेरीयस के लिए तो कुल संसार इस देवी का मंदिर-रूप हो रहा था। अपने हृदय की ज्योति को प्रज्वलित करके उस देवी की वह आरती करने आया है। कौसट घास पर बैठी है। कुछ मीठी मीठी प्रेम भरी बात-चीत हो रही है। इतने में सरसराती-हवा ने कौसट के सीने से चीर उठा दिया। ज़रा सी देर के लिए उस बर्फ़ की तरह सफ़ेद और पवित्र छाती को नग्न कर दिया। मगर मेरीयस ने फ़ौरन अपना मुँह परे को हटा लिया। वह तो देवी-पूजा के लिए आया है; आँख ऊपर करके नहीं देख सकता।

रोमियो और जूलियट नामक शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटक में जूलियट ने किस अंदाज़ से अपना दिल त्याग दिया और रोमियो के दिल की रानी हो गई!

वे क़िस्से कहानियाँ जिन में नौजवान शाहज़ादे अपना दिल पहले दे देते हैं अपवित्र मालूम होते हैं; और उनके लेखक प्रेम के स्वर्गीय नियम से अनभिज्ञ प्रतीत होते हैं। कुछ शक नहीं, कहीं कहीं पर वे इस नियम को दरसा देते हैं, परन्तु सामान्य लेखों में पुरुष का दिल-ही तड़पता दिखलाते हैं। कन्या अपना दिल चुपके से दे देती है। इस दिल के दे देने की ख़बर वायु, पुष्प, वृक्ष, तारागण इत्यादि को होती है। लैली का दिल मजनूँ की ज़ात में पहले घुल जाना चाहिए और इस अभेदता का परिणाम यह होना चाहिए कि मजनूँ उत्पन्न हो—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस यज्ञ-कुण्ड से एक महात्मा (मजनूँ) प्रकट होना चाहिए। सोहनी मेंहीवाल* के क़िस्से में असली मेंहीवाल उस समय निकलता है जब कि सोहनी अपने दिल को लाकर हाज़िर करती है। राँझा* हीर की तलाश में निकलता ज़रूर है; मगर सच्चा योगी वह तभी होता है जब उसके लिए हीर अपने दिल को बेले के किसी झाड़ में छोड़ आती है। शकुन्तला जंगल की लता की तरह बेहोशी की अवस्था में ही जवान हो गई। दुष्यन्त को देखकर अपने आपको खो बैठी। राजहंसों से पता पाकर दमयन्ती नल में लीन हो गई। राम के धनुष तोड़ने से पहले ही सीता अपने दिल को हार चुकी। सीता के दिल के बलिदान का ही यह असर था कि मर्यादा-पुरुषोत्तम राम भगवान् वन वन में बारह वर्ष तक अपनी प्रियतमा के क्लेशनिवारणार्थ रोते फिरे।

Nothing but a perfect womanhood can call man to purity and sacrifice, to manhood and to godhood.

यूरप में कन्या जब अपना दिल ऊपर लिखे गये नियम से दान करती है तब वहाँ का गृहस्थ-जीवन आनन्द और सुख से भर जाता है। जहाँ ख़ुशामद और झूठे प्रेम से कन्या फिसली, थोड़ी ही देर के बाद गृहस्थाश्रम में दुख-दर्द और राग-द्वेष प्रकट हुए। प्रेम के क़ानून को तोड़कर जब यूरप में उलटी गंगा बहने लगी तब वहाँ विवाह एक प्रकार की ठेकेदारी हो गया और समाज में कहीं कहीं यह ख़याल पैदा हुआ कि विवाह करने से कुँवारा रहना ही अच्छा है। लोग कहते हैं कि यूरप में कन्या-दान नहीं होता; परन्तु विचार से देखा जाय तो संसार में कभी कहीं भी गृहस्थ का जीवन कन्या-दान के बिना सुफल नहीं हो सकता। यूरप के गृहस्थों के दुखड़े तब तक कभी न जायँगे जब तक एक बार फिर प्रेम का क़ानून, जिसको शेक्सपियर ने अपने "रोमियो और जूलीयट" में इस ख़ूबी से दरसाया है, लोगों के अमल में न आवेगा। अतएव यूरप और अन्य पश्चिमी देशों में कन्या-दान अवश्यमेव होता है। वहाँ कन्या पहले अपने आपको दान कर देती है; पीछे से गिरजे में जाकर माता, पिता या और कोई सम्बन्धी फूलों से सजी हुई दूल्हन को दान करता है—(The bride is given away in Europe).

यूरप में गृहस्थों की बेचैनी।

आजकल पश्चिमी देशों में झूठी और ज़ाहिरी शारीरिक आज़ादी के ख़याल ने कन्या-दान की आध्यात्मिक बुनियाद को तोड़ दिया है। कन्या-दान की रीति ज़रूर प्रचलित है; परन्तु वास्तव में उस रीति में मानो प्राण ही नहीं। कोई अख़बार खोलकर देखो उन देशों में पति और पत्नी के झगड़े वकीलों द्वारा जजों के सामने तै होते हैं। और जज की मेज़ पर विवाह की सोने की अँगूठियाँ काँच के छल्लों की तरह द्वेष के पत्थरों से टूटती हैं। गिरजे में कल के बने हुए जोड़े आज टूटे और आज के बने जोड़े कल टूटे।

ऐसा मालूम होता है कि मौनोगेमी (स्त्री-व्रत) का नियम, जो उन लोगों की स्मृतियों और राज-नियमों में पाया जाता है, उस समय बनाया गया था जब कन्या-दान आध्यात्मिक तरीक़े से वहाँ होता था और गृहस्थों का जीवन सुखमय था।

भला सच्चे कन्यादान के यज्ञ के बाद कौन सा मनुष्य-हृदय इतना नीच और पापी हो सकता है

* पंजाब के प्रसिद्ध कवि फ़ाज़लशाह की रचित कविता में सोहनी मेंहीवाल के प्रेम का वर्णन है। सोहनी एक कलाल की कन्या थी और मेंहीवाल फ़ारस के एक बड़े सौदागर का पुत्र था जिसने सोहनी के प्रेम में अपना सर्वस्व लुटाकर अपनी प्रियतमा के पिता के यहाँ भैंस चराने पर नौकर हो गया।

* यह भी पंजाब ही के प्रसिद्ध कवि वारेशाह की कविता की कथा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो हवन हुई कन्या के सिवा किसी अन्य स्त्री को बुरी दृष्टि से देखे। उस क़ुरबान हुई कन्या की ख़ातिर कुल जगत् की स्त्री-जाति से उस पुरुष का पवित्र सम्बन्ध हो जाता है। स्त्री-जाति की रक्षा करना और उसे आदर देना उसके धर्म का अंग हो जाता है। स्त्री-जाति में से एक स्त्री ने इस पुरुष के प्रेम में अपने हृदय की इसलिए आहुति दी है कि उसके हृदय में स्त्री-जाति की पूजा करने के पवित्र भाव उत्पन्न हों, ताकि उसके लिए कुलीन स्त्रियाँ माता समान, भगिनी समान, पुत्री समान, देवी समान हो जायँ। एक ही ने ऐसा अद्भुत काम किया कि कुल जगत् की बहनों को इस पुरुष के दिल की डोर दे दी। इसी कारण उन देशों में मोनोगेमी (स्त्री-व्रत) का नियम चला। परन्तु आज कल उस क़ानून की पूरे तौर पर पाबन्दी नहीं होती। देखिए, स्वार्थ-परायणता के वश होकर थोड़े से तुच्छ भोगों की ख़ातिर सदा के लिए कुँवारा-पन धारण करना क्या इस क़ानून को तोड़ना नहीं है। लोगों के दिल ज़रूर बिगड़ रहे हैं। ज्यों ज्यों सौभाग्यमय गृहस्थ-जीवन का सुख घटता जाता है त्यों त्यों मुल्की और इख़लाकी बे-चैनी बढ़ती जाती है। ऐसा मालूम होता है कि यूरप की कन्यायें भी दिल देने के भाव को बहुत कुछ भूल गई हैं। इसी से अलबेली भोली कुमारिकायें पारलयामेंट के झगड़ों में पड़ना चाहती हैं; तलवार और बन्दूक़ रटका कर लड़ने मरने को तैयार हैं। इससे अधिक यूरप के गृहस्थ-जीवन की अशान्ति का और क्या सबूत हो सकता है :—

On one side the Suffragist movement is to my mind the open condemnation of the moral degeneration of men—who have forgotten that they have to take the inspiration of their life and its activities from the hearts of the mother, the sister, the wife and the daughter, and have to borrow all their nobleness from the divine womanhood, and on the other side, it is the painful evidence of the extinction of the realisation of the ideal of *Kanyadan*—the noblest of all arts by which she could rule over the hearts of men and she, the Queen of the Home, was *ipso facto* the Queen of the Empires of man, the real dictator of laws and the Presiding Deity of nations.

सच्ची स्वतंत्रता।

आर्यावर्त में कन्यादान प्राचीन काल से चला आता है। कन्यादान और पतिव्रत-धर्म दोनों एक ही फल-प्राप्ति का प्रतिपादन करते हैं। आज कल के कुछ मनुष्य कन्यादान को ग़ुलामी की हँसली मान बैठे हैं। वे कहते हैं कि क्या कन्या कोई गाय, भैंस या घोड़ी की तरह बेजान और बेज़बान वस्तु है जो उसका दान किया जाता है। यह अल्पज्ञता का फल है— सीधे और सच्चे रास्ते से गुमराह होना है। ये लोग गंभीर विचार नहीं करते। जीवन के आत्मिक नियमों की महिमा नहीं जानते। क्या प्रेम का नियम सबसे उत्तम और बलवान् नहीं है? क्या प्रेम में अपनी जान को हार देना सबके दिलों को जीत लेना नहीं है? क्या स्वतन्त्रता का अर्थ मन की बेलगाम दौड़ है, अथवा प्रेमाग्नि में उसका स्वाहा होना है? चाहे कुछ कहिए, सच्ची आज़ादी उसके भाग्य में नहीं, जो अपनी रक्षा ख़ुशामद और सेवा से करता है। अपने आपको गँवा कर ही सच्ची स्वतन्त्रता नसीब होती है। गुरु नानक अपनी मीठी ज़बान में लिखते हैं :—"जा पुच्छो सुहामनी किनी गल्लीं शैाह पाइए। आप गँवाइए ताँ शैाह पाइए और कैंसी चतुराई"—अर्थात् यदि किसी सौभाग्यवती से पूछोगे कि किन तरीक़ों से अपना स्वतन्त्रता-रूपी पति प्राप्त होता है तो उससे पता लगेगा कि अपने आपको प्रेमाग्नि में स्वाहा करने से मिलता है और कोई चतुराई नहीं चलती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

True freedom is the highest summit of altruism, and altruism is the total extinction of self in the self of all.

ऐसी स्वतन्त्रता प्राप्त करना हर एक आर्य्य-कन्या का आदर्श है । सच्चे आर्य-पिता की पुत्री ग़ुलामी, कमज़ोरी और कमीनेपन के लालचों से सदा मुक्त है । वह देवी तो यहाँ संसार-रूपी सिंह पर सवारी करती है । वह अपने प्रेम-सागर की लहरों में सदा लहराती है । कभी सूर्य की तरह तेजस्विनी और कभी चंद्रमा की तरह शान्ति-प्रदायिनी होकर वह अपने पति की प्यारी है । वह उसके दिल की महारानी है । पति के तन, मन, धन और प्राण की मालिक है । सच्चे आर्य्य-गृहों में इस कन्या का राज है । हे राम ! यह राज सदा अटल रहे !

इसमें कुछ संदेह नहीं कि कन्या-दान आत्मिक भाव से तो वही अर्थ रखता है जिस अर्थ में सावित्री, सीता, दमयन्ती और शकुन्तला ने अपने आपको दान किया था ; और इन नमूनों में कन्या-दान का आदर्श पूर्ण रीति से प्रत्यक्ष है । प्रश्न यह है कि यह आदर्श सब लोगों के लिए किस तरह कल्याणकारी हो ?

लेखक का ख़याल है कि आर्य-ऋषियों की बनाई हुई विवाह-पद्धति इस प्रश्न का एक सुन्दर उत्तर है । एक तरीक़ा तो आन्तरिक अनुभव से इस आदर्श को प्राप्त करना है । वह तो, जैसा ऊपर लिख आये हैं, किसी किसी के भाग्य में होता है । परन्तु पवित्रात्माओं के आदेश से हर एक मनुष्य के हृदय पर आध्यात्मिक असर होता है । यह असर हमारे ऋषियों ने बड़े ही उत्तम प्रकार से हर एक नर-नारी के हृदय पर उत्पन्न किया है । प्रेमभाव उत्पन्न करने ही के लिए उन्होंने यह विवाह-पद्धति निकाली है । इससे प्रिया और प्रियतम का चित्त स्वतः ही परस्पर के प्रेम में स्वाहा हो जाता है । विवाहकाल में यथोचित रीतियों से न सिर्फ़ हवन की अग्नि ही जलाई जाती है किन्तु प्रेम की अग्नि की ज्वाला भी प्रज्वलित की जाती है जिसमें पहली आहुति हृदय-कमल के अर्पण के रूप में दी जाती है । सच्चा कुलपुरोहित तो वह है जो कन्या-दान के मंत्र पढ़ने से पहलेही यह अनुभव कर लेता है कि आध्यात्मिक तौर से पति और पत्नी ने अपने आप को परस्पर दान कर दिया ।

आर्य-आदर्श के भग्नावशिष्ट अंश ।

भारतवर्ष में वैवाहिक आदर्श को इन जाति पाँति के बखेड़ों ने अबतक कुछ टूटी फूटी दशा में बचा रक्खा है । कभी कभी इन बूढ़े, हठी और छू छू करने वाले लोगों को लेखक दिल से आशीर्वाद दिया करता है, कि इतने कष्ट झेल कर भी इन लोगों ने कुछ न कुछ तो पुराने आदर्शों के नमूने बचा रक्खे हैं । पत्थरों की तरह ही सही, खँडहरों के टुकड़ों की तरह ही सही, पर ये अमूल्य चिह्न इन लोगों ने रुई में बाँध बाँध कर, अपनी कुबड़ी कमर पर उठा, कुलियों की तरह इतना फ़ासला तै करके यहाँ तक पहुँचा तो दिया । जहाँ इनके काम मूढ़ता से भरे हुए ज्ञात होते हैं, वहाँ इनकी मूर्खता की अमोलता भी साथ ही साथ भासित हो जाती है । जहाँ ये कुछ कुटिलतापूर्ण दिखाई देते हैं वहाँ इनकी कुटिलता का प्राकृतिक गुण भी नज़र आ जाता है । कई एक चीज़ें, जो भारतवर्ष के रस्मो-रवाज के खँडहरों में पड़ी हुई हैं, अत्यन्त गंभीर विचार के साथ देखने योग्य हैं । इस अजायबघर में से नये नये जीते जागते आदर्श सही सलामत निकल सकते हैं । मुझे ये खँडरात ख़ूब भाते हैं । जब कभी अवकाश मिलता है मैं वहीं जाकर सोता हूँ । इन पत्थरों पर खुदी हुई मूर्तियों के दर्शन की अभिलाषा मुझे वहाँ ले जाती है । मुझे उन परम पराक्रमी प्राचीन ऋषियों की आवाज़ें इन खँडरात में से सुनाई देती हैं । ये सँदेसा पहुँचाने वाले दूर से आये हैं । प्रमुदित होकर कभी मैं इन पत्थरों को इधर टटोलता हूँ, कभी उधर रोलता हूँ । कभी हनुमान् की तरह इनको फोड़ फोड़ कर इनमें अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम ही को देखता हूँ। मुझे उन आवाज़ों के कारण सब कोई मीठे लगते हैं। मेरे तो यही शालग्राम हैं। मैं इनको स्नान कराता हूँ, इनपर फूल चढ़ाता हूँ और घंटी बजाकर भोग लगाता हूँ। इनसे आशीर्वाद लेकर अपना हल चलाने जाता हूँ। इन पत्थरों में कई एक गुप्त भेद भी हैं। कभी कभी इनके प्राण हिलते प्रतीत होते हैं और कभी सुनसान समय में अपनी भाषा में ये बोल भी उठते हैं।

भारत में कन्या-दान की रीति।

भाई की प्यारी, माता की राजदुलारी, पिता की गुणवती पुत्री, सखियों की अलबेली सखी के विवाह का समय समीप आया। विवाह के सुहाग के लिए बाजे बज रहे हैं। सगुन मनाये जा रहे हैं। शहर और पास पड़ोस की कन्यायें मिलकर, सुरीले और मीठे सुरों में रात के शब्दहीन समय को रमणीय बना रही हैं। सबके चेहरे फूल की तरह खिल रहे हैं। परन्तु ज्यों ज्यों विवाह के दिन नज़दीक आते जाते हैं त्यों त्यों विवाह होनेवाली कन्या अपनी जान को हार रही है। स्वप्नों में डूब रही है। उसके मन की अवस्था अद्भुत है। न तो वह दुखी ही है और न रजोगुणी ख़ुशी से ही भरी है। इस कन्या की अजीब अवस्था इस समय उसे अपने शरीर से उठाकर ले गई है और मालूम नहीं कहाँ छोड़ आई है। इतना ज़रूर निश्चित है कि उसके जीवन का केन्द्र बदल गया है। मन और बुद्धि से परे वह किसी देव-लोक में रहती है। विवाह-लग्न आगई। स्त्रियाँ पास खड़ी गा रही हैं। अजीब सुहाना समय है। यथासमय पुरोहित कन्या के हाथ में कंकण बाँध देता है। इस वक़्त कन्या का दर्शन करके दिल ऐसी चुटकियाँ भरता है कि हर मनुष्य के प्रेम के अश्रुओं से अपनी आँखे भर लेता है। जान पड़ता है कि यह कन्या उस समय निःसङ्कल्प अवस्था को प्राप्त होकर अपने शरीर को अपने पिता और भाइयों के हाथ में आध्यात्मिक तौर से सौंप देती है। उस की पवित्रता और उसके शरीर की वेदनावर्द्धक अनाथावस्था माता-पिता और भाई-बहन को चुपके चुपके प्रेमाश्रुओं से स्नान कराती है। कन्या न तो रोती है और न हँसती है, और न उसे अपने शरीर की सुधही है। इस कन्या की यह अनाथावस्था उस श्रेणी की है जिस श्रेणी को प्राप्त हुए, छोटे छोटे बालक नपोलियन ऐसे दिग्विजयी नरनाथों के कन्धों पर सवार होते हैं या ब्रह्म-लीन महात्मा बालकरूप होकर दिल की बस्ती में राज करते हैं। धन्य है, ऐ तू आर्यकन्ये! जिसने अपने क्षुद्र-जीवन को बिलकुलही कुछ न समझा। शरीर को तूने ब्रह्मार्पण अथवा अपने पिता या भाई के अर्पण कर दिया। इसका शरीर-त्याग लेखक को ऐसाही प्रतीत होता है जैसे कोई महात्मा वेदान्त की सप्तमी भूमिका में जाकर अपना देहाध्यास त्याग देता है। मैं सच कहता हूँ कि इस कन्या की अवस्था सङ्कल्पहीन होती है। चलती फिरती भी वह कम है। उसके शरीर की गति ऐसी मालूम होती है कि वह अब गिरी, अब गिरी। हाँ इसे सँभालनेवाले कोई और होते हैं। दो एक चन्द्रमुखी सहेलियाँ इसके शरीर की रखवाली करती हैं। सारे सम्बन्धी इसकी रक्षा में तत्पर रहते हैं। पतिंवरा आर्य-कन्या और पतिंवरा यूरप की कन्या में आज कल भी बहुत बड़ा फ़र्क़ है। विचारशील पुरुष कह सकते हैं कि आर्य-कन्या के दिल में विवाह के शारीरिक सुखों का उन दिनों लेशमात्र भी ध्यान नहीं आता है। सुशीला आर्य-कन्या दिव्य नभो-मंडल में घूमती है। विवाह से एक दो दिन पहले हाथों और पावों में मेहँदी लगाने का समय आता है (पंजाब में मेहँदी लगाते हैं; कहीं कहीं महावर लगाने का रिवाज है) कन्या के कमरे में दो एक छोटे छोटे बिनौले के दीपक जल रहे हैं। एक जल का घड़ा रक्खा है। कुशासन पर अपनी सहेलियों सहित कन्या बैठी है। सम्बन्धी जन चमचमाते हुए थालों में मेहँदी लिये आ रहे हैं। कुछ देर में प्यारे भाई की बारी आई कि वह अपनी भगिनी के हाथों में मेहँदी लगाये। जिस तरह समाधिस्थ योगी के हाथों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर कोई चाहे जो कुछ करे उसे ख़बर नहीं होती, इसी तरह इस भोली भाली कन्या के दो छोटे छोटे हाथ इसके भाई के हाथ पर हैं; पर उसे कुछ ख़बर नहीं। वह नीर-भरा वीर अपनी बहन के हाथों में मेहँदी लगा रहा है। उसे इस तरह मेहँदी लगाते समय कन्या के उस अलौकिक त्याग को देख कर मेरी आँखों में जल भर आया और मैंने रो दिया। ऐ मेरी बहन! जिस त्याग को ढूँढते ढूँढते सैकड़ों पुरुषों ने जानें हार दीं और त्याग न कर सके; जिसकी तलाश में बड़े बड़े बलवान् निकले और हार कर बैठ गये; क्या आज तूने उस अद्भुत त्याग-दर्श रूपी वस्तु को सच मुचही पा लिया; शरीर को छोड़ बैठी; और हमसे जुदा होकर देवलोक में रहने लग गई। आ मैं तेरे हाथों पर मेहँदी का रंग देता हूँ। तूने अपने प्राणों की आहुति दे दी है; मैं उस आहुति से प्रज्वलित हवन की अग्नि के रंग का चिह्न मात्र तेरे हाथों और पावों पर प्रकाशित करता हूँ। तेरे वैराग्य और त्याग के यज्ञ को इस मेहँदी के रंग में आज मैं संसार के सामने लाता हूँ। मैं देखूँगा कि इस तेरे मेहँदी के रंग के सामने कितना भी गहरा गेरू का रंग मात होता है या नहीं। तू तो अपने आपको छोड़ बैठी। यह मेहँदी का रंग अब हम लगाकर तेरे त्याग को प्रकट करते हैं। तेरे प्राण-हीन हाथ मेरे हाथों पर पड़े क्या कह रहे हैं। तू तो चली गई, पर तेरे हाथ कह रहे हैं कि मेरी बहन ने अपने आपको अपने प्यारे और लाड़ले वीर के हाथ में दे दिया। वीर रोता है। तेरे त्याग के माहात्म्य ने सबको रुला रुला कर घरवालों को एक नया जीवन दिया है। सारे घर में पवित्रता छा गई है। शान्ति, आनन्द और मंगल हो रहा है। एक कंगाल गृहस्थ का घर इस समय भरा पूरा मालूम होता है। भूखों को अन्न मिलता है। सम्बन्धी मेहमानों को भोजन देने का सामर्थ्य इस घर में भी तेरे त्याग के बल से आ गया है। सच मुच काम-धेनु आकाश से उतर कर ऐसे घर में निवास करती है। पिता अपनी पुत्री को देख कर चुपके चुपके रोता है। पुत्री के महात्याग का असर हर एक के दिल पर ऐसा छा जाता है कि आज कल भी हमारे टूटे फूटे गृहस्थाश्रम के खँडरात में कन्या के विवाह के दिन दर्दनाक होते हैं। नयनों की गंगा घर में बहती है। माता पिता और भाई को दैवी आदेश होता है कि अब कन्यादान का दिन समीप है। अपने दिल को इस गंगा-जल से शुद्ध कर लो। यज्ञ होनेवाला है। ऐसा न हो कि तुम्हारे मन के सङ्कल्प साधारण क्षुद्र जीवन के सङ्कल्पों से मिल कर मलिन हो जायँ। ऐसा ही होता है। पुत्री-वियोग का दुःख, विवाह का मङ्गलाचार और नयनों की गंगा का स्नान इनके मन को एकाग्र कर देता है। माता, पिता, भाई, बहन और सखियाँ भी पतिंवरा कन्या के पीछे आत्मिक और ईश्वरी नभ में बिना डोर पतङ्गों की तरह उड़ने लगते हैं। आर्य-कन्या का विवाह हिंदू-जीवन में एक अद्भुत आध्यात्मिक प्रभाव पैदा करनेवाला समय होता है, जिसे गहरी आँख से देख कर हमें सिर झुकाना चाहिए।

विवाह के बाहरी शोरोगुल में शामिल होना हमारा काम नहीं। इन पवित्रात्माओं की उच्च अवस्था का अनुभव करके उनको अपने आदर्श-पालन में सहायता देना है! धन्य हैं वे सम्बन्धी जो उन दिनों अपने शरीरों को ब्रह्मार्पण कर देते हैं। धन्य हैं वे मित्र जो रजोगुणी हँसी को त्याग कर उस काल की महत्ता का अनुभव करके, अपने दिल को नहला धुला कर, उसे एक आर्य-पुत्री की पवित्रता के चिंतन में खो देते हैं। सब मिलजुल कर आओ, कन्यादान का समय अब समीप है। केवल वही सम्बन्धी और वही सखियाँ जो इस आर्य-पुत्री में तन्मय हो रही हैं उस वेदी के अन्दर आसकती हैं। जिन्होंने कन्यादान के आदर्श के माहात्म्य को जाना है वही यहाँ उपस्थित हो सकती हैं। ऐसेही पवित्र भावों से भरे हुए महात्मा विवाहमण्डप में जमा हैं। अग्नि प्रज्वलित है। हवन की सामग्री से सतोगुणी सुगंध निकल निकल कर सबको शान्त और एकाग्र कर रही है। तारागण चमक रहे हैं। ध्रुव और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्तऋषि पासही आन खड़े हैं। चन्द्रमा उपस्थित हुआ है। देवी और देवता इस देवलोक में विहार करनेवाली आर्य-पुत्री का विवाह देखने और उसे सौभाग्यशीला होने का आशीर्वाद देने आये हैं। समय पवित्र है। हृदय पवित्र है। वायु पवित्र है और देवी देवताओं की उपस्थिति ने सबको एकाग्र कर दिया है। अब कन्यादान का वक्त है। स्त्रियों ने कन्यादान के माहात्म्य के गीत अलापने शुरू किये हैं। सबके रोम खड़े हो रहे हैं। गले रुक रहे हैं। आंसू चल रहे हैं :—

"बिछुड़ती दुलहन वतन से है
जब खड़े हैं राम और गला रुके है;
कि फिर न आने की है कोई ढब
खड़े हैं रोम और गला रुके है।
यह दीनो दुनिया तुम्हें मुबारक
हमारा दूल्हा हमें सलामत;
पै याद रखना यह आख़िरी छबि
खड़े हैं रोम और गला रुके है।"

(स्वामी राम)

अब प्यारा वीर देव-लोक में रमती देवी के समान अपनी समाधिस्थ बहन के शरीर को अपने हाथों में उठाये इस देवी के भाग्यवान् पति के साथ प्रज्वलित अग्नि के इर्द गिर्द फेरे देता है। इस सोहने नौजवान का दिल भी अजीब भावों से भर गया है। शरीर उसका भी उसके मन से गिर रहा है। ऐसे एक पवित्रात्मा कन्या का दिल, जान, प्राण उसका सब अभी दान मिलता है। समय की अजीब पवित्रता, माता-पिता, भाई, बहन और सखियों के दिलों की आशायें, सतोगुणी संकल्पों का समूह, आये हुए देवी-देवताओं के आशीर्वाद, मेंहदी और महँदी के रंग की लाली, कन्या की निरवस्त्रता, अनाथता, त्याग, वैराग्य, और दिव्य व्यवस्था आदि ये सबके सब इस नौजवान के दिल पर ऐसा आध्यात्मिक असर करते हैं कि सदा के लिए अपने आपको वह इस देवी के चरणों में अर्पण कर देता है। हमारे देश के इस पारस्परिक अर्पण का दिव्य समय (Divine time of mutual self-surrender) कुल दुनिया के ऐसे समय से अधिक हृदयंगम होता है। कन्या की समाधि अभी नहीं खुली। परन्तु ऐसी योग-निद्रा में सोई हुई पत्नी के ऊपर यह आर्य नौजवान न्यौछावर हो चुका। इसके लिए तो पहली बार ही प्रेम की बिजली इस तरह गिरी कि उसको ख़बर तक भी न हुई कि उसका दिल उसके पहलू में प्रेमाग्नि से कब तड़पा, कब उछला, कब कूदा और कब हवन हो गया। अब भाई अपनी बहन को अपने दिल से उसके पति के हवाले कर चुका। पिता और माता ने अपने नयनों से गंगा-जल लेकर अपने अंगों को धोया और अपनी मेहँदी रँगी पुत्री को उसके पति के हवाले कर दिया। ज्योंही उस कन्या का हाथ अपने पति के हाथ पर पड़ा त्योंहीं उस देवी की समाधि खुली। देवी और देवताओं ने भी पति और पत्नी के सिर पर हाथ रखकर अटल सुहाग का आशीर्वाद दिया। देवलोक में ख़ुशी हुई। मातृ-लोक का यज्ञ पूरा हुआ। चन्द्रमा और तारागण, ध्रुव और सप्तऋषि इसके गवाह हुए। मानों ब्रह्मा ने स्वयं आकर इस संयोग को जोड़ा। फिर क्यों न पति और पत्नी परस्पर प्रेम में लीन हों? कुल जगत् टूट फूटकर प्रलय-लीन सा हो गया; इस पत्नी के लिए केवल पति ही रह गया। और, इसी तरह, कुल जगत् टूट फूट प्रलय-लीन हो गया; इस पति के लिए केवल पत्नी ही रह गई। क्या रँगीला जोड़ा है जो कुल जगत् को प्रलय-गर्भ में लीन कर अनन्ताकाश में प्रेम की बाँसुरी बजाते हुए बिचर रहा है। प्यारे! हमारे यहाँ तो यही राधाकृष्ण घर घर बिचरते हैं :—

"The reduction of the whole universe to a single being and the expansion of that single being even to God is love."

—*Victor Hugo.*

सीता ने बारह वर्ष का वनवास क़बूल किया; महलों में रहना न क़बूल किया। दमयन्ती जंगल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जंगल नल के लिए रोती फिरी। सावित्री ने प्रेम के बल से यम को जीतकर अपने पति को वापस लिया। गांधारी ने सारी उम्र अपनी आँखों पर पट्टी बाँध कर बिता दी।

ब्राह्म-समाज के महात्मा भाई प्रतापचन्द्र मज़ूमदार अपने अमरीका के "लैक्चल लेक्चर" में कन्यादान के असर को, जो उनके दिल पर हुआ था, अमरीका-निवासियों के सम्मुख इस तरह प्रकट करते हैं:—"यदि कुल संसार की स्त्रियाँ एक तरफ़ खड़ी हों और मेरी अपढ़ प्रियतमा पत्नी दूसरी तरफ़ खड़ी हो तो मैं अपनी पत्नी ही की तरफ़ दौड़ जाऊँगा"।

ऋषि लोग संदेसा भेजते हैं कि इस आदर्श का पूर्ण अनुभव से पालन करने में कुल जगत् का कल्याण होगा। हे भारतवासियो! इस यज्ञ के माहात्म्य का आध्यात्मिक पवित्रता से अनुभव करो। इस यज्ञ में देवी और देवताओं को निमंत्रित करने की शक्ति प्राप्त करो। विवाह को मखौल न जानो। यज्ञ का खेल न करो। झूठी ख़ुदग़र्ज़ी की ख़ातिर इस आदर्श को मटिया-मेट न करो। कुल जगत् के कल्याण को सोचो।

पूर्णसिंह।

रामकहानी* ।

[समालोचना]

उपक्रम।

एक दिन मैं अपने एक मित्र से मिलने गया। वे सरकारी कर्म्मचारी हैं; ऊँचे पद पर हैं; हिन्दी से बहुत प्रेम रखते हैं। उनकी मेज़ पर मैंने रामकहानी का बालकाण्ड पड़ा देखा। उसे उठाकर मैं इधर उधर पढ़ने लगा। यह देखकर मेरे मित्र ने कहा:—"अच्छे आये। इसे ज़रा पढ़ जाइए और इसके विषय में आपकी जो राय हो लिखकर मुझे दीजिए। मैं भी इसे पढ़ूँगा। आपकी राय से अपनी राय का मुक़ाबला करके मुझे यह देखना है कि हम दोनों की राय मिलती है या नहीं और मिलती है तो कहाँ तक"।

२—मैंने उत्तर दिया:—"यह किताब तो ऐसी ही वैसी जान पड़ती है। क्यों आप इसे पढ़ने का कष्ट उठावें और मैं भी क्यों बेफ़ायदे राय लिखकर अपना वक्त ज़ाया करूँ? वे बोले—"नहीं, वक्त बेफ़ायदे ज़ाया न होगा। यह किताब मेरे पास समालोचना के लिए आई है। मुझ से किसी ने पूछा है कि यह किताब स्कूल में ऊँची कक्षाओं के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य है या नहीं।

३—इस पर मैं चुप हो गया। किताब घर उठा लाया। उसे पढ़ा और एक समालोचना भी लिखी। उसे मैंने अपने मित्र को दिखाया। पढ़ कर वे बहुत मुसकुराये। तीन चार दिन बाद उसे उन्होंने लौटा दिया; पर उन्होंने निज की क्या राय क़ायम की सो नहीं बताया। पूछने पर वे कहने लगे, यह बात तुम्हें कुछ दिनों में आपही मालूम हो जायगी। शायद वे अपनी राय दो एक अँगरेज़ी-पत्रों में प्रकाशित करेंगे। अब चूंकि इस पुस्तक की समालोचना मैंने लिखही डाली है, इसलिए उसे बेकार पड़ा रखने की अपेक्षा कहीं छपा देना मैंने अधिक मुनासिब समझा। अतएव यह छोटी सी भूमिका लिखकर मैं इसे सरस्वती में प्रकाशित होने के लिए भेजता हूँ। सरस्वती-सम्पादक ने एक बार मेरा एक लेख छाप कर मुझे उत्साहित किया है। आशा है कि इस बार भी वे इस लेख को स्वीकार करने की कृपा करेंगे।

पुस्तक के नामकरण में दोष।

४ (क)—लेखक ने रामायण की कहानी के तौर पर लिखने का उपक्रम किया है। पर अभी शायद

---

* बनारस गवर्नमेंट-संस्कृत-कालेज के प्रधानाध्यापक महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी की बनाई। उन्हीं की प्रकाशित की हुई। बनारस के चन्द्रप्रभा प्रेस में छपी हुई। पृष्ठ-संख्या १७+६७। मूल्य लिखा नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारी कहानी पूरी नहीं हुई। यह पुस्तक उस सारी कहानी का सिर्फ़ बाल-काण्ड है। इसके नाम ही में बड़ा दोष मालूम होता है। रामकहानी के नाम से, सुनने के साथ ही, रामायण में वर्णन की गई बातों का बोध नहीं होता। रामकहानी एक ऐसा शब्द है जिसका कुछ और ही अर्थ होता है। रामकहानी का अर्थ है—अपने ऊपर बीती हुई बातों का वर्णन। "उन्होंने अपनी रामकहानी कहना शुरू किया"; "हमारी रामकहानी सुनने लायक़ है"; उनकी रामकहानी सुनते सुनते जी ऊब उठा"—इस तरह के वाक्य हम लोग बहुधा सुना करते हैं और इसी अर्थ में "रामकहानी" शब्द आता भी है; रामचन्द्र के चरित-वर्णन के अर्थ में यह शब्द नहीं आता। इस कारण मेरी समझ में यह नाम लेखक के इष्ट अर्थ का देनेवाला नहीं। जब तक कोई इस पुस्तक का पूरा टाइटिल पेज पढ़ कर रामकहानी के आगे "बाल-काण्ड" शब्द को भी न पढ़ लेगा तब तक कभी उसके ध्यान में यह बात न आवेगी कि इस पुस्तक में रामचन्द्र का चरित होगा। न मालूम, फिर क्यों लेखक ने इसका ऐसा विलक्षण नाम रक्खा? इस पुस्तक में सैकड़ों विलक्षणतायें हैं। शायद उन्होंने कहा होगा कि पुस्तक का नाम भी क्यों विलक्षणता से ख़ाली रहे।

(ख) एक और बात भी ध्यान में रखने लायक़ है। कहानी शब्द से चरित या इतिहास का कदापि बोध नहीं होता। कथासरित्सागर या अलफ़लैला आदि में जो प्रायः निर्मूल बातों का बतंगड़ किया गया है और उनके आधार पर जो क़िस्से लिखे गये हैं उन्हीं की गिनती कहानी या कहानियों में हो सकती है। उन्हीं के लिए यह संज्ञा अन्वर्थ है। ज़रा ज़रा से बच्चे जिस को जो कथा-कहानियाँ कहा करते हैं वे भी जानते हैं कि उनमें तथ्यांश का सर्वथा अभाव रहता है। उनमें कही गई प्रायः कोई बात सच नहीं होती। रामायण और महाभारत को भारतवासी बड़ीही पूज्य दृष्टि से देखते हैं। उन्हें वे इतिहास समझते हैं। तुलसीदास ने निज-कृत रामायण का रामचरित-मानस नाम रख कर यह सूचित किया है कि इसमें राम का 'चरित' है; इसे निरा क़िस्सा या कोरी कहानी न समझना चाहिए। अतएव इस पुस्तक के लेखक ने इसका नाम 'कहानी' रख कर भावुक भारत-वासियों पर भारी अन्याय किया है। श्रीरामचन्द्र जी का चरित कहानी नहीं हो सकता। इस कारण, इस दृष्टि से भी इस पुस्तक के नाम में बहुत बड़ा दोष है।

कहानी कहने के ढँग में दोष।

५—क्षण भर के लिए मान लीजिए कि रामचन्द्र का चरित चरित नहीं, किन्तु एक कहानी मात्र है। पर कहानी भी तो कहानी के ढँग पर नहीं कही गई। कहानियों, क़िस्सों, नाटकों और उपन्यासों में एक न एक कुंजी रक्खी जाती है। उसी कुंजी के अवलम्ब पर लेखक क़िस्सा रूपी क़िला बनाता है; पर उसका पता पाठकों या श्रोताओं को नहीं लगने देता। धीरे धीरे वह उस भेद को खोलता है—वह उस कुंजी के सहारे धीरे धीरे क़िस्से का रहस्य उद्घाटन करता है। इसी से उसके कहे हुए क़िस्से या उपन्यास के पढ़ने में लोगों का जी लगता है; उनकी उत्सुकता बढ़ती है; क़िस्से का परिणाम जानने के लिए वे आतुर हो उठते हैं। यह एक बहुत मोटी बात है। पर इस कहानी के लेखक ने इसकी भी परवा नहीं की। रामायण की सारी कथा कैकेयी को दशरथ के द्वारा दिये गये वर माँगने के वचनद्वय पर अवलम्बित है। पर कहानी-लेखक ने इस बात को पुस्तक के आरंभ ही में बिना किसी कारण विशेष के कह कर पाठकों के औत्सुक्य-वर्द्धन के एक मात्र द्वार को एकदम बन्द कर दिया है। कहने की ज़रूरत नहीं, इस अनाड़ीपन के कारण, कहानी का सारा मज़ा चौपट हो गया है। अतएव यदि इस पुस्तक को कहानी ही मानें तो भी यह कहना पड़ता है कि लेखक ने राम-चरित को कहानी बना डाला, पर कहानी भी कहते न बनी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम-कहानी की भाषा के विषय में "बार्हस्पत्य" की राय।

६—इस पुस्तक की भाषा न हिन्दी है, न उर्दू है, न गँवारी है। वह इन सबकी खिचड़ी है। किसी की मात्रा कम है, किसी की अधिक। गेहूँ, चावल, तिल, उड़द आदि सात धान्य, कोई कम कोई अधिक, सब एक में गड्डु बड्डु कर देने से जैसे सतनजा हो जाता है वैसेही इस पुस्तक की भाषा भी कई बोलियों की खिचड़ी है। इस पुस्तक की भूमिका को लेखक ने मार्च और एप्रिल १९०८ की नागरी प्रचारिणी-पत्रिका में प्रकाशित कराया था। उसे पढ़ कर "बार्हस्पत्य" जी ने अपने "देवनागरी-लिपि" नामक प्रबन्ध में जो कुछ लिखा है वह सुनने के लायक़ है। यह प्रबन्ध आक्टोबर १९०८ की सरस्वती में प्रकाशित हुआ है। "बार्हस्पत्य" जी कैसे उद्भट विद्वान् हैं यह बात छिपी नहीं है। जिन्होंने उनके लिपि-विषयक विद्वत्तापूर्ण लेख सरस्वती में पढ़े हैं वे उनके पाण्डित्य को अच्छी तरह जानते होंगे। यह वही "बार्हस्पत्य" हैं जिन्होंने प्राचीन ज्योतिष वेदाङ्ग का उद्धार करके देश-देशान्तरों तक के ज्योतिषियों और विद्वानों को चकित कर दिया है। इस विषय के उनके लेख हिन्दुस्तान-रिव्यू में प्रकाशित हो चुके हैं। पूर्वोक्त "नागरीलिपि" नाम के लेख में आपने शास्त्रीजी, आग़ाजी और सैयद साहिब के मुँह से इस कहानी की भाषा के विषय में जो राय ज़ाहिर की है उसे सुनिए :—

"सैयद साहिब—मगर यह न समझ लेना चाहिए कि आर्य्य-भाषा के लौकिक शब्द जिस तरह पाणिनि ने सिद्ध किये हैं ठीक उसी तरह ग्रामीण स्त्री-पुरुष भी बोलते थे"।

"शास्त्रीजी—हाँ, जैसे नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका में एक तरफ़ तो 'सभा का कार्य्य-विवरण, और दूसरी तरफ़ 'रामकहानी की भूमिका'!"

"सैयद साहिब—हाँ, पण्डित जी, ख़ूब मिसाल दी! 'भूमिका' की वज़ा की हिन्दी भी शायद ही कहीं मिले!"

"आग़ाजी—ज़रा हमें भी तो सुनाइए"।

"शास्त्री जी—सुनिए!—'जो गवाँरी बोली को मोटिआ कपड़ा समझो और अपनी हिंदी की विभक्ति और क्रियाओं को रेशम का टुकड़ा, तो मोटिए के टुकड़े में रेशम के गोटे लगा देने से नया डुपट्टा बनेगा। बहुत से लोग इसी डुपट्टे को सच्ची हिंदी कहते हैं। ए लोग गवाँरी बोली दूध में पहले से मिले हुए फारसी शब्द पानी को हंस बन कर अलगाये हैं पर अलगाने में कहीं कहीं खींचा खींची से डुपट्टे में खींच लग गए, डुपट्टा फट गया, लोगों के काम का न रहा, अपने अपने मन के गाढे शब्दों से जोड़ मिलाने से वह डुपट्टा और भी भद्दा हो गया।"

"आग़ाजी—जनाब यह 'हिन्दी' नहीं है, इसको 'चिन्दी' कहना चाहिए"।

सो यह "बार्हस्पत्य" जी के आग़ा जी के अनुसार सचमुच ही हिन्दी नहीं, चिन्दी है। जिस तरह कई तरह के कपड़े के टुकड़ों से फ़क़ीरों की गुदड़ी तैयार की जाती है उसी तरह कई तरह की बोलियों के टुकड़ों से यह हिन्दी की बेहूदा चिन्दी तैयार की गई है। इस तरह की नफ़रत-अंगेज़ भाषा में किताब लिख कर उसे स्कूलों में जारी करने की कोशिश करना हिन्दी का गला घोंटना और टेक्स्टबुक कमिटी के मेम्बरों की आँख में धूल झोंकना है।

ज़रा राम-कहानी की भूमिका के पूर्वोक्त अवतरण को फिर से पढ़ कर उसकी रचना के बेढंगे ढंग का तो विचार कीजिए। किस तरह विराम-चिह्नों की दुर्दशा की गई है, किस तरह व्याकरण के नियमों का उल्लंघन किया गया है, किस तरह सीधी सादी हिन्दी की सुबोधकता नष्ट की गई है। "ए लोग.....फ़ारसी शब्द पानी को..... अलगाये हैं"। सकर्मक और अकर्मक क्रिया के साथ कर्त्ता किस रूप में आना चाहिए, यह तक कहानीलेखक को मालूम नहीं! आपकी राय में गँवारी बोली दूध है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देर मकान, मेहनत, मुनासिब, ज़रूरत आदि फ़ारसी के शब्द जिन्हें स्त्रियाँ और बच्चे तक बोलते हैं और सर्वथा हिन्दी भाषा के शब्द होगये हैं, पानी हैं। इस दुर्बुद्धि समझ की तारीफ़ नहीं हो सकती।

भाषा-सम्बन्धी सबसे बड़ा दोष।

७ (क)—राम-कहानी के लेखक की राय है कि—"घर घर जो बोलत फिरैं भाषा कहिए सोय"। यह दुरुस्त है। घर घर की भाषा यदि भाषा नहीं तो बोली ज़रूर है। पर घर की ही भाषा क्या साहित्य की भी भाषा हो सकती है? यदि हो सकती है तो कोल, भिल्ल, गोंड, सँथाल, बहेलिया और हबूड़ों की भाषा में भी किताबें लिखी जानी चाहिए और स्कूलों में जारी होनी चाहिए। भारतवर्ष वह देश है जहाँ चार चार पाँच पाँच कोस पर बोलियों में अन्तर हो गया है। डाक्टर ग्रियर्सन ने "Linguistic Survey of India" की जिल्दों में जो बोलियों के नमूने दिये हैं वे इस बात का प्रमाण हैं। अकेले इन प्रान्तों में कोड़ियों बोलियाँ बोली जाती हैं। यदि अपने अपने ज़िले और देहात की बोली में लोग किताबें लिख लिख कर मदरसों में जारी कराने का यत्न करने लगें तो किस किस ज़िले की बोली की किताबें जारी की जायँगी। साहित्य की भाषा और होती है, प्रान्तिक भाषा और बँगला, हिन्दी, उर्दू, मराठी, गुजराती, तामील, तैलंगी और कनाड़ी आदि हिन्दुस्तान की प्रधान भाषायें हैं। मैं चैलेञ्ज (Challenge) करता हूँ—प्रचारणापूर्वक करता हूँ—कोई इन भाषाओं से सम्बन्ध रखनेवाली किसी भी बोली तो ऐसी बतलादे जिसमें लिखी गई किताबें किसी सूबे, किसी प्रान्त, किसी ज़िले के स्कूलों में पढ़ाई जाती हों। कहानी-लेखक ने अपनी भूमिका के अन्त में ख़ुदही लिखा है कि—"रामकहानी में सीधे सीधे शब्द लिखे गए हैं जो कि बनारस के आस पास में बोले जाते हैं"। अतएव विश्वास नहीं होता कि लेखक ने इस पुस्तक को स्कूलों में जारी कराने का यत्न किया हो। इस विषय में मेरे मित्र से यह कह कर ज़रूर किसी ने भूल की है कि यह कहानी इन प्रान्तों के स्कूलों में पाठ्य-पुस्तक नियत होने वाली है। जो ख़ुद अपनेहीं मुँह से क़बूल कर रहा है कि इस पुस्तक में मैंने सिर्फ़ वही शब्द लिखे हैं जो बनारस के आस पास बोले जाते हैं वह कैसे इस पुस्तक की भाषा को साहित्य की भाषा अथवा आदर्श भाषा मान कर उसे स्कूलों में पढ़ाये जाने की चेष्टा करेगा। बनारस ज़िले की बोली लखनऊ, सहारनपुर, मथुरा, जयपुर, उज्जैन, इन्दौर, नागपुर और जबलपुर आदि ज़िलों के स्कूलों के ऊँचे क्लास के लड़कों को पढ़ाये जाने की ज़बरदस्ती क्यों? यह कौनसा न्याय है? यह कौन सी रीति है? इससे क्या लाभ सोचा गया है? बनारस के देहात के 'बघनहा' 'बजर लटटू' 'कनगुरिया', 'अँकवार', 'बार की ठिल्लो' और 'ठगमुरी' आदि शब्द और ज़िलों के अध्यापक और विद्यार्थी समझेंगे कैसे? बनारस की देहाती बोली का कोई कोश भी तो नहीं। लेखक महाशय अच्छी तरह जानते हैं कि रामकहानी की बोली और ज़िलों के लोग कदापि न समझ सकेंगे। इसी से उन्होंने अनेक अप्रसिद्ध प्रान्तिक शब्दों का अर्थ नीचे फ़ुटनोट में दे दिया है। परन्तु फिर भी 'पिरकी', (पृष्ठ ४) 'लोढ़े' (पृष्ठ ७) 'खेरी' (पृष्ठ १७) आदि सैकड़ों शब्द ऐसे रह गये हैं जिनका अर्थ नहीं दिया गया; अतएव उनका मतलब समझ लेना और ज़िले वालों के लिए सर्वथा असम्भव है। अगर वेल्स या आयरलैंड की देहात की बोली में लिखी गई किताबें इँगलैंड के मदरसों में जारी कराने की कोई कोशिश करे तो लोग यही समझेंगे कि इसे जुनून हो गया है। क्योंकि साहित्य की भाषा का स्थान प्रान्तिक भाषाओं या बोलियों को कभी नहीं मिल सकता। साहित्य की भाषा पढ़े लिखे शिक्षित और सभ्य आदमियों की भाषा होती है। गँवारों और जाहिलों की भाषा पुस्तकों की भाषा नहीं हो सकती। रामकहानी की भाषा साहित्य की भाषा नहीं। वह एक विचित्र गँवारी बोली है जिसके २५ फ़ी सदी शब्द पढ़े लिखे लोगों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की समझ में नहीं आसकते। मेरे इस लिखने का यह मतलब नहीं कि जिस भाषा में बहुत से संस्कृत के, अथवा अरबी-फ़ारसी के, शब्द हों वही साहित्य की भाषा है। नहीं, इन भाषाओं के अप्रसिद्ध और क्लिष्ट शब्दों का हिन्दी में व्यवहार करना दोष है। पर जो शब्द बोलचाल में आते हैं, फिर वे चाहे जिस भाषा के हों, उन्हें हिन्दी से निकाल बाहर करने का प्रयत्न करना नादानी के सिवा और क्या कहा जा सकता है।

(ख) बड़े अफ़सोस की बात है कि रामकहानी की भाषा बनारस के आसपास की भी भाषा नहीं। वह लेखक की गढ़ी हुई एक अजीब बोली है। उसे बनारस के गिर्द नवाह की अद्ध-गवारी बोली ज़रूर कह सकते हैं। एक नमूना सुनिए। कहानी लेखक "किसानों की सोभा" वर्णन कर रहे हैं:—

"कहीं खाते, कोठिले और गाड़ों में अनाज और भुँसौले में भूँसे भरे जाते हैं। कहीं कोल्हू चलाने की तैयारी हो रही है; लोहार पच्चर, जाठ, कतरी, ढेंके, कैंची, पनारी और डोहरों को बना रहे हैं गुलैर में कोहे ठीके जाते हैं, सैके से कराहे में रस बोझा जाता है, कहीं पनुओं और औटी बनाने की तैयारी होती है, कहीं अँगारी मारने के लिए नेसुहे और गँडासे को ठीक करते हैं; कहीं तबेले से ऊख काटी जा रही है; गँडे अलग किए जा रहे हैं, ऊख छोली जा रही है, पताई झोंकने के लिये इकट्ठी की जा रही है कहीं खाँड बन रही है, झोंकवा झोंक रहा है और बहुत से लोग धुनके पर बैठे आग ताप रहे हैं और रस साफ करने के लिये दुले के टुकड़ों का रस निकाल रहे हैं"।

इस अवतरण में आप देखिए ५० फ़ी सदी से कम अप्रसिद्ध प्रान्तिक शब्द नहीं हैं। फिर इन 'पच्चर', 'जाठ', 'कतरी', 'पनुओं', 'औंटो' आदि एक भी शब्द का अर्थ लेखक ने फुटनोट में नहीं दिया। ये सब बनारस के आस पास वाले जाने वाले शब्द हैं और वहीं के लोग इनका अर्थ समझ सकते हैं। पर इनके बीच बीच में 'हो रही है', जा रही है', 'बन रही है', 'किए जा रहे हैं', आदि क्रियायें सभ्य और शिक्षित जनों की भाषा की हैं। बनारस की जिस देहात में 'ऐलेन' और 'गैलेन' आदि क्रियाओं की भरमार रहती है उसकी ये क्रियायें नहीं। इसीसे मैं कहता हूँ कि यह कहानी शिक्षितों और अशिक्षितों की भाषा की एक अजीब खिचड़ी है। प्रायः इसी तरह की भाषा पुस्तक भर में है। कहीं अप्रसिद्ध शब्द कम हैं, कहीं ज़ियादह।

(ग) इस अवतरण में आप विराम चिह्नों का दुरुपयोग फिर देखिए। जहाँ जी में आया कामा (,) रख दिया है और जहाँ जी में आया सेमीकोलन (;)। दूसरा फुल-स्टाप तो कहानी की १२ सतरों के बाद रक्खा गया है। बीच में कई दफ़े वाक्य पूरा हो गया; पर फुल-स्टाप, अर्थात् पाई (।), रखने की ज़रूरत नहीं समझी गई।

चरित्र बिगाड़नेवाली बातें।

८ (क)—इस कहानी में कितनी ही बातें ऐसी हैं जिनका लड़कों के कोमल हृदय पर बहुत बुरा असर पड़ सकता है और जो किसी अंश में उनका चरित बिगाड़ने का भी कारण हो सकती हैं। कुछ उदाहरण लीजिए:—

"अजोध्या के राजा दसरथ की तीन सौ साठ रानिओं में कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी पटरानियाँ थीं"। पहला पृष्ठ, पहली लाइन।

इसके लिए यदि लेखक के पास प्रमाण भी हो तो भी लिखने की ज़रूरत न थी। उन्होंने रामचन्द्र की मनमानी कहानी लिखी है और सिल-लोढ़े तक की बातें कही हैं; वाल्मीकि-रामायण का अनुवाद तो किया नहीं। फिर अप्रगल्भ बुद्धि के लड़कों को यह बतलाना कि भारत के पुराने राजे साल के ३६० दिनों के हिसाब से ३६० ही रानी रखते थे। कितनी बुद्धिमानी का काम है, इसका विचार पाठक ही करें। दशरथ का रनिवास क्या था कम

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सुल्तान अब्दुल-हमीद या लखनऊ के नवाब वाजिदअलीशाह का हरम था।

(ख) "आखिर दसरथ ने ऐसी पक्की लिखा पढ़ी कर अपनी बूढ़ी बैस में कैकेयी से ब्याह किया"। पृष्ठ २

सो राजा दशरथ के ३५९ रानियां होने पर भी बुढ़ापे में एक और रानी करने की इस कारण ज़रूरत हुई कि कैकेयी के रूप-लावण्य की प्रशंसा सुन कर वे उस पर "मोहित हो गये" थे! रामचन्द्र के पिता की इस कामुकता का वर्णन सुनकर पढ़ने वाले मन ही मन क्या कहेंगे, इसका भी तो विचार करना था।

(ग) "बूढ़े राजा को थोड़े बैस की कैकेयी बहुत प्यारी थी, वाल्मीकि ने सच लिखा है कि वृद्धस्य तरुणी भार्य्या प्राणेभ्योऽपि गरीयसी—बूढ़े की जवान तिरिया प्रान से भी बढ़कर है।)" पृष्ठ ६

इस पर टीका करना व्यर्थ है। इसे पढ़कर रामायण पर स्कूली लड़कों की श्रद्धा बहुतही बढ़ जायगी, इसमें सन्देह नहीं।

(घ) पुस्तक के ग्यारवें और बारवें पृष्ठ पर लेखक ने ऋष्य शृङ्ग के पास "खूबसूरत पतुरिओं" का भेजा जाना लिखा है। आपने कथन किया है कि इन "पतुरिओं" ने ऋषि को खूब गले से लगाया ("अँकवार देकर भेंट की") और खूब मिठाई खिलाई। उनके चले जाने पर ऋष्य शृङ्ग बेकल हो उठे और उनके पीछे दौड़े। उनसे मिलने से ऋषि के जी में जी आया। इतनाहीं लिखकर लेखक को सन्तोष नहीं हुआ। आगे चलकर आपने एक दोहा भी लिखा है:—

जगमें साच विचारिए को अस जनमा लाल।
जो तिरिया के भाव से होत नहीं बेहाल॥

सो भारत के ऋषि-मुनि भी 'पतुरियों' के फेर में पड़े रहते थे। यही नहीं किन्तु कोई भी माई का लाल ऐसा नहीं जनमा जो 'तिरिया' के भाव से बेहाल न हुआ हो! जिस पुस्तक में ऐसी ऐसी बातें लिखी हों वह जब तक ऊँचे क्लास के नवयुवकों को न पढ़ाई जायँगी तब तक भारत के ऋषियों के विषय में उनकी भक्ति कैसे दृढ़ होगी और उनका चरित कैसे उन्नत होगा!

(ङ) पुस्तक के ४२ वें पृष्ठ पर गौतम की स्त्री अहल्या के साथ इन्द्र के व्यभिचार-कर्म्म की कथा लिखी गई है। लिखा है:—

"एक दिन इंद्र एक बजे रात उनके (गौतम और अहल्या के) घर के पास आकर मुर्गे की बोली बोलने लगा।..... ...फिर बेचारी अबला अहल्या का सत भी बिगाड़ा।..... भेद खुल जाने पर मुनि ने दोनों को सराप दिया। अहल्या निर्जन बन में पत्थर की हो गई और इंद्र की सब देह में हजार जोनि के चिह्न हो गए"।

यदि यह पुस्तक स्कूलों में जारी हो गई तो अध्यापक लोग इन बातों को किस मुँह से और किस तरह लड़कों को पढ़ावेंगे, इसका निश्चय लेखक से ही करा लेना होगा। लड़कों को देवी-देवताओं के व्यभिचार की बातें बतलाने और उनके द्वारा मुर्गे की बोली बोली जाने की कथा कहने की क्या ज़रूरत थी सो लेखक ही कृपा करके बतलावें तो बतलावें।

(च) रामचन्द्र की बारात अयोध्या से जनकपुर को जा रही है। लेखक महाशय कहते हैं:—

"भाँड़ और अताइयाँ के झुंड के झुंड चले; पतुरिया (वेश्याएँ—बेसवा) भी जो अपने सुर से अपसराओं को लजवा देने वाली थीं वे भी अपने ठाट बाट के साथ अपने अपने मेलियों से चुहल करते चलीं।"

'पतुरिया' के बिना बारात की शोभा क्षीण हो जायगी, इससे कहानीलेखक ने उन्हें यहाँ भी याद किया है। ऐसा न हो कि कोई 'पतुरिया' का मतलब न समझे जो लेखक के लिखने का श्रमही व्यर्थ हो जाय, इससे आपने इस शब्द के दो दो पर्य्यायवाची शब्द भी दे दिये हैं। जो 'पतुरिया' का अर्थ न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझेंगे वे 'वेश्या' का अर्थ ज़रूरही समझ जायँगे। जो उसका भी अर्थ न समझेंगे वे 'बेसवा' कहने से तो निर्भ्रान्तही लेखक का मतलब समझ जायँगे। याद रखना चाहिए, वेश्याओं के साथ भाँड़ भी बारात में हैं। और वेश्यायें चुप चाप नहीं चली जा रहीं; अपने 'मेलियाँ' से हँसी मज़ाक़ भी करती जाती हैं।

(छ) विश्वामित्र के विषय में कहानी-लेखक कहते हैं:—

"एक समय इन्होंने भूख से व्याकुल होकर कुत्ते को मार कर खाने का विचार किया था, फिर अनाज मिल जाने से न खाया"। पृष्ठ २९

भला भारत के पूज्य और श्रद्धेय ऋषियों के विषय में इस तरह की बातें कहीं स्कूली किताबों में लिखी जाती हैं। ऐसी ऐसी बातें पढ़ने से अपने पूर्वजों के विषय में लड़कों के हृदय में घृणा उत्पन्न हुए बिना नहीं रह सकती।

बेसिर पैर की बातें।

९ (क) कहानी-लेखक ने रामचन्द्र के जन्म और विवाह आदि का वर्णन करने में बड़ेही दुःसाहस का काम किया है। उन्होंने ये सब बातें इस तरह लिखी हैं मानों बीसवीं सदी में अभी अभी ये सब घटनायें हुई हैं। राम-जन्म के समय कहीं "जव के कूरे" काटे जाते हैं; कहीं "पानी को परोर कर पिलाने" का प्रबंध हो रहा है; कहीं "कंजा फुँकवा कर" लाया जा रहा है; कहीं "खेरी बाहर आ जाय" इसलिए कौशल्या को "सुता" कर दाइयाँ पेट मल रही हैं। इन अप्रसिद्ध और टोना टम्बर की बातों की कोई ज़रूरत न थी। एक जगह तो लिखा है कि "कौसल्या ने.....सूप भर जव पर धगरिन के हाथ बच्चे को बेंच भी दिया"। यह किस धर्म्मशास्त्र, किस रामायण, कर्म्मकाण्ड की किस पोथी के आधार पर लिखा गया है मालूम नहीं। यदि आधार हो भी तो भी ऐसी ऊट पटाँग बातों का लिखा जाना अत्यन्त अनुचित हुआ है।

(ख) विवाह के समय की रस्मों का वर्णन करने में तो लेखक ने ग़ज़बही कर डाला है। आपने लिखा है कि जनक की रानी ने मूसल और लोढ़े से रामचन्द्र का "परिछन" किया; खूब "रस भरी गारियाँ" गाई गईं; रामचन्द्र जानकी का जूठा पान खाने के लिए तैयार हुए; दूलह और दूल्हन ने एक ही थाली में दही-गुड़ खाया; "एक बूंद लोहू निकालने के लिए दुलहे दुलहिन की कानी अँगुरिया नहरनी से चीरी जाने लगी"! ऐसी ऐसी आधुनिक कुरीतियों का ज़िक्र राम-कहानी में देखकर बड़ा दुःख होता है। जिन बातों का उल्लेख आज तक किसी ने किसी भाषा में नहीं किया था उन्हीं वाहियात और मन घडंत बातों के लिखने में कहानी-लेखक ने न मालूम क्या लाभ सोचा है। ऐसी बेजड़, बेबुनियाद और कुरुचि-पूर्ण कुरीतियों का वर्णन करके लेखक ने सचमुच ही बड़े दुःसाहस का काम किया है।

अशुद्ध वाक्य।

१० (क) इस पुस्तक के लिखने में लेखक ने अनेक प्रकार की व्याकरण-विषयक ग़लतियाँ की हैं। आपको यही नहीं मालूम कि किस क्रिया के साथ कर्त्ता का चिह्न 'ने' आता है और किसके साथ नहीं। कुछ उदाहरण लीजिए:—

१—राजा खुश होकर रानी से वर माँगने को कहा (राजा.....कहा!) पृष्ठ ४

२—बसिष्ट अपने ब्रह्मतेज से इन्हें हरा दिया था (बशिष्ट..... हरा दिया था!) पृष्ठ २८

३—विस्वामित्र दोनों रतनों को पाकर अपनेको बड़भागी समझा (विस्वामित्र.....अपने को बड़भागी समझा!) पृष्ठ ३५

४—मे कुरेध (क्रोध) से बाँए हाथ की हथेली पर धरती ले लिया (मैं.....ले लिया! पृष्ठ ६०

(ख) अब और तरह के अशुद्ध वाक्यों के नमूने देखिए:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) मैं.....उसको बता दिया चाहता हूँ। भूमिका, पृष्ठ १३

(२) शायद मेरे अर्थ को व लिखे भी हों। भूमिका, पृष्ठ १६

(३) बहुत से लोग संस्कृत से जुदे जुदे शब्दों को लिए भी हैं। भूमिका, पृष्ठ १६

(४) चारो भाई.....घोड़े हाथी पर चढ़ना सिखाने जाने लगा। पृष्ठ २२

(ग) इस तरह के सैकड़ों व्याकरण-विरुद्ध वाक्य इस कहानी में भरे पड़े हैं। पर सब के उल्लेख की ज़रूरत नहीं। इससे सिद्ध है कि लेखक को शुद्ध हिन्दी लिखना नहीं आता। संभव है कोई कह बैठे कि इस समालोचना में दिखलाई गई भूलें निकाल दी जाने पर यह पुस्तक स्कूलों में क्यों न जारी की जाय? इसका उत्तर यह है कि जो व्याकरण-सम्मत हिन्दी लिखना जानता ही नहीं वह कैसे निर्दोष भाषा लिख सकेगा। उसकी भाषा कदापि इस लायक़ न हो सकेगी कि वह साहित्य की भाषा मानी जा सके।

लिङ्ग-सम्बन्धी भूलें।

११—अब कुछ लिङ्ग-सम्बन्धी भूलों के उदाहरण देख लीजिए:—

	अशुद्ध	शुद्ध
(१)	ऐसी नशा, ऐसी नशा (भूमिका, पृष्ठ ६, ७)	ऐसा नशा
(२)	तीखी तीर—पृष्ठ २	तीखा तीर
(३)	बेसर की मोती—पृष्ठ २	बेसर का मोती
(४)	रूप की डर—पृष्ठ ३८	रूप का डर
(५)	भरत के सलाह—पृष्ठ ७२	भरत की सलाह

वचन-सम्बन्धी भूलें।

१२—वचन-सम्बन्धी भूलों के भी दो चार उदाहरण देखिए:—

(१) रात दिन की बोली भूल जाती है और उसकी जगह नए नए शब्दों के गढने की सनक बढ़ जाती है। भूमिका, पृष्ठ ६

यहाँ 'उनकी' के स्थान में 'उसकी' चाहिए।

(२) आजकल सब देश के लोगों की यही राय है। भूमिका, पृष्ठ ११

यहाँ 'देश' की जगह 'देशों' चाहिए।

(३) ऐसी सुंदर नीली आँखों की पुतलियाँ आजतक न देखने में आईं, जान पड़ता है कि दो नीलम के सुडौल नग को किसी ने.....जड़ दिया है। पृष्ठ ३६-३७

यहाँ 'नग' की जगह 'नगों' चाहिए।

(४) शहरों को देखते देखते दोनों भाई जनक की फुलवारी में पहुँचे। पृष्ठ ५६

यहां सिर्फ एक शहर जनकपुर से मतलब है। इस लिए 'शहरों' की जगह 'शहर' होना चाहिए।

(५) जैसेही रानी राजा से मिलने चली तैसे ही पहिआएँ अलग हो गईं। पृष्ठ ३

पहिया शब्द हिन्दी में पुँल्लिंग है। इससे 'पहिआएँ' की जगह 'पहिये' चाहिए।

लेखक की उच्छृंखलता।

१३—हम यह ऊपर एक जगह लिख चुके हैं कि इस पुस्तक में गँवारे शब्दों की बे तरह भरमार है। अँगरेज़ी में जिसे Provincialism अर्थात् ग्रामीण भाषा कहते हैं उसका यह पुस्तक उत्कृष्ट नमूना है। 'सुकवा', 'बिअहुते', 'भाथी' और 'ठिल्ली' आदि गवारी शब्द जो लिखे गये हैं वे तो लिखेही गये हैं; परन्तु सीधे सादे संस्कृत-शब्दों के भी रूप तोड़-मरोड़ कर अशुद्ध कर दिये गये हैं; यथा:—'राच्छस' 'बरम्हा', 'सराप', परान', 'जोनि' 'कुरेध', बिस्वामित्र', 'दसरथ', 'गुपुत', 'किरिपा', 'बाह्मन', 'जग्य' आदि। यदि यही शब्द अपने शुद्ध रूप में 'राक्षस', 'ब्रह्मा', 'शाप', 'प्राण', 'योनि', 'क्रोध', 'विश्वामित्र', 'दशरथ', 'गुप्त', 'कृपा', 'ब्राह्मण', 'यज्ञ' लिखे जाते तो क्या ग्रामीण लोग न समझ सकते। ज़रूर समझ लेते, क्योंकि ये ऐसे प्रचलित शब्द हैं जिनसे देहात के महा गँवार तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिचय रखते हैं। कहीं तो लेखक ने 'पर्रक्रमा', 'विजय', 'कैकेयी', 'चक्रव्यह', 'अच्छन्नधार' और 'विह्वल' आदि विकट संस्कृत शब्द लिखे हैं। और कहीं सीधे से भी सीधे संस्कृत-शब्दों को तोड़-ताड़ कर उनका भ्रष्ट रूप लिखा है यह लेखक की उच्छृंखलता के सिवा और क्या कहा जा सकता है।

पर-सवर्ण का अभाव और चन्द्रबिन्दु की भरमार।

१४ (क) कहानी-लेखक ने इस पुस्तक में आदि से अन्त तक पर-सवर्ण-विषयक नियम का उल्लंघन किया है। सुन्दर, कलङ्क, कङ्कण आदि शब्दों को सुंदर, कलंक और कंकन लिखा है। यद्यपि यह कोई बड़ा दोष नहीं; क्योंकि दोनों तरह से ये शब्द लिखे जाते हैं; परन्तु पर-सवर्ण का कहीं भी प्रयोग न होने से पढ़नेवालों को यह शङ्का हो सकती है कि क्या पर-सवर्ण-विषयक नियम का पालन करना मना है।

(ख) लेखक ने पर-सवर्ण-सम्बन्धी नियम पर तो पानी फेर दिया है, परन्तु चन्द्रबिन्दु (ँ) पर अत्यन्त कृपा की है। जिस पृष्ठ पर देखो उसी पर ढेर के ढेर टेढ़े चन्द्रमा अक्षरों की पीठ पर चढ़े हुए देख पड़ते हैं। जिसे इस बिन्दु के विन्यास का इतना ख़याल उसे पर-सवर्ण को एक दम ही अर्द्धचन्द्र देते देख आश्चर्य्य हुए बिना नहीं रहता।

फुटकर दोष।

१५ (क) लेखक ने जो पुस्तक के २९ वें पृष्ठ पर लिखा है कि विश्वामित्र ने भूखों के मारे एक कुत्ते को मार कर खा जाने का विचार किया था उसका ज़िक्र ऊपर एक जगह आ चुका है। इसी कुत्ते के विषय में आप पूर्वोक्त पृष्ठ पर लिखते हैं:—

"उसीके नह, रोएँ और कान से लहसुन, सोआ और पालकी के साग है"।

शिव! शिव! सुशिक्षित जनों के मुँह से ऐसी बात?

(ख) वहीं पर आपने लिखा है कि जिस वैयाकरण ने विश्वामित्र का अर्थ "संसार का शत्रु" बतलाया उसके व्याकरण को विश्वामित्र ने नष्ट कर दिया। अकेले पाणिनि ने उसका अर्थ "संसार का मित्र" बतलाया। इसी से विश्वामित्र ने पाणिनि को आशीर्वाद दिया कि "तुम्हारा ही व्याकरण संसार में चलेगा"। इस कहानी को लिख कर भी लेखक ने अपने अनुरूपही काम किया है। सिल-लोढ़ा, मूसल-मथानी, चक्की-ओखली तक को भी जो रामचरित में नहीं भूला उसके हाथ से ऐसी ऐसी बेतुकी बातों का लिखा जाना उचित ही हुआ है।

(ग) जानकी जी गिरिजापूजन को गई थीं। वहीं रामचन्द्र ने उन्हें देखा। इस पर कहानी-कर्त्ता कहते हैं:—

"राम जानकी के अनवट, बिछिआ, पलानी... नथिया, झुलनी, बुलाक, झबिया, कँकनी..... और हार को देख कर मोहित होगये"!

इससे अधिक कलङ्क की बात न रामही के लिए हो सकती है, न जानकी ही के लिए। जानकी के गुणों और सौन्दर्य्य को देख कर रामचन्द्र मोहित नहीं हुए; किन्तु उनकी पलानी, झबिया आदि को देख कर मोहित हुए! क्या जानकी नंगी थीं जो उनकी 'झुलनी' तक रामचन्द्र ने देख ली? लेखक ने यहाँ पर ४६ प्रकार के देहाती ज़ेवरों के नाम दिये हैं जिन्हें पढ़ते समय हँसी आये बिना नहीं रहती।

(घ) अब ज़रा फ़ीलवानों की बोली सुन लीजिए:—

"महावत (हाथीवान) मकुने, एकदँते, चीनिए, गोरखिए, नैपाली और और हाथियों से बैट, मल्, मल् मल्; मल् मल मल्, धेत् चै (चइ); बिरी; मोजातंग, कलमतरास (है); मल (पट बचाकर,) भड़, बिले, दलै, दलै छब दलै, चै; मल, थिर (धर), (कान पकड़कर), बोल, थिर लगै, लगै (हाथ के इसारे से), बिरी या छुट, धत् पीछे अगत, तिरै, सलाम करो, कहकर काम लेने लगे"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

विनोद का बाजा।

आहा! कैसा है भला इस बाजे का साज।
भूख-प्यास भी दी भुला इसने मेरी आज॥

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि यह पुस्तक स्कूलों में जारी हो गई तो लड़कों को फीलवानी बोली का अच्छा अभ्यास हो जायगा। इसी तरह आपने पालकी उठाने वाले कहारों की बोली की भी एक लंबी तालिका दी है। ऊपर के अवतरण में ज़रा विराम-चिह्नों के प्रयोग पर तो ध्यान दीजिए। कैसी शुद्धता से कामा और सेमीकोलन दिये गये हैं!

उपसंहार।

१६—किसी पुस्तक की समालोचना करते समय पहले उसके गुणों का विचार करना चाहिए। फिर दोषों का। परन्तु इस कहानी में गुणों का सर्वथा अभाव है। यदि गुण कहा जा सके तो सिर्फ़ इतना है कि एक संस्कृत के महामहोपाध्याय पण्डित ने हिन्दी में पुस्तक लिखने की कृपा की। रहा तक जिन दोषों का निदर्शन किया गया उन्हें सिर्फ़ दिग्दर्शन समझना चाहिए। सारे दोषों को दिखलाने के लिए न मेरे पास समय है और न मेरे पाठक को उन सबके जानने की ज़रूरत ही है। मुझे आशा है कि ऐसी नख से सिख तक दोषपूर्ण पुस्तक टेक्स्ट बुक् कमिटी के मेम्बर कदापि स्कूलों में जारी करके कलङ्क का टीका अपने सिर न लेंगे।

श्रीकण्ठ पाठक।

बाल-विलास

विनोद का बाजा।

(१)

देखो यह विनोद सानन्द,
बजा रहा बाजा स्वच्छन्द।
उलटे सीधे की क्या बात,
हुआ चाहिए हर्षित गात॥

(२)

आसन मारे यह सन्तुष्ट,
है इसका तनु क्या ही पुष्ट।
होते हैं जो लोग निरोग,
वही भोग सकते सुख भोग॥

(३)

इसके छोटे छोटे अङ्ग,
हरते मन दर्शन के सङ्ग।
सुन्दर नई वस्तु को देख,
होता कौतूहल सविशेष॥

(४)

बड़ी बड़ी आँखें, मृदु बोल,
पुलकित हैं युग गोल कपोल।
होता जैसा मन का रङ्ग,
वैसा ही सूरत का ढङ्ग॥

(५)

खिले फूल पर ओस समान,
है इसके मुख में मुसकान।
प्रकट उसी से इसका चाव,
'दिखलाता मुख मन का भाव'॥

(६)

हर्षित हैं इसके सब अङ्ग,
रोम रोम में भरी उमङ्ग।
करके अपने मन का काम,
मिलता नहीं किसे आराम?

(७)

पाकर इस बाजे को आज,
पाया मानों इसने राज।
जब पूरी हो जाती चाह,
फिर किसकी रहती परवाह?

(८)

रूप और रव रुचिर विचार,
है इसका बाजे पर प्यार,
करते हैं जिसमें गुण वास,
उसको कौन न रखता पास?

(९)

यद्यपि है बाजा निष्प्राण,
करता तदपि कण्ठ सम गान।
अहो! मनुज की मति को धन्य,
करती जो जड़ को चैतन्य!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१०)

सुन कर बाजे की झङ्कार,
होता इसको हर्ष अपार।
अपने प्रिय का मृदु आलाप—
हरता है सारा सन्ताप॥

(११)

इसका धन-दौलत या माल,
है यह बाजा ही इस काल।
जिसका जिसमें रमता चित्त,
उसके लिए वही है वित्त॥

(१२)

माँगे आज स्वयं जो राजा,
दे न उसे भी तो यह बाजा।
होता है जो जिसका प्यारा,
उसे न वह कर सकता न्यारा॥

मैथिलीशरण गुप्त।

हिन्दी-साहित्य और हमारा काम।

दो वर्ष हुए मेरे एक मित्र ने मेरे कहने से सरस्वती का ग्राहक होना स्वीकार किया था। जब तक वे ओलङ्गापो, फिलिपाइन द्वीप, में रहे तब तक सरस्वती उनके पास आती रही। पिछले साल नवम्बर में वे अपनी नौकरी छोड़ छात्र-वेश धारण कर शिकागो आ गये; आजकल वहाँ इञ्जिनियरिङ्ग पढ़ते हैं। उनसे पत्र-व्यवहार करने पर मालूम हुआ कि वे सरस्वती से सन्तुष्ट नहीं हुए। आप लिखते हैं कि "हिन्दुस्तान-रिव्यू" नामक अँगरेज़ी मासिक पत्र सरस्वती से कई दरजे अच्छो मेगज़ीन है—सरस्वती अपनी गति में वर्तमान काल से बहुत पीछे है।

पाठक आप जानते हैं कि मित्र के शब्दों से मुझे कितना दुःख हुआ है। सच जानिए, उस दुःख से व्याकुल होकर मैंने आज इस विषय पर लेखनी उठाई है और आशा करता हूँ कि मातृभाषा के प्रेमी मेरे विचारों को पढ़कर उनको अमल में लाने के लिए प्रतिज्ञा करेंगे।

इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि सरस्वती "हिन्दुस्तान रिव्यू" से टक्कर नहीं मार सकती। मार भी कैसे सके जब कि वे देश-हितैषी, जिनका धर्म्म मातृ-भाषा की सेवा करना था, अपनी माता का निरादर कर एक विदेशी भाषा के गुण गाते और उसका भाण्डार भरने में अपना गौरव समझते हैं। इस दशा में हिन्दी की पत्रिकाओं से आधुनिक गति की आशा करना अपने दोष को आप स्वीकार करना है। हम अख़बारों में पढ़ते हैं कि भारतीय नौजवानों को देश-सेवा की धुन समाई हुई है; मगर हम हैरान हो कर पूछते हैं कि वे नवयुवक कहाँ हैं जो मातृभाषा पर होते हुए इस अन्याय को देखकर इसका कुछ उपाय करते हों? केवल एक वीर हरदयाल एम० ए० है जिसने अपनी आवाज़ इस अन्याय के विरुद्ध उठाई है; मगर हमारे नेता, जिनके हाथ में बदक़िस्मती से हमारे नौजवानों की बागडोर है, हरदयाल जैसे आदमी को दीवाना, ख़ब्ती कह कर हँस देते हैं! वे कहते हैं कि अँगरेज़ी में लेख लिखकर हम पश्चिमी दुनिया को अपना रोना सुनाते हैं; उनसे सहानुभूति-लाभ करने की आशा करते हैं। हतभागे! तुम यह नहीं जानते कि भारत का दुःख भारत के करोड़ों देहाती दरिद्रियों की सहानुभूति लाभ करने से दूर होगा। बाहर वाले तो तुम्हारे रोने चिल्लाने पर दिल्लगी उड़ाते हैं। हमारी उन्नति और अवनति हमारेही हाथों में है। शिक्षित लोगों का धर्म अपने अशिक्षित भाइयों को शिक्षित करना है; उनको दुःख दूर करने के उपाय समझाना है। यह काम अँगरेज़ी मेगज़ीनें नहीं कर सकतीं। यह काम पवित्र मातृभाषा द्वारा ही हो सकता है। हाँ, अँगरेज़ी में लेख लिखकर हम अँगरेज़ी के लिक्खाड़ अवश्य कहला सकते हैं; पर देश-सेवा तभी होगी जब हम अपने ग्रामीण भाइयों की भाषा बोल तथा लिख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ सकते हों। भारत के दुःख का दल ग्रामीणों की झोपड़ियों में छिपा है; शेक्सपीयर, मिल्टन की किताबों में नहीं।

मुझे बड़ा आश्चर्य्य यह है कि कालेजों में पढ़ कर हमारे नौजवान पाश्चात्य सभ्यता के गुण ग्रहण करने के बदले अवगुण ले लेते हैं। बी० ए०, एम० ए० होकर जब अँगरेज़ी में व्याख्यान देते या लेख लिखते हैं तब अँगरेज़ी के साहित्याचार्य्यों के हवाले पर हवाले देकर अपनी विद्वत्ता प्रकाशित करते हैं। बस, यही उनकी शिक्षा का आदर्श है।* भारत में ऐसे हज़ारों पढ़े लिखे हैं जिन्होंने डिकिन्स के उपन्यास ओलिवर ट्विस्ट को पढ़ा होगा। क्या उन्होंने कभी यह भी सोचा है कि यह उपन्यास उस लेखक ने क्यों लिखा था? उसका आन्तरिक अभिप्राय क्या था? बस इन्होंने कहानी के तौर पर उसे पढ़ लिया और अँगरेज़ी के इडियम्स (Idioms) सीख लिये! उसका मर्म तब मालूम हो जब हमारे नवयुवक "नीच" मानी गई जातियों से मिलें जुलें, कुछ मास उनके बीच में काटें और ग़रीबों के बच्चों की जीवन-चर्य्या को देखें भालें। यह तभी हो सकता है जब ऊँच नीच के बन्धन कट जायँ—'समः सर्वेषु भूतेषु' का सबक़ सोने के अक्षरों में छाती पर लिख लिया जाय। बस, तभी मनुष्य उन शिक्षा-जनक उपन्यासों से कुछ लाभ उठा सकता है। जब उनका एक बार स्पर्श करने से आपको सात बार नहाना पड़ता है तब आप उनके दुःख को क्या ख़ाक समझेंगे।

पिछले साल की हिन्दी-पुस्तकों तथा पत्रों की रिपोर्ट सरस्वती में छपी है। आप लोगों ने उसे पढ़ा होगा। उस रिपोर्ट से हमारे शिक्षित समाज की ग़फ़लत का व्यौरा अच्छी तरह मालूम हो जाता है। रिपोर्ट कहती है कि हिन्दी में कोई अच्छी पुस्तक नहीं छपी; उपन्यासों की भरती है; जो पुस्तकें जीवन-चरित, नाटक दर्शन, विज्ञान, शिक्षा आदि विषयों पर छपी हैं वे भी साधारण हैं। यह है हमारी देश-हितैषिता की रिपोर्ट! किसी जाति की सभ्यता, असभ्यता का पता उसके साहित्य से लगता है। लेख लिखना, पुस्तक लिखना, बड़ी ज़िम्मेदारी के काम हैं। बाज़ लोग ऐयारी की पुस्तकें लिखकर अपने आपको लेखक समझे बैठे हैं; दूसरे "काजल की कोठरियाँ" रचकर अपनी गणना साहित्याचार्य्यों में करते हैं; तीसरे अन्य भाषा के गन्दे, अश्लील उपन्यासों का अनुवाद करके अपनी कीर्ति गाते हैं। हा! भारत-सन्तान, क्या आज तू इस क़दर गिर गई है कि तेरी रुचि सिवा घृणित विषयों के दूसरी ओर जाती ही नहीं! दूसरी भाषा के अमूल्य रत्नों को छोड़कर कौड़ियों पर ही हाथ मारा! क्या अपने यहाँ पहले ही से कूड़ाकरकट की कमी थी जो लन्दन के कोर्ट का सदियों का मैला अपने यहाँ इकट्ठा करने की ठानी है! वाह रे भारत-वासी, यदि पाश्चात्य दुनिया की सैर करने का साधन भी आपके हाथ आया, तो भी आपकी दृष्टि अच्छी वस्तुओं पर न पड़ी!

भाषा अपने विचार दूसरों पर प्रकट करने का एक साधन है। इस साधन की उन्नति या अवनति मनुष्य की अपनी उन्नति या अधोगति पर अवलंबित है। किसी समाज या जाति की सभ्यता का इतिहास उसके प्रत्येक काल के साहित्य को पढ़ने से मालूम हो जाता है। एक शताब्दी बाद जब हमारी सन्तान हिन्दी के प्रचलित ग्रंथों और उपन्यासों को पढ़ेगी तब क्या कहेगी! भीष्म, द्रोण की सन्तान ऐसी विषयासक्त! नर-हत्या का पाप भाषा-हत्या के पाप के सामने कुछ भी नहीं है। सुन्दर भाषा

* अथवा कालेज से निकलते ही वे अपने को चौदहो विद्या के निधान समझने और सरस्वती की निन्दा के नद बहाने लगते हैं। वे कहते हैं, इसकी छपाई तो अच्छी है पर इसमें लेख रद्दी ("mere stuff-not even good stuff") निकलते हैं। परन्तु ये बाल-महात्मा अपने कर-कमल से एक लाइन भी सरस्वती के लिए लिखकर उसे उन्नत करने की चेष्टा नहीं करते। करते हैं केवल प्रलाप। स० सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिरे हुओं को उठाती है, मुर्दों में जान डाल देती है, बुज़दिलों को बहादुर बना देती है, आत्मा को योग का रस चखाती है; बुरी भाषा में लिखी पुस्तकें आचार को भ्रष्ट करती हैं और मन में बुरे से बुरे बीज बोती हैं। भाषा का दुरुपयोग करने वाला मनुष्य समाज का भारी शत्रु है। मनुष्य-समाज के हितैषी भाषा की रक्षा में सदा दत्तचित्त रहते हैं, इसको जी जान से प्यारा समझते हैं और इसकी उन्नति के उपाय सोचते रहते हैं।

बुद्धिमान् लोग इसी से समझ सकते हैं कि लेखक की ज़िम्मेदारी कितनी बड़ी है। इधर उधर की फ़ज़ूल 'सन्ततियें' की रचना करना लेखकता नहीं है। सबसे पहली बात जो लेखक के ध्यान देने योग्य है, यह है कि मनुष्य-समाज का उपकार उसका आदर्श हो। समाज के प्रेम से प्रेरित होकर उसकी लेखनी चले। किसी प्रकार का विषय क्यों न हो सबसे पहले लेखक यह निश्चय कर ले कि मैं ऐसी बात कहूँगा जिससे पाठकों की कुछ न कुछ उन्नति ज़रूर होगी। वह उन्नति शारीरिक, सामाजिक, मानसिक, आत्मिक किसी तरह की क्यों न हो। जिस लेखक के पास कोई भी सँदेसा अपने पाठकों के लिए नहीं है वह लेख लिखकर अपना और अपने पाठकों दोनोंही का समय नष्ट करता है।

दूसरी बात जो लेखक में अवश्य होनी चाहिए वह सरल भाषा का उपयोग है। लेखक ऐसी भाषा लिखे जिसको सर्वसाधारण सहजही में समझलें। लिखने का ऐसा ढंग हो कि पढ़ने वाला एक ही बार पढ़कर मतलब समझ जाय। पण्डितों की टीका-टिप्पणियों की सहायता न दरकार हो। यह स्पष्ट बात है कि जितनी कठिन भाषा होगी उतने ही थोड़े मनुष्य उसको समझेंगे। इससे लेखक का मतलब हल न होगा। ऐसे लिखने से क्या फ़ायदा जिसको लोग समझ ही न सकें। पण्डिताई बघारने के लिए लेख नहीं लिखे जाते। जिस पुरुष के अन्दर यह लगन होगी कि मेरी आवाज़, मेरा सँदेसा, मेरे निर्धन से निर्धन और छोटे से छोटे सब पेशों के भाइयों तक पहुँचे वह ज़रूर ही सरल भाषा का इस्तेमाल करेगा। कठिन भाषा का उपयोग करने वाला अपने दूसरे भाइयों को घोषणा देता है कि मुझे तुम्हारी कुछ परवा नहीं है, तुम चाहे कुएं में गिरो या मरो, मुझको तो अपना व्यसन पूरा करना है।

कथा-कहानियों में सभी का चित्त लगता है, यह बात प्रायः सब लोग जानते हैं। कथा से सभी का मनोरञ्जन होता है। स्त्री, बालक, जवान, बूढ़े सब कोई कहानी सुनने के शौक़ीन होते हैं। यह किसी ख़ास देश के निवासियों की बात नहीं; मनुष्य-समाज जहाँ है वहीं यह देखने में आता है। ऐसी रुचि मनुष्यों में क्यों होती है? इसलिए कि कहानी का ढाँचा अपने जीवन की तरह होता है। उसमें भी उन्हीं लोगों का वर्णन होता है जो हमारी तरह खाते, पीते और चलते फिरते हैं। इस कारण कथा के ढंग से कही हुई बात लोगों के ध्यान में सहज में आजाती है। इससे साफ़ है कि मनुष्य-समाज की उन्नति के उपाय यदि कहानी के रूप में सर्वसाधारण को समझाये जायँ तो सफलता शीघ्र हो सकती है। पढ़े लिखे लोग जानते हैं कि अमरीका में जो ग़ुलामी की प्रथा को दूर करने के लिए उत्तरी और दक्षिणी अमरीकन रियासतों में युद्ध हुआ था उसका उत्तेजक "अंकिल टाम्स केबिन" (Uncle Tom's Cabin) नामक उपन्यास था। जिस किसी ने उस उपन्यास को पढ़ा या उसका नाटक देखा वही ग़ुलामी के व्यापार के विरुद्ध हो गया। दो ही तीन साल हुए कि अपटन सिंक्लयर नामक एक लेखक ने 'जंगल' नामी उपन्यास लिखकर शिकागो के बूचड़ख़ाने के भयानक दृश्य दिखाये थे। उससे बहुत कुछ संशोधन हुआ। मूयर की "यूटोपिया" नामक कथा आदर्श-समाज का चित्र है। रूसो ने "एमिली" नामक उपन्यास लिख कर शिक्षा के प्राकृतिक ढंग का प्रचार किया। विक्टर ह्यूगो की प्रसिद्ध पुस्तक 'लास मिज़राबल्स' मनुष्य-समाज के अत्याचार का एक नमूना है। यह कथा के ढंग का सदुपयोग है। साहित्य में उपन्यास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का दरजा बहुत बढ़ चढ़ कर है। अच्छा उपन्यास साहित्य की जड़ बाँध देता है। मगर उपन्यास लिखना सबका काम नहीं है। मन्दिरों में बैठ कर सारे दिन कथा बाँचने वाले उपन्यास नहीं लिख सकते। हाँ, मदारी के थैले खोल सकते हैं; या शृंगार रस के और बेसिर पैर के पोथे लिख सकते हैं; या टके बटोरने के लिए किसी अण्ड बण्ड किताब का अनुवाद कर सकते हैं। उपन्यास लिखना बड़ा भारी हुनर है। एक कुशल चित्रकार चित्र खींच कर एक जीती जागती मूर्त्ति खड़ी कर देता है। प्रकृति के मनोहर दृश्य खींच कर उनमें वह सौन्दर्य्य भरता है कि देखनेवाले के अन्दर तत् संबंधी भाव उदय होने लगते हैं। यही काम उपन्यासकार का है जो रंगों की जगह उचित शब्दों का प्रयोग कर समाज का चित्र खींचता है। जिसने बाहर निकल कर कभी मनुष्य-समाज की दशा ख़ुद न देखी हो वह उपन्यास रूपी चित्र कैसे खींच सकता है। उपन्यास में देश, काल, समाज की हूबहू तसवीर होनी चाहिए। जिन पाश्चात्य विद्वानों ने पिछली घटनाओं को लेकर उपन्यास लिखे हैं उन्होंने पहले जहाँ जहाँ उसके मुताल्लिक़ सामग्री देखी वहीं से वह सामग्री ली। उसकी अच्छी तरह छान बीन की, वर्षों मेहनत की, तब कहीं जाकर एक उपन्यास लिखा। वे उपन्यास उस भाषा के कीर्त्ति-स्तम्भ हो गये।

यही नहीं, पाश्चात्य विद्वानों ने उपन्यासों द्वारा बहुत बड़े बड़े काम किये हैं। ईसाई धर्म की श्रेष्ठता दिखलाने के लिए अगणित उपन्यास लिखे गये हैं; विज्ञान का सर्व-साधारण में प्रचार करने के लिए भी ऐसे उपन्यास रचे गये हैं जिनसे मूढ़ से मूढ़ मनुष्य विज्ञान की महिमा समझ सकें। यही उपन्यासों का सदुपयोग है। अपने यहाँ समय नष्ट करने और रुपये कमाने के लिए उपन्यास रचे जाते हैं। जैसे उपन्यासों की ज़रूरत है वैसे उपन्यासों की तरफ़ कोई ध्यान ही नहीं देता।

मेरे मन में कई बार आया है कि यदि कोई योग्य पुरुष ट्रांसवाल जाय और श्रीमान् गांधी तथा दूसरे देश-भक्तों का पूरा पूरा हाल मालूम कर, और वहाँ के आधुनिक रंग ढंग को अच्छी तरह देख भाल कर, ट्रांसवाल में हिन्दुस्तानियों की दुर्दशा पर एक उपन्यास लिखे तो सचमुच वह पुरुष देश का भारी उपकार करे और आनेवाली सन्तान के लिए एक सच्चा इतिहास छोड़ जाय. जिसको पढ़ कर भारत-सन्तान समझे कि उनके पूर्व-पुरुषों को अपने अधिकारों के लिए कैसी कैसी मुसीबतें झेलनी पड़ी थीं। परन्तु यह काम करे कौन? जो ऐसे काम कर सकते हैं वे तो अँगरेज़ी मासिक-पुस्तकों की सेवा में दत्त-चित्त हैं। देश की सच्ची धुन लगी हो तब न!

यह तो भला दूर का काम है; निकट के काम हमारे पढ़े लिखे लोगों से नहीं होते। अपने देश के पर्वतों, झीलों, नदियों, वनों का हाल जानने के लिए हमें विदेशियों की शरण लेनी पड़ती है। भील, गोंड आदि जंगली जातियाँ कहाँ और कैसे रहती हैं, यह हमें मालूम नहीं है। इसकी बाबत जानना हो तो ईसाई पादरियों की रिपोर्टों को पढ़ना पड़ता है और अगर कोई कहीं से खोजखाज कर इन लोगों के हाल प्रकाशित करे तो धर्म्मान्ध जन लेखक पर बेतरह टूट पड़ते हैं और कहते हैं कि इन्होंने ऐसे जंगली लोगों का हाल क्यों लिखा जो अमुक अमुक पशु का मांस खाना बुरा नहीं समझते। केदारनाथ, पारसनाथ, मानसरोवर आदि पवित्र स्थानों के विषय में कुछ जानने की इच्छा हो तो किसी विदेशी सैलानी की यात्रा का हाल पढ़ें, तब कहीं पता लगे। कैसा अन्धेर है! हम लोग कहाँ तक दूसरों पर अवलम्बित हैं। क्या इतना भी नहीं हो सकता कि हमारे बी० ए०, एम० ए० भाई फ़ुरसत के समय अपने देश की सैर करें और एक केमरा तथा नोट-बुक साथ लेते जायँ और जो कुछ देखें उसे मातृ-भाषा में लिख डालें। सैकड़ों मनुष्य हर साल एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त जाते हैं। क्या किसी को भी दूसरे प्रान्त में ऐसी नई बातें देखने सुनने में नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आतीं जिनको वह लेखबद्ध करे। हमारे घरेलू क़िस्से बेचारी निवेदिता को लिखने पड़े। एक नहीं, सैकड़ों पंजाबी बम्बई प्रान्त में हैं। उस प्रान्त का रहन-सहन चाल-चलन पंजाब से बिलकुल भिन्न है। क्या किसी ने भी अपने दूसरे लाखों पंजाबी भाइयों (मैं प्रान्तिक विचार से यह बात नहीं लिखता) की वाक़फ़ीयत के लिए बम्बई प्रान्त का सचित्र वर्णन पुस्तकाकार लिखा है? कौन लिखे! हम लोग तो उनमें हैं जो देखते हुए भी नहीं देखते और सुनते हुए भी नहीं सुनते।

इस सम्बन्ध में मुझे दो एक बातें हिन्दी-पत्रिकाओं के सम्पादकों से कहनी हैं। हिन्दी-साहित्य की उन्नति का काम सम्पादक महोदयों के हाथ में भी बहुत कुछ है। जिन लेखकों और कवियों से उनकी जान पहचान है उनको वे प्रेरित करें कि नये नये विषयों पर लेख लिखें तथा कविता करें। लेखों के विषय वर्तमान गति के अनुसार हों। कवि को चाहिए कि आधुनिक समाज के किसी अंश का चित्र खींचे; जंगलों में जाकर प्रकृति से बातें करे; किसी वर्तमान देश-सेवक के गुण बखान करे। ऐसी कविता का नाम जीती जागती कविता है। यह देश का इतिहास बनाती है। लेखक और कविता का समाज के नित्य के जीवन से गहरा सम्बन्ध होना चाहिए।

इतना कहने के बाद अब अन्त में मुझे उन बातों का ज़िक्र करना है जिनके ऊपर हिन्दी-साहित्य की भावी उन्नति का बहुत बड़ा दारोमदार है। यह कौन नहीं जानता कि एक भाषा हुए बिना भारत में एक जाति का होना असम्भव सा है। जब तक मद्रास, बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब आदि प्रान्तों में हिन्दी भाषा का प्रचार नहीं होता, तब तक सर्वसाधारण को भारत-माता से प्रेम होना कठिन है। यह काम हमारे छात्र-समुदाय को उठाना चाहिए। भारत के विद्यार्थियों की एक महती सभा होनी चाहिए, जिसकी शाखायें सब प्रान्तों और सब शहरों में हों। इस सभा का उद्देश एक व्यापक भाषा बनाना हो। बंगाल के विद्यार्थी, मद्रासी विद्यार्थियों से मिलकर हिन्दी भाषा में वार्तालाप करें। इसी प्रकार अन्य प्रान्तों के विद्यार्थी भी करें। इस सभा के अधीन हिन्दी पढ़ाने के ऐसे स्कूल खुलें जहाँ साथ में व्यायामशाला तथा स्नानादि का सुभीता हो। हिन्दी-पुस्तकालय शहरों के भिन्न भिन्न भागों में खोले जायँ, जहाँ पर सप्ताह में एक बार साहित्य-समिति हो जिसमें हिन्दी के लेख पढ़े जायँ। ऐसी सभाओं द्वारा हिन्दी-प्रचार का काम बहुत शीघ्र हो सकता है। यह काम कालेज के विद्यार्थियों के करने का है।

प्यारे पाठक, जो कुछ निवेदन करना था मैंने थोड़े में कर दिया है। अधिक लिखने को अब समय नहीं है। घड़ी में एक बजने पर है और मुझे सोना है। कल विद्यालय का काम भी करना है। इसलिए आप लोगों से क्षमा माँग कर बिदा होता हूँ।

सत्यदेव (अमरीका)

कुकवि-कीर्त्तन।

गणयन्ति नापशब्दं न वृत्तभङ्गं क्षयं न चार्थस्य।
रसिकत्वेनाकुलिता वेश्यापतयः कुकवयश्च॥

(१)

हो तुष्ट नीच को ऊँच प्रमाणित करना,
हो रुष्ट ऊँच को नीच पंक्ति में धरना।
लेकर मन माना मार्ग सगर्व विचरना,
लड़ने भिड़ने को नहीं किसी से डरना।
यों आप सभी पर विकट प्रभाव जमाते,
कविराज! आप के चरित न जाने जाते॥

(२)

हो आश्रयदाता क्यों न अज्ञ अभिमानी,
कर देंगे ज़ाहिर उसे आप 'लासानी'।
होती हो तो हो जाय कलङ्कित बानी,
पर आप करेंगे ज़रा न आनाकानी।
मिथ्या स्तुति कर के कभी न आप अघाते,
कविराज! आप के चरित न जाने जाते॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३)

बाहर अपने को दीन दास बतलाना,
इस भाँति अलौकिक शील स्वभाव दिखाना।
पर रखकर भीतर गर्व महा मनमाना,
सब जग को तुच्छ विचार नहीं सकुचाना।
जानें कितने छल नहीं आपको आते!
कविराज! आपके चरित न जाने जाते॥

(४)

सम्पूर्ण अर्थ का नाश क्यों न हो जावे,
पर यमक ज़रा भी नहीं बिगड़ने पावे।
चाहे प्रसाद का नहीं लेश भी आवे,
शब्दालङ्कारों की न कमी दिखलावे।
तुक ही को कविता-मूल आप बतलाते,
कविराज! आपके चरित न जाने जाते॥

(५)

है काव्य आपके जान पद्य तुकधारे,
तद्विषय एक रस-केलि आप निर्धारे।
जगतीतल में कवि एक आप ही प्यारे,
हैं विषयी जन ही रसिक मदन के मारे।
उड़ती चिड़िया भी आप तुरन्त फँसाते,
कविराज! आपके चरित न जाने जाते!

(६)

है जिस कविता का काम लोकहित करना,
सद्भावों से मन मनुज मात्र का भरना।
पहले तो कान्ता-सदृश हृदय को हरना,
फिर प्रकटित करना विमल ज्ञान का झरना।
हा! उसे आप व्यभिचार-प्रयोग बनाते,
कविराज! आपके चरित न जाने जाते॥

(७)

रखना न ध्यान कुछ देशसमय आदि की गति का,
करना विचार कुछ तथा न भावी क्षति का।
गा कर सदैव बस राग एक रतिपति का,
करना विनाश नवयुवकजनों की मति का।
यों कुरुचि बढ़ाकर आप समाज डुबाते,
कविराज! आपके चरित न जाने जाते॥

(८)

कविता द्वारा वे बीज आप बोते हैं,
फल जिनके विष से अधिक विषम होते हैं।
जगते कुभाव सद्भाव सभी सोते हैं,
दोनों लोकों से लोग हाथ धोते हैं।
रोते हैं कितने नहीं आपके नाते!
कविराज! आपके चरित न जाने जाते॥

(९)

विभुवर व्रजेश की ओट लिए मन मानी,
रचते हैं रचना आप विषम विष सानी।
इस भाँति भक्ति मिस सदा स्वार्थ के ध्यानी,
करते हैं हा! हा! आप लोक-हित-हानी।
क्या ईश्वर का भी नहीं आप भय खाते?
कविराज! आपके चरित न जाने जाते॥

(१०)

प्रियचन्द्र-वदन की चटक नहीं हो जिसमें,
नागिन सी लट की लटक नहीं हो जिसमें।
भ्रू और दृगों की मटक नहीं हो जिसमें,
मन्मथ-महीप का कटक नहीं हो जिसमें।
उसको कविता ही नहीं आप बतलाते!
कविराज! आपके चरित न जाने जाते॥

(११)

चाहे न वृत्त का बचे विनाश ज़रा भी,
चाहे न ओज का पड़े प्रकाश ज़रा भी।
पा सके भले ही रस न विकाश ज़रा भी,
होते हैं किन्तु न आप हताश ज़रा भी।
गाये जाते निज गीत बने मदमाते,
कविराज! आपके चरित न जाने जाते॥

(१२)

हो क्यों प्रतिभा के नाम न घोर अँधेरी,
चाहे न कल्पना करे भूल कर फेरी।
सूरत अनुभव की हो न भले ही हेरी,
हो जाती कविता किन्तु आपकी चेरी!!!
अपने मुँह अपनी आप बड़ाई गाते,
कविराज! आपके चरित न जाने जाते॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१३)

कर नक़ल और की सदा स्वनाम खपा के,
रख देना झट पट ग्रन्थ-समूह छपा के।
यदि कोई कुछ प्रतिकूल कहे, छल पाके,
करना दृग लोहित यथा प्रसून जपा के।
चोरी शहज़ोरी साथ आप अपनाते,
कविराज! आपके चरित न जाने जाते॥

(१४)

हो क्यों न अन्य-कवि-गिरा सर्व-गुण-धारी,
भद्दी लगती है किन्तु आपको सारी!
दाखें कितनी ही मधुर न हों बेचारी,
लगती ऊँटों को ऊँटकटहली प्यारी।
सब भाँति आपमें हम विचित्रता पाते,
कविराज! आपके चरित न जाने जाते॥

(१५)

पर-दोष देखते तथा उन्हें जब गाते,
तत्काल आप हैं शेष नाग बन जाते।
गुण किन्तु किसी के जहाँ ध्यान में आते,
तब अन्ध और अति मूक आपको पाते।
(विटचर कदापि क्या सुमन ओर मन लाते?)
कविराज! आपके चरित न जाने जाते॥

(१६)

गुण देख प्रशंसित किसी दूसरे जन के,
जल भुन रह जाते आप मौन से बन के।
करते फिर नाना यत्न दोष-दर्शन के,
फूटें जिसमें विद्वेष फफोले मन के।
इतने पर भी निरपेक्ष भाव दिखलाते,
कविराज! आपके चरित न जाने जाते॥

(१७)

उत्कर्ष किसी का जहाँ ध्यान में आया,
तत्क्षण ही अपना उसे अमित्र बनाया।
हरने को फिर उसका यशोर्थ मन भाया,
छोड़ा न एक भी यत्न जहाँ जो पाया।
पर-निन्दा के नद आप अपार बहाते,
कविराज! आपके चरित न जाने जाते॥

(१८)

होता जब साहस प्रकट न कुछ कहने का,
विज्ञों के सम्मुख निडर खड़े रहने का।
लगता है भय निज ज्ञान मान बहने का,
प्रत्युत्तर रूपी कशाघात सहने का।
तब छिपे छिपे अपशब्द आप बरसाते,
कविराज! आपके चरित न जाने जाते॥

(१९)

कर कर असंख्य आक्षेप आप मरते हैं,
पर बुधवर उन पर ध्यान नहीं धरते हैं।
इससे यह मतलब नहीं कि वे डरते हैं,
हाँ, किन्तु उपेक्षा तुच्छ जान करते हैं।
(क्या श्वान-शब्द पर ध्यान गजेन्द्र लगाते?)
कविराज! आपके चरित न जाने जाते॥

(२०)

रखते जो अपना साम्य न आप किसी में,
होता है सबका भला सदैव इसी में।
निज सम समझें यदि काक पिकों को जी में,
तो मानें क्या पिक इसे मान पृथिवी में?
है अनन्वयालङ्कार आपके खाते,
कविराज! आपके चरित न जाने जाते॥

मैथिलीशरण गुप्त।

रुक्मिणी-हरण का स्थान।

मद्भागवत में लिखा है कि विदर्भ-राज भीष्मक के रुक्मिणी नाम की एक कन्या थी। विवाह के दिन जब वह देवी जी के दर्शन करने गई थी तब उसे श्रीकृष्ण-जी हर ले गये थे। उस रुक्मिणी-हरण की कथा खूब प्रसिद्ध है। प्रायः सभी पढ़े लिखे और धर्मनिष्ठ हिन्दू इससे परिचित हैं। रुक्मिणीहरण की यह कथा, जिसका वर्णन भागवत में बड़े विस्तार से किया गया है, कहाँ तक सत्य है, यह बतलाना बहुत कठिन है। जो लोग भागवत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को निरा ढकोसला समझते हैं वे तो इस कथा को कल्पित कहेंगे ही; परन्तु जो लोग भागवत को ऐतिहासिक धर्मग्रंथ मानते हैं उनके मत में रुक्मिणीहरण की कथा कभी कल्पित नहीं हो सकती। वे इसे सम्पूर्ण ऐतिहासिक कथा समझते हैं। यदि यह कथा सत्य मान ली जाय तो यहाँ पर प्रश्न हो सकता है कि इस कथा-सम्बन्धी घटनायें कहाँ घटी थीं? इस विषय में लोगों में मतभेद है।

गत जुलाई मास की सरस्वती में इस विषय पर जो लेख निकला था उसमें उसके लेखक पण्डित लड्डूजीतजी मिश्र ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि रुक्मिणीहरण अनूपशहर (ज़िला बुलन्दशहर) के अन्तर्गत अहार नामक गाँव के निकट हुआ था। आपने अपने मत की पुष्टि में यह प्रमाण दिया है कि अहार को पूर्वकाल में लोग कुण्डिनपुर या कुन्दनपुर कहते थे और श्रीमद्भागवत में विदर्भ-राज भीष्मक को 'कुण्डिनपतिः' कहा है।

रुक्मिणी के पिता राजा भीष्मक विदर्भ देश के अधिपति थे। इसी से भागवत में रुक्मिणी को वैदर्भी कहा है। विदर्भ को आजकल लोग बरार कहते हैं। बरार से अहार सैकड़ों मील दूर है। अतएव यह असम्भव मालूम होता है कि बरार का कोई राजा अपनी राजधानी अहार, ज़िला बुलन्दशहर, में बनावे। फिर यह भी नहीं हो सकता कि विदर्भराज की कन्या अपने देश से इतनी दूर पर अहार की अम्बिका देवी को विवाह के दिन पूजने जावे। इसके सिवा ऐसा भी कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं पाया जाता जिससे यह सिद्ध होता हो कि किसी समय विदर्भराज्य अहार तक विस्तृत था। मिश्रजी के लेख से मालूम होता है कि अहार बेतवाजी के किनारे है। परन्तु श्रीमद्भागवत में कुण्डिनपुर का जो वर्णन लिखा है उससे उसका नदीतटस्थ होना नहीं प्रतीत होता। इन सब बातों से मालूम होता है कि न तो राजा भीष्मक की राजधानी अहार में थी और न उसके निकट की अम्बिका देवी के मन्दिर से रुक्मिणी हरी गई थीं।

यहाँ पर पाठक पूछ सकते हैं कि रुक्मिणी-हरण यदि अहार में नहीं तो फिर कहाँ हुआ था? हमारी समझ में यह पौराणिक घटना विदर्भ प्रान्त के अन्तर्गत अमरावती नगर के निकट कुण्डनपुर नामक गाँव के आस पास कहीं घटी होगी। भागवत में जिस कुण्डिनपुर का उल्लेख है यह वही कुण्डनपुर है। क्योंकि एक तो यह विदर्भ प्रान्त के अन्तर्गत है। दूसरे इसका प्राचीन नाम अब तक बना हुआ है। तीसरे भागवत में उल्लिखित कुण्डिनपुर के अन्य लक्षण भी इससे मिलते हैं।

यह कुण्डनपुर अमरावती नगर से कोई छः कोस की दूरी पर है। आज कल यह एक छोटा सा गाँव मात्र रह गया है। प्राचीन काल में यह बड़ा समृद्धिशाली नगर था और अमरावती तक बसा हुआ था। कहते हैं कि रुक्मिणी की आराध्य अम्बिका देवी का मन्दिर यहाँ अब तक विद्यमान है। जिन लोगों ने इसे देखा है वे इसकी सुन्दरता और मनोहरता की बहुत प्रशंसा करते हैं। रुक्मिणी-हरण का स्थान होने के कारण यहाँ पर प्रति वर्ष एक मेला लगता है। उसमें कोई पचीस तीस हज़ार आदमी इकट्ठे होते हैं।

रुक्मिणी के भाई रुक्म जब अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर सके तब उन्हें बड़ी ग्लानि हुई। इसलिए राजधानी को न लौटकर उन्होंने एक दूसरा नगर बसाया और उसका नाम भोजकट रक्खा। यह नगर अब तक वर्तमान है। आजकल इसे आकोट कहते हैं। इसी आकोट से तीन कोस की दूरी पर एक गाँव है; इसे मूँडगाँव कहते हैं। किंवदन्ती है कि यहीं पर श्रीकृष्ण ने अपने साले रुक्म को मूँडा था। इसीसे इसका यह नाम पड़ा। लिखा है कि श्रीकृष्ण ने रुक्म को थोड़ी देर तक रथ में बँधा रक्खा था। जिस स्थान पर रुक्म बाँधे गये थे और जिस स्थान पर खोले गये थे उन स्थानों पर क्रम से बँधनापुर और खोलापुर नाम के गाँव अब भी बसे हुए हैं। इसके सिवा रुक्म के उलटे टाँगे जाने के प्रमाण-स्वरूप रुक्म की पाषाणमूर्त्ति एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृक्ष में अब तक उलटी टँगी हुई है। इसके दर्शन के लिए लोग बड़ी दूर दूर से आते हैं।

बरार में मामा की लड़की से विवाह करने की रीति प्रचलित है। बरारवाले कहते हैं कि यह रीति उस समय से चली है जब श्रीकृष्ण के पुत्र ने अपने मामा रुक्म की कन्या से विवाह किया था। जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रथा से उक्त घटना का कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य है।

ऊपर जितने प्रमाण दिये गये हैं उन सबसे सिद्ध है कि राजा भीष्मक का राज्य वर्तमान बरार प्रान्त में था और उसकी राजधानी अमरावती के निकट वाली कुण्डिनपुर नगरी थी। यहीं रुक्मिणी जी का जन्म हुआ था और इसके पास अम्बिकादेवी का जो मन्दिर है वहीं पर वे श्रीकृष्ण के द्वारा हरी गई थीं। अतएव अहार रुक्मिणीहरण का स्थान नहीं हो सकता।

गत जुलाई मास की सरस्वती में जो लेख इस विषय पर निकला था उसे पढ़कर दो महाशयों ने हमें पत्र भेजे हैं। एक तो ब्यावर के एक सज्जन हैं (जो अपना नाम प्रकट करना नहीं चाहते); और दूसरे मकराई, हर्दा, के रहनेवाले श्रीयुत नानकचन्द वर्मा नामक एक महाशय हैं। इन दोनों सज्जनों ने पण्डित खड्गीजीतजी मिश्र के लेख का प्रतिवाद किया है और यह सिद्ध किया है कि रुक्मिणीहरण का स्थान अहार नहीं किन्तु बरार का कुण्डिनपुर है। उन्होंने अपने मत की पुष्टि में जो जो युक्तियाँ और प्रमाण दिये हैं उन सबको हमने इस लेख में लिख दिया है।

कृष्ण-जन्म।

भयउ अस भारत में नहिं आन।
आठैं असित माँझ भादौं जस भो जदुपति भगवान।
यहिं नरसिंह माहिं बालापन सों जे सुगुन महान।
देखि परे ते एक पुरुष में सुने न कबहूं कान॥ १॥

एक एक गुन में या जग में भे बहु पुरुष प्रधान।
कैयो गुनन माहँ कितनेहु नर भये प्रतिष्ठावान॥
पै जितने गुन नंदनन्दन में लखे पूर्ण सविधान।
तितने संग्रह करनहार कोउ सुन्यो न दुतिय सुजान॥२॥

गोपिन में मुरली धुनि करि जेहिं कियो अलौकिक गान।
जापर वारि डारिये कोटिन तानसेन की तान॥
वर्त्तमान में योरपीय जो बाल पृथा को ठान।
गोपिन अपसरान बिच जदुपति ताको दियो प्रमान॥३॥

रासरसिक, नटनागर, नायक कोऊ कान्ह समान।
तिहुपुर में नहिं भयो आजुलौं हूबेहु की आसान॥
इतनेहु पर भगवतगीता को परम अपूरब ज्ञान।
जोग, सांख्य, वेदन, उपनिषदन मथि भाख्यो जगत्रान॥४

राजप्रबन्ध करन में इनकी लखी बुद्धि मनमान।
उग्रसेन, वसुदेव, राम के देखत सकल प्रजान॥
पालन कियो होय सब के लघु पै कबहूँ तिलमान।
इनसों वैमनस्य काहू को भयउ न दुखद मलान॥५॥

बालापन सों मरन काल लौं कोटिन भट जुत सान।
जीति लियो भगवान अकेलेहि धारि चक्र, धनु, बान॥
शाल्व, कंस, शिशुपाल बकासुर एकहु वीर बचान।
बिना अस्त्र हू बहु खल मारे गाजत मनु हनुमान॥६॥

परे कठिनतम अवसर जितने तिन पर वर व्याख्यान।
देनहार वसुदेव तनै सम नहिं कोउ पुरुष लखान॥
सुमिरन करि कै पूर्व प्रीति को, देखि दसा जदुभान।
आपु सरिस करि दियो सुदामहि एक बेर दै दान॥७॥

राजसूय में नृपन, ऋषिन की जुरी सभा गुनखान।
प्रथम पूजिबे लायक तेहि थर यहइ पुरुष ठहरान॥
केसव के सिगरे गुन गन कोउ करि नहिं सकेउ बखान।
कहेउ इन्हैं अवतार सबन तब जुत षोड़सहु कलान॥८॥

श्यामविहारी मिश्र
तथा
शुकदेवविहारी मिश्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक-परीक्षा।

१—दियातले अँधेरा। मासिक मनोरञ्जन नाम के मराठी मासिक पत्र में कुछ दिन हुए एक आख्यायिका छपी थी। उसी का यह हिन्दीभाषानुवाद है। अनुवादक देवरी, ज़िला सागर, निवासी श्री माधूराम प्रेमी हैं। अनुवाद की भाषा सरल है। कहानी मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद है। स्त्री-शिक्षा के पक्षपातियों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। परन्तु छोटे आकार के बीस पृष्ठ की पुस्तिका का मूल्य दो आने अधिक है। जो हो, जिसका जी चाहे वह मैनेजर जैन ग्रंथरत्नाकर-कार्यालय, गिरगाँव, बम्बई से इसे मँगा ले।

❁

२—स्त्रीदर्पण। हर्ष की बात है, इन प्रान्तों में भी स्त्रियों ने समाचार-पत्रों में लिखना और मासिक पुस्तकें निकालना आरम्भ कर दिया। श्रीमती रामेश्वरीदेवी नामकी एक रमणी ने प्रयाग से "स्त्री-दर्पण" नाम का एक मासिक पत्र निकाला है। आप सम्पादिका हैं; और श्रीमती कमलादेवी मैनेजर। उक्त पत्र का चतुर्थ अङ्क हमारे पास समालोचना के लिए आया है। जान पड़ता है, इस पत्र की सम्पादिका को हिन्दी का बहुतही कम ज्ञान है। शरीर के अङ्गों या अवयवों का अर्थ आपने लिङ्ग समझ रक्खा है। समालोचित संख्या के सातवें पृष्ठ के आरम्भ से यह बात सूचित होती है। भाषा इस पत्र की बहुधा बेमुहाविरा और अशुद्ध है। हम इसके दोष दिखलाकर सम्पादिका के हृदया के उत्साह को कम नहीं करना चाहते। हम चाहते हैं कि वे लिखें कम, पढ़ें बहुत। उन्हें हिन्दी की अच्छी अच्छी पुस्तकें पढ़कर अपनी भाषा को परिमार्जित करना चाहिए और लिखने का ढंग सीखना चाहिए।

इस संख्या में आरोग्य, पातिव्रत धर्म, शुद्ध जैन और स्त्री शिक्षा आदि कई लेख हैं। ४ लेख देवियों के नाम से प्रकाशित हैं। नोटस भी हैं। लेखों का विषय अच्छा है—उपदेशजनक है। तीन कवितायें हैं। श्रीयुक्त माधव शुक्ल की ग़ज़ल बड़ी सरस है। इस अङ्क में छोटे साँचे के ४० पृष्ठ हैं। वार्षिक मूल्य २।) रु० है। हम इस पत्र के हृदय से शुभचिन्तक हैं। ईश्वर करे काश्मीरी-कामिनियों का यह शिक्षा-कुसुम अपना सौरभ दूर दूर तक फैलावे। जिन घरों में उर्दू और फ़ारसी का अटल साम्राज्य रहता है उन घरों में बेचारी हिन्दी का प्रवेश तो हुआ। यह हिन्दी के लिए विशेष सौभाग्य की बात है।

❁

३—श्रीकृष्णचरित। लश्कर-ग्वालियर में एक मण्डली स्थापित हुई है। उसका नाम है मनोरञ्जक हिन्दी ग्रंथ-प्रसारक मण्डली। यह मण्डली हिन्दी में अच्छी अच्छी पुस्तकें प्रकाशित करना चाहती है। इसके द्वारा प्रकाशित पहली पुस्तक हमारे सामने है। बाबू नवीनचन्द्र सेन ने बङ्ग भाषा में कई उत्तमोत्तम काव्य लिखे हैं। उनने श्रीकृष्णजी का जो चरित चित्रित किया गया है उसी के आधार पर मराठी में श्रीकृष्णचरित नाम की एक पुस्तक छपी है। हमारी समालोच्य पुस्तक उसी का हिन्दी रूपान्तर है। इसमें श्रीकृष्ण का जो चरित है वह सबके पढ़ने योग्य है। वर्त्तमान भारतवासी उससे बहुत कुछ सीख सकते हैं। इस पुस्तक को लिखकर ठाकुर सूर्यकुमार वर्मा ने बहुत अच्छा काम किया है। जिनका जी चाहे उक्त मण्डली से इसे आठ आने में मँगा लें।

❁

४—प्रियतम। कुछ दिनों से अभ्युदय प्रेस, प्रयाग, से पण्डित कृष्णकान्त मालवीय के सम्पादकत्व में साधारण शिक्षा-निबन्धावली नाम की पुस्तकमाला निकल रही है। यह इस माला की दूसरी पुस्तक है। पहली, "फूलों का हार", की समालोचना भी इसी संख्या में आपको पढ़ने को मिलेगी। इसमें बाबू प्रभातकुमार मुखोपाध्याय की बँगला आख्यायिकाओं का हिन्दी अनुवाद है। इसमें सब मिलाकर चार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानियाँ हैं। चारों कहानियाँ मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद हैं। साथ में प्रभात बाबू का चित्र भी है। काग़ज़ और छपाई भी साफ़ है। कसर केवल इतनी ही है कि कहानियों की भाषा वैसी परिष्कृत और प्रौढ़ नहीं है जैसी कि होनी चाहिए। मूल्य चार आने। मिलने का पता—मैनेजर, अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

❀

५—फूलों का हार। बाबू प्रभातकुमार मुखोपाध्याय ने, कुछ दिन हुए, अपनी सोलह कहानियों को "षोड़शी" नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित किया था। इस पुस्तक में उसी षोडशी की तीन आख्यायिकाओं का हिन्दी-अनुवाद है। अनुवादक पण्डित कृष्णकान्त मालवीय बी० ए० हैं। कहानियाँ बहुत अच्छी हैं। पर अनुवाद की भाषा कुछ दोष-पूर्ण है। पुस्तक प्रयाग के अभ्युदय प्रेस में छपी है। वहीं से चार आने में मिलती है।

मनोरञ्जक श्लोक।

(१)

या पाणिग्रहलालिता सुसरला तन्वी सुवंशोद्भवा
गौरी स्पर्शसुखावहा गुणवती नित्यं मनोहारिणी।
सा केनापि हृता तया विरहितो गन्तुं न शक्नोम्यहं
रे भिक्षो तव कामिनी न हि न हि प्राणप्रिया यष्टिका॥

करस्पर्श से जिसका लालन किया था; जो बहुत सीधी और पतली थी; जो अच्छे बाँस से उत्पन्न हुई थी (किंवा जो श्रेष्ठ वंश की थी); जो सफेद थी (किम्वा जो गोरी थी); जो छूने में सुखदायक थी; जो गुणवती थी; जो नित्य मन को हरण करने वाली थी, उसे किसी ने हर लिया। उसके वियोग के कारण अब मैं चलने में असमर्थ हूँ। (ये वचन कहते हुए कोई भिक्षुक जा रहा था। उन्हें सुनकर किसी स्त्री ने पूछा)—हे भिक्षुक! क्या वह तेरी स्त्री थी? (इसपर उसने उत्तर दिया) नहीं, नहीं, वह मेरी प्राणप्रिया छड़ी थी।

(२)

रामचन्द्र तव यादृशी कृपा वानरेषु नहि नरेषु तादृशी।
वार्धके च मयि वानराकृतौ सा कृपा तव कथं न जायताम्॥

कोई वृद्ध कवि रामचन्द्रजी से कहता है:—हे रामचन्द्र! बन्दरों पर तुम्हारी जितनी कृपा है उतनी मनुष्यों पर नहीं है। बुढ़ापे के कारण अब मेरा भी आकार बन्दरों के समान हो गया है। फिर आप मुझपर क्यों कृपा नहीं करते?

(३)

विद्या सत्कविता तथा सुजनता सेवा परा प्रार्थना
पञ्चैताः परिनिन्यिरे जनयितुं वित्तात्मजं योषितः।
व्यापारं परिहृत्य सर्वमनिशं तत्रैव रेमे मुहुः
दुर्दैवेन दुरात्मना विदधिरे पञ्चैव वंध्याः स्त्रियः॥

एक पंडित किसी राजा से कहता है:—हे राजन्, मैंने विद्या, सत्कविता, सुजनता, सेवा तथा प्रार्थना इन पाँच स्त्रियों से विवाह किया (अर्थात् उनका सेवन किया)। यह सब इस लिए, जिसमें मेरे धन-रूपी पुत्र उत्पन्न हो। और सारे व्यापार छोड़ कर मैं उनमें नित्यही रममाण हो गया (अर्थात् उनमें लिप्त हो गया) परन्तु दुरात्मा दुर्दैव ने उन पाँचों स्त्रियों को वन्ध्या कर दिया (अर्थात् विद्या, सत्कविता आदि से युक्त होने पर भी मुझे धन न मिला)

कुँवर छेदीलाल।

Printed and published by Panch Kory Mitra at the Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती ।

भाग १०] १ नवंबर, १९०९ । कार्त्तिक कृष्ण ४, १९६६ । [संख्या ११

विविध विषय ।

१—भारतीय युद्ध का समय ।

भारतीय युद्ध कब हुआ था, इस विषय में भिन्न भिन्न विद्वानों के भिन्न भिन्न मत हैं। पाश्चात्य पण्डितों ने इस विवादास्पद विषय में बहुत कुछ लिखा है। परन्तु उनके निर्णयों को इस देश के पुरातत्त्व-ज्ञों ने बिलकुल ही भ्रमात्मक सिद्ध कर दिखाया है। इतदेशीय पण्डितों में से अध्यापक रङ्गाचार्य्य और मिस्टर वी० गोपाल अ्रोइयर ने इस विषय में कुछ खोज की है। पहले महाशय का मत है कि ईसा के १४२२ वर्ष पूर्व महाभारत युद्ध हुआ और दूसरे का है कि वह ईसा के ११९४ वर्ष पूर्व हुआ था। अब, इस विषय में, बी० वी० कामेश्वर अ्रोइयर एम० ए० का एक लेख मदरास के इंडियन रिव्यू में प्रकाशित हुआ है। आपने अनेक युक्तियों द्वारा पूर्वोक्त दोनों महाशयों के सिद्धान्तों को भ्रमपूर्ण सिद्ध किया है। आपका मत है कि यह युद्ध ईसा के १४२२ वर्ष पहले से भी बहुत पहले हुआ था। पर कब हुआ था, इसका निश्चय आप भी नहीं कर सके।

२—रामायण का समय ।

वाल्मीकीय रामायण के रचना-काल के विषय में भी लोगों में मत-भेद है। कोई उसे अत्यन्त प्राचीन मानते हैं और कोई कुछ कम। पहले दलवालों का कथन है कि वह त्रेता युग की बनी हुई है और दूसरे दलवाले कहते हैं कि उसकी रचना ईसा की प्रथम शताब्दी में हुई थी। परन्तु अमेरिका के वाल्टर ओल्ड नामक एक साहब ने दृढ़ प्रमाण देकर इन दोनों मतों को भ्रमात्मक ठहराया है। उन्होंने अमेरिका के "नालेज" नामक पत्र में इस विषय पर एक लेख लिखा है। उसमें वे कहते हैं कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामजन्म के समय जिन जिन ग्रहों के जिन जिन राशियों में होने का रामायण में उल्लेख है वे सब ग्रह १० फ़रवरी, १७६१ ई० पू० को उन उन राशियों में थे। इससे मालूम होता है कि रामायण की रचना इसी समय के लग भग हुई होगी। अर्थात् साहब की राय में रामायण को बने कोई ३६७० वर्ष हुए।

३—मराठी ग्रन्थकारों का सम्मेलन।

इस साल महाराष्ट्र-साहित्य-सम्मेलन बड़े मार्के का होनेवाला है। यह सम्मेलन बड़ौदे में आक्टोबर की २३, २४ और २५ तारीख़ को होगा और इस संख्या के निकलने के पहले ही हो चुकेगा। इस सम्मेलन के ख़र्च के लिए महाराज गायकवाड़ ने ढाई हज़ार रुपया देना मंज़ूर किया है। मराठी भाषा के नामी नामी ग्रन्थकार और विद्वान् इसमें शामिल होंगे। अनेक महत्त्व-पूर्ण लेख पढ़े जायँगे। ख़ुद महाराज गायकवाड़ मराठी भाषा के विषय में एक बहुतही गवेषणापूर्ण व्याख्यान देंगे। विश्वविद्यालय में मराठी भाषा को स्थान देने के विषय में, नये नये ग्रन्थ प्रकाशित करने के विषय में और एक बहुत बड़ा कोश तैयार करने के विषय में लेख पढ़े जायँगे। सबसे बड़ी बात इस सम्मेलन में यह होगी कि हिन्दी को देश-व्यापक भाषा बनाने और नागरी लिपि का सर्वत्र प्रचार करने के विषय में भी विचार किया जायगा। यह सम्मेलन, जान पड़ता है, मराठी भाषा के इतिहास में चिरकाल तक स्मरण रखने योग्य होगा। सम्मेलन के मन्त्री महोदयों ने सम्मेलन में शामिल होने के लिए कृपा करके हमें भी आमन्त्रण-पत्र भेजा है। पर, खेद है, हमारा शरीर बहुत दिनों से अस्वस्थ है। अतएव लाचारी है, हम न जा सकेंगे।

४—मिस्टर लालमोहन घोष।

कलकत्ते के विख्यात बारिस्टर मिस्टर लाल-मोहन घोष का शरीर छूट गया। ५९ वर्ष की उम्र में आपकी मृत्यु हुई। २३ वर्ष की उम्र में आप बारिस्टर हुए। कोई १५ वर्ष तक आपने कलकत्ते की हाईकोर्ट में बारिस्टरी की और बड़ा नाम पैदा किया। आप बड़ेही अच्छे वक्ता थे। दो दफ़े आप विलायत गये और वहाँ इस देश के सम्बन्ध में कितनी ही वक्तृतायें देकर विलायतवालों का ध्यान भारत की ओर आकृष्ट किया। पहले पहल इन्होंने पारल्यामेंट में प्रवेश पाने की कोशिश की। यद्यपि उसमें ये कामयाब न हुए तथापि भारतवर्ष के निवासियों के लिए उस महासभा में प्रवेश पाने के मार्ग को इन्होंने ख़ूब परिष्कृत कर दिया। इनको साहित्य से भी बड़ा प्रेम था। जबसे इनकी धर्म्म-पत्नी का परलोक हुआ तबसे इन्होंने बारिस्टरी करना छोड़ दिया था। आप सिर्फ़ साहित्य-सेवा करते थे। बँगला के प्रसिद्ध कवि माइकेल मधु-सूदन दत्त के मेघनाद-वध नामक बँगला काव्य का इन्होंने अँगरेज़ी में बड़ाही मनोहर अनुवाद किया है। पर वह प्रकाशित नहीं हुआ। धन्य है वह भाषा जिसके ग्रन्थों का विदेशी भाषाओं में अनुवाद करके बड़े बड़े विद्वान् और वक्ता बारिस्टर अपने देश के कवियों की कीर्ति देश-देशान्तरों में फैलाने की चेष्टा करते हैं।

५—पृथ्वी के पेट में बीस मील लंबी रेल।

अमेरिका में हडसन नाम की एक बहुत बड़ी नदी है। न्यूयार्क और न्यूजरसी नाम के दो बड़े बड़े शहर उसके दोनों तरफ़ आमने सामने बसे हुए हैं। बीच में नदी के जल और स्थल-भाग का विस्तार कोई २० मील है। इस २० मील को अमेरिका के यंजिनियरों ने भीतर ही भीतर खोद कर न्यूयार्कसे न्यूजरसी तक एक बोगदा बनाया है। उसके भीतर से बिजली की रेल दौड़ाई जायगी। भीतरही भीतर कई स्टेशन बनेंगे। न्यूयार्क में जो स्टेशन बन रहा है वह बहुतही विशाल होगा। उसमें २४ खण्ड होंगे। १२००० आदमी उसमें रह सकेंगे। दूकानें होंगी, कारख़ाने होंगे, रेल के कर्म्मचारियों के रहने और काम करने के मकान होंगे—और न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

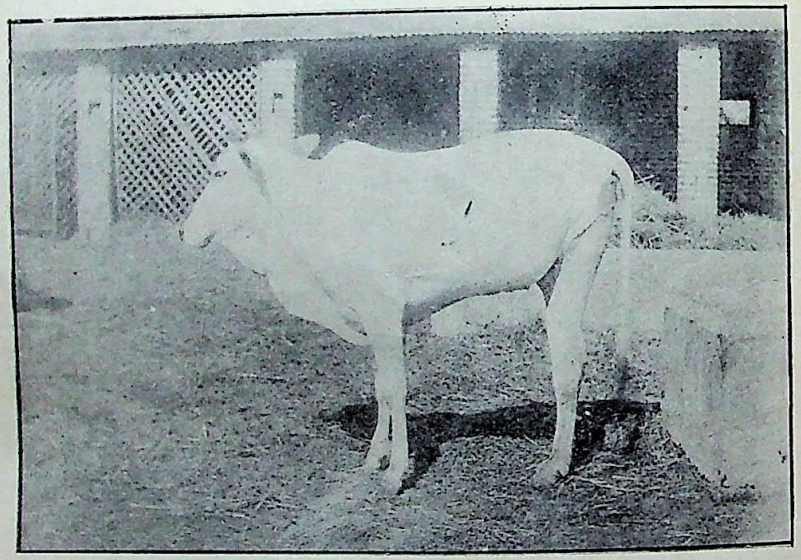

तीन पैर की गाय ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालूम क्या क्या होगा। वह स्टेशन क्या एक शहर होगा। इस रेल के निकालने में २१ करोड़ रुपये के लग भग ख़र्च पड़ेगा! यह सब रुपया सर्वसाधारण लोगों से रेलवे कम्पनी के हिस्से बेच कर इकट्ठा किया गया है। गवर्नमेंट से एक पाई की भी मदद नहीं ली गई। २० मील तक पृथ्वी के भीतर रेल निकालना बड़ाही विकट व्यापार है।

६—तीन पैर की गाय।

रतलाम में एक गोशाला है। उसमें सैकड़ों गायें हैं। इनमें से एक गाय बड़ी अद्भुत है। उसके केवल तीन ही पैर हैं। तिस पर भी वह बिना किसी की सहायता के उठ, बैठ, चल, फिर और दौड़ सकती है। उसके स्तन भी तीन ही हैं। उम्र सवा दो वर्ष की और रंग सफ़ेद है। यह गाय ईश्वर की विचित्र लीला का सजीव नमूना है। इस संख्या में हम इसका चित्र प्रकाशित करते हैं। यह चित्र और इसका विवरण पूर्वोक्त गोशाला के सेक्रेटरी श्रीयुत एच० नारायण पोतदार ने हमारे पास भेजा है। अतएव हम आपको धन्यवाद देते हैं।

७—दुनिया में सबसे बड़ी घड़ी।

अमेरिका के न्यूयार्क नगर में मेट्रापोलिटन नामक एक कम्पनी है। वह जीवन-बीमा का व्यापार करती है। उसके दफ़्तर की इमारत बड़ी ही आलीशान है। उसमें एक घड़ी ऐसी लगाई गई है जिसकी बराबरी दुनिया में और कोई घड़ी नहीं कर सकती। उसकी सूइयाँ इतनी बड़ी हैं कि एक बार 'डायल' के चारो तरफ़ घूम आने में उन्हें इस इमारत के तीन खण्डों तक जाना पड़ता है। जब इनमें से एक सूई किसी खिड़की के सामने आ जाती है तब उससे वह खिड़की बिलकुल ही ढक जाती है। मिनट की सूई की लंबाई १४ फ़ीट और घंटे की सूई की ११ फ़ीट है। ज़मीन से ४०० फ़ीट की ऊँचाई पर यह घड़ी लगाई गई है। इसके भीतर बिजली की रोशनी का प्रबन्ध होनेवाला है। रोशनी होने से ३० मील की दूरी से इस घड़ी की सूइयाँ देख पड़ेंगी!

८—दुनिया की आबादी।

एक साहब ने हिसाब लगाकर बताया है कि वर्त्तमान समय में समस्त संसार की जन-संख्या एक अरब छियालीस करोड़ सत्तर लाख के क़रीब है। यह जनसंख्या सम्पूर्ण पृथ्वी पर समान रूप से विभक्त नहीं, कहीं अधिक है कहीं कम। परन्तु, यदि औसत लगाया जाय तो मालूम होगा कि पृथ्वी के स्थलभाग के अन्तर्गत प्रत्येक वर्गमील में कोई इकतीस मनुष्य वास करते हैं। पृथ्वी के स्थल-भाग का रक़बा चार करोड़ साठ लाख वर्गमील के लग भग है। इसमें से २८० लाख वर्ग मील उपजाऊ भूमि, १४० लाख वर्गमील पहाड़ी भूमि और कोई ४० लाख वर्गमील मरु भूमि है। पूर्वोक्त साहब का अनुमान है कि संसार की उपजाऊ और पहाड़ी भूमि में सब मिलाकर अधिक से अधिक ५९९४० लाख मनुष्य निवास कर सकते हैं। जिस हिसाब से आज कल आबादी बढ़ रही है यदि उसमें विघ्न न पड़ा तो कोई १६३ वर्ष में समस्त संसार की जन-संख्या ५९९४० लाख हो जायगी। उस समय (२०७२ ई० में) मनुष्यों के आराम से रहने के लिए पृथ्वी में काफ़ी जगह न रहेगी। तब मालूम नहीं यूरोपियन लोग आराम से रहने के लिए किस उपाय का अवलम्बन करेंगे। क्योंकि यह हिसाब उन्हीं का लगाया हुआ है।

९—भोजन और पाचन।

दुनिया में सभी लोग नित्य भोजन करते और उसे पचाते हैं। पर अधिकाँश मनुष्य यह नहीं जानते कि कौनसा भोज्य पदार्थ कितनी देर में पचता है। अतएव उनसे अकसर कुपथ्य होजाया करता है। इससे जो हानियाँ होती हैं वे सब पर प्रकट हैं। इसलिए हम यहाँ पर कुछ मुख्य मुख्य भोज्य पदार्थों के नाम और उनके पचने का समय लिखते हैं:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम।		समय। घ० मि०
गेहूँ की रोटी	...	३ ३०
जौ की रोटी	...	२ ०
मटर ...	...	२ ३०
चावल ...	...	१ ०
साबूदाना ...	...	१ ३५
आलू ...	...	२ ३०
गोभी ...	...	४ ३०
सेब ...	...	१ ३०
गुठलीदार फल	...	६ ०
सुपारी ...	...	५ ०
दूध (कच्चा)	...	२ १५
दूध (पक्का)	...	२ ०
घी ...	...	३ ३०
दही ...	...	२ ४५
पनीर ...	...	३ ३०

१०—श्रीयुत मुलकराज सोई।

सरस्वती के पाठकों को स्मरण होगा कि पिछले साल हमने "देशहितैषियों के ध्यान देने योग्य बात" शीर्षक लेख लिखकर अमरीका की आरेगन रियासत के कृषि-कालिज से शिक्षा पाये हुए तीन भारतीय युवकों का परिचय दिया था। उनमें से श्रीसोहनलाल रवि बड़ौदा रियासत में २५०) रुपये मासिक वेतन पर काम कर रहे हैं। दूसरे श्रीपालासिंह जी ग्वालियर रियासत में इतनेही वेतन पर रासायनिक तथा खान-संबन्धी कार्य्यालय में काम करते हैं। तीसरे महाशय रशीद जी अपना स्वतन्त्र कारख़ाना चलाने के विचार में हैं।

उसी कारवालिस-कृषि-कालिज से एक और भारतीय नवयुवक इस साल अपना अध्ययन समाप्त कर देश लौटनेवाले हैं। आपका नाम श्रीमुलकराज सोई है। आपका घर पंजाब में है। इलेक्ट्रिक इञ्जिनियरिङ्ग में आपने डिग्री हासिल की है। बड़े होनहार नौजवान हैं। विद्युत्-संबन्धी जो कल-कारख़ाने चलाये जा सकते हैं उनका बहुत अच्छा ज्ञान आपने प्राप्त किया है। भारत में इस समय बिजली के रहस्यों को जानने तथा उनको काम में लानेवाले विद्वानों की आवश्यकता है। दिन प्रति दिन नये नये काम खुलते जाते हैं। आशा है कि देश-हितैषी धनी पुरुष श्रीमुलकराज सोईजी की योग्यता से लाभ उठाकर कोई बिजली का कारख़ाना खोलने का यत्न करेंगे।

सत्यदेव (अमरीका)

पण्डित शङ्कर दाजी शास्त्री पदे।

आज हम जिस स्वर्गवासी सज्जन का चरित्र पाठकों की भेंट करना चाहते हैं वे भारतवासियों के श्रद्धास्पद और पूज्य थे। आपने आयुर्वेद के कितनेही प्रचण्ड विद्वान् देखे होंगे; वैद्यक के व्यवसाय से मालामाल होकर कितनों ही को गुलछर्रे उड़ाते देखा होगा; किन्तु जब आप विचारेंगे कि देश की ऐसी गिरी दशा में—अपने आयुर्वेद पर चारों तरफ़ से चढ़ाइयाँ होती रहने के विकट प्रसङ्ग में,—देशी वैद्यों के ऊपर से लोगों का विश्वास उठते जाने के खेद-जनक अवसर में—ऐसा कौन वीर था जिसने आयुर्वेद के उद्धार का बीड़ा उठाया; जिसने अपने पुरुषार्थ, प्रयत्न, खोज और परिश्रम से दिखा देना चाहा कि आज भी हमारा आयुर्वेद वही है जिससे संसार के सब वैद्यक निकले हैं; और आज भी जिसके सामने सब वैद्यविद्यायें हाथ जोड़कर शिष्यभाव से खड़ी हो सकती हैं, तब आपके मुँह से निकल पड़ेगा कि वह महाराष्ट्र-वीर शङ्कर दाजी शास्त्री पदे ही था। यद्यपि पदे शास्त्री इधर पाँच सात वर्षों से ही हिन्दी पाठकों के सामने आने लगे थे, तथापि इतनी अवधि में ही हिन्दीवालों के वे एक प्रकार सुहृद् हो गये थे। धार्मिक आन्दोलन, वैद्यक-सम्मेलन, आयुर्वेद-विद्या-पीठ की स्थापना, गुजराती, मराठी और हिन्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

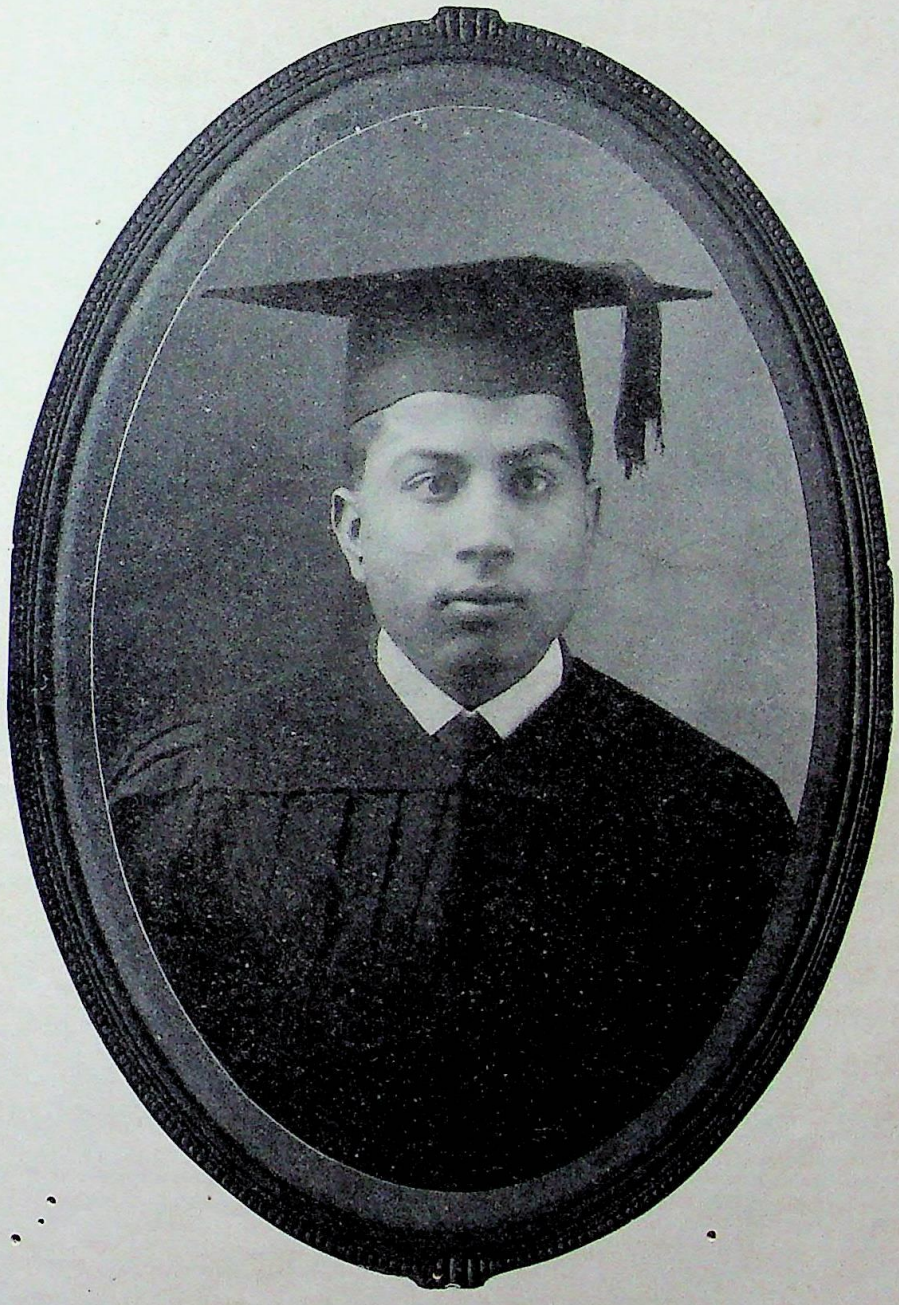

श्रीमुलकराज सोई।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की घनिष्ठता बढ़ाने के लिए त्रैभाषी भारतधर्मपत्र चलाना, हिन्दी पाठकों के हाथ में "सद्वैद्य-कौस्तुभ" रख देना, आदि कार्यों से हिन्दीवालों ने उन्हें और उन्होंने हिन्दीवालों को अपना बना लिया था। शङ्कर शास्त्री की जीवनी अध्यवसायशील, कर्मनिष्ठ और व्यवहार-दक्ष बनने की इच्छा रखनेवाले युवकों के लिए बहुत ही मनन करने योग्य है। किन्तु प्रथम तो हम उनकी पूरी कार्यावली के जानकार नहीं हैं, और जितनी हम जानते हैं उसे भी विस्तृत रूप से लिखने के लिए यहाँ स्थान नहीं है, इसलिए हम संक्षेप में उनके कार्यों का आभास मात्र यहाँ देते हैं।

पण्डित शङ्कर दाजी शास्त्री पदे के पूर्व-पुरुष पूना ज़िले के नारायण गाँव में रहते थे; किन्तु इनके पिता श्रीयुक्त दाजी शास्त्री जोशी सकुटुम्ब बम्बई में आकर रहे थे और वहाँ उन्होंने अपनी ज्योतिष-विद्या के प्रभाव से बड़े बड़े लोगों को अपना लिया था और खूब नाम तथा धन भी कमाया था। शङ्कर शास्त्री जी का जन्म बम्बई में ही चैत्र कृष्ण १० (महाराष्ट्रों के हिसाब से फाल्गुन कृष्ण १०) सं० १९२३ तथा शके १७८८ में हुआ था। महाराष्ट्र ब्राह्मणों की कहाड़े, कोंकणस्थ, देशस्थ आदि शाखाओं में से इनका ख़ानदान देशस्थ शुक्ल-यजुर्वेदी है; और पदे इनके ख़ानदान का उपपद अथवा आस्पद है। देशस्थ ब्राह्मण अकसर शान्त, निष्कपट, धार्मिक और साधुवृत्ति के होते हैं; ये गुण इनमें पूर्ण रूप से विद्यमान थे। इनके सिवा व्यवहार में और जिन गुणों की आवश्यकता होती है उनसे भी आप ख़ाली न थे। आप अपने पिता के मँझले पुत्र हैं; ज्येष्ठ बन्धु ज्योतिर्भूषण पं० रामकृष्ण जोशी इस समय बम्बई में विद्यमान हैं और वहाँ के नामी तथा प्रतिष्ठित ज्योतिषी समझे जाते हैं। छोटे भाई दिवाकर राव का कई वर्ष हुए परलोकवास हो गया। उन्होंने छोटी अवस्था में ही ज्योतिष में विलक्षण विज्ञता प्राप्त कर ली थी। शङ्कर शास्त्री अपने भाई का जैसे अदब करते थे वैसे ही छोटे भाई का उन पर उनका पूर्ण स्नेह था। अब भी जब कभी उनकी याद करते थे तब आँखें डबडबा आती थीं।

चरितनायक शङ्कर राव की विलक्षण बुद्धि का परिचय छोटी अवस्था से ही मिलने लगा था। आपने आठ वर्ष की उम्र में ही मराठी-शिक्षा पूर्ण कर भारतभानु, साहित्याचार्य, पं० गट्टूलाल जी से संस्कृत-साहित्य, न्याय, व्याकरण, मीमांसा आदि और पं० प्रभाकर दाजी वाईकर से वेद का अध्ययन करना शुरू किया। पाठशाला में आपका नम्बर सदा पहला रहता था। विद्यार्थि-दशा की छोटी अवस्था में ही आपके अन्तःकरण में सार्वजनिक कार्यों के बीज का अङ्कुर उगा था; तभी तो उसने पश्चिम अवस्था में एक विशाल वृक्ष का स्वरूप धारण किया। कभी कभी पाठशाला में ही अपने सहपाठियों तथा अन्य बालकों को एकत्र कर आप व्याख्यान दिया करते और बालकों के आपसी झगड़े आप ही निपटाते थे। यद्यपि बाल्यावस्था में आपका क्रोध शङ्कर के समान ही उग्र था तो भी सार्वजनिक कार्यों में आपने उसे दबाने का ऐसा सुन्दर अभ्यास किया था कि वयस्क होने पर आपने क्रोध को पी जाने और उद्दिष्ट हेतु सिद्ध कर लेने का बढ़िया हथ-कण्डा प्राप्त कर लिया था। बारह वर्ष की अवस्था में ही आपमें सार्वजनिक कार्यों का इतना जोश उत्पन्न हुआ कि अपने बड़े भाई और कुछ मित्रों के साथ "बालमित्र" नामक मासिक पत्र निकाल दिया। उसके ख़र्च के लिए किसी से याचना न कर अपने पुरुषार्थ और आत्मावलम्बन का परिचय देते हुए पिता से पाकेट ख़र्च के लिए मिलनेवाली रक़म से उसके पोस्टेज आदि फुटकर ख़र्च का निर्वाह करना शुरू किया और पत्र की छपाई के लिए जगदीश्वर प्रेस के मालिक श्रीयुक्त नाना सोहिनी से पहले ठहरा लिया कि छपाई के बदले हम आपके प्रूफ़ पढ़ दिया करेंगे। इसके पहले "विद्या-प्रकाश" में आपके लेख छपा करते थे। वे भी जारी रहे। इस प्रकार आप मराठी के लेखक समझे जाने लगे और बड़ौदे से (अब बम्बई से) निकलने वाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सयाजीविजय" पत्र के अधिकारी श्रीयुक्त दामोदर सांवलाराम ने आपको अपने पत्र का सम्पादन-भार लेने के लिए बुलाया। उस पत्र को अपने हाथ में लेकर आपने धीरे धीरे उसे ख़ूब प्रसिद्ध कर दिया। किन्तु पिता के घनिष्ठ प्रेम ने दो चार वर्षों में ही इन्हें फिर बम्बई में घसीट लिया। ये बम्बई तो चले आये; परन्तु इतने दिनों के अभ्यास और अनुशीलन ने इन्हें मराठी का अच्छा लेखक बना दिया। यद्यपि तब से आप किसी दूसरे मालिक के पत्र के सम्पादक नहीं हुए तो भी 'शङ्कर' 'पिनाकी' 'भ्रमर' आदि उपनामों से आपके लेख समय समय पर मराठी-पत्रों में प्रकाशित होते ही रहते थे। "नेटिव ओपीनियन" पत्र में "सृष्टि-सञ्चार" के नाम से आपके लेख कभी कभी प्रसिद्ध हुआ करते थे। चार पाँच वर्ष पहले भारतधर्म-महामण्डल और थियोसफ़ी सम्बन्धी आपके लेखों ने बड़ी धूम मचाई थी। सयाजीविजय छोड़ने के बाद कुछ दिनों तक आप जगदीश्वर प्रेस के व्यवस्थापक रहे और अपनी सुव्यवस्था से सबको प्रसन्न रखते हुए प्रेस की उन्नति की। इधर आप अपने पुरुषों के गाँव में एक आदर्श कृषि-क्षेत्र, एक अनाथालय और एक व्यावहारिक शिल्पशाला लेडी क्लार्क के नाम से—ताकि राज्य की ओर से कोई अड़ङ्गा न लगकर प्रजा को वास्तविक लाभ पहुँचाया जा सके—खोलने वाले थे; किन्तु अकाल में उनका शरीरांत हो जाने से उस कार्य की यहीं पर इतिश्री हो गई।

यद्यपि आप राजनैतिक मामलों में कभी प्रत्यक्ष रूप से शामिल न होते थे, तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि वे गूढ़ राजनैतिक विषयों को नहीं समझते थे। उनसे प्रत्यक्ष बात चीत करने वाले मनुष्य सहज ही समझ सकते थे कि राजनीति का भी उन्होंने कितना परिशीलन किया था।

यद्यपि आपके पितृ-कुल के लोग ज्योतिषी थे तथापि मातृ-कुल में वैद्यक का ख़ूब ज़ोर था और आपकी विदुषी माता भी व्यावहारिक वैद्यक विषयों को अच्छी तरह जानती थीं। इसके सिवा इनके पड़ौस में श्रीयुक्त भाऊ वैद्य कुलकर्णी नाम के एक नामी और अनुभवी वैद्य थे। उनका इन पर विशेष स्नेह रहता था और ये भी उनके पास बहुत बैठा करते थे। इस प्रकार आपके हृदय-पटल पर वैद्यक विषय का अच्छा प्रतिबिम्ब पड़ा। पिता ने भी इधर इनका झुकाव देखकर वैद्यक का अभ्यास करने की सलाह दी; उससे ये बहुत प्रसन्न हुए। कुलकर्णी महाशय शास्त्राध्ययन की अपेक्षा अनुभव बहुत ज़बरदस्त रखते थे। इसलिए आपने अनुभव-जन्य वैद्यक-ज्ञान उनसे प्राप्त किया और वैद्यक-शास्त्र के अभ्यास का दूसरा मार्ग निकाला। अनुभव और अध्ययन के बाद आपने "राजवैद्य" नामक वैद्यक का मराठी मासिकपत्र निकाला। पाँच छः वर्ष तक उसे चलाकर "आर्यभिषक्" पत्र निकाला और उसी में राजवैद्य को भी सम्मिलित कर दिया। यह मासिक पत्र बीस वर्ष से अब तक बराबर जारी है। ९ वर्ष हुए पिता के स्वर्गवासी होने पर इसे उनका स्मारक बना दिया। साथ ही बड़ौदा-नरेश के नाम से बम्बई में श्री सयाजी-औषधालय खोला। उक्त पत्र के द्वारा वैद्यक के प्रेमी मराठी पाठकों का बहुत ही उपकार हुआ है। आपके द्वारा वैद्यक की लग भग सौ पुस्तकें निकली हैं। यदि उनका हिन्दी-संस्करण हो जाय तो हिन्दीवालों का महान् उपकार हो। ज्यों ज्यों आपका अनुभव बढ़ता गया त्यों त्यों कई बार कोष्ठक बनाकर ग्रन्थ और अभ्यास के क्रम के अनुसार आपने दिखलाया कि किस ढंग से वैद्यक का अभ्यास करने से मनुष्य बढ़िया वैद्य हो सकता है। आपकी वैद्यक-विद्या का लाभ तीन चार वर्ष पहले हिन्दी पाठकों को नहीं मिलता था; इसलिए तीन वर्ष से आप हिन्दी में "सद्वैद्यकौस्तुभ" मासिक पत्र निकालने लगे थे। उसके द्वारा हिन्दी में पाँच सात पुस्तकें भी तैयार हो गई हैं। आपका वैद्यक-सम्बन्धी उद्योग इतने ही में समाप्त नहीं हुआ। तीन चार वर्ष हुए स्वतंत्र रूप से आपने नासिक में आयुर्वेद-विद्यापीठ (युनिवर्सिटी) की नींव डाली और नासिक तथा नागपुर में वैद्यक-विद्यालय भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुवद महोपाध्याय,-शंकर दाजी शास्त्री पदे ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोल दिये। नागपुर में विद्यालय के अतिरिक्त एक औषधालय है, जो इनके सुयोग्य शिष्य पं० लक्ष्मण बालकृष्ण फणशी करके द्वारा सुचारु रूप से परिचालित होता है। वैद्यक-शास्त्र की उन्नति के लिए आप भारत भर के वैद्यों का एक राष्ट्रीयसम्मेलन प्रति वर्ष करते थे और उसमें अनेक वैद्यक विषयों की आलोचना कराया करते थे। इस सम्मेलन के सिवा प्रति वर्ष एक प्रान्तिक सम्मेलन भी किया करते थे; उसकी व्यवस्था अभी केवल बम्बई प्रान्त ही हो सकी थी और उसके सिर्फ़ तीन अधिवेशन हो चुके थे। अन्य प्रान्तों में भी वे ऐसी व्यवस्था करने के उद्योग में थे। उनके सम्मेलन आदि कार्यों में महाराज बड़ौदा, महाराज कोल्हापुर, महाराज दरभङ्गा बराँव के रायबहादुर श्रीराघवेन्द्र-प्रसाद नारायणसिंह बम्बई के सेठ खेमराज श्रीकृष्णदास प्रभृति सज्जन पूरे सहायक थे। हिन्दी-प्रान्त में वैद्यक-सम्बन्धी उद्देशों का प्रचार करने में उन्हें सरदारांधीश श्रीमान् राघवेन्द्रप्रसाद नारायणसिंह बहादुर से बहुत सहायता मिलने की उम्मेद थी। इसलिए आप संयुक्त प्रान्त में "आर्यावर्त-शाखा" के नाम से प्रान्तिक कार्यालय खोलने, प्रयागराज-महौषधालय के नाम से औषधालय स्थापित करने तथा प्रयाग में एक वैद्यक-विद्यालय की नींव डालने और आगामी कार्तिक में काशी में तृतीय राष्ट्रीय वैद्यक-सम्मेलन की व्यवस्था करने के लिए प्रयाग पधारे थे। यहीं पर उनके हिन्दी-विभाग का सम्पूर्ण काम होता। यद्यपि बम्बई से चलते समय आपके बड़े भाई ने कहा था कि वैशाख तक तुम कहीं मत जाओ; इस समय तुम्हारी ग्रह-दशा ठीक नहीं है। परन्तु भाई को समझा बुझाकर कार्य आरम्भ करने के उत्साह में आप प्रयाग आही गये। सब व्यवस्था हो ही रही थी कि बीच में आप बीमार पड़े। वर्ष-प्रतिपदा के दिन कुछ पूजन आदि कर कार्यारम्भ किया। इधर उनकी बीमारी नहीं घटी और तेरहवें श्रीरामनौमी के पवित्र पर्व को आपका स्वर्ग-वास हो गया। बीमारी का तार पाकर आपके बड़े भाई ने लिखा था कि तुम्हें रामनौमी तक कष्ट है। हुआ भी वैसाही; रामनौमी के ही दिन आपका सब कष्टों से छुटकारा हुआ। आयुर्वेद का उद्धार करने वाला कर्मनिष्ठ ब्राह्मण अकाल में ही गङ्गा किनारे विलीन हो गया। भारतीय वैद्यकाकाश का एक चमकता हुआ तारा अस्त हुआ। हिन्दी वालों का एक प्रेमी नष्ट हुआ। सनातन-धर्म का एक कर्णधार जाता रहा।

शङ्कर शास्त्री ने वैद्यक-सम्बन्धी कार्यों के सिवा धार्मिक काम भी किये। आप ऐसे धार्मिक झगड़ों को कभी नहीं बढ़ने देते थे जिनसे देश की एकता और राष्ट्रीयत्व में धक्का पहुँचने का भय हो। बड़ौदा-नरेश को अपने अनुकूल करके आज कल के जगद्गुरु शंकराचार्य को गद्दी के सम्पूर्ण अधिकार दिलाना; स्वामी ज्ञानानन्दजी की दूषित संहिता को संहिताओं में शामिल न होने देने के लिए आन्दोलन कराना; मण्डल को मृतप्राय देखकर उसकी पुरानी बातों को भूल—धर्म प्रचार के लिए—उसके सहायक बन जाना; सनातन-भारतधर्म-महापरिषद तथा ब्राह्मण-परिषद का काम बराबर चलाते रहना; त्र्यम्बकेश्वर में नागा लोगों को नंगे स्नान करने देने के लिए कलेक्टर से हुक्म दिलवा देना; सिंहस्थ के आरम्भ से नासिक में ब्रह्मसत्र का जारी करा देना; इत्यादि ऐसे कार्य हैं जो शास्त्री जी की धर्मान्दोलन-प्रवृत्ति का पूरा प्रमाण देते हैं। वे सदा त्रिकाल सन्ध्या और शिवपूजन के अतिरिक्त हर महीने सत्यनारायण की कथा भी सुना करते थे। अपने धार्मिक सिद्धान्तों के अनुसार त्र्यम्बकेश्वर के भक्त होने पर भी वे किसी सम्प्रदाय को न कभी हेठा समझते थे और न द्वेष रखते थे।

उनका यत्न हिन्दी को राष्ट्र-भाषा और नागरी को भारत व्यापी बनाने का था। इसके लिए उन्होंने हज़ारों रुपये ख़र्च किये थे। कोई ११ वर्ष ये त्रैभाषी भारतधर्म पत्र निकालते रहे। ऐसे पत्र को यथेष्ट ग्राहक मिलना कठिन होता है; तो भी घाटे पर घाटा सहते और मुफ़्त में भी पत्र बाँटते हुए वे उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मरते दम तक चलाते ही गये। मरते समय भी वे अपने उद्देश को नहीं भूले। मरने के दो दिन पहले आपने लड़खड़ाती ज़बान से कहा—"हे अखिल भारत के निवासियो, मैंने भारत की भाषाओं को एक करने का प्रयत्न किया परन्तु.....अब उसे तुम सँभालो"।

तीस वर्ष पहले समयानुकूल मेलों और जलूसों की उपयोगिता लोगों को नहीं मालूम थी। शास्त्री जी ने आर्यमित्र और दशहरा-जलूस जैसे मेलों को स्थापित कर लोगों को दिखला दिया कि इनकी कितनी ज़रूरत है।

इन्होंने इतने उद्योग किये, इतने राजा महाराजाओं को सहायक बनाया परन्तु अपने लिए कुछ भी धन न कमाया। जो पाया, प्रायः सब सार्वजनिक कामों में लगा दिया। ग़रीबों पर आप की सदा दयादृष्टि रहती थी; उन्हें मुफ़्त दवा देते थे। आपका एकपत्नीव्रत भी प्रशंसनीय था। स्त्री की एक विशेष बीमारी के कारण, आप सांसारिक सुख से एक प्रकार विमुख से रहे; तो भी घर वालों के लाख आग्रह करने पर भी आपने दूसरा विवाह न किया और न कभी दाम्पत्य-प्रेम में कमी पाई गई। आपके यद्यपि सन्तान नहीं है; परन्तु आपका हृदय वात्सल्य-प्रेम से ख़ाली न था। छोटे भाई के एक मात्र पुत्र (यही पुत्र तीनों भाइयों के बीच में एक मात्र सन्तान है) मातृ-पितृ-हीन बाला साहब उर्फ़ गोविन्द राज दिनकर को ये पुत्र से भी अधिक चाहते थे; कभी अपने पास से अलग नहीं करते थे। भतीजे बाला साहब ने भी इन्हें सदा पिता के ही समान समझा है।

अब हमको पूछना है कि शास्त्रीजी के आरम्भ किये हुए कार्यों की क्या दशा होगी? जिन लोगों ने उनके जीते जी उनके कामों में सहायता पहुँचाई अथवा जिन लोगों की सहायता शास्त्री जीने की, क्या वही लोग उनके मरने पर सहायता पहुँचाकर उनके कामों को जारी न रक्खेंगे? हमारा ख़याल है कि उदारता और कृतज्ञता का अंकुर अब भी भारतवासियों के हृदय में विद्यमान है। अतएव शास्त्री जी के आरम्भ किये हुए कार्य उनके परिचित व्यक्तियों द्वारा—अधिक नहीं तो कम से कम पूर्व रूप में तो—अवश्य जारी रक्खे जावेंगे। बीमारी में वे स्वामी ज्ञानानंदजी, रा० ब० राघवप्रसाद, पं० लक्ष्मणराव, सेठ लक्ष्मीदास, पं० रामकृष्ण (भाई), नासिक के श्रीयुक्त गोपालराव विवलकर का नाम बारम्बार लेते रहे हैं और अधिक कुछ न कह सकने पर भी कहते थे कि "इन सबों की हमें ज़रूरत है; इनसे कहो, तुम सब संभालो।" यदि इन महाशयों के द्वारा उनकी अन्तिम इच्छा पूरी होगी तो उनके आत्मा को सुख होगा और देश का भी लाभ होगा। क्योंकि उनके कार्य अधिकांश में उनके निज के लिए नहीं बल्कि देश के लिए होते थे। हिन्दी में उनका 'सद्वैद्य-कौस्तुभ' अकेला वैद्यक का मासिक पत्र है और यह स्वर्गवासी बरावांधीश राय महावीरप्रसाद नारायणसिंह बहादुर के स्मरण में निकलता है। इसलिए उनके सुयोग्य पुत्र रा० ब० राघवप्रसाद नारायणसिंह बहादुर का यह दोहरा कर्तव्य है कि वे और नहीं तो उसके चलाने की अवश्य व्यवस्था करें। शास्त्री जी अपना कर्तव्य कर गये—मार्ग दिखला गये—अब उनके मित्रों और देश-हितैषियों का काम है कि उसे पूर्ण करें।

जगन्नाथप्रसाद शुक्ल।

मुंशी मरहूमीपरशाद।

१—मुंशी मरहूमीपरशाद
साकिन शहर फ़रेबाबाद,
सब गुण में ऐसे हैं पूरे
पूरे गुण हैं उन्हें अधूरे।

२—मा इनकी हिन्दू हैं भोली;
प्रिय है उनको हिन्दी बोली;
पर इनको है यह अभिमान
उर्दू है मादरी ज़बान।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३—इनके परदादों का पालन
करते रहे मुग़ल राज-गण ;
पल्टे में उस कृतज्ञता के
झाड़ें हैं ये शीन शड़ाके।

४—मुंशी का यह मत है भारी
"उर्दू में है विद्या सारी।
ख़ालिक़बारी और करीमा
हैं सारे इल्मों की सीमा"।

५—"हुआ न जिन्हें इल्म यह हासिल
वह प्रति-जन्म रहेंगे जाहिल।
पाये बिना स्वाद उर्दू का
चलता नहीं खंग अबरू का"

६—मुंशी जितना लिख सकते हैं ;
या घर के भीतर बकते हैं ;
उतने का आधा भी पढ़ना
है इनको हिन्दू-कुश चढ़ना।

७—अर्बी, तुर्की, ज़ंद, फ़ारसी
हैं अंधे की इन्हें आरसी ;
तोभी मुंशी अपना सानी
रखते नहीं एक भी ज्ञानी।

८—होकर अति देशी मरहूमी
उच्चारण करते हैं रूमी ;
चूर तलफ़ुज़ में रहते हैं ;
ब्रह्मा को बरमा कहते हैं।

९—मुंशी जी का यह भी मत है
"मुर्दा इल्म संसकीरत है।
त्यों भाखा भी है नाचीज़ ;
कुछ भी इनमें नहीं तमीज़"।

१०—है इनका विज्ञान निराला ;
धौला रंग इन्हें है काला
मदिरा दूध मांस व्यंजन है ;
देह अमर औ नश्वर मन है।

११—हैं अनेक-रूपी परशाद ;
कभी हकीम, कभी उस्ताद ;
कभी कचहरी में दिखते हैं ;
कभी रिहन-नामा लिखते हैं।

१२—इन्हें किसान दीन हैं प्यारे,
जिनके हैं ये खड़े सहारे।
साथी हैं उनके अनजाने
राजद्वारे तथा श्मशाने।

१३—फिर मुंशी हैं बड़े नजूमी—
सबने इनकी डाढ़ी चूमी—
पृथ्वी के उपाय दोनों कर
चढ़ जाते हैं निधड़क नभ पर।

१४—सभी रईस मित्र हैं इनके ;
कोई निशि के, कोई दिन के।
नाच, विवाह और उत्सव में
आगे हैं मुंशीजी सब में।

१५—निज मित्रों के हित के कारण,
त्रिविध रूप करते हैं धारण।
कभी राय ; फिर कभी दवाई ;
और कभी फिर मंत्र-फुँकाई।

१६—मरहूमी का देश धनी है
जहाँ स्वर्ण की भूमि बनी है ;
पर न रुची इनको वह माया ;
इससे पर-घर-भोजन भाया।

१७—पाकर पर-घर-भोजन स्वाद
कहते हैं "हम हैं आज़ाद"।
निज घरवालों से मुँह फेरे
हैं ये बने प्रेम के चेरे।

१८—चतुर नहीं ये ऐसे वैसे ;
जैसों में बनते हैं तैसे।
कभी ज्ञान कथते हैं भारी,
कभी सुनाते हैं ऐयारी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar -

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९—जो गुण जहाँ काम आता है,
वही प्रकाश वहाँ पाता है।
बैर मेल सब इनके कर है
बिगड़ै बनै इन्हीं से घर है।

२०—सुन कर इनकी कीर्त्ति अनूठी,
सत्य बहुत कुछ, थोड़ी झूठी,
मालगुज़ार एक अनुरागे,
मानो दिन दोनों के जागे।

२१—मुंशी ज्योंही हुए मुकद्दम,
किया दूर स्वामी का सब श्रम।
सभी काम इनके कर आया;
पलटी तुरत गाँव की काया।

२२—मरहूमी के गुण सब फैले;
पावन सरल हुए मन मैले।
गई शांति अब अशांति छाई;
बनी वस्तु निज सकल पराई।

२३—थे जो मालगुज़ार पुजारी
सो अब हुए महा व्यभिचारी।
चाकर, सखा, मित्र, गुरु, स्वामी
बने सभी कुछ मुंशी नामी।

२४—हुई वहाँ नीचों की भरती;
छिनी दीन दुखियों की धरती।
खा खा हुए मित्र मुंशी के
काल गाँववालों के जी के।

२५—अड्डा, अक्खड़ बनी अथाई;
जमे वहाँ कलवार क़साई।
चोरी, जुआ, उपद्रव नाना,
हुआ सहजपुर सबका थाना।

२६—छोटे बड़े बने सब छैला;
छल, विश्वास-घात अति फैला।
रहा न अंतर बुरे भले का;
हुआ हार पाखंड गले का।

२७—दुराचार बढ़ गया बहुतही;
बैरी बना पिता का सुतही।
घोर पाप सर्वत्र समाया;
गिरा धर्म का डिगता पाया।

२८—इस अधर्म के बीच अचानक
पड़ी गाँव में धार भयानक।
लुटी प्रजा परदेशी सारी;
बचे गाँव के कृषक दुखारी।

२९—मुंशी हुए लुप्त उस दिन से;
छूटे सब इस दारुण ऋण से।
अब कुछ दिन में विभव पुराना
सहज सहजपुर को है पाना।

३०—मुंशी-मालगुज़ार-कहानी,
अद्भुत-रस के रस में सानी,
ध्यान लगा जो नित्य पढ़ेगा
जग में उसका नाम बढ़ेगा

विद्यानाथ।

भवन-निर्माण-कौशल।

प्रथम अध्याय।

सनातन-सम्प्रदाय।

(१)

तक्षू त्वक्षू तनूकरणे। तनूकरणे तक्षः॥

जानना चाहिये कि आजकल संसार के सभ्य देशों में बस्ती से बाहर की भूमि पर जो दूर तक लहलहाती खेतियाँ नज़र आती हैं, प्राचीनकाल में यह बात न थी। एक वक़्त वह था कि इन सब खेतियों की जगह घने बन थे, और जहाँ आजकल हल में जुते हुए बैल चलते हैं, किसी वक़्त में वहाँ पर हाथी, शेर और दूसरे जंगली जानवर फिरा करते थे। भूगर्भ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्या के आचार्यों का मत है कि हरएक देश में, जहाँ अब सभ्यता पाई जाती है, एक वक़्त ऐसा हो चुका है जब वहाँ जंगलात की बहुतायत थी। खाने को दही दूध और फलफूल यथेच्छ मिलते थे और मकान वग़ैरा बनाने के लिये लकड़ी की कमी न थी। जिस आदमी को ज़मीन के ऊपर ही मकान बनाने की सामग्री मिल जावे उसे ज़मीन को खोद कर पत्थर लोहा वग़ैरा निकालने की क्या ज़रूरत? इससे अनुमान कर सकते हैं कि जिस समय पुराने ज़माने के गड़रिये जंगलों में चांद सूरज की महिमा अलापते होंगे उस समय उनकी स्त्रियाँ प्रायः काठ

किसी कारण विशेष से इस बार 'लकड़ी का मकान' वाला चित्र नहीं निकाला जा सका है। आगे की संख्या में निकालने की कोशिश की जावेगी।

की जगह को छोड़कर बाक़ी सब चीज़ें लकड़ी की हैं। जब आजकल सभ्य देशों में लकड़ी के मकानों की इतनी क़द्र होती है, तब पुराने ज़माने में जब लकड़ी और मिट्टी को छोड़कर और चीज़ें दुर्लभ थीं, ऐसे मकानों की कैसी कुछ इज़्ज़त होती होगी।

अच्छा तो जब मकान काठ के बने तो उनके बनाने वाले का नाम सिवा 'बढ़ई' के और कुछ हो ही नहीं सकता। यही वजह है कि क्या भारतवर्ष, क्या फ़ारिस, क्या यूनान, क्या रोम, ग़रज़ यह कि जहाँ कहीं प्राचीन आर्यसभ्यता का ज़ोर रहा वहाँ, हर जगह मकान बनाने वाले का नाम 'बढ़ई' रखा

किसी में पीछे। या यों कहो कि किसी मुल्क में जो समय पहले समाप्त हो गया किसी में पीछे। भारतवर्ष में मकान बनाने के लिये ईंट पत्थर चूने का रिवाज कब से शुरू हुआ, इस बात का उत्तर अभी पर देना कठिन है, मगर इसमें सन्देह नहीं कि ब्राह्मण और उपनिषद् ग्रन्थों के ज़माने में साधारण लोगों के घर प्रायः काठ के ही होते थे, और इन ग्रन्थों में मकानों के अवयवों या तरह तरह की इमारतों का जहाँ जहाँ उल्लेख हुआ है, वहाँ स्पष्ट मालूम होता है कि यह सब चीज़ें काठ की होती थीं। इसमें बुरा मानने की कोई बात नहीं है। ऐसा कौन मूर्ख होगा जो काठ के मिलते हुए चीज़ का मकान बनावे। जिन देशों या द्वीपों में लकड़ी की बहुतायत है और दूसरी तरह के मसाले आसानी से नहीं पहुँच सकते वहाँ आजकल भी काठ के ही मकान बनाये जाते हैं। नमूने के तौर पर लकड़ी के मकान का एक चित्र दिया जाता है। इस मकान में अंगीठी और रसोई

छालकर चार छः आने रोज़ कमालें, दूसरे वह जो अमीरों की सवारी के लिये रथ या बहली तैयार करें, या राजाओं के महलों में ख़ातिमबन्दी की छत बनाकर और उनके बैठने के लिये सिंहासन तैयार करके मनमानी मज़दूरी लें। पाणिनि के लेखे दोनों तरह के कारीगर 'तक्षन्' या 'तक्षक' हैं*, साधारण लोग उनमें जो चाहें भेद करलें।

किसी भाषा में योगरूढ़ शब्दों का अर्थ हमेशा एकही नहीं रहता। इसके उदाहरण आजकल के शब्दों में बहुतेरे मिलते हैं। इसके विस्तार की ज़रूरत नहीं है। यही हाल पुराने ज़माने में था। पहले पहल 'तक्षन्' उसको कहते थे जो लकड़ी को काटता और गढ़ता था, और उसके औज़ार को 'तक्षणी'। जब उसी आदमी को कारीगरी का शौक़ हुआ और उसने लकड़ी को काट और गढ़कर उस पर बेलबूटे बनाने शुरू किये तो इस तरह की

* तक्षू त्वक्षू तनूकरणे। तनूकरणे तक्षः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९—जो गुण जहाँ काम आता है,
वही प्रकाश वहाँ पाता है।
बैर मेल सब इनके कर है
बिगड़ै बनै इन्हीं से घर है।

२०—सुन कर इनकी कीर्त्ति अनूठी,
सत्य बहुत कुछ, थोड़ी झूठी,
मालगुज़ार एक अनुरागे,
मानो दिन दोनों के जागे।

२१—मुंशी ज्योंही हुए मुकद्दम,
किया दूर स्वामी का सब श्रम।

२७—दुराचार बढ़ गया बहुतही;
बैरी बना पिता का सुतही।
घोर पाप सर्वत्र समाया;
गिरा धर्म का डिगता पाया।

२८—इस अधर्म के बीच अचानक
पड़ी गाँव में धार भयानक।
लुटी प्रजा परदेशी सारी;
बचे गाँव के कृषक दुखारी।

२९—मुंशी हुए लुप्त उस दिन से;
छूटे सब इस दारुण ऋण से।
[illegible]

२३—थे जो मालगुज़ार पुजारी
सो अब हुए महा व्यभिचारी।
चाकर, सखा, मित्र, गुरु, स्वामी
बने सभी कुछ मुंशी नामी।

२४—हुई वहाँ नीचों की भरती;
छिनी दीन दुखियों की धरती।
खा खा हुए मित्र मुंशी के
काल गाँववालों के जी के।

२५—अड्डा, अक्खड़ बनी अथाई;
जमे वहाँ कलवार क़साई।
चोरी, जुआ, उपद्रव नाना,
हुआ सहजपुर सबका थाना।

२६—छोटे बड़े बने सब छैला;
छल, विश्वास-घात अति फैला।
रहा न अंतर बुरे भले का;
हुआ हार पाखंड गले का।

भवन-निर्माण-कौशल।

प्रथम अध्याय।

सनातन-सम्प्रदाय।

(१)

तक्षू त्वक्षू तनूकरणे। तनूकरणो तक्षः॥

जाना चाहिये कि आजकल संसार के सभ्य देशों में बस्ती से बाहर की भूमि पर जो दूर तक लहलहाती खेतियाँ नज़र आती हैं, प्राचीनकाल में यह बात न थी। एक वक़्त वह था कि इन सब खेतियों की जगह घने बन थे, और जहाँ आजकल हल में जुते हुए बैल चलते हैं, किसी वक़्त में वहाँ पर हाथी, शेर और दूसरे जंगली जानवर फिरा करते थे। भूगर्भ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्या के आचार्यों का मत है कि हरएक देश में, जहाँ अब सभ्यता पाई जाती है, एक वक़्त ऐसा हो चुका है जब वहाँ जंगलात की बहुतायत थी। खाने को दही दूध और फलफूल यथेच्छ मिलते थे और मकान वग़ैरा बनाने के लिये लकड़ी की कमी न थी। जिस आदमी को ज़मीन के ऊपर ही मकान बनाने की सामग्री मिल जावे उसे ज़मीन को खोद कर पत्थर लोहा वग़ैरा निकालने की क्या ज़रूरत? इससे अनुमान कर सकते हैं कि जिस समय पुराने ज़माने के गड़रिये जंगलों में चांद सूरज की महिमा अलापते होंगे उस समय उनकी स्त्रियाँ प्रायः काठ के घरों में बैठी हुई बालबच्चों के पालन अथवा अपने स्वामियों और देवताओं के भोजन की तैयारी में लगी रहती होंगी। यह कुछ भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यता पर आक्षेप नहीं है, क्योंकि जिस समय की यह बात है वह भारतवर्ष में ही नहीं बल्कि दुनिया के सब ही प्राचीन देशों में हो चुका है। फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि किसी देश में यह ज़माना पहले आया किसी में पीछे। या यों कहो कि किसी मुल्क में जो समय पहले समाप्त हो गया किसी में पीछे। भारतवर्ष में मकान बनाने के लिये ईंट पत्थर चूने का रिवाज कब से शुरू हुआ, इस बात का उत्तर यहीं पर देना कठिन है, मगर इसमें सन्देह नहीं कि ब्राह्मण और उपनिषद् ग्रन्थों के ज़माने में साधारण लोगों के घर प्रायः काठ के ही होते थे, और उन ग्रन्थों में मकानों के अवयवों या तरह तरह की सामग्री का जहाँ जहाँ उल्लेख हुआ है, वहाँ स्पष्ट यही मालूम होता है कि यह सब चीज़ें काठ की होती थीं। इसमें बुरा मानने की कोई बात नहीं है। ऐसा कौन मूर्ख होगा जो काठ के मिलते हुए चीज़ का मकान बनावे। जिन देशों या द्वीपों में लकड़ी की बहुतायत है और दूसरी तरह के मसाले आसानी से नहीं पहुँच सकते वहाँ आजकल भी काठ के ही मकान बनाये जाते हैं। नमूने के तौर पर लकड़ी के मकान का एक चित्र दिया जाता है। इस मकान में अंगीठी और रसोई की जगह को छोड़कर बाक़ी सब चीज़ें लकड़ी की हैं। जब आजकल सभ्य देशों में लकड़ी के मकानों की इतनी क़द्र होती है, तब पुराने ज़माने में जब लकड़ी और मिट्टी को छोड़कर और चीज़ें दुर्लभ थीं, ऐसे मकानों की कैसी कुछ इज़्ज़त होती होगी।

अच्छा तो जब मकान काठ के बने तो उनके बनाने वाले का नाम सिवा 'बढ़ई' के और कुछ हो ही नहीं सकता। यही वजह है कि क्या भारतवर्ष, क्या फ़ारिस, क्या यूनान, क्या रोम, ग़रज़ यह कि जहाँ कहीं प्राचीन आर्यसभ्यता का ज़ोर रहा वहाँ, हर जगह मकान बनाने वाले का नाम 'बढ़ई' रखा गया। जिस तरह हिन्दी 'बढ़ई' और संस्कृत 'वर्धकि' में कुछ फ़र्क़ नहीं है, उसी तरह प्राचीन संस्कृत शब्द 'तक्षन्' और प्राचीन यूनानी शब्द 'टॅकनस' में भी कोई अंतर नहीं है। दोनों का हिन्दी पर्याय 'बढ़ई' ही है। बढ़ई भी कई तरह के होते हैं, एक वह जो जंगल की लकड़ी काटकर लोगों की रसोई में पहुँचावें या चारपाइयों के पट्टी-पाये छील छालकर चार छः आने रोज़ कमालें, दूसरे वह जो अमीरों की सवारी के लिये रथ या बहली तैयार करें, या राजाओं के महलों में ख़ातिमबन्दी की छत बनाकर और उनके बैठने के लिये सिंहासन तैयार करके मनमानी मज़दूरी लें। पाणिनि के लेखे दोनों तरह के कारीगर 'तक्षन्' या 'तक्षक' हैं*, साधारण लोग उनमें जो चाहें भेद करलें।

किसी भाषा में योगरूढ़ शब्दों का अर्थ हमेशा एकही नहीं रहता। इसके उदाहरण आजकल के शब्दों में बहुतेरे मिलते हैं। इसके विस्तार की ज़रूरत नहीं है। यही हाल पुराने ज़माने में था। पहले पहल 'तक्षन्' उसको कहते थे जो लकड़ी को काटता और गढ़ता था, और उसके औज़ार को 'तक्षणी'। जब उसी आदमी को कारीगरी का शौक़ हुआ और उसने लकड़ी को काट और गढ़कर उस पर बेलबूटे बनाने शुरू किये तो इस तरह की

* तक्षू त्वक्षू तनूकरणे। तनूकरणे तक्षः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारीगरी का नाम 'तक्षण' पड़ गया। इस तरह एक वक्त ऐसा आया कि लकड़ी के उत्तम कारीगरों का नाम 'तक्षन्' निश्चित हो गया। सच पूछो तो पुराने वक्त के तक्षकों ने अपने काम में अच्छी दक्षता प्राप्त करली थी। यहाँ तक कि जंगल में लकड़ी का पूरा मकान बनाकर फिर उसके अवयवों को खोल डालते थे और नदियों में बहाकर ठिकाने पर ले जाते और फिर सब टुकड़ों को जोड़कर मकान खड़ा कर देते थे। ये लोग अपने काम में ऐसे निपुण थे कि इनकी बदौलत देवताओं को भी 'त्वष्टृ' और 'तक्षन्' की उपाधि मिली। यों तो विश्वकर्मा शिल्पविद्या के सब विभागों में पारगामी थे, मगर उनका नाम और इज़्ज़त प्रायः देवताओं के विमान और मकान बनाने की वजह से ही हुई और इसी वजह से उनका नाम 'देववर्धकि' वग़ैरा रखा गया*। रहे मामूली बढ़ई सो उनके लिये यौगिक शब्द 'तक्षा'—'वर्धकिः'—'त्वष्टा'—'रथकारः'—'काष्ठतट'—'ग्रामतक्षः'—'कौटतक्षः'—'रथकृत्'—वग़ैरा काफ़ी समझे गये।

जो हाल प्राचीन संस्कृत भाषा का था वही प्राचीन यूनानी भाषा का रहा। अर्थात् यूनानी में भी 'टॅक्नस्' के वही अर्थ रहे जो संस्कृत में। जो नाम पहले लकड़हारे का था वह बदल कर रथ और मकान बनाने वाले का हो गया। जब तक लकड़ी के मकानों का रिवाज रहा तब तक दोनों देशों में इन शब्दों का यही अर्थ रहा। फिर देखना चाहिये कि फ़ारसी में राजा के आसन को 'तख़्त' कहते हैं। उसी को पुरानी फ़ारसी में 'थ्वख़्ष्ट' कहते थे, जिसका यौगिक पर्याय संस्कृत में 'त्वष्टृ' है।

जो बातें ऊपर लिखी गई हैं वह आजकल की या हज़ार डेढ़ हज़ार बरस की बातें नहीं हैं। इन बातों को कई हज़ार बरस बीत गये। समय के फेर को देखना चाहिये! काठ के मकानों का रिवाज बन्द होने के बाद जिस शब्द का प्रयोग यूनान और रोम में भवन-निर्माण कौशल के अर्थ में होने लगा, उसी शब्द का प्रयोग भारतवर्ष में रूढार्थ को छोड़ कर यौगिक रह गया। यूनान का 'टॅक्नस' बढ़ते बढ़ते मीर इमारत हो गया, भारतवर्ष के 'तक्षा' विश्वकर्मा के पद से गिरकर 'बाढ़ी' ही रह गए।

(२)

इसकी क्या वजह है?

इसकी वजह यह है कि और मुल्कों में ज़ातपात का झगड़ा न था। भारतवर्ष में इन बातों का विचार मुद्दत से चला आता है। दूसरे मुल्कों में जो कारीगर अपने काम में चतुर होता था वही बढ़ते बढ़ते तत्सम्बन्धी विद्या का आचार्य हो जाता था और साधारण लोग उसकी वैसी ही इज़्ज़त करते थे जैसी अन्य विद्या के आचार्य की। इस तरह वह आदमी अपने शिल्प में अत्यन्त निपुण होने के सिवा और लोगों को भी उस हुनर में पारगामी बना देता था। दूसरी बात यह थी कि किसी कारीगर के लिये यह बात न थी कि अपने पेशे के सिवा दूसरा पेशा न सीखे। भारतवर्ष में मामला बिलकुल इसके बरअक्स था। यहाँ का कारीगर चाहे कैसा ही अच्छा हो, जब तक ब्राह्मण देवता बैठकर अपनी मीन मेष न कर लेंगे तब तक क्या मजाल जो मकान बन जावे। ख़ैर, इसका भी डर नहीं, हर एक शुभ काम के आरम्भ में ब्राह्मणों की आशीस और देवताओं की सहायता मांग लेना अच्छी ही बात है। मगर ब्राह्मण देवता ख़ाली आशीस देकर क्योंकर रह जाते? मज़ा तो यह था कि चाहे विप्रजी यह भी न जानते हों कि स्तम्भ का कौन सिरा नीचे और कौन ऊपर होना चाहिये, मगर जिस वक्त वह यजमान को अपने भवन-निर्माण-कौशल का परिचय दे रहे हों उस वक्त बेचारा शिल्पी पास भी न फटकने पावे!

रत्नोपरि शिलां कृत्वा सर्वबीजसमन्विताम्।
चतुर्भिर्ब्राह्मणः स्तम्भं कारयित्वा सुपूजितम्॥

---

* विश्वकर्मा पुनस्त्वष्टा विश्वकृद्देववर्धकिः। (हेमचन्द्र कोश)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुक्लाम्बरधरः शिल्पिरहितो वेदपारगः ।
स्थापितं विन्यसेत् तद्वत् सर्वौषधिसमन्वितम् ॥

ठीक तो है! अगर शिल्पी मौजूद हो तो उसे निम्नोक्त शिल्पशास्त्र का मर्म न मालूम हो जावे! जब शिल्परहित ब्राह्मण शिल्पिरहित भी हो जावेंगे तब सम्भव है कि स्तम्भादि के खड़ा करने में कुछ दिक़्क़त हो। मालूम होता है कि अगले ज़माने में कभी कभी इस तरह से काम बिगड़ भी जाता था, और इसका दोष वेदपारगजी पर नहीं, बल्कि—

स्तम्भे स्कन्धच्युते कुम्भे शिरो रोगं विनिर्दिशेत् ।
कुम्भापहारे सर्वस्य कुलस्यापि क्षयो भवेत् ॥
मृत्युः स्थानच्युते कुम्भे भग्ने बन्धं विदुर्बुधाः ।
करसंख्याविनाशे तु नाशं गृहपतेर्विदुः ॥

वाह वाह, भूले ब्राह्मन मरे जिजमान! ग़रज़ यह कि हर एक काम में टाँग अड़ाने और अपनी समानी श्रेणियों के आदमियों को ख़ास ख़ास कामों के लिये मजबूर करने की वजह से ब्राह्मणों को जो कुछ हानि भारतवर्ष के कलाकौशल को पहुँचाई है उसका हाल सब लोगों को मालूम नहीं है। भारतवर्ष में अगर कोई उच्चवर्ण का आदमी किसी शिल्प का शौक़ करता तो वह पतित हो जाता, मगर दूसरे मुल्कों में बड़े बड़े प्रतिष्ठित आदमियों ने अनेक शिल्पों का शौक़ करके अपने देश के कारीगरों का गौरव बढ़ाया, और सब तरह के शिल्पों को उन्नति दी। इन सब बातों का नतीजा यह हुआ कि भारतवर्ष के बढ़ई को सिवा अपने बापदादे की तरह आरी रुखानी चलाने के कुछ काम न आया। यह ठीक है कि जो काम वह करता था जल्दी और साफ़ करता था, मगर नई नई बातें निकालने की अक्ल जो प्रायः उच्चवर्ण के धनसमन्न लोगों का हिस्सा होती है, उस ग़रीब भूखे शूद्र में कहाँ? अगर भारतवर्ष के ब्राह्मणों में से कोई व्यक्ति हिम्मत करके—विश्वकर्मा की तरह*—कोई शिल्प अच्छी तरह सीखता, और फिर उसपर निबन्ध लिखता तो क्या मजाल जो उस शिल्प की उन्नति न होती और विदेशी शब्द Architect† की तरह संस्कृत में भी कोई विशिष्ट शब्द न बन जाता।

हमें ख़याल है कि हमारी इन बातों को पढ़कर कोई कोई महाशय नाराज़ होंगे और कहेंगे कि जब संस्कृत में Architect का पर्याय 'स्थपति' मौजूद है तो फिर इस पर्याय का अभाव बतलाना व्यर्थ तर्कनामात्र है। इसलिये उचित मालूम होता है कि इस 'स्थपति' शब्द की कुछ मीमांसा यहाँ पर कर दी जावे।

(३)

'स्थपतिः'

वर्धकि से तक्षा हुए त्वष्टा पाया नाम ।
पद विसुकर्मा का मिला रच लकड़ी के धाम ॥
निबटे सारे वृक्ष जब नष्ट हुआ निज काज ।
वासी गिरी तड़ाग में रखी टंक ने लाज ॥
पत्थर चूने ईंट को हमने दिया रिवाज ।
तक्षवृत्ति छोड़ी हुए राजों के सिरताज ॥

---

* बृहस्पति की बहन अष्टम वसु को, जिसका नाम प्रभास था, ब्याही गई थी। उनका पुत्र बहुत बुद्धिमान् और शिल्पशास्त्र का प्रजापति हुआ। उसने हज़ारों तरह के शिल्प चलाए; तरह तरह के आभूषण बनाने की तरकीबें निकालीं; बड़े बड़े महल, बाग़, हौज़, तालाब, कुए वग़ैरा बनाए; देवताओं की सवारी के लिये अद्भुत विमान तैयार किये। ग़रज़ तीनों लोकों में कोई चीज़ ऐसी नहीं थी जिसमें हाथ की कारीगरी की जरूरत हो और उसने तैयार न की हो। इसी वजह से वह महा मुनि जो प्रभासवसु का पुत्र था, और जिसका दर्जा ब्राह्मणों से किसी तरह कम न था, शिल्पसमुदाय में कौशल प्राप्त करने की वजह से विश्वकर्मा के नाम से आजतक मशहूर है। जिस तरह प्रभासपुत्र देवताओं का विश्वकर्मा है उसी तरह मय नाम असुर को दैत्यों का विश्वकर्मा कहते हैं। देवताओं के मकान बनाने की वजह से विश्वकर्मा का नाम 'देववर्द्धकि' पड़ गया।

† Archi प्रधान, Tecton तक्षन्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीस पटक पंडित रहे बीते बरस हजार।
भेद न पाया शिल्प का 'विद्या' गई नकार॥
भूल गए तद्धित 'इनि-ख' प्रत्यय दो विद्वान्।
"हम कुलीन तुमहो कुली" कहकर किया गुमान॥
फल पाओ, स्थापत्य का, कर, द्विजवर, अपमान।
मीन मेष कितनी करो यों नहिं बनै मकान॥
कहो 'बढ़इ' चाहो 'थवई' हम हैं सदा सुनाम।
विसुकर्मा की हमहि पर पगड़ी सजै ललाम॥

जानना चाहिए कि स्थपति शब्द की व्युत्पत्ति दो तरह से बतलाई गई है। (१) 'स्था' धातु पर 'क' प्रत्यय लगाने से 'स्थः' शब्द बना, जिसका अर्थ है 'अपने धर्म में स्थित' अर्थात् 'सन्त', इसलिये जो 'सन्तों' का पति अर्थात् नायक वही 'स्थपति' यानी महात्मा। (२) 'स्था' धातु पर 'क' प्रत्यय लगाने से बना 'स्थः' जिसका अर्थ है 'स्थान', उसका जो पति सो ही 'स्थपति', इससे स्थपति शब्द का यौगिक अर्थ 'अधिपति', 'प्रधान', 'मुख्य', 'अफ़सर' इत्यादि सिद्ध हुआ। यहाँ पर पहली व्युत्पत्ति से कोई मतलब नहीं, मगर दूसरी व्युत्पत्ति पर विचार करना ज़रूरी है।

प्राचीन काल में स्थपति शब्द यौगिक समझा जाता था या रूढ, इस बात का उत्तर प्राचीन ग्रन्थों के देखने से ही दिया जा सकता है। यह ठीक है कि किसी शब्द का किसी ख़ास अर्थ में प्रयोग होना यह साबित नहीं करता है कि उस शब्द का किसी दूसरे अर्थ में प्रयोग नहीं होता था, मगर याद रखना चाहिये कि ऐतिहासिक विषयों में बग़ैर प्रमाण के किसी बात को वास्तविक मान लेना अक़लमन्दी की बात नहीं है। ऐसे विषयों में अच्छा प्रमाण न मिलने पर हम किसी क़दर अनुमान से काम ले सकते हैं, मगर जहाँ अनुमान से काम लिया जावे वहाँ आग्रह करना पंडितों का काम नहीं है। सारांश यह कि अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिये जो सर्वसम्मत प्रमाण हम देते हैं उनपर विचार कीजिये, अगर आप सर्वसम्मत प्रमाणों से हमारे पक्ष का खंडन कर सकें तो कीजिये, नहीं तो हमारी बात को निर्मूल न कहिये। ख़ैर। कात्यायन श्रौत सूत्र के देखने से मालूम होता है कि कात्यायन के समय में स्थपति शब्द का प्रयोग होता था। उस वक्त इस शब्द के जो अर्थ थे सो बतलाते हैं। वेदोक्त यज्ञ करने के अधिकारियों की मीमांसा करते हुए कात्यायन जी कहते हैं "निषादस्थपतिर्गवेधुकेऽधिकृतः" इस पर कर्काचार्य टीका करते वक्त कहते हैं कि यहाँ पर स्थपति शब्द का अर्थ अधिपति, अर्थात् 'राजा' या 'सरदार' है। इससे मालूम होता है कि पुराने ज़माने में स्थपति शब्द का प्रयोग षष्ठी समास में 'अधिपति' के अर्थ में होता था। एक दूसरे मौक़े पर कात्यायन ने यह सूत्र लिखा है, "स्थपतिरित्येनं ब्रूयुः" जिसका अर्थ यह है, 'इस (आदमी) को (लोग) स्थपति कहते हैं'। इससे सिद्ध होता है कि यहाँ पर 'स्थपति' शब्द रूढ या योग रूढ है। श्रौतसूत्र के जिस अध्याय में यह सूत्र आया है उसको पढ़ने से मालूम होता है, कि स्थपति उस ब्राह्मण को कहते थे जो बृहस्पति का यज्ञ कराता था। उसको स्थपति क्यों कहते थे? इसका उत्तर इस सूत्र से मिलता है, "सराजानो ब्राह्मणा यं पुरस्कुर्वीरन्त्स एतेन यजते" अर्थात् 'जिस (व्यक्ति) को राजा और ब्राह्मण मिलकर उसके धर्मस्थापकत्व के कारण अगुआ बनावें वह इस (बृहस्पति) यज्ञ को करे'। फिर आगे चलकर इसी अध्याय में 'गोसव' का बयान है, वहाँ पर ये सूत्र आए हैं, "सराजानो विशो यं पुरस्कुर्वीरन्त्स एतेन यजेत", "स्थपतिरित्येनं ब्रूयुः", अर्थात् 'जिस (व्यक्ति) को राजा और प्रजा मिलकर उसके मुख्यत्व के कारण अगुआ बनावें वह इस (गोसव नामक) यज्ञ को करे', 'उसको लोग स्थपति कहते हैं।" इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि श्रौत ग्रन्थों में स्थपति शब्द जब स्वतंत्र बोला जाता था, तब उसका योग रूढ अर्थ होता था, और जिस व्यक्ति के लिए इस शब्द का प्रयोग होता था, वह शख़्स यज्ञ करने वालों का प्रतिनिधि होता था। जब कभी यज्ञ होता था उसी वक्त स्थपति चुना जाता था, यज्ञ समाप्त होते पर उसके स्थापत्य का भी अभाव हो जाता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप तमाम श्रौतग्रन्थ देख डालिये, कहीं स्थपति शब्द का अर्थ Architect नहीं मिलेगा।

अब श्रौत-ग्रन्थों को छोड़ कर स्मार्तग्रन्थों की तरफ़ ध्यान देना चाहिये। इन ग्रन्थों में भारतवर्ष की सामाजिक व्यवस्था और धर्मपालन की विधि का उल्लेख है। ब्राह्मणों के काम वेद पढ़ना पढ़ाना, यज्ञ करना कराना, दान देना और लेना, गृहस्थाश्रम के संस्कार करने और कराने, और राजा को सम्मति देना बतलाये गये हैं। क्षत्रियों के काम वेद पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, गृहस्थाश्रम के संस्कार करने, प्रजा की रक्षा करना, और शत्रुओं से लड़ना कहे गये हैं। वैश्यों के काम वेद पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, पशुओं की रक्षा करना, खेती करना, व्यापार और साहूकारी करना, और गृहस्थाश्रम के संस्कार करने स्थिर किये गये हैं। शूद्र के लिये सिर्फ़ एक ही काम बताया है यानी वह द्वेष-रहित होकर इन तीनों ही वर्णों की सेवा करे। इन चारों वर्णों के जो कर्म बतलाए गये हैं उनमें दस्तकारी को कहीं जगह नहीं दी गई है। मगर यह न समझना चाहिए कि पुराने ज़माने के लोग धर्मशास्त्र का कभी उल्लंघन नहीं करते थे, क्योंकि 'पौंश्चल्याच्चलचित्ताच्च नैस्नेह्याच्च स्वभावतः। रक्षिता यत्नतोऽपीह भर्तृष्वेवविकुर्वते' के अनुसार प्राचीन भारत में वर्णसंकरों की कमी न थी। दस्तकारी के काम इन वर्णसंकर जातियों के हिस्से में आये। धर्मशास्त्रों में वर्णसंकर जातियों के कामों का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है। मगर वहाँ भी स्थपति शब्द का किसी जगह प्रयोग नहीं हुआ। इससे सिद्ध है कि जिस ज़माने की सामाजिक अवस्था का उल्लेख धर्मशास्त्रों में है उस समय स्थपति का अर्थ Architect नहीं था।

महाभारत और रामायण संस्कृत के दो विख्यात महाकाव्य ग्रन्थ हैं, इनको शुरू से आख़िर तक पढ़ जाइये, स्थपति शब्द का प्रयोग Architect के अर्थ में कहीं भी न पाइयेगा। हाँ रामायण में 'स्थपति' शब्द का प्रयोग 'राजा' के अर्थ में ज़रूर हुआ है। इन दोनों महाकाव्यों में स्थापत्यसम्बन्धी बहुतेरी बातें हैं मगर हर जगह 'शिल्प' 'निर्माण', वग़ैरा शब्दों से काम लिया गया है, 'स्थपति' और 'स्थापत्य' का पता भी नहीं। कालिदास, बाण, दण्डी, भट्टि, भर्तृहरि, भवभूति, भारवि वग़ैरा पुराने कवियों के वाक्य शुरू से आख़िर तक पढ़ जाइये क्या मजाल जो Architect का पर्याय स्थपति मिल जावे।

अब यह प्रश्न उठता है कि Architect के अर्थ में स्थपति शब्द का प्रयोग कब और क्योंकर शुरू हुआ? हम इसका उत्तर इस तरह देते हैं।

यह पहले बतलाया गया है कि ब्राह्मणों ने धर्मशास्त्र बनाते वक्त भारतवासियों में जातिविभाग करके और वर्णसंकरों को नीच बनाकर उच्च वर्ण के लोगों को शिल्पव्यसन से रोका। अगरचे श्रौतग्रन्थों में वर्णसंकरों को भी यज्ञ वग़ैरा करने के कुछ कुछ अधिकार देकर उनकी कुछ इज़्ज़त क़ायम रक्खी गई है, मगर स्मार्तग्रन्थों में यह रही सही इज़्ज़त भी छीन ली गई। इसका असर यह हुआ कि कारीगरों ने ब्राह्मणों की बनाई हुई श्रेणियों को मंज़ूर करके अपनी बिरादरियाँ ऐसी क़ायम कर लीं कि ब्राह्मण भी उनमें दख़ल न दे सके। जिस तरह यूरोप में पादरियों के आक्षेप से अप्रसन्न होकर कारीगरों ने गुप्त श्रेणियाँ बना लीं, उसी तरह भारतवर्ष में भी शिल्पोपजीवि लोगों की श्रेणियाँ बन गईं। हर एक श्रेणी ने अपने परस्पर झगड़े निबटाने और अन्य-जातियों की तरफ़ से हानि पहुँचने से बचाने के लिये अपनी ही बिरादरी के मुख्य लोगों को पंच या चौधरी बना लिया। हर एक बिरादरी के चौधरी अलग होते थे और अपनी बिरादरी के लोगों पर उन चौधरियों का बड़ा अधिकार होता था। संस्कृत में इन चौधरियों को 'कुलश्रेष्ठी'* कहते थे। जिस तरह सामाजिक व्यवहारों में चौधरियों का आदर होता था उसी तरह व्यावसायिक विषयों में मुख्य कारीगर का हुक्म माना जाता था। जब कभी किसी को मकान बनवाना

* कारुः शिल्पी संहतैस्तैर्द्वयोः श्रेणिः सजातिभिः। कुलकः स्यात्कुलश्रेष्ठी मालाकारस्तु मालिकः॥ (अमरकोश)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या और कोई काम करना होता था तब वह शख़्स पेशे के कारीगरों के प्रतिनिधि को बुलाकर काम उसके सुपुर्द कर देता था। इस मुख्य कारीगर को उसके सहकारी सामान्य कारीगर 'थवइजी' कहा करते थे, जिस तरह आज कल के कारीगर अपने अफ़सर को 'मिस्त्रीजी' कहते हैं। इससे मालूम हुआ कि 'थवइ' या 'स्थपति' का असली अर्थ 'बढ़ई' या 'राज' नहीं है, बल्कि 'कारीगरों का प्रधान'। आहिस्ता आहिस्ता यह हुआ कि जिस तरह आज कल भलेमानस लोग हर एक बढ़ई और राज को मिस्त्री कहते हैं, उसी तरह उन दिनों के भले आदमी पहले हर एक बढ़ई को और फिर हर एक राज को 'थवइ' कहने लगे। ग़रज़ यह कि जिस शब्द 'स्थपति' का यौगिक अर्थ 'प्रधान', और योगरूढ़ अर्थ 'मुख्य कारीगर' था, उसी का रूढ़ार्थ पहले बढ़ई * और फिर राज हो गया और चूंकि बहुत दिन से मकान बनाने का काम राज लोगों के ही सुपुर्द किया जाता है, इसलिये 'स्थपति' शब्द का पर्याय आख़िरकार 'मकान बनाने वाला', अर्थात् 'मेमार' शब्द का यौगिक अर्थ, होगया।

मगर यह कब हुआ? सुनिए! न तो यह हुआ राजा जनक के वक्त में, न युधिष्ठिर के समय और न अशोक के राज में। शिल्प-सम्बन्ध में 'स्थपति' का प्रयोग प्रायशः शक जाति के राजाओं के वक्त में शुरू हुआ और ग़ालिबन राजा भोज के समय इस शब्द का पर्याय 'मकान बनाने वाला' समझा जाने लगा। देखिये, राजा भोज का समकालीन महाकवि माघ 'शिशुपाल वध' में लिखता है—

'निवेशयामासिथ हेलयोद्धृतं फणाभृतां छादनमेकमोकसः।
जगत्त्रयैकस्थपतिस्त्वमुच्चकैरहीश्वरस्तंभशिरःसु भूतलम्॥"

अर्थात् 'हे भगवन्! आप तीनों जगत् के मुख्य स्थपति हैं, इस पृथ्वी को, जो मानो सर्पों के घर की एक मात्र छत है और जिसको आपने (वराहावतार लेकर) बिना श्रम के उठालिया था, आपने शेषनाग रूपी स्तंभ के सिर पर बहुत ऊँचा स्थापित कर दिया है।

इससे सिद्ध होता है कि माघ कवि के वक्त में 'स्थपति' शब्द Architect का पर्याय ज़रूर था, मगर जब हम जानते हैं कि हिन्दी में 'थवइ' सिर्फ़ राज को कहते हैं, तब यह कहना पड़ता है कि जिस तरह आज कल छोटी छोटी रियासतों में कमांडर-इन-चीफ़ होते हैं वैसेही राजा भोज के वक्त में स्थपति भी होते होंगे। ख़ैर, कुछ ही हो, हमारे कहने का मतलब यह है कि पाणिनि के समय से लेकर भोज के समय तक संस्कृत में Architect शब्द का कोई यथार्थ पर्याय नहीं रहा। हाँ, भोज के बाद और मुसलमान बादशाहों के वक्त में संस्कृत-साहित्य में Architect का ठीक पर्याय 'स्थपति' बनगया। देखिए, मत्स्यपुराण में 'स्थपति' (Architect) के कैसे यथार्थ लक्षण बतलाए गए हैं—

"वास्तुविद्याविधानज्ञो लघुहस्तो जितश्रमः।
दीर्घदर्शी च शूरश्च स्थपतिः परिकीर्त्तितः॥"

अर्थात् "स्थपति उसको कहते हैं जो वास्तु-विद्या के क़ायदों को जानता हो, सुबुक कारीगर हो, महनत-पसन्द हो, बुद्धिमान हो और निर्भय हो।"

स्थपति शब्द की परिभाषा इससे अच्छी होनी मुशकिल है और जिस समय इस शब्द की यह परिभाषा की गई थी, उस वक्त हम समझते हैं कि भारतवर्ष में भवन-निर्माण-कौशल ने तरक़्क़ी भी बहुत अच्छी की होगी। प्राचीन और मध्यमकालीन भारतवर्ष के स्थपतिवर्ग ने स्थापत्यकला में कितना कौशल प्राप्त किया था, इसका हाल—इस जगह नहीं—किसी अगले अध्याय में बतलाया जावेगा। क्योंकि इस अध्याय में सिर्फ़ उन बातों पर बहस की गई है जो प्राचीन किताबों के देखने से मालूम हुई हैं, और इससे आगे जो कुछ कहा जावेगा वह हर एक देश की इमारतों की वर्तमान हालत देख कर और इतिहास-ग्रन्थों से उन इमारतों का वास्तविक हाल मालूम करके पाठकों के सामने पेश किया

* रथकृत् स्थपतिस्त्वष्टा काष्ठतट्टतक्षवर्द्धकी।
(हेमचन्द्रकोश)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जावेगा। उनको पढ़ कर और उन पर विचार करके पाठक गण ख़ुद जान लेंगे कि भारतवर्ष और अन्य-देशों में स्थापत्यविद्या की अवस्था समय समय पर कैसी रही है। भारतवर्ष के स्थापत्यकौशल का हाल शिल्पशास्त्र की उपलब्ध पोथियों को देख कर ठीक ठीक नहीं मालूम हो सकता, क्योंकि ये पोथियाँ ब्राह्मणों की लिखी हुई हैं, जो पूर्वोक्त जातीय पक्ष-पात के कारण न तो इस शास्त्र के सिद्धान्तों को जानतेही थे और न द्विज जातियों में इस शास्त्र के प्रचार की ज़रूरत ही समझते थे। संभव है कि इन पोथियों को पढ़ कर आज कल के लोगों में प्राचीन कलाकौशल के विषय में ग़लत ख़याल पैदा होजावें। इसलिये हम इन पोथियों का सारांश भी देना उचित नहीं समझते।

"व्याख्यातुमेव केचित्कुशलाः शास्त्रं प्रयोक्तुमलमन्ये।
उपनामयति करोऽन्नं रसांस्तु जिह्वैव जानाति॥"

उपनिवेशों की शासन-प्रणाली।

भारतवर्ष में राजनैतिक आन्दोलन करने वालों के आज कल कई दल हैं। उनमें से मुख्य वे हैं जो चाहते हैं कि कालान्तर में भारतवर्ष में भी वैसी ही शासन-प्रणाली हो जाय जैसी की इँगलिस्तान के उपनिवेशों (Colonies) में है। इस विचार के राजनैतिक आन्दोलन करने वालों का आदर्श उचित है या अनुचित, सुसाध्य है या दुःसाध्य, इससे हमें इस लेख में कोई प्रयोजन नहीं। और न अन्यान्य राजनैतिक आदर्श रखने वालों से इनका भेद दिख-लाने से ही यहाँ कोई प्रयोजन है। प्रयोजन है केवल उपनिवेशों की शासन-प्रणाली के वर्णन से। जब मुसलमान तुर्कों ने पूर्व में ज़ोर बाँधा और योरप पर आक्रमण करने लगे तब पाश्चात्य योरप के लोगों को व्यापार के लिए भूमध्यसागर का मार्ग छोड़कर एटलांटिक सागर की राह लेनी पड़ी। इन व्यापारियों ने बहुतेरे टापुओं और देशों का पता लगाया। इन्होंने वहाँ के निवासियों से पहले तो व्यापार आरंभ किया फिर क्रमशः उन स्थानों पर अपना आधिपत्य जमा बैठे। जिन स्थानों की आबो-हवा अपने अनुकूल देखी वहाँ बसने लग गये। धीरे धीरे अपने इष्ट मित्रों को भी वहाँ बुला लिया। इधर योरप में थोड़े ही दिनों बाद क्रिस्तान-मत-मतान्तरों के ऐसे झगड़े आरम्भ हुए कि कहीं कहीं तो पृथ्वी रक्त से लाल हो गई। बहुतेरे नरेशों ने भी इन्हीं विवादों में फँस कर प्रजा पर अत्याचार करना शुरू किया। निदान बहुतेरे दीन दुखी लोग इन कारणों से भी अपना देश छोड़ उपनिवेशों में जा पहुँचे। इँगलैंड, स्पेन, पुर्तगाल आदि सभी देशों ने अपने अपने छोटे मोटे उपनिवेश बनाये। जिस जिस देश के लोग जिन जिन उपनिवेशों में गये अपनी रीति-रवाज, आचार-विचार सभा-समाजें साथ लेते गये। इस लेख में अन्यान्य उपनिवेशों से कोई मतलब नहीं। हमें केवल इँगलिस्तान के उपनिवेशों से मतलब है—विशेष कर वहाँ की शासन-प्रणाली से—क्योंकि भारतवर्ष के अधिकांश राजनैतिक आन्दोलन करनेवालों की लालसा यही है कि भारतवर्ष में भी उपनिवेशों की भाँति शासन हो।

अन्य देशों की भाँति इँगलैंड ने भी पहले अपने उपनिवेशों को अपनी जायदाद समझा और उनका शासन भी तदनुकूल करना आरम्भ किया। परन्तु जब अमरीका के युनाइटेड् स्टेटस वाले उपनिवेश-वासी इँगलैंड का स्वार्थ-परायण और कठोर शासन न सह सके और बिगड़ कर स्वतन्त्र हो गये तब इँगलैंड की आँखें खुलीं और उसे विवश होकर अपने अन्यान्य उपनिवेशों की शासन-प्रणाली में परिवर्तन करना पड़ा। अब इँगलैंड अपने उपनि-वेशों के शासन में बड़ी-ही उदारता दिखाता है। उदारता क्या वस्तुतः उपनिवेश-वासियों को "स्व-राज्य" ही दे दिया है। इस उदारनीति का कारण केवल यही है कि यदि उनके साथ उद्दण्डता का व्यवहार किया जायगा तो अमरीका के यूनाइटेड स्टेट्स वालों की तरह कहीं और दूसरे उपनिवेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी न बिगड़ जायँ। अमरीका के स्वतन्त्र हो जाने पर भी इँगलैंड की अक्ल ठिकाने न आती यदि अन्यान्य आन्दोलनों के कारण, जो इँगलैंड में हुए, इँगलैंड के हृद्गतभाव भी न बदल गये होते। अमरीका के स्वतन्त्र हो जाने के समय जो इँगलैंड की दशा थी उसमें और अब जो उसकी दशा है उसमें ज़मीन आसमान का फ़र्क़ है। उस समय से इँगलैंड ने अपना सर्वाङ्ग सुधार किया है। सच तो यह है कि जिन भावों ने इँगलैंड की धार्म्मिक, सामाजिक और पार्ल्यामेंट आदि राजनैतिक दशा को सुधारा उन्हीं भावों और विचारों ने उपनिवेशवासियों को स्वराज्य के अधिकार भी दिये।

हम पहले कह चुके हैं कि अमरीका में यूनाइटेड स्टेटस तो स्वतन्त्र हो चुका था। सन् १८३७ में कनाडा में भी गड़बड़ शुरू हुई। कनाडा के दक्षिणीय भाग में प्रायः फरासीसी लोग रहते थे। वहाँ की गवर्नमेंट का संगठन पहले इस प्रकार था। एक गवर्नर और उसकी एगज़िक्यूटिव कौन्सिल (Executive Council) अर्थात् शासक-सभा शासन-विभाग का काम करती थी। और एक लेजिसलेटिव कौन्सिल (Legislative Council) अर्थात् क़ानून बनाने वाली सभा थी, जो क़ानूनी काम करती थी। उसके दो भाग थे। एक भाग में तो सर्कार की ओर से नामज़द किये हुए मेम्बर थे और दूसरे में प्रजा के चुने हुए। ये दोनों मिलकर क़ानून बनाया करते थे। गवर्नर साहब और उनकी शासक सभा (Executive Council) ने लोकमत की परवा न करके मनमानी करना शुरू किया। सर्कारी नौकरों की तनख़्वाहें और शासन का ख़र्च, जो प्रजा के प्रतिनिधि नियत करते, उसका विचार ही न किया जाता। निदान वहाँ भी वही सामान एकत्र होने लग गये जिन्होंने यूनाइटेड स्टेट्स के लोगों को बाग़ी किया था। यहाँ भी वही दशा हुई जो लोकमत का निरन्तर निरादर करने से हुआ करती है। कनाडा वाले बिगड़ गये और बलवा हो गया। बलवा तो दबा दिया गया, पर इँगलैंड को एक और सबक़ मिला। उपनिवेशवासियों के साथ वह बर्ताव न किया गया जो सन् १७७६ में किया जाता। इँगलैंड से महारानी की ओर से एक कमीशन इस बात का पता लगाने के लिए नियुक्त हुआ कि कनाडा-निवासियों को क्या दुःख है और किस तरह उनका संतोष किया जा सकता है। लार्ड डरहम के सुपुर्द यह कार्य्य किया गया। यद्यपि लार्ड डरहम को सफलता न हुई और इँगलैंड वालों ने उनके विचारों को ठीक ठीक न समझ कर उन्हें वापस बुला लिया, परन्तु जो रिपोर्ट उन्होंने लिखी थी और जो उपाय उन्होंने कनाडा के शान्त करने के बतलाये थे उन्हीं के आधार पर इँगलैंड ने उपनिवेशों की शासन-प्रणाली में परिवर्तन किया। लार्ड डरहम का मत था कि कनाडा को सर्वथा स्वराज्य दे दिया जाय और इँगलैंड उसके किसी कार्य्य में हस्तक्षेप न करे, सिवा उन मामलों के जो साम्राज्य से सम्बन्ध रखते हों। हुआ भी ऐसा ही। १८४७ में कनाडा को स्वराज्य दे दिया गया और तब से जो जो उपनिवेश स्वराज्य के अधिकारी होते जाते हैं उन्हें स्वराज्य मिलता जाता है।

इँगलैंड के उपनिवेश दो भागों में विभक्त हैं। एक तो वे जिन्हें स्वराज्य मिल गया है अर्थात् जो अपना शासन आप करते हैं—जिन्हें आप स्वाधीन उपनिवेश (Self-governing Colonies) कह सकते हैं और दूसरे वे जिनका शासन इँगलैंड से राष्ट्रमन्त्रिमण्डल द्वारा होता है और जिन्हें राजाधीन उपनिवेश (Crown Colonies) कह सकते हैं।

स्वाधीन उपनिवेशों की संख्या ९ है:—अमरीका में—कनाडा और निउफौंडलैंड। दक्षिणीय आफ़्रीका में—केप आफ गुड होप। आस्ट्रेलिया में—क्वीन्सलैंड, निउ साउथ वेल्स, विक्टोरिया, साउथ आस्ट्रेलिया, टसमेनिया और निउज़ीलैंड। इन सबको साम्राज्य सम्बन्धीय मामलों को छोड़ कर अपने अपने शासन के लिए क़ानून बनाने की पूरी पूरी स्वतंत्रता है। इनका शासन ऐसे मंत्रियों द्वारा किया जाता है जो प्रजा के अनुकूल हों। अपने कार्य्यों के लिए इन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजा के प्रतिनिधियों को जवाबदही करनी पड़ती है। यदि इन्होंने अधिकांश प्रजा के प्रतिनिधियों के प्रतिकूल कोई काम किया और वह लोकमत के विरुद्ध हुआ तो ये हटा दिये जाते हैं और इनके स्थान में दूसरे नियुक्त किये जाते हैं जो प्रजामत के अनुकूल हों। केप आफ़ गुड होप, टेसमेनिया, विक्टोरिया और साउथ आस्ट्रेलिया में क़ानून बनाने वाली सभा के सभी सदस्यों का निर्वाचन प्रजा ही की ओर से होता है। और बाक़ी पाँच उपनिवेशों में कुछ हिस्सा क़ानून बनाने वालों को, जिसे अपर चेम्बर कहते हैं, उपनिवेश के मन्त्रिमण्डल और गवर्नर नामज़द करते हैं। परन्तु इससे उपनिवेशों के स्वराज्य में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ने पाता।

सन् १८४० में अपर और लोअर कनाडा मिला दिये गये थे और संयुक्त कनाडा के लिए एक ही क़ानून बनाने वाली सभा भी बनाई गई थी; परन्तु यह प्रबन्ध चल न सका। सन् १८६७ में ब्रिटिश नार्थ अमेरिकन एक्ट के अनुकूल नया प्रबन्ध करना पड़ा। कनाडा सात सूबों में विभक्त किया गया। अन्टेरियो, क्वेबक, नोवा स्कोशिया, निउ ब्रन्सविक, मनिटोबा, ब्रिटिश कोलम्बिया और प्रिन्स एडवर्ड। इन सबमें पृथक् पृथक् पार्ल्यामेंट है और अपना अपना शासन प्रबन्ध है। हाँ प्रत्येक सूबे में एक एक लेफ्टिनंट गवर्नर सभापति रहता है; परन्तु प्रत्येक सूबे का मन्त्रिमण्डल, उस सूबे की पार्ल्यामेंट के सामने उत्तरदाता और अपने कार्य्यों के लिए ज़िम्मेदार होता है। इन सातों सूबों के शासन की निरीक्षणता का भार गवर्नर जनरल के अधीन है, जो इँगलैंड के महाराज का प्रतिनिधि समझा जाता है। इसे अधिकार रहता है कि किसी पास हुए क़ानून को रद कर दे। परन्तु यह अधिकार वैसा ही अधिकार है जैसा कि इँगलैंड के महाराज को है। पास हुए क़ानून को गवर्नर जनरल रद्द कभी नहीं करते। यदि वह क़ानून किसी तरह साम्राज्य से सम्बन्ध रखता है तो वह मंज़ूरी के लिए इँगलैंड भेज दिया जाता है। गवर्नर जनरल की भी सहायता मन्त्रिमण्डल करता है। इस मण्डल के सभासद १४ होते हैं और वे क़ानून बनाने वाली सभा के उस दल के नेताओं में से नियुक्त किये जाते हैं जिनका कि ज़ोर बढ़ा हुआ होता है और जिनकी तरफ़ क़ानून बनाने वाली सभा के अधिकांश सभासद रहते हैं। इस क़ानून बनाने वाली सभा के भी दो भाग हैं—एक को सेनट कहते हैं, दूसरी को हाउस आफ़ कामन्स। सेनट में ८१ मेम्बर होते हैं जिन्हें सारी ज़िन्दगी के लिए गवर्नर जनरल अपने मन्त्रिमण्डल की सम्मति से नामज़द करते हैं। इस सभा के हर एक मेम्बर को कम से कम ३० वर्ष की उम्र का होना चाहिए। जिस सूबे से वह नियुक्त किया जाय वहाँ का वह निवासी हो और चार हज़ार डालर के मूल्य की जायदाद का मालिक भी हो। हाउस आफ़ कामन्स में क़रीब क़रीब २१३ मेम्बर होते हैं। इन्हें सूबों के निवासी पाँच पाँच बरस के लिए चुनते हैं। प्रत्येक २२६८८ निवासियों का एक प्रतिनिधि चुना जाता है। क्वेबक सूबे के प्रतिनिधि कम से कम ६५ हुआ करते हैं।

गवर्नर जनरल के १४ मंत्री ये हैं—

प्रधान सचिव, सेक्रेटरी आफ़ स्टेट, मिनिस्टर आफ़ ट्रेड ऐंड कामर्स, मिनिस्टर्स आफ़ जस्टिस, मरीन ऐंड फ़िशरीज़, रेलवे ऐंड कनाल्स, मिलीशिया ऐंड डिफ़ेन्स, फ़ाइनन्स, अग्रीकलचर, पबलिक वर्क्स, इन्टीरियर, पोस्टमास्टर जनरल और दो जिनके सुपुर्द कोई ख़ास काम नहीं रहता।

कनाडा की क़ानून बनानेवाली सभा के हाउस आफ़ कामन्स के सभासद प्रायः इस भाँति हैं:—

अन्टेरियो की ओर से		९२	सभासद्
क्वेबक	,, ,,	६५	,,
नोवास्कोशिया	,, ,,	२०	,,
निउ ब्रन्सविक	,, ,,	१४	,,
मनीटोबा	,, ,,	७	,,
ब्रिटिश कोलम्बिया	,, ,,	६	,,
प्रिन्स एडवर्ड आइलंड	,,	५	,,
नार्थवेस्ट टेरीटरी	,, ,,	४	,,
		२१३	

CC-0. In Public Domain: Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूबों के रहनेवाले जिनके पास थोड़ी सी जायदाद होती है इन प्रतिनिधियों के निर्वाचन में राय दे सकते हैं। जब गवर्नर जनरल चाहता है तब मन्त्रिमण्डल की सलाह से पार्ल्यामेंट को बर्ख़ास्त कर देता है। तब सभासदों का फिर से चुनाव किया जाता है। यह तो हुआ कनाडा की गवर्नमेंट का वर्णन। भारतवर्ष के राजनैतिक आन्दोलन करने वालों का वह दल जिसे नरम दल कहा करते हैं और जिसके नेता बाबू सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, गोखले इत्यादि हैं, भारतवर्ष में कमो वेश इसी प्रकार की गवर्नमेंट चाहते हैं जैसी कि कनाडा में है।

आस्ट्रेलिया के उपनिवेशों की शासन-प्रणाली प्रायः इसी तरह की है जैसी की कनाडा की। हाँ आस्ट्रेलिया के उपनिवेश पृथक् ही पृथक् हैं। इन सभों का परस्पर मेल और सम्मिलित प्रबन्ध आस्ट्रेलिया ही में कनाडा की भाँति नहीं किया गया। इनका सम्मिलित प्रबन्ध जो कुछ होता है इँगलैंड द्वारा होता है। आस्ट्रेलिया के उपनिवेशों की क़ानून बनानेवाली सभाओं में कहीं कुछ मेम्बर नामज़द किये जाते हैं और कुछ चुने जाते हैं और कहीं कहीं सब चुने जाते हैं। इस तरह कहीं पर सभासदों के लिए कुछ जायदाद वाला होना आवश्यक है और कहीं नहीं। परन्तु गवर्नर मन्त्रिमण्डल ही की सलाह से सब जगह कार्य्य करता है और मन्त्रिमण्डल लोकमत के विरुद्ध नहीं होता और प्रजा के प्रतिनिधियों का उत्तरदाता रहता है। उपनिवेशों की बड़ी अदालतों की अपील इँगलैंड की प्रिवी कौंसिल में वैसेही दायर हो सकती है जैसे कि भारतवर्ष के हाई कोर्ट की अपीलें प्रिवी कौंसिल में दायर की जाती हैं।

पहले हम उपनिवेशों को दो भागों में विभक्त कर आये हैं—स्वाधीन उपनिवेश और राजाधीन उपनिवेश। स्वाधीन उपनिवेशों की शासन-प्रणाली संक्षेप से दिखला दी गई। राजाधीन उपनिवेशों के विषय में केवल इतनाही कहना है कि उनका शासन इँगलैंड के कलोनियल आफ़िस से किया जाता है। इन उपनिवेशों में कहीं कहीं फ़ौजी प्रबन्ध है, जैसे कि सेन्टहेलिना और जबरालटर में। कहीं कहीं, जैसे ट्रिनीडाड और स्टेट सेटलमेंट में, शासक समाज और क़ानून बनाने वाली सभा के मेम्बर सभी नामज़द किये जाते हैं। कहीं, जैसे कि जमायका में, कुछ नामज़द किये जाते हैं और कुछ चुने जाते हैं। बहामा और बर्मूडा में सभी चुने जाते हैं। परन्तु मन्त्रिमण्डल कहीं का भी प्रजा के सामने उत्तरदाता और ज़िम्मेदार नहीं होता। भारतवर्ष के राजनैतिक आन्दोलन करनेवालों का दल जो भारत में उपनिवेशों की भाँति गवर्नमेंट या शासन चाहते हैं उनका मतलब इस राजाधीन उपनिवेशों (Crown Colonies) के शासन प्रबन्ध से नहीं है, किन्तु कनाडा आदि स्वाधीन उपनिवेशों की शासन-प्रणाली से है जिसमें मन्त्रिमण्डल और गवर्नर का उत्तरदातृत्व और ज़िम्मेदारी प्रजा की ओर होती है और वे मनमानी नहीं करने पाते।

यद्यपि ऐसा मालूम होता है कि स्वाधीन उपनिवेशों (Self-governing Colonies) की गवर्नरी नाम मात्र को है। गवर्नरी जो कुछ है वह राजाधीन उपनिवेशों ही की है। परन्तु ऐसा नहीं है। लार्ड एलगिन, जो जमायका में गवर्नर रह चुके हैं और कनाडा में भी, उनका कथन है कि कनाडा में जमायका की अपेक्षा उन्हें ज़्यादा अधिकार था। यदि गवर्नर चाहे तो कनाडा जैसे उपनिवेश में अपने प्रभाव से युक्ति-पूर्वक मन्त्रियों की सम्मति से बहुत कुछ काम कर सकता है। लार्ड एलगिन के कथन से यही सिद्ध होता है कि प्रजा की राय लेकर और उसे साथ लेकर शासन करने में सरलता ही नहीं, किन्तु बुद्धिमत्ता भी है। प्रजा का स्वामी बनकर शासन करने की अपेक्षा उसका मित्र बनकर शासन करने में अधिक सुभीता रहता है।

देवीप्रसाद शुक्ल

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

THE MATRIMONIAL PENAL CODE.

CHAPTER I.

Introduction.

WHEREAS it is expedient to provide a special Penal Code for the coercion of refractory husbands and others who dispute the supreme authority of Woman, it is hereby enacted as follows :—

1. That this Act shall be entitled the "Matrimonial Penal Code" and shall take effect on all natives of India in the married state.

CHAPTER II.

Definitions.

2. A husband is a piece of moving and moveable property at the absolute disposal of a woman.

Illustrations.

(a) A trunk or a workbox is not a husband, as it is not moving, though a moveable piece of property.

(b) Cattle are not husbands, for though capable of locomotion they cannot be at the absolute disposal of any woman, as they often display a will of their own.

(c) Men in the married state having no will of their own are husbands.

3. A wife is a woman having the right of property in husband.

Explanation.

The right of property includes the right of flagellation.

दाम्पत्य-दण्ड-विधान।

पहला अध्याय।

प्रस्तावना।

स्त्रियों के उद्दंड स्वामियों का शासन करने के लिए एक विशेष प्रकार के क़ानून की आवश्यकता है। इसलिए निम्नलिखित क़ानून बनाया जाता है :—

दफ़ा १। इस क़ानून का नाम दाम्पत्यदण्ड-विधान होगा। भारतवर्ष में जितने देशी विवाहित पुरुष हैं उन सब पर इसका पूरा असर होगा।

दूसरा अध्याय।

साधारण व्याख्या।

दफ़ा २। जो जंगम सजीव सम्पत्ति स्त्रियों के सम्पूर्ण अधिकार में है उसका नाम पति है।

उदाहरण।

(क) सन्दूक़, पेटी आदि को पति नहीं कहना चाहिए, क्योंकि यद्यपि ये सब जंगम अर्थात् अस्थावर सम्पत्ति हैं तथापि सजीव नहीं हैं।

(ख) गाय, भैंस, बछड़े भी पति नहीं हो सकते; क्योंकि यद्यपि ये सजीव पदार्थ हैं तथापि इनमें अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने की शक्ति है। इसलिए ये सब स्त्रियों के सम्पूर्ण रूप से अधीन नहीं हैं।

(ग) विवाहित पुरुष ही स्वतन्त्रतापूर्वक कोई काम नहीं कर सकते। अतएव पशुओं को पति न कह कर इन लोगों को ही पति कहना चाहिए।

दफ़ा ३। जो स्त्री अपने पति को सम्पत्ति बनाने का अधिकार रखती है वही अपने पति की पत्नी अथवा स्त्री है।

व्याख्या।

सम्पत्ति का अधिकारी अपनी सम्पत्ति को मारने पीटने का भी अधिकारी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4. "The married state" is a state of penance into which men voluntarily enter for sins committed in a previous life.

CHAPTER III

Of Punishment.

5. The punishments to which offenders are liable under the provisions of this Code are :—

Firstly—*Imprisonment* which may be either within the four walls of a bed-room or within the four walls of a house.

Imprisonments are of two descriptions, namely :—

(1) Rigorous, that is, accompanied by hard words.

(2) Simple.

Secondly—Transportation, that is to another bed-room.

Thirdly—Matrimonial servitude.

Fourthly—Forfeiture of pocket-money.

6. "Capital punishment" under this Code means that the wife shall run away to her paternal roof, or to some other friendly house, with the intention of not returning in a hurry.

7. The following punishments are also provided for minor offences :—

Firstly—Contemptuous silence on the part of the wife.

Secondly—Frowns.

Thirdly—Tears and lamentations.

Fourthly—Scolding and abuse.

दफ़ा ४। पुरुषों के पूर्व-जन्मकृत पापों के प्रायश्चित्त विशेष को "विवाह" कहना चाहिए।

तीसरा अध्याय।

बाबत सज़ा।

दफ़ा ५। इस क़ानून के अनुसार अपराधी को निम्न लिखित सज़ा मिलनी चाहिए।

१। शयनागार या किसी अन्य मकान की चहार दीवारी के बीच क़ैद।

क़ैद दो प्रकार की होगी :—

(१) कठिन-तिरस्कार युक्त।

(२) तिरस्कार रहित।

२। कालापानी, अर्थात् दूसरी शय्या पर भेजना, अथवा शयन-गृह के बाहर कर देना।

३। पत्नी का दासत्व।

४। जुर्माना, अर्थात् पाकिट ख़र्च के लिए रुपया न देना।

दफ़ा ६। इस क़ानून में फाँसी का यह अर्थ समझा जायगा कि स्त्री अपने पिता के घर अथवा किसी सखी के घर चली जायगी और शीघ्र लौटने की इच्छा न करेगी।

दफ़ा ७। छोटे छोटे अपराधियों के लिए निम्न लिखित दण्ड होने चाहिए :—

१, मान।

२, भृकुटी-भंग।

३, चुपचाप आँसू बहाना, अथवा उच्च स्वर से रोदन

४, गाली बकना अथवा तिरस्कार करना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Chapter IV.

General Exceptions.

8. Nothing is an offence which is done by a wife.

9. Nothing is an offence which is done by a husband in obedience to the commands of a wife.

10. No person in married state shall be entitled to plead any other circumstances as grounds of exemption from the provisions of the Matrimonial Penal Code.

Chapter V.

Of Abetment.

11. A person abets the doing of a matrimonial offence, who

Firstly—Instigates, persuades, induces or encourages a husband to commit that offence.

Secondly—Joins him in the commission of that offence or keeps his company during the commission.

Explanation.

A man not in the married state or even a woman may be an abettor.

Illustrations.

(a) A, the husband of B and C, an unmarried man, drink together. Drinking is a matrimonial offence. C has abetted A.

(b) A, the mother of B, the husband of C, persuades B to spend money in other ways than those which C approves. As

चौथा अध्याय।

साधारण अपवाद।

दफ़ा ८। स्त्री का किया हुआ कोई काम अपराध नहीं गिना जायगा।

दफ़ा ९। स्त्री की आज्ञानुसार पति का किया हुआ काम भी अपराध न गिना जायगा।

दफ़ा १०। कोई विवाहित पुरुष यह उज़्र नहीं पेशकर सकेगा कि वह दाम्पत्य-दण्ड-विधान क़ानून के अनुसार दण्डनीय नहीं है।

पाँचवाँ अध्याय।

अपराध करने की सहायता के विषय में।

दफ़ा ११। वह व्यक्ति दाम्पत्य-अपराधों की सहायता करता है जो—

१, पति को अपराध करने में कान भरता, प्रवृत्ति दिलाता अथवा उत्साहित करता है।

२, या उसके संग उस अपराध करने के समय तक रहता है।

व्याख्या।

अविवाहित पुरुष अथवा स्त्री दाम्पत्य-अपराध की सहायता कर सकते हैं।

उदाहरण।

(क) राम श्यामा का पति है। यदुनाथ अविवाहित पुरुष है। दोनों ने एक साथ बैठ कर मद्यपान किया है। मद्यपान करना दाम्पत्य अपराध है। अतएव यदुनाथ ने राम की सहायता की।

(ख) सुशीला राम की माता है। राम श्यामा का पति है। श्यामा जिस प्रकार रुपया ख़र्च करने के लिए कहती है वैसे न करके राम ने सुशीला के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

spending money in such ways is a Matrimonial offence, A has abetted B.

12. When a man, in the married state, abets another man in the married state, in a Matrimonial offence, the abettor is liable to the same punishment as the principal provided that he can be so punished only by a Competent Court.

Explanation.

A Competent Court means the wife having right of property in the offending husband.

13. Abettors who are females or male offenders not in the married state are liable to be punished only with scolding, abuse, frowns, tears and lamentations.

CHAPTER VI.

Of Offences against the State.

14. "The State" shall, in this Code, mean the married state only.

15. Whoever wages war against his wife or attempts to wage such war, or abets the waging of such war, shall be punished capitally, that is, by separation or by transportation to another bed-room and shall forfeit all his pocket money.

16. Whoever induces friends or gains children to side with him, or otherwise prepares to wage war with the intention of waging war against the wife, shall be punished by transportation to another bed-room and shall also be liable to be punished with scolding and with tears and lamentations.

परामर्श से रुपया ख़र्च किया। स्त्री के मत के विरुद्ध ख़र्च करना दाम्पत्य-अपराध है। अतएव सुशीला ने उस अपराध की सहायता की।

दफ़ा १२। यदि कोई विवाहित पुरुष किसी विवाहित पुरुष को दाम्पत्य-अपराध में सहायता करे, तो वह भी असल अपराधी के समान दण्डनीय होगा। उसका दण्ड उपयुक्त न्यायालय के बिना न होगा।

व्याख्या।

यहाँ पर उपयुक्त न्यायालय से मतलब। उस स्त्री से है जिसके पति ने अपराध किया है।

दफ़ा १३। स्त्री अथवा अविवाहित पुरुष दाम्पत्य-अपराध की सहायता करने से केवल तिरस्कार, भृकुटीभंग, नीरव अश्रुपात अथवा रोदन द्वारा ही दण्डनीय होंगे।

छठा अध्याय।

राजविद्रोह के विषय में।

दफ़ा १४। इस क़ानून में "राज" शब्द का अर्थ विवाहित दशा है।

दफ़ा १५। जो कोई अपनी स्त्री के साथ विवाद करे, अथवा विवाद करने का उद्योग करे, अथवा विवाद करने में किसी की सहायता करे, उसको प्राण-दण्ड दिया जायगा—अर्थात् उसकी स्त्री उसे त्याग देगी, अथवा शयनागार से पृथक् कर देगी, और पाकेट ख़र्च बन्द कर देगी।

दफ़ा १६। जो कोई व्यक्ति अपने मित्रों को सहायक बना कर अथवा सन्तान को वशीभूत करके अथवा और किसी प्रकार से स्त्री के साथ विवाद करने के अभिप्राय से विवाद करेगा, उसको देश-निकाले की सज़ा दी जायगी—अर्थात् वह दूसरे शय्या-गृह में भेजा जायगा, और अश्रुपात, तरस्कार तथा रोदन के द्वारा दण्डनीय होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

17. Whoever shall render allegiance to any woman other than his wife shall be guilty of incontinence.

Explanation.

(1) To show the slightest kindness to a young woman, who is not the wife, is to render such young woman allegiance.

Illustration.

A is the husband of B and C is a young woman. A likes C's baby because he is a nice child and gives him buns to eat. A has rendered allegiance to C.

Explanation.

(2) Wives shall be entitled to imagine offences under this section, and no husband shall be entitled to be acquitted on the ground that he has not committed the offence.

The simple accusation shall always be held to be conclusive proof of the offence.

Explanation.

(3) The right of imagining offence under this section shall be held to belong, in general to old wives, and to women with old and ugly husbands; and a young wife shall not be entitled to assume the right unless she can prove that she has a particularly cross temper or was brought up a spoilt child or is herself supremely ugly.

18. Whoever is guilty of incontinence shall be liable to all the punishments mentioned in this Code and to other punishments not mentioned in the Code.

दफ़ा १७। जो व्यक्ति अपनी स्त्री को छोड़ अन्य स्त्री पर आसक्त होगा वह "लाम्पट्य" नामक अपराध का अपराधी होगा।

१ व्याख्या।

स्त्री को छोड़ किसी अन्य युवती पर किसी प्रकार की दया अथवा अनुकूलता दिखाने से ही लाम्पट्य-दोष सिद्ध समझा जायगा।

उदाहरण।

राम श्यामा का पति है। मोहिनी एक दूसरी युवती है। मोहिनी का छोटा बच्चा देखने में बड़ा सुन्दर है। इसलिए राम उसको प्यार करता है और कभी कभी उसे मिठाई भी खिलाता है। अतएव राम मोहिनी पर आसक्त है।

२ व्याख्या।

इस अपराध में बिना कारण पति को अपराधी ठहराने का स्त्रियों को अधिकार होगा। मैंने अपराध नहीं किया है, यह कह कर कोई पति छुटकारा न पा सकेगा।

अपराध लगानेही से अपराध प्रमाणित समझ लिया जायगा।

३ व्याख्या।

बिना कारण पतिको इस अपराध का अपराधी होने की विवेचना करने का अधिकार विशेष रूप से प्राचीना स्त्रियों को ही होगा, अथवा जिन लोगों के पति कुरूप अथवा बूढ़े हैं उन्हीं स्त्रियों को होगा। यदि कोई युवती इस अधिकार को लेना चाहे तो उसे पहले यह प्रमाणित करना होगा कि वह बद-मिज़ाज है अथवा बाप के घर की लाडली है।

दफ़ा १८। जो पुरुष लम्पट होगा वह इस क़ानून में लिखे हुए सब प्रकार के दण्डों द्वारा दण्डित होगा। उनके सिवा और दण्ड भी, जो इस क़ानून में नहीं लिखे, उसको दिये जायँगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CHAPTER VII.

Of Offences relating to the Army and Navy.

19. The Army and Navy shall, in this Code, mean the sons and daughters and the daughters-in-law.

20. Whoever abets the committing of mutiny by a son or a daughter or a daughter-in law shall be liable to be punished by scolding and tears and lamentations.

CHAPTER VIII.

Of Offences against the domestic Tranquillity.

21. An assembly of two or more husbands is designated an unlawful assembly, if the common object of such husband is,

Firstly—To drink as defined below or to commit any other matrimonial offence;

Secondly—To over-awe, by show of authority, their wives from the exercise of the lawful authority of such wives;

Thirdly—To resist the execution of a wife's order.

22. Whoever is a member of an unlawful assembly shall be punished by imprisonments with hard words, and shall also be liable to contemptuous silence or to scolding.

Of drinking wines and spirits.

23. Any liquid kept in a bottle and taken in a glass vessel is wine and spirits.

24. Whoever has in his possession wine and spirits, as above defined, is said to drink.

सातवाँ अध्याय।

पल्टन और नौका-सम्बन्धी अपराध।

दफ़ा १९। इस क़ानून में पल्टन और नौ-सेना का अर्थ लड़के, कन्या और पुत्रवधू समझा जायगा।

दफ़ा २०। गृहिणी के साथ विद्रोह करने में जो पति पुत्र, कन्या अथवा पुत्रवधू की सहायता करेगा वह तिरस्कार और रोदन के द्वारा दण्डनीय होगा।

आठवाँ अध्याय।

घर में शान्तिभंग करने का अपराध।

दफ़ा २१। दो अथवा इससे अधिक विवाहित पुरुषों का जमाव यदि निम्न लिखित किसी अभिप्राय के निमित्त हो तो वह बेक़ानूनी जमाव कहा जायगा:—

१, मद्यपान करना अथवा किसी अन्य प्रकार का दाम्पत्य-अपराध करना;

२, अधिकार के बलपर डराकर क़ानून के अनुसार प्रभुत्व प्रकाशित करने से निवृत्त करने के लिए स्त्रियों को धमकी देना;

३, किसी स्त्री के आज्ञानुसार काम होने में विघ्न डालना;

दफ़ा २२। जो पुरुष बेक़ानूनी जमाव में शामिल होगा वह कठिन-तिरस्कार-युक्त क़ैद, अथवा मान या तिरस्कार के द्वारा दण्डित होगा।

मद्यपान के विषय में।

दफ़ा २३। जो जलवत् तरल वस्तु बोतल में रहती है और काँच के ग्लास में डाली जाती है उसे मद्य कहते हैं।

दफ़ा २४। पूर्वोक्त लिखित मद्य जो घर में रक्खे वही मद्यपायी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Explanation.

He is said to drink even though he never touches the liquid himself.

25. Whoever is guilty of drinking shall be punished with imprisonment of either description within the four walls of a bed-room during the evening hours and shall also be liable to scolding.

Of rioting.

26. Whoever shall speak in an ungentle voice to his wife shall be guilty of domestic rioting.

27. Whoever is guilty of domestic rioting shall be punished by contemptuous silence or by scolding or by tears and lamentations.

KAMALANAND SINHA.

व्याख्या।

यदि वह उसे अपने हाथ से छुये भी नहीं तो भी मद्यपायी कहा जायगा।

दफ़ा २५। जो मद्यपायी है वह रोज़ सन्ध्या होते ही शय्या-गृह की चहारदीवारी के अन्दर क़ैद किया जायगा और तिरस्कार वाक्य सुना करेगा।

दंगा करने की बाबत।

दफ़ा २६। स्त्री के साथ कर्कश स्वर से बात करने का ही नाम दंगा करना है।

दफ़ा २७। जो कोई अपने घर में दंगा करेगा उसको रोने, तिरस्कार और अश्रुपात के दण्ड से दण्डनीय होना पड़ेगा।

कमलानन्दसिंह।
[मिथिलामिहिर]

सोमनाथ पर महमूद ग़ज़नवी की चढ़ाई।

गुजरात के पश्चिम ओर काठियावाड़ नाम का द्वीपकल्प है। इसका संस्कृत नाम सौराष्ट्र और प्राकृत नाम सोरट है। प्रायद्वीप के दक्षिणी किनारे पर सोमनाथ का बहुत बड़ा और पवित्र मन्दिर है। प्राचीन समय में इसका बड़ा माहात्म्य था और ग्रहण आदि पर्वों पर यहाँ तीन लाखे यात्री एकत्र होते थे। देवस्थान का खर्च चलाने के लिए राजों, महाराजों ने दो सौ गाँव लगा दिये थे। मन्दिर में दो हज़ार पुजारी, दो सौ नृत्याङ्गनायें और दो सौ गायक नियत थे। मन्दिर का सबसे बड़ा घंटा दो सौ मन सोने की ज़ंजीर से बँधा हुआ लटकता था। देवस्नान के लिए पाँच सौ कोस से प्रति दिन गंगा-जल आता था। इसी प्रकार की अनेक बातें इस मन्दिर के विषय में प्रसिद्ध हैं। यह तो सोमनाथ का परिचय हुआ। अब महमूद के विषय की भी कुछ बातें सुन लीजिए।

अफ़ग़ानिस्तान में ग़ज़नी नाम का एक प्रसिद्ध शहर है। इस शहर में एक भारी क़िला भी है। सन् ९९७ ई० में जब यहाँ का बादशाह सुबुक्तगीन मर गया तब उसके औरस पुत्र शाहज़ादा इस्माईल को क़ैद करके महमूद गद्दी पर बैठा। यह सुबुक्तगीन की रक्खी हुई वेश्या का लड़का था। महमूद महम्मदी धर्म का बड़ा अभिमानी था। वह सदैव अपने धर्म का प्रचार करने के लिए यत्नशील रहता था। द्रव्य-लोभ की मात्रा उसमें बहुत अधिक थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्हीं दो कारणों के वशीभूत होकर इस पराक्रमी पुरुष ने हमारे देश पर सत्रह बार चढ़ाई की। इसका अन्तिम धावा सोमनाथ पर हुआ। इसी आक्रमण का हाल आज हम "सरस्वती" के पाठकों को सुनाते हैं।

सन् १०२४ ई० के सितम्बर महीने में महमूद ने ग़ज़नी से प्रस्थान किया। साथ में कोई तीस चालीस हज़ार से अधिक सेना और बीस हज़ार भारवाहक ऊँट थे। अक्टूबर के महीने में वह मुलतान में पहुँचा। वहाँ से अजमेर आया। अजमेर का राजा उसके आने का समाचार सुन कर भाग गया। फिर क्या था, महमूद ने उसकी राजधानी और अजमेर-इलाक़े को ख़ूब ही लूटा और उसका विध्वंस कर डाला। आगे बढ़ने पर उसे गुजरात प्रान्त की अनलवाड़ा नामक राजधानी मिली। वहाँ का राजा भी डर कर भाग गया। इस इलाक़े को भी महमूद ग़ज़नवी ने लूटा और सोमनाथ तक जा पहुँचा।

महमूद के वहाँ पहुँचने पर, थोड़ी देर के बाद, लोगों को उसके आने का कारण मालूम हुआ। एक ढाढ़सी पुरुष ने उससे कहा कि—"यदि तू अपना भला चाहता है तो यहाँ से लौट जा। अन्यथा मन्दिर का देवता तेरा सत्यानाश कर डालेगा"। ऐसी धमकी से महमूद भला कब डरनेवाला था। उसने अपने वीरों को मन्दिर पर हमला करने का हुक्म दे दिया। वीरों ने मन्दिर के आस पास के लोगों को एक क्षण में भगा दिया। मन्दिर के भीतर वाले लोग जमा होकर महादेवजी से विनती करने लगे कि हे प्रभो! इस समय हमारी सहायता कीजिए। इतने ही में मुसलमान "अल्ला-हो-अकबर" का भयंकर घोष करके मन्दिर में घुसने लगे। आस पास के राजपूतों ने जब यह कोलाहल सुना तब वे लोग मुसलमानों पर चढ़ धाये और उन्हें मन्दिर के चबूतरे के नीचे धड़ाधड़ मार गिराया। बहुत से मुसलमान मारे गये।

यह घनघोर युद्ध तीन दिन तक हुआ। अनलवाड़े का राजा भी बहुत सी सेना लेकर हिन्दुओं की मदद के लिए आया था। शूर राजपूतों की महावीरता देख कर मुसलमानों का साहस जाता रहा और उन्हें मालूम होने लगा कि अब हमारा पराभव होता ही है। यह देख कर महमूद ने अपने सेनानियों को ख़ूब समझाया बुझाया और ईश्वर की प्रार्थना करके अपने वीरों को उत्तेजित किया। इस कारण मुसलमानों में स्फूर्ति आगई और वे आवेश के साथ युद्ध करने के लिए तैयार हुए। महमूद ग़ज़नवी उछल कर घोड़े पर सवार हुआ। सारे मुसलमान योद्धा एकदम बड़े वेग से हिन्दुओं पर धाये। यह हमला हिन्दुओं से नहीं सहा गया। इस युद्ध में पाँच हज़ार हिन्दू काम आये। बाक़ी में से कोई चार हज़ार हिन्दू जलमार्ग से भागने की इच्छा से निकले, जिनमें से बहुतों को मुसलमानों ने पकड़ कर मार डाला।

अब महमूद ग़ज़नवी मन्दिर में घुसा। वहाँ का वैभव देख कर वह चकित हो गया। मन्दिर बहुत ऊँचा था। उसके भीतरी भाग में मेहराबदार चित्र विचित्र रत्नखचित छप्पन खंभे थे। भीतर सूर्य का प्रकाश न जाता था, इस कारण बीचों बीच सोने की ज़ंजीर से बँधा हुआ एक बहुत बड़ा दीपक लटकता था। उसी के प्रकाश से मन्दिर का काम चलता था। दरवाज़े से भीतर की ओर जाते ही सम्मुख सोमनाथ जी की विशाल मूर्ति देख पड़ती थी। वह पैंतीस हाथ ऊँची थी, जिसमें से साढ़े तीन हाथ पृथ्वी के भीतर थी। मूर्ति देखते ही महमूद ने उसे तोड़ने का हुक्म फ़र्माया। यह देख कर भीतर के पुजारी उसके पैरों पर गिर पड़े और गिड़गिड़ा कर विनती करने लगे कि यदि आप हमारे देवता की मूर्ति न तोड़ें तो हम लोग आपको बहुत सा द्रव्य दें। यह सुनते ही वह द्रव्य-लोभी पुरुष स्तब्ध हो गया। उसके कई सरदारों ने भी सम्मति दी कि इन ब्राह्मणों का कहना मान लेना चाहिए। थोड़ी देर के बाद, स्वयं विचार करके,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने पुजारियों को उत्तर दिया कि—"मूर्ति-रक्षक बनने की अपेक्षा मूर्ति-भंजक होने की कीर्ति मुझे अधिक प्यारी है"। इतना कह कर उसने स्वयं पहले अपना सोंटा मूर्ति की खोपड़ी पर मारा! यह देखकर दूसरे मुसलमानों ने उसे तोड़ना आरम्भ कर दिया। सोमनाथ की मूर्ति फूट गई। उसमें जो रत्न और जवाहिर भरे हुए थे वे सब बाहर निकाले गये। इसमें संदेह नहीं कि मूर्ति को बचा देने से जो धन-लाभ महमूद को हुआ होता उससे चौगुना अधिक लाभ मूर्ति तोड़ने से हुआ। परन्तु देवमूर्ति तोड़ने की दुष्कीर्ति और द्रव्य लोभ दोनों ने उसके नाम को सदा के लिए कलंकित कर दिया।

मूर्ति के चार टुकड़े हो गये। महमूद ने उनमें से एक खंड मक्के को और एक मदीने को भेज दिया और बाक़ी दो टुकड़े ग़ज़नी को भेज दिये। इन दो में से एक खंड शाहीमहल में रक्खा गया और दूसरा एक बड़ी मसजिद में। मन्दिर के दरवाज़े चन्दन के थे; उन पर उत्तम नक़्क़ाशी की हुई थी। वे भी ग़ज़नी को भेज दिये गये। वे दरवाज़े आठ सौ वर्ष तक ग़ज़नी में थे। सन् १८४२ ई० में लार्ड एलिनबरा की आज्ञा से जनरल नाट उन दरवाज़ों को बड़े ठाट बाट से फिर हिन्दुस्तान में लाये। वे अब तक आगरे के क़िले में रक्खे हुए हैं। एक शिल्पविद्या-प्रवीण पुरुष का कथन है कि ये दरवाज़े चन्दन के नहीं हैं, देवदारु के हैं; और उन पर जो नक़्क़ाशी की हुई है वह मुसलमानी तरीक़े की है। इससे जान पड़ता है कि वे दरवाज़े सोमनाथ के मन्दिर के नहीं हैं। अस्तु।

इस चढ़ाई की लूट में महमूद को जो द्रव्य प्राप्त हुआ उसका यदि वर्णन किया जाय तो कदाचित् लोग उसे मिथ्या समझेंगे। पहले तो उसका हिसाब ठीक ठीक नहीं लगता। कुछ भी हो, उसका ठीक अन्दाज़ नहीं किया जा सकता। तथापि इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि इस चढ़ाई में मुसलमान लूट मार कर बहुत सा द्रव्य स्वदेश को गये।

स्वदेश पहुँचने पर महमूद ग़ज़नवी सन् १०३० ई० के एप्रिल महीने की २९ वीं तारीख़ को मर गया। उस समय उसकी उम्र लग भग ५० वर्ष के होगी। उसने ३४ वर्ष राज्य किया। मरने के पहले उसने अपनी सारी सम्पत्ति अपने सम्मुख मँगाई और दो दिन तक उसकी अन्तिम भेंट की। जब उसके मन में यह बात आई कि अब मैं यह सारी सम्पदा छोड़कर जाने वाला हूँ तब इस दुःख के कारण उसके नेत्रों से अनर्गल अश्रुधारा बह चली! सच है, श्रमसम्पादित प्रिय वस्तु का वियोग परम दुःसह होता है! महमूद को अंत-समय में अपनी सम्पदा देखकर दुख तो हुआ; पर उसके मन में यह बात न आई कि इतनी बड़ी धन-राशि से एक कौड़ी भी उठा कर वह पुण्य करे। सब धन उसने जैसा का तैसा उठवा कर रखा दिया। इस कार्पण्य का भी कुछ ठिकाना है! धन का दर्शन करने के बाद, दूसरे दिन, अपनी सेना, हाथी, घोड़ा, पालकी आदि को अच्छी तरह सजवा कर उसने अपने सम्मुख मँगाया। जब उसने वह सब देखा तब उस समय भी वह फूट फूट कर रोया।

इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि महमूद ग़ज़नवी शूर, राज्यलोलुप, उत्कृष्ट योद्धा और बड़ा पराक्रमी पुरुष था। इसके सिवा उसमें एक और भी उत्तम गुण था। उसमें विद्या की अभिरुचि भी थी। फ़िर्दौसी नामक प्रसिद्ध कवि से उसने एक कविता-बद्ध ग्रन्थ लिखने के लिए कहा और प्रति पंक्ति के लिए एक एक दीनार प्रदान करने के लिए उसने प्रतिज्ञा की। दीनार नाम का सिक्का सोने और चाँदी दोनों का अलग अलग चलता था। पुरस्कार देने की जो प्रतिज्ञा उसने की थी वह द्व्यर्थक थी। उसने यह साफ़ साफ़ नहीं कहा था कि किस धातु के दीनार दूँगा। कवि ने कल्पना कर ली थी कि इतना बड़ा बादशाह होकर वह चाँदी कभी न देगा; सोना ही देगा। पर पीछे से उसे वह कल्पना "कविकल्पना" ही जान पड़ी। ग्रन्थ पूरा होने पर जब वह बादशाह के पास ले गया तब वह फ़िर्दौसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को चाँदी के दीनार देने लगा। यह देख कर कवि अत्यन्त क्रोधाविष्ट होकर दरबार से चला गया और महमूद के उपहास का उसने एक दूसरा ग्रन्थ रचा। तथापि बादशाह ने उसे क्षमा कर दिया। कवि का क्रोध शान्त करने के लिए बादशाह ने बहुमोल भेट भी भेजी; परन्तु खेद की बात है कि उसका कुछ उपयोग नहीं हुआ। यह भेट कवि ने अपनी आँखों से भी न देखी। भेट लेकर जिस समय महमूद का आदमी फ़िरदौसी के घर पहुँचा उस समय लोग उसका शव घर से निकालकर श्मशान की ओर लिये जा रहे थे! जगदीश की लीला अपरम्पार है।

महमूद ग़ज़नवी बड़ा कुरूप था। वह अपना मुँह अकसर आईने में देखता भी न था। कहते हैं कि एक बार जब उसने शीशे में अपना मुँह देखा तब उसे वह बहुत बुरा लगा; उस समय वह अपने पास के लोगों से बोला:—"वास्तव में राजा का रूप ऐसा होना चाहिए कि उसकी ओर देखकर लोग मुग्ध हो जायँ; पर क्या किया जाय इस विषय में ईश्वर की मुझ पर कृपा नहीं। उसने मुझे ऐसा बनाया है कि मेरी तरफ़ देखतेही लोगों को उबकाई आती है!" कई ग्रन्थकारों का तर्क है कि वह लोगों को अपने स्वरूप से मुग्ध नहीं कर सकता था; इसी कारण अपने पराक्रम से लोगों को चकित करने का प्रयत्न करता था। यह बात यदि सच है तो कहना चाहिए कि उसका व्यंग ही उसके वैभव का कारण हुआ।

महमूद ने ग़ज़नी शहर को खूब अच्छी तरह बनाया। प्रजा के सुख के लिए उसने धर्मशालायें बनवाईं। ग़ज़नी में उसने एक महापाठशाला स्थापित की और उसमें हज़ारों हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रह किया। विद्वान् पुरुषों के सहायतार्थ एक लाख रुपये उसने अलग ही निकाल रक्खे थे। तीस वर्ष में उसने अपना राज्य ईरान की खाड़ी से लेकर यूरल सरोवर तक और कुर्दिस्तान की पर्वतमाला से लेकर सतलज नदी तक बढ़ाया। यद्यपि वह इतने बड़े राष्ट्र का प्रभु था; तथापि, "मूर्तिभंजक"—"बुतशिकन"—कहलाने में ही वह अपने को धन्य समझता था!

त्रिमूर्ति।

'पूर्ण' कवि का चित्र-दर्शन।

(१)

वाणी ही क्या वह, सुन जिसे चित्त में मोद-जाग
श्रोताओं के सिर न हिलने जो लगें सानुराग।
पाया जाता प्रकट जिनके काव्य में उक्त वाद *,
देखो ये हैं कविवर वही राय देवीप्रसाद॥

(२)

होके अच्छे सुकवि-जन के भृत्य से शब्द सारे
आज्ञा को हैं सतत उनकी मानते प्रेम धारे।
सद्ग्रन्थों में लिखित कवि का चिह्न है जो प्रधान,
है सो सारा प्रकट इनके काव्य में मूर्तिमान॥

(३)

होते अच्छे कवि न बहुधा शील-विद्या-निधान;
होजाता है हृदय उनका गर्व-गंभीर-खान।
ऐसा जो है कथन वह तो है निरा झूठ, मित्र!
देता ऐसे वचन कह है आपका सच्चरित्र॥

(४)

वेदान्ती हैं, निरत रहते ब्रह्म में प्रेम पागे;
होके तोभी विरत जग से कर्म को ये न त्यागें।
पुत्र-भ्राता, जनक-जननी, देह-दारा अनित्य;
जानें ऐसा, हित पर करें विश्व का आप नित्य॥

(५)

वाग्देवी, श्री, विनय, रहते हैं नहीं एक सङ्ग;
शास्त्रों में है लिखित उनका सर्वथा प्रीति-भङ्ग।
तीनों का जो मिलन तुमको देखना हो पवित्र
तो हे भाई! इन सुकवि का देख लो दिव्य चित्र॥

लोचनप्रसाद।

---

* कथन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राय देवीप्रसाद साहिब (पूर्ण) बी० ए०, बी० एल० ।

होते हैं मुग्ध लेके सुरसिक जिनके काव्य पीयूष-स्वाद ।
वाणी के पुत्र मानी सुकवि यह वही राय देवीप्रसाद ॥

इण्डियन प्रेस इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विलायत की जलशक्ति ।

ता० २१ जुलाई ०९ को हम विलायत की जलशक्ति का दृश्य देखने साउथ एन्ड (South-end) पहुँचे। साउथ एन्ड यहाँ से लगभग ४० मील के है। यह छोटा सा शहर, जिसकी जनसंख्या अनुमान ५० सहस्र है, North Sea (नार्थसी) अर्थात् उत्तरी समुद्र के किनारे बसा है। टेम्स नदी इसी स्थान पर समुद्र में मिली है। शहर की बनावट लन्दन जैसी है। महलनुमा होटल, स्कूल, कालेज, ट्रेम, पुस्तकालय, बड़े बड़े सुन्दर बाग़ यहाँ मौजूद हैं। यहाँ से दो दैनिक पत्र निकलते हैं। लन्दन के दैनिक भी बराबर समय पर पहुँचते हैं। इसके और लन्दन के बीच घंटे घंटे में रेलें दौड़ा करती हैं। परंतु इस ख़ास मौक़े पर दिन में सौ सौ रेलें दौड़ाई गईं। लन्दन इत्यादि से क़रीब एक लाख आदमी रोज़ यहाँ जहाज़ी जमाव देखने जाते थे। बहुत से लोग सफ़री जहाज़ों में टेम्स नदी की सैर करते हुए पहुँचे। ऐसे लोगों को कुल जहाज़ देखने को मिले। जहाज़ों की क़तार पार्लामेंट से लेकर बराबर साउथएन्ड तक लगी थी। जो लोग अर्थाभाव अथवा अन्य कारण से रेल या जहाज़ द्वारा साउथ एन्ड नहीं पहुँच सके उनने अपने मन यहीं टेम्स में पड़े हुए जहाज़ों को देख, समझा लिये। हमने जलद्वारा जाना उचित समझा। इसके लिए कई दिन आगे का टिकट ले रखा था। जिन लोगों ने उसी दिन लिया उन्हें दूनी क़ीमत देनी पड़ी। हम बैल (Belle) कम्पनी के जहाज़ द्वारा गये। इस कम्पनी के जहाज़ नित्य यहाँ के बन्दरों को आया जाया करते हैं। आज कल गरमी में इनके द्वारा बहुत लोग समुद्री हवा करने जाया करते हैं। हर एक जहाज़ में हज़ार डेढ़ हज़ार मुसाफ़िरों के लिए जगह रहती है। हमारे साथ क़रीब एक हज़ार यात्री थे। लन्दन से साउथ एन्ड पहुँचने में क़रीब ४ घंटे लगे। कुछ आगे बढ़ते, परंतु समुद्र उस दिन कुछ कुपित था।

रास्ते की कुछ बातें ।

जहाज़ पर समय बड़े आनन्द से कटा। बहुत सी लेडियों से मुलाक़ात हो गई। हम जहाज़ के सबसे ऊपरी भाग याने डैक (Deck) पर थे। यहाँ से दूर तक नज़र पहुँच सकती थी। बहुतों के पास दूरबीन थे, जिनके द्वारा आस पास की चीज़ें और आते जाते जहाज़ वे देखते थे। टेम्स नदी का पाट अर्थात् चौड़ाई लन्दन से साउथ एन्ड तक पाव मील से भी कम है। अतएव बहुत से जहाज़ यों ही आसानी से दिखाई देते थे। हमारे जहाज़ पर खाने, पीने, बैठने, खेलने, कूदने का सब प्रबंध था। बैठने के लिए बेंचें थीं। एक आना देने से कुर्सी मोढ़े भी मिल सकते थे। लौटते हुए जहाज़ों में छोटे छोटे बच्चे झूलों पर झूलते, उछलते कूदते दिखाई दिये। एक दूसरे को देख जहाज़ों के मुसाफ़िर ख़ुशी से रूमाल हिलाते थे। बहुत से हुर्रे कहते थे। कोई कोई जहाज़ी कर्म्मचारी जहाज़ के छेदों में से सिर निकाल कर, रूमाल टोपी हिलाकर, हम लोगों को देख हर्ष प्रकट करते थे। इस प्रकार टिलबरी (Tilbury) और ग्रीनविच (Greenwich) से गुज़रते हुए कैनवे (Conway Island) टापू के निकट पहुँचे। यहाँ आकाश में कुछ उँचाई पर तीन चार गुड्डियाँ उड़तीं दिखाई पड़ीं। ये एक लम्बे पतले तार से बँधी थीं। ध्यानपूर्वक देखने से मालूम हुआ कि वे केवल विज्ञापन हैं, जो यात्रियों का ध्यान खींचने को लटकाई गई थीं। यहाँ चीज़ बेचने के लिए विज्ञापनों की बड़ी भरमार होती है। इसमें लोग बड़े कुशल हैं। भारत में इसका बड़ा अभाव है। "सरस्वती" यदि यहाँ की तरह विज्ञापनों द्वारा प्रख्यात की जाय तो अवश्य ही उसकी ग्राहक संख्या बढ़ जाय। पर हमारे यहाँ समाचार पत्रों का शौक़ ही नहीं। यह सब अविद्या और दरिद्रता की बातें हैं। यहाँ लोग विज्ञापन द्वारा किस प्रकार अपनी चीज़ की प्रख्याति करते हैं, इस पर हम कभी एक लेख लिखेंगे। अस्तु। इन पतंगों पर हमने बड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े अक्षरों में "Read Daily Chronicle" (डेली क्रानिकल पत्र पढ़ो) "Read Daily Mail" (डेली मेल पढ़ो) "Answers" (एक साप्ताहिक पत्र का नाम) "Use Day and Martin's bootpolish" डे ऐंड मारटीन का बूट का रोग़न काम में लाओ-इत्यादि विज्ञापन पाये। इस प्रकार के विज्ञापन यहाँ के बड़े बड़े मेले ठेलों, घुड़दौड़ इत्यादि में बहुधा दिखाई देते हैं। कुछ दिन हुए सफरेजिस्टों (Suffragists) ने प्रख्याति प्राप्त करने को एक विमान (Balloon) उड़ाया था, जिस पर से सहस्रों विज्ञापन जहाँ जहाँ से निकलीं नीचे बरसाती गईं।

कैनवे टापू।

इस टापू को हम एक बार ख़ास देखने को गये थे। इसकी लम्बाई चौड़ाई १० मील के भीतर है। यह एक मैदान सा है। बीच में, विशेष कर टेम्स नदी के किनारे की ओर, चार पाँच हज़ार आदमियों की बस्ती है। टापू के चारों ओर टेम्स नदी है। यह टापू क़रीब उसी जगह है जहाँ टेम्स नदी समुद्र में मिलती है। इसलिए इस समुद्र के भी धक्के खाने पड़ते हैं। इस टापू में पुराने समय के बचे खुचे डच (Dutch) लोग आ बसे थे। ये लोग बाँध बाँधने में बड़े प्रवीण होते हैं। अतएव अँगरेज़ों ने इन्हें समुद्र का कोप रोकने को दीवारें बनाने को वहीं बसा दिया। इसलिए ये सब बाँध की मरम्मत इत्यादि पर अपना निर्वाह कर रहे हैं। थोड़ी सी खेती भी करते हैं। गाँव में एक छोटा सा स्कूल है। प्राचीन काल की दो झोपड़ियाँ अभी तक वहाँ बनी हैं। ये १६ वीं और १७ वीं सदी में बनाई गई थीं। देखने में गोलाकार हैं। दूर से कंडों के बिटे से दिखाते हैं। ऊपर फूस छाया है। दोनों को हमने भीतर जाकर देखा। लोगों ने बड़े प्रेम से हमारा स्वागत किया। यहाँ वहाँ की बातों के बाद एक अँगरेज़ भी आ पहुँचा, जो हमें देख कर बड़ा प्रसन्न हुआ। बातें हिन्दी में करने लगा। यह आदमी कई महीने की छुट्टी लेकर यहाँ अपने रिश्तेदारों से मिलने आया था। कहने लगा कि मैं अम्बाले में बैन्ड मास्टर था। मैं जल्द भारत जाया चाहता हूँ। इस देश में बुरा लगता है। भारत की तरह यहाँ कहाँ वे आराम मिलते हैं; इत्यादि। बाहर आने पर एक और मिला जो भारत में सिपाही था। कहने लगा वहाँ बारकों में पड़ा पड़ा आनन्द करता था। अब यहाँ रेल में दिन रात कुलीगीरी करते करते जान जा रही है। हाय! मैंने क्यों नौकरी छोड़ी। इन छोटे छोटे उदाहरणों से ज्ञात होगा कि यहाँ के लोग भारत में रहना कितना पसन्द करते हैं। यहाँ पर ऐसों की मौत है। विषय को छोड़ कुछ बाहर हो गया हूँ। क्षमा कीजिए।

अगले रास्ते की बातें।

कैनवे टापू से चल कर दोनों ओर बड़े बड़े जहाज़ दिखाई देने लगे। कुछ दूर बढ़ कर साउथ-ऐन्ड South-end का Pier (पुल) दिखाई दिया। यह पियर दुनिया के सब पियरों से लम्बा समझा जाता है। पियर से मतलब ठीक पुल का नहीं है; पर ऐसे पुल का है जो समुद्र के कुछ उथले स्थान तक बाँधा जाय, ताकि बड़े बड़े जहाज़ उसके निकट आ कर यात्री उतार बिठा सकें। इस पियर पर जाने के लिए फाटक पर एक आना देना पड़ता है। इसकी लम्बाई पौन मील है। पक्का लोहे का बना है। ऊपर दुहरी सड़कें हैं। एक पैदल आने जानेवालों के और दूसरी ट्राम के लिए, जो सदैव चला करती हैं। मामूली दिनों में इसका आने जाने का किराया दो आने रहता है; पर ऐसे मौक़े पर किराया बढ़ा दिया जाता है। वह बिजली द्वारा चलती है। ७०, ८० आदमी ले जाने को स्थान रहता है। पर अब की बार कुछ और गाड़ियाँ जोड़ी गई थीं। सुना है, प्रति दिन की आमदनी ४०० पौंड थी। अर्थात् ६०००) रुपये। पियर पर खाने पीने का प्रबंध है। बीच में नाटक घर भी है। थोड़ी थोड़ी दूर पर स्टेशन बने हैं, जहाँ थके हुए यात्री विश्राम करते हैं। बड़ा डर था कि तमाशा देखने वालों के बोझ से कहीं पियर की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

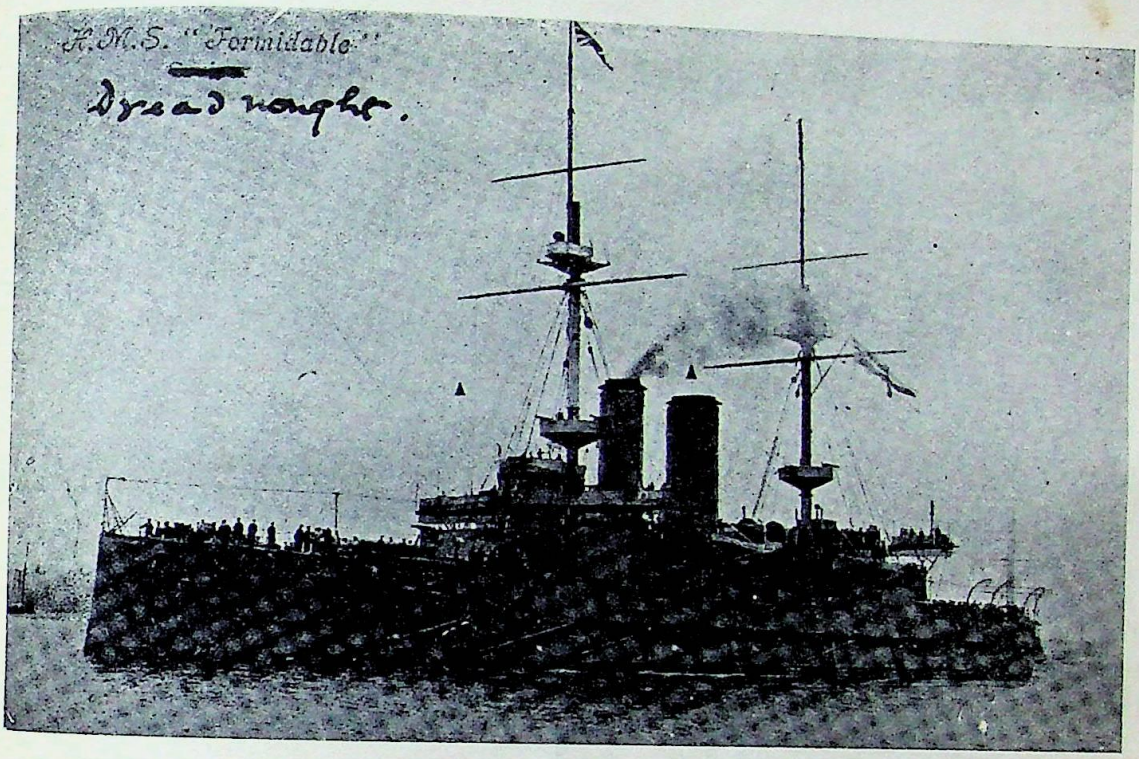

ड्रैङ्ग नाट ।

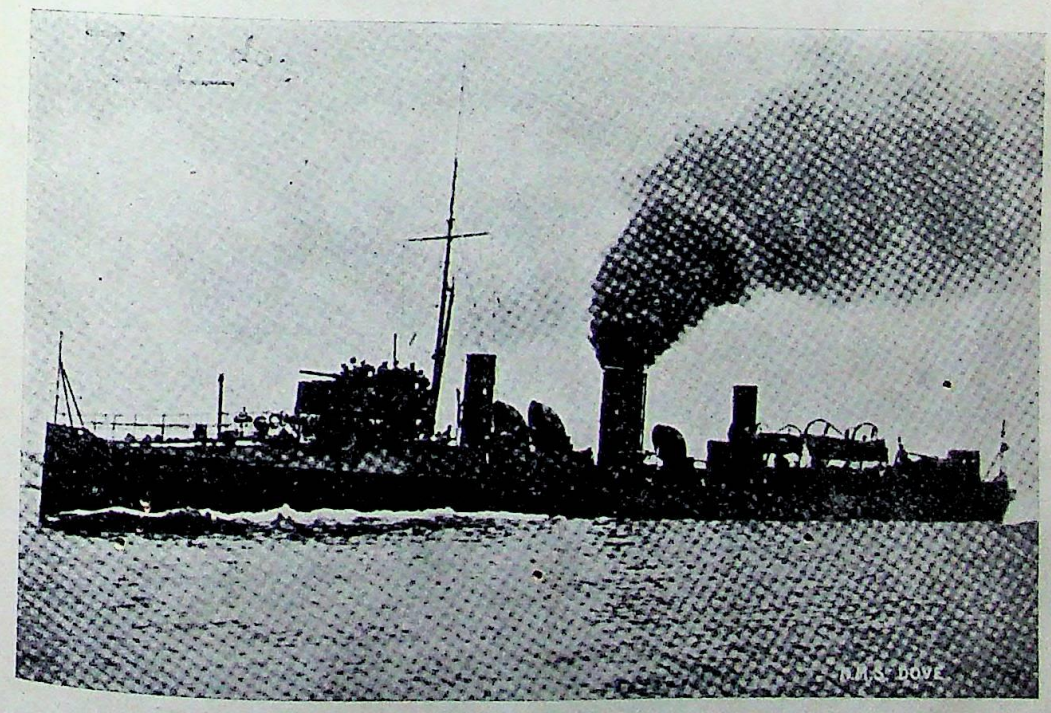

टारपीडो ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

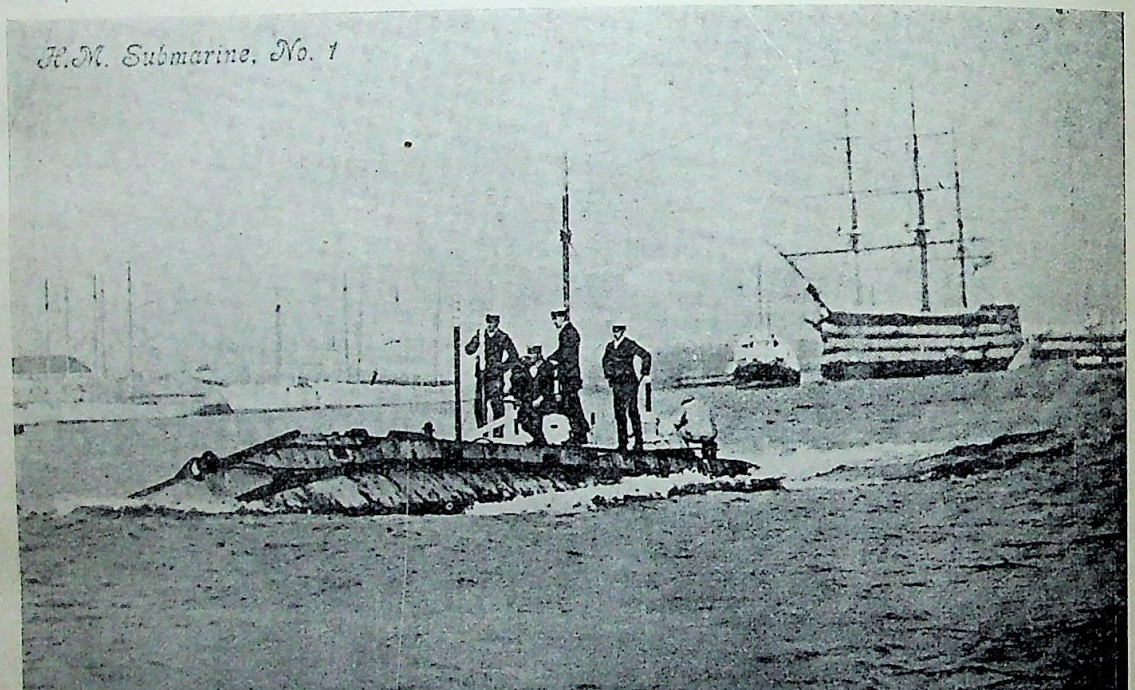

सब मैरीन ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीठ न टूट जाय, पर सब कुशल रही। इस पियर के छोर से सहस्रों लोग जहाज़ देखने को उतरते, चढ़ते दिखाई दिये।

जहाज़ों का जमाव।

छोटे बड़े कुल १५० जहाज़ थे। इनके बनने में १० करोड़ पौंड लगे हैं। इनके कर्म्मचारियों की संख्या ४० हज़ार है। तिस पर भी यह पूरी जल-शक्ति नहीं है। इतनी ही और है जो कई जगह फैली हुई है। एक हज़ार वर्ष पहले अँगरेज़ों के पास एक भी जहाज़ न था। पीछे छोटी छोटी किश्तियाँ निकाली गईं जो दो सौ फ़ुट से अधिक लम्बी न थीं। विलायत टापू होने से अँगरेज़ों के खाने पीने की चीज़ें बाहर से लाने की आवश्यकता होती थी। अभी तक बहुत से खाद्य पदार्थ बाहर ही से आते हैं। यहाँ लोहे, कोयले और पत्थर के सिवा खाने की चीज़ें बहुत ही कम होती हैं। तिस पर भी यहाँ के स्वदेशी लोग बाहरी चीज़ों का बायकाट करना चाहते हैं। धीरे धीरे दूसरे देशों से व्यापार बढ़ चला। इस कारण अधिक जहाज़ बनाने की आवश्यकता हुई। सातवें हेनरी के समय में जल-शक्ति ने कुछ ज़ोर पकड़ा। पहला जहाज़ १५ हज़ार पौंड में तैयार हुआ। कुछ काल में इसका ऐसा ज़ोर हुआ कि स्पेन के जंगी जहाज़ों को जल-संग्राम में इतर बितर कर डाला। अब दिन प्रति दिन इस शक्ति की तरक्की हो रही है। इस समय इनके पास ८ भारी जंगी जहाज़ है। इन्हें Dreadnought (ड्रैडनाट) अर्थात् "किसी से न डरनेवाले" कहते हैं। इन पर ४० से पचास तक छोटी बड़ी भयंकर तोपें रक्खी हैं। लड़ाई के समय ये तोपें बड़ी आसानी से चाहे जिस ओर घुमाई जा सकती हैं। यहाँ के ६ और ड्रैडनाट बनाने के लिए चिल्ला रहे हैं। क्योंकि जर्मनी का बड़ा डर है। इसलिए ४ और बनेंगे। और जो चार इनके बाद बनेंगे। ये लोग चाहे कितने ही किसी से डरें, पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि जल-शक्ति में इनकी बराबरी कोई देश नहीं कर सकता। अँगरेज़ लोग बड़े डरपोक हैं और भेड़ियों की भाँति किसी भी नई बात के पीछे आँख मीच कर पड़ जाते हैं। कुछ दिन हुए एक फ़रासीसी ने English Channel (इंग्लिश चैनल) को एक छोटी सी व्योम-नौका में उड़ कर पार किया। तबसे इन्हें यह डर लग गया है कि कहीं ऐसा न हो कि हर एक विदेशी इस तरह हमारे देश पर आक्रमण करने लगे। अभी तक इँग्लिश चैनल के कारण ये लोग अपने को बहुत सुरक्षित समझते थे। पर जब लोग हवा में उड़ कर आने लगे तब कोई बाधा बीच में न रही। इसलिए उस फ़रासीसी की देखा देखी, इस तरह की उड़नेवाली नौकायें बनाने और उनमें उड़ना सीखने के लिए यहाँ एक कारख़ाना खोला गया है और लोगों को उत्साहित करने को बड़ी बड़ी इनामें बोली गई हैं। कुछ दिन हुए इँगलिश चैनल को कोल कर नीचे नीचे डोवर से कैले तक रास्ता बनाने का बड़ा शोर मचा था; पर फ़रासीसियों के डर के मारे उस बात को छोड़ देना पड़ा। इन ड्रैडनाटों को देखने के बाद हम लोगों ने Cruisers, (क्रूज़र) Torpedoes, (टारपीडो) और Submarines (सब मरीन) देखे। ये कुछ छोटे हैं; पर बड़े भयानक गिने जाते हैं। विशेष कर टारपीडो और सबमरीन। इनकी मार पानी के नीचे नीचे होती है। टारपीडो और सबमरीन काली काली होती हैं। सबमरीन का थोड़ा सा भाग पानी के ऊपर रहता है, शेष नीचे। इनके चलाने के लिए बड़ी सावधानी की ज़रूरत है। इनमें से एक जहाज़ फट पड़ा था, जिसने कितनेही आदमियों के प्राण लिये। जापान की देखा देखी अँगरेज़ों ने टारपीडो और सबमरीनों में बड़ा सुधार किया है। जंगी जहाज़ों के आस पास एक लोहे का जाल लगा रहता है, जो लड़ाई के समय नीचे पानी में छोड़ दिया जाता है, ताकि यदि कोई सबमरीन नीचे हो तो उसे नुक़सान न पहुँचे। टारपीडो की क़ीमत ५०० से हज़ार पौंड तक होती है। इसी प्रकार सबमरीन की। जहाज़ों के आस पास छोटी छोटी डोंगियाँ लटकी रहती हैं, जो समय पड़ने पर तुरंत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीचे लटका दी जाती हैं। इन्हें (लाइफ़ बोट) Life-boats कहते हैं। पास ही इनके एक प्रकार की मशाल रक्खी रहती है जो कोई दुर्घटना होने पर आप से आप पानी में गिरकर उजेला कर देती है। यदि कोई मनुष्य गिर पड़े तो इस उजेले से उसी समय दिखाई देने लगता है। इससे उसके बचाने में आसानी होती है। जहाज़ी नौकरों की पोशाकें नीली होती हैं। पायजामा इनके अफ़ग़ानी पायजामों का मुक़ाबला करते हैं। चलते समय अच्छी हवा आती है और कुछ फर्र फर्र की आवाज़ होती है। हर एक के कोट या टोपी पर बटननुमा या और दूसरे प्रकार का चिह्न बना रहता है, जिसे देखने से उसके पद का हाल मालूम होता है। सब कर्मचारी—छोटे बड़े—डाढ़ी मूंछ की सफ़ाई किये रहते हैं। सब हट्टे कट्टे दिखाई देते हैं। आगे चलकर कई ऐसे जहाज़ देखे जिन पर प्रत्येक कालोनी (Colony) अर्थात् उपनिवेश का नाम था। जैसे Hindustan (हिन्दुस्तान) Newzealand (न्युज़ीलेंड), Natal (नटाल), Africa (अफ़्रिक़ा), इस पर बैठ कर चैम्बरलेन साहब दक्षिण अफ़्रिक़ा का युद्ध देखने गये थे। इत्यादि। इनके एक ओर फुटों का हिसाब लगा था, जिससे मालूम होता था कि इनका कितना भाग पानी के नीचे है। कोई ३० कोई ३५ फुट के नीचे थे। रात को सब जहाज़ों में ख़ूब रोशनी होती थी। दूर से बड़े सुहावने दीखते थे।

इस तरह इस जहाज़ी जुलूस को देखकर हम कोई ११ बजे रात को घर लौटे। रूस के ज़ार जो हाल में यहाँ आये थे, वे भी इन समुद्री राक्षसों को देख दंग हो गये। वे समझते थे कि फ़्रांस में भी कुछ ज़ोर है; पर अँगरेज़ी जहाज़ों को देख उनका वह ख़याल जाता रहा।

प्यारेलाल मिश्र।

मक्खीचूस।

(१)

धनदीपम अत्यन्त असंख्यक धन का स्वामी,
किसी समय था वैश्य एक कमलाकर नामी।
थी अति अनुकरणीय कर्म्म में उसकी निष्ठा,
करते थे सब लोग नगर में बहुत प्रतिष्ठा॥

(२)

जाती सम्पद व्यर्थ न उसकी किसी काल थी,
सीधी सादी वही पुरानी चाल ढाल थी।
वैभव-मद-अपकीर्त्ति सभी थी उसने धोई,
धन-सम्बन्धी व्याधि लगी थी उसे न कोई॥

(३)

श्रीमानों के पुत्र अनेकों लाड़-प्यार में,
होने से स्वच्छन्द डूबते दुराचार में।
उसका पुत्र परन्तु पिता-सम शीलवान था,
सुत का आत्मज नाम सार्थ करता प्रमाण था॥

(४)

नव-परिणीता पुत्र-वधू भी उसकी प्यारी,
थी सुशील, गुणवती, कार्य-कुशला, सुकुमारी।
था परन्तु कुछ गर्व उसे वय के प्रभाव से।
कमलाकर था अज्ञ न उसके इस स्वभाव से॥

(५)

उसकी वह सुत-वधू समझती उसे कृपण थी,
इससे चिन्ता उसे लगी रहती प्रतिक्षण थी।
इस नवीन सभ्यता-समय में भी अनेक जन,
कहें कदाचित उसे वज्र लोभी मन ही मन॥

(६)

कारण-वश कुछ एक बार चाहा घृत उसने,
देखी उसमें पड़ी एक मक्खी मृत उसने।
अतः वधू के ही समक्ष घृत से निचोड़ कर,
फेंका उसने अलग उसे फिर दूर भूमि पर॥

(७)

इस घटना को देख बहू का माथा ठनका,
बड़ा विलक्षण हाल होगया उसके मनका।
हुई श्वसुर पर अति विरक्त वह अपने जी में,
माना 'मक्खीचूस' उसे उसने पृथिवी में॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८)

लेने को तब प्रकृति-परीक्षा और श्वसुर की ,
बढ़ने उसकी लगी नित्य आतुरता उर की ।
शिरोरोग का अतः एक दिन लिये बहाना ,
किया बहू ने शुरू .खूब रोना-चिल्लाना ॥

(९)

तत्क्षण ही खलबली मच गई तब घर भर में ,
आने जाने लगे लोग सब ओर नगर में ।
वैद्य बुलाये गये न जाने कहाँ कहाँ से ,
चर्चा होने लगी इसीकी जहाँ तहाँ से ॥

(१०)

वैद्यों ने सब भाँति चिकित्सा तब कर छोड़ी ,
घटी न पीड़ा किन्तु बहू के सिर की थोड़ी ।
औषधि का तो योग रोग ही को होता है ,
वह मन का सङ्कल्प कहीं थोड़े खोता है ?

(११)

कमलाकर ने पुनः बहुत चिन्ताकुल होकर ,
कहे बहू से वचन स्वयं इस भाँति मनोहर—
'और कभी था हुआ बहू ! क्या रोग तुझे यह ,
यदि हाँ, तो किस तरह घटी थी पीड़ा दुस्सह ?"

(१२)

सास-गोद में धरे शीश दुख से बिलखाती ,
बोली तब यों बहू श्वसुर से व्यथा जनाती—
'पिता-भवन में एक बार यह कष्ट हुआ था ,
तब गजमुक्ता-लेप लगे पर नष्ट हुआ था" ॥

(१३)

सुनते ही यह बात बहू की, मनमें हँस कर ,
कमलाकर उठ गया कोष अपने में सत्वर ।
ले आया फिर वहाँ अञ्जली भर गजमोती ,
जग मग जग मग जाग रही थी जिनकी ज्योती ॥

(१४)

उसके विमल-करस्थ सोहते थे वे ऐसे ,
खिले कमल पर टूट पड़े हों तारे जैसे ।
उन्हें देख कर हुई बहू मनमें विस्मित सी ,
उनकी द्युति से दृष्टि हो गई उसकी सित सी ॥

(१५)

"इसी तरह के थे न बहू ! वे गजमुक्ता वर ?"
कह कर ऐसे वचन स्वयं उससे कमलाकर ।
डाल खरल में लगा पीसने उनको ज्योंही ,
पकड़ लिया कर शीघ्र बहू ने उसका त्योंही ॥

(१६)

"रहो, रहो, बस तात ! मिट गया दुख सब मेरा ,
होकर स्वस्थ शरीर पा रहा सुख अब मेरा ।
दूर हुआ भ्रम आज मिटा अज्ञान-अँधेरा ,
क्षमा कीजिए, दोष किया मैंने बहुतेरा ॥

(१७)

"मक्खी को अवलोक तुम्हें घृत से निचोड़ते ,
इस प्रकार का घृणित कार्य करते न छोड़ते ।
निकला 'मक्खीचूस' शब्द था मेरे मुख से ,
तथा हुआ था हृदय बहुत ही चिन्तित दुख से ॥

(१८)

"किन्तु आज हो गया तिरोहित संशय सारा ,
सञ्चय-व्यय का उचित नियम मैंने निर्धारा ।
था उस दिन का कार्य जुगुप्सा-कारक जितना ,
उसके बिना प्रभाव न पड़ता मुझ पर इतना ॥

(१९)

"कण भर कोई वस्तु व्यर्थ जाने न दीजिए ,
तथा समय पर लोभ कहीं कुछ भी न कीजिए।
घृत निचोड़ना और मोतियों वाली घटना ,
ये दोनों दृष्टान्त चाहिए इसके रटना" ॥

(२०)

कमलाकर के सदृश कहो तो हे वाचक-वर !
कितने 'मक्खीचूस' मिलेंगे आज यहाँ पर ?
अब तो यों हो रहा हाय ! अति ही अनर्थ है—
जाता प्रायः सभी हमारा द्रव्य व्यर्थ है !

मैथिलीशरण गुप्त ।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज एडवर्ड और उनकी महारानी के रविवार के कार्य्य।

साई देशों में रविवार के दिन छुट्टी होती है। रविवार एक तेहवार का दिन समझा जाता है। ईसाई धर्म्म के अनुसार ईश्वर ने सृष्टि रचने के अनन्तर रविवार को आराम किया था। स्त्री-पुरुष कोई भी रविवार को कोई और कार्य्य नहीं करते; किन्तु उस दिन को धर्म्म-सम्बन्धी कार्य्यों में लगाते हैं। सरस्वती के पाठकों के जानने के लिए आज हम यह बतलाते हैं कि महाराज एडवर्ड और महारानी एलग्ज़ेन्डरा रविवार के दिन को किस प्रकार व्यतीत करते हैं।

महाराज और महारानी दोनों इस बात का यत्न करते हैं कि रविवार को कोई राज्य-सम्बन्धी अथवा सामाजिक काम न किया जाय, किन्तु यथासम्भव आराम किया जाय। जब महाराज और महारानी बकिंहम महल में होते हैं तब कुनबे के सारे स्त्री-पुरुष सबेरे सात बजे उठते हैं। मगर रविवार को सब आठ बजे शय्या छोड़ते हैं। महाराज और महारानी नौ बजे अपने कमरों में प्रातःकाल का भोजन करते हैं। तत्-पश्चात् महाराज अपनी अत्यावश्यक चिट्ठियाँ पढ़ते हैं। उनकी आज्ञा है कि कोई पत्र जो अत्यन्त ज़रूरी न हों उनके सामने रविवार को न लाये जायँ। महारानी भी प्रातःकाल के भोजन के पीछे अपने अत्यन्त आवश्यक पत्रों को पढ़तीं और उनका उत्तर देती हैं। महारानी बहुधा रविवार को अपने सेक्रेटरी अथवा मन्त्री से कोई काम नहीं लेतीं; किन्तु स्वयं ही ज़रूरी पत्रों का उत्तर देती हैं।

साढ़े ग्यारह बजे महाराज और महारानी दोनों अपने घर के कुटुम्बियों के संग प्रार्थना के लिए अपने ख़ास गिरजाघर में एकत्र होते हैं। इस गिरजाघर में सर्वसाधारण को आने की आज्ञा नहीं। परन्तु किसी किसी समय महाराज के कुटुम्बियों को अपने प्रेमी मित्रों को बुला लेने की आज्ञा दी जाती है। यह आवश्यक है कि प्रत्येक पुरुष और स्त्री प्रार्थना आरम्भ होने से पाँच मिनट पहले अपनी अपनी जगह पर आ जायँ। महाराज और महारानी स्वयं भी सदा नियत समय से पाँच मिनट पहले आते हैं। प्रार्थना समाप्त होने के पश्चात् यदि मौसम अच्छा होता है तो महाराज और महारानी, दोनों, महल के उपवन में घूमने के लिए चले जाते हैं। किसी किसी समय युवराज भी अपने कुटुम्बियों को लिये हुए उनके साथ ही घूमने जाते हैं। डेढ़ बजे सब मध्याह्न काल के भोजन के लिए लौटते हैं। इस समय राजकुल के पुरुषों के सिवा कोई उपस्थित नहीं होता। छोटे राजकुमार और उनकी भगिनी राजकुमारी मेरी सदा रविवार को बकिंहम महल में महाराज और महारानी को साथ ही मध्याह्न काल का भोजन करते हैं। परन्तु किसी किसी समय महाराज और महारानी के मार्लबरा हौस में भोजन के लिए जाने के कारण उनको अलग भोजन करना पड़ता है।

महाराज और महारानी रविवार का कुछ भाग अपने पौत्रों के संग व्यतीत करते हैं। उनके पौत्र और पौत्री सदा रविवार की इन्तज़ार में रहते हैं। कारण यह कि वे अपने पितामह और पितामही से वार्तालाप करके अत्यन्त प्रसन्न होते हैं।

कभी कभी महारानी रविवार को सायंकाल अपने किसी रोगी सम्बन्धी को देखने के लिए जाती हैं। राजकुमारी मेरी भी उनके साथ रोगी के लिए फल-पुष्पादि पदार्थ लेकर जाती हैं।

रविवार को रात के भोजन के समय बकिंहम महल में कोई धूमधाम नहीं होती। और रोज़ रात का भोजन साढ़े आठ बजे परोसा जाता है, परन्तु रविवार को आठ बजे ही परोस दिया जाता है। भोजन करने के लिए अत्यन्त घनिष्ठ मित्रों के सिवा रविवार को और कोई नहीं बुलाया जाता और न कोई गाने बजाने काही प्रबन्ध होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब कभी महाराज अपने किसी सम्बन्धी अथवा मित्र के यहाँ रविवार को भोजन के लिए जाते हैं तब वहाँ भी कोई धूमधाम नहीं होती। महारानी रविवार को मार्लबरा हौस के सिवा और कहीं बाहर भोजन के लिए नहीं जातीं। पर कभी कभी वे एक आध मित्र को बकिंहम महल में रविवार को बुला लिया करती हैं।

महाराज और महारानी दोनों सदा रविवार को लन्दन नगर के बाहर ही रहना पसन्द करते हैं। परन्तु किसी किसी बार उनको नगर में ही रहना पड़ता है। वे सदा सैंडरिंहम नामी गाँव में ही रविवार को रहना चाहते हैं। जब वे सैंडरिंहमवाले अपने महल में होते हैं तब वे रविवार का दिन सदा उसी प्रकार व्यतीत करते हैं जिस प्रकार और कुल अपने गाँव के घरों में रह कर व्यतीत करते हैं। रविवार को सैंडरिंहम में सदा दो चार मित्र और राज्यकुल के कुछ स्त्री-पुरुष सदा एकत्र होते हैं। एक पादरी भी महल-सम्बन्धी छोटे गिरजाघर में उपदेश देने के लिए बुलाया जाता है। अन्य महलों में महाराज और महारानी अपने निज के कमरों में प्रातःकाल का भोजन करते हैं; परन्तु सैंडरिंहम के महल में वे सदा अपने अतिथियों के साथ महल के उस बड़े कमरे में हाज़िरी खाते हैं जिसके द्वार नार्फोक की पहाड़ी (Norfolk Hills) की ओर हैं। सब स्त्री-पुरुष एक ही मेज़ पर भोजन करते हैं। महारानी मेज़ के एक सिरे पर बैठती हैं और महाराज दूसरे सिरे पर मध्यान्ह काल के भोजन के पश्चात् महारानी स्त्रियों को अपने पालतू पक्षी आदि दिखाने के लिए ले जाती हैं। वे फ़ाख़ता को बड़े स्नेह से पालती हैं। इन पक्षियों को देखने के बाद सायंकाल की चाय पी जाती है। तदनन्तर सब लोग भ्रमण के लिए जाते हैं। महाराज भी अपनी दुधारू गायों और भेड़ों को देखते हुए अतिथियों के साथ जाते हैं। वे रात के भोजन के लिए सैर से कुछ बजे लौटते हैं। कभी महारानी शाम की चाय और रात के भोजन के मध्यकाल में अपने सम्बन्धियों को पत्र लिखती हैं। महाराज के पास कभी कोई ज़रूरी तार भी आजाता है, जिसे उनका एक ख़ास हरकारा एक ख़ास संदूक़चे में लाता है।

यूरप के अन्य देशों के महाराज रविवार के दिन अपने मित्रों को बड़े ठाठ से भोजन कराते हैं। परन्तु महाराज एडवर्ड रविवार को कदापि कोई बड़ा भोज नहीं देते। कारण यह कि वे चाहते हैं कि उनके नौकर रविवार को आराम लें। उनको कोई काम न करना पड़े।

जब महाराज और महारानी रविवार को विदेश में होते हैं, अथवा कहीं किसी के अतिथि होते हैं, तब वे यथाशक्ति अपने समय को उसी प्रकार व्यतीत करते हैं जिस प्रकार वे अपने महलों में व्यतीत करते हैं। वे अपने आतिथ्यकार के नौकरों को किसी प्रकार की तकलीफ़ नहीं देना चाहते।

महाराज और महारानी धन्य हैं जो चक्रवर्ती राजा और रानी होकर भी रविवार के दिन को अपने धर्मानुसार व्यतीत करते हैं।

हरिप्रसाद (मैंचेस्टर)

अमरीकावालों की दुकानदारी।

अमरीका में हर एक क़िस्म के पेशे को वैज्ञानिक ढाँचा पहनाने का यत्न किया जाता है। किसी क़िस्म का काम हो, उसके स्कूल खुले हैं, जहाँ उक्त काम के लिए लोग तैयार किये जाते हैं। अमरीका तिजारती देश है। जो चीज़ें कलों द्वारा तैयार होकर बाज़ारों में बिकने आती हैं वे कैसे जल्दी और सहज में बेची जा सकती हैं, इसके नये नये ढंग हैं। जो उन ढंगों से वाक़िफ़ है वही अपना माल ख़ूब बेच सकता है। बड़ी बड़ी कोठियों की ओर से ऐसेही लोग नियत रहते हैं जो दूकान, बाज़ार, देहात तथा नगरों में घूम घूम कर सौदा बेचते हैं। इनको अँग-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेज़ी में सेलसम्यन (Salesmen) कहते हैं। अपनी भाषा में, जो दूकान पर सौदा बेचनेवाले रहते हैं उनको गुमाश्ते, और घूम कर बेचनेवालों को फेरीवाले कहना ठीक होगा। ख़ैर मेरा काम यहाँ पर गुमाश्तों से है। ये लोग ग्राहक को सौदा बेचने में बड़े उस्ताद होते हैं। कोई ग्राहक ख़ाली न जाय, यही इनका सिद्धान्त रहता है। सियेटल में एक बार मैं कार्य्य-वश विश्वविद्यालय से शहर गया। दो बजे दिन का समय था। काम पूरा करके मैंने सोचा कि आज फ़ुरसत है, किसी दूकान में घूम कर कोई 'सूट' ठीक करें। मेरे पास एक ही सूट था जो तीन साल लगातार पहिनने से काम लायक़ नहीं रहा था। पास ख़रीदने को पैसा तो था नहीं, मगर मैंने यह सोचा कि काम लायक़ एक जोड़े की क़ीमत मालूम हो जाने से रुपये का प्रबन्ध कर लूँगा। यह विचार कर मैं एक बहुत बड़ी दुकान में घुसा। इस दुकान में भी, जैसा कि अमरीका के दुकानदारों का क़ायदा है, अच्छे अच्छे सूट कम क़ीमत की चिट्ठियाँ लगाकर शीशे की खिड़कियों में बाहर घूमनेवालों को फँसाने के लिए रक्खे हुए थे और असल में मैं भी बाहर से ही कम क़ीमत देख कर ख़ाली जेब ही दुकान के अन्दर घुस गया था। एक बाँके रसीले ने मुझे और मेरे कपड़े देखे तो भाँप गया कि इसको सूट की सख़्त ज़रूरत है और बड़ी नम्रता से आकर मुझ से पूछा :—

बाँका—आपको सूट की ज़रूरत है ?

मैं—हाँ।

बाँका—कैसा सूट आपको दरकार है ?

मैं—ऐसा ही काम लायक़।

"अच्छा आइए"—कह कर वह मुझे जहाँ सूट रक्खे हुए थे ले गया और एक रद्दी सूट निकाल कर मुझे पहनाने लगा।

मैं—मुझे यह सूट न चाहिए।

बाँका—आप पहनिए तो सही, बहुत अच्छा नफ़ीस सूट है।

मैं—नहीं, मुझे यह न चाहिए।

इस पर उसने एक अच्छा सूट निकाल कर मुझे दिखाया और कहा:—

बाँका—"यह तो आपको ज़रूर ही पसन्द होगा। २५ डालर का यह सूट है; आपको बीस में ही दे देंगे।

मैंने इस तरह के सूट बाहर के शीशों से दस डालर दाम पर लिखे देखे थे। जब उस धूर्त ने दस डालर के सूट के बीस बताये तो मैंने दिल में सोचा कि क्यों समय खोते हो। अपने पास रुपया नहीं है और अगर हो भी तो इससे दाम न पटेगा। बेहतर है किसी जानकार के साथ आवेंगे। यह मन में सोच मैंने बाहर जाने का रुख़ किया। मगर वह बाँका जवान कहाँ जाने देता था। वह बोला :—

"आइए साहिब, आपको यह पसन्द नहीं तो दूसरा सूट दिखलाता हूँ। यहाँ हर तरह के सूट हैं"

उसने यह सब ऐसे ढंग से कहा कि मैं उसके साथ और सूट देखने में लग गया। जब वे सूट मेरे पसन्द न आये और मैंने उससे कहा कि मुझको जाने दो, फिर कभी आकर देखूँगा, तब वह एक अजीब तरीक़े से मुझको अपने साथ ले चला और मीठी मीठी बातों में उसने लगा लिया। उस समय मैंने सोचा कि आज अमरीका के फेरीवालों तथा दुकान-दारों के हथकंडे देखते चलो। पैसा तो बन्दे के पास है ही नहीं। यह सोचता और बातें करता मैं उसके साथ चलाही तो गया।

उस दुकान के दूसरी तरफ़ बहुत सा माल रक्खा था और वहाँ भी चालाक गुमाश्ते ग्राहकों का सिर मूँड़ने में व्यस्त थे। उस बाँके वीर ने मुझे एक बहुत ही निपुण बेचनेवाले के सिपुर्द किया और मेरा परिचय करवाकर कहा कि इनको सूट दिखला दो। मैंने भी चित्त में कहा—अच्छा धूर्तो! तुम मेरा भी समय खोवोगे और अपना भी। ख़ैर, वह लगा सूट दिखलाने।

उसने तरह तरह के सूट दिखलाने शुरू किये और लगा बातों में मुझे रिझाने। पर यहाँ तो जेब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

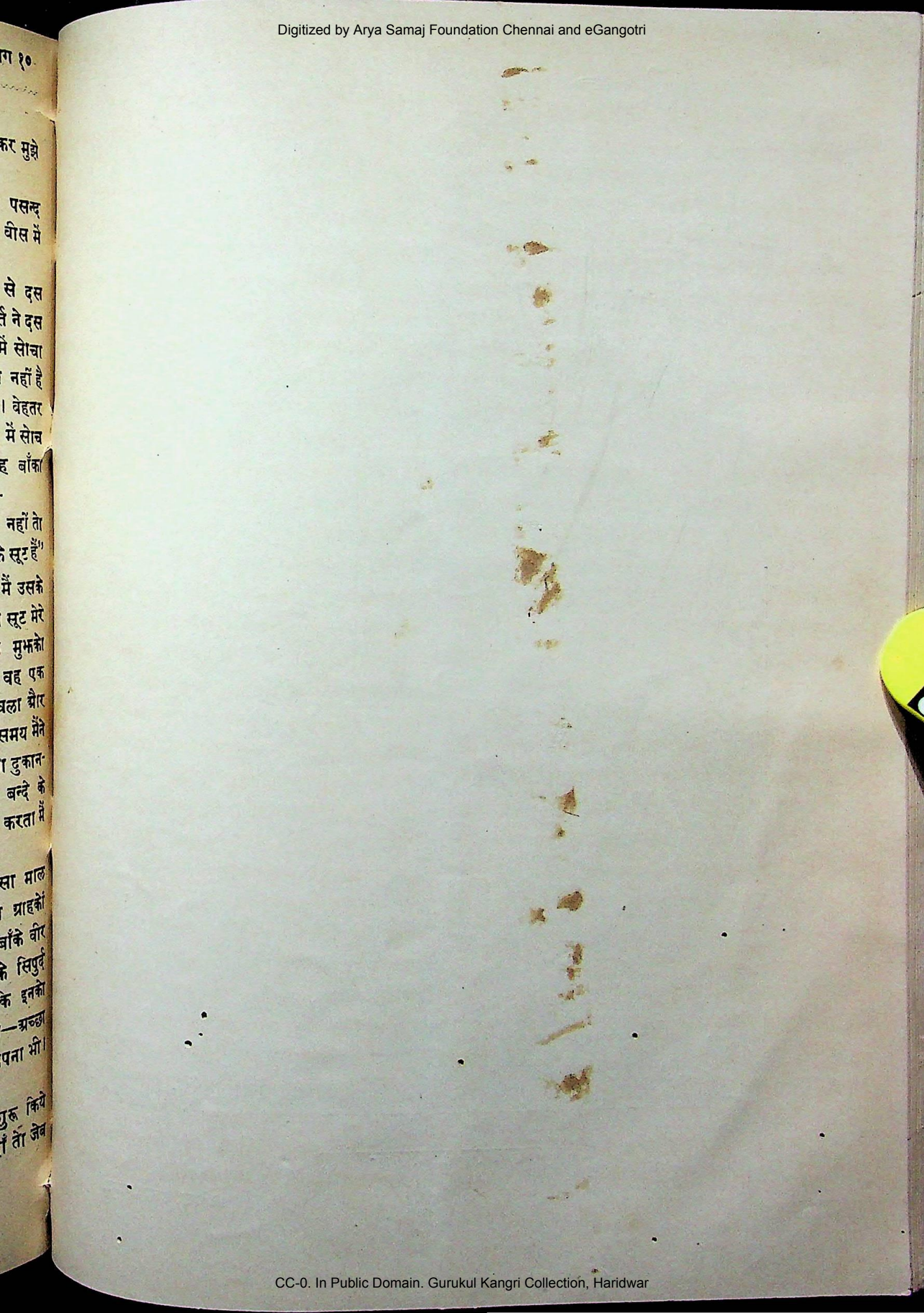

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

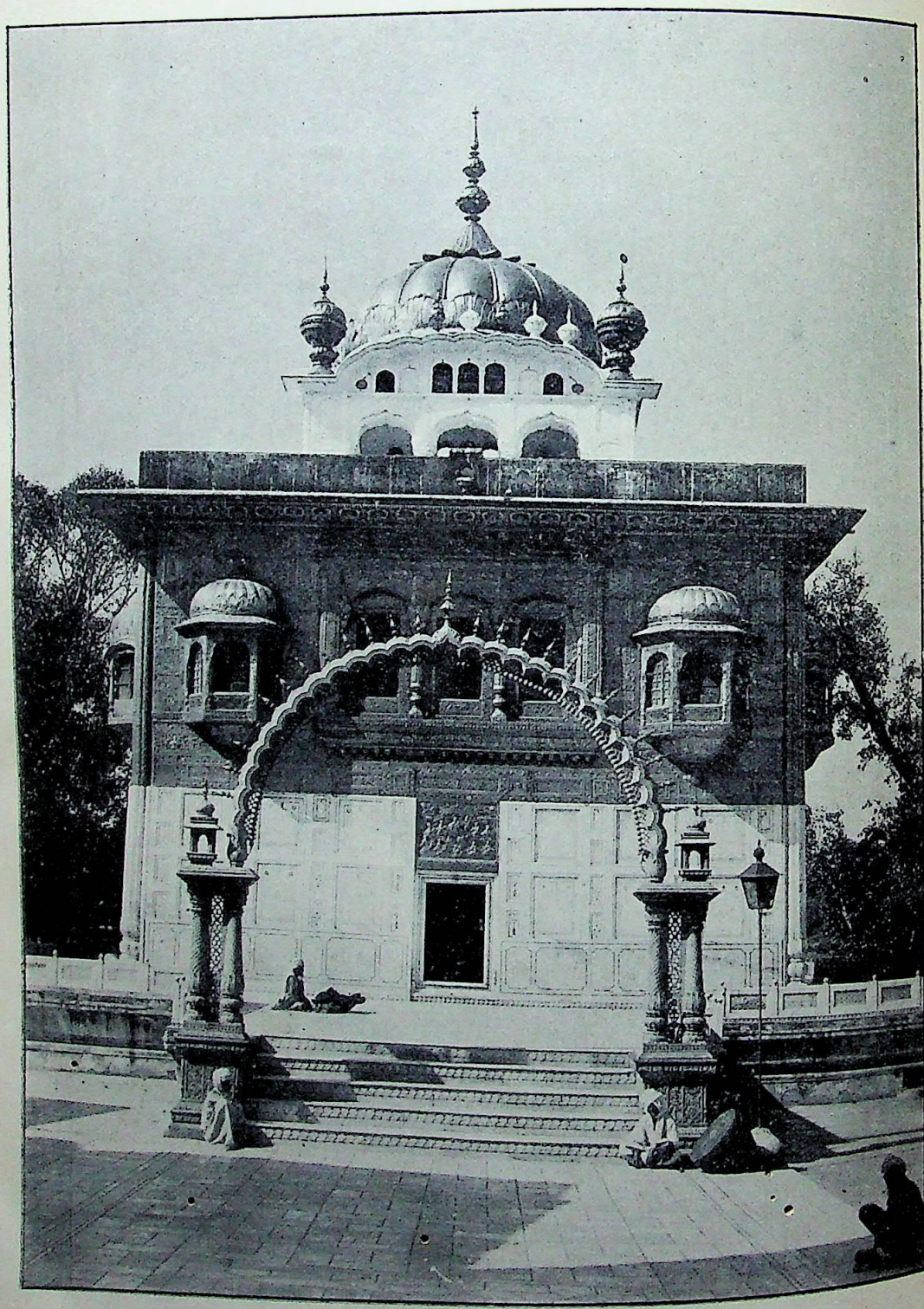

तरनतारन का श्रीगुरु-मन्दिर।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरनतारन का तालाब और मीनार।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी ख़ाली थी रीझते तो कैसे रीझते। ख़ाली जेब, कोई न कोई नुक्स सूट में निकाल ही देते। जब वह सूट दिखाता दिखाता परेशान हो गया तब झुंझला कर बोला—

गुमाश्ता—आपको कैसा सूट चाहिए। कुछ मुँह से भी तो कहिए।

मैं (मुसकुराकर)—ख़फ़ा न हूजिए हज़रत! मुझे अब जाने दीजिए। मेरी मरज़ी के लायक़ चीज़ मिलेगी तो दाम देकर ले लूँगा।

गुमाश्ता—आप मेरी नौकरी छुटाने तो यहाँ नहीं आये?

मैं (ज़रा हैरानी से)—यह कैसे?

गुमाश्ता—क्यों नहीं? यदि मैं आपको सूट न बेच सका तो मेरा मालिक समझेगा कि मैं इस काम के लायक़ नहीं हूँ और मुझे निकाल देगा। (नम्रता से) आइए, आप दूसरा सूट देखिए।

फिर वह लगा सूट दिखलाने।

मैंने उससे कहा कि जिस क़िस्म का मैं सूट चाहता था वैसा दस डालर के दाम का बाहर खिड़कियों में है। पर वैसे सूट के यहाँ तुम लोग पन्द्रह और बीस डालर माँगते हो। उसने जवाब दिया—

"उस कपड़े और इस कपड़े में फ़रक़ है"

अब फ़रक़ का झगड़ा कौन करे। जब उसने देखा कि वह मुझे कोई सूट बेच नहीं सकता और कोई भी सूट मेरे पसन्द नहीं आता तब दूसरे दरजे के पास लेजाकर मुझसे ग़ुस्से से बोला:—

"अच्छा जाइए। अगर आप जैसे दो चार गाहक आ जायँ तो हमारी दूकानदारी खाक़ही में मिल जाय।"

"मैं तो पहले ही जाता था। आप लोगों ने मेरा भी समय नष्ट किया और अपना भी"

सत्यदेव (अमरीका)

तरन-तारन का श्रीगुरु-मन्दिर।

अमृतसर ज़िले में तरनतारन नाम का एक छोटा सा क़सबा है। अमृतसर से वह १३ मील है। वहाँ सिक्खों का एक पवित्र तालाब और गुरुद्वारा है।

तरनतारन में कोई चार हज़ार आदमी रहते हैं। इसके बसानेवाले सिक्खों के पाँचवें गुरु अर्जुन साहिब थे। इनका बड़ा भाई पृथ्वीचन्द्र इनसे बहुत ईर्ष्या-द्वेष रखता था और नित्य नये झगड़े उठाया करता था। इसी कारण शिष्यों के अनुरोध से, सं० १६४६ वि० में, अमृतसर छोड़कर गुरुजी बाहर चले गये और भिन्न भिन्न जगहों में घूमते रहे। फिर गोयन्दवाल, खण्डूर, सरहाली और चोला आदि गाँवों से होते हुए खारी नाम के प्रान्त में पहुँचे और वहाँ का जल-वायु अच्छा समझ कर वहीं रहने लगे। कुछ समय पीछे वहाँ के हाकिमों से कुछ भूमि लेकर उन्होंने शहर की बुनियाद डाली और उसका नाम तरनतारन रक्खा।

विक्रम संवत् १६४९ में वहाँ पर उन्होंने एक बड़ा तालाब खुदवाया। उसे बँधाने के लिए ईंटें पकाई गईं। जब कुछ ईंटें पक गईं तब इनके भाई पृथ्वीचन्द्र के अनुरोध से अमीरदीन नामक हाकिम ने सरकारी काम, अर्थात् नूरुद्दीन की सराय के लिए वे सारी ईंटें लेलीं। इस पर अर्जुन जी चुप हो रहे।

यह देख कर शिष्यों ने कहा कि गुरुजी, इस हाकिम ने बड़ा अन्याय किया जो आपकी ईंटें सरकारी काम के लिए ले लीं। गुरुजी बोले कि भाई हमारी ईंटें हमारे काम के लिए काफ़ी न थीं। इतनी ईंटों से काम न होता। कई दफ़े उतनी उतनी ईंटें तैयार करानी पड़तीं। हम लोगों को काल की अपेक्षा करना चाहिए। जहाँ ये थोड़ी सी हमारी ईंटें गई हैं वहाँ और भी लाखों ईंटें लग रही हैं। संभव है कि हमारी ईंटें उन सबको साथ लेकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर यहाँ आजायँ। गुरुजी की यह बात सुन कर शिष्य लोग चुप हो गये।

कालचक्र के प्रभाव और परमेश्वर की इच्छा से सं० १८२३ में वैसाही हुआ। सरदार भोलासिंह और सरदार यशःसिंह रामगढ़िये का जब प्रताप चमका तब उन्होंने मिल कर उस सराय को खुदवा डाला और उसकी सब सामग्री तरनतारन के तालाब में लगवा दी। उन्होंने तालाब के पूर्वी किनारे पर एक मनोहर गुरु-मन्दिर भी बनवा दिया। इसके बाद महाराजा रणजीतसिंह और कुँवर नवनिहालसिंह ने इस तालाब के पूर्वोत्तर कोने पर एक बहुत ऊँचा मीनार तैयार कराया और तालाब को ऐसा सुन्दर बनवा दिया कि जो उसे एक बार देखे उसे बार बार उसके देखने की इच्छा हो।

इस मन्दिर के ऊपरी भाग पर ताँबे के पत्र पर बड़ी उत्तम रीति से सोने का मुलम्मा किया हुआ है। नीचे का भाग ऐसी उत्तमता से रँगा हुआ है कि देखतेही बनता है। बाहर की दीवारों पर देवताओं के अनेकानेक मनोमोहक चित्र बने हुए हैं।

मन्दिर के भीतर एक तरफ़ रेशमी वस्त्रों से बँधा हुआ सिक्खों का धर्म्मग्रन्थ (ग्रंथसाहिब) रक्खा है, जिस पर समय समय पर पुजारी लोग चँवर ढालते हैं और उसकी आरती करते हैं।

सिक्खों के समय में मन्दिर के ख़र्च के लिए २५१८ गाँवों की जागीर लगी हुई थी। परन्तु अब केवल तीन हज़ार रुपये है। उसका प्रबन्ध सरकार ने भाई बस्तीराम और भाई रामसिंह आदि सत्पुरुषों के अनुरोध से किया था। यह जागीर वहाँ रहनेवाले कुष्ठियों के अन्न-वस्त्र के लिए है। इस तीर्थ में पञ्जाब के हज़ारों कोढ़ी दूर दूर से आकर रहते हैं। ऐसा कहते हैं कि जो कोढ़ी इस तालाब में प्रति दिन श्रद्धा से स्नान करता है उसका कुष्ठ जाता रहता है। इसीसे इस पवित्र तालाब का नाम "तरनतारन" है।

यद्यपि प्रत्येक मास की अमावास्या को इस तीर्थ में सहस्रों स्त्री-पुरुषों का मेला होता है; परन्तु चैत्र और भाद्रपद की अमावास्या को बहुतही बड़ा जमाव होता है और दूर दूर से यात्री आते हैं।

तालाब के इधर उधर सरदारों के बुङ्गे हैं। इस पवित्र तालाब में कोई अपवित्र वस्त्र नहीं धो सकता और न कोई जूता पहनकर जा सकता है।

जगन्नाथ पुच्छरत।

चित्र-चिंतवन।

राधा और कृष्ण।

धा और कृष्ण का चित्र जो सरस्वती के भाग १०, सं० ४, में छपा है मैंने ३०, ३५ वर्ष पहले टाड-राजस्थान में देखा था। तभी से मैं इस बात की खोज में लगा था कि यह चित्र कहाँ से टाड को मिला। निदान प्रायः १० वर्ष बाद एक ब्रह्मचारी विचरते हुए मेवाड़ की ओर से आनिकले। उनकी अवस्था उस समय ८० वर्ष के लग भग थी। मैंने उनकी बातें सुनकर वह चित्र उनको दिखाया और पूछा कि इसे आपने पहले भी कहीं देखा है। उन्होंने कहा कि अब से ६० वर्ष पहले मैं श्रीनाथद्वारे गया था। वहाँ एक हरि-भक्त थे जिनके पास कृष्णलीला के कई चित्र थे। वे उनके दर्शन करा के उनके संबंध की कथायें भी कहते थे और पद भी गाते थे। यह चित्र उन्हीं चित्रों में का है। कदाचित् उन्हीं के पास से टाड को मिला होगा।

मैंने पूछा कि वे हरिभक्त इस चित्र के विषय में जो कथा कहते थे या पद गाते थे वे यदि आपको याद हों तो कृपा करके सुनाइए। उन्होंने कहा सुनिएः—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा।

एक समय राधिका जी यमुना-जल लिये हुए अकेली चली आती थीं। दुपहरी का समय था। प्रचंड धूप पड़ रही थी। मार्ग में श्रीकृष्णजी मिल गये। राधिका जी से कुंजवन की शीतल छाया में चलने को कहा तो राधिका जी बोलीं कि आप यहाँ कदम्ब के नीचे ठहरिए। मैं गागर घर रखकर, कपड़े बदलकर और सखी को संग लेकर आती हूँ। नंदनंदन यह सुनकर वहाँ खड़े हो गये। जब राधिका जी सखी को लेकर आईं तब आपने दूर से उँगली का इशारा करके कहा कि कुंज-वन को चलो हम भी बाँसरी लेकर आते हैं।

पद।

ठाड़ो रहिए रे कदम की छइयाँ।
गगरि धरि आऊँ, चुनरि पहिरि आऊँ,
संग लगा लाऊं गुइयाँ–ठाड़ो०॥

यही सब भाव इस चित्र में भी दिखाया गया है। इस चारु चित्र की यह विचित्र कथा सुनकर मैंने चतुर ब्रह्मचारी जी से कहा कि महाराज आप धन्य हैं कि ऐसे हरिभक्तों का सत्संग करके हरि-लीला देखे और हरि-चरित्र सुने। यदि इसके साथ ही और भी किसी चित्र की कथा सुनाकर कृतार्थ करें तो मैं भी अपने को धन्य समझूँ।

ब्रह्मचारी जी ने कहा—हरे हरे! मैं तो क्या, आप लोग ही धन्य हैं जो हरि-कीर्तन में ऐसी श्रद्धा रखते हैं। यह कहकर उन्होंने और भी २।४ चित्रों का वर्णन पदों-सहित सुनाया। परन्तु बिना चित्र पाठकों को वह अलौना सा जान पड़ेगा; इसलिए यहीं अपनी लेखनी को रोकता हूँ।

देवीप्रसाद।

चंद्रिका-वर्णन।

(१)

शरद-नृपति की धौं जानि ब्रह्मा अवाई
सरुचि सुघर चोखी चाँदनी है बिछाई।
सुठि सत गुण की धौं जोति की है निकाई
सुखद शरद की धौं चंद्रिका चन्द छाई॥

(२)

अतुल अमृत की धौं वृष्टि है भूमि पूरी
हुलसत शुचि कैधौं शांति की कांति रूरी।
अवनि-तिय सजी कै सेत सारी सुहाई
सुखद शरद की धौं चंद्रिका चन्द छाई॥

(३)

दिपति अमल की धौं गंग की रेनु प्यारी
रुचिर रजत की धौं रास है शोभवारी।
विमल जगि रही कै हास्य की चारुताई
सुखद शरद की धौं चंद्रिका चन्द छाई॥

(४)

फबत धवल कै धौं धूर कर्पूर की है
सहस वदनवारी केचुरी कै बिछी है।
चमक दमक हीरा खान की कै लखाई
सुखद शरद की धौं चंद्रिका चंद छाई॥

(५)

प्रकृति पुरुष की धौं कीर्ति राजै सुखारी
वदन प्रकृति-वामा की छटा कै पसारी।
चटक फटिक की धौं भ्राजती है लुनाई
सुखद शरद की धौं चंद्रिका चंद छाई॥

(६)

फफकत बहु फूली दिव्य कै चाँदनी है
दरसत परमा कै मालती की घनी है।
कुमुद-अवलि की धौं ओप नीकी बढ़ाई
सुखद शरद की धौं चंद्रिका चन्द छाई॥

(७)

विकसित कल की धौं काँस दीसै ललामा
लसत विपिन कै धौं तूल को मोद धामा।
विलसत वर प्यारी हंस की धौं अथाई
सुखद शरद की धौं चंद्रिका चन्द छाई॥

CC-0, In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८)

छलकत छवि कै धौं छीर के सिन्धु की है
झलकत हिम की धौं स्वच्छता मंजुसी है।
सलिल-लहर आछी कै चहूँ ओर धाई
सुखद शरद की धौं चंद्रिका चन्द छाई॥

(९)

सघन चमर की धौं भासती है उजाली
मुकतन-दुति कै धौं ये प्रकाशै निराली।
सरसत प्रकटी कै कन्द की सुन्दराई
सुखद शरद की धौं चंद्रिका चन्द छाई॥

(१०)

अवरख-नव-आभा छाजती कै विशाला
विशद पसरि पारा की छटा कै रसाला।
मलयज-सुखमा कै विश्व में बेश आई
सुखद शरद की धौं चंद्रिका चन्द छाई॥

मन्नीलाल।

चित्र-दर्शन।

महिम्न-स्तोत्र का सोलहवाँ श्लोक यह है:—

महीं पादाघाताद् व्रजति सहसा संशयपदं
पदं विष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम्।
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता॥

अन्वयः—(हे ईश) पादाघातात् महीं सहसा संशयपदं व्रजति। भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणं विष्णोः पदं (संशयपदं व्रजति)। अनिभृतजटाताडिततटा द्यौः मुहुः दौस्थ्यं याति। (तथापि) त्वं जगद्रक्षायै नटसि। ननु विभुता वामैव (अस्ति)

भावार्थः—हे शङ्कर! जिस समय आप ताण्डव नृत्य करने लगते हैं उस समय आपके पैरों के आघात से पृथ्वी कँपने लगती है; आपके भुजरूपी परिघ से आकाशस्थ ग्रह-समुदाय भयभीत होता है; और आपकी जटाओं से ताडित होकर स्वर्गलोक की बुरी दशा होती है। यद्यपि ऐसा है तथापि आप जगत् की रक्षा ही के लिए नृत्य करते हैं। अतएव आपके इस नृत्य से कोई अहित नहीं। हाँ, इसमें सन्देह नहीं, कि प्रभुता कुछ थोड़ी सी प्रतिकूल ज़रूर होती है।

शङ्कर के इसी ताण्डव नृत्य के दृश्य को चित्रकार श्रीयुत नन्दलाल वसु ने एक चित्र में अङ्कित किया है। यह रंगीन चित्र इसी संख्या के आरंभ में दिया गया है। शङ्कर का यह नृत्य प्रलय-काल में होता है। इस बात को चित्रकार नहीं भूले। चित्रगत शङ्कर के पैरों के नीचे और बग़ल में प्रचण्ड प्रलयाग्नि जल रही है। आप कहेंगे, फिर यह नृत्य संसार की रक्षा के लिए कैसा! बात यह है कि इस प्रलय में ही भावी सृष्टि का बीज अन्तर्हित रहता है। उसके अङ्कुरित होने पर फिर से सृष्टि होती है। अतएव वह अमङ्गलजनक नहीं।

पुस्तक-परीक्षा।

१—कन्योपनयनसंस्कार। श्रीमान् पण्डित इन्दु शर्मा द्वारा रचित और ब्रह्मचारी सत्यव्रत शर्मा द्वारा प्रकाशित। चार आने में पं० घनश्याम शर्मा, किठैल, ज़िला मेरठ, से प्राप्य। इस पुस्तक में तीन स्तबक हैं। पहले स्तबक में बलिष्ठ और नीरोग सन्तान उत्पन्न करने और उनकी उन्नति तथा सुधार के विधान लिखकर कुछ आदर्श स्त्रियों के चरित वर्णन किये गये हैं। दूसरे और तीसरे स्तबक में वेद, गृह्यसूत्र और स्मृति आदि के प्रमाण देकर तथा कुछ आर्यसमाजी विद्वानों की सम्मतियों का हवाला देकर यह सिद्ध करने की चेष्टा की गई है कि प्राचीन काल में कन्याओं का भी उपनयन-संस्कार होता था। इसलिए "साम्प्रतिक विद्वानों को भी इस महोपकारी कार्य करने में निरातङ्क हो प्रवृत्त होना चाहिए"। लेखक महाशय को यह भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शङ्कर का ताण्डव नृत्य ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्रमाण लिख देना चाहिए था कि कन्याओं के उपनयन से क्या क्या लाभ होने की संभावना है।

❀

२—देश का धन। हर्ष की बात है कि सम्पत्ति-शास्त्र-सम्बन्धी ग्रंथ हिन्दी भाषा में अब प्रकाशित होने लगे हैं। इससे हिन्दी-साहित्य की कलेवर-पुष्टि होने के सिवा देश का भी बहुत कुछ उपकार हो सकता है। समालोच्य पुस्तक इसी विषय की है। यह दो भागों में विभक्त है। दोनों भागों में सब मिलाकर पन्द्रह अध्याय हैं, जिनमें सम्पत्तिशास्त्र-सम्बन्धी बहुत सी बातें आ गई हैं। शुरू में थोड़े से शास्त्रीय शब्दों की परिभाषा भी दे दी गई है। पुस्तक उपादेय है। यदि इसकी भाषा अपेक्षाकृत अधिक मुहाविरेदार होती और शुरू में एक विषय-सूची भी लगा दी जाती तो बहुत अच्छा होता। इसकी रचना श्रीयुक्त राधामोहन गोकुलजी, नं० ४। जगमोहन मल्लिक लेन, कलकत्ता, ने की है। वही से आठ आने में वे चते हैं।

❀

३—व्यापारिक कोश। पण्डित व्रजवल्लभ मिश्र द्वारा रचित और प्रकाशित। पृष्ठ-संख्या ३४०। मूल्य ढ़ रुपया। काग़ज़-छपाई साफ़। ग्रंथकर्त्ता से नं० जगमोहन मल्लिक लेन, बड़ा बाज़ार, कलकत्ता, पते पर प्राप्य। इस कोश में व्यापार से सम्बन्ध रखने वाले अँगरेज़ी शब्दों का संग्रह किया गया है और उनका अर्थ हिन्दी में लिखा गया है। कोश में सब मिलाकर पाँच अध्याय हैं। पहले में साधारण व्यापारिक शब्द हैं, दूसरे में पेशों के नाम, तीसरे में वैज्ञानिक शब्द, चौथे में क्रय-विक्रय की चीज़ों के नामों की शब्दावली और पाँचवें में सांकेतिक चिह्न हैं। व्यापारी और व्यापार से सम्बन्ध रखनेवाले और लोग भी इस कोश से लाभ उठा सकते हैं।

❀

४—माडर्न इंडिया अर्थात् वर्तमान भारत। प्रसिद्ध धर्म-प्रचारक स्वामी विवेकानन्द ने कोई दस वर्ष हुए इस विषय पर एक लेख उद्बोधन नाम की बँगला मासिक पत्रिका में लिखा था। यह उसी निबन्ध का अँगरेज़ी अनुवाद है। इसमें भारतवर्ष की प्राचीन और वर्त्तमान दशा पर विचार किया गया है। स्वामीजी ने इसमें कई बातें बड़े महत्त्व की कही हैं। शिक्षित जनों को इस निबन्ध को अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य चार आने। मिलने का पता—मैनेजर, प्रबुद्ध-भारत, मायावती, डाक-ख़ाना लोहाघाट, ज़िला अलमोड़ा।

❀

५—उद्धत-प्रतोद। ठाकुर सूर्य्यनारायणसिंहकृत। सरस्वती के कितनेही पाठकों को यह बात मालूम होगी कि कुछ वर्ष हुए स्वार्थान्धप्रकाशिका नाम की एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी। उसमें ब्राह्मणों की बेहद निन्दा की गई थी। यह पुस्तिका उसी के जवाब में अब लिखी गई है। इसमें स्वार्थान्धप्रकाशिका और उसके कर्त्ता की अच्छी ख़बर ली गई है। ठाकुर साहब क्षत्रिय हैं। उन्होंने केवल न्याय और धर्मनिष्ठा के अनुरोध से ब्राह्मणों का पक्ष लिया है। इसके लिए आपको अनेक धन्यवाद। पुस्तिका पर मूल्य कहीं नहीं लिखा। मिलने का पता—महन्त सीतारामदास, संस्थापक साधुपाठशाला, दुर्गा-कुण्ड, बनारस।

❀

६—नीति-कविता। पण्डित लोचनप्रसाद पाण्डेय लिखित। इस पुस्तिका में बाईस छोटी छोटी कविताएँ हैं। कविताएँ बोल चाल की भाषा में हैं और नीतिविषयक हैं। ऐसी कविताओं का जितना अधिक प्रचार हो उतनाही अच्छा है। उन्हें पढ़कर बालक, युवा, वृद्ध सभी लाभ उठा सकते हैं। इसके सिवा उनको पढ़ने में जो मनोरञ्जन होगा उसे घाते में समझिए। मूल्य दो आने। मिलने का पता—पाण्डेय लोचनप्रसाद, बालपुर, डाकख़ाना चन्द्रपुर, ज़िला बिलासपुर।

❀

७—प्रेमजगदीश। गोस्वामी श्रीगोवर्द्धनलाल जी (प्रेम कवि) रचित। इस पुस्तक में श्री जग-

CC-0. In Public Domain: Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाथ जी का माहात्म्य तथा वहाँ के सम्पूर्ण तीर्थों, मूर्त्तियों आदि कितनी ही बातों का पद्यात्मक वर्णन है। पुस्तक में सब मिलाकर कोई ६०० पद हैं। कविता भक्तिरसपूर्ण है। काव्य की दृष्टि से निर्दोष और उच्च श्रेणी की न होने पर भी पुस्तक भगवद्भक्तों के काम की है। जो लोग चाहें इसे आठ आने में इस पते से मँगालें—गोस्वामी श्रीमूलचन्दलाल, श्रीराधारमणजी का मन्दिर, तिरमुहानी, मिर्ज़ापुर।

❀

८—योगशास्त्रम्। बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी संस्कृत के दुष्प्राप्य हस्तलिखित ग्रंथों का उद्धार कर और उनमें से मुख्य मुख्य को समय समय पर प्रकाशित करके असाधारण उपकार कर रही है। यह ग्रंथ भी इसी सोसाइटी के द्वारा प्रकाशित हुआ है। इसकी रचना श्रीहेमचन्द्राचार्य ने की है। मूल ग्रंथ के साथ स्वोपज्ञविवरण नाम की टीका भी प्रकाशित हुई है। इसे काशी के शास्त्र-विशारद जैनाचार्य श्रीविजयधर्म सूरि ने सम्पादित किया है। इस ग्रंथ के प्रथम भाग की समालोचना सरस्वती में हो चुकी है। यह उसका दूसरा भाग है। योग-विद्या के जानने की इच्छा रखने वालों को इसे ज़रूर देखना चाहिए। पुस्तक अच्छे टाइप में बहुत चिकने काग़ज़ पर बड़ी शुद्धता से छापी गई है।

❀

९—कर्म्मयोगी। इस नाम का एक पाक्षिक पत्र प्रयाग पब्लिशिंग कम्पनी ने निकालना शुरू किया है। मूल्य इसका दो रुपये है। पहले अङ्क में ३२ पृष्ठ हैं। भारत के "राष्ट्रीय धर्म्म" का उद्दीपन करने के लिए इसका जन्म हुआ है। कृष्णजन्म, महात्मा अरविन्द, अरविन्द घोष के कारागार की कहानी, भगवान् कृष्णचन्द्र और राष्ट्रीय आन्दोलन, कर्म्मयोग, राष्ट्रगीत, हमारा देशानुराग इस अङ्क के प्रधान लेख हैं। उनके नामही से पाठक समझ जायँगे कि यह पत्र कैसा होगा। इसके आरंभ में एक भावपूर्ण चित्र है। अर्जुन रथ पर बैठे हैं। उनके सारथी कृष्ण उन्हें कर्म्मयोग का उपदेश दे रहे हैं। वे कह रहे हैं:—

मयि सर्वाणि कर्म्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्म्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥

इस पद्य से इस पत्र का उद्देश ख़ूब अच्छी तरह प्रकट हो रहा है। श्रीयुत माधव शुक्ल कृत तिलकवन्दना नामक पद अच्छी कविता है। छपाई और काग़ज़ दोनों उत्तम हैं। देखें कब तक यह पत्र अपने कण्टकाकीर्ण पथ पर चलने में समर्थ होता है।

❀

१०—संस्कृतचन्द्रिका। ख़ुशी की बात है, वर्ष डेढ़ वर्ष बन्द रह कर संस्कृत चन्द्रिका अब फिर निकलने लगी है। अब उसने अपना स्थान बदल दिया है। पहले वह कोल्हापुर से निकलती थी। अब वर्त्तमान एजन्सी, गिरगाँव, बंबई से निकलती है। बंबई में छपाई का ख़र्च अधिक पड़ता है। इससे इस पत्रिका का मूल्य डेढ़ रुपये से दो रुपया कर दिया गया है। पन्द्रहवें वर्ष का पहला अंक जो बंबई से निकला है उसमें संस्कृत के महाकवि श्रीमहेशचन्द्र तर्क-चूड़ामणि का चित्र भी है। इस पत्रिका में बड़ेही उपयोगी और मनोहर लेख रहते हैं। संस्कृत इसकी ऐसी अच्छी होती है जिसकी प्रशंसा नहीं हो सकती। संस्कृत जानने वालों को इसे ज़रूर लेना चाहिए।

❀

११—वृक्षावली। इस पुस्तक में सब मिलाकर दस अध्याय हैं। पहले नौ अध्यायों में सब प्रकार के वृक्षों का संक्षिप्त वृत्तान्त है। दसवें में वाटिका लगाने की विधि संक्षेप में लिखी गई है। बरौठे के ज़मीदार बाबू प्यारेलाल ने इसकी रचना की है और वही अपने विद्यासागर डिपो, अलीगढ़, से इस सात आठ आने लागत की पुस्तक को एक रुपये में बेचते हैं। मालूम नहीं वृक्षविद्या में आपने कहाँ, कब और कहाँ तक पारदर्शिता प्राप्त की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२—क़ानूनसार। बाबू प्यारेलाल ज़मीदार बरौठा कृत। एक रुपये में विद्यासागर डिपो, अलीगढ़ से प्राप्य। इस पुस्तक में भारत गवर्नमेंट के मुख्य मुख्य क़ानूनों की मुख्य मुख्य धाराओं का संग्रह है। पुस्तक की भाषा बिलकुल खिचड़ी, अटपट और अशुद्ध है। इसे पढ़कर किसी भी क़ानून का यथेष्ट ज्ञान नहीं हो सकता। अतएव सर्वसाधारण के लिए यह विशेष उपयोगी नहीं। इनकम टैक्स १,००० रुपये से कम आमदनी पर नहीं लगता। पर इसमें वही पुरानी ५००) की गाथा गाई गई है। क़ानून की तो किताब, पर बीच में 'अताई नुसख़े' और कोकशास्त्र के विज्ञापन! धन्य है इस पुस्तक के लिखने के व्यापार को!

❀

१३—इङ्गलिश टीचर। बाबू प्यारेलाल ज़मीदार बरौठा कृत। इस पुस्तक में अँगरेज़ी के सैकड़ों शब्द और वाक्य तथा हिन्दी में उनके अर्थ दिये हुए हैं। इसके सिवा अँगरेज़ी-व्याकरण के मुख्य मुख्य नियम भी हिन्दी में समझाये गये हैं। हिन्दी जानने वाले लोग इसकी सहायता से थोड़ी सी अँगरेज़ी बिना उस्ताद के भी सीख सकते हैं; पर इतनी नहीं कि उससे किसी प्रकार का लाभ उठा सकें। अँगरेज़ी शब्दों के उच्चारण में अनेक ग़लतियाँ हैं। हिन्दी के शब्द भी कहीं कहीं महा अशुद्ध छप गये हैं। मूल्य एक रुपया। मिलने का पता—विद्यासागर डिपो, अलीगढ़।

बाबू प्यारे लाल हरफ़न मौला मालूम होते हैं। कहीं आप लोगों को अँगरेज़ी सिखाते हैं। कहीं सैकड़ों व्यापार करने की शिक्षा ४ आने में देते हैं। कहीं वकील बनकर क़ानून का मतलब समझाते हैं। कहीं वनस्पतिशास्त्र के आचार्य बनकर उस विद्या की शिक्षा देते हैं। आप और लोगों की "विज्ञापनी लूट" पर मज़मून लिखते हैं। पर आपने अपनी पुस्तकों में अपने विज्ञापनों का ताँता बाँध दिया है। 'प्रकर्ण', 'स्मर्ण', 'अद्वतीय' आदि शब्द आपके भाषाज्ञान की बानगी हैं। आप कहते हैं कि थोड़े समय में हमारी एक लाख की किताबें बिक चुकीं और चीन तथा अमेरिका तक पहुँच गईं। यह शायद विज्ञापन देने की क़लई खोलने का फल है!

❀

१४—सोने की चिड़िया। बाबू प्यारेलाल ज़मीदार बरौठा (मालिक विद्या-प्रचारिणी सभा, अलीगढ़) द्वारा प्रकाशित। पृष्ठ-संख्या ३०; मूल्य चार आने। प्रकाशक से प्राप्य। इस पुस्तक में काग़ज़, पेंसिल, स्लेट, सुई, दियासलाई आदि आदि कोई नब्बे चीज़ों के बनाने की तरकीब लिखी हुई है। पर सब तरकीबें सही हैं या ग़लत, यह बात या तो भगवान् जाने या उन चीज़ों के बनानेवाले। रहे बाबू प्यारे लाल, सो वे तो ज़रूर ही जानते होंगे। नहीं तो इस सोने की चिड़िया को वे चार आने में क्यों उड़ाते! किसी किसी चीज़ के बनाने की तरकीब तो केवल डेढ़ ही लाइन में समाप्त कर दी गई है। उसेही पढ़ कर लोग अब भारतवर्ष में काग़ज़, पेंसिल, सुई और दियासलाई बना डालेंगे। ३० पृष्ठ में तो दुनिया भर की चीज़ों के बनाने की तरकीबें हैं। बाक़ी १५ पृष्ठ और हैं; सो उनमें ग्रंथकार साहब ने अपनी दवाइयाँ और पुस्तकें बेचने की जी जान तोड़कर कोशिश की है। फिर क्यों न एक लाख की पुस्तकें बिक जायँ! आप अब शायद करोड़पति बनना चाहते हैं।

❀

१५—पार्श्वाभ्युदयम्। दक्षिण में एक जगह मालखेर है। यह बहुत पुराना नगर है। अब इसका विभव प्रायः बिलकुल ही नष्ट होगया है। यह नगर बहुत दिनों तक राष्ट्रकूट वंशीय राजाओं की राजधानी रहा है। यहाँ आठवें शक में अमोघवर्ष नामक एक राजा था। वह जैन था। उसके गुरु का नाम जिनसेन था। जिनसेन महा पंडित और महाकवि थे। उन्हीं का बनाया हुआ यह पार्श्वाभ्युदय काव्य है। काव्य संस्कृत में है। टीका भी संस्कृत ही में है। टीकाकार का नाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है पण्डिताचार्य येगिराट्। इस काव्य में ४ सर्ग हैं। जैनियों के तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ के संबन्ध की एक कथा का आश्रय लेकर इसकी रचना की गई है। इसमें एक बड़ी विचित्रता है। वह यह कि कालिदास के मेघदूत के प्रत्येक श्लोक के एक या दो चरणों का आवेष्टन करके इसके पद्यों की रचना की गई है। अर्थात् मेघदूत के श्लोकों के चरणों को समस्या मान कर उन पर कविता की गई है। काव्य के प्रत्येक श्लोक में मेघदूत के एक दो चरण विद्यमान हैं। सारा मेघदूत "कश्चित् कांताविरहगुरुणा" से लेकर इस काव्य के अंतर्गत आगया है। जिसने इस काव्य की रचना की है वह सचमुच ही महाकवि और महा पण्डित था। अन्यथा ऐसा कठिन काम इस योग्यता से न सम्पादित हो सकता। कविता इसकी बहुत बढ़िया नहीं है; और नाम धरने लायक भी नहीं है। काव्य-प्रेमियों को इसे अवश्य देखना चाहिए। छपाई निर्णयसागर प्रेस की है। मूल्य १२ आना है। जैन-ग्रंथरत्नाकर-कार्यालय, गिरगाँव, बम्बई, से यह पुस्तक मिल सकती है। पुस्तक के अन्त में टीकाकार ने इस काव्य के बनाये जाने का जो कारण लिखा है वह सर्वथा काल्पनिक है।

❁

१६—मालविकाग्निमित्र। कालिदास के मालविकाग्निमित्र का यह गद्यपद्यात्मक हिन्दी-अनुवाद है। अनुवादक हैं पंडित गौरीशङ्करशर्म्मा। पता आपका है इन्दरगढ़, राजपूताना। ११२ पृष्ठ की इस पुस्तक का मूल्य २ रुपया रक्खा गया है जो असल लागत के चौगुने से भी ज़ियादह मालूम पड़ता है। हमारी समझ में कालिदास के ग्रंथों का अनुवाद उसी को करना चाहिए जो अच्छा कवि हो, छन्दःशास्त्र का अच्छा ज्ञाता हो, संस्कृत अच्छी जानता हो, और सहृदय भी अच्छा हो। खेद है, अनुवादक में इन बातों की कुछ कमी मालूम होती है। न उनके गद्य ही में कुछ रस है और न पद्य ही में। भाषा भी दोष-पूर्ण है। मूल का भाव भी अनेक स्थलों में कुछ का कुछ हो गया है। छन्दो-रचना का यह हाल है कि दोहे सदृश छोटे और सीधे छन्द में भी अनेक छन्दोभंग दोष हैं। प्रमाण :—

मालविकाग्निमित्र को यह सुन्दर अनुवाद।
भाषा गद्यरु पद्य में भरयो अनेक सवाद॥

अनुवादक ने पुस्तक के प्रारम्भ में जो "समर्पण" लिखा है उसका यह पहला ही दोहा है। इसके पहले ही चरण में १३ की जगह १२ ही मात्रायें हैं। अनुवाद कैसा 'सुन्दर' और कितना 'सवाद' भरा है यह वही जान सकेगा जो इसे पढ़ेगा।

नाट्यविद्या के आचार्य हरदत्त, राजा से मिलने गये हैं। वहाँ राजा को देख कर मनही मन कहते हैं:—

न च न परिचितो न चाप्यरम्य—
श्चकितमुपैमि तथापि पार्श्वमस्य।
सलिलनिधिरिव प्रतिक्षणं मे
भवति स एव नवो नवोऽयमक्ष्णोः॥

अर्थात्, यह नहीं कि मैं इस राजा से अपरिचित हूँ। यह भी नहीं कि यह रम्यता-रहित है। तथापि इसके पास मैं चकित हुआ जा रहा हूं। क्योंकि यह वही मेरा पूर्व-परिचित राजा मेरी आँखों को महासागर के समान प्रतिक्षण नया नया मालूम होता है। अनुवादक ने इसका अनुवाद किया है:—

रम्यदरस महाराज के मुहि न अपरिचित जान।
डरों जात नियरे निरख नूतन उदधि समान॥

अनुवाद की हीनता और क्लिष्टता के सिवा इस दोहे के भी पहले चरण में छन्दोभङ्ग है।

अनुवादक ने भूमिका में यूरप के पुराने पंडितों की हाँ में हाँ मिलाकर ईसा की "तीसरी वा चौथी शताब्दी" (?) में कालिदास के जन्म का अनुमान किया है। परन्तु यह अनुमान वर्तमान समय के कितनेही विद्वानों की खोज से सर्वथा भ्रमपूर्ण सिद्ध हुआ है।

❁

१७—वारन हेस्टिंग्ज़ का जीवनचरित। "श्रीयादवेन्द्र" के सम्पादक पण्डित द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-ऐतिहासिक पुस्तकें लिखने का अच्छा क्रम
ारी किया है। आपकी पहली पुस्तक लार्ड क्लाइव
ा जीवनचरित है। उसे निकले बहुत दिन हुए।
ब आपने वारन हेस्टिंगज़ के जीवनचरित का पहला
ाग लिखकर प्रकाशित किया है। पुस्तक सवा दो
ौ पृष्ठ की है और बहुत अच्छी छपी है। मूल्य
सिर्फ़ १) रुपया है। हरनारायण ब्रदर्स, दारागंज,
्याग, इसे बेचते हैं। पुस्तक विचार पूर्वक लिखी
ई है। इसे लिखने के लिए चतुर्वेदी जी को ५४
ुस्तकों का अध्ययन और अवलोकन करना पड़ा
ै! हिन्दी जाननेवालों को चाहिए कि इस पुस्तक
ी एक एक कापी ज़रूर ख़रीदें।

❀

१८—छन्दःसूत्रम्। यह पिङ्गलाचार्य्यप्रणीत
छन्दःशास्त्र का पहला ग्रन्थ है। सूत्रबद्ध है।
कविरत्न अखिलानन्दजी ने इस पर संस्कृत में भाष्य
िखा है। वही भाष्य मूल सूत्रों सहित इस पुस्तक
ें प्रकाशित किया गया है। यदि भाष्य का भावार्थ
हिन्दी में भी दे दिया गया होता तो केवल हिन्दी
ाननेवाले कवियों को भी इस पुस्तक से लाभ
ुँचता। इस पुस्तक में भाष्यकार ने भिन्न भिन्न
न्दों के उदाहरण अपने बनाये दिये हैं। उनमें
ापने जहाँ तहाँ आर्य्यसमाज के सिद्धान्तों के
नुकूल बातें लिखी हैं। रथोद्धता का उदाहरण
खिए :—

ये महेश्वरमपास्य पूजनं मोहताजडशिलात्मकं श्रिताः।
ते कदापि परमेश्वरप्रभापात्रताङ्किल न यान्ति मानवाः॥

भाष्यकार ने भूमिका में लिखा है कि छन्दःशास्त्र
के अध्ययन से "काव्यरचनानैपुण्य" भी आ
जाता है। यह बात कवियों के लिए विचारणीय
है। मूल्य इस पुस्तक का १२ आने है। भाष्यकार
ही इसे बेचते हैं। उनका पता—मौज़ा चन्दनगर,
कघर रजपुरा, ज़िला बदाऊँ है।

❀

१९—तिङन्तप्रदीपिका। श्रीमती-कलावती-देवी
रचित। बाबू कुञ्जविहारी सेठ, बी० ए०, लखनऊ
में सब जज हैं। कलावती के आप पिता हैं। कला-
वती का विवाह रोपड़ (पंजाब) के वकील बाबू
रामप्रसाद बी० ए०, एल० एल० बी० के साथ हुआ
है। यह सब इसी पुस्तक के टाइटिल पेज पर छपा
है। नहीं मालूम यह विवरण क्यों दिया गया है।
लघु-कौमुदी के तिङन्त-प्रकरण में जितने धातु आये
हैं सबके रूप इस पुस्तक में दिखला दिये गये हैं।
इससे लघु-कौमुदी रटनेवाले छात्रों को बहुत लाभ हो
सकता है। क्योंकि उसमें उदाहरण-स्वरूप धातुओं
के कुछ ही रूप हैं। शेष सब विद्यार्थियों को रटना
पड़ते हैं। कुछ विद्यार्थी तो पढ़ते समय धातुओं के
सब रूप अलग खर्रों पर लिखते जाते हैं जिससे
उन्हें पीछे से रटने में सुभीता होता है। अब यदि
वे इस १२ आने की पुस्तक को बाबू जगद्विहारी
सेठ c/o बाबू कुञ्जविहारी सेठ, सब जज, लख-
नऊ से मँगा लेंगे तो उन्हें खर्रे उतारने की ज़रूरत
न रहेगी। श्रीमती कलावतीदेवी ने बहुत अच्छा
किया जो यह पुस्तक छपवा दी। पर छापेख़ाने
वालों और अन्तिम प्रूफ-संशोधन करनेवालों ने
पुस्तक की बड़ीही दुर्दशा कर डाली है। इस ढाई
सौ से कुछ कम पृष्ठों की पुस्तक में कोई ढाईही सौ
ग़लतियों का शुद्धि-पत्र देवी जी को लगाना पड़ा
है। इनके सिवा और भी कितनी ही ग़लतियाँ इस
पुस्तक में हो गई हैं। ब और व की तो बुरी गति
हुई है। सिर्फ़ टाइटिल पेज पर ऐसी ४ ग़लतियाँ
हैं। प्रेसवालों ने अपना नाम तक ठीक नहीं
छापा। 'ऐंग्लो' का 'ऐग्लो' कर डाला है। पुस्तक
के आरम्भ ही में 'वचन' का 'बचन' छाप मारा
है। 'पिबति' का पिवति कर दिया है। इन
ग़लतियों को देवी जी ने भी नहीं शुद्ध किया।
एक धातु है—"ओविजी" उसका अर्थ संस्कृत
में है—"भयचलनयोः"। पर छापेख़ाने के भूतों ने
"भय" को "ओविजी" में मिलाकर "ओवि-
जीभय" कर मारा है! ऐसी सैकड़ों ग़लतियाँ
इस पुस्तक में हैं। जिनके यहाँ संस्कृत जाननेवाले
प्रूफ़-रीडर नहीं वे संस्कृत की पुस्तकें छापें क्यों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और लोग उनके यहाँ छपावें क्यों? आशा है देवी कलावती ने लघुकौमुदी के सिवा और भी कुछ संस्कृत पुस्तकें पढ़ा होंगी। यह भी आशा है कि वे कुछ हिन्दी लिखने का भी अभ्यास करेंगी। उनकी भूमिका से मालूम होता है कि उन्हें अब तक हिन्दी लिखने का बिलकुल अभ्यास नहीं।

❁

२०—स्त्रीधर्मशिक्षक। स्त्रीशिक्षासम्बन्धी मासिक पत्र। सम्पादिका श्रीमती यशोदा देवी। वार्षिक मूल्य साढ़े सत्रह आने। १५ जुलाई से निकलता है। प्रथम अङ्क हमारे सामने है। इसमें सब मिलाकर ग्यारह लेख हैं; कुछ समाचार भी हैं। लेख प्रायः अच्छे हैं और स्त्रियों के लिए उपयोगी हैं। पढ़ी लिखी स्त्रियां और स्त्रीशिक्षा के पक्षपातियों को चाहिए कि इस पत्र को आश्रय दें, जिससे सम्पादिका महाशया इसकी यथेष्ट उन्नति करके इसे सर्व-गुणसम्पन्न बना सकें। जो लोग ग्राहक होना चाहें उन्हें प्रबन्धकर्त्री स्त्रीधर्मशिक्षक, कर्नेलगंज, प्रयाग से पत्र-व्यवहार करना चाहिए।

❁

२१—भारतवर्षीय जैनशिक्षाप्रचारक समिति, जयपुर, का तृतीय वार्षिक विवरण, १९०८। इस विवरण के पाठ करने से मालूम हुआ कि समिति के तत्त्वावधान में दो पाठशालायें बालकों के लिए और एक कन्याओं के लिए है। पाठशालाओं तथा समिति का प्रबन्ध और आय-व्यय सन्तोषजनक है। जयपुर के जैनियों का विद्या प्रेम और उत्साह प्रशंसनीय है। यदि वे विद्याप्रचार के कार्य में ऐसा ही अध्यवसाय दिखलाते रहे तो वहाँ के जैनियों का बहुत कुछ उपकार हो सकता है। अन्य स्थानों के जैनी तथा और लोग भी यदि अपने जयपुरी जैनी भाइयों का अनुकरण करें तो बहुत अच्छा हो।

❁

२२—व्यक्तचन्द्रिका। नयपाल-राजकीय-संस्कृत-पाठशाला के गणितशास्त्राध्यापक पण्डित गोपालदत्त पाँडे कृत। पृष्ठ-संख्या १३४। मूल्य एक रुपया। यह ग्रंथ अङ्कगणितविषयक है। संस्कृत में लीलावती नामक अङ्कगणित का एक सुप्रसिद्ध ग्रंथ है। यह पुस्तक उसी के आधार पर आधुनिक रीत्यनुसार लिखी गई है। इसमें सब मिलाकर तीन खण्ड हैं। पहले और दूसरे खण्ड में अङ्कगणित के प्रायः सभी मुख्य मुख्य विषय आ गये हैं। तीसरे खण्ड में पैमायश के हिसाब लिखे गये हैं और चित्र भी दिये गये हैं। ग्रंथकर्त्ता ने प्रत्येक विषय उदाहरण देकर अच्छी तरह समझाया है। वास्तव में यह ग्रंथ बहुत उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है। इसमें एक दोष इतना ही है कि इसकी भाषा कुछ क्लिष्ट और कहीं कहीं पर व्याकरणविरुद्ध है।

❁

२३—राजस्थानरत्नाकर, प्रथम भाग, पहली तरङ्ग। अब तक राजपूताने के जितने इतिहास लिखे गये हैं उनमें टाड-कृत राजस्थान का इतिहास मुख्य है। परन्तु जिस समय यह ग्रंथ लिखा गया था उसके बाद से लेकर अब तक राजपूताने के इतिहास से सम्बन्ध रखनेवाली न मालूम कितनी नई बातें मालूम हो चुकी हैं। अतएव वहाँ के एक ऐसे इतिहास की आवश्यकता थी जिसमें आज तक की सम्पूर्ण खोजों का समावेश हो। उदयपुर के बाबू रामनारायण दूगड़ ने राजस्थान-रत्नाकर लिखकर इस आवश्यकता के पूरा करने का उपक्रम किया है। आपकी यह पुस्तक किसी एक ग्रंथ के आधार पर नहीं, किन्तु अँगरेज़ी, संस्कृत, हिन्दी, उर्दू और फ़ारसी की अनेक किताबों की सहायता से लिखी गई है। आपने इस इतिहास को दो भागों में विभक्त किया है। पहले में राजपूताने का भूगोल, साधारण इतिहास, राजपूतों की उत्पत्ति और कोई छत्तीस राजपूत-वंशों का वर्णन है। दूसरे भाग में राजपूताने की सम्पूर्ण रियासतों का पृथक् पृथक् इतिहास है। इन दोनों भागों में से अभी केवल पहले भाग की पहली तरङ्ग प्रकाशित हुई है। पृष्ठ-संख्या १०४। मूल्य १२ आने।

Printed and published by Panch Kory Mittra at the Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक सर०
आ० १०(१२)

सरस्वती ।

भाग १०] १ दिसंबर, १९०९ । मार्गशीर्ष कृष्ण ४, १९६६ । [संख्या १२

विविध विषय ।

१—क्षिप्र-लेखन-कला अर्थात् शार्ट हैंड राइटिंग् ।

हिन्दीवाले हिन्दी में इस कला-निर्म्माण की किताब ही छपाने में अभी लगे हैं, उर्दू में इसका निर्म्माण भी हो गया, शिक्षा भी दी जाने लगी और इसमें रिपोर्टें भी लिखी जाने लगीं । लखनऊ में रीड क्रिश्चियन कालेज नाम का एक विद्यालय है। मार्च १९०८ में इन प्रान्तों की गवर्नमेंट ने उसके अधिकारियों से कहा कि आप इस कला को उर्दू में ईजाद कीजिए । अधिकारियों ने इस काम को अध्यापक एम० एल० घोष के सिपुर्द किया । उन्होंने इस काम को बहुत जल्द कर डाला । अँगरेज़ी में आइज़क पिटमैन की निकाली हुई लघु-लेखन-कला के आधार पर, फ़ारसी लिपि की आवश्यकताओं के अनुसार यथेष्ट फेर फार करके, घोष महाशय ने उर्दू में इस कला को ईजाद किया । गवर्नमेंट को इसकी सूचना दी गई । इस पर गवर्नमेंट ने नवंबर १९०८ में पुलिस के २० सब इन्स्पेक्टरों को यह कला सीखने के लिए भेजा । आठ दस महीने में ये लोग इस कला में दक्ष हो गये । इस ख़ुशी में एक जलसा रीड क्रिश्चियन कालेज में अभी उस दिन हुआ । अध्यापक घोष ने इस कला के निर्म्माण-सम्बन्ध में पहले एक व्याख्यान दिया । फिर पूर्वोक्त सब इन्स्पेक्टरों की इस लेखन-कला में परीक्षा हुई । उन्होंने एक मिनट में सौ शब्दों से भी अधिक शब्दों के हिसाब से इम्ला लिखा । फिर एक का लिखा इम्ला दूसरे को दिया गया और कहा गया कि इसे मामूली इबारत में लिखकर दिखाओ । यह भी उन्होंने किया । उनकी लिखी इबारत सब सही निकली । अब यही लोग सभाओं आदि में उपस्थित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर वक्ताओं की वक्तृताओं की रिपोर्ट लिखकर अपने अफ़सरों को भेजेंगे। जलसे में गवर्नमेंट के कितनेहीं अफ़सर उपस्थित थे। इस कामयाबी पर उन्होंने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और कालेज के अधिकारियों को—विशेष करके घोष महाशय को—बहुत बहुत धन्यवाद दिया। हिन्दी और उर्दू भाषायें प्रायः एकही हैं। अतएव जिस लघु-लेखन-कला में उर्दू लिखी जा सकती है उसमें हिन्दी का भी लिखा जाना क्या संभव नहीं?

२—लन्दन में भारतवर्षीय भाषाओं की शिक्षा।

विलायत से जो अँगरेज़ बड़े बड़े पदों पर नियत होकर इस देश में आते हैं उन्हें यहाँ की भाषाओं का प्रायः कुछ भी ज्ञान नहीं होता। इससे जो हानि और कभी कभी जो अनर्थ होते हैं वे छिपे नहीं है। इस न्यूनता को अब दूर करने का विचार हो रहा है। एक लाख अस्सी हज़ार रुपया प्रतिवर्ष ख़र्च करके गवर्नमेंट लन्दन में इस देश की भाषाओं की, इतिहास की, धर्म्म की, रीति-रस्म की, मनुष्यों की मनःप्रवृत्ति आदि की शिक्षा देने का प्रबन्ध करना चाहती है। गवर्नमेंट कहती है कि ऐसा करने से अँगरेज़ अफ़सर हिन्दुस्तानियों के साथ अधिक सहानुभूति रख सकेंगे और उनके हार्दिक भावों और आवश्यकताओं को पहले की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह समझ सकेंगे। हिन्दुस्तान की गवर्नमेंट इस समय इस देश की भाषाओं की शिक्षा लन्दन में दी जाने के लिए वार्षिक सवा छब्बीस हज़ार रुपया देती है; अधिक नहीं दे सकती। विलायत की गवर्नमेंट पैंतालीस हज़ार देने कहती है। शेष रुपया विलायत के धनवानों से प्राप्त करने का विचार किया जा रहा है। सो अब अँगरेज़ अफ़सर गीता, मनुस्मृति, वेद, कुरान और सत्यार्थप्रकाश पढ़कर तथा हिन्दी, उर्दू, बँगला, मराठी आदि भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करके विलायत से रवाना हुआ करेंगे।

३—कौंट सेप्लीन (Zeppelin) के व्योमयान।

कौंट सेप्लीन जर्मनी के मशहूर रईस हैं। आपने आसमान पर अपना पूरा क़ब्ज़ा कर लिया है। आपने अपने नाम के ४ व्योमयान आज तक बनाये हैं। उन पर सवार होकर आप आसमान में बेधड़क उड़ते हैं। अपने साथ औरों को भी बिठाकर आप आसमान की हवा खिलाते हैं। सैकड़ों कोस की दूरी आप आसानी से तै कर जाते हैं। इससे आप का बड़ा नाम हुआ है। जर्मन-नरेश आपके इन गुणों पर मुग्ध हो रहे हैं। आपने इनके व्योमयानों का स्वत्त्व ले लिया है। अब जर्मनी की फ़ौज में उनका प्रचार होगा। उनका एक बेड़ा बनेगा। अफ़सरों को उनके उड़ाने की शिक्षा दी जायगी। कौंट सेपलीन ने 'बाडन सी' (Boden Sea) नामक झील पर अपने व्योमयान बनाने का एक कारख़ाना खोला है। ये व्योमयान अलुमिनियम के बनते हैं। ऊपर से टसर मढ़ा रहता है। 'मोटर' यंजिन और गैस की मदद से ये उड़ते हैं। आकाश में उड़ते समय ये यान दूर से बादल के टुकड़े की तरह देख पड़ते हैं। इनकी शक्ल सिगार की सी है। आसमान में चढ़ते समय मुँह इनका ऊपर को हो जाता है। इनमें नीचे खटोलने लगे रहते हैं। उन्हीं में आदमी बैठते हैं। वे नीचे लटकते हुए देख पड़ते हैं। अभी, कुछ समय हुआ, जर्मनी की फ़ौज ने अपने फ़ौजी काम की परीक्षा दी थी। उस परीक्षा में इन व्योमयानों की भी परीक्षा हुई थी। तदर्थ कौंट सेप्लीन अपने व्योमयान पूर्वोक्त झील से बर्लीन लाये थे। उस समय जर्मन-नरेश ने बर्लीन में उनका स्वयं स्वागत किया था। व्योमयान से उतरते ही जर्मन-नरेश कौंट से मिले थे। इसीसे समझ लेना चाहिए कि कौंट सेप्लीन और उनके व्योमयानों की कितनी क़दर हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

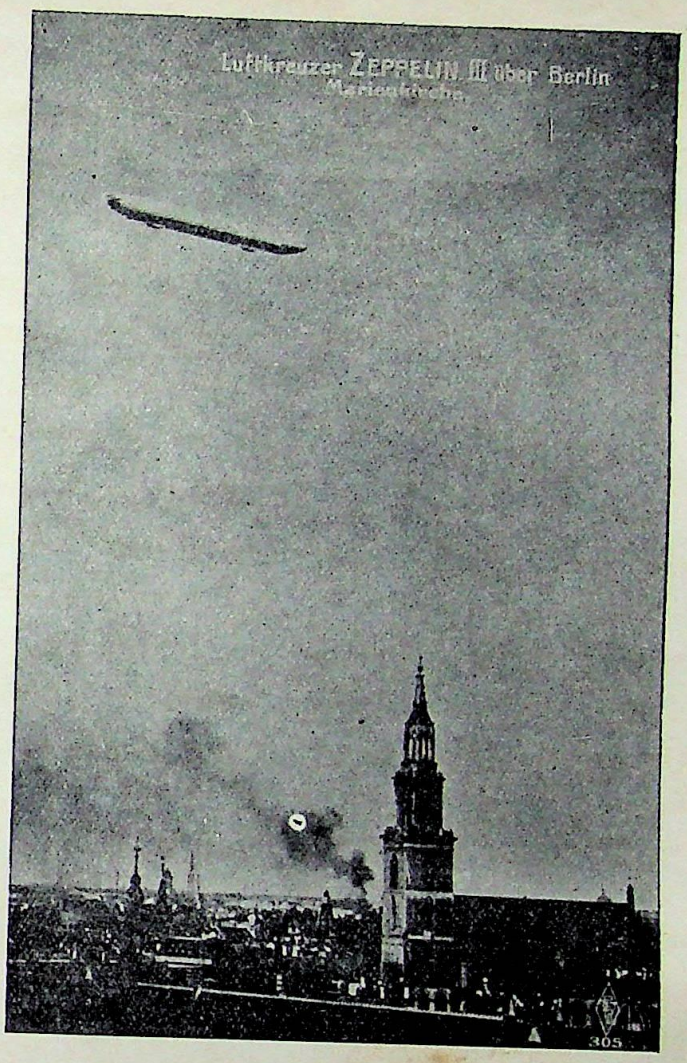

बर्लीन के ऊपर उड़ता हुआ सेप्लीन का व्योम-यान।

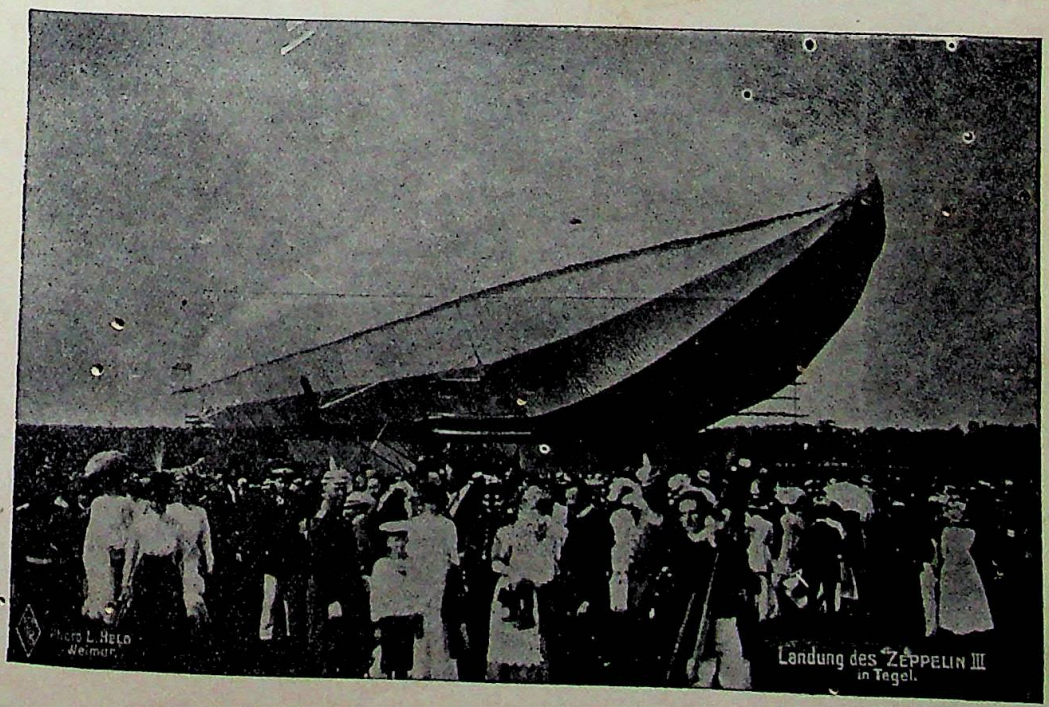

बर्लीन पर उतरता हुआ सेप्लीन का व्योम-यान।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जर्मन-नरेश और सेप्लीन की भेंट।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४—पनामा नहर।

फ़रासीसी इञ्जिनियर करडिनेंड लेसप्स स्वेज़ नहर बनाकर भूमध्य-सागर और भारतीय समुद्र को एक कर गया। अब अमेरिका वाले पनामा नहर बनाकर ऐटलांटिक और पेसिफ़िक समुद्रों को एक कर रहे हैं। फ़रासीसी इन्जिनियर को बालू से काम पड़ा था, पर अमेरिकावालों को ऊँचे ऊँचे पहाड़ों को तोड़कर नहर बनाना है। फ़रासीसी इन्जिनियर की कारीगरी अमेरिकावालों को पथ-दर्शी नहीं हो सकती है। इन्हें इस नहर के बनाने के लिए नई नई कलें ईजाद करनी पड़ी हैं, क्योंकि जितने या जैसे मज़दूर फ़रासीसी इन्जिनियर के ज़माने में मिल सकते थे उतने या वैसे आजकल नहीं मिल सकते। पनामा नहर की खुदाई का दृश्य बड़ाही अजूबा है। सैकड़ों बरमे पहाड़ों में सुरंगें लगाते हैं। सुरंग में आम तौर पर ३०० पौंड बारूद भरी जाती है। आवाज़ें बड़ी बड़ी तोपों की आवाज़ों से भी अधिक भयंकर होती हैं। एक बार एक पहाड़ी की जड़ हिलाने के लिए ६०० मन बारूद एक सुरंग में उड़ाई गई थी। जैसेही पहाड़ियों की जड़ें हिलती वैसे ही भाप से काम करनेवाले गेंती-बेलचे लगा दिये जाते हैं। गेंतियाँ पहाड़ में घुस जाती हैं और एक बार अपने मुँह में ५ गज़ मुरब्बा पत्थर का टुकड़ा चूर कर देती हैं। इनके पीछे गाड़ियाँ लगी रहती हैं जिनमें एक बेलचे की पाँच छः बार की खोदी हुई चूर भर जाती है। भरते ही गाड़ी चल देती है और दूसरी ख़ाली गाड़ी आजाती है। लोगों का कथन है कि जब पनामा नहर तैयार हो जायगी तब वह घाटीनुमा हो जायगी। स्वेज़ नहर के दोनों ओर बालू ही के ढेर देख पड़ते हैं, पर पनामा नहर के इर्द गिर्द यात्रियों के नेत्र हरे हो किया करेंगे।

५—नई तोप।

योरपवाले विध्वंसकारी अस्त्र-शस्त्र बनाने में बड़े प्रवीण हैं। इस प्रकार के न मालूम कितने शस्त्र अब तक वे बना चुके हैं। परन्तु अब भी वे लोग शान्त नहीं हैं। वहाँ अब भी नित नये भयङ्कर अस्त्रशस्त्र आविष्कृत होते रहते हैं। हाल ही में इँगलैंड के एक इंजिनियर ने एक ऐसी तोप बनाई है जो अत्यन्त विकट है। कहते हैं कि यह जंगी जहाज़ों में रखने के लिए बहुत उपयोगी है। इसका मोहरा बारह इंच चौड़ा है। यह एक फेर में अठारह मील तक की ख़बर ले सकती है। अभी, थोड़े दिन हुए, इँगलैंड के कई प्रसिद्ध अस्त्र-विद्या-विशारदों ने इसकी परीक्षा की थी। जाँच से मालूम हुआ कि यह तोप दुनिया भर में अपना सानी नहीं रखती। संसार में अब तक जितने विध्वंसक अस्त्र बने हैं उन सबसे यह बढ़कर है।

६—पानी पर चलनेवाली बाइसिकिल।

सृष्टि की आदि से लेकर अब तक सैकड़ों प्रकार के यान संसार में बन चुके हैं। उनमें से कुछ ऐसे हैं जो केवल स्थल पर चल सकते हैं और कुछ केवल जल पर चल सकते हैं। अब फ़्राँस के एक आविष्कारक ने एक ऐसी बाइसिकिल आविष्कृत की है जो स्थल और जल दोनों पर समान रूप से चल सकती है। इस बाइसिकिल के दोनों ओर दो बेलन से लगे रहते हैं। जब बाइसिकिल पानी पर दौड़ाई जाती है तब ये बेलन नीचे सरका कर पानी की सतह पर कर दिये जाते हैं। इससे बाइसिकिल पानी में नहीं डूबती; ऊपर ही तैरा करती है। क्योंकि बाइसिकिल का बोझ बेलनों ही पर रहता है। पर जब बाइसिकिल सड़कों पर चलाई जाती है तब पूर्वोक्त बेलन कुछ ऊपर उठा लिये जाते हैं। यह बाइसिकिल तौल में कोई तीन मन पन्द्रह सेर है। इसकी लम्बाई आठ फ़ीट और चौड़ाई साढ़े तीन फ़ीट है। देखें इस प्रकार की बाइसिकिलें हिन्दुस्तान में कब पधारती हैं।

७—आइने का अद्भुत उपयोग।

अमेरिका के एक आविष्कारक ने आइने का एक अद्भुत रीति से उपयोग किया है। उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने नगर के कितनेही घरों में आइने लगाये हैं। उन सब आइनों का सम्बन्ध उसने बिजली के तारों के द्वारा अपने घर के एक प्रधान आइने से कर दिया है। इस प्रधान आइने में देखनेवाले को अपनी सूरत नहीं देख पड़ती; किन्तु वे चीज़ें देख पड़ती हैं जिनका अक्स नगर भर में फैले हुए आइनों में समय समय पर पड़ता रहता है। इस तरह प्रधान आइने के सामने बैठे हुए आविष्कारक महाशय सदा नगर भर का दृश्य देखा करते हैं। जब वे केवल एक ही स्थान या घर का दृश्य देखना चाहते हैं तब अन्य सब आइनों से सम्बन्ध रखने वाले तारों का मुँह बन्द कर देते हैं और केवल अपने इच्छित स्थान ही का दृश्य देखते हैं। इसी तरह वे एक बन्द कमरे में बैठे हुए अपने घर के अन्य सब कमरों का दृश्य भी देख सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यदि इस आविष्कार का प्रचार हुआ तो इससे बहुत कुछ लाभ होने की सम्भावना है।

८—हिसाबी मैशीन।

गवर्नमेंट के और बड़े बड़े व्यापारियों के दफ़्तरों में हिसाब लगानेवाली कलें रहती हैं। वे दस दस पन्द्रह पन्द्रह अंकों का जोड़, बाक़ी और गुणा बात की बात में कर डालती हैं। ये सब मैशीनें विदेशियों की बनाई हुई हैं। बड़ी ख़ुशी की बात है, अब एक बंगाली सज्जन ने भी एक ऐसीही मैशीन बनाई है। आपका नाम है बाबू आशुतोष मल्लिक। कालीघाट, कलकत्ते में आप रहते हैं। आपकी मैशीन रुपया, आना, पाई और पौंड, शिलिंग, पेंस का जोड़, बाक़ी, गुणा और भाग निर्भ्रान्त कर देती है और कभी एक पाई या पेंस की भूल नहीं होती। विलायती मैशीनों में से एक जर्मन इंजिनियर की बनाई हुई मैशीनही सबसे अधिक प्रसिद्ध है। उसकी क़ीमत कोई ४०० रुपये है। पर मल्लिक महाशय की मैशीन सिर्फ़ १०० रुपये में आती है। जर्मन-मैशीन कभी कभी भूलें भी कर जाती है। मल्लिक महाशय की मैशीन कभी भूल नहीं करती। जर्मन-मैशीन आना, पाई का जोड़ आदि नहीं लगा सकती। पर मल्लिक महोदय की मैशीन वह भी कर देती है। इसलिए बड़े बड़े यंजिनियरों और हिसाबियों ने मल्लिक बाबू को सरटीफ़िकटें देकर उनकी पीठ ठोंकी है।

९—हिन्दुओं के पवित्र ग्रन्थ।

स्वनामविश्रुत अध्यापक मोक्षमूलर ने "पूर्वीय देशों के पवित्र ग्रन्थ" (Sacred Books of the East) नाम की एक पुस्तक-माला निकाली थी। उसमें उन्होंने संस्कृत के २१ ग्रन्थों का अँगरेज़ी-अनुवाद प्रकाशित किया था। परन्तु संस्कृत का साहित्य अक्षय्य ग्रन्थ-रत्नों का आकर है। अँगरेज़ी जाननेवालों के लिए उसमें से २१ ग्रन्थों को सुलभ कर देना, मानो महासागर से २१ बूँद पानी निकाल लेना है। यही समझकर पेंशन पाये हुए श्रीयुत मेजर वामनदास वसु, आई० एम० स० और श्रीयुत श्रीशचन्द्र वसु ने प्रयाग के पाणिनि-आफ़िस से वेद, वेदाङ्ग, ब्राह्मण, उपनिषद्, दर्शन, स्मृति, पुराण आदि के अँगरेज़ी-अनुवाद प्रकाशित करने का बड़ाही उपकारी कार्य्य आरम्भ किया है। अनुवाद के साथ ग्रन्थ का मूलांश भी देवनागरी लिपि में प्रकाशित होता है। हर महीने कोई १०० पृष्ठ की एक पुस्तक निकलती है। इस प्रकार साल भर में १२०० पृष्ठ निकल जाते हैं। इस पुस्तकमाला के ग्राहकों को १२ रुपये वार्षिक मूल्य देना पड़ता है, जो पुस्तकों के महत्त्व को देखते अधिक नहीं कहा जा सकता। इस मालिका का नाम रक्खा गया है—हिन्दुओं के पवित्र ग्रन्थ (Sacred Books of the Hindus)। इसमें जो पुस्तकें प्रकाशित होंगी उनके सम्पादन और अनुवाद आदि का काम बड़े बड़े नामी विद्वान् करेंगे। अनेक प्रसिद्ध प्रसिद्ध ग्रन्थों के सङ्कलन और प्रकाशन का काम जारी हो गया है। कितनेही राजे महाराजों ने इस कार्य्य में सहायक होना स्वीकार किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीयुत पण्डित प्यारेलाल मिश्र ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पुस्तक-मालिका का पहला भाग अलग पुस्तकाकार भी निकला है। इसमें ईश, केन, कठ, मुण्डक और माण्डूक्य उपनिषदों का अनुवाद है। अष्टाध्यायी और सिद्धान्त-कौमुदी के अनुवादक श्रीयुक्त श्रीशचन्द्र वसु ने इन उपनिषदों का अनुवाद किया है। ऊपर देवनागरी लिपि में मूल है; नीचे मूल के एक एक पद का अर्थ अँगरेज़ी में है। उसके नीचे भावार्थ है। इसके बाद नोट्स हैं। फिर माधवाचार्य्य के भाष्य का अनुवाद है। इससे पाठक समझ जायँगे कि यह पुस्तक कितनी उपकारी और उपादेय है। अब, इस समय, याज्ञवल्क्य-स्मृति का अनुवाद निकल रहा है। इसमें विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा और विद्यानाथ पायगुण्ड की बालमभट्टी टीकाओं का अनुवाद भी रहता है। ल स्मृति और मिताक्षरा दोनों देवनागरी लिपि में छपती हैं। छपाई इंडियन प्रेस की होने से ख़ूब साफ़-सुथरी होती है। वसु-बन्धुओं का यह काम सर्वथा प्रशंसनीय है। संस्कृत-साहित्य के अनुपम ग्रन्थों के उद्धार और प्रचार की कामना रखनेवाले समर्थ सज्जनों को इस कार्य्य में ज़रूर यथाशक्ति सहायता देना चाहिए और इस ग्रन्थमाला के ज़रूर ग्राहक होना चाहिए। पूर्वोक्त ६ उपनिषदों वाले इसके प्रथम भाग का मूल्य ५ रुपया है। उत्तम जिल्द बँधी हुई है। पाणिनि-आफ़िस, बहादुरगंज, प्रयाग को लिखने से मिलती है। जो सिर्फ़ मिताक्षरा और बालमभट्टी टीका समेत याज्ञवल्क्य-स्मृति लेना चाहें उन्हें वह ३) रुपये में इंडियन प्रेस, प्रयाग, से अलग भी मिल सकती है।

१०—श्रीयुत पण्डित प्यारेलाल मिश्र।

पाठक, बहुत दिनों से आप श्रीयुत पण्डित प्यारेलाल मिश्र के लेख पढ़ते आते हैं। गत संख्या में भी आपका एक सचित्र लेख प्रकाशित हुआ है। आपकी भाषा कैसी चित्ताकर्षक और बामुहाविरा होती है, और आपके लेख कैसे मनोरञ्जक और साथही शिक्षाप्रद होते हैं, इसके बतलाने की ज़रूरत नहीं। आप मध्यप्रदेश के रहनेवाले हैं। इस समय लन्दन में बारिस्टरी की शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। आपको बहुत पहले से हिन्दी लिखने का शौक़ है। आप भारतमित्र के सम्पादक रह चुके हैं। आपके लेखों की बहार तो पाठक बहुत दिनों से देख रहे हैं। आज हम आपका चित्र-दर्शन भी कराते हैं।

राजा वीरबल।

भारतवर्ष में ऐसा कौन मनुष्य है जिसने वीरबल का नाम न सुना हो? छोटे छोटे गाँवों में भी, जहाँ कोई पढ़ा लिखा मनुष्य नहीं है, गँवार आदमी तक वीरबल के नाम को जानते हों नहीं, किन्तु उनके एक आध चुटकुले भी सुनाते हैं।

जिन प्रसिद्ध पुरुषों की जन्म-भूमि का पूरा पता नहीं चलता उनको कितनेही ग्राम और प्रान्तवाले अपना बतलाने में गर्व करते हैं। यही हाल वीरबल का है। किस स्थान में और कब उनका जन्म हुआ, इसका कुछ पता नहीं। जोधपुरवाले कहते हैं कि वीरबल का जन्म मकराने में हुआ था और इन्होंने पहले पहल मकराने के संगमर्मर की खान की खोज की थी। जयपुरवाले इन्हें अजमेर के निकट एक पहाड़ी के पास बसनेवाले गाँव का बतलाते हैं और कहते हैं कि यहीं पर, जब अकबर बादशाह की सेना के डेरे थे, इनकी बादशाह से भेंट हुई थी। कोई इनको दिल्ली का ब्राह्मण और कोई बुन्देलखण्ड में टिहरी का रहनेवाला बतलाते हैं। काशी के लोग वीरबल को अपनी पुरी का निवासी मानते हैं। कोई कोई इन्हें कालपी का रहनेवाला बताते हैं।

अकबर से वीरबल की पहली भेंट होने के भी कई वृत्तान्त हैं। उनमें से एक यह है कि दिल्ली में एक दिन बादशाह बहुरूपिये का तमाशा देख रहा था। बहुरूपिये ने बैल का स्वाँग ऐसा अच्छा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाया कि सब लोगों ने उसकी बहुत तारीफ़ की और अकबर ने उसको अपना दुशाला इनाम में दिया। वीरबल उन दिनों बालक थे। पाठशाला से आते समय वे भी तमाशा देखने ठहर गये थे। उन्होंने परीक्षा करने के लिए एक कंकड़ी उस बहुरूपिया के स्वाँगी शरीर पर मारी। तब उसने अपने बदन की खाल को ठीक उसी रीति से हिलाया जिस रीति से बैल हिलाता हो। वीरबल इससे बहुत प्रसन्न हुए। उनके पास और तो कुछ था नहीं, टोपी थी। सो उसे उतार कर इनाम में दे डाली। बहुरूपिया इससे बहुत ख़ुश हुआ। उसने बादशाह को टोपी दिखा कर कहा कि आपकी सब इनामों से मैं इस टोपी को बहुत समझता हूँ। इसका देनेवाला सच्चा गुणग्राही है। तब अकबर ने वीरबल को बुलाया और उनकी बातों से प्रसन्न होकर उन्हें अपने पास रख लिया।

वीरबल जाति के ब्राह्मण थे। परन्तु कौन ब्राह्मण, इसका पता नहीं। कोई इन्हें चौबे, कोई कान्यकुब्ज और कोई ब्रह्मभट्ट बतलाते हैं। इनका जन्म संवत् १६१७ में हुआ कहते हैं, लेकिन इसमें कुछ भूल मालूम होती है।

बादशाह के दरबार में पहुँचने के थोड़े ही दिनों बाद वीरबल ने अपनी चातुरी, हाज़िरजवाबी और बुद्धिमानी से उसे प्रसन्न कर लिया। वीरबल की कविता भी अच्छी होती थी, जिससे पहले तो इन्हें कविराय की उपाधि मिली पीछे राजा की। नगरकोट के पास इनको जागीर भी बादशाह ने दी। युद्ध में दो बार अच्छी वीरता दिखाने पर इनका नाम बादशाह ने वीरबल से वीरवर कर दिया। ये बादशाह की सभा के भूषण थे। इनका दरजा तीनहज़ारी था।

इस समय नगरकोट में जयचन्द नाम का एक राजपूत राजा राज्य करता था। बादशाह इससे क्रुद्ध हो गये और इसको क़द कर दिया। इसके राज्य का पट्टा वीरबल को देकर उसने पंजाब के सूबेदार हुसेन कुली ख़ाँ के नाम आज्ञा लिख दी कि नगरकोट वीरबल के हस्तगत करा दो। राजा के पुत्र विधिचन्द्र ने ख़ूब युद्ध किया। विजय होने पर ही था कि इतने में समाचार मिला कि मिरज़ा इब्राहीम पलट कर लाहौर पर आक्रमण करने आ रहा है। वीरबल इस युद्ध में बहुत व्यग्र हो रहे थे, क्योंकि इसके कारण इनकी बहुत निन्दा हुई थी। मुसलमानी सेना ने बड़े अत्याचार किये थे। उसने काँगड़े के राज्य में महामाया का मन्दिर लूट कर वहाँ के पुजारियों और ब्राह्मणों को मार डाला था। मुसलमानों ने और भी कितनेही अत्याचार किये थे। इसका दोष वीरबल पर पड़ा, गो कि इसमें उनका कुछ दोष न था। आख़िर महाराज कुमार विधिचन्द्र ने बादशाह के लिए बहुत सा द्रव्य और पाँच मन सोना देकर अपना पीछा छुड़ाया। इस कार्य से वीरबल को इतनी लज्जा आई कि उन्होंने इस राज्य का फिर कभी नाम तक न लिया और अपनी पुरानी पंजाब की जागीर बदला कर कड़े और कालिंजर के परगने ले लिये।

इब्राहीम ने हुसेन कुली ख़ाँ और वीरबल के आने का समाचार पातेही लाहौर छोड़ दिया। परन्तु मुलतान में शत्रु आ पहुँचे। ख़ूब लड़ाई हुई। मिरज़ा तो भाग निकला, पर उसका भाई मंसूर पकड़कर अकबर के दरबार में लाया गया। बादशाह ने प्रसन्न होकर क़ुली ख़ाँ को "ख़ाने जहाँ" और वीरबल को "मुसाहिबे दानिशवर" की उपाधियाँ दीं।

बादशाह वीरबल से इतने प्रसन्न थे कि उन्हें अपनी दृष्टि से दूर नहीं होने देना चाहते थे। परन्तु जब काल आ गया तब उनकी भी मति बदल गई। उसने संवत् १६४२ के माघ शुक्ल में यूसुफ-ज़ई पठानों से युद्ध करने को स्वात, बुनेर और बजोर के पर्वतों में उन्हें भेज दिया। बादशाह का धाय-भाई जैन ख़ाँ वहाँ पहले भेजा गया था। परन्तु वह कुछ न कर सका। इससे बादशाह ने वीरबल को भेजा। वीरबल के साथ हकीम अबुलफ़तह और जैन ख़ाँ थे। वीरबल वीर तो थे, परन्तु उनको युद्ध का विशेष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

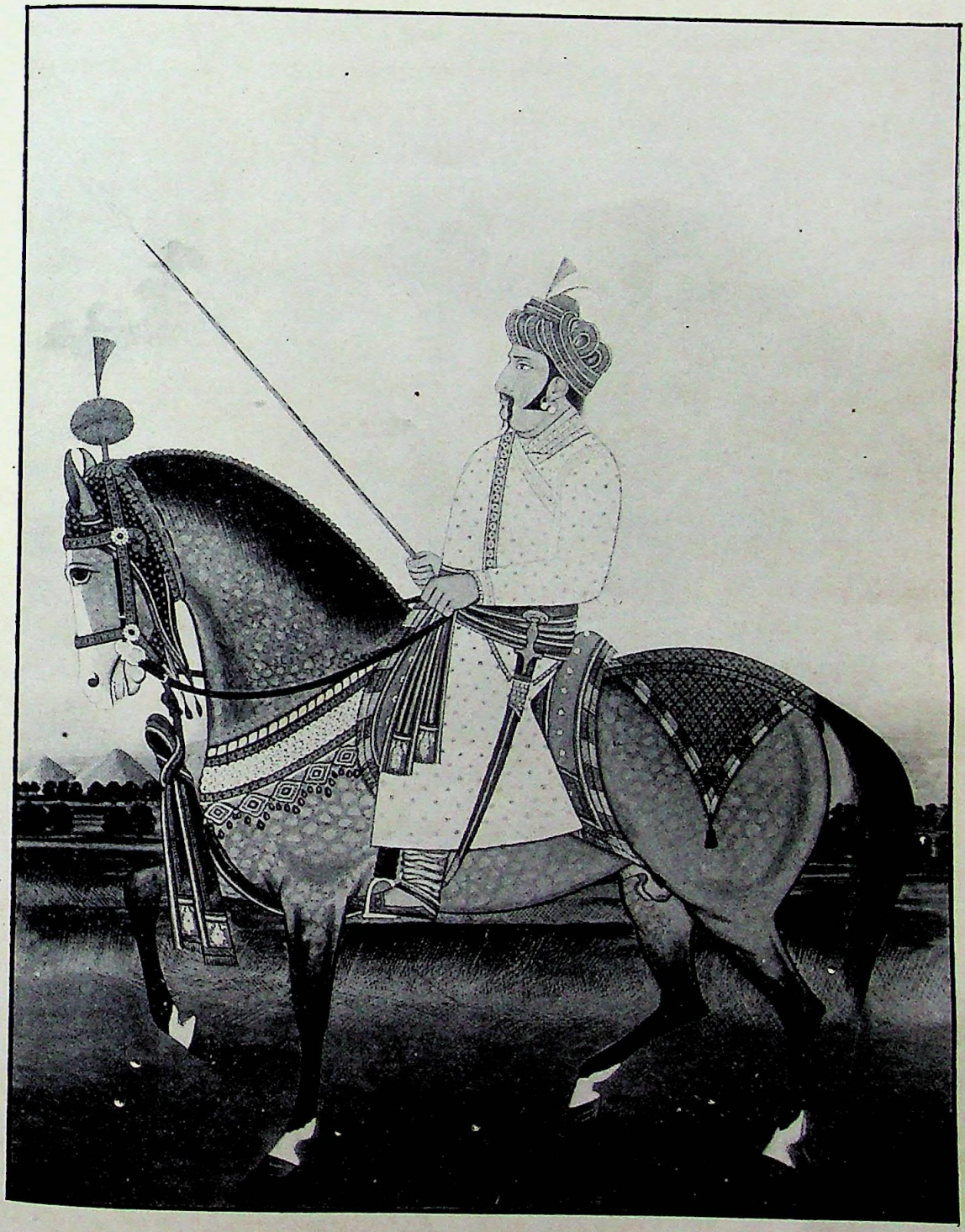

राजा वीरबल ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान न था। जैान ख़ाँ ने बहुत समझाया, परन्तु उन्होंने बिना विचारे चढ़ाई कर दी। पठान भगे, पर उन्होंने एक तंग मार्ग रोक लिया। यहाँ भारी संग्राम हुआ और वीरबल ने वीर-गति पाई। जैान ख़ाँ और हकीम अबुलफ़तह बड़ी कठिनता से बच कर आये।

वीरबल की मृत्यु पर बादशाह को बड़ा शोक हुआ। दो दिन तक उन्होंने भोजन भी नहीं किया। इस समय बादशाह ने एक फ़रमान गुजरात के सूबेदार नवाब ख़ानख़ाना को लिखा था। उससे बादशाह के शोक का अन्दाज़ अच्छी तरह हो सकता है। उस फ़रमान का कुछ अंश हम नीचे देते हैं :—

हमारी सभा के रत्न बुद्धिमान् मन्त्री राजा वीरबल, एकाएक इस असार संसार को छोड़ कर चल दिये। हमारा आनन्द किरकिरा हो गया। सेवकों को ऊँचे पद पर पहुँचने का मार्ग तो स्वामी के काम में प्राण दे देना ही है; परन्तु आशा यह थी कि किसी बड़े काम में ऐसा होगा। अफ़सोस! संसार की मिठाई में विष भरा है। संसार धोखे की टट्टी है। सुख के पीछे दुख और सम्पदा के पीछे विपदा लगी है। तूरान के एलची के आ जाने और अन्यान्य कारणों से हमको अवसर न मिला कि हम स्वयं जाकर उसकी लाश को अपनी आँखों से देख लेते और अपनी उन कृपाओं को प्रकट करते जो उसके ऊपर थीं। इससे सर्व-साधारण को हमारी कृपा और हमारे अनुग्रह का पूरा परिचय मिल जाता।

कहते हैं कि वीरबल की मृत्यु पर बादशाह ने कुछ मरसिये कहे थे। उनमें से एक सोरठा यह है—

"दीन जान सब दीन, एक दुरायो दुसह दुख।
सो अब हमको दीन, कछु नहिं राख्यो वीरवर॥"

वीरबल की मृत्यु के बाद जैान ख़ाँ और हकीम साहब लज्जित होते हुए बादशाह के समीप पहुँचे। अकबर उन पर बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने बहुत दिनों तक उनको दरबार में नहीं आने दिया। फिर बादशाह ने मानसिंह और राजा टोडरमल को भेज कर पठानों के देश में क़तलेआम करवा दी और जो लोग पकड़े गये उनको तुर्किस्तान भेज कर बिकवा दिया।

वीरबल कविता भी अच्छी करते थे। उनके दो नमूने नीचे दिये जाते हैं :—

(१)

गर्भ चढ़े पुनि रूप चढ़े
पलना पै चढ़ें चढ़े गोद धनाके,
हाथी चढ़े पुनि घोड़ा चढ़े
सुखपाल चढ़े चढ़े जोम धनाके।
वैरी और मित्र के चित्त चढ़े
कवि ब्रह्म भने दिन बीते पनाके,
ईश कृपालु को जान्यो नहीं अब
काँधे चढ़े चलि चारि जनाके॥

(२)

यद्यपि सोच करे अब द्रव्य को
गर्भ में कौन की गाँठ को खायो,
जा दिन जन्म लियो जग में
तब केतिक कोटि लिये संग आयो।
वा को भरोस क्यों छोड़े अरे मन!
जा सों अहार अचेत में पायो,
ब्रह्म भनें जनि सोच करै
वहि सोच है जो विरला उलहायो॥

ओड़छा के प्रसिद्ध कवि केशवदास प्रवीनराय के साथ दिल्ली आये थे। उस समय वे वीरबल से मिलने गये। वीरबल की तबीयत अच्छी न थी। इससे उन्होंने कहला भेजा कि "आज मुझे अजीर्ण है, कल आना"। इस बात को सुन कर केशवदास ने निम्नलिखित दोहा उन्हें लिख भेजा :—

जस जायो सब जगत को, भयो अजीरन तोय।
अपजस की गोली दऊँ, तत्कालहिं सुधि होय॥

इस दोहे को पढ़ कर वीरबल तुरन्त ही बाहर निकल आये। तब केशवदास ने यह पद्य पढ़ा :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भू रवि पच्छि वसू नर नाग
नदी नद कोल रचे दसचारी,
केशव देव अदेव रचे
नर देव रचे रचना न निवारी।
रच के नरनाथ बली बल वीर
भयो कृतकृत्य महाव्रत धारी।
दै करतारपनो कर तोहि
दई करतार दुहूँ कर तारी॥

इसे सुन कर राजा वीरबल इतने ख़ुश हुए कि अपने शाली रूमाल के पल्ले में बँधी हुई छः करोड़ की हुँडियाँ खोल कर कवि को दे दीं। तब धन्यवाद में कविजी ने दूसरा सवैया पढ़ा :—

केशवदास के भाल लिख्यो विधि
रंक को अंक बनाय सवारो,
धोयो धुयो नहिं छोड़ो छुट्यो
बहु तीरथ के जल जाय पखारो।
ह्वै गयो रंक ते राव तबै
जब वीर बली नृपनाथ निहारो,
भूलि गयो जग की रचना
चतुरानन फारि रह्यो मुख चारो॥

अमरसिंह।

भारत के जातीय पुस्तकालय।

(२)

मुग़ल बादशाहों के शाही पुस्तकालय।

इस विषय के पिछले लेख में बौद्ध, जैन और हिन्दू मठों और राजदरबारों के पुस्तकालयों का ज़िक्र हो चुका है। इस बार मुसलमान बादशाहों के पुस्तकालयों का हाल लिखा जाता है।

भारतीय मुसलमान बादशाहों में सबसे पहले फ़ीरोज़ तुग़लक़ ने पुस्तकालय स्थापित किया था। एक बार उसने सुना कि ज्वालामुखी नामक स्थान के एक मन्दिर में कोई चार हज़ार संस्कृत-ग्रंथ हैं। यह सुनते ही उसने उन ग्रन्थों को देहली में मँगवा लिया और कुछ और ग्रंथ मिला कर एक शाही पुस्तकालय खोला। इस पुस्तकालय के मुख्य मुख्य ग्रंथों का उसने फ़ारसी और अरबी में अनुवाद भी कराया था।

फ़ीरोज़ तुग़लक़ के बाद अर्से तक किसी मुसलमान बादशाह ने पुस्तकालय स्थापित करने की ओर ध्यान न दिया। जब अकबर बादशाह देहली के सिंहासन पर बैठे तब उन्हों ने इस ओर ध्यान दिया। अकबर बड़ेही विद्यारसिक बादशाह थे। उनके दरबार में नाना विद्याओं के पण्डित सदा मौजूद रहते थे। अकबर ने एक बड़ा भारी पुस्तकालय स्थापित किया। उसमें सब प्रकार के बहुमूल्य, उपयोगी और दुर्लभ ग्रंथ जमा किये गये। यह शाही पुस्तकालय कई भागों में विभक्त था। इनमें से कुछ ग्रंथ हरम के भीतर रहते थे और कुछ बाहर। गद्य और पद्य के ग्रंथ अलग अलग भागों में रक्खे जाते थे। हिन्दी, संस्कृत, फ़ारसी, अरबी, यूनानी आदि भिन्न भिन्न भाषाओं के ग्रंथ भी भिन्न भिन्न विभागों में रक्खे जाते थे। प्रत्येक विभाग फिर कई भागों में बँटा रहता था। प्रत्येक उपविभाग में एक एक विषय के ग्रंथ रहते थे। महीने में कई बार उनका निरीक्षण किया जाता था। अनुभवी विद्वान् बादशाह अकबर को नित्य नये ग्रंथ सुनाया करते थे। अकबर के पुस्तकालय में ऐसा एक भी ग्रंथ न था जिसे उन्होंने एक या अधिक बार न सुना हो।

अकबर के शाही पुस्तकालय की पुस्तकें केवल बादशाह के सुनने और अलमारियों की शोभा बढ़ाने ही के लिए न थीं। उनके द्वारा भिन्न भिन्न भाषाओं के साहित्य की पुष्टि भी की जाती थी। कई कई भाषायें जाननेवाले कितने ही विद्वान् हिन्दी, फ़ारसी, अरबी और यूनानी ग्रंथों का अनुवाद अन्य भाषाओं में सदा करते रहते थे। यों तो संस्कृत की न मालूम कितनी पुस्तकों का फ़ारसी में अनुवाद किया गया था; पर उनमें से अथर्ववेद, महाभारत, रामा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ण, लीलावती, ताजक, राजतरङ्गिणी, हरिवंश और नलदमयंती मुख्य हैं। इनमें से कौन ग्रंथ किसने अनुवादित किया था, इसकी तालिका नीचे लिखी जाती है:—

अथर्व-वेद	हाजी इब्राहीम (सरहिन्दनिवासी)
महाभारत	नक़ीबख़ां, अबदुल क़ादिर बदायूनी, शेख़ सुलतान।
रामायण	,, ,, ,,
लीलावती	शेख़ अब्दुल फैज़ फैज़ी।
ताजक	मुकम्मिल ख़ाँ (गुजरातनिवासी)
राजतरङ्गिणी	मौलाना शाहमुहम्मद शाहाबादी
हरिवंश	मौलाना शेरी।
नलदमयन्ती	फ़ैज़ी।

संस्कृत की तरह अरबी और तुर्की से भी कई किताबें फ़ारसी में अनुवादित हुई थीं। इनमें से तुजम्मुल बलदान और बाबरनामा मुख्य हैं। पहला ग्रंथ अरबी में था; इसका फ़ारसी अनुवाद मुल्ला अहमद, क़ासिम बेग और शेख़ मुनौवर आदि कई अरबी विद्वानों ने मिलकर किया था। इस बहुमूल्य ग्रंथ में कितने ही देशों और नगरों का विस्तृत वर्णन है। दूसरा ग्रंथ पहले तुर्की में था। इसका फ़ारसी अनुवाद मिर्ज़ा अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना (प्रसिद्ध हिन्दी कवि) ने किया था। पूर्वोक्त अनुवादों के सिवा अकबर के दरबारी विद्वानों ने और भी कितने ही उत्तमोत्तम ग्रंथ और संग्रह तैयार किये थे।

अकबर के मरने पर उनके उत्तराधिकारी इस शाही पुस्तकालय की रक्षा और उन्नति बराबर करते गये। यहाँ तक कि कुछ दिनों में भारत भर के सर्वोत्तम और सबसे अधिक मूल्यवान् ग्रंथ इस पुस्तकालय में इकट्ठे हो गये। ईसा की सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में कितनेही उत्तमोत्तम और अलभ चित्र तथा बेलबूटेदार और सचित्र ग्रंथ भी इस पुस्तकालय में आये। इनमें से कुछ ख़रीदे गये थे; कुछ ख़ास तौर से बनवाये गये थे; और कुछ लूट और ज़ब्ती में मिले थे। इस प्रकार यह शाही पुस्तकालय ख़ूब उन्नत अवस्था को प्राप्त था। उस समय इससे बड़ा और मूल्यवान् पुस्तकालय एशिया में दूसरा न था।

अठारहवीं शताब्दी तक इस पुस्तकालय की अच्छी दशा रही। परन्तु इसके बाद उसकी जैसी दुर्दशा हुई उसे सोच कर दुःख होता है। अठारहवीं शताब्दी के अन्त में मुग़ल साम्राज्य की दशा बिगड़ने के साथ साथ शाही पुस्तकालय पर भी शनि की कुदृष्टि पड़ी। जिसने पाया उसने इस पुस्तकालय के बहुमूल्य ग्रंथों को हस्तगत कर लिया। अधिकांश ग्रंथ अवध के तत्कालीन नवाब के हाथ आये। लखनऊ में ये ग्रंथ १८५६ ई० तक रक्षित रहे। इस समय नवाब के सिंहासनच्युत हो जाने पर दो चार ग्रंथ तो कलकत्ते भेज दिये गये। शेष लखनऊ में ही पड़े रहे। दूसरे साल सिपाही-विद्रोह हुआ। फिर क्या था, ईंधन की जगह ग्रंथ ही तन्दूरों में झोंके जाने लगे। कितनेही ग्रंथ खिड़कियाँ मढ़ने और पुड़िया बाँधने के काम में आये। बचेखुचे सिपाहियों ने लूट लिये। इनमें से कुछ नीलाम किये गये। सुनते हैं कि नीलाम किये हुए ग्रंथों में से थोड़े से बंगाले की एशियाटिक सोसाइटी ने भी ख़रीदे थे।

लखनऊ और देहली के जो ग्रंथ नष्ट होने से बच गये थे वे कुछ दिन पहले तक तितर बितर पड़े थे। उन्हें वर्तमान काल के दो बड़े पुस्तकप्रेमियों ने बड़े परिश्रम से इकट्ठा किया है। उल्लिखित पुस्तकप्रेमी वर्त्तमान रामपुर-नरेश और स्वर्गवासी ख़ाँ—बहादुर ख़ुदाबख़्श, सी० आई० ई० ने अपने अपने एकत्र किये हुए ग्रंथ क्रम से रामपुर स्टेट लाइब्रेरी और बाँकीपुर ओरियंटल पब्लिक लाइब्रेरी में जमा किये हैं। लखनऊ के कुछ ग्रंथ वहाँ के अजायब घर में भी मौजूद हैं।

अन्य दरबारी पुस्तकालय।

फ़ारसी और अरबी के हस्तलिखित ग्रंथों की टीपू सुलतान और महाराज रणजीतसिंह के दर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारी पुस्तकालयों में भी कमी न थी। टीपू के पुस्तकालय में कोई दो हज़ार हस्तलिखित ग्रंथ थे। टीपू के पराजित होने पर ये अँगरेज़ों के हाथ आये। सन् १८०९ ई० में चार्ल्स स्टुवर्ट नाम के एक साहब ने इन ग्रंथों का संक्षिप्त विवरण प्रकाशित किया था। इस पुस्तकालय के कुछ ग्रंथ तो इँगलैंड के मुख्य मुख्य पुस्तकालयों को भेंट किये गये। परन्तु अधिकांश ग्रंथ कलकत्ते के फ़ोर्ट विलियम कालेज में रक्खे गये।

फ़ारसी और अरबी के वर्त्तमान दरबारी पुस्तकालयों में जयपुर और अलवर के पुस्तकालय मुख्य हैं। जयपुर के पुस्तकालय में महाभारत के उस फ़ारसी-अनुवाद की मूल प्रति मौजूद है जिसे अकबर ने तैयार करवाया था। यह चार जिल्दों में है। इसे सम्राट् मुहम्मदशाह ने महाराज जयसिंह को भेंट किया था। इसमें सैकड़ों सुन्दर सुन्दर चित्र हैं। प्रत्येक चित्र साबर हिरन की पतली खाल से ढका हुआ है। इस पुस्तक की हस्तलिपि बड़ी ही सुन्दर है।

अलवर में भी कितने ही छपे और लिखे हुए ग्रंथ तथा चित्र हैं। संख्या में अधिक न होने पर भी वे उपयोगिता, सौन्दर्य्य और मूल्य में किसी से कम नहीं। इसमें गुलिस्ताँ नामक सुप्रसिद्ध ग्रंथ की एक प्रति है। यह मनोहर बेल बूटेदार ग्रंथ बड़ाही सुन्दर और मूल्यवान् है। मालूम होता है कि इसके चित्रकार ने इसको मनोमुग्धकारी बनाने में अपनी सारी चित्रविद्या ख़र्च कर डाली है। इसका एक एक पृष्ठ पन्द्रह पन्द्रह दिन में तैयार किया गया था। पूरे बारह वर्ष में सम्पूर्ण ग्रंथ तैयार हुआ था। कहते हैं कि इस पुस्तक का मूल्य कोई एक लाख रुपये है। इसके सिवा इस पुस्तकालय में एक प्रति क़ुरान शरीफ़ और बाबरनामा की भी बड़ी ही सुन्दर और क़ीमती है। यहाँ मुग़ल बादशाहों के कुछ अच्छे अच्छे चित्र भी हैं।

रामपुर और बाँकीपुर के पुस्तकालय।

सिपाही-विद्रोह के बाद रामपुर के तत्कालीन नवाब ने इश्तिहार दे दिया कि जो कोई हस्तलिखित ग्रंथ लावेगा उसे एक रुपया प्रति ग्रंथ के हिसाब से पुरस्कार मिलेगा। इस तरह उन्होंने हज़ारों अच्छे अच्छे ग्रंथ इकट्ठे करके एक पुस्तकालय खोल दिया। इस पुस्तकालय में ४४६७ अरबी के और ४२५३ फ़ारसी के हस्तलिखित ग्रंथ हैं। इस पुस्तकालय में ख़ास बाबर बादशाह के हाथ का लिखा हुआ तुर्की भाषा का एक कविता-ग्रंथ भी है। प्रसिद्ध प्राच्यविद्या-विशारद बेवरिज साहब ने इस पुस्तकालय की बड़ी प्रशंसा की है।

बाँकीपुर का पुस्तकालय स्वर्गवासी मौलवी ख़ुदाबख़्श का स्थापित किया हुआ है। यह अस्सी हज़ार की लागत की एक शानदार इमारत में है। इसमें इस समय अरबी और फ़ारसी के कोई पाँच हज़ार हस्तलिखित ग्रंथ हैं। इनकी लागत पाँच लाख रुपये से कम न होगी। इनके सिवा इस पुस्तकालय में कोई एक लाख रुपये की अँगरेज़ी किताबें भी हैं।

मौलवी ख़ुदाबख़्श ने केवल इस काम के लिए मुहम्मद मक़ी नाम का एक आदमी नौकर रक्खा था कि वह देश विदेश घूमकर अरबी और फ़ारसी के हस्तलिखित ग्रंथ इकट्ठे करे। मौलवी साहब इसे ५० रुपये मासिक वेतन और कमीशन देते थे। यह व्यक्ति अठारह वर्ष तक पूर्वोक्त मौलवी साहब के यहाँ नौकर रहा। इतने दिनों में उसने फ़ारस, अरब, सीरिया, इजिप्ट आदि कई देशों में घूमकर फ़ारसी और विशेष कर अरबी के कई हज़ार हस्तलिखित ग्रंथ इकट्ठ किये। इनमें से कितनेही ऐतिहासिक ग्रंथ अत्यन्त मूल्यवान् हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्धों के द्वारा अमेरिका का आविष्कार।

सारे सभ्य संसार का यह विश्वास है कि सन् १४९२ ई० में कोलम्बस साहब ही ने पहले पहल अमेरिका का आविष्कार किया था। उनके पहले कोई बाहरी मनुष्य अमेरिका में न गया था। यह विचार केवल यूरोपियनों ही का नहीं, किन्तु एशियावालों का भी है। पर सर्वसाधारण का यह मत भ्रमात्मक है। कोलम्बस के सैकड़ों वर्ष पहले बौद्ध-धर्म-प्रचारकगण अमेरिका गये थे और वहां उन्हों ने बौद्ध धर्म और एशियाई सभ्यता का प्रचार किया था। अमेरिका के कई स्थानों में इस बात के प्रमाण पाये गये हैं।

अमेरिका में हारपर्स मैगेज़ीन (Harpers Magazine) नाम का एक मासिक पत्र निकलता है। उस में कई साल हुए पूर्वोक्त विषय पर एक महत्त्वपूर्ण लेख निकला था। उस लेख के लेखक अध्यापक लान फ़ायर ने उसमें यह सिद्ध किया था कि अमेरिका का पता पहले पहल बौद्धों ही ने लगाया था और वहाँ के मेक्सिको देश में बौद्ध धर्म्म और सभ्यता का प्रचार भी किया था। फ़ायर साहब के लेख का सारांश सुनिएः—

बौद्ध लोगों ने अपने धर्म्म का प्रचार करने में बड़े ही अपूर्व साहस का परिचय दिया है। एशिया में शायदही ऐसा कोई देश हो जहाँ उन्होंने अपने धर्म्म का प्रचार न किया हो। भारतवर्ष, लङ्का, ब्रह्मदेश, सुमात्रा, जावा, चीन, जापान, तुर्किस्तान, अफ़ग़ानिस्तान, एशिया माइनर आदि न मालूम कितने देशों में घूम घूमकर उन लोगों ने अपने मत का प्रचार किया था। ईसा की पाँचवीं शताब्दी में बौद्ध धर्म्म एशिया में उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गया था। इसी समय काबुल, चीन और जापान के कुछ बौद्धों ने अमेरिका के मेक्सिको राज्य में जाकर अपने धर्म का प्रचार किया।

मेक्सिको में पूर्वोक्त मत के प्रमाण स्वरूप बौद्धों के बहुत से चिह्न पाये जाते हैं। इनमें से वहाँ के बौद्ध युग का भास्कर्य्य और स्थापत्य सबसे अधिक विश्वसनीय है। इसके चिह्न मेक्सिको के घर घर में पाये जाते हैं। इसके सिवा वहाँ के नगरों और ग्रामों से भी यह मालूम होता है कि मेक्सिको में बौद्ध धर्म का प्रभाव बहुत दिनों तक रहा है। उदाहरणार्थ ग्वाटीमाला (Guatimala) लीजिए। यह "गौतमालय" का अपभ्रंश है। Oaxaca, Zacaticas, Sacatepec, Zacattond, Sacapulas आदि स्थानों के नाम भी "शाक्य" शब्द की छाया पर बने हैं। इस बात को सब लोग जानते हैं कि संस्कृत का 'श' अक्षर अन्य भाषाओं में 'ह', 'ज' अथवा 'ख' बन जाता है। इसलिए शाक्य से साका और ज़ाकरा आदि हो जाना कुछ विचित्र नहीं। मेक्सिको में पालके नाम का एक स्थान है। वहाँ बुद्ध महाराज की एक मूर्त्ति मिली है। उस मूर्त्ति पर लिखा है—'शाकोमल'। हमारी समझ में यह शब्द 'शाक्यमुनि' का अपभ्रंश है। तिब्बत के बौद्ध लोग अपने पुरोहित को 'लामा' कहते हैं। उधर मेक्सिकोवाले भी अपने पुरोहित को लामा कहते हैं। मेक्सिको में बौद्ध मत और बुद्ध-मूर्त्तियाँ सैकड़ों की तादाद में पाई गई हैं। इसके सिवा वहाँ ऐसे कई प्राचीन शिलालेख भी मिले हैं जिनसे यह मालूम होता है कि प्राचीन मेक्सिकोवासी बौद्धधर्मावलम्बी थे और गौतम बुद्ध की पूजा करते थे।

चीन के इतिहास-लेखक मातवानलिन कहते हैं कि—"कफिन देश (काबुल) का निवासी हुईशेन (इयसेन) नामक एक बौद्ध संन्यासी ४९९ ई० में फुसाँग देश से चीन में आया था। उसने चीन के तत्कालीन सम्राट् युँग युआन को बहुत कुछ नज़र भी दी थी। सम्राट् ने युकी नाम के एक मन्त्री को हुईशेन का भ्रमणवृत्तान्त लिखने की आज्ञा दी थी।" चीनी भाषा में लिखा हुआ हुईशेन का भ्रमणवृत्तान्त अब तक मौजूद है। उसमें हुईशेन ने कहा है कि सम्राट् तामिंग के राजत्वकाल (४५८ ई०) में काबुल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्धधर्म का केन्द्रस्थान था। उसके पहले वहाँ के पाँच बौद्ध भिक्षु फुसाँग देश को गये थे और वहाँ उन्होंने बौद्ध धर्म का प्रचार किया था। फुसाँग देश चीन से कोई २०००० ली, अर्थात् ६५०० मील, दूर है। वह १०००० ली, अर्थात् ३२५० मील, चौड़ा है और चारो ओर समुद्र से घिरा हुआ है।

फुसाँग एक प्रकार का वृक्ष होता है। यह वृक्ष पूर्वोक्त फुसाँग देश में बड़ी कसरत से होता है। हुईशेन ने इसी वृक्ष के नाम पर पूर्वोक्त देश का नाम फुसाँग देश रक्खा था। मेक्सिकोवाले आज कल फुसाँग वृक्ष को आगेवी कहते हैं। उपर्युक्त चीनी ग्रंथ में फुसाँग वृक्ष का जो वर्णन लिखा है वह आगेवी से बिलकुल मिलता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि फुसाँग देश और मेक्सिको देश एक ही हैं और काबुली बौद्धों ने वहाँ जाकर बुद्धधर्म का अवश्य प्रचार किया था। कहते हैं कि फुसाँग वृक्ष की छाल में एक प्रकार का तन्तु होता है। यह रेशम की तरह होता है। हुईशेन ने अन्यान्य बहुमूल्य वस्तुओं के साथ इसे भी चीन सम्राट को भेंट किया था। हुईशेन ने एक जगह कहा है कि फुसाँग प्रदेश में चाँदी, सोना, लोहा, ताँबा बहुत होता है। कोलम्बस ने भी इस बात को प्रत्यक्ष देखा था। वह तो अपने साथ बहुत सा सोना चाँदी स्पेन को लाया भी था।

फुसाँग देश और मेक्सिको एक ही हैं, इसका एक और भी प्रमाण सुनिए। मेक्सिकोवाले कहते हैं कि प्राचीन काल में एक श्वेतकाय दीर्घपरिच्छदधारी महापुरुष मेक्सिको में आया था। वह लोगों को नीति और धर्म की शिक्षा दिया करता था। उसका नाम 'हुईशी ये कोको' था। मालूम होता है कि यह नाम 'हुईशेन भिक्षु' का अपभ्रंश है। मेक्सिको के एक और महापुरुष के सम्बन्ध में भी ऐसी ही किंवदन्ती है। इन लोगों की शिक्षा और धर्म-प्रचार का जैसा वर्णन पाया जाता है उससे मालूम होता है कि ये लोग बौद्ध थे।

काबुल, चीन और जपान के बौद्ध संन्यासी देश देशान्तरों में सदा धर्म्म-प्रचार करते फिरते थे। पहले वे निकट के द्वीपों में प्रचार करने जाते थे। वहाँ से आगे के अन्य द्वीपों का संवाद पाकर वे वहाँ भी जाया करते थे। योंही धीरे धीरे आगे बढ़ते बढ़ते वे बड़ी दूर दूर के द्वीपों और देशों में पहुँच जाते थे और वहाँ अपने धर्म का प्रचार करते थे। मालूम होता है कि इसी तरह प्रचार करते करते वे अमेरिका पहुँचे थे। अमेरिका का अलास्का प्रदेश चीन के निकट है। मालूम होता है कि इसी रास्ते बौद्ध लोग वहाँ गये थे। क्योंकि अलास्का से मेक्सिको तक समुद्र के किनारे किनारे जितने प्रदेश हैं उन सबमें बौद्ध धर्म और सभ्यता के चिह्न पाये जाते हैं। यद्यपि इनमें से अधिकांश चिह्न स्पेनिश लोगों ने नष्ट कर दिये हैं, तथापि अभी बहुत कुछ अवशिष्ट हैं।

यह लिखा जाचुका है कि मेक्सिको के स्थानों और पुरोहितों के नामों में बुद्ध-धर्म की झलक पाई जाती है। इसके कुछ उदाहरण ऊपर दिये गये हैं। एकाध और भी सुनिए। मेक्सिकोवाले अपने प्रधान पुरोहित को टेशाक्का या शाक्का पुरुष कहते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह शब्द शाक्य पुरुष का रूपान्तर मात्र है। एक अन्य पुरोहित का नाम कौतू शाक्का था। यह शब्द गौतमशाक्य का बिगड़ा हुआ रूप मालूम होता है।

मेक्सिको में जितने शिलालेख, मूर्तियाँ और मन्दिर आदि मिले हैं उनमें से अधिकांश बौद्ध धर्म से सम्बन्ध रखते हैं। बौद्ध-मन्दिर और दीर्घपरिच्छदधारी बौद्ध पुरोहित मेक्सिको में जगह जगह देखे जाते हैं। नाना प्रकार की बुद्ध-मूर्त्तियों की भी वहाँ कमी नहीं है। सुनते हैं कि गणेश और राहु आदि की मूर्त्तियाँ भी मेक्सिको में मिली हैं।

ऊपर जितने प्रमाण लिखे गये उन सबसे सिद्ध है कि प्राचीन काल में एशिया के बौद्ध संन्यासी अमेरिका गये थे और वहाँ उन्होंने बौद्ध धर्म का प्रचार किया था। साथ ही साथ यह भी मालूम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है कि वही लोग अमेरिका के वास्तविक आविष्कारक थे, न कि कोलम्बस और उसके साथी। इसलिए उस यश के सच्चे अधिकारी बौद्ध संन्यासी ही हैं जो इस प्रसंग में कोलम्बस को प्राप्त हुआ है।

महाराष्ट्र-साहित्य-सम्मेलन ।

गत आक्टोबर की २३, २४ और २५ तारीख़ को बरोदा में महाराष्ट्र-साहित्य-सम्मेलन हो गया। दूर दूर से कितनेही विद्वान् आये थे। महाराज गायकवाड़ महारानी समेत सम्मेलन में पधारे थे। महाराज के नये नियत हुए प्रधान अमात्य श्रीयुक्त रमेशचन्द्र दत्त, सी० आई० ई० भी मौजूद थे।

पहले दिन की कारवाई ।

स्वागतकारिणी-कमिटी के अध्यक्ष श्रीमान् सयाजीराव गायकवाड़ ने एक वक्तृता देकर सम्मेलन का काम आरंभ किया। उनके कथन का सारांश यह था :—

इस समय हम लोगों को मातृभाषा की विशेष सेवा करना चाहिए। हमें चाहिए कि सरल भाषा में पुस्तकें लिख कर सर्व-साधारण को अर्वाचीन शास्त्रों का ज्ञान करावें। पुस्तकों की क़ीमत थोड़ी रक्खें। हमारे पूर्वज लोकोत्तर विद्वान् थे; हमारे पुराने ग्रन्थों में सब शास्त्रों के तत्त्व भरे पड़े हैं; इस तरह का घमण्ड करके चुप न रहें। शिक्षित लोगों को चाहिए कि अपना दुराग्रह दूर करके अपनी मातृभाषा में पुस्तकें लिखें। बहुत लोग कहते हैं कि शास्त्रीय ज्ञान-सम्पादन के लिए प्रयोगालय दरकार होते हैं; उनके बिना काम नहीं चल सकता। पर वनस्पतिशास्त्र, प्राणिशास्त्र, शारीरकशास्त्र आदि कितनेही शास्त्र हैं जिनके लिए प्रयोगालयों की उतनी ज़रूरत नहीं। तब तक उन्हीं के सम्बन्ध की पुस्तक-रचना क्यों न की जाय?

राव बहादुर सयाजीराव के भाषण के अनन्तर मराठी के प्रसिद्ध ग्रन्थकार सर्जेन् कर्नल कीर्तिकर ने सम्मेलन के सभापति का आसन ग्रहण किया। वे बोले :—

किसी किसी का यह आक्षेप है कि मराठी भाषा में हई क्या? जो कुछ है वह भी संस्कृत का उच्छिष्ट है—संस्कृत की जूठन है। इस तरह का कथन नितान्त निर्मूल है। जिसने रामदास, तुकाराम, ज्ञानदेव आदि के ग्रन्थ देखे हैं वे इस आक्षेप की निर्मूलता अच्छी तरह जान सकते हैं और, यदि, संस्कृत का उच्छिष्ट हो भी तो क्या हानि? संस्कृत हमारी मराठी की माता है। "न मातुः परदैवतम्"। माता से बढ़ कर कोई देवता नहीं। जिसे अपनी माता के गौरव का अभिमान नहीं उससे बढ़ कर कृतघ्न और दुःशील और कौन हो सकता है? कौन ऐसा मातृद्रोही पुत्र होगा जो अपनी माता के उच्छिष्ट की प्राप्ति को पाप समझता हो? क्या अँगरेज़ी साहित्य ने लैटिन और ग्रीक के उच्छिष्ट से अपने कलेवर की वृद्धि नहीं की? हमारा कर्तव्य है कि संस्कृत-ग्रन्थों में जो उत्तमोत्तम बातें हैं उनसे अपनी मातृभाषा मराठी की उन्नति करें। इसके साथ ही विज्ञान, इतिहास और चरित-लेखन आदि से भी अपने साहित्य को उन्नत बनावें।

तदनन्तर अध्यापक आपटे ने प्राचीन ऐतिहासिक काग़ज़-पत्रों की खोज, प्राचीन-काव्य-संशोधन, वैज्ञानिक परिभाषा, नये नये और उपयोगी ग्रन्थों की रचना, पाठशालाओं के लिए लाभदायक साहित्य के निर्म्माण-सम्बन्ध में व्याख्यान दिया। उन्होंने इन विषयों के महत्त्व को अच्छी तरह दिखलाया और कहा कि हम लोगों को इन बातों की सिद्धि के लिए यथाशक्य जी जान से प्रयत्न करना चाहिए।

फिर काशीबाई हेरलेकर ने अपने व्याख्यान में कहा कि पूर्वकाल में स्त्रियों ने साहित्य-क्षेत्र में बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ काम किया है। यदि उन्हें उत्तेजन और साहाय्य दिया जाय तो इस समय भी वे बहुत कुछ कर सकती हैं।

तदुपरान्त राव-बहादुर चिन्तामणि वैद्य ने मराठी भाषा की महत्ता पर एक उत्तम व्याख्यान दिया। उन्होंने कहा कि गत ३० वर्षों में मराठी भाषा ने बड़ी उन्नति की है। उसमें अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थ तैयार हुए हैं। सामाजिक, धार्म्मिक और राजनैतिक बातों पर उनका बड़ा असर पड़ा है। उन्होंने प्रस्ताव किया कि एंट्रेंस और एम० ए० क्लासों में तो मराठी पढ़ाने का प्रबन्ध है, पर बीच के और क्लासों में नहीं। अतएव उनमें भी मराठी पढ़ाने का प्रबन्ध गवर्नमेंट को करना चाहिए। तब रावबहादुर गोपाल महेश्वर साठे और सतारा के वकील करन्दीकर के अनुमोदन से यह प्रस्ताव 'पास' किया गया।

दूसरे दिन की कारर्वाई।

इस दिन "मराठी-वाङ्मय का समाज पर असर"—इस विषय पर राव बहादुर कानिटकर, भाटे और श्रीयुत देवधर आदि के महत्त्वपूर्ण व्याख्यान हुए।

इसके बाद विद्वद्वर डाक्टर भाण्डारकर ने इस विषय पर एक विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान दिया कि प्राचीन ऐतिहासिक लेख, शिलालेख, ताम्रपत्र आदि का संग्रह करना चाहिए और उन्हें ऐसी जगह रखना चाहिए जहाँ सबको सहजही में वे देखने को मिल सकें। उन्होंने कहा कि हमारे देश का प्राचीन इतिहास बहुत कम और बहुत ही त्रुटि-पूर्ण है। परन्तु शिलालेख और ताम्रपत्र आदि का संग्रह करके उनकी सहायता से वह लिखा जा सकता है। गवर्नमेंट ने इस काम के लिए एक अलग महकमा बनाया है। वह इस प्रकार की सामग्री एकत्र करता है। पेशवाओं के दफ़्तर में भी महत्त्व-पूर्ण पुराने काग़ज़ और लेख मिल सकते हैं। अन्य देशी राज्यों के दफ़्तरों से भी इस तरह के काग़ज़ात मिल सकते हैं। डेकन वर्नाक्युलर सोसायटी भी यह काम कर रही है। महाराज गायकवाड़ भी इस विषय की प्रत्येक पुस्तक के लिए ३०० रुपये इनाम देते हैं। परन्तु इस सम्बन्ध में जो काम हो रहा है वह बस नहीं। और अधिक काम होना चाहिए जिसमें भारत का प्राचीन इतिहास लिखने के लिए यथेष्ट सामग्री प्राप्त हो सके।

अलवर के मुंशी जगमोहनलाल ने, इन्दौर के सरदार किबे साहब ने, कलकत्ते के महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने, धार के पं० काशीनाथ लेले ने, माइसोर के भूतपूर्व दीवान श्रीयुत माधवराव ने डाक्टर भाण्डारकर के कथन का अनुमोदन किया। दीवान-बहादुर माधवराव ने कहा कि माइसोर में प्राचीन ग्रन्थों और लेखों की खोज का काम मैंने जारी कर दिया है। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने कहा कि गवर्नमेंट ने मुझे इसी काम पर नियुक्त किया है और आज तक मैंने कोई ५००० प्राचीन पुस्तकादि का पता लगाया है।

इस प्रस्ताव के पास हो जाने पर श्रीयुक्त घाणेकर ने मोड़ी लिपि के सम्बन्ध में कहा कि यह लिपि बड़ी सुन्दर है और बहुत शीघ्र लिखी जा सकती है। अतएव हिन्दुस्तान में कई प्रचलित लिपियों की जगह इसका प्रचार हो जाय तो बहुत अच्छा हो। अपने कथन की पुष्टि में उन्होंने बहुत कुछ कहा, पर उसका विशेष प्रभाव श्रोताओं पर न पड़ा। अतएव यह प्रस्ताव वैसाही रहा। इस मोड़ी-लिपि के सम्बन्ध में एक लेख सरस्वती में प्रकाशित हो चुका है। जिन्हें इस विषय में कुछ विशेष जानने की इच्छा हो वे उस लेख को पढ़ें।

श्रीमती काशीबाई कानिटकर ने एक सरस और हास्योद्दीपक वक्तृता में यह शिकायत की कि प्राचीन ऋषियों ने स्त्रियों को ज्ञान की अधिकारिणी नहीं माना और उन पर कितनेही दोषों की आरोपणा की है। यह अन्याय हुआ है। यदि स्त्रियों को शिक्षा दी जाय तो उससे कुछ भी हानि होने की संभावना नहीं। प्रत्युत हमेशा लाभही होगा। अतएव पुरुषों का कर्तव्य है कि वे स्त्रियों को शिक्षा देने में ज़रा भी संकोच न करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाई साहब के बैठ जाने पर डाक्टर रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर ने "मराठी भाषा की पूर्व-पीठिका" पर एक मनोरञ्जक और सारगर्भित व्याख्यान दिया। आपके भाषण का तात्पर्य्य यह था:—

पाणिनि आदि व्याकरणशास्त्र के आचार्य्यों की आज्ञा है कि अपशब्द का प्रयोग न करना चाहिए। इसी से जिन प्राचीन प्रान्तिक भाषाओं में संस्कृत-व्याकरण के विरुद्ध शब्दों का प्रयोग होता था वे संस्कृत से च्युत समझी गईं। उनका नाम अपभ्रंश या प्राकृत भाषायें हुआ। उनमें से मागधी, पैशाची, शौरसेनी और महाराष्ट्री मुख्य हैं। पाली भाषा मागधी का रूपान्तर है; गुजराती और हिन्दी शौरसेनी का। प्राकृत भाषाओं के समय में भी संस्कृत का प्रचार था; वह पण्डितों और साहित्य की भाषा थी। पर घर में सर्वसाधारण जन अपभ्रंश भाषायें बोलते थे। उनमें विभक्तियों के प्रत्यय लोप हो गये थे। विक्रमोर्वशी के चौथे अङ्क में अपभ्रंश-भाषा का एक श्लोक है। उसमें प्रत्ययही नहीं। उस समय प्रत्ययों की जगह शब्दयोगी अव्यय काम में लाये जाते थे। आज कल की मराठी भाषा में कितने ही प्रत्यय इसी तरह के हैं—वे विभक्ति-प्रत्यय नहीं। 'पासुन' शब्द संस्कृत 'पार्श्व' का अपभ्रंश है। 'शीं' प्रत्यय 'स्वि' का रूपान्तर है। संस्कृत 'मध्य' शब्द सेही मराठी का 'मध्ये', गुजराती का 'माँ' और हिन्दी का 'माँहि' आया है। मराठी का 'माझी' शब्द भी इसी 'मध्य' का रूपान्तर है। हम लोग मराठी भाषा का प्रचार विश्वविद्यालय में कराना चाहते हैं; पर संस्कृत का सुधार हुए बिना ऐसा करना उचित नहीं। क्योंकि जो लोग संस्कृत नहीं जानते वे शुद्ध मराठी लिख और बोल नहीं सकते। संस्कृत न जाननेही के कारण लोग पौर्वात्य और पाश्चिमात्य आदि प्रयोग करते हैं; विकास-वाचक उत्क्रान्ति शब्द का अर्थ आदर या बलवा करते हैं; और खो जाने के अर्थ के बाधक प्रस्थापित शब्द का प्रयोग स्थापन के अर्थ में करते हैं।

रावबहादुर चिन्तामणि वैद्य, एम० ए०, एल० एल० बी० ग्वालियर में चीफ़ जस्टिस थे। अब आपने पेंशन ले ली है। आप कई भाषाओं के उद्भट विद्वान् हैं। अँगरेज़ी और मराठी में कितनीही पुस्तकें आपने लिखी हैं। डाक्टर भाण्डारकर के बैठतेही आपसे न रहा गया। आप झट उठ खड़े हुए। पहले तो प्रस्ताव-विषय से सम्बन्ध रखनेवाली कुछ और बातें कहीं। फिर आपने डाक्टर भाण्डारकर की अन्यान्य बातों का समर्थन करके उनकी एक बात का खण्डन किया। आप बोले:—भाषा व्याकरण की ग़ुलाम नहीं, मालिक है। उलटा व्याकरण भाषा का ग़ुलाम है। प्रचलित भाषा के अनुसार व्याकरण बनता है, व्याकरण को देखकर भाषा नहीं बोली या लिखी जाती। पाश्चिमात्य का अर्थ लोग यदि वही समझें जो पाश्चात्य का होता है तो पहला शब्द सर्वथा शुद्ध माना जायगा। व्याकरण के नियम से अशुद्ध होने पर भी जिस शब्द का अपेक्षित अर्थ लोगों की समझ में आ जाता हो उसे ज़रूरही ग्राह्य करना चाहिए। अतएव आशा है, डाक्टर भाण्डारकर मराठी भाषा को विश्वविद्यालय में जारी कराने के प्रतिकूल अपना आग्रह छोड़ देंगे।

इस प्रस्ताव के स्वीकृत होने पर परिषद्-सम्बन्धी कुछ विशेष काम हुए। तदनन्तर सभा-पति सर्जेन कीर्तिकर ने महाराज गायकवाड़ और समागत सज्जनों को धन्यवाद दिया। अन्त में महा-राज गायकवाड़ ने उपसंहार के रूप में एक अल्प परन्तु महत्त्व का भाषण किया। आपने कहा:—

साहित्य सर्व-जन-समुदाय के हृदय का प्रति-बिम्ब है। देश की अवस्था का ज्ञान उसके साहित्य से अच्छी तरह होता है। देश की उन्नति के साधनों में से साहित्य की उन्नति भी एक साधन है। हमें चाहिए कि व्यर्थ के वाद-विवाद न करें। शब्द-पाण्डित्य से विशेष लाभ नहीं। हमें अपनी विचार-परम्परा को सुधारना चाहिए। डाक्टर भाण्डारकर और रावबहादुर चिन्तामणि वैद्य दोनों का कहना ठीक है। यथासंभव शुद्ध शब्दों का प्रयोग करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए। परन्तु जिन शब्दों से अभीष्ट अर्थ निकलता हो उनके प्रयोग की भूल क्षम्य है। विश्वविद्यालय में हम लोगों की मातृ-भाषा को स्थान देने की बड़ी ज़रूरत है। साथ ही संस्कृत-भाषा के भी पुनरुद्धार की ज़रूरत है। संस्कृत के बराबर सुन्दर और प्रचुरसाहित्य-पूर्ण अन्य भाषा भूमण्डल में नहीं।

तीसरे दिन की कारवाई।

आज की बैठक बड़े मारके की थी। एक-लिपि और एक-भाषा के विषय में विचार होने को था। पंजाब, मदरास, बंगाल और संयुक्त प्रान्त के विद्वान् इसी निमित्त आये थे। राजा प्यारीमोहन मुकुर्जी, सर गुरुदास बैनर्जी, बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर, जस्टिस प्रतुलचन्द्र चैटर्जी और माननीय पं० मदनमोहन मालवीय आदि सज्जन कारणवश नहीं पहुँच सके। अतएव उनके तार और पत्र आये थे। बरौदा-राज्य के दीवान श्रीमान् दत्त महाशय ने आज के काम का आरंभ किया। पहले उन्होंने उन पत्रों और तारों के भेजनेवालों के नाम लिये जिन्होंने सम्मेलन में न आसकने के कारण खेद प्रकट किया था। फिर आपने कलकत्ते की साहित्य-परिषद् का संक्षिप्त इतिहास-वर्णन करके वैसी ही परिषदों की अन्य प्रान्तों में भी स्थापना की आवश्यकता बतलाई। फिर आपने कहा:—हमें देशी भाषा में ही शिक्षा देने का प्रयत्न करना चाहिए। हमें देश भर में एक ही लिपि और एकही भाषा का प्रचार करना चाहिए। इस काम के योग्य सिर्फ़ नागरी लिपि और हिन्दी भाषा ही कही जा सकती है। बिना एक-लिपि और एक-भाषा के देश में जात्येकभाव की उन्नति नहीं हो सकती। जब तक हम लोग एक दूसरे के विचारों को न जान सकेंगे तब तक परस्पर सहानुभूति का होना कठिन है। योरप में भी इस समय इसी तरह की चर्चा हो रही है। जर्मनी में पहले पुस्तकें वहीं की लिपि में छापी जाती थीं। पर अब फ़्राँस और इँगलैंड की लिपि में छापी जाने लगी हैं। गुजराती, बंगाली और पंजाबी लिपि, नागरी लिपि से बहुत मिलती हैं। मदरास में भी संस्कृत-पुस्तकें अब तक बहुधा इसी लिपि में लिखी जाती हैं। अतएव यही लिपि सारे देश में प्रचार-योग्य है। रही भाषा, सो हिन्दी वह भाषा है जिसे सब प्रान्तों के लोग समझ सकते हैं। अब विचार सिर्फ़ इस बात का करना है कि इस लिपि और इस भाषा का प्रचार किस तरह किया जाय और इसमें जो त्रुटियां हैं वे दूर किस तरह की जायँ। फ़्रांस और इँगलैंड के भिन्न भिन्न प्रान्तों में पहले भिन्न भिन्न भाषायें पढ़ाई जाती थीं। परन्तु अब वह बात नहीं है। अब सारे स्कूलों में मुख्य अँगरेज़ी और फ़्रांसीसी भाषायें ही पढ़ाई जाती हैं। इससे भिन्न प्रान्तवासियों का पारस्परिक सम्बन्ध दृढ़ हो जाता है और एक दूसरे के सुखदुःख को अपना सुखदुःख समझने लगता है। जर्मनी में भी एक भाषा करने का विचार हो रहा है। अतएव हम लोगों को भी चाहिए कि अपने देश में एक-लिपि और एक-भाषा कर दें। दत्त महाशय ने यह भी कहा कि इस विषय में महाराज बड़ौदा की पूर्ण सहानुभूति है। वे एक-लिपि और एक-भाषा का होना बहुत ज़रूरी समझते हैं। यह कहकर उन्होंने प्रस्ताव किया कि डाक्टर भाण्डारकर आज के सम्मेलन के सभापति निर्वाचित किये जायँ। राव-बहादुर खासेराव ने इसका अनुमोदन किया। सभापति के आसन पर डाक्टर साहब के आसीन होने पर इन तीन बातों पर विचार आरंभ हुआ:—

(१) देशी भाषाओं में शिक्षा देने की ज़रूरत।

(२) एक सर्वसामान्य लिपि का होना।

(३) एक देश-व्यापक सर्व-सामान्य भाषा का होना।

डाक्टर भाण्डारकर के कथन का सारांश:—देशी भाषाओं में शिक्षा देनी की बड़ी ज़रूरत है। जापान ने विज्ञान और तत्त्वविद्या-सम्बन्धी पुस्तकें तैयार करके जापानी भाषा में उनकी शिक्षा सुलभ कर दी है। हमें भी चाहिए कि इस तरह की पुस्तकें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तैयार करें। अशोक के समय में सिर्फ़ एक लिपि इस सारे भारत में प्रचलित थी। इस समय की हिन्दी, गुजराती, बँगला आदि लिपियाँ उसी से निकली हैं। अतएव देवनागरी लिपि का सर्व-प्रचार सहजही में हो सकता है। रही व्यापक भाषा की बात, सो हिन्दी के सिवा और कोई भाषा इस योग्य नहीं। ज़रूरत इस बात की है कि स्कूलों, कालेजों और मदरसों में हिन्दी का प्रचार किया जाय। एम० ए० में मराठी है ही। उसके स्थान में मराठी और हिन्दी, गुजराती और हिन्दी, कानडी और हिन्दी कर दी जाय तो हिन्दी का जल्द प्रचार हो जाय। विश्व-विद्यालय यदि इस बात को मंज़ूर कर ले तो गवर्नमेंट कुछ दिनों में हिन्दी को स्कूलों में भी शायद जारी करदे।

इसके बाद मिस्टर ओक ने देशी भाषाओं में शिक्षा देने के प्रस्ताव का अनुमोदन किया। उन्होंने कहा कि वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दों के अभाव के कारण हमारा काम रुका न रहना चाहिए। देशी भाषाओं में शिक्षा आरंभ करने से सारी कठिनाइयाँ आपही आप दूर हो जायँगी। महामहोपाध्याय पण्डित हरप्रसाद शास्त्री ने भी इसी तरह की राय दी। उन्होंने कहा, आजकल की शिक्षा कोई शिक्षा है? उससे केवल शाब्दिक ज्ञान होता है। वास्तविक-ज्ञान-प्राप्ति के लिए अपने देश की भाषा में हीं शिक्षा देना उचित है। सर गुरुदास बैनर्जी, १८ वर्ष हुए, कलकत्ता-विश्वविद्यालय के उप-सभापति थे। उस समय उन्होंने कहा था कि एम० ए० तक की शिक्षा अपनी मातृभाषा में होनी चाहिए। यदि गवर्नमेंट अभी इस बात को मंज़ूर न करे तो हमें खुद अपने निज के स्कूलों में इस तरह की शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए।

तदनन्तर मिस्टर बोडस, मुंशी जगमोहनलाल, मराठा के सम्पादक श्रीयुत केलकर, प्रोफ़ेसर यदुनाथ सरकार, प्रोफ़ेसर नवाब अली आदि ने पूर्वोक्त प्रस्ताव की पुष्टि की और अँगरेज़ी की उत्तमोत्तम पुस्तकों का देशी भाषाओं में अनुवाद किये जाने की ज़रूरत दिखलाई। सर्व-सम्मति से प्रस्ताव पास हुआ।

एक-लिपि के विषय में यह प्रस्ताव पास किया गया कि गुजरात, दक्षिण और बंगाल आदि प्रान्तों में देवनागरी लिपि सर्वसामान्य-लिपि बनाई जाय और उसके प्रचार के लिए महाराष्ट्र-साहित्य-परिषद्, गुजराती-साहित्य-परिषद्, वंगीय-साहित्य-परिषद् तथा नागरी-प्रचारिणी सभा मिलकर प्रयत्न करें। इस लिपि की सर्वोपयोगिता सबने एक स्वर से स्वीकार की। यह कहा गया कि इस विषय में भिन्न भिन्न प्रान्तों को अपना अहंभाव छोड़ देना चाहिए। अपनी प्रान्तीय लिपि का व्यवहार अपने निज के काम में लोग भलेही करें; पर सार्वजनिक कामों और सर्वजनोपयोगी पुस्तकों में देवनागरी ही लिपि काम में लाई जाय। इसका आरंभ महाराज-बरौदा ने कर भी दिया है। उनका दरबारी गैज़ट अब इसी लिपि में प्रकाशित होता है।

एक भाषा-सम्बन्धी प्रस्ताव पेश करते समय राव-बहादुर चिन्तामणि वैद्य ने हिन्दी में भाषण किया। वे यद्यपि महाराष्ट्र हैं तथापि हिन्दी में भाषण करके उन्होंने यह दिखाया कि अन्य प्रान्त-वासी भी इस भाषा में अपने विचार प्रकट कर सकते हैं। उन्होंने कहा कि इस देश में आर्य्यभाषा बोलने वालों की ही संख्या अधिक है। उनमें आधे से अधिक लोग हिन्दी बोलते हैं। जो अच्छी तरह नहीं बोलते वे भी सहवास के कारण हिन्दी समझते और थोड़ी बहुत बोल भी लेते हैं। हिन्दी बहुत सीधी भाषा है। कहीं किसी प्रान्त में जाइए, सब कहीं हिन्दी जानने और बोलनेवाले आपको मिलेंगे। अतएव ऐक्य भाव उत्पन्न करने, एक-प्रजा होने और पारस्परिक सहानुभूति जागृत करने के लिए हिन्दी को सर्व-सामान्य-भाषा बनाना परमावश्यक है। हमें उचित है कि प्रान्तिक भाषाओं के साथ धीरे धीरे हिन्दी भाषा की भी शिक्षा आरंभ करदें। ऐसा करने से अभी नहीं तो आगे, कुछ समय बाद, हम लोगों की व्यापक-भाषा हिन्दी ही हो जायगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसका फल बड़ाही मधुर होगा। स्वामी नित्यानन्द ने कहा कि हिन्दी वह भाषा है जिसमें नपुंसक लिंगही नहीं है। अतएव इस भाषा का स्वीकार करने से हमारी नपुंसकता निकल जायगी! श्रीयुत नन्दनाथ, श्रीयुत आत्माराम, दीवान टेकचन्द आदि ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया और वह पास हुआ।

अन्त में बरौदा-राज्य के दीवान श्रीमान् दत्त महाशय ने कहा कि महाराज गायकवाड़ को इस सम्मेलन के काम से बहुत सन्तोष हुआ है। उन्होंने मुझे यह कहने की आज्ञा दी है कि वे आशा करते हैं कि इसमें जो आन्दोलन हुआ है उसका परिणाम अच्छाही होगा। एक-भाषा और एक-लिपि करने के लिए हमें गवर्नमेंट के भरोसे न रहना चाहिए। उसका प्रचार धीरे धीरे हमें खुदही करना चाहिए। हमें अपने बच्चों को हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि सिखानी चाहिए। कुछ समय में जब बच्चे उन्हें सीख जायँगे और वे बड़े होंगे तब उनका प्रचार भी बढ़ेगा। उस समय हम लोग गवर्नमेंट से इस भाषा और इस लिपि के सर्व-व्यापक प्रचार के लिए यदि प्रार्थना करेंगे तो हमारी प्रार्थना पर गवर्नमेंट ज़रूरही ध्यान देगी। एक बात हमें और करना चाहिए। हमें अच्छी अच्छी पुस्तकें देव-नागरी लिपि और हिन्दी भाषा में प्रकाशित करना चाहिए। इससे बड़ा लाभ होगा। भिन्न भिन्न प्रान्त वाले ऐसी पुस्तकें पढ़कर इस लिपि और इस भाषा को सहज में सीख जायँगे।

महाराज गायकवाड़ की यह सलाह बहुत ही अच्छी है। इससे बड़े लाभ की संभावना है। और प्रान्त वाले हमारी हिन्दी की इतनी क़दर कर रहे हैं; पर जिनकी जन्म-भाषा हिन्दी है वे बेशरमी के परदे में छिपे पड़े हैं। उन्हें हिन्दी और नागरी दोनों से नफ़रत सी है। भगवान् उनकी इस नफ़रत को दूर करे और उन्हें उनकी इस कुंभकरणी नींद से शीघ्रही जगावे!

नागरी लिपि और हिन्दी भाषा।

(१)

है एक-लिपि-विस्तार होना योग्य हिन्दुस्तान में—
अब आगई यह बात सब विद्वज्जनों के ध्यान में।
है किन्तु इसके योग्य उत्तम कौन लिपि गुण आगरी?
इस प्रश्न का उत्तर यथोचित है उजागर—"नागरी"॥

(२)

समझें अयोग्य न क्यों इसे कुछ हठी और दुराग्रही,
लिपियाँ यहाँ हैं और जितनी श्रेष्ठ सबसे है यही।
इसका प्रचार विचार से कल्याणकर सब ठौर है;
सुन्दर, सरल, सुस्पष्ट ऐसी लिपि न कोई और है॥

(३)

सर्वत्रही उत्कर्ष इसका हो चुका अब सिद्ध है;
यह सरल इतनी है कि जिस से "बालबोध" प्रसिद्ध है।
अति अज्ञ जन भी सहज ही में जान लेते हैं इसे;
सम्पूर्ण सहृदय जन इसी से मान देते हैं इसे॥

(४)

जैसा लिखो वैसा पढ़ो, कुछ भूल हो सकती नहीं;
है अर्थ का न अनर्थ इसमें एक बार हुआ कहीं।
इस भाँति होकर शुद्ध यह अति सरल और सुबोध है;
क्या उचित फिर इसका कभी अवरोध और विरोध है?

(५)

है हर्ष अब नित बुध जनों की दृष्टि इस पर हो रही;
वह कौन भाषा है जिसे यह लिख सके न सही सही?
लिपि एक हो सकती यही सम्पूर्ण भारतवर्ष में;
हित है हमारा इसी लिपि के सर्वथा उत्कर्ष में॥

(६)

हैं वर्ण सीधे और सादे रम्य रुचिराकृति सभी;
लिखते तथा पढ़ते समय कुछ श्रम नहीं पड़ता कभी।
हैं अन्य लिपियों की तरह अक्षर न इसके भ्रम भरे;
कुञ्चित, कठिन, दुर्गम, विषम, छोटे-बड़े, खोटे-खरे॥

(७)

गुर्जर तथा बङ्गादि लिपियाँ सब इसी से हैं बनीं;
है मूल उनका नागरी ही रूप-गुण-शोभा-सनी।
अतएव फिर क्यों हो यही प्रचलित न भारत में अहो!
क्या उचित शाखाश्रय कभी है मूल को तजकर कहो?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८)

आरम्भ से इस देश में प्रचलित यही लिपि है रही ;
अब भी हमारा मुख्य सब साहित्य रखती है यही ।
श्रुति, शास्त्र और पुराण आदिक ग्रन्थ संस्कृत के सभी ;
अङ्कित इसी लिपि में हुए थे, और में न कहीं कभी ॥

(९)

उद्देश जिनका एक केवल देश का कल्याण था ,
सुर-सदृश ऋषियों ने स्वयं इसको किया निर्माण था ।
अतएव सारे देश में कर लिपि पुनः प्रचलित यही ,
मानों महा उद्देश उनका पूर्ण करना है वही ॥

(१०)

जिसमें हमारे पुण्य-पूर्वज ज्ञान अपना भर गये ,
स्वर्गीय शिक्षा का सदा को द्वार दर्शित कर गये ।
है जो तथा सब भाँति सुन्दर और सब-गुण-आगरी ,
प्यारी हमारी लिपि वही जीती रहे नित " नागरी " ॥

(११)

इसके गुणों का पूर्ण वर्णन हो नहीं सकता कभी ;
स्वीकार करते विज्ञ जन उपयोगिता इसकी सभी ।
है नाम ही इसका स्वयं निज योग्यता बतला रहा ;
प्रख्यात है जो आपही फिर जाय क्या उस पर कहा ?

(१२)

अत्यन्त आवश्यक यहाँ ज्यों एक-लिपि-विस्तार है ,
त्यों एक-भाषा का अपेक्षित निर्विवाद प्रचार है ।
इस विषय में कुछ कथन भी अब जान पड़ता है वृथा ;
है चाहते सब जन जिसे उसके गुणों की क्या कथा ?

(१३)

ज्यों ज्यों यहाँ पर एक-भाषा वृद्धि पाती जायगी ;
त्यों त्यों मनोहर एकता सबमें समाती जायगी ।
कट जायगी जड़ भिन्नता की; विज्ञता बढ़ जायगी ;
श्रीभारती जन-जाति उन्नति-शिखिर पर चढ़ जायगी ॥

(१४)

सम्पूर्ण प्रान्तिक बोलियाँ सर्वत्र ज्यों की त्यों रहें ;
सब प्रान्तवासी सर्वदा उनके प्रवाहों में बहें ।
पर एक ऐसी मुख्य भाषा चाहिए होनी यहाँ—
सब देशवासी जन जिसे समझें समान जहाँ तहाँ ॥

(१५)

हो जाय जब तक एक भाषा देश में प्रचलित नहीं ,
होगा हज़ारों यत्न से भी कुछ हमारा हित नहीं ।
जब तक न भाषण भी परस्पर कर सकेंगे हम सभी ,
क्या काम कोई कर सकेंगे हाय ! हम मिलकर कभी ?

(१६)

हा ! एक भाषा के बिना इस देश के वासी यहीं ,
हम एक होकर भी अनेकों हो रहे हैं क्या नहीं ?
पर ध्यान थोड़े लोग हैं इस पर न धरना चाहते ;
वे जाति-बन्धन तोड़ कर हैं ऐक्य करना चाहते !

(१७)

हम पूछते हैं विश्व में है देश वह ऐसा कहाँ—
मत भिन्न सामाजिक तथा धार्म्मिक न हों सबके जहाँ ?
पर क्या कभी मत-भिन्नता से द्वेष होता है कहीं ?
दो नेत्र रहते भी अहो ! हम देखते हैं कुछ नहीं ॥

(१८)

व्यवहार रोटी और बेटी का हुए पर भी अहो ?
क्या एक-भाषा के बिना हम एक हो सकते कहो ?
अफ़सोस ! जो कुछ कार्य्य है हम उसे तो करते नहीं;
है जो अकार्य्य वृथा उसे करते हुए डरते नहीं !

(१९)

हो एक-भाषा की लता सर्वत्र जिसमें लहलही ,
प्रत्येक देशी विज्ञ जन का काम है पहला यही ?
साधक बनो पहले सभी जन सिद्धि पाओगे तभी ,
सब भाँति योग्य हुए बिना क्या मान मिल सकता कभी ?

(२०)

जब तक तुम्हारा तत्त्वमय उपदेश समझेंगे नहीं—
हे शिक्षितो ! हम अज्ञ जन क्या कर सकेंगे कुछ कहीं ?
इससे हमें उपदेश अपना देश भाषा में करो ;
मत अन्य भाषा-ज्ञान का गौरव दिखाने पर मरो ॥

(२१)

अब एक-लिपि से भी अधिक तर एक-भाषा इष्ट है ,
जिसके बिना होता हमारा सब प्रकार अनिष्ट है ।
अतएव है ज्यों एक-लिपि के योग्य केवल नागरी ,
त्यों एक-भाषा योग्य है हिन्दी मनोज्ञ उजागरी ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२२)

प्रख्यात है इस देश की जब 'हिन्द' संज्ञा सर्वथा,
वासी यहाँ के जब सभी 'हिन्दू' कहे जाते तथा।
तब फिर यहाँ की मुख्य भाषा क्यों न 'हिन्दी' ही रहे;
है कौन ऐसा अज्ञ जो इस बात को अनुचित कहे?

(२३)

थोड़ी बहुत सर्वत्र ही यह समझ ली जाती यहाँ;
व्यापक न ऐसी एक भाषा और दिखलाती यहाँ।
हो क्यों नहीं इस देश की फिर मुख्य भाषा भी यही;
है योग्य जो सबसे अधिक हो क्यों न अङ्गीकृत वही?

(२४)

है कौन ऐसी बात जो इसमें न जा सकती कही?
किस अर्थ की, किस समय, इसमें, कौनसी त्रुटि है रही।
सब विषय-वर्णन-योग्य इसमें विपुल शब्द भरे पड़े;
हैं गद्य पद्य समान इसमें सरस बन सकते बड़े॥

(२५)

यद्यपि अभी तक देश के दुर्भाग्य से यह दीन है;
पर राष्ट्र-भाषा-योग्य यह किस श्रेष्ठ गुण से हीन है?
हो जाय चाहे कौमुदी कृश कृष्ण-पक्ष-प्रभाव से,
पर कुमुद मुद पाते नहीं क्या देख उसको चाव से?

मैथिलीशरण गुप्त।

मेरी नई-दुनिया-सम्बन्धिनी राम-कहानी।

एक कारण ऐसा आ पड़ा कि मेरे मन में विदेश जाकर कोई लाभ-दायक कला सीखने का विचार उत्पन्न हुआ। मैंने इस इच्छा को अपनी समाज के कुछ मनुष्यों पर प्रकट किया। पर वे लोग मेरे विरुद्ध हो गये। एक उच्च वंश के ब्राह्मण को अपने देश से बाहर जाने की सम्मति कुछ ही लोगों ने दी। इससे मेरे पिता ने भी मेरी प्रतिकूलता की। किन्तु मैं बिना किसी की सुने घर से निकल पड़ा।

जब घर के लोगों ने जाना कि मैं कलकत्ते से जहाज़ पर सवार हो कर जापान जाने ही वाला हूँ तब उन्होंने मुझे किराये का रुपया भेज दिया। इधर कलकत्ते के Industrial Association (औद्योगिक समाज) ने मुझे जापान तक का किराया देना स्वीकार किया। समाज के ख़र्च से १६ बंगाली छात्र और भी जापान जानेवाले थे। उन्हीं के साथ मैं भी रवाना हुआ।

जापान में १५ दिन रह कर मैंने उस रुपये से, जो घर से मुझे कलकत्ते भेजे गये थे, अमेरिका जाने का विचार किया। साथ आये हुओं में से दो बंगाली छात्र भी अमेरिका जानेवाले थे। हम तीनों टोकियो से योकोहामा गये। वहाँ पहले जहाज़ की कम्पनी के डाक्टर से अपनी शारीरक परीक्षा करानी पड़ी। क्योंकि एशियानिवासी वे मुसाफ़िर जो जहाज़ के नीचेवाले दरजे में बैठ कर अमेरिका जाते हैं, "Immigrants" अर्थात् अन्यदेश में जाकर बसने की इच्छा रखनेवाले, समझे जाते हैं। ऐसे लोगों के विषय में अमेरिका पहुँचने पर बहुत कठिन नियम बनाये गये हैं। यह इस लिए किया जाता है जिससे यह न हो कि रोगी मनुष्य वहाँ से चले जायँ और अमेरिका पहुँचने पर उन्हें लौटना पड़े। इससे पहले ही उनकी परीक्षा कर ली जाती है। जो इस परीक्षा में पास नहीं होते वे अच्छे हो जाने तक जाने नहीं पाते। परीक्षा विशेष कर आँखों की होती है। कारण यह कि चीनी और जापानियों की आँखों में बहुधा एक रोग विशेष होता है जिसको ट्रेकोमा कहते हैं। इसी रोग की सबसे ज़्यादा जाँच की जाती है। थोड़ा भी विकार आँख में होने से ये परद्वीप-गामी रोक दिये जाते हैं। हम तीनों में से सिर्फ़ मैंही पास हुआ। वे दोनों कुछ दिन के लिए रोक दिये गये। मैं टिकट लेकर पैसिफ़िक महासागर में तैरनेवाले "डकोटा" नाम के एक बहुत प्रकाण्ड जहाज़ से रवाना हुआ।

जापान से अमेरिका तक सोलह दिन का सफ़र है। आधी राह तै करने पर दुर्दैव-वश मुझे भयङ्कर ज्वर आया। छः दिन तक मैं बेहोश पड़ा रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किनारे पर पहुँचने के अभी दो दिन बाक़ी थे। मेरा शरीर बहुत दुर्बल हो गया था। यह सोच कर कि यदि मैं लौटा दिया गया तो मेरा क्या होगा, मैं और भी घबरा गया। वे दो दिन भी बीत गये। सियाटल के बन्दरगाह में जहाज़ ने लङ्गर डाला। लङ्गर डालतेही विदेश-वासाभिलाषियों के अधिकारियों ने उसे आ घेरा और जाँच पड़ताल करना आरम्भ कर दिया। पहले दरजे के मुसाफ़िरों को किनारे में जाने की आज्ञा मिल गई। किन्तु निकृष्ट दरजे के एशियाई मुसाफ़िरों को उन्होंने एक लाइन में खड़ा कर दिया। उनकी डाक्टरी की परीक्षा होने लगी। जो जो पास होते गये वे विदेश-वासाभिलाषियों के इन्स्पेक्टर के पास जा जाकर १५०) रुपये नक़द दिखाते गये। फिर अपने अमेरिका आने का कारण तथा और और सवालों का उत्तर उन्हें देना पड़ा। एक एक करके और सबको तो उतरने की आज्ञा मिल गई। किन्तु मुझे और मेरे साथी दो रूसियों को न मिली। हम से कहदिया गया कि तीन दिन बाद तुम्हारी परीक्षा फिर ली जायगी। अच्छे होने पर उतरने पावेंगे। इस समय जो कुछ मेरे मन में बीता उसका वर्णन करना मेरी शक्ति के बाहर है। अधमरा सा होकर मैं अपनी कोठरी में लेट रहा। थोड़ी देर में जहाज़ से माल उतारा और लादा जाने लगा। कलों की खड़खड़ाहट और मज़दूरों के शोरोगुल से मेरा मस्तक भन्नाने लगा। मैं अपने को जहाज़ में इस तरह क़ैदी की तरह पड़े देख बहुत ही व्याकुल हुआ।

तीन दिन बाद डाक्टर फिर आया और उन दोनों रूसियों को उतरने की आज्ञा दे दी। पर मुझे अभी अयोग्य ही ठहराया। यह सुन कर मेरे प्राण सूख गये। मैं बहुत निराश हो गया। इतनी दूर आकर भी अमेरिका की स्वातंत्र्य-भूमि पर पैर रखना न मिला। पंद्रह दिन इसी प्रकार जहाज़ के ऊपर मैं घूमा किया। जहाज़ के जापान लौटने के दो दिन बाक़ी थे कि परदेशवासाभिलाषियों के लिए खोले गये दफ़्तर से एक अधिकारी आया। वह मुझे शहर के अस्पताल में ले गया। वहाँ फिर मेरी परीक्षा की गई। अब मैं रोगी न था। किन्तु निर्बलता बाक़ी थी। फिर भी मुझे अमेरिका रहने की आज्ञा न मिली। डाक्टर बड़ेही वहमी होते हैं। किसी को यदि खाँसी हो तो वे क्षय-रोग की शंका करने लगते हैं। ख़ैर, मैंने अपने मन को कड़ा किया। मुझे जापान को लौटना ही पड़ा। लौटने का ख़र्च मुझे कुछ न देना पड़ा। जिस दिन मैं अमेरिका से लौटा दिया गया उसी दिन मैंने मन में यह निश्चय कर लिया कि एक न एक दिन फिर इस देश में मैं अवश्य ही आऊंगा।

जापान लौट कर मैं पेन्सिल, दियासलाई इत्यादि बनाने के कारख़ानों में काम सीखने लगा। उधर भारतवर्ष में मेरे घर के लोग इस दुर्घटना का हाल सुन कर आतुर हो उठे। उन्होंने मेरे लिए ख़र्च भेज कर यह लिखा कि साल भर में कुछ लाभदायक उद्योग सीख कर स्वदेश को लौट आओ। मैंने इस का कुछ उत्तर न दिया। इस मौन-साधन का उन्होंने यह मतलब समझा कि मैंने लौटना स्वीकार कर लिया। अतएव साल भर बाद मेरे लौटने का ख़र्च उन्होंने भेज दिया। मैंने इस रुपये से अमेरिका जाने के लिए जहाज़ का टिकट ख़रीद लिया। विचार था कि फिर "डकोटा" से ही यात्रा करूँगा। किन्तु तीन महीने पहले "डकोटा" डूब कर नष्ट हो गया था। इससे "निप्पन यूसैन कैसा" नामक जापानी कम्पनी के जहाज़ से फिर मैं सियाटल के बन्दरगाह में पहुँचा। वहाँ वही डाक्टर मेरी परीक्षा करने आया और मुझे देखते ही उसने पहचान लिया। इस बार मुझे तन्दुरुस्त देख वह हर्ष प्रकट करने लगा।

सियाटल में दो दिन विश्राम कर मैं जहाज़ की राह से बरकले नामक नगर को रवाना हुआ। विचार था कि कैलीफोर्निया के विश्वविद्यालय में अध्ययन करूँगा। परन्तु वहाँ का प्रधान नगर सान-फ़्रान्सिस्को भूकम्प से दब गया था। इससे वहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बचे खुचे मनुष्यों ने निकट-वर्ती बरकले में शरण ली थी। इस कारण वहाँ पर रहने का ख़र्च अधिक था। एक बात और भी थी। अमेरिका के मध्य तथा पूर्व देशों के वासी अधिक सभ्य हैं; और वहाँ थोड़े ख़र्च से गुज़ारा हो सकता है। यही सोच कर सिर्फ़ तीन दिन कैलीफोरनियां में रहा। बाद में शिकागो को रवाना हो गया।

सान फ़्रान्सिस्को से शिकागो लग भग ३००० मील के है। जाने का किराया ५० डालर (१५० रुपया) लगता है। किराया देकर मेरे पास सिर्फ़ ४ डालर बचे। इसमें से दो डालर की मैंने राह के लिए खाने पीने की चीज़ें ख़रीदीं। अमेरिका की रेल में सवार होने का यह मेरा पहला ही मौक़ा था। इस देश की गाड़ियों में भारतवर्ष के समान दरजे नहीं होते। मनुष्य रेलगाड़ी के एक सिरे से दूसरे सिरे तक घूम सकता है और जहाँ चाहे वहाँ बैठ सकता है। फरक़ इतना ही होता है कि जो मनुष्य कुछ अधिक ख़र्च करते हैं उनके लिए एक गाड़ी अलग होती है जिसमें सोने, तम्बाकू पीने, ताश खेलने और पुस्तकालय का व्यवहार करने आदि का सुभीता रहता है। पुस्तकालय कम्पनी की ओर से होता है। ऐसी गाड़ी से न जानेवाले लोग सिर्फ़ रात को सोने ही के लिए अधिक किराया देकर जगह ले सकते हैं। कैलीफोरनिया से शिकागो तक चार दिन का सफ़र है। मैं अधिक ख़र्च न कर सका। इस कारण अपनी कुर्सी पर ही बैठे बैठे नींद ले लिया करता था। साथ में जो खाना लाया था वह तीन ही दिन में समाप्त हो गया। गाड़ी में एक बार का खाना मोल लेने से क़रीब तीन रुपये के देना पड़ता है। हम भारतवासियों को एक दिन बिना आहार के रहना कुछ कठिन नहीं। मैं एक दिन निराहार ही रहा। ख़ैर किसी तरह मैं शिकागो भी आ पहुँचा। रात के १२ बजे शिकागो के समान बड़े शहर में अमेरिका के रंग ढंगों से बिलकुल ही अपरिचित मनुष्य को रहने का स्थान ढूँढ़ना कोई सहज बात न थी।

रेल के स्टेशन से निकल कर देखता हूँ कि शहर बिजली की रोशनी से रोशन है। सिर के ऊपर और ज़मीन के नीचे बिजली की गाड़ियाँ दौड़ रही हैं। इमारतें इतनी ऊँची हैं कि चोटी की तरफ़ ऊपर देखने से टोपी गिरी पड़ती है। होटल में जाकर रात बिताऊँ तो सुबह खाने के लिए पैसा पास न रहे। इससे बड़े सोच विचार में पड़ गया।

जापान में मेरी मित्रता एक पादरी से हो गई थी। वह शिकागो में रहता था। मेरे पास उसका पता मौजूद था। मैंने सोचा कि उसके घर जाना ठीक होगा। उसने मुझे ऐसा करने को कहा भी था। पुलिसवाले से उस पादरी की गली की तरफ़ जाने वाली ट्राम गाड़ी की राह पूछ कर मैं क़रीब १½ बजे रात के उस गली के मोड़ पर उतरा। मुश्किल से अँधेरे में पादरी के मकान का नम्बर ढूँढ कर देखता हूँ तो मकान बहुत बड़ा है। पादरी की इतना बड़ा मकान लेने की हैसियत न थी। जो हो, दरवाज़े पर जाकर मैंने घंटी बजाई। कोई भी द्वार पर न आया। घंटी देते देते हार कर मैं वहीं सीढ़ियों पर बैठ गया। उस वक्त मैं बहुत थका हुआ था।

शनिवार की रात को काम काजी मनुष्य बहुधा देर तक बाहर बाज़ार में रहते हैं, क्योंकि रविवार को सुबह उन्हें उठना नहीं पड़ता। मैं निद्रा में प्रवेश करने ही को था कि एक मनुष्य ने आकर मुझसे पूछा कि तुम कौन हो और यहाँ किस कारण आये हो। मैंने अपने मित्र का नाम बतलाया। यह मनुष्य बाहर सैर से आया था और इसी मकान में रहता था। पर वह यह न जानता था कि इस मकान में और कौन कौन रहता है। अमेरिका में ऐसा बहुधा होता है। एक घर में बहुत से कुटुम्ब रहते हैं। उम्र भर रहने पर भी बहुधा एक दूसरे को नहीं जानते हैं। इस मनुष्य ने उस घर में रहनेवालों की फ़ेहरिस्त देखकर मुझे पादरी के द्वार पर ले जाकर घंटी बजाई। कोई न उठा। तब उस मनुष्य ने मुझे प्रातःकाल आने को कहा। इस समय २½ तो बजही गये थे। गर्म्मी का मौसम था। मैं पास के एक पार्क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(उद्यान) में जाकर बेंच पर सो रहा। सुबह फिर वहाँ पहुँचा। पादरी घर में न था। किन्तु उसकी माता और भाई ने मुझे अन्दर बुलाकर बड़े आदर के साथ हाथ मुँह धोकर हाज़री खाने को कहा। ऐसा आतिथ्य इस देश में आज तक मेरा नहीं हुआ। न इस देश में मैं उसकी आशा ही करता हूँ। क्योंकि यहाँ के समाज में बड़ी रूक्षता है।

कुछ देर वहाँ बैठने के बाद उस पादरी के भाई ने मुझे यह सूचना दी कि शिकागो के महाविद्यालय में कुछ हिन्दू छात्र पढ़ते हैं। यह सुनकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। हम दोनों उनका पता लगाने निकले। ढूँढते ढूँढते बहुत देर बाद मैं अपने देश-बन्धुओं के मकान पर पहुँचा। अब मुझे कुछ धैर्य्य आया। उनके साथ एक दिन आराम कर दूसरे दिन से मैं काम की खोज में लगा। पर तीन दिन बीत गये, काम न मिला।

शिकागो से १३० मील दूर उरबाना नामक एक छोटे से शहर में अमरीका की इलीनाइस स्टेट का विश्वविद्यालय है। मैं यह सोचकर कि वहाँ पर विद्यार्थियों के किसी क्लब में काम ढूँढकर विद्यालय में भरती हो जाऊँगा, शिकागो से उरबाना चला गया। पर वहाँ जाकर मुझे और भी हताश होना पड़ा। जितना छोटा स्थान होता है उतनी ही कम सम्भावना काम मिलने की होती है। दो एक दिन यों ही बीत गये। मेरे पास एक कौड़ी भी न रह गई। पास ही एक मकान की नीव खोदी जा रही थी। जाकर ठेकेदार से मैंने काम के लिए कहा। उसने मुझे मोटा ताज़ा न देख काम देने से इनकार किया। यह देख मैंने उससे केवल दो घंटे के ही लिए काम माँगा। इसे उसने स्वीकार किया। एक घंटा फावड़ा चलाने से मुझे जो पैसे मिले उससे मेरी दिन भर की रोटी चल गई।

दूसरे दिन मैं अपने दुर्भाग्य को दोष देता हुआ विश्वविद्यालय के आगे एक बेंच पर बैठा था कि एक मनुष्य से मेरी बातचीत हुई। वह इसी विश्वविद्यालय का छात्र था। गर्म्मी की छुट्टियों में वह अपने घर जाने वाला था। मैंने उससे काम मिलने का कोई ढङ्ग बताने की प्रार्थना की। वह किसान का लड़का था। उसको अपने खेत पर काम करने वाला एक आदमी दरकार था। वह मुझे अपने गाँव आने को बोला। मैं उसके साथ हो लिया। वह जगह १०० मील थी। रेल पर सवार होकर हम उसके गाँव के नज़दीक़ के स्टेशन पर उतरे। स्टेशन पर उसका भाई घोड़े की गाड़ी लिये उसकी राह देखता था। छः मील गाड़ी से जाकर हम सन्ध्या समय उसके गाँव में पहुँचे। घर में उसकी माता ने मेरे सोने के लिए एक साफ़ कमरा सजा दिया। अमेरिका के कृषक भारतवर्ष के किसानों की भाँति दीन नहीं। उनका मकान साफ़ सुथरा और उनका खाना पीना उत्तम होता है। हर एक कृषक के घर में अच्छी अच्छी पुस्तकें रहती हैं और दो चार अच्छे समाचार पत्र और मासिक पुस्तकें भी आया करती हैं।

रात को खाना खाकर मैं सो रहा। प्रातःकाल होते ही वह युवा कृषक मुझे जगाकर मेरे नित्य के करने का काम समझाने लगा। पहला दिन तो उसने मुझे सिखलाने ही में व्यतीत किया। दूसरे दिन से मुझे अपने आप ही सब करना पड़ा। काम इस प्रकार था—प्रत्येक दिन प्रातःकाल ५ बजे उठकर सबसे पहले गाय दुहना; मुर्ग़ियों के अंडों को इकट्ठा कर लाना; घोड़ों को दाना खिलाकर मालिश करना। इतने में सात बज जाते थे। सात बजे सबेरे का भोजन कर मैं, कृषक, और उसके दो भाई घोड़ों को हल पर जोत खेत की ओर चल पड़ते थे। दो पहर को १२ से १½ बजे तक खाने के लिए छुट्टी मिलती थी। फिर सन्ध्या को सात बजे तक मकई के खेतों में हल जोतना या गेहूँ काटना पड़ता था। इस देश में गेहूँ हाथ से नहीं काटे जाते। उसके लिए एक पेंच होता है। पेंच अकसर चार घोड़ों से खींचा जाता है। पेंच के चलते ही गेहूँ कटता जाता है और पूले भी आपही-आप बँध कर पीछे की ओर से गिरते जाते हैं। मेरा काम गेहूँ के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूलों को उठा उठाकर ढेरी लगाने का था। पर हल जोतते मेरी नाक में दम आ जाती थी। गर्म्मी के दिनों में इस देश में भी कड़ाकेदार धूप पड़ती है। भारत में तो उठकर मैं अपने हाथों पानी भी नहीं पीता था। यहाँ आकर ऐसे परिश्रम के काम करने पड़े। अपने देश में हल जोतने से जाति चली जाती है। यहाँ तो मुझे हल जोतने के सिवा मुर्ग़ी के अंडे भी इकट्ठे करने पड़ते हैं। परन्तु आईने में अपना मुँह देखता हूँ तो कोई फ़र्क़ नहीं दीखता। कृषक की माता प्रत्येक दिन मेरे सोने के कमरे को झाड़कर बिस्तर लगा दिया करती थी। मैं सन्ध्या को थका हुआ आकर भोजन करने के बाद चारपाई की ख़बर लेता था।

इस प्रकार एक महीना काम करने पर मेरे पास जब कुछ रुपया हो गया तब मेरे एक मित्र ने मुझे ऐसा कठिन जीवन बिताते देख शिकागो चले आने को लिखा। मैं खेत का काम छोड़ शिकागो पहुँचा। वहाँ मुझे एक कम्पनी में काम मिल गया। ज़मीन के नीचे तीसरे तैख़ाने से २० मंज़िल ऊँचे बिजली की कल के द्वारा मुझे असबाब ऊपर और नीचे चढ़ाना उतारना पड़ता था। शिकागो तथा अमेरिका के और बड़े बड़े शहरों में कारख़ानों और बड़ी दुकानों की इमारतें ३५ मंज़िल तक ऊँची होती हैं। ऊपर-नीचे चढ़ने-उतरने के लिए एक चौखटा होता है। वह बिजली की ताक़त से चलाया जाता है। जिसको जिस मंज़िल में जाना होता है उसे उसका नम्बर चलानेवाले को पुकारकर कह देना होता है। वह चौखटे को कही हुई मंज़िल पर थाम देता है। इस चौखटे को Elevator (एलीवेटर) कहते हैं। यह काम कुछ अच्छा न था। इसमें मुझे अधिक समय तक तैख़ाने में रहना पड़ता था। इन तैख़ानों में सूर्य्य देव के प्रकाश का प्रवेश नहीं होता। उनका काम बिजली के प्रकाश से लिया जाता है। वायु देव नलियों द्वारा पहुँचाये जाते हैं। मुझे ऐसी अस्वाभाविक दशा में प्रत्येक दिन दस घंटे काम करना पसन्द न हुआ। किसी अच्छे काम की खोज में मैं लगा रहा। पास ही एक कम्पनी के मालिक से मैं मिला। वह विद्यार्थियों का बड़ा सहायक था और अमेरिका के अन्य मनुष्यों की अपेक्षा उसे वर्ण-घृणा भी कम थी। इस कारण उसने मुझे लेखक का काम दे दिया। इस दुकान में तीन सहस्र स्त्री-पुरुष और लड़के काम करते थे। इनके बीच रह कर मैं शीघ्र ही वहाँ के लोगों के जीवन के भेदों से परिचित हो गया।

इस स्थान में मुझे दो महीने काम करते हुए बीते थे कि मेरे घर से एक पत्र आया। उसमें मेरे इस प्रकार अमेरिका चले आने पर कोप प्रकट किया गया था। क्रुद्ध होकर मेरे घर के लोगों ने मेरी सहायता करना भी बन्द कर दिया। बस अब अपने ही ऊपर अवलंब करना पड़ा। गर्मी की छुट्टियों के बाद विश्वविद्यालय खुलने के दिन भी निकट आ गये। कुछ दिन के लिए छुट्टी लेकर मैं विद्याकेन्द्र के निकटवर्त्ती घरों में काम पाने की चेष्टा करने को निकला। पर स्वावलम्बनपूर्वक विद्योपार्जन की सम्भावना न दिखाई पड़ी। निदान फिर अपने काम पर वापस आकर छः महीने तक उसी स्थान पर रहा।

अब मुझे कैलीफोरनिया सूबे की असीम सम्पत्ति और वहाँ के विद्यार्थियों की अच्छी दशा का स्मरण हुआ। कैलीफोरनिया में एक घंटा काम करने से १२ आने मिलते हैं। यहाँ सिर्फ़ ८ ही आने। फिर, कैलीफोरनिया में काम मिलने का भी अधिक सुभीता था। मैंने कहा कैलीफोरनिया छोड़ने में मैंने बड़ी भूल की। वहाँ रहने से अवश्य ही विद्याध्ययन कर सकता। बरकले में ख़र्च अधिक है। पर काम करनेवाले को तो ऐसा ही स्थान चाहिए। इन सब बातों का जब मुझे ख़याल हुआ तब मैं शिकागो में कमाया हुआ रुपया लेकर बरकले को वापस गया।

जाड़े का मौसम था। भूमि बर्फ़ से ढकी हुई थी। आधी राह में एक स्थान पर रेल की पटरी टूट गई थी। इससे इञ्जन लाइन पर से गिर कर एक ढालू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान की ओर दौड़ गया। गाड़ियाँ उलट पड़ीं। कई मुसाफ़िरों की जाने गईं। बहुतों के केवल चोट ही आई। असबाब की गाड़ी चूर चूर हो गई। किन्तु जिस गाड़ी में मैं था वह पीछे होने के कारण सिर्फ़ तिरछी होकर एक ऊँचे स्थान के सहारे खड़ी होगई। एक दिन जङ्गल में पड़ा रहना पड़ा। दूसरे दिन वहाँ से छुटकारा हुआ और मैं अपने भाग्य को सराहता हुआ बरकले पहुँचा। वहाँ विश्वविद्यालय में भरती होकर कृषिविद्या सीखने लगा।

भोलादत्त पाँडे।
(कैलीफ़ोर्निया-अमेरिका)

दासी-रानी।

१—हेमलता के जी में नाना
चिंताएँ होती हैं आज—
हे विधि! बिगड़ी बात बनाना;
तेरे ही कर है सब लाज।
मुझे लिवा जाने को प्रियतम
आज धूम से आवेंगे;
निराधारसी जान देह मम
अपनी देह बनावेंगे॥

२—पर मैं दासी-बेटी होकर
नृप-कन्या कहलाती हूँ;
फिर मैं यह पदवी भी खोकर
रानी होने जाती हूँ।
प्राणनाथ यह सुनकर जी में
हाय! करेंगे भारी खेद;
तोभी नहीं छिपाने की मैं
प्यारे पति से कोई भेद॥

३—मरते समय कहा था माँ ने
बेटी! अब मैं जाती हूँ;
सत्य भेद यह आन न जाने
जो मैं तुझे बताती हूँ—
बड़ी वैस में एक कुमारी
सुंदर मैंने पाई थी;
निस्संतान पिता को प्यारी
गुड़िया सी वह भाई थी॥

४—विधि ने गुड़िया वृद्ध भूप की
पल में जग से उठवा ली;
पर मैंने फिर उसी रूप की
उसी ठौर दूजी पाली।
कठिन गूढ़ कारज स्वामी-हित
साधा था तब निज माँ ने;
आज कहीं होती वह जीवित,
सुख पाती तू मन-माने॥

५—क्या जानें निज माता ने क्यों
मुझे न पाला जनकर आप?
सोचा कौन लाभ मेरा यों
जो लादा सिर पर यह पाप?
यद्यपि अपने प्रभु के हित में
है सेवक को उचित प्रपंच,
निरा ठाठ है भला जगत में,
नहीं कपट का पाया मंच॥

६—क्यों जनमी मैं जिसके कारण
चार जनों ने पाया क्लेश;
इतने पर भी पति ही के मन
मैं अब उपजाऊँगी द्वेष!
बात मानकर रानी-माँ की
जो मैं पति से करूँ दुराव,
दशा भोग कर दक्ष-सुता की
बना सकूँगी नहीं बनाव॥

७—तोभी बूढ़े धर्म-पिता को
मैं कुछ भी न बताऊँगी।
बढ़ी हुई उनकी चिंता को
कैसे अधिक बढ़ाऊँगी!
दोनों दिशि दहती है दारुण
दई! दहकते दुख की दाह;
कुछ तो दीन विनय मेरी सुन
बता मुझे बचने की राह॥

८—पर जो होनी है सो होगी;
चिंता से क्या होता है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिंता से सब आशा रोगी
प्रिय जीवन की खोता है।
पिता-भवन से मेरा नाता
मानो अब सब छूटेगा;
उचित न्याव मेरा, हियज्ञाता
पति ही से अब टूटेगा॥

९—नृप रणधीरसिंह के द्वारे
धूम धाम है आज बड़ी;
भोली हेमलता मन मारे
पिता-पास है विकल खड़ी।
बोल लाज-वश नहीं निकलता;
दृष्टि भाव बतलाती है;
बाहर हिय में भरी विकलता
आँसू बन कर आती है॥

१०—मूक हृदय बेटी का पढ़कर
समझाते हैं नृप रणधीर—
बेटी! मेरी चिंता मत कर;
हो मत मन में अधिक अधीर।
जैसे होगा दुखिया अपना
जीवन सुखी बिताऊँगा;
पर यह जग है मुझको सपना;
इसमें जी न लगाऊँगा॥

११—बेटी! होकर पति की प्यारी
तू रहना सुख से पति-संग;
पति के लिए बनी है नारी;
है वह उसका आधा अंग।
घर का काम-काज सब करना;
सुनना सास ससुर की बात;
किसी भाँति भी मान न धरना;
साहस से सहना उत्पात॥

१२—नृप-कन्या, फिर रानी होकर
करना नहीं गर्वका लेश;
दया-भाव रखना दीनों पर;
भूल न जाना मम उपदेश।
सुनकर तेरा सुखमय जीवन
और जिऊँगा मैं कुछ वर्ष;
वीर-पुत्र की तू माता बन
दूना करना मेरा हर्ष॥

१३—फिर व्रजमोहनसिंह भूप से
बोले सरल, वृद्ध नरनाथ—
बल, विद्या, गुण, विनय, रूप से
किया आपने मुझे सनाथ।
तो भी मेरा एक सिखापन
गाँठ बाँध मन में धरियेा;—
कीजो सदा धर्म से शासन;
स्वत्व प्रजा के मत हरियेा॥

१४—ईश-भजन में अपना जीवन
अब मैं शेष बिताऊँगा;
अपनी सभ्य प्रजा का शासन
सौंप प्रजा को जाऊँगा।
(बढ़ती हैं चिंताएँ मन में
जब लौं तन में स्वासा है।)
इसी काम से चौथेपन में
मुझे शांति की आशा है॥

१५—हेमलता पति-गृह में आकर
सबसे मिलती जुलती है;
तो भी पति से जी की जी-भर
कहे बिना नित घुलती है।
अपने बल-भर हिय की आगी
उसने प्रकट न होने दी;
जब उसास से वह कुछ जागी,
शांत छिपे आँसू से की॥

१६—रंग-महल में एक दिवस जब
पति से उसका हुआ मिलाप,
कथा गूढ़ अपने दुख की सब
उनसे कह कर किया विलाप—
मेरे कारण आप देश में
व्यर्थ कलंकित होवेंगे;
लख रानी के मुझे भेष में
सुख की नींद न सोवेंगे॥

१७—तो भी नहीं इष्ट सपने भी
मुझे आप से दूर निवास;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैमलेट की विदा।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तजता है कोई अपने भी
कहीं मान निंदा का त्रास !
मैं दासी की दासी रहकर
गृह-कारज सब साधूँगी ;
ऊँचा नीचा सब कुछ सहकर
पति के पद आराधूँगी ॥

१८—मुझको किसी और रानी से
होगा नहीं भूल कर द्वेष ;
अल्प प्रेम भी पा स्वामी से
तिय को प्रिय है दासी-भेष ।
मुझे आपके सुख में सुख है
चाहे मैं भोगूँ दुख आप ;
लगता नहीं प्रीति में दुख है
जैसे शुद्ध हृदय में पाप ॥

१९—वही करें अब स्वतंत्रता से
जिसमें आप न पावें खेद
तो भी मेरे वृद्ध पिता से
कहें न कोई मेरा भेद ।
मेरे तन, मन के मन-माने
आप एक ही स्वामी हैं ;
मेरे लिये उचित जो जानें
उसमें मेरी हामी है ॥

२०—विकल विलाप सुना पत्नी का
व्रजमोहन ने सब चुपचाप ;
पर प्रभाव उसकी घटना का
हुआ न कुछ भी उनको आप ।
तो भी सब कहना रानी का
सत्य उन्होंने मान लिया ;
खेद बाँटकर उसके जी का
व्याकुल मन कुछ शांत किया ॥

२१—फिर धीरज धर मधुर सुधा से
बोले भूप नम्र ये बैन—
प्यारी ! क्या नृप की कन्या से
अधिक नहीं कोई सुख-दैन ?
क्या सिंहासन सदाचार से ,
मुकुट धर्म से भारी है ?
आर्य-रक्त क्या शुद्ध प्यार से
कहीं अधिक सुखकारी है ?

२२—सरल तुम्हारा यह भोला मन .
मणि है चिंता खोने में ;
तिस पर पूर्ण चंद्र सा आनन
मधुर गंध-सम सोने में ।
तन, मन की सुन्दरता पूरी
मिलती नहीं साथ समभाव ;
पर तुम ज्यों छवि में हो रूरी ;
त्योंही है तव मृदुल स्वभाव ॥

२३—पाय सुवासित हेमलता सी
हेमलता को हिय के बीच
मुझे और रानी है दासी ;
ऊँचा कुल है मुझको नीच ।
राज-पाट, प्रभुता, तन, मन धन,
मेरा सभी तुम्हारा है ;
तुमको पाय मुझे जग-बंधन
अब मानो छुटकारा है ॥

२४—इतना कहकर गले लगाया
राजा ने निज रानी को ;
जग में सच्चा पंथ दिखाया
झूठे कुल-अभिमानी को ।
एक बरस जब बड़े मोद में
एक मास सा बीत गया ,
सुन्दर पुत्र खिलाय गोद में
सुख दोनों को हुआ नया ॥

२५—हेमलता, व्रजमोहन जग में
सुरपुर का सुख पाते हैं ;
चल कर सदा प्रेम के मग में
मन की शांति बढ़ाते हैं ।
यद्यपि दोनों सोतों सुख से
सुखियों को तरसाते हैं ;
तो भी दीन प्रजा के दुख से
सहज दुखी हो जाते हैं ॥

कामताप्रसाद गुरु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इँगलैंड में अबलाओं का आन्दोलन।

इँगलैंड सचमुच ही एक अद्भुत देश है। वहाँ के निवासियों को स्वाधीनता से कुछ स्वाभाविक प्रेम है। जिस समय अन्यान्य देशों में राजे सर्वथा स्वतन्त्र थे और प्रजा को शासन-सम्बन्धीय कोई भी स्वाधीन अधिकार न थे, तभी इँगलैंडनिवासियों ने अपने देश का शासन अपनी इच्छा के अनुसार करने के लिए लड़ना झगड़ना आरम्भ कर दिया था। तब से उस देश में दिनों दिन राज्यशासन में प्रजाधिकार बढ़ता ही गया। पहले तो राजा की स्वतन्त्रता कम हुई, फिर उसके आश्रित अमीर उमराओं की। क्रमशः इँगलैंड में बसने वाले सभी पुरुषों के अनुकूल और सम्मति से ही राज्य-शासन किया जाना निश्चित हुआ और प्रजामात्र के राजनैतिक अधिकार समान माने जाने लगे। पार्ल्यामेंट में अमीर उमराओं से लेकर कुली मज़दूरों तक के प्रतिनिधि तो थे ही, पर अब कुछ दिनों से इँगलैंड की लेडियाँ भी पार्ल्यामेंट में प्रविष्ट होना चाहती हैं। राज्यशासन में अधिकार प्राप्त करने के लिए इनकी इच्छा इच्छामात्र ही नहीं है। इनका सङ्कल्प दिन प्रति दिन दृढ़ होता जाता है। यहाँ तक कि समस्त संसार के देखते देखते इन अबलाओं का आन्दोलन इतना बलवान् हो गया है कि इँगलैंड के बड़े बड़े राज्यनीति-विशारदों की बुद्धि चक्कर में है और उनसे कुछ करते धरते नहीं बनता।

ब्रिटिश पार्ल्यामेंट में प्रतिनिधि भेजने के लिए अब तक पुरुषों ही की राय ली जाती थी। पुरुष ही 'वोट' दिया करते थे, स्त्रियाँ नहीं। अब स्त्रियाँ भी राय देना चाहती हैं। वे कहती हैं कि राज्य केवल पुरुषों हीं पर नहीं किया जाता, स्त्रियों पर भी। फिर राज्य-शासन में स्त्रियों की राय क्यों न ली जाय? क्या बिना स्त्रियों के भी कोई देश रह सकता है? माना कि पुरुष लड़ाई पर जाते हैं और अपने देश की रक्षा के लिए प्राण देते हैं; परन्तु स्त्रियाँ भी पुरुषों के उत्पन्न करने में कुछ कम कष्ट नहीं उठातीं। बच्चों के पैदा होने में स्त्रियों की जानें जो नित्य जाती हैं यदि उनकी संख्या पर विचार किया जाय तो ऐसे पुरुषों की संख्या से कदापि कम न होगी जो कभी कभी लड़ाइयों में मारे जाते हैं। इसी तरह, क्या लौकिक और क्या पारलौकिक, सभी बातों में स्त्रियाँ पुरुषों के तुल्य ही योग देती हैं। फिर राज-काज में पुरुषों का पक्षपात कैसा? जब कल-कारख़ानों का चलाना, पाठशालाओं में पढ़ाना, सभा-सोसाइटियों में लेकचर्स देना, रियासतों का प्रबन्ध करना, सभी काम, स्त्रियाँ करती हैं और कर सकती हैं, तब भला राज्यशासन के अधिकारों हीं से वे क्यों वञ्चित रक्खी जायँ? कैसे आश्चर्य्य की बात है कि एक बहुत बड़े रियासत की मालिक स्त्री का तो 'वोट', यानी पार्ल्यामेंट में प्रतिनिधि भेजने में राय, न ली जाय; किन्तु उसके नौकर की राय ली जाय? यह अन्याय नहीं तो क्या है? बस ऐसी ही दलीलों के आधार पर इँगलैंड में अबलाओं का आन्दोलन आरम्भ हुआ है, जिसे अंग्रेज़ी में सफ़्रेजिट मूवमेंट (Suffregette Movement) कहते हैं।

इन गौराङ्ग-अबलाओं का आन्दोलन क़रीब चालीस बरस पहले आरम्भ हुआ था। यह उस समय की बात है जब जान स्टूआर्ट मिल ने रिफ़ार्म बिल नामक संशोधन-सम्बन्धी एक क़ानूनी मसविदे में कुछ थोड़ा सा परिवर्तन करने के लिए अपना विचार प्रकट किया था और जेकब ब्राइट ने स्त्रियों को 'वोट' देने के अधिकार के विषय में एक मसविदा पेश किया था। परन्तु उस समय से सन् १९०३ तक इस आन्दोलन की वही दशा रही जो प्रायः सभी आन्दोलनों की प्रारम्भिक दशा में रही है और रहेगी। यद्यपि, समय समय पर, अर्थात् सन् १८८४, १८८५, १८९४ में कितनीहीं दर्ख़ास्तें गुज़रीं, कितनीहीं सभायें हुईं और कितनीहीं दफ़े पार्ल्यामेंट में प्रस्ताव किये गये, तथापि इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेचारी अबलाओं और उनके सहायकों का उपहास ही होता रहा। उनके विचार और प्रस्ताव तुच्छ दृष्टि ही से देखे जाते रहे हैं। परन्तु राजनैतिक आन्दोलनों की मर्मज्ञ महिलायें भला इस उपहास और विरोध से कब डरने लगीं। "प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति"। थोड़ी बहुत चर्चा और छेड़ छाड़ इस विषय में होती ही गई। यहाँ तक कि १९०३ ई० के आक्टोबर महीने में मैंचेस्टर नगर में विमन्स सोशल ऐन्ड पोलिटिकल यूनियन अर्थात् स्त्रियों की सामाजिक और राजनैतिक सम्मेलन नामक सभा इमीलाइन पेन्कहार्स्ट नाम की एक मेम साहबा ने बना ही डाली। उस दिन से आज तक इन अबलाओं के आन्दोलन की उन्नति दिन दूनी रात चौगुनी होती जाती है। अपने धैर्य्य और दृढ़ता का परिचय ये पूरा पूरा दे रही हैं। पहले समझा जाता था कि इस आन्दोलन में केवल एक ही कुटुम्ब की स्त्रियाँ हैं। उन्हीं ने और उनकी सहेलियों ने यह उत्पात मचा रक्खा है। परन्तु अब ऐसा कहना नितान्त निर्मूल है। लन्दन के पूर्वीय भाग की निर्धन स्त्रियों से लगा कर बड़े बड़े घरानों तक की स्त्रियाँ इस आन्दोलन में सम्मिलित हैं। इनकी संख्या भी अब कई सहस्र हो गई है। यद्यपि पूर्वोक्त सभा में केवल स्त्रियाँ ही मेम्बर्स हो सकती हैं, परन्तु उनके साथ अब कीर हार्डी सदृश बहुतेरे पुरुषों की भी सहानुभूति हो गई है। इन सहायक पुरुषों ने भी एक सभा बनाई है जिसका नाम है "मेन्स लीग फार वीमन्स सफ़रेज" अर्थात् स्त्रियों को वोट दिलानेवाली पुरुषों की मण्डली। छोटी छोटी पुस्तकें लिखना, सभाओं में व्याख्यान देना, अख़बार निकालना, चन्दा इकट्ठा करना, राजमंत्रियों से मिलना और हर तरह से अपने विचारों को फैलाना—सभी काम, ये स्त्रियाँ बड़ी ख़ूबी के साथ करती हैं। पूर्वोक्त सभा में कोई भी स्त्री सम्मिलित हो सकती है, चाहे वह जिस राजनैतिक दल की हो। हाँ उसे यह प्रतिज्ञा करना पड़ती है कि किसी ऐसे राजनैतिक दल को, जो स्त्रियों को वोट दिलाने के प्रतिकूल है, वह कभी न सहायता करेगी। वोट भी वे ठीक ऐसी ही शर्तों पर चाहती हैं जैसी पुरुषों के विषय में होती हैं। उनका विचार है कि जब तक वे वोट देने अर्थात् पार्ल्यामेंट में प्रतिनिधि भेजने में राय देने का अधिकार न प्राप्त करलेंगी, स्त्रीजाति का तुच्छ दृष्टि से देखा जाना बन्द न होगा। जो हो, इन स्त्रियों ने बड़े उत्साह और दृढ़ संकल्प के साथ इस आन्दोलन को शुरू किया है। "कार्यं वा साधयेयम्,—शरीरं वा पातयेयम्," वाली कहावत इन्हीं पर चरितार्थ होती है। ऐसे लोगों के व्याख्यानों में विघ्न डालना जो इनके सिद्धान्तों के प्रतिकूल हैं, पार्ल्यामेंट और मंत्रियों के स्थानों पर आक्रमण करना, बड़े बड़े झंडे लिये बाज़ारों और चौराहों में उपदेश करना, बड़े बड़े तमाशे और मेले करना, इत्यादि सभी मायायें वोट की अभिलाषिणी ये ललनायें रचती हैं। इन उपद्रवों के कारण वे पुलिस के द्वारा पकड़ी जाती हैं। उन पर जुर्माना किया जाता है। परन्तु वे इसकी ज़रा भी परवा नहीं करतीं। बड़ी प्रसन्नता से कारागार का दुःख भोगती हैं और कारागार से निकल कर फिर अपने काम में लग जाती हैं। कुछ दिनों से तो वे जेलख़ानों में जाती हैं और वहाँ जाकर अनशन-व्रत धारण कर लेती हैं और इस तरह बिना कुछ खाये पिये अपना शरीर त्याग देने की धमकी दिखाती हैं। जेल के अफ़सर इनकी यह लीला देख कर बड़ेही चकित हैं। डाक्टरों से परामर्श करके इन स्त्रियों के उदर में ज़बर्दस्ती यंत्र द्वारा अन्न पहुँचाया जाता है। क्यों न हो, जिस देश में अपने मनोरथ की सफलता और स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए स्त्रियाँ तक इतनी दृढ़-संकल्प हैं वह देश यदि स्वातन्त्र्य और साम्राज्य का सुख भोग करे तो आश्चर्य्य ही क्या है।

पूर्वोक्त महिलाओं की राजनैतिक सभा, जो मेम पेंकहर्स्ट ने मैन्चेस्टर में स्थापित की है, दो वर्ष तक कोई बड़ा काम न कर सकी। इस समाज में अब तक मेम्बरों की संख्या ५० से अधिक न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। अधिवेशन भी ६०० से अधिक न हो सके थे। इसलिए लोगों का चित्त भी इनकी ओर आकृष्ट न हुआ था। परन्तु सन् १९०५ में मन्त्रिमण्डल में परिवर्तन होने की सुगसुग सुन पड़ी। तब स्त्रियों के राजनैतिक सम्मेलन ने ज़्यादा ज़ोर पकड़ा। पहले पहल इन्होंने सर एडवर्ड ग्रे की ख़बर ली। कंसरवेटरों का समय हो चुका था। अब लिबरल दल की चढ़ती कला थी। पार्ल्यामेंट के मेम्बरों का चुनाव फिर से होने वाला था। लिबरल दल ने सर एडवर्ड ग्रे को मैन्चेस्टर की एक विराट् सभा में व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया था। पूर्वोक्त सभा की मंत्रिणी ने सर एडवर्ड ग्रे के पास एक डेपुटेशन भेज कर यह पूछना चाहा कि जो लिबरल मंत्रिमण्डल कन्सर्वेटिव मन्त्रिमण्डल की जगह होने वाला है वह स्त्रियों को पार्ल्यामेंट में प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिलाने में क्या सहायता करेगा। परन्तु सर एडवर्ड ने कोई उत्तर न दिया। तब इन महिलाओं ने सभा में श्रोताओं के रूप में उपस्थित होकर वही बात पूछने की ठानी। परन्तु सभा में भी कुछ उत्तर न मिला। तब इन्होंने लिख कर अपने प्रश्नों को सभापति के पास भेजा। फिर भी उत्तर नदारद। निदान एनी केनी नामक स्त्री, जो अपनी बाल्यावस्था ही से स्वावलम्बन का अनुभव कर चुकी थी और मिसेज़ पेन्कहार्स्ट की बड़ी लड़की क्रिस्टविल पेन्कहार्स्ट जो विक्टोरिया यूनीवर्सिटी में क़ानून पढ़ती थी, अपनी अपनी कुर्सियों पर खड़ी हो गईं और उच्च स्वर से अपने प्रश्नों को दुहराने लगीं। इस तरह सभा में विघ्न करते देख लोगों ने इन्हें वहाँ से निकाल दिया। पर ये बाहर आ कर डट गईं और लगीं व्याख्यान देने। दूसरे दिन सभा-भङ्ग करने के अपराध में इन स्त्रियों पर मुक़द्दमा क़ायम किया गया। उन पर जुर्माना हुआ, जिसे देना इन स्त्रियों ने अस्वीकार किया और सहर्ष एक तीन दिन और दूसरी एक हफ़्ते के लिए जेलख़ाने भेजी गईं। जेलख़ाने में भी इनके साथ वैसाही बर्ताव किया गया और किया जाता है जैसा कि सामान्य नीचे दरजे के अपराधियों के साथ किया जाता है।

इन सुकुमार ललनाओं की दृढ़ प्रतिज्ञा, साहस, धैर्य्य, वीरता और स्त्रीजाति के लिए आत्मसमर्पण करना देख कर लोग इनके मन्तव्यों की ओर आकृष्ट होने लगे। इनकी पूर्वोक्त सभा की मेम्बर स्त्रियों ने भी बहुत सोच विचार कर यही स्थिर किया कि स्त्रियों को वोट देने के अधिकार-सम्बन्धी प्रश्न को यदि वर्तमान व्यावहारिक राजनीति का विषय बनाना और उसे प्राधान्य देना है तो बस यही उपाय है कि जहाँ जहाँ लिबरल दल के नेता, जिनके आगामि मन्त्रिमण्डल में पदाधिकारी बनने की सम्भावना है, व्याख्यान देने जायँ वहाँ वहाँ भरी सभा में उनसे प्रश्न किये जायँ कि यदि वे मंत्री हो जायँगे तो स्त्रियों को वोट दिलाने के लिए क्या प्रयत्न करेंगे। हुआ भी यही। कन्सर्वेटिव गवर्नमेन्ट ने इस्तेफ़ा देदिया। इधर पार्ल्यामेंट के मेम्बरों का चुनाव होना आरम्भ हुआ और उधर सभाओं में वोट की अभिलाषिणी स्त्रियों ने भी द्वन्द्व मचाना आरम्भ कर दिया। इस बीच में मिसेज़ ड्रमन्ड और मिसेज़ पेथिक लारन्स भी इनकी समाज में मिल गईं। मिसेज़ ड्रमन्ड लन्दन के महिलादल की नेता हैं और बड़े बड़े साहस के काम कर रही हैं। और मिसेज़ पेथिक लारन्स ख़ज़ाञ्ची का काम करती हैं। मिसेज़ लारन्स के भरती होने के पहले ख़ज़ाना ख़ाली था; अब भर गया है। अस्तु।

पार्ल्यामेंट के मेम्बरों के चुनाव के अनन्तरही एनी केनी लन्दन पहुँची और आन्दोलन शुरू किया। तब तक इन लोगों के पास रुपया विशेष न था। कारण यही था कि अब तक इस समाज में प्रायः ग़रीब ही स्त्रियाँ मेम्बर थीं। इसलिए एनी केनी सिर्फ़ तीसही रुपये लेकर लन्दन में बड़े महत्त्व का काम करने को रवाना हुईं। वहाँ पहुँच कर केक्सटन हाल में स्त्रियों की एक विराट् सभा हुई, जिसमें ग़रीब-अमीर छोटे-बड़े घराने वाली सभी प्रकार की स्त्रियाँ सम्मिलित हुईं। लन्दन में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस महिलादल ने एक कमेटी स्थापित की। इस कमेटी की ओर से प्रधान सचिव को लिखा गया कि सफ़्रेजिटस की प्रतिनिधि आपसे मिलना चाहती हैं। मंत्री ने मिलना नामञ्ज़ूर किया। तब इन अबलाओं ने बिना बुलाये ही डाउनिङ्ग स्ट्रीट में मंत्री के मकान पर जाना निश्चय किया। जब ये बिना बुलाये हठात् प्रधान सचिव के घर में घुसने लगीं तब पुलिस ने एनी केनी, मिसेज़ ड्रमन्ड और पाँच अन्यान्य स्त्रियों को गिरिफ़्तार किया और थाने पर ले गई। परन्तु प्रधान सचिव केम्बल बेनर्मैन के कहने से ये जल्दी ही छोड़ दी गईं। केम्बल बेनर्मैन अन्ततोगत्वा इनके डेपूटेशन से मिलने को राज़ी हुए। इस सम्मेलन में क़रीब ४०० स्त्रियाँ प्रतिनिधि बन कर प्रधान सचिव से १९ मई १९०६ को मिलने गईं।

इधर इस सम्मेलन के कुछ ही दिन पहले २५ अप्रैल को कीर हार्डी साहब ने पार्ल्यामेंट में स्त्रियों को वोट देनेवाला, अर्थात् पार्ल्यामेंट में प्रतिनिधि भेजने में राय दिलानेवाला, प्रस्ताव पेश कर दिया। ख़ूब बहस हुई। पर लगे लोग बातों ही बातों कीर हार्डी को टालने। यह दशा देख कर सफ़्रेजिस्टों के समुदाय ने, जो स्त्रियों की गेलरी में अलग बैठा हुआ था, इस चालाकी का विरोध किया और एक पताका जिसमें, "वोट्स फार विमन" अर्थात् स्त्रियों के लिए वोट देने का हक, लिखा हुआ था दिखलाया। यद्यपि बहुतेरे पार्ल्यामेंट के मेम्बर इस पर बिगड़े। पर इँगलैंड में एक प्रकार का कोलाहल मच गया। जिस समय प्रधान सचिव सर हेनरी केम्बल बेनर्मैन से विमन्स सोशल एँड पोलिटिकल यूनियन की भेजी हुई प्रतिनिधि-स्त्रियाँ मिलने गईं उसी समय क़रीब दो हज़ार स्त्रियों का दल सड़कों पर वेस्टमिन्सटर के इर्दगिर्द फिरने लगा। प्रधान सचिव ने धैर्य्य धरने के उपदेश के सिवा कोई भी आशाजनक उत्तर न दिया। उन्होंने यह कहकर टाल दिया कि मन्त्रिमण्डल के और और लोग सफ़्रेजिस्टों के प्रस्ताव के प्रतिकूल हैं। फिर वर्तमान प्रधान सचिव मिस्टर एसक्विथ, जान बर्न्स, विन्सटन चर्चहिल इत्यादि बड़े बड़े राजनैतिक पुरुषों से वार्तालाप करने की चेष्टा इन महिलाओं ने की। परन्तु वे बेचारी सभाओं से निकाल ही दी गईं और फल कुछ न निकला। प्रत्युत एसक्विथ साहब से ज़बर्दस्ती मिलने के उद्योग में पुलिस से बखेड़ा हो गया और मिस विलिङ्गटन को २ मास का, मिस केनी और दो अन्य स्त्रियों को छः छः हफ़्ते का जेल हुआ।

पर ये स्त्रियाँ हिम्मत हारनेवाली नहीं। इनका आन्दोलन और भी उत्साह के साथ होने लगा। कहीं स्त्रियों ने टैक्स (कर) देने से इन्कार करदिया और कहीं बड़ी बड़ी सभाओं में विघ्न डालने लगीं। पुलिस जब उनको पकड़ती तब वे प्रसन्नता से जेलख़ाने चली जातीं। पार्ल्यामेंट पर आक्रमण करतीं। सभाओं में पहले से जाकर जंज़ीरों से अपने को जकड़ लेतीं और फिर शोर मचातीं। मिस केनी, मिसेज़ पेन्कहर्स्ट इत्यादि स्त्रियाँ मिसेज़ एनी बेसन्ट की तरह हज़ारों आदमियों को अपने व्याख्यानों से मुग्ध कर देती हैं। इँगलैंड में एक सिरे से दूसरे सिरे तक ये दौरा करती हैं; बड़ी बड़ी सभायें करती हैं और इस तरह अपने उद्देशों का प्रचार करती और लोगों को समझाती हैं। जिस दिन पार्ल्यामेंट की पहली बैठक हुई थी, इन स्त्रियों ने केक्सटन हाल में बहुत बड़ी सभा की और सबकी सब दर्ख़ास्त लेकर गोल बाँध पार्ल्यामेंट की तरफ़ चलीं। पुलिस ने रोका। मार पीट हुई। ये पकड़ी गईं और क़रीब ५६ औरतों ने जेल जाना स्वीकार किया, परन्तु जुर्माना देना नहीं। कहाँ तक लिखें, इन अबलाओं का आन्दोलन दावानल की तरह दिन प्रति दिन बढ़ता और फैलता ही जाता है। इनके सम्मेलन बड़ी धूमधाम के साथ होते हैं। उदाहरण के लिए, हाइड पार्क वाले सम्मेलन को लीजिए। लन्दन के जुदे जुदे हिस्सों से सात दल हाइड पार्क को आये। साथ में ४० बैंड बाजे थे; ७०० झंडे थे; ७० स्पेशल गाड़ियों में इन औरतों के प्रतिनिधि बाहर से आये थे; लाखों स्त्री-पुरुषों की भीड़ थी। अपने सिद्धान्तों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रतिपालन और उद्देश की पूर्ति के लिए जेल जाने से ये ज़रा नहीं डरतीं। वहाँ जाकर भी अन्न-जल का त्याग कर जेलख़ाने के अफ़सरों को तंग करती हैं। दिसम्बर १९०६ के अन्त तक ९९ स्त्रियों ने कारागार का दुःख भोगा और यदि सब स्त्रियों की सज़ाओं की अवधि जोड़ डाली जाय तो १९४ हफ़्ते होते हैं। मार्च १९०७ से लगाकर फ़रवरी १९०८ तक १३१ स्त्रियों ने जेल जाना स्वीकार किया और इन सबों की सज़ाओं की अवधि जोड़ने से ३५० हफ़्ते अर्थात् ७ वर्ष होते हैं। सन् १९०८ में १३२ स्त्रियाँ जेल गईं और सबकी सज़ाओं की अवधि मिल कर क़रीब १४ वर्ष के होती है!

इन सफ़्रेजिस्टों, अर्थात् पार्ल्यामेंट में प्रतिनिधि भेजने में राय देने का अधिकार चाहनेवाली स्त्रियों, के समुदाय में अब बड़ी बड़ी विदुषी स्त्रियाँ भी सम्मिलित हो गई हैं—जैसे कि मिसेज़ फासट, लेडी फ़्राँसस बेलफ़ोर, जनरल फ़्रञ्च की बहिन मिसेज़ डेस्पर्ड, मिसेज़ सान्डर्स इत्यादि। दी पोलिटिकल ऐन्ड सोशल यूनियन आफ़ वीमन और वीमन्स फ़्रीडम लीग इत्यादि की शाखा-सभायें नगर नगर और प्रान्त प्रान्त में खुलती जाती हैं। इनके अख़बार निकलते हैं। "वोटस् फ़ार वीमन" नामक समाचार पत्र के १५००० से अधिक ग्राहक हैं। रुपया ख़ूब इकट्ठा होता है और लोगों की सहानुभूति दिनोंदिन इन स्वातन्त्र्यप्रिय गौराङ्ग-महिलाओं की ओर बढ़ती जाती है। इँगलैंड जीता जागता देश है। वहाँ के नरनारी जिस धुन में लगते हैं तन, मन, धन से लगते हैं। वे अपने सम्मुख एक उद्देश रख लेते हैं। फिर उसकी पूर्ति के लिए चाहे जितना कष्ट झेलना पड़े ज़रा नहीं हिचकते। सफ़्रेजिस्टों को बाज़ी मारे लिये जाते देख वे स्त्रियाँ चुपचाप हाथ पर हाथ धरे नहीं बैठी हैं जिनके सिद्धान्त इन सफ़्रेजिस्टों के प्रतिकूल हैं। उनके ख़िलाफ़ लेडी जर्सी के सभापतित्व में "वीमन्स अन्टीसफ़रज लीग" नामक सभा इन्होंने भी बना ली है। देखते देखते ही इस लीग की ९१ शाखायें सफ़्रेजिस्टों का विरोध करने के लिए स्थापित हो गई हैं। इन स्त्रियों का कथन है कि हमें पार्ल्यामेंट-सम्बन्धी वोट न चाहिए, अर्थात् पार्ल्यामेंट में प्रतिनिधि चुनने में हमें राय नहीं देना है। यह काम पुरुषों ही का है। पुरुष चाहे जिस दल के हों, स्त्रियों और बच्चों की सदैव रक्षा करते ही आये हैं और करतेही रहेंगे। यदि स्त्रियों को अधिकार मिलही गये तो प्रायः उसका लाभ मज़दूरिनी ही उठावेंगी; क्योंकि मालदार घरानों की स्त्रियाँ इस झगड़े में नहीं पड़ना चाहतीं। मज़दूरिनें भी २१ वर्ष से २५ ही वर्ष तक चाहे राय देलें। तदनन्तर उनका विवाह होजाया करता है। फिर अपने पति के अधीन हो जाने से वोट देने का हक़ उन्हें न रहेगा। नव जवानी की उम्र नातजर्बेकारी की होती है। उस उम्र में वोट देने से क्या फल? दूसरे, वोटरों की लिस्ट बहुत बढ़ जायगी और राज्यशासन में बड़ी अड़चनें पड़ेंगी। बेहतर है कि वोट की अभिलाषिणी स्त्रियाँ यह झगड़ा पुरुषों ही के लिए रहने दें और अपने समय को दीन दुखियों की सेवा में व्यतीत कर देश का उपकार करें।

इन एन्टी सफ़्रेजिस्टों की सहायता के लिए भी लार्ड क्रोमर की अध्यक्षता में मेन्स लीग नामक पुरुषों की एक सभा बनाई गई है।

जो हो इन अबलाओं के आन्दोलनों ने इँगलैंड में बड़ा कोलाहल पैदा कर दिया है। नित्य नये समाचार इस विषय के निकलते हैं। देखें क्या परिणाम होता है।

देवीप्रसाद शुक्ल।

उत्तरी ध्रुव का आविष्कार।

डाक्टर कुक और कमांडर पीरी में तुमुल वाग्युद्ध हो रहा है। एक दूसरे को अपदस्थ करने की कोशिश में अपनी पूरी पूरी शक्ति ख़र्च कर रहा है। तुम झूठे हो; तुम उत्तरी ध्रुव तक हरगिज़ नहीं गये—इस प्रकार परस्पर एक दूसरे पर अभिशाप लगा रहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। योरप और अमेरिका में दो पक्ष हो गये हैं। एक पीरी का पृष्ठपोषक बना है, दूसरा कुक का। ये दोनों ही महात्मा अमेरिका के रहनेवाले हैं। इस कारण अमेरिका में इनके झगड़े की मात्रा बेहद बढ़ रही है। अख़बारों में भी दो पक्ष हो गये हैं। एक पीरी के प्रशंसा-गीत गा रहा है, दूसरा कुक के। अमेरिका के प्रसिद्ध नगर न्यूयार्क के अधिकारियों ने कुक के दावे को सच समझ कर उनका बढ़िया सत्कार किया है। उधर अमेरिका की संयुक्त रियासतों के भूतपूर्व राजा, प्रेसिडेंट रूज़वेल्ट, ने कमांडर पीरी से ही हाथ मिला कर उन्हें उत्तरी ध्रुव की चढ़ाई पर भेजा था। कमांडर पीरी अमेरिका की फ़ौज में अफ़सरी कर चुके हैं। उन्होंने प्रेसिडेंट रूज़वेल्ट के ही नामानुसार अपने जहाज़ का नाम "रूज़वेल्ट" रक्खा है। इसी जहाज़ पर वे पहले और इस दफ़े भी उत्तरी ध्रुव की यात्रा करने गये थे। अतएव पीरी की कामयाबी पर रूज़वेल्ट साहब को ज़रूरही प्रसन्नता हुई होगी। न्यूयार्क की प्रधान भौगोलिक सभा ने भी पीरी के काग़ज़ात की जाँच करके उन्हें यथार्थ माना है।

पीरी के पक्ष-पाती कुक की बेतरह ख़बर ले रहे हैं। उत्तरी अमेरिका में आलस्का एक जगह है। उसमें मेककिन्ले नाम का एक पर्वत है। उसके सर्वोच्च शिखर पर चढ़ जाना दुःसाध्य समझा गया था। कई वर्ष हुए डाक्टर कुक इस पर्वत पर चढ़े थे। बाद में उन्होंने प्रकाशित किया था कि मैं उसकी चोटी तक हो आया। अपने चढ़ने उतरने का वृत्तान्त भी उन्होंने प्रकाशित किया था। जो मनुष्य उस चढ़ाई में उनके साथ था उसने अब, इतने दिनों बाद, हल्ला मचाया है कि डाक्टर कुक उस पहाड़ की चोटी तक गये ही नहीं। बीच ही से वे उतर आये थे और झूठ ही प्रकाशित कर दिया था कि मैं ऊपर तक हो आया। एक और तुर्रा सुनिए। डाक्टर कुक कहते हैं कि उत्तरी ध्रुव की चढ़ाई के विषय के काग़ज़ात मैं अमुक टापू के अमुक नगर में अमुक मनुष्य के पास रख आया हूँ। उनके आने पर मैं अपनी यात्रा का वैज्ञानिक वर्णन प्रकाशित करूँगा। इस "अमुक मनुष्य" को लोगों ने ढूँढ़ निकाला और कुक के काग़ज़ात की बात उससे पूँछी। यह कहता है कि मेरे पास कुक के काग़ज़ात की एक चिट भी नहीं। हाँ, दो एक बकस कुक ज़रूर मेरे पास रख आये हैं। उनमें चाहे जो भरा हो; मैं नहीं जानता; वे सब बन्द हैं।

इस प्रकार पीरी के पक्षपाती डाक्टर कुक के पीछे पड़ गये हैं। वे उन्हें हर तरह झूठा साबित करने की चेष्टा कर रहे हैं। वे कहते हैं कि डाक्टर कुक के जी में यदि चालाकी न होती तो वे ध्रुव की यात्रा में अपने साथ किसी सभ्य आदमी को ज़रूर ले जाते। जंगली एस्किमो लोगों को ही वे अपना मददगार न बनाते। खैर, जिन दो जंगली आदमियों को वे कहते हैं कि मेरे साथ थे उन्हीं को हाज़िर करें। क्यों वे उन्हें वहीं छोड़ आये। बिना बरसों पहले से तैयारी किये, मछली मारने की एक साधारण सी नौका पर सवार होकर, कोई उत्तरी समुद्र की यात्रा नहीं कर सकता।

अमेरिका के न्यूयार्क नगर से सायंटिफ़िक अमेरिकन नाम का एक वैज्ञानिक पत्र निकलता है। यह पत्र बहुत प्रतिष्ठित समझा जाता है। इसके लिखने के तर्ज से मालूम होता है कि यह डाक्टर कुक को ही उत्तरी ध्रुव का आविष्कारक समझता है। आपने पहले तो कुक की यात्रा का संक्षिप्त समाचार प्रकाशित किया। फिर अपने पत्र के दूसरे अङ्क में पीरी और कुक के झगड़े पर अफ़सोस ज़ाहिर करके यह राय दी कि पीरी ने यह बहुत ही अनुचित बात की जो लबराडर से तार द्वारा कुक के आविष्कार को झूठा ठहराया। इसी अंक में आपने सेक्सटंट नामक यंत्र द्वारा आकाश में सूर्य की अवस्थिति और अक्षांश आदि जानने की तरकीब भी प्रकाशित की। आपने लिखा कि इस यंत्र के द्वारा वैज्ञानिक जाँच करना कोई कठिन काम नहीं। अतएव डाक्टर कुक ने उत्तरी ध्रुव पर पहुँच कर ज़रूर ही इस यंत्र के द्वारा इस प्रकार सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातें जान ली होंगी। क्यों न हो! आपके इस वैज्ञानिक-औदार्य्य का मतलब डाक्टर कुक ही नहीं और भी लाखों आदमी समझ गये होंगे। ख़ैर आपने यह सब करके पीरी की यात्रा का भी कुछ हाल अपने पत्र में छापा है। इस कृपा के लिए कमांडर पीरी ज़रूरही आपके कृतज्ञ होंगे।

अँगरेज़ी के प्रसिद्ध मासिक पत्र "रिव्यू आव् रिव्यूज़" के सम्पादक स्टीड साहब डाक्टर कुक से मिलने डेनमार्क की राजधानी कोपिनहेगिन गये थे। उनकी राय है कि कुक बड़े सच्चे आदमी हैं। वे ज़रूर उत्तरी ध्रुव तक हो आये हैं। संभव है, पीरी भी हो आये हों। पर डाक्टर कुक के बाद पीरी पहुँचे होंगे। स्टीड साहब पीरी को सज्जन नहीं समझते। वे कहते हैं कि पीरी को डाक्टर कुक पर यह अभिशाप न लगाना चाहिए था कि वे झूठे हैं। डाक्टर कुक ने पीरी पर ऐसा अभिशाप नहीं लगाया। पीरी ने कप्तान बार्टलेट को अपने साथ ध्रुव तक ले जाने से इनकार कर दिया। लौटते वक्त डाक्टर कुक के यंत्र और काग़ज़ात भी अपने जहाज़ पर लाने से उन्होंने इनकार किया। यह उन्होंने भलमंसी का काम नहीं किया। इससे उनका ईर्ष्या-द्वेष प्रकट होता है। अतएव डाक्टर कुक के ख़िलाफ़ कही गई उनकी बातें नहीं मानी जायँगी। ख़ैर।

पीरी ने अपनी यात्रा का संक्षिप्त हाल "न्यूयार्क टाइम्स" नामक पत्र में प्रकाशित कराया है। डाक्टर कुक और कमांडर पीरी में से कौन सच्चा और कौन झूठा है, इसका निश्चय तो कुछ दिनों में हो ही जायगा। तब तक पीरी की यात्रा का थोड़ासा वृत्तान्त सुन लीजिए।

अमेरिका के एक अमीर आदमी उत्तरी समुद्र में शिकार खेलने जाते थे। उन्होंने कहा, डाक्टर कुक, तुम भी चलोगे? कुक ने कहा, बहुत अच्छा; ख़ुशी से। बस डाक्टर साहब उनके साथ चल दिये। वहाँ एक जगह आपने बहुत से एस्किमो जाति के आदमियों को देखा। खाने का सामान भी बहुत सा आपको मिल गया। बस आपने ठेठ उत्तरी ध्रुव तक जाने की ठान दी। और, गये भी और लौट भी आये। पर पीरी के लिए यह काम इतना सहज न था। उन्हें उत्तरी ध्रुव तक भेजने के लिए अमेरिकावालों ने एक सभा बनाई है। उसने हज़ारों रुपये एकत्र करके पीरी की मदद की है। "रूज़वेल्ट" नाम का जहाज़ भी उसी सभा का है। आज कोई ४०० वर्ष से लोग उत्तरी ध्रुव तक पहुँचने की कोशिश कर रहे हैं। सब मिला कर २१ आदमी ध्रुव की तरफ़ आज तक गये हैं। कोई कुछ अधिक दूर तक गया, कोई कुछ कम। इन्हीं आदमियों में से पीरी भी एक हैं। आप इसके पहले दो दफ़े ध्रुव की ओर जा चुके हैं। पिछली दफ़े आप ८७ अक्षांश तक पहुँच गये थे। वहाँ से उत्तरी ध्रुव सिर्फ़ ३ अक्षांश दूर था। यहाँ तक इनके पहले और कोई नहीं पहुँचा था। इससे उन्होंने एक दफ़े और कोशिश कर देखना चाहा। उन्होंने कहा, संभव है, इस दफ़े बाक़ी के ३ अंश भी तै हो जायँ। कमांडर पीरी उत्तरी ध्रुव के आस पास के टापुओं में बहुत समय तक घूमे हैं। उनका तजरिबा कोई २३ वर्ष का है।

६ जुलाई १९०८ को पीरी न्यूयार्क से रवाना हुए। नोवा स्कोटिया में ब्रेटन नाम का जो अन्तरीप है उसके पास सिडनी नाम के बन्दरगाह में १७ जुलाई को उनका जहाज़ पहुँचा। वहाँ से न्यूफौंडलैंड के किनारे किनारे चक्कर लगाते हुए वे डेविस नाम के मुहाने में पहुँचे। वहाँ से सीधे उत्तर की ओर जाकर वे बेफिन की खाड़ी में दाख़िल हुए। वहाँ से चल कर ग्रीनलैंड टापू के यार्क अन्तरीप के पास उन्होंने जहाज़ का लंगर डाला। १ अगस्त को वे वहाँ से आगे बढ़े। समुद्र में जमे हुए बर्फ़ के टुकड़े इधर उधर बह रहे थे। बड़ी कठिनता से उन टुकड़ों को बचाते हुए उन्हें अपना जहाज़ आगे की ओर चलाना पड़ा। धीरे धीरे वे ग्रांट लैंड में पहुँचे। वहाँ शेरिडन नामक अन्तरीप में उन्होंने अपना जहाज़ ठहराया। १ सितम्बर को वे वहाँ पहुँचे। अन्तरीप के पास तो वे पहुँच गये, पर किनारे पर जहाज़ लगाने में उन्हें बड़ी बड़ी आफ़तें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झेलना पड़ीं। जाड़े शुरू हो गये थे। बर्फ़ की वर्षा हो रही थी। समुद्र जम चला था। इस दशा में जहाज़ को किनारे ले जाना असाध्य नहीं तो दुःसाध्य ज़रूर था। हवा भी बड़े ज़ोर की चलने लगी थी। अगर एक मील समुद्र जहाज़ चलाने लायक़ था तो दो मील जम गया था। ख़ैर, किसी तरह राम राम करके ५ सितम्बर को जहाज़ किनारे लग गया।

वहाँ जाड़ों में रहने के लिए एक छोटा सा घर लकड़ी के तख़्तों का बनाया गया। खाने पीने का सब सामान उसी में रक्खा गया। फिर यह ठहरी कि शेरीडन अन्तरीप से लेकर कोलंबिया अन्तरीप तक जगह जगह पर खाने पीने की सामग्री रख आई जाय! इसके लिए बहुत सी बे-पहिये की स्लेज नामक गाड़ियाँ तैयार की गईं। उनमें कुत्ते जोते गये। सामान लादा गया। और १५ सितम्बर से ५ नवम्बर तक वह सब सामान ढोकर थोड़ी थोड़ी दूर पर बनाये गये झोपड़ों में रखा गया। यह इस लिए किया गया जिसमें लौटते वक्त खाने पीने का काफ़ी सामान रास्ते में तैयार मिले। तब तक शिकार भी ख़ूब खेला गया। कितने ही रीछ, ख़रगोश और वालरस नाम के दरियाई घोड़े मारे गये। वैज्ञानिक जाँच भी उस प्रदेश की की गई।

फ़रवरी में "रूज़वेल्ट" जहाज़ वहीं पर छोड़ दिया गया। जितने लोग पीरी के साथ थे तीन टुकड़ियों में बाँट दिये गये। सबके लिए अलग अलग स्लेज गाड़ियाँ तैयार हुईं। ये तीनों टुकड़ियाँ १५, २१, और २२ फ़रवरी को अलग अलग तीन आदमियों की अध्यक्षता में उत्तरी ध्रुव के लिए रवाना हुईं। एक के अध्यक्ष हुए कप्तान बार्टलेट, दूसरी के अध्यापक मारटिन, तीसरी के कमांडर पीरी। सब मिला कर इस चढ़ाई में ७ गोरे और ५९ एस्किमो जाति के बर्फ़िस्तानी आदमी थे। स्लेज गाड़ियों की संख्या २३ थी और कुत्तों की १४०।

कोलंबिया अन्तरीप में तीनों टुकड़ियाँ एकत्र हुईं। कुत्तों को विश्राम दिया गया। साथ की गाड़ियों की मरम्मत की गई। खाने पीने का सामान फिर से सँभाला गया। २७ फ़रवरी तक यह सब होता रहा। बार्टलेट साहब आगे बढ़े। वे बहुत दूर निकल गये। उनके पीछे दूसरी टुकड़ीवालों को बर्फ़ ने बहुत सताया। ज़ोर की हवा ने बर्फ़ के टुकड़ों को तोड़ फोड़ डाला। समुद्र खुल गया। उस पर जो बर्फ़ जमा हुआ था वह बह गया। अब वह पार कैसे किया जाय? २ गाड़ियाँ यहाँ पर टूट गईं। फिर आदमी पीछे भेजे गये। वे कोलंबिया अन्तरीप से दो और गाड़ियाँ ले गये। चौथे दिन खुले समुद्र को किसी तरह पार करके पिछली दोनों टुकड़ियों ने बार्टलेटवाली टुकड़ी को जा पकड़ा। जाड़ों के बाद ५ मार्च को सूर्य्य के पहले पहल दर्शन हुए। ११ मार्च को फिर कूच हुआ। यहाँ से सिर्फ़ १६ आदमी, १२ गाड़ियाँ और १०० कुत्ते पीरी ने साथ रक्खे। बाक़ी के कुछ वहीं रहे, कुछ लौटा दिये गये। दो तीन गोरे भी आगे न बढ़ सके। एक का पैर सूझ गया। एक रास्ताही भूल गया। इससे वे पीछे पड़े रह गये। मारटिन और बार्टलेट ने बहुत दूर पीरी का साथ दिया। परन्तु खाने पीने का सामान कम रह जाने से मारटिन को भी पीछे ही पड़ा रह जाना पड़ा। रहे बार्टलेट। सो उनसे पीरी ने कहा, आप क्यों उत्तरी ध्रुव तक जाने का कष्ट उठावेंगे। मैंहीं अमेरिका की तरफ़ से वहाँ तक जाने का बीड़ा उठा आया हूँ। सो अब मुझेही जाने दीजिए।

कमाँडर पीरी बड़ी मुस्तैदी और बहादुरी से आगे बढ़ने लगे। किसी दिन वे २० मील चलते थे, किसी दिन २५ मील। मुसीबतों का तो कुछ ठिकानाही न था। मारे जाड़ों के बर्फ़िस्तानी एस्किमो लोगों तक के नाकों दम हो गया। अँगुलियाँ सूज गईं। चेहरों की बुरी दशा हो गई। पीरी के क्लेशों की तो कुछ पूछिये ही नहीं। जहाँ ये लोग विश्राम के लिए ठहरते थे वहीं पर कभी कभी बर्फ़ फटकर खुला समुद्र निकल आता था और ये लोग डूबने से बाल बाल बच जाते थे। चलते चलते कमांडर पीरी ८८ अक्षांश तक जा पहुँचे। अब उन्होंने सोना और आराम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना बहुत कम कर दिया। दौड़नेहीं की उन्होंने धुन बाँधी। ज़रा आराम करना और फिर दौड़ लगाना। चौबीसवें पड़ाव पर पीरी ने जो यंत्र से दूरी जाँची तो मालूम हुआ कि वे लोग अक्षांश ८९ कला २५ पर पहुँच गये हैं। अब वे बारह बारह घंटे में चालीस चालीस मील चलने लगे। छब्बीसवें पड़ाव पर वे अक्षांश ८९ कला ५७ पर जा पहुँचे। यहाँ से उत्तरी ध्रुव केवल ३ कला अर्थात् ३ मील से कुछ अधिक दूर था। बस फिर क्या था। फिर कूच किया और वह तीन मील का सफ़र भी तै कर डाला। ठीक उत्तरी ध्रुव पर जाकर ५ एप्रिल १९०९ को पीरी ने उसे अपने पैरों के स्पर्श से पुनीत किया।

२६ घंटे तक पीरी उत्तरी ध्रुव की जाँच करते रहे। वहाँ से ५ मील पर बर्फ़ के टूट जाने से समुद्र निकल आया था। उसकी गहराई नापने की आपने कोशिश की। पर थाह न मिली। इस नाप जोख में नापने का तार ही टूट गया।

अब पीरी ने बड़ी फुर्ती से लौटने की ठानी। लौटते वक्त उन्होंने अपनी रफ़्तार और भी बढ़ा दी। जितनी दूरी को उन्होंने जाते समय २६ पड़ाव में तै किया था उतनी को लौटती बार सिर्फ़ १५ पड़ाव में तै किया। इस प्रकार दौड़ने में साँडनी सवार को भी मात करके कमांडर साहब २३ एप्रिल को कोलंबिया अन्तरीप तक पहुँच गये। दो कूच में वे अपने जहाज़ रूज़वेल्ट के पास आ गये और उसे सुरक्षित पाया। २ महीने तक वहीं रह कर उन्होंने कितनेही प्रकार की वैज्ञानिक जाँच की। इस बीच में जो सामग्री मार्ग के पड़ावों में रह गई थी वह भी वापस आ गई। १८ जुलाई १९०९ को वहाँ से कूच हुआ। ५ दिसम्बर को वे लबराडर में पहुँच गये। वहीं से आपने तार दिया :—"उत्तरी ध्रुव पर मैं अमेरिका का झंडा गाड़ आया"।

नक़ली क़िला।

दुर्ग-द्वारस्थित-पुरुष जो दीखता गम्भीर है,
धीर झाड़ा-वंश का वह कुम्भ नामक वीर है।
श्रवण कर उसका चरित मन में प्रमोद बढ़ाइए,
पूर्वजों के पूज्य भावों की बड़ाई गाइए ॥१॥
आज भी चित्तौर का सुन नाम कुछ जादू भरा—
चमक जाती चञ्चला सी चित्त में करके त्वरा।
जिस समय लाखा नृपति सिंहासनस्थित थे वहाँ,
उस समय की यह विकट घटना प्रकट देखो यहाँ ॥२॥
एक बार अमर्षपूर्वक तप्त हो कर द्वेष से,—
प्रण किया ऐसा उन्होंने एक हेतु विशेष से—
"दुर्ग बूंदी का स्वयं तोड़े बिना हीं अब कहीं—
ग्रहण जो मैं अन्न या जल करूँ तो क्षत्रिय नहीं" ॥३॥
कर दिया प्रण तो उन्होंने क्रोध में ऐसा कड़ा—
किन्तु बूंदी-दुर्ग को था तोड़ना दुष्कर बड़ा।
इसलिए उनके शुभैषी सचिव चिन्ता में पड़े,
रह गये चित्रस्थ से वे चकित ज्यों के त्यों खड़े ॥४॥
सोच एक उपाय फिर वे निज विवेक-विचार से,
विनय राना से लगे करने अनेक प्रकार से।
देख सकते अशुभ स्वामी का भला सेवक कभी?
हों न हों कृतकार्य तो भी यत्न करते हैं सभी ॥५॥
"वीर-वर्योचित हुआ यह प्रण यदपि श्रीमान का,
काम है यह योग्य ही श्रीराम की सन्तान का।
वैर-शुद्धि किये बिना वर वीर रह सकते नहीं,
स्वाभिमानी जन कभी अपमान सह सकते नहीं ॥६॥
"दुर्ग बूंदी का यदपि हम को प्रथम है तोड़ना,
किन्तु कैसे हो सकेगा अन्न-जल का छोड़ना?
खान-पान बिना किसी के प्राण रह सकते नहीं,
प्राण जाने पर भला प्रण पूर्ण हो सकता कहीं?॥७॥
"प्रेरणा करती प्रकृति जिस कार्य्य के व्यापार में,
त्राण हो सकता नहीं उसके बिना संसार में।
नित्य-कृत्य न छोड़कर आज्ञा हमें दीजे अतः,
भृत्य ही हैं किसलिए जो श्रम करे स्वामी स्वतः?॥८॥
"इष्ट-सिद्धि कहाँ रही फिर जब न साधन ही रहा?
कार्य्य करना भूप का आदेश देना ही कहा।
हो गया पूरा उसी क्षण आपका यह प्रण नया,
कह दिया जो सज्जनों ने जान लो वह हो गया ॥९॥
"हो प्रथम प्रस्तुत हमें चलना यहाँ से दूर है,
पहुँच कर बूँदी पुनः करना समर भर-पूर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नक़ली क़िला।

मातृ-भूमि की मूर्त्ति भी मातृ-भूमि सम मान।
धन्य वीर-वर कुम्भ ने रक्खा उसका मान॥

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब कहीं मौक़ा क़िले के तोड़ने का आयगा,
काम क्या तब तक भला भोजन बिना चल जायगा? १०
"दिन लगेंगे क्या न कुछ भी इस कठिनतर काम में?
कौन जाने काल कितना नष्ट हो संग्राम में।
तोड़ने देंगे हमें क्या दुर्ग शत्रु बिना लड़े?
देख सकता कौन अपना सर्वनाश खड़े खड़े? ॥११॥
"अस्तु, कृत्रिम दुर्ग तब तक तोड़ बूँदी का यहीं,
कीजिए निज नियम-रक्षा, छोड़िए भोजन नहीं।
देह-रक्षा योग्य है निज इष्ट-साधन के लिये,
हैं असम्भव कार्य्य सब तनु की बिना रक्षा किये॥१२॥
"दुर्ग को जो तोड़ने का आपने प्रण है किया,
हो सकेगी क्या कभी तनु के बिना उसकी क्रिया?
इसलिए तब तक उचित है नियम-पालन-विधि यही,
तनु रहे, साधन सफल हो, विज्ञता बस है वही॥१३॥
"अन्न-जल के छोड़ने की आपकी सुनकर कथा,
तज न देंगे अन्न-जल क्या अन्य जन भी सर्वथा?
यह महान अनिष्ट होगा, जानिए निश्चय इसे,
त्याग दें जो आप तो फिर ग्राह्य हो भोजन किसे?"१४
इस तरह समझा बुझा कर मन्त्रियों ने भूप को,
तोड़ना निश्चित किया उस दुर्ग के प्रतिरूप को!
अस्तु, बूँदी-दुर्ग कृत्रिम शीघ्र बनवाया गया,
मच गया चित्तौर में तब एक कौतूहल नया॥१५॥
उस समय बूँदी-निवासी भृत्य राना का यही,
था गया मृगयार्थ वन में वीर कुम्भ व्रताग्रही।
मार कर मृग आरहा था जब नगर को यह कृती,
देख इसको भी पड़ी उस दुर्ग की वह प्रतिकृती॥१६॥
तब कुतूहलवश लगा वह पूछने कारण सही,
किन्तु उसके जानने पर पूर्व सी न दशा रही।
हो गया गम्भीर मुख, सम्पूर्ण आतुरता गई,
भृकुटि-कुञ्चित भाल पर प्रकटी प्रभा तेजोमयी॥१७॥
वीर कुम्भ न सह सका यह मातृ-भूमि-तिरस्क्रिया,
क्षत्रियोचित धर्म्म ने उसको विमोहित कर दिया।
यदपि कृत्रिम, जन्म-जननी भूमि ही तो थी अहो!
स्वाभिमानी जन उसे फिर भूलता कैसे कहो?॥१८॥
त्याग पाद-त्राण, रख मारे हुए मृग को वहीं,
सुध रही उस वीर को उस काल अपनी भी नहीं।
वन्दना उस दुर्ग की करने लगा वह भाव से,
शीश पर उसने वहाँ की रज चढ़ाई चाव से॥१९॥
धार शोणित की प्रवर्द्धित देह में होने लगी,
बीज वियुद्वेग से वीरत्व का बोने लगी।
मातृ-भूमि-स्नेह-जल निश्चल हृदय धोने लगा,
मान मन को मत्त करके मृत्यु-भय खोने लगा॥२०॥
यदपि सर्व शरीर उसका जल रहा था त्वेष से,
किन्तु मौन न रह सका वह भक्ति के उन्मेष से।
उस समय उद्गार सहसा जो निकल उसके पड़े,
अर्थ-पूरित रत्न हैं वे शुचि सुवर्णों में जड़े॥२१॥
"पुष्ट हो जिसके अलौकिक अन्न-नीर-समीर से,
मैं समर्थ हुआ सभी विध रह निरोग शरीर से।
यदपि कृत्रिम रूप में वह मातृ-भूमि समक्ष है,
किन्तु लेना योग्य क्या उसका न मुझको पक्ष है॥२२॥
"जन्मदात्री! धात्रि! तुझ से उऋण अब होना मुझे,
कौन मेरे प्राण रहते देख सकता है तुझे?
मैं रहूँ चाहे जहाँ, हूँ किन्तु तेरा ही सदा,
फिर भला कैसे न रक्खूँ ध्यान तेरा सर्वदा?"॥२३॥
जानुओं को टेक तब उस प्रेम अद्भुत में पगा,
देव-सम उस दुर्ग की रक्षा वहाँ करने लगा।
देख कर उस काल उसको जान पड़ता था यही—
मूर्त्तिमान महत्त्व से शोभित हुई मानों मही॥२४॥
वध किया मृग पास रक्खे धनुष धारे धीर ज्यों,
दुर्ग के द्वारे सजग शोभित हुआ वह वीर यों—
लौट कर आखेट से निज मान-मद में मोहता
गिरि-गुहा-द्वारस्थ ज्यों निर्भय मृगाधिप सोहता॥२५॥
वीर कुम्भ इसी तरह निश्चल वहाँ बैठा रहा,
शुद्ध साधन-सिद्धि की सम्प्राप्ति में पैठा रहा।
तब प्रतिज्ञा पालने को शस्त्र लेकर हाथ में,
आगये राना वहाँ कुछ सैनिकों के साथ में॥२६॥
देख कुम्भ उन्हें धनुष पर बाण को सन्धान के,
हो गया प्रस्तुत सभी विध युद्ध-अवसर जान के।
उस समय उसकी रुचिरता देखनेही योग्य थी,
शील-युत हठ-पूर्ण थिरता देखने ही योग्य थी॥२७॥
दुर्ग के नाशार्थ ज्यों ज्यों वे निकट आने लगे,
भाव त्यों त्यों कुम्भ के अत्युग्रता पाने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रोध से उसके बदन पर स्वेद-जल बहने लगा ;
रोक कर उसको अतः वह यों वचन कहने लगा—२८
"सावधान; यहाँ न आना, दूर ही रहना वहीं ;
देखना, निज बाण मुझको छोड़ना न पड़े कहीं।
भृत्य होने से तुम्हारा मैं जताने को रहा ,
अन्यथा कब का यहाँ शोणित न दिखलाता बहा॥२९॥
"प्राण बेचे हैं तुम्हें, बेचा न मैंने मान है ;
धर्म्म के सम्बन्ध में नृप और रङ्क समान है।
अनुज भी अवहेलना करने तुम्हारी जो चले ,
क्षोभ से तो क्या तुम्हारा उर न उस पर भी जले ? ३०
"योग्य क्या सीसोदियों को इस तरह प्रण पालना ?
है भला क्या सत्य का संहार यों कर डालना ?
सरल इससे तो यही थी साध लेनी साधना—
तोड़ लेते चित्त ही में दुर्ग बूंदी का बना ॥३१॥
"अन्त में फिर मैं यही कहता तुम्हें प्रभु जान के ,
लौट जाओ तुम यहाँ से बात मेरी मान के।
अन्यथा फिर मैं न जानूं, दोष मत देना मुझे ;
प्राण-नाशक बाण मेरे हैं विषम विष में बुझे" ॥३२॥
यों वचन सुन कुम्भ के विस्मित हुए राना बड़े ;
बढ़ सके आगे न, सहसा रह गये रुक कर खड़े।
ग्लानि, लज्जा, क्रोध आदिक भाव बहु मन में जगे ;
किन्तु फिर इस भाँति वे उत्तर उसे देने लगे—॥३३॥
"वीर कुम्भ ! विचार ऊँचे हैं तुम्हारे सर्वथा ;
किन्तु दोषारोप अब मुझ पर तुम्हारा है वृथा।
वीर बूँदी के स्वयं मौजूद हो जब तुम यहाँ—
फिर कहो प्रण पालना झूँठा रहा मेरा कहाँ ?" ॥३४॥
क्रुद्ध हो तब कुम्भ ने शर से उन्हें उत्तर दिया ;
किन्तु राना ने उसे झट ढाल पर ही ले लिया।
फिर यहाँ कुछ देर को पूरी लड़ाई मच गई ;
वध किये उस वीर ने मरते हुए भी रिपु कई ॥३५॥
उष्ण-शोणित-धार से धरणी वहाँ की धो गई ;
मृत्यु से उस वीर की कृतकृत्य बूँदी हो गई।
कुम्भ ने कर्तव्य कर प्रस्थान सुरपुर को किया ;
और अपनी कीर्ति से धवलित धरा को कर दिया॥३६॥

मैथिलीशरण गुप्त।

अमेरिका में हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों की जीवन-चर्य्या।

अमेरिका के संयुक्त राज्यों के पश्चिम, पैसिफ़िक महासागर के किनारे, तीन रियासतें हैं—वाशिंगटन, ओरीगन और कैलीफ़ोरनिया। इन तीनों रियासतों के विश्वविद्यालयों में हिन्दुस्तानी छात्र पाये जाते हैं। सबसे पहले इस तरफ़ आनेवाले हिन्दू विद्यार्थियों के पढ़ने का सुभीता ओरीगन रियासत के कृषि-कालेज में हुआ था। किन्तु कारभैलिस नगर, जहाँ पर कि यह कालेज है, बहुत छोटी जगह है। इस कारण उन छात्रों को, जिन्हें अपना उदर-पालन ख़ुद रुपया पैदा करके करना होता है, यहाँ का रहना लाभदायक न हुआ। अतएव कुछ विद्यार्थी कैलीफ़ोर्निया के विश्वविद्यालय में गये। यह विद्यालय सानफ़ानसिसको (San Fransisco) के पास बरकले (Berkely) नगर में है। यह स्थान बहुत बड़ा है; यहाँ के मनुष्य धनाढ्य हैं; यहाँ का विश्वविद्यालय भी उत्तम श्रेणी का है। बस यहीं पर भारत के दीन छात्रों को आश्रय मिला। पाँच वर्ष हुए यहाँ केवल एक या दो भारतीय युवक थे। किन्तु अब सदा ही १½ दर्जन के लगभग रहते हैं।

इसके सिवा कुछ विद्यार्थियों ने वाशिंगटन के विश्वविद्यालय में भी उदर-पूर्ति का प्रबन्ध करके शिक्षा प्राप्त करने की तजवीज़ कर ली है। यह विश्व-विद्यालय सियेटल शहर में है। सियेटल की आबादी ३ लाख की होने के कारण यहाँ पर काम मिलने की अधिक सुगमता हुई। दोही वर्ष में यहाँ बहुत से विद्यार्थी एकत्र हो गये। अधिकतर इनमें से ऐसे हैं जो भारतवर्ष से पहले भैनकुभर (Vancouver) या विक्टोरिया बी० सी० (Victoria B. C.) में उतरे थे। पर थोड़े ऐसे भी हैं जो अन्य विश्व-विद्यालयों से चले आये हैं। क्योंकि इस देश में कभी कभी विद्यार्थी लोग एक विश्व-विद्यालय से दूसरे में चले जाया करते हैं। कारण यह

सरस्वती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमेरिका में भारतवर्ष के विद्यार्थी।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि अन्य स्थानों में यदि द्रव्य-उपार्जन करने का अच्छा सुभीता होता है तो उसकी ख़बर शीघ्र ही मित्रों को कर दी जाती है। क्योंकि निज बाहुबल से आजीविका प्राप्त करके पढ़ने में जो कष्ट होता है वह उनको अच्छे प्रकार ज्ञात होता है। दूसरा यह कि अमेरिका में आये हुए सभी भारतीय छात्र पूर्ण देश-भक्त हैं। उनको यह भली भाँति ज्ञात है कि यदि उनके देश-बन्धुओं को विद्योपार्जन में सुगमता हो तो वह देशोन्नति की साधक होगी।

यहाँ पर स्वदेश से सहायता न पानेवाले युवा विद्यार्थी को अकेले रहकर जो जीवन-संग्राम करना पड़ता है उसकी भीषणता दस पाँच के समूह में रहने से कम हो जाती है। जब कोई भारतीय युवक एक स्थान से दूसरे ऐसे स्थान को जाता है, जहाँ पर उसके देश-बन्धु वर्तमान हों, तो उसके पास पैसे की कमी रहने पर भी उसे विशेष कष्ट नहीं होता। यों तो अमेरिका जैसे देश में काल-क्षेप करना योग्य और चतुर मनुष्य के लिए कठिन नहीं, तथापि मित्रों के साथ रहने पर कितनेही ख़र्च कम हो जाते हैं।

हिन्दू छात्र अपने देश-बन्धु से मिलने के बड़े इच्छुक रहते हैं। वे इस बात की परवा नहीं करते कि अमुक पुरुष बङ्गाली है, या पञ्जाबी, या महाराष्ट्र या मध्यदेशी। वे प्रान्तीय भेदों को भूल जाते हैं। उनके लिए सभी भारतवासी स्वदेशवासी हैं, प्रवासी नहीं। सबसे बड़ा हर्ष भारत-भक्त को उस समय होता है जब वह हिन्दुस्तान के भिन्न भिन्न प्रान्तों के युवकों को सभा में बैठे हुए हिन्दी भाषा में वार्तालाप करते सुनता है। हम सभी को हिन्दी भाषा प्रिय है, और हमारा यह भी नियम है कि आपस में अँगरेज़ी की अपेक्षा हिन्दी ही में भाषण करते हैं। इससे सभी प्रान्तवालों को हिन्दी बोलचाल अवश्य सीखना पड़ता है। पहले पहल अभ्यास कम होने से किसी किसी की हिन्दी बातचीत बड़ी मनोरञ्जक होती है। किन्तु थोड़े ही समय में यह कठिनता दूर हो जाती है।

प्रेम बढ़ जाने से हिन्दू युवक सारे प्रान्तीय भेदों को भूलकर परस्पर सहायता करना अपना मुख्य धर्म्म समझने लगता है। जिस स्थान में एक हिन्दू काम करता हो वहाँ पर यदि कोई काम ख़ाली हो तो वह अवश्य ही उस स्थान में अपने देश भाई का प्रवेश कराने की चेष्टा करता है।

यहाँ पर विद्यार्थियों को तीन महीने के लिए ग्रीष्मावकाश मिलता है। यही समय आजीविका प्राप्त करनेवालों के लिए सुभीते का है। यही ३ महीने की कमाई उसकी फ़ीस और भोजन-वस्त्र आदि के व्यय के लिए काम आती है। ग्रीष्म ऋतु के दिन द्रव्यवान् विद्यार्थी के लिए तो आराम और आनन्द के दिन हैं, किन्तु विद्याभिलाषी दरिद्र युवक कदाचित् कैलीफ़ोरनिया की कड़ाकेदार गर्म्मी में खेतों में फलफूल तोड़ते नज़र आता है। कोई किसी कारख़ाने में, कोई किसी बाग़ में, कोई किसी होटल में काम करता है। कोई और ही किसी क़िस्म का काम करके रुपया कमाता है। कोई भी काम क्यों न हो वह करने से नहीं हिचकता। क्योंकि एक तो विदेशी होने, दूसरे रङ्ग का गोरा न होने के कारण वह इस योग्य नहीं समझा जाता कि किसी अच्छे काम पर नियत किया जाय। ख़ैर एक बात यह भी है कि इस देश में काम करनेवाला, चाहे वह जो काम करे, घृणा से नहीं देखा जाता। इसीसे वह सब तरह के काम ख़ुशी से करता है। किसी तरह अपना कार्य्यसिद्ध करना ही भारतीय युवक का उद्देश रहता है। अमेरिका पहुँचने पर कुछ काल तक तो वह यहाँ के विचित्र जीवन को देख कर घबरा सा जाता है। किन्तु थोड़े ही काल में उसकी घबराहट जाती रहती है।

वर्ष में ९ महीने कालेज में पढ़ना पड़ता है। उस समय द्रव्य-हीन विद्यार्थी अपना पालन आस पास के घरों में दो चार घंटे रोज़ काम करके किया करते हैं। प्रत्येक विश्व-विद्यालय के साथ एक समाज रहता है। वह विद्यार्थियों को काम दिलाने की चेष्टा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है। कालेज के आस पास रहनेवाले गृहस्थ, कालेज के अध्यापक तथा विद्यार्थियों के क्लब, घर-गृहस्थी सम्बन्धी कामों में विद्यार्थियों की सहायता करते हैं। आवश्यकता पड़ने पर वे पूर्वोक्त समाज को टेलीफ़ोन कर देते हैं और वहाँ से काम चाहनेवाला विद्यार्थी भेज दिया जाता है। काम अधिकतर ऐसा होता है जिससे कि कालेज में जानेवाले का समय नष्ट न हो। विद्यार्थी बहुत करके ख़ानसामा का काम, रकाबी धोने का काम, या झाड़ू देने का काम पाते हैं। कालेज का समय सुबह आठ बजे से सन्ध्या के पाँच बजे तक होता है। दिन में १२ से १ बजे तक भोजन करने के लिए छुट्टी मिलती है। जो विद्यार्थी ख़ानसामा का काम करता है वह सुबह, भोजन के समय, जो सात से आठ तक होता है, काम करता है और आठ बजने से २—४ मिनट पहले कालेज चला जाता है। फिर दोपहर को १२ से १ तक, और सन्ध्या को ६ से ७ बजे तक काम करता है। दोनों वक्त उसे वहीं भोजन मिलता है। और प्रकार के काम करनेवाले भी अपने सुभीते का काम लेकर गुज़र करते हैं।

कालेज में सभी के लिए ८ से ५ बजे तक रहना ज़रूरी नहीं है। किसी किसी की पढ़ाई ऐसी होती है कि उसे ३ घंटे सुबह और २ घंटे मध्याह्न में ही जाना पड़ता है। किसी किसी दिन कालेज जाना ही नहीं पड़ता। कालेज में कितने घंटे पढ़ना चाहिए, यह विद्यार्थी की इच्छा पर है। बात यह है कि एक सप्ताह में कुछ नियत घन्टे पढ़ना चाहिए। परन्तु एक नियम की पाबन्दी करना पड़ती है कि कम से कम इतने घंटे और अधिक से अधिक इतने घंटे हफ़्ते में ज़रूर पढ़ना चाहिए। जो कम घंटे लेते हैं उनको डिगरी प्राप्त करने के आवश्यक विषयों को पूरा करने में विलम्ब हो जाता है। अधिकतर विद्यार्थी नौकरी के तौर पर ३ घंटे दिन में ही काम करते हैं। चार घंटे काम करने से भोजन और रहने की जगह भी मिल जाती है। यदि कुछ और द्रव्य प्राप्त करना हो तो शनिवार को अधिक काम कर सकते हैं। उस दिन कालेज बन्द रहता है और लोग अपने घरों की सफ़ाई के लिए विद्यार्थियों की सहायता माँगते हैं। कैलीफ़ोर्निया तथा वाशिंगटन में फ़ी घंटा २५ सैन्ट के हिसाब से मिलता है। यदि आठ घंटे का काम मिल जाय तो २ डालर (६ रुपया के क़रीब) कमा लिया जा सकता है। बहुत से विद्यार्थी, जिनकी आर्थिक दशा बहुत ख़राब नहीं होती, केवल शनिवार को ही काम किया करते हैं। कभी कभी किसी को बँधा हुआ काम मिल जाता है और कभी कुछ भी नहीं मिलता। अमेरिका में कमाई तो अच्छी है, पर काम भी ख़ूब लिया जाता है।

इस देश में सभी का स्वभाव स्वतंत्र होता है। यदि विद्यार्थी का, या काम करने वाले और किसी का, अपमान हो तो वह काम पर लात मार देता है। हिन्दू छात्रों में भी यह भाव कुछ कम नहीं पाया जाता। तीन घंटे का इक़रार हो जाने पर वे भी एक मिनट ज़्यादा काम नहीं करते।

अमेरिका में मकानों का किराया बहुत है। भारत में तो इस बात की बहुधा परवा ही नहीं रहती कि किसी नवीन स्थान में जाकर रहने का क्या बन्दोबस्त होगा। पर इस देश में सबसे पहले इसी बात को सोचना होता है। इकले दुकले मनुष्य यहाँ पर एक या दो कमरे किराये पर लेकर रहते हैं। शहरों में बहुत ही कम मनुष्यों के निज के मकान होते हैं। घर-गृहस्थी वाले लोग एक मकान किराये पर लेकर अपने रहने के कमरों को छोड़कर, बाक़ी कमरों को किराये पर दे देते हैं। हर एक गली में ऐसे मकान पाये जाते हैं जिनमें कि कमरे किराये पर मिलते हैं। किसी किसी घर में सिर्फ़ कमरे ही किराये पर दिये जाते हैं, पर किसी किसी में कमरों के साथ खाना भी शामिल किया जाता है। ऐसे मनुष्य इस देश में बहुत देखने में आते हैं जो किराये के कमरोंही में जीवन बिताते हैं। खाने के लिए ऐसे लोग बाज़ार के भोजनालयों में जाते हैं। इनके सिवा एक और प्रकार के कमरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और
ों की
ंगठन
यदि
रुपया
ुत से
नहीं
हैं।
ता है
कमाई
है।

ा है।
किसी
ा है।
पाया
ा एक

है।
नहीं
ने का
पहले
टुकले
लिकर
निज
ा एक
ों को
हैं।
जिनमें
ी घर
, पर
ामिल
देखने
बताते
ालयों
कमरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो हज़ार वर्ष पूर्व की भारतवर्षीया नारी।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किराये पर उठाये जाते हैं। इन कमरों में एक कोने पर पानी का नल और एक गैस का चूल्हा भी होता है। इस प्रकार का कमरा लेकर अपना खाना आप ही पकाकर रहने से ख़र्च आधा हो जाता है। बहुत से विद्यार्थी इसी प्रकार के कमरों में रहकर गुज़ारा करते हैं। कमरे अच्छे सजे रहते हैं और गैस या बिजली की रोशनी होती है।

भारतीय विद्यार्थी अक्सर ऐसेही कमरों में रहते हैं। यहाँ दो या तीन छात्र मिल कर बारी बारी से खाना पकाते हैं। खाना पकाने में यहाँ विलम्ब नहीं लगता। गैस की आँच में खाना थोड़े ही समय में तैयार हो जाता है। कभी कभी बहुत से विद्यार्थी पूरा मकान किराये पर लेकर ख़र्च को और भी घटा देते हैं। पूरा मकान किराये पर लेने से स्वतंत्रता अधिक रहती है। भोजन भी इच्छानुसार पकाया जा सकता है।

यहाँ पर सब प्रकार की खाने पीने की सामग्री ख़रीदी जा सकती हैं। भारतवर्ष के लोगों का यह भ्रम मिथ्या है कि अमेरिका में जाकर सभी को मांस खाना होता है। यहाँ पर अधिकांश हिन्दू छात्र मांस नहीं खाते। उनको खाने पीने के सम्बन्ध में कुछ भी कष्ट नहीं होता।

अमेरिका में आकर भारतीय छात्र जो लाभ उठा सकते हैं उसका वर्णन हम इस स्थान में नहीं करना चाहते। उसका ज़िक्र हम किसी दूसरे लेख में करेंगे। पर इतना कहना हम ज़रूरी समझते हैं कि इस देश के समान पृथ्वी पर और कोई देश ऐसा नहीं है जहाँ पर बिना दूसरे की आर्थिक सहायता के विद्योपार्जन करना इतना सम्भव है। यह बात सच है कि काम करना और पढ़ना आसान नहीं। इसमें कष्ट उठाना पड़ता है। यहाँ तक कि कभी कभी आकाशवृत्ति पर भरोसा करनेवाले विद्यार्थियों के जीवन की आशा भी नष्ट हो जाती है। परन्तु जिनको ३५) रुपये माहवार की भी सहायता घर से मिल सकती हो उनका बाक़ी ख़र्च यहाँ चल जा सकता है।

खेद का विषय है, अमेरिका के लग भग सभी प्रान्तों में घूमने पर संयुक्त प्रदेश के सिर्फ़ दोही युवक यहाँ देखने में आये। क्या युक्त-प्रदेश के लोगों को विदेश-यात्रा के लाभों का अब तक ज्ञान नहीं? या वे अपने को सदाही कूपमण्डूक बनाये रहना चाहते हैं? युक्त-प्रदेशवालों को भारत की उन्नति के मैदान में अभी बहुत कुछ खेल खेलना है। यदि युक्त-प्रदेश पीछेही पड़ा रहेगा तो और तो और, हिन्दी भाषा को समग्र भारत की भाषा कोई क्योंकर स्वीकार करेगा?

भोलादत्त पाँड़े
(कारभैलिस, ओरीगन, अमेरिका।)

चित्र-दर्शन।

(१)

दो हज़ार वर्ष पूर्व की भारतवर्षीया नारी।

आज हम एक बड़े महत्त्व का चित्र प्रकाशित करते हैं। यह चित्र एक भारतवर्षीया नारी का है। आज से दो हज़ार वर्ष पूर्व इस देश की स्त्रियाँ कैसे कपड़े और कैसे आभूषण पहनती थीं, यह इस चित्र में दिखलाया गया है। यह चित्र एक मूर्ति की नक़ल है जो बौद्धों की एक बहुत पुरानी इमारत में पाई गई थी।

(२)

हेमलता की बिदा।

आज तक सरस्वती में कितनी हीं कवितायें ऐसी निकली हैं जो चित्रों को देखकर उन पर लिखी गई थीं। आज हम एक ऐसा चित्र प्रकाशित करते हैं जो इस संख्या में अन्यत्र प्रकाशित, पण्डित कामताप्रसादजी गुरु कृत, "दासी रानी" नाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की कविता के दृश्य के अनुरूप अङ्कित किया गया है। चित्रकार का नाम है पण्डित गणेशराम मिश्र। आपका वास्तव्य जबलपुर है। आप चित्रण-कला में बहुत कुशल जान पड़ते हैं। यह चित्र उस दृश्य का है जहाँ बिदा होते समय अपनी बेटी हेमलता और दामाद ब्रजमोहनसिंह को वृद्ध राजा रणधीर सदुपदेश दे रहे हैं।

पुस्तक-परीक्षा।

१—श्रीएडवर्ड-विनोद-। "श्रीजनराज मिश्र जनार्दन पण्डित" कृत। इसमें महाराज सप्तम एडवर्ड, लार्ड कर्ज़न और लार्ड किचनर की जी खोल कर स्तुति की गई है। पुस्तक के आदि में जो ३४ कवित्त हैं उनका अँगरेज़ी अनुवाद भी लिख दिया गया है। इसके बाद जो नौ कवित्त हैं उनमें से प्रत्येक में एक एक रस प्रधान रक्खा गया है। ये कवित्त भी राजराजेश्वर एडवर्ड की प्रशंसा में हैं। इसके आगे भारत सम्राट् के यश, दानशीलता, आतङ्क आदि की महिमा गाई गई है। तदनन्तर कमलाकर कवि कृत राजस्तुति है। इसके बाद ग्रंथकार ने पहले कुछ देवी देवताओं की स्तुति की है। फिर षट् ऋतु का वर्णन किया है। अन्त में कुछ चित्रकविताओं का संग्रह है। यह ग्रंथ भारतवासियों की राजभक्ति का अच्छा नमूना है। ग्रंथ के आदि में महाराज एडवर्ड, लार्ड कर्ज़न और किचनर के चित्र भी दिये गये हैं। जिसका जी चाहे इसे बिना मूल्य, केवल डाकव्यय देकर नरही, लखनऊ के पते पर ग्रंथकर्त्ता से मँगाले।

❀

२—नारी-सुदशा-प्रवर्त्तक—काशीपुर, ज़िला मुरादाबाद, के नायब तहसीलदार लाला बाँकेलाल की अर्धाङ्गिनी श्रीमती बुद्धिमती की बनाई हुई इस पुस्तक के चार भाग हमारे पास आये हैं। पहला और दूसरा भाग आठवीं बार और तीसरा और चौथा भाग सातवीं बार छपा है। पुस्तकों का आकार रायल अठपेजी है। पहले भाग में २४ पृष्ठ, दूसरे में ५६ पृष्ठ, तीसरे में ६२ पृष्ठ और चौथे में ७२ पृष्ठ हैं। चौथे भाग की छपाई कुछ गड़बड़ है; पर अन्य भाग अच्छे छपे हैं। इनकी आवृत्तियों से ही प्रकट है कि ये पुस्तकें कहाँ तक लोगों ने पसन्द की हैं। तीसरे भाग में चिट्ठी लिखने के जो उदाहरण हैं वे न तो पुराने ढंग के हैं और न नये ढंग के। चौथे भाग की कविता में यत्र तत्र दोष रह गये हैं।

❀

३—कन्याज्ञान-प्रदीपिका—भाग १-२-३। श्रीमती यशोदादेवी, मुख्याध्यापिका, कन्यापाठशाला, कर्नलगंज, इलाहाबाद ने इन पुस्तकों की रचना की है। तीनों पुस्तकों पर लिखा नहीं। १ और ३ में बत्तीस बत्तीस पृष्ठ हैं, २ में ७०। छपाई श्रीवेंकटेश्वर प्रेस की है। कागज़ चिकना है। पुस्तकें अच्छी हैं; छोटी छोटी लड़कियों के पढ़ने लायक़ हैं। श्रीमती यशोदादेवी को चाहिए कि इन पुस्तकों के दूसरे और तीसरे भाग का यदि दूसरा संस्करण निकालें तो उनमें वस्तु-पाठ भी रक्खें।

❀

४—भक्तचरितामृत। श्रीयुत शिवशङ्कर भट्ट द्वारा संशोधित। लेखक का नाम मालूम नहीं। इस ५० पृष्ठ की पुस्तक में पन्ना के भक्त हिम्मतदास, उनके पुत्र बाबा दयाराम और उनके पुत्र, पौत्र आदि का संक्षिप्त चरित है। साथही इन भक्तों की कविताओं के नमूने भी हैं। भक्त हिम्मतदास जी की चमत्कारपूर्ण करामातों का वृत्तान्त पढ़कर साधुओं की अलौकिक शक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। हिम्मतदास और दयाराम की कविता प्रासादिक है। डाकख़ाना कौड़िया, ज़िला जबलपुर के पते पर संशोधक महाशय को आध आने का टिकट भेजने से यह पुस्तक मुफ़्त मिलती है।

❀

५—कर्म्मवीर। सम्पादक, पण्डित कृष्णकान्त मालवीय। अभ्युदय प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित। वहीं से प्राप्य। मूल्य ४ आने। साधारण-शिक्षा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निबन्धावली का यह तीसरा अङ्क है। यह बङ्गाल के प्रसिद्ध लेखक श्रीयुत यदुनाथ भट्टाचार्य्य की कालिदास और पञ्चानन नामक दो मनोरञ्जक कहानियों का हिन्दी अनुवाद है। पुस्तक अच्छे कागज पर अच्छे टाइप में छपी है। मनोहर है, सुपाठ्य है, शिक्षा ग्रहण करने योग्य है।

❀

६—श्रीवैश्यवंशविभूषण। वैद्यराज श्रीशिवदयालु साह गुप्त द्वारा रचित और प्रकाशित। इस पुस्तक के तीन भाग हैं। पहले में जातीय, दूसरे में सामाजिक और व्यक्तिगत, तथा तीसरे भाग में आर्थिक सुधार और उन्नतिविषयक लेख हैं। पुस्तक-कर्त्ता ने इसके तैयार करने में कितनेही पण्डितों से सहायता ली है। शुरू में ग्रंथकर्ता का चित्र भी है। पुस्तक में बड़े आकार के दो सौ से अधिक पृष्ठ हैं; अतएव इसका मूल्य ग्यारह आने बहुत कम है। तिस पर भी आप इसे जातीय सभाओं, समाचार-पत्रों और दरिद्र मनुष्यों को मुफ़्त बाँटते हैं। मिलने का पता—पण्डित ज्ञानेन्द्रदत्त शर्मा त्रिपाठी, उपवैद्य श्रीविश्वोपकारक चिकित्सालय, मिश्रिख, ज़िला सीतापुर।

❀

७—मारवाड़ी-कुरीति-विचार। बाबू नारायणदास केजड़ावाल द्वारा रचित और प्रकाशित। मूल्य चार आने। मिलने का पता—हरसुखदास विलासराय की गद्दी, नं० १३७ काटन स्ट्रीट, कलकत्ता। मारवाड़ियों में जो जो दोष और जो जो सामाजिक कुरीतियाँ है उनका इस पुस्तक में संक्षिप्त वर्णन किया गया है। साथ ही साथ कुरीतियों की हानियाँ भी बतलाई गई हैं और उनको दूर करने के लिए अपील भी की गई है। शुरू में परलोक-वासी बाबू बालमुकुन्द गुप्त का चित्र और अन्त में पतित भारत शीर्षक एक कविता भी है। मारवाड़ियों के लिए यह पुस्तक उपयोगी है। पुस्तक में एक दोष भी है। वह यह कि इसमें कहीं कहीं पर अश्लील और कुरुचिपूर्ण बातों का उल्लेख किया गया है। उदाहरणार्थ पृष्ठ ३६ के श्लोक को लीजिए। हमारी समझ में ऐसे श्लोक यदि उद्धृत न किये जाते तो अच्छा होता। पुस्तक की भाषा भी कहीं कहीं बहुत अशुद्ध है।

❀

८—नवजीवन। समाज-संशोधन-सम्बन्धी पाक्षिक पत्र। हर महीने की पहली और पन्द्रहवीं तारीख़ को काशी से निकलता है। सम्पादक भिषगाचार्य कविराज पण्डित केशवदेव शास्त्री हैं। छः महीने का मूल्य एक रुपया। १५ जून से निकलता है। प्रत्येक अङ्क में फुलिसकेप आकार के बारह पृष्ठ रहते हैं। आज २८ अगस्त तक हमारे पास शुरू के केवल दो अङ्क आये हैं। पत्र का उद्देश वैदिकधर्म का प्रतिपादन और समाज-संशोधन है। अतएव इसके प्रायः सभी लेख और समाचार इसी विषय के हैं। इस पत्र के सम्पादक महाशय असवर्ण-विवाह के बड़े पक्षपाती मालूम होते हैं। वे अपना एक नया ही आर्य्य-परिवार गठित करना चाहते हैं। मिलने का पता—मुंशी सिद्धेश्वर, बी० ए०, प्रबन्धकर्त्ता नवजीवन, काशी।

❀

९—हुक्कादोषदर्पणः। बुलन्दशहर-निवासी वैद्यवर पण्डित हेमनिधि शर्म्मा कृत। मूल्य आठ आने। इसका विषय नामही से स्पष्ट है। अनेक प्रकार से हुक्का पीने के दोष इसमें दिखलाये गये हैं। वैद्यक आदि की पुस्तकों से प्रमाण भी दिये गये हैं। प्रमाण संस्कृत में हैं; उनका अर्थ नीचे हिन्दी में। पुस्तक कोई १६ वर्ष हुए छपी थी। उसकी समालोचना की अब भी ज़रूरत समझा गई है।

❀

१०—अलकशतक। बाबू मन्नीलाल स्वर्णकार, नौघड़ा, कानपुर ने इसकी रचना की है। अलकों पर १०१ दोहे हैं। कविता अनूठी है। मूल्य आध आना। एक अलकशतक बाबू हरिश्चन्द्र के कविवचनसुधा में भी निकला था। मालूम नहीं वह किसका बनाया हुआ था।

में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११—प्रश्नोत्तरी-रत्नावली। शङ्कराचार्य्य की प्रसिद्ध प्रश्नोत्तरमणिमाला का यह हिन्दी-पद्य में अनुवाद है। साथ ही संस्कृतमूल भी है। अनुवादक पूर्वोल्लिखित बाबू मन्नीलाल हैं। अनुवाद अच्छा हुआ है। मूल्य आध आना।

❀

१२—जैनहितैषी। यह एक मासिक पत्र है। जैनग्रन्थ-रत्नाकर-कार्य्यालय, बंबई, के प्रबन्ध से निकलता है। वार्षिक मूल्य १॥) है। इतना मूल्य देने से हर साल एक न एक अच्छी पुस्तक उपहार में भी ग्राहकों को दी जाती है। इस पत्र के पाँचवें भाग का दसवाँ अंक हमारे पास समालोचना के लिए आया है। इसमें छोटे साँचे के ३२ पृष्ठ हैं। कई एक लेख इसमें अच्छे हैं। पण्डित आशाधर का जीवनचरित बहुत खोज से लिखा गया है। विशेष करके इसके लेख जैनियोंहीं के काम के हैं; पर औरों का भी इससे मनोरञ्जन हो सकता है।

❀

१३—रामचरितामृत। पण्डित हरिप्रसाद शर्म्मा, हेड मास्टर, विजवाड़ा हाई स्कूल ने इसे लिखा है। १४० पृष्ठ की इस पुस्तक में स्वामी रामतीर्थ का जीवनचरित है। स्वामीजी के लड़कपन, विद्याध्ययन, ज्ञानार्जन और विराग आदि का वृत्तान्त लेखक ने बहुत अच्छी तरह इसमें लिखा है। मूल्य १२ आने।

❀

१४—तीर्थदर्पण-पण्डाअर्पण। पण्डित "दामोदर-प्रसाद—शर्मा—दानत्यागी—कृष्णपुरी—निवासी-मन्त्री—गंगासालिग्राम—पुस्तकालय—मथुरा" द्वारा रचित और प्रकाशित। आजकल तीर्थों में कैसे कैसे दुराचार होते हैं; वहाँ के पण्डे, पुजारी, महन्त आदि कैसे दुश्चरित्र होते हैं; उनको दान देने से क्या क्या हानियाँ होती हैं और वास्तविक तीर्थ कौन कौन से हैं—इन्हीं सब तथा इसी प्रकार की अन्य कितनी ही बातों का इस पुस्तक में वर्णन है। लेखक ने अपने कथन की पुष्टि में बहुत से कवियों, विद्वानों तथा साधारण आदमियों और अख़बारों के प्रमाण भी उद्धृत किये हैं। पुस्तक में बीच बीच में आर्य-समाज और स्वामी दयानन्दजी की प्रशंसा भी की गई है। भाषा दोषपूर्ण है। विषय-विभाग भी ठीक नहीं। मूल्य सरस्वती के ग्राहकों से आठ आने, अन्य लोगों से एक रुपया। मिलने का पता—रविदत्त शर्मा, सीतला पाइसा, मथुरा।

❀

१५—मद्यदोष। पण्डित गणेशप्रसाद शर्मा, सम्पादक भारतसुदशाप्रवर्त्तक, फ़र्रुख़ाबाद, द्वारा लिखित और प्रकाशित। प्रकाशक से एक आने में प्राप्य। इस पुस्तिका में धर्मशास्त्र, वैद्यक और डाक्टरी विद्या के प्रमाण देकर यह दिखलाया गया है कि मद्यपान कैसा हानिकारक है। इसके सिवा यह भी लिखा गया है कि किन किन उपायों के अवलम्बन से मद्यपान की आदत छूट सकती है। मद्यसेवी महाशय यदि इसे एक बार पढ़ने या सुनने की कृपा करें तो बहुत अच्छा हो।

❀

१६—मांसभक्षण-निषेध। इस पुस्तक में मांसभक्षण का निषेध किया गया है। यह दिखलाया गया है कि मांसभक्षण धर्मशास्त्र के विरुद्ध और अत्यन्त हानिकारक है। पुस्तककर्त्ता ने अपने मत की पुष्टि में धर्मशास्त्रों के बहुत से प्रमाण भी उद्धृत किये हैं। इस पुस्तक में लिखी हुई बातों पर मांसाहारियों को विचार करना चाहिए। इसकी रचना विक्टोरिया हाल, उदयपुर, के लाइबरेरियन मुंशी नैनिधराय ने की है। वही चौसठ पृष्ठ की इस पुस्तक को आठ आने में बेचते हैं।

❀

१७—हरिभक्त मनोरञ्जनी। पण्डित गंगाराम तिवारी कृत। इस पुस्तक में आदि से लेकर अन्त तक श्रीकृष्ण जी की लीलाओं का पद्यात्मक वर्णन है। पद्य में विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है। मूल्य ढाई आने। मिलने का पता—शेख रजूमियाँ सूतवाले, चौक, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८—बालिका-विनोद। बालपुर-निवासी पाण्डेय लोचनप्रसाद कृत। मूल्य एक आना। इस पुस्तिका में सब मिलाकर आठ छोटी छोटी कवितायें हैं। कवितायें खड़ी बोली में हैं और प्रायः सभी शिक्षा-प्रद हैं। बालिकायें उन्हें पढ़कर बहुत कुछ सीख सकती हैं और लाभ उठा सकती हैं। कविताओं की भाषा कुछ कठिन है। इसलिए पुस्तककर्त्ता ने कठिन शब्दों के अर्थ नीचे फुटनोट में दे दिये हैं।

❀

१९—श्रीश्रीचैतन्यविजयम्। भविष्य-पुराण से उद्धृत। वृन्दावन-निवासी श्रीकृष्णाचार्य कृत संस्कृत टीका सहित। विषय-नाम ही से प्रकट है। पुस्तक में अनेक अशुद्धियाँ रह गई हैं। प्रूफ़ अच्छी तरह नहीं देखे गये। १७ पृष्ठ की क्षुद्र पुस्तिका का मूल्य दो आने कुछ अधिक मालूम होता है। मिलने का पता—श्रीदेवकीनन्दन-यन्त्रालय, वृन्दावन।

❀

२०—शान्तिसार। लेखक बाबू मुंशीलाल, एम० ए०, गवर्नमेंट-पेंशनर, कालीमाता की गली, गुमटी बाज़ार, लाहौर। पृष्ठ-संख्या ४१। मूल्य डेढ़ आना। ग्रंथकर्त्ता से प्राप्य। इस छोटी सी पुस्तक में सब मिलाकर छः पाठ हैं। इन्हें पढ़कर मनुष्य बहुत कुछ नैतिक शिक्षा प्राप्त कर सकता है। यह पुस्तिका बालक, वृद्ध, सभी के लिए उपयोगी है। क्योंकि इसका विषय बहुत ही उत्तम है। यदि इसकी भाषा भी वैसी ही उत्तम होती तो सोने में सुगन्ध हो जाती।

❀

२१—संस्कृतनिश्रेणिः, प्रथम भागः। इस संस्कृत-प्राइमर की रचना अँगरेज़ी प्राइमरों के ढँग पर की गई है। इसमें सब मिलाकर बीस पाठ हैं। प्रत्येक पाठ में ऊपर कुछ शब्द हैं और नीचे वाक्य। इसे पढ़कर संस्कृत के बहुत से शब्दों और वाक्यों का ज्ञान हो सकता है। इसकी रचना मोतीलाल-पाठ-शाला, बीकानेर, के मुख्याध्यापक पण्डित गणेशदत्त व्यास ने की है। उन्हीं से यह डेढ़ आने में मिल सकती है।

२२—गुप्तरहस्य। बङ्गभाषा के प्रसिद्ध जासूसी उपन्यास-लेखक बाबू प्रियनाथ मुखोपाध्याय ने "गुप्त-कथाव्यक्त" नाम का एक जासूसी क़िस्सा बँगला में लिखा है। यह पुस्तक उसी का अनुवाद है। अनुवादक बाबू राधारमण गुप्त हैं। अनुवाद की भाषा सरल है। जिनका समय मुशकिल से कटता हो वे इसे पढ़कर आध घंटा आराम से बिता सकते हैं। मूल्य दो आने। मिलने का पता—बाबू राधारमण गुप्त, मछरहट्टा, बनारस।

❀

२३—बजरंग विजय-रामायण, सुन्दर काण्ड। साहित्याचार्य्य श्री-स्वामी रामप्यारेनन्द ब्रह्मचारी द्वारा रचित और बाबू शिवप्रसाद राउत, कीटगंज, प्रयाग, द्वारा प्रकाशित। प्रकाशक से आठ आने में प्राप्य। इस रामायण की रचना तुलसीकृत रामायण के ढँग पर की गई है। उसकी तरह इसमें भी चौपाइयाँ हैं; बीच बीच में दोहे, सोरठे, सवैया और कवित्त भी आये हैं। कविता सरल है; कम पढ़े लोग भी उसे समझ सकते हैं। यदि कविता को अधिक सरस बनाने का प्रयत्न किया जाता तो पुस्तक पढ़ने वालों को विशेष पसन्द आती। इसमें तुलसीकृत रामायण की अपेक्षा जो बात अधिक लिखी गई है उसका प्रमाण दे दिया गया है। अर्थात् यह लिख दिया गया है कि वह बात कहाँ से ली गई है या किस ग्रंथ के आधार पर लिखी गई है। शुरू में ग्रंथकर्त्ता का चित्र भी है।

❀

२४—होमपद्धति। इस पुस्तक में यज्ञशाला, वेदी, हवनसामग्री, आदि तैयार करने की विधि के सिवा ऋत्विजों और यज्ञपात्रों के लक्षण और कार्य तथा नाना प्रकार के हवनों का भी वर्णन है। हवन करने की विधि आर्यसमाजियों के मतानुसार लिखी गई है। इसकी रचना देहली के आर्योपदेशक पण्डित गङ्गासहाय शर्मा ने की है। मूल्य तीन आने। मिलने का पता—पण्डित किशोरीलाल शास्त्री बुकसेलर, मेरठ शहर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२५—वेश्यानाटक। चौधरी नवलसिंह ने इस नाम की एक किताब उर्दू में लिखी है। उसी का यह हिन्दी-अनुवाद है। अनुवादक का नाम और मूल्य पुस्तक पर कहीं नहीं लिखा। मेरठ के बुकसेलर पण्डित किशोरीलाल शर्मा ने इसे प्रकाशित किया है। वही इसे बेचते हैं। इस पुस्तक में एक नवयुवक के दुराचार में फँसने और उसके कुफल भोगने का हाल है। लेखक का कथन है कि इसमें लिखा हुआ वृत्तान्त सच्चा है। जो हो, वेश्याभक्तों का अन्तिम परिणाम क्या होता है, यदि यह जानना हो तो इसे अवश्य पढ़िए। यह पुस्तक शिक्षाप्रद होने पर भी नाटक कहलाने के योग्य नहीं। क्योंकि नाटकों में जो गुण होने चाहिए उनमें से एक भी इसमें नहीं।

❁

२६—अक्षरलेखनविधि। तहसीली स्कूल जेवर, ज़िला बुलन्दशहर, के हेड मास्टर पण्डित जगन्नाथप्रसाद शर्मा नागर कृत। इस पुस्तिका में देवनागरी अक्षरों का लिखना सिखाने की विधि बतलाई गई है जो अक्षराभ्यास करनेवाले बालकों के लिए बहुत उपयोगी है। पर केवल चौदह पृष्ठ की पुस्तिका का दो आने मूल्य अधिक मालूम होता है। मिलने का पता—श्रीसरस्वती-भाण्डार, काशी।

❁

२७—पुरुषसूक्त। जबलपुर के वकील पण्डित दुर्गाशङ्कर कृपाशङ्कर मेहता, बी० ए०, एल० एल० बी० ने मालिनीधर्मपताका नामकी एक त्रैमासिक पुस्तकमाला प्रकाशित करने का निश्चय किया है। इसमें धार्मिक ग्रंथ प्रकाशित हुआ करेंगे। इसके पहले अङ्क में पुरुषसूक्त निकला है। इसमें पुरुषसूक्त के मन्त्रों के साथ साथ मालिनी नामकी हिन्दी टीका भी है। टीका की भाषा सरल और परिमार्जित न होने पर भी अच्छी तरह समझ में आ सकती है। इस अङ्क का मूल्य चार आने है। मिलने का पता—चौ[illegible]केशनल बुक् डिपो, जबलपुर।

२८—ब्राह्मी और उसके गुण। पण्डित ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य कृत। इसमें ब्राह्मी के लक्षण, गुण और उससे कई प्रकार की ओषधियों के बनाने की तरकीब तथा उनके सेवन की विधि लिखी हुई है। मूल्य एक आना। मिलने का पता—अमृतधारा, लाहौर।

❁

२९—हल्दीघाट का युद्ध। अकबर के सेनापति मानसिंह और उदयपुर-नरेश महाराना प्रतापसिंह के बीच हल्दी घाटी में जो इतिहास-प्रसिद्ध युद्ध हुआ था उसीका इस पुस्तिका में दोहा और चौपाइयों में वर्णन है। कविता साधारणतः अच्छी है। इसकी रचना ठाकुर लालबहादुरसिंह ने की है। मूल्य एक आना। मिलने का पता—बाबू रामनारायण सिंह, पो० अनेई, ज़िला काशी।

❁

३०—अहिबलचक्रम्। पण्डित-मातृप्रसाद-कृत रत्नदा टीका सहित। इसमें ऊपर मूल श्लोक हैं; फिर संस्कृत टीका; उसके बाद हिन्दी टीका। इसमें अहिबल चक्र बनाने और उसके द्वारा भूमि में गड़े हुए धन और शल्य आदि का वृत्तान्त जानने की तरकीब लिखी हुई है। ज्योतिषियों को कुबेर बनने में अब देरी नहीं! छोटे साँचे के बारह पृष्ठ की इस पुस्तिका का मूल्य दो आना बहुत अधिक है। मिलने का पता—पण्डित मातृप्रसाद पाण्डेय, मौज़ा आही, पो० कछवाँ, ज़ि० मिर्ज़ापुर।

❁

३१—वास्तुसारिणी। पुस्तक संस्कृत में है। शुरू में वास्तु (गृहनिर्माण) विद्या सम्बन्धी मुख्य मुख्य बातों का वर्णन है। पीछे से तत्सम्बन्धिनी सारिणियाँ भी दी गई हैं जिनके पास थोड़ी ही ज़मीन है उन बेचारों को इस पुस्तक के अनुसार निर्दोष मकान आदि बनाना सर्वथा असंभव है। क्योंकि दस पाँच बिस्वे ज़मीन में कोई न कोई दोष प्रायः ज़रूर ही आजाने का डर रहेगा। इसकी रचना पण्डित मातृप्रसाद शर्मा, संस्कृत पाठशाला, नवाबगंज, बनारस, ने की है। वही इसे बेचते हैं। मूल्य ६ आने।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३२—श्रीवैष्णवमतप्रदीपः । अर्थात् श्रीरामानुज-सम्प्रदाय की उत्पत्ति-स्थिति-निरूपण । स्वामी राम-कृष्णानन्द गिरि कृत । ग्रंथकर्त्ता ने भूमिका में लिखा है कि "भिन्न भिन्न धर्मावलम्बी लोग दिन रात एक दूसरे की निन्दा किया करते हैं । देश की दुर्दशा का यही मुख्य कारण है ।" आपने इस पुस्तक के लिखने का मुख्य उद्देश यह बतलाया है कि लोग अन्य धर्मों या मतों की निन्दा न किया करें । हमारी समझ में यदि स्वामीजी महाराज केवल भूमिका लिखकर रह जाते तो बड़ा अच्छा होता । क्योंकि पुस्तक को लिखकर आपने "खुदरा फ़ज़ीहत दीगराँरा नसीहत" की लोकोक्ति अच्छी तरह चरितार्थ की है । इस पुस्तक में श्रीवैष्णवधर्म (चक्राङ्कितमत) की निन्दा जी खोलकर की गई है । इस सम्प्रदाय में जितने सच्चे झूँठे दोष हैं, उन सबका वर्णन बड़े विस्तार से किया गया है । ऐसी पुस्तकों से लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक होती है । इसलिए इनका प्रचार वाञ्छनीय नहीं । मूल्य इसमें कहीं नहीं लिखा । मिलने का पता—अध्यक्ष श्रीयतीन्द्र-विद्यालय, बाघम्बरी गद्दी, दारागंज, प्रयाग ।

मित्र-माहात्म्य ।

(मनोरञ्जक श्लोक)

(१)

करौविव शरीरस्य नेत्रयोरिव पक्ष्मणी ।
अविचार्य्य प्रियं कुर्य्यात्तन्मित्रं मित्रमुच्यते ॥

मित्र किसे कहते हैं ? मित्र उसे कहते हैं जो बिना ज़रा भी सोच विचार किये इस तरह हित करने के लिए तैयार रहे जिस तरह कि हाथ सारे शरीर का और बरोनियाँ आँखों का हित-साधन करने के लिए तत्पर रहती हैं ।

(२)

व्याधितस्यार्थहीनस्य देशान्तरगतस्य च ।
नरस्य शोकदग्धस्य सुहृद्दर्शनमौषधम् ॥

जो आधि-व्याधियों से पीड़ित है, जो क्षीण-सम्पत्ति है, जो विदेश में पड़ा हुआ है, जो शोक से जल रहा है—ऐसे मनुष्य के लिए अपने मित्र का दर्शन ओषधि का काम करता है ।

(३)

स्वाभाविकं तु यन्मित्रं भाग्येनैवाभिजायते ।
तदकृत्रिमसौहार्दमापत्स्वपि न मुञ्चति ॥

स्वाभाविक मित्र बड़े भाग्य से मिलता है । सच्चा मित्र वह है जो विपत्ति में भी अपने स्नेही का साथ न छोड़े ।

(४)

उदयन्नेव सविता पद्मेष्वर्पयति श्रियम् ।
विभावयन्समृद्धीनां फलं सुहृदनुग्रहम् ॥

समृद्धिशाली अर्थात् सम्पत्तिमान् होने का फल अपने मित्र पर अनुग्रह करना है,—यही समझ कर सूर्य्य उदय होते ही अपने प्यारे कमलों को प्रफुल्ल करता है—उन्हें श्री (शोभा, लक्ष्मी) देकर आनन्दित करता है ।

(५)

मित्रं प्रीतिरसायनं नयनयोरानन्दनं चेतसः
पात्रं यत्सुखदुःखयोः सह भवेन्मित्रेण तद्दुर्लभम् ।
ये चान्ये सुहृदः समृद्धिसमये द्रव्याभिलाषाकुला—
स्ते सर्वत्र मिलन्ति तत्त्वनिकषग्रावा तु तेषां विपत् ॥

इस संसार में ऐसे मित्र का मिलना बहुत दुर्लभ है जो अपने स्नेही के सुख-दुःख में शामिल रहे, जिसे देखतेही नेत्रों को अपूर्व आनन्द प्राप्त हो और जो सदा अपने आन्तरिक प्रेम को प्रवर्द्धित करता रहे । केवल मतलब साधने के इरादे से—एक मात्र रुपया पैसा झटकने की इच्छा से—अपने अच्छे दिनों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो मित्र बन जाते हैं वे तो गली गली मारे मारे फिरते हैं। उनकी पहचान उस समय होती है जब अपने ऊपर कोई विपत्ति आती है। विपत्ति के दिनों में वे सब छोड़ भगते हैं। विपत्ति ही ऐसे मित्रों की परीक्षा की कसौटी है। हिन्दी में भी किसी ने कहा है :—

विपति बराबर सुख नहीं, जो थोड़े दिन होय।
इष्ट मित्र बन्धू जिते, जानि पड़ें सब कोय॥

(६)

क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ताः पुरा तेऽखिलाः
क्षीरे तापमवेक्ष्य तेन पयसा ह्यात्मा कृशानौ हुतः।
गन्तुं पावकमुन्मनस्तदभवद्दृष्ट्वा तु मित्रापदम्
युक्तं तेन जलेन शाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी॥

दूध और पानी में अलौकिक मैत्री है। पानी के अकृत्रिम स्नेह को देख कर दूध ने उसे अपने सारे गुण—शुभ्रता, मिष्टता आदि—दे दिये। पानी इस उपकार को भूला नहीं। इससे जब दूध आग पर चढ़ाया गया और वह तपने लगा तब पानी से नहीं देखा गया। वह दूध से पहले ही आग में जल मरा। उसने कहा, अपने जीते जी मैं अपने सच्चे सुहृद् दूध को न जलने दूँगा। अतएव दूध से भरे हुए पात्र में आँच लगते ही पानी जलने लगा। यह दशा देख दूध घबरा उठा। वह अपने अनन्य मित्र पानी को जलने से बचाने के लिए आग को बिलकुलही बुझा देने अथवा खुदही जल मरने की इच्छा से दौड़ा। दूध में उफान आ गया। उफन कर वह उस पात्र के मुँह से नीचे आग पर गिरनेही को था कि फिर भी पानी ने उसकी रक्षा की। उसे आग में गिरने से बचा लिया। पानी का ज़रासा छींटा पाते ही दूध फिर शान्त हो गया। संसार में सज्जनों की मैत्री भी ऐसीही होती है।

कातरोक्ति।

(१)

दयामय जानकी-जीवन! हमारी आज बारी है।
कहो गति कौन सी तुमने हमें देनी बिचारी है?
हमारे कर्म्म देखोगे, ठिकाना तो कहाँ फिर है!
अधम सन्तान भी अपनी कहो किसने बिसारी है?
दुखी हमको समझ कर भी न करते हो कृपा तुम क्यों?
पड़ी जब जो व्यथा जिस पर सभी तुमने निवारी है।
अधम जन जान कर जी में करो मत दूर तुम हमको;
अहल्या सी अधम नारी तुम्हीं ने नाथ! तारी है।
यदपि हम हैं महा दोषी, दुराचारी, पतित, पापी,
क्षमा रहते तुम्हारी क्या हमारा दोष भारी है?
सदाचारी महात्मा तो स्वयं ही मुक्त होते हैं;
हमी से पामरों द्वारा बढ़ी महिमा तुम्हारी है।
शरण हैं बस तुम्हारे हम, करो जो कुछ उचित समझो;
पिता को छोड़ पुत्रों की नहीं गति और न्यारी है।

(२)

हे हरे! यह यातना अब तो सही जाती नहीं।
क्या दयामय! दुःख की सीमा कभी आती नहीं?
जन्म से अब तक न जानें कष्ट कितने हैं सहे;
अब तो फटने से बचेगी यह कड़ी छाती नहीं।
देर करने से विरुद की हानि होगी सर्वथा;
दीनबन्धु दयालु क्या श्रुतियाँ तुम्हें गाती नहीं?
हैं न तारे व्योम में तारे अधम जितने अहो!
क्यों दया हम पर तुम्हारी दृष्टि दिखलाती नहीं?
बस करो अब, बस करो, देखो, बहुत कुछ हो चुकी;
यह कठिन क्रीड़ा तुम्हारी अब हमें भाती नहीं।
खोजते फिरते तुम्हें हम, तुम छिपे फिरते सदा;
भिन्नता किसको तुम्हारी नित्य भटकाती नहीं?
हार मानी आज हमने, अन्त में जीते तुम्हीं;
यह हमारी मति तुम्हारा पार है पाती नहीं।
शरण देकर चरण में, भय हरण कर, करुणा करो;
बार बार सुयोग विधि की विधि कहीं लाती नहीं।

मैथिलीशरण गुप्त।

पुस्तकालय 11288 कांगड़ी

Printed and published by Panch Kory Mittra at the Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

112887

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri